श्रीरामचरितमानस

विजया टीका

तृतीय भाग

टीकाकार

मानसराजहंस पं० श्री विजयानन्दजी त्रिपाठी

सम्पादक

डा० श्रीनाथ मिश्र रामायणी

डा० सहजानन्द त्रिपाठी

प्रकाशक :
इण्डियन डवलपमेण्ट ट्रस्ट
३१, नेताजी सुभाष रोड
कलकत्ता, ७००००१

प्रकाशन तिथि
विजयादशमी १९८० ई०

मूल्य : प्रथम भाग से सबद्ध

मुद्रक
विश्वम्भरनाथ द्विवेदी
आनन्दकानन प्रेस
सीके ३६/२०, ढुण्ढिराज
वाराणसी, २२१००१

विषयानुक्रमणिका

४. किष्किन्धाकाण्ड

का तोड। पानी का ढावर होना। बहकर तालाबो मे जाना। जल का नदी द्वार से समुद्र मे पहुँचना। पृथिवी का हरा भरा होना। दादुर ध्वनि। पेडो मे नये पल्लव। अर्क जवास का होना। धूल का कठिनता से मिलना। धान की खेती। जुगुनू की बहार। महावृष्टि से क्यारियो का फूट चलना। किसानो का निराना। ऊसर मे तृण का न उगना। पृथिवी का जन्तुओ से भर जाना। पथिको का जहाँ का तहाँ ठहर जाना। कभी कभी प्रबल हवा बहना। कभी दिन मे अन्धकार और कभी धूप का वर्णन। शिक्षाप्रद उपमाओ का निर्देश। शरद ऋतु काश का फूलना। अगस्त्य का उदय होना। सरितासर मे निर्मल जल। जल का घटना। खञ्जन का आगमन। बिना कीचड और रेणु की पृथिवी। मीन की विकलता। आकाश की निर्मलता। कही कही पर थोडी वृष्टि का होना। रास्तो का खुल जाना। अगाध जल की मछलियो का सुखी रहना। कमल के फूलने से सर की शोभा। सुन्दर रात्रि मे भी चक्रवाक को दुख। चातक की रटन। चन्द्र का तापहरण। चकोरा का आह्लाद। मशक दश का नाश। बरसाती जीवो के *विनाश का वर्णन शिक्षाप्रद उपमाओ* के साथ दो १७ तक। पृ० ५४ से।

राम रोष प्रसग सुग्रीव के सुधि बिसारने पर रामचन्द्र का क्रोध। लक्ष्मण का सुग्रीव वध के लिए उद्यत होना। रामचन्द्र का समझा कर भेजना। इधर हनुमान् का सुग्रीव को समझाना। सुग्रीव की आज्ञा मे बन्दरो को बुलाने के लिए दूत भेजना दो १८ ७ तक। पृ० ७० से।

कपि त्रास प्रसग लक्ष्मण का क्रोध प्रदर्शन। अङ्गद को अभय दान। तारा और हनुमान् को भेजकर सुग्रीव का लक्ष्मणजी को बुलवाना। लक्ष्मण से सुग्रीव की भट। सुग्रीव की विनय। दूतो के भेजने का समाचार कहना। सबका रामचन्द्र के पास आना। सुग्रीव की विनय। रामचन्द्र का प्रेम दो २० ८ तक। पृ० ७५ से।

सुग्रीव दूत प्रेरणा प्रसग बानर कटक का आगमन। उसकी अपारता। रामचन्द्र का शील। सीता की खोज के लिए बानर भटा को सुग्रीव की आज्ञा। सुभटो को दक्षिण भेजना। सुग्रीव का उपदेश। हनुमान् को अँगूठी देना और सीताजी को समझाने के लिए शिक्षा। सबका प्रस्थान दो २३ ४ तक। पृ० ८२ से।

सीता की खोज प्रसग निशाचरो का वध। मुनियो को घेरना। सुभटो को प्यास। वन मे भूल जाना पृ० ८३ से।

विवर प्रवेश प्रसग हनुमान् का गिरि पर चढकर विवर म चिडियो के घुसने का कौतुक देखना। सबको लेकर दिखाना। विवर प्रवेश। तपस्विनी नारी का दर्शन। उसकी आज्ञा से मज्जन। फलाहार। सबका आँख मूंदना। खोलने पर अपने को समुद्र तट पर पाना। उक्त *नारी का रघुनाथजी के यहाँ जाना।* अनपायिनी भक्ति का लाभ। बदरी यात्रा दो २५ तक। पृ० ९० से।

सम्पाती मिलन प्रसग ' बानरो को सोच। समुद्र किनारे अनशन। जाम्बवान् का उपदेश। सम्पाती का आगमन। उसके वचनो स बानरो को भय। अगद द्वारा जटायु की प्रशसा। सम्पाती द्वारा उसका वृतात पूछा जाना। जटायु का

---

१ कहहु नाथ जिमि रावन मारा।

जाना। सीता को विस्मय। विश्वास दिलाने के लिए हनुमान् का शपथ लेना। नर वानर सङ्ग विषयक प्रश्न। उत्तर। सीताजी का विश्वास। सीता हनुमान् संवाद। रामचन्द्र का सन्देश। सीता की प्रेम विह्वलता। हनुमान् का ढाढस बँधाना। सीता का कपिसेना की कार्यकारिता में सन्देह। हनुमान् का निज देह प्रकट करना। सीता को भरोसा। हनुमान् की विनय। सीता को सन्तोष। आशीर्वाद। हनुमान् का बार बार प्रणाम दो १६६ तक। पृ० १४८ से।

बन विध्वंस प्रसङ्ग सीताजी से फल खाने की आज्ञा पाकर हनुमान् का बाग में प्रवेश। फल खाने के बाद पेड़ तोड़ना। बहु भटों से युद्ध। रावण के यहाँ पुकार। अनेक भटों का आगमन तथा युद्ध। सुभटों के साथ अक्षकुमार का आगमन। अक्षवध। बहुत बड़ा युद्ध। महाभटों के साथ इन्द्रजीत का आगमन। घोर युद्ध। मेघनाद को मूर्च्छा। मेघनाद की माया। ब्रह्मास्त्र प्रयोग। हनुमान् को मूर्च्छा। हनुमान् को नागपाश से बाँधकर मेघनाद का ले जाना दो १९५ तक। पृ० १६२ से।

रावण प्रबोध प्रसङ्ग रावण की सभा। हनुमान् की निर्भीकता। रावण के चार प्रश्न। हनुमान् के उत्तर। हनुमान् का विनती के व्याज से अतिहित उपदेश। वध दण्ड के लिए रावण की आज्ञा। विभीषण का आगमन। दूत के अवध्य होने से अन्य दण्ड के लिए विभीषण की विनय। सबकी सम्मति। पूँछ जलाने की आज्ञा। पूँछ जलाने की विधि। नगर में घुमाकर पूँछ में आग लगाना दो २४७ तक। पृ० १७० से।

लङ्का दहन प्रसङ्ग हनुमान् का अतिलघु रूप धारण कर बन्धन से निकल जाना। तीन बार उलट पुलट कर लङ्का दाह। समुद्र में कूदकर पूँछ बुझाना। विश्राम। सीता से चिह्न के लिए प्रार्थना। चूडामणि प्राप्ति। सीता का सन्देश। सीताजी की विह्वलता। हनुमान्‌जी का धीरज देना। प्रस्थान के समय घोर गर्जन दो २७१ तक। पृ० १८४ से।

पुनः समुद्रोल्लङ्घन प्रसङ्ग समुद्र लाँघकर पार जाना। सबसे मिलना। नवीन इतिहास कहते सुनते प्रभु के पास प्रस्थान दो २७६ तक। पृ० १९१ से।

रघुनाथ सन्निकट आगमन प्रसंग मधुवन का फल खाना। रखवारों की सुग्रीव के पास पुकार। सुग्रीव का हर्ष। तब तक वानरों का आगमन। सुग्रीव का सबसे मिलना। कुशल प्रश्न। हनुमान् द्वारा कार्यसिद्धि सुनकर उनसे फिर मिलना। सबका राम के पास जाना। प्रणाम। रामचन्द्र का सबसे कुशल प्रश्न दो २९ तक। पृ० १९३ से।

वैदेही कुशल कथन प्रसंग जाम्बवान् का हनुमत् चरित राम को सुनाना। राम का पुनः हनुमान् से मिलना। रामचन्द्र हनुमत् संवाद। प्रभु की कृतज्ञता। हनुमान् का चरणों पर गिरना। रामचन्द्र का हृदय लगाना। लंका दाह विधि पूछना। हनुमान् का प्रभु प्रताप को कारण बतलाकर शिव मनभावनी भक्ति माँगना। प्रभु का एवमस्तु कहना। इस संवाद की फलश्रुति। वानरों का जय जयकार। इति हनुमत् चरित्र दो ३३५ तक। पृ० १९६ से।

सेना समेत रघुवीर का समुद्रतट-

हृदय मे ज्वाला। जल जन्तुओ का जलना। विप्र वेष मे समुद्र का शरण आना। समुद्र की विनय। रामचन्द्र का कपि कटक उतरने के लिए उपाय पूछना। समुद्र का उपाय कथन। समुद्र की उत्तर तटवासी पापियो के वध के लिए उस शर को छोडने की प्रार्थना। रामचन्द्र का वैसा ही करना। रामचन्द्र का पौरुप देखकर समुद्र को हर्ष। समुद्र का सब चरित्र सुनाना। चरण वन्दन करके प्रस्थान। काण्ड की फलश्रुति दो ६० तक। पृ० २७४ से।

६. लङ्काकाण्ड

मङ्गलाचरण गोस्वामीजी का मन को राममजन के लिए समझाना हिन्दी। खल वध निरत रामचन्द्र की वन्दना। कन्दर्पहन्ता शङ्कर की वन्दना। खलो के दण्ड विधायक शङ्कर से मङ्गल की प्रार्थना। सस्कृत : पृ० २८३ से।

सेतुबन्ध प्रसङ्ग रामचन्द्र की सेतुबन्ध के लिए मन्त्रियो को आज्ञा। जाम्बवान् द्वारा समुद्र सन्तरण के ब्याज स नाम की स्तुति। हनुमान् की अत्युक्ति। जाम्बवान् की नलनोल को बुलाकर सेतुबन्ध के लिए आज्ञा। वानरो को विटप गिरि लाने का आदेश। सेतु-रचना। रामचन्द्र का शङ्कर स्थापना की इच्छा प्रकट करना। सुग्रीव का दूत भेजकर मुनियो को बुलवाना। श्रीरामेश्वर स्थापना। शिवद्रोही की निन्दा। राम-द्रोहा शैव और शिवद्रोही वैष्णव की निन्दा। श्री रामेश्वर तथा सेतु की महिमा। मुनियों का प्रस्थान। सेतु का दृढीकरण। सेना का चलना। सेतुबन्ध के निकट ऊँचे पर स कृपालु का सिन्धु की बहुताई देखना। प्रभु के दर्शन के लिए जल जन्तुओ का प्रकट हाना। राम की आज्ञा से कटक का चलना। सिन्धु पार डेरा। फलाहार की आज्ञा। कपिदल का उत्साह। निशाचरो का नासिका छेदन दो ४८ तक। पृ० २८७ से।

मन्दोदरी का रावण का समझाना दूसरी बार नकटे राक्षसो का रावण को खबर देना। सेतुबन्ध सुनकर रावण की आकुलता। रावण का घर जाना। मन्दोदरी का उसे अपने महल मे ले जाना। चरणो पर सिर नवाकर अञ्चल रोपकर समझाना। रावण का अपनी प्रभुता का बखान करना। सभा मे जाना दो ७५ तक। पृ० ३०२ से।

रावण सभा रावण का सभा म जाकर मन्त्रियो से युद्धविधि निश्चय के लिए मन्त्र पूछना। मन्त्रियो का फिर ठकुर सुहाती बात कहना। प्रहस्त की फटकार और सीता भेजकर प्रीति करने तथा न मानने पर युद्ध की सलाह। रावण का अत्य त लगती बात बोलना। प्रहस्त का प्रस्थान। रावण का जाकर लङ्का के शिखर के मकान पर बैठकर नाच देखना दो १० तक। पृ० ३१० से।

सुवेली की झाँकी रामचन्द्र का सुवेल शैल पर उतरना। उसके शिखर पर किसलय सुमन बिछाकर लक्ष्मण का मृगछाला बिछाना। उस पर सरकार का शयन झाँकी वर्णन। ध्यान की फलश्रुति। चन्द्रमा पर उत्प्रेक्षा। रामचन्द्र के बाण से रावण के छत्र मुकुट और मन्दोदरी के ताटङ्क का गिरना। सभासदो को भय। मन्दोदरी को शोक दो १३ ६ तक। पृ० ३१७ से।

मन्दादरी का रावण को समझाना तीसरी बार मन्दादरी का विश्वरूप

निशाचरो को पकडकर नीचे कूदना। दूसरे धावे म निशाचरो का भागना, रावण का क्रोध। निशाचरी सेना का प्राणपण से युद्ध। बानरोका पलायन। मेघनाद के प्रभाव से पश्चिम फाटक का न टूटना। हनुमान् को बानरी सेना के पलायन का समाचार। हनुमान् के प्रहार से मेघनाद को मूर्च्छा। अङ्गद को हनुमान् के अकेले गढ पर जाने का समाचार मिलना। अगद का भी कूद कर लका पर चढना। रावण का महल गिराना। राक्षसी सेना के मध्य म कूदना। घार युद्ध। महामुखियो को प्रभु के पास फकना। उनकी गति। राक्षसी सेना का मदन करके अङ्गद हनुमान् का लौटना। प्रदोष का बल पाकर राक्षसो का लौट पडना। फिर युद्ध। अकम्पन और अतिकाय की माया। सरकार का अगद हनुमान् को भेजना। अग्न्यस्त्र से प्रकाश। फिर युद्ध। निशाचरी सेना का भागकर गढ पर चढ जाना। बानरो सेना का लौट आना। ७ दोहो म चारो फाटक की लडाई समाप्त दो ४७ २ तक। पृ० ४०० से।

रावण की सभा मन्त्रियो को बुलाहट। आधी सेना का सहार होने पर परामर्श। माल्यवान् की सीता दे देने की सम्मति। रावण का क्रोध। माल्यवान् का प्रस्थान। मेघनाद का भरोसा देना। दो ४८ ७ तक। पृ० ४२५ स।

मेघनाद का गढ से उतरकर युद्ध करना सवेरा होते ही बानरो का लका घेरना। लका पर से तोप का चलना। बन्दरो का शैल फेंककर निशाचरो को मारना। मघनाद का दुर्ग से उतर कर युद्ध के लिए डका देना। मघनाद के प्रहार से कपिसेना की विकलता। हनुमान् द्वारा मेघनाद का विरथ होना। मेघनाद का रामचन्द्र के पास प्रस्थान। अस्त्रो के निष्फल होने पर माया। रामचन्द्र के एक बाण से माया भग। लक्ष्मण का युद्ध के लिए चलना। रावण के भेज हुए सुभटो का आना। जोडी स जोडी का युद्ध। लका के सब सुभटो का सहार। गड्ढो का रुधिर स भर जाना। लक्ष्मण मेघनाद की जोडी। प्राणावशेष होने पर मेघनाद द्वारा वीरघातिनी साँगी का प्रहार। लक्ष्मण की मूर्च्छा सन्ध्या समय दोनो कटको का लौटना ५ दोहो मे मेघनाद का प्रथम युद्ध दो ५४ ४ तक। पृ० ४२९ से।

लक्ष्मण का उपचार हनुमान्जी का मूर्च्छित लक्ष्मण को लाना। सरकार का अति दुख करना। जाम्बवान् के कहने पर हनुमान्जी का भवन सहित सुषेण को लाना। सुषेण का पर्वत और औषधि बतलाना। हनुमान् का जाना। रावण का कालिनेमि को भेजना। कालिनेमि की माया। कालिनेमि वध औषधि न पहचानकर हनुमान्जी का शैल उखाड लेना। आकाश मार्ग मे दौडते हुए अवधपुरी के ऊपर चला जाना। भरतजी का निशिचर समझकर बाण मारना। हनुमान् को मूर्च्छा। भरत का जगाना। समाचार पाने पर भरत का सशैल हनुमान् को बाण द्वारा भेजने का प्रस्ताव। बाण के समान जाने की प्रतिज्ञा करके हनुमान्जी का प्रस्थान। राम का विलाप प्रलाप। हनुमान् का आगमन। प्रभु का मिलना। वैद्य का

रूपक। विभीषण की कृतकृत्यता। दोनो सेनाओ म घोर युद्ध। निशाचरो का पलायन। रावण का रथ आगे बढाना। रावण का प्रहार। कपिसेना म विक लता। लक्ष्मण का संग्राम भूमि म उतरना। रावण की ललकार। रावण के आयधो का लक्ष्मण द्वारा खण्डन। लक्ष्मण का प्रहार। रावण की मूर्च्छा। जागकर ब्रह्मदत्त साँगी का प्रयोग। लक्ष्मण की मूर्च्छा। रावण का न उठा सकना। हनुमान् स युद्ध। हनुमान् का लक्ष्मण को लाना। राम के वाक्य स लक्ष्मण का जागना। धनुर्बाण लेकर रावण पर आक्रमण। रावण को मूर्च्छा। सारथि का उसे रथ पर लाद ल जाना छ ८४ तक। पृ० ५०६ स।

रावण यज्ञ विध्वस रावण का यज्ञ। विभीषण का समाचार देना। सवेरा होते ही सरकार द्वारा सुभटो का भेजा जाना। सुभटो का रावण भवन प्रवेश। यज्ञ विध्वस। सुभटो का कुशलपूर्वक राम के यहाँ प्रस्थान दो ८५ तक। पृ० ५३२ से।

रघुपति रावण समर प्रसग रावण का सक्रोध प्रयाण। असगुन। सेना का धावा। प्रभु से देवताओ की विनती। सरकार का युद्ध के लिए तयारी। निशाचरी सेना का आगमन। युद्ध म वर्षा का रूपक। रुधिर सरिता का प्रादुर्भाव। रामबाण स निशिचर सहार। सुरपति का निजरथ भेज ा। रामजी का सवार होना। रावण स बानरो के प्रहार का न सहा जाना। रावण की माया। सेना का चकित होना। राम बाण से माया का नाश। विप्र चरण नमस्कारपूर्वक राम का रथ आगे बढाना। रावण का दुर्वचन। सरकार का उपदेश। राम रावण युद्ध। विभीषण पर घोर शक्ति प्रहार। सरकार का उस शक्ति को अपने ऊपर लेना। मूर्च्छा। विभीषण रावण युद्ध। विभीषण को श्रामन्त देखकर हनुमान् का दौड़ना। हनुमान् रावण युद्ध। हनुमान् पर सकट देखकर बानरी सेना का आक्रमण। कपिसेना मदन। रामचन्द्र के ललकारने पर प्रचण्ड बानरो का दौडना। रावण का अन्तर्धान होना। असंख्य रावणो का प्रादुर्भाव। कपिसेना का पलायन। देवताओ का पलायन। एक बाण स सब दशकधरो का नाश। रावण को एक देखकर देवताओ को हर्ष। सरकार का भुजा उठाकर बानरो को फेरना। देवताओ की स्तुति। रावण का क्रोध करके देवताओ पर धावा। देवताओ म हाहाकार। अङ्गद का रावण को नीचे गिराना। रावण की बाण वर्षा से कपिसेना का घायल होना। राम रावण युद्ध। सिर भुजा बढते देखकर बानरो को क्रोध। उन पर प्रहार। रावण के बाणो स बानर वीरो को मूर्च्छा। जाम्बवान् का आक्रमण। जाम्बवान् के प्रहार से रावण को मूर्च्छा। सूत का लादकर रावण को घर ले जाना। बानरो का प्रभु के पास लौटना रावण का दूसरा युद्ध दो ९८ तक। पृ० ५३५ से।

सीता विलाप त्रिजटा का यह समाचार सीता को देना। रामबाण स सिर कटने पर भी रावण के न मरने पर सीताजी का विलाप। त्रिजटा का समझाना। विरह व्यथा से विलाप। सगुन से धैर्य दो ९९ ६ तक। पृ० ५७५ से।

लाना । रामेश्वर को प्रणाम । दण्डक वन मं रामजी का अगस्त्यादि मुनियो के स्थान मे जाना । चित्रकूट म मुनिया से मिलना । फिर त्रिवेणी स्थान । हनुमान् को भरत के पास अपना कुशल सुनाने तथा समाचार लेने के लिए भेजना । भरद्वाज से मिलकर फिर गङ्गा पार उतरना । गङ्गा पुजाई । निषाद की प्रीति । सरकार का हृदय से लगा लेना । काण्ड की फलश्रुति । मन को नाम का आधार ग्रहण के लिए उपदेश दो १२१ तक । पृ० ६४५ से ।

७. उत्तरकाण्ड

मगलाचरण ६५५ स ।

उमा[1] के सातवे प्रश्न का उत्तर

नगरनिकट आगमन विधि प्रसङ्ग

पुष्पकारूढ राम की वन्दना । चरणकमल वर्णन । शङ्कर की वन्दना । सस्कृत पुरजनो की आरती । भरत को शकुन । भरत का विचार । उनका विरहसागर म मग्न होना । हनुमदागमन । समाचार कथन । भरत को हर्ष । पूछने पर हनुमान् द्वारा आत्मपरिचय । भरत का मिलन । सम्वाद । हनुमान् का जाकर राम से कुशल कहना । सरकार का प्रयाण । भरत का कोसलपुर आना । अवध मे उछाह । रामचन्द्र का कपिया को पुरी दिखलाना तथा पुरी का बखान । सरकार का पुष्पक से उतरकर उस कुबेर क पास भेजना । भरत के सङ्ग सबका आगमन । मिलन । आरती । निछावर । सखाओ का परिचय । सुखकन्द का घर चलना । अयोध्या मे तैयारी । अयोध्या सनाथ । कैकेयी क घर जाना । कैकेयी प्रबोध तत्पश्चात् अपने घर जाना दो ९२ तक । पृ० ६५८ स ।

रामाभिषेक प्रसङ्ग गुरु वसिष्ठ का मुहूर्त । ब्राह्मणो का अनुशासन । गुरुजी की आज्ञा स सुमन्त का रथ गजबाजि सँवारना । परिचार को मङ्गल द्रव्य लाना । अवधपुरी की रचना । पुष्पवृष्टि । सखा तीनो भाई सरकार तथा जानकी का मज्जन तथा शृङ्गार । राम वाम दिशि रमा का शोभा । ब्रह्मादि देवो का आगमन । अभिषेक । देवस्तुति । वेद स्तुति । शिव स्तुति । अभिषक की फलश्रुति । सखाओ का छ महीने निवास । बिदाई । अङ्गद का प्रेम । निषाद की बिदाई दो १९ ५ तक । पृ० ६८९ स ।

पुरवर्णन तथा अनेक नृपनीति प्रसग

रामराज्य की विशेषता । चारो चरणों से धर्म । काल कर्म स्वभाव गुण कृत दु ख की हानि । सप्तसागर मेखला भूमि मे एकछत्र राज्य । सबका मनोजय । प्रकृति की अनुकूलता । कोटि अश्वमेध । सीता की गुणगाथा । चारो भाइया का सौभ्रात्र । चारो भाइया के दो दो पुत्र । राजा स प्रजा तक सब कथा के रसिक । नारदादि की नित्य अवधयात्रा । नगर की शोभा । जहा तहा गुण गान । दोषा को दु ख और गुणो को सुख । भाइया तथा हनुमान् के सहित रामचन्द्र का उपवन जाना । सनकादिक का आगमन । राम का सत्कार । मुनिया की स्तुति । अभीष्ट वर पाकर ब्रह्मलोक प्रस्थान । भरत के प्रश्न पर सरकार का सन्त असन्त की करनी । सन्तो के गुण । असन्तो के स्वभाव । वेद पुराण का

---

१ राज बैठि कीन्ही बहु लीली । सकल कहहु सकर सुखसीला ॥

निर्णय। अपना फलदातृत्व। परम सयानो के उपाय गुण और दोष वर्णन करना। फिर घर जाना। ब्रह्मलोक मे कथा। पुरवासियों को उपदेश। अवधवासी का कृतार्थ होना। वसिष्ठ मुनि का आगमन। आत्मकथा। भक्ति वरदान याचना दो ४९१ तक। पृ० ७२३ से।

उमा के आठवें प्रश्न का उत्तर [1]एक बार पुर बाहर गमन। गज रथ तुरग का सविभाग। अमराई म विश्राम। नारद का आगमन। गुणगान। शोभा सिन्धु को हृदय म रखकर प्रस्थान दो ५१ तक। पृ० ७९१ से।

कथोपसहार जो कथा भुसुण्डिजी ने गरुडजी से कही थी उसे उमा को सुनाकर अर्थात् बारह प्रश्नो मे से आठ का उत्तर देकर। आगे क्या कहू ? इस विषय मे शिवजी का प्रश्न। उमा की कृतकृत्यता। कथा से मन का न अघाना दो ५२ ७ तक। पृ० ७९६ से।

उमा के पाँच प्रश्न १ अतिदुर्लभ हरिभक्ति काक ने कैसे पाई ? २ यह प्रभुचरित कैसे पाया ? ३ तुमने उससे कैसे सुना ? ४ गरुड ने मुनियो को छोडकर काक से क्या सुना ? ५ किस विधि से सम्वाद हुआ दो ५४ ५ तक। पृ० ८०० से।

तीसरे[2] प्रश्न का उत्तर प्रश्न सुनकर शिवजी को आनन्द। कथनीय इतिहास का माहात्म्य। गरुड द्वारा ऐसे ही प्रश्न काक के प्रति किये जाने का उल्लेख। उन सब बातो के कहने की प्रतिज्ञा। अत पहिले तीसरे प्रश्न के उत्तर की आवश्यकता। दक्ष यज्ञ मे सती के शरीर त्याग पर दु खित शिवजी का नील शैल पर जाना। वहाँ का दृश्य। भुसुण्डि की दिनचर्या। मराल शरीर धारण करके शिवजी का कथा श्रवण। तत्पश्चात् कैलासागमन दो ५७ तक। पृ० ८०४ से।

चौथे[3] प्रश्न का उत्तर नागपाश मे बँध हुए रामचन्द्र को छुडाने पर गरुड को विषाद। गरुड का सशयोच्छेद के लिए नारद के पास जाना। नारद का उसे ब्रह्मदेव के पास भेजना। ब्रह्मदेव का शिव के पास भेजना। शिव का भुसुण्डि के पास भेजना। अभिमान भङ्ग तथा पक्षीभाषा म यथार्थ बोध होना ही काक के पास गरुड को भेजने का कारण दो ६२ तक। पृ० ८१० स।

पाँचवें[4] प्रश्न का उत्तर अथ उत्तरघाट प्रारम्भ गरुड का भुसुण्डि के यहाँ जाना। तडाग मज्जन। जल पान। कथा प्रारम्भ क समय पहुँचना। भुसुण्डि का सत्कार। पूजा। आज्ञा के लिए प्रार्थना। आश्रम के दर्शन से ही मोह सशय भ्रम का भङ्ग। श्रीराम कथा सुनने के लिए विनय। भुसुण्डि का चौरासी प्रसङ्गो मे रामकथा कहना मूल रामचरितमानस। गरुड की कृत कृत्यता। उसी भ्रम को सत्सङ्ग का

---

१ बहुरि कहहु करुनायतन कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजा सहित रघुवशमनि किमि गवने निज धाम॥
२ तुम केहि भाति सुना उरगारी। कहहु मोहि अति कौतुक भारी॥
३ सो कहि हेतु तात कहि जाई। मुनि कथा मुनि निकर बिहाई॥
४ कहहु कवन बिधि भा सवादा। दोउ हरिभगत काग उरगादा॥

कारण होने से हितकर मानना। गरुड की वाणी से काग को हर्ष। गोप्यमत प्रकाशन के लिए अधिकारी। श्रोता के लक्षण। भुसुण्डि की सुशीलता। मोह होना आश्चर्य की बात नहीं। माया कटक का वर्णन। उनकी करतूत। मिथ्या होने पर भी रामकृपा बिना माया से मुक्ति नहीं। माया प्रेरक का स्वरूप। भक्त हेतु अवतार तथा नटसमान चरित। दनुजविमोहनी जन सुखकारिणी लीला। अपने मोह से राम म मोह का भ्रम। गृहासक्त के लिए रामस्वरूप ज्ञान असम्भव। निर्गुण रूप की अतिसुलभता। सगुण के सुगम अगम चरित्र श्रवण से मुनि को भी भ्रम दो ७३ तक। पृ० ८२० से।

रामरहस्य उमा के ग्यारहवें प्रश्न का उत्तर. [1]आत्ममोह की कथा सुनाने की प्रतिज्ञा। राम का स्वभाव मानहारी। जब जब रामावतार तब तब अपने इष्टदेव बालक राम दर्शन के लिए भुसुण्डि को अवधयात्रा। जन्म महोत्सव देखना। पाँच वर्ष रह जाना। एक बार सब चरित्रो की अतिशयिता। नृप अजिर विहारी के नख शिख का वर्णन। शिशु लीला। लघु वायस रूपधारी भुसुण्डि से विविध विधि क्रीडा। प्राकृत शिशु सदृश लीला देखकर भुसुण्डि को मोह। एक मायापति का अखण्ड ज्ञान जीव मायावश्य। जीव ईश भेद मिथ्या माया कृत। तथापि बिना हरिकृपा के कोटि उपाय से भी अच्छेद्य। हरिसेवक को अविद्या न व्याप कर विद्या का व्यापना। भ्रम से भुसुण्डि को चकित देखकर। राम का हँसना, भुसुण्डि का मुख मे चला जाना। राम के उदर मे अनन्त ब्रह्माण्डो का दर्शन। वहाँ की रचना। अगणित ब्रह्मा, शङ्कर, सूर्य, चन्द्र, अगणित भूधर, भूमि, सागर, सर, सरिता, विपिन, तथा जो न देखा न सुना न मन में समाया सो सब देखना। प्रत्येक ब्रह्माण्ड मे सृष्टिवैषम्य। प्रति ब्रह्माण्ड मे अपने रूप मे भेद। प्रति भुवन मे अवधपुरी, सरयू पुर नरनारी, दशरथ कौसल्या के रूप मे भेद। प्रतिब्रह्माण्ड मे रामावतार अभेद। बालचरित घूमते घूमते एक सौ एक कल्पो का बीतना। अपने आश्रम मे आना। रामावतार सुनकर अवध मे जाना। उन्ही राम का दर्शन। दो घडी मे सब देखना। भुसुण्डि को विकल देखकर पुन हास। भुसुण्डि का मुख के बाहर आना और फिर वही शिशु लीला। भुसुण्डि का त्राहि त्राहि करके पृथिवी पर गिरना। सरकार द्वारा माया की प्रभुता का रोका जाना। भुसुण्डि का विनय। वरदान के लिए आज्ञा। दुर्लभ भक्ति माँगना। सब सत् गुणो के बसने का वरदान। सिद्धान्तोपदेश। अति नीच भक्त का भी प्रिय होना। अज्ञान पुत्र भी भक्त होने से पिता का प्राणप्रिया सरकार का दूध के लिए रोना। माता का दूध पिलाना। इस सुख के लवलेश की प्राप्ति के सम्मुख ब्रह्मसुख का अनादर। तब से माया का न व्यापना। भुसुण्डिजी का अनुभव राम के भजन का उपदेश। राम की महिमा। राम के गुण। राम की भावश्यना। गरुडजी की कृतज्ञता: दो ९२ १ तक। पृ० ८८७ से।

---

१ औरौ राम रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल बिवेका।

भुसुण्डि चरित

पहिले और दूसरे प्रश्न का उत्तर [१] गरुड का हर्ष। पिछले मोह के लिए पश्चात्ताप। भुसुण्डिजी को प्रणाम। प्रशंसा। गरुडजी के चार प्रश्न १ काक देह पाने का कारण २ रामचरितसर प्राप्तिस्थान ३ काल के व्यापने का कारण ४ भुसुण्डि के आश्रम में आने से मोह भागने का कारण। प्रश्न सुनकर भुसुण्डि को हर्ष। गरुड की बुद्धि की प्रशंसा। बहुत जन्मों की सुधि आना। काक शरीर में रामभक्ति की उत्पत्ति अतः उसका प्रिय होना। इच्छा मरण होने से शरीर का न त्यागना। मोह द्वारा भुसुण्डिजी का पहिले बहुत सताया जाना। सब कर्म करके देख लेना ऐसे सुख का कहीं न मिलना। पूर्व काल के कलियुग में अयोध्या जाकर शूद्र होना। परम शैव अन्यदेव निन्दक राम की महिमा से अनभिज्ञ होना। अवध की महिमा। कलियुग धर्म वर्णन। अधर्म और विपरीत धर्म का प्रचार। कलि के गुण। नाम से गति। हरिगुण गान का आधार होना। मानस पुण्य का होना। मानस पाप का न होना। दान से कल्याण। चारों युगों की विवेचना। युग धर्म के ज्ञान से अधर्म का त्याग। धर्म में रति। राम के भक्त पर कालधर्म का बल नहीं। मायाकृत गुण दोष का बिना भजन के नाश न होना। बहुत दिन अवध वास के बाद दुकाल पड़ना। भुसुण्डि का उज्जैन जाना। ब्राह्मण से मन्त्र लेना। भुसुण्डि के विष्णुद्रोह से गुरु को पीडा। गुरु के उपदेश की उपेक्षा। गुरु के जाने पर शिव मन्दिर में बैठे जप करते रह जाना। शिव का शाप। गुरु का हाहाकार करना। शङ्कर की स्तुति करना। रुद्राष्टक। उसकी फलश्रुति। वर माँगने के लिए आकाशवाणी। गुरु द्वारा शङ्कर चरण भक्ति तथा भुसुण्डि के लिए परम कल्याण का माँगा जाना। शापोद्धार। विन्ध्यगिरि में सर्प होना। अन्त में ब्राह्मण शरीर प्राप्ति। भुसुण्डि की हरि भक्ति। माता पिता के मरने पर भजन के लिए प्रस्थान। रामचरणदर्शन की लालसा। ईश्वर के सर्वभूतमय होने में मुनियों का ऐकमत्य। मेरु शिखर पर वट छाया में बैठे हुए लोमश ऋषि का शरण ग्रहण दो. ११० तक। पृ० ८९६ से।

प्रसंगात् उमा के नवें प्रश्न का उत्तर [२] ब्रह्मज्ञानरत विज्ञानी मुनि का भुसुण्डि को परम अधिकारी समझकर ब्रह्मोपदेश। षोडशलक्षणयुक्त सुखराशि का निरूपण। महावाक्य का उपदेश। भुसुण्डि की सगुण उपासना कहने के लिए प्रार्थना। मुनि द्वारा सगुण मत का खण्डन। निर्गुण का उपदेश। भुसुण्डि का निर्गुण मत दूर करके हठपूर्वक सगुण निरूपण। मुनि का सकोप ज्ञान निरूपण।

---

१. सो हरि भगति काक किमि पाई।
यह प्रभु चरित पवित्र सोहावा।
कहहु कृपाल काक किमि पावा॥

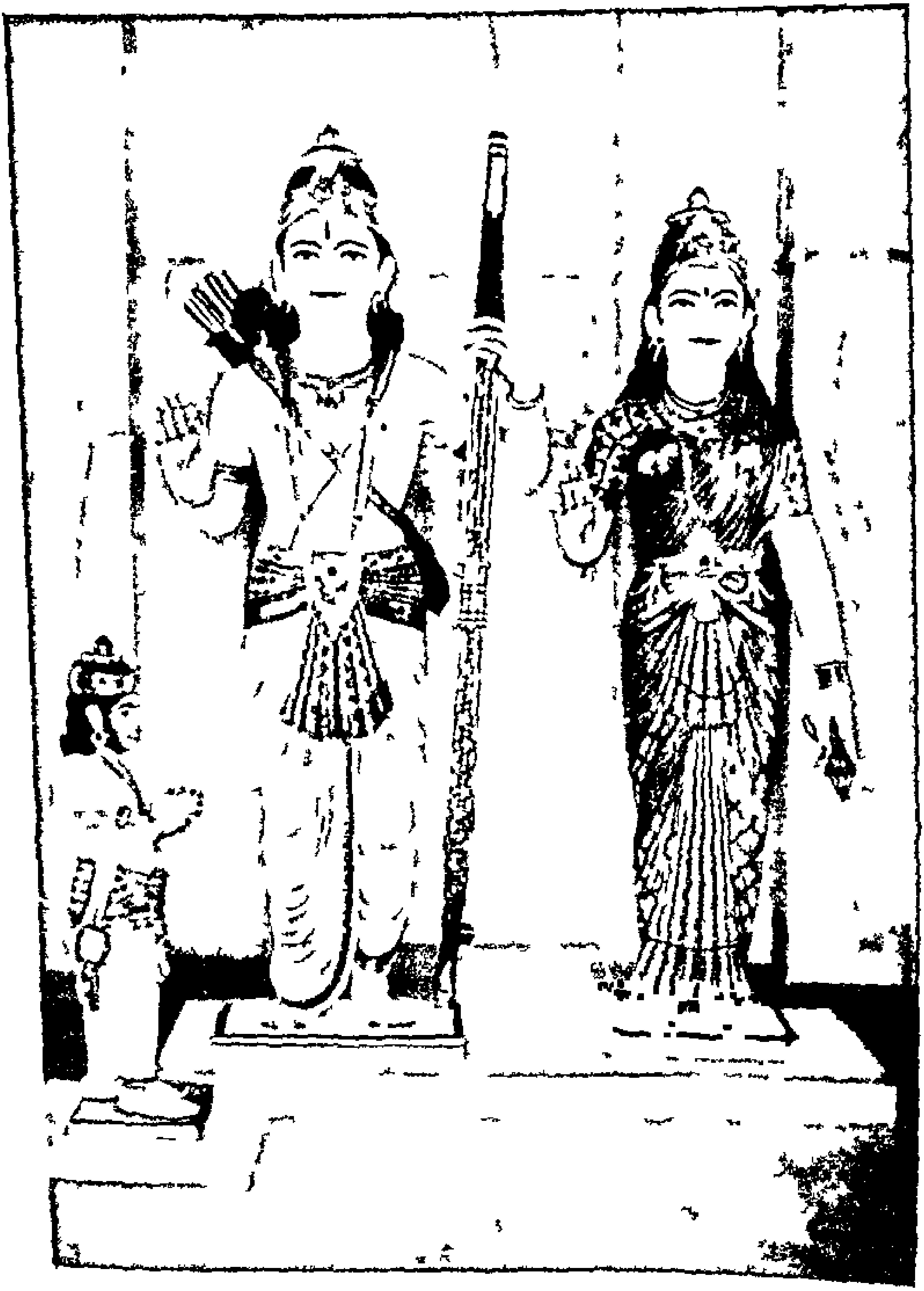
२ पुनि प्रभु कहहु सो तत्व बखानी।
जेहि विज्ञान मगन मुनि ज्ञानी॥

बावरो तू बावरो बतावै शिवशंकर को,
किंकर है जाके देव सेवत सुरेश है।
महिमा बखानै नेति - नेति करि मानै,
भेद वेदहुँ न जानै गुन गावत गनेश है॥
तनया तिहारी ताको जानती प्रताप पति—
भाव तिनही मे ताते धरति महेश है।
सबके सुपासी आप रहत उदासी मुक्ति—
मुक्ति जहं दासी ऐसे मालिक महेश है॥

—विजयानन्द त्रिपाठी

बावरो तू बावरो बतावै शिवशंकर को,
किंकर है जाके देव सेवत सुरेश है।
महिमा बखानै नेति-नेति करि मानै,
भेद वेदहुँ न जानै गुन गावत गनेश है॥
तनया तिहारी ताको जानती प्रताप पति—
भाव तिनही मे लाते धरति महेश है।
सबके सुपासी आप रहत उदासी मुक्ति—
मुक्ति जहँ दासी ऐसे मालिक महेश है॥

—विजयानन्द त्रिपाठी



दुर्गापुरस्थित श्रीराम जानकी मंदिर



मानसराजहंस श्रीविजयानन्द त्रिपाठी के प्रमुख शिष्य

डॉ. श्रीनाथ मिश्र रामायणी

श्रीरामचरितमानस

विजया टीका

वस्तुतस्तु जीव भी अजन्मा है और ब्रह्म भी अजन्मा है। गीता मे भगवान् कहते हैं कि कदाचित् इस जीव का जन्म नही होना और अपने लिए भी कहते हैं कि मैं अजन्मा हूँ, अव्ययात्मा हूँ और भूतो का ईश्वर हूँ। यथा न जायते म्रियते वा कदाचित् तथा अजाऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्। भेद इतना ही है कि जीव का जन्म अविद्या द्वारा होता है और ईश्वर माया द्वारा देह ग्रहण करते हैं। माया से ही दो स्वरूप से भासित होते हैं। यथा ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय वेष धरि सोइ कि आवा। रघुकुल मे जन्म लिया है। इससे रघुवर कहते हैं। धर्मसेतु रक्षक हैं। धर्मग्लान्यधर्माभ्युत्थान की निवृत्ति के लिए जगत् के कल्याण के लिए अवतीर्ण हैं। अवतार तथा अवतार ग्रहण का प्रयोजन कहकर अब प्रसङ्गा नुकूल ध्यान करते हैं कि सीताहरण हो गया। सो उन्ही की खोज मे तत्पर हैं। ऐसे अवसर मे भी रास्ते चलते भक्ति चिन्तामणि का वितरण हो रहा है। अत गोस्वामी जी भक्ति की याचना कर रहे हैं। अथवा जो भक्त के लिए इतना कष्ट उठा रहे हैं कि वन वन मे ढूँढते फिरते हैं जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत बिरह दुख दुखित सुजाना। उनसे भक्ति ही माँगना चाहिए। अत दीनघाट के वक्ता दीन जनो के लिए भक्ति की याचना कर रहे हैं। इसीलिए बहुवचन न का प्रयोग किया।

श्लो ब्रह्माभोधिसमुद्भव कलिमलप्रध्वसन चाव्यय
श्रीमच्छभुमुखेंदुसुदरवरे सशोभित सर्वदा।
ससारामयभेषज सुखकर श्रीजानकीजीवन
धन्यास्ते कृतिन पिबन्ति सतत श्रीरामनामामृतम् ॥२॥

अर्थ वे सुकृती धन्य हैं जो वेदरूपी समुद्र से उत्पन्न, कलिमल के नाश करनेवाले, अव्यय, श्रीमान् शम्भु के सुन्दर मुखचन्द्र मे सर्वदा विराजमान, ससाररूपी रोग के औषध, सुख कर, श्री जानकी के जीवन, श्री रामनामामृत को सदा पान किया करते हैं।

व्याख्या नामी का वर्णन करके नाम का वर्णन करते हैं। स्वाद तोषसम सुगति सुधा के कह आये हैं। इसलिए उसका वर्णन अमृत रूप से करते हैं। अमृत पीनेवाल धन्य नही हैं। केवल दीर्घजीवी होकर कौन धन्य हुआ है। काकोऽपि जीवति चिराय बलि च भुक्ते। पुण्यमय जीवन एक मुहूर्त का भी बहुत है। इसलिए कहते हैं कि जो पुण्यात्मा सदा रामनामामृत का पान करते हैं वे धन्य हैं। अमृत तो लौकिक अम्भोधि से उत्पन्न है।

१ पर नामामृत तो वेदाम्भोधि से उत्पन्न है। यथा बिधि हरिहर मय बेद प्रण सो मल की निवृत्ति होती है। पर

श्रीराम

श्रीगणेशाय नमः । श्रीगुरवे नमः

श्रीरामचरितमानस

किष्किन्धाकाण्ड : चतुर्थ सोपान

सटीक

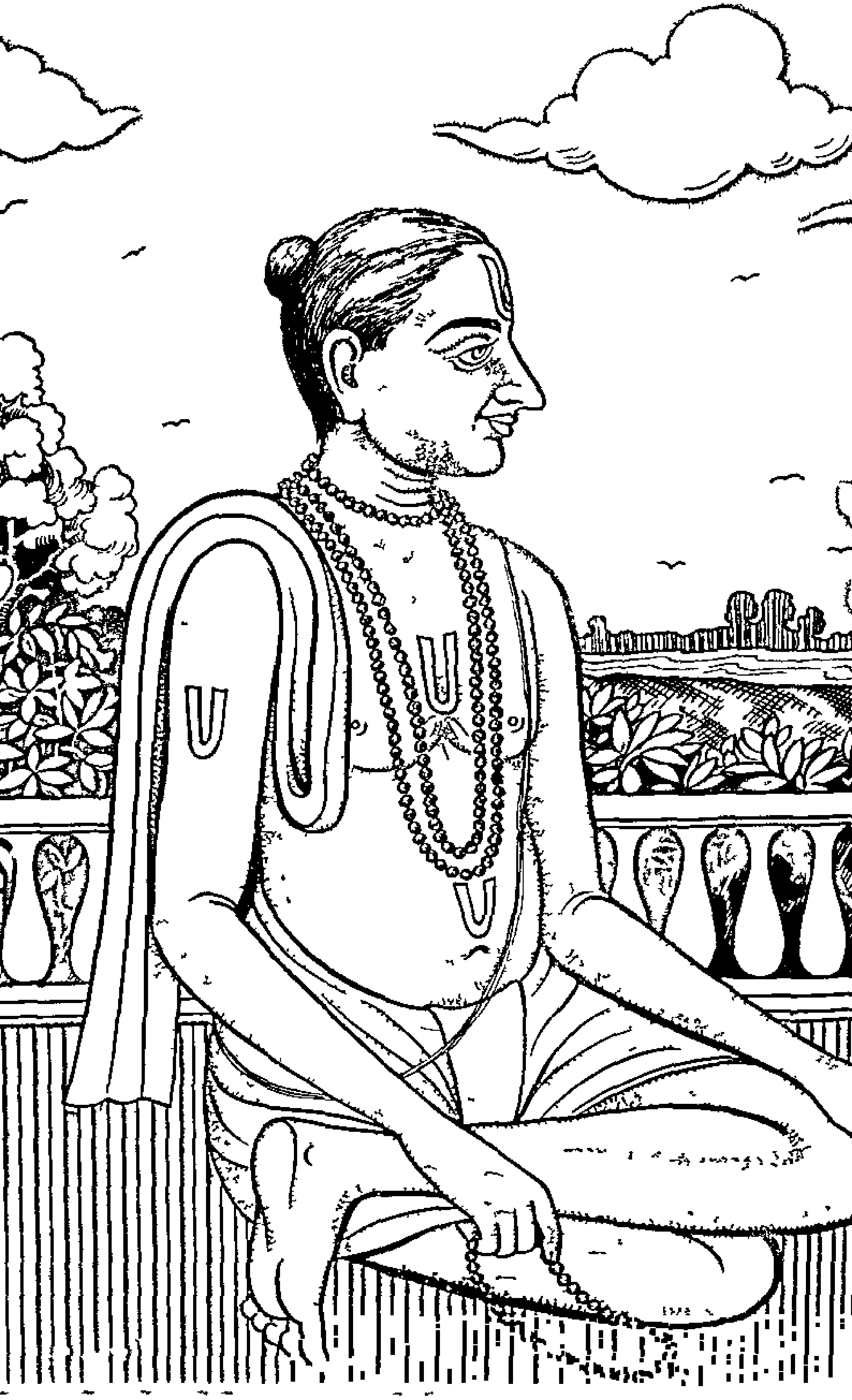
मङ्गलाचरण

श्लो. कुंदेंदीवरसुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ
शोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ ।
मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ
सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौहि नः ॥१॥

अर्थ : कुन्द और नील कमल के समान सुन्दर, अत्यन्त बलवान विज्ञान धाम शोभा के धनी, श्रेष्ठ धनुर्धर, वेद से वन्दित, गो ब्राह्मण समूह के प्रिय या प्रेमी, माया से मनुष्य का रूप धारण किये, सद्धर्म के लिए कवचरूप, हितकारी, श्री सीता जी के खोज में तत्पर, दोनों पथिक, दोनों रघुकुल में श्रेष्ठ, हमें भक्ति के देनेवाले हों।

व्याख्या : कुन्द की भांति गौरवर्ण लक्ष्मण जी और नील कमल से सुन्दर श्यामवर्ण रामजी हैं। इनकी फूलों से उपमा देकर कोमलता, सौन्दर्य और सौगन्ध्य कहा। सुन्दर और सुकुमार व्यक्ति में बल की न्यूनता होती है। पर ये दोनों व्यक्ति अतिबल हैं।

पुनः बलवान् शरीर की ही सेवा मे लगे रहते हैं। उन्हे देहाध्यास की मात्रा अधिक होती है। पर ये विज्ञान के धाम हैं। अतः शोभा के धनी हैं। अथवा दूसरों को इनसे शोभा मिलती है। इसलिए शोभा के धनी हैं। यथा : राज कुँअर दोउ सहज सलोने। इनते लहिं दुति मरकत सोने। इतने पर भी विख्यात धनुर्धर हैं। मेघनाद कहता है : कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता। धन्वी सकल लोकविख्याता। विरुद्धधर्माश्रयत्व दिखलाकर तब कहते हैं कि वेद इन्ही को नमो नमः करते है। अर्थात् ये ही परमात्मा हैं। अब अवतीर्ण होने का कारण कहते हैं कि इन्हे गो ब्राह्मण प्यारे हैं। उन्हीं के लिए इन्होने माया से मनुष्य रूप धारण किया है।



श्रीराम

श्रीगणेशाय नमः । श्रीगुरवे नमः

श्रीरामचरितमानस

किष्किन्धाकाण्ड : चतुर्थ सोपान

सटीक

मङ्गलाचरण

श्लो. कुंदेंदीवरसुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ
शोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ ।
मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ
सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौहि नः ॥१॥

अर्थ : कुन्द और नील कमल के समान सुन्दर, अत्यन्त बलवान विज्ञान धाम शोभा के धनी, श्रेष्ठ धनुर्धर, वेद से वन्दित, गो ब्राह्मण समूह के प्रिय या प्रेमी, माया से मनुष्य का रूप धारण किये, सद्धर्म के लिए कवचरूप, हितकारी, श्री सीता जी के खोज में तत्पर, दोनों पथिक, दोनों रघुकुल में श्रेष्ठ, हमें भक्ति के देनेवाले हों ।

व्याख्या : कुन्द की भांति गौरवर्ण लक्ष्मण जी और नील कमल से सुन्दर श्यामवर्ण रामजी हैं । इनकी फूलों से उपमा देकर कोमलता, सौन्दर्य और सौगन्ध्य कहा । सुन्दर और सुकुमार व्यक्ति में बल की न्यूनता होती है । पर ये दोनों व्यक्ति अतिबल हैं ।

पुनः बलवान् शरीर की ही सेवा में लगे रहते हैं । उन्हें देहाध्यास की मात्रा अधिक होती है । पर ये विज्ञान के धाम हैं । अतः शोभा के धनी हैं । अथवा दूसरों को इनसे शोभा मिलती है । इसलिए शोभा के धनी हैं । यथा : राज कुँअर दोउ सहज सलोने । इनते लहि दुति मरकत सोने । इतने पर भी विख्यात धनुर्धर हैं । मेघनाद कहता है : कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता । धन्वी सकल लोकविख्याता । विरुद्धधर्माश्रयत्व दिखलाकर तब कहते हैं कि वेद इन्हीं को नमो नमः करते हैं । अर्थात् ये ही परमात्मा हैं । अब अवतीर्ण होने का कारण कहते हैं कि इन्हे गो ब्राह्मण प्यारे हैं । उन्हीं के लिए इन्होने माया से मनुष्य रूप धारण किया है ।

वस्तुतस्तु जीव भी अजन्मा है और ब्रह्म भी अजन्मा है। गीता मे भगवान् कहते हैं कि कदाचित् इस जीव का जन्म नही होता और अपने लिए भी कहते हैं कि मैं अजन्मा हूँ, अव्ययात्मा हूँ और भूतो का ईश्वर हूँ। यथा न जायते म्रियते वा कदाचित् तथा अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्। भेद इतना ही है कि जीव का जन्म अविद्या द्वारा होता है और ईश्वर माया द्वारा देह ग्रहण करते हैं। माया से ही दो स्वरूप से भासित होते हैं। यथा ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय वेष धरि सोइ कि आवा। रघुकुल मे जन्म लिया है। इससे रघुवर कहते हैं। धर्मसेतु रक्षक हैं। धर्मग्लान्यधर्माभ्युत्थान की निवृत्ति के लिए जगत् के कल्याण के लिए अवतीर्ण हैं। अवतार तथा अवतार ग्रहण का प्रयोजन कहकर अब प्रसङ्गानुकूल ध्यान करते हैं कि सीताहरण हो गया। सो उन्ही की खोज मे तत्पर हैं। ऐसे अवसर मे भी रास्ते चलते भक्ति चिन्तामणि का वितरण हो रहा है। अत गोस्वामी जी भक्ति की याचना कर रहे हैं। अथवा जो भक्त के लिए इतना कष्ट उठा रहे हैं कि वन वन मे ढूँढते फिरते हैं जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत बिरह दुख दुखित सुजाना। उनसे भक्ति ही माँगना चाहिए। अत दीनघाट के वक्ता दीन जनो के लिए भक्ति की याचना कर रहे हैं। इसीलिए बहुवचन न का प्रयोग किया।

श्लो ब्रह्माम्भोधिसमुद्भव[1] कलिमलप्रध्वसन चाव्यय
श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दरवरे सशोभित सर्वदा।
ससारामयभेषज सुखकर श्रीजानकीजीवन
धन्यास्ते कृतिन पिबन्ति सतत श्रीरामनामामृतम् ॥२॥

अर्थ वे सुकृती धन्य हैं जो वेदरूपी समुद्र से उत्पन, कलिमल के नाश करनेवाल, अव्यय श्रीमान् शम्भु के सुन्दर मुखचन्द्र मे सर्वदा विराजमान, ससाररूपी रोग के औषध, सुख कर, श्री जानकी के जीवन, श्री रामनामामृत को सदा पान किया करते हैं।

व्याख्या नामी का वर्णन करके नाम का वर्णन करते है। स्वाद तोषसम सुगति सुधा के कह आये है। इसलिए उसका वर्णन अमृत रूप से करते है। अमृत पीनेवाल धन्य नही हैं। केवल दीर्घजीवी होकर कौन धन्य हुआ है। काकोऽपि जीवति चिराय बलि च भुंक्ते। पुण्यमय जीवन एक मुहूर्त का भी बहुत है। इसलिए कहते हैं कि जो पुण्यात्मा सदा रामनामामृत का पान करते हैं वे धन्य हैं। अमृत तो लौकिक अम्भोधि से उत्पन्न है।

१ पर नामामृत तो वेदाम्भोधि से उत्पन्न है। यथा बिधि हरिहर मय बेद प्रण सो अमृत से स्थूल मल की निवृत्ति होती है। पर

---

१ यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

२. इस नामामृत से कलिमल की निवृत्ति होती है। अमृत तो पीने से चुक जाता है। पर

३. नामामृत तो कभी चुकता नहीं। अमृत का निवास तो चन्द्रमण्डल में सुना जाता है। पर

४. नामामृत तो साक्षात् श्रीमान् शङ्कर जी के सुन्दर मुखचन्द्र में सर्वदा शोभित रहता है। भाव यह कि शिवजी के मुखचन्द्र के सामने यह चन्द्रमण्डल क्या है ? चन्द्रमण्डल में अमावस्या को अमृत की हानि हो जाती है। पर नामामृत तो सदा शिवजी के मुखचन्द्र में विराजमान रहता है। यथा : तुम पुनि राम राम दिनराती। सादर जपहु अनंग अराती। अमृत रोगों की दवा है। पर

५. नामामृत तो संसाररूपी रोग की दवा है और सुख देनेवाला है। भाव यह कि दोषापनयन ही नहीं गुणाधान भी करता है। अमृत सामान्य जीवों का जीवन है। पर

६. रामनामामृत तो उद्भवस्थितिकारिणी, क्लेशहारिणी, सर्वश्रेयस्करी, रामवल्लभा श्री जानकीजी का जीवन है। भगवान् राम षडैश्वर्य सम्पन्न हैं। उसी भाँति रामनाम भी षडैश्वर्य सम्पन्न है। इसलिए श्रीरामनाम को अमृत कहते हैं। इस भाँति श्रीग्रन्थकार श्रीरामनामामृत को अमृत से सर्वात्मना श्रेष्ठ समझकर सदा पान करने का उपदेश देते हैं। इसका पान चीख चीखकर करना चाहिए। यथा : चीखि चीखि चसकन सों रामसुधा पीजिये : देवस्वामी। जितने साधन हैं। सब आयाससाध्य हैं। केवल नामाराधन साधनकाल में भी सुखकर और फलकाल में भी श्रेयस्कर है। यहाँ सतत श्रीरामनामामृत पान करनेवालों की स्तुति से तात्पर्य यह है कि इस काण्ड में योग जप करनेवाले ऋषियों से भेंट न होगी। इसमें तो केवल भालू वन्दरादिकों से भेंट होगी। जिन्हें केवल नामामृत पान में अधिकार है और वे धन्य हैं। क्योंकि : अधम सरीर राम जिन पाये।

इस काण्ड में किष्किन्धा का राज्य सरकार ने सुग्रीवजी को दिया है और प्रधानतः किष्किन्धा की ही कथा इसमें है। अतः इसका नाम किष्किन्धा रक्खा। यदि किष्किन्धा नाम न रखते तो पता ही न चलता कि अर्धराति पुरद्वार पुकारा, मन्दिन्ह पुर देखा बिनु साईं : आदि पदों में किस पुर का उल्लेख कर रहे हैं। क्योंकि इस काव्य भर में कहीं किष्किन्धा का नाम नहीं आया है।

यह सप्तपुरियों में से चौथी काशी की भाँति काण्डों के मध्य में स्थित है। काशीजी में रामनाम की महिमा शंकर पार्वती की महिमा और स्वय पुरी की महिमा है। इस काण्ड में न सबकी स्तुति : वन्दना है। यहाँ रुद्ररूप हनुमान्जी को रामजी ने दर्शन दिया है। भक्ति का उपदेश दिया है। हनुमान्जी की कृपा से बन्दर भालुओं को भी भगवत्प्राप्ति हुई है। इसलिए यह काण्ड काशी है। जिसकी कहीं गति नहीं उसकी गति काशी है। यथा : येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः। इस काण्ड में भी : बालित्रास व्याकुल दिन राती। तन बहु व्रण

चिताजर छाती। सो सुग्रीव कीन्ह कपिराऊ। अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ। इस भाँति यह काण्ड काशी है।

सो. मुक्ति जन्म महि जानि, ग्यान खानि, अघ हानिकर।
जहँ बस संभु भवानि, सो कासी सेइअ कस न॥
जरत सकल सुरबृन्द, बिषम गरल जेहिं पान किय।
तेहि न भजसि मनमंद, को कृपाल संकर सरिस॥

अर्थ : मुक्ति की जन्मभूमि, ज्ञान की खानि और पाप नाशिनी जहाँ शिव पार्वती बसते हैं : ऐसा : जानकर उस काशी की सेवा क्यों न की जाय ? सब देवताओं को जलते हुए : जानकर : उल्वण विष को जो पान कर गये। हे मन्द मन ! उसे : क्यो नही भजता। शङ्कर ऐसा कृपाल और कौन है ?

व्याख्या : काशी मुक्ति की जन्मभूमि है। यही मुक्ति उत्पन्न होती है और कहीं मुक्ति उत्पन्न होती ही नहीं। जिस भाँति रामावतार अयोध्या में ही होता है। कृष्णावतार मथुरा में ही होता है उसी भाँति मुक्ति का अवतार काशी में ही होता है। अन्य पुरियाँ काशी प्राप्त करानेवाली हैं और काशी द्वारा मुक्ति हो जाती है। इसलिए वे भी मुक्तिदायिनी कहलाती हैं पर मुक्ति काशी मे ही होती है। अन्य स्थलों में अथवा अवस्था विशेष में मुक्ति मिलने की कथा शास्त्रों में सुनने में आती है। वह मुक्ति भी काशी द्वारा ही होती है। काशी के दो रूप और हैं। भ्रू और नासिका के सन्धिस्थल पर जो त्रिपुटी है वह आध्यात्मिक काशी है। सूर्य मण्डल के मध्य में आधिदैविक काशी है। अन्य स्थानों और अवस्थाओं में जो मुक्ति होती है उसका कारण आधिदैविक और आध्यात्मिक काशी है। अतः काशी को मुक्ति की जन्म-भूमि कहा।

परन्तु श्रुति कहती है कि बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती : ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः। तमेव विदित्वातिमृत्युमेति। इस पर कहते है : *ग्यान खानि*। *काशी ज्ञान* की खानि है। जिस भाँति खानि से निकलकर ही धातुओं का प्रसार जगत् में होता है, इसी भाँति जो कुछ ज्ञान का प्रसार जगत् में है उसका मूल स्रोत काशी है। परन्तु मन मे मल रहते ज्ञान हो नही सकता और निर्मल मन होने पर ज्ञान क्यों नही होगा ? इसलिए कहते हैं : अघ हानिकर। काशी पापनाशिनी है। जहाँ शिव पार्वती जगत् के माता पिता सदा निवास करते हैं किसी अवस्था मे भी काशी को नही छोड़ते। शिवजी के काशीके छोड़ने की भी कथा पुराणो मे आयी है। परन्तु उस अवस्था मे भी उनका सूक्ष्म रूप से निवास रहता है। इसीलिए इसे अविमुक्त क्षेत्र कहते हैं। यहाँ निवास करके महासत्र चलाते हैं। भगवती अन्नपूर्णा काशीनिवासियो को अन्न देती हैं और भगवान् शिव मुमूर्षु के दक्षिण कर्ण में राम तारक मन्त्र का उपदेश करते हैं। जिससे उसे ज्ञान होकर मुक्ति हो जाती है। अतः भवानी शकर की कृपा से यहाँ यावज्जीवन योगक्षेम चलता है और अन्त में मुक्ति मिलती है। ग्रन्थकार

अपने मन से कहते हैं : क्योंकि मन से ही वेद्य जाना जाता है कि ऐसी काशी का सेवन क्यो नही करता ? यथा :

सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलिकासी।
समन सोक संताप पापरुज सकल सुमंगल रासी॥
मरजादा चहुँ ओर चरनवर सेवत सुरपुरवासी।
तीरथ सब सुभ अंग रोम सिवलिंग अमित अविनासी॥
अंतरअयनु अयनुभल थनफल बच्छ वेद विस्वासी।
गल कंवल वरुना विभाति जनु लूम लसति सरितासी॥
दंडपानि भैरवविषान मलरुचि खलगन भयदासी।
लोल दिनेस तिलोचन लोचन करन घट घटासी॥
मनिकर्निका वदन ससि सुन्दर सुरसरि सुख सुषमासी।
स्वारथ परमारथ परिपूरन पंचकोस महिमासी॥
विस्वनाथ पालक कृपालु चित लालति नित गिरिजासी।
सिद्धिसची सारद पूजहिं मन जोगवत रहति रमासी॥
पंचाच्छरी प्रान मुद माधव गव्य सुपचनदासी।
ब्रह्म जीव सम रामनाम दोउ आखर विस्व विकासी॥
चारितु चरति करम कुकरम करि मरत जीवगन घासी।
लहत परमपद पय पावन जेहि चहत प्रपंच उदासी॥
कहत पुरान रची केसव निज कर करतूति कलासी।
तुलसी वसि हरपुरी राम जपु जो भयो चहै सुपासी॥

काशी मे बसकर राम नाम का जप करना सर्वथा इष्ट है। जिस मन्त्र के बल से मुक्ति लेना है उसका अभ्यास अवश्य करना चाहिए। परन्तु कामधेनु काशी का प्राण पञ्चाक्षरमन्त्र शिवाय नमः है। अर्थात् शिवजी का भजन काशीवास का प्राण है। स्वयं सरकार ने शिवजी के भजन का बार बार उपदेश दिया है। यथा : जपहु जाइ संकर सतनामा। तथा : औरौ एक गुपुत मत सबहि कहौं कर जोरि। संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि। सिव सेवा कर फलसुत सोई। अविरल भगति रामपद होई। इत्यादि।

अतः ग्रन्थकार अपने मन को उपदेश देते हैं कि रे मन मन्द! तू शङ्कर का भजन कर। बिना कारण का कार्य नही होता। शङ्कर भजन कारण है और राम भक्ति उसका फल है। भजनीय मे दो गुण होना चाहिए। एक तो वह समर्थ हो। दूसरे कृपालु हो। यदि भजनीय समर्थ है और कृपाल नही है तो उसका भजन व्यर्थ है और यदि कृपाल होने पर भी समर्थ नही है तो भी उसके भजन का कोई फल नही है। भगवान् शङ्कर मे ये दोनो गुण अत्यन्त उत्कर्ष रूप मे हैं। एक ही उदाहरण मे ग्रन्थकार दोनो गुण दिखलाते है। जब समुद्रमन्थन के समय रत्न निकलने लगे तब अन्य देवता लोग उन्हे ग्रहण करने लगे, परन्तु जब उल्वण

विपका प्रादुर्भाव हुआ और उसके झार से अमर मरने और अजर जरने लगे तब तो सबने त्राहि त्राहि किया। उस समय भगवान् शङ्कर आगे आकर उस विपका पान कर गये और देवताओंकी रक्षा हो गयी। उस पान से शिवजी का कोई अपकार नही हुआ। ऐसे समर्थ और ऐसे दयालु शङ्कर हैं। दूसरा कोई ऐसा नही है। इससे यही गमक निकलता है कि श्री गोस्वामीजी शेप जीवन काशी में बसकर शिवजी की आराधना मे तथा श्री रामनाम के जप में व्यतीत करना चाहते हैं।

४५. [1]मारुति मिलन प्रसंग

आगे चले बहुरि रघुराया। रिष्य मूक पर्वत नियराया॥
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवाँ। आवत देखि अतुल बल सीवाँ॥१॥

अर्थ : रघुनाथजी फिर आगे चले। ऋष्यमूक पर्वत के निकट पहुँच गये। वहाँ मन्त्रियों के सहित सुग्रीव रहते थे। सो अतुल बल की सीमा को आते देखकर :

व्याख्या : शवरी के आश्रम से चले थे। तब कहा गया था : चले राम त्यागा वन सोऊ। तत्पश्चात् शवरी के कथनानुसार पम्पासर गये। यथा : पपासरहिं जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई। वहाँ ठहर गये थे। अब फिर आगे चले। अतः कहते हैं : आगे चले बहुरि : रघुराया हैं। नीति के अनुसार कार्य करेंगे। सुहृत्तम चाहे साधन और वित्त से हीन हो पर बुद्धिमान् हो तो शीघ्र ही कार्य साधन करता है : असाधना वित्तहीना बुद्धिमन्तः सुहृत्तमाः। साधयन्त्याशु कार्याणि कावकूर्ममृगाखुवत्। अतः बुद्धिमान् सुहृत्तम हनुमान् जी से मिले और उन्हीं के द्वारा सब कार्योंका साधन हुआ। पम्पासर के पास ही मातङ्ग ऋपि का आश्रम पर्वत पर था। ऋपिजी बड़े प्रगल्भ थे। अतः उन्हे ऋष्यमूक कहा जाता था। उन्ही के नाम से वह पर्वत प्रसिद्ध था। सो उसके इतना सन्निकट पहुँच गये कि पर्वत पर से सरकार का स्पष्ट दर्शन होने लगा।

ऋष्यमूक जाने का प्रयोजन कहते हैं कि वहाँ मन्त्री सहित सुग्रीव रहते थे। भाव यह कि षडङ्ग राज्य मे उन्हे एक अङ्ग मन्त्री बच गये थे। राज्य, कोप, सेना, दुर्ग, मित्र कुछ नही रह गया था। साधन हीन और वित्त हीन थे। परन्तु थे बुद्धिमान्। सब कुछ जाने पर भी मन्त्रियो को उन्होने हाथ से बाहर नही जाने दिया था। क्योकि मन्त्री के बचे रहने से पुनः राज्य के लौट आने की आशा रहती है और इस बात पर भी ध्यान रखते थे कि उधर से कौन आता जाता है। सो उन्होने अतुल बल की सीमा राम लक्ष्मण को आते देखा। यद्यपि बल का चाक्षुप प्रत्यक्ष नहीं होता तथापि : तेज प्रताप रूप जहँ तहँ बल बूझिअ : जा० मं०। अतः परम बुद्धिमान् सुग्रीवजी तेज प्रताप रूप के देखने से जान गये कि ये तो अतुल बल की सीमा हैं।

---

१. यहाँ से ४५ वाँ : मारुति मिलन प्रसङ्ग प्रारम्भ होता है।

सुग्रीव को चार मन्त्री थे। परन्तु उनकी बड़ी आस्था हनुमान्‌जी पर थी। क्योंकि कार्य सिद्धि हनुमान्‌जी से ही होती थी।

अति सभीत कह सुन हनुमाना। पुरुप जुगल वल रूप निधाना॥
धरि वटु रूप देखु तै जाई। कहेसु जानि जिअ सैन वुझाई॥२॥

अर्थ : अत्यन्त सभीत होकर कहा कि हनुमान् ! सुनो। दोनों पुरुप बल और रूप के निधान हैं। ब्रह्मचारी का रूप धारण करके तुम जाकर देखो। उनका अभिप्राय जानकर मुझे इशारे से बतला देना।

व्याख्या : सुग्रीव वालिके भय से सभीत तो रहते ही थे। यथा : इहाँ साप वस आवत नाही। तदपि सभीत रहौ मन माही। इन अतुल वल सीव दोनों भाइयों को देखकर अव अत्यन्त सभीत हो गये। अपने मन्त्री हनुमान्‌जो से कहा कि ये दोनों पुरुप वल और रूप के निधान हैं। इनके पास तुम ब्रह्मचारी का वेप धारण करके जाओ और इनसे : संस्कृत में वातचीत करके इनके मनोगत भाव को जानकर हाथ के इशारे से मुझे आगाह कर दो : वतला दो। अर्थात् यदि उनसे कोई भय न हो तो मुझे हाथ के इशारे से आश्वासन दे देना। किसी प्रकार का आश्वासन न पाने पर मैं समझ लूँगा कि इनसे भय है। ब्रह्मचारी के भेप मे जाकर मिलने से वे तुम्हें मेरा सखा न समझेंगे। क्योंकि नर वानर का कोई साथ नही है। यथा : नर वानरहिं संग कहु कैसे। और अपने हृद्गत भावों को न छिपावेंगे। यथा : अध्यात्मे : ताभ्यां सम्भापणं कृत्वा जानीहि हृदयं तयोः। विनयावनतो भूत्वा एवं जानीहि निश्चयम्। यदि तौ तुष्टहृदयौ संज्ञां कुरु कराग्रतः। अर्थ : उन दोनों से वातचीत करके उनके हृदय को जानो। विनय से अवनत होकर उनके निश्चय को जानो। यदि उनका हृदय तुष्ट हो तो हाथ के अग्रभाग से इशारा कर देना।

पठए वालि होहिं मन मैला। भागौं तुरत तजौं यह सैला॥
बिप्ररूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ॥३॥

अर्थ : यदि मनमलीन वालि के भेजे हों अथवा वालि के भेजे हुए ये मन के मैले हों तो मैं तुरन्त भागूँ और इस पहाड़ को छोड़ दूँ। विप्र का रूप धारणकर कपि वहाँ गये और सिर नवाकर ऐसा पूछने लगे।

व्याख्या : वालि का मन मैला है। वह मेरे वध के लिए कितने वानर भेज चुका। जो मेरे हाथ से मारे गये। कौन कहता है कि ये दोनों अतुल वलसीव उसके भेजे हुए नही है। यदि उसके भेजे हुए होंगे तो इनका भी मन मैला होगा। मेरे वध के लिए ही आये होंगे। वातचीत से पता लग जायगा। वे मेरी खोज में होंगे तो तुम्हे ब्रह्मचारी ब्राह्मण समझकर अत्यन्त छिपाव न करेंगे। यदि उनके हृदय में दुर्भावना होगी तो मै तुरन्त भाग जाऊँगा। ये बड़े पराक्रमी मालूम होते हैं। इनसे मैं नही वच सकता। ये धनुर्धारी हैं। इनका सामना पड़ जाने पर भाग करके भी प्राण वचाना अशक्य है। अतः तुरन्त भागूँगा और यही पर्वत एकमात्र शरण है।

यथा : इहाँ साप बस आवत नाही। सो इसका भी परित्याग करूँगा जिससे उनके तीर का निशाना न बनना पडे।

सुग्रीव तथा हनुमान् आदि उनके सचिव सब वानर थे। इसलिए हनुमान्‌जी के लिए यहाँ कपि शब्द का प्रयोग हुआ है। यद्यपि हनुमान्‌जी कपि थे। पर वेदपाठी ब्राह्मण यथा वेदपाठी भवेद्विप्र. के रूप में रामजी तथा लक्ष्मणजी के पास गये। बन्दर की ललान बडी वडी होती है। तुरन्त लख गये कि मैं ही नही रूप बदले हुए हूँ। ये लोग भी रूप बदले हुए हैं। निश्चय ये सूर्य से तेजस्वी कोई बडे देवता हैं। इसलिए पहिले सिर नवाया। तत्पश्चात् इस भाँति पूछने लगे। सिर नवाकर पूछने का दूसरा भाव यह है कि मैं पूज्य बुद्धि से पूछता हूँ। हनुमान्‌जी सस्कृत मे बोले। जिससे राम लक्ष्मण समझ सकें। उनसे किष्किन्धा की भाषा समझने की आशा नही थी।

हनुमान्‌जी विश्वविद्याग्रणी, सामगाताग्रणी हैं। अत. जब रूप बदलते हैं तब ब्राह्मण का ही रूप धारण करते हैं। रामजी से विप्ररूप से मिले। विभीषण से भी विप्ररूप मे ही मिले। यथा ' विप्र रूप धरि बचन सुनाये। भरतजी से भी विप्र रूप से ही मिले। यथा : बिप्र रूप धरि पवनसुत धाइ गये जनुपोत।

को तुम स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा॥
कठिन भूमि कोमल पदगामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी॥४॥

अर्थ : सांवरे और गोरे शरीरवाले वीर ! तुम कौन हो। क्षत्रिय रूप से वन मे विचरण कर रहे हो। भूमि कठिन है और तुम कोमल चरण से चलनेवाले हो। हे स्वामिन् ! किस कारण से वन मे घूमते हो।

व्याख्या : धनुर्धारी देखकर बीर सम्बोधन कर रहे हैं और कुन्देन्दीवर सुन्दर देखकर स्यामल गौर सम्बोधन कर रहे हैं और परिचय पूछते हैं : तुम कौन हो ? रूप तुम्हारा क्षत्रिय का सा है। पर तुम मनुष्य नही हो कोई देवता हो। यहाँ की भूमि बडी कठोर है और तुम्हारे चरण बडे कोमल हैं। बिना यान या पादत्राण के किसी भाँति यात्रा करने योग्य नही हैं और वानप्रस्थ भी नही हो। फिर तुम्हारे वन मे विचरने का कोई कारण नही मालूम होता : इस भाँति वन मे विचरण का प्रयोजन पूछते हैं। अथवा इस भाँति बिना पादत्राण के विचरण करनेवाले का पद भी कठोर हो जाना चाहिए। पर तुम्हारे चरण कोमल ही बने है। यह अलौकिक गुण मनुष्य मे नही हो सकता। अतः देवबुद्धि से : स्वामिन् सम्बोधन करते हैं। बिना पादत्राण के चलने से तुम्हे शिकारी भी नही कह सकते हैं। अतः तुम्हारे वन विचरण का कोई भी प्रयोजन नही मालूम होता। अथवा लक्षण से तुम स्वामी मालूम होते हो। यथा : राज लषन सब अंग तुम्हारे। देखि सोचु अति हृदय हमारे। मारग चलहु पयादेहि पाएँ। ज्योतिष झूठ हमारेहि भाएँ। और इस भाँति वन मे घूमते हो इसलिए पूछता हूँ।

मृदुल मनोहर सुन्दर गाता। सहत दुसह वन आतप बाता ॥
की[1] तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ ॥५॥

दो. जग कारन तारन भव, भंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवनपति, लीन्ह मनुज अवतार ॥१॥

अर्थ : मन को हरण करनेवाला आपका सुन्दर शरीर है और वन में दुःसह धूप और लू सहन कर रहे हो। क्या तुम त्रिदेवों मे से कोई हो या तुम दोनों नरनारायण हो या संसार के कारण भवसागर के पार उतारनेवाले पृथ्वी का भार उतारनेवाले अखिल ब्रह्माण्ड के नायक हो। मनुष्य का अवतार धारण किये हो।

व्याख्या : पहिले चरण पर ध्यान गया : जिन चरणों का ध्यान करते थे वैसे ही चरण देखकर प्रश्न किया। अब मृदुल मनोहर सुन्दर शरीर देखकर तद्विषयक प्रश्न करते हैं। ऐसा शरीर वन की भयानक लू और धूप सहने के योग्य नही है। अथवा ऐसी कड़ी धूप और लू सहने पर भी शरीर के सुकुमारतादि गुण बने हैं। यह आश्चर्य की बात है। इसका कारण जानने के लिए प्रश्न कर रहे हैं। कौन सा ऐसा प्रयोजन आपड़ा है कि आप वन में ग्रीष्म ऋतु की भयानक लू और धूप सहन करते हुए भी विना छाता जूता के इस निर्जन वन में घूम रहे हैं ?

अब हनुमान्‌जी यह भी बतला रहे हैं कि सरकार को देखकर उनके मन में कौन सी भावनाएँ उठ रही हैं। वे पूछते हैं कि क्या आप तीनो देवों में से कोई हैं ? भाव यह कि आप सामान्य देवता भी नही हो या तो विष्णु शिव या विष्णु और ब्रह्मा हो। श्यामल गौर वर्णों के देखने से यह अनुमान उठ रहा है। नही तो तुम दोनो नर नारायण हो। अनुमान में बराबर सन्निकट चले आ रहे हैं। पहिले तीन में से दो का अनुमान किया। अब दो का ही अनुमान करते हैं। चुप देखकर तीसरा अनुमान करते है।

या अखिल भुवनेश्वर संसार के वीज हो। भक्तानुग्रह के लिए संसार के तारण और धरणी के भार के भञ्जन के लिए मनुष्य का अवतार धारण किये हो। अथवा जिस जिस कल्प मे जिसका जिसका रामावतार हुआ था उस उस कल्प में उस उस कल्प के हनुमान् ने अपने तर्क से उन्हें पहिचाना। जिस कल्प में जय विजय रावण कुम्भकर्ण हुए थे उस कल्प मे वैकुण्ठनाथ का रामावतार हुआ था। अतः उस कल्प के हनुमान्‌जी पूछते हैं : की तुम तीन देव महँ कोऊ। और जिस कल्प में जलन्धर रावण हुआ था तथा जिस कल्प में दोनो रुद्रगण रावण कुम्भकर्ण हुए थे और क्षीरशायी का रामावतार हुआ था। उन दोनों कल्पो में जो हनुमान् हुए थे उन्होंने प्रश्न किया : नर नारायण की तुम दोऊ। तथा जिस कल्प में भानु प्रताप और अरिमर्दन रावण कुम्भकर्ण हुए थे और स्वयम्भू ब्रह्म का रामावतार

१. यह सन्देहालङ्कार है।

हुआ था उस कल्प के हनुमान्‌जी ने पूछा : की तुम अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार।

कोसलेस दसरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए ॥
नाम राम लछिमन दोउ भाई। सग नारि सुकुमारि सुहाई ॥१॥

अर्थ : हम कोसल के राजा दसरथ के पुत्र हैं। हम पिता का वचन मानकर वन मे आये हैं। राम और लक्ष्मण नाम के दोनो भाई हैं। सङ्ग मे सुन्दर सुकुमारी स्त्री थी।

व्याख्या ' को तुम स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा। इस प्रथम प्रश्न का उत्तर देते है। अपना पूरा परिचय अपना नाम, पिता का नाम, जाति और निवासस्थान कहकर दिया जाता है। सो : कोसलेस दसरथ के जाए कहकर पिता का नाम, जाति और निवासस्थान कहा। नाम राम लछिमन दोउ भाई : कहकर अपना नाम राम और भाई का नाम लक्ष्मण बतलाया। नाम बतलाने के क्रम से अपना ज्येष्ठ होना और लक्ष्मणजी का कनिष्ठ होना कहा। साथ ही साथ घूमने का कारण कहते है कि हम दोनो भाई है। बन मे आने का प्रयोजन कहते हैं : हम पितु बचन मानि बन आए। अब : कठिन भूमि कोमल पद गामी। कौन हेतु बिचरहु बन स्वामी। मृदुल मनोहर सुदर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता का उत्तर देते हैं कि हम दो नही तीन थे। मेरे सङ्ग मे एक सुन्दर सुकुमारी स्त्री थी। यथा · सग नारि सुकुमारि सुहाई। हम तीनो वन मे आये थे। इससे अपना सस्त्रीक होना कहा। तुम्हे हम सुकुमार सोहाये मालूम पडते हैं। सुहाई और सुन्दरी तो वह थी।

इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहि हम खोजत तेही ॥
आपन चरित कहा हम गाई। कहहु बिप्र निज कथा बुझाई ॥२॥

अर्थ · यहाँ निशिचर ने वैदेही को हरण कर लिया। हे विप्र ! हम उसी को खोजते फिरते हैं। अपनी कथा तो मैंने कह सुनायी। अब अपनी कथा समझा कर कहिये।

व्याख्या ' इहाँ अर्थात् वनमे। कोसल देश की गिनती तो अब वहाँ मे है। क्योकि उसे छोडकर वन मे आये हैं। सग मे सुकुमारी नारी थी इस कहने मे ही इस प्रश्न का बीज है कि वह क्या हुई ? इस पर कहते हैं कि उसे निशिचर ने हरण किया। नाम पता नही जानते। इतना ही जानते हैं कि दक्षिण की ओर ले गया। यथा : लै दच्छिण दिसि गयउ गोसाई। वह भी राजकन्या थी। राजा विदेह की पुत्री थी। उसीकी खोज मे हम आतप वात की परवाह नही कर रहे हैं। आप विप्र हैं। जानते ही हैं कि विवाह के समय प्रतिज्ञा की जाती है कि धम मे, अर्थ मे, काम मे इसी के साथ वर्तेंगे सो त्रिवर्ग की हानि हो रही है।

श्री रामजी कहते हैं कि अपनी कथा तो मैंने कह सुनायी। अर्थात् पूरी कथा कह दी। कोसलेस दसरथ के जाये : कहकर बालकाण्ड की कथा कही। हम पितु वचन मानि बन आए। नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सोहाई। कहकर अयोध्या काण्ड की कथा कही। इहाँ हरी निसिचर बैदेही। विप्र फिरहिं हम खोजत तेही : कहकर अरण्यकाण्ड की कथा कही। आधिभौतिक प्रश्न के उत्तर में आधिभौतिक कथा कह सुनायी। आधिदैविक विषयक प्रश्न : कि तुम तीन देव मह कोऊ आदि का उत्तर नही दिया। क्योंकि पूर्व जन्म की कथा परिचय के उपयोगी नहीं है। अथवा प्राकृत राजा की भाँति अपना परिचय देना ही इष्ट था। यथा : नर तन धरेहु संत सुरकाजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा। तुम जो कहहु करहु सब साँचा। जस काछा तस चाहिअ नाचा। जो वेष धारण किया है उसके विरुद्ध पड़ता। इसलिए अन्तिम प्रश्न का उत्तर नही दिया। अब कहते है कि हमारा परिचय पूछा तो अपना भी कहो। जिस भाँति मैंने विस्तार से अपना चरित्त कहा उसी भाँति विस्तार से अपना चरित्त सुनाओ। इस घोर निर्जन वन मे ब्रह्मचारो का ही कौन काम है ?

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहि बरना ॥[1]
पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर वेष कै रचना ॥३॥

अर्थ : प्रभु को पहिचानकर चरण पकड़कर पड़ गये। हे उमा ! वह सुख वर्णन नहीं किया जा सकता। शरीर पुलकित हो गया। मुख से वचन नही निकलता था। सुन्दर वेष की रचना देखते थे।

व्याख्या : जो रामजी ने परिचय दिया वह आकाश वाणी से मिल गया। यथा : ते दसरथ कौसल्या रूपा। कौसलपुरी प्रकट नर भूपा। तिन्हके गृह अवतरिहौ जाई। रघुकुलतिलक सो चारिउ भाई। नारद बचन सत्य सब करिहौ। परम सक्ति समेत अवतरिहौ। शक्ति साथ नही थी। इसीसे कुछ सन्देह था। अब पता चल गया : इहाँ हरी निसिचर बैदेही। अतः पहिचान में सन्देह नहीं रह गया। यहाँ ये लोग सरकार की बाट जोह रहे थे। यथा : गिरितरु नख आयुध सब बीरा। हरि मारग चितवहिं मति धीरा। हनुमान्‌जी को तो अवतार हो जाने का भी पता था। प्रभु के जन्म और प्रत्येक उत्सवों की कथा नारदजी जा जाकर सुना आते थे। यथा : राम जनम सुभकाज सब कहत देव रिषिआइ। सुनि सुनि मन हनुमान के प्रेम उमँग न अमाइ। रा. प्र.। परिचय पाते ही पहिचान लिया कि ये ही प्रभु हैं। हनुमान्‌जी परम भक्त है। चरण पकडकर साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। भक्त भगवन्त के मिलने का सुख शिवजी कहते हैं कि हे उमा वर्णनातीत है। यथा : राम लखन हनुमान् मन दुहुँदिसि

---

१. न वै जनो जातु कथञ्चनाव्रजेन्मुकुन्दसेव्यन्यवदङ्ग संसृतिम्।
स्मरन्मुकुन्दाङ्घ्र्युपगूहनं पुनर्विहातुमिच्छेन्न रस ग्रहो यतः ॥
श्रीमद्भागवत

परम उछाहु। मिला सुसाहिब सेवकहि प्रभुहि सुसेवक लाहु। रा० प्र०। मन से उछाह कहते हैं। यथा सो सुख उमा जाइ नहि बरना। तन मे उछाह कहते हैं प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। देखत रुचिर वेषकै रचना। वाणी से उछाह। यथा मुख आव न वचना। हनुमान्जी को सात्त्विक भाव हो गया।

पुनि धीरज धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदय निज नाथहि चीन्ही॥
मोर न्याउ मै पूछा साईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं॥४॥

अर्थ फिर धैर्य धारण करके स्तुति की। अपने स्वामी को पहिचानकर हृदय मे हर्ष हो रहा था। कहने लगे मैने जो आप से पूछा तो मेरा पूछना उचित था। आप मनुष्य की भाँति क्यो पूछ रहे हैं?

व्याख्या हनुमान्जी पण्डित हैं। समझते हैं कि दर्शन होते ही स्तुति करना चाहिए। अति प्रेम से धैर्य छूट गया था। मुख से वचन नही निकलता था। सो धैर्य धारण करके स्तुति की। प्राकृत मे वर्ण विशेप का आगम हो जाता है। सो यहाँ अकार का आगम होकर स्तुति का अस्तुति रूप हो गया।

प्रमी के मिलते ही उलाहना शुरू हो जाता है। जवाबतलब होता है। सो आरम्भ हो गया। प्रभु ने पूछा था कहहु बिप्र निज कथा बुझाई। सो कथा नही कहते। उलाहना देते हैं कि मैने आपसे परिचय पूछा था। उसी बल से आप मुझ से पूछते है। पर मेरा पूछना तो न्याय था। मैं जीव हूँ। अल्पज्ञ हूँ। आपको नही पहिचान सका। इसलिए पूछा। परन्तु आपका पूछना तो न्याय नही है। आप तो सर्वज्ञ हैं। आप मनुष्य की भाँति कैसे पूछते हैं। अपना पहिचान लेना व्यक्त करते हैं कि मैं नरके धोखे मे अब नही हूँ। सरकार का पूछना न्याय नही है। मेरे साथ अन्याय हुआ है।

तव मायावस फिरौ भुलाना। ताते मै नहि प्रभु पहिचाना॥

दो एक मै मद मोह बस, कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ, दीन बन्धु भगवान॥२॥

अर्थ मैं तो आपकी माया के वश मे भूला फिरता हूँ। इसलिए मैंने प्रभु को नही पहिचाना। एक तो मैं मन्द हूँ। मोह के वश म हूँ। मेरा हृदय कुटिल है। मैं अज्ञानी हूँ। तिस पर हे दीनबन्धु भगवान्! आपने मुझे भुला दिया।

व्याख्या मेरे भूलने का यथेष्ट कारण है। मैं जीव हूँ। अल्पज्ञ हूँ। माया के वश मे हूँ। इसलिए भूला फिरता हूँ। भूल यहाँ तक बढ गयी कि स्वामी को नही पहिचान सका। जान बूझकर मैंने पूछा हो यह बात नही है। पर आप तो ईश्वर हैं। सर्वज्ञ है। माया के नाथ हैं। यथा परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता। तथा देखो माया सब बिधि गाढी। अति सभीत जोरे कर ठाढी। देखा जीव नचावै जाही। आप तो अपने सदाजीवो को पहिचानते हैं। आपने जान बूझकर

मुझे भुलाया। यह ठीक है कि मैं भूला फिरता हूँ। पर आप तो भक्त को खोजते फिरते हैं ? आपके लिए भूलने का कोई कारण नहीं है।

मोह वश माया वश होना एक ही बात है। मायावश होने से मै मन्द हूँ। मेरा हृदय कुटिल है। वेष बदल के प्रभुका भेद लेने आया हूँ। मुझे ज्ञान नही है। अन जानत की चूक क्षमा की जाती है। सो मेरी चूक क्षमा नही की गयी। मेरा उद्धार तो केवल स्वामी की कृपा पर निर्भर है। सो प्रभु ने दीनवन्धु और भगवान् होकर मुझे जान बूझकर भुला दिया। क्योकि पूर्ण को विस्मृति नही होती। अपूर्ण को तत्परता के तारतम्यानुसार अविस्मृति होती है।

जदपि नाथ वहु अवगुन मोरे। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरे ॥
नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरै तुम्हारेहिं छोहा ॥१॥

अर्थ : हे नाथ ! यद्यपि मुझ मे बहुत से अवगुण है। फिर भी सेवक को प्रभु भूल नही जाते। हे नाथ ! जीव तो आपकी माया से मोहित हुआ पडा है। उसका निस्तार तो आपके छोह से ही हो सकता है।

व्याख्या : यद्यपि : संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि वारि विकार। सन्त लोग गुण का ही ग्रहण करते हैं और विकार का त्याग करते हैं। और मेरे मे विकार बाहुल्य है : यहां विकार शब्द अवगुण के अर्थ मे आया है। अतः मेरे विसारे जाने के लिए पर्याप्त कारण है। पर मैं सेवक हूँ। मुझे दूसरा आसरा भरोसा नही है। अतः सरकार मुझे न भूलें।

आप के भूलने से मेरा निस्तार नही है। जीव तो आपकी माया से मोहित है। उसका सामर्थ्य नही है कि वह अपने बल द्वारा माया के पञ्जे से निकल सके : जो ज्ञानिन्हकर चित अपहरई। बरिआई बिमोह वस करई। उसका निस्तार तो आपके छोह से ही सम्भव है : यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं- स्वाम्। वेद कहता है कि जिसे यह वरण करता है उसी को प्राप्त होता है। उसे हो विश्वात्मा अपने रूप का दर्शन देता है। अवगुण बाहुल्य का भी मै दोषी नही। अतिसय प्रबल देव तव माया। छुटै राम करहु जौ दाया। अपने वल से माया का हटाना सर्वथा असाध्य है : दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया : भ० गी०। मेरी दैवी गुणमयी माया उल्लघन नही की जा सकती।

तापर मैं रघुबीर दोहाई। जानहुँ नहि कछु भजन उपाई ॥
सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ असोच बनै प्रभु पोसें ॥२॥

अर्थ : तिस पर में रघुवीर की दोहाई भजन का उपाय कुछ भी नही जानता। सेवक स्वामी के भरोसे उसी भांति रहता है जैसे बच्चा मां के भरोसे बेफिक्र रहता है। प्रभु को सेवक का पोषण करते ही बनता है।

व्याख्या : हनुमान्जी अपनी विशेषता कहते हैं कि मैं अपने को सेवक

मानता मात्र हूँ। पर सेवा का उपाय कुछ भी नही जानता कि सरकार को कैसे और कहाँ पावें और किस प्रकार से सेवा करें। यह मैं विनय प्रदर्शन के लिए नहीं कह रहा हूँ। शपथ खाकर सत्य कहता हूँ। रघुबीर से बढ़कर मुझे कौन है! उनकी शपथ करता हूँ। जिन्होंने सेवा धर्म का दर्शन पाया है वे कहते हैं : सब ते सेवक धर्म कठोरा। मुझे तो सेवा धर्म का दर्शन भी नहीं हुआ। मैं क्या जानूँ कि सेवा कैसे की जाती है?

मैं तो यही जानता हूँ कि सेवक बच्चा है। वह स्वामी रूप माँ के भरोसे बेपरवाह होकर घूमता है। उसे अपनी फिक्र नही। यदि माँ पोषण करे तभी बात बन सकती है। और माँ ख्याल करती ही है। यथा : मोरे प्रौढ़ तनय समझानी। बालक सुत सम दास अमानी। गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखै जननी अरगाई। भाव यह कि मुझे प्रभु को छोड़कर दूसरा भरोसा नहीं है। इतना ही सेवक सेव्य भाव मेरे में है। श्री गोस्वामीजी कहते हैं :

है तुलसी के एक गुन अवगुन निधि कह लोग।
भलो भरोसो रावरो राम रीझिबे जोग॥

यह हनुमत् कृत स्तुति चित्रा नक्षत्र है। हनुमान्‌जी की मति रूप सीपी में स्वाती सरस्वती की कृपा से उत्पन्न हुई है। अतः इसे मोती माना है। इसमें एक तारा : प्रभु बार बार चमक रहा है। फल श्रुति है : अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारिके। क्योंकि हनुमान् रूपी रुद्र को अतिथि रूप से भगवत्प्राप्ति हुई है।

अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उरछाई॥
तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सीचि जुड़ावा॥३॥

अर्थ : ऐसा कहकर चरणों में आकुल होकर पड़ गये। प्रीति हृदय मे छा गयी। अपना शरीर प्रकटकर दिया। तब रघुपति ने उठाकर हृदय से लगा लिया और अपने नेत्रों के जल से सीचकर शीतल किया।

व्याख्या : प्रेमाकुल होकर चरणों में गिरे। अत्यन्त प्रेम के कारण दुराव जाता रहा। यथा : अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ। प्रीति हृदय मे छा गयी। कपट के लिए स्थान नही रह गया। ब्राह्मण का शरीर कपटमय था। सो अन्तर्धान हो गया। फिर बन्दर के बन्दर हो गये। दुराव छूटते ही प्रभु ने उठाकर हृदय से लगा लिया। रामहि केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननिहारा। कपट सहित होने से ब्राह्मण शरीर को हृदय मे नही लगाया और निश्छल होने से वानर शरीर को हृदय से लगाया। जीव तो ईश्वर को प्रिय है ही। यथा : सब मम प्रिय सब मम उपजाये। तथा : ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू। दुराव ही जीव को ईश्वर से अलग किये हुए है। यथा : कपट करौं अन्तर्यामिहु ते अघ व्यापकहि दुरावौं। दुराव देखकर ही प्रभु प्रेम को रोके हुए थे। सो दुराव के हटते ही उमड पडा। श्रीरामजी ने उठा लिया हृदय से लगाया और प्रभु के अश्रुपात से

हनुमान्‌जी भीग उठे। आकुलता से सन्तप्त हो रहे थे। सो प्रेमपात्र के प्रेमाश्रु से शीतल हुए। भाव यह कि सरकार की हम पर इतनी प्रीति है। यह जानकर हृद्‌गत सन्ताप जाता रहा।

सुनु कपि जिय मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना॥
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवकप्रिय अनन्य गति सोऊ॥४॥

अर्थ: हे कपि! सुनो। तुम मन मे न्यूनता न मानना। तुम मुझे लक्ष्मण से दूने प्रिय हो। मुझे सब लोग समदर्शी कहते हैं। पर: मै सेवक प्रिय हूँ। क्योंकि: उसे भी अन्य गति नही है।

व्याख्या: अब विप्र नही कहते कपि कहते हैं। विप्र सम्बोधन के साथ प्रेमाभाव था। वेगाना बने हुए प्रश्न करते थे कि अपना परिचय दो. कहहु बिप्र निज कथा बुझाई। कपि सम्बोधन के साथ प्यार है। अब परिचय की आवश्यकता नही है। ईश्वर हैं। सर्वज्ञ हैं। सब जानते ही हैं। अब रामजी न इनसे परिचय पूछेंगे और न ये परिचय देंगे। प्रभु हनुमान्‌जी की ग्लानि देखकर आश्वासन देते हैं कि मैंने विस्मरण कर दिया। इस बात की हीनता न मानना। तुम उपेक्षित नही हो। मुझे अत्यन्त प्रिय हो। जो अपने को उपेक्षित मान रहा है उसे लक्ष्मण से दूना न कहें तो अपने मे जो प्यार की मात्रा है वह प्रकाशित नही होती। हनुमान् जी को इस वचन से जो सान्त्वना मिली उसे समझते हुए ही हनुमान्‌जी ने सीताजी को: जनि जननी मानहु जिअ ऊना। तुम्हते प्रेमु राम के दूना। कहकर सान्त्वना दी।

रामजी कहते है कि सबके लिए मैं तो समदर्शी हूँ। समान व्यवहार करता हूँ। पर सेवक के लिए नही। वह प्रिय है। उसके लिए मुझे विषम व्यवहार करना पड़ता है। यथा 'यद्यपि सम नहि राग न रोषू। गहहिं न पापु पुन्य गुन दोषू। तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा। क्याकि उसे दूसरी गति नही है। तुम भी अनन्य गतिक हो। अत परम प्रिय हो। ऐसे भक्तो की मैं सदा रखवारी करता हूँ। यथा: करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालकहि राख महतारी।

दो. सो अनन्य जाके असि, मति न टरइ हनुमंत।
मै सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवंत॥३॥

अर्थ: हे हनुमान्‌जी! वही अनन्य है जिसकी ऐसी बुद्धि कभी टलती नही कि मैं तो सेवक हूँ। और यह चराचर रूप स्वामी भगवान् का ही रूप है।

व्याख्या: हनुमान्‌जी ने कहा था कि मुझे भजन का उपाय नही मालूम: इसलिए उन्हे भजन का उपाय बतलाते हैं कि चराचरात्मक सब कुछ मेरा शरीर है। अतः चराचरात्मक स्वामी भगवान् का भजन करना ही अनन्य भक्ति है। वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः। यह सब कुछ वासुदेव हैं ऐसा माननेवाले

महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है। यही अनन्य भक्त की विशेषता है कि चराचरात्मक जगत् को तो भगवान् का रूप मानें और अपने को सेवक मानें। यह भावना किसी भाँति टलने न पावे : अस अभिमान जाइ जनि मोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे। चराचरात्मक जगत् को भगवद्रूप मानता हुआ अपने को भी वही न मान ले। अपने को सेवक माने। इस बुद्धि के टल जाने की बड़ी सम्भावना है। अतः सावधान करते हैं। ऐसे उपासक [1]अनन्य कहलाते हैं।

देखि पवन सुत पति अनुकूला। हृदय हरष बीती सब सूला॥
नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तब अहई॥१॥

अर्थ : पवनसुत ने देखा कि स्वामी अपने अनुकूल हैं तो उनके हृदय में हर्ष हुआ। और सब शूल जाता रहा। बोले हे नाथ! पर्वत पर कपिपति सुग्रीव रहता है। वह आपका दास है।

व्याख्या : कवि यथावसर कहते कहते कवि समाज का परिचय भी देते जा रहे हैं। पहिले बतलाया कि ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव मन्त्रियों के सहित रहते हैं। उनमें से जिस मन्त्रि पर उन्हे बडी आस्था है उनका नाम हनुमान् है। यथा : अति सभीत कह सुनु हनुमाना। ये लोग सब कपि जाति के थे। यथा : सुनु कपि जिय मानेसि जनि ऊना। अब हनुमान्‌जी के पिता का नाम बतलाते है। देखि पवन सुत पति अनुकूला। पवन सुत कहकर हनुमान्‌जी का दिव्य जन्म तथा महाबली होना भी द्योतित किया। पति अनुकूला : कहकर इनकी सेवक सेव्य भाव से रामजी की उपासना भी कहा। रामजी के ऐसा पूछने से : बिप्र कहहु निज कथा बुझाई। हनुमान्‌जी को बड़ा दुःख हुआ था कि स्वामी मेरे अनुकूल नही हैं। उनकी अनुकूलता देखने से सब दुःख जाता रहा।

उर लावा : से कर्मणा अनुकूलता। निज लोचन जल सीचि जुडावा : से मनसा अनुकूलता और जनि जिय मानेसि ऊना : से वचसा अनुकूलता देखा। तब हृदय की तीव्र वेदनाएँ जाती रही और बड़ा हर्ष हुआ। यथा : तुम्ह कृपाल जापर अनुकूला। ताहि न व्याप त्रिविध भव सूला। हनुमान्‌जी को अपनी मन्दता अपने कपट और अपने अज्ञान तथा सरकार द्वारा विस्मृति किये जाने का बडा शूल हुआ था। यथा : एक मंद मैं मोह बस कुटिल हृदय अज्ञान। पुनि प्रभु मोहि बिसारेहु दीन बंधु भगवान्।

---

१ खं वायुमग्निं सलिलं महीञ्च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत् किञ्चभूतं प्रणमेदनन्यः॥
—श्रीमद्भा०

अर्थ आकाश वायु अग्नि, जल, पृथ्वी, तारागण, जीव, दिशायें, वृक्ष आदि नदी समुद्र सब हरि के शरीर हैं। अनन्य इन्हे प्रणाम करे।

अब प्रभु के पूछे हुए प्रश्न : विप्र कहहु निज कथा बुझाई का उत्तर देते हैं। सैल पर : कहकर अपना उस समय का निवासस्थान बतलाया। कपि पति रहई कहकर अपने को उन्ही कपि पति का दूत होना बतलाया। सुग्रीव कह उनका नाम बतलाया। दास तब अहई कहकर उनका सरकारी उपासक होना बतलाया। फलतः अपना परिचय दास के सेवक रूप से दिया।

तेहि सन नाथ मयत्री कीजे। दीन जानि तेहि अभय करीजे ॥
सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि ॥२॥

अर्थ : हे नाथ! उससे मैत्री कीजिये। उसे दीन जानकर अभय करिये। वह सीता की खोज करावेंगे और सर्वत्र करोड़ों बन्दरों को भेजेंगे।

व्याख्या : वह कपिपति समान शील व्यसन हैं। कपिपति होने पर राज च्युत है। स्त्री विरही है। शैल वास कर रहा है। पर धर्मज्ञ है और कृतज्ञ है। नीतिसम्मत है : समानशीलव्यसनेषु मैत्री। यहाँ पर हनुमान्‌जी उत्तम दूत का कार्य कर रहे हैं। जिससे सुग्रीव को इतना भय है कि रूप देखने मात्र से शैल छोड़कर भागना चाहते हैं। उनसे मैत्री कराने का प्रयत्न कर रहे हैं। कहते हैं कि इस समय वह दीनावस्था में है और भयभीत है। उसे आप अभय करने में समर्थ हैं। यदि आप उसे अभय करेंगे तो वह आपके बड़े काम आयेगा। राक्षस आपकी पत्नी को हरण करके ले गया है। वह कौन राक्षस है। कहाँ ले गया है। इसका पता नहीं है। आप दोनों भाई कहाँ कहाँ खोजेंगे। जिस भाँति आप लोग खोज रहे है यह खोजने को विधि नही है। एक वन से दूसरे वन मे खोजते चले जाते हैं। वनो का बड़ा विस्तार है। उन्हो वनों का बड़ा भारी भाग बिना खोजा ही रह जाता है। यदि सुग्रीव का भय हट गया तो वह एक एक स्थान पर करोड़ों बन्दर भेजेगा। थोड़े ही समय मे सम्पूर्ण संसार छान डालेगा। जहाँ से होगा वहाँ से पता लगायेगा। स्त्री की खोज स्त्रियों में होनी चाहिए। सो बन्दरों से कहीं परदा भी नहीं होता। वे सर्वत्र जा जाकर पता ले सकते हैं। आप दोनों मित्र होकर परस्परोपकारक होगे। आप उसका उपकार पहिले कीजिये। उपकार का ही फल मित्रता है। रामजी ने विदेह राजकन्या का परिचय देते हुए उनका नाम भी बतला दिया था। अतः हनुमान्‌जी कहते है : सो सीता कर खोज कराइहि।

४६. सुग्रीव मिताई

एहि विधि सकल कथा समुझाई। लिये दुऔ जन पीठि चढ़ाई ॥
जब[1] सुग्रीव राम कहुँ देखा। अतिसय जन्म धन्य करि लेखा ॥३॥

अर्थ : इस विधि से सब कथा समझाकर दोनों व्यक्तियों को अपनी पीठ पर

१. यहाँ से ४६ वाँ प्रसङ्ग : सुग्रीव मिताई प्रारम्भ हुआ।

चढ़ा लिया। जब सुग्रीव ने रामजी को देखा तब अपने जन्म को अतिशय धन्य माना।

व्याख्या : समझाया कि सब बन्दरों ने सुग्रीव को राजा मान लिया है। परन्तु वालि के भय से सुग्रीव भागे भागे फिरते हैं। किसी की शक्ति नही कि सुग्रीव को शरण दे। यदि आपके द्वारा सुग्रीव का भय हट गया तो वानर मात्र पर उसकी आज्ञा चलेगी। इस समय वह स्वय दीन और भयभीत हो रहा है। कुछ नही कर सकता। अभय होने पर वह सब कुछ कर सकता है इत्यादि। दोनो भाइयों ने समझ लिया कि बात ठीक है। शबरी ने पहिले ही कह रक्खा है : पंपासरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई। सो सब कहिहि देव रघुबीरा। अत सुग्रीव की मित्रता इन लोगो को पहिले से ही इष्ट थी। इधर हनुमान्‌जी ने वही प्रस्ताव सामने रक्खा। सरकार ने उसे मान लिया। अब हनुमान्‌जी दोनो भाइयो को सुग्रीव के पास ले जाना चाहते हैं। पर्वत के ऊपर ले जाना है। इसलिए अपनी पीठ पर चढ़ा लिया। हनुमान्‌जी को उस कठिन भूमि मे सरकार का कोमल पद से चलना बहुत अखरा। अब एक पद पृथ्वी पर चलने देना नही चाहते। अतः पीठ पर लेकर चले। यथा : हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहि कोउ रामचरन अनुरागी।

इधर सुग्रीव के लिए यथेष्ट संकेत भी मिल गया कि जिसे तुम शत्रु समझते थे उससे परम कल्याण की आशा है। इनका आगमन बडा हितकारी होगा। इसीलिए पीठ पर चढाये लिये आता हूँ। सकेत बहुत स्पष्ट है। सुग्रीवजी समझ गये। दोनो भाइयो को देखकर जन्म को धन्य माना। परन्तु सन्निकट आने से जब बहुत स्पष्ट दर्शन होने लगा तो रामजी को अधिक गुणसागर देखकर अपने जन्म को अतिशय धन्य माना। इसी मूर्ति का तो ध्यान करते थे : पुरखा ते सेवक भये हृ ते भये हनुमान्। सुग्रीवजी साक्षात् सूर्यनारायण के अवतार थे। सो अपने वानर जन्म को अतिशय धन्य माना। क्योकि उसीके द्वारा भगवत् प्राप्ति सम्भव हुई। यथा : बिछुरे ससि रबि मन नयनहि ते पावत दुख बहु तेरो। भ्रमत श्रमित निसि दिवस गगन महँ तहँ रिपु राहु बडेरो। विनय पद ८७.

सादर मिलेउ नाइ पद माथा। भेटेउ अनुज सहित रघुनाथा ॥
कपि कर मन बिचार एहि रीती। करिहहिं बिधि मोसन ए प्रीती ॥४॥

अर्थ : आदर के साथ चरणो मे सिर नवाकर तब गले मिले और रघुनाथजी भी भाई के साथ उनसे मिले। अब सुग्रीवजी अपने मन मे विचार कर रहे है कि हे विधि ! क्या ये हमसे प्रीति करेंगे ?

व्याख्या : हनुमान्‌जी ने कहा था ' सो सुग्रीव दास तव अहई। उसी का साफल्य दिखाते हुए सुग्रीवजी का शिष्टाचार कहते है कि चरणो पर सिर रख दिया और मिले। अब रामजी की ओर का शिष्टाचार कहते हैं कि रामजी भाई के सहित

मिले। भाव यह है कि आते ही उन्हे सखा का पद दिया। इसी भाँति विभीषण से मिलेंगे। यथा : अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी।

पहिले तो सुग्रीवजी को इनसे प्राण का भय हुआ। अब हनुमान्‌जी के संकेत से तथा मिलने के ढङ्ग से मैत्री की आशाएँ थी। मन में विचार करने लगे कि हम जाति के बन्दर और ये इतने महान् हैं। क्या मेरा इतना बड़ा भाग्य होगा कि ये मुझसे प्रीति करेंगे। मनुष्य बन्दरों से सदा बचते रहते हैं। उन्हें अपने पास नही आने देते। आगे चलकर सीताजी यही शङ्का हनुमान्‌जी से करेंगी : नर बानरहि संग कहु कैसे ? अतः कर्म शुभाशुभ के देनेवाले ब्रह्मदेव को सम्बोधन करके मन से प्रश्न करते हैं।

दो. तब हनुमंत उभय दिसि, की सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि, जोरी प्रीति दृढ़ाइ ॥४॥

अर्थ : तब हनुमान्‌जी ने दोनों ओर की सब कथा सुनाकर अग्नि साक्षिक मैत्री द्वारा दृढ प्रीति जोड़ दी।

व्याख्या : तत्पश्चात् हनुमान्‌जी ने दोनों ओर की कथा : बात को स्पष्ट करने के लिए जिसमें पीछे से कोई बात ऐसी न निकले जिससे किसी को धोखा हो कह सुनायी। सुग्रीवजी से कहा कि ये अयोध्या के राजा के पुत्र हैं। पिता की आज्ञा मानकर वन आये हैं। यहाँ इनकी स्त्री को कोई राक्षस हर ले गया। उसी को आप लोग ढूँढ रहे हैं : पता नही लगता और रामजी से कहा कि ये हम लोगों के राजा सुग्रीव हैं। इनके भाई ने इनका सर्वस्व तथा स्त्री हरण कर रक्खा है। आप सहाय होकर इनका राजपाट लौटवाइये। ये सीता का अन्वेषण करायेंगे और उनकी प्राप्ति मे सहायक होंगे। परन्तु इस कार्य मे एक दूसरे पर विश्वास करना होगा। कार्य का गौरव देखकर यह उचित मालूम होता है कि आप लोगो मे अग्नि साक्षिक मैत्री हो। किसी प्रकार से सहायता मे कोई त्रुटि न होने पावे। दोनो पक्ष से स्वीकृति मिलने पर अग्नि को साक्षी देकर हनुमान्‌जी ने मैत्री करा दी। समान शत्रु मित्रवाली मैत्री हुई। इसलिए : जोरी प्रीति दृढाइ कहा।

अग्निदेव कर्म के साक्षी हैं। सबकी गति जानते है। इस लोक और देवलोक मे व्यापार इन्ही के द्वारा चलता है : अग्निर्वै देवानामवमा विष्णुः। अग्नि ही देवताओं के रक्षक विष्णु रूप है। ये प्रत्यक्ष देव निरपराध की रक्षा तथा अपराधी को दण्ड देते हैं। यथा : तौ कृसानु सबकै गति जाना। मो कहँ होहु श्रीखण्ड समाना।

कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा। लछिमन राम चरित सब भाखा ॥
कह सुग्रीव नयन भरि बारी। मिलिहि नाथ मिथिलेस कुमारी ॥१॥

अर्थ : प्रीति किया कोई अन्तर न रक्खा। लक्ष्मण ने रामजी के सब चरित्र कह सुनाये। सुग्रीवजी ने आँखो मे आँसू भरकर कहा कि नाथ! मिथिलेश की बेटी मिलेगी।

व्याख्या : अग्नि साक्षिक मैत्री होने से दोनों पक्ष ने एक दूसरे में कोई भेद न रक्खा। तब लक्ष्मणजी ने सब रामचरित्र कह सुनाया। हनुमान्‌जी को पूरी जानकारी न थी। जितना जान पाये थे उतना कह दिया। पर ऐसी मैत्री मे यह उचित है कि एक दूसरे का रत्ती रत्ती हाल जाने। जिसमें कार्य साधन मे कहीं चूक न हो। अतः लक्ष्मणजी ने सब रामचरित्र कह सुनाया। राज्याभिषेक के समय वनवास और उसमें भी स्त्री हरण। इस करुण कथा को सुनकर सुग्रीवजी के नेत्रों में जल आगया। मित्र के दुःख से सुग्रीवजी दुःखी हो गये। धैर्य बँधाते हुए बोले कि सीताजी मिलेंगी। पता पर पता चलता जा रहा है। यहाँ तक आप ठीक पते पर आये हैं। कुछ जटायुजी ने कहा और कुछ मुझे भी मालूम है। इससे निश्चय होता है कि जानकीजी मिलेंगी।

[1]मंत्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा। बैठ रहेउँ मै करत विचारा॥
गगन पंथ देखी मै जाता। परबस परी बहुत बिलपाता॥२॥

अर्थ : मैं यहाँ एक बार मन्त्रियो के साथ बैठा कुछ विचार कर रहा था। तब मैंने : सीताजी को पराये वश मे पड़ी बड़ा भारी विलाप करती हुई आकाश मार्ग से जाते देखा।

व्याख्या : सुग्रीवजी कहते हैं कि आप इतने ठीक रास्ते से आये हैं कि ठीक इसी के ऊपर से सीताजी गयी हैं। एक बार मैं मन्त्रियों के साथ इसी स्थान पर बैठा कुछ विचार कर रहा था। हनुमान्, तार, नील और नल चारो थे। मेरी दृष्टि पड़ गयी। आकाश मार्ग से सीताजी बहुत बड़ा विलाप करती चली जाती थी। पराये वश मे पड़ी थी। भाव यह कि रावण का रथ बड़े ऊँचे से जा रहा था। पहाड़ के शिखर पर तो सुग्रीवजी थे ही। पर उनसे भी इतने ऊँचे पर जा रहा था कि इन्होने रावण को नहीं पहिचाना। इतना ही जान सके कि कोई स्त्री पराये वश पड़ी विलाप करती जा रही है।

राम राम हा राम पुकारी। हमहि देखि दीन्हेउ पट डारी॥
मागा राम तुरत तेहिं दीन्हा। पट उर लाइ सोच अति कीन्हा॥३॥

अर्थ : राम राम और हा राम। ऐसा पुकारकर हम लोगो को देखकर कपड़ा फेंका। रामजी ने माँगा। उन्होने तुरन्त लाकर दिया : रामजी ने पट को हृदय से लगाकर अत्यन्त सोच किया।

व्याख्या : अब वह स्त्री सीताजी ही थी। इस निश्चय के लिए कहते है। राम, राम हाय राम पुकारकर वस्त्र फेंका। तीन बार राम कहने का भाव यह कि राम को देना। दूसरी बार कहने का भाव यह कि मै राम की हूँ। तीसरी बार हाय

---

१. चार मन्त्री हनुमान, नील, नल, और तार।

राम कहने का भाव यह कि मैं राम को चाहती हूँ। बलपूर्वक हरण की जा रही हूँ। इस भाँति राम, राम, हा राम, कहने मे जो कुछ कहना चाहती थी सो सब कह दिया। सुग्रीवजी कहते हैं कि उन्होने हम लोगो को देखा। हरण करनेवाले ने न हम लोगो को देखा और न पट डारते उन्ही को देखा। ऊपर का फेंका हुआ वस्त्र खण्ड ठीक लक्ष्य पर नही गिर सकता। अत: कपडा फाड़कर उसमे केयूर, कुण्डल और नूपुर बाँध कर फेंका। पर धर्मात्मा सुग्रीवजी ने उसे खोलकर भी न देखा कि उसमे क्या है ? उसे न्यासभूत समझकर राम जब मिलें तो उन्हे देने के लिए रख लिया। इसीलिए पट दीन्हा कह रहे हैं।

रामजी ने तुरन्त माँगा। उत्सुकता बढो कि देखें वह पट सीताजी का ही है या नहीं। सुग्रीवजी ने उसे पर्वत की गुफा मे डाल रक्खा था। तुरन्त लाकर दिया। सरकार तुरन्त पहिचान गये। विरही का प्रेमास्पद की भाँति ही उसके वस्त्राभरण पर प्रेम होता है। उसे हृदय से लगा लिया और विलाप करने लगे। लक्ष्मणजी से कहते हैं लक्ष्मण ! देखा ये केयूर, कुण्डल और नूपुर सीता के ही तो हैं। लक्ष्मणजी कहते हैं कि केयूर कुण्डल तो आप जानें मैं नही जानता। मैं तो नूपुर को पहिचानता हूँ। क्योकि नित्य चरणो की वन्दना करता था।

यथा : नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरावेव जानामि नित्य पादाभिवन्दनात् ॥

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। तजहु सोच मन आनहु धीरा ॥
सब प्रकार करिहउँ सेवकाई। जेहि बिधि मिलहिं जानकी आई ॥४॥

अर्थ : सुग्रीव ने कहा कि हे रघुवीर सुनो। सोच छोड़ो। मन मे धैर्य लाओ। मैं सब प्रकार से सेवकाई करूँगा और जिस विधि से जानकी आकर मिलें : सो सब करूँगा।

व्याख्या : सुग्रीवजी ने मित्र का कार्य आरम्भ कर दिया। आश्वासन देते हैं कि आप रघुवंशियो मे वीर हैं। वीर अधीर न होहिं। आप ऐसे वीरो को शोक करना शोभा नही देता। चिन्ता कार्यविनाशनी है। उसे छोडिये। धैर्य धारण करिये। उत्साह बढाइये। अब धैर्य धारण की भूमिका कहते हैं कि हम केवल पता लगा कर नही रह जायेंगे। शत्रु को मारकर सीताजी को लाकर मिला देंगे। आप किसी बात की अब चिन्ता न करें।

दो. सखा बचन सुनि हरषे, कृपा सिन्धु बल सींव।
कारन कौन बसहु बन, मोहि कहौ सुग्रीव ॥५॥

अर्थ : कृपासिन्धु और बल की सीमा रामजी सखा का वचन सुनकर प्रसन्न हो गये। कहने लगे : सुग्रीव ! मुझे बतलाओ तुम वन मे क्यो रहते हो ?

व्याख्या : सखा के वचन पर बडा विश्वास है। सुनकर हर्षित हुए कि मित्र

को जैसा बोलना चाहिए वैसी बात सुग्रीव बोले। सरकार कृपा के सिन्धु हैं। सुग्रीव पर बड़ी कृपा है। अतः उसके आश्वासन देने पर हर्षित हो रहे हैं। नही तो बलशील हैं। शत्रु के विजय करने मे किसी की अपेक्षा नही है : एक बार कैसेहुँ सुधि जानौ। कालहु जीति निमिष महु आनौ। सुग्रीव ने अपनी प्रतिज्ञा स्पष्ट कर दी। अब स्वयं प्रतिज्ञा करने के लिए सुग्रीव के वनवास का कारण पूछते हैं। स्वयं सुग्रीव के मुख से सविस्तार कथा सुनना चाहते हैं। हनुमान्जी ने अति संक्षेप मे अवसरानुकूल कथा कही थी। लक्ष्मणजी के रामचरित्र कहने पर सुग्रीवजी को अपना चरित्र कहना प्राप्त था। परन्तु सुग्रीव को कहने का अवसर नही मिला था। इसलिए स्वयं पूछते है।

नाथ बालि अरु मै दो भाई। प्रीति रही कछु बरनि न जाई॥
मयसुत मायावी तेहि नाऊँ। आवा सो प्रभु हमरे गाऊँ॥१॥

अर्थ : नाथ ! बालि और मै दोनो भाई हूँ। ऐसी प्रीति रही जिसका वर्णन नही हो सकता। मय का बेटा जिसका नाम मायावी था हमारे गाँव मे आया।

व्याख्या : श्रीराम की आज्ञा को शिरोधार्य करके अपने वन मे बसने का कारण आद्योपान्त वर्णन करते हैं। जिसके कारण से वनवास स्वीकार किया है उसका नाम निर्देश करते हुए कहते है कि बालि और मै दोनो भाई है। दोनो मे बालि ज्येष्ठ हैं। इस कारण भी उसके नाम का पहिले निर्देश किया। सम्बन्ध की घनिष्ठता प्रेम की घनिष्ठता दिखाते है कि हम दोनो भाइयो मे अवर्णनीय प्रीति थी। एक दूसरे पर प्राण निछावर करते थे।

अब उस प्रीति के भग होने की कारणभूत घटना का वर्णन करते हैं कि मय दानव का बेटा जिसका नाम मायावी था। अर्थात् रावण का साला एक दिन हमारे गाँव किष्किन्धा मे आया। किष्किन्धा को मैं भी उसी भाँति अपना समझता था जिस भाँति बालि समझते थे। इसी बात का द्योतन के लिए कवि ने बहुवचन : हमरे शब्द का प्रयोग किया है। मय असुरो के विश्वकर्मा थे। उनका बेटा होने से उसे बड़ा अभिमान था। किष्किन्धा को वह गाँव मानता था। बालि द्वारा रावण के पराभव से रुष्ट था। बल से उन्मत्त होकर अकेले ही युद्ध की आकाक्षा से आया।

अर्ध राति पुरद्वार पुकारा। बाली रिपुबल सहइ न पारा॥
धावा बालि देखि सो भागा। मै पुनि गयउँ बन्धुसँग लागा॥२॥

अर्थ : आधी रात को उसने किष्किन्धा के पुरद्वार पर आकर ललकारा। बालि शत्रु के बल प्रदर्शन को सह न सका। दौड़ पड़ा। देखते ही वह भाग चला। मैं भाई के साथ ही साथ चला।

व्याख्या : आधी रात का समर असुरो के लिए अत्यन्त अनुकूल होता है। प्रदोप के समय से ही उनका बल बढ़ने लगता है। यथा ' पाइ प्रदोप हर्ष दसकधर

और आधी रात को तो वह अपनी पराकाष्ठा को पहुँच जाता है। उस समय बन्दर अत्यन्त ही निर्बल रहते हैं। क्योंकि रात को उन्हें सूझता ही नहीं। मायावी किष्किन्धा को गाँव समझकर आया था। आने पर पता चला कि वह पुर है। प्राकार से घिरा हुआ है। उसने पुर के भीतर प्रवेश नहीं किया। बाहर से ही ललकारा। समझता था कि इस समय पुर के बाहर आने का साहस बन्दर न कर सकेंगे और हमारी जीत हो जायगी।

बात भी ऐसी हुई। किष्किन्धा वीर वानरों से भरी हुई थी। परन्तु कुसमय होने से सब लोग उस ललकार को सह गये पर वालि से नहीं सहा गया। वह शत्रु का सामना करने के लिए दौड़ पड़ा। निशाचर रात को भी देखते हैं। वालि के स्वरूप को देखते ही उसका साहस छूट गया। वह भाग चला। वालि ने उसका पीछा किया। उस समय किसी ने वालि का साथ न दिया। पर : ओड़िअहिं हाथ असनिहुँ के घाए। होहिं कुठासु वधु सहाए। सुग्रीवजी कहते हैं मैं भाई के साथ ही साथ पुर के बाहर आया और जब उन्होंने पीछा किया तो मैं भी साथ रहा।

गिरवर गुहा पैठ सो जाई। तब बाली मोहि कहा बुझाई॥
परिखेसु[1] मोहि एक पखवारा। नहिं आवौं तौ जानेसु मारा॥३॥

अर्थ : वह एक पर्वत की गुफा में घुस गया। तब वालि ने मुझे समझाकर कहा कि तुम मेरी बाट एक पखवारे तक जोहना। यदि इतने दिनों तक मैं न लौटूँ तो तुम समझ लेना कि मैं मारा गया।

व्याख्या : बालि पर अपनी प्रीति दिखलाकर सुग्रीवजी अपने ऊपर वालि की प्रीति दिखलाते हैं कि वह राक्षस पर्वत की गुफा में घुस गया। समझा कि इसमें घुसने का साहस न करेगा। इस अँधेरी गुफा में दिन को घुसने का साहस किसी का नहीं पड सकता है रात को कौन घुसेगा? पर वालि ही बड़ा वीर है। उसने उसके वध का दृढ सङ्कल्प कर लिया था। मुझे भी साथ ही गुफा में घुसने के लिए तैयार देखकर मुझे समझाकर कहा : जानता था कि इस समय मेरी आज्ञा पर भी सुग्रीव नहीं रुक सकता।

जानि जाइ नहि गुफा महँ राक्षस होहिं कितेक।
तदपि गुफा है साँकरी सम्मुख आइहि एक॥१॥
इहाँ न पीछे ते कोऊ करि सकिहै उपकार।
याते सब को मारिहौं जो वे होयँ हजार॥२॥

---

१. प्रतीक्षा का तद्भव रूप 'परिखा' हुआ। सर्वत्र लवराम् इस सूत्र से 'प्र' का लोप हुआ। 'प्रतिवेतस पताकासु ड.' इस सूत्र से 'त' का 'ड' हो गया और 'ष्क स्क क्ष' 'ख' इस सूत्र से 'क्ष' का 'ख' हो गया इस भाँति प्रतीक्षा का प्राकृत रूप 'पडिखा' हुआ। उसी का अपभ्रंश 'परिखेसु' है।

सो तुम बाहर ही ठहरि रखौ बिल को द्वार।
जाते पीछे आइ नहि राक्षस करैं प्रहार ॥३॥
बिलग बिलग ह्वै बंधु दोउ यथा साधिहौं काज।
तथा सधिय नहिं संग रहि होइहि अधिक अकाज ॥४॥
याते मोहि अकेल ही जान गुफा महँ देहु।
ह्वै सचेत बाहिर रहहु करहु न मन संदेहु ॥५॥

जाते समय कहता गया कि एक पखवारे का दम मेरे मे है। इससे अधिक काल तक भी मैं अनवरत युद्ध कर सकता हूँ। पर एक पखवारे तक तो मुझे कोई मार नही सकता। अतः पन्द्रह दिन तक तुम मेरे लौटने की आशा से यहाँ ठहरना। यदि इतने दिनों तक मैं न लौटूं तो समझ लेना कि मैं मारा गया। इससे अधिक काल तक ठहरने की आवश्यकता नही है।

माँस दिवस तहँ रहेउँ खरारी। निसरी रुधिर धार तहँ भारी ॥
बालि हतेसि मोहि मारिहि आई। सिला देइ तहँ चलेहुँ पराई ॥४॥

अर्थ : हे खरारि ! मैं महीने दिन रहा। वहाँ से भारी रक्त की धारा निकली। तब मैंने निश्चय किया कि बालि मारा गया। अब मुझे भी मारेंगे। इसलिए उस बिल के द्वार को : शिला से बन्द करके मैं भाग चला।

व्याख्या : खरारि सम्बोधन का भाव यह है कि रामजी ने भी खरदूषण के युद्ध मे भाई लक्ष्मण को वहाँ से हटा दिया था। भाई की ममता भाई ही जानता है। अतः सुग्रीवजी कहते हैं कि पन्द्रह दिन बीतने पर वहाँ से लौट नही आया। एक पखवारे को कौन कहे मैं दो पखवारे तक बाट जोहता रहा और भी अधिक समय तक बाट जोहता। पर हुआ क्या कि उस गुफाद्वार से भारी रक्त की धारा निकली। मैंने निश्चय कर लिया कि बालि मारा गया। एक पखवारे का उसका दम था। उसे बीते एक पखवारा और हो गया। जब बिल्कुल दम टूट गया तब राक्षसो ने उसे मार पाया है। जिसे बालि दम रहते न मार पाया उसे दम टूटने पर कैसे मार सकेगा ? अतः बालि ही मारा गया। इसमे सन्देह नही। मास दिवस : शब्द ग्रन्थ भर मे एक महीने के अर्थ मे आया है। इसका अर्थ बारह दिन करना उचित नही है। यथा : मास दिवस कर दिवस का। मास दिवस महँ नाथ न आवा। इत्यादि। अध्यात्म मे तो स्पष्ट उल्लेख है : इत्युक्त्वाऽऽविश्व स गुहां मासमेकं न निर्ययौ। ऐसा कहकर वह गुफा मे घुसा और एक महीने तक बाहर न आया। बारह दिन अर्थ करने मे सुग्रीव अपराधी सिद्ध होते हैं और सुग्रीव यह सब अपनी निरपराधता सिद्ध करने के लिए ही कह रहे हैं। अतः महीने भर : अर्थ करना ही ठीक है।

सुग्रीवजी कहते हैं कि तब मुझे भय उत्पन्न हुआ कि जिसने बालि को मारा उसके सामने मैं क्या हूँ। अब बाहर निकल कर मुझे भी मारेगा। मैं यहाँ बिल्कुल

अकेला हूँ। बहुत सम्भव है कि भागकर भी मैं न बच सकूँ। इसलिए मैंने पहिले शिला द्वारा उस गुफा के द्वार को बन्द किया जिसमें बाहर निकलनेवाले को यथेष्ट समय लगे और तबतक मैं उनके पहुँच के बाहर चला जाऊँ और भाग चला।

मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु साँई। दिन्हेहु मोहि राज बरिआई॥
बाली ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहि जियँ भेद बढावा॥५॥

अर्थ : मन्त्रियों ने पुर को बिना स्वामी का देखा तो मुझे इच्छा न रहते भी राजगद्दी दे दी। तब तक : बालि उसे मार कर आया। मुझे देखकर उसने मन में भेद बढाया।

व्याख्या : किष्किन्धा लौटकर वालि के मारे जाने का सब वृत्तान्त कहा। तब तक अङ्गद का जन्म नहीं हुआ था। मन्त्रियों ने देखा कि राज्य अनाथ हो रहा है। मैं राज्य चाहता नही था। बहुत दुःखी था। पर मन्त्रियों ने बहुत आग्रह किया कि आपका हक है। बिना राजा के राज्य चल नही सकता। अतः मुझे स्वीकार करना पड़ा।

पर बात यह हुई कि वालि ही अन्त में विजयी हुआ। वह रुधिर की धारा मायावी तथा उसके साथियों की थी। लौटते समय उसे गुफा से बाहर निकलने में बड़ी कठिनाई हुई। गुहा द्वार की शिला को हटाकर किसी भाँति बाहर आया तो वहाँ सुग्रीव को न पाया। घर लौटा तो देखता क्या है कि सुग्रीव राजा बने बैठे हैं। विचार से यदि काम लेता तो रुष्ट होने की कोई बात न थी। परन्तु उसने उलटा सोचना प्रारम्भ किया। अर्थ लगाया कि सुग्रीव को उसका मरना इष्ट था। इसलिए गुफा द्वार को शिला से बन्द किया। इत्यादि।

रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी। हरि लीन्हेसि सर्बस अरु नारी॥
ताके भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मइ फिरेउँ बिहाला॥६॥

अर्थ : शत्रु की भाँति उसने मुझे बहुत मारा। मेरा सर्वस्व हरण कर लिया और स्त्री भी ले ली। हे रघुवीर कृपाल! उसके डर से मै सम्पूर्ण भुवनों में बेहाल भागता फिरता था। यहाँ शाप के कारण नही आता। फिर भी मन में डरा करता हूँ।

व्याख्या : मुझे अपराधी ही नहीं उसने शत्रु माना और शत्रु की भाँति मुझ पर प्रहार किया। अर्थात् वध की इच्छा से मुझे मारा। मैं बेहाल होकर भागा। उसने पीछा किया। सम्पूर्ण पृथ्वीतल मे मै भागता फिरा। उसने पीछा न छोड़ा। किसी का सामर्थ्य भी नही कि उससे मेरी रक्षा कर सके। मुझे कही शरण नही मिली। उसने मेरा सर्वस्व हरण कर लिया और स्त्री भी हरण कर ली। सूर्य के अंश होने से सुग्रीव की गति वालि की गति से अधिक तीव्र थी। अतः सुग्रीव हाथ न आये। तब उसने धन दारापहरण किया। यहाँ तक कथा जो सुग्रीव ने कही उसका अधिक

प्रभाव रामजी पर न पड़ा। अपनी प्रकृति के अनुसार उसका अच्छा अर्थ लगाते गये कि समझने में सबसे चूक होती है। बालि से भी चूक हुई। इसलिए उसने मारकर निकाल दिया। स्त्री को नहीं निकाला रहने दिया। भाई पर रुष्ट होने पर वह निकाला जा सकता है पर उसकी स्त्री कैसे निकाली जायगी ?

इहाँ श्राप बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहउँ मनमाँही ॥
सुनि सेवक दुख दीनदयाला। फरकि उठीं द्वौ भुजा बिसाला ॥७॥

अर्थ : यहाँ शाप के कारण नहीं आता। फिर भी मैं मन सभीत रहता हूँ। सेवक के दुःख को सुनकर दीन दयालु की दोनों विशाल भुजाएँ फड़क उठीं।

व्याख्या : शङ्का उठती है कि तब तुम किष्किन्धा के पास ही ऋष्यमूक पर कैसे ठहरे हो। इस पर सुग्रीवजी कहते हैं कि यहाँ के लिए उसे शाप है। यहाँ आवे तो उसका सिर फटकर प्राण निकल जाय। फिर भी मुझे मारने के लिए बलवान् वानरों को भेजा ही करता है। वे मेरे द्वारा मारे गये पर डर लगा रहता है कि अब वह न जाने किसको भेजेगा।

जब इस बात को सुना तो निश्चय कर लिया कि बालि इनके जान का भूखा है नहीं तो अब बैर बढ़ाने से क्या प्रयोजन? उसे यथेष्ट समय मिल गया कि वह सब बातों को समझता। सुग्रीव की निरपराधता पर दया करता। पर उसने ऐसा नहीं किया। निष्कण्टक होकर उसकी स्त्री को भोगना चाहता है। अतः उसके वध के लिए बलवान् वानरों को भेजता है। सरकार दीनदयाल हैं। सुग्रीव की दीन दशा पर दया आयी। दोनों विशाल भुजाएँ फड़क उठीं। इस प्रकार भुजाओंके फड़कने का सम्बन्ध शकुन अपशकुन से नहीं है। वीरता के आवेश से है।

दो. सुनु सुग्रीव मारिहौं, बालिहिं एकहिं बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत, गए न उबरिहि प्रान ॥६॥

अर्थ : सुनो सुग्रीव मैं बालि को एक ही बाण से मारूँगा। ब्रह्म रुद्र के शरण जाने पर भी उसका प्राण न बचेगा।

व्याख्या : अब सरकार सुग्रीव को आश्वासन देते हैं कि मैं बालि को मारूँगा और एक ही बाण से मारूँगा। मेरे एक प्रहार को बालि नहीं सह सकता। मैं दो बार बाण चढाता ही नहीं। आश्रित को दो स्थानों में स्थापित नहीं करता। अर्थी को दो बार देता नहीं और न दो बार बोलता हूँ : द्विः शरं नाभिसन्धत्ते द्विः स्थापयति नाश्रितान्। द्विर्ददाति न चार्थिभ्यो रामो द्विर्नाभिभाषते। यदि कहो कि उसके बड़े बडे सहायक हैं। तो इस पर कहते है कि पहिले तुम्हें शरण देनेवाला कोई नहीं था। अब मेरे बाण के पीछा करने पर उसे शरण देनेवाला कोई न मिलेगा। सबसे बड़े शरणद ब्रह्म रुद्र हैं। वे भी शरण में नहीं रक्खेंगे। जयन्त को नहीं रक्खा। तुम शोक छोड़ दो। अब बालि का भय तुम्हें नहीं है।

न मित्र दुख होहिं दुखारी । तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी ॥
ज दुख गिरि सम रज करि जाना । मित्र क दुख रज मेरु समाना ॥१॥

अर्थ : जो लोग मित्र के दुःख से दुःखी नहीं होते उनके देखने से महापाप ता है। अपने पर्वत के समान दुःख को धूल के समान जाने और मित्र के रज के मान दुःख को मेरु पर्वत के समान माने।

व्याख्या : या तो सरकार ने अस्थि समूह देखकर निशिचरहीन पृथ्वी करने ो प्रतिज्ञा ऋषि समाज में की थी या इस समय सुग्रीव के दुःख से सन्तप्त होकर तिज्ञा वालि वध के लिए की है। ऐसी प्रतिज्ञा के औचित्यख्यापन के लिए तथा सार के उपदेश के लिए मित्रधर्म का वर्णन कर रहे हैं। मित्र के दुःख से दुःखी होना र्म है। जिसने इस धर्म का उल्लङ्घन किया उसका पाप महापापों से भी बढ़कर है। हापातकी के संसर्ग से महापातक होता है। पर मित्र के दुःख से दुःखी न होनेवाले ; मुखदर्शन से महापातक होते हैं। पुण्यात्मा के दर्शन से पुण्य का और पापात्मा ; दर्शन से पाप का प्रभाव मन पर पड़ता है। क्योंकि विषयावच्छिन्न चेतन के ाथ अन्तःकरणावच्छिन्न चेतन के बिना एक हुए दर्शन की क्रिया ही सम्पन्न नहीं ोती। वालि ने मेरे मित्र की स्त्री हरण की। मै उसे बिना मारे नहीं छोड़ कता।

निषेधमुख से निरूपण करके अब वही बात विधिमुख से कहते हैं कि मित्र के दुःख के आगे अपने दुःख के भूलने की विधि है और वह तभी सम्भव है जब अपने ड़े भारी दुःख को भी तुच्छ समझे और मित्र के तुच्छ दुःख को भी बड़ा भारी जाने। ऐसी दृष्टि मैत्री के बल से होती है। भाव यह कि यद्यपि मैं भी स्त्रीविरह से दुःखी हूँ। क्योंकि निशिचर उसे हरण कर ले गया है। पर वह दुःख इस समय मेरे लिए कुछ नहीं है। यथा : तिय बिरही सुग्रीव सखा लखि प्रान प्रिया बिसराई। जानत प्रीति रीति रघुराई। मै पहिले सुग्रीव के दुःख को दूर करूँगा। फिर मेरे लिए जैसा होगा देखा जायगा।

जिन्हके असिमति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई ॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनहि दुरावा ॥२॥

अर्थ : जिनका स्वभाव से ही ऐसी बुद्धि न हो वे शठ क्यों हठ करके मित्रता करते है? कुपन्थ से हटाकर सुपन्थ में चलावे। उसके गुण को प्रकट करे और दुर्गुण को छिपावे।

व्याख्या : मैत्री के अधिकारी वे ही है जिनमे ये गुण स्वभाव से ही प्राप्त हों। सिखाने पढ़ाने से नहीं और जिनमें ये गुण स्वभाव से प्राप्त नहीं हैं वे मैत्री के अधिकारी नहीं हैं। उन्हें मैत्री न करना चाहिए। यदि वे करना चाहे तो वे शठ हैं। उनमे मैत्री न निबहेगी। मैत्री करके वे मित्र को तो विपत्ति में डालेंगे ही

अपना भी लोक परलोक व्यर्थ बिगाड डालेंगे। जब मन मे यह ठान सकें कि इनके लिए मै बडा से बडा कष्ट उठाऊँगा तभी मैत्री करना उचित है।

मित्र के लोक परलोक की चिन्ता चाहिए। कुपथ पर चलने से उसका त्याग न करे। उसे अच्छे रास्ते पर ले चले। कुपन्थ से उसे हटावे। व्यक्तिगत जीवन मे रोक टोक करने का मित्र को ही अधिकार है। गुरु न होकर भी गुरु का कार्य करे। माता पिता की भाँति उसके अपराध को सहन करे। उसका कल्याण चाहे। उसके दुर्गुणो को छिपावे और लोगो म उसके गुणो की प्रशसा करे। सुग्रीवजी के लिए सरकार को सब कुछ करना पडा। १ कुपथ निवारि सुपथ चलावा। यथा भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव। २ गुन प्रगटै अवगुनहि दुरावा। यथा ते भरतहि भेटत सनमाने। राजसभा रघुबीर बखाने।

देत लेत मन सक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई।
बिपतिकाल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह सत मित्र गुन एहा ॥३॥

अर्थ दने लने मे मन म शङ्का न रखे। अपने बल के अनुसार सदा हित करे। विपत्तिकाल मे सौगुना प्रेम करे। वद और सन्त कहते हैं कि ये मित्र के गुण हैं।

व्याख्या मित्र के धन और अपने धन म भेद नहीं है। इसलिए देने लेने मे शङ्का न करे। मित्र का प्रेम पुरस्कार स्वीकार करे। यह बात मन मे न लावे कि इनका मैं क्यो लूँ। इसी भाँति प्रेमोपहार मित्र को दे। इस बात पर ध्यान न दे कि इसकी इन्हे क्या आवश्यकता है। परन्तु देने पर पहिले ध्यान रहे। लेने पर पीछे। इसीलिए देत लेत कहा। लेत देत नही कहा। पौरुष की अपेक्षा न करके काम करना तामस हो जाता है। उससे किसी का हित नही होता। अनहित होने का ही विशेष भय रहता है। अत जहाँ तक किया हो सके मित्र का हित ही करे। कहा गया है कुसमय मीत का को कौन ? पर यह बात नही है। मित्र की परीक्षा का काल ही कुसमय है धीरजु धरम मित्र अरु नारी। आपदकाल परिखिअहिं चारी। उस समय उस पर सौगुनी प्रीति बढनी चाहिए। श्रुति कहती है और सन्त कहते हैं। भाव यह है कि शिष्टानुमोदित श्रुति मित्र के ये ही धर्म बतलाती हैं।

आगे कह मृदु बचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई ॥
जाकर चित अहिगति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेंहि भलाई ॥४॥

अर्थ मुख के सामने तो मीठी बातें बना बनाकर कहता है। पीछे बुराई करता और मन मे कुटिलता रखता है। जिसका मन साँप की गति की भाँति टेढा है। ऐसे कुमित्र के परित्याग मे ही कल्याण है।

व्याख्या अब कुमित्र का लक्षण कहते हैं। पहले कह आये हैं ते सठ कत हठ करत मिताई। शठ का स्वभाव है मीठी बातै सठ करै करिके महाबिगार।

ो स्वभाव के अनुकूल वह मित्र के साथ भी आचरण करता है। आँख के सामने वह मृदुवचन बना बनाकर बोलता है। उसका कल्याण नही देखता। पीठ पीछे ाई करता है। उसके मन मे कुटिलता है। उसके मन, कर्म और वाणी की गति ्न प्रकार की होती। कवि उसके चित्त की उपमा सर्प से देते हैं। वह कुमित्र है। ा दूर से परित्याग करना चाहिए। नही तो कल्याण नही हो सकता। सच्चा ्र तो उसका कल्याण देखेगा। उसके कल्याण के लिए आवश्यकता पडने पर ोर भी बोलेगा। उसका व्यवहार सदा सरल होगा। मन वाणी और कर्म से ्याण ही करेगा। वह पीठ पीछे स्तुति करेगा। भलाई करेगा।

वक सठ नृप कृपिन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी॥
वा सोच त्यागहु बल मोरे। सबबिधि घटब[1] काज मैं तोरे॥५॥

अर्थ शठ सेवक, कृपण राजा, बुरी स्त्री और कपटी मित्र ये चार शूल की ांति दु खदायक हैं। हे सखे! मेरे बल के भरोसे पर शोक का त्याग करो। ब प्रकार से मैं तुम्हारा काम बनाऊँगा।

व्याख्या हेयम् दु खमनागतम्। जो दु ख बीत गया है उससे छुट्टी मिल चुकी ।जो आ पडा है उसे भोगना ही है। आनेवाले दु ख से बचने का उपाय होना ाहिए। शत्रु से तो मनुष्य स्वभाव से ही सावधान रहता है। मध्यस्थ को भी शय की दृष्टि से देखता है। धोखा सदा उनसे होता है जिन्हे मनुष्य अपना तचिन्तक समझता है। वे चार हैं सेवक, राजा, स्त्री और मित्र। इन्ही के रोसे मनुष्य सोता है। इनकी कुचाल से रक्षा नही है। अत कवि कहते है कि ठ सेवक का परित्याग करना चाहिए। शठ सेविका मन्थरा की कुचालि से अयोध्या सर्वनाश उपस्थित हो गया। रावण कृपण राजा थे। उनके दान की चर्चा ही नही सुनाई पडती। लूट खसोट से ही तो उन्हे सोने की लङ्का पुष्पक विमान ्न्दर स्त्रियाँ और अपार सम्पत्ति राशि मिली थी। पर उनकी कुचालि से ही नशिचरहीन पृथ्वी हो गयी। कुनारी सूर्पणखा थी। उसके कुचाल से सारा कुटुम्ब ास्म हो गया। कपटी मित्र एकतनु थे। उनकी कुचाल से राजा भानुप्रताप के राज्य ौर कुल का सहार हो गया। अत शठ सेवक कृपण राजा कुनारी और कपटी मत्र सर्वथा त्याग करने योग्य है। ये अपने होकर तीव्र वेदना पहुँचाते हैं। अत नकी उपमा शूल से दी है। शूल शरीर म ही उत्पन्न होकर शरीर का नाश करता है। अत शूल के नाश क लिए चिकित्सा की जाती है। इनसे शीघ्रातिशीघ्र पण्ड छुडाने का महत् प्रयत्न होना चाहिए।

मित्र धर्म निरूपण करके सुग्रीव को समझाया और आश्वासन दिया कि मैं मित्रधर्म को जानता हूँ। मेरे बल के भरोसे सोच छोडो। मैं तुम्हारा काम सब तरह से बनाऊँगा। १ तुम्हारे शत्रु को मारूँगा। २ तुम्हे राज्य दूँगा। ३ तुम्हे

---

१ यहाँ घटब का अर्थ करब है। यथा सो सब भाँति घटिहि सेवकाई।

सुपन्थ पर चलाऊँगा। ४ तुम्हारे यश का विस्तार करूँगा। ५ तुम्हारा परलोक बनाऊँगा।

१ शत्रुवध यथा · मारा वालि राम तव हृदय माँझ सरतानि।

२ राज्यदान यथा : राज दीन्ह सुग्रीव कहँ अगद कहँ जुवराज।

३ सुपथ पर चलना यथा : भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव।

४. यश का विस्तार यथा : ते भरतहिं भेटत सनमाने।
राज सभा रघुबीर वखाने॥

५ परलोक सुधार यथा अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढनेम।
सदा सर्वगत सर्वहित जानि करेहु अति प्रेम॥

कह सुग्रीव सुनहु रघुवीरा। बालि महाबल अति रनधीरा॥
दुंदुभि अस्थि ताल देखराये। बिनु प्रयास रघुनाथ उठाये॥६॥

अर्थ · सुग्रीव ने कहा हे रघुवीर। सुनो। वालि महाबल और अति रणधीर है। दुन्दुभी की हड्डी और ताल दिखलाया। रघुनाथ ने उसे विना परिश्रम के ही उठा लिया · अर्थात् हटा दिया।

व्याख्या : सुग्रीव ने समझा कि मेरे मित्र ने वालि का बल विना जाने ऐसी प्रतिज्ञा कर दी। ये धोखे मे न रहें। इसलिए उसने कहा कि यद्यपि आप रघुकूल मे वीर हैं। पर वालि महाबली है और रण मे अत्यन्त धीर है। आप वालि के बल को समझ लें। यह जो पहाड के समान सिर की हड्डी पडी है यह दुन्दुभी नाम के राक्षस की है। यह रात्रि को भैसा बनकर किष्किन्धा मे आया और वालि को युद्ध के लिए ललकारा। वालि ने उसकी सीग पकडकर उसे पृथ्वी पर पछाड़ दिया और उसका सिर लेकर ऊपर उछाल दिया। सो यहाँ एक योजन पर आकर गिरा। मातङ्ग ऋषि के आश्रम मे रक्त की वर्षा हो गयी। उसी पर ऋषि ने शाप दिया कि यदि तू मेरे पर्वत के निकट आवेगा तो तेरा सिर फट जायगा। इस सिर को यदि आप उठा सकें तो समझा जा सकता है कि आप उससे लड सकेंगे। रघुनाथ ने उसे पैर के अँगूठे से दस योजन पर फेंक दिया। सुग्रीव और उनके मन्त्री वाह वाह करने लगे। सुग्रीव ने बल तो देख लिया। फिर भी युद्ध कौशल देखने के लिए कहा कि ये सात ताल हैं जिन्हे हिलाकर वालि पत्रहीन कर देता था। इन्हें यदि आप एक बाण से वेध दें तो निश्चय आप वालिवध मे समर्थ होगे। रामजी का बाण उन सातो तालो को वेधकर पर्वत और पृथ्वी को वेधता हुआ लौटकर उनके तूणीर मे प्रवेश कर गया।

मित्र ने परीक्षा लेनी चाही। सरकार सहर्ष देने के लिए तैयार हो गये। शुद्ध हृदय से यदि जयन्त इसी भाँति विनय किये होता तो इतनी दुर्दशा मे न फँसता।

व अमित बल बाढी प्रीती । बालि बधब इन्ह भइ परतीती ॥
र बार नावइ पद सीसा । प्रभुहि जानि मन हरष कपीसा ॥७॥

अर्थ : अपरमित बल देखकर प्रीति बढी। विश्वास हो गया कि ये बालि मारेंगे। बार बार चरणो मे सिर झुकाने लगा। प्रभु को जानकर सुग्रीव हर्ष हुआ।

व्याख्या : सुग्रीव ने देखा कि बालि महाबल है। पर इनके बल का तो थाह नही है। यह अमानुष पराक्रम किसी मे हो नही सकता। इनके बालिवध करने सन्देह नही है। मनुष्य नही है। ईश्वर हैं। अत. सुग्रीव बार बार चरण पर रने लगे। प्रभु को पहिचान लेने से सुग्रीवजी को बडा हर्ष हुआ। उन्होने शोक परित्याग किया।

सरकार को देखकर ही सुग्रीवजी समझ गये थे कि ये बल की सीमा हैं। इस अचिन्त्य पराक्रम को देखकर तो आश्चर्य से चकित हो गये। कार्य सिद्धि दृढ आशा से प्रीति बढी। यथा : जेहि ते कछु निज स्वारथ होई। तेहि पर मता कर सब कोई। जो बाण पाताल मे प्रवेश कर सकता है वह बालिवध कर सकता है।

पजा ग्यान बचन तब बोला। नाथ कृपा मन भयउ अलोला ॥
ख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहउँ सेवकाई ॥८॥

अर्थ : ज्ञान उपजा तब यह बात बोले कि नाथ की कृपा से मन स्थिर हो या। सुख, सम्पत्ति, परिवार और बडाई इन सबो को छोडकर सेवा करूँगा।

व्याख्या : ईश्वरबुद्धि से ईश्वर दर्शन ही दर्शन है। विश्व रूप भगवान् का थोडा बहुत दर्शन तो सभी को होता है। परन्तु उसमे ईश्वरबुद्धि न होने से फल नही होता। प्रभु के जान लेने से दर्शन का तुरन्त फल मिला। शोकापनोदन होकर मन मे प्रसन्नता आयी। उससे बुद्धि स्थिर हुई। तब ज्ञान उपजा। यथा : मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा। तब वचन बोले कि प्रभु की कृपा से मेरा मन स्थिर हो गया। मन का स्थिर होना बड़ा कठिन कार्य है। अर्जुन को भी यह असाध्य जान पडा। भगवान् ने भी : असशय महाबाहो मनो दुर्निग्रह चलम्। उसी बात को दोहरा दिया। ऐसे चल मन के एकाएक स्थिर हो जाने का सिवा भगवत्कृपा के और दूसरा कारण हो नही सकता। यद्यपि परम चपल श्री सतत थिर न रहत कतहूँ। हरिपद पकज पाइ अचल भइ करम बचन मनहूँ।

चित्त के स्थिर हो जाने से सुख सम्पत्ति परिवार बड़ाई से चित्त हट जाता है। जब तक इनमे चित्त लगा है तब तक स्थिर हो सकता नही। अत: कहते हैं कि इन्हे छोडकर सेवकाई करूँगा। यथा : स्वामिहि सर्बभाव छल त्यागी। यही ज्ञान का लक्षण है कि सब छोडकर भगवान् के भजन की इच्छा हो। यथा : हृदय बहुत दु:ख लाग। जनम गयउ हरि भगति बिनु।

ए सब राम भगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक॥
सत्रु मित्र सुख दुःख जग माही। माया कृत परमारथ नाही॥९॥

अर्थ : आपके चरणो की आराधना करनेवाले सन्त लोग कहते हैं कि ये सब राम भक्ति के बाधक हैं। शत्रु मित्र सुख और दुःख जो संसार मे हैं वे सब माया के बनाये हुए हैं। परमार्थ नही हैं।

व्याख्या : सुख सम्पत्ति परिवार और बड़ाई रहते हुए क्या सेवकाई नही हो सकती? इस पर कहते हैं कि सन्त लोग भी जिन्होने प्रभु की आराधना के मार्ग मे अपने को लगा दिया है कहते हैं कि ये सब रामभक्ति के बाधक हैं। केवल मेरा ही यह अनुभव नही है। यथा : रमाबिलास राम अनुरागी। तजहिं वमन जिमि जन बडभागी।

अब सुग्रीवजी कहते हैं कि शत्रु मित्र सुख दुःख जो जग मे हैं वे अविद्याकृत है। यथा : धरनि धामु धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जहँ लगि व्यवहारू। देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माँही। मोह मूल परमारथ नाँही। सुग्रीवजी को व्यावहारिक और पारमार्थिक सत्ता का विवेक हुआ। पारमार्थिक सत्ता तो केवल राम की है। यथा : राम ब्रह्म परमारथ रूपा। न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं न कश्चित् कस्यचिद्रिपुः। व्यवहारेण मित्राणि जायन्ते शत्रुवस्तथा। इस संसार मे न कोई किसी का मित्र है न कोई शत्रु है। व्यवहार से ही शत्रु मित्र उत्पन्न होते हैं।

बालि परम हित जासु प्रसादा। मिलेहु राम तुम्ह समन बिषादा॥
सपने जेहि सन होइ लराई। जागे समुझत मन सकुचाई॥१०॥

अर्थ . बालि तो परम हित है। जिसकी कृपा से हे रामजी! विषाद के शमन करनेवाले आपकी प्राप्ति हुई। जिससे अब यदि स्वप्न मे भी लडाई हो तो जागने पर समझने से मन सङ्कुचित होगा।

व्याख्या · बालि अब शत्रु नही रहा। वह तो परम हित हो गया। क्योकि उसके कोप ने प्रसाद का काम किया। हित की कृपा से कल्याण होता है वह तो परम हित है। उसके तो कोप से कल्याण हो रहा है। विषाद के शमन करनेवाले स्वयं श्री चरणो की प्राप्ति हो रही है। अब इससे बढ़कर और दूसरा क्या होगा। ऐसी कल्याणकारिणी भावना तो केवल मुनियो मे देखी जाती है कि उनके शाप से परिणाम मे परम हित होता है। यथा : मुनि श्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना। देखेउँ भरि लोचन हरिभव मोचन ईहइ लाभु संकर जाना।

जाग्रत् म तो अब उससे लडाई हो नही सकती। हाँ सपने की घटनाओ मे अपना कुछ वश नही चलता। सो यदि सपने मे कही लडाई हो भी जाय तो जागने पर जब उसे विचारेंगे तो बडा पश्चात्ताप होगा कि इतने बडे उपकारी से मैं सपने मे भी क्यो लड गया? गोकि सपने के अपराध का अपराध मे गिनती नही है। अत अब सरकार बालिवध का विचार छोड़ दें।

अब प्रभु कृपा करहुँ एहि भाँती । सब तजि भजनु करौ दिन राती ॥
सुनि विराग सजुत कपि बानी । बोले बिहँसि रामु धनु पानी ॥११॥

अर्थ अब प्रभु इस प्रकार से कृपा करें कि मैं सब कुछ छोडकर दिन रात भजन करूँ। कपि की विराग सयुक्त वाणी सुनकर के हाथ मे धनुष धारण करनेवाले रामजी हँसकर बोले।

व्याख्या अब प्रभु वालि के वध की कृपा न करें। इस भाँति कृपा करें कि वालि से मेरी लडाई सपने मे भी न हो और सुख सम्पत्ति परिवार बडाई सब छोड कर आपको रात दिन सेवकाई करूँ। यह बात आपकी कृपा से ही सम्भव है। कृपा से ही मन स्थिर हुआ। ज्ञान हुआ। अब भक्ति दीजिये। नीति शास्त्र भी कहता है शत विहाय भोक्तव्यं सहस्र स्नानमाचरेत्। लक्ष विहाय दातव्य सर्वं त्यक्त्वा हरि भजेत्। सौ काम छोडकर भोजन कर लेना चाहिए। हजार काम छोडकर स्नान कर लेना चाहिए। लाख काम छोडकर दे डालना चाहिए और सब कुछ छोडकर हरि भजन करना चाहिए।

सुग्रीवजी की चञ्चलता पर प्रभु हँस पडे कि पहले तो दु ख की कहानी सुना कर मुझसे प्रतिज्ञा करा ली और जब मैं प्रतिज्ञा कर चुका तो अब ज्ञान छाँटता है। स्वभावो दुरतिक्रम । चञ्चलता कपि का स्वभाव है वह नही छूटता। इसी पर हँसे। यह ज्ञान नही है प्रज्ञावाद है। ज्ञानी तो मरे हुए और जीते हुए का सोच नही करता। यह अशोच्य को सोच रहा है और बुद्धिमानो की सी बात बोल रहा है। यथा तमुवाच हृषीकेश प्रहसन्निव भारत। सेनायोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वच । अशोच्यानन्वशोचस्त्व प्रज्ञावादाश्च भाषसे। गतासूनगतासूश्च नानुशोचन्ति पण्डिता । यहाँ रामजी का धनुपाणि विशेषण देने का भाव यह है कि अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए धनुष उठा लिया है। उस समय सुग्रीवजी ऐसी विनती करने लगे।

जो कछु कहेउ सत्य सब सोई। सखा बचन मम मृषा न होई॥
नट मरकट इव सबहि नचावत। रामु खगेस बेद अस गावत ॥१२॥

अर्थ जो कुछ तुमने कहा वे सब बातें सच्ची हैं। परन्तु सखे! मेरी बातें मिथ्या नही हो सकती। भुमुण्डिजी कहते हैं हे खगेश! वेद ऐसा कहते हैं कि रामजी सभी को इस भाँति नचाते है जैसे बन्दर को नट नचावे।

व्याख्या प्रभु ने कहा कि तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है। पारमार्थिक सत्य के सामने व्यावहारिक की स्थिति कुछ नही है। परन्तु शरीर से व्यवहार का सर्वथा त्याग भी नही होता। व्यवहार म भी तो सत्य मिथ्या होता है। जो व्यवहार मे सत्य का निर्वाह नही कर सकता वह पारमार्थिक सत्य पर कितने दिन टिक सकता है। परमार्थ का बाध तो व्यवहार से नही होता है। अत व्यवहार म भी सत्य का परित्याग नही किया जा सकता। मैंने जो कह दिया है वह तो होकर ही रहेगा। वह मिथ्या नही हो सकता।

उपासना घाट के वक्ता भुसुण्डिजी कहते हैं कि जैसे नट की प्रेरणा से वन्दर नाचते हैं उसी भाँति रामजी की प्रेरणा से सब कार्य हो रहे हैं। अहंकार से विमूढात्मा अपने को कर्ता मानते हैं। वेद का प्रमाण देते हैं। उससे संवाद रूप में कहा गया है : किससे प्रेरित हुआ मन चलायमान होता है। किससे प्रेरित होकर प्राणी की हलचल आरम्भ होती है। किससे प्रेरित होकर वाणी अपना व्यवहार करती है और चक्षु श्रोत्र को कौन देवता प्रेरणा करता है। इस पर उत्तर रूप में कहा गया है : जो कान का भी कान है। मन का भी मन है। वाणी की भी वाणी है। वही प्राण का प्राण है। यथा : केनेपितं पतति प्रेपितं मन'। केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः। केनेपितां वाचमिमां वन्दति। चक्षुः श्रोत्रं कउ देवो युनक्ति। श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनोयद्वाचोह वाच सउ प्राणस्य प्राणः। उसी प्राण के प्राण जीवन के जीव की प्रेरणा से सब कुछ होता है। अतः कहते हैं रामजी तो नट हैं। मर्कट उनके प्रतिकूल कैसे जायगा। जीव सब उसी के मर्कट हैं। नट जैसा चाहता है वैसा नचाता है। प्रभु के कहते ही सुग्रीवजी मान गये। हँसकर बोलने से माया की प्रेरणा भी कही : माया हांस बाहु दिगपाला। उन्हे जैसा नाटक रचना है तदनुकूल चलायेंगे।

४७. वालि वध प्रसङ्ग

लै[1] सुग्रीव संग रघुनाथा। चले चाप सायक गहि हाथा ॥
तब रघुपति सुग्रीव पठावा। गर्जेसि जाइ निकट वल पावा ॥१३॥

अर्थ : सुग्रीव को साथ लेकर रघुनाथ धनुप वाण लेकर चले। तब रघुपति ने सुग्रीव को भेजा। वह सहायक : रामजी को निकट पाकर जाकर गर्जा।

व्याख्या : हाथ मे धनुप था ही। तरकश में से वह वाण भी निकाल लिया। जिसके द्वारा वालि वध होनेवाला था। रघुकुल के नाथ हैं। नीति के अनुसार आचरण करेंगे। सुग्रीव की चञ्चलता देखकर तुरन्त चल पड़े। कपि स्वभाव है। कब कौन सा पलटा खा जावे। क्या ठिकाना। मैं प्रतिज्ञावद्ध हो चुका हूँ। उसे पहिले पूरा करना चाहिए। अतः सुग्रीव को साथ लेकर किष्किन्धा की ओर चल पड़े। पुरद्वार के निकट पहुँचने पर सुग्रीव को भेजा कि जाकर गर्जन करें। सुन चुके हैं कि वालि रिपु वल को नही सह सकता। वह गर्जना सुनकर अवश्य पुर के बाहर आजायगा। क्योकि रामजी पुर में जा नही सकते। यथा : पुर न जाउँ दस चारि वरीसा। स्वयम् सुग्रीव के साथ नही गये। क्योकि सामना पड़ने पर उपयुक्त दण्ड नही दिया जा सकेगा। इसके अपराध की अपेक्षा वध दण्ड बहुत न्यून है। इसे व्याध की भाँति मारना ही उपयुक्त दण्ड है। इसी से इसकी शुद्धि होगी और दण्ड कर्ता को पाप स्पर्श न करेगा। सरकार के भेजे हुए सुग्रीव गये और गरजे। समझते थे कि बलवान् सहायक सन्निकट है।

---

१. यहाँ से ४७वाँ प्रसङ्ग : वालि प्रान कर भङ्ग १ प्रारम्भ हुआ।

सुनत बालि क्रोधातुर धावा। गहि कर चरन नारि समुझावा ॥
सुनु पति जिन्हहि मिला सुग्रीवा। ते द्वौ बंधु तेज बल सींवा ॥१४॥

अर्थ : सुनते ही वालि क्रोध से आतुर होकर दौड़ा। स्त्री ने चरण पकड़ लिया और समझाया। हे पति ! सुनो। जिन्हे सुग्रीव मिला है वे दोनों भाई तेज और बल की सीमा हैं।

व्याख्या : सुग्रीव पर सबका प्रेम था। उनके गरजने पर कोई बाहर न निकला। सब जानते थे कि यह गरजना वालि के प्रति है। भाई भाई का झगड़ा है। हम लोगों के बोलने लायक नही है। स्वर से वालि ने पहिचान लिया कि सुग्रीव गरजता है। अतः क्रोध से आतुर होकर दौड़ा कि इसका इतना साहस कि गर्जने आया है। हाथ से निकल न जाय। इसे मैं कब से खोज रहा हूँ हाथ नही आता। भले ही स्वयं आया है। कही इस बार भी हाथ से निकलने न पावे। इसलिए दौड़ा। स्त्री ने पैर पकड़ लिया। दूसरा उपाय रोकने का नहीं था। समझाया कि सुग्रीव अपने बल पर यहाँ आकर गरज नहीं सकता। दुन्दुभी के गरजने पर एवं मायावी के गरजने पर मैंने तुम्हे नही रोका था। इस बार रोकती हूँ।

पति : सम्बोधन का भाव यह कि आप मेरे स्वामी हो। रक्षा करनेवाले हो। मुझे तुम्हारा कुशल इष्ट है। अविचार से काम कर रहे हो। इसलिए रोकती हूँ। सुग्रीव की क्या शक्ति है कि यहाँ आकर गर्जे। जिनसे उसने मित्रता की है उनके बल पर गरजने आया है। वे दोनों भाई हैं और तेज बल की सीमा हैं। अङ्गद को यह पता लगा है वही मुझसे कहता था।

कोसलेस सुत लछिमन रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा ॥१५॥

दो. कह बाली सुनु भीरु प्रिय, समदरसी रघुनाथ।
जौ कदाचि मोहि मारहिं, तौ पुनि होउँ सनाथ ॥७॥

अर्थ : वे कोसलाधीश के बेटे हैं। उनका नाम राम लक्ष्मण है। वे काल को भी संग्राम में जीत सकते हैं। वालि ने कहा कि प्रिये ! तू भीरू है। रघुनाथ से क्या डर है। वे समदर्शी हैं। जो कदाचित् मार भी देंगे तो भी सनाथ हो जाऊँगा।

व्याख्या : सुग्रीव को मारने जाना उनसे संग्राम करना है। वे काल से भी अजेय हैं। यथा : जाके बल अतिकाल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई। उनसे युद्ध करनेवाले का कुशल नही हो सकता। कोसलेस सुत : कहकर आकाशवाणी की याद दिलाती है। यथा : कोसल पुरी प्रकट नर भूपा। तिनके गृह अवतरिही जाई। इस भाँत अवतार वतला रही है। काल पर विजय पाने का कारण कह रही है। लछिमन राम : कहकर उनका नाम कह रही है। उनसे लड़ना है, सुग्रीव से नही। सुग्रीव को उन्होने लड़ने के लिए आगे खड़ा किया है। तुमसे कोई वैर नही है निष्कारण कैसे लड़ें ?

वालि ने भी रावण की भाँति ही कहा : समय सुभाउ नारि कर साँचा। मंगल महु भय मन अति काँचा। सनाथ होने के समय रोकती है। मेरा भाग्य कहाँ कि वे मुझे मारे। वे समदर्शी हैं। उन्हे जैसा सुग्रीव वैसा ही मैं। यदि कदाचित् मार ही दें क्योकि भक्त के लिए विषम बिहार भी कर बैठते हैं। यथा : तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा। तब तो मै सनाथ हो जाऊँगा। समर में मरना और भगवान् के हाथ से। ऐसा अवसर क्या हाथ लगनेवाला है। अभी तो मैं अनाथ हूँ। सनाथ तो उनके हाथ से मर कर हूँगा। वे प्राण हरण करते हैं तो बदले में निजपद भी देते हैं।

अस कहि चला महा अभिमानी। तृन समान सुग्रीवहि जानी ॥
भिरे उभौ बाली अति तरजा। मुठिका मारि महा धुनि गरजा ॥१॥

अर्थ : ऐसा कह कर वह महा अभिमानी सुग्रीव को तृण समान जानकर चला। दोनो भिड़ गये। वालि अत्यन्त तड़पा और घूँसा मारकर बड़ी ध्वनि से गरजा।

वालि महा अभिमानी है। ईश्वर बुद्धि होने पर भी शरण में जाने की इच्छा नही करता। यदि मार देंगे तो मरने को तैयार है। झुकना उसे इष्ट नही है। भाई को निर्बल होने के कारण तिनका समझता है। भ्रातृ वध उसके लिए तृणच्छेदन के तुल्य है। समझता है कि सुग्रीव को तो मार ही डालूँगा। पीछे जो हो। समझने से क्रोध का वेग कुछ कम हुआ। पहिले तो क्रोधातुर होकर दौडा था। अब चला। पुर के बाहर आया। सुग्रीव को देखकर उस पर टूटा।

प्रभु को सन्निकट जानकर सुग्रीव भी भिड़ गये। एक दूसरे को देखकर तड़पे। परन्तु वालि बड़े वेग से तड़पा और सुग्रीव को एक घूँसा मारकर बड़ी ध्वनि से गर्जा। वालि इन्द्र का अंश है। अतः उसका प्रहार भी वज्र के समान होता है। वज्रप्रहार में चमक पहिले और शब्द पीछे होता है। उसी नियमानुसार बालि मुष्टि प्रहार के बाद गरजा। जानता था कि मेरा प्रहार सुग्रीव सह नही सकता।

तब सुग्रीव बिकल होई भागा। मुष्टि प्रहार वज्र सम लागा ॥
मै जो कहा रघुबीर कृपाला। बन्धु न होइ मोर यह काला ॥२॥

अर्थ : तब सुग्रीव विकल हो कर भागा। घूँसे की चोट वज्र की चोट जान पड़ी। हे रघुबीर कृपाल ! मैं ने पहिले ही कहा था। यह भाई नहीं है मेरा काल है।

व्याख्या : वही बात हुई। सुग्रीव वालि का एक घूँसा भी नही सह सके। घूँसे की चोट क्या हुई मानों वज्र गिरा। सुग्रीव विकल होकर भाग निकले कि कही दूसरा घूँसा न चला दे। नहीं तो प्राण ही जाता रहेगा। वालि बड़ा बलवान् था। परन्तु सुग्रीव की गति बड़ी तीव्र थी। सम्पूर्ण भुवन में वालि इनका पीछा

करता रहा। पर इन्हें पाया नहीं। ये रामजी के पास पहुँच गये। बोले कि आप रघुवीर हैं। वालि पुर के बाहर आपके सामने आगया और आपने प्रतिज्ञा की थी कि एक बाण से ही मार दूँगा। सो कुछ न हुआ। आप कृपाल है। इतना बड़ा वज्र मुझ पर गिरा। आपने कृपा न की। यदि कहिये कि लड़ाई तो कुछ हुई ही नही। यदि तुम दुर्बल पड़ते तो मैं मारता। इस पर सुग्रीव कहते हैं कि वह भाई तो है नही। मेरा काल है। काल से कौन लड़ाई है। किसी भाँति उसके प्रहार से जीता बच गया। सुग्रीव के हृदय से : वालि परम हित जासु प्रसादा वाला भाव बिल्कुल मिट गया। अब वह अपनी बात को वापस लेते है और पहिले कही हुई बात को स्मरण दिलाते है और उसका वध चाहते हैं। यहाँ शुद्धापन्हुति अलङ्कार है। भाई होना सच्ची बात है। उसे काल के आरोप से छिपाते हैं।

एक रूप तुम भ्राता दोऊ। तेहि भ्रम ते नहिं मारेउँ सोऊ॥
कर परसा सुग्रीव सरीरा। तनु भा कुलिस गई सब पीरा॥३॥

अर्थ : तुम दोनों भाई एक रूप के हो। इसी भ्रम से मैंने नही मारा। सुग्रीव के शरीर पर हाथ फेरा। उनका शरीर वज्र हो गया। सब पीड़ा जाती रही।

व्याख्या : पहिले से ही राय निश्चित हो चुकी है कि सुग्रीव जाकर गरजें। जब वह सुग्रीव को मारने के लिए पुर के बाहर निकले और सुग्रीव को मारने लगे तब रामजी बाण मारें। अब इसी बात का उलाहना सुग्रीवजी देते हैं। प्रभु ने उत्तर दिया कि मै नही जानता था कि तुम दोनों भाइयों मे इतना सादृश्य है। मुझे मालूम न पड़ा कि इन दोनों में कौन तुम हो ? कौन वालि है ? इसी भ्रम से मैंने प्रहार न किया कि कही तुम्हे चोट न बैठ जाय। प्रभु अपराध करते समय ही अपराधी को दण्ड देना चाहते हैं। अतः सुग्रीव को फिर युद्ध के लिए भेजते हैं और मुष्टि प्रहार से इस समय भी पीड़ित हैं। अतः प्रभु ने सुग्रीव के शरीर पर हाथ फेरा। उसका प्रभाव कहते हैं कि सुग्रीव के शरीर में बड़ा भारी परिवर्तन हुआ। प्रकृति के आपूर से शरीर वज्र हो गया। सुग्रीवजी वालि के प्रहार को सहन करने मे समर्थ हो गये। तृण को कुलिश और कुलिश को तृण करने का प्रभु को व्यसन है। यथा : अम्भोधिः स्थलतां स्थलं जलधिता धूलीलवः शैलता शैलोमृत्कणतां तृणं कुलिशतां वज्रं तृणक्षीणताम्। अग्निः शीतलतां हिमो दहनतामायाति यस्येच्छया लीलादुर्ललिताद्भुतव्यसनिने तस्मै नमो ब्रह्मणे।

मेली कंठ सुमन कै माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला॥
पुनि नाना बिध भई लराई। बिटप ओट देखहिं रघुराई॥४॥

अर्थ : गले मे फूलों की माला डाल दी और विशाल बल देकर फिर भेजा। तब तो नाना प्रकार से युद्ध हुआ। पेड़ की आड़ से रघुनाथ देख रहे थे।

व्याख्या : वालि के गले मे इन्द्र की दी हुई माला रहती थी। जिससे उसकी

रक्षा होती थी। प्रभु ने सुग्रीव के गले मे उसको रक्षा तथा पहिचान के लिए फूल की माला डाल दी। इस भांति सुग्रीव की प्राण रक्षा का उपाय तो हो गया। फिर भी विना तुल्य बल हुए युद्ध कैसे हो सकता है। इसलिए बलप्रद भगवान् ने विशाल बल देकर सुग्रीव को युद्ध के लिए भेजा।

अब सुग्रीव लडने योग्य हुए। वज्र के समान मुष्टि प्रहार सहने लगे और वज्र के समान मुष्टि प्रहार करने लगे फिर तो नाना प्रकार से युद्ध हुआ। पत्थर से, वृक्ष से, दांतो से, नखो से लडाई हुई उमा बिभीषनु रावनहि सनमुख चितव कि काउ। सो अवभिरत काल ज्यौं श्री रघुबीर प्रभाउ। वालि जिसे तृण समझते थे। आज वही वज्र समान होकर युद्ध कर रहा है। बालि को समझने के लिए यथेष्ट अवसर दिया गया। वालि को समझना चाहता था कि जो सुग्रीव मेरा एक घूँसा नही सह सका और भाग खडा हुआ। वही वहाँ से बल लेकर लौटा है। जो इस प्रकार से मुझसे युद्ध करने मे समर्थ हो रहा है। पर उसने इस घटना से लाभ न उठाया। बडा भारी समरधीर था। एक महीने तक बराबर राक्षसो से गुफा मे लडता रहा। अत लडता चला गया। प्रभु विटप के ओट से इस सग्राम का दृश्य देख रहे हैं। दो बार विटप के ओट से देखने का प्रसङ्ग मानस मे आया है। एक बार तो तरु ओट से सुतीक्ष्ण मुनि की प्रेमोन्मत्त चेष्टा देखा। तथा . अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखहि तरु ओट लुकाई। और इस बार वालि का रण कौशल देख रहे हैं।

दो बहु छलबल सुग्रीव करि, हिय हारा भय मानि।
मारा बालि राम तब, हृदय माँझ सर तानि ॥८॥

अर्थ बहुत छल बल करके सुग्रीव ने भयभीत होकर साहस छोड दिया। तब रामजी ने बाण तानकर वालि के हृदय मे मारा।

व्याख्या सुग्रीव लडे तो परन्तु वालि के महा बल और रणधीर होने की जो धाक सुग्रीव पर जमी थी वह न गयी। युद्ध म बल से अधिक छल से ही काम लेते रहे। इसी से कवि ने बलछल न कहकर छलबल कहा। अन्त मे साहस छोड दिया। गिर गये। वालि ने तुरन्त उनके सिर को दक्षिणवाम भुजमूल प्रविष्ट ग्रीवसलग्न × गुणेचिह्नाकृतियुक्त अपने पैरो से बाँध लिया। इस दाँव को वालिबन्ध दाँव कहते हैं। तब से आज तक गुरु शिष्य परम्परा से इस दाँव को मल्ल लोग जानते हैं। इस दाँव से प्रतिभट को बाँधना निषिद्ध है। अखाडे मे यह दाँव नही होने पाता। इस दाँव से बँध जाने पर लडाई समाप्त हो जाती है। फिर तो प्रतिभट को कोई सूई से छेद छेद कर मार सकता है और उसका किया कुछ भी नही हो सकता। सुग्रीवजी जब इस प्रकार बँध गये तब रामजी ने वालि के हृदय मे तान कर बाण मारा। क्योकि एक ही बाण से मारने की प्रतिज्ञा थी। हृदय बडा भारी मर्म है। इस पर चोट आने से कोई बच नही सकता। वालि का हृदय कलुपित था।

सुग्रीव का वध करके उसकी स्त्री को अकण्टक होकर भोगना चाहता था। अतः उसके हृदय को शस्त्रपूत किया।

परा विकल महि सर के लागें। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगें॥
स्यामगात सिर जटा बनायें। अरुन नयन सरचाप चढ़ायें॥१॥

अर्थ : बाण के लगते ही पृथ्वी पर विकल होकर गिरा। फिर उठकर बैठा तो प्रभु को सामने देखा। श्याम शरीर जटा रक्खे हुए लाल नेत्र और बाण तथा चढाया हुआ धनुष था।

व्याख्या : बाण के लगते ही विकल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। परन्तु बड़ा धीर है। रामजी के बाण से हृदय छिद जाने पर भी धैर्य धारण करके उठ बैठा। इतने में तो रामजी सामने आगये। गोली लगने पर शेर की भयङ्करता बहुत बढ जाती है। बाण लगने पर कही सुग्रीव की कथा समाप्त न कर दे। इस शङ्का से प्रभु बाण के साथ ही वहाँ पहुँच गये। वालि देखता है कि प्रभु सामने खडे हैं। प्रभु के बाण के आघात से हृदय शुद्ध हो गया। चोट भूलकर शोभा देखने लगा। स्याम सरीर सुभाय सुहावन हैं। सिर पर जटा बँधी है। कही युद्ध में आँख के सामने जटा न आजाय। नेत्र लाल हो रहे हैं। सुग्रीव के चोट खाने पर क्रोध है। हाथों मे बाण है और चढ़ाया हुआ धनुष है। इस शङ्का से कि राजा का वध सुनकर वानरी सेना धावा न बोल दे। रौद्र रस की झाँकी है।

पुनि पुनि चितै चरन चित दीन्हा। सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा॥
हृदय प्रीति मुख बचन कठोरा। बोला चितै राम की ओरा॥२॥

अर्थ : बार बार देखकर चरणो मे चित्त लगाया। प्रभु को पहिचाना और अपने जन्म को सफल माना। हृदय मे प्रीति है। पर रामजी की ओर देखकर कठोर वचन बोला।

व्याख्या : अपार शोभा को वालि बार बार देख रहा है। अन्त मे चरणों मे चित्त लगाया। क्योंकि वे ही भक्तो के परम ध्येय हैं। जौ कदाचि मोहि मारही तौ पुनि होउँ सनाथ। वही बात सामने आयी। सनाथ हो जाने से अपने जन्म को सफल माना। हनुमान्‌जी ने उत्तर पाकर प्रभु को चीन्हा। सुग्रीवजी ने परीक्षा लेकर चीन्हा। बालि ने देखकर चीन्हा। दर्शन हो गया। शस्त्रपूत भी हो ही गया। अब दो दो बातें भी हो जायें। इसलिए हृदय मे प्रीति रहते हुए भी कठोर वचन बोला। उसके साथ कठोर व्यवहार हुआ है। इसलिए कठोर वचन बोला। अथवा कठोर वचन से उत्तर पाने के लिए कठोर वचन बोला। प्रभु के कठोर वचन कहने से वाग्जनित सब पाप नष्ट हो जायँगे। बाण लगने से शारीरिक पाप नष्ट हुए। अरुण नयन करके देखने से मानसिक पाप नष्ट हो गये। यथा : निर्वान दायक क्रोध जाकर। अब कठोर वचन भी सुनकर सर्वथा निष्पाप हो जांय। अथवा मानी है इसलिए कठोर वचन बोला। सुग्रीव की ओर न देखा। रामजी की ओर देखकर बोला अर्थात् आप उत्तर दें।

धरम[1] हेतु अवतरेउ गोसाँई। मारेहु मोहि ब्याध की नाँई ॥
मैं बैरी सुग्रीव पियारा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा ॥३॥

अर्थ : हे गोस्वामिन् हे हृषीकेश! धर्म के लिए तो आपने अवतार लिया और मुझे व्याध की भाँति मारा। मैं वैरी हूँ सुग्रीव प्यारा है? मेरा कौन दोष है जो जो प्रभु ने मुझे मारा?

व्याख्या : गोस्वामी अर्थात् हृषीकेश सम्बोधन करके द्योतित करता है कि मैं पहिचानता हूँ कि आप ईश्वर हैं। अतः आप की प्रीति जीवमात्र पर है। धर्मग्लान्य-धर्माभ्युत्थाननिवृत्तिपूर्वकधर्मसंस्थापनार्थं आप अवतीर्ण हुए हैं। निरपराध किसी को वध करना अधर्म है। तिस पर व्याध की भाँति ओचट प्रहार करना वध के प्रकार में भी अत्यन्त घोरतर प्रकार है। जो धर्म के संस्थापन के लिए अवतीर्ण हो वही यदि ऐसा अधर्म करे तो क्या वह न्यायकारी कहा जा सकता है? पुनः ईश्वर के लिए तो सब समान है। यथा : सब मम प्रिय सब मम उपजाये। तब मैं बैरी हो गया। सुग्रीव प्यारा कैसे हो गया। अर्थात् यह भी आप नही कह सकते कि सुग्रीव को तुम दुःख देते थे। इसलिए तुम्हे मारा, क्योकि सुग्रीव मेरा प्यारा है। तब मालिक होकर आप ने किस दोष से मुझे मारा?

अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ये चारी ॥
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकै जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई ॥४॥

अर्थ : रे शठ! सुन। छोटे भाई की स्त्री, बहन, पतोहू और बेटी ये चारों समान है। इन्हे जो बुरी दृष्टि से देखता है उसके वध मे अधर्म नही है।

व्याख्या : भगवान् ने वालि की अभिलाषा को पूर्ण किया, कठोर वचन बोले। वालि को शठ कहते हैं। भाव यह कि यहाँ अधर्म करके अब तू धर्म की बातें करता है? अच्छा धर्मशास्त्र सुन ले। धर्मशास्त्र ने अनुजवधू, भगिनी, सुतनारी और कन्या को समान बतलाया। इन पर कुदृष्टि कैसी? कुदृष्टि रखनेवाले का दण्ड ही वध है। इसमे अधर्म कुछ नही। कुदृष्टि की बात दूर गयी। तू तो अनुजवधू मे रत है और इसीलिए अनुज का वध चाहता है। ऐसे पापी को व्याध की भाँति मारना ही दण्ड है। अतः मैंने न्याय किया।

मूढ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावनु करसि न काना ॥
मम भुज बल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी ॥५॥

अर्थ : रे मूढ! तुम्हे बड़ा भारी अभिमान है। तुमने स्त्री की सीख भी नही सुनी। उसे मेरे भुजबल का आश्रित जानकर भी तुमने मार डालना चाहा।

व्याख्या : धर्मशास्त्र विषयक प्रश्न किया था। उसका उत्तर हो चुका। अब

---

१. यह असंगति अलङ्कार है।

ा रामजी को ईश्वर मानकर जो प्रश्न किया था उसका उत्तर देते हैं। तुझको ानना चाहिए कि मैं श्रोत्र का भी श्रोत्र हूँ। जब स्त्री सिखावन तुम्हे देती थी मैं हाँ से सुनता था। तुमने उस सिखावन पर ध्यान नही दिया। स्त्री ने तुमसे स्पष्ट ह दिया था कि वह राम लक्ष्मण के बल पर लडने को ललकार कर रहा है। तब ो तुम्हे समझना चाहता था कि अब सुग्रीव का अपमान करना ईश्वर के भुजबल ा अपमान करना है। पर तुमने उसका कुछ ख्याल नही किया। तुमने उसे मार ही ालना चाहा। तुमने अपनी आँखो देखा कि सुग्रीव भागकर वृक्ष की ओट मे गया ौर वहाँ से माला धारण करके युद्ध के लिए आया है। तब तुमने क्या नही जाना क मैं वृक्ष के ओट मे हूँ। फिर भी तुम शरण मे नही आये। उसे मार डालना ी चाहा। तुमने मुझसे अभिमान किया। तुम अधम अभिमानी हो। तुमने मेरे ाश्रित को मेरी आँखो के सामने मार डालना चाहा। इतनी बडी धृष्टता ?

दो. सुनहु राम स्वामी सन, चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मै पापी, अंतकाल गति तोरि ॥९॥

अर्थ : हे राम सुनो। स्वामी के साथ मेरी चतुराई नही चली। प्रभो ! क्या अब भी मैं पापी हूँ। जब कि अन्त समय आपकी ही गति प्राप्त हुई।

व्याख्या : वालि जैसे बलवान् थे वैसे चतुर भी थे। अपनी समझ से ऐसा प्रश्न किया था जिसका उत्तर न हो। परन्तु ऐसा पर्याप्त उत्तर मिला, जिसका प्रत्युत्तर नही है। अनुजवधू रत के लिए व्याध की नाईं वध ही यथार्थ दण्ड है। वध दण्ड तो कुदृष्टि से देखनेवाले के लिए है। यह हुआ भागवतापराध और भगवत् अपराध यह हुआ कि भगवान् के आश्रित को उनके सामने वध की चेष्टा करके भगवत् शक्ति का अनादर किया। यह उत्तर ऐसा सटीक था कि वालि को मान लेना पडा। अत: कहता है कि मेरी चतुराई स्वामी से नही चली। क्योंकि वे सर्वत्र रमण करनेवाले हैं। कोई गुप्त भेद उनसे छिपा नही है। स्त्री ने मुझे समझाया। वह भी इन्हे मालूम हो गया। ऐसे से चतुराई क्या चलेगी ? परन्तु एक प्रश्न और है। अभी प्रभु का क्रोध मेरे पर से गया नही है। आँखें लाल हैं। सो क्या अब भी मुझमे पाप शेष है। अन्त समय में तो अब आपकी ही गति है। क्या प्रभु के अस्त्र से भी मैं पवित्र न हो सका ? जब कि प्रभु प्रतिज्ञा है : सनमुख होइ जीव मोहि जबही। जन्म कोटि अघ नासहि तबही।

सुनत राम अति कोमल बानी। बालि सीस परसेउ निज पानी ॥
अचल करौ तनु राखहु प्राना। बालि कहा सुनु कृपा निधाना ॥१॥

अर्थ : अति कोमल वाणी सुनते ही रामजी ने वालि के सिर पर हाथ फेरा। और कहा कि : तुम प्राण रक्खो। मैं तुम्हारे शरीर को अचल करता हूँ। वालि ने कहा कि कृपानिधान ! सुनो।

व्याख्या : हृदय मे तो प्रीति थी। परन्तु चतुराई दिखलाता हुआ पहिले

कठोर वचन कहे। उत्तर भी कठोर मिला। कठोरता में भी पार नहीं पा सका। यह तो। कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि। परम बुद्धिमान् वालि ने तुरन्त अति कोमल वाणी का प्रयोग किया। तब उत्तर न मिलकर रक्षा का हाथ सिर पर फिरा। यथा : कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ। दीन दयाल सकल दुख हरेऊ। सीतल सुखद छाँह जेहि कर की मेटति पाप ताप माया। निसि बासर तेहि कर सरोज की चाहत तुलसिदास छाया। प्रभु ने कहा कि तुमको मारे जाने का कष्ट है तो मैं तुम्हारे विदलित शरीर को अचल करता हूँ परन्तु तुम जीना चाहो। भाव यह कि तुमने सदा मेरे हाथ से वध चाहा। अब वध करने पर उलाहना देते हो। तो मैं तुम्हारे शरीर को अचल किये देता हूँ। पर तुम भी तो जीना चाहो। तुम्हे तो अब भी भीतर से मेरे हाथ से शरीर छोड़ने की अभिलाषा है। वालि ने कहा कि सरकार कृपानिधान हैं। अपनी प्रतिज्ञा मेरे लिए छोड़ना चाहते हैं। पर मेरी बात सुनिये।

जन्म जन्म मुनि जतन कराँही। अंत राम कहि आवत नाँही ॥
जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहि सम गति अविनासी ॥२॥
मम लोचन गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनहि बनावा ॥३॥

अर्थ जन्म जन्म मुनि चेष्टा करते है। पर अन्त में राम कहते नहीं बनता। जिसके नाम के बल से शिवजी काशी में सबको समान अविनाशी गति देते हैं वही मेरे नेत्रो का विषय हो रहा है। प्रभो! क्या फिर ऐसा संयोग बनाने से बन सकेगा ?

व्याख्या : भावनानुसार ही गति होती है। अन्तकाल मे जिस भाव को स्मरण करता हुआ जीव शरीर त्याग करता है उसी को प्राप्त होता है। क्योंकि सदा वह वैसी भावना करता था। यथा 'यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्। तन्तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावित'। तदनुसार जन्म जन्म से मुनि यत्न करते हैं कि अन्त समय राम नाम स्मरण कर सकें। परन्तु अन्त मे ईश्वर का स्मरण इतना कठिन है कि राम नाम मुख से नहीं निकलता। इसीलिए काशी की महा महिमा है कि काशी मे मरण के समय मुमुक्षु के दक्षिण कर्ण में भगवान् शङ्कर राम नाम का उपदेश देते हैं। उस उपदेश के प्रभाव से प्राणी को ज्ञान हो जाता है और उसको अविनाशी गति अर्थात् मुक्ति प्राप्त होती है। यह मुक्ति का सदावर्त काशी मे राम नाम के बल से ही चलता है। वही राम आज मरने के समय मेरी आँखो के सामने है। यदि मैं इस समय प्राण न त्याग करूँ तो फिर क्या मरने के समय आपका आँखो के सामने ला सकना किसी के वश की बात है ?

छं. [1]सो नयन गोचर जासु गुन नित नेति कहि श्रुति गावहीं।
जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं ॥१॥

---

१. यह हरिगीतिका छन्द है।

मोहि जानि अति अभिमान बस प्रभु कहेउ राखु सरीरही।
अस कवन सठ हठि काटि सुर तरु बारि करहि बबूरही ॥२॥
अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर माँगऊ।
जेहि जोनि जनमउँ कर्म बस तह राम पद अनुरागऊँ ॥३॥
यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिए।
गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अगद कीजिए ॥४॥

अर्थ · वह आँखो का विषय हो रहा है जिसके गुणो को सदा नेति नेति[1] कह कर वेद गान करता है। मन और प्राण को जीतकर तथा इन्द्रियो को नीरस करके जिसे मुनि कभी ध्यान मे पा जाते हैं। मुझे अति अभिमान के वश जानकर प्रभु शरीर रखने के लिए कह रहे हैं। पर ऐसा शठ कौन होगा जो कल्पवृक्ष को काटकर हठपूर्वक बबूर के लिए उसकी बाड लगावे। हे नाथ! अब करुणा करके देखिये और जो माँगता हूँ वह वर दीजिये कि जिस योनि मे मैं कर्मवश जन्म ग्रहण करूँ उसमे रामपद मे अनुराग हो। यह मेरा बेटा विनय और बल मे मेरे समान है। हे कल्याणप्रद प्रभो! इसे स्वीकार कीजिये और हे सुरनरनाथ! इसकी बाँह पकड कर अपना दास बनाइये।

व्याख्या . वेदने ब्रह्मको मूर्तामूर्त से परे बतलाया है। छिति जल पावक मूर्त द्रव्य हैं और गगन समीर अमूर्त द्रव्य है। ब्रह्मनित्य इन दोनो से परे हैं। अमूर्त द्रव्य ही नयनगोचर नही हो सकता। तब मूर्तामूर्त से परे के नयनगोचर होने की कथा ही क्या है। आज मेरा ऐसा भाग्योदय हुआ है कि वह ब्रह्म मेरे नयनगोचर हो रहा है। आज मुझ पर ईश अनुकूल हैं। यथा · नयन विषय मो कहँ भयउ सो समस्त सुख मूल। सबइ सुलभ जगजीव कहँ भये ईस अनुकूल। वेद नेति नेति कह-कर यही बतलाता है कि न वह स्थूल है और न सूक्ष्म है। हठयोग मे प्राण को जय करके मन का जय किया जाता है और राजयोग में मन का जय करके प्राण पर विजय पाते हैं। अर्थात् दोनो को मन और प्राण पर जय प्राप्त करना होता है। मन बडा चञ्चल और दुर्निग्रह है और प्राण को वश करना सिंह को वश करना है। सो इन दोनो को वश करके इन्द्रियो से हटाकर अन्तर्मुख होकर स्थितप्रज्ञ मुनि ध्यान करते है। फिर भी जो ध्यान म नही आते। कभी एक झलक आजाती है। यथा · मुनि जेहि ध्यान न पावहि नेति नेति कह बेद। उनका मुझे प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा है। फिर भी प्रभु जो मुझसे कह रहे हैं · अचल करौं तनु राखहु प्राना। सो मुझे अति अभिमानवश जानकर मुझमे देहाभिमान अत्यन्त प्ररूढ जानकर कह रहे हैं। मैं जैसा प्रभु ने कहा अभिमानी भी हूँ और शठ भी हूँ। पर ऐसा नही हूँ कि

---

१ यहाँ तुल्ययोगिता (द्वितीय) अलङ्कार है।

इतने बडे हानि लाभ को न समझ सकूँ। संसार मे यही नियम है कि बबूल को काटकर आम की रक्षा के लिए उसकी बाड़ बनाते हैं। क्योकि आम काम की वस्तु है और बबूल किसी काम का नही होता। वह बाड लगाने के ही काम में आता है। जिससे आम के छोटे पौधो को पशु चर न जावें। यथा : आप नही कछु काम के डार पात फल फूल। औरन को रोकत फिरें रहिमन पेंड़ बबूल। सो आम क्या मुझे तो अन्त के समय आपका दर्शन हो रहा है यह सुयोग कल्पवृक्ष है। इससे यथार्थ लाभ न उठाकर इसका उपयोग में शरीर की रक्षा के लिए नही कर सकता। शरीर बबूल है किसी काम का नही। इसे तो एक दिन जाना ही है। यथा : रहिहिं न *अन्तहुँ अधम सरीरू। अतः* ऐसे सुयोग को हाथ से शरीर रक्षा के लिए जाने देना कल्पवृक्ष को काटकर बबूल की बाड़ लगाना है।

आप नाथ हैं। आप जो शरीर रखने को कह रहे हैं। इससे मालूम होता है कि अभी मुझ पर पूरी करुणा नही हुई। इसलिए प्रार्थना करता हूँ कि करुणा की दृष्टि से मुझे देखिये। मैं इस शरीर को बचाने के लिए वर नही माँगूँगा। इस समय इसका परित्याग मुझे परम इष्ट है। परन्तु नाथ वर देने को प्रस्तुत हैं। इसलिए दूसरा वर जो अभीष्ट है उसे माँगता हूँ। वह यह है कि जो जो कर्म मैने किये हैं उनके फलो से मै बचना नही चाहता। मुझे मुक्ति भी नही चाहिए। मुझे कर्मानुसार शरीर मिले। पर जो शरीर मिले उसमे मुझे आपके चरणो मे अनुराग सदा बना रहे। भाव यह कि प्रभु तो अनेक प्रकार के शरीर धारण करते हैं। यथा : मीन कमठ सूकर नर हरी। वामन परसुराम वपुधरी। ईश्वर स्वतन्त्र है। वह माया द्वारा अपने इच्छानुकूल शरीर धारण करता है। जीव परतन्त्र है वह अपने कर्मानुसार अविद्या द्वारा शरीर धारण करता है। मेरा दूसरा जन्म कर्मानुसार किसी योनि मे होगा। सम्भव है कि उस समय प्रभु भी अपने इच्छानुकूल कोई दूसरा शरीर धारण करें। पर मेरा अनुराग इस राममूर्ति मे बना रहे। मेरी अव्यभिचरित भक्ति इस राममूर्ति मे हो। अपना कल्याण कर लेने के बाद अङ्गद की ओर देखा।

उसे रोते हुए देखकर उसे सुरनरनाथ प्रभु को समर्पण कर रहा है। भाव यह कि सुग्रीव सेवा नही कर सकेगा। इसमे बल और विनय यथेष्ट नही है। यह मेरा बेटा बल और विनय मे मेरे तुल्य है। मै तो चला सेवा न कर सका। पर : आत्मा वै पुत्रनामासि। यह मेरी आत्मा है। यह सेवा करेगा। सुग्रीव से इसे भय है। इसकी बाँह पकडकर अपना दास बनाइये। यह कहकर अङ्गद को रामजी के गोद मे डाल दिया। यथा : मरती बेर नाथ मोहि बाली। गयउ तुम्हारेहिं कोछे घाली।

दो. रामचरन दृढ प्रीति करि, बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कंठ ते, गिरत न जानै नाग ॥१०॥

अर्थ : रामजी के चरणो मे दृढ प्रीति करके बालिने इस भाँति शरीर का

त्याग किया जैसे मतवाले हाथी को अपने गले की फूल की माला के गिरने का पता न चले।

व्याख्या : पहिले अपना कल्याण किया। तब पुत्र का कल्याण किया। फिर प्राणत्याग के समय पुत्र मे मनोवृत्ति के जाने को अशुभ समझकर मन को फिर मोड़कर राम चरणो मे लगा दिया और प्रेम उधर ही दृढ कर लिया। राम मे प्रेम के दृढ कर लेने से मरने मे कुछ भी आयास न हुआ। रामचरण के दृढ प्रेमी, स्नेहसुरा से छके हुए, मतवाले हाथी के समान हो जाते हैं। उनका देहाभिमान इतना मिट जाता है कि शरीर उनके लिए फूल की माला हो जाती है। जिस भाँति मतवाले हाथी को पता नही चलता कि उसके गले की फूल की माला कब और कहाँ गिरी। उसी भाँति प्रेमसुरा से छके हुए वालिको पता ही न चला कि उसका शरीर कब छूटा।

राम बालि निज धाम पठावा। नगर लोग सब व्याकुल धावा॥
नाना बिध बिलाप कर तारा। छुटे केस न देह सँभारा॥१॥

अर्थ : रामजी ने वालि को अपने धाम भेज दिया। नगर के लोग व्याकुल होकर दौडे। नाना भाँति से तारा विलाप करने लगी। उसके बाल छूट गये। देह की सँभाल नही रह गयी।

व्याख्या : कल्पवृक्ष ने चाहा हुआ फल दिया। रामजोने वालि को अपने धाम भेज दिया। वालि ने माँगा था : जेहि जोनि जनमौ कर्म वस तहँ रामपद अनुरागऊँ। अतः सायुज्य मुक्ति नही हुई। पर कर्म बन्धन से मुक्त करके अपना धाम दिया, जहाँ जाकर कोई लौटता नही। यथा : यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।

१ सुनत बालि क्रोधातुर धावा : यह वालि की तेजस्विता है।

२ मुठिका मारि महा धुनि गर्जा : यह वालि का बल है।

३. बहु छलबल सुग्रीव करि हिय हारा भयमानि : यह वालि का रण पाण्डित्य है।

४. पुनि उठि बैठ देख प्रभु आगे : यह वालि का धैर्य है।

५. पुनि पुनि चितय चरन चित दीन्हा : यह वालि की भक्ति है।

६. सफल जनम माना प्रभु चीन्हा : यह वालि का ज्ञान है।

७. हृदय प्रीति मुख बचन कठोरा। बोला चितय राम की ओरा : यह वालि का प्रागल्भ्य है।

८. अस कवन सठ हठि काटि सुरतरु बारि करई बबूरही : यह वालि का विवेक है।

९ गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिये : यह वालि की नीतिज्ञता है।

१०. राम चरन दृढ प्रीति करि बालि कीन्ह तन त्याग : यह वालि की सावधानता है।

११.१२. राम वालि निज धाम पठावा : यह वालि का भाग्य है। और नगर लोग सब व्याकुल धावा : यह वालि की प्रजापालकता है।

वालि के स्त्री का नाम तारा है। वध का समाचार पाकर वह चली आयी। नाना प्रकार से विलाप करने लगी। रोना, छाती पीटना, सिर पीटना, शव पर गिर पड़ना, उसको जीवित की भाँति सम्बोधन करना। रामजी से अपने वध के लिए प्रार्थना आदि नाना विध विलाप के अन्तर्गत है। नगर के लोग व्याकुल हैं। तारा अत्यन्त व्याकुल है। विलाप मे ज्ञान धैर्य और लज्जा नही रह जाती। नाना विधि विलाप से ज्ञान का अभाव, केश के छूटने से धैर्य का अभाव और देह के सँभाल न रहने से लज्जा का अभाव दिखलाया।

तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ज्ञान हरि लीन्ही माया॥
छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित यह अधम सरीरा॥२॥

अर्थ : तारा को विकल देखकर रघुनाथ जीने उसे ज्ञान दिया और माया हर लिया। पृथ्वी जल तेज वायु और आकाश इन पाँचो से बना हुआ यह शरीर अत्यन्त अधम है।

व्याख्या : रघुनाथजी की कृपा अघानेवाली कृपा नही है। वालि पर कृपा किया। उसके पुत्र अङ्गद पर कृपा किया। अब विकल देखकर उसकी स्त्री तारा पर करते है। विषाद योग होने पर ही ज्ञानोपदेश की परिपाटी देखने मे आती है। संसार का बीज शोक मोह है। यह ज्ञान से ही नष्ट होता है। अत· सरकार ने तारा को ज्ञान दिया और माया हरण कर लिया। यहाँ माया का अर्थ अविद्या है और ज्ञान का अर्थ विद्या है। अतस्मिन् तद्बुद्धि· अर्थात् जो वस्तु जैसी नही है उसे वैसी जानना अविद्या है और उसके ठीक स्वरूप को जानना : वस्तुस्वरूपावधारण विद्या है। यथा : चेतन और जड़ विरुद्ध स्वभाववाली दो पृथक् वस्तुएँ हैं। चेतन का धर्म दूसरा और जड का धर्म दूसरा है। अत चेतन मे जड का अवभास होना अथवा जड़ मे चेतन का अवभास होना अविद्या है। विवेक पूर्वक दोनो के स्वरूप का ठीक ठीक ज्ञान होना विद्या है। सो सरकार की कृपा से तारा की अविद्या जाती रही और विद्या की प्राप्ति हुई। जिस उपदेश द्वारा तारा का कल्याण हुआ उसे कहते हैं—

पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और आकाश से ही सृष्टि हुई है। अत· शब्द स्पर्श, रूप, रस और गन्ध की अनुभूति ही ससार की अनुभूति है। शरीर भी इन्ही से बना है। इसमे जो कठिन है वह पृथ्वी है। जो द्रव है वह जल है। जो उष्ण है वह तेज है। जो सञ्चार करता है वह वायु है और जो पोला है वह आकाश है। ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ भी इन्ही से उत्पन्न हैं। अस्थि, चर्म, नाडी, रोम, माँस,

पृथ्वी के अंश हैं। मूत्र, श्लेष्म, जल, शुक्र और स्वेद जल के अंश हैं। क्षुधा, तृषा, आलस्य, मोह और मैथुन अग्नि के अश हैं। प्रचारण, विलेखन, उन्मेष, निमेषादि वायु के अश हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह और भय आकाश के अश हैं और शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि भी आकाशादि भूतो के गुण हैं। अत यह शरीर कृतक : बना हुआ होने से अनित्य है। मलायतन होने से अशुचि है। भोगायतन होने से दुःख रूप है। महाभूतो का समवाय होने से जड है। अत. इसे अति अधम कहा।

प्रगट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥
उपजा ज्ञान चरन तब लागी। लीन्हेसि परम भगति बर मागी॥३॥

अर्थ · यह शरीर प्रगट है। तुम्हारे आगे सोया हुआ है और जीव तो नित्य है। तुम किसके लिए रोयी। ज्ञान उपजा तब चरणो म सिर नवाया और परम भक्ति का वर माँग लिया।

व्याख्या . शरीर ही प्रकट है। जीव तो सदा अव्यक्त है। यथा : अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्य्योऽयमुच्यते। सो वह अति अधम शरीर तुम्हारे सामने सोया : निश्चेष्ट पडा है। यही इसकी प्रकृति है। जीव तो इसके विरुद्ध स्वभाववाला है। वह तो नित्य शुचि आनन्दमय तथा चेतन है। अत दोनो मे से किसी के लिए भी शोक करना नही बनता : सरकार जब बोलने लगे तो तारा रोना बन्द करके सावधान होकर सुनने लगी। अत. रोवा भूतकाल की क्रिया का प्रयोग किया।

यह सरकार के वचन का सामर्थ्य है कि अति सक्षिप्त उपदेश से ही अज्ञान का नाश हो गया। अज्ञान का नाश ही ज्ञान का उपजना है। तब चरणो पर गिरना कहकर शिष्य की कृतकृत्यता दिखलाया। ज्ञान होने पर भी बहुत जन्मो के बाद कही ज्ञानी भगवत् शरण मे जाते हैं। यथा : बहूना जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मा प्रपद्यते। अत परम भक्ति का वर उसने सरकार से माँग लिया। क्योकि : सबकर फल हरि भगति भवानी।

उमा दारु योषित की नाईं। सबहि नचावत राम गोसाईं॥
तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा। मृतक कर्म विधिवत सब कीन्हा॥४॥

अर्थ हे उमा! कठपुतली की भाँति सब को राम गोसाईं नचाते हैं। तब रामजी ने सुग्रीव को आज्ञा दी। उन्होने विधिवत् सब मृतक कर्म किया।

व्याख्या · क्षण भर पहिले तारा शोक मोह से छाती कूटती थी और क्षण भर मे भक्ति वरदान माँगकर कृतकृत्य हो गयी। इस पर महादेवजी उमा से कहते हैं कि जिस भाँति सूत्रधार जैसे चाहता है अपनी कठपुतलियो को नचाता है उसी भाँति राम गोसाईं सबको नचाते हैं। शिवजी ज्ञान घाट के वक्ता हैं। दो ही विभाग

पदार्थों[1] का मानते हैं एक जड़ और दूसरा चेतन। उनके मत से चेतन एक है जिसे ब्रह्म कहते हैं। उससे अतिरिक्त सब जड़ हैं। यथा : मिलल भल एक भरोसवा। कठपुतली अस हम सब नाची करम जाल में फँस के। हम सब कहँ तो प्रगट नचावहुँ आप बैठि भलगोसवा। हम सबके तो जड़ में गिनती चेतन तुमहीं एक। तब कैसे हमहन के प्रभु जी लागि सकै गुन दोसवा : देवस्वामी। अतः उन्होंने जीवों की जड़ कठपुतली से उपमा दी। उपासक आत्मा परमात्मा का भेद मानते हैं। इसलिए उपासना घाट केवल भुसुण्डीजी ने : नट मर्कट इव सबहि नचावत। राम खगेस वेद अस गावत। कहकर जीवों की उपमा चेतन मर्कट से दी। यथा : ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया। जड़चेतन के पृथक्त्व के ज्ञान होने पर तारा ने भगवदाश्रय ग्रहण किया।

तारा के शान्त हो जाने पर सुग्रीव को आज्ञा दिया कि विधिवत् मृतककर्म सब करो। सुग्रीव को आज्ञा देने का भाव ही यह है कि अब तुम राजा हो। मरणान्तानि वैराणि। मरने के साथ ही वैर समाप्त हो जाता है। अब वह बन्धु है। विधि के साथ उसके दाहादि संस्कार सम्पन्न करो। सुग्रीव ने वैसा ही किया।

४८. कपितिलक प्रसंग

राम[2] कहा अनुजहि समुझाई। राजु देहु सुग्रीवहि जाई॥
रघुपति चरन नाइ करि माथा। चले सकल प्रेरित रघुनाथा॥५॥

अर्थ : रामजी ने छोटे भाई को समझाकर कहा कि जाकर सुग्रीव को राज दो। रघुपति के चरणों मे माथा झुकाकर सब रघुनाथजी से प्रेरित होकर चले।

व्याख्या : युद्ध में मरे हुए के लिए सद्यः शौच है। इसलिए दाह संस्कार के बाद ही राज्य देने की आज्ञा दी। रामजी ने लक्ष्मणजी को समझाकर कहा।

सौंपि गयउ निज सुत हमहिं मरन समय कपिराज।
कीजिय नृप सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुवराज॥

राज काज सब कछु करिहि जब अंगद मतिमान।
प्रजा वर्ग में होयगो तब सन्तोष महान॥

बहुत दिन से सहिरह्यो दुख दुखिया सुग्रीव।
सुख विलसिहि निश्चन्त ह्वै पाइहि शान्ति अतीव॥

किये नीति अनुसरण यह सबही कह सुख होय।
विजयानँद सोइ कीजिये अनुचित कहै न कोय॥

---

१. चेत्यचितोर्नतृतीयम्—शा० सू० २ अ० ४० सू० चेत्य और चित् से भिन्न कोई तीसरा पदार्थ नहीं है।

२. ४८ वाँ प्रसङ्ग कपितिलक प्रारम्भ हुआ।

रामजी की आज्ञा पाकर उनके चरणो म सिर नवाकर उनकी प्रेरणा से सब चले। जो व्याकुल होकर दौडे आये थे वे भी शान्त भाव से चल।

दो लछिमन तुरत बोलाए, पुरजन बिप्र समाज।
राजु दीन्ह सुग्रीव कहँ, अगद कहँ जुवराज ॥११॥

अर्थ लक्ष्मणजी ने तुरन्त नगरवासियो को और ब्राह्मण समाज को बुलाया। सुग्रीव को राज्य और अङ्गद को युवराज पद दिया।

समझाने के अनुसार ही लक्ष्मणजी ने प्रजावर्ग को बुलाया विप्र समाज प्रजा वर्ग मे नही है। अत उनका पृथक् निर्देश किया ब्राह्मण समाज की अभिषेक के कृत्य के लिए भी आवश्यकता थी। अत उन्हे भी बुलाया। सुग्रीव को राजतिलक दिया और अङ्गद का यौवराज्य के लिए अभिषिक्त किया। लक्ष्मणजी ने सब कार्य शीघ्रता से किया। क्योकि उस समय सरकार की सेवा म कोई नही था वालि की भावना थी कि रघुनाथ समदर्शी हैं। सो विचार कर देखिये तो मालूम होता है कि रामजी ने दोनो के साथ एक सा व्यवहार किया।

सुग्रीव के साथ व्यवहार	वालि के साथ व्यवहार
जब सुग्रीव राम कहँ देखा।	पुनि पुनि चितै चरन चित दीन्हा।
अतिसय जन्म धन्य करि लेखा।	सफल जन्म माना प्रभु चीन्हा।
करपरसा सुग्रीव सरीरा।	बालि सीस परसा निज पानी।
तेहि सर हतौं मूढ कहँ काली।	सुनु सुग्रीव मैं मारिहौ बालिहि एकैं बान।
अचल करौ तन राखहु प्राना।	भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव।
प्रतिज्ञा छोड रहे हैं।	यहाँ भी प्रतिज्ञा छोडा।
राज दीन्ह सुग्रीव कहँ।	अगद कहँ जुवराज।

उमा राम समहित जगमाँही। गुरु पितु मातु बन्धु प्रभु नाँही ॥
सुर नर मुनि सबकै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ॥१॥

अर्थ हे उमा ! राम सा हित ससार म गुरु, पिता, माता, बन्धु या प्रभु कोई नही है। देवता मनुष्य और मुनि सबकी यह रीति है कि स्वार्थ के लिए प्रीति करते हैं।

व्याख्या ये ही पाँच कल्याण करनेवाले हैं। राखै गुरु जौ कोप बिधाता। सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहै असोच बनै प्रभु पोसे। तथा होहिं कुठाय सुबन्धु सहाये। परन्तु वे भी राम के समान हित नही है। ये लोग भी अत्यन्त बहिर्मुख का परित्याग करते हैं। पर किसी अवस्था म जीव का रामजी परित्याग नही करते। यथा

कानन भूधर बारि बयारि महा बिष ब्याधि दवा अरि घेरे।
सकट कोटि जहाँ तुलसी सुत मातु पिता हित बन्धु न नेरे॥

राखिहै राम कृपालु तहाँ हनुमान से सेवक हैं जेहि केरे।
नाक रसातल भूतल मे रघुनायक एक सहायक मेरे॥
जबही जमराज रजायसु ते मोहि लै चलिहैं भट बाँधि नटैया।
तात न मात न स्वामी सखा सुत बन्धु बिसाल बिपत्ति बँटैया॥
साँसति घोर पुकारत आरत कौन सुनै चहूँ ओर डँटैया।
एक कृपालु तहाँ तुलसी दसरथ को नन्दन वदि कटैया॥
जहाँ जमजातना घोर नदी भर कोटि जलच्चर दन्त टेवैया।
जहँ धार भयंकर वार न पार न बोहति नाव न मीत खेवैया॥
तुलसी जहँ मातु पिता न सखा नहि कोउ कहूँ अवलम्ब देवैया।
तहाँ बिनु कारन राम कृपालु बिसाल भुजा गहि काढ लेवैया॥
जहाँ हित स्वामि न सग सखा वनिता सुत बन्धु न बाप न भैया।
काय गिरा मन के जन के अपराध सबै छल छाडि छमैया॥
तुलसी तेहि राम कृपाल बिना दूजो कौन है दारुन दु ख दमैया।
जहाँ सब सकट दुर्घट सोच तहाँ मेरो साहिब राखे रमैया॥

यहाँ मातृ पितृ शब्द का तद्भव रूप पितु मातु दिया हुआ है। उद्दत्वादिषु इस सूत्र से ऋ का उत्त्व होकर मातु और पितु शब्द सिद्ध हुआ।

दैवी सम्पत्तिवाले तीन हो हैं सुर नर और मुनि। इनकी यह रीति है कि स्वार्थ के लिए ही प्रीति करते हैं। भुसुण्डिजी कहते है जाते कछु निज स्वारथ होई। तापर ममता कर सब कोई। माता पिता भी स्वार्थ रत हैं। सबकी प्रीति अर्थ से है। व्यर्थ प्रीति कोई क्यो करे। परन्तु हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम तुम्हार सेवक असुरारी।

बालि त्रास व्याकुल दिन राती। तन बहुब्रन चिन्ता जर छाती॥
सोइ सुग्रीव कीन्ह कपि राऊ। अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ॥२॥

अर्थ · जो बालि के डर से दिन रात विकल रहता था। शरीर मे अनेक घाव बने रहते थे और चिन्ता से छाती जला करती थी उस सुग्रीव को बन्दरो का राजा बना दिया। रघुवीर का स्वभाव बडा ही कृपालु है।

व्याख्या · जिस सुग्रीव की यह अवस्था थी कि बालि के डर से दिन रात व्याकुल रहते थे। ऐसा पाछे पडा रहता था कि जहाँ आप नही पहुँच सकता था वहाँ बलवान बन्दरो को सुग्रीव को मारने के लिए भेजता था। यद्यपि सुग्रीव ने उन सबों को मारा। पर प्रत्येक युद्ध मे चोट तो आ ही जाती थी, एक चोट सूखने न पाया तब से दूसरा लगा तीसरा लगा। इस भाँति शरीर मे बहुत से घाव बने रहते थे और चिन्ता से कलेजा जला करता था। शारीरिक और मानसिक दोनो प्रकार की वेदना से रात दिन कभी भी चैन नही रहता था। किसी ने तो सुग्रीव की सहायता नही की। किसी को तो उसकी दुरवस्था पर दया आती। पर नहो आयी। रामजी ने उस

पर ऐसी दया की कि वही सुग्रीव बानरो का राजा हो गया। दुःख तो दूर कर ही दिया। राजा भी बना दिया। स्वभाव से ही सरकार अति कृपाल हैं।

जानतहू अस प्रभु परिहरही। काहे न बिपति जाल नर परही ॥
पुनि सुग्रीवहि लीन्ह बोलाई। बहु प्रकार नृप नीति सिखाई ॥३॥

अर्थ : जानते हुए भी जो ऐसे प्रभु का परित्याग करते है ऐसे मनुष्य विपत्ति जाल मे क्यों न पड़े। फिर सुग्रीव को बुला लिया और बहुत प्रकार से राजनीति सिखलाया।

व्याख्या : जो न जानता हो उसकी बात दूसरी है। अनजानत की चूक क्षमा की जाती है। परन्तु जो जानता है और जान बूझकर ऐसी चूक करता है कि ऐसे समर्थ और दयाल स्वामी को नही भजता उसका विपत्ति जाल म पड़ना प्राप्त : वाजिब है। उसके विपत्ति मे न पडने का कोई कारण नही है। जो विपत्ति को काटने वाला है उसी का परित्याग कर दिया। अत: उनका विपत्ति जाल मे सदा पड़ा रहना युक्तियुक्त है। राजतिलक पाने पर सुग्रीव को स्वय प्रणाम करने के लिए आना उचित था। सो बुलवाने पर आये। प्रभु ने देखा कि सुग्रीव राजनीति मे बड़े कच्चे हैं। इसलिए बुलाकर बहुत प्रकार से राजनीति सिखायी। पहिले मित्रधर्म सिखाया था। अब राजनीति सिखाते हैं। जिसमें सुग्रीव का राज अचल रहे। यथा : राज कि रहै नीति बिनु जाने।

कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा। पुर न जाउँ दस चारि बरीसा ॥
गत ग्रीषम बरषा रितु आई। रहिहौं निकट सैल पर छाई ॥४॥

अर्थ : प्रभु ने कहा कि कपिराज ! सुनो। मै चौदह वर्ष पुर मे नही जाता। गरमी का मौसम गया। बरसात आयी। यही निकट ही पर्वत पर टिक रहूँगा।

व्याख्या : आप ही कहते हैं कि हे कपिराज ! मै स्वय तुम्हारे पुर मे चलकर सब कारबार तुम्हारा सँभाल देता। परन्तु पिता के वचन से मै पुर मे नही जाता। निषादराज ग्राम मे रहते थे तो उनसे कहा : ग्राम बास नहि उचित मोहि। विभीषणजी नगर मे रहते थे तो उनसे कहा : पिता बचन मैं नगर न जाऊँ। सुग्रीवजी पुर के रहनेवाले हैं। इसलिए इनसे कहते हैं कि पुर मे चौदह वर्ष के लिए न जाने का मेरा व्रत है। गरमी के दिन बीत गये बरसात आ गयी। अब रास्ते बन्द हो जायेंगे। सीताजी के खोजने का काम इस बीच में नही हो सकता। मैं यही निकट के पर्वत पर रहूँगा। आवश्यकता पड़ने पर मिल लेना। चौदह न कहकर दसचारि कहने का यह भाव है कि चौदह वर्ष मे से अधिक दिन बीत गये हैं। थोडे ही शेष हैं।

अंगद सहित करहु तुम राजू। संतत हृदय धरेहु मम काजू ॥
जब सुग्रीव भवन फिरि आये। राम प्रवर्षन[1] गिरि पर छाये ॥५॥

---

१. ४९वाँ प्रसङ्ग प्रवर्षण वास आरम्भ हुआ।

अर्थ अङ्गद के साथ तुम राज करना और मेरे काम को सदा स्मरण रखना। तब सुग्रीव घर लौट आये और रामजी प्रवर्षण पर्वत पर टिके।

व्याख्या राज कार्य कोई ऐसा न करना जिससे अङ्गद की सम्मति न हो सब कार्यो मे अङ्गद सम्मिलित रहे। जिसम अङ्गद को पिता के मरने का अति कष्ट न हो। वर्षा समाप्त होत ही मेरे कार्य मे हाथ लगा देना और मन म उसे सदा बनाये रहना। सम्भव है कि इस बीच म ही कुछ पता लग जाय सुग्रीवजी बुलाने पर गये। बात समाप्त होते ही घर लौट आये। गृहसुख से बहुत दिन से वञ्चित हैं अत घर लौटने की बडी उत्कण्ठा है। श्री रामजी अपने कथनानुसार प्रवर्षण पर्वत पर जाकर ठहर गये।

दो प्रथमहि देवन्ह गिरिगुहा, राखी रुचिर बनाइ।
राम कृपानिधि कछु दिन, बास करहिंगे आइ ॥१२॥

अर्थ पहिले ही से देवताओ ने पर्वत की गुफा को सुन्दर बना रक्खा था। यह जानकर कि कृपा के सागर रामजी कुछ दिनो तक यहाँ आकर वास करेंगे।

व्याख्या जहाँ प्रभु जाते हैं देवता लोग वहाँ निवास स्थान की रचना कर देते हैं। केवल पञ्चवटी म राक्षसो के भय से नही बनाया। यहाँ गुफा तो पहिले से ही प्रवर्षण गिरि पर थी। पर देवताओ ने उसे सँवारकर सुन्दर सुखद बना दिया। वे जानते हैं कि रामजी कृपा के समुद्र हैं हमारी सेवा अवश्य स्वीकार करेंगे। कुछ दिन वर्षा म यही ठहरेंगे।

सुन्दर बन कुसुमित अति सोभा। गुंजत मधुप निकर मधु लोभा॥
कन्दमूल फलपत्र सुहाये। भये बहुत जबते प्रभु आये॥१॥

अर्थ फूला हुआ सुन्दर वन अत्यन्त शोभित हुआ। भौरो का समूह मधु के लोभ से गुञ्जार कर रहा था। सुन्दर कन्दमूल फल और पत्र जब से प्रभु आये तब से बहुत पैदा होने लगे।

व्याख्या वन जब कुसुमित हो और भौरे मकरन्द लोभ से गुञ्जार करते हो तभी वन की शोभा है। वह वन स्वभाव से ही सुन्दर था। पर जब वह कुसुमित हुआ और भौरे गुञ्जार करने लगे तब अत्यन्त शोभित हुआ। यथा तहाँ जाइ देखी बन शोभा। गुञ्जत चञ्चरीक मधु लोभा। ग्रीष्म ऋतु बीत चली परन्तु इस वन मे अब भी वसन्त बरत रहा है। इस वन म कन्दमूल फल और पत्ते भी सुन्दर हैं। प्रभु के आ जाने से उनकी बहुतायत हो गयी। प्रभु के पदार्पण से स्थल मे उर्वरा शक्ति बढ गयी। वृक्षादि म जीवनी शक्ति आगयी।

देखि मनोहर सैल अनूपा। रहे तहँ अनुज सहित सुर भूपा॥
मधुकर खग मृग तनु धरि देवा। करहिं सिद्ध मुनि प्रभु की सेवा॥२॥

अर्थ मन को हरण करनेवाले अनुपम पर्वत का देखकर सुरभूप रामजी

अपने अनुज लक्ष्मणजी के साथ वहाँ रहे। भौंरे पक्षी और मृग का रूप धरकर देवता सिद्ध और मुनि प्रभु की सेवा करने लगे।

व्याख्या ऐसे सुन्दर बन मे एक पर्वत था। उसी के गुफा को प्रभु के ठहरने योग्य समझकर देवताओ ने सँवार रक्खा था। इसीलिए उसे अनूप कहते हैं अथवा उस पर्वत पर झरने और सरोवर आदि बहुत थे। इसलिए उसे अनूप कहते हैं। वर्षा की ऋतु आयी थी। अत प्रभु ने पर्वत पर ठहरना ही उचित माना। सुग्रीवजी से भी कह चुके हैं रहिहौं निकट सैल परछाई। देवताओ की सेवा स्वीकार कर रहे हैं। इसलिए कवि ने सुरभूपा कहा। सीताजी का हरण हो चुका है। इसलिए अनुज सहित रहना कहा।

देवता लोग भौरे पक्षी और मृग का रूप धारण करके तथा सिद्ध और मुनि अपने स्वाभाविक रूप से प्रभु की सेवा कर रहे हैं अथवा भौंरे के रूप से देवता पक्षी के रूप से सिद्ध और मृग के रूप से मुनि प्रभु की सेवा करते हैं। देवता सिद्ध और मुनि पूज्य हैं। प्रभु ने नरावतार धारण कर रक्खा है। मर्यादा पुरुषोत्तम उन पर पूज्य दृष्टि रखते हैं। उनसे साक्षात् सेवा न लेंगे। इसलिए रूपान्तर से सेवा कर रहे हैं। यथा मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी। सेवहिं सकल राम प्रिय जानी। मधुकर निकर भेरि सहनाई।

मंगल रूप भयउ बन तबते। कीन्ह निवास रमापति जबते ॥

फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई। सुख आसीन तहाँ द्वौ भाई ॥३॥

अर्थ जब से रमानाथ ने वहाँ निवास किया तब से बन मङ्गल रूप हो गया। स्फटिक की शिला अत्यन्त स्वच्छ और सुन्दर थी। उस पर दोनों भाई सुखासन से बैठते थे।

व्याख्या . माता का आशीर्वाद है कि जौ पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना। उसी का साफल्य दिखाते हुए कहते हैं कि जहाँ प्रभु का विश्राम होता है वही बन मङ्गलमय हो जाता है। अथवा प्रभु रमानिवास हैं। जहाँ जाते हैं वहाँ लक्ष्मी छा जाती हैं। उस समय जिस बन के पर्वत पर प्रभु ने डेरा दिया वह बन मङ्गलमय हो गया।

जिस शिला पर प्रभु आसीन होते है उसी की शोभा स्फटिक शिला सी हो जाती है अथवा जब देवताओ ने पर्वत के गुफा को प्रभु के रहने के लिए सँवारा तो बाहर बैठने के लिए स्फटिक की शिला भी रख दी। बडा घोर निर्जन बन है। यहाँ मुनियो का भी आश्रय सन्निकट नही है। उन लोगो के भी आने जाने की कोई बात नही है। अत चित्रकूट की भाँति वेदिका की आवश्यकता नही थी। भगवती भी साथ नही। केवल दोनो भाइयो को ही एक साथ बैठना है। इसलिए स्फटिक शिला ही यथेष्ट थी। जब नित्यकृत्य से निवृत्त होते थे तो दोनो भाई उसी पर आसीन होते थे।

५०. वर्षा शरद वर्णन प्रसङ्ग

कहत अनुज सन कथा अनेका। भगति बिरति नृप नीति बिबेका ॥
बरषा काल मेघ नभ छाये। गर्जत लागत परम सुहाये ॥४॥

अर्थ : भाई से भक्ति, वैराग्य, राजनीति और विवेक की अनेक कथाएँ कहा करते थे। वर्षाऋतु में मेघ आकाश मण्डल में घिर गये। गरजने के समय बड़े सोहावने लगते थे।

व्याख्या : अनधिकार चर्चा शास्त्र से निषिद्ध ठहरायी गयी। पराये की चर्चा करना अथवा काम कथा जिसे गपशप कहते हैं पाप है। नियम यह है कि जब फुरसत रहे : कृतक्षण हों तब संस्कार को जाग्रत् रखने तथा दृढ करने के लिए शास्त्रीय चर्चा करे। तदनुसार प्रभु जब फुरसत से बैठते हैं तो शास्त्रीय चर्चा करते हैं। पञ्चवटी मे जब ठहरे थे तब उस समय भी एहि बिधि गये कछुक दिन बीती कहत बिराग ग्यान गुन नीती। शास्त्र चर्चा ही होती थी इस समय भी वही हो रही है।

पहिले कह चुके हैं गत ग्रीषम बर्षा रितु आई। सो आगयी। आकाश मे बादल घिर आये। वर्षा काल मे मेघ की शोभा होती है। असमय के मेघ शोभित नही होते और जब वर्षा काल के मेघ गर्जन करने लगते हैं तो उनको बड़ी शोभा बढ जाती है। यह कवि की उक्ति है। विरही को पावस ऋतु महा दुखदायक हो जाता है। प्रभु इस समय विरही हैं। अतः उनके मुख से दूसरे प्रकार से वर्णन कराना है।

दो. लछिमन देखु मोरगन, नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरति रत हरष जस, बिष्णु भगत कहुँ देखि ॥१३॥

अर्थ : हे लक्ष्मण ! देखो मोर लोग मेघ को देखकर नाच रहे हैं। जैसे वैराग्य में लगा हुआ गृहस्थ विष्णुभक्त को देखकर हर्षित हो उठता है।

व्याख्या : रामजी छोटे भाई लक्ष्मण से कहते हैं कि देखो लक्ष्मण मेघ को देखकर मोरगण ऐसे प्रसन्न हुए कि नाच उठे। दृढ आशा बँध गयी कि पानी पडेगा। जल ज्यो दादुर मोर भये पीन पावस प्रथम। इसी भाँति उदासीन गृहस्थ जिन्हे वैराग्य हो चला है *और गृहस्थी का त्याग नही किया है उनकी शास्त्र* में उदासीन संज्ञा है : भी विष्णु भक्त को देखकर हर्षातिरेक से नाचने लगते हैं। उन्हे भी दृढ़ आशा हो जाती है कि अब 'राम चरित वर बारि की वर्षा होगी। वेद पुराण रूपी समुद्र से रामचरित रूपी श्रेष्ठ जल लेकर ये महात्मा गर्ज गर्ज कर वर्षा करेंगे।

भाव यह कि अपनी प्रिया से युक्त होने से मोरगण मेघागम से इस प्रकार हर्षित है। परन्तु वियोग के कारण मुझे हर्ष नही होता। यहाँ सांसारिक वस्तुओ

की अवस्तुता कही। वही वस्तु एक के लिए सुखदायक है दूसरे के लिए दुःखदायक है। अतः उसका वास्तविक रूप अनिर्वचनीय है। इससे विराग कहा और उदासीन गृही का विष्णु भक्त के दर्शन से हर्ष कहकर भक्ति दिखलाया।

घन घमंड नभ गर्जत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥
दामिनि दमक रह न घन माँही। खल कै प्रीति यथा थिर नाँही॥१॥

अर्थ : आकाश मे बादल घुमड़ कर घोर गर्जन कर रहे हैं। प्रियाहीन होने से मेरा मन डर रहा है। बिजली की चमक बादल में ठहरती नहीं। जैसे खल की प्रीति स्थिर नही रहती।

व्याख्या : घमण्ड होने से ही लोग गरजते हैं। ऊँचे चढ कर बैठते हैं। यहाँ बादल को भी जल का घमण्ड हो गया है। अतः आकाश पर चढकर घोर गर्जन कर रहा है। मोरगण तो नाचते हैं। पर मोर मन तो भयभीत हो रहा है। उसे डर है कि अब तप्त तेल की वर्षा होगी। यथा : बारिद तपत तेल जनु बरिसा।

बिजली की चमक से सारा आकाश चमक उठता है। पर वह चमक ठहरती नही। तुरन्त अलक्षित हो जाती है। यही दशा खल की प्रीति की है। कभी अनुराग का प्रकाश बडे जोरो से हो जाता है पर वह ठहरता नही। स्वार्थ समाप्त होते ही समाप्त हो जाता है। घन और मोर दूर हैं। फिर भी प्रेम चिरस्थायी है। घन और दामिनि एकत्र हैं पर प्रीति स्थिर नही है। यथा : बहु बिधि खल सीतहि समुझावा। पुनः सुनत बचन पुनि मारन धावा।

यहाँ प्रकृति की शोभा का वर्णन करते हुए कवि ने भौतिक जगत् की घटनाओ का इतना सुन्दर सादृश्य मानसिक जगत् की घटनाओ के साथ वर्णन किया है कि सहृदय व्यक्ति ही उसका ठीक रसास्वादन कर सकता है।

दामिनि दमक रह न घन माही से नीति कहा।

बरषहिं जलद भूमि नियराये। जथा नवहिं बुध बिद्या पाये॥
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे॥२॥

अर्थ : भूमि के निकट आये हुए बादल बरसते हैं जैसे विद्या पाकर पण्डित नम्र हो जाते हैं। बूँदो की चोट पर्वत उसी भाँति सह रहे हैं जैसे खल के वचनो को सन्त सहते हैं।

व्याख्या : बादल आये बिजली चमकी। अब वर्षा होने लगी। तब कहते हैं कि बरसनेवाले बादल जलाधिक्य के कारण पृथ्वी की ओर लटक आये। दृष्टान्त देते हैं कि जैसे विद्या के अधिक हो जाने से पण्डित विनम्र हो जाते हैं। तभी उनसे जगत् का कल्याण होता है। कहा भी है : विद्या ददाति विनयम्। बिना विनय के विद्वान् को बिना जल का मेघ समझना चाहिए। यह नीति है।

पहली छूटी हुई बूँदो की चोट को कोई सह नही सकता। पर्वत ही उसे

है। हिंसा से भी धर्म होता है : यह बात किसी प्रकार युक्तिसंगत नहीं है। अग्नि मे हवि जलाने से फल होगा यह भी बच्चो की सी बात है। अनेक यज्ञो द्वारा देवत्व लाभ करके यदि इन्द्र को शमी आदि काष्ठ ही भोजन करना पड़ता है तो इससे तो पत्ते खानेवाला पशु ही अच्छा है। यदि यज्ञ मे बलि किये हुए पशु को स्वर्ग होता है तो यजमान अपने पिता को क्यो नही मारता। यदि किसी अन्य पुरुष के भोजन से अन्य की तृप्ति होती है तो विदेश जानेवाले पिता के लिए पुत्र श्राद्ध क्यो नही कर दिया करते। खाद्य पदार्थ के ढोने का परिश्रम क्यो किया जाता है? यह सब अन्धश्रद्धा है इसकी उपेक्षा करनी चाहिए और अपने श्रेय साधन के लिए जो कुछ मैंने कहा है उसमे रुचि करना चाहिए एवं पाखण्डवाद हरी हरी घासो की भाँति सन्मार्ग को ढँक लेता है। अविवेकी पुरुष विषय के लोलुप पशु की भाँति उसी को चाह करते हैं। अन्त मे ऐसी दुर्दशा की अवस्था को प्राप्त होते हैं कि उन्हे कोई रास्ता नही सूझता। आँखो देखते हैं कि इस रास्ते के कारण देश के देश का सर्वनाश हुआ चाहता है। पर वे ऐसी परिस्थिति मे पड जाते है कि वे उसे छोड नही सकते। इस पाखण्डवाद के बढ जाने से प्रचाररहित होकर सद्ग्रन्थ गुप्त हो जाते है।

कवि कहते हैं कि यह बरसात भर की बात है। थोडे ही दिनो मे वे घास नष्ट हो जाती हैं। मार्ग स्वच्छ हो जाता है और सद्ग्रन्थ फिर प्रकट हो जाते हैं।

इस भाँति श्रावण का वर्णन समाप्त हुआ। एक दोहे मे श्रावण का वर्णन करके अब दूसरे दोहे मे भाद्रपद का वर्णन करते हैं। भक्ति, विरति, नृपनीति, विवेक की कथा कहते थे। बीच बीच मे वर्षा की घटनाओ का उल्लेख दृष्टान्त रूप मे करते जाते थे। कवि ने उनको एकत्रित करके एक साथ लिख दिया है।

दादुर धुनि चहुँ दिसाँ सोहाई। बेद पढहिं जनु बटु समुदाई ॥
नव पल्लव भये बिटप अनेका। साधक मन जस मिले बिबेका ॥१॥

अर्थ : मेढको की ध्वनि चारो दिशाओ मे सुशोभित हो रही है। जैसे ब्रह्मचारियो का समूह वेद पढ रहा हो। अनेक वृक्ष नव पल्लव युक्त होकर सुशोभित हैं। जैसे विवेक के मिलने से साधक के मन की शोभा होती है।

व्याख्या : भाद्रपद मे तीज के लगभग हस्त नक्षत्र मे सामवेदियो का उपाकर्म होता है। तालाबो के चारो ओर वेद ध्वनि होती है। गुरुओ के साथ ब्रह्मचारी लोग वेद पढते हैं। किसी ओर कोई मन्त्र पढा जाता है किसी ओर दूसरा ही मन्त्र बोला जाता है। सब मिलकर एक ध्वनि हो रही है। उसी को मेढको के बोलने से उपमित कर रहे है। नही तो मेढक तो पावस के आरम्भ मे जल के गिरते ही बोलने लगते हैं। जहाँ केवल गुरु लोग ही एकत्र होकर वेद पढते है : वहाँ कवि कहते हैं : भवन वेद धुनि अति मृदु बानी। जिमि खग मुखर समय जनु सानी। वेद मे तथा पुराण मे भी वेदध्वनि की उपमा दादुर ध्वनि से दी हुई है।

पानी पड़ने पर कुछ दिनो मे बहुत से वृक्ष पल्लवित हो जाते हैं। उनकी शोभा हो जाती है। उसी की उपमा विवेकयुक्त साधक के मन से देते हैं। साधक अर्थार्थी भक्त को कहते हैं। यथा : साधक नाम जपहिं लय लाये। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाये : अर्थार्थी को विवेक नही होता। वे तो अणिमादिक सिद्धि के लिए साधन करते हैं। उनकी शोभा नही क्योकि उनका साधन फल के लिए होता है। यदि उन्हे विवेक की प्राप्ति हो जाय तो वे वही साधन ईश्वर प्रीत्यर्थं करने लगते हैं और तब उनके साधन की शोभा होती है। यथा : जो कछु करइ कर्म मन बानी।। बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी। इससे विवेक का उपदेश दिया।

अर्क जवास पात बिनु भएऊ। जस सुराज खल उद्यम गएऊ ॥
खोजत कतहूँ मिलिइहि धूरी। करै क्रोध जिमि धर्महि दूरी ॥२॥

अर्थ : मदार और जवास : हिंगुआ : बिना पत्ता के हो गये। जैसे सुराज में खल के उद्यम नष्ट हो जाते हैं। खोजने से ही कही धूलि मिलेगी। जैसे क्रोध धर्म को दूर कर देता है।

व्याख्या : ग्रीष्म ऋतु कुराज रहा। राजा प्रजा का खूब शोषण कर रहा था। प्रजा के हित पर ध्यान नही करता था। उस समय मदार और जवास रूपी खल खूब हरे भरे हो रहे थे। यथा : बाढे खल बहु चोर जुआरा। जे लम्पट पर धन परदारा। इत्यादि। पावस की झरी लगते ही उनके पत्ते गिर गये। इस भाँति सुराज होते ही खल का उद्यम चला गया। यथा : अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने। मत्सर मान मोह मद चोरा। इनकर हुनर न कौनिउ ओरा। यह राजनीति विषयक उपदेश है।

पावस में धूलि सब कीचड़ में मिल जाती है। नगर मे धूलि मिलनी कठिन हो जाती है वन में कहाँ मिले। कही पर्वत की गुफाओ मे खोजने से मिल जाय तो सम्भव है। इसी भाँति क्रोध आ जाने पर धर्म का कही पता नही लगता। क्रुद्धः पापं न कुर्यात् कः क्रुद्धो हन्याद्गुरूनपि। क्रोधी कौन सा पाप नही करता। वह अपने गुरु को मार सकता है। ऐसे कोई ही महात्मा होते हैं जिनमे क्रोध आने पर भी कुछ धर्म बचा रहे। यथा : बहै न हाथु दहै रिसि छाती। भा कुठार कुंठित नृप घाती। यह विरति का उपदेश है।

ससि[1] संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कइ संपति जैसी ॥
निसि तम घन खद्योत बिराजा। जिमि दंभिन कर मिला समाजा ॥३॥

अर्थ : धान से युक्त पृथ्वी कैसी शोभित है। जैसे उपकारी की सम्पत्ति से शोभा होती है। रात के घने अन्धकार में जुगनू विशेषरूप से चमक रहे हैं। जैसे दम्भियो का समाज जुट गया हो।

---

१. इ स्वप्नादौ इस सूत्र से य का इ होकर शस्य का ससि रूप सिद्ध हुआ।

है। हिंसा से भी धर्म होता है : यह बात किसी प्रकार युक्तिसंगत नही है। अग्नि मे हवि जलाने से फल होगा यह भी बच्चो की सी बात है। अनेक यज्ञो द्वारा देवत्व लाभ करके यदि इन्द्र को शमी आदि काष्ठ ही भोजन करना पडता है तो इससे तो पत्ते खानेवाला पशु ही अच्छा है। यदि यज्ञ मे बलि किये हुए पशु को स्वर्ग होता है तो यजमान अपने पिता को क्यों नही मारता। यदि किसी अन्य पुरुष के भोजन से अन्य की तृप्ति होती है तो विदेश जानेवाले पिता के लिए पुत्र श्राद्ध क्यो नही कर दिया करते। खाद्य पदार्थ के ढोने का परिश्रम क्यो किया जाता है ? यह सब अन्धश्रद्धा है इसकी उपेक्षा करनी चाहिए और अपने श्रेय साधन के लिए जो कुछ मैंने कहा है उसमे रुचि करना चाहिए एवं पाखण्डवाद हरी हरी घासो की भाँति सन्मार्ग को ढँक लेता है। अविवेकी पुरुष विषय के लोलुप पशु की भाँति उसी को चाह करते हैं। अन्त मे ऐसी दुर्दशा की अवस्था को प्राप्त होते हैं कि उन्हे कोई रास्ता नही सूझता। आँखो देखते हैं कि इस रास्ते के कारण देश के देश का सर्वनाश हुआ चाहता है। पर वे ऐसी परिस्थिति मे पड जाते हैं कि वे उसे छोड़ नही सकते। इस पाखण्डवाद के बढ जाने से प्रचाररहित होकर सद्ग्रन्थ गुप्त हो जाते है।

कवि कहते हैं कि यह बरसात भर की बात है। थोडे ही दिनो मे वे घास नष्ट हो जाती है। मार्ग स्वच्छ हो जाता है और सद्ग्रन्थ फिर प्रकट हो जाते हैं।

इस भाँति श्रावण का वर्णन समाप्त हुआ। एक दोहे मे श्रावण का वर्णन करके अब दूसरे दोहे मे भाद्रपद का वर्णन करते हैं। भक्ति, विरति, नृपनीति, विवेक की कथा कहते थे। बीच बीच मे वर्षा की घटनाओ का उल्लेख दृष्टान्त रूप मे करते जाते थे। कवि ने उनको एकत्रित करके एक साथ लिख दिया है।

दादुर धुनि चहुँ दिसाँ सोहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई ॥
नव पल्लव भये बिटप अनेका। साधक मन जस मिले बिबेका ॥१॥

अर्थ : मेढको की ध्वनि चारो दिशाओ मे सुशोभित हो रही है। जैसे ब्रह्मचारियो का समूह वेद पढ रहा हो। अनेक वृक्ष नव पल्लव युक्त होकर सुशोभित है। जैसे विवेक के मिलने से साधक के मन की शोभा होती है।

व्याख्या : भाद्रपद मे तीज के लगभग हस्त नक्षत्र मे सामवेदियो का उपाकर्म होता है। तालाबो के चारो ओर वेद ध्वनि होती है। गुरुओ के साथ ब्रह्मचारी लोग वेद पढते हैं। किसी ओर कोई मन्त्र पढा जाता है किसी ओर दूसरा ही मन्त्र बोला जाता है। सब मिलकर एक ध्वनि हो रही है। उसी को मेढको के बोलने से उपमित कर रहे है। नही तो मेढक तो पावस के आरम्भ मे जल के गिरते ही बोलने लगते हैं। जहाँ केवल गुरु लोग ही एकत्र होकर वेद पढते है : वहाँ कवि कहते हैं : भवन वेद धुनि अति मृदु बानी। जिमि खग मुखर समय जनु सानी। वेद मे तथा पुराण मे भी वेदध्वनि की उपमा दादुर ध्वनि से दी हुई है।

पानी पड़ने पर कुछ दिनो में बहुत से वृक्ष पल्लवित हो जाते हैं। उनकी शोभा हो जाती है। उसी की उपमा विवेकयुक्त साधक के मन से देते हैं। साधक अर्थार्थी भक्त को कहते हैं। यथा : साधक नाम जपहिं लय लाये। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाये : अर्थार्थी को विवेक नही होता। वे तो अणिमादिक सिद्धि के लिए साधन करते हैं। उनकी शोभा नही क्योंकि उनका साधन फल के लिए होता है। यदि उन्हें विवेक की प्राप्ति हो जाय तो वे वही साधन ईश्वर प्रीत्यर्थ करने लगते हैं और तब उनके साधन की शोभा होती है। यथा : जो कछु करइ कर्म मन बानी।। वासुदेव अर्पित नृप ग्यानी। इससे विवेक का उपदेश दिया।

अर्क जवास पात बिनु भएऊ। जस सुराज खल उद्यम गएऊ ॥
खोजत कतहूँ मिलिइहि धूरी। करै क्रोध जिमि धर्महि दूरी ॥२॥

अर्थ : मदार और जवास : हिंगुआ : बिना पत्ता के हो गये। जैसे सुराज में खल के उद्यम नष्ट हो जाते हैं। खोजने से ही कहीं धूलि मिलेगी। जैसे क्रोध धर्म को दूर कर देता है।

व्याख्या : ग्रीष्म ऋतु कुराज रहा। राजा प्रजा का खूब शोषण कर रहा था। प्रजा के हित पर ध्यान नही करता था। उस समय मदार और जवास रूपी खल खूब हरे भरे हो रहे थे। यथा : बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लम्पट पर धन परदारा। इत्यादि। पावस की झरी लगते ही उनके पत्ते गिर गये। इस भाँति सुराज होते ही खल का उद्यम चला गया। यथा : अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने। मत्सर मान मोह मद चोरा। इनकर हुनर न कौनिउ ओरा। यह राजनीति विषयक उपदेश है।

पावस में धूलि सब कीचड़ में मिल जाती है। नगर में धूलि मिलनी कठिन हो जाती है वन में कहाँ मिले। कही पर्वत की गुफाओ में खोजने से मिल जाय तो सम्भव है। इसी भाँति क्रोध आ जाने पर धर्म का कही पता नही लगता। क्रुद्धः पापं न कुर्यात् कः क्रुद्धो हन्याद्गुरूनपि। क्रोधी कौन सा पाप नही करता। वह अपने गुरु को मार सकता है। ऐसे कोई ही महात्मा होते हैं जिनमे क्रोध आने पर भी कुछ धर्म बचा रहे। यथा : बहै न हाथु दहै रिसि छाती। भा कुठार कुंठित नृप घाती। यह विरति का उपदेश है।

ससि[1] संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कइ संपति जैसी ॥
निसि तम घन खद्योत बिराजा। जिमि दंभिन कर मिला समाजा ॥३॥

अर्थ : धान से युक्त पृथ्वी कैसी शोभित है। जैसे उपकारी की सम्पत्ति से शोभा होती है। रात के घने अन्धकार में जुगुनू विशेषरूप से चमक रहे हैं। जैसे दम्भियों का समाज जुट गया हो।

---

१. इ. स्वप्नादी इस सूत्र से य का इ होकर सस्य का ससि रूप सिद्ध हुआ।

पृथ्वी सबका उपकार करनेवाली है। यथा : सत विटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबनि कै करनी : परन्तु जब वह धान से लहलहाने लगती है तब उसकी शोभा अधिक हो जाती है। क्योकि जगत् के उपकार की सामग्री उसके पास अधिक हो गयी। इसी भाँति उपकारी की शोभा उसके पास सम्पत्ति आने से होती है। क्योकि तभी वह उपकार करने मे यथेष्ट समर्थ हो सकता है। यहाँ देशवल से ससि का अर्थ शस्य ' धान : हुआ। चन्द्रमा नही हुआ। शस्य का तद्भवरूप ससि होता है।

भादो के रात की अँधियारी प्रसिद्ध है। उसमे खद्योत विराजमान होते हैं। रात मे राजते हैं और अँधेरी रात मे विराजते हैं। जैसे अविद्यान्धकार मे कही धर्म का नाम नही। केवल दाम्भिक समाज मे धर्म की चमक उसी भाँति दिखाई पडती है जैसे जुगुनू की चमक हो। पेडो पर जब अँधेरी रात को जुगुनू का समाज चमकता है तो एक बार पेड भी स्पष्ट हो जाता है। परन्तु उससे अन्धकार ही बढता है। उस प्रकाश की प्रकाश मे गिनती नही है। इस भाँति अधार्मिक समाज अपने दम्भ से बार बार प्रकाशित होता है। पर उसका दम्भ धर्म नही है। केवल लोगो को धोखा हो जाता है कि धर्म हो रहा है।

महा बृष्टि चलि फूटि कियारी। जिमि सुतंत्र भये बिगरहिं नारी ॥
कृपी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना ॥४॥

अर्थ : जब बडी भारी वर्षा होती है तो मेंड : मर्यादा : टूट जाती है। जैसे अरक्षित होने से स्त्री बिगड जाती है। चतुर किसान खेती को निराते ' घास पात दूर करते हैं। जैसे पण्डित मोह मद मान का परित्याग करते हैं।

व्याख्या : बडी भारी वृष्टि होने से किसान मेंड़ : कियारी . की रक्षा नही कर सकता। ऐसे पानी मे बाहर निकलना कठिन होता है। खेत तक पहुँचना तो और भी कठिन है। अरक्षित होकर कियारी जल का वेग स्वभावत' नही सह सकती। इसी भाँति स्वतन्त्र होकर स्त्रियाँ बिगड जाती है।

स्त्री जाति का शारीरिक सगठन ही ऐसा है कि वे अपनी रक्षा स्वयं करने मे सर्वथा असमर्थ हैं। जो आँखो के होने पर भी उससे काम न लेना चाहे और स्त्री तथा पुरुष को समान बतावे उसे कोई कैसे समझा सकता है। इसीलिए जगत् स्रष्टा का वचन है कि स्थान न होने से प्रार्थयिता न होने से स्त्री मे सतीत्व उत्पन्न होता है। जब सतीत्व उत्पन्न हो गया तब तो वह उसके लिए परमगति तक सुलभ हो जाता है। यथा ' बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिव्रत धर्म छाड़ि छल गहई। पिता स्त्री की कुमारावस्था मे रक्षा करे। भर्त्ता यौवन मे रक्षा करे। वृद्धावस्था मे पुत्र रक्षा करे। स्त्री मे अरक्षित रहने की योग्यता नही है। उनकी परतन्त्र रूप से सृष्टि ही हुई है। उनका सच्चा सुख पिता पति तथा पुत्र पारतन्त्र्य मे है। स्त्री हृदय के न जाननेवाले सुधारक इस विषय मे भ्रान्त है। यथा :

पाया न समझ माली गँवार।

क्या प्रेम नेम था वेली मे। क्या क्या गुन थे अलवेली मे॥
वह तरु के ऊपर चढती थी। फैलती फूलती फलती थी॥
जब प्रेम पाश उसने डाला। बँध गया पेड हो मतवाला॥
यह बेलि वृक्ष का दिव्य प्यार। पाया न समझ माली गँवार॥१॥

दोनो ही मिलकर हुए एक। रह गया नही कुछ भी विवेक॥
लू झझा अन्धड वज्रपात। दोनो सहते थे एक साथ॥
तरु के सुख मे वेली निहाल। बेली के दुख मे तरु विहाल॥
दाम्पत्य प्रेम का यही सार। पाया न समझ माली गँवार॥२॥

देखिये बेलि तरु के अधीन। पर बात नहीं यह समीचीन॥
वस्तुत वृक्ष ही पराधीन। वेली के वन्धन कठिन पीन॥
वह व्यापि रही है डार डार। तरु के उर पै करती विहार॥
क्या थी तरु को वह वेलिभार। पाया न समझ माली गँवार॥३॥

है जहाँ प्रेम का राज पाट। फिर कहाँ नेम का ठाट बाट॥
केवल भर्ता है अमित दानि। किस गिनती मे है लाभ हानि॥
जब दुख सुख दो का हुआ एक। सह सके प्रेम क्या भेद नेक॥
है नही स्वार्थ का कुछ बिचार। पाया न समझ माली गँवार॥४॥

उसने वेली का लिया पक्ष। समझा अपने को बड़ा दक्ष॥
जब स्वत्व बेलि का अलगाया। आपसी प्रेम को बिलगाया॥
यो बीज फूट का डाल दिया। प्रिय प्रेम पैज पामाल किया॥
वहता फिरता इसको सुधार। पाया न समझ माली गँवार॥५॥

बेली को तरु से हटा दिया। अपने पैरो पर खडा किया॥
उसको स्वतन्त्रता सिखलाया। पश्चिम का रास्ता बतलाया॥
वह भूल गई अपना स्वभाव। लायी अपने मे वृक्ष भाव॥
पर रह सकती क्या निराधार। पाया न समझ माली गँवार॥६॥

फिर पतित हुई वह बार बार। कैसे कोई सकता सँभार॥
तब हुआ भूमि पर ही पसार। उस पर भी सबका पग प्रहार॥
दुर्दशा गर्त्त मे गिरी जाय। स्वातन्त्र्य पाठ पढ नि सहाय॥
इस भाँति हुआ उपवन उजार। पाया न समझ माली गँवार॥७॥

जिस ओपधि का जो खेत हो उसमे से विजातीय ओपधि को दूर करने : न्यारा करने . को निराना कहते हैं। विजातीय ओपधियो के साथ से धान की उपज भारी पडती है और वह विजातीय ओपधि ऐसी होती है कि आरम्भ मे उसका पहिचानना कठिन होता है। चतुर किसान ही उनके भेद को पहिचानते हैं। वे विजातीय ओपधि को अकुरित होते ही उखाड कर दूर फेंकते हैं। यह शरीर ही

खेत है यथा . इद शरीर कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते इसके किसान मन, वाणी और कर्म हैं। इसमे पाप और पुण्य दो प्रकार के बीज हैं। इनमे से पाप बीज की इतनी बहुतायत है कि वह स्वभाव से ही खेत मे पहुँच जाता है और पुण्य का बीज बोने से जमता है। किसान अपने-अपने खेत मे पुण्य बीज बोता है। विचार, क्षमा, सन्तोषादि पुण्य बीज हैं। जब ये बीज अङ्कुरित होते हैं तो इसके साथ ही मोह, मद, मानादि पाप बीज भी अङ्कुरित होते हैं। गँवार किसान अर्थात् असंस्कृत मन वाणी कर्म वाले को दोनो मे भेद नही जान पडता। सभी प्रिय मालूम होते हैं। उन्हे साथ ही बढने का सुभीता देने से विचार क्षमा सन्तोषादि पुण्यौषधियाँ मारी पडती हैं। बुध अर्थात् जिनके मन वाणी और कर्म सुसंस्कृत हैं वे इन विजातीय ओषधि मोह मद मान को अङ्कुरित होते ही उखाड फेंकते हैं। क्योंकि बडे हो जाने पर इनका उखाड़ना भी कठिन हो जाता है और तब तक विचार क्षमा सन्तोषादि दुर्बल हो जाते है। यथा : करुणा निधि मन दीख विचारी। उर अकुरेउ गर्व तरु भारी। बेगि सो मैं डारिहौं उखारी। पन हमार सेवक हितकारी। यह विवेकसम्बन्धी उपदेश है।

देखिअत चक्रवाक खग नाही। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराही ॥
ऊसर बरषै तृन नहि जामा। जिमि हरिजन हिय उपज न कामा ॥५॥

अर्थ : चक्रवाक पक्षी दिखायी नही पड़ रहे है। जैसे कलियुग को पा कर धर्म भाग जाते हैं। ऊसर मे वर्षा होने से तृण नही जमता जैसे हरिजन के हृदय मे काम नही उत्पन्न होता।

व्याख्या : पावस मे सब पक्षी दिखायी पड़ते हैं। पर चक्रवाक : चकवा नही दिखायी पडते। जैसे कलियुग के प्राप्त होने पर धर्म भाग जाते हैं। ऊसर मे भी वर्षा होती है पर उसमे तृण नही जमता। जैसे भगवद्भक्त के हृदय मे काम नही उपजता।

पावस मे चक्रवाक दिखायी नही पडते। इसका मतलब यह नही कि वे मर जाते है। केवल उनका प्रचार विरल हो जाता है। वे यहाँ मैदान से कही हट जाते हैं। पर्वतादि पर चले जाते हैं। छिपे छिपाये रहते है। इसी भाँति कलियुग आने मे भारतवर्ष मे धर्म का विरल प्रचार रह जाता है। भारतवर्ष मे ही चारो युगो की व्यवस्था है। अत जहाँ जहाँ युगो की व्यवस्था है वे सभी देश भारतवर्ष के अन्तर्गत हैं। उन देशो मे कलियुग के प्रचार के बढने के साथ ही साथ धर्म की व्यवस्था घटती ही जाती है। कलियुग का पूर्ण प्रचार होने पर कही दिखायी नही पड़ता। पर धर्म नष्ट नही होता। जहाँ या जिस व्यक्ति मे कलियुग का प्रभाव कम पड़ता है वहाँ और उस व्यक्ति मे किसी रूप या किसी परिमाण मे धर्म रह जाता है। खुले मैदान धर्म का प्रचार नही रह जाता।

हरिजन का अर्थ हरिभक्त है। आज यह कहना पड़ता है कि हरिजन का

अर्थ अन्त्यज जाति नही है। कुछ लोगो ने देश का कल्याण इसी मे देखा है कि अन्त्यज जाति को हरिजन नाम देकर उस जाति की अस्पृश्यता को अमर कर दें और हरिजन शब्द को अपने मुख्य अर्थ से नीचे गिरा दें। वस्तुत हरिजन शब्द का अर्थ बहुत उदार है। इससे जाति व्यवस्था से कोई सम्पर्क नही है। जो कोई प्राणी भगवद्भक्त हो वह हरिजन है। चाहे वह ब्राह्मण हो चाहे चमार हो। उस शब्द को इतना संकीर्ण कर देना कि वह केवल किसी जाति विशेष का बोधक रह जाय कलियुग के शासन की महिमा है।

हरिजन के मन मे काम की उत्पत्ति नही होती। जिसके मन मे काम की उत्पत्ति हो वह हरिजन नही है। श्री आचार्य चरण कहते हैं कि कामरूपी बीज के लिए हरिजनरूपी क्षेत्र ऊसर है। कैसा ही आलम्बन या उद्दीपन हो पर हरिजन के मन मे काम बीज अङ्कुरित हो ही नही सकता। हरिजन के मन मे काम के लिए उर्वरा शक्ति नही है। वह शक्ति भगवच्चरणो मे लग गयी है।

विविध जन्तु सकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ जिमि पाइ सुराजा॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इन्द्रिय गन उपजे ग्याना॥६॥

अर्थ . पृथ्वी अनेक प्रकार के जन्तुओ से भरी हुई शोभायमान है। जैसे अच्छे राजा को पाकर प्रजा बढती है। जहाँ तहाँ अनेक पथिक थक कर ठहर गये। जैसे ज्ञान के उपजने पर इन्द्रिय गण थक कर अपना कार्य करने मे असमर्थ हो जाते हैं।

व्याख्या • वर्षा होने से अनेक प्रकार के जीव उत्पन्न हो जाते हैं। पृथ्वी क्षुद्र जन्तुओ से भर उठती है। इसी भाँति अच्छे राजा के होने से प्रजा सुखी होती है। उनकी रक्षा होती है। इसीलिए उनकी बढोत्तरी होती है। सुख से ही प्राणी उत्पन्न होते हैं और सुख से ही जीते है। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जातानि जीवन्ति। कुराज मे प्रजा दु खी होती है उनकी रक्षा नही होती। इसलिए प्रजा उजड जाती है। यह राजनीति का उपदेश है। बरसात मे पथिक लोग जहाँ के तहाँ थक कर ठहर जाते थे, रास्ता चलना बन्द हो जाता था। नदी-नद के उमडने से और वर्षा की झरी लग जाने से रास्ता चलना कठिन हो जाता था। इस भौतिक उन्नति के समय जब कि इतने साधन बाधाओ के अतिक्रमण के लिए सुलभ है। वर्षा के समय तो रास्ता बन्द हो हो जाता है और जब वे साधन नही थे तब तो ग्राम सीमोल्लघन करना भी अनुचित समझा जाता था। उस समय निरुपाय होकर पथिक जहाँ तक पहुँचे थे वही ठहर जाते थे।

ज्ञान के उत्पन्न होने पर वही गति इन्द्रियो की हो जाती है। नही भोजन करने से भी इन्द्रियाँ अपने अपने विषयो को नहीं ग्रहण करती। परन्तु उन उन विषयो के आनन्द का सस्करण उनमे बना रहता है। पर आत्मदर्शन से वह सस्करण भी जाता रहता है। तब वे विषय ग्रहण मे असमर्थ भी हो जाती हैं। यथा • कर्म कि होहि सरूपहि चीन्हे।

दो. कबहुँ प्रबल वह मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के उपजें, कुल सद्धर्म नसाहिं ॥१५॥

अर्थ : कभी हवा जोर से चलती है और मेघ जहाँ तहाँ हट जाते हैं। जैसे कपूत के उपजने से कुल का सद्धर्म नष्ट हो जाता है।

व्याख्या . मेघ को सद्धर्म और कपूत के उपजने को प्रबल मारुत के बहने से उपमित किया है। हमारे यहाँ कपूत सपूत का निर्णय धनोपार्जन के तारतम्य से नही होता था। सब प्रकार से योग्य होने पर भी जिसने कुल धर्म का पालन न किया वह कपूत ही है। इसी से वर्ण सङ्कर की गणना कपूत मे की गयी है। वर्ण सङ्कर पुत्र कुलघ्नो के कुल के नरक के लिए होते हैं। उनके पितरो का पिण्डोदक क्रिया के लुप्त हो जाने से पतन होता है। जिन लोगो द्वारा कुल धर्म और जाति धर्म नष्ट होता है वे सब कुपुत्र है। जो नरक से पितरो की रक्षा करे वही पुत्र है। जिस भाँति प्रबल वेग से वायु के बहने से मेघो का नाश होता है वैसे ही कपूतो के उपजने से कुल के सद्धर्मों का नाश होता है। जो धर्म दूसरे का नाश करते हैं वे धर्म नही हैं कुधर्म हैं। सद्धर्म वही है जो सबको अपने धर्म की मर्यादा पर दृढ करे। यथा : स्वधर्मो निधन श्रेय. परधर्मो भयावहः। यह नीति का उपदेश है।

दो. कबहुँ दिवस महँ निविड तम, कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसै उपजै ग्यान जिमि, पाइ कुसंग सुसंग ॥१६॥

अर्थ : कभी दिन मे घोर अन्धकार छा जाता है और कभी सूर्य नारायण प्रगट हो जाते हैं। जैसे कुसङ्ग और सुसङ्ग से ज्ञान उत्पन्न होता है और नष्ट हो जाता है।

व्याख्या : अविद्या निशा मे तो अन्धकार रहता ही है। परन्तु विद्यारूपी दिन मे भी कुसङ्ग से ज्ञान रवि ढँक जाया करते हैं। यथा : को न कुसंगति पाइ नसाई। रहै न नीच मते चतुराई। इसी भाँति बरसात मे दिन के समय भी बादलो के घिरने से, कभी घोर अन्धकार हो जाता है और कभी सूर्य के दर्शन मे उजेला हो जाता है। यहाँ सूर्य के दर्शन को सुसङ्ग से बादल के घिर जाने को कुसङ्ग से उजेले को ज्ञान से और अँधेरे को अज्ञान से उपमित किया है। यह विवेकसम्बन्धी उपदेश है। यहाँ भादो का वर्णन समाप्त होता है।

बरषा बिगत सरद रितु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई ॥
फूले कास सकल महि छाई। जनु बरषाकृत प्रगट बुढाई ॥१॥

अर्थ . वर्षा बीत गयी। शरद ऋतु आ गयी। लक्ष्मण। देखो बडी शोभा हो रही है। फूले हुए कासा तमाम पृथ्वी मे छा गये। मानो वर्षा ने बुढाई प्रगट कर दी।

व्याख्या : भाद्रपद का महीना बीत गया। सूर्य भगवान् कन्यागत हो गये। सो राम जी लक्ष्मण से कहते हैं कि यह ऋतु परम सोहायी है वर्षा को सोहायी नही कहा। क्योकि प्रभु विरही हैं। विरहियो को वर्षा कष्टप्रद होती है। वहाँ लक्ष्मण को छोड़कर दूसरा कोई है नही। इसी से उन्ही से कहते हैं। कुआर आते ही जब कासा फूलता है तब जगल का जंगल श्वेत रंग का हो जाता है। उसी दृश्य को कहते हैं कि मानो वर्षा ने बुढ़ाई प्रगट कर दी। यहाँ काश के फूल का सादृश्य वृद्धों के श्वेत केश से दिया है।

उदित अगस्त पंथ जल सोखा। जिमि लोभहि सोखै संतोखा॥

सरिता[1] सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥२॥

अर्थ : अगस्त्य ने उदय होकर रास्ते का जल सोख लिया जैसे लोभ को सन्तोष सोख लेता है। नदी और तालाब मलरहित जल से शोभित हुआ। जैसे सन्त का हृदय मद मोह से रहित होकर शोभित होता है।

व्याख्या : अगस्त्य ने समुद्र सोखा था। अतः उदित होने पर जो जल सूर्य के सोखने से बचा रहता है उसे वह सोख लेते हैं। जहाँ अगस्त्य का उदय हुआ तहाँ रास्ते का जल सूखा। इसी भाँति जहाँ सन्तोष का उदय हुआ वहाँ लोभ नही रह जाता। यथा :

वन के वृक्षों मे लगते फल अनायास ही मिलते हैं। शीतल मधुर पुण्य सरिता जल सेतमेत के बहते हैं। कोमल पल्लव लतामयी बिस्तरे मुफ्त मे बनते हैं। क्यों ये भुक्खड़ धनियो के द्वार पर धक्के सहते हैं ?

धन मिला कठिनता से अवश्य उसका भी।
या व्यय होगा या नाश वियोग व्यथा भी॥
है लोप भला या उसका नही कमाना।
आया धन जावे दुख का नही ठिकाना॥
जो नानामुख विजयी तीनो लोको का।
जिसने चाहा था बन्धन द्विज देवो का॥
दसशीश रूप है लोभ उसे मारूँगा।
श्री रामचन्द्र को समता मैं पाऊँगा॥

इस भाँति जो लोभ ज्ञान सूर्य के सोखने से बच जाता है उसे सन्तोष सोखता है।

सरिता और तालाब मे जल बरसात भर मिट्टी के मिलने से गँदला रहता है। आश्विन मास मे ही मलरहित होकर शुद्ध होता है तब उसको शोभा होती है। यथा . सत हृदय जस निर्मल बारी। इस भाँति मोह मल से रहित होकर सन्त के हृदय की शोभा होती है।

---

१. यहाँ विनोक्ति . द्वितीय अलङ्कार है।

रस रस सूख सरित सर पानी । ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी ॥
जानि शरद ऋतु खंजन आये । पाइ समय जिमि सुकृत सुहाये ॥३॥

अर्थ : नदी और तालाव का पानी धीरे धीरे सूख रहा है। जैसे ज्ञानी धीरे धीरे ममता त्याग करते हैं। शरद ऋतु जानकर खंजन आये जैसे समय जानकर सुन्दर पुण्य आजाते हैं।

व्याख्या : नदी और तालाब का जल धीरे धीरे घटता है। इसी भाँति ज्ञानी धीरे धीरे ममता का त्याग करते हैं। अज्ञानी हठात् त्याग करके वान्ताशी होते हैं। यहाँ नदी तालाब की उपमा ज्ञानी से और जल की उपमा ममता से दी गयी है। जिस भाँति नदी तालाब मे सर्वथा जल का अभाव नही होता उसी भाँति ज्ञानी में भी सर्वथा ममता का अभाव नही होता। उसकी ममता जड़ से छूटकर स्व स्वरूप शुद्ध चेतन मे रह जाती है। बरसात में खञ्जन चले गये थे वे शरद का आगमन जान कर चले आये। जैसे अपने फल देने का अवसर जानकर पुण्य उदय हो जाते है। बिना पुण्य के सुख नही होता और बिना पाप के दुःख नही होता। जिस समय पाप के परिपाक का समय रहता है उस समय पुण्य नही दिखाई पड़ते। अपने फल देने के समय में आते हैं। इसीसे इनको खञ्जन से उपमित किया। भावार्थ यह कि शरद जानकर खञ्जन आये पर अभी तक सुग्रीव नही आये।

पंक न रेनु सोह अस धरनी । नीति निपुन नृप के जसि करनी ॥
जल संकोच विकल भइ मीना । अबुध कुटुम्बी जनु धन हीना ॥४॥

अर्थ : बिना कीचड़ और धूलि के पृथिवी ऐसा शोभा दे रही है जैसे नीति मे निपुण राजा की करणी शोभित हो। पानी की कमी से मछलियाँ ऐसी विकल हैं जैसे मूर्ख कुटुम्बी धनहीन होने से विकल होता है।

व्याख्या : पावस मे लोगों को कीचड़ से कष्ट होता है। ग्रीष्म में धूल से कष्ट होता है। शरद में कीचड़ भी नही रह जाता और धूल भी नही उड़ती। इसलिए उसे सुखद कहते हैं। राजा के अत्यन्त दयार्द्र होने से व्यवस्था बिगड़ती है और निष्ठुर होने से प्रजा सन्तप्त हो उठती है। अतः मध्यममार्ग अवलम्बन करनेवाले नीतिनिपुण राजा की करणी से ही प्रजा सुखी रह सकती है। धन ही जीवन है : जल है कुटुम्बी मछली है। उसके घटने से अबुध कुटुम्बी विकल हो उठते हैं। बुध नही। यथा : दोउ सम धीर धरहिं मन माँही।

बिनु घन निर्मल सोह अकासा । हरिजन इव परिहरि सब आसा ॥
कहुँ कहुँ दृष्टि सारदी थोरी । कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी ॥५॥

अर्थ : बिना बादल का आकाश सब प्रकार की आशा छोड़े हुए हरिजन की भाँति शोभायमान है। शरद काल मे कही कही वृष्टि होती है और सा भी अल्प परिमाण मे होती है। जैसे कोई एक ही मेरी भक्ति पाता है।

व्याख्या : शरद काल मे आकाश बड़ा निर्मल हो जाता है। वर्षा के कारण धूल दब जाती है और शरद काल में जब मेघ हट जाते हैं तो आकाश ऐसा स्वच्छ हो जाता है कि सूक्ष्म तारे भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगते है। इसी भाँति भगवद्भक्त जब सब आशा छोड़ देता है तब उसके हृदयाकाश मे भगवान् के सूक्ष्म गुण बहुत स्पष्ट प्रतिभात होने लगते हैं। यथा : जे पामर भये दास आस के ते सब ही के चेरे। रघुपति कृपा आस जीती जिन्ह ते सेवक हरि केरे।

शरत् काल मे मण्डल बाँधकर वर्षा नही होती। कही कही होती है और फिर भी अल्प मात्रा मे होती है। यही गति भक्ति की है। वह किसी एक को होती है और फिर भी यथेष्ट नही होती। यथा : धर्मसील विरक्त पुनि ज्ञानी। जीवन मुक्त ब्रह्म पर प्रानी। सब ते सो दुर्लभ सुरराया। राम भगति रत गत मद माया। यह भक्तिविषयक उपदेश है।

दो. चले हरषि तजि नगर नृप, तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरि भगति पाइ श्रम, तजहि आश्रमी चारि ॥१७॥

अर्थ : राजा तपस्वी व्यापारी और भिक्षुक नगर छोड़कर हर्षित चले। जैसे हरि भक्ति की प्राप्ति से चारो आश्रमवाले श्रम का परित्याग करते है।

व्याख्या : बरसात के कारण रास्ता बन्द था। बरसात भी बीत गयी। विजयादशमी आगयी। इसी दिन राजाओ की विजय यात्रा होती है। सभी लोग उस दिन सीमोल्लघन करते है और जिनकी यात्रा बरसात के कारण रुकी थी वे तो उसी दिन अपनी यात्रा आरम्भ कर देते है। ऊपर कह आये हैं : जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इन्द्रिय गन उपजे ग्याना। ज्ञान के उपजने से इन्द्रिय गण थककर रह गये थे। कवि कहते हैं कि भक्ति के आजाने से सभी थकावट : श्रम का परित्याग करते हैं और काम मे लग जाते हैं। भाव यह कि सम्पूर्ण संसारी अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए कार्य करते हैं। अतः इस भवाटवी मे वे श्रमित हुए भटका करते हैं और ज्ञानी की इन्द्रिय आत्मसाक्षात्कार से श्रमित हो जाती है। वह श्रम बिना भक्ति के जाता नही। *भक्त अपना सर्वस्व भगवान् को अर्पण कर देता है। उसका अपना* स्वत्व किसी वस्तु पर नही रह जाता। वह स्वय परमेश्वर का उसके लड़के वाले परमेश्वर के उसका धन धान्य परमेश्वर का वह जो कुछ करता है परमेश्वर प्रीत्यर्थं करता है। उसका निजी कोई हानि लाभ नही रह जाता। अतः : यद्यत् कर्म करोमि तत्तदखिल शम्भो त्वदाराधनम् : उसका प्रत्येक हलचल भगवान् का आराधन है। अत वह सब व्यापार आनन्दपूर्वक करता है। उसी ने श्रम का परित्याग किया है।

भावार्थ यह कि आज विजया दशमी को भी सुग्रीव ने सीमोल्लघन न किया।

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरिसरन न एकौ बाधा॥
फूले कमल सोह सर कैसा। निरगुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा॥१॥

अर्थ वे मछलियाँ सुखी हैं जो अथाह जल मे हैं। जैसे हरिशरण मे कोई बाधा नही होती। कमल फूलने से तालाब ऐसे शोभायमान हैं जैसे निर्गुण ब्रह्म सगुण हो गये हो।

व्याख्या जो ससार से भयभीत होकर रक्षा के लिए निष्कपट भाव से भगवान् के शरण जाता है। यथा श्रवन सुजस सुनि आयेउँ प्रभु भजन भव भीर। त्राहि त्राहि आरत हरन सरन सुखद रघुबीर। उसकी रक्षा स्वय भगवान् करते हैं। इसलिए उसे कोई बाधा नही होने पाती। यथा सीम कि चाँपि सकै कोउ तासू। बड रखवार रमापति जासू। इसलिए हरिशरण ग्रहण करनेवाले को उन मछलियो से उपमित किया है जो अगाध जल मे रहती हैं। मछली का जीवन जल है। उसके सङ्कोच से मछलियाँ विकल हो जाती हैं। अगाध जल मे किसी प्रकार का सङ्कोच नही है। अत स्वच्छन्द विचरण करती हैं। उनकी रक्षा अगाध जल करता है।

जिस तालाब मे कमल फूले हो उसकी उपमा सगुण ब्रह्म से और जिसमे न फूले हो उसकी उपमा निर्गुण ब्रह्म से दिया है। कमल की लता तालाब के जल के आधार से रहती है और जल को ही आच्छादन करती है। इसी भाँति माया का आधार ब्रह्म है और वह माया ब्रह्म को ही ढकती है। इस प्रकार आच्छादित ब्रह्म सगुन कहलाते हैं। यथा पुरइन सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म। मायाछन्न न देखिये जैसे निर्गुण ब्रह्म। पुरइन से फूल निकलते हैं। इसी भाँति माया द्वारा ब्रह्म का अवतार होता है। उनके अवतीर्ण होने से ऐसी शोभा अधिक हो जाती है जैसे तालाब की कमल खिलने से हो जाती है। इसी से शरद मे कमल के खिलने से निर्गुण ब्रह्म के सगुण होने का दृश्य स्मरण हो उठा।

गुजत मधुकर मुखर अनूपा। सुन्दर खगरव नाना रूपा॥
चक्रवाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर सपति देखी॥२॥

अर्थ बकवादी भौंरो के गूँजने की उपमा नही है। अनेक प्रकार की चिडिया चहचहा रही हैं। रात को देखकर चकवे के मन मे दु ख है। जैसे दूसरे की सम्पत्ति देखकर दुर्जन के मन मे दु ख होता है।

व्याख्या वसन्त के मधुकर के गुञ्जार की उपमा है पर शरद के गुञ्जार की उपमा नही है। इसलिए नही दिया वसन्त वर्णन मे मधुकर निकर भेरि सहनाई कह चुके हैं। सुन्दर खग गन गिरा सोहाई। जात पथिक जिमि लेत बोलाई। यह सब शोभा कमल के फूलने पर होती है।

शरत् काल की चन्द्रिका रात्रि की सम्पत्ति है। क्योकि उससे उसकी बडी शोभा होती है। पर चक्रवाक को वह सम्पत्ति उसी भाँति सह्य नही है जैसे परायो सम्पत्ति दुर्जन को सह्य नही होती सरद चन्द चन्दनि लगत जिमि चकई अकुलानि।

चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न सकर द्रोही॥
सरदातप निसि ससि अपहरई। सत दरस जिमि पातक टरई॥३॥

अर्थ : पपीहा रट लगाये हुए है। उसे बड़ी प्यास है जैसे शिवद्रोही को सुख की प्राप्ति नहीं होती। शरत् की धूप का रात का चन्द्रमा हरण कर लेता है। जैसे सन्त के दर्शन से पाप मिट जाता है।

व्याख्या : बारह महीने पपीहा जल के लिए रट लगाये रहता है। बरसात भी बीत गयी उसे जल न मिला। उसकी उपमा कवि शङ्करद्रोही से देते हैं। उसके अनुकूल वेदनीय घटना घट जाने पर भी उसकी प्यास नहीं बुझती। उसे कल नहीं पड़ता। सुखानुभव शङ्कर की कृपा बिना होता नहीं। यथा : इच्छित फल बिनु सिव अवराधे। लहिअ न कोटि जोग जप साधे।

अति निर्मल और तापहर होने से सन्त की उपमा शरत् चन्द्र से दिया। शरत् चन्द्र ताप हरते हैं और सन्त पाप हरते हैं। यथा : मुख दीखत पातक हरै, परसत कर्म बिलाहिं। बचन सुनत मन मोह गत पूरब भाग मिलाहिं।

देखि इंदु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई ॥
मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किये कुल नासा ॥४॥

अर्थ : चन्द्रमा को देखकर चकोर समूह इस भाँति देख रहे है जैसे हरिजन हरि को पाकर देखते हैं। मच्छर और डाँस ठण्डक के भय से नष्ट हो जाते हैं। जैसे ब्राह्मण के द्रोह से कुल का नाश हो जाता है।

व्याख्या : चकोर का समूह शरत् पूर्णिमा के चन्द्रमा को चारो ओर से एकटक देख रहे हैं। कवि कहते हैं कि इसी भाँति हरि को पाकर हरिजन एकटक होकर दर्शन करते हैं। यथा : एकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा। रामचन्द्र मुख चन्द्र चकोरा। तृप्ति नहीं होती।

नाश दो प्रकार का होता है। एक तो आत्यन्तिक और दूसरा व्याधि आदि द्वारा। अत्यन्त क्षीण होने को भी नाश कहते हैं। यहाँ पर दूसरे प्रकार का नाश अभिप्रेत है। हिम आया नहीं पर उसके निकट आने से ही मशक और दंश का विरल प्रचार हो जाता है। वे निर्बल पड़ जाते हैं। इसी भाँति ब्रह्मद्रोह की भावना से कुल की सुखसमृद्धि जाती रहती है और द्रोह करने से तो वंश ही नष्ट हो जाता है। यथा : बस कि रह द्विज अनहित कीन्हे।

दो. भूमि जीव संकुल रहे, गये सरद रितु पाइ।
सदगुरु मिले जाहिं जिमि, संसय भ्रम समुदाइ ॥१८॥

अर्थ : पृथ्वी मे जीव भरे थे। वे शरद्ऋतु आने से नष्ट हो गये। जिस भाँति सद्गुरु के मिलने से संशय और भ्रम का समुदाय नष्ट हो जाते हैं।

व्याख्या : वर्षा काल मे क्षुद्र जन्तुओ से पृथ्वी भर उठती है। पर वे शरद्-ऋतु के आगमन से नष्ट हो जाते हैं। उसी की उपमा देते हुए कहते हैं कि सद्गुरु के मिलने से जितने संशय और भ्रम है वे सब मिट जाते हैं। क्योंकि उनके वचन

महामोहतम पुञ्ज के नाश के लिए सूर्य की किरणों के तुल्य हैं। यथा : बंदौं गुरुपद कंज कृपासिंधु नररूप हर। महामोह तम पुंज जासु बचन रबिकर निकर। उनके नाश का दूसरा उपाय नहीं है।

बरषा गत निर्मल रितु आई। सुधि न तात सीता कर पाई ॥
एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं। कालहु जीति निमिष महुँ आनौं ॥१॥

अर्थ : वर्षा बीत गयी और निर्मल ऋतु आगयी। हे भाई ! सीता का पता न लगा। एक बार किसी भाँति सीता का पता लग जाय तो काल को जीतकर एक क्षण में ले आऊँ।

व्याख्या : वर्षा बिगत सरद ऋतु आयी से शरदऋतु के वर्णन का उपक्रम करके निर्मल रितु आयी कहकर उपसहार करते है। अर्थात् वर्षा के कारण अन्वेषण में जो बाधाएँ उपस्थित हो गयी थी वे सब हट गयी। रास्ता चलता हो गया। वर्षा भर निर्मल ऋतु का भरोसा था सो भी आधे के ऊपर बीत गयी। फिर भी सीता की सुधि नही पायी। वर्षा भर सन्तोष किये बैठे रहे। पर उद्योग का काल उपस्थित होने पर उद्योग होते न देखकर उत्कण्ठा बहुत बढ़ गयी। इसलिए लक्ष्मणजी कहते हैं कि कार्यसिद्धि में एकमात्र बाधक पता का न लगना है। सो कुछ भी तो पता लगना चाहिए। यहाँ पता लग जाय कि मर गयी तब निश्चय हो जाय कि काल के वश में है तो उसे जीतकर एक क्षण मे ले आऊँ। राजा लोग जिनका उठाया पिनाक न उठा सीताजी के लिए काल को जीतने का साहस करने लगे। यथा : एक बार कालहु किन होई। सिय हित समर जितब हम सोई। मैं तो एक क्षण मे काल के जीतने में समर्थ हूँ। यथा : काल ब्याल कर भक्षक जोई। उसे जीतकर सीता को लाऊँगा। गृहस्थ के जितने धर्मकृत्य हैं वे सब स्त्री के बिना निष्फल होते है। वह अपने धर्म से गिर जाता है। अतः उसकी स्त्री विषयक उपेक्षा अधर्म है।

५१. रामरोष प्रसंग

कतहुँ रहौ जौ जीवति होई। तात जतनु करि आनौं सोई ॥
सुग्रीवहु[1] सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोस पुर नारी ॥२॥

अर्थ : कही भी हो यदि हो तो हे भाई ! उसे यत्न करके ले आऊँ। सुग्रीव ने भी मेरी याद भुला दी। उसे राज्य कोष पुर और स्त्री मिल गयी।

व्याख्या : यदि नही मरी तब तो उसका पता लगाना चाहिए। पता लगने के लिए यत्न होना चाहिए। इस कार्य का भार सुग्रीव ने अपने ऊपर ले रक्खा था। यथा : सब प्रकार करिहौं सेवकाई। जेहि बिधि मिलहि जानकी आई। वह भी

१. ५१वाँ प्रसङ्ग रामरोष प्रारम्भ हुआ।

हमारा काम भूल गया। मैंने उसका काम पहले कर दिया। मित्र का धर्म ही यह है : निज दुःख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना। सो सुग्रीव ने मित्र धर्म का भङ्ग कर दिया। मेरे पर्वत ऐसे दुःख को भूल ही गया। जब राज कोप और नारी से हीन था तब मेरे दुःख को सुनकर दुःखी होता था। यथा : कह सुग्रीव नयन भरि वारी। मिलिहि नाथ मिथिलेस कुमारी। अब राज्य कोप पुर और नारी सब मिल गयी तो मुझे भूल गया। उचित तो यह था कि जिसके कारण से सबकी प्राप्ति हुई उसे न भूलता। मुझे तो इस समय उसी का भरोसा था सो वह कृतघ्न निकला।

हनुमान् तो भूल ही गया। जिसने कहा था : सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि। पर उसने मुझसे पाया क्या था ? सुग्रीव ने सब पाया। वह कैसे भूल गया। कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः। उसे अपने पूर्व अवस्था को और मेरे कष्ट को स्मरण करना चाहिए था।

जेहि सायक मारा मै बाली। तेहि सर हतहुँ मूढ कहँ काली ॥
जासु कृपा छूटहि मद मोहा। ताकहुँ उमा कि सपनेहु कोहा ॥३॥

अर्थ : जिस बाण से मैने बालि को मारा था उसी से कल उस मूढ़ को मारूँगा। जिसकी कृपा से मद मोह छूटता है हे उमा ! उसे क्या स्वप्न में भी क्रोध हो सकता है।

व्याख्या : आज भर और प्रतीक्षा करूँगा। यदि आज भी न आया तो कल मारूँगा। जिस बाण से बालि को मारा वह मेरा बाण खो नही गया है। उससे बालि न बच सका। यह क्या बचेगा ? यह भी बालि की भाँति मूढ हो गया है। उसने तो स्त्री की शिक्षा न सुनी और इसने तो मेरी शिक्षा का अनादर किया। मैंने कह दिया था : अगद सहित करहु तुम राजू। संतत हृदय धरेहु मम काजू। गत ग्रीषम वरषा रितु आई। रहिहौं निकट सैल पर छाई। सो मै उसके सन्निकट ही हूँ। तीन महीने बीत गये। उसने मुँह न दिखलाया। अतः आज और प्रतीक्षा करूँगा। प्रतीक्षा की पराकाष्ठा हो गयी। यदि आज आजाय तो कुशल है नही तो कल उसे मारूँगा।

ज्ञानघाट के वक्ता ने उचित समझा कि इस अवसर पर अपने श्रोता को सावधान कर दें। वह यह न समझ लें कि रामजी को वस्तुतः क्रोध हो गया। क्योकि मोहपूर्वक ही क्रोध होता है पर : इहाँ मोह कर कारन नाही। रवि सनमुख तम कबहुँ कि जाही। मोह ही नही हो सकता। क्रोध कैसे होगा ? इनकी कृपा जिस पर हो जाय उसे मद मोह बाधा नही कर सकता। यथा : सीम कि चाँपि सकै कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू। अतः यहाँ स्वप्न मे भी क्रोध की प्राप्ति नही है।

जानहि यह चरित्र मुनि ग्यानी। जिन्ह रघुबीर चरन रति मानी ॥
लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना। धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना ॥४॥

अर्थ इस चरित्र को ज्ञानी मुनि जानते हैं जिन्होने रघुनाथ के चरणो मे प्रेम लगा रक्खा है। लक्ष्मणजी ने समझ लिया कि प्रभु क्रुद्ध हैं तो धनुप पर प्रत्यञ्चा चढा ली और तरकस से बाण निकालकर हाथ म लिया।

व्याख्या कवि कहते है कि प्रभु के इस चरित्र को अज्ञानी नही समझ सकते। वे समझेंगे कि जिस भाँति इष्ट के अभिघात से मुझ क्रोध आया करता है उसी भाँति रामजी को भी आगया। परन्तु ज्ञानी जानते हैं कि परम ज्ञानी पुरुप अपना कुछ भी प्रयोजन नही रहने पर लोकसग्रहार्थं कार्य किया करते है। शुष्क ज्ञानी भी इसे नही समझते। जो ज्ञानी रघुनाथ के चरणो मे प्रेम रखते हैं अर्थात् जो ज्ञानी भक्त हैं वे ठीक समझते हैं। यथा तुम जो कहहु करहु सब साँचा। जस काछिय तस चाहिअ नाचा।

लक्ष्मणजी तो परम ज्ञानी भक्त है। उन्होने प्रभु को क्रोधवन्त कैसे जान लिया ? इसका उत्तर यही है राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करइ अन्यथा अस नहि कोई। प्रभु ने चाहा कि लक्ष्मण उन्हे क्रोधवन्त जान। इसलिए लक्ष्मणजी ने वैसा ही जाना। यहाँ पर रघुनाथजी ने जो कुछ दोप सुग्रीव का कहा वह इसीलिए कहा था। पर लक्ष्मणजी चुप रहे। सरकार की सहनशीलता को जानते है कि सुग्रीव से मैत्री हो चुकी है। प्रभु उनका सब कुछ सहन करेंगे। पर जब तेहि सर हतौं मूढ कहँ काली कहा तब लक्ष्मणजी ने जान लिया कि सरकार को रोप आगया। ऐसा सुन्दर नाट्य है कि लक्ष्मणजी को भ्रम हो गया कि क्रोध वास्तविक है। इसलिए धनुप चढाकर बाण निकाल लिया कि वालि बडा भाई था वह आपके हिस्से मे पडा था। सुग्रीव छोटा है यह मेरे हिस्से का है। उसे मैं आज मारता हूँ।

दो तब अनुजहि समुझावा, रघुपति करुना सींव।
भय देखाइ लै आवहु, तात सखा सुग्रीव ॥१८॥

अर्थ तब करुणा की सीमा रघुपति ने छोटे भाई को समझाया कि हे भाई! डर दिखलाकर ल आओ। सुग्रीव मरा सखा है।

व्याख्या लक्ष्मणजी अकेले किष्किन्धा के सहार मे समर्थ है। यथा जग महँ सखा निसाचर जेते। लछिमन हनहि निमिप महँ तेते। कही सचमुच जाकर सुग्रीव का वध न कर डालें। इसलिए करुणा की सीमा ने लक्ष्मणजी को समझाया

सवैया मीत को दोप सहै बिनु मीत को मीत बिना दुख कौन मिटावे।
मीत अनेक उपाय करै अरु मीत को लाइ सुपथ लगावे॥
मीत अनीत पै पाँव धरै तव मीतहि कोपित ह्वै डरपावे।
पै कतहूँ कबहूँ विजयानंद मीत की हानि हिये नहिं लावे॥

कवित्त
भोरी होत सुमति कविन्द औ मुनिनन्दन की विपय समीर की चपेटैं जबै चलती।
भूलि जात योग जप सयम समाधि नित्य नूतन अनङ्ग की उमङ्गैं चित चढती॥

कौन है कहाँ है हम बिसरि सुरत जाते माते मद सदियाँ निमेष की सी लगती।
दुखिया दिनों का आज सुखिया हुआ है ऐसे विषय बयारि में सुकण्ठ की क्या गिनती॥

अतः सुग्रीव को डराकर रास्ते पर ले आओ। यही मित्र धर्म है : कुपथ निवारि सुपथ चलावा।

इहाँ[1] पवन सुत हृदय बिचारा। राम काजु सुग्रीव बिसारा॥
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा॥१॥

अर्थ : यहाँ पवनसुत हनुमान्‌जी ने हृदय मे विचार किया कि रामजी के कार्य को सुग्रीव ने भुला दिया। तब निकट जाकर चरणो मे सिर झुकाया और चारो प्रकार से उसे कहकर समझाया।

व्याख्या : गोस्वामीजी हनुमान्‌जी के साथ हैं। इसलिए इहाँ कहते हैं। ग्रन्थ भर मे इहाँ और उहाँ शब्द के प्रयोग ध्यान देने योग्य हैं। कवि रामचरितमानस का साक्षात्कार कर रहे है। स्वय अपने को चरित मे सम्मिलित देख रहे हैं। ये सदा भगवान् के साथ रहते हैं। पर यदि भक्त और भगवान् पृथक् पृथक् स्थान मे हो तो भक्त के साथ रहेगे। इसलिए किष्किन्धा को इहाँ और प्रवर्षण गिरि को उहाँ मान रहे हैं। वहाँ रामजी ने विचारा : सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी। यहाँ पवनसुत ने विचारा : राम काज सुग्रीव बिसारा। यद्यपि हनुमान्‌जी सुग्रीव के साथ किष्किन्धा मे हैं। पर मन उनका रघुनाथजी के चरणो मे तन्मय है। शरत् की बाट जोह रहे हैं। बिना कुछ कार्य किये सामने जाने मे सङ्कोच है। वर्षा ऋतु मे खोजने का कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न नही हो सकता। अतः सुग्रीव से भी कुछ नही कहा। पर जब विजया दशमीवाली यात्रा का मुहूर्त टल गया तो रामजी और हनुमान्‌जी दोनो के मन मे एक साथ ही यह भाव उठा : राम काज सुग्रीव बिसारा। रामजी फिर भी प्रतीक्षा करते थे। पर हनुमान्‌जी सुग्रीव के निकट गये और रामजी के कहने से एक पखवारा : पक्ष पहिले ही जाकर सुग्रीव के चरणो मे प्रणाम किया।

सुग्रीवजी विषय मे आसक्त हो गये हैं। महल के बाहर नही निकलते। अतः हनुमान्‌जी उनके पास महल मे गये। सुग्रीव राजा हैं। हनुमान्‌जी मन्त्री हैं। सुग्रीवजी सूर्यपुत्र होने से गुरुपुत्र और रामजी के सखा हैं। सर्वतोभाव से पूज्य हैं। अतः उनके चरणो मे सिर नवाया और साम दान भय और भेद दिखलाकर समझाया। यथा :

साम : राम काज भूल्यो तुमहिं, चली सरद रितु बीति।
कपि समूह सिय खोज हित, भेजि निबाहो प्रीति॥
दान : जाको दीन्ह्यो राज लहि, करिय सकल सुख भोग।
तेहि सहायता देन को, आइ बन्यो संयोग॥

---

१. ५२वाँ प्रसङ्ग। कपिनाश प्रारम्भ हुआ।

भय : बालि बध्यो जेहि एक शर, भलो न तासु विरोध ।
उदासीनता देखि तब अवसि करेंगे क्रोध ।।

भेद . अंगद को युवराज करि, भली करी नृप नीति ।
सावधान होइय तुरत, जानि सीस पर भीति ।।

सुनि सुग्रीव परम भय माना । विषय मोर हरि लीन्हेउ ग्याना ।।
अब मारुत सुत दूत समूहा । पठवहु जहँ तहँ बानर जूहा ।।२।।

अर्थ : सुनकर सुग्रीवजी बहुत डर गये : पछताने लगे कि विषय ने मेरे ज्ञान को हरण कर लिया । बोले : हे मारुतसुत ! अब तुम दूतो को जहाँ जहाँ बानरो का समाज है वहाँ वहाँ भेजो ।

व्याख्या : सुनकर सुग्रीवजी बहुत डर गये । क्योकि रामजी ही एकमात्र उनके शरण थे । उनके कार्य को भूलना बडा भारी अपराध है । सुग्रीवजी उन भक्तो मे थे जो जागते सोते हर समय ही रामजी के शरण मे रहते हैं । चूक सभी से होती है पर भले को पश्चात्ताप होता है । इन्हे पछतावा हुआ कि मेरे ज्ञान को विषय ने हरण कर लिया । मैंने प्रभु से कहा था : सुख संपति परिवार बडाई । सब परिहरि करिहौं सेवकाई । सो मैं सुख सम्पत्ति परिवार बडाई मे मग्न हो गया । ये सब राम भक्ति के बाधक है । मेरी भक्ति मे भी इन सबो ने भारी बाधा पहुँचाई । मैं रामजी के कार्य को ही भूल गया । अत हनुमान्‌जी कहते हैं कि सम्पूर्ण विश्व मे सीताजी को खोजवाया है । अत विश्व भर के बानरो को बुलाना चाहिए और उन्हे खोज के लिए भेजना चाहिए । वे सम्पूर्ण विश्व मे फैल जायँ और सीताजी को खोज निकालें । अत तुम दूतो के समूह को जहाँ जहाँ बानर समूह हैं तुम्हारा सब जाना है वहाँ वहाँ भेजो ।

कहहु पाख महुँ आव न जोई । मोरे कर ताकर बध होई ।।
तब हनुमत बोलाए दूता । सब कर करि सनमान बहूता ।।३।।

अर्थ कह देना कि जो पन्द्रह दिन मे नही आयेगा उसका वध मेरे हाथ से होगा । तब हनुमान्‌जी ने दूतो को बुलाया और सबका बहुत सम्मान किया ।

सुग्रीवजी कहते हैं कि उन दूतो से कह देना कि वे जाकर एक पक्ष के भीतर ही सबको लिये दिये चले आयें । यदि पक्ष के भीतर कोई नही आया चाहे वह दूत हो और चाहे वह व्यक्ति हो जिसके पास दूत भेजे जाते हैं तो उसका वध राजा अपने हाथ से करेगा दूसरे का विश्वास न करेगा । अब सुग्रीवजी यह चाह रहे हैं कि कम से कम शरद के भीतर ही भीतर एक साथ खोज आरम्भ हो जानी चाहिए । सब ओर एक साथ खोज होने से स्थान परिवर्तन करनेवाले का भी पता लग जाता है ।

यहाँ तो आज्ञा मिलने की देर थी । हनुमान्‌जी राजा के बडे विश्वासपात्र

न्त्री हैं। सभी जानते हैं। दूत लोग मन्त्री के शासन मे रहते हैं। अतः उन्होने सब दूतों को बुलाया और बहुत सम्मान किया। पहिले ही दान नीति का प्रयोग किया।

तुलसी कहत पुकारि के सुनहु सकल दै कान।
हेम दान गज दान ते बड़ो दान सम्मान॥

भय अरु प्रीति नीति देखराई। चले सकल चरनन्हि सिर नाई॥
एहि अवसर लछिमनु पुर आए। क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाए॥४॥

अर्थ : हनुमान् जी ने भय प्रीति और नीति दिखलाई। सब चरणों मे सिर नवाकर चले। उसी अवसर मे लक्ष्मणजी पुर मे आये। उनका क्रोध देखकर वानरगण जहाँ तहाँ दौड़ पड़े।

व्याख्या : सम्मान करने के बाद राजा की आज्ञा सुनायी : गिरि कानन जहँ तहँ भरि पूरी। रहे निज निज अनीक रचि रूरी। पृथक् पृथक् पर्वत और वनो मे जाने के लिए पृथक् पृथक् दूतों को आदेश दिया कि तुम लोग वहाँ वहाँ जाकर सभी सरदारो को सेना सहित अपने साथ लेते आवो। पन्द्रह दिन बीतने न पावे। इसी बीच मे तुमको भी और उनको भी आजाना चाहिए। इनमे किसी को देर हुई तो उसका वध स्वयं राजा अपने हाथ से करेगा। भय दिखलाकर फिर प्रीति दिखलाया कि देखो राजा कैसा कृतज्ञ है। जिस भाँति रामजी से प्रीति निर्वाह करता है उसी भाँति सबके किये हुए कार्य को स्मरण रक्खेगा। फिर नीति दिखलायी कि जिस स्वामी का सर्वस्व भोग करते हो उसके कार्य मे धोखा न होना चाहिए।

दूत लोग भी बन्दर ही हैं। कोई सामान घर से लेना नही है। वे तुरन्त चरणों मे सिर नवाकर चल पडे। दूत बिदा हो गये और काम पूरा करके अभी नही लौटे उसी अवसर मे लक्ष्मणजी किष्किन्धा में आये। ये ही सुग्रीव को राज्य देने आये थे। इनसे सब परिचित हैं। उन्हे क्रुद्ध देखकर बड़ी दौड़ धूप मची। कुछ समाचार देने दौड़े। कुछ सेना को सावधान करने दौड़े। कुछ इकट्ठे होने लगे।

५२. कपि त्रास प्रसङ्ग

दो. धनुष चढ़ाइ कहा तब, जारि करौं पुरछार।
व्याकुल नगरु देखि तब, आयउ बालि कुमार॥१९॥

अर्थ : धनुष चढ़ाकर कहा कि पुर को जलाकर भस्म कर दूँगा। नगर को व्याकुल देखकर बालि के बेटा अङ्गद आये।

व्याख्या : तब लक्ष्मणजी ने धनुष चढाया और बोले कि अग्निबाण से इस पुर को जलाकर भस्म कर दूँगा। इस भरोसे न रहना कि मैं अकेला हूँ। तुम लोग सब मिलकर भी मेरा कुछ बिगाड़ नही सकते। यह सेना का संयोजन नगर मात्र को मेरे कोप का भाजन बनायेगा। मैं पूरे नगर को भस्म कर दूँगा। लक्ष्मणजी का वचन सुनकर नगर व्याकुल हो उठा। पता लगते ही अङ्गद जी आये। लक्ष्मणजी

के ही बनाये ये युवराज हैं। अपने का भाव यह है कि चाहे नगर भर सुग्रीव का हो पर मैं आपका हूँ। अथवा मैं युवराज हूँ राज कार्य मैं चलाता हूँ। नगरवासी निरपराध हैं। वे आपके क्रोध से व्याकुल हैं उनकी रक्षा कीजिए।

चरन नाइ सिरु बिनती कीन्ही। लछिमनु अभय बाँह तेहि दीन्ही ॥
क्रोधवंत लछिमनु सुनि काना। कह कपीस अतिभय अकुलाना ॥१॥

अर्थ : चरणों मे सिर नवाकर विनती की। लक्ष्मणजी ने उसे अभय बाँह दिया। लक्ष्मण क्रुद्ध हैं ऐसा कान से सुनकर बन्दरों के राजा सुग्रीव भय से व्याकुल होकर कहने लगे।

व्याख्या : अङ्गदजी ने पहिले आकर प्रणाम किया। चरणों मे सिर नवाया। तत्पश्चात् विनती की कि मुझे तो आप ही शरण हैं। मरती बार पिता ने रामजी को मेरी बाँह पकडा दिया है। मै तो उन्ही की शरण मे हूँ। मेरे तो गुरु पिता माता वे ही है। मैं बालक हूँ। ज्ञान बुद्धि बल से हीन हूँ। मेरी रक्षा कीजिये।

अभय बाँह अर्थात् अभय हस्त से अङ्गद का परितोष किया। देवताओ की मूर्तियो मे अभय और वरद हस्त कहीं-कहीं दिखलाया जाता है। उन्हे अभय मुद्रा और वरद मुद्रा कहते हैं। ऊपर उठा हुआ हाथ अभय दान का चिह्न है। सो लक्ष्मणजी ने अभयहस्त होकर अङ्गद का सन्तोष किया अथवा अभय करने के लिए उसके शिर पर हाथ रखा कि तुम्हारी रक्षा की जायगी। तुम्हे भय नहीं है। क्रोध का अभिनय हो रहा है। क्रोध से भरा हुआ पुरुष प्रेम से बात नही कर सकता। उस समय इङ्गित से ही अभयदान दिया जाता है जिसमे रौद्ररस का भङ्ग न हो।

नगर की व्याकुलता कहकर अब राजा की व्याकुलता कहते हैं। सुग्रीव के पास समाचार पहुँचा कि लक्ष्मणजी क्रुद्ध होकर आये है कि किष्किन्धा को जलाकर भस्म करेगे। यह शब्द कान मे पडते ही वानरराज अत्यन्त भय से व्याकुल हो उठे। प्रसङ्ग देखने से यही मालूम पडता है कि हनुमान्‌जी ने समाचार दिया। अङ्गदजी तो अपनी रक्षा के लिए लक्ष्मणजी के पास गये। पर हनुमान्‌जी मन्त्री हैं। राजा की रक्षा के लिए उनके पास गये। समाचार सुनाया। भाव यह कि जिस बात को मैं डरता था वही सामने आयी। लक्ष्मणजी क्रुद्ध होकर नगर मे आगये। नगर को जला डालने के लिए कह रहे हैं। अङ्गदजी उनके पास पहुँच गये। भारी भय उपस्थित है। अब जैसा उचित हो कीजिये। लक्ष्मणजी के क्रोध का समाचार पाकर नगर व्याकुल हो उठा था। सुग्रीवजी अति व्याकुल हो उठे। हनुमान्‌जी के पहिले समझाने पर ही परम भयभीत हो गये थे। अब उस भय के उपस्थित होने पर तो भय से अत्यन्त व्याकुल हो गये। लक्ष्मणजी के क्रुद्ध होने का अर्थ ही यही है कि सरकार अप्रसन्न हैं। जिनके शरण मे आकर ही सुग्रीव सुग्रीव हुए थे उस शरणद के ही क्रुद्ध होने पर ठिकाना कहाँ है। अत हनुमान्‌जी से बोले :

सुनु हनुमन्त संग लै तारा। करि बिनती समुझाउ कुमारा ॥
तारा सहित जाइ हनुमाना। चरन बन्दि प्रभु सुजस बखाना ॥२॥

अर्थ : हे हनुमान्! सुनो, तुम तारा को साथ लेकर जाओ और विनती करके कुमार लक्ष्मण को समझाओ। तारा सहित हनुमान्‌जी गये और चरण वन्दना करके प्रभु के सुयश की वर्णना की।

व्याख्या : इस व्याकुलता में भी सुग्रीव ने विचार से काम लिया। पुर ने तो कुछ बिगाड़ा नहीं है। मुझसे ही अपराध हुआ है। मैं ठीक समय से उनके कार्य का सम्पादन नहीं कर सका अतः मुझे दण्ड दिया चाहते हैं। क्रोध अधिक है इसलिए समाज के सहित दण्ड देने को कह रहे हैं। इस क्रोध के वेग में तुरन्त हमारा जाना ठीक नहीं। क्रोध के वेग के रुकने पर ही सामने जाना ठीक है। दया के उद्रेक के लिए तारा को साथ लेकर जाओ। अङ्गद गया है। उसकी माँ के जाने से उसकी बातें सुनेंगे। तुमने मैत्री जोड़ी है। यथा : तब हनुमन्त उभय दिसि की सब कथा सुनाइ। पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढाइ। अतः जो कुछ उन्हें कहना है वह तुमसे अवश्य कहेंगे और तुम्हारी बात सुनेंगे। इसलिए जाकर पहिले विनय करो। जब क्रोध का वेग कम हो जाय तब समझाओ। क्योंकि क्रोध का वेग सीधे सीधे समझाने से बढता है। विनय से ही क्रोध का वेग घटता है और तब समझाना भी काम करता है।

तदनुसार हनुमान्‌जी तारा को साथ लेकर गये। लक्ष्मणजी के चरणों की और प्रभु के सुयश का बखान करने लगे। भक्त को प्रभु का सुयश बड़ा प्रिय होता है। उससे उसे तुरन्त शान्ति मिलती है। प्रभु के सुयश का वर्णन ही उसके लिए सच्ची विनती है। अतः हनुमान्‌जी ने सुयश वर्णन प्रारम्भ किया।

यथा : अपराध अगाध भए जन ते, अपने उर आनत नाहिं न जू।
गनिका गज गीध अजामिल के, गनि पातक पुंज सिराहिं न जू ॥
लिये बारक नाम सुधाम दियो, जेहि धाम महा मुनि जाहिं न जू।
तुलसी भजु दीनदयालुहि रे, रघुनाथ अनाथहि दाहिन जू ॥
दसरत्थ को दानि सिरोमनि राम, पुरान प्रसिद्ध सुन्यो जसु मै।
नर नाग सुरासुर जाचक जो तुम सो मन भावत पायो न कै ॥
तुलसी कर जोरि करै विनती, जो कृपा करि दीन दयाल सुनै।
जेहि देह सनेह न रावरो सो, असि देह धराइ कै जाय जियै ॥
को भरिहै हरि के रितये, रितवै पुनि को हरि जौ भरिहै।
उथपे तेहि को जेहि राम थपै थपिहै तेहि को हरि जौ टरिहै ॥
तुलसी यह जानि हिये अपने, सपने नहिं कालहु ते डरिहै।
कुमया कछु हानि न औरन की, जौ पै जानकी नाथ कृपा करिहै ॥

करि बिनती मंदिर लै आये। चरन पखारि पलंग बैठाये॥
तब कपीस चरनन्हि सिरु नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा॥३॥

अर्थ : बिनती करके घर ले आये। चरणो को धोकर पलङ्ग पर विठलाया। तब सुग्रीवजी ने चरणो मे सिर झुकाया। लक्ष्मणजी ने उनको बाँहे पकड़कर गले से लगा लिया।

व्याख्या : रामजी के श्रवणामृत सुयश सुनने से जब क्रोध का वेग घटा तब बिनती किया कि अब गृह को पवित्र कीजिये। वानर राज बहुत भयभीत हैं। सामने नहीं आ रहे है। सरकार के प्रताप से ही निष्कण्टक राज्य पाकर सुखी हैं। उनके तो सर्वस्व आप ही हैं इत्यादि। इस भाँति लक्ष्मणजी को घर ले आये। पाद प्रक्षालन का विधान है तब पलङ्ग पर बिठाया। लक्ष्मणजी ने मित्र के पलङ्ग को अपनी समझकर स्वीकार किया और बैठ गये। पलङ्ग पर बैठने का अर्थ ही क्षमा करना है। तब सुग्रीवजी ने आकर चरणो मे सिर झुकाया। रामजी की चेतावनी थी : तात सखा सुग्रीव। अत लक्ष्मणजी ने उनकी भुजा पकडी और गले लगाया। समझा कि इनकी इतनी नम्रता बहुत है। भरतजी ने यह सुनकर कि निषादराज रामजी के सखा हैं उनके आने पर रथ पर से उतर पडे थे। अत उनका यथेष्ट सत्कार होना चाहिए।

नाथ विषय सम मद कछु नाँही। मुनि मन मोह करै छन माँही॥
सुनत विनीत बचन सुख पावा। लछिमन तेहि बहु बिधि समुझावा॥४॥

अर्थ : बोले हे नाथ! विषय के समान कोई मद नही है। क्षण भर मे मुनियो के मन मे क्षोभ उत्पन्न करता है। विनययुक्त वचन सुनकर लक्ष्मणजी सुखी हुए और उन्हे बहुत प्रकार से समझाया।

व्याख्या . विनययुक्त वचन से ही सुख होता है। यथा : मुनि रघुबीर परस्पर नवहीं। बचन अगोचर सुख अनुभवहीं। सुग्रीवजी सत्य और प्रिय वचन विचारपूर्वक बोलते हैं और जागते सोते सदा रघुनाथजी की शरण मे रहते हैं। स्वल्पाक्षरो मे सब कुछ कह दिया। नाथ सम्बोधन से सेवक सेव्य भाव का अक्षुण्ण होना जनाया। विषय मद को सब मदो से बडा कहकर यह बात जनाया कि मैं अपने होश मे नही था। समय का ज्ञान नही रहा। साक्षात् विश्वामित्रजी को अप्सरा के सामने दस वर्ष का दिन पल के समान बीत गया। मेरे मन मे मोह उपजना कौन सी बात है ? तब लक्ष्मणजी ने उन्हे अनेक विधि से समझाया। यथा :

तुमते मीत पुनीत लहि भे सनाथ रघुनाथ।
ऐसइ भाव स्वभाव को होन चहिय कपिनाथ॥

अवसि कृतारथ होहिगे, तव प्रताप बलराम।
धर्म धुरन्धर धीर सम बचन कहेहु अभिराम॥

ह्वै समर्थ निज दोप गुनि कौन सकै अस भाषि।
कै रघुपति कै कीशपति और न शंकर साखि॥
वल विक्रम मे राम के सरिस तुही कपिराय।
समुझि सुरन्ह दीन्ह्यौ हमहि तुम सन सबल सहाय॥
करिय वीर अव वेर नहि चलिय हमारे साथ।
धीरज दै समझाइये तिय विरही रघुनाथ॥

पवन तनय सब कथा सुनाई। जेहि विधि गये दूत समुदाई॥५॥

दो. हरखि चले सुग्रीव तव, अंगदादि कपि साथ।
रामानुज आगे करि, आये जहँ रघुनाथ॥२०॥

अर्थ : पवनसुत महावीरजी ने जिस भाँति दूतो के समूह भेजे गये वह सब कथा कह सुनाई। तब हर्षित होकर अङ्गदादि वन्दरो को साथ लेकर सुग्रीवजी चले और लक्ष्मणजी को आगे करके रघुनाथजी के पास आये।

व्याख्या : क्रोध का वेग देखकर अपराध स्वीकार कर लेना ही उपाय है। अतः हनुमान्जी ने पहिले दूतो का भेजा जाना नही कहा। सब प्रकार की शान्ति हो जाने पर हनुमान्जी ने दूतो के भेजे जाने की सब कथा लक्ष्मणजी को सुनायी। भाव यह कि आपका कार्य हो रहा है। वानरी सेना आना ही चाहती है। पन्द्रह दिन की अवधि देकर अमुक अमुक पर्वत और अमुक अमुक वनों में दूत भेजे गये हैं।

लक्ष्मणजी जब वृत्तान्त जान चुके तब राजा सुग्रीव हर्षित होकर चले। प्रभु के दर्शन को जा रहे हैं इसलिए हर्षित है। बडे भारी भय के हट जाने और लक्ष्मणजी से समादृत होने से हर्षित हैं। राजा के चलते ही युवराज अङ्गद मन्त्री हनुमान्जी सेनापति नीलादि साथ हो लिये। लक्ष्मणजी को आगे कर लिया। जिसमे दूर से ही रघुनाथजी को विदित हो जाय कि हम लोग लक्ष्मणजी के वश मे हैं अथवा शरण जाने मे श्रीरामानुज को ही आगे करना चाहिए।

नाइ चरन सिरु कह कर जोरी। नाथ मोहि कछु नाहि न खोरी॥
अतिसय प्रवल देव तव माया। छूटै राम करहु जौ दाया॥१॥

अर्थ : चरणो मे सिर झुकाकर और हाथ जोड़कर कहने लगे कि हे नाथ! मेरा कुछ भी दोप नही है। आपकी माया अत्यन्त ही प्रबल है। आप दया करें तो छूटे।

व्याख्या : श्रीरामजी किष्किन्धा के इतने सन्निकट ठहरे हुए हैं और इतने दिन हुए सुग्रीवजी कभी मिलने भी नही आये। प्रभु ने कहा था : संतत हृदय धरेहु मम काजू। उसे भी भुला दिया। जब लक्ष्मणजी जाकर नगर जलाने की धमकी दी तव आज मिलने आ रहे है। अत. अपने को सापराध मानते हुए चरणों मे पड़े और इन सब चूको का कारण बतलाते हुए हाथ जोड़कर सत्य और प्रिय

करि बिनती मंदिर लै आये। चरन पखारि पलंग बैठाये ॥
तब कपीस चरनन्हि सिरु नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा ॥३॥

अर्थ : विनती करके घर ले आये। चरणों को धोकर पलङ्ग पर विठलाया। तब सुग्रीवजी ने चरणों मे सिर झुकाया। लक्ष्मणजी ने उनकी बाँहे पकड़कर गले से लगा लिया।

व्याख्या : रामजी के श्रवणामृत सुयश सुनने से जब क्रोध का वेग घटा तब विनती किया कि अब गृह को पवित्र कीजिये। बानर राज बहुत भयभीत हैं। सामने नहीं आ रहे है। सरकार के प्रताप से ही निष्कण्टक राज्य पाकर सुखी है। उनके तो सर्वस्व आप ही हैं इत्यादि। इस भाँति लक्ष्मणजी को घर ले आये। पाद प्रक्षालन का विधान है तब पलङ्ग पर बिठाया। लक्ष्मणजी ने मित्र के पलङ्ग को अपनी समझकर स्वीकार किया और बैठ गये। पलङ्ग पर बैठने का अर्थ ही क्षमा करना है। तब सुग्रीवजी ने आकर चरणो मे सिर झुकाया। रामजी की चेतावनी थी : तात सखा सुग्रीव। अत लक्ष्मणजी ने उनकी भुजा पकडी और गले लगाया। समझा कि इनकी इतनी नम्रता बहुत है। भरतजी ने यह सुनकर कि निषादराज रामजी के सखा हैं उनके आने पर रथ पर से उतर पडे थे। अत उनका यथेष्ट सत्कार होना चाहिए।

नाथ बिषय सम मद कछु नाँही। मुनि मन मोह करै छन माँही ॥
सुनत बिनीत बचन सुख पावा। लछिमन तेहि बहु बिधि समुझावा ॥४॥

अर्थ : बोले हे नाथ! विषय के समान कोई मद नही है। क्षण भर मे मुनियो के मन मे क्षोभ उत्पन्न करता है। विनययुक्त वचन सुनकर लक्ष्मणजी सुखी हुए और उन्हे बहुत प्रकार से समझाया।

व्याख्या विनययुक्त वचन से ही सुख होता है। यथा : मुनि रघुबीर परस्पर नवही। बचन अगोचर सुख अनुभवही। सुग्रीवजी सत्य और प्रिय वचन विचारपूर्वक बोलते हैं और जागते सोते सदा रघुनाथजी की शरण मे रहते हैं। स्वल्पाक्षरो मे सब कुछ कह दिया। नाथ सम्बोधन से सेवक सेव्य भाव का अक्षुण्ण होना जनाया। विषय मद को सब मदो से बडा कहकर यह बात जनाया कि मैं अपने होश मे नही था। समय का ज्ञान नही रहा। साक्षात् विश्वामित्रजी को अप्सरा के सामने दस वर्ष का दिन पल के समान बीत गया। मेरे मन मे मोह उपजना कौन सी बात है? तब लक्ष्मणजी ने उन्हे अनेक विधि से समझाया। यथा

तुमते मीत पुनीत लहि भे सनाथ रघुनाथ।
ऐसइ भाव स्वभाव को होन चहिय कपिनाथ ॥

अवसि कृतारथ होहिगे, तव प्रताप बलराम।
धर्म धुरन्धर धीर सम बचन कहेहु अभिराम ॥

ह्वै समर्थ निज दोष गुनि कौन सकै अस भाषि।
कै रघुपति कै श्रीशपति और न शंकर साखि॥
बल विक्रम मे राम के सरिस तुही कपिराय।
समुझि सुरन्ह दीन्ह्यौ हमहिं तुम सन सबल सहाय॥
करिय वीर अब बेर नहि चलिय हमारे साथ।
धीरज दै समझाइये तिय बिरही रघुनाथ॥

पवन तनय सब कथा सुनाई। जेहि विधि गये दूत समुदाई॥५॥

दो हरखि चले सुग्रीव तब, अंगदादि कपि साथ।
रामानुज आगे करि, आये जहँ रघुनाथ॥२०॥

अर्थ पवनसुत महावीरजी ने जिस भाँति दूतो के समूह भेजे गये वह सब कथा कह सुनाई। तब हर्षित होकर अङ्गदादि बन्दरो को साथ लेकर सुग्रीवजी चले और लक्ष्मणजी को आगे करके रघुनाथजी के पास आये।

व्याख्या क्रोध का वेग देखकर अपराध स्वीकार कर लेना ही उपाय है। अत हनुमान्‌जी ने पहिले दूतो का भेजा जाना नही कहा। सब प्रकार की शान्ति हो जाने पर हनुमान्‌जी ने दूतो के भेजे जाने की सब कथा लक्ष्मणजी को सुनायी। भाव यह कि आपका कार्य हो रहा है। वानरी सेना आना ही चाहती है। पन्द्रह दिन की अवधि देकर अमुक अमुक पर्वत और अमुक अमुक वनो मे दूत भेजे गये हैं।

लक्ष्मणजी जब वृत्तान्त जान चुके तब राजा सुग्रीव हर्षित होकर चले। प्रभु के दर्शन को जा रहे हैं इसलिए हर्षित है। बडे भारी भय के छूट जाने और लक्ष्मणजी से समादृत होने से हर्षित हैं। राजा के चलते ही युवराज अङ्गद मन्त्री हनुमान्‌जी सेनापति नीलादि साथ हो लिये। लक्ष्मणजी को आगे कर लिया। जिसमे दूर से ही रघुनाथजी को विदित हो जाय कि हम लोग लक्ष्मणजी के संग मे हैं अथवा शरण जाने म श्रीरामानुज को ही आगे करना चाहिए।

नाइ चरन सिरु कह कर जोरी। नाथ मोहि कछु नाहि न खोरी॥
अतिसय प्रबल देव तव माया। छूटै राम करहु जौ दाया॥१॥

अर्थ चरणो मे सिर झुकाकर और हाथ जोडकर कहने लगे कि हे नाथ! मेरा कुछ भी दोष नही है। आपकी माया अत्यन्त ही प्रबल है। आप दया करें तो छूटे।

व्याख्या श्रीरामजी किष्किन्धा के इतने सन्निकट [illegible] दिन हुए सुग्रीवजी कभी मिलने भी नही आये। प्रभु ने [illegible] परेहु मम काजू। उसे भी भुला दिया। जब लक्ष्मणजी [illegible] धमकी दी तब आज मिलने आ रहे है। अत अपने [illegible] म पडे और इन सब चूको का कारण बतलाते हुए हाथ [illegible]

वचन विचारकर बोले कि नाथ ! मेरा कुछ भी दोप नही है। मैंने जानबूझकर कोई चूक नही किया। मैं अपने वश मे नही था। माया के वश मे पड गया। वह माया आपकी है। बडी ही प्रबल है। जीव मे इतनी सामथ्य नही कि अपने को छुडा सकें। मैंने पहिले ही विनती की थी अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि भजन करउँ दिन राती। सुख सम्पत्ति परिवार बडाई। आपकी भक्ति के बाधक है इन्हे मैं नही चाहता। पर मुझे राज्य दे दिया गया। मैं सुख सम्पत्ति परिवार बडाई मे पड गया। भजन भूल गया। मैंने जानबूझकर भजन नही बिसारा। मैंने आपकी माया का बल देखा। वह अत्यन्त ही प्रबल है। जीव की उसके सामने कुछ नही चल सकती। आप ही कृपा करें तो छूट सकती है। मेरे ऊपर बडी कृपा हुई इसमे सन्देह नही। पर माया से छोडानेवाली कृपा नही हुई। क्रोध मनोज मोह मद माया। छूटहिं सकल राम की दाया।

बिपय बस्य सुर नर मुनि स्वामी। मै पाँवर पसु कपि अति कामी॥
नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा॥२॥

अर्थ हे स्वामी देवता मनुष्य और मुनि सब विपय के वश्य हैं। मैं तो नीच पशु अति कामी बन्दर हूँ। स्त्री के नयनरूपी बाण जिसे नही लगे और क्रोध के घोरान्धकार मे जो रात को जागा।

व्याख्या जो माया ज्ञानियो के चित्त को अपहरण करके बलपूर्वक विमोह के वश कर देती है उसके वश मे देवता मनुष्य और मुनि सभी हैं। यथा सिव बिरंचि कहँ मोहै को है बपुरा आन। कोई उसके अतिक्रमण मे समर्थ नही है दैवी ह्येपा गुणमयी मम माया दुरत्यया। उसके सामने मेरी गिनती क्या ? मै तो नीच योनि पशु हूँ और पशुओ मे भी अति कामी बन्दर हूँ। पशुओ मे भी कुछ विचार पाया जाता है। जोडा जोडा साथ रहनेवाले अनेक जातिवाले पशु हैं। भैंसे मातृ गमन नही करते। जाति विशेप के बैल दूसरे जाति के बैल का जूठा नही खाते। कितनी जाति के पशु ऋतुकालाभिगामी होते हैं। बन्दरो मे कोई नियम किसी प्रकार का देखा नही जाता। इसलिए वे स्वभाव से अति कामी पामर पशु हैं। उनका माया वश मे पड जाना कौन सी बात है ?

नारिनयन जगद्विजयी कामदेव का बाण है। शूल कुलिश और वज्र के सहनेवाले भी इस बाण को नही सह सकते। यथा सूल कुलिस असि अगवनि हारे। ते रति नाथ सुमन सर मारे। जड जीव का क्या सामर्थ्य है कि उसे सह जाय ? अविद्या रात्रि है उसमे क्रोधरूपी घोर अन्धकार है। उस अन्धकार मे स्वभाव से ही सब सो जाते है अर्थात् मोह को प्राप्त होते है। रात्रि मे भी कुछ रात्रियाँ ऐसी हैं जिसमे उँजेला भी रहता है। उनमे जागने का अवसर मिलता है। परन्तु घोर अन्धकारयुक्त रात्रि मे तमाम सोता पड जाता है। दृष्टि के प्रसार न होने से सब सो जाते है। इसी भाँति क्रोधान्धकार के आने पर जगत् मूढ हो जाता है। उसमे जड जीव कैसे जाग सकते हैं।

लोभ पास जेहि गर न बँधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया॥
यह गुन साधन ते नहिं होई। तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई॥३॥

अर्थ : जिसने लोभ के फन्दे से अपना गला नहीं बँधाया वह मनुष्य हे रघुराई! तुम्हारे समान है। यह गुण साधन से नहीं होता। तुम्हारी कृपा से किसी-किसी को मिल जाता है।

व्याख्या : काम वाण है। यह प्राण हरण करता है। क्रोध अन्धकार है, इसमें विवेक दृष्टि लुप्त हो जाती है और लोभ पाश है। यह परवश कर देता है। लोभ से ही मनुष्य अपने को दूसरे के वश में कर देता है। दूसरे की गुलामी करता है। अनेक प्रकार का अपमान सहन करता है। लोभ के पाश में अपना गला मनुष्य स्वयं बँधाता है। उसे अपने को परवश करने में लज्जा नहीं होती। यथा : लोलुप भ्रमत गृह पसु ज्यों जहँ तहँ सिरपद त्रान बजे। तदपि अधम विचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजे। केवल आप में ये तीनों नहीं हैं। काम नहीं है। यथा : मोरे अति प्रतीति जिय केरी। जेहि सपनेउ पर नारि न हेरी। क्रोध नहीं है। यथा : सिसुपन ते पितु मातु बंधु गुरु सेवक सचिव सखाउ। कहत राम बिधु बदन रिसौं हैं सपनेहुँ लख्यो न काउ। लोभ नही है। यथा : राजिव लोचन राम चले तजि वाप को राज वटाउ कि नाईं। अतः जिनमें ये तीनों न हों वह मनुष्य तो तुम्हारे समान है। कामरहित होना क्रोधरहित होना और लोभरहित होना क्रियासाध्य नहीं हैं। कृपासाध्य हैं। काम क्रोध और लोभ के जय के लिए सभी साधक सचेष्ट होते हैं। पर इसमें कृतकार्य तो कोई एक ही होता है और वह तुम्हारी कृपा से होता है। यथा : तव लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना। जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा।

तब रघुपति बोले मुसुकाई। तुम्ह प्रिय होहि भरत जिमि भाई॥
अब सोइ जतनु करहु मन लाई। जेहि विधि सीता कै सुधि पाई॥४॥

अर्थ : तब रघुपति मुसकुराकर बोले कि तुम मुझे भाई भरत के समान प्रिय हो। अब मन लगाकर वैसा ही यत्न करो जिसमें सीताजी की सुधि मिले।

व्याख्या : मुसकुराने से अपराध का क्षमापन सूचित किया। क्रोध वनावटी था। मित्र का सामना पड़ते ही मुसकुरा पड़े। कहने लगे कि यह सन्देह न करो कि तुम्हारे ऊपर मेरी कृपा नही है। तुम भाई भरत के समान प्रिय हो। तुम्हारा स्मरण मुझे रात दिन बना रहता है। यथा : रामहि बन्धु सोच दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती। प्रिय होने में हनुमान्‌जी को लक्ष्मण की कोटि में गिना था। सुग्रीवजी को भरतजी की कोटि में गिन रहे हैं। अपराध अगाध भये जन ते अपने उर आनत नाहिन जू। कहते हैं कि अब मेरी अप्रसन्नता हटाने की चिन्ता न करो। अब सीता का पता लगाने की विधि के लिए मन लगाकर यत्न करो। यत्न तुमने आरम्भ कर दिया। इसमें सन्देह नहीं है पर मन लगाकर यत्न नहीं किया।

हनुमान्‌जी के स्मरण कराने पर भी दूतो को स्वयं बुलाकर नही कहना। हनुमान्‌जी को उन्हे बुलाकर कहने की आज्ञा देना। इस बात का प्रमाण है कि तुमने मन लगाकर यत्न नही किया। अब मन लगाकर करो।

५३ सुग्रीव दूत प्रेषण प्रसग

दो एहि विधि होत बतकही, आये बानर जूथ।
नाना बानर सकल दिसि, देखिअ कीस बरूथ ॥२१॥

अर्थ इस प्रकार बातचीत होती ही रही कि वानरी सेना आगयी। सब दिशाएँ वानरी सेना के कारण नाना रङ्ग के दिखाई पडने लगी अथवा नाना रङ्ग की वानरी सेना सब दिशाओ मे दिखाई पडती थी।

व्याख्या हनुमान्‌जी ने चारो ओर दूत भेजे थे। अत वे दूत चारो दिशाओ के पर्वत वना से वानरी सेनाओ को लिए हुए आ पहुँचे। पन्द्रह दिन का उनको समय दिया गया था। आज पन्द्रहवाँ दिन था। अत चारो दिशाओ से सेना पहुँचने लगी। बन्दर अनेक रङ्ग के होते हैं। एक-एक रङ्ग के बन्दरो की अलग अलग सेना है। अत इतनी बडी बडी सेनाएँ पृथक् पृथक् रङ्ग के बन्दरो की जो चारो दिशाओ से आयी तो उनके रङ्ग से दिशाएँ लाल, पीली, काली, नीली हो गयी। इससे वानरी सेना की अपारता कहा।

बानर कटक उमा मैं देखा। सो मूरुख जो करन चह लेखा ॥
आइ राम पद नावहिं माथा। निरखि बदनु सब होहिं सनाथा ॥१॥

अर्थ उमा! मैंने वानरी सेना देखी। जो उनकी लखा करना चाहे वह मूर्ख है। आकर रामजी के चरणो मे सिर नवाते हैं और मुख देखकर सब सनाथ होते हैं।

व्याख्या बात मन म बैठने योग्य नही है। अत शिवजी उमा से कहते हैं कि मेरी आँखो देखी बात है अथवा उमा अद्भुत दृश्य का स्मरण करके सेना की महत्ता बतलाने के लिए कहते हैं कि मैने देखा पर यह अन्दाज न कर सका कि सब मिला कर कितने बन्दर होगे। यथा महा बली बानर बिसाल भालु काल से कराल हैं रहे कहाँ? समाहिं कहाँ मही? लेखा करना पण्डित का काम है। मूर्ख लेखा नही कर सकता। पर वहाँ तो असख्य बन्दर थे। इनकी सख्या करने की इच्छा करनी ही मूर्खता थी।

सब के सब आकर रामजी के चरणो मे सिर नवा रहे हैं सुग्रीव के चरणो म नही करते। सबको मालूम है कि महाप्रभु रामजी हैं सुग्रीव तो उनके बनाये हुए राजा हैं। सर्वे पदा हस्तिपदे निमग्ना इन्ही के प्रणाम से सुग्रीव को भी तुष्टि है अथवा सभी प्रणामो का पर्यवसान रामजी के चरणो म ही होता है। यथा सर्वदेवनमस्कार केशव प्रति गच्छति। अत उन्ही को प्रणाम किया अथवा रामजी

के विद्यमान होने पर दूसरे को प्रणाम करना उचित नही समझा अथवा सुग्रीवजी का रुख है रामजी को ही प्रणाम करो।

प्रणाम करने के बाद सब मुख देखते हैं और सनाथ होते हैं। यही समय है अत्यन्त निकट आकर दर्शन करने का। अतः प्रणाम करके मुख देखते हैं और प्रभु को पहिचानकर सनाथ होते हैं। यथा : जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा। हरखे देव बिलंब न कीन्हा। बनचर देह धरी छिति माही। अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाही। गिरि तरु नख आयुध सब धीरा। हरि मारग चितवहिं मति धीरा। जबतक प्रभु को नही देखा था अपने को अनाथ मानकर नाथ के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। अतः नाथ को पहिचानकर सनाथ हो रहे हैं अथवा प्रभु के दर्शन से कृतार्थ होकर सनाथ हो रहे हैं।

अस कपि एक न सेना माँही। राम कुसल जेहि पूछा नाँही ॥
यह कछु नहिं प्रभु कै अधिकाई। बिस्व रूप ब्यापक रघुराई ॥२॥

अर्थ : एक भी वन्दर सेना मे ऐसा नही था जिससे रामजी ने कुशल न पूछा हो। यह प्रभु के लिए कोई विशेषता नहीं है। क्योकि रघुराई तो विश्वरूप व्यापक हैं।

व्याख्या : सेवकों ने ही प्रभु को पहिचाना यह बात नही। प्रभु ने भी सेवकों को पहिचाना और सबसे कुशलप्रश्न किया। यह कुशलप्रश्न आदर का द्योतक है। शङ्का उठती है कि जब इतने असख्य वन्दर थे तो सबसे कुशलप्रश्न करना कैसे सम्भव है ? बात यह है कि जीव के लिए तो यह बात अवश्य असम्भव है पर रघुराई के लिए नही। वे तो व्यापक हैं सभी के साथ सयुक्त हैं और सर्वरूप है। जिमि घट कोटि एक रवि छाही। वे सबसे एक साथ मिल सकते हैं। उनके लिए सबसे कुशलप्रश्न करना बड़ी बात नही है। ब्रह्म का जीव पर सहज स्नेह होता है। यथा : ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू। अत. स्नेही का कुशलप्रश्न न करना ही अनुचित है। यहाँ पर सरकार का स्वभाव कहते हैं। सामान्य राजा चाहे सेनापति से कुशल पूछ लें पर सैनिक से कुशल नही पूछते। यहाँ तो कोई वन्दर ऐसा बचा नही जिससे कुशल न पूछा गया हो। अस सुभाउ कहुँ सुनै न देखै। केहि खगेस रघुपति सम लेखै।

५४. सीता खोज

ठाढ़े[1] जहँ तहँ आयसु पाई। कह सुग्रीव सबहिं समुझाई ॥
राम काजु अरु मोर निहोरा। बानर जूथ जाहु चहुँ ओरा ॥३॥

अर्थ : आज्ञा पाकर सब जहाँ तहाँ खड़े हो गये और सुग्रीव सबको समझा

१. ५३वाँ प्रसग सीता खोज यहाँ से प्रारम्भ हुआ।

कर कहने लगे। एक तो रामजी का कार्य है और दूसरे मै निहोरा करता हूँ। इससे हे वानर समूह! चारो ओर जाओ।

व्याख्या : ज्यो सुग्रीवजी आज्ञा देने लगे सब के सब जहाँ के तहाँ खडे हो गये। सुग्रीवजी सबको समझाकर कहने लगे कि अमुक यूथप अमुक दिशा मे जायँ। और उनकी जानकारी के लिए उन उन दिशाओ के देश, पर्वत, नदी आदि का पता बतलाया और जहाँ तक गति है उन स्थानो की सीमा बतलायी। प्रयोजन बतलाते हुए कहा कि यह राज्यकार्य है इनके करने से तुम्हारा पारलौकिक कल्याण होगा और लोक मे भी तुम्हारा भला होगा। मैं राजा होकर तुम्हारा कृतज्ञ हूँगा।

जनक सुता कहुँ खोजहु जाई। मास दिवस महुँ आयेहु भाई॥
अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाएँ। आवइ बनिहि सो मोहि मराएँ॥४॥

अर्थ : जाकर राजा जनक की बेटी को खोजो। एक महीने के भीतर लौट आना। यदि बिना पता लगाये कोई महीने भर के बाद लौटेगा उसे मेरे हाथ से मरना पडेगा।

व्याख्या : जनकसुता कहने से जगद्विख्यात रूप कहा। भाव यह कि अति-रूपवती स्त्री देखना तब पता लगाना कि यह किसकी बेटी है। जब मालूम हो जाय कि राजा जनक की बेटी है तब लौटकर मुझे समाचार देना। भाई! सम्बोधन से अभिप्राय है कि तुम हमारे भाई हो। इस सङ्कट मे सहायता करो। यथा : ओढिअहि हाथ असनिहुँ के छाए। होहिं कुठाय सुबंधु सहाये। मैने प्रतिज्ञा की है कि : सब प्रकार करिहौं सेवकाई। जेहि बिधि मिलहि जानकी आई। सो तुम्हारे ही बल पर की है। अतः तुमलोग जानकीजी का पता लगाओ और महीने भर मे अवश्य लौट आना। तुम्हारा किया न हो सके तो लौटकर समाचार देना कि पता नही लग सका।

यदि पता लग जाय तो स्वयं आँख से देखकर तब लौटना। इस प्रयत्न मे देर भी हो जाय तो कोई चिन्ता नही। पर यदि पता भी न लगा और लौटने मे भी देर हुई तो वह अपराध अक्षम्य समझा जायगा। उसका वध दण्ड है।

दो. बचन सुनत सब बानर, जहँ तहँ चले तुरंत।
तब सुग्रीव बोलाये, अंगद नल हनुमंत॥२२॥

अर्थ : वचन सुनते ही सब बानर जहाँ तहाँ तुरन्त चल पडे। तब सुग्रीव ने अङ्गद नल और हनुमान्‌जी को बुलाया।

व्याख्या : ऐसी आज्ञा पाने पर बन्दरो ने एक क्षण का भी देर करना उचित नही समझा। अपनी अपनी निर्दिष्ट दिशाओ मे चल पड़े। पता पहले से ही था कि सीताजी का हरण करनेवाला उन्हे दक्षिण दिशा मे ले गया है। अतः विशेष रूप

दक्षिण दिशा म ही खोज करना था। अत अत्यन्त विश्वस्त तथा प्रख्यातपौरुष वीरो को उधर ही भेजना निश्चय करके बुलाया। सम्भव है कि हरण करनेवाले ने आगे जाकर मार्ग परिवर्तन कर दिया हो। इसलिए सभी ओर खोजने के लिए सेना भेजी यह दोहारूपी कमल अगली चौपाईरूपी पुरइन से सम्बद्ध है इस दोहा मे तीन सुभटो का नाम गिनाया। अङ्गद हनुमान् और नल का। परन्तु कवि को चार का नाम गिनना इष्ट है। अत शेष का अगली चौपाई मे गिनावेंगे।

सुनहु नील अगद हनुमाना। जामवत मति धीर सुजाना ॥
सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू। सीता सुधि पूंछेहु सब काहू ॥१॥

अर्थ हे नील ! अङ्गद युवराज है। हनुमान् और धीरमति सुजान जाम्बवान सुनो। सब वीर मिलकर दक्षिण दिशा मे जाओ और सीताजी की सुधि सबसे पूछो।

व्याख्या नील सेनापति हैं। अङ्गद युवराज है। हनुमान् और जामवन्त मन्त्री हैं। नल स्थपति इन्जीनियर। इनमे जाम्बवान् सबसे वयोवृद्ध हैं। इन्हे मतिधीर और सुजान विशेषण देकर यह द्योतित किया कि इनकी सम्मति से शेष वीर लोग काम करें। यथा जामवन्त मै पूछौ तोही। उचित सिखावन दीजहु मोही। अन्य दिशाओ मे एक ही एक सुभट भेजे गये। विनय पूर्व दिशा मे भेजे गये थे। शतबलि उत्तर दिशा मे। सुषेण पश्चिम दिशा मे भेजे गये थे। दक्षिण दिशा मे यद्यपि नाम पाँच का ही लेते हैं पर सकल सुभट कह कर यह दिखलाते हैं कि शेष सभी सुभट द्विविद मयद नील नल अगद गद विकटासि। दधिमुख केहरि निसठ सब जामवंत बलरासि। दक्षिण दिशा मे ही मैथिली सीताजी के ले जाने का पता चलता है। अत इस ओर अधिक प्रयत्न किया गया। सुग्रीवजी उपदेश देते हैं कि सीता का पता सबसे पूछना। भाव यह कि यह महामन्त्र है कि जिसकी खोज हो उसक विषय मे सबसे पूछे। यह विचार न करे कि अमुक व्यक्ति न जानता होगा उससे क्या पूछ अथवा वार बार निषेधात्मक उत्तर पाने से धैर्य न छोड़ें और पूछने म सङ्कुचित न हो। इसलिए सबसे पूछने का उपदेश दे रहे हैं।

मन क्रम बचन सो जतन विचारेहु। रामचन्द्र कर काज सँवारेहु ॥
भानु पीठ सेइअ उर आगी। स्वामिहि सर्वभाव छलत्यागी ॥२॥

अर्थ मनसा वाचा कर्मणा वही उपाय सोचना जिसमे रामजी का काम बन जाय। सूर्य की पीठ पीछे और अग्नि को हृदय से सेवा करे। पर स्वामी की तो सर्वतोभाव से छल छोडकर सेवा करनी चाहिए।

व्याख्या अग्रे वह्नि: पृष्ठे भानु। यही नियम है कि अग्नि की सेवा आगे से और सूर्य की सेवा पीछे से करनी चाहिए। इसी मे हित है। व्यतिक्रम होने से हानि की सम्भावना है। जाडा कलेजे म पैठ जाती है। यथा जडता जाड विषम डर लागा। अत अग्नि की सेवा डर से करनी चाहिए। सामने से सूर्य की सेवा करने से

नेत्रों में हानि पहुँचती है। पर स्वामी की सेवा सामने और पीठ पीछे भी सर्वतोभाव से करनी चाहिए। पीठ पीछे सेवा करनेवाले में छल की सम्भावना नहीं रहती। मुख के सामने सेवा करने में छल की सम्भावना रहती है। इसलिए सर्व भाव छल त्यागी कहा।

अथवा आगे से अग्नि और पीठ की ओर से सूर्य की सेवा करे तो जाड़ा चली जाय। पर जड़तारूपी जाड़ा तो स्वामी की छल छोड़कर सर्वतोभाव से भजन करने से ही जाती है। रामजी सबके स्वामी हैं। सौभाग्य से इनकी सेवा का अवसर प्राप्त हुआ है। अतः छल छोड़कर सर्वतोभाव से इनका कार्य करो।

तजि माया सेइअ परलोका। मिटहिं सकल भव संभव सोका॥
देह धरे कर यह फलु भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई॥३॥

अर्थ : माया का परित्याग करके परलोक का काम जब करे तब संसार से उत्पन्न सब शोक मिटते हैं। हे भाई! देह धारण का यही फल है कि सब कामनाओं को छोड़कर राम को भजे।

व्याख्या : माया का सर्वथा परित्याग नहीं हो सकता। शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध को छोड़कर कोई कहाँ जावेगा? गो गोचर जहाँ तक मन की दौड़ है वह सब माया ही तो है और बिना उसके त्यागे परलोक का सेवन हो नहीं सकता। शोक मोह संसार का बीज है। यह मैं और मेरा तैं और तेरा इन भावों के रहते हुए नष्ट नहीं हो सकता। अतः मन से अहंता और ममता का परित्याग करने से ही परलोक की सेवा सम्भव है। यथा : रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी। राम ब्रह्म ही परलोक रूप है। यथा : राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अतः इनकी सेवा सब कोई अहंता ममता परित्याग करके करो। पहिले स्वामिहि सर्वभाव छल त्यागी जो कहा है सो माया ही छल है। भाव यह कि देह और गेह की ममता छोड़कर जगदम्बा जानकी के खोज में लग जाओ। यथा : सो जननी सो पिता सोइ माइ सो भामिनि सो सुत सो हित मेरो। सोइ सगो सो सखा सोइ सेवक सो गुरु सो सुर साहिब चेरो। सो तुलसीप्रिय प्रान समान कहाँ लौ बनाइ कहौं बहु तेरो। सो तजि देह को गेह को नेह सनेह सों राम को होइ सवेरो।

देह धारण का फल कामभोग नहीं है। इससे तो इन्द्रियों का तेज नष्ट होता है। देह धारण का फल भजन है। क्योंकि बिना देह के राम भजन नहीं होता। देह में ममता इसलिए होनी चाहिए कि इसके द्वारा राम भजन होता है। यथा : तजौं न तनु निज इच्छा मरना। तनु बिनु बेद भजन नहिं बरना। जेहि तें कछु निज स्वारथ होई। तेहि पर ममता कर सब कोई। रामभगति यहि तन उर जामी। ताते मोहि परम प्रिय स्वामी। अर्थात् यह समय देह धारण के फल प्राप्त करने का आ गया है। अतः भाइयो! इस अवसर को न चूको। रामजी की सेवा में शरीर को लगा दो।

सोइ गुनज्ञ सोई बड भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी ॥
आयसु माँगि चरन सिरु नाई। चले हरषि सुमिरत रघुराई ॥४॥

अर्थं वही गुणज्ञ है और वही बडा भाग्यशाली है जो रघुबीर के चरण का अनुरागी हो। आज्ञा माँगकर और चरणो मे सिर नवाकर सब हर्षित होकर रामजी का स्मरण करते हुए चले।

व्याख्या कलाओ के ज्ञान से कोई गुणज्ञ नही होता और सुख सम्पत्ति के होने से कोई भाग्यशाली नही होता। कलाओ का ज्ञान और सुख सम्पत्ति तो पापी को भी होती है। जो प्रमादी वित्त मोह से मूढ हैं उन्हे परलोक प्रतिभात नही होता। वह इसी लोक को सब कुछ मान बैठता है परलोक नही मानता और बार बार यमराज के वश मे जाता है। अत भवभञ्जन के पद का जो अनुरागी है वही बडभागी है। रमा बिलास राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड भागी। कहा भी गया है कौपीनवन्त खलु भाग्यवत जिन्हे कौपीन लगोटी मात्र है वे ही भाग्यवान् हैं। जरउ सा सम्पति सदन सुख सुहृत मातु सुत भाइ। सनमुख होत जो रामपद करइ न सहस सहाइ।

तीन दिशाओ मे जो बन्दर सीताजी का समाचार लेने को भेजे गये उनका न तो प्रणाम करना और न हर्षित होकर चलना कहते हैं। अत उनके द्वारा कार्य सिद्ध का न होना द्योतित किया। दक्षिण दिशा के यात्री वीरो ने प्रणाम किया। आज्ञा माँगी और रघुराई का स्मरण करते चले। उनके ऊपर सुग्रीवजी के उपदेश ने काम किया। सुग्रीवजी ने कहा भजिअ राम सब काम बिहाई। सो वे रघुराई का स्मरण करते चल पडे।

पाछे पवन तनय सिरु नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा ॥
परसा सीस सरोरुह पानी। कर मुद्रिका दीन्हि जन जानी ॥५॥

अर्थं पीछे से हनुमान्जी ने सिर नवाया। इनके द्वारा कार्यसिद्धि जानकर प्रभु ने समीप बोलाया। उनके सिर पर करकमल फेरा और भक्त जानकर हाथ की अँगूठी दी।

व्याख्या हनुमान्जी परम अमानी हैं। अत सबके प्रणाम करने के बाद जाकर प्रणाम किया। सभी लोग दूर से प्रणाम करते है। उसी भाँति हनुमान्जी ने भी दूर से ही प्रणाम किया। सुग्रीवजी ने बार बार कहा है कार्यसिद्धिर्हनुमति कार्य सिद्धि तो हनुमान् मे है और प्रभु स्वय जानते हैं कि इस कार्य का सम्पादन हनुमान्जी करेंगे। इसलिए निकट बोलाया सन्देश कहने के लिए।

रक्षा का हाथ सिर पर फेरा। जेहि कर सभय किये जन आरत वारक बिवस नाम टेरे। शीतल सुखद छाँह जेहि कर की मेटत पाप ताप माया। हनुमान्जी को अभय किया और अपने हाथ की मुद्रिका दी सीताजी के पहिचान के लिए।

यह मुद्रिका अदेय थी। परम विश्वस्त को ही यह दी जा सकती थी। अतः अपना जानकर हनुमान्‌जी को दिया कि इसे सीताजी को ले जाकर देना। इसे पाकर वह तुम्हारे विषय में सन्देह न करेंगी और जब तक वे विरह में रहेंगी तब तक के लिए यह अँगूठी उनको आधार होगी।

बहु प्रकार सीतहि समुझायेहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आयेहु॥
हनुमत जनम सुफल करि माना। चले हृदय धरि कृपा निधाना॥६॥
जद्यपि प्रभु जानत सब बाता। राज नीति राखत सुरत्राता॥७॥

अर्थ : बहुत प्रकार से सीताजी को समझाना। मेरा बल और विरह कहना और जल्दी लौट आना। हनुमान्‌जी ने अपना जन्म सफल माना और हृदय में कृपानिधान को रखकर चले। यद्यदि प्रभु सब बात जानते हैं। परन्तु देवताओं के रक्षक रामजी राजनीति की रक्षा करते हैं।

व्याख्या : अब रामजी आदेश देते है कि सीताजी को बहुत प्रकार से समझाना। उनके हृदय में बड़ा विषाद होगा शीघ्र सान्त्वना न हो सकेगी। मेरा बल वर्णन करके उन्हे भरोसा देना और विरह वर्णन करके सान्त्वना देना। प्रेम पात्र को प्रेम है यह जानने से ही सान्त्वना होती है। मै तुम्हारे लौटने की प्रतीक्षा करता रहूँगा। अतः लौटने में शीघ्रता करना। सीता को लेते न आना। प्रभु हनुमान्‌जी के स्वभाव को देख चुके हैं कि सुग्रीवजी ने उनके पास हनुमान्‌जी को केवल शत्रु मित्र की परीक्षा के लिए भेजा था। सो ये महात्मा रामजी को पीठ पर चढ़ाकर लेते आये। सो इसी भाँति सीताजी को लेते न आवें। हनुमान्‌जी के पराक्रम को भी जानते हैं कि ये लाने मे समर्थ हैं। ऐसा होने से निशिचरहीन मही न हो सकेगी। इसलिए कहते है कि तुम जल्द लौट आना।

मुद्रिका प्राप्ति और सन्देश श्रवण से हनुमान्‌जी ने अपने जन्म को सफल माना। रूप से नाम की प्राप्ति हुई। समझ लिया कि इस कार्य का श्रेय सरकार मुझे देना चाहते हैं। यदि यह कार्य मेरे द्वारा न होना होता तो न मुझसे सन्देश कहते और न अँगूठी ही देते। सुग्रीवजी ने देह धारण का जो फल बतलाया था सो मुझे मिला और साथी लोग रघुराई को स्मरण करते चले। पर हनुमान्‌जी तो स्वयं कृपानिधान को हृदय में रखकर चले। भाव यह कि सरकार की मनोमय मूर्ति हृदय में धारण करके तब चले।

प्रश्न हो सकता है कि जब रामजी जानते ही थे कि कार्य हनुमान्‌जी द्वारा होगा तो इतने बन्दरों के भेजने का आडम्बर क्यों किया। इस पर कवि कहते हैं कि लोकशिक्षा के लिए राजनीति की रक्षा रामजी ने की। पता लगाने की जो विधि है उसका उल्लंघन नहीं किया।

दो. चले सकल बन खोजत सरिता सर गिरि खोह।
रामकाज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह॥२३॥

अर्थ : सब वन, नदी, तालाब, पहाड़ की कन्दराओं को खोजते हुए चले। रामजी के कार्य में मन लीन हो गया सो देह की ममता जाती रही।

व्याख्या : सभी ने सुग्रीवजी की आज्ञा का ऐसा पालन किया कि रामजी के कार्य मे तन्मय हो गये। वन खोजते चले। राक्षसी माया से सशङ्क होकर नदी तालाब और पर्वत के खोहों में भी घुसकर सीता को खोजते चले। ऐसे दत्तचित्त हुए कि उनको अपने शरीर की ममता नही रह गयी। स्वामिहि सर्व भाव छल त्यागी : इस उपदेश का साफल्य दिखलाते हैं :

कतहुँ होइ निसिचर सैं भेटा। प्रान लेहिं एक एक चपेटा॥
बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं। कोउ मुनि मिलै ताहि सब घेरहिं॥१॥

अर्थ : यदि कही राक्षस से भेंट हुई तो एक एक चपेटा मारकर उसका प्राण ले लेते थे और यदि कोई मुनि मिल जाता था तो उसे सब घेर लेते थे।

व्याख्या : अब सुग्रीवजी की इस आज्ञा का पालन हो रहा है कि : सीता सुधि पूछेहु सब काहू। वन के खोजने मे कही राक्षस मिल जाते थे। निसिचर निकर नारि नर चोरा। ये मनुष्यों को चोराते हैं। सीताजी को भी राक्षस ने ही हरण किया है। इनसे साम द्वारा काम निकल नही सकता। अतः चपेटा मार मारकर पूछते थे कि बता सीता कहाँ है? और उसका प्राण लेकर ही मानते थे और यदि कही मुनि मिल जाते थे तो उन्हें सब घेरते थे। अनुनय विनय से पूछते थे कि आप को जनकनन्दनी का कुछ समाचार ज्ञात है? वन और पर्वतों में अनेक प्रकार से खोजते हैं। कोई झाड़ी या गुफा ऐसी नही छूटती थी जहाँ इन लोगों ने न खोजा हो। कोई जगली जाति ऐसी न रह गयी जिसमे इन लोगो ने पता न लगाया हो।

लागि तृषा अतिसय अकुलाने। मिलै न जल घन गहन भुलाने॥
मन हनुमान कीन्ह अनुमाना। मरन चहत सब बिनु जलपाना॥२॥

अर्थ : उन लोगो को प्यास लगी तो अत्यन्त व्याकुल हो गये। कही जल मिलता नही था और घने जंगल में रास्ता भूल गये। हनुमान्‌जी ने मन मे अनुमान किया कि सब बिना पानी के मरा चाहते हैं।

व्याख्या : तुलसी जसि भवितव्यता तैसइ मिलै सहाइ। आपु न आवइ ताहि पहँ ताहि तहाँ लै जाइ। यही गति राजा भानु प्रताप की हुई। यथा : खेद खिन्न छुद्धित तृषित राजा बाजि समेत। ब्याकुल खोजत सरित सर जल बिनु भयउ अचेत। पर उनकी भवितव्यता खोटी थी। इनकी अच्छी है। भूख सही जाती है प्यास नही सही जाती। निर्जल वन था और ऐसा घना था कि दिशाओं का थाह नही लगता था। भूल गये कि किधर से आये और किस ओर जाना है। सबके कण्ठ ओठ और तालू सूख रहे हैं। भाव यह कि हनुमान्‌जी सिद्ध हैं। क्षुधातृषा की इन्हें बाधा नही हुई। पर दूसरों की गति देखकर इन्होंने अनुमान किया कि ये लक्षण मुमूर्षु के हैं। अब यदि इनको शीघ्र जल न मिलेगा तो सब के सब मर जावेंगे।

५४. विवर[1] प्रवेश प्रसंग

चढ़ि गिरि सिखर चहूँ दिसि देखा । भूमि विवर एक कौतुक देखा ॥
चक्रवाक बक हंस उड़ाहीं । बहुतक खग प्रबिसहिं तेहि माहीं ॥३॥

अर्थ : पर्वत की चोटी पर चढकर चारो ओर देखा तो भूमि के एक बड़े बिल मे एक अद्भुत बात दिखायी पड़ी कि चकवा, बगले और हंस उड़ रहे हैं और बहुत सी चिड़ियाँ उस बिल में घुसी जा रही हैं।

व्याख्या : घने जंगल में यह पता नही लगता कि किस ओर कितनी दूर पर कोई आश्रय बस्ती तालाब या नदी है। बिना किसी उच्च स्थान पर चढ़े कुछ थाह नहीं लगता। जंगल इतना बड़ा है कि पेड़ों पर चढ़ने से काम चलनेवाला नहीं। हनुमान्‌जी बुद्धिमतां वरिष्ठ हैं : बड़े बुद्धिमान् हैं। एक पर्वत के शिखर पर चढ गये और चारों ओर देखने लगे कि किसी ओर कुछ जल का पता लगता है या नही। सो कोई तालाब या नदी तो नही दिखायी पड़ी। पर एक दरार के ऊपर चकवे बगले और हंस उतरे दिखायी पड़े। ये जल पक्षी हैं : जल के पास ही रहते हैं। अतः यह आशा हुई कि उस स्थान पर जल है। पक्षी बिल मे घुसते कभी देखे नही गये। पर वहाँ यह कौतुक दिखायी पड़ा कि बहुत से पक्षी उसमे प्रवेश कर रहे हैं। इससे निश्चय हुआ कि उस बिल मे जल है।

गिरि ते उतरि पवन सुत आवा । सब कहुँ लेइ सोइ बिवर देखावा ॥
आगे कै हनुमंतहि लीन्हा । बैठे बिबर बिलंबु न कीन्हा ॥४॥

अर्थ : हनुमान्‌जी पर्वत पर से उतर आये और सबको ले जाकर वह विवर दिखलाया। सबने हनुमान्‌जी को आगे कर लिया और विवर के पैठने मे देर न की।

व्याख्या : पवन सुत हैं। इन्हे पर्वत पर चढने उतरने मे कोई आयास नही है। पर्वत से नीचे उतर आये सब हाल कहा और सबको ले जाकर वह विवर दिखला दिया कि इसी मे पानी है। विवर के भीतर न जाने क्या है? ऊपर गुल्म लताओं से ढका है। भीतर घोर अंधकार के सिवा कुछ दिखायी नही पड़ता है। अनजान स्थान मे घुसना है और बिना घुसे दूसरी गति नही है। प्यास बढ़ती ही जा रही है। मरना ही है तो बिना पानी क्यो मरें तो भी हनुमान्‌जी को आगे कर लिया। सभी जानते थे कि संकटमोचन यही हैं। यदि कोई विघ्न उपस्थित होगा तो उसे वे ही दूर कर सकेंगे। तुरन्त एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए बिल मे घुसे। अधिक विचार के लिए समय नही था।

दो. दीख जाइ उपवन बर सर बिगसित बहु कंज ।
मंदिर एक रुचिर तहँ बैठि नारि तप पुंज ॥२४॥

---

१. ५४वाँ विवर प्रवेश प्रसङ्ग आरम्भ हुआ।

अर्थ वहाँ जाकर उत्तम बाग देखा। तालाब था जिसमे बहुत से कमल खिल थे। एक सुन्दर मकान था जिसमे एक तप पुज स्त्री बैठी हुई थी।

व्याख्या उसी अन्धकार म कुछ दूर घुसते चल गये तब दिखायी पडने लगा कि भीतर बडा अवकाश था। सुन्दर फल फूल से युक्त उपवन था। तालाब था जिसमे कमल फूल हुए थे। परन्तु वहाँ कोई मनुष्य नहीं था। केवल एक सुन्दर मकान था जिसमे एक तपोमूर्ति स्त्री बैठी हुई थी।

दूरि ते ताहि सबन्हि सिरु नावा। पूँछे निज वृत्तात सुनावा॥
तेहि तब कहा करहु जल पाना। खाहु सुरस सुन्दर फल नाना॥१॥

अर्थ दूर से ही सबने उसे सिर नवाया और पूछने पर अपना वृत्तान्त कह सुनाया। उसने कहा कि जलपान करो और सुन्दर स्वादवाल अनेक प्रकार के फल खाओ।

व्याख्या इतने भूखे प्यासे होने पर भी जल और फल पर नही टूटे। उस उपवन के स्वामी को ढूँढने लगे कि उसकी आज्ञा पा लें तो जल ग्रहण करें। उस मकान मे गये तो वह मकान सब गुणो से युक्त मणि वस्त्रादि से पूर्ण था। दिव्य भोज्य पदार्थ रक्खे हुए थे पर कोई मनुष्य उसमे नहीं था। ये महात्मा वानर माँ की भाँति परनारो और विष से भी बडा विष पराये धन को माननेवाल थे। आश्चर्य म आकर उस घर को ढूँढा तो उसमे सुवर्ण के आसन पर बैठी हुई ध्यान में निमग्न एक योगिनी को देखा। इन लोगो ने दूर से ही उसे प्रणाम किया।

उस योगिनी ने पूछा कि तुम लोग कौन हो? किसके दूत हो? मेरे स्थान म क्या आये हो? तब हनुमान्जी ने कहा कि देवि! मै तुमसे सब कहता हूँ सुनो। अयोध्या के राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र श्री रामचन्द्र हैं। वे पिता का वचन मानकर भाई और स्त्री के साथ वन मे चल आये। उनकी स्त्री को दुष्ट रावण हरण कर ल गया। तब रामजी भाई के साथ सुग्रीव के यहाँ आये। सुग्रीव ने मित्र भाव से उनकी स्त्री को खोजने के लिए हम लोगो को भेजा है। सो इस घोर वन म उनकी स्त्री जानकी को खोजते खोजते जल के लिए इस घोर गह्वर मे घुसे। दैवात् यहाँ आ पडे। हे शुभे! तुम यहाँ किसलिए रहती हो? और कौन हो? सो बताओ।

योगिनी ने कहा कि पहिल तुम लोग जल पी लो और पेट भर सुस्वादु नाना प्रकार के फल खा लो तब मैं अपना वृत्तान्त सुना दूँगी।

मज्जन कीन्ह मधुर फल खाये। तासु निकट पुनि सब चलि आये॥
तेहि सब आपनि कथा सुनाई। मैं अब जाब जहाँ रघुराई॥२॥

अर्थ वानरो ने मज्जन किये मीठे फल खाये और तब सब उनके पास

चले आये। उसने सब अपनी कथा सुनायी और कहा कि अब मै वहाँ जाऊँगी जहाँ रघुपति रामचन्द्र है।

व्याख्या : मज्जन कीन्ह पंथ श्रम गयऊ। सुचि जल पियत मुदित मन भयऊ। बन्दरो ने थकावट मिटाने के लिए स्नान किया जलपान किया मीठे मीठे फल खाये। सब प्रकार से सन्तुष्ट होकर उसके पास चले गये। पहिले स्नान नही किया था अतः दूर से ही प्रणाम किया। अब स्नानादि से शुद्ध हैं अतः उसके निकट चले गये। तब उसने अपनी कथा सुनायी कि विश्वकर्मा की पुत्री दिव्य-रूपिणी हेमा नामवाली थी। उसने नृत्य से महादेवजी को प्रसन्न कर लिया। शिवजी ने प्रसन्न होकर उसे यह दिव्य पुर दिया। यहाँ वह सहस्रो वर्ष रह चुकी है। उसी की मैं सखी हूँ। मोक्ष के लिए विष्णु भगवान् की उपासना करती हूँ। मेरा नाम स्वयंप्रभा है। हेमा जब ब्रह्मलोक को जाने लगी तब मुझसे कहा कि तुम यही तप करो। त्रेता मे साक्षात् नारायण राजा दशरथ के पुत्र होगे। वे भू भार के हरण करने के लिए वन मे घूमेगे। उनको स्त्री को खोजते हुए बानर तेरी गुहा में आवेंगे। उनकी पूजा करके और रामजी की स्तुति करके तुम विष्णु के सनातन योगिगम्य लोक को प्राप्त होगी। अब मुझे श्रीरामचन्द्र के दर्शन की जल्दी है।

मूँदहु नयन बिवर तजि जाहू। पैहहु सीतहि जनि पछिताहू॥
नयन मूँद पुनि देखहिं बीरा। ठाढे सकल सिन्धु के तीरा॥३॥

अर्थ : आँख बन्द करो बिल के बाहर चले जाओगे। सीता की प्राप्ति होगी। पछतावा न करो। वीरो ने आँख बन्द करके खोला तो अपने को समुद्र के किनारे खड़ा पाया।

व्याख्या : तब बन्दर लोग पछताने लगे कि सीता के खोजने की अवधि तो यहाँ विवर मे ही बीत गयी और अब तक हम लोगो को कोई पता न लगा। तब योगिनी ने कहा कि इस गुहा के भीतर आकर कोई बाहर नही जा सकता। मैं योगबल से तुम लोगो को बाहर भेजती हूँ। आँखें बन्द कर लो। गुफा के बाहर चले जाओगे। सीताजी मिलेंगी पछताओ मत। तदनुसार बन्दरो ने आँखें बन्द कर ली और जब खोला तो अपने को समुद्र के किनारे खडा पाया। स्वय न कही गये न आये। केवल आँखें बन्द कर ली और खोली। पर योगिनी के योग के प्रभाव से वे गुफा के बाहर निकल गये और समुद्र के किनारे पहुँच गये। यहाँ योगबल से काल का अतिक्रमण करना दिखलाया।

सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा। जाइ कमल पद नायेसि माथा॥
नाना भाँति बिनय तेहि कीन्ही। अनपायनी भगति प्रभु दीन्ही॥४॥

अर्थ : फिर वह जहाँ रघुनाथ रामजी थे वहाँ गयी। जाकर कमल ऐसे चरणो मे माथा नवाया। नाना भाँति से उसने विनती की। प्रभु ने उसे अविरल भक्ति दी।

व्याख्या : बन्दरों को गुफा के बाहर समुद्र किनारे खड़ा करके तब वह योगिनी प्रभु के पास गयी। हेमा के उपदेशानुसार उसने बन्दरो की पूजा की। फल और जल से उनका सत्कार किया। अपनी कथा सुनाकर उनको आश्वासन दिया कि तुम लोग दैवात् नहीं आगये। पहिले से ही जैसा नकसा बँधा हुआ है उसी के अनुसार आये हो। यह सब हेमा मुझसे पहिले ही कह चुकी है। उसी नकसे के अनुसार सीता तुम्हें मिलेंगी। फिर उनकी सहायता भी उन्हे गुफा के बाहर निकालकर की। लंका के सामने समुद्र तीर पर खड़ा कर दिया जहाँ से सम्पाती द्वारा उन्हें सब पता मिल सके। तत्पश्चात् वह हेमा के उपदेशानुसार ही प्रभु के पास गयी। बन्दरों से न पूछा कि प्रभु कहाँ हैं। अपनी योगविद्या से जानकर चली गयी। चरणों पर गिरी और बहुत विनती की। अपाय विघ्न को कहते हैं। अनपायिनी भक्ति से अभिप्राय उस भक्ति से है जिसमें विघ्न नही होता। वही भक्ति प्रभु ने उस योगिनी को दी।

दो. बदरीवन कहुँ सो गई प्रभु अग्या धरि सीस।
उर धरि राम चरन जुग जे बन्दत अज ईस ॥२५॥

अर्थ : प्रभु की आज्ञा सिर पर धारण करके रामजी के दोनों चरणो को जिन्हे ब्रह्मा और शङ्कर बन्दना करते हैं हृदय में धरकर बदरीवन को गयी।

व्याख्या : विन्ध्य आदि पर्वतों पर तपःसिद्धि होने के बाद हिमालय पर तपस्या करने के लिए आदेश मिलता है। ऐसी प्रसिद्धि आज भी महात्माओं में है। स्वयंप्रभा को बदरिकाश्रम जाने की आज्ञा हुई। जहाँ साक्षात् नरनारायण तपस्या करते हैं। वह श्री रामजी के चरणो को हृदय मे धारण करके वहाँ चली गयी। उन चरणो की महिमा कहते है कि उन्हे ब्रह्मदेव और शिवजी वन्दना करते है। यथा : कोसलेन्द्रपदकंजमंजुलौ कोमलावजमहेशवंदितौ। जानकीकरसरोजलालितौ चिंतकस्य मनभृंगसंगिनौ।

५५. सम्पाती मिलन प्रसङ्ग

इहाँ बिचारहिं कपि मन माँही। बीती अवधि काज कछु नाँही॥
कह अंगद लोचन भरि बारी। दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी॥१॥

अर्थ : यहाँ वानर मन मे विचार करते हैं कि अवधि बीत गयी और काम कुछ न हुआ। अङ्गद आँखों में आँसू भरकर कहने लगे कि हम लोगो की दोनों प्रकार से मृत्यु हुई।

व्याख्या : यह तो वहाँ का हाल कहा जहाँ रामजी है। अब यहाँ का हाल कहते हैं जहाँ वन्दर लोग हैं। कवि अपने समाज मे भक्तों के साथ हैं इसीलिए इहाँ कहा। सभी वानर अपने मन मे विचार करते हैं कि एक महीने की अवधि तो गुफा मे ही बीत गयी और काम कुछ भी नही हुआ। सीताजी के दर्शन को कौन

कहे उनका पता भी कुछ न लग सका। सब समुद्र के किनारे खड़े हैं जहाँ तक जल बढ़कर भाद्रपद बदी चतुर्दशी तक पहुँचता है वहाँ तक तो गर्भसंज्ञा है उसके बाद तट कहलाता है। तीर तो और भी दूर तक रहता है। योगिनी ने समुद्र के तीर ले जाकर खड़ा कर दिया। अब आगे क्या किया जाय? कोई बात समझ में नहीं आती। निराश होकर अङ्गद आँखों में आँसू भर लाये। वे ही सबके नायक हैं। सो कहने लगे कि संसार में लोग एक ही मृत्यु से मरते हैं। कोई चर्म मांसमयी शरीर की रक्षा यशोमयी शरीर के नाश से करते हैं और कोई यशोमयी शरीर की रक्षा के लिए चर्ममांसमयी शरीर को न्योछावर कर देते हैं। हमारी तो दोनों प्रकार की मृत्यु हुई।

इहाँ न सुधि सीता कै पाई। उहाँ गये मारिहि कपिराई ॥
पिता बधे पर मारत मोही। राखा राम निहोर न ओही ॥२॥

अर्थ: यहाँ तो सीताजी की सुधि न मिली और वहाँ जाने पर कपिराज सुग्रीव वध करेंगे। वे तो पिता के मरने पर ही मुझे मार डालते पर रामजी ने मेरी रक्षा की। इसमें उनका निहोरा नहीं है।

व्याख्या: सीता की सुधि न पाने से यशोमयी शरीर का हनन हुआ और वहाँ घर पर जाने से सुग्रीव इस चर्म मांसमयी शरीर का हनन करेगा। यथा: अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाएँ। आवै बनिहि सो मोहि मराएँ: अतः हमारे ऐसा अभागा कौन होगा जिसका यश भी जाय और प्राण भी जाय। यदि कहो कि तुम्हें न मारेंगे सो बात भी नहीं। हमें तो पहिले ही मारेंगे। वे तो पिता के मारे जाने के बाद ही हमें मारते पर रामजी ने रक्षा कर ली। मुझे युवराज बना दिया। राजकार्य सब मेरे हाथ आगया। अब तो हम रामजी के भी अपराधी हो गये। सीताजी की बिना सुधि पाये अवधि बिता दी। अब हमारी रक्षा कैसे होगी।

असकहि लवन सिन्धुतट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई ॥
जामवंत अंगद दुख देखी। कही कथा उपदेस बिसेषी ॥३॥

अर्थ: ऐसा कहकर लवण सिन्धु के किनारे जाकर सब वानर कुश बिछा कर बैठे। जाम्बवान ने अङ्गद का दुःख देखकर विशेष उपदेश व कथा कही।

व्याख्या: ऐसा कहकर अङ्गद लवण सिन्धु के तट पर जाकर जहाँ का पानी भी पीने योग्य नहीं अनशन करने के लिए कुशा बिछाकर बैठ गये कि यहीं शरीर छोड़ेंगे। यश बच जायगा। संसार कहेगा कि पता न लगा तो लौटे भी नहीं। सभी बन्दरों ने अङ्गदजी का अनुसरण किया। इसीलिए कहते हैं कि बैठे कपि सब दर्भ डसाई। सबकी समवेदना अङ्गद के साथ है। यहाँ तीर और तट का भेद स्पष्ट है। पहिले समुद्र के तीर खड़े रहे। अब जाकर तट पर बैठे।

अङ्गद ही सबके नायक है। वे ही इस प्रकार से दुःखी हो रहे हैं। किसी का

साहस नही होता कि सान्त्वना दे और क्या कहकर दे। अङ्गद ठीक कहते हैं। जब मरना ही है तो यश की रक्षा क्यो न करें। अपराधी की भाँति क्यो मारे जायँ? जाम्बवान मतिधीर और सुजान है वे नही घबराये। अङ्गद को दुखी देखकर ऐसी कथा कही जिसमे विशेष उपदेश हो। परमेश्वर भलाई के लिए ही सकट उपस्थित करते हैं। इसमे साहस और धैर्य न छोडना चाहिए अथवा पृथ्वी के दु खी होने की ब्रह्मदेव की स्तुति करने की आकाशवाणी की और देवताओ के अवतार की कथा कही। निशाचरो के दण्ड देने के लिए ही सीताहरण होने दिया है। उनका कार्य स्वय सिद्ध है।

तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु॥
हम सब सेवक अति बड़ भागी। संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी॥४॥

अर्थ : हे तात! रामजी को मनुष्य न मानो। निर्गुण ब्रह्म अजित और अज जानो। हम सब सेवक अत्यन्त बड़भागी है। सदा सगुण ब्रह्म के अनुरागी बने रहते है।

व्याख्या : यह दु.ख जो तुम्हे हो रहा है वह रामजी को मनुष्य मानने से हो रहा है। रामजी मनुष्य मानना ही बडा भारी अभाग है। वही तो सुगम मार्ग अवतरण का है। निर्गुण ब्रह्म मे तो वाणी बुद्धि और मन का प्रवेश नही होता इसलिए देवता लोग भी अवतारो की ही उपासना करते हैं। अत. अवतार मे मनुष्य बुद्धि रखनेवाले ब्रह्म की उपासना से ही वञ्चित हो जाते है। हीरा को पत्थर जाननेवाले अभागी हैं। वे उसका प्रस्तर बुद्धि से परित्याग करते हैं। राम निर्गुण ब्रह्म हैं। सगुण रूप मे भी उनको निर्गुणता अक्षुण्ण बनी है। वे जायमान मालूम होने पर भी अज हैं। वे पराजित से जान पड़ने पर भी अजित हैं। तुम अपने को अभागी क्यो समझते हो? निर्गुण ब्रह्म के उपासक भाग्यवान् है और हम सब तो अति भाग्यवान् है। क्योकि सगुण ब्रह्म मे अनुराग रखते है। निर्गुण ब्रह्म के उपासको को अधिक क्लेश है। हम लोगो को सगुण उपासना मे आनन्द ही आनन्द है। अतः हम लोग अति भड़भागी हैं।

दो. निज इच्छा प्रभु अवतरइ, सुर महि गोद्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ, रहहि मोक्ष सुख त्यागि॥२६॥

अर्थ : प्रभु अपनी इच्छा से देवता, पृथ्वी, गाय और ब्रह्म के लिए अवतार धारण करते हैं। तब सगुण ब्रह्म की उपासना करनेवाले मोक्षसुख का परित्याग करके साथ रहते है।

व्याख्या : निर्गुण ब्रह्म का इच्छा द्वारा अवतार होता है। यथा : इच्छामय नर देत सँवारे। होइहो प्रकट निकेत तुम्हारे. उनका जीव की भाँति कर्म परवश जन्म नही होता। कारागार देखने जाने से सम्राट् कैदी नही कहा जाता। ये हो ससार के सार हैं, देवता, पृथ्वी, गौ और ब्राह्मण के लिए अवतार धारण करते हैं।

कहकर निकट गया और पूछा कि जटायु कैसे मरा ? किसने मारा ? क्या क्या हुआ ? सो सब बातें मुझे बतलाओ। बन्दरों ने जटायु की सब कथा जिसका वर्णन आरण्य काण्ड में हो चुका है : कह सुनायी।

काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि राम करि अद्भुत करनी। गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा। स्याम गात बिसाल भुज चारी। इत्यादि। इस भाँति रामधाम प्रयाण सुनकर उसने रामजी की महिमा का बहुत भाँति से वर्णन किया। सम्पाती चन्द्रमा मुनि से रामजी की महिमा सुन चुका है। अतः वह महिमा का जानकार है। बन्दरों को आश्वासन देने तथा धैर्य बँधाने के लिए उसने बहुत विधि से रामजी की महिमा का वर्णन किया।

दो. मोहि लै जाहु सिन्धु तट, देउँ तिलांजलि ताहि।
बचन सहाइ करबि मैं, पैहहु खोजहु जाहि ॥२७॥

अर्थ : मुझे समुद्र तट पर ले चलो। उसे तिलाञ्जलि मुझे देना है। मैं तुम लोगो की सहायता बचन से करूँगा। जिसे तुम लोग खोज रहे हो उसे पाओगे।

व्याख्या : ताकी क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम। उसकी क्रिया तो श्रीरामजी ने जैसा उचित था पुत्रवत् कर दिया। मैं भाई हूँ। उसे तिलाञ्जलि तो देऊँ। मैं पर्वत के नीचे नहीं उतर सकता। मुझे तुम लोग पर्वत के नीचे लाद ले चलो जिसमें समुद्र के जल से उसका तर्पण करूँ। जिसको तुम लोग खोज रहे हो उसका पता मैं जानता हूँ। तुम लोगो को बतलाऊँगा। मै भाई की भाँति क्रियारूप से किसी प्रकार की सहायता करने का सामर्थ्य नही रखता। पर बचन से तुम लोगो की सहायता करूँगा। स्वयंप्रभा ने कहा था : पैहहु सीतहिं जनि पछिताहू। यहाँ सम्पाती आश्वासन देता है : पैहहु खोजहु जाहि।

५६. [1]संपाती कथा श्रवण प्रसङ्ग

अनुज क्रिया करि सागर तीरा। कहि निज कथा सुनहु कपि बीरा॥
हम द्वौ बन्धु प्रथम तरुनाई। गगन गए रबि निकट उड़ाई॥१॥

अर्थ : भाई की क्रिया समुद्र के किनारे करके अपनी कथा कहने लगा कि हे वीर वानरो ! सुनो ! हम दोनो भाई चढ़ती जवानी मे आकाश मे उड़ते सूर्य के निकट जा पहुँचे।

व्याख्या : पक्षियो में और कीटों मे भी और्ध्वदेहिक कृत्य का विधान देखा गया है। चीटें और पक्षी विशेष को गङ्गाजी मे शव का प्रवाह करते देखा गया है। यद्यपि जटायु की वीरगति प्राप्ति के बाद रामजी द्वारा उसका कृत्य किया जाना उसे अपने धाम भेजने की कथा सुन चुका है। फिर भी उसने समुद्र के किनारे भाई

---

[1] ५६ वाँ सम्पाती कथाश्रवण प्रसङ्ग प्रारम्भ हुआ।

की जल दानादि क्रिया कर्तव्य बुद्धि से की। तीर्थ म क्रिया करने का विशेष महत्त्व है। इसलिए समुद्र के किनारे जाकर क्रिया की। चेतना के तारतम्यानुसार कर्तव्य पालन का प्रातिभाव्य भी बढता है। क्रिया कर लेने के बाद बन्दरो मे उत्साह बढाने के लिए अपनी कथा सुनाने लगा। बोला की बीर बन्दरो ! सुनते जाओ।

मै और जटायु दोनो भाई थे। चढती जवानी थी। दोनो को बल का अभिमान था। परीक्षा के लिए सूर्यमण्डल तक उडने का सङ्कल्प करके उड चले। हजारो योजन ऊपर उडते ही चले गये। जितना सूर्य के निकट पहुँचते गये ताप बढता गया। इतने निकट पहुँचे कि ज्वालामाल का प्रभाव हम लोगो पर पडने लगा इससे अपना वेग भी कहा कि एक ही दिन मे सहस्रो योजन ऊपर चले गये।

तेज न सहि सक सो फिर आवा। मै अभिमानी रवि नियरावा॥
जरे पख अति तेज अपारा। परेउ भूमि करि घोर चिकारा॥२॥

अर्थ वह तेज सह न सका लौट आया। मै अभिमानी था। सूर्य के निकट चला गया। अत्यन्त अपार तेज से मेरे पक्ष जल गये और मैं चिग्घाड मारकर पृथ्वी पर गिरा।

व्याख्या इतने ऊँचे उडने पर भी हम दोनो भाई थके नही। पर जटायु तेज न सह सका लौट आया। पर मै अभिमानी था। अभिमान के कारण उस तेज की भी परवाह न करके ऊपर उडता ही चला। इतनी घोर वेदना सहन करके भी उस ज्वालामाल मे घुसते ही चल जाने का सिवा अपने उत्कर्ष प्रदर्शन के और कोई प्रयोजन नही था। अभिमानी अपने उत्कर्ष प्रदर्शन के लिए क्या नही करते।

सूर्यनारायण का तेज अत्यन्त अपार है। उसका उल्लङ्घन जीव के सामर्थ्य के बाहर की बात है। अधिक निकट जाने पर मेरे पङ्खो म आग लग गयी और वे जल उठे। पक्षी को तो पक्ष का ही सहारा होता है। उसके जलने पर फिर गति कहाँ ? मैं दीन होकर चिग्घाडता हुआ पृथ्वी पर गिरा।

मुनि एक नाम चद्रमा ओही। लागी दया देखि करि मोही॥
बहु प्रकार तेहि ज्ञान सुनावा। देह जनित अभिमान छँडावा॥३॥

अर्थ एक चन्द्रमा नाम के मुनि थे। उन्ह मुझे देखकर दया आगयी। उन्होने बहुत प्रकार से मुझे ज्ञान सिखाया और देह से उत्पन मेरा अभिमान छुडा दिया।

व्याख्या तीन दिनो तक अचेतावस्था मे पडा रहा। यही नही मालूम होता था कि मैं कहाँ हूँ। देखा तो मुझे बहुतो ने पर मुझपर चन्द्रमा नामक मुनि को हो दया आयी। उन्होने बहुत प्रकार से ज्ञान सिखाया। जिसमे मेरा देहाभिमान जाता रहा। उन्होने कहा बेटा ! मेरी बातें सुनो। फिर जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करना। इस दु ख का देह ही मूल है और देह कर्म से हुआ है। देह म अहंबुद्धि होने से ही जीव कर्म म प्रवृत्त होता है। अहकार का कारण अविद्या है। इस जड अहङ्कार मे चेतन की छाया है। इसी के तादात्म्य से देह चेतनावाला हो जाता

है। तब आत्मा मे मैं देह हूँ ऐसी वुद्धि हो जाती है। यही ससार का मूल है। निर्विकार आत्मा का देह के साथ तादात्म्य मिथ्या है। मै देह हूँ मै कर्त्ता हूँ यह सङ्कल्प करके ही जीव कर्म करता है और उसके फल से वँध जाता है। तब पुण्यात्मा और पापी वनकर उच्च और नीच योनियो को प्राप्त होता है। इसी भाँति ससार सागर मे बहता फिरता है। मैंने वहुत पुण्य किया। मुझे स्वर्ग होगा। इस भावना से उसे स्वर्ग होता है। स्वर्ग भोगकर फिर नीचे गिरता है। माँ के गर्भ मे आता है। उसमे बहुत दु ख पाता है। यथा

आगे अनेक समूह ससृत उदरगत जान्यो सोऊ।
सिर हेठ ऊपर चरन संकट वात नही पूछे कोऊ॥
सोनित पुरीष जा मूत्र मल कृमि कर्दमावृत सोवई।
कोमल शरीर गँभीर वेदन सीस धुनि धुनि रोवई॥

तू निज करम जाल जहँ घेरो। श्रीहरी सङ्ग तज्यो नहि तेरो॥
बहु विधि प्रतिपालन प्रभु कीन्हो। परम कृपालु ज्ञान तोहि दीन्हो॥

तोहि दियो ग्यान विवेक जनम अनेक की तब सुधि भई।
तेहि इसकी ही सरन जाकी विषम माया गुन मई॥
जेहि किये जीवनिकाय वस रसहीन दिन दिन अति नई।
सो करौ वेगि सँभार श्रीपति विपति महँ जेहि मति दई॥

पुनि वहु विधि गलानि जिय मानी। अव जग जाइ भजौ चक्रपानी॥
ऐसहि करि विचार चुप साधी। प्रसवपवन प्रेरेउ अपराधी॥

प्रेरेउ जो परम प्रचण्ड मारुत कष्ट नाना तै सह्यौ।
सो ग्यान ध्यान विराग अनुभव जातना पावक दह्यौ॥
अति खेद व्याकुल अल्प वल छिन एक वोलिन आवई।
तव तीव्र कष्ट न जान कोउ सब लोग हरषित गावई॥

इसी प्रकार से वालपन का दु ख सभी लोग भोगते हैं। तुमने सब अनुभव किया ही है। इसलिए यौवनादिक का दु ख मैं वर्णन नही करता। इस प्रकार से अभिनिवेश द्वारा ही मैं देह हूँ इस अध्यास से नरक पतन गर्भवासादि दु ख होते हैं। स्थूल और सूक्ष्म देह से पृथक् प्रकृति से परे आत्मा को जानकर देहादि की ममता छोडकर ज्ञानवान होओ। जाग्रदादि अवस्थाओ का त्याग करके सत्य ज्ञानादि लक्षण शुद्ध वुद्ध तथा सदा शान्त आत्मा को जानो। चिदात्मा के जान लने पर और मोह के नष्ट हो जाने पर चाहे देह गिर जाय अथवा प्रारब्ध कर्म के वेग से ठहरा रहे। उससे कोई प्रयोजन नही रह जाता। इसलिए जबतक प्रारब्ध का नाश न हो तबतक तुम सुख से केँचलीवाले सर्प की भाँति बन रहो।

त्रेता ब्रह्म मनुज तनु धरिही। तासु नारि निसिचर पति हरिही॥
तासु खोज पठइहि प्रभु दूता। तिनहि मिले तै होव पुनीता॥४॥

अर्थ : त्रेता मे ब्रह्म मनुष्य शरीर धारण करेंगे। उनकी स्त्री को राक्षसराज हरण करेगा। उनके खोज के लिए प्रभु दूत भेजेंगे। उनसे मिलकर तुम पवित्र हो जाओगे।

व्याख्या : शोक मोह के नाश के लिए ही ज्ञानोपदेश दिया। देह मे जो अहबुद्धि थी सो जाती रही। शान्ति आयी। तब आशा भी देते हैं कि यदि देहाभिमान रहता तो इतने दिनो की प्रतीक्षा के लिए धैर्य न होता। मुनिजी त्रिकालदर्शी थे। यह कथा सत्ययुग की है। ब्रह्मदेव से कश्यप कश्यप से अरुण और अरुण से सम्पाती की उत्पत्ति हुई। अतः कहते हैं कि त्रेता मे ब्रह्म मनुष्य शरीर धारण करेंगे। भाव यह कि सत्ययुग मे तो मीन, कमठ, शूकरादि अवतार होते हैं। उनमे लीला अधिक नही होती। मनुष्य अवतार धारण करेगे तब लीला करेगे। उनकी स्त्री का हरण राक्षसो का राजा रावण करेगा। उसके खोजने के लिए प्रभु दूत भेजेंगे। इस भाँति चार काण्डो की कथा कही। पहली अर्धाली से बाल, अयोध्या और आरण्य की कथा कही और दूसरे से किष्किन्धाकाण्ड की कथा कहते हैं। उन्हे मिलने पर तुम पवित्र होगे। भाव यह कि दग्धाङ्ग होने से अभी तुम अपवित्र हो। तुम दीन न हो कि मै कैसे जीऊँगा? क्या मैं सदा पक्षहीन होकर ही रहूँगा? इत्यादि। व उन दूतो के मिलने से तुम पवित्र होगे। भाव यह कि मैं तुम्हारे दर्शन से पविग्न हुआ। तुम लोग राम दूत हो। अपने को दीन हीन क्यो मानते हो? सब बातें पहिले से ही निर्णीत हैं। वैसी ही होगी। तुम लोग नही जानते। इसी से दु.खी हो रहे हो।

जमिहहि पंख करसि जनि चिंता। तिन्हहि देखाइ दिहेसु तैं सीता॥
मुनि कइ गिरा सत्य भइ आजू। सुनि मम बचन करहु प्रभु काजू॥५॥

अर्थ : तुम्हे पख जम जावेगे। तुम चिन्ता न करो। तुम उन्हे सीता दिखला देना। आज मुनिजी की वाणी सत्य हुई। अब मेरी बात सुनकर प्रभु का कार्य करो।

व्याख्या . देखो मुनिजी ने जो आश्वासन दिया था वह कैसा सत्य उतर रहा है। त्रेता मे ब्रह्म ने रामावतार धारण किया। उनकी स्त्री को निशिचर पति ने हरण भी किया। रामजी ने तुम लोगो को दूत बनाकर भेजा है और मुझसे भेंट भी हो गयी। इसीलिए कहता हूँ कि मुनिजी ने जो बात सत्ययुत मे कहा था वह आज त्रेता मे सच्ची उतर रही है। अब मुझे तुम्हे सीताजी को दिखला देना है। मेरी बातो को सुनकर तुम लोग काम मे लग जाओ। अकर्मण्य होकर चिन्ता न करो। मै सीता को अब तुम्हे दिखलाता हूँ।

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। तहँ रह रावन सहज असंका॥
तहँ असोक उपवन जहँ रहई। सीता बैठि सोच रत अहई॥६॥

अर्थ : त्रिकूट पर्वत के ऊपर लङ्का बसी हुई है। वहाँ रावण रहता है। वह

स्वभाव से ही बेडर है। वहाँ अशोक वन है जहाँ सीताजी रहती हैं और बैठी हुई सोच मे मग्न हैं।

व्याख्या . ये लोग इतने ऊँचे पर हैं कि वहाँ से देखनेवाले को सीता दिखायी पड सकती थी। इसलिए सम्पाती उन्हे बतला रहा है कि ठीक इसके सामने समुद्र में त्रिकूटाचल पर्वत है। उसके ऊपर लङ्का पुरी बसी है। उसी मे रावण रहता है। वह स्वभाव से ही निःशङ्क है। सीताजी का हरण करके लङ्का मे ही रखे हुए हैं। किसी दूसरे स्थान मे नही रक्खा है। उस लङ्का मे अशोक उपवन है। वही बैठी सीता सोच रही है। अङ्गुल्या निर्देश करके वन्दरो को दिखला रहा है।

दो. मै देखौ तुम्ह नाही, गीधहि दृष्टि अपार।
बूढ़ भयेउँ नत करतेउँ, कछुक सहाय तुह्मार ॥२८॥

अर्थ : मैं देख रहा हूँ। तुम्हे दिखायी नही पड़ रहा है। क्योंकि गृद्ध की दृष्टि का कोई पारावार नही। मै बूढा हो गया नही तो तुम्हारी कुछ सहायता भी करता।

व्याख्या : जब सम्पाती के बतलाने पर बन्दरो को पर्वत भी दिखायी न पडा सीता की कौन चलावे तब कहता है कि तुम नही देख सकते। बन्दरो की दृष्टि थोड़ी होती है। गृद्ध की दृष्टि प्रसिद्ध है वह बहुत दूर तक देखती है। मैं सीताजी को देखता हूँ और उनके मुख विकार को देख रहा हूँ कि सोच मे निमग्न बैठी हुई है। मैं बूढा हुआ नही तो पीठ पर बिठाकर किसी एक को लङ्का मे पहुँचाकर सीता को दिखला देता। अब उतना सन्निकट पहुँचना कि तुम्हे सीता दीखने लगें तुम्हारा काम है। मैने चन्द्रमा मुनि की आज्ञानुसार अपना कार्य कर दिया।

जो नाँघइ सतयोजन सागर। करै सो राम काज मति आगर॥
मोहि बिलोकि धरहु मन धीरा। राम कृपा कस भयेउ सरीरा ॥१॥

अर्थ : जो सौ योजन समुद्र पार करेगा वहीं बुद्धिमान् रामजी का कार्य कर सकता है। मुझे देखकर हृदय मे धैर्य धारण करो। रामजी की कृपा से मेरा शरीर कैसा हो गया।

व्याख्या : कार्य की दुष्करता कह रहा है। पहिले तहँ बस रावन सहज असका : कहकर शत्रु की प्रबलता कही। अब समुद्र का पार . आयाम बतलाता है कि बीच मे सौ योजन समुद्र है। अत. यहाँ बल और बुद्धि दोनो की बड़ी भारी परीक्षा है। अत. जिसकी बुद्धि अतीव पैनी हो इतने बलवान शत्रुओं मे घुसकर कार्य कर सके और सकुल मकर उरग झख जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँती। समुद्र को पार कर सके। वही इस कार्य मे हाथ लगावे अर्थात् तुम लोगो मे जो अतीव बलवान और बुद्धिमान् हो उसी को इस कार्य मे नियुक्त करो।

जब देखा कि कोई साहस नही कर रहा है तब धैर्य बँधाता है कि मुझे देखकर धैर्य धारण करो। देखो रामजी की कृपा से मेरा शरीर कैसा हो गया।

नये नये कोपल पक्ष निकल आये। रामजी की कृपा से तुम लोगो से भेंट हुई और तुम्हारे दरस परस से मेर जले हुए पख फिर निकल आये। जिसने मुझे पख दिया वही तुम लोगो की सहायता करेगा। बिना पख के उडकर समुद्र पार करोगे।

पापिउ जाकर नाम सुमिरही। अति अपार भवसागर तरही ॥
तासु दूत तुम तजि कदराई। राम हृदय धरि करहु उपाई ॥१॥

अर्थ : पापी भी जिसका नाम स्मरण करके अत्यन्त अपार भवसागर को पार करते हैं तुम तो उनके दूत हो। कादरपन को छोडकर रामजी को हृदय मे धारण करके उपाय करो।

व्याख्या . यह ससार सागर अत्यन्त अपार है। इसे पार करना पुण्यात्मा के लिए भी सुखसाध्य नही है। पापी क्या पार कर सकता है ? पापी भी उनके नाम के बल से भवसागर पार जाते हैं। यथा सादर सुमिरन जे नर करही। भव वारिधि गोपद इव तरही। उनके नाम मे ऐसा सामर्थ्य है कि वह पापी को भी ऐसी सन्तरणशक्ति प्रदान करता है। तुम लोग तो उस महामहिम नामी के दूत हो। तुम्हारे लिए इस शत योजन सागर के पार जाना कौनसी बात है ? तुम लोग वीर हो। आगन्तुक कातरता का परित्याग करो। सफलता का साधक महामन्त्र बतलाता है कि रामजी को हृदय मे रखकर उपाय करो। उनके हृदय मे रहने से सभी उद्यम सफल होते हैं।

अस कहि गरुड गीध जब गयेऊ। तिन्हके मन अति विसमय भयऊ ॥

५६ हनुमत् द्वारा बलकथाश्रवण प्रसङ्ग

निज निज बल सब काहू भाषा। पार जाइ कर ससय राखा ॥२॥

अर्थ हे गरुड! जब ऐसा कहकर गीध गया तो उन लोगो के मन मे बडा आश्चर्य हुआ। अपना अपना बल सब किसी ने कहा परन्तु पार जाने मे सन्देह प्रकट किया।

व्याख्या ऐसा कहकर गीध के चले जाने पर सबके मन मे बडा भारी आश्चर्य हुआ। अभी यही गीध समुद्र तट तक जाने मे असमर्थ था। हनुमान्जी ने उठाकर तट तक पहुँचाया और इतनी देर मे ही इसे पंख निकल आये। बिना किसी की सहायता के ही चला गया। चलने मे भी पक्षी के पख सहायक होते है अथवा उडकर चला गया।

अब सागर सन्तरण पर विचार होने लगा। सब के मन मे यही बात है कि हम सब मे बलवान और बुद्धिमान् हनुमान्जी हैं यही जायँ। यथा आगे कै हनुमन्तहि लीन्हा। पैठे बिबर बिलबु न कीन्हा अत उन्हे आज्ञा देना उचित न समझकर अपना पूरा बल किसी ने प्रकट नहीं किया। किसी ने कहा मैं निःसन्देह बीस योजन जा सकता हूँ। किसी ने कहा कि मै तीस योजन जा सकता हूँ। किसी

ने चालीस, किसी ने पचास, इसी भाँति नब्बे योजन तक बतलाते चले गये। किसी ने यह न कहा कि मैं नि मन्देह पार जा सकता हूँ।

जरठ भयेउँ अस कहइ रिछेसा। नहि तन रहा प्रथम बल लेसा ॥
जबहि त्रिविक्रम भये खरारी। तब मै तरुन रहेउँ बल भारी ॥४॥

अर्थ : ऋक्षेश जाम्बवान ने कहा कि मै बूढा हो गया। अब जवानी के बल का लेश भी शरीर मे नही है। जब खरारि . रामजी ने त्रिविक्रमावतार धारण किया था तब मेरी जवानी थी और भारी बल था।

व्याख्या : प्रख्यातपौरुष जाम्बवानजी क्या कहे ? तब उन्होने बुढापा का ओट लिया। कहते है कि मेरे सामने तीन अवतार हो चुके। वामन परशुराम और दाशरथि राम। सो वामनावतार के समय मेरी जवानी थी। तब से कितनी चतुर्युगियाँ बीत गयी। अब शरीर मे उस बल का लेश भी नही रह गया जो पहिले था। उस समय मुझ मे भारी बल था। त्रिविक्रम कहकर वामनावतार के शरीर की विशालता कही कि उस शरीर मे उन्होने तीन पादविक्षेप मे तीनो लोक नाप लिया और फिर भी तीन पग पूरा न हुआ। खरारि कहने का भाव यह कि वह वामनावतार भी रामजी का ही था। ये मायावी असुरो को माया के बल से ही पराजित करते हैं। इनकी माया का थाह नही है। यह सब जो हो रहा है वह सब भी उनकी माया है। उनके लिए दुष्कर कुछ भी नही है। उनकी इच्छानुकूल ही सब कुछ हो रहा है। धैर्य छोड़ने की कोई बात नही है।

दो. बलि बाँधत प्रभु बाढेउ, सो तनु बरनि न जाइ।
उभय घरी महँ दीन्ही, सात प्रदच्छिन धाइ ॥२९॥

अर्थ : बलि के बाँधते समय प्रभु बढे। उस शरीर का वर्णन नही किया जा सकता। मैंने दो घडी मे दौडकर उनकी सात प्रदक्षिणा की थी।

व्याख्या : उस समय इन्द्र को जीतकर राजा बलि तीनो लोक के स्वामी हो गये थे। बलि धर्मात्मा थे अत. प्रभु ने उनका वध न करके उनका बन्ध चाहा। अत: वामनावतार धारण करके बलि के यज्ञ मे जाकर उनसे तीन पैर पृथ्वी की याचना की। बलि के सङ्कल्प दे देने पर प्रभु ने अपना शरीर बढाया। बलि को विश्वरूप से दर्शन दिया। तीनो लोक तीन पद के लिए थोड़ा पड़ा। यथा : जेहि जग कियो तिहुँ पदहुँ ते थोरा . अत. पूरा करने के लिए शरीर को भी नाप लिया। प्रभु का वह विशाल शरीर दो घडी के लिए ही था। उसी के लिए कहते हैं कि उसका वर्णन नही हो सकता। परिक्रमा करने मे दूर दूर उस शरीर के चारो ओर घूमना था। अत: शनै: शनै. चलकर उसकी परिक्रमा हो नही सकती। अत. दौडकर परिक्रमा करनी पड़ी। अपना बल और वेग कहते हैं कि उस शरीर का जिसके अन्तर्गत कितने समुद्र और पर्वत थे दो घडी मे मैंने सात प्रदक्षिणाएँ की

थी। प्रलक्षिणा करने मे इस भाँति शनै शनै चलन का विधान है। जिस भाँति गर्भवती स्त्री सिर पर जल भरा घडा लेकर धीरे धीरे चलती है।

अगद कहइ जाउँ मइ पारा। जिय ससय कछु फिरती वारा ॥
जामवत कह तुम सब लायक। पठइअ किमि सवही कर नायक ॥१॥

अर्थ अङ्गद ने कहा मैं पार जा सकता हूँ पर लौटती समय जी म कुछ सशय है। जाम्बवान ने कहा कि तुम सब लायक हो पर सब के नायक को कैसे भेजा जाय।

व्याख्या जब जाम्बवान ने अपनी असमर्थता प्रकट की तब अङ्गदजी बोले। इनका भी पौरुष प्रख्यात है। स्वय वालि ने कहा यह तनय मम सम विनय बल कल्याण प्रद प्रभु लीजिये। अत इन्होने कहा कि मै पार तो जा सकता हूँ। पर लौटने मे कुछ सन्देह जी म हो रहा है। भोगवती और अमरावती से भी अधिक बाँका है। उसम प्रवेश करके जानकीजी को देखना और किसी के बिना जाने लौट आना साधारण व्यापार नही है। सम्भव है कि बात खुल जाय और युद्ध छिड जाय। युद्ध छिड जाने पर क्या होगा कौन कह सकता है युद्धसिद्धिर्हि चञ्चला। अत लौटने म कुछ सन्देह अवश्य है। हनुमान्जी साधु हैं। अब भी नही बोलते कि कदाचित् किसी को रामदूत पद प्राप्ति की अभिलाषा हो तो मै उसमे बाधक क्यो होऊँ? ठीक विचार चल रहा ह। यदि सब लोग मुझ इस योग्य समझेंगे तो आज्ञा देंगे ही।

जाम्बवान ने अङ्गदजी को उत्तर दिया कि तुम सब लायक हो पार भी जा सकते हो, मति आगर बुद्धिमान् भी हो। कार्यसिद्धि करके लौट आ सकते हो पर सबके सरदार हो। हम लोगो के रहते तुम कैस जाओगे। अच्छा तो जो जाने योग्य है उसे भेजता हूँ।

घ अथ हनुमत् चरित

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेउ बलवाना ॥
पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिवेक बिग्यान निधाना ॥१॥

अर्थ ऋक्षपति जाम्बवान ने कहा कि हनुमान्! सुनो। हे बलवान्! तुमने चुप्पी क्यो साध रक्खी है? हे पवन के पुत्र! तुम्हे पवन के समान बल है। तुम बल विवेक और विज्ञान के निधान हो।

व्याख्या हनुमान्जी को आज्ञा देने म अङ्गदजी को भी सङ्कोच है। अत वयोवृद्ध जाम्बवानजी ने कहा कि वस्तुत जो बलवान है वह तो चुप्पी साधे हुए है। चुप्पी साधने का करण क्या है? हनुमान्जी! तुम पवन के पुत्र हो। अत तुम म पवन सा ही बल है। पवनदेव तो दिन रात समुद्र के आर पार जाया करते हैं। अत तुम्हारे लिए समुद्रोल्लङ्घन खेल है और बुद्धि तुम्हारी ससार पारदर्शी है उभय लोकावगाहिनी है। तुम बुद्धि, विवेक और विज्ञान के निधान हो।

कवन सो काज कठिन जग माँही । जो नहि होय तात तुम्ह पाँही ॥
राम काज लगि तव अवतारा । सुनतहि भयेउ पर्वताकारा ॥२॥

अर्थ संसार म कौन ऐसा कार्य कठिन है जो तुमसे न हो सके। तुम्हारा तो अवतार रामकार्य के लिए है। यह सुनते ही हनुमान्‌जी पर्वताकार हो गये।

व्याख्या जितने कार्य हैं उनकी सिद्धि तो बल और बुद्धि से ही होती है। सो परमेश्वर ने तुमको सबसे अधिक दिया है। तुम्हारे बल बुद्धि का पारावार नहीं है। अत संसार मे कोई ऐसा कार्य नही है जिसे तुम न कर सको। किं पुन रामकार्य जिसके लिए तुम्हारा अवतार है। ऐसी कथा है कि भगवान् ने शङ्कर की आराधना करके उनसे वरदान माँगा था कि आप मेरे सेवक होकर मेरा कार्य साधन करें। तदनुसार साक्षात् रुद्र भगवान ही हनुमान् रूप से अवतीर्ण हुए। अत कहते हैं कि हम लोग तो कौतुक के लिए साथ हैं। रामकाज के लिए अवतार तो तुम्हारा ही है। सुनते ही हनुमान्‌जी का आकार पर्वत सा हो गया।

कनक बरन तन तेज बिराजा । मानहु अपर गिरिन्ह कर राजा ॥
सिंहनाद करि बारहि बारा । लीलहि नाघौ जलनिधि खारा ॥३॥

अर्थ सोने के रंग के शरीर म तेज शोभायमान हुआ। मानो पर्वत के दूसरे राजा हैं। बार बार सिंहनाद करके कहा कि इस लवणसिंधु को तो खेल म ही डाक जाऊँगा।

हनुमान्‌जी का शरीर स्वभाव स ही सोने के रंग का है। सो जाम्बवानजी के कथन ने मानो मन्त्र का काम किया। उनके वचन से ऐसा उत्साह बढा कि शरीर तेज से चमकने लगा। विशाल शरीर था ही। ऐसे मालूम होने लगे जैसे दूसरे सुमेरु हैं। जाम्बवानजी के इस कहने का कि चुप्पी क्यो साधे हो ? बार बार सिंहनाद करके उत्तर दिया। कौन सो काज कठिन जगमाही। जो नहि होय तात तुम पाही का उत्तर देते हैं कि इस खार समुद्र को तो खेल म डाक जाऊँगा। खारे समुद्र से उत्तरोत्तर छ समुद्र एक से एक आयाम मे दुगुने हैं। कहिये तो उन्हे डाक जाऊँ। इस खारे समुद्र म रक्खा ही क्या है ?

सहित सहाय रावनहि मारी । आनौ इहाँ त्रिकूट उपारी ॥
जामवंत मै पूछौ तोही । उचित सिखावन दीजहु मोही ॥४॥

अर्थ सहाय के सहित रावण को मारकर यहाँ त्रिकूट पर्वत उखाड लाऊँ। जाम्बवान ! मैं तुमसे पूछता हूँ। मुझे उचित शिक्षा दीजिये।

व्याख्या यहाँ संशय को स्थान नही है। समुद्र पार करके सेना सहित रावण को मारकर यहाँ त्रिकूटाचल को जिस पर लङ्कापुरी बसी है उखाड लाऊँ। राम का कार्य ही पूरा कर दूँ। इस भाँति राम काज लगि तव अवतारा का उत्तर

दिया। त्रिकूट उखाड़ लाने का भाव यह कि तब आप लोग खोज ले कि सीता कहाँ है ?

अब हनुमान्‌जी जाम्बवान से पूछते हैं कि आप सबसे वयोवृद्ध हैं। आप मुझे बतलाइये कि मैं क्या करूँ ? रामजी का सब कार्य ही पूरा कर दूँ कि केवल आज्ञा मात्र का पालन करूँ। मेरे लिए क्या उचित होगा ?

एतना करहु तात तुम जाई। सीतहि देखि कहहु सुधि आई ॥
तब निज भुज बल राजिव नैना। कौतुक लागि संग कपि सैना ॥५॥

अर्थ : हे तात ! तुम इतना ही करो कि सीताजी को देखकर लौट आओ और समाचार कहो। तब कमलनयन : रामजी अपने भुजबल से बन्दरो की सेना खेलवाड के लिए साथ लेकर :

व्याख्या : जितनी आज्ञा तुम्हे हुई है उतना ही करो। आज्ञा इतनी ही है कि : कहि बल विरह बेगि तुम आएहु। सुग्रीव ने कहा है कि : सीता सुधि पूछेहु सब काहू। अत न तो रामजी की न सुग्रीवजी की आज्ञा कुछ विशेष करने की है। रावण को सहाय सहित मारने और त्रिकूटाचल के लाने की आवश्यकता नही। इससे प्रभु की यशोहानि होगी। वे शेष कार्य अपने भुजबल से करेंगे। वानरी सेना कौतुक के लिए साथ रहेगी।

छं. कपि सेन संग संहारि निसिचर रामु सीतहि आनिहै।
त्रैलोक पावनु सुजसु सुर मुनि नारदादि बखानिहै ॥
जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई ॥

अर्थ : वानरो की सेना के साथ राक्षसो को मारकर रामजी सीताजी को लावेंगे। त्रैलोक्य को पवित्र करनेवाला सुयश देवता और नारदादि मुनि वर्णन करेंगे। जिसे सुनते गाते कहते और समझते हुए मनुष्य परम पद प्राप्त करेंगे। रामजी के पद कमल का भ्रमर तुलसीदास गान कर रहा है।

व्याख्या : रावण वध से ही निशिचर सहार होगा। सो रामजी अपने हाथो करेंगे। प्रतिज्ञा कर चुके हैं निसिचर हीन करौं महि भुज उठाइ प्रन कीन्ह। वन्दरो की सेना साथ रहेगी। उसमे हम लोग भी साथ रहेगे। पर सीताजी को वे लावेंगे। इसी मे शोभा है। तीनो लोक मे उनका यश होगा। उस सुयश से तीनो लोक पवित्र होगा। यथा : अध्यात्मरागगगेय पुनाति भुवनत्रयम्। उसे शिव ब्रह्मादि देव तथा नारदादि महर्षि वर्णन करेंगे। इससे ससार का बडा भारी कल्याण होगा। ससार सागर सन्तरण करके परम पद की प्राप्ति अतीव दुस्तर कार्य है। सो अनायास साध्य हो जायगा। मनुष्य उस यश को कहकर गाकर सुनकर और समझकर परम पद के भागी होगे। इसीलिए रघुबीर के चरण कमलो का भौंरा तुलसीदास

गान करता है। जिस भाँति मकरन्द पान करते हुए भौरे गुनगुनाते जाते हैं। उसी भाँति प्रभु चरण कमल के मकरन्द का पान करता हुआ तुलसीदास भी गान करता है। यथा : पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना। यह काण्ड वैराग्य भक्तिप्रद है। अत. परम पद की प्राप्ति उपसहार मे कह रहे हैं।

दो. भव भेषज रघुनाथ जसु, सुनहि जे नर अरु नारि।
तिनकर सकल मनोरथ, सिद्ध करहि त्रिसिरारि ॥३०॥

अर्थ : रघुनाथ यश ससाररूपी रोग की दवा है। इसे जो स्त्री पुरुष सुनते है। उनके सब मनोरथ को त्रिशिरारि : रामजी सिद्ध करते हैं।

व्याख्या . ससार ही एक बडा भारी रोग है। इसी से जगत् पीडित है। यथा : एहि विधि सकल जीवजग रोगी। हर्ष सोक भय प्रीति वियोगी। एक रोग बस नर मरहिं ये असाधि बहु व्याधि। पीड़हि सतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि। इसकी अचूक ओषधि रामजी का यश है। इसका सुनना ही सेवन करना है। अत जो स्त्री पुरुष इसका सेवन करेगा उसके सब मनोरथो को रामजी सिद्ध करेंगे। मनोरथ सिद्धि के लिए उसे दूसरा अनुष्ठान न करना पड़ेगा।

सो. नीलोत्पल तन स्याम, काम कोटि सोभा अधिक।
सुनिअ तासु गुन ग्राम, जासु नाम अघ खग बधिक ॥३०॥

अर्थ : नीले कमल के सदृश श्याम रामजी की शोभा कोटि काम से अधिक है। उसके गुणग्राम को सुनो। जिसका नाम पापरूपी चिडियो के लिए बधिक है।

व्याख्या : नाम रूप लीला और धाम को महात्माओं ने रामजी का साक्षात् विग्रह माना है। यहाँ चारो के विषय मे कहते हैं। नारदजी वरदान ले चुके हैं। राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका। इससे नाम कहा। नीलोत्पल तनु स्याम · काम कोटि सोभा अधिक से रूप कहा। जेहि कहत गावत सुनत समुझत परम पद नर पावई। से धाम कह चुके हैं। अब कहते हैं कि उसकी लीला गुणग्राम सुनिये। भाव यह कि ऐसे की ही लीला सुनने मे सुख है तथा श्रवण की सार्थकता है। अथवा जिसका नाम अघ खग बधिक है। जिसका रूप नीलोत्पल तन स्याम कोटि काम सोभा अधिक है। उसी के गुणग्राम का मै गान करता हूँ। यथा · रघुवीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई। श्रोताओ को अभिमुख करके कहते हैं कि उसे सुनो। क्याकि उसके सुनने से परम पद की प्राप्ति होती है। और सुननेवाले के सब मनोरथो को त्रिशिरारि सिद्ध करते हैं। उसका लोक परलोक दोनो बन जाता है। अध्यात्म जगत् मे लोभ ही त्रिशिरा है। काम क्रोध और लोभ ये ही उसके शिर हैं। वध करनेवाले रामजी हैं। उसके वध से काम, क्रोध का भी साथ ही साथ वध हो जाता है। नरक का रास्ता बन्द हो जाता है। यथा : त्रिविध नरकस्येद द्वार नाशनमात्मनः। काम. क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रय त्यजेत्। इसलिए त्रिशिरारि का कृपा करना कहा।

इस काण्ड का पाठ मनोरथ सिद्धि के लिए करना चाहिए। लौकिक कार्य के आपडने पर हनुमान्‌जी के स्मरण का विधान है। सो इस काण्ड मे हनुमान्‌जी का श्रीरामचन्द्र से मिलन, सुग्रीव की राज्य प्राप्ति तथा हनुमान्‌जी का रामकार्य के लिए उत्साह वर्णित है। इसके पाठ से रामजी की कृपा होती है। अत अनुष्ठान करनेवाले के मनोरथ की सिद्धि होती है।

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुपविध्वसने
विशुद्धसन्तोपसम्पादनो नाम चतुर्थ सोपान समाप्त।

यह श्रीमद्रामचरितमानस की चौथी सीढी पूरी हुई।

यह चौथी सीढी काशी पुरी है। यथा अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका। पुरी द्वारावती ज्ञेया सप्तैता मोक्षदायिका। इनमे काशीपुरी भी चौथी है। काशी मे ही भगवान् वृषभध्वज ने श्रीराम मन्त्र का जप करके श्रीरामजी की प्राप्ति की थी। इसी भाँति रुद्ररूप हनुमान्‌जी को रामजी की प्राप्ति किष्किन्धाकाण्ड म ही हुई है। अत श्रीरामभक्त काशी वुद्धि से किष्किन्धाकाण्ड का सेवन करें।

मीतहि किष्किन्धा दई दानि सिरोमनि राम।
काड नाम ताते परयो किष्किन्धा अभिराम॥

•

श्रीराम

श्रीगणेशाय नम । श्रीगुरवे नम

श्रीरामचरितमानस

सुन्दरकाण्ड : पचम सोपान

सटीक

मन भावन २ काचीपुरी ३ हनुमत चरित ललाम ।
सुन्दर सानुकथा ५ तथा ताते सुन्दर नाम ॥

ड के सुन्दर नाम पडने के अनेक कारण हैं। यहाँ १ हनुमान्‌जी को उपक्रम है। यथा जामवत के वचन सुहाए। सुनि हनुमत हृदय र रामजी को अच्छे लगने से उपसहार है। यथा निज भवन गवनेउ ह यह मत भायऊ इससे सुन्दर नाम पडा। २ यह पाँचवाँ सोपान काञ्ची है। जिस भाँति काञ्ची के दो भाग हैं—शिव काञ्ची और सी भाँति इस काण्ड म दो चरित हैं। हनुमत् चरित और रामचरित। ाव होने से सुन्दर नाम पडा। ३ रामायण महामाला के रत्नरूप ारित होने स सुन्दर नाम पडा। ४ त्रिकूटाचल के तीन शिखर सुने सुन्दर और सुवेल। सो इस काण्ड म प्रधानत सुन्दर शिखर की पर अशोक वाटिका थी। इसलिए सुन्दर नाम पडा और ५ इस छ सुन्दर हैं। इस पार सिंधु तीर एक भूधर सुन्दर उस पार लङ्का कनक कोट विचित्र मनिकृत सुन्दरायतना घना। मुद्रिका सुन्दर मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुन्दर। फल फूल सुन्दर तु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुदर फल रूखा। कथा सुन्दर मन करि पुनि सकर। लागे कहन कथा अति सुन्दर। अत सुन्दर

मङ्गलाचरण

ान्त' शाश्वतमप्रमेयमनघ गीर्वाणशान्तिप्रद
ह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिश वेदान्तवेद्य विभु ।

ार्दूलविक्रीडित छन्द है।

रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिं ॥१॥

अर्थ : शान्त, नित्य, अप्रमेय, निष्पाप, देवताओ को शान्ति देनेवाले, ब्रह्मा शम्भु और शेष द्वारा निरन्तर सेवित, वेदान्त से जानने योग्य, व्यापक जगत् के ईश्वर, देवताओ के गुरु, माया से मनुष्य रूप, दु खो को हरण करनेवाले करुणा की खानि, भूपालो के चूडामणि राम नामवाले रघुवर की मैं वन्दना करता हूँ।

व्याख्या : जो निष्क्रिय होने से शान्त, आदि रहित होने से सनातन प्रमाण से परे अर्थात् स्वयसिद्ध होने से अप्रमेय। पाप पुण्य से रहित होने से अनघ, दैवी सम्पत्तिवालो को अपना स्वरूप देने अथवा देवताओ की अशान्ति दूर करने से गीर्वाण शान्तिप्रद, ब्रह्मा शम्भु और शेष को भी स्व-स्वकार्य सम्पादन की शक्ति देने से अथवा उनके पूज्य होने से निरन्तर ब्रह्मा शम्भु फणीन्द्रसेव्य। औपनिषद पुरुष होने से वेदान्तवेद्य। अभिन्न-निमित्तोपादान कारण होने से विभु। सबके स्वामी होने से जगदीश्वर। वेदादि शास्त्रो के आदि उपदेष्टा होने से सुरगुरु। इच्छामय नररूप धारण करने से माया मनुष्य। दु खो के दूर करनेवाले होने से रघुवर। राजाओ के आदर्श होने से भूपालचूडामणि। आनन्दसिन्धु, सुखराशि और सर्वसुखद होने से राम हैं। श्री गोस्वामीजी कहते हैं कि मैं उनकी वन्दना करता हूँ। इस श्लोक के पहिले दो पदो से निर्गुण रूप और पिछले दो पदो से सगुण रूप का वर्णन किया। इस भाँति सगुण निर्गुण रूप कहा और चूडामणि से इस काण्ड मे चूडामणि प्राप्ति की कथा का होना भी ध्वनित किया।

श्लो.[1] नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ॥२॥

अर्थ : हे रघुपति! मैं सत्य कहता हूँ। आप तो सबके अन्तरात्मा हैं। मेरे हृदय में दूसरी कोई लालसा नही है। हे रघुश्रेष्ठ! मुझे पूर्ण भक्ति दीजिये और मेरे मन को कामादि दोषो से रहित कीजिये।

व्याख्या : दूसरी लालसा रहते भक्ति नही मिलती। यथा बहुत कीन्ह प्रभु लषन सिय नहिं कछु केवट लेइ। बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बर देइ। अतः कहते हैं कि मुझे दूसरी लालसा नही है। जिससे भक्ति चाहते हैं उसी से माँगते हैं। क्योंकि भक्ति कृपासाध्य है। क्रियासाध्य नही है। यथा :

---

१. यह वसन्ततिलका छन्द है।

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार जानै सोइ जेहि बनिआई ॥१॥
जो जेहि कला कुसलता कहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह सुरसरी बहै गज भारी ॥२॥
ज्यौं सर्करा मिलै सिकता महँ बल ते न कोउ बिलगावै।
अति रसज्ञ सूच्छम पिपीलिका बिनु प्रयास ही पावै ॥३॥
सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख अतिसय द्वैत वियोगी ॥४॥
सोक मोह भय हरष दिवस निसि देस काल तहँ नाही।
तुलसिदास यहि दसा हीन संसय निर्मूल न जाही ॥५॥

रघुपति सम्बोधन देकर भी यही बात दिखलायी। अपनी दृढता दिखलाते हुए कहते हैं कि सत्य कहता हूँ। फिर यह बात भी है : तुमसे कछु न छिपी करुनानिधि तुम हो अन्तर्जामी। रघुवशी के यहाँ से मंगन विमुख नही फिरते। इसलिए दूसरा सम्बोधन रघुपुङ्गव देते हैं और निर्भरा भक्ति माँगते हैं। इस काण्ड मे हनुमान्‌जी और विभीषणजी को अनपायिनी भक्ति मिली है। इसीसे कवि भी माँगते हैं। भक्ति का बड़ा भारी बाधक : सुख सम्पत्ति परिवार बड़ाई हैं। यही कामादि दोष हैं। इन पर बल नही चलता। अतः इनके दूर करने के लिए भी प्रभु से प्रार्थना करते हैं।

श्लो. अतुलितबलधामं[1] स्वर्णशैलाभदेहं,
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यं।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं,
रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि[2] ॥३॥

अर्थ : अतुलित बल के धाम हैं। सोने के पर्वत की सी कान्ति देह में है। दानव के वन के लिए अग्नि रूप हैं और ज्ञानियो मे अग्रगण्य हैं। सम्पूर्ण गुणो के स्वामी हैं। ऐसे रघुनाथजी के श्रेष्ठ दूत पवनसुत को मैं प्रणाम करता हूँ।

व्याख्या : रुद्र देह तजि नेह बस बानर भे हनुमान। इसलिए शिवजी के स्थान पर हनुमान्‌जी की स्तुति करते हैं। बालकाण्ड से यह नियम चला आता है कि रघुनाथजी से पहिले शिवजी की स्तुति ग्रन्थकार करते हैं। पर सुन्दरकाण्ड में शिवजी हनुमान् रूप से सेवक होकर उपस्थित हो गये। अतः यहाँ से स्तुति का

---

१. अन्त्यस्य हलो नित्यम् इस सूत्र द्वारा नकार का लोप होकर अकारान्त धाम शब्द सिद्ध हुआ।

२ यह मालिनीछन्द है। इसमें पन्द्रह अक्षरो का एक पाद होना है। इसमें दो नगण, एक मगण और दो यगण होते हैं।

क्रम पलट गया : रघुनाथजी की स्तुति पहिले होने लगी। इस श्लोक में हनुमत् चरित का बीज है। अतुलित बल धाम से समुद्रोल्लंघन सुरसा आदि का अतिक्रम कहा। स्वर्ण शैलाभदेहं से जानकीजी को भरोसा देना कहा। यथा : कनक भूधराकार सरीरा समर भयंकर अति बलबीरा। सीता मन भरोस तब भयऊ। दनुजवनकृशानुं से अक्षादि बध तथा लङ्कादाह कहा। ज्ञानिनामग्रगण्यं से रावण को उपदेशदान कहा : सकलगुणनिधानं से जानकीजी का आशीर्वाद मिलना कहा : वानराणामधीशं से बन्दरों की इनके द्वारा प्राणरक्षा कही। रघुपतिवरदूतं से सन्देश कहने की पण्डिताई तथा कहे हुए कार्य से तदविरोधी अधिक कार्य करना कहा। वातजातं से श्रमरहित होना कहा।

अब समुद्रोल्लङ्घन प्रकरण आरम्भ होता है। यहाँ दोहा या सोरठा काण्ड के आदि में नहीं दिया। क्योंकि हनुमान्‌जी को विश्राम नहीं है और सोरठा या दोहा पर विश्राम होता है। यथा : सुनि सब कथा समीरकुमारा। नाँघत भयो पयोधि अपारा। इसलिए दोहा या सोरठा न देने का यथेष्ट कारण है।

५७. समुद्रोल्लंघन प्रसंग

जामवंत के बचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए॥
तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई। सहि दुख कंद मूल फल खाई॥१॥

अर्थ : जाम्बवान् के सोहाए और हृदय मे अच्छे लगनेवाले वचन सुनकर हनुमान्‌जी : बोले हे भाई[1] तुम लोग दुःख सहकर और कन्दमूल फल खाकर तब तक मेरी राह देखना।

व्याख्या : जाम्बवान्‌जी के वचन भाये तो सबको, पर हनुमान्‌जी को अति भाये। वचन यह था : कपिसेन संग संहारि निसिचर रामु सीतहि आनिहैं। त्रैलोक पावनु सुजस सुर मुनि नारदादि बखानिहैं। जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई। जिसे जो बात अच्छी लगती है, वह उसे दूसरों से ही कहता है। हनुमान्‌जी को ऐसा अच्छा लगा कि उन्होने अक्षरशः इसी वाक्य को सीताजी से दोहराया है। यथा : कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहैं रघुबीरा। निसिचर मारि तोहि लै जैहैं। तिहुँ पुर नारदादि जस गैहैं।

[1] कार्य के गौरव का ध्यान करके समय कुछ नहीं देते, राह देखने को कहते हैं। कहीं घबराकर बन्दर लोग समुद्र पार करने का साहस न कर बैठें। अतः प्रतीक्षा करने का दुःख सहने और अनशन तोड़कर फल फूल खाने के लिए अनुरोध करते हैं।

जब लगि आवौं सीतहि देखी। होइहि काजु मोहि हरष बिसेषी॥
अस कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा। चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा॥२॥

अर्थ : जबतक मैं सीता को देखकर लौट आऊँ। कार्य होगा : क्योंकि मुझे

विशेष हर्ष हो रहा है। यह कहकर सबको मस्तक नवाकर और हृदय मे रघुनाथजी को रखकर हर्षित होकर चले।

व्याख्या कहना चाहिए था कि जबतक लौटकर न आऊँ, परन्तु यह न कहकर जबतक लौट आऊँ कहते हैं। कारण यह है कि सिद्ध पुरुष हैं न लौट आऊँ कहते तो लौटते नही। शङ्कर भगवान् भी इसी प्रकार के वाक्य का प्रयोग करते हैं। यथा तब लगि बैठ अहौं बट छाही। जब लगि तुम अइहौ मोहि पाही। यहाँ भी नहि अइहौ मोहि पाही कहना चाहता था। परन्तु ऐसा नही कहा यदि कह देते तो सती फिर लौटकर नही आती। उप प्रशस्यते गर्ग शकुनश्च बृहस्पति। अङ्गिरा मन उत्साह विप्रवाक्य जनार्दन। यात्रा मे गर्ग ऋषि उषा काल की प्रशसा करते हैं। बृहस्पति शकुन की प्रशसा करते हैं। अङ्गिरा मन के उत्साह और जनार्दन ब्राह्मणो के वाक्य की प्रशसा करते हैं। यहाँ कपि अङ्गिरा के वचन के आधार पर कहते हैं कि मुझे बडा उत्साह है। इसलिए कार्य का होना निश्चित है।

विदा होने के लिए सब को प्रणाम करते हैं। अथवा सबका आशीर्वाद सुनकर सबको प्रणाम करते हैं अथवा प्रभुका उपदेश स्मरण करके सबको प्रणाम करते हैं। यथा सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमत। मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत। रामजी को हृदय मे धारण करना कार्यसिद्धिका अमोघ उपाय है। चलेउ कहने से बोध होता है कि सिन्धुतीर होने पर भी जल से कुछ दूर पर थे।

सिधुतीर एक भूधर सुदर। कौतुक कूदि चढेउ ता ऊपर॥
बार बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवन तनय बलभारी॥३॥

अर्थ समुद्र के किनारे एक सुन्दर पर्वत था। खेल से ही कूदकर उसके ऊपर जा चढे। बार बार श्रीरघुवीर को सँभालकर अत्यन्त बलवान हनुमान्‌जी बडे वेग से उछले।

व्याख्या समुद्र अपने किनारे से ऊँचा होता है। इसलिए बिना ऊँचे पर चढे कूदना नही बनता। इस कारण से पर्वत पर कूदकर चढे। वाल्मीकीय मे इस पर्वत का बडा वर्णन है। इसलिए सुन्दर कहा। प्रवर्षण गिरि पर से श्रीरघुवीर को हृदय म धारण करके चले थे। यथा हनुमत जनम सफल करि जाना। चलउ हृदय धरि कृपानिधाना। सो कहो कूदते समय खिसक न जायँ। इसलिए पूँजी की भाँति रघुवीर को सँभालते हैं। यथा मन माधव का नेकु निहारहि। सुन सठ सदा रक क धन ज्यों छिन छिन प्रभुहि सँभारहि। पवन तनय कहकर वेगाधिक्य कहा। बल भारी से समुद्र म उथल पुथल का होना कहा। इसका स्पष्टीकरण आगे चलकर करते हैं।

जेहि गिरि चरन देइ हनुमता। चलेउ सो गा पाताल तुरता॥
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चला हनुमाना॥४॥

अर्थ : जिस पर्वत पर हनुमान्‌जी पैर रखकर चले वह तुरन्त ही पाताल चला गया। जिस भाँति रघुपति का अमोघ बाण चलता है उसी भाँति हनुमान्‌जी चले।

व्याख्या : उसी पर्वत के विषय में कहते हैं : जिसके ऊपर से हनुमान्‌जी कूदे कि वह उनके चरण के चपेट को नहीं सह सका। यथा : तुलसी रसातल को निकसि सलिल आयो कोल कलमल्यो अहि कमठ को बलुगो। चाहिहु चरन के चपेट चाँप चिपिटिगो उचके उचकि चार अङ्गुल अचलुगो। क० रा०।

अमोघ से कार्यसिद्धि कहा। रघुपति कर बाना : कहकर वेग अन्तरिक्ष गमन तथा लौटकर आना द्योतित किया। रामजी के बाण कार्य करके लौट आते थे। यथा : प्रबिसे सब निषंग महु आई। देखि सुरन्ह दुन्दुभी बजाई। स्वयं हनुमान्‌जी ने अपने वेग की उपमा रामबाण से दी है। यथा : जैहौं रामबाण की नाईं। लङ्का पर रघुनाथजी का पहिला बाण छूटा।

जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रमहारी ॥५॥

अर्थ : समुद्र ने उन्हें रघुपति का दूत विचारकर मैनाक पर्वत से कहा कि तू इनकी थकावट को हरण करनेवाला हो।

व्याख्या : समुद्र में बड़ा भारी उथल-पुथल देखकर समुद्र के अधिष्ठात्री देवता ने विचार किया कि यह कौन है ? उसने विचार से स्थिर किया कि यह रामदूत है। समुद्रजी को रामभक्त बड़े प्रिय हैं। अत मैनाक से श्रमहारी होने के लिए कहा। पहिले पर्वतों को पक्ष होता था, इन्द्र ने काट डाला। पवन देव ने उस समय मैनाक को समुद्र में फेंककर बचा लिया। उसके पक्ष न कटे। अत वह पवन देव का उपकृत था। इसलिए मैनाक से कहा। दूसरी बात यह कि इसी का पक्ष बच गया था। अत. विश्राम भूमि बनने में यही समर्थ था।

दो. हनूमान तेहि परसा, कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हे बिनु, मोहि कहाँ बिश्राम ॥१॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ने उसे हाथ से छू दिया। फिर प्रणाम किया और कहा कि रामजी का कार्य बिना किये मुझे विश्राम कहाँ ?

व्याख्या : आतिथ्य सत्कार की स्वीकृति द्योतन के लिए स्पर्श कर लिया। पहिले विघ्न समझा था : इसलिए प्रणाम नहीं किया। परिचय पाने पर प्रणाम किया। पिता के मित्र है। पार्वतीजी के भाई है। अत सर्वथा प्रणम्य हैं। मेनया अपत्य पुमान् मैनाक। विश्राम न करने का कारण कहते है कि यदि मुझे रामकार्य के लिए त्वरा न होती तो अवश्य विश्राम करता।

जात पवन सुत देवन्ह देखा। जानैं कहुँ बल बुद्धि बिसेषा ॥
सुरसा नाम अहिन कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहि बाता ॥१॥

अर्थ : देवताओं ने पवनसुत को जाते हुए देखा। उनकी विशेष बल बुद्धि

जानने के लिए सुरसा नाम के सर्पो की माता को भेजा। उसने आकर यह बात कही।

व्याख्या : पवनसुत कहने का भाव यह कि अपने समाज के हैं। सूर्य मण्डल ग्रास की कथा जानते हैं। अतः हनुमान्जी के बल से देवता अपरिचित नही हैं। फिर भी उतना बल यथेष्ट न समझा गया। विशेष बल बुद्धि के जानने की इच्छा हुई। विशेष बुद्धि बल न होने से लङ्का में प्रविष्ट होने के समय पकड़े जा सकते हैं। यदि बात फूट गयो कि पवनपुत्र है तो देवताओं पर भारी विपत्ति आ पडेगी। दूसरी बात यह है कि वेगाधिक्य देखा। थोड़ी ही देर मे पार पहुँचना चाहते हैं। अतः बहुत जल्द परीक्षा लेनी चाहिए। ऐसा विघ्न उपस्थित करना चाहिए कि उसके अतिक्रमण में सारी परीक्षा हो जाय। यदि असमर्थ ठहरें तो इनके न जाने मे कुशल है। हनुमान्जी ने भी रावण को अपना परिचय पवनपुत्र कहकर नही दिया।

कद्रू भी सर्पो की माता है। इसलिए सुरसा नाम दिया। लङ्का तो मानो सर्पों का निवास ही है। यथा : भोगावति जस अहिकुल वासा। रावण स्वय महासर्प है। यथा : जस पावन रावन नाग महा। राक्षसी भी सर्पिणी हैं। यथा : दुष्ट हृदय दारुन जिमि अहिनी। अत. सर्पो की माता को परीक्षा के लिए भेजा। दूसरी बात यह है कि पवन सर्पो का आहार है और हनुमान्जी पवनपुत्र हैं। ये सर्पों की माता सुरसा से ही दब सकेंगे। अतः परीक्षा के लिए उसी को भेजा। अब भगवती सुरसा का वेग कहते हैं। उधर देवताओ ने भेजा और इधर देखिये तो हनुमान्जी के सामने खड़ी हैं। इसलिए चलना नही कहा।

आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवनकुमारा॥
राम काजु करि फिरि मै आवौ। सीता कर सुधि प्रभुहि सुनावौ॥२॥

अर्थ : आज देवताओ ने मुझे भोजन दिया है। यह वचन सुनते ही पवनकुमार ने कहा कि रामजी का कार्य करके मैं लौट आऊँ और सीता का समाचार प्रभु को सुना दूँ।

व्याख्या : बनावटी बातो से ही बुद्धि की परीक्षा होती है। परीक्षा लेने मे जो कहा जाता है उसकी असत्य मे गणना नही होती। अतः सुरसा देवी ने कहा कि आज के लिए देवताओं ने तुमको मेरा आहार कल्पित किया है। सुरन्ह कहने से भाव यह कि सब देवताओ की सम्मति है। पवनकुमार कहने से भाव यह कि पिता की आज्ञा भङ्ग नही करेंगे। यथा : सेवक भयो पवन पूत साहिव अनुहरत : रामजी ने पिता की आज्ञा से राज्य छोड़ा। यह देह छोड़ने को तैयार हैं। हनुमान्जी बड़े प्रत्युत्पन्न मति हैं। तुरन्त बोले : रामकाज करि फिर मैं आवौ इत्यादि। भाव यह कि रामाज्ञा देवताओ की आज्ञा से बड़ी हैं क्योंकि रामजी सुरगुरु हैं। उनका कार्य देवकार्य से भी बड़ा है। सीता की सुधि प्रभु को सुनाने तक आज्ञा की पूर्ति हो जावेगी। प्रभु की आज्ञा है : कहि बल बिरह बेग तुम्ह आयेहु। सो तुम्हारे

हाथ सन्देश भेजने से भी काम न चलेगा, मुझे जाना पडेगा, तुम स्त्री हो, स्त्री पर दया करो।

तब तुअ बदन पइठिहउँ आई। सत्य कहउँ मोहि जान दे माई॥
कवनेहुँ जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना॥३॥

अर्थ : तब मैं आकर तेरे मुख मे घुस जाऊँगा। हे माता! मैं सत्य कहता हूँ मुझे जाने दे। किसी उपाय से भी जाने नही देती तब हनुमान्‌जी ने कहा : तो फिर मुझे खा ले।

व्याख्या : रह गयी तुम्हारे खाने की बात। सो रामजी को सीता की सुधि सुनाने के बाद मैं स्वयं आकर तुम्हारे मुख मे प्रवेश करूँगा। विश्वासोत्पादन के लिए कहते हैं सत्य कहो। पहिले ही सुरसा देवी ने : आज सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा कहकर धर्मपाश से बाँध लिया है। हनुमान्‌जी अपना पराक्रम दिखला नही सकते। क्योंकि ऐसा करने से देवताओं की आज्ञा का उल्लंघन होगा। अत दया उत्पादन के लिए माई कहा अथवा यह झलकाया कि मै जान गया तुम देवी हो। अतः माँ हो तुम्हारे मुख मे प्रवेश करने मे मुझे कोई आपत्ति नही है। मैं अवश्य लौटकर मुख म प्रवेश करूँगा।

साम दिखलाया यथा : फिर मैं आवौं। सीता कै सुधि प्रभुहि सुनावौं। दान यथा : तब तुअ बदन पैठिहौं आई। राम काज कहकर भय भी दिखलाया और माई सम्बोधन से भेद भी दिखलाया। तुम सर्प की माता होने से चाहे बच्चे को खा जाओ पर यह कार्य कश्यपजी को प्रिय न होगा। इतने पर भी जब नही माना तो दाहिने बायें ऊपर नीचे से निकल जाना चाहते हैं। पर बड़ी सावधान है जाने नही देती। तब हनुमान्‌जी ने कहा कि मुझे खा न ले। हनुमानजी को वाक् सिद्धि है। यदि खा ले कहे तो उसका आहार बनना पडे।

जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा॥
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ॥४॥

अर्थ : उसने योजन भर मुँह फैलाया। तब हनुमान्‌जी ने अपने शरीर को उससे दूना कर लिया। उसने सोलह योजन का मुख किया। हनुमान्‌जी तुरन्त ही बत्तीस योजन के हो गये।

व्याख्या : ग्रससि न मोहि के उत्तर मे सुरा ने मुँह फैलाया। मालूम होता है कि उस समय हनुमान्‌जी का शरीर अर्ध योजन का था। अतः उसने एक योजन भर मुख फैलाया। हनुमान्‌जी दो योजन के हो गये। सुरसा देवी ने समझ लिया कि यह दूना बढेगा। मैं चार योजन मुख फैलाऊँगी तो यह आठ योजन बढेगा। अतः धोखा देने के लिए सोलह योजन मुख फैलाया। हनुमान्‌जी धोखे मे आकर बत्तीस योजन के हो गये। यहाँ भौतिक बल की परीक्षा न होकर दिव्यबल की परीक्षा हो रही है। महिमा सिद्धि का उत्कर्ष दिखलाया जा रहा है।

जस जस सुरसा बदन बढावा । तासु दून कपि रूप देखावा ॥
सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा । अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा ॥५॥

अर्थ : जैसे जैसे सुरसा ने मुख का विस्तार किया हनुमान्‌जी ने उसका दूना रूप दिखलाया । उसने सौ योजन का मुख फैलाया तब हनुमान्‌जी ने बहुत ही छोटा रूप धारण कर लिया ।

व्याख्या : सोलह का दूना बत्तीस होना है । अतः कहते हैं कि सुरसा ने कोई क्रम नही रक्खा । हनुमान्‌जी ने क्रम रक्खा दूने होते चले गये । सुरसा ने फिर धोखा देने के लिए सोलह योजन के बाद सौ योजन मुख फैला दिया । हनुमान्‌जी बढने के बदले एकाएक अत्यन्त छोटे हो गये । सुरसा का चित्त बढाव की ओर था । धोखा देना चाहा था सो स्वय धोखा खा गयी । हनुमान्‌जी ने महिमा सिद्धि दिखलाते दिखलाते एकाएक लघिमा सिद्धि का उत्कर्ष दिखलाया ।

बदन पइठि पुनि बाहेर आवा । माँगा बिदा ताहि सिरु नावा ॥
मोहि,सुरन्ह जेहि लागि पठावा । बुधि बल मरमु तोर मैं पावा ॥६॥

अर्थ : उसके मुँह में घुसकर फिर बाहर निकल आये और उससे सिर नवाकर विदा माँगा । उसने कहा मैंने तुम्हारे बुद्धि बल का मर्म पा लिया जिसके लिए कि देवताओ ने मुझे भेजा था ।

व्याख्या : सुरसा मुख समेट न सकी । जितनी देर में सुरसा ने महिमा सिद्धि दिखलायी उतनी देर में हनुमान्‌जी ने महिमा लघिमा दोनो सिद्धियाँ दिखलायी । अपने को धर्मपाश से मुक्त कर लिया । देवताओं ने आहार कल्पना किया था सो उसके मुख मे प्रविष्ट हो गये । देवताओ की बात रख ली । अब सुरसा यदि गले के नीचे उन्हे न उतार सकी तो यह उसकी त्रुटि थी । अब देवी समझकर उससे प्रणाम करके विदा माँगते हैं । इससे अपनी बड़ी भारी निर्भीकता तथा सज्जनता का परिचय देते हैं ।

दो. राम काजु सबु करिहहु, तुम्ह बल बुद्धि निधान ।
आसिष देइ गई सो, हर्षि चलेउ हनुमान ॥२॥

अर्थ : तुम बल बुद्धि के भण्डार हो । तुम सब कार्य करोगे । आशीर्वाद देकर वह चली गयी । हनुमान्‌जी हर्षित होकर चले ।

व्याख्या : यही मर्म पाया कि हनुमान्‌जी बल बुद्धि के निधान हैं । अतः आशीर्वाद देती है : राम काज करिहहु तुम्ह । देवताओं की भेजी आयी थी । परीक्षा लेकर देख लिया कि इसका लङ्का मे कोई बाल बाँका नही कर सकता और यह बिना रावण को पता लगे लङ्का मे प्रवेश करके सीताजी को देखकर लौट आ सकता है । अतः जाने की आज्ञा आशीर्वाद के मिस से देकर लौट गयी । हनुमान्‌जी फिर हर्षित होकर चले । क्योंकि सुरसादेवी से सब रामकार्य करने का आशीर्वाद पाया

है और रामकार्य करने मे ही हनुमान्जी के जीवन का साफल्य है। यथा : रामकाज लगि तव अवतारा। सुनतहि भयउ पर्वताकारा। रामजी को कृपा से गरल : साँपो की माँ सुधा हो गयी। आशीर्वाद देकर गयी।

निसिचरि एक सिधु महुँ रहई। करि माया नभ के खग गहई ॥
जीव जतु जे गगन उडाही। जल बिलोकि तिन्हकै परिछाही ॥१॥

अर्थ : समुद्र मे एक राक्षसी रहती थी। वह माया करके आकाश के चिडियो को पकड लेती थी। आकाश मे जो जीव जन्तु उडा करते थे वह जल मे उनकी परिछाही देखकर :

व्याख्या . निसिचरि एक सिन्धु महुँ रहई कहकर भगवती सुरसा का भी राक्षसीरूप धारण करना ध्वनित किया। वह स्वर्ग मे रहती थी और यह सिन्धु मे रहती थी। बातचीत का अवसर नही मिला इसलिए नाम नही दिया। अघटित घटना पटीयसी माया है। जो हो न सके उसे माया कर दिखाती है। वह रहती थी समुद्र मे और चिडिया आकाश की पकडती थी। पराक्रम का उसमे कोई उपयोग नही था। बडे को जीव और छोटे को जन्तु कहते हैं जो आकाश मे उडते थे। उन सबका प्रतिबिम्ब जल मे पड ही जाता था। वह उसे देख लेती थी। उसकी निगाह से कोई बच नही सकता था। सबको वह पकड लेती थी। थल पर उसका कोई अधिकार नही था। उसका नाम सिंहिका था। इसके बेटे राहु मे इतना सामर्थ्य है कि गगनचारी सूर्य और चन्द्रमा को ग्रसता है।

गहै छाँह सक सो न उडाई। एहि बिधि सदा गगनचर खाई ॥
सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा। तासु कपटु कपि तुरतहि चीन्हा ॥२॥

अर्थ : उस परछाई प्रतिबिम्ब को पकड लेती थी जिससे वे उड नही सकते थे। इस प्रकार वह सदा आकाश मे उडनेवाले जीवो को खाया करती थी। उसने वही छल हनुमान्जी से किया। कपि ने तुरन्त ही उसका छल पहिचान लिया।

व्याख्या : छाया को कोई पकड नही सकता। पुरुष के पकडने से छाया पकडी जाती है। मायाबल से यह उलटा ही करती थी। छाया पकडकर पुरुष को पकडती थी। जिस प्रकार डोरी पकडकर पतङ्ग उतार ली जाती है उसी प्रकार से आकाशचारी जीवो को छाया पकडकर खीच लेती थी। उनका कोई पुरुषार्थ नही चलता था। छाया के साथ खिचे हुए उसके मुख मे चले आते थे। गगनचरो के भक्षण की यही विचित्र विधि थी।

वही माया उसने हनुमान्जी से किया। किसी ने आज तक उसकी माया को पहिचान नही पाया था। पहिचान मे आजाने पर माया का बल नही चलता। ये महात्मा कपि होने पर भी ऐसे प्रत्युत्पन्नमति हैं कि तुरन्त ही पहिचान गये कि

इसका बल छाया के मार्ग मे ही है। जिधर यह खींच रही है उधर ही पराक्रम करने से काम चल सकता है। प्रतिकूल विधि से पराक्रम विफल होगा।

ताहि मारि मारुत सुत बीरा। बारिध पार गयउ मतिधीरा ॥
तहाँ जाइ देखी बन सोभा। गुंजत चंचरीक मधु लोभा ॥३॥

अर्थ : पवनपुत्र मतिधीर वीर हैं। उसे मारकर समुद्र पार गये। वहाँ जाकर वन की शोभा देखी। मधु के लोभ से भौंरे गुञ्जार कर रहे हैं।

व्याख्या : उसी के मुख मे कूद पडे और उसे फाड़ डाला। पहिले सात्त्विकी माया स्वर्ग से विघ्न रूप होकर आयी। उससे मेल कर लिया। यह तामसी माया पाताल की विघ्नरूपा उपस्थित हुई। सो इसे मार ही डाला। मारुतसुत कहकर उनका वेग द्योतित किया। विघ्न के कारण दो स्थानो पर ठहरना पडा। फिर भी दिन रहते ही पार पहुँच गये। मारुत नदन मारुत को मन को खगराज को वेग लजायो। वीर मतिधीर थे अत. पार जाने मे समर्थ हुए। वीर मतिधीर कहकर बल बुद्धि का उत्कर्ष कहा। हनुमान्‌जी ने समुद्रोल्लंघन मे अन्तरिक्ष मार्ग का भी आलम्बन किया था।

जलदुर्ग कहकर वनदुर्ग कहते हैं। पार जाने पर वन मिला जो बडा सोहावना और सरस था। मकरन्द से भरे फल फूल थे। अतः गुजत अलि लै चल मकरदा। बानर वन के जौहरी होते हैं। अत. शोभा देख रहे हैं।

नाना तरु फल फूल सुहाए। खग मृग बृंद देखि मन भाए ॥
सैल बिसाल देखि एक आगे। तापर धाइ चढे भय त्यागे ॥४॥

अर्थ : अनेक प्रकार के वृक्ष और सुन्दर फल फूल थे। पशु पक्षी के समूह को देखकर प्रसन्न हुए। सामने एक विशाल पर्वत देखा। भय त्यागकर उस पर दौडकर जा चढे।

व्याख्या : अब गिरि दुर्ग कहते हैं। पर्वत तो बहुत थे पर उनमे एक विशाल पर्वत था। विशालता कहते हैं कि उस पर दौड़कर चढना पड़ा। कूदकर नही चढे। भय त्यागे कहने से उसपर किसी भय विशेष का होना सूचित किया अथवा एकाएक ऊपर चढ जाने से राक्षसो द्वारा दिखाई पड जाने का भय था। लङ्का बडे ऊँचे पर्वत पर है। उसका दृश्य देखने के लिए विशाल पर्वत पर चढे।

उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहि खाई ॥
गिरि पर चढि लंका तेंहि देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी ॥५॥
अति उतंग जल निधि चहु पासा। कनक कोट कर परम प्रकासा ॥६॥

अर्थ : हे उमा ! इसमे वानर की कोई बडाई नही है। प्रभु का प्रताप ही ऐसा है जो काल को भी खा जाता है। पर्वत पर चढकर उन्होंने लङ्का देखी।

बहुत ही विकट किला था जिसका कुछ वर्णन नही हो सकता। उसके चारो ओर अत्यन्त ऊँचा समुद्र है। सोने के परकोटे का परम प्रकाश हो रहा है।

व्याख्या : इस पर्वत पर निर्भय चढ जाना इतना विकट कार्य था कि शिवजी ने इस अवसर पर प्रभु के प्रताप की प्रशसा की कि वह काल को खा जाता है। इन बातो से महात्माओ ने यह अनुमान किया है कि उस पर्वत पर काल का पहरा था। हनुमान्जी के दौडकर चढने पर वह भी भागा। हनुमान्जी का पराक्रम ही ऐसा है। यथा : पटकउँ मीच नीच मूषक ज्यौं सबहिको पाप बहावो। गी। ज्ञानघाट के वक्ता शिवजी उमा को सम्बोधन करके कहते हैं कि इसमे कपि की बडाई कुछ भी नही। क्योकि स्वय वानर रूप से पराक्रम दिखला रहे हैं। अपनी बडाई करना उचित नही है। वस्तुत बल तो प्रभु का ही है। जिससे जीव का काम चलता है। इसमे जीव का अभिमान मिथ्या है। पर इसका अर्थ यो भी किया जा सकता है कि उस पर्वत पर चढने से हनुमान्जी लङ्कावासियो से देखे जा सकते थे। अत उस पर चढना काल का सामना करना था। फिर भी हनुमान्जी उसपर दौडकर चढ गये। प्रभु के सेवक सपने मे भी काल से नहीं डरते। क्योकि वे प्रभु ही ऐसे हैं। जिनका प्रताप काल को भी खा जानेवाला है। शत योजन विस्तीर्ण समुद्र है। इसलिए उसे अत्यन्त ऊँचा कहा। तट से ही समुद्र की ऊँचाई बढने लगती है और बढती ही चली जाती है। अपराह्ण का समय होने से लाल किरणो द्वारा सोने की लङ्का का परम प्रकाश हो रहा था। समुद्र और लङ्का किले के बीच मे कोई जलाशय नही है। इससे धनु दुर्ग कहा।

छ कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुदरायतना घना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथी चारु पुर बहु बिधि बना॥
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहि बनै॥१॥
बन बाग उपवन बाटिका सर कूप बापी सोहही।
नर नाग सुर गधर्ब कन्या रूप मुनि मन मोहही॥
कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जही।
नाना अखारेन्ह भिरहि बहुबिधि एक एकन्ह तर्जही॥२॥
करि जतन भट कोटिन्हि बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छही।
कहुँ महिप मानुप धेनु खर अज खल निसाचर भच्छही॥
एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछु एक है कही।
रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहि सही॥३॥

अर्थ सोने का परकोटा है। उसके अन्दर विचित्र मणियो से जडे हुए बहुत

सुन्दर सुन्दर घर है। चौराहे बाजार सुन्दर मार्ग और गलियाँ हैं। सुन्दर नगर बहुत प्रकार से बना हुआ है। हाथी घोड़े खच्चरों के समूह पैदल और रथों के समूहों को कौन गिन सकता है ? अनेक रूपो के राक्षसों के दल और अत्यन्त बलवती सेना वर्णन करते नही बनती।

वन बाग उपवन फुलवारी तालाब कूएँ और बावलियाँ सुशोभित हैं। मनुष्य नाग[1] देवताओ और गन्धर्व की कन्यायें अपने सौन्दर्य से मुनियों के भी मनों को मोह लेती हैं। कही पर्वत के समान बड़े शरीरवाले बड़े ही बलवान् मल्ल गरज रहे हैं। ये अनेकों अखाड़ों में बहुत प्रकार से भिड़ते और एक दूसरे को डाँटते हैं।

भयङ्कर शरीरवाले करोड़ों योद्धा यत्न करके चारों दिशाओं से नगर की रखवारी करते हैं। कही दुष्ट राक्षस भैंसों मनुष्यों गायों गदहों और बकरों को खा रहे हैं। इसीलिए तुलसीदास ने इनकी कथा कुछ थोड़ी सी ही कही है। क्योंकि ये रघुवीर के तीररूपी तीर्थ में शरीरों को त्याग करके सच्ची गति को प्राप्त होगे।

व्याख्या : जब सोने का परकोटा हुआ तब विचित्र मणि कृत भवन होने ही चाहिए। बहुत से मणिकृत भवन कहने से यह अर्थापत्ति हुई कि कुछ भवन साधारण भी थे। पहिले ही कह चुके हैं। गिरि त्रिकूट एक सिंधु मझारी। विधि निर्मित दुर्गम अति भारी। तेहि मय दानव बहुरि सँवारा। कनक रुचिर मनि भवन अपारा। मय दानव की कारीगरी प्रख्यात है। द्वापर में युधिष्ठिर की सभा बनायी थी। जिसमें जल में थल का और थल में जल का भ्रम होता था। इसलिए विचित्र कहते हैं। चौहट बाजार सड़कें और गली कमठ पृष्ठादि भूमिकाओं पर शास्त्र के विधानानुसार बनाये गये थे। जिस ओर जाइये मकान का पिछवाड़ा न दिखायी पड़े इत्यादि। अथवा नगर मे अनेक पुर है। सबकी बनावट भिन्न भिन्न प्रकार की है। भीतर चतुरङ्गिणी सेना है। जिसमें खच्चरों का समूह भार वहन : बार बरदारी के लिए हैं। राक्षस अनेक रूप होते है। सो सभी प्रकार के राक्षसों के जूथ अलग अलग है। इसलिए बहुरूप निसिचर जूथ कहा। जूथ कहकर सेना कहते हैं। सेना में अनेक जूथ होते हैं। सो सेना अतिबल है। किसी के पास ऐसी बलवती सेना नही हैं। जूथ असख्य हैं सेना का बल अवर्णनीय है। अतः को गनै बरनत नहि बनै कहा। यहाँ पर बार बार गोस्वामीजी वर्णनातीत कहते चले जावेंगे।

---

१. नाग का अर्थ सर्प भी होता है और नाग नाम की देवताओ की जाति विशेष है जिनमे मनुष्यो की अपेक्षा क्षेत्रज शक्ति का अधिक प्रकाश होता है। यथा : पशुभ्यो मनुजातिश्चाशक्त्या पुंसः प्रभाविताः। तेभ्योऽपि नागगन्धर्वयक्षाद्या देवता नृप : वि. पु. ६.७.६६। अर्थ : पशुओ की अपेक्षा मनुष्य भगवान् की क्षेत्रज्ञ शक्ति से अधिक प्रभावित है और उनसे भी अधिक हे राजा ! नाग गन्धर्व यक्षादिक देवता प्रभावित हैं। यहाँ नाग का अर्थ जाति विशेष के देवता हैं।

अब नगर के चारो ओर का दृश्य कहते हैं कि सब ओर वन बाग उपवन और वाटिकाएँ हैं। स्वत सिद्ध वृक्ष समूह को वन कहते हैं। फलवाले वृक्षो के समूह को बाग कहते हैं। आरोपित वृक्ष समूह को उपवन कहते हैं। फुलवारी को वाटिका कहते हैं। वन मे जल की व्यवस्था नही रहती। उसका सीचा जाना दैवाधीन है। बाग मे सर उपवन मे कूप और वाटिकाओ मे बावलियाँ हैं। सायंकाल का समय है। हवा खाने के लिए स्त्रियाँ नगर के बाहर बगीचो मे आयी हुई हैं। देव यक्ष गन्धर्व नर किन्नर नाग कुमारि। जीति बरी निज बाहुबल बहु सुन्दर बर नारि। लङ्का मे धर्म्य विवाह नही काम्य विवाह है। नसल ठीक रखने का कोई नियम नही है। सौन्दर्य की उपासना है चाहे कोई हो और बल की प्रधानता है। कही उपवनो मे अखाडे हैं। वहाँ मल्ल लोग बल के उमङ्ग मे गर्जन कर रहे हैं। कुश्ती लडते हैं। शस्त्राभ्यास करते हैं। लडने मे एक दूसरे को डाँटते है। अखाडे नगर के बाहर है।

अब नर दुर्ग कहते हैं। अनेक यत्न करके विकट भट नगर की रक्षा करते हैं। इतना बल सम्पन्न होने पर भी नगर रक्षा मे इतनी बडी सावधानी है। बिना जाने वहाँ हवा भी नही बह सकती। भोजन की व्यवस्था कहते है। भैसे, मनुष्य, गाय, बकरी, सब कुछ खा जाते हैं। इसीलिए खल कहा। अच्छही कहने का भाव यह कि कच्चा ही खा जाते हैं। मनुष्य कहकर यह दिखलाया कि बाहर से ये सब पकड पकडकर लङ्का रसद की भाँति भेजे जाते हैं। नही तो लङ्का म मनुष्य की गन्ध कहाँ ? पापियो की कथा नही करनी चाहिए। यहाँ कुछ कहना पडा। उसे बहुत थोडे मे कहा। और यह समझकर कि अन्त मे इनकी गति होगी। श्रीरामजी के तीर रूपी तीर्थ मे ये शरीर त्याग करेंगे इसलिए कहा। यदि इनकी गति भी अनिष्ट होती तो न कहते।

दो. पुर रखवारे देखि बहु, कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरौं निसि, नगर करौं पैसार ॥३॥

अर्थ : नगर मे बहुत से रखवालों को देखकर हनुमान्जी ने मन मे विचार किया कि अति लघुरूप धारण करूँ और रात को नगर म प्रवेश करूँ।

व्याख्या . करोडो राक्षसो का चारो ओर पहरा है। बिना सबका सहार किये लङ्का मे प्रवेश करना असम्भव है। सीताजी का देखना तो दूर गया यहीं युद्ध ठन जायेगा। अत शैल समान शरीर से काम न चलेगा। अत. अति लघुरूप धारण करने का विचार किया। गगनचारियों मे अति लघुरूप मशक का और अत्यन्त बडा गरुड का है। प्राकार डाकना है। अत गगनचारी रूप धारण करना ही उपयुक्त है। सा भी रात को जब मच्छरो के विचरण का समय होता है। दिन को फिर भी सत्र लख जायँगे। चोरी रात को ही ठीक होती है।

५८. लङ्का प्रवेश प्रसङ्ग

मसक[१] समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी ॥
नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहि निदरी ॥१॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ने मच्छर के समान रूप छोटा धारण किया और नृसिंहजी का स्मरण करके लङ्का को चले। लङ्किनी नाम की एक राक्षसी थी। उसने कहा कि मेरा निरादर करके जा रहा है ?

व्याख्या : फिर लघिमा सिद्धि से काम लिया। अपना आकार मच्छर के समान छोटा बनाया। रूप बन्दर का ही रहा। अँगूठी भी जिसे मुख मे लेकर चले थे उसी तारतम्य से छोटी हो गयी गयी। देवताओ के वसन भूषण अस्त्र वाहनादि उनके रूप से भिन्न नही होते। गोतावलो मे अँगूठी के बोलने का भी उल्लेख है। वे यथावसर छोटे बडे हुआ करते हैं। अथवा जिस लघिमा सिद्धि से अपना शरीर छोटा किया उसी से अँगूठी भी छोटी कर ली। नरहरि शब्द नृसिंह के लिए प्रयुक्त हुआ है। यथा : मीन कमठ सूकर नरहरी। वामन परसुराम वपुधरी। सो नृसिंह का स्मरण किया। जहाँ कोई मार्ग न हो वहाँ मार्ग निकालनेवाले नृसिंहजी हैं। हिरण्यकश्यप ने मृत्यु का सब रास्ता रोक दिया था। नृसिंहजी ने उसमे भी रास्ता निकालकर उसका वध किया था। अत: अवसरानुकूल उन्ही का स्मरण किया।

लङ्कापुरी की अधिष्ठात्री देवी लङ्किनी नाम से पुकारी जाती थी। राक्षसी रूप से रहती थी। इसलिए एक निसिचरी कहते हैं। यहाँ एक का अर्थ प्रधान है। इतने राक्षस थे किसी ने हनुमान्‌जी को नही देख पाया। पर उसने देख लिया। पहरे मे धोखा देकर निकल जाना पहरेदार का अनादर है। उसने अपनी प्रधानता द्योतन करते हुए ललकारा। मालूम होता है कि और सब पहरेदारो को डाँककर हनुमान्‌जी वन बाग उपवन वाटिका डाँक रहे थे। तब इसने देखा : क्योंकि आगे कहेगी : प्रविसि नगर कीजे सब काजा। लङ्किनी को अभिमान है कि मेरा कोई निरादर नही कर सकता। यहाँ मृत्युलोकी राजसी बाधा उपस्थित हुई। अत: इसका वध न करेंगे दण्ड देंगे। प्रवृत्ति दुर्ग के विरोधी को पहिले सात्त्विक तामसी

---

१ हनुमत तहाँ लघुरूप बने। अनिमा के परभाव जने।
अपुना जस के तस ही है पै लोगन छोट सरूप गने।
अनिमा के प्रभाव ही से तौ निकट वस्तु मे दूरपने।
कोउ विडाल सम कोउ मसक सम कहत तहाँ सदेहु जने।
बडी नजर काहू की छोटी भये नजर मे भेद घने।
घर घर लखत अलख वनि अपुना जस ईश्वर सब माहि सने।
मिलत जतन से वह पताल को पानी जैसे मिलत खने।

—काष्ठजिह्व स्वामी

और राजसी माया से काम पडता ही है। अतः उसे सात्त्विक को अपनाना पडता है। तामसी का वध और राजसी का निग्रह करना पडता है।

जानेहि नही मरम सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा॥
मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनी ढनमनी॥२॥

अर्थ : रे शठ! तूने मेरा भेद नही जाना। जितने चोर हैं वे ही मेरे आहार हैं। महाकपि हनुमान्‌जी ने उसे एक घूँसा मारा। जिससे वह रक्त की उलटी करती हुई पृथ्वी पर लुढक गयी।

व्याख्या : लङ्किनी ने कहा कि तू शठ है चालाकी से अपने को छिपाना चाहता है। करि दुराव यह चातुरी सो सठ तुलसीदास। तू औरो का मर्म जानता है कि इतने छोटे रूप का ख्याल न करेंगे। पर मेरा मर्म नही जानता। जितने चोर हैं वे ही रावण द्वारा मेरे आहार कल्पित किये गये हैं। चोर पकडूँ तो पेट भरे न पकडूँ तो भूखी मरूँ। अत. मेरा ध्यान छोटे से छोटे चोर पर भी रहता है। औरो को तो बाहर से रसद आया करती है। यथा . कहुँ महिष मानुष धेनु अज खर खल निसाचर भच्छही। उन्हें क्या पडी है कि इतना ध्यान रक्खे। हनुमान्‌जी ने विचार किया कि इस रूप से इसका मैं कुछ नही कर सकता। इसलिए बडे वानर का रूप धारण किया। स्त्री अवध्य है और इसे चुप करना आवश्यक है। अतः बाये हाथ से एक घूँसा मारा। इतना ही उसके लिए बहुत हो गया।

पुनि संभारि उठी सो लंका। जोरि पानि कर बिनय ससंका॥
जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा। चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा॥३॥

अर्थ : फिर वह लङ्का सँभालकर उठी और सशङ्क होकर हाथ जोड विनती करने लगी कि जब ब्रह्मदेव ने रावण को वर दिया तब चलते समय उन्होने मुझे एक पहिचान बतला दी।

व्याख्या : यहाँ पर कवि ने लङ्का कहकर बात स्पष्ट कर दी कि वह स्वयं लङ्का थी : अधिष्ठात्री देवी थी। इसी से उठी नही तो न उठती। रावण की आज्ञा से निशिचरी बनी पहरा देती थी। उसने रात को छिपकर हनुमान्‌जी को जाते देखकर उन्हे शठ और चोर कहा। अब सशङ्क होकर विनय करती है कि शठ कहने के दण्डरूप मे तो एक घूसा खाया अब चोर कहने के दण्डरूप मे दूसरा घूसा न खाना पडे। इस बार के घूसे से न बच सकूँगी। अत कहने लगी कि मैं देवी हूँ। रावण का शासन मुझे पसन्द नही है। जब ब्रह्मदेव रावण को वर दे रहे थे उस समय मैं वहाँ उपस्थित थी। चलते समय ब्रह्मदेव मुझे चिह्न बतलाते गये। यहाँ कहा मोहि चीन्हा का दो अर्थ करना चाहिए : १ मुझे पहिचानकर कहा २ मुझे चिह्न बतलाया।

बिकल होसि तैं कपि कें मारें। तब जानेसु निसिचर संघारे॥
तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता॥४॥

अर्थ : जब तू बन्दर के मारने से व्याकुल हो जाय तब जान लेना कि राक्षसों का संहार अब हुआ ही चाहता है। हे तात ! मेरा अत्यन्त बड़ा पुण्य है जो आँखो से रामदूत का दर्शन पाया।

व्याख्या : बन्दर अल्पवीर होते हैं। मेरे सामने क्या हैं। यथा : नर वान केहि लेखे माही। जब कपि के मारने पर तुझे विकलता हो तब यह समझ लेन कि यह रामदूत है। रामावतार हो गया। अब राक्षसो का नाश होगा। सो आपा द्वारा जो विकलता हुई उससे मुझे हर्ष हुआ। मुझे आपसे महापुरुषो का दर्शन कहाँ सवेरे से साँझ तक राक्षस ही देखते देखते दिन जाता है। भले का दर्शन पुण्य क फल है। देवदूत का दर्शन बड़े पुण्य का फल है और रामदूत का दर्शन अति अधि पुण्य का फल है। देखेउँ नयन का भाव यह कि यहाँ भले का नाम भी सुनने नही आता। यहाँ आँखो से रामदूत के दर्शन की कौन आशा थी ?

दो. तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिअ तुला एक अंग।
तूल न[1] ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत संग ॥४॥

अर्थ : सात स्वर्ग और अपवर्ग के सुख को तराजू के एक पलरे पर रख जाय तो भी वे सब मिलकर उस सुख के बराबर नही हो सकते जो सत्संग लव मात्र से होता है।

व्याख्या : भू स्वर्ग से लेकर सत्यलोक तक की सात स्वर्ग मे गिनती है आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन। वहाँ से फिर लौटना होता है। अपव मोक्ष को कहते हैं। जहाँ से फिर लौटना नही होता। ब्रह्मलोक तक सुख क तारतम्य है और मोक्ष में निरतिशय सुख है। यह सब सुख तराजू के एक पल पर रखा जाय और सत्संग के लव मात्र का सुख दूसरे [illegible]
[illegible]
[illegible] पलड़ा ऊपर उठता है। सो यहाँ इतन अन्तर पड़ा कि स्वर्गवाला पलड़ा तो आकाश मे गया और सत्संगवाले पलड़े जमीन न छोड़ी।

प्रविसि नगर कीजे सब काजा। हृदय राखि कोसल पुर राजा ॥
गरल सुधा रिपु करइ मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई ॥१॥

अर्थ : नगर में प्रवेश करके सब काम कीजिये। कोसलपुर के राजा को हृद में रख लीजिये। उसके लिए विष अमृत हो जाता है। शत्रु मित्रता करने लगते हैं समुद्र गाय के खुर के बराबर हो जाता है। अग्नि में शीतलता आजाती है।

व्याख्या : लङ्का ने कहा कि अब बेखटके नगर मे प्रवेश करके सब का

[1] १. तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्। भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः
—श्रीमद्भा०

कीजिये। आप को जान लेने का सामर्थ्य अब लङ्का मे किसी को नही है। मेरी ओर से भी बेखटके रहिये मै भी किसी से न कहूँगी। परन्तु भगवान् कोसलेश को हृदय मे रख लीजिये। भाव यह कि कोसलेश को हृदय मे रखकर चले थे। उस मूर्ति मे क्या घाटा था कि उसके स्थान पर आप ने नृसिंहमूर्ति को पधराया? ध्येय मूर्ति के परिवर्तन से कार्य मे बाधा उपस्थित होती है। अत. जिस भाँति कोसलपुर के राजा को हृदय मे रखकर चले थे फिर उसी भाँति उन्हे हृदय मे रख लीजिये। इस भाँति लङ्का ने अच्छी सलाह देकर मित्रता का कार्य किया।

उपासनाघाट के वक्ता भुसुण्डीजी बोल उठे क्योकि उपासना का महत्त्व कहने का अवसर आगया। भजन से भगवत्कृपा होती है। यथा : भजत कृपा करिहैं रघुराई और भगवत्कृपा से विष भी अमृत हो जाता है। सुरसा विषधरो की माँ है। सो राम कृपा से अमृत हो गयी। आशीर्वाद दिया : रामकाज सब करिहहु तुम बल बुद्धि निधान। रिपु ने मित्र का काम किया। लङ्किनी ने उत्तम परामर्श दिया। समुद्र तो गोष्पद हो ही गया था। यथा : गोष्पदीकृतवारीशम्। अनल मे शीतलता आने की कथा आगे आयेगी। यथा : ताकर दूत अनल जेहि सिरजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा।

गरुड़ सुमेरु रेनु समताही। राम कृपा करि चितवा जाही॥
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥२॥

अर्थ : हे गरुडजी! सुमेरु पर्वत उसके लिए रज के समान हो जाता है जिसे रामजी ने कृपा करके देखा। हनुमान्जी ने अति लघुरूप धारण किया और भगवान् का स्मरण करके नगर मे प्रवेश किया।

व्याख्या : यहाँ पर अनेक पुस्तको मे गरल पाठ है। परन्तु वह समीचीन नही है। उपासनाघाट की कथा हो रही है। अत भुसुण्डिजी वक्ता हैं उनका गरुड सम्बोधन करना ही उपयुक्त है। ऐसे ही अवसर पर उदाहरण देते समय ठीक इसका उलटा कहने मे भी गरुड सम्बोधन है। यथा : मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ विष सुनु हरिजाना। मित्र करइ सतरिपु कै करनी। ताकहुँ विबुध नदी बैतरनी। सब जग ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुबीर विमुख सुनु भ्राता। अत यहाँ भी गरुड सम्बोधन ही उपादेय है। रामजी जिसे कृपा करके देखते है। उसके लिए जड वस्तु भी अपना सहज स्वभाव त्यागकर सुखद हो जाता है। सुमेरु ऐसा दुरुल्लघ्य पर्वत भी : जिसके उल्लघन का निषेध भी शास्त्र मे है। माला के भी सुमेरु का कोई उल्लघन नही करता। उसके लिए रेनु की भाँति पद दलित होने योग्य हो जाता है। यथा : रज मग परी निरादर रहई। सब कर पग प्रहार नित सहई।

हनुमान्जी ने फिर अति लघु रूप धारण किया। यह तीसरा अवसर है। पहिले सुरसा के प्रसङ्ग मे। यथा : अति लघु रूप पवन सुत लयउ। दूसरा लङ्का की ओर चलने के समय। यथा : मसक समान रूप कपि धरी और तीसरा इस

समय। लङ्किनी की उचित शिक्षा को हनुमान्‌जी ने मान लिया। अब भगवान् रामचन्द्र का स्मरण करके नगर मे प्रवेश किया।

मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा ॥
गयउ दसानन मंदिर माँही। अति बिचित्र कहि जात सो नाँही ॥३॥

अर्थ : एक एक करके घरो को खोजा। जहाँ तहाँ असंख्य योद्धा देखे। रावण के मन्दिर मे गये। वह अत्यन्त विचित्र था उसका वर्णन नही हो सकता।

व्याख्या : एक ओर से खोजना आरम्भ किया। सम्पाती ने उपवन मे बतलाया था। यथा : तहँ असोक उपवन जहँ रहई। सीता बैठी सोचरत अहई। पर वह दिन की बात थी। रात को किस घर मे हैं कौन कह सकता है ? चोर चोरी करके घर में नही रखता। अतः पहिले लङ्का भर की तलाशी ले ली। जिस मन्दिर मे जाते हैं योद्धा ही दिखलायी पडते हैं। सीता के लक्षणवाली किसी स्त्री को नही देखा। इस भाँति असंख्य मकान खोजे।

नाम किसी का नही जानते। इसलिए उल्लेख नही किया। मालिक को दशमुख देखकर निश्चय हुआ कि यह दशानन का मन्दिर है। अथवा अतिविचित्र होने से अनुमान किया कि यही राजमन्दिर होगा। उसे देखकर हनुमान्‌जी को स्वर्गलोक और देवलोक का भ्रम हुआ। यथा : स्वर्गोऽयं देवलोकोऽयमिन्द्रस्यापि पुरी भवेत्। वा०। इसलिए अति विचित्र कहा। लौकिक रचना होती तो कहते बनता। वहाँ अलौकिक रचना थी। अतः कहते है : कहि जात सो नाही।

सयन किएँ देखा कपि तेही। मंदिर महुँ न दीखि बैदेही ॥
भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा ॥४॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ने उसे शयन किये देखा। परन्तु उस घर मे वैदेही को नही देखा। फिर एक सुन्दर घर दिखायी पड़ा। वहाँ भगवान् का एक अलग मन्दिर बना हुआ था।

व्याख्या : पहिले पहल निद्रितावस्था मे रावण को देखा। पर वहाँ भी सीताजी का पता नही। सरकार ने रूप शील स्वभाव का ऐसा वर्णन कर दिया था कि हनुमान्‌जी ने निर्णय कर लिया कि इतनी रानियो मे सीताजी कोई नही हैं।

भवन तो एक से एक देखे पर हनुमान्‌जी को सोहाये नही। क्योंकि भगवत् सम्बन्धी वस्तु वहाँ कुछ भी नही थी। लङ्का भर मे एक घर हनुमान्‌जी को सोहाया। क्योंकि उसमे हरिमन्दिर था और सो भी शास्त्रानुसार गृहस्थी से अलग बना हुआ था। गृहस्थी के भीतर भगवान् के विग्रह के पधारने का विधान नही है। उसके लिए पृथक् स्थान चाहिए। बाल बच्चो द्वारा रहने के स्थान मे कुछ न कुछ अशुद्धि रहने की शङ्का बनी ही रहती है।

दो. रामायुध अंकित गृह, सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ, देखि हरख कपिराइ ॥५॥

अर्थ : वह घर श्रीरामजी के आयुध के चिह्नो से अंकित था। उसकी शोभा वर्णन नही की जा सकती। वहाँ नवीन नवीन तुलसी के समूहो को देखकर कपिराज हनुमान्‌जी हर्षित हुए।

व्याख्या : रहनेवाले घर मे भी रामायुध धनु असि चर्म और शक्ति अङ्कित हैं। उससे घर की अवर्णनीय शोभा है। पवित्र शोभा तो यही दिखायी पड रही है। सम्राट् के छोटे भाई का घर है। ऐश्वर्य की कोई कमी नही। रावण के घर के बाद यही घर है। पवित्रता अधिक है। तुलसी के नये पौदे बहुत से लगे हैं। सहस्र नाम से तुलसीदल नित्य चढता है। तुलसीवन हनुमान्‌जी को बडा प्यारा है। यह सब देखकर कपिराज हर्षित हुए। भक्तिरस के आलम्बन और उद्दीपन दोनो को देखकर सञ्चारी भाव हर्ष का उदय हुआ।

लंका निसिचर निकर निबासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा॥
मन महुँ तरक करै कपि लागा। तेही समय बिभीषनु जागा॥१॥

अर्थ : लङ्का तो निशिचर समूह का निवास है। इहाँ सज्जन का घर कहाँ? अथवा गन्ध कहाँ? हनुमान्‌जी मन मे तर्क करने लगे। उसी समय विभीषन जागे।

व्याख्या : घर घर देख लिया लङ्का मे सब निशिचर हैं। ऐसे दुष्टो का सङ्ग तो सज्जन भूलकर नही करते। सज्जन यहाँ रह कैसे सकता है? फिर क्या यह कोई निशाचरी माया है? या कोई सज्जन ही समय के हेरफेर से इन लोगो मे फँसा पडा है। इन लोगो मे से निकल नही सकता और ये लोग भी किसी कारण वश उसे प्राण से वियुक्त नही करते।

हनुमान्‌जी मन मे तर्क करने लगे। किसी निश्चय पर नही पहुँच सके। उसी समय सरकारी सहायता हुई। विभीषणजी जागे। रात भर तो हनुमान्‌जी को खोजते बीता। उष काल आगया। यही समय महात्माओ के जागने का है। जब भक्त असमञ्जस मे पड़ते हैं तब सरकार उनकी सहायता का सयोग जुटा देते हैं। बन्दर प्यासे मरते थे। तब तो तपस्विनी से भेंट हुई। उसने समुद्र तट तक पहुँचा दिया। वहाँ अनशन करके बैठे तो सम्पाती से भेंट हुई। उसने सीताजी का पता बतला दिया। यहाँ हनुमान्‌जी असमञ्जस मे फँसे तो विभीषणजी जागे। उनकी बतलायी युक्ति से श्रीजनकनन्दनी का साक्षात्कार होगा। इसी भाँति भक्तो की सहायता का योग जुटता ही जाता है। यथा : करहिं कृपानिधि सोइ सजोगा।

दो बार श्रीराम नाम लेने से विभीषण पर हर्षित होकर श्रीमारुति ने कृपा की तो जो निरन्तर श्रीराम नाम हनुमान्‌जी को सुनाते हैं उससे अञ्जनीनन्दन कितने अधिक प्रसन्न होंगे! दर्शन देते हैं।

राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा । हृदय हरष कपि सज्जन चीन्हा ।।
एहि सनु हठि करिहौं पहिचानी । साधु ते होइ न कारज हानी ।।२।।

अर्थ : उसने राम राम सुमिरन किया । हनुमान्‌जी ने पहिचान लिया कि सज्जन हैं और हृदय में हर्षित हुए । इनसे हठ करके परिचय करूँगा । क्योंकि साधु से कार्य की हानि होती नही ।

व्याख्या : जो सोचता हुआ प्राणी सोता है वही विचार लिये जागता है । राम राम स्मरण करते जो सोयेगा वह राम राम कहते ही जागेगा । दम्भ के लिए जो नाम स्मरण करता है वह जागते ही नाम स्मरण नही कर सकता । वह जब अवसर देखेगा तब वह राम राम कहेगा । अतः हनुमान्‌जी के निर्णय के लिए अचूक प्रमाण मिल गया । निश्चय हो गया कि सज्जन है । अतः सज्जन के पहिचान लेने से मन में हर्ष हुआ । क्योकि भगवती जनकनन्दिनी की तमाम खोज डाला । कही पता नही चला । लङ्का में किसी से पूछ सकते नही थे । बिना पूछे अब पता चलने की कोई आशा नही । कोई सज्जन मिले तो उससे पूछें । सो एक सज्जन तो मिला । इसे मेरा हाल क्या मालूम ? अतः मैं ही इससे हठपूर्वक जान पहिचान करूँगा । यह साधु है । इससे यदि काम बनेगा नही तो बिगड़ेगा भी नहीं । दूसरे के कार्य को साधन करनेवाले को ही साधु कहते हैं । फिर वह साधु कैसा जिससे दूसरे का कार्य बिगड़ जाय ।

बिप्र रूप धरि बचन सुनाए । सुनत बिभीषनु उठि तहँ आए ।।
करि प्रनाम पूछी कुसलाई । बिप्र कहहु निज कथा बुझाई ।।३।।

अर्थ : ब्राह्मण का रूप धरकर वचन सुनाया । सुनते ही विभीषणजी उठकर वहाँ आये । प्रणाम करके कुशल पूछी : ब्राह्मण देवता ! अपनी कथा समझाकर कहिये ।

व्याख्या : हनुमान्‌जी ने जो रूप धारण किया था उस रूप को भेंट करने के अनुपयुक्त समझकर त्याग दिया । *प्रातःकाल बन्दर का दर्शन भी शुभ नहीं माना* जाता । अतः विप्ररूप धारण किया । वेदपाठी भवेद्विप्रः । वेदपाठी की विप्र संज्ञा है । इससे यह ध्वनित किया कि वेद मन्त्र सुनाया । उस समय लङ्का मे वेदध्वनि हो रही थी । ब्रह्मराक्षसों ने वेद पढ़ना आरम्भ कर दिया था । बुद्धिमान् हनुमान्‌जी ने ऐसे अवसर पर वेद मन्त्र ही सुनाया । विभीषणजी को ब्राह्मण बहुत प्रिय हैं । यथा : बिप्र धेनु हित संकट सहही । सो स्वयं उठकर आये । वेदध्वनि सुनकर आये । ब्राह्मण देखकर प्रणाम किया । कुशल पूछा । इतना ही नही कहने लगे कि अपनी कथा समझाकर कहो । यहाँ खल मनुजाद द्विजामिष भोगी बसते हैं । आप यहाँ क्यों आये ? यहाँ तक कैसे पहुँच पाये ? आपके ऊपर कौन सी विपत्ति है जो मौत के मुख में कूद पड़े ? मैं कौन सी सहायता करूँ ? इसलिए अपनी कथा समझाकर कहने के लिए प्रार्थना की । विभीषणजी को भी शङ्का हुई कि यहाँ सज्जन कैसे आया ?

की तुम्ह हरिदासन्ह महँ कोई। मोरे हृदय प्रीति अति होई ॥
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी। आयेहु मोहि करन बड़ भागी ॥४॥

अर्थ वया आप हरिभक्तो मे से कोई हैं? मेरे हृदय में अत्यन्त प्रेम उमड रहा है। अथवा आप दोनो से प्रेम करनेवाले स्वय रामजी हैं जो मुझे वडभागी वनाने आये हैं।

व्याख्या मेरी स्वाभाविकी प्रीति हरिदासों मे है और आपको देखकर मुझे अति प्रीति हो रही है। अत आप हरिदासो मे से कोई हैं। सता हि सन्देहपदेपु वस्तुपु प्रमाणमन्त करणप्रवृत्तय। सन्देहास्पद विपयो मे सज्जनो के लिए उनके अन्त करण की वृत्ति ही प्रमाण है और हरिदास को छोडकर अन्य को यहाँ तक आने का सामर्थ्य भी नही है।

यदि दास नही तो आप स्वय प्रभु हो। प्रभु दीनो पर अनुराग करके उसे वडभागी बनाने चले आते हैं। भाग्य का निर्णय सम्पत्ति से नही होता। भगवच्चरणानुराग से होता है। पहिल यथावसर हनुमान्‌जीने विभीषण के विषय में मन मे हो तर्क किया था। अब विभीषणजी उनके विषय मे उनक सामने तर्क कर रहे हैं। महात्माओ का तर्क भी अव्यर्थ होता है। कहते हैं कि दो मे आप कौन है? स्पष्ट कहिये जो आप दिखायी पडते है सो नही हैं।

दो तब हनुमत कही सब, रामकथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन, मगन सुमिरि गुनग्राम ॥६॥

अर्थ तब हनुमान्‌जी ने श्रीरामजी की सारी कथा कही और अपना नाम बताया। सुनते ही दोनो के शरीर पुलकित हो गये और मन श्रीरामजी के गुण समूह का स्मरण करके मग्न हो गया।

व्याख्या सप्रेम वचन सुनकर विश्वास हुआ। यथा कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास। पहिले सज्जन चीन्हा था। अब अभ्रान्त निश्चय हो गया। तब सब रामकथा कह सुनायी। जो लक्ष्मणजी से सुनी थी। यथा - लछिमन रामचरित सब भाषा। और जा स्वय देखा था। चरित कहकर अन्त मे अपना नाम कहा। भाव यह कि चरितसम्बन्धी सब पुरुषो का नाम लिया। अपने लिए मैं कहते थे। अन्त मे अपना नाम कह देने से कथा पूर्ण हुई। कहनेवाले को भी पुलक और सुननेवाले को भी पुलक हुआ और गुणग्राम के स्मरण से मन आनन्द म मग्न हो गया। यथा कहत सुनत हरखहिं पुलकाही। ते सुकृती मन मुदित नहाही।

सुनहु पवन सुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महु जीभ बिचारी ॥
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा ॥१॥

अर्थ हे पवनसुत! मेरी रहनी सुनो। जैसे दाँतो मे विचारी जीभ रहती है। हे तात! मुझे अनाथ जानकर क्या कभी भानुकुलनाथ कृपा करेंगे?

व्याख्या : यद्यपि रामजी का परिचय देने मे ही अपना परिचय दिया। फिर भी अपने नाम के साथ पिता का नाम भी बतलाया। नही तो विभीषणजी पवनसुत कहकर कैसे सम्बोधित करते ? लङ्किनी की भाँति ये भी अपनी सफाई दे रहे है कि मैं निशिचर निकर के साथ इच्छापूर्वक नही रहता हूँ। विधिवश कुसङ्गति मे पड गया हूँ। जिह्वा मुख के साथ ही उत्पन्न है। वह उसे छोड़कर कही जा नही सकती। दिन रात दाँतों की सेवा किया करती है और सावधानी से अपने को बचाये रहती है। पर दाँतो को उसपर दया नही। अवसर पायें तो उसे चाब जायँ। भाव यह कि इन दुष्टो के बीच मेरी वही दशा है जैसे पर दाँतो के बीच जिह्वा की। दशन शब्द का अर्थ ही काटनेवाला है। जीभ तो विचारी है। चाहने पर भी कुछ नही कर सकती।

इसी भाँति मै भी अनाथ हूँ और सरकार अनाथ पर प्रीति करनेवाले हैं। यथा . सुदर सुजान कृपा निधान अनाथ पर का प्रीति जो। भानु को कही कृपा करने मे कोई परिश्रम नही। ये तो भानुकुल नाथ हैं। जहाँ है वही से बैठे कृपा कर सकते हैं। मुझे उन तक पहुँचने का सामर्थ्य नही है। अनाथनाथ ही कृपा करें तो बने। विभीषणजी इतना जानना चाहते हैं कि वे क्या कभी कृपा करेंगे ? चाहे जब करें।

तामस तन कछु साधन नाँही। प्रीति न पद सरोज मन माँही ॥
अब मोहि भा भरोस हनुमता। बिनु हरिकृपा मिलहि नहि संता ॥२॥

अर्थ : मेरा शरीर तामसी है। इसलिए साधन कुछ भी नही है। चरण कमलो मे प्रीति भी नही है। हे हनुमान्‌जी ! अब मुझे भरोसा हुआ। क्योकि हरि की कृपा के बिना सन्त मिलते नही।

व्याख्या : यहाँ साधन से कर्म और ज्ञान अभिप्रेत है। यथा : लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ। ज्ञानयोगेन साख्याना कर्मयोगेन योगिनाम्। कर्म और ज्ञान न होने पर भी केवल भक्ति से सब कुछ सध जाता है। इस पर कहते हैं कि चरण कमलो मे प्रीति भी नही है। यही बात रावण ने भी कही : होइहि भजन न तामस देहा। तामस देह से वह भी दुखी था। दोनो भाइयो को भजन पर आस्था थी।

विभीषणजी कहते हैं कि अभी तक तो मैं निराश था कि मुझपर कृपा कैसे हो सकती है ? पर अब भरोसा हुआ। क्योकि : सत विसुद्ध मिलहि परितेही। चितवहि रामकृपा करि जेही। मुझे आज विशुद्ध सन्त का दर्शन हुआ। इससे सिद्ध हुआ कि रामजी की कृपादृष्टि मुझ पर हुई। अत. भरोसा हुआ कि जब कृपादृष्टि मेरी ओर फिरी है तो कृपा भी करेंगे अर्थात् सनाथ करेंगे।

जौ रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा ॥
सुनहु बिभीषण प्रभु कइ रीती। करहि सदा सेवक पर प्रीती ॥३॥

अर्थ जब रघुवीर ने कृपा की है तभी तो आपने हठ करके दर्शन दिये हैं। विभीषणजी सुनिये प्रभु की यही रीति है कि सेवक पर सदा प्रीति करते है।

व्याख्या त्यागवीरो दयावीरो विद्यावीरो विचक्षण। पराक्रममहावीरो धर्मवीर सदा स्वत। पञ्चवीरा समाख्याता राम एव स पञ्चधा। रघुवीर इति ख्यात सर्ववीरोपलक्षण। त्यागवीर यथा राजीव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं। दयावीर यथा तुरत विभीषण पाछे मेला। सनमुख राम सहेउ सो सेला। विद्यावीर यथा नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न रामसम जान जथारथ। पराक्रमवीर यथा सक सर एक सोखि सतसागर। धर्मवीर यथा मे सोइ धर्म सुलभ करि पावा। तजे तिहूँपुर अपजस छावा। यहाँ दयावीर से प्रयोजन है। मुझ पर कृपा की यह प्रभु की दयावीरता है। सन्त के हठपूर्वक दर्शन देने से अनुग्रह का अनुमान करते हैं। यथा एहिसन हठि करिहौ पहिचानी।

हनुमान्जी तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहैं कृपा भानुकुल नाथा। का उत्तर देते हैं कि प्रभु की रीति सुनो। वे तो सदा सेवक पर प्रीति करते है। पर कोई उनका वास्तविक सेवक भी तो बने। सेवा की पात्रता आने पर कृपा का अनुभव होगा। यहाँ यह ध्वनि निकलती है कि आप कुछ वास्तविक सेवा कीजिये उनकी कृपा मे सन्देह न कीजिये।

कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चञ्चल सबही विधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥४॥

अर्थ कहिये मै ही कौन बडा कुलीन हूँ। चञ्चल बन्दर हूँ और सब विधि से हीन हूँ। प्रात काल जो हम बन्दरो का नाम ले लेवे तो उस दिन भोजन न मिले।

व्याख्या तामस तन कछु साधन नाही। का उत्तर देते हैं कि आप तामस तन पाने पर भी कुलीन तो हैं। मेरा तो तन भी तामस है और मैं कुलीन भी नही। चञ्चल क्षिप्त चित्त मे साधन का अधिकार नही। अत सबही विधिहीन बतलाते हैं। कपि कौन सा कर्म ज्ञान और उपासना करेगा? सवेरे उसका कोई नाम नही लेता और आप तो प्रात स्मरणीय हैं।

यथा प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीकव्यासाम्बरीषशुकशौनकभीष्मदाल्भ्यान्।
रुक्माङ्गदार्जुनवसिष्ठविभीषणाद्यानेतानह परमभागवतान् स्मरामि।

दो अस मै अधम सखा सुनु, मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन, भरे बिलोचन नीर॥७॥

अर्थ हे सखे! सुनिये मैं ऐसा अधम हूँ। पर रघुवीर ने मुझ पर भी कृपा की। स्मरण करके आँखो मे जल भर आया।

व्याख्या विभीषणजी को रामानुरागी देखकर सखा का नाता जोडा। अब मोहि भा भरोस हनुमता का उत्तर देते हैं कि जो तुम मुझ से अधम को सन्त कह

भ्राता कहा। यथा : होहिं कुठायँ सुबंधु सहाये। भाव यह कि अब तुम हमारे भ्राता हुए। रावण के नही रहे। तुम्हे पिता का दर्शन नही हुआ है। मुझे माताजी का दर्शन नही हुआ है। सो दर्शन करना चाहता हूँ। कैसे हो ?

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई ॥
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ ॥३॥

अर्थ विभीषणजी ने सब युक्तियाँ कह सुनायी। तब पवनसुत विदा लेकर चले। वही रूप धरकर वहाँ गये जहाँ अशोक वन मे सीताजी रहती थी।

व्याख्या : विभीषणजी ने वहाँ पहुँचने की सब युक्तियाँ बतलायी। युक्ति मजु मनि सीप सोहाई सीप की भाँति युक्ति समुद्र तल मे छिपी रहती है। उसे वे ही जानते थे। पवनसुत है। ठहर नही सकते। विभीषणजी ठहराते थे। पर न ठहरे विदा लेकर चले।

सोइ रूप अर्थात् मशक समान रूप अथवा जो रूप कि विभीषणजी ने युक्ति कहते समय बतलाया था। अशोक वन जहाँ सीताजी रहती थी वहाँ से कुछ दूर था। इसी से चलेउ कहा। असोक वन को चले। सम्पाती ने भी उपवन बतलाया था। यथा तहँ असोक उपवन जहँ रहई। सीता बैठि सोच रत अहई।

देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा। बैठेहि बीति जात निसि जामा ॥
कृस तनु सीस जटा एक बेनी। जपति हृदय रघुपति गुन श्रेनी ॥४॥

अर्थ : देखकर हनुमाजीन् ने मन ही मन प्रणाम किया। उन्हे बैठे ही बैठे रात के प्रहर बीत जाते थे। शरीर दुबला हो गया है। सिर पर जटा की एक लट हो गयी है और हृदय मे रघुपति के गुण समूह का जप करती हैं।

व्याख्या महात्माओ की युक्ति अचूक होती है। दर्शन हुआ। प्रकट प्रणाम नही कर सकते और बिना प्रणाम किये भी नही रह सकते। अत मन ही मन प्रणाम किया। अद्भुत दृश्य देखा। माँ सोती नही। रात के पहर बैठे ही बीतते हैं। लेटती भी नही। दारुण तप कर रही हैं। देखि कहने का भाव यह कि रामजी के कथित गुण स्वभाव का मिलान नही करना पडा। देखते ही निश्चय हो गया कि यही माँ हैं।

अशन शयन के त्याग से तथा विरह यातना से शरीर कृश हो गया है। प्रोषितपतिका के लिए केश सस्कार निषिद्ध है। सो बाल सब मिलकर जटा के रूप से एक वेणी हो गयी है। रघुपति के गुणो की श्रेणी का मानसिक जप कर रही हैं। जगदम्बा का तपस्विनी रूप मे दर्शन हुआ।

दो. निज पद नयन दिएँ मन, राम चरन महुँ लीन।
परम दुखी भा पवन सुत, देखि जानकी दीन ॥८॥

अर्थ · नेत्रो को अपने चरणों मे लगाये हुए हैं और मन श्रीरामजी के चरणो मे लीन हैं। जानकीजी को दीन देखकर पवनसुत परम दु:खी हुए।

व्याख्या : नयन का सयोग पद के साथ है, फिर भी देखती नही हैं, क्योकि मन रामचरण मे लीन है। यथा · चित्र से नयन अरु गढे से श्रवन नहि सुनति पुकारे। निर्वितर्क समाधि लग रही है। स्मृति के अच्छी तरह शुद्ध हो जाने पर स्वरूप शून्य की भाँति जब ध्येय मात्र का ही ध्यान रह जाय तब निर्वितर्क समाधि होती है। जिन चरणो की साक्षात् सेवा करती रही, अब उन्ही के लिए समाधि लगा रही हैं। हम लोगो के लिए वह समाधि दुर्गम है, पर माँ के लिए वह महा दीनावस्था थी। पवनसुत हैं, बडे बलवान् हैं, परन्तु पराक्रम का समय नही, इससे परम दु खी हुए। बिना देखे दु खी और देखने पर परम दु खी यथा : देखी जानकी जब जाय, परम धीर समीर सुत के प्रेम हिय न समाय। कृस सरीर सुभाय सोभित लगी उडि उडि धूलि। मनहु मनसिज मोहनी मनि गयउ भोरे भूलि। लङ्काप्रवेश प्रसङ्ग यहाँ तक है।

तरु पल्लव महुँ रहा लुकाई। करै विचार करौ का भाई॥
तेहि अवसर रावनु तहँ आवा। संग नारि बहु किएँ बनावा॥१॥

अर्थ : वृक्ष के पत्तो मे छिप रहे। विचार करने लगे कि भाई! क्या करूँ। उसी समय सजधजकर बहुत सी स्त्रियो को साथ लिये वहाँ रावण आया।

व्याख्या : मशक समान रूप है, फिर भी पेड के एक पत्ते मे छिपे हैं। राक्षसियो का बड़ा कड़ा पहरा पड रहा है कही कोई लख न ले। भाई सम्बोधन मन के लिए है। यथा : चली सती सिव आयसु पाई। करै विचार करौं का भाई। जग बहु नर सर सरिसम भाई। इत्यादि। असमञ्जस आ पडने पर विचार न करना चूक है। विचार ही सब कल्याणो का मूल है। हनुमान्‌जी विचार कर रहे हैं। कोई बात मन मे जमती नही। ऐसे ही अवसर पर प्रभु सयोग जुटा देते हैं। उसी समय रावण आया। रावण का अर्थ ही रुलानेवाला है। रुलाने के लिए आया। अध्यात्म रामायण की कथा है कि रावण ने स्वप्न देखा कि रामजी का दूत एक बन्दर सीताजी को देखने आया है। रावण बड़ा पण्डित है। जान लिया कि स्वप्न सच्चा है। इस समय जाकर जानकी को वाक्यवाण से विद्ध करूँ। दूत जाकर कहेगा तब रामजी आने मे शीघ्रता करेंगे। क्योकि रावण ने सीताहरण ही अपनी सद्‌गति के लिए किया था। इसमे श्रुति प्रमाण है। यथा रामपत्नी वनस्या य. स्वनिवृत्त्यर्थमाददे। १७ रा ता.। रावण की सब बातें प्रायेण दोरुखी होती हैं। यथा : सुनत वचन दसकठ रिसाना। मन महु चरन बदि सुख माना। सो आप भी ठाटबाट से आया और रानियो को भी सजाकर ले आया। दिखाने के लिए कि रावण अपनी स्त्रियो को बडा सुख देता है।

बहु बिधि खल सीतहि समुझावा । साम दान भय भेद देखावा ॥
कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी । मदोदरी आदि सब रानी ॥२॥

अर्थ उस खल ने बहुत भाँति से सीताजी को समझाया । साम दान भय और भेद भी दिखाया । रावण ने कहा हे सुमुखि, सयानी ! सुनो, मन्दोदरी आदि सब रानिया को ।

व्याख्या उनकी प्रक्रिया मे तथा समझाने मे खलता भरी है । इसलिए उसे कवि खल कह रहे है । साम दान भय और भेद दिखलाकर समझाया इसलिए बहुविधि कहते है । मन्दोदरी आदि सब रानी । तव अनुचरी करौ प्रन मोरा । यह कहकर साम दिखलाया । नगर मालिनी पृथ्वी का आधिपत्य जनक राजा को दे देने का लोभ दिखलाया । यह दान है । न मानोगी तो वध करूँगा यह भय दिखलाया । जिसके लिए तू मर रही है वह तुझ पूछता भी नही इत्यादि बातें कहकर भेदनीति का प्रयोग किया । सवैया

प्रमहि ते उपजै सुख सुन्दरि त्यागि सदेह सनेह लगाओ ।
पूरी महीपुर मालिनि आज विदह को रावण त दिलवाओ ॥
जो न सुनो हित की मम बात तो प्रम निरादर को फल पाओ ।
जो नहि पूछत है तुमको तिनके हित क्यो निज जन्म गँवाओ ॥

मुख पर ही पुरुप आसक्त होता है । इसलिए सुमुखि कहता है । सयानी कहकर विचार करने के लिए प्रोत्साहित करता है अपने हित को देखो इसीमे सयानापन है । ये जो मेरे साथ है सब रानियाँ हैं । मन्दोदरी इनमे मुख्य है । इनकी ओर देखो । म सबको कितने सुख से रखता हूँ और वह तपस्वी तुम्हारी भी रक्षा न कर सका ।

तव अनुचरी करौ प्रन मोरा । एकबार बिलोकु मम ओरा ॥
तृन धरि ओट कहति बैदेही । सुमिरि अवधपति परम सनेही ॥३॥

अथ तुम्हारी दासी बना दूँगा यह मेरा प्रण है । तुम एकबार मेरी ओर देख दो । परम स्नेही अवधपति का स्मरण करक वैदेही तिनके के ओट से कहने लगी ।

व्याख्या रावण कहने लगा कि मन्दोदरी समेत इन सब रानियो को तुम्हारी दासी बनाऊँगा । यह मेरा प्रण है । मै इन सबो के सामने प्रण कर रहा हूँ । देखो किसी को दासी बनने मे इनकार नही है । फिर भी भगवती ने न देखा तब कहता है कि इतनी बडी प्रतिज्ञा केवल इस बात पर है कि तुम मेरी ओर एकबार देख लो । भीतरी भाव यह है कि मै पञ्चम लोकपाल कहलाता हूँ परन्तु वस्तुत लोकपाल तो इनके देखने से होऊँगा । यथा लोकप होहिं बिलोकत तोरे ।

रावण ने बडे असमञ्जस म सीताजी को डाल दिया । ऐसी बात कही कि न

उत्तर देने से स्वीकृति समझी जाय। अतः उत्तर देना ही पड़ा। साध्वी स्त्री को परपुरुष से बात करने मे ओट लेना ही पड़ता है। वहाँ कोई ओट था नहीं। अतः तृण को ओट मे रखकर बोली। यह भी द्योतित करती है कि जिससे मै बोल रही हूँ उसे तृण समझती हूँ। अथवा अपना अन्तर्भाव द्योतित करती है कि अवधपति परम स्नेही के सामने तेरा ऐश्वर्य तेरा प्रेम और स्वय तू तृण है।

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ विकासा॥
अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहि रघुबीर बान की॥४॥
सठ सूने हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहि तोही॥५॥

अर्थ : रे दशमुख! सुन, जुगनू के प्रकाश से कभी कमलनी खिल सकती है? ऐसा ही मन मे समझ। रे खल! तुझे रघुवीर के बाण की सुधि नही है। रे शठ! तू मुझे सूने मे हरण कर लाया। रे अधम निर्लज्ज! तुझे लज्जा नही है।

व्याख्या : सुमुखि सम्बोधन के उत्तर मे दशमुख शब्द से सम्बोधित किया। सयानी सम्बोधन के उत्तर मे खद्योत कहा। खद्योत का प्रकाश घने अन्धकार मे होता है। यथा : निसि तम घन खद्योत विराजा। मै उस सूर्य की नलिनी हूँ जिसके सामने खद्योत का अस्तित्व ही लुप्त हो जाता है। तेरा कथन खद्योत का प्रकाश है। इससे नलिनी का विकसित होना प्रकृति के विरुद्ध है। इस उपमा से ही प्रभु की अनुपस्थिति मे रावण की चोरी करना आदि सूचित किया। कहने लगी कि रे खल! परधन परदार लम्पट! मेरी कही बात मन मे समझ। रामजी सूर्य और तू जुगनू है कि नहीं। लङ्का मे आकर रघुवीर के बाण की सुधि भूल गया। चोरी के समय तुझे सुधि थी। यथा : सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़िहाईं। तथा : चले गगन पथ आतुर भय रथ हाँकि न जाय।

मीठी बातें सठ करै करिके महा बिगार। अतः शठ सम्बोधन दिया। दो भाइयो के रहते तेरा साहस न पड़ा। राजा होकर परस्त्रीहरण की इच्छा ही लज्जा की बात है और सो भी सूने मे हरण करना अधम निर्लज्जता है। इन विचारी स्त्रियो के सामने भले ही तू सूर्य से स्पर्धा कर ले पर मैं जानती हूँ कि तू खद्योत है। कितना भी कोई निर्लज्ज हो पर उसमे भी लज्जा का लेश रहता है। पर तुझमे लज्जा का लेश भी नही है। इसी से कहा : लाज नहि तोही।

दो. आपुहि सुनि खद्योत सम, रामहि भानु समान।
परुष वचन सुनि काढ़ि असि, बोला अति खिसिआन॥९॥

अर्थ : अपने को जुगनू के समान और रामजी को सूर्य के समान सुनकर और कठोर वचन सुनकर तलवार निकाला और झल्लाकर बोला।

व्याख्या : जिसका किन्नर गन्धर्व गुणगान किया करते हैं। दिग्पाल भृकुटी देखा करते हैं उसे सिवा जगदम्बा के खद्योत कौन कहे। इतना ही नही रामजी

को सूर्य भी कहा। रावण दूसरे की बड़ाई सुन नहीं सकता। वह भी सुनना पड़ा और परुष वचन भी सुना। यथा : अधम निलज्ज लाज नहिं तोही। उत्तर कुछ है नहीं। तब झल्लाया। झल्लाने पर रावण तलवार खींचता है। यथा : तब सकोप निसिचर खिसियाना। काढ़ेसि परम कराल कृपाना. यहाँ लाचार होकर वह भय का प्रयोग कर रहा है।

सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना॥
नाहित सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होत नत जीवन हानी॥१॥

अर्थ सीते! तैंने मेरा अपमान किया। मै तेरे सिर को इस कठिन तलवार से काट डालूँगा। नही तो जल्दी मेरी बात मान ले। हे समुखि! नही तो जान से हाथ धोना पडेगा।

व्याख्या मेरा अपमान किसी ने न किया। किसकी सामर्थ्य जो मेरा अपमान करे? मेरा तुझ पर इतना प्रेम और तूने अपमान किया। इसका दण्ड प्राणदण्ड है। अपनी कठोरता का आरोप कृपाण पर करता है। क्रुद्ध है इसलिए सीते सम्बोधन किया। स्वयवर के समय से ही नाम जानता है। अत. कहता है कि एक विकल्प और है। उसी कारण से अभी तक मैंने तेरा सिर नहीं काटा और वह यह है कि यदि तू तुरन्त मेरी बात मान ले तो यह अपमान प्रणयकोप मे परिगणित हो जायगा। प्रणयकोप अपमान नही है। इसीलिए बधदण्ड नहीं दिया जायगा। तू सयानी नही है। केवल सुमुखी है। सयानी होती तो इतने बडे ऐश्वर्य को लात न मारती। अब से अच्छा है मेरी बात मान नही तो जीवन हानि हुआ ही चाहती है।

स्याम सरोज दाम सम सुदर। प्रभु भुज करि कर सम दसकधर॥
मो भुज कठ कि तव असिघोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा॥२॥

अर्थ हे दशकण्ठ! प्रभु की भुजा जो श्याम कमल की माला के समान सुन्दर और हाथी के शुण्ड के समान सुन्दर है। या तो वह भुजा ही मेरे कण्ठ मे पडेगी या तेरी भयानक तलवार! रे शठ! सुन। यह मेरा प्रमाण प्रण है।

व्याख्या प्रभु की भुजा श्यामल कमल की माला की भाँति सुन्दर धारण करने योग्य है। कमल की माला कहने से सुगन्ध कोमलता तथा सुखद होना कहा। करि कर सम : कहकर उसमे उतार चढाव तथा बल का होना कहा। दशकन्धर : सम्बोधन से उसका . भुजा बिटप सिर सृग समाना। रोमावली लता तरु नाना। भयङ्कर होना कहा। भाव यह कि तेरी भुजाएँ तरु समान होने से भयङ्कर हैं और प्रभु की भुजा करि कर सम होने से तरुभञ्जक हैं।

या तो वह भुजा गले मे पडेगी या तेरी तलवार। भाव यह कि या तो प्रभु से मिलन होगा या तेरे हाथ बध होगा। तैंने जो प्रण किया था कि : मदोदरी आदि सब रानी। तव अनुचरी करौं पन मोरा। सो अप्रमाण है और मेरा प्रण

प्रमाण है। मेरा प्रण है। सो भुजकंठ कि तव असि घोरा। रावण ने सुमुखि कहकर सम्बोधन किया। भगवती सठ कहकर सम्बोधन करती हैं।

चंद्रहास हरु मम परितापं। रघुपति बिरह अनल संजातं॥
सीतल निसित बहसि बरधारा। कह सीता हरु मम दुख भारा॥३॥

अर्थ : हे चन्द्रहास! रघुपति विरहरूपी अग्नि से उत्पन्न मेरी जलन को तू हरण कर। तू शीतल तीव्र और श्रेष्ठ धार को वहन करता है। तू मेरे दुःख के बोझ को हरण कर ले।

व्याख्या : रावण ने अपना दो निश्चय कहा। दो मे एक मानना होगा। भगवती ने भी अपना दो निश्चय कहा। उनमे से भी एक ही होगा। रावण का अति भयदायक निश्चय जो जीवनहानिवाला है। उसी को भगवती अत्यन्त सुखद मान रही हैं। क्योकि उससे सद्यः विरह की शान्ति होगी। प्रभु के मिलन का तो अभी कोई निश्चय नही है। रावण अपने कृपाण मे कठिनता का आरोप करके बोला था। अत. उसी को सम्बोधन करके कहती हैं। उन्होने लङ्का मे सुना है कि चन्द्रहास नाम की तलवार रावण ने शिवजी से पाया है। उसकी चोट से कोई बचता नही। अतः उसी से कहती हैं कि मेरा सन्ताप मरने से ही मिट जायगा। देह जल रही है। इससे कहती हैं कि तू चन्द्रहास है। चन्द्र ताप हरता है। तू मेरे ताप को हरण कर।

धारा नदी और तलवार दोनो मे कही जाती है। सो कहती हैं कि तेरी धारा शीतल है। अतः स्पर्श सुख का अनुभव होगा। तीखी है शीघ्र ही दुःख काटेगी। भारी दुःख काटने मे यही समर्थ है। शिरश्छेदन नही है। दुःखच्छेदन है। सीधे ललकारती है कि मार। रामजी के विरह के सामने मृत्यु क्या है? मागु माथ अबही देउँ तोही। राम विरह जनि मारेसि मोही।

सुनत बचन पुनि मारन धावा। मयतनया कहि नीति बुझावा॥
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। सीतहि बहुबिधि त्रासहु जाई॥४॥
मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारबि काढि कृपाना॥५॥

अर्थ : वचन सुनते ही वह मारने दौडा। तब मय की पुत्री : मन्दोदरी ने नीति कहकर उसे समझाया। रावण ने सब राक्षसियो को बुलाकर कहा कि जाकर सीता को बहुत प्रकार से भय दिखलाओ। यदि महीने भर में उसने कहा न माना तो मैं उसे तलवार निकालकर मार डालूँगा।

व्याख्या : साम, दान, भेद और भय सब उपाय व्यर्थ गये। तब मार डालने का उपक्रम करता है। क्योकि इतनी दूर पर नही था कि दौडना पडे। तब मन्दोदरी ने शान्त किया। बडी नीति की पण्डिता है। मयदानव की बेटी और मेघनाद की माता है। रावण उसकी अधिक प्रतिष्ठा करता है। रावण के रोकने मे यही समर्थ है। नीति बुझावा यथा : दुखित दोष गुन गनहिं न साधू। दुःखिनी है। प्राण

पर खेले हुए है। उसकी शान्ति के लिए और समय दीजिये। निःसहाय अबला के अपमान से अप्रतिष्ठा नही है। किसी वीर ने आपका अपमान नही किया।

त्यागहु दीना मानुषी कृपिणा कृशा दुखारि।
हैं केतिक गन्धर्व सुर किन्नर नाग कुमारि॥
अनुरागिनी तुम पर सदा मदमाती सुकुमारि।
कामकला महँ कुसल अति तिनकहँ भजहु सुरारि॥
का न कहँ दुखिया तिया तन की ममता त्यागि।
ताहि कान नहि कीजिये जरत बिरह की आगि॥
समय देहु जामें कछुक हिय की अगिन बुझाय।
तब अवसर कछु कहन को जब दुख घटत लखाय॥

बात समझ गया। वध से उपरत हुआ। रानियो के साथ उसके आने से पहरेदार राक्षसियाँ दूर हट गयी थी। सो उन सबो को बुलाकर कहा "सीता को डरावो। मारना मत। तुम लोगो को स्पर्श का अधिकार नही है। त्रास दिखाने की जो जो बिधि है सो सब करो। उठा कुछ न रखो। सीताजी को सुनाकर कहता है। एक महीने का समय और देता हूँ। तू उस तपस्वी के आने का आसरा एक महीने और देख ले। इतने दिन मे भी न आया तो नही आयेगा। फिर भी तैने न माना तो अपने हाथ से वध करूँगा। मन्दोदरी के समझाने पर तलवार कोष मे रख ली थी। इसलिए काढ़ि कृपाना कहता है।

दो. भवन गयउ दसकधर, इहाँ पिसाचिनि बृद।
सीतहि त्रास दिखावहि, धरहि रूप बहु मद॥१०॥

अर्थ : रावण तो घर गया। यहाँ राक्षसियो का समूह बुरे बुरे रूप धारण करके सीताजी को भय दिखाने लगी।

व्याख्या दसकधर कहकर उस भीषण मूर्ति का घर जाना कहा। अथवा हनुमान्‌जी के रहते भी दसो सिर सही सलामत लेकर घर गया। क्योंकि अकनि कटु बानी कुटिल की क्रोध बिध्य बढोइ। सकुच सम भयो ईस आयसु कलम भव जिय जोइ। करत कछू न बनति हरि हिय हरष साक समोइ। कहत मन तुलसीस लका करहुँ सघन घमोइ। मास खानेवाले को पिशाच कहते हैं। सो पिशाचिनी सीताजी को डराने लगीं कि हम लोग तुम्हारा मास खावेंगी और हिंसक जन्तुओ का रूप धारण करती हैं।

त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम चरन रति निपुन बिबेका॥
सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना॥१॥

अर्थ उनमे एक त्रिजटा नाम की राक्षसी थी। उसको रामजी के चरणो मे प्रीति थी और विवेक मे निपुण थी। उसने सबको बुलाकर अपना स्वप्न सुनाया। कहा कि सीताजी की सेवा करके अपना कल्याण करो।

व्याख्या : एक शब्द प्रायेण बेजोड़ : प्रधान : के अर्थ मे आया है। यथा : निसिचरि एक सिंधु मह रहई। भवन एक पुनि दीख सुहावा। माल्यवंत अति जरठ निसाचर। मंदिर एक रुचिर तहँ बैठ नारि तप पुंज। इत्यादि। भाव यह कि त्रिजटा नाम की एक राक्षसी थी। शरीर तो उसका तामस था, पर गुण उसमे दिव्य थे। रामचरण रति से उपासना कहा और निपुण विवेका से ज्ञान कहा। ऐसी कोई राक्षसी लङ्का मे न थी। सीताजी का दु.ख वह न देख सकी। अन्याय उससे देखा नही जाता था। रावण की आज्ञा सबको हुई। पर वह डराने न गयी। जब औरो को देखा कि सीताजी को बहुत कष्ट दे रही है तो सबको अपना सपना सुनाने के लिए बुलाया। सब त्रिजटा के महत्त्व से परिचित थी। उसने समझाया कि तुम लोग रावण की आज्ञा तो पालन करती हो पर अपना अहित कर रही हो। तुम्हारा हित सीताजी की सेवा मे है। यद्यपि जगदम्बा की सेवा से इस लोक और परलोक दोनों प्रकार का हित था, पर पारलौकिक हित को राक्षसियाँ न समझेंगी। अतः उन्हे ऐहिक हित बतलाया। यह त्रिजटा की भक्ति की निपुणता है। उसने उन्हे अपना सपना सुनाया।

सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी॥
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा॥२॥

अर्थ : मैंने सपने मे देखा कि बन्दर ने लङ्का जला दी। राक्षसो की सेना मार डाली। रावण नङ्गा है और गधे पर सवार है। उसके सिर मुड़े हुए है और बीसो भुजाएँ कटी हुई हैं।

व्याख्या : शुद्धान्तःकरण लोगो का सपना सच्चा होता है। भगवती कैकेयी ने भी कहा था : दिन प्रति देखा रात कुसपने। भरतजी भी : देखहिं रात भयानक सपना। सीताजी : जागें सीय सपन अस देखा। सहित समाज भरत जनु आये। नाथ वियोग ताप तन ताये। ये सब सपने सच्चे उतरे। इसी भाँति इसके सपने भी सच्चे होते हैं। अतः उन्हे अपना सपना सुनाती है। सपने मे बन्दर ने लङ्का जलाया। सन्देह उठता है कि तब राक्षसों की इतनी बड़ी सेना क्या करती थी ? इस पर कहती है कि सब सेना मारी गयी। फिर भी रावण की भुजाओ से रक्षित लङ्कादुर्ग के जलाने की तो कोई विधि ही नही है। हिन्दी मे कहावत है। खाने खराब गदहे असवार। सो नगन से खाने खराब और खर आरूढ़ से गदहे असवार कहा। मुण्डित सिर से राजचिह्न रहित कहा। खण्डित भुज बीसा से सर्वथा बन्धुहीन तथा असहाय कहा।

एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहु बिभीषन पाई॥
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई॥३॥

अर्थ : इस विधि से वह दक्षिण दिशा की ओर जा रहा है और मानो लङ्का

विभीषण को मिली है। नगर मे रघुवीर की दोहाई फिरी है। तब प्रभु ने सीताजी को बुला भेजा है।

व्याख्या एहि विधि अर्थात् सर्वस्वनाश की विधि से रावण दक्षिण दिशा जिधर यमपुर है चला जा रहा है। ये सब लक्षण स्वप्नाध्यायी मे मृत्युसूचक बतलाये गये हैं। तब शङ्का यह उठती है कि फिर लङ्का का राज्य किसे मिला? इस पर कहती है 'मनहु विभीपन पाई। स्वप्न होने से मनहु का सब घटनाओ के साथ सयोग है। राज्य विभीषण को मिला पर दोहाई रघुवीर की फिरी जिसके पराक्रम से लङ्का विभीषण को मिली। अर्थात् विभीषण प्रभु के मातहत राजा हुए और तब सीताजी बुलाई गयी। वह कहती है कि मैने तो इतना ही सपना देखा। बाद को नीद खुल गयी। सीता ने जाकर जब सब अपना दुःख सुनाया तब तुम लोगो की क्या दशा हुई। यह मैंने नही देखा।

यह सपना मै कहौ पुकारी। होइहि सत्य गएँ दिन चारी॥
तासु वचन सुनि ते सब डरी। जनकसुता के चरनन्हि परी॥४॥

अर्थ मै पुकारकर कहती हूँ कि यह सपना चार दिनो बाद सत्य होगा। उसके वचन सुनकर सब डर गयी और जानकीजी के चरणो मे जाकर गिरी।

व्याख्या . मै पुकारकर कहती हूँ। यह सपना चार दिनो मे सत्य होकर रहेगा। जाय सूपनखा रावण से कह दे : सत्य कहने मे डर की कोई बात नही है। सूपनखा भी पहरे पर राक्षसियो मे थी। चार दिन का अर्थ यहाँ कुछ दिन है। यथा . कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहैं रघुवीरा। निसिचर मारि तोहि लै जैहैं। कछुक दिन के लिए चार दिन बोलने की रीति है। यथा ' भयउ बहोरि रहब दिन चारी। रथ चढाइ दिखराइब वन फिरेहु गये दिन चारि। आजकल भी कहते हैं ' चार दिना की चाँदनी और फिर अँधेरा पाख। यह सपना सत्य होगा। यहाँ तक तो निश्चय हो गया। पर तुम्हारा दण्ड अभी तक निश्चित नही हुआ है। अभी तुम्हे अवसर है कि डराना बन्द करो और जो किया है उसके लिए क्षमा याचना करो। यह त्रिजटा का विवेक है।

त्रिजटा के वचन पर सबका विश्वास है। सब जानती हैं कि पहले भी जो जो सपना इसने देखा कोई झूठा न हुआ। अत: यह सपना भी सत्य होगा। तब हम लोगो की क्या दशा होगी? यह सोचकर सब डर गयी। जाकर भगवती जनकनन्दनी के पैरो पर पडी। भाव यह कि अपराध क्षमा करा लिया।

दो. जहँ तहँ गईं सकल तब, सीता कर मन सोच।
मास दिवस बीते मोहि, मारिहि निसिचर पोच॥११॥

अर्थ : तब वे सब जहाँ तहाँ चली गयी। सीताजी मन मे सोचने लगी कि महीना दिन बीतने पर नीच राक्षस मुझे मारेगा।

व्याख्या : हम लोगों ने बहुत दुःख दिया। अब कहाँ से हम लोगों के हट जाने से ही इन्हें शान्ति मिल सकती है। इन्हे विश्वास हो जाय कि इन सबों ने पहरे की कड़ाई कम कर दी। इसलिए सब वहाँ से हट बढ़ गयी। सीताजी को इतनी देर तक सोच नही था। चित्त उन राक्षसियों के भयानक बातों की ओर था। जब चित्त स्थिर हुआ तब यह सोच उत्पन्न हुआ कि एक महीने बाद नीच राक्षस के हाथ मेरी मृत्यु होगी। मरने का सोच नही। अधम के हाथों से मृत्यु होने का सोच है। यदि मृत्यु भी हो तो भले के हाथ हो। यथा : रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहै सही। पापी के हाथ मरना कालिनेमि ने भी नही चाहा। यथा : रामदूत कर मरौ बस यह खल रत मलभार। मारीच ने भी ऐसा ही सोचा। यथा : उभय भाँति देखा निज मरना। तब ताकेसि रघुनायक सरना।

त्रिजटा सन बोली कर जोरी। मातु बिपति संगिनि तै मोरी॥
तजौ देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरहु अब नहि सहि जाई॥१॥

अर्थ : हाथ जोड़कर त्रिजटा से बोली कि हे माता ! तू मेरी विपत्ति की सङ्गिनी है। जल्दी उपाय कर जिससे मै शरीर छोड़ सकूँ। असह्य विरह अब नही सहा जाता।

व्याख्या : सब चली गयी। केवल त्रिजटा रह गयी। जगदम्बा दुष्कर कार्य के लिए उससे कह रही हैं। अत: हाथ जोड़कर बोलती हैं। यथा : माँगउँ दूसर वर कर जोरी। अति आर्त हैं। इसलिए हाथ जोड़ रही हैं। विपत्ति की सङ्गिनी माँ होती है। मेरे लिए तैं रावण के क्रोध को भी अपने ऊपर लेने में न डरी। इसलिये तू माँ है। मै देह छोड़ने के उपाय करने में भी परतन्त्र हूँ। अतः तू उपाय कर दे। मैं बेटी हूँ। तू दया करके मेरा संकट काट दे। बेगि कहने का भाव यह कि इस समय सब हट गयी हैं। न जाने कब आजायँ। अतः जल्दी कर। दुःसह विरह ज्वाला को बहुत दिनों तक सहा। अब सहा नही जाता। यथा : हा रघुनन्दन प्रान पिरीते। तुम बिनु जिअत बहुत दिन बीते।

आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई॥
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवन सूल सम बानी॥२॥

अर्थ : काठ लाकर सजाकर चिता लगा दे। हे माता ! फिर उसमें आग लगा दे। हे सयानी, तू मेरी प्रीति को सत्य कर दे। ऐसी शूल के समान वाणी कानो से कौन सुने।

व्याख्या : बाहर मे लकड़ी लाना है। अशोकवाटिका में सूखी लकड़ी कहाँ से मिलेगी ? यथा : समय पुराने पात परत डरत वात पालत रति मार को बिहार सो। क० रा०। सुन्दर की वस्तु सँवारकर बनायी जाती है अथवा चिता को रचकर बनाने का विधान है। यथा : सरयु तीर रचि चिता बनाई। अग्नि बन्धु देते हैं। यहाँ कोई नही है। तू माँ है। तू अग्नि दे। विरहाग्नि के सामने यह अग्नि शीतल

है। तू सयानी है। इस बात को समझ सकती है। मेरी प्रीति झूठी हुई जा रही है। मैं अबतक मरी नहीं। मैंने कहा था : की तनु प्रान कि केवल प्राना। विधि करतब कछु जाइ न जाना। प्रभु को भी विश्वास हो गया : हठि राखे नहिं राखिहि प्राना। सच्ची प्रीति की परीक्षा मरण से ही है। यथा : बदौं अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद। बिछुरत दीनदयाल प्रियतनु तृन इव परिहरेउ। तिसपर रावण शूल की सी वाणी बोलता है। इसने मुझे समझा क्या है ? मैं प्राण दूँगी।

सुनत बचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप बल सुजस सुनाएसि ॥
निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी ॥३॥

अर्थ : सीताजी के वचन सुनकर चरण पकड़कर उन्हे समझाया। प्रभु का प्रताप बल और सुयश सुनाया। हे सुकुमारी! सुनो रात के समय आग नही मिलती। ऐसा कहकर वह अपने घर चली गयी।

व्याख्या : सीताजी ने हाथ जोडकर कहा। त्रिजटा ने पैर पकडकर समझाया कि धैर्य धारण करो। धैर्य के लिए ही प्रभु का प्रताप सुनाया कि विचारशील लोग त्रस्त हैं। लङ्का मे असगुन हो रहा है। यथा : जब ते तुम सीता हरि आनी। असगुन होइ न जाइ बखानी। बल सुनाया कि बहन की नाक काटी गयी। खरदूषण ऐसे भाई मारे गये। फिर भी रावण का साहस नही है कि उनके सामने जा सके। सुयश सुनाया कि तीनो लोक मे जिसका यश व्याप्त है। रावण जिसके घर चोरी करने गया। उसकी अपकीर्ति तुम्हारे प्राण देने से होगी।

सिर पै तुम्हारे रघुनाथ से नाथ अनाथ सी ह्वै किमि बैन उचारो।
दशकंठ को कुंठित साहस भो तब चोरन की करनी निरधारो।
जन के पन की जेहि लाज सदा विजयानद सो तुम्हरो रखवारो।
आय गये प्रभु देर नहीं यह जानि के जानकी धीरज धारो।

निसि न अनल का भाव यह है कि रात को आग बनाये रखने की आज्ञा नही है। नियमित समय पर घण्टा बजता है आग बुझाने के लिए। फिर कोई आग नहीं रख सकता। हाथ जोडकर की हुई प्रार्थना को अस्वीकार नही करती। पर उसका पालन करने में अपने को असमर्थ बतलाती है। सुकुमारी कहने का भाव यह कि स्वभाव भी सुकुमार है। बात नही सह सकती। यथा : मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। त्रिजटा ने सोचा कि जबतक मैं यहाँ रहूँगी यह ऐसी ही बातें किया करेंगी। अतः वह घर चली गयी। अथवा स्वप्न पर उसे पूरा विश्वास है। हनुमान्‌जी का आना जानती है। बातचीत के लिए अवसर देने के लिए चली गयी।

कह सीता बिधि भा प्रतिकूला। मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला ॥
देखिअत प्रगट गगन अँगारा। अवनि न आवत एकौ तारा ॥४॥

अर्थ : सीताजी कहने लगी कि विधाता ही प्रतिकूल हो गया। न आग

मिलेगी न शूल मिटेगा। आकाश मे अगारे प्रकट दिखायी पडते हैं। पर पृथ्वी पर एक भी तारा नही आता।

व्याख्या : भगवती कहती हैं कि मुझे ब्रह्मा ही बायें हो गये। हा ! मुझे आज आग मांगे नही मिलती है। और बिना आग मिले शूल मिटने का कोई अन्य उपाय भी नही है। यह खल ऐसी शूल सी वाणी बोल गया है जो विरह से भी अधिक असह्य है। त्रिजटा कह गयी कि रात को आग नही मिलती। यहाँ तो आकाश मे अगारे ही अगारे हैं। इनको ठहरने के लिए आधार भी नही है। इन सबो को नीचे गिरना चाहिए। पर एक भी पृथ्वी पर नही गिर रहा है। इस प्रकार का विचार ही प्रेमोन्माद है। विरहावस्था मे तारे अङ्गार प्रतीत होते हैं।

पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहु मोहि जानि हतभागी॥
सुनहि[1] विनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका॥५॥

अर्थ : चन्द्रमा अग्निमय है। किन्तु वह भी मानो मुझे हतभागिनी जानकर आग नही गिराता। हे अशोकवृक्ष ! मेरी विनती सुनो। अपना नाम सत्य करो। और मेरे शोक का हरण करो।

व्याख्या : भला अङ्गारे पृथ्वी पर नही आते तो नही सही पर यह चन्द्रमा तो अग्नि का पुञ्ज है। अग्निपुञ्ज से तो चिनगारियाँ निकला करती हैं। परन्तु इससे भी चिनगारी निकलकर पृथ्वी पर नही आ रही है। कारण की उपस्थिति मे भी कार्य क्यो नहीं हो रहा है। प्रकृति के नियम मे अन्तर पडने का कारण मेरा अभाग है। चन्द्रमा ने भी मुझे भवभजन पद विमुख अभागी जान लिया।

तब से अशोकवृक्ष के लाल-लाल कोपलो पर दृष्टि पडी। अब उससे कह रही हैं। विटप अशोक ! मैं तो तुम्हारी छाया मे हूँ। तुम मेरी विनय सुनो। मेरी विनय कोई नही सुनता। तुम सन्त के जोडीदार हो। सत विटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबनि की करनी। तुम मेरी विनय सुनो। अपने अशोक नाम की लाज रक्खो। तुम अशोक हो और मैं तुम्हारी छाया मे बैठी हुई सशोक हूँ। तुम्हारा नाम झूठा हुआ जा रहा है।

नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि तन करहि निदाना॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता॥६॥

अर्थ : तेरे नये पत्ते अग्नि के समान है। तू अग्नि दे और शरीर का नाश कर। सीताजी को विरह से परम व्याकुल देखकर वह क्षण हनुमान्‌जी को कल्प के समान बीता।

व्याख्या : यदि कहो कि मेरे पास अग्नि नही है कहाँ से दें। इस पर कहती हैं कि ये नये कोपल तो अग्नि के समान दाहक हैं। इन्ही के द्वारा अग्नि देकर मेरे

---

१ यहाँ परिकराङ्कुर (अलङ्कार) है।

शरीर को समाप्त कर। निदानं त्वादिकारणम् आदि कारण को निदान कहते हैं। कार्य के कारण भाव की प्राप्ति से उसका नाश होता है। शरीर का कारण भाव की प्राप्ति शरीर का नाश है।

परम व्याकुल हैं। कहीं शरीर न छोड़दें। यही समय सँभालने का है। बड़ा नाजुक समय है। तनिक सा दिल पर ठेस लगने से ही शरीर छूटेगा। हनुमान्‌जी विचारते हैं कि इस समय मैं क्या करूँ ? मेरे देखते इनका शरीर छूटा चाहता है। इस असामञ्जस्य मे वह क्षण हनुमान्‌जी को कल्प के समान अपार हो गया। कल्प १००० चतुर्युगी का होता है। इसी समय का वर्णन करते हनुमान्‌जी ने रामजी से कहा : निमिष निमिष करुनानिधि जाहि कल्प सम बीति। अनुभव करनेवाले को निमिष कल्प सा और देखनेवाले को क्षण कल्प सा बीता।

५९. सीता धैर्यदान प्रसङ्ग

दो. कपि[1] करि हृदय बिचार, दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार, दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ ॥१२॥

अर्थ : तब हनुमान्‌जी ने हृदय मे विचार करके अँगूठी डाल दी। मानो अशोक ने अङ्गारा गिराया सीता जी ने हर्षित होकर उसे हाथ मे ले लिया।

व्याख्या : करै विचार करौं का भाई। तब से विचार चल रहा है। इस सकट मे उपाय सूझ गया। मुँदरी गिरा दी। तरु पल्लव मे छिपे थे। वहीं से मणि मुँदरी अङ्गार सी गिरी। सीताजी को भान हुआ कि लो अङ्गार तो गिरा। अशोक ने विनती सुन ली। प्रसन्न हो गयी। आदर से मुँदरी उठा ली। उसमे लाल मणि जड़ी थी। उसी के चमक से अङ्गारे का भ्रम हुआ। यह बुद्धिमान् वरिष्ठ की बुद्धिमत्ता है। सीताजी को उस अवस्था से निकाल लेना इन्हीं का काम था। इस भाँति प्राण बचा लिया।

तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर॥
चकित चितव मुदरी पहिचानी। हरष बिषाद हृदय अकुलानी ॥१॥

अर्थ : तब अत्यन्त सुन्दर राम नाम से अङ्कित मनोहर अँगूठी देखी। अँगूठी को पहिचानकर आश्चर्य से चकित होकर देखने लगी और हर्ष तथा विषाद से हृदय मे आकुल हो उठी।

व्याख्या : जब हर्षित होकर उठी और हाथ से उठा लिया तो स्पर्श मे शीतल जान पड़ी। तब देखा कि यह तो अङ्गार नहीं है। मुँदरी अगूठी है। बड़ी सुन्दर मनोहर है। उस पर प्रभु का नाम खुदा हुआ है। हनुमन्नाटक मे सुवर्णस्य सुवर्णस्य सुवर्णस्याङ्गुलीयकम्। सोने की अँगूठी राम नाम से युक्त सोलह मासे की है।

---

१. यहाँ भ्रमालङ्कार है।

सोलह मासे की कहने से धार्मिक कृत्य के उपयुक्त कहा। अन्यानि च पवित्राणि कुशदूर्वात्मकानि च। हेमात्मकपवित्रस्य ह्येका नार्हन्ति वै कलाम्। हेमाद्रि का मत है कि कुश और दूर्वा की पवित्री सुवर्ण की पवित्री के एक कला के बराबर नही है। धार्मिक कृत्योपयोगी होने से सरकार ने वन चलने के समय इनका त्याग नही किया।

पहिचानी हुई मुँदरी है। इसने व्याह के समय ही मन चुराया था। यथा : कर मुद्रिका चोर चित लेई। चकित होकर देखती है कि यह यहाँ कैसे आगयी ? यह तो प्रभु के हाथ मे थी। सो मुँदरी मिलने का हर्ष और यहाँ कैसे आयी। इस बात का विस्मय। द्विविध मनोगति होने से व्याकुलता हुई।

जीति को सकइ अजै रघुराई। माया ते असि रचि नहि जाई ॥
सीता मन विचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना ॥२॥

अर्थ : श्रीरघुनाथजी अजेय हैं। उन्हे कौन जीत सकता है ? और माया से ऐसी अँगूठी बनायी नही जा सकती। सीताजी मन मे अनेक विचार करने लगी। हनुमान्‌जी मधुर वचन बोले।

व्याख्या : यह मुँदरी अदेय है। पुरस्कार रूप से नही दी जा सकती। विना उन्हे जीते कोई इसे पा नही सकता। इससे मुँदरी की बडी भारी विशेषता दिखलायी। प्रभु किसी से जीते जा नही सकते। यथा : सकल सुरासुर जुरँ जुझारा। रामहि समर न जीतनिहारा। दूसरा पक्ष यह है कि किसी ने माया से ऐसी बना ली हो। सो यह भी सम्भव नही। माया से कोई ऐसा बना नही सकता : माया सब सिय माया माहूँ। अत ये ही निर्णय कर सकती हैं कि : माया ते असि रचि नहि जाई। सरकार की अँगूठी बोलती है। दूसरी नही बोल सकती। दो ही रास्ता अँगूठी के यहाँ आने का है। या तो कोई प्रभु को जीतकर ले आवे या माया से दूसरी रच ली गयी हो। पर यह दोनो बातें असम्भव है।

श्री सीताजी के मन मे नाना प्रकार के विचार उठे। अभी रावण भग्नमनोरथ होकर गया है और उसके बाद ही मुँदरी गिरी है। आज इस समय उसके आने का विशेष कारण होना चाहिए। आग माँगने के समय अँगूठी का गिरानेवाला अदृश्य क्यो है ? इत्यादि। हनुमान्‌जी ने देख लिया कि उन्मादावस्था मिट गयी। अब ये विचार मे स्थित हो गयी। अतः यही बोलने का समय है। फिर चौंक न पड़ें इसलिए मधुर वचन बोले। जो सीताजी को ही सुनाई पडे।

रामचंद्र गुन बरनइ लागा। सुनतहि सीता कै दुख भागा ॥
लागी सुनै श्रवन मन लाई। आदिहु तें सब कथा सुनाई ॥३॥

अर्थ : रामचन्द्रजी के गुणो का वर्णन करने लगे। सुनते ही सीताजी का दुःख भाग गया। कान और मन लगाकर सुनने लगी। आदि से लेकर सब कथा सुनायी।

व्याख्या : स्वरत मधुर कहकर अब अर्थत भी मधुर कहते हैं। रामचन्द्र ऐसे चन्द्र हैं कि उनके गुण वर्णन मात्र से परिताप की शान्ति होती है। रघुपति बिरहानल सञ्जात दु ख प्रभु के गुण श्रवण से भाग गया। दु ख के भागने का यह अचूक औषध है। यथा मन करि विषय अनल वन जरई। होइ सुखी जौ एहि सर परई। कान और मन को बड़ा सुख हुआ। कान और मन लगाकर सुनने का भाव यह है कि अति सूक्ष्म स्वर है। हनुमान्‌जी ने देखा कि खूब मन लगाकर सुन रही हैं। तब तो भगवती के सामने रामायण पारायण ही आरम्भ कर दिया। जो लक्ष्मणजी से सुना है सो सब सुना दिया।

श्रवनामृत जेहि कथा सुहाई। कही सो प्रकट होत किन भाई ॥
तब हनुमन्त निकट चलि गयऊ। फिरि बैठी मन बिसमय भयउ ॥४॥

अर्थ जिसने कानो के लिए अमृत के समान यह कथा कही हे भाई ! वह प्रकट क्यो नही होता ? तब हनुमान्‌जी पास चले गये। फिर बैठी क्योकि उनके मन मे विस्मय हुआ।

व्याख्या श्रवणामृत कथा से श्रवणशूल मिटा . पहिले ही कहा था सुनै वो श्रवन सूल सम बानी। और सुख भी हुआ। अत चिकित्सक का दर्शन चाहती हैं। भगवती ने समझ लिया कि वक्ता प्रकट होना चाहता है। पर क्रम से काम कर रहा है। पहिले मुद्रिका गिराया। तब गुन वर्णन किया। तत्पश्चात् कथा सुनाया। मुझे अपने साक्षात्कार के लिए तैयार कर रहा है। अब मैं उसे देखने के लिए कहूँ। अब प्रगट होने का कारण नही है। अत कहती हैं सो प्रकट होत किन भाई।

तब हनुमान्‌जी निकट चले गये। वानररूप देखकर मुँह फेरकर बैठ गयी। मन मे विस्मय हुआ कि बन्दर मनुष्य की बोली कैसे बोलता है। निश्चय यह रावण है। फिर मुझे दु ख देने आया है। अथवा एक बार बिलोकु मम ओरा। यह जो अभिलाषा प्रकट की थी। उसी की पूर्ति के लिए आया है।

रामदूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान की ॥
यह मुद्रिका मातु मै आनी। दीन्हि राम तुम कह सहिदानी ॥५॥
नर बानरहि सग कहु कैसें। कही कथा भइ सगति जैसे ॥६॥

अर्थ हे माता जानकी ! मै रामजी का दूत हूँ। करुणानिधान की शपथ है। मै सच कहता हूँ। हे माता ! इस अँगूठी को मैं लाया हूँ। रामजी ने आपके लिए यह निशानी दी है। प्रश्न किया नर और वानर का साथ कैसे हुआ ? तब वह सब कथा कही। जिस भाँति सगति हुई।

व्याख्या हनुमान्‌जी ने कहा मैं रामदूत हूँ। तू मेरी माँ है। जनक राजा की बेटी है। उनके सामने दैवी आसुरी माया की कौन चलावे ईश्वरीय माया नही चलती। ईश्वरीय माया का न चलना यथा . ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा।

उभय वेप धरि सोइ कि आवा। दैवी आसुरी माया [का न चलना यथा : देव दनुज धरि मनुज सरीरा। विपुल वीर आये रनधीरा। हनुमान्जी सेवक सेव्य का नाता प्रभु से जोड चुके है। अब माँ वेटे का नाता भगवती से जोड़ रहे हैं। रामदूत होने की सचाई के लिए करुणानिधान की शपथ लेते है। अत्यन्त प्यार की शपथ ली जाती है। सो हनुमान्जी को करुणानिधान सा प्यारा कौन है ? अतः उन्ही की शपथ लेते हैं। करुणानिधान की कृपा से क्या नही होता ? मै वन्दर होकर विद्वान् की भाँति बोल रहा हूँ। यह मुद्रिका जो तुम्हारे हाथ मे है : इसे मै लाया हूँ। यही मेरे रामदूत होने का प्रमाण है। तुम शीघ्र विश्वास न करोगी। इसीलिए यह चिन्हानी मुझे प्रभु ने दी है। तुम्हे देने के लिए। जीति को सकै अजय रघुराई। इस तर्क को इधर लगाओ। यदि वह न देते तो मैं कैसे पाता ? यदि कहो कि अदेय है तो किसी दूसरे को तो नही मिली। तुम्हारे लिए दिया है। सत्य सपथ करुणानिधान की। यह पद यहाँ भी लगेगा। वहाँ शब्द सङ्केत है। गिरजा भगवती ने कहा था ' करुना-निधान सुजान सील सनेह जानत रावरो। तब से भगवती सरकार को करुणानिधान कहती हैं। वस्तु की और शब्द की दोनो सहदानियाँ : पहिचान मिल गयी। सहदानी चिह्न : पहिचान या निशानी को कहते हैं। यथा : मै तें मेट्यौ मोहतम ऊग्यौ आतम भानु। सत राज सोइ जानिये तुलसी या सहिदानु। वै० स०।

अव एक शङ्का यह रह गयी कि नर वानर का साथ कैसे हुआ ? इस पर हनुमान्जी ने मारुति मिलन प्रसग। पुनि सुग्रीव मिताई। वालि प्राण कर भग। आदि कथा कह सुनाई। पहिले लक्ष्मणजी से सुनी हुई रामकथा कहा। यह प्रमाणित करने के लिए कि मै भली भाँति सरकार से परिचित हूँ। इतना परिचय राक्षसो को नही हो सकता। वानर सङ्ग की कथा छेड़ने से अविश्वास हो जायगा। इसलिए पहिले नही कहा। अव पूछने पर सब कह सुनाया।

दो. कपि के बचन सप्रेम सुनि, उपजा मन विस्वास।
जाना मन क्रम वचन यह, कृपासिंधु कर दास ॥१३॥

अर्थ : कपि का प्रेम से युक्त वचन सुनकर मन मे विश्वास उपजा। जान लिया कि यह मनसा वाचा कर्मणा कृपासिन्धु का दास है।

व्याख्या : वैर प्रेम नहि दुरै दुराये। जो विश्वास अँगूठी से नही हुआ कथा से नही हुआ सो सप्रेम वचन से हुआ। जान लिया कि यह मनसा वाचा कर्मणा रामजी का दास है। सप्रेम वचन से मनसा दास जाना। अँगूठी देने से कर्मणा और कथा सुनकर वचन से दास जाना। तिन्हते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। अतः समझ लिया कि यह कृपासिन्धु का परम प्रेमपात्र है।

हरिजन जानि प्रीति अति वाढी। सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी ॥
बूड़त विरह जलधि हनुमाना। भयहु तात मो कहुँ जलजाना ॥१॥

अर्थ : भगवान् का भक्त जानकर अत्यन्त प्रीति बढ़ी। नेत्रो मे जल भर आया

ओर शरीर पुलकित हो उठा : बोली : हे तात ! मैं तो विरह के समुद्र में डूब रही थी। तुम मेरे लिए जहाज हो गये।

व्याख्या : कृपासिन्धु के दास को हरिजन कहते हैं। हरिजन बहुत बड़ा दर्जा है। प्रीति तो पहिले ही कथाश्रवण से हुई थी। अब हरिजन जानने से अत्यन्त प्रीति बढ़ी। सात्त्विक भाव हुआ। सब शङ्काएँ जाती रहीं। तब कहती हैं कि मैं तो विरह समुद्र में डूबती थी। बेटा ! तुम जहाज की भाँति मेरे लिए आगये। डूबनेवाले को जहाज के दिखाई पड़ने से ऐसा साहस आ जाता है। ऐसी आशा बँध जाती है कि वह अपने बचाने के लिए नयी स्फूर्ति के साथ हाथ पैर मारने लगता है और जहाज की प्राप्ति से तो उसके प्राण की रक्षा ही हो जाती है।

अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुख भवन खरारी ॥
कोमलचित कृपालु रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई ॥२॥

अर्थ : मैं बलिहारी जाती हूँ। अब कहो कि छोटे भाई के सहित सुखधाम खरारि कुशल तो हैं। रघुनाथ तो कोमल हृदय और कृपालु हैं। हे हनुमान् ! उन्होंने किस कारण से निष्ठुरता धारण कर ली है ?

व्याख्या : हनुमानजी ने माता का नाता जोड़ा। इसलिए माँ की भाँति भगवती बोल रही हैं कि जब से विछोह हुआ तब से कुछ कुशल समाचार न मिला : बड़े असमय मे विछोह हुआ था। जब मारीच ने कपट से मरती समय लक्ष्मण का नाम लेकर पुकारा और जगदम्बा ने श्रीरामजी पर सङ्कट समझकर लक्ष्मणजी को भेजा। उधर से कोई समाचार न आया। इधर सीताहरण हो गया। अब सीताजी यह भी नही जानती कि दोनो भाइयो पर क्या बीती ? अतः भाई सहित रामजी की कुशल पूछती हैं। यद्यपि विश्वास है कि सुखभवन का सदा कुशल है और खरारि का राक्षसी माया क्या कर सकती है ? तथापि पापशङ्की चित्त कुशल जानना चाहता है। दूसरा प्रश्न यह है कि कोमल चित्त के लिए निष्ठुरता स्वभाव विरुद्ध है। फिर भी यदि कादर हो तो कृपा करने मे असमर्थ होता है। प्रभु तो कृपालु है। दया वीर हैं। तिसपर रघुराई है और रघुकुल की प्रतिष्ठा संशय मे है। अत निष्ठुरता धारण करने का कोई कारण नही है। इसलिए पूछती हैं।

सहज बानि सेवक सुखदायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक ॥
कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता ॥३॥

अर्थ : सेवक को सुख देने की उनकी स्वाभाविक बानि : प्रकृति है। वे रघुनाथजी क्या कभी स्मरण करते हैं ? क्या कभी उनके कोमल श्यामल शरीर देखकर मेरे तप्तनेत्र शीतल होंगे ?

व्याख्या : उनका तो सेवक को सुख देने का सहज स्वभाव है। यथा : पुनि पुनि सत्य कहौं तोहि पाही। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाही। सो क्या इस

विका का कभी स्मरण करते हैं। प्रेमास्पद कभी स्मरण करता है ' इतना ही
नने से प्रेमी कृतकृत्य हो जाता है। इसलिए यह तीसरा प्रश्न है। अव चौथा
श्न करती हैं। मेरी आँखें उस श्याम मृदु गात के दर्शन की प्यासी हो रही हैं।
या ऐसा दिन भी कभी होगा जो ये आँखें उनके दर्शन से शीतल हो ? उस श्याम
दु गात के दर्शन न होने से ही तारे अङ्गारमय, चन्द्रमा पावकमय और नूतन
किशलय कृशानु से प्रतीत होते थे।

चनु न आव नयन भरि वारी। अहह नाथ हौ निपट बिसारी ॥
खि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता ॥४॥

अर्थ . बोली नही निकलती। नेत्रो मे जल भर आया। हा नाथ ! मैं बिल्कुल
ुला दी गयी। सीताजी को परम विरहाकुल देखकर हनुमान्‌जी कोमल और
िनीत वचन बोले।

व्याख्या · फिर वही दशा हो गयी जो मुद्रिका पाने के पहिले हुई थी। न
ुख से बात निकलती न आँखो मे आँसू भर जाने से दिखाई पडता है। भूल गयी
ि मैं हनुमान्‌जी से बात कर रही हूँ। सरकार को सम्बोधन करके कहने लगी।
ा नाथ ! मैं सर्वात्मना भुलायी गयी। यह असह्य है। तन मन वचन से दीन हो
ही हैं। वचन से दीनता यथा . बचन न आव। तन से दीनता यथा . नयन भरि
ारी और मन से दीनता यथा . अहह नाथ हौ निपट बिसारी।

अत फिर वही पद ज्यो का त्यो रख दिया : देखि परम बिरहाकुल सीता।
इस बार हनुमान्‌जी को क्षण कल्प के समान नही बीता क्योकि उपाय करने मे
समर्थ हैं। हनुमान्‌जी समयोचित वचन बोलते हैं। सुखी करने के श्रवणामृत वचन
बोले थे। यथा : श्रवणामृत जेहि कथा सुनाई विश्वास उपजाने के लिए सप्रेम
बोले। यथा : कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास। समझाने के लिए अब
मृदु विनीत वचन बोल रहे हैं।

मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। तव दुख दुखी सुकृपा निकेता ॥
जनि जननी मानहु जिय ऊना। तुम्हते प्रेमु राम के दूना ॥५॥

अर्थ : हे माता ! छोटे भाई के सहित प्रभु कुशल हैं। परन्तु सुन्दर कृपा के
धाम आपके दुःख से दुःखी हैं। हे माता ! मन मे न्यूनता न मानो। श्रीरामजी का
प्रेम आपके प्रेम से दूना है।

व्याख्या : मातु सम्बोधन करके सावधान करते हैं। अपनी उपस्थिति का
स्मरण दिलाते हैं। पहिला प्रश्न यह था : अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज
सहित सुख भवन खरारी। उसका उत्तर देते हुए कहते हैं कुसल प्रभु अनुज समेता।
प्रेमी प्रेमास्पद को अपने दुःख से दुःखी सुनकर सन्तुष्ट होता है। अतः उनका दुःख
भी सुना दिया कि आपके दुःख से दुःखी हैं। नही तो और कोई दुःख उन लोगो
को नही है। क्योकि दूसरा प्रश्न यह पूछा था : कपि केहि हेतु धरी निठुराई।

उसका भी उत्तर साथ ही हो गया कि निठुराई एकदम नही है। तुम्हारे दुःख से दुःखी हैं। तीसरा प्रश्न है : कबहुँक सुरति करत रघुनायक। भाव यह कि प्रिया के नाते न सही सेविका के नाते कभी स्मरण करते हैं? इसके उत्तर में हनुमान्‌जी कहते हैं कि तुम अपने को छोटा मानती हो। समझती हो कि प्रभु भूल गये। प्रेम करना मैं ही जानती हूँ। सो ऐसा ख्याल न करना। मैंने दोनो व्यक्ति का प्रेम देखा है। उनको तुमसे दूना प्रेम है। हनुमान्‌जी ने उत्तर देने मे सरकार का ही रास्ता पकड़ा। बिना दूना प्रेम सुने प्रेमी को सन्तोष नही। जब हनुमान्‌जी से रामजी ने कहा : सुनु कपि जनि मानेसि मन ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना। तब हनुमान्‌जी को सन्तोष हुआ था। अतः आप भी उसी भाँति बोले।

दो. रघुपति कर संदेस अब, सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भयउ, भरे बिलोचन नीर ॥१४॥

अर्थ : हे माता! अब धीरज धरकर रघुपति का सन्देश सुनिये। ऐसा कहकर हनुमान्‌जी प्रेम से गद्‌गद हो गये। उनके नेत्रों मे जल भर आया।

व्याख्या केवल सुरति ही नही करते सन्देश भी भेजा है। यहाँ तक तो मैंने अपने मन से बातें कही हैं। अब उनका सन्देशा कहता हूँ। दूतो वदति नान्यथा : दूत को ज्यो का त्यो कहना पड़ता है। यह रघुपति का सन्देश है। सुनने से धैर्य छूट जायगा। सो पहले धैर्य धारण कर लें। इनकी गति देखकर बार बार सम्बोधन करते हैं। यथा : मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। जनि जननी मानेसि जिय ऊना। सुनु जननी धरि धीर। जब कहते हुए वक्ता का धैर्य छूटता है तब सुनने से श्रोता का धैर्य छूटे ही गा। यहाँ वक्ता का धैर्य छूटा। हनुमान्‌जी गद्‌गद हो गये। वाणी नही निकलती। आँखो मे आँसू भर आये।

कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहु सकल भये बिपरीता॥
नव तरु किसलय मनहु कृसानू। काल निसा सम निसि ससि भानू ॥१॥

अर्थ : रामजी ने कहा है कि हे सीते! तेरे वियोग मे मेरे लिए सब कुछ प्रतिकूल हो गया। पेड के नये नये कोपल : पत्ते तो मानो आग हो गये। रात्रि काल रात्रि हो गयी और चन्द्रमा सूर्य हो गये।

व्याख्या : यहाँ पर हनुमान्‌जी रघुपति का सन्देश कहते है। उसमें ऐसे शब्द हैं जिसे रामजी ही कह सकते हैं हनुमान्‌जी नही कह सकते। परन्तु सन्देश कहनेवाले को उन शब्दो को दोहराना ही पड़ता है। दूतो वदति नान्यथा : दूत अन्यथा नही कहता। अतः ज्यो के त्यो रामजी के शब्दों को दोहराते हैं। चलते समय इन सब बातो को रामजी ने हनुमान्‌जी से कहा था। परन्तु कवि ने यहाँ पर अतिसंक्षेप मे सङ्केत की भाँति जना दिया है। यथा : बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम आएहु। क्योकि यहाँ पर उसे विस्तार के साथ कहना था। हनुमान्‌जी ने

अवसर के अनुसार पहिले विरह हो कहा। इसलिए कहते हैं कि कहेउ राम ये रामजी के शब्द हैं कि हे सीते! तेरे वियोग मे सब सुख के साधन मेरे लिए प्रतिकूल हो गये। प्रिय प्रियजन के वियोग में तो केवल विषाद हुआ था। यथा : प्रभु सिय लखन बैठि बट छाहीं। प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं। परिस्थिति ने पलटा नहीं खाया था। पर तेरे वियोग में परिस्थिति पलट गयी। मेरे लिए संसार बदल गया सबके लिए ज्यों का त्यों है।

परिस्थिति परिवर्तन को स्पष्ट करते हैं कि पतझड़ : शिशिर के मौसम में पेड़ों के पुराने पत्ते गिर जाते हैं और नये लाल लाल पत्ते निकलते हैं। तुम्हारे सयोग के समय वे शीतल मालूम होते थे। अब वे आग के समान दाहक प्रतीत होते हैं। हिमऋतु की बड़ी रात्रि तुम्हारे संयोग से सुखद थी। अब वह काल रात्रि सी प्रतीत होती है। ग्रीष्म में रात को केवल शीतांशु : चन्द्रमा का भरोसा रहता है। सो वे भी तुम्हारे बिना सूर्य की भाँति आग उगलते हैं।

कुवलय विपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा ॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिविध समीरा ॥२॥

अर्थ : कमल तथा कुमुद के वन भालों के वन के समान हो गये हैं। मेघ मानो खौलता हुआ तेल बरसाते हैं। जो हित करनेवाले थे वे ही पीड़ा देते हैं और शीतल मन्द सुगन्ध वायु सर्प के श्वास के समान हो गयी है।

व्याख्या : शरद में दिन को कमल फूलते हैं और रात को कुमुद वन विकसित होते हैं। उनकी छटा तुम्हारे रहने से बड़ी कमनीय प्रतीत होती थी। सो अब वे भालों के वन की भाँति भयावह मालूम होते हैं। कुवलय का अर्थ कमल भी है और कुमुद भी है। यहाँ दोनों के ग्रहण के लिए पङ्कजादि अनेक शब्दों के रहते हुए भी कुवलय शब्द का प्रयोग किया है। भाव यह है कि रात और दिन दोनों भयानक हो गये हैं। पावस ऋतु में मेघों का बरसना कितना आनन्ददायक था। सो तुम्हारे बिना मालूम होता है कि तप्त तेल बरस रहे हैं। ज्यों बादल गरजते हैं त्यों मैं डर उठता हूँ कि ये अब तप्त तेल बरसेंगे। यथा : घन घमण्ड नभ गर्जत घोरा। प्रियाहीन डरपत मन मोरा।

तुम्हारे न रहने से हित ही पीड़ा करनेवाले हो गये हैं। जिनका वर्णन हो रहा है वे सब जगत् के हित करनेवाले हैं। सो आज ये सब मेरे लिए दु:खदायक हो गये। यहाँ तक कि वसन्त की शीतल मन्द सुगन्ध वायु भी उरग श्वास की भाँति उष्ण तीव्र और दुर्गन्धयुक्त प्रतीत होता है एवं सुखदायक छवो ऋतुएँ मेरे लिए प्राण की गाहक हो गयी। पहिले कह आये हैं : तुमसे प्रेम राम कर दूना। उसी का प्रमाण देते हैं कि तुम्हे तो तारा चन्द्र और किशलय केवल तीन दु:खदायक हैं और मुझे तो किसलय, निसि, ससि, कुवलय, विपिन, बारिद ये छवो दु:खदायक हुए। अतः दूना प्रेम सिद्ध है।

कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई ॥
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा ॥३॥

अर्थ : कह डालने से दुःख कुछ घटता है पर कहूँ किससे। इसे कोई जानता नही। मेरे और तेरे प्रेम के तत्त्व को केवल मेरा मन जानता है।

व्याख्या : दूसरे से कहने से अवश्य दुःख मे कुछ कमी होती है। कहा भी है : सुहृदि निरन्तरचित्ते गुणवति भृत्येऽनुवर्तिनि कलत्रे। स्वामिनि शक्तिसमेते निवेद्य दुःखं सुखी भवति। पर कहूँ किससे कोई इसका जाननेवाला भी तो हो। जो उस दुःख को समझे जिसे सहानुभूति हो उसी से कहने से दुःख घटता है। सुख दुःख को संसार जानता है। जो अनुकूल वेदनीय हो सो सुख है। जो प्रतिकूल वेदनीय है वही दुःख है। पर जिस दुःख मे सारे अनुकूल वेदनीय पदार्थ प्रतिकूल वेदनीय मालूम पडने लगे उस दुःख को सब नही जानते। संसार लौकिक प्रेम से परिचित है। वह कान्ताविरह से दुःखी होता है। क्योंकि उसको भोग की प्राप्ति बन्द हो जाती है। उसके प्रेम का तत्त्व स्वार्थ है। वह ऐसे दुःख को नही जान सकता जिसमे सब सुखमय पदार्थ दुःखदायक जान पडने लगे।

हम लोगो : दोनो का प्रेम अलौकिक है। पुनीत है। उसमे स्वार्थ का गन्ध नही है। वह भेद अन्तर नही सहन कर सकता। उसे केवल मेरा मन जानता है। और लोगो के मन की वहाँ तक पहुँच नही है। यथा सिय राम अवलोकनि परस्पर प्रेम काहु न लखि परै। मन बुद्धि बर बानी अगोचर प्रगट कवि कैसे करै। यह विषय रस रूखे दम्पती का प्रेम लोक मे दिखायी नही पडता। यथा . तुम्हरे जान काम अब जारा। अब लगि संभु रहे सविकारा ''हमरे जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी। जौं मैं सिव सेयेउ अस जानी। प्रेम समेत कर्म मन बानी। तौ हमार पन सुनहु मुनीसा। करिहैं सत्य कृपानिधि ईसा।

तथा : गिरा अर्थ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न। सिय राम अवलोकनि परस्पर प्रेम काहु न लखि परै। मन बुद्धि बर बानी अगोचर प्रकट कवि कैसे करै।

सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रस इतनेहि माहीं ॥
प्रभु संदेसु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहि तेही ॥४॥

अर्थ . वह मन सदा तेरे ही पास रहता है। इतने मे ही प्रीति रस का समझ ले। प्रभु का सन्देश सुनते ही वैदेही प्रेम मे मगन हो गयी। उनको शरीर की सुधि नही रह गयी।

व्याख्या : वह . मेरा मन तुझे छोडकर कही जाता ही नही। भावार्थ यह है कि मानसिक वियोग नही है। इतने मे ही प्रेमरस को समझ लो। अधिक जो कुछ कहना है वह इसी का विस्तार है। जो तुम समझती हो . मोहि निपट बिसारी।

सो बात नही है। एक क्षण भी मेरे चित्त से तुम उतरती ही नही। मेरा शरीर केवल यहाँ है मन तुम्हारे पास है। आधिदैविक दृष्टि से भी यही बात है। वह मायावृत्ति माया मे रहती है ब्रह्म में नही रहती। अतः कहते हैं कि वह मन तुम्हारे पास है मेरे पास नही है। अर्थात् तुम्हारे और मेरे बीच में एक ही मन है यही प्रीति का रस है। विरह मे ही प्रेम तत्त्व का यथार्थ विकास होता है। अतः इतनी बातों में ही प्रेमरस के जान लेने के लिए प्रभु का सन्देशा है।

रघुपति कर सन्देस अब सुनु जननी धरि धीर : से उपक्रम और प्रभु सन्देस सुनत बैदेही : से उपसहार दिखलाया। पहिले ही सावधान किया था ' सुनु जननी धरि धीर। सो धीर न धर सकी। ऐसी प्रेम में मग्न हुईं कि शरीर की सुधि न रह गयी। प्रभु का सन्देशा है : जानु प्रीति रस इतनेहि माँही। सो प्रीति रस का अनुभव दिखलाते हैं : मगन प्रेम तन सुधि नहि तेही।

कह कपि हृदय धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक सुखदाता॥
उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु कदराई॥५॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ने कहा कि हे माता ! हृदय मे धीरज धारण करो और सेवको के सुख देनेवाले रामजी का स्मरण करो। श्री रघुनाथजी की प्रभुता को हृदय मे लाओ और मेरे वचन को सुनकर कायरता छोड़ो।

व्याख्या : बार बार हनुमान्‌जी को धैर्य धारण करने के लिए कहना पड़ा। पहिले विरह कहा। अब धैर्य धारण करने के लिए बल कहेगे। सुमिरु राम सेवक सुखदाता। यही दुःख हटाने का साधन है। यथा : जपहिं नाम जन आरत भारी। मिटहि कुसंकट होहि सुखारी। रघुपति की प्रभुता आप जानती हो पर उसे हृदय मे स्थान नही देती हो। कदराई को स्थान दिये हो। सो उसे हृदय से निकालकर बाहर करो और प्रभुता को स्थान दो। जो शिक्षा सम्पाती से पाकर आये हैं उसी के अनुसार भगवती से विनय करते हैं। यथा : तासु दूत तुम तजि कदराई। राम हृदय धरि करहु उपाई।

दो. निसिचर निकर पतंग सम, रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदयँ धीर धरु, जरे निसाचर जानु॥१५॥

अर्थ : राक्षसों का समूह पतङ्गो के समान और रघुपति के बाण अग्नि के समान हैं। हे माता ! हृदय मे धैर्य धारण करो। राक्षसो को जला हुआ ही समझो।

व्याख्या : जलती हुई आग मे पतङ्गे अपने नाश के लिए आप से आप बड़े वेग से जा कूदते हैं। यथा : प्रदीप्त ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः। सो यह राक्षसो का समूह भुनगों का समूह है और रघुपति के बाण धधकती हुई आग हैं। आग के पहुँचने की देर है। भुनगे आप से आप आग मे आ पड़ेंगे। यथा : प्रभु सनमुख धाये खल कैसे। सलभ समूह अनल कहँ जैसे। अतः इन्हे जला हुआ ही

समझो। यह भाव ध्वनित है कि बाण रूप में आगया हूँ। इन सबो को अभी भस्म करता हूँ। अतः धैर्य धरो। भगवती के पता लगाने मे बहुत देर लगी। देर के उपालम्भ में तीसरा प्रश्न है। इसलिए इस प्रश्न पर बहुत कहना पड़ा जिसमें भगवती को धैर्य हो।

जौं रघुबीर होति सुधि पाई। करते नहिं बिलंबु रघुराई॥
राम बान रबि उएँ जानकी। तम बरूथ कहँ जातुधान की॥१॥

अर्थ : यदि रघुवीर ने सुधि पायी होती तो रघुराई देर न करते। हे जानकी! रामबाणरूपी सूर्य के उदय होने पर राक्षसो की सेना रूपी अन्धकार फिर कहाँ?

व्याख्या : अब चौथे प्रश्न का उत्तर देते हैं। प्रश्न है : कबहुँ नयन मम सीतल ताता। ह्वै है निरखि स्याम मृदुगाता। कहते हैं अब दर्शन मे विलम्ब नही है। तुम्हारा पता ही नही था। उनका कोई दोष नही। पता के लिए छटपटा रहे थे। लक्ष्मणजो से कहा - बर्षा बिगत सरद रितु आई। सुधि न तात सीता कर पाई। एक बार कैसहु सुधि जानौं। कालहुँ जीति निमिष महुँ आनौं। कतहुँ रहे जौ जीवत होई। तात जतन करि आनौं सोई। मित्र सुग्रीव पर बिगड़ गये। हम लोगो से कहा : सीता सुधि पूछेहु सब काहू। रघुराई हैं। नीति का पालन करते हैं। रघुकुल की प्रतिष्ठा रक्षा मे कभी विलम्ब न करेंगे। यदि कहिये कि राक्षसो से युद्ध करना पड़ेगा तो उस पर कहते हैं। रामबाण सूर्य है। यातुधान बरूथ अन्धकार हैं। कितना ही अधिक अन्धकार क्यों न हो सूर्य के उदय होने पर रह नही जाता। यथा : जिमि रबि उदय जाहि तम फाटी। भाव यह कि जो भुनगे होकर मुझ पर गिरेंगे उनको तो मै निपटा दूँगा और सरकार के आने पर राक्षस नि शेष ही हो जावेंगे अथवा सरकार के बाण रात को अग्निरूप और दिन को सूर्य रूप होकर राक्षसो का सहार करेंगे।

अबहिं मातु मै जाउँ लवाई। प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा॥२॥

अर्थ : हे माता! मैं आपको अभी लिवा जाता। परन्तु रामजीकी शपथ है मुझे आज्ञा नही है। हे माता! कुछ दिन धीरज घरो। रघुवीर बन्दरो के साथ आवेंगे।

व्याख्या : तब क्या पहिला बाण असमर्थ है? इस पर कहते हैं : अबहिं मातु मैं जाउँ लवाई। अथवा भगवती को दृढ धैर्य देने के लिए कहते हैं। लङ्का भर के राक्षस अकेले मेरा कुछ नही कर सकते। पर प्रभु की आज्ञा इतनी ही है : कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आयेहु। बात की सत्यता द्योतन के लिए हनुमान्‌जी शपथ लेते हैं केवल सान्त्वना के लिए नही। वस्तुस्थिति कह रहे हैं। आपके लेनेके लिए वे स्वयं आवेंगे। अब महीनों की बात नही है दिनो की बात है। रघुवीर हैं स्वयं समर्थ हैं। तिस पर वानरी सेना साथ होगी। यह बात वानरो की प्रतिष्ठा रखने के

लिए कह रहे हैं। अथवा रावण ने जो वर माँगा है : हम काहू के मरै न मारे। बानर मनुज जाति दुइ बारे। सो दोनो योग जुट जायगा।

निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं। तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं ॥
है सुत कपि सब तुम्हहि समाना। जातुधान अति भट बलवाना ॥३॥

अर्थ : राक्षसोको मारकर आपको ले जावेंगे। तीनो लोक मे नारद आदि यश का गान करेंगे। हे बेटा ! क्या सब बन्दर तुम्हारे ही ऐसे हैं। राक्षस लोग अतिभट और बलवान् हैं।

व्याख्या : अपनी प्रतिज्ञा भी पूरी करेंगे। यथा : निसिचर हीन करौं महि भुज उठाइ प्रन कीन्ह। आदर के लिए स्वय आवेंगे और इससे लोकोपकार भी होगा। यथा : त्रैलोक्य पावन सुजस सुरमुनि नारदादि बखानिहैं। जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई। यहाँ हनुमान्‌जीने जाम्बवान के वचन को दोहराया। क्योकि यह वचन हनुमान्‌जी को अत्यन्त प्यारा लगा था। इस भाँति लङ्का और उत्तरकाण्ड की भी कथा कही। पूरा रामायण भगवती को सुना दिया।

प्रत्यक्ष का बाध शपथ से भी नही होता। हनुमान्‌जी का आकार देखकर विश्वास न हुआ। आठ अङ्गुल का तो हनुमान्‌जी का देह था। बारह अङ्गुल की पूँछ थी। यथा : अष्टाङ्गुलमयः कायः पुच्छो मे द्वादशाङ्गुलः। माता ने समझा कि उत्साह तथा भक्ति के उमङ्ग मे राक्षसो को कुछ नही गिन रहा है। इसका किया क्या होनेवाला है ? अत कहती है कि तुम्हारे समान बन्दरो की सहायता से क्या उपकार होगा। जो कहते हो : कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा। यहाँ तो राक्षस अति भट है और बडे बलवान् है। भट से अधिक को महाभट और उससे भी अधिक को अतिभट कहते हैं।

मोरे हृदय परम संदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्ह निज देहा ॥
कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा ॥४॥
सीता मन भरोस तब भएऊ। पुनि लघु रूप पवनसुत लएऊ ॥५॥

अर्थ : मेरे हृदय मे बड़ा भारी सन्देह है। यह सुनकर हनुमान्‌जी ने अपना देह प्रकट किया। सुमेरु : सोने के पहाड के समान शरीर है। समर मे भयंकर और अति बलवीर हैं। तब सीताजी के मन मे भरोसा हुआ। फिर पवनसुत ने अत्यन्त छोटा रूप धारण कर लिया।

व्याख्या : सीताजी ने कहा कि मुझे तो उनके उपकारक होने मे बडा भारी सन्देह है। हनुमान्‌जी को विश्वास दिलाना परम आवश्यक था। अब बिना अपना शरीर दिखलाये काम नही चलता। अत जिस शरीर को छिपा रक्खा था उसे प्रकट किया। अब यदि राक्षस देख लें तो भी कोई हानि नही। बातचीत कर ही चुके हैं। ह्रस्वाकार से कनक भूधराकार हो गये। कनक कहकर वर्ण तथा तेज भी

कहा। मूर्ति सुहावनी है, पर समर भयङ्कर है। मूर्ति के दर्शन से पता चलता है कि अति बलवीर हैं। यह हनुमान्‌जी का स्वाभाविक शरीर है। इसी का वर्णन काण्ड के आदि मे है। ऐसी शरीर देखकर भगवती जनकनन्दनी को भरोसा हुआ कि हाँ! यह मुझे अकेले लिवा जा सकता है। तब हनुमान्‌जी ने फिर शरीर समेट लिया। माँ के सामने अपना गौरव प्रदर्शन नही चाहते थे। लाचार होकर ऐसा करना पड़ा। अतः उसके सम्मार्जन के लिए कहते है।

दो. सुनु माता साखामृग, नहि बल बुद्धि बिसाल।
प्रभु प्रताप ते गरुड़हि, खाइ परम लघु ब्याल ॥१६॥

अर्थ: माता सुनो! हम पेड के डाल पर रहनेवाले मृग हैं। हमे विशाल बल बुद्धि नही होती। परन्तु प्रभु के प्रताप से गरुड को अत्यन्त छोटा सा साँप खा सकता है।

व्याख्या: हनुमान्‌जी ने कहा कि माता! मेरी जाति का यही रूप है जो मेरा इस समय आप देख रही हैं। न बुद्धि ही बडी है और न बल ही अधिक है। मेरी जाति की बल बुद्धि की समाप्ति एक शाखा से दूसरे पर कूद जाने मे ही है। इसीलिए लोग शाखामृग कहते हैं। ये लोग उसी भाँति राक्षसो के भक्ष्य है जिस भाँति सर्पगण गरुड के भक्ष्य हैं। परन्तु प्रभु के प्रताप के योग से मुझमे इतना सामर्थ्य आगया है कि अपनी जाति मे औरो से छोटा होते हुए भी राक्षसो का नाश कर सकता हूँ। प्रभु का प्रताप ही वानरी सेना से सब कुछ करावेगा। यथा: धरि गाल फारहिं उर बिदारहिं गल अँतावरि मेलही। प्रहलादपति जनु बिबिध तन धरि समर अगन खेलही। नही तो वानरी सेना अपने बूते से क्या कर सकती है?

मन संतोष सुनत कपि बानी। भगति प्रताप तेज बल सानी॥
आसिष दीन्हि राम प्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना॥१॥

अर्थ: भक्ति प्रताप तेज और बल से सनी हुई हनुमान्‌जी की वाणी सुनकर सीताजी के मन मे सन्तोष हुआ। रामजी का प्रिय जानकर आशीर्वाद दिया कि हे तात! तुम बल और शील के निधान होओ।

व्याख्या: स्वरूप देखनेसे भरोसा हुआ। वाणी सुनने से सन्तोष हुआ। क्योंकि इतना होने पर भी वाणी दीनता द्योतक थी और प्रभु दीनबन्धु हैं। अत यह रामजी को प्रिय है, अथवा जो रामजी को प्रिय हो उसे छोडकर अन्य कोई इतना समर्थ और बुद्धिमान् होने पर भी गलित अभिमान हो नही सकता। अत निश्चय कर लिया कि यह प्रभु को प्रिय है। उनकी भक्ति प्रताप तेज और बल सानी वाणी सुनकर मन मे सन्तोष हुआ। भक्ति से सनी हुई यथा सुमिरि राम सेवक सुख दाता। प्रताप से सनी हुई यथा राम बान रबि उए जानकी। तम बरूथ कहँ जातुधान की। तेज से सनी हुई यथा प्रभु प्रताप से गरुडहि खाइ परम लघु ब्याल। बल सानी यथा: अबहि मातु मैं जाउँ लवाई।

सन्तुष्ट होने पर आशीर्वाद देना प्राप्त है। यहाँ राम प्रिय शब्द का तत्पुरुष और बहुव्रीहि दोनो समासो से अर्थ करना होगा। अर्थ होगा राम का प्रिय या राम हैं प्रिय जिसको। सो मन सदा रहत तोहि पाही : का उदाहरण यही देखिये कि प्रिय हैं रामजी को और आशीर्वाद सीताजी से मिल रहा है। पहिला आशीर्वाद बल के लिए है। क्योंकि इस जगत् मे बल ही सब कुछ है। निर्बल को आत्मलाभ भी नही होता। यथा : नायमात्मा व बलहीनेन लभ्य:। शील बिना बल अनर्थ का कारण होता है। इसलिए दूसरा आशीर्वाद शीलनिधान होने का दिया।

अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥२॥

अर्थ : हे पुत्र! तुम अजर अमर और गुण के निधान होओ और श्रीरघुनाथजी तुम पर बहुत छोह करें। प्रभु कृपा करें : ऐसा कान से सुनते ही हनुमान्जी पूर्ण प्रेम मे मग्न हो गये।

व्याख्या : जरावस्था आ जाने से बल शील का नाश हो जाता है। अत: तीसरा आशीर्वाद अजर होने का मिला। जरावस्था न आवे। ऐसा आशीर्वाद शाप का भी काम दे सकता है। जवानी में मर जाने से भी वह आशीर्वाद सफल हो सकता है। अत: अमर कहा है। गुणहीन का दीर्घजीवन भी व्यर्थ ही है। यथा : काकोऽपि जीवति चिराय बलिञ्च भुंक्ते। अत: गुणनिधि होने का आशीर्वाद मिला। इतने आशीर्वाद पर भी हनुमान्जी को हर्षित न देखकर छठा आशीर्वाद देती हैं : करहु बहुत रघुनायक छोहू। राम के प्रिय हैं। अत: छोह तो इन पर बना ही है। अत: बहुत छोह के लिए आशीर्वाद देती हैं। पहिले भगवती ने तात कहा था। परन्तु तात का बड़ा विस्तृत अर्थ है। पिता, पुत्र, मित्र और प्रिय सबके लिए तात शब्द का प्रयोग होता है। परन्तु इस बार सुत सम्बोधन करके बेटा मान लिया। हनुमान्जी को हर सेवाओ के पुरस्कार में छ: आशीर्वाद मिले। पहिले विरहोन्माद के समय हर्षोत्पादन किया। यथा : कपि कर हृदय विचार दीन्ह मुद्रिका डारि तब। जनु असोक अगार दीन्ह हरखि उठ कर गहेउ। अब मुद्रिका देखकर हर्ष विषाद से हृदय मे व्याकुलता हुई। तब राम गुण वर्णन करके दु:ख भगाया। यह दूसरी सेवा हुई। माता ने खल की शूल सी वाणी सुनी थी। उसे मिटाने के लिए श्रवणामृत राम कथा सुनाई। यह तीसरी सेवा हुई। सीताजी का नैराश्य मिटाया। यह चौथी सेवा हुई। यथा : भयउ तात मोहक जल जाना। भरोसा देना पाँचवी सेवा है। यथा : सीता मन भरोस तब भयऊ। उन्हें सन्तुष्ट करना छठी सेवा थी। यथा : मन सतोष सुनत कपि बानी। दारुण तप करके जिस अमरत्व को असुर न प्राप्त कर सके उस अमरत्व की प्राप्ति पर भी हनुमान्जी को हर्ष नही हुआ। करहु बहुत रघुनायक छोह। इस आशीर्वाद पर हर्ष हुआ।

प्रभु का सन्देश सुनाकर भगवती को हनुमान्जी ने प्रेम मे मग्न कर दिया।

यथा मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही। इधर आशीर्वाद देकर भगवती ने उन्हे प्रेम मे मग्न कर दिया। यथा निर्भर प्रेम मगन हनुमाना।

बार बार नाएसि पद सीसा। बोला बचन जोरि कर कीसा॥
अब कृतकृत्य भयउँ मै माता। आसिष तव अमोघ बिख्याता॥३॥

अर्थ हनुमान्‌जी बार बार सीताजी के चरणो मे सिर नवाते हैं। हाथ जोडकर हनुमान्‌जी बोले। हे माता! अब मैं कृतकृत्य हुआ। आपका आशीर्वाद अमोघ है। यह बात प्रसिद्ध है।

व्याख्या बार बार सिर नवाना कृतकृत्यता का लक्षण है। आगे चलकर कृतकृत्यता कहेंगे। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना से मनसा प्रेम कहा। बार बार नाएसि पद सीसा से कर्मणा प्रेम और बोला बचन जोरि कर कीसा से वचसा प्रेम भी कहा। भगवत् प्रीत्यर्थं ही सब साधन किया जाता है। प्रीति और छोह पर्यायवाची शब्द हैं। अत छोह की प्राप्ति से कृतकृत्यता हुई अमरत्व प्राप्ति से नही। प्रभु के बाण अमोघ हैं। भगवती का आशीर्वाद अमोघ है। यह बात विख्यात है। यथा तव प्रभाव जगविदित न केही। जाकी कृपा कटाक्ष सुर चाहत चितवन सोइ। यहाँ तक पुनि सीतहि धीरज जिमि दीन्हा प्रसङ्ग है।

६० वनविध्वंस प्रसङ्ग

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देख सुदर फल रूखा॥
सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी। परम सुभट रजनीचर भारी॥४॥
तिन्ह कर भय माता मोहि नाँही। जौ तुम्ह सुख मानहु मन माँही॥५॥

अर्थ माता! सुनो सुन्दर फल और देखकर मुझे तो अत्यन्त भूख लग गयी है। बेटा! सुनो बडे सुभट भारी राक्षस इस वन की रखवाली करते हैं। माता! यदि आप सुख माने तो इनका भय तो मुझे कुछ भी नही है।

व्याख्या अस कहि लवन सिंधु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई। तब से बन्दरो का अनशन चल रहा है। हनुमान्‌जी और बन्दरो को तो फल मूल कन्द खाने के लिए कह आये हैं। पर अपने लिए तो यह निश्चय किया है कि बिना जगदम्बा का दर्शन किये जल न ग्रहण करूँगा। सो दर्शन हो गया। अब पारण होना चाहिए। इधर सवेरा भी हो गया। फल फूल स्पष्ट दिखाई देने लगे बासब बरण बिधि बन ते सुहावनो दसानन को कानन बसंत के सिंगार सो। उसे देखकर और भी जोरो से भूख लगी। चित्त चाहने लगा कि रूख भी खा जायँ। बेटा अपनी भूख माँ से कहता है और माँ सुनती है। अत माँ से कहते हैं। बात यह है कि हनुमान्‌जी को युद्ध करना इष्ट है। प्रभु की आज्ञा लेकर नही चले हैं। अत माँ से फल खाने की आज्ञा माँगते हैं। अपनी भूख सुनाते हैं। जिसमे माँ से आज्ञा अवश्य ही मिल जाय। उसी

व्याज से युद्ध छिड जाय। प्रतिज्ञा किये हुए हैं। कहौंगे मुख की समर सहि कालि कारिख धोई। उसे पूरी करनी है।

माँ ने सुत सम्बोधन मे वात्सल्य दिखलाया। बोली फल और वृक्षो की रक्षा के लिए बडे भारी भारी राक्षस नियत हैं। सो वे सब न खाने देवेंगे। युद्ध करेगे। हनुमान्‌जी ने कहा कि माता उनका मुझे डर नही है। तुम्हारा डर है। कही यह न समझो कि मैं विपत्ति के दिन बैठी हुई इस वाटिका मे काट रही हूँ। सो हनुमान् ऐसा अविनीत है कि यहाँ आकर उपद्रव मचा दिया। आप मन से सुख मानें। बाहर से मेरे फल खाने आदि पर भले ही नाराजगी दिखलावें।

दो. देखि बुद्धि बल निपुन कपि, कहेउ जानकी जाहु।
रघुपति चरन हृदय धरि, तात मधुर फल खाहु ॥१७॥

अर्थ : कपि को बुद्धि और बल मे निपुण देखकर जानकीजी ने कहा कि जाओ और रघुपति के चरणो को हृदय में धारण करके मीठे फल खाओ।

व्याख्या : तिन्ह कर भय माता मोहि नाही से बल का परिचय पाया और जौं तुम सुख मानहु मन माही' से बुद्धि का परिचय पाया। तब आज्ञा दे दी और विजय का मन्त्र बतला दिया कि रघुपति के चरणो को हृदय मे रख लो। सब कल्याण होगा। यथा 'ध्येय सदा परिभवघ्नमभीष्टदोह तीर्थास्पद शिवविरचिनुत शरण्यम्। भृत्यार्तिह प्रणतपालभवाब्धिपोतम् वन्दे महापुरुप ते चरणारविन्दम्। माता है शिक्षा देती है कि मीठे फल खाना। भूख मे कच्चे फल न खा जाना।

चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा। फल खाएसि तरु तोरन लागा ॥
रहे[1] तहाँ बहु भट रखवारे। कछु मारेसि कछु जाय पुकारे ॥१॥

अर्थ : सीताजी को : सिर नवाकर चले और बाग मे घुस गये। फल खाये और वृक्ष तोडने लगे। वहाँ पर बहुत से भट रखवाले थे। उनमे से कुछ को मार डाला और कुछ ने जाकर पुकार की।

व्याख्या . आसिख आयसु पाइ कपि सीय चरन सिर नाइ। तुलसी रावन बाग फल खात बराइ बराइ। बाग मे नही थे वाटिका मे थे। फिर भी वहाँ से बाग दिखायी पडता था इसलिए : चलेउ नाइ सिर कहा। माता की आज्ञानुसार पक्का फल चुनकर खाते हैं। फल खाने तक शान्त रहे किसी ने न जाना। खा चुकने के बाद पेड तोडने लगे। तब बडा शब्द हुआ। इसलिए पहिले पेड नही तोडा कि युद्ध प्रारम्भ हो जायगा तो खाने नही पावेंगे। बाग मे रखवारे तो बहुत थे पर उस समय वे ही थे जिनका पहरा था। फिर भी कम नही थे। उनमे से कुछ को

---

१ वर्षा घोर निशाचर रारी—आर्द्रादि दशतारक वर्षा के नक्षत्र हैं। उनमे से हनुमान्‌जी की लङ्का मे यह पहिली लडाई आर्द्रा नक्षत्र की वर्षा है।

मारा और कुछ को रावण के यहाँ खबर देने के लिए छोड़ दिया। यदि सबको मार देते तो लड़ाई वही समाप्त हो जाती। जिन्होंने चोट नहीं खायी थी उन्होंने जाकर रावण के यहाँ पुकार मचायी।

नाथ एक आवा कपि भारी। तेहिं असोक बाटिका उजारी॥
खाएसि फल अरु बिटप उपारे। रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे॥२॥

अर्थ : हे नाथ! एक भारी बन्दर आया है। उसने अशोक वाटिका उजाड़ डाली। फल खाये। वृक्षों को उखाड़ डाला और रक्षकों को मसल मसलकर पृथ्वी पर फेंक दिया।

व्याख्या : कपि भारी : कहने का भाव यह कि यदि सामान्य बन्दर होता तो हम लोग मार डाले होते। पर वह हम लोगों के बूते का नही है। बड़ा भारी है। नाथ कहने का भाव यह कि आप से नाथ के रहते हम लोग अनाथ की भाँति मारे गये। उस बन्दर की ढिठाई और बल दिखलाते हैं कि उसने अशोक वाटिका : प्राणन ते प्यारो मेघनाद ते दुलारो बाग : उजाड़ डाला। अब उजाड़ने की विधि कहते हैं कि फल सब खा गया और पेड़ उखाड़ डाले। पेड़ों का नाश हो उसने यथेष्ट नही समझा। टूटने के बाद कदाचित् फिर न पनपें इसलिए जड़ से उखाड़ फेंका। इतना बलवान् है कि राक्षसों को मसलकर फेंक दिया। तीन अपराध किये : १. खायेसि फल २. बिटप उपारे और ३. रक्षक मर्दि मर्दि महि डारे।

सुनि रावन पठएउ भट नाना। तिनहि देखि गर्जेउ हनुमाना॥
सब रजनीचर कपि संहारे। गए पुकारत कछु अधमारे॥३॥

अर्थ : सुनकर रावण ने नाना प्रकार के भट भेजे। उन्हें देखकर हनुमान्जी गर्जे। सब राक्षसों को हनुमान्जी ने मार डाला। कुछ अधमरे पुकार करते हुए गये।

व्याख्या : नाना भट अर्थात् मन्त्री पुत्र किङ्कर नामवाले और जम्बूमाली को भेजा। पहिली लड़ाई के भट हनुमान्जी को कुछ मालूम ही नही पड़े। इसलिए गर्जना नही की। ये नाना भट कुछ समझाई पडे। अतः उन्हे देखकर गर्जे। रावण को पता चल गया है। इसलिए किसी को छोड़ने की आवश्यकता नही रह गयी। अतः सबको मार डाला। कुछ अधमरे बच गये। वे वही से ही रोते चिल्लाते रावण के यहाँ चले। हार जीत की खबर मालिक को देना चाहिए। हनुमान्जी के निसिचर सहार विधि का वर्णन अन्यत्र इस प्रकार से किया है। यथा—

हाथिन सो हाथी मारे घोर सो संघारे घोरे
रथनि सो रथ बिदरनि बलवान की।
चंचल चपेट चोट चरन चकोट चाहें
हहरानी फौजें भहरानी जातुधान की॥

वार वार सेवक सराहना करत राम
तुलसी सराहैं रीति साहेब सुजान की।
लांबी लूम लसत लपेटि पटकत भट
देखो देखो लखन लरनि हनुमान की॥

पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा। चला संग लै सुभट अपारा॥
आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महा धुनि गर्जा॥४॥

अर्थ : फिर रावण ने अक्षकुमार को भेजा। वह असंख्य सुभटों को लेकर चला। आते देखकर हनुमान्जी ने पेड़ लेकर डाँटा और उसे मारकर महाध्वनि से गर्जना की।

व्याख्या : राजा के बेटे को कुमार कहते हैं। इससे अक्ष को रावण का पुत्र होना द्योतित किया। रावण ने समझा कि अब यहाँ अक्ष का काम है। अक्ष के बल पर भरोसा है। वह असंख्य सुभटो को साथ लेकर चला। पहिली लड़ाई के योद्धा भट थे। दूसरी लड़ाई में नाना भट भेजे गये। अब तीसरी लड़ाई में सुभट चले।

हनुमान्जो पेड़ पर चढ़े हुए लङ्का से कुमक आने का बाट जोह रहे थे। आते देखकर उखाड़े हुए पेड़ों में से एक को उठा लिया। हनुमान्जी आगे बढ़कर स्वागत करते है। ऐसी चोट की कि अक्ष समाप्त ही हो गया और तब महा धुनि से गर्जे जिससे रावण तक शब्द पहुँच जाय। पहिली लड़ाई में गर्जे ही नही। दूसरे में गर्जे और इस बार तो महाधुनि से गर्जे। जिस भांति रावण की ओर से उत्तरोत्तर बलवत्तर सेना आ रही है उसी प्रकार महावीरजी का पुरुषार्थ उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाता है। क्योंकि दनुज बन कृसानु हैं। पहिली लड़ाई से दूसरी दूनी हुई। क्योंकि पहिले का वर्णन आधे पद में है और दूसरे का पूरे पद में। यह लड़ाई दूसरो से भी पञ्चगुनी हुई। क्योंकि इसका वर्णन पांच पदों में करते हैं।

दो. कछु मारेसि कछु मर्देसि, कछु मिलएसि धरि धूर।
कछु पुनि जाइ पुकारे, प्रभु मर्कट बल भूरि॥१८॥

अर्थ : कुछ को मारा। कुछ को मसल डाला और कुछ एक को पकड़कर धूल मे मिला दिया और कुछ ने जाकर पुकार की कि बन्दर बड़ा बलवान् है।

व्याख्या : पहिले ही सरदार को मार दिया। अब सेना की ओर झुके तो कुछ एक तो मार डाला और कुछ एक को शरीर में मर्दन किया। यथा : कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा। और कुछ एक को धूल में मिला दिया। उनके अवयवों का भी पता न चला। अपार सुभट आये थे पर यहाँ सब आकर कुछ हो गये। चार बार कुछ शब्द का प्रयोग है। इससे सिद्ध होता है कि एक चौथाई मारे गये। एक चौथाई मर्दे गये। एक चौथाई धूल में मिलाये गये और एक चौथाई भाग निकले। मारा पेड़ से मर्दा शरीर से और धूल में मिलाया हाथ से। किसी का

सामर्थ्य नही कि रावण से जाकर कहे कि अक्ष मारे गये। अत उन सबो ने जाकर पुकार मचायी कि बन्दर बडा बलवान् है। जिसका अर्थ ही यही है कि अक्ष मारा गया।

सुनि सुत बध लंकेस रिसाना। पठएसि मेघनाद बलवाना ॥
मारेसि जनि सुत बाँधेसु ताही। देखिअ कपिहि कहाँ कर आही ॥१॥

अर्थ : पुत्रबध सुनकर रावण क्रोधित हो उठा। बलवान् मेघनाद को भेजा : कहा कि बेटा! उसे मार न डालना। उसे बाँध लेना। देखा जाय कि वह कहाँ का है।

व्याख्या : सुतबध सुनकर रावण ने विशेष क्रोध किया। विशेष क्रोध करने को ही रिसाना कहते हैं। अक्ष के भेजने तक महल मे रहा। समय आ जाने से दरबार मे चला गया। वहाँ अक्ष वध की खबर लगी। इसी से लकेस रिसाना कहते हैं। विभीषण और मन्दोदरी की राय थी कि जो हुआ सो हुआ बन्दर को निकल जाने दो। रावण के वर का स्मरण करके भय के लिए यथेष्ट कारण था। यथा : काहू कान कियो न मैं कह्यो हौं केतिक कालि है। बापुरो विभीषण पुकारि बार बार कह्यो बानर बडो बलाय घने घर घालि है। रावण दरबार मे चले गये। अक्ष से बडा वीर मेघनाद ही है। उसके बल पर रावण को बडा भरोसा है। अत मेघनाद को भेजा। जानता है कि मेघनाद बन्दर को मार भी सकता है और बाँध भी सकता है। अत उससे कहा कि भ्रातृहा समझकर मार न डालना। बाँध लेना। *असली शत्रु तो वह है जिसने इसे भेजा है। इसके मारे जाने से उसका पता न* चलेगा : बन्दरो का राजा बालि मेरा मित्र है। बन्दर मेरे प्रतिकूल आचरण नही कर सकते। यह कहाँ का बन्दर है जो बालि का अनुशासन नही मानता ? अथवा यह इन्द्रादिक किसी देवता का भेजा हुआ है। ठीक पता लगाना ही चाहिए।

चला इद्रजित अतुलित जोधा। बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा ॥
कपि देखा दारुन भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा ॥२॥

अर्थ : इन्द्र को जीतनेवाला अतुल योद्धा चला। भाई का मरना सुनकर क्रुद्ध हो उठा। हनुमान्‌जी ने देखा कि दारुण भट आगया। सो कटकटाए गर्जे और दौड पडे।

व्याख्या : अतुलित योद्धा हैं : बारिद नाद जेठ सुत तासू। भट महँ प्रथम लीक जग जासू। जेहि न होइ रन सन्मुख कोई। सुरपुर नितहि परावन होई। केवल पिता की आज्ञा से वीररस के अधिष्ठाता इन्द्र को बाँध लाया था। इस पर ब्रह्मदेव ने उसे इन्द्रजीत की पदवी दी थी। इस बार तो पिता की आज्ञा भी है और भाई के मारे जाने से क्रुद्ध भी है। सो बाँध लाने के लिए चला। वीर दूसरे वीर को देखकर बल का अन्दाज कर लेते हैं। यथा : दुहु दिसि जय जयकार करि निज निज जोरी जानि। भिरे वीर इत रामहित उत रावनहि बखानि। हनुमान्‌जी

ने देखा कि भट, नाना भट, सुभट हो चुके। अब दारुण भट आ रहा है। अतः कटकटाकर उसके स्वागत के लिए गर्जे और दौड़े। ध्यान रखने की बात है कि अक्ष की अगवानी मे महाध्वनि से गर्जे थे। इसके आने पर कटकटाकर गर्जे। युद्ध का बडा उत्साह है। शत्रु से आगे जाकर मिलते हैं।

अति बिसाल तरु एक उपारा। बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा॥
रहे महा भट ताके संगा। गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा॥३॥

अर्थ : एक बडा भारी पेड़ उखाड़ लिया और लङ्कापति के बेटे के रथ को तोड़ डाला। उसके साथ मे महा भट थे। उन्हे पकड़ पकड़कर हनुमान्‌जी अपने शरीर मे मर्दन करने लगे।

व्याख्या : दारुण भट हैं। इसे रथी रहने देना ठीक नही। अतः उसके रथ के नष्ट करने के लिए एक बड़ा भारी पेड़ उखाड़ लिया और उसके चोट से मेघनाद के रथ का तोड़ डाला। भारी विजय हुई। इन्द्रजीत को विरथ करनेवाला दूसरा कौन है ?

अक्ष के साथ सुभट थे। इसके साथ महाभट हैं। उन्हे पकड पकडकर हनुमान्‌जी शरीर से मर्दन करते हैं। इस समय कालरूप हो रहे हैं। राक्षसो के रुधिर वसा के पङ्क से शरीर लिप्त हो रहा है। मानो उबटन लगाकर कालिमा छुडा रहे हैं। भाव यह कि विरथ करके उसके सहायको को मार करके उसे अपने बराबर की परिस्थिति मे लाना चाहते है। अक्ष के साथ अपार सेना थी। अक्ष के जीते जी उस सेना के पार पाने मे कठिनता थी। अतः पहिले अक्ष को मारा तब सेना के सहार मे सुभीता हुआ। यहाँ दारुण भट हैं। उसके ससहाय रहने से विजय मे कठिनता थी। अतः उसे विरथ करके उसके सहाय का सहार करके उसे अपनी भाँति एकाकी बनाया।

तिनहि निपाति ताहि सन बाजा। भिरे जुगल मानहु गजराजा॥
मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एकछन मुरुछा आई॥४॥

अर्थ : उन सबो को मारकर उससे भिड़ गये। मानो दो गजराज भिड़ गये हो। घूँसा मारकर पेड़ पर जा बैठे। उसे एक क्षण के लिए मूर्च्छा आगयी।

व्याख्या : मेघनाद बलदर्पित खड़ा है। दूसरे से संग्राम मे लगे हुए वीर पर अस्त्र नही छोडता। हनुमान्‌जी सबको मारकर उससे जा भिडे। मेघनाद ने भी अस्त्र नही चलाया। मल्लयुद्ध करने लगा। देखा कि बन्दर विना अस्त्र के बाहुबल से युद्ध कर रहा है। इसके साथ बाहुबल से ही युद्ध करना चाहिए। अतः दोनो के भिड़ने का गजराजो के भिड़ने से उपमा देते हैं। गजराज सिर से सिर मिलाकर शुण्ड से शुण्ड लपेटकर युद्ध करते हैं। यहाँ भी सिर से सिर भुजा से भुजा मिलाकर युद्ध हुआ।

हनुमान्‌जी घूँसा मारकर पेड़ पर जा चढ़े कि देखें,अब लङ्का से कौन आता है ? भीतर यह धारणा हुई कि इस घूँसे से यह न उठेगा। हनुमान्‌जी का घूँसा बड़ा दृढ़ है। यथा : लागैगी लापे दृढ़ मूकी हनुमान् की। रावण के साथ भी यही बात हुई। जब रावण इनका घूँसा खाकर गिरा और उठकर हनुमान्‌जी के बल की प्रशंसा करने लगा तब कहते हैं : धिग धिग मम पौरुष धिग मोही। जौ तैं जिअत रहेसि सुरद्रोही। यहाँ मेघनाद असाधारण वीर है। घूँसा लगने पर भी नहीं मरा। केवल क्षणभर के लिए मूर्च्छित हो गया।

उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया। जीति न जाइ प्रभंजन जाया ॥५॥

अर्थ : फिर उठकर उसने बहुत सी माया की। पर प्रभञ्जन : वायु के पुत्र जीते नहीं जा सकते।

व्याख्या : मूर्च्छा बीत जाने पर उठ तो गया पर भिड़ने का साहस नहीं रह गया। दूर दूर से माया करने लगा। ऐसा घूँसा खाया है कि अब यावज्जीवन हनुमान्‌जी के निकट न जायगा। यथा : बार बार पचार हनुमाना। निकट न आव मरमु सो जाना। राक्षसो का परम बल माया है। पर ये प्रभञ्जन के पुत्र हैं। सबका भञ्जन कर दिया। तब मेघनाद समझ गया कि शत्रु अजेय है।

दो. ब्रह्मअस्त्र तेहि साधा, कपि मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्मसर मानौं, महिमा मिटइ अपार ॥१९॥

अर्थ : अन्त मे उसने ब्रह्मास्त्र का सन्धान किया। तब हनुमान्‌जी ने विचार किया कि यदि मैं इसे भी नही मानता तो अपार महिमा मिट जायगी।

व्याख्या : जब कोई बल नही चलता तभी ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया जाता है। मनुष्यों पर उसका चलाना मना है। सो प्राणकृच्छ्र उपस्थित होने पर उसने बन्दर पर चला दिया। हनुमान्‌जी धनुर्वेद के आचार्य हैं : रुक्मी के गुरु हैं। रुक्मी सम्पूर्ण कौरव वीरो या पाण्डव वीरो से सामना करने का साहस रखता था। तुरन्त पहिचान गये। विचार करने लगे कि यदि मैं ब्रह्मास्त्र न मानूँ तो वह भी मेरा कुछ नहीं कर सकता। परन्तु मेरे हाथो से ब्रह्मदेव की अपार महिमा न मिटनी चाहिए। अपार इसलिए कहा कि ब्रह्मदेव के वचन को सत्य करने के लिए रामावतार हुआ है। यथा : प्रभु बिधि बचन कीन्ह चह साँचा। उस मर्यादा की रक्षा करनी चाहिए और ब्रह्मदेव ने वर देने के समय कहा भी था कि एक बार राजदर्शन के लिए तुम्हे ब्रह्मास्त्र मानना पड़ेगा और मेरा यह महान् उद्यम भी रावण से बातचीत करने के लिए है। सो ब्रह्मास्त्र मान लेने से ये मुझे रावण के यहाँ ले जावेंगे। तब उसे समझाने का अवसर प्राप्त होगा। अतः हनुमान्‌जी ने ब्रह्मास्त्र मान लेना निश्चय कर लिया।

ब्रह्मबान कपि कहुँ तेहि मारा। परतिहु बार कटकु संघारा ॥
तेहि देखा कपि मुरुछित भयऊ। नागपास बाँधेसि लै गयऊ ॥१॥

अर्थ उसने कपि को ब्रह्मास्त्र मारा जिसके लगते ही नीचे गिर पडे। गिरते हुए भी सेना मारी। उसने हनुमान्जी को मूर्च्छित देखा। नागपाश से बाँध ले गया।

व्याख्या परतिहु बार कहकर हनुमान्जी का ब्रह्मास्त्र मान लेना कहा। जो महाभट मेघनाद के साथ आये थे उनके मारे जाने पर नयी कुमक लङ्का से आयी है उसका सहार गिरते गिरते किया। ब्रह्मास्त्र लगने पर भी इतनी सावधानी है कि सेना म जाकर गिरे और ऐसा हाथ पैर पीटा और पलटा लिया कि कटक का सहार हो गया। मेघनाद निकट नही आता। दूर से देखता है कि सचमुच मूर्च्छित हुआ है कि दूसरा घूँसा मारने के लिए दम्मी साधे है। मेघनाद को इनका पराक्रम देखकर भय था कि कदाचित् इस पर ब्रह्मास्त्र भी काम न करे। अथवा यह देखा कि मर गया या मूर्च्छित है। देख लिया कि मूर्च्छित है तब चिन्ता हुई कि मूर्च्छा से जागने पर इसके लिए क्या उपाय किया जायगा ? अत इसी समय बाँध लना चाहिए। पर यह लौकिक बन्धन के वश का नही है। इसलिए नागपाश से बाँधा और ले गया। पिता की आज्ञा थी मारेसि जनि सुत बाँधेसु ताही। सो पूरी हुई।

जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भव बधन काटहि नर ग्यानी ॥
तासु दूत कि बधतर आवा। प्रभु कारज लगि कपिहि बधावा ॥२॥

अर्थ हे भवानी! सुनो। जिसका नाम जपकर ज्ञानी भवबन्धन को काट डालते हैं उसका दूत कही बन्धन मे आ सकता है ? प्रभु के कार्य के लिए कपि ने स्वय अपने को बँधा लिया।

व्याख्या भवानी के सन्देह की आशङ्का से ज्ञानघाट के वक्ता शङ्करजी बोले। यह बात भवानी सम्बोधन से स्पष्ट हुई। नाम जपने से ज्ञान होता है। यथा तत प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽन्तरायाभावश्च। यो सू। नाम जपने से प्रत्यक् चेतन का ज्ञान होता है और विघ्न नष्ट होते हैं और ज्ञान मोच्छप्रद वेद बखाना। अत नाम के जप से भवबन्धन कटता है और नागपाश ब्रह्मपाश और वरुणपाशादि तो भवबन्धन के कार्य हैं। ये भवबन्धन के सामने कुछ भी नही हैं।

हरि सेवकहि न व्याप अविद्या। जिसे अविद्या नही बाँध सकती उसे नागपाश क्या बाँधेगा ? भाव यह कि नागपाश का प्रभाव मिट गया। मूर्ख निशाचरो ने बन्धन दृढ करने के लिए रस्सा सीकड आदि अन्य बन्धनो से भी बाँध दिया। नागपाश अन्य बन्धन को सहन नही कर सकता। इसलिए उसका प्रभाव जाता रहा जिसे जानकर मेघनाद बडा दुखी हुआ। पर हनुमान्जी ने रावण को समझाने का अवसर पाने के लिए उन बन्धनो को मान लिया। नही तो वस्तुत वे विनिर्मुक्त हो गये थे।

कपि बधन सुनि निसिचर धाए। कौतुक लागि सभा सब आए ॥

६१. रावणप्रबोध प्रसङ्ग

दसमुख सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई ॥३॥

अर्थ बन्दर का बाँधा जाना सुनकर राक्षस दौडे और तमाशा देखने के लिए सब सभा मे आये। हनुमान्‌जी ने जाकर दशानन की सभा देखी। अत्यन्त प्रभुता कुछ कही नही जाती।

व्याख्या : बन्दर के देखने का कौतुक लङ्का भर को था। पर कोई देखने नही जाता था कि कही सैनिक के धोखे मे मारे न जायँ। कपि का बन्धन बडा दुर्घट व्यापार था। सो बन्धन की खबर लङ्का भर मे गूँज गयी। अत. सब दौडे पर आये सभा मे। रास्ते मे नही मिले कि कही बन्धन छुडा न ले और दरबार मे यदि तोडावेगा भी तो रावण रहेगे। कोई हर्ज न होगा। इसलिए सब सभा मे कौतुक देखने आये।

हनुमान्‌जी ने दशमुख को सोये तो देखा था। पर सभा मे नही देखा था। सभा मे रावण के सामने पेश हुए। दीख कपि जाई का भाव यह कि अपनी इच्छा से बँधे बँधाये गये। लङ्का की सभी बातें अलौकिक है। अत कहते हैं . कहि न जाय कछु अति प्रभुताई। सैनिको के लिए कहा : को गनै। सेना बल के लिए कहा . बरनत नहि बनै। महल के लिए कहा कहि जात सो नाही। अब प्रभुता के लिए कहते है ' कहि न जाय कछु अति प्रभुताई।

कर जोरे सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता ॥
देखि प्रताप न कपि मन संका। जिमि अहिगन महु गरुड असंका ॥४॥

अर्थ : देवता और दिक्पाल बडी नम्रता से हाथ जोडे सब रावण की भौह भयभीत हुए ताक रहे हैं। प्रताप देखकर बन्दर के मन मे कुछ भी शङ्का नही हुई जैसे सर्प समाज में गरुड निशङ्क हो।

व्याख्या ' अति प्रभुताई को स्पष्ट करते हैं। दानव देव दयाबने दीन दुखी दिन दूरहि ते सिर नावै। आज्ञापालन के लिए भृकुटी देखते हैं। क्या आज्ञा कब होगी इसका ठीक नही। इसलिए सभीत है। इशारे पर काम न हुआ तो रावण नाराज हो जायँगे। इसलिए सभीत हो भृकुटी देखते हैं।

दिक्पाल सशङ्क हैं पर हनुमान्‌जी नही। साँपो की सभा मे कौन सशङ्क न होगा ? विशेषत' रावणरूपी महानाग के सामने। यथा ' जस पावन रावन नाग महा। पर गरुडजी नही सभीत होते। प्रभु प्रताप से गरुड व्याल हो गये और परम लघु व्याल गरुड हो गया। यथा . प्रभु प्रताप ते गरुडहि खाइ परम लघु व्याल। हनुमान्‌जी कहते हैं : देखो मैं दसकठ सभा सब मोते कोउ न सबल तो।

दो कपिहि बिलोकि दसानन, बिहँसा कहि दुर्बाद।
सुतबध सुरति कीन्ह पुनि, उपजा हृदय बिषाद ॥२०॥

अर्थ : हनुमान्‌जी को देखकर दशानन दुर्वचन कहकर खूब हँसा। फिर पुत्रवध का स्मरण करने से मन में विषाद उपजा।

व्याख्या : रावण ने पहिले हनुमान्‌जी को कभी नहीं देखा था। इनके बँध जाने की खुशी में सुतवध भूल गया। हँस पड़ा। दुर्वाद तो आसुरी प्रकृति के लिए स्वाभाविक ही है। यथा : रघुपति निकट गयउ घननादा। नाना भाँति करेसि दुर्वादा। दुर्वाक कहकर हँसा तो पर हँसी टिकी नहीं। सुतवध स्मरण हो आया तब विपण्ण हो गया।

कह लंकेस कवन तइ कीसा। केहि के बल घालेहि बनखीसा॥
की धौ स्रवन सुनेहि नहिं मोही। देखउँ अति असंक सठ तोही॥१॥

अर्थ : लङ्कापति ने कहा रे वानर तू कौन है और किसके बल से तूने वन उजाड़ा। क्या तूने मुझे कभी कान से भी नहीं सुना है। मैं तुझे बड़ा निडर देख रहा हूँ।

व्याख्या : लङ्का का राजा है। जो घटनाएँ वहाँ हों उनके निर्णय का अधिकार है। अतः पूछता है कि बन्दर ! तू कौन है ? यह पहिला प्रश्न है। हनुमान्‌जी चुप है कि सब प्रश्न हो जाने दो। यहाँ अङ्गदजी के और इनके स्वभावका अन्तर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। अङ्गदजी प्रश्न समाप्त होते न होते ही उत्तर देते हैं। यथा : कह दसकंठ कौन तै बन्दर। मैं रघुवीर दूत दसकंधर। मम जनकहिं तोहि रही मिताई। इत्यादि। हनुमान्‌जी सीताजी के प्रति दूत बनकर भेजे गये थे। इसलिए इन्हे रावण को प्रणाम करना आवश्यक नहीं था। अङ्गदजी तो सीधे सीधे रावण के प्रति दूत बनाकर भेजे गये थे। अतः उन्हे प्रणाम करना आवश्यक था। यथा : बैठ सभा सिर नाय। दूसरा प्रश्न है किसके बल से वन को उजाड़ा ? रावण के यहाँ उचित अनुचित का विचार नहीं है। बलाबल का विचार है। बली हो तो उसे उजाड़ने का अधिकार है। दूसरी बात यह कि शत्रु तो वह है जिसने तुम्हे पीठ ठोंककर भेजा है। जिसकी आँखो मे मेरा उपवन गड़ता है। तुझसे कोई वैर नहीं है।

तीसरा प्रश्न है कि तू निडर दिखायी पड़ता है। मुझे प्रणाम भी नहीं किया। तुझे अभी भरोसा है कि भेजनेवाला तेरी सहायता करेगा। इससे यह अनुमान होता है कि तूने मुझे कान से भी नहीं सुना अर्थात् तुझे मेरे प्रभाव का सामान्य परिचय भी नहीं है। यदि होता तो तू इतना निःशङ्क कैसे होता ? किसका सामर्थ्य है कि मेरे सामने आवे। रावण नाम विदित जग जाना। लोकप जाके बंदी खाना। मेरा नाम सुनकर संसार सशङ्क हो उठता है। यथा : भई सभय जब नाम सुनावा। रूप से ठीक परिचय नहीं होता। बड़े विशालकाय भी अल्पवीर्य होते हैं। अतः यथार्थ परिचय नाम से होता है। अति असंक का भाव यह कि इस भाँति मेरे प्रश्न को सुन रहा है जिस भाँति प्रभु लोग विनय सुनते हैं : फिर भी हनुमान्‌जी चुप रहे।

मारे निसिचर केहि अपराधा । कहु सठ तोहि न प्रान कइ बाधा ॥
सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया । पाइ जासु बल बिरचति माया ॥२॥

अर्थ : तूने राक्षसों को किस अपराध से मारा ? रे शठ ! बतला तुझे प्राण की बाधा नहीं है । हे रावण ! सुन जिसका बल पाकर माया सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड समूहों की रचना करती है ।

व्याख्या : चौथा प्रश्न निशिचर वध विषयक है । बाग के उजाड़े जाने का निशिचर वध से अधिक कष्ट है । इसलिए निशिचर वध की बात सबके पीछे पूछता है । यथा : प्राणन ते प्यारो मेघनाद ते दुलारो बाग अति अनुराग हिय जातुधान धीर को । जो कारण निशिचर वध का है वही अक्ष वध का है । इसलिए अक्ष वध विषयक पृथक् प्रश्न नहीं किया । दूसरे यह कि अक्ष विषयक पृथक् प्रश्न न करके अपनी प्रजा पालकता दिखलाता है । तीसरे यह कि ऐसा प्रश्न करने मे अप्रतिष्ठा है । इतना पूछने पर भी जब हनुमान्‌जी नहीं बोले तब समझा कि यह प्राण से निराश है । इसलिए नहीं बोलता है । तब कहा कि तेरा प्राण नहीं मारा जायगा । तू असली बतला दे कि क्या माजरा है ? इस भाँति रावण मुख्य शत्रु को जानना चाहता है । सठ सम्बोधन से निर्लज्जता ध्वनित है । भाव यह कि बन्ध से तुझे लज्जा नहीं है । वध के लिए मैं क्षमा प्रदान करता हूँ ।

चारो प्रश्न सुनकर हनुमान्‌जी मुख्य अभिप्राय रावण का समझ गये । अत. दूसरे प्रश्न का उत्तर पहिले देना उचित समझा । रावण का बल पर बड़ा ध्यान है । इसलिए बल निरूपण द्वारा ही परिचय देते हैं । इसी व्याज से उपदेश भी करते हैं । ब्रह्माण्डो के समूहो की रचना माया जिसके बल से करती है । यथा : एक रचइ जग गुन बस जाके । प्रभु प्रेरित नहि निज बल ताके । लव निमेष महं भुवन निकाया । रचइ जासु अनुसासन माया । अथवा राक्षसो का परम बल माया है । उस माया को भी प्रभु का ही बल है ।

जाके बल बिरंचि हरि ईसा । पालत सृजत हरत दससीसा ॥
जा बल सीस धरत सहसानन । अंडकोस समेत गिरि कानन ॥३॥

अर्थ : हे दशशीश ! जिसके बल से ब्रह्मा विष्णु महेश सृष्टि का पालन सर्जन और संहार करते हैं । जिसके बल से सहस्रमुखवाले शेषजी पर्वत और वन के सहित समस्त ब्रह्माण्ड को सिर पर धारण करते हैं ।

व्याख्या : माया का आधिपत्य सम्पूर्ण ब्रह्माण्डो पर है और विधि हरि हर का आधिपत्य एक ब्रह्माण्ड पर रहता है । यथा : लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता । भिन्न बिष्णु सिव मनु दिसि त्राता । सो वे भी उसी के बल पर अपना कार्य करने मे समर्थ होते हैं । किसी कल्प मे शिवजी से ही सृष्टि हुई । किसी कल्प मे ब्रह्मदेव से और किसी मे विष्णु से सृष्टि हुई । इसीलिए गोस्वामीजी क्रम नहीं देते । विरञ्चि

के लिए पालत और हरि के लिए सृजत कह दिया · सृष्टि की विचित्रता कहते हैं कि दस सिर वाले को भी बनाते हैं। माया ब्रह्माण्ड बनाती है। उन ब्रह्माण्डो मे उत्पन्न होकर त्रिदेव सृष्ट्यादि करते हैं। ब्रह्माण्ड के अधिपतियो को कहकर उसके आधार का हाल कहते हैं . महसानन के सामने दशानन क्या है। ब्रह्माण्ड भुवन विराज जाके एक सिर जिमि रजकनी। वे भी प्रभु के बल से ही ब्रह्माण्ड उठाये हैं . तुम कैलास उठाकर ही कृत कृत्य बने वैठे हो।

धरै जो बिबिध देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन सिखावनु दाता ॥
हर कोदंड कठिन जेहि भजा। तोहि समेत नृप दल मद गजा ॥४॥
खरदूषन त्रिसिरा अरु बाली। वधे सकल अतुलित बलसाली ॥५॥

अर्थ : जो देवताओ की रक्षा करनेवाला अनेक प्रकार के शरीरो को धारण करता है। जो तुमसे शठो को सिखावना देनेवाला है। शिवजी के कठिन धनुष को जिसने तोडा और तुम्हारे सहित राजसमाज के मद का भङ्ग किया। जिसने सब अतुलित बलशाली खरदूषण त्रिशिरा और बालि का वध किया।

व्याख्या वे ही सुरत्राता हैं। देवताओ की रक्षा के लिए अनेक प्रकार का शरीर धारण करते हैं। यथा : मीन कमठ सूकर नर हरी। वामन परसुराम बपुधरी। जब जब नाथ सुरन्ह दुख पायो। नाना तनु धरि तुमहि नसायो। रावण ने शठ कहा था। उसी के उत्तर मे कहते हैं · तुमसे सठन्ह सिखावन दाता। शठ विनय से नही मानते दण्ड से ही मानते हैं। सो तुम से शठो के लिए ही जो देवताओ का बुरा चाहते है। यथा · तिन्हकर मरन एक बिधि होई। कहौं बुझाइ सुनहु अब सोई। फिर शरीर धारण किया है। परशुरामावतार तक ऊपर कहा था। अब रामावतार कहते हैं। शिवजी का धनुष तोडना मानवी शक्ति के बाहर की बात थी। उसे भी जिसने तोडा। वहाँ तुम भी थे। तुम्हारा भी पराभव हो चुका है। तुम उन्हे भली प्रकार से जानते हो। यथा : जनक सभा अगनित भुवपाला। रहे तुम्हउ बल अतुल बिसाला। भंजि धनुष जानकी बिआही। तब सग्राम जितेहु किन ताही। और भी सुनो। खरदूषण रावण के समान बलवाले थे। बालि अधिक बलवाला था। तथा अतुलित बलशाली विराध आदि सबको मारा। अब केवल तुमही बच रहे हो। सो तुम्हारा भी योग आ गया है। उनसे विरोध कर वैठे हो और यह भी नही जानते कि—

दो. जाके बल लवलेश तें, जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मै जा करि, हरि आनिहु प्रिय नारि ॥२१॥

अर्थ जिनके बल के लवलेश मात्र से तुमने चराचर को जीत लिया और जिनकी प्रिय पत्नी को तुम हरण कर लाये हो उन्ही का मै दूत हूँ।

व्याख्या . उन्ही के बल का लव ब्रह्मदेव और शिवजी मे है। यथा : जेहि सुख सुधा सिंधु सीकर ते सिव बिरञ्चि प्रभुताई। और उनके बल का लेश तुम्हारे

मे है। यथा : मैं ब्रह्मा मिलि तेहि बर दीन्हा। इसीलिए लवलेश कहा। उससे तुमने चराचर को जीत लिया। यहाँ तक द्वितीय प्रश्न का उत्तर देकर प्रसङ्ग प्राप्त प्रथम प्रश्न का उत्तर देते हैं कि जिसकी प्रिय स्त्री को हरण कर लाये हो : उसी का मै दूत हूँ। भाव यह कि तुम्हारा अनुमान ठीक नही। मै किसी का भेजा बाग उजाड़ने के लिए नही आया हूँ। जिसका तुमने इतना अपकार किया है उसी का भेजा हुआ सीताजी को देखने आया हूँ : इससे स्वयं राजा रावण का अपराधी होना सिद्ध किया।

जानउँ मै तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई॥
समर बालि सन करि जसु पावा। सुनि कपि बचन बिहँसि बहरावा॥१॥

अर्थ : मैं तुम्हारी प्रभुता जानता हूँ। सहस्रबाहु से तुम्हारी लडाई हुई थी और बालि से भी युद्ध करके तुमने यश प्राप्त किया है। हनुमान्‌जी का वचन सुनकर उसने हँसकर बात उड़ा दी : वाह् वाह् कर दिया।

व्याख्या : कीधौ स्रवन सुनेहि नहिं मोही। देखउँ अति असक सठ तोही। इस तीसरे प्रश्न का अब उत्तर देते हैं कि केवल कान से सुना हो नही है। मेरी व्यक्तिगत जानकारी है। सहस्रार्जुन से लडाई पड़ी थी। भाव यह कि जीतोगे क्या? लड़ाई ठान देना ही तुम्हारी प्रभुता है। यह भी यश हुआ कि रावण बालि से लड गये थे। भाव यह कि तुम्हे बलाबल का परिज्ञान नही है। भला आज तक कोई योद्धा प्रतिद्वन्द्वी के कोखतले रहा हो? यह यश अकेले तुमने ही पाया है। तुम्हारी प्रभुताई जानकर ही मैं अशङ्क हूँ। इन बातो को रावण ने हँसकर उडा दिया। जिसमे जो न जानता हो वह यही समझे कि रावण द्वारा इनका पराभव हुआ होगा।

खायेउँ फल प्रभु लागी भूखा। कपि सुभाउ ते तोरेउँ रूखा॥
सबके देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारग गामी॥२॥

अर्थ : हे प्रभो! भूख लगी थी सो फल खा लिया। वानर स्वभाव के कारण वृक्ष तोड़ा। हे स्वामी! देह सब को प्रिय है। कुमार्ग मे चलनेवाले मुझे मारने लगे।

व्याख्या : चौथा प्रश्न मारे निसिचर केहि अपराधा का उत्तर देते हैं। जिस अशोक वाटिका का फल खाया उसका वह प्रभु है। इसलिए प्रभु सम्बोधन यहाँ दिया। अथवा जहाँ तक दूत सम्बन्धी बातें कहते रहे तहाँ तक शठ के उत्तर में शठ ही कहा। और जब व्यक्तिगत अपराध का उत्तर माल मालिक के सामने देना पड़ा : प्रभु कहते हैं। अत्यन्त भूख से फल तोडकर खा लेना कोई अपराध नही है और न स्वभावानुसार आचरण ही अपराध है। पेड तोडना तो बन्दर का स्वभाव ही है। अतः इन दोनो प्रक्रियाओ मे मेरा कोई अपराध नही है।

तुम्हारे निसिचर कुमार्गगामी हैं। हाँका भी नही सीधे सीधे मारना ही प्रारम्भ कर दिया। आप तो महिष मनुष धेनु खा जाते हैं। मुझे फल खाने पर मारने लगे। मैंने देखा कि न बोलूँगा तो ये मार ही डालेंगे। मुझ शस्त्र विहीन पर अस्त्र शस्त्र से प्रहार करने लगे। आत्मरक्षा तो सभी करते हैं। क्योंकि ब्रह्मदेव से लेकर स्तम्बपर्यन्त देह तो सबको परम प्रिय है। इसमे सेना का अपराध कहा।

जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहि पर बाँधेउ तनय तुम्हारे ॥
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभुकर काजा ॥३॥

अर्थ : जिन्होने मुझे मारा उन्हे मैने भी मारा। तिसपर तुम्हारे पुत्र ने मुझे बाँध लिया। मुझे अपने बाँधे जाने की कुछ भी लज्जा नही है। मैं तो अपने प्रभु का कार्य किया चाहता हूँ।

व्याख्या : फिर तो लड़ाई छिड़ गयी। जिन्होंने मुझे मारा उसे मैंने मारा। मै निरपराध हूँ। आप प्रभु हैं। वेद के भाष्यकार हैं। स्वय वेद कहता है। योऽस्मान् धूर्वंयति त वय धूर्वयामः। जो हमें मारता है उसे हम मारते हैं। भला वे तो साधारण सैनिक थे। तुम्हारा बेटा तो राजकुमार है। उसे तो न्याय करना था। उसने उलटे मुझी को बाँध लिया। अपराध राजकुमार का है मेरा कुछ भी नही। इससे मेघनाद का अपराध कहा।

कहु सठ तोहि न प्रान कर बाधा का उत्तर देते हैं। पहिले सठ कहने का उत्तर। तोहि से सठन्ह सिखावन दाता कहकर दिया। अब दूसरी बार जो शठ शब्द का उपयोग किया उससे ध्वनि यह निकली कि तू निर्लज्ज है। बँधने पर भी बेपरवाह दिखायी पड़ता है। इस पर कहते है कि मुझे बँध जाने की लज्जा नही है। क्योंकि लज्जा तो जुगुप्सित कर्म करने से होती है। स्वामी के कार्य सम्पादन के प्रयत्न मे बाँधा जाना शोभा है। भाव यह कि मैं नागपाश के बन्धन मे नही हूँ। स्वामी का कार्य किया चाहता हूँ। इसलिए बँधा हुआ आया हूँ। दूसरे उपाय से तुम्हारे तक पहुँच न होती।

बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन ॥
देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भय हारी ॥४॥

अर्थ : हे रावण ! मैं हाथ जोडकर विनती करता हूँ। अभिमान छोड़कर मेरी सीख सुनो। तुम अपने कुल को विचारकर देखो। भ्रम छोड़कर भक्त भयहारी भगवान् को भजो।

व्याख्या : अब निज प्रभु का काज कह रहे हैं। महात्मा लोग हाथ जोड विनती करके भी उपकार करते हैं। राम भक्ति से यन्त्रित साक्षात् शिवजी अपने भक्त के कल्याण के लिए हनुमान् रूप मे हाथ जोडकर विनती कर रहे हैं। मोर सिखावन सुनहु : कहकर अपना गुरु होना भी द्योतित कर रहे हैं। नही तो विनती

करनेवाला अपनी गरज कहता है। सिखावन नही देता। मान रहने से सिखावन काम नही करता। इसलिए पहिले मान छोड़ने को कहते हैं।

सिखावन यह है कि तुम विद्वान् हो। कुल धर्म न छोड़ो। जिस मार्ग से बड़े लोग चले हों उसी मार्ग से चलना चाहिए। तुम्हारे पितामह कैसे भजन करनेवाले हैं। तुम्हारे पिता कैसे भजन करते हैं। भाई कैसा भक्त है। सब भक्त भयहारी को भजते हैं। तुम भ्रम में पड़ गये हो। तुम में भजन करने की शक्ति है। यह बात गलत है कि : होइहि भजन न तामस देहा। तुम भजन करो। वैर करने से दुर्वंश होगा। भजन करने से वे तुम्हारे वश हो जायँगे। अथवा जो तुम्हें इनके मनुष्य होने का भ्रम है उसे छोड़कर इनका भजन करो।

जाके डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजे। मोरे कहे जानकी दीजे॥५॥

अर्थ : जो देवता राक्षस चर अचर सबको खा जाता है। ऐसा काल भी जिसके डर से अत्यन्त डरता है। उससे कभी वैर न करना चाहिए। मेरे कहने से जानकी को दे दो।

व्याख्या : अगजग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जग काल कलेवा। काल का पेट कभी नही भरता।

ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया॥
जीव चराचर जन्तु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना॥
ते फल भच्छक कठिन कराला। तव भय डरत सदा सोउ काला॥

काल व्याल कर भच्छक जोई। विषम बली ते वादि वैर को बढ़ावनो। ऐसे विषम बलवान से तुम वैर बढ़ा रहे हो। वे तुमसे वैर नही करते। अभिमानी बात समझ जाने पर भी अभिमान के कारण से बात नही मानता। इसलिए हनुमान्‌जी कहते हैं : मेरे कहने से जानकी दे दो। भाव यह कि तुम्हारे ऐसे अभिमानी के लिए सुअवसर है। तुम कह सकते हो कि उनका दूत आकर हाथ जोड़ बिनती करने लगा तो मैंने दे दिया। दूसरा भाव यह कि गुरुजी का अनुशासन है। अपने शिष्य से कह रहे हैं कि मोरे कहे जानकी दीजे। तीसरे यह भी द्योतित किया कि ये सब बातें मैं अपनी ओर से कहता हूँ। प्रभु ने तुमसे कहने के लिए नहीं भेजा है।

दो. प्रनतपाल रघुनायक, करुनासिंधु खरारि।
गए सरन प्रभु राखिहैं, तव अपराध बिसरारि॥२२॥

अर्थ : खरारि रघुनायक प्रणतपाल और करुणासिन्धु हैं। शरण जाने पर तुम्हारे सब अपराधों को भूलकर तुम्हारी रक्षा करेंगे।

व्याख्या : यदि अपराध की गम्भीरता से तुम निराश होते हो तो मत हो। यद्यपि खरारि हैं। दुष्टों के नाश के लिए ही उनका प्रादुर्भाव है। तथापि रघुनायक

करुणासिन्धु हैं। एक बार के प्रणाम से अपना लेते हैं। रघुनायक से कुल का उत्कर्ष कहा। प्रणतपाल से व्रत कहा। करुणासिन्धु कहकर स्वभाव कहा। प्रभु कहकर उनका सामर्थ्य द्योतित किया। राखिहैं कहने से भाव यह कि तुम्हारी प्रभुता बनी रहेगी। अपराध तो क्षमा हो ही जायगा। वे तुम्हारे अपराध का स्मरण भी न करेंगे। यथा : बानि बिसमरन सील हैं मानद अमान की। निज गुन अरिकृत अनहितौ दास दोष सुरति चित रहत न दिये दान की।

राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम करहू॥
रिषि पुलस्ति जस बिमल मयंका। तेहि ससि महँ जनि होउ कलंका॥१॥

अर्थ : रामजी के चरणों को हृदय में धारण करो और लङ्का का तुम अचल राज करो। पुलस्त्य ऋषि का यश निर्मल चन्द्रमा के समान है। उस चन्द्रमा में तुम कलङ्क न बनो।

व्याख्या : अभी तक लङ्का में तुम्हारा राज्य अचल नहीं हुआ। छीन छोर की वस्तु छीन छोर में हो चली जाती है। मैं तुम्हें राज्य को अचल करने का मन्त्र बतलाता हूँ। श्रीरामजी के चरण कमल को हृदय में धारण : अचल करो। उन चरणों से लक्ष्मी पृथक् नहीं हो सकती। यथा : यद्यपि परम चपल श्री सन्तत थिर न रहति कबहूँ। हरि पद पकज पाइ अचल भइ करम बचन मनहूँ। अभी माँ से यही मन्त्र मिला है : रघुपति चरन हृदय धरि तात मधुर फल खाहु। सो ब्रह्मास्त्र ने काम न किया। नागपाश व्यर्थ हुआ। अतः वही उपदेश देते हैं। रावण के मन में बात बैठती न देखकर कहते हैं कि इस चन्द्र में कलङ्क है। ऋषि पुलस्त्य का यश ऐसा चन्द्र है कि उसमें कलङ्क नहीं है। कपूत के उत्पन्न होने से कुल में कलङ्क लगता है। जो अपयश भाजन प्रियजन द्रोही हो वही कुल कलङ्क है। यथा : कुल कलंक जेहि जनम्यौ मोही। अपजस भाजन प्रिय जन द्रोही। स्त्री चोरी का अपयश भी होगा और तुम्हारे अपराध से सब प्रिय जन मारे जायँगे।

राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा॥
बसन हीन नहि सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी॥२॥

अर्थ : राम नाम के बिना वाणी की शोभा नहीं। मद मोह छोड़कर विचार कर देखो। हे देवताओं के शत्रु सब गहनों से आभूषित श्रेष्ठ स्त्री की शोभा बिना कपड़े के नहीं होती।

व्याख्या : आहार, निद्रा, भय और मैथुन का भाव पशु भी आपस में प्रकट कर ही लेते है। वाणी की विशेषता तो भगवन्नाम ग्रहण मे ही है। मद मोह के परित्याग मे पुरुषार्थ अपेक्षित है। भोग तो प्रारब्धाधीन है। तू पण्डित है। मद मोह का परित्याग कर। मोहनिशा है। उसमें मद : अभिमान ही अन्धकार है। यथा : त्यागहु तम अभिमान। इसी अन्धकार के कारण तुम्हे बीस आँख रहते दिखायी नहीं पड़ता।

वरनारी अर्थात् सौभाग्यवती चन्द्रवदनी गहनो से भली भाँति सजी हुई होने पर भी बिना सारी के अदर्शनीया होती है। इसी भाँति तुम्हारी वाणी मे सभी उत्कर्ष विधायक गुण है। पर राम नाम की सारी नही है। अत: अमङ्गल रूपा है। रावण राम नाम नही लेता। आवश्यकता पडने पर अन्य कल्पित शब्दो से काम चलाता है। यथा वह तपसिन कर बात बहोरी। हौ मारिहौं भूप दोउ भाई। जिनके बल कर गर्व ताहि इत्यादि। अत: पण्डिताई भी तुम्हारी व्यर्थ गयी। रह गयी सम्पत्ति प्रभुताई। उसकी भी गति सुनो।

राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिन पाई ॥
सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाही। बरषि गएँ पुनि तबहि सुखाही ॥३॥

अर्थ : जो राम विमुख हैं उनकी सम्पत्ति और प्रभुताई ठहरती नही। उसका पाना न पाना बराबर हो जाता है। जिन नदियो के उद्गम स्थान मे जल नही है वर्षा हो जाने पर वे सूख जाती हैं।

व्याख्या : बरसाती नदियो मे भी कभी मेघ की वर्षा से बाढ आ जाती है। नही तो साल भर वे सूखी ही पडी रहती है। इसी भाँति सम्पत्ति और प्रभुताई कभी राम विमुख को भी हो जाती है पर ठहरती नही। उससे कोई वास्तविक लाभ नही होता। अर्थ का फल धर्म है काम नही है। वह तो अवान्तर प्रयोजन है। राम विमुख की सम्पत्ति और प्रभुताई का पर्यवसान काम मे होता है। महा प्रयोजन सिद्ध नही होता। इसीलिए : पाई बिन पाई कहा। पाई बिना दिये केवल अङ्क लिखने से द्रव्य का बोध नही होता। पाई देने से सौ का अर्थ सौ रुपया है १००)। उसी पाई बिना १०० का कोई अर्थ नही होता। राम के सम्मुख होना पाई है। उसी से सम्पत्ति का बोध होता है। जाय रही का उदाहरण देते हैं।

राम विमुख मे भी सुकृत मेघ की वर्षा से कभी सम्पत्ति प्रभुताई की बाढ आजाती है। यथा : छुद्र नदी भरि चली तोराई। जस थोरेहु धन खल इतराई। पर वह जल ठहरता नही। आता है और निकल जाता है। इसी भाँति तुम्हारी सम्पत्ति और प्रभुताई भी ठहरनेवाली नही है। भगवच्चारणारविन्द सजल मूल है। वहाँ से सम्बद्ध सम्पत्तिरूपी नदी कभी नही सूखती।

सुनु दसकंठ कहौ पन रोपी। बिमुख राम त्राता नहि कोपी ॥
संकर सहस बिस्नु अज तोही। सकहि न राखि रामकर द्रोही ॥४॥

अर्थ : हे दशशीष! सुनो। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि रामविमुख होने से कोई रक्षक नही होता। हजार शङ्कर विष्णु और ब्रह्मा राम के द्रोही की रक्षा नही कर सकते।

व्याख्या : यदि कहो कि मेरे लिए यह नियम लागू नही है। मेरी सहायता शङ्करजी और ब्रह्मदेव करेंगे। यथा : साहिब महेस सदा सकित रमेस मोहि निज तप साहस बिरचि लियो मोल है। इसपर कहते हैं कि मैं प्रणपूर्वक कहता हूँ। कोई इसे अन्यथा नही कर सकता। जबतक रामजी विमुख नही हैं तभी तक वे भी

रक्षा कर सकते हैं। रामजी के विमुख होने पर कोई रक्षा नही कर सकता। यथा : धरि निज रूप गयउ पितु पाही। रामविमुख राखा तेहि नाही : जवाब दे देते हैं कि मेरी की हुई रक्षा नही हो सकती।

यदि कहो कि मैने शिर चढ़ाया है रक्षा क्यों न करेंगे ? इसपर कहते हैं कि उनके सामर्थ्य की बात नही है। उनकी प्रभुता स्वतः सिद्ध नही है रामजी की दी हुई है। यथा : बिधिहि बिधिता, हरिहि हरिता, हरहि हरता जिन दई[1]। सो जानकी पति मधुर मूरति मोदमय मंगल मई : रामविमुख की रक्षा वे कर नही सकते। यथा : काहू बैठ न कहा न ओही। राखि को सकै रामकर द्रोही।

दो. मोह मूल बहु सूल प्रद, त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक, कृपासिंधु भगवान ॥२३॥

अर्थ : मोह ही जिसका मूल है और बहुत से शूलों का देनेवाला अभिमान अन्धकार रूप है। इसका त्याग करो और रघुनायक कृपासिन्धु भगवान् राम को भजो।

व्याख्या : मोह मानस व्याधि का मूल है और अति अभिमान संसार का मूल है। यथा : मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला। तथा संसृत मूल सूल प्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना : अथवा मोह रात्रि मे अभिमान रूपी अन्धकार छाया रहता है। इस अभिमान को छोड़ो। पुरुषार्थ करके रामनाम रूपी चन्द्र को स्थान दो तो यह मोह रात्रि पलटकर राका रजनी रूपी भक्ति हो जावे। यथा : राका रजनी भगति तव रामनाम सोइ सोम : तव तुम्हें सूझ पड़ेगा। नही तो तुम्हें सूझता नही है। मानस व्याधि के मूल मोह और शूलप्रद अभिमान को भजते हो कृपासिन्धु भगवान् को नही भजते।

जदपि कही कपि अति हित बानी। भगति बिबेक बिरति नयसानी ॥
बोला बिहँसि महा अभिमानी। मिला हमहि कपि गुरु बड़ ग्यानी ॥१॥

अर्थ : यद्यपि हनुमान्‌जी ने अत्यन्त हित की वाणी कही। जिसमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और नीति सनी हुई थी। वह महा अभिमानी खूब हँसा और बोला कि मुझे तो यह वन्दर बड़ा ज्ञानी गुरु मिला।

व्याख्या : इस लोक या परलोक का उपदेश हित है और दोनों लोक के कल्याण का उपदेश अति हित है। संक्षेप से हनुमान्‌जी के उपदेश में ब्रह्म निरूपण, अवतार निरूपण, अवतार का कारण, रामकथा, दोष त्याग, गुण ग्रहण, रक्षा का उपाय शरणागति आदि का निरूपण था। अतः उसे अतिहित कहा तथा उपासना काण्ड, ज्ञानकाण्ड और कर्मकाण्ड की संमत बात कही। धर्मार्थ और काम का सामञ्जस्य जिसमें हो ऐसा मार्ग बतलाया। भजन से उपक्रम यथा : भ्रम तजि

---

१. कुछ प्रतियो मे यह पाठ भेद है। हरिहि हरिता बिधिहि बिधिता सिवहि सिवता जो दई।

भजहु और भजन से ही उपसंहार किया। यथा : भजहु राम रघुनायकहिं : अतः भक्तिरससानी वाणी हुई तथा मान तजि से उपक्रम और त्यागहु तम अभिमान से उपसंहार करके विवेकसानी वाणी कही। देखहु तुम निज कुलहिं बिचारी से उपक्रम और तेहि कुल महि जनि होहि कलंका से उपसंहार करते हुए विरत सानी वाणी कही तथा तासो बैर कबहुँ नहि कीजे से उपक्रम करके तथा बरखि गएँ पुनि तबहि सुखाही से उपसंहार करके नयसानी वाणी कही।

जो उचित शिक्षा न सुने वह महा अभिमानी है। यथा : अस कहि चला महा अभिमानी : इतनी देर तक हँसी रोके रहा। उपदेश समाप्त होते ही हँसा। मन मे यह भाव है कि मैं पण्डित वेदो का भाष्यकर्ता मुझे यह बन्दर गुरु बनकर उपदेश करने चला है।

मृत्यु[१] निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही ॥
उलटा होइहि कह हनुमाना। अति भ्रम तोहि प्रगट मै जाना ॥२॥

अर्थ : रे खल ! तेरे निकट मृत्यु आगयी है। तू अधम मुझे सिखाने चला है। हनुमान्‌जी ने कहा कि उलटा होगा। क्योकि मति भ्रम तुझे है मैंने स्पष्ट जान लिया।

व्याख्या : रावण बोला कि तू खल है। साधु होता तो मुझसे सीखने आता। जिसकी मृत्यु निकट आती है उसी को मुझे सिखाने का साहस होता है। भला मुझे कोई क्या सिखावेगा ? तिस पर यह अधम है। यथा : अस मैं अधम सखा सुनु और मैं उत्तम हूँ। यथा : उत्तम कुल पुलस्त्य कर नाती . अधम का उत्तम को सिखावन देने का हौसला ही मृत्युसूचक है।

हनुमान्‌जी ने कहा कि उलटा होगा। भाव यह कि मृत्यु तेरे निकट है और बतलाता है कि मेरे निकट है यह उलटी बात है। क्योकि मतिभ्रम तो तुझे हुआ है। मुझे तो मतिभ्रम है नही। यह बात मै स्पष्ट देख रहा हूँ और जो कालवश हो जाता है उसे मतिभ्रम होता है। यथा : निकट काल जेहि आवत साईं। तेहि भ्रम होइ तुम्हारेहि नाईं। मै हितोपदेश देता हूँ तुम्हे अविनय प्रतीत होता है अथवा तेरी खलता तो मेरी आँखो देखी हुई बात है। यथा : बहु बिधि खल सीतहिं समुझावा ' सो तू अपने को साधु मानता है और मै हाथ जोड़कर हित कर रहा हूँ। सो मुझे खल ठहराता है। यह स्पष्ट मतिभ्रम है।

सुनि कपि वचन बहुत खिसिआना। बेगि न हरहु मूढकर प्राना ॥
सुनत निसाचर मारन धाए। सचिवन्ह सहित बिभीषनु आए ॥३॥

अर्थ : हनुमान्‌जी का वचन सुनकर बड़ा झल्लाया : और आज्ञा दिया कि

---

१. यहाँ चित्रालङ्कार है।

इस मूढ का प्राण क्यों शीघ्र ही नही हरण कर लेते। सुनते ही राक्षस मारने दौड़े। तब तक मन्त्रियो के साथ विभीषणजी आगये।

व्याख्या : बात सच्ची थी। कोई उत्तर तो था ही नही अतः झल्लाया। रावण जब झल्लाते है तब प्राण लेने पर तैयार हो जाते हैं। यथा : परुप वचन सुनि काढि असि बोला अति खिसिआन। तब सक्रोध निसिचर खिसियाना। काढेसि परम कराल कृपाना : इसलिए प्राण हरण की आज्ञा देता है। हनुमान्जी को मूढ कहता है कि यह सच्ची बात नही समझता। पशु को शिक्षा देने का अधिकार क्या है?

हनुमान्जी रावण के सन्निकट खडे हैं और जिनका वध दण्ड देने का काम है वे दूर खड़े हैं। दरबार भी बहुत बड़ा है। अतः निशाचरो का दौडना लिखते है। विभीषण का बहुत बड़ा दर्जा है। इनके सचिव अलग है इसी से रावण ने कहा कि करत राज लका सठ त्यागी। इनके सचिवो के लिए भी दरबार मे स्थान है। विभीषण के आते ही कार्य बन्द हो गया। क्योंकि इनकी सम्मति से राय पलट सकती है अथवा विभीषण के इगित से सब ठहर गये।

नाइ सीस कर बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिय दूता ॥
आन दंड कछु करिय गोसाईं। सबही कहा मंत्र भल भाई ॥४॥
सुनत बिहँसि बोला दसकंधर। अंग भंग करि पठइअ बन्दर ॥५॥

अर्थ : सिर नवाकर और बहुत विनय करके कहा कि दूत को मारना नही चाहिए। यह बात नीति के विरुद्ध है। हे गोसाईं! कोई दूसरा दण्ड दिया जाय। सबने कहा कि यह मन्त्र ठीक है। यह सुनकर रावण हँसकर बोला। अच्छा तो अङ्ग भङ्ग करके बन्दर को यहाँ से भेज दो।

व्याख्या : प्रणाम के पश्चात् बड़ो विनती की क्योकि राजाज्ञा को रोक दिया और बिना पूछे सम्मति दे रहे हैं। विनय यथा . आप सम्राट् है। महापण्डित हैं। नीतिशास्त्र के आश्रय हैं। आप नीतिपालन नही करेंगे तो कौन करेगा? दूत अवध्य है। शस्त्रो के निकल पड़ने पर बन्धुओ के वध पर भी तथा कडी बात बोलता हुआ भी दूत अवध्य है। यथा : उद्यतेष्वपि शस्त्रेषु बन्धुवर्गवधेष्वपि। पौरुषाण्यपि जल्पन्तो वध्या दूता न भूभुजा। प. त.।

यदि वह वध्य ही हो तो कोई दूसरा दण्ड दीजिये। सबने कहा कि बात तो ठीक है। दूत अवध्य हैं। सबही अर्थात् उन सब लोगो ने जिनको मन्त्र देने का अधिकार है एक स्वर से यही बात कही। सभी चाहते हैं कि वध दण्ड न हो। यह अवध्य है बडी भारी विपत्ति आकर खड़ी हो जावेगी। दूसरे प्रकार के दण्ड के लिए बाहर जाना होगा। सभा मे तो उपद्रव न होगा।

रावण सबके ऐकमत्य पर हँसे अथवा इस बात पर हँसे कि देखो सबको कैसा बेवकूफ बनाता हूँ। अथवा मेरा पुत्रवध हुआ। इनकी क्या हानि हुई? अथवा मेरे

घर के नीतिमूर्ति आगये। अब इनकी नीति चली। वध के बदले मे बन्धन नही कहता। क्योकि यह बँधने पर भी अपराध करता है। इसका अङ्ग भङ्ग कर दो। पर इस भाँति कि यह अङ्ग भङ्ग होने पर लौटकर मालिक के पास जाने लायक रहे।

दो. कपि कै ममता पूँछ पर, सबहि कह्यौ समुझाइ।
तेल बोरि पट बाधि पुनि, पावक देहु लगाइ ॥२४॥

अर्थ : सबको समझाकर कहता हूँ। देखो। बन्दर की ममता पूँछ पर होती है। सो तेल मे कपडा डुबोकर उसे इसकी पूँछ मे बांधकर फिर आग लगा दो।

व्याख्या : बन्दर जाति मूर्ख होती है। बेकार अङ्ग जो पूँछ होती है उसी पर इनकी बडी ममता होती है। सो देखो कहीं पूँछ काट न लेना। इसकी पूँछ जलाओ। जलाने की विधि बतलाता है ' इस भाँति वध का घोरतम उपाय अङ्ग भङ्ग के *व्याज से बतला रहा है। रावण अपने मन्त्र से राज्य करता है।* किसी की सुनता नही। राजा को मन्त्री चाहिए इसलिए मन्त्री है। मन्त्री भी समझे बैठे हैं कि हम लोग तो इनके कथन की पुष्टि करने के लिए इनकी सेवा मे हैं। अत: अस्तुति करहि सुनाइ सुनाई। पर यहाँ सब मन्त्रियो की सम्मति विरुद्ध हो *गयी* फिर भी वह अपनी ही बात रखता है। कहने के लिए अङ्ग भङ्ग की आज्ञा है। पर वस्तुत. वह अति यातनामय वध दण्ड दे रहा है।

पूँछहीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहि लेइ आइहि ॥
जिन कै कीन्हेसि बहुत बडाई। देखउँ मै तिन्हकै प्रभुताई ॥१॥

अर्थ . बिना पूँछ का होकर जब बन्दर जायगा तब यह शठ अपने मालिक को ले आवेगा। जिनकी इसने बहुत बडाई की है उनका पुरुषार्थ मैं देखूँगा।

व्याख्या : रावण कहता है कि ऐसी पूँछ जलाओ कि कुछ भी शेष न रहे। जिस वस्तु पर ममता होती है उसके वियोग से प्राणी दु खी होता है। इसे जब पूँछ हीन होने का दु.ख होगा तो यह स्वभाव से शठ है जाकर निश्चय अपने मालिक को लेकर अपनी पूँछ का बदला चुकाने के लिए आवेगा। इसका पुरुषार्थ तो देख लिया गया। अब इसके मालिक का पुरुषार्थ देखना है। उसे यह जाके डर अति काल डराई। पाइ जासु बल बिरचित माया आदि कहकर बडी प्रशसा करता है। अब उसका पुरुषार्थ देखना है। तुम लोग जानते हो हो कि मुझे सदा प्रतिभट से युद्ध करने की इच्छा रही पर कही कोई मिला नही। यथा : रन मद मत्त फिरइ जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा। यह एक प्रतिभट बतला रहा है। पर मै उसे बनो मे कहाँ खोजता फिरूँगा। *भले यह उसे बुला लावेगा यह सब बात रावण ने* प्रवञ्चनामय कही है। वस्तुत. उसके हृदय का भाव यह है कि पूँछ के जलाने मे ही यह पीडा सहन न कर सकने के कारण आप ही *छटपटाकर मर जायगा नही* तो वह पूँछ काट लेने की आज्ञा देता। जलाने मे कौन सी फल सिद्धि विशेष थी ? इस भाँति से बातें बनाकर वह अपनी प्रथम आज्ञा को ही और भी क्रूरतापूर्वक

स्थिर रखना चाहता है। सबको दिखाने के लिए और विशेषतः विभीषण को बेवकूफ बनाने के लिए दण्ड का रूप परिवर्तन करके केवल अङ्ग भङ्ग की आज्ञा दे रहा है।

वचन सुनत कपि मन मुसकाना। भइ सहाय सारद मै जाना ॥
जातुधान सुनि रावन वचना। लागे रचै मूढ सोइ रचना ॥२॥

अर्थ . यह बात सुनकर हनुमान्‌जी मन ही मन मुसकुराये और कहने लगे कि मै जान गया कि भगवती सरस्वती सहाय हुई हैं। मूढ राक्षस लोग रावण का वचन सुनकर वैसी ही रचना रचने लगे।

व्याख्या हनुमान्‌जी यदि प्रत्यक्ष मुसकुराते तो राक्षस सावधान हो जाते कि कुछ दाल मे काला है। नही तो जिसे इतना कठोर दण्ड दिया जाय उसके चेहरे पर मुसकुराहट कैसी? हनुमान्‌जी की पहिले से ही इच्छा थी कि जिस नगर मे जगदम्बा विरह ज्वाला मे जल रही है। जहाँ उन्हे माँगने पर अग्नि नही मिलती है उस नगर को ज्वालमाल के सुपुर्द कर देना ही प्राप्त है। पर जलानेवाला आततायी कहलाता है। इसलिए जलाते नही थे। महालक्ष्मी के दो रूप और है: १ काली और २ सरस्वती। सो महाकाली रूप से तो लङ्का मे निवास ही कर रही है। यथा . काल राति निसिचर कुल केरी। पर यहाँ सरस्वती रूप से मेरी सहायता करने पहुँच गयी। इन्हे पूँछ जलाने की सूझी। अब मुझे अग्निद भी नही होना पडा पूँछ मे आग लगने पर जिस भाँति बन्दर भागते है उस भाँति मुझे लङ्का मे इधर उधर दौडना और पूँछ पटकना ही मेरे लिए शेष रहा। भागते समय स्वय आग लग जावेगी। मैं जाना का भाव यह कि मै तो जगदम्बा की कृपा से समझ गया। पर ये मूढ नही समझ रहे हैं।

राक्षसो ने रावण के वचन को सुना समझा कुछ नही। न यही बात समझो कि रावण वस्तुत वध दण्ड दे रहा है और न यही समझ पाया कि बन्दर की पूँछ मे आग लगाकर उसे छोड देने का अर्थ ही यह है कि वह अत्यन्त वेदना से नगर भर मे भागता और पूँछ पटकता फिरे और नगर मे आग लग जाय। इसीलिए कवि कहते हैं कि वे मूढ वही रचना रचने लगे। तेल मे पुराने कपडे भिगोने लगे और भिगा भिगाकर पूँछ मे लपेटने लगे।

रहा न नगर वसन घृत तेला। बाढी पूंछ कीन्ह कपि खेला ॥
कौतुक कहँ आये पुरबासी। मारहि चरन करहि बहु हाँसी ॥३॥

अर्थ . नगर मे घी तेल और लत्ते : पुराने कपडे . न रह गये। बन्दर ने खेल किया। पूँछ बढने लगी। नागरिक तमाशा देखने के लिए आ पहुँचे। लातो स मारने और खूब हँसी करने लगे।

व्याख्या . यहाँ वसन का अर्थ जलाने योग्य पुराने कपडे हैं। प्रसङ्ग बल से अर्थ करना पडा कि पहिले तेल मे भिगो भिगोकर कपड़ा पूँछ मे बाँधने लगे। पर जब हनुमान्‌जी ने खेल किया पूँछ बढने लगी और नगर भर का तल समाप्त

हो गया तब उसके स्थान मे घी चुपड़ने लगे। तमाम नगर मे घर घर से मांगकर पुराने कपडे जुटाये गये वे सब भी समाप्त हो गये। पर इन मूढो ने पूँछ के बढने पर ध्यान ही नही दिया। नगर मे शोर मच गया कि बन्दर की पूँछ जलायी जा रही है। अत. आनन्द मे विभोर होकर नगरवासी इस क्रूरदृश्य के अवलोकन के लिए वहाँ चले आये। आकर हनुमान्‌जी को लात से मारते है और आनन्द मानते हैं। इन पापी कृपारहित हिंसक विश्व के परतापियो को वेदना के दृश्य के देखने मे बडे आनन्दानुभव की आशा थी। बँधे हुए प्राणी के ऊपर लात चलाने मे उन्हे आनन्द विशेष का अनुभव हो रहा है।

बाजहि ढोल देहिं सब तारी। नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी॥

६२. लङ्कादाह प्रसङ्ग

पावक जरत देखि हनुमंता। भयउ परम लघु रूप तुरंता॥४॥
निबुक चढेउ कपि कनक अटारी। भईं सभीत निसाचर नारी॥५॥

अर्थ . ढोल बजते है, सबलोग तालियाँ पीटते हैं। हनुमान्‌जी को नगर मे फिराकर फिर पूँछ मे आग लगा दी। आग को जलती हुई देखकर हनुमान्‌जी तुरन्त बहुत छोटे रूप मे हो गये। बन्धन से निकलकर वे सोने की अटारी पर चढ गये। उन्हे देखकर राक्षस की स्त्रियाँ भयभीत हो गयी।

व्याख्या : अब राक्षसो के आनन्द का वर्णन हो रहा है कि लात मारते ही थे अब ढोल भी बजने लगा। मारे आनन्द के तालियाँ पीट रहे हैं। इस दुर्दशा से नगर मे घुमाये गये। भाव यह कि सभी नगरवासी भागवतापराध मे सम्मिलित हुए। यथा :

बसन बटोरि बोरि बोरि तेल तमीचर खोरि खोरि धाइ आइ बाँधत लगूर हैं।
तै सोइ कपि कौतुकी डेरात ढीलो गात कै कै लात को अघात सहै जी मे कहै कूर हैं॥
बाल किलकारी कै कै तारी दै दै गारी देत पाछें लागे बाजत निसान ढोल तूर हैं।
बालधी बढन लागी ठौर ठौर दीन्ही आगी बिंधकी दवारि कैधो कोटिसत सूर हैं॥
क. ३।

इधर हनुमान्‌जी दिन को नगर देख रहे हैं कि किस ओर से धावा करने मे सुभीता होगा। प्रजारी का भाव यह कि पूँछ मे भली भाँति आग लगायी गयी जिसमे बुझे न। यथा : लाइ लाइ आग भागे बालजाल जहाँ तहाँ। हनुमान्‌जी ने देखा कि आग भलीभाँति लग गयी। आग पूँछ नही जला रही है, कपडे मात्र जल रहे है। इसलिए हनुमानजी को दाह का अनुभव नही हो रहा है। देखकर जाना कि आग ने भलीभाँति पकड़ लिया। तब आप तुरन्त लघुरूप होकर बन्धन से निकल गये। पर पूँछ ज्यो की त्यो रही। वह लघु नही हुई। उसके लघु होने से जलते हुए कपड़े ढीले होकर गिर पडते। यथा : लघु ह्वै निबुकि गिरि मेरु ते बिसाल

भो। कौतुकी कपीस कूदि कनक कँगूरा चढ्यौ रावन भवन चढ़ि ठाढ़ो तेहिकाल भो। तुलसी विराज्यौ व्योम वालधी पसारी भारी देखे हहरात भटकाल सो कराल भो। तेज को निधानु मानो कोटिक कृसानु भानु, नख विकराल मुख तैं सोइ रिसिलाल भो।

रावण का घर सबसे ऊँचा था। उसपर चढ़े हुए मेरु के समान हनुमान्‌जी ऊँचे और उनसे भी ऊँची उनकी जलती हुई पूँछ थी। यह दृश्य देखकर निशाचर की स्त्रियाँ डर गयी। यथा :

वालधी विसाल विकराल ज्वाल माल मानौ लंक लीलवे को काल रसना पसारी है।
कैधो व्योम बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु वीररस वीर तरवारि सी उघारी है॥
तुलसी सुरेस चाप कैधौं दामिनी कलाप कैधों चली मेरु ते कृसानु सरिभारी है।
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहै कानन उजारयौ अब नगर प्रजारी है॥

दो. हरि[1] प्रेरित तेहि अवसर, चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा, कपि वढ़ि लाग अकास॥२५॥

अर्थ : उस समय हरि की प्रेरणा से उनचासो पवन चले। हनुमान्‌जी अट्टहास करके गर्जे और आकाश मे जा लगे।

व्याख्या : उनचासों : ४९ वायु प्रलय काल मे चलते है। सो हरि की प्रेरणा से उस समय लङ्का मे चले। इन्ही वायु मे से किसी की ग्रहगणो के घुमाने की शक्ति और किसी की मोक्ष तक पहुँचाने की शक्ति है। भाव यह कि गति मात्र ही वायु है। एक एक अणु की गति मे भेद पड़ा। इतना बिना हुए लङ्का का दाह न होता। तब हनुमान्‌जी ने समझ लिया कि हरि की भी इच्छा है। अतः अमगल सूचक अट्टहास करते हुए गर्जे और शरीर ऐसा बढ़ाया कि सिर आकाश मे सटा हुआ मालूम होने लगा।

देह विसाल परम हरुआई। मंदिर ते मंदिर चढ़ धाई॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला॥१॥

अर्थ : देह परम विशाल है। परन्तु परम हलकी है। एक घर से दूसरे घर पर चढते हुए दौड़ने लगे। नगर जलने लगा। लोग बेहाल हो गये। आग की करोड़ो लपटें झपट रही हैं।

व्याख्या : लङ्का मे हनुमान्‌जी को आठो सिद्धियो से काम लेना पड़ा। ऐसे विशाल शरीर मे बडी गुरुता होनी चाहिए थी। पर गुरुता एकदम नही थी। सामान्य बन्दरो की भाँति एक मकान से दूसरे पर कूदते चले जाते हैं। नगर भर मे आग लग गयी। करोड़ो लपट की झपट लगने लगी। लोग विकल हो गये।

---

१. समाधि : अलङ्कार है।

लोगो की विकलता यथा : जरत निकेत धाओ धाओ लागी आगि रे। कहाँ तातु मातु भ्रात भगिनी भामिनी भाभी ढोटे छोटे छोहरा अभागे भोडें भागि रे। क रा। पानी पानी पानी सब रानी अकुलानी कहे जात हैं परानी गति जानी गज चालिहे। बसन बिसारे तन भूषन सभारैं नहि आनन सुखाने कहैं क्यौंहूँ कोऊ पालिहैं।

तात मातु हा सुनिअ पुकारा। एहि अवसर को हमहि उबारा॥
हम जो कहा यह कपि नहिं होई। बानर रूप धरे सुर कोई॥२॥

अर्थ हाय रे बाप हाय रे माँ! इस अवसर पर हमे कौन बचावेगा? चारो ओर यह पुकार सुनायी पड रही है। हमने तो पहिले ही कहा था कि यह बन्दर नही है। वानर का रूप धारण किये हुए कोई देवता है।

व्याख्या पुकार का वर्णन करते हुए कवित्त रामायण म कहते हैं
प्रिया तू पराहि नाथ नाथ तू पराहि बाप बाप तू पराहि पूत पूत तू पराहि रे। एक पर गाढे एक डाढत ही काढे एक देखत हैं ठाढे कहे पावक भयावनो। क रा। वीथिका बजारन प्रति अटनि अगारन प्रति पँवरि पगारन प्रति बानर विलोकिये। सब पुकार करते है कि इस अवसर पर हम बचानेवाला कौन है?

युद्ध के समय मे ही लङ्कावालो म से कुछ ने निश्चय किया कि यह वानर नही है। वानर मे इतना पराक्रम कहाँ? इस रूप म कोई देव है। नही तो नर कपि भालु अहार हमारा। सो बात ठीक निकली। यह कोई देवता है। सभी सिद्धियाँ इसमे है।

साधु अवग्या कर फल ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा॥
जारा नगरु निमिष एक माँही। एक बिभीषण कर गृह नाँही॥३॥

अर्थ साधु के अपमान का यह फल है कि नगर अनाथ के नगर की भाँति जल रहा है। हनुमान्जी ने पलक पडने म लङ्का जला दिया। एक विभीषण का घर नही जलाया।

व्याख्या साधु अवग्या तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कर हानी। नगर भर मे साधु की अवज्ञा की। पूँछ जलाने के लिए तेल घी और कपडा बडे उत्साह से दिया। आनन्द मनाया। यथा बाजहि ढोल देहि सब तारी। लात मारा यथा मारहि चरन करहि बहु हाँसी। इसका फल यह हुआ कि सद्य अखिल कल्याण की हानि हुई। रावण ऐसे नाथ के रहते अनाथ सा नगर जल रहा है। सब प्रयत्न निष्फल गये। यथा

गाज्यौ कपिगाज ज्यौ विराज्यौ ज्वाल जाल युत भाजे वीर धीर अकुलाइ उठ्यो रावनो।
धाओ धाओ धरौ सुनि धाए जातुधान धारि वारिधारा उलदै जलद ज्यौ न सावनो॥
लपट झपट झहराने हहराने वात भहराने भट परयो प्रबल परावनो।
ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले ले ठेलि नाथ ना चलैगो बलु अनल भयावनो॥

कोपि दसकध तव प्रलय पयोद बोले रावन रजाइ धाइ आये जूथ जोरि कै।
कह्यो लकपति लक बरत बुताओ बेगि बानर बहाइ मारो महाबारि बोरि कै॥
भले नाथ! नाइ माथ चले पाथप्रदनाथ बरषैं मुसलधार बार बार घोरि कै।
जीवन ते जागी आगी चपरि चौगुनी लागी तुलसी भभरि मेघ भागे मुख मोरिकै॥
इहाँ ज्वाल जरे जात उहाँ ग्लानि गरे गात सूखे सकुचात सब कहत पुकार हैं।
जुगपट भानु देखे प्रलय कृसानु देखे सेष मुख अगिन बिलोके बार बार हैं॥
तुलसी सुन्यों न कान सलिल सर्पी समान अति अचरज कियो केसरी कुमार हैं।

अत्यल्प काल मे देखते देखते लका जल गयी। किसी का किया कुछ न हुआ। यह हनुमान्‌जी का बडा अलौकिक पुरुषार्थ है। जिनका घर जलाना चाहा वे ही घर जले। विभीषण का घर जलाना नही चाहा। वह बच गया। अग्नि वश मे है।

ताकर दूत अनल जेहि सिरिजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा॥
उलटि पलटि लका सब जारी[1]। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी॥४॥

अर्थ : हे गिरिजे! जिन्होने अग्नि बनाया उन्हीका वह दूत था इसलिए नही जला। हनुमान्‌जी ने उलट पलटकर सारी लङ्का जला दी। फिर वे समुद्र मे कूद पडे।

व्याख्या : अपने सिरजनहार के दूत को अग्नि ने जलाना नही चाहा। यद्यपि पञ्चभूतो की जडकरणी है। ये विचारपूर्वक कार्य करते नही देखे जाते और इनके विचार पूर्वक कार्य न करने से ही सृष्टि चल रही है। परन्तु कही कही ये अपनी क्रिया नही करते हुए भी देखे गये हैं। और ऐसा होने के लिए कारण विशेष होना चाहिए। यहाँ रामजी का दूत होना कारण है। यथा गोपद सिन्धु अनल सितलाई। गरुड सुमेरु रेनु समताही। रामकृपा करि चितवा जाही।

हनुमान्‌जी एक बार जलाते हुए चले गये। फिर उधर से उलटे और जलाते हुए चले। किनारे पर पहुँचकर फिर पलटे इस प्रकार तीन आवृत्ति की। जिसमे कोई घर बच न जाय और नगर के सम्पूर्ण भागो मे एक साथ ही आग लगे। पहिली आवृत्ति का वर्णन कवित्त रामायण मे सुन्दरकाण्ड के चौथे कवित्त से १४ तक है। यथा : लाइ लाइ आगि भागे बाल जाल जहाँ तहाँ . से लेकर चित्रहू के कवि सो निसाचर न लागिहैं : तक है। दूसरी आवृत्ति का वर्णन १५वें कवित्त से लेकर २२वें कवित्त तक है। यथा लागि लागि आगि भागि भागि चले जहाँ तहाँ। से लेकर जारत प्रचारि फेरि फेरि सो निसक लक जहाँ बाँको बीर तो सो सूर सिर ताजहैं : तक। तीसरी आवृत्ति का वर्णन २३वें कवित्त से २५वें तक। यथा :

---

[1] कवि मेघचदासजी लङ्कादाह विषयक विचित्र कथा कहते हैं। लकिनी के रोकने पर हनुमत बली तेहि पावर मारी। तजि देह भई तबही वर नारी। चलन लगी जबही तब बोली। मृतक शरीरहिं पावक दीजो। अत उलटि पलटि लका सब जारी।

पान पकवान विधि नाना को सँधानो सीधो : से लेकर रतन : जतन जारि किया है मृगाक सो : तक। तत्पश्चात् समुद्र मे कूद पडे। शरीर बडा भारी था इसलिए सिन्धु मझारी कहा।

दो. पूंछ बुझाइ खोइ श्रम, धरि लघुरूप बहोरि।
जनक सुता के आगें, ठाढ भयउ कर जोरि ॥२६॥

अर्थ : पूँछ बुझाकर थकावट दूर करके और फिर छोटा सा रूप धारण करके श्री जानकीजी के सामने हाथ जोडकर खडे हो गये।

व्याख्या : पूँछ बुझाने से ही स्नान सूचित है। स्नान से श्रमापनोदन होता है। समुद्रजी का मनोरथ पूर्ण किया। उन्होने मैनाक से कहा था कि मैं तो श्रमापनोदन मे असमर्थ हूँ। तुम श्रमहारी हो। सो हनुमान्जी ने समुद्र को ही श्रमहारी बनाया। फिर हनुमान्जी ने छठी बार लघु रूप धारण किया। जिस रूप से लङ्कादहन किया था उस रूप से जानकीजी के सामने जाने मे अभिमान सूचित होता। अत जितने बडे रूप से पहिले सामने आये थे उसी रूप से फिर सामने खडे हुए। सीताजी ने सुना था कि बन्दर पकडा गया। उसकी पूँछ जलायी जा रही है सो बहुत दु खी थी। अत उनके सामने खडे हुए कि मै कुशल हूँ। ये राक्षस मेरा कुछ न कर सके। पहिले ही कहा था तिन्ह कर भय माता मोहि नाही। जनकसुता का सब आशीर्वाद कार्य मे परिणत हुआ।

मातु मोहि दीजे किछु चीन्हा। जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा॥
चूडामनि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवन सुत लयऊ॥१॥

अर्थ : हे माता ! मुझे अब कोई चिह्न दीजिये। जैसे रघुनायक ने दिया था। तब चूडामणि उतार कर दिया। हनुमान्जी ने हर्षित होकर ले लिया।

व्याख्या चिह्न का अर्थ इनाम न हो जाय इसलिए कहते है कि जैसे रघुनायक ने मुझे दिया था। आपके विश्वास के लिए चिह्न लेकर आये थे। अत सरकार के विश्वास के लिए चिह्न चाहिए। अथवा चिह्न पाकर जो हर्ष आपको हुआ सो देखा। डूबते के लिए आधार हो गया। सो सरकार के आधार के लिए चिह्न चाहिए। यह मुद्रिका मातु मैं आनी, अत मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा। सरकार को मालूम हो जाय कि मुद्रिका ठीक पते पर पहुँच गयी।

और सब आभूषण अशोक वृक्ष पर लटका दिया था। पर चूडामणि केश म बँधा हुआ सिर पर था। रक्षा के लिए सरकार ने अँगूठी भेजी। प्रणाम के लिए माता चूडामणि भेज रही हैं। अथवा कन्यादान म सरकार को सीताजी और चूडामणि दोनो मिली थी। अत अपनी सखीरूप चूडामणि को उस समय की याद दिलाने के लिए भेजा। हनुमान्जी ने हर्ष के सहित लिया। क्योंकि जैसा चिह्न चाहते थे वैसा ही मिला।

कहेहु तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरनकामा ॥
दीन दयाल बिरदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी ॥२॥

अर्थ : हे तात ! मेरा इस प्रकार से प्रणाम निवेदन करना और कहना कि यद्यपि सब प्रकार से प्रभु पूर्णकाम हैं तथापि अपने दीनदयाल विरद को सँभालकर मेरे भारी सङ्कट को दूर कीजिये।

व्याख्या : प्रणाम अभिनय करके वह परिपाटी भी बतला देती हैं जो कि महाराजों के आने पर अयोध्या में महारानियों के प्रणाम करने की थी। यह दूसरा चिह्न उसी प्रकार का है। जैसा हनुमान्‌जी ने करुणानिधान पद से ध्वनित किया था। विरह का सन्देश पाने पर भी पूर्णकाम कहती हैं। क्योंकि जानती हैं कि जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत विरह दुःख दुःखी सुजाना।

विरद गरीबनेवाज राम को। सो वह विरद गिरा चाहता है। उसे सँभालिए। मुझे प्राणान्त सङ्कट है। एक तो दुःसह विरह अब नहिं सहि जाई। दूसरे सुनै को श्रवन सूल सम बानी। तीसरे यहाँ माँगने से आग नहीं मिलती। चूड़ामणि उतारि तब दयऊ यह : भेंट है। कहेतु तात अस मोर प्रनामा : यह पाँव पड़ना है। और हरहु नाथ मम संकट भारी : यह निवेदन है।

तात सक्रसुत कथा सुनाएहु। बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु ॥
मास दिवस महँ नाथ न आवा। तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा ॥३॥

अर्थ : हे तात ! इन्द्र के पुत्र की कथा सुनाना और प्रभु को उनके बाण का प्रताप समझाना। महीने भर में नाथ न आये तो मुझे जीती न पायेंगे।

व्याख्या : हनुमान्‌जी ने कहा था। तव वियोग संभव नाना दुःख बिसरि गयी महिमा सुबान की। अतः कहती हैं कि शक्रसुत की कथा सुनाना। यह कथा लक्ष्मणजी को भी नहीं मालूम है। एकान्त की कथा है। सरकार भगवती के गोद में सोये थे। यथा : ममाङ्के भरताग्रजः। हनुमान्‌जी के मुख से रामायण पारायण सुनने से भगवती जान गईं कि इतनी कथा हनुमान् नहीं जानता। अतः उसे सुनाकर हनुमान्‌जी को रामचरित की जानकारी भी पूरी की और प्रभु के लिए यह तीसरा चिह्न है। साथ ही साथ बाण की महिमा की द्योतक यह कथा है। तात्पर्य यह है कि जिस भाँति तुमने मुझे समझाया है उसी भाँति उन्हें भी समझाना।

शर प्रताप जानत जगत कोउ न सामुहे होय।
कारण मोर अभाग जौ भूलि गये प्रभु सोय ॥
जगत रचत अरु संहरत अस समर्थ विधिरुद्र।
सके न राखि जयन्त कहँ यद्यपि कृपासमुद्र ॥
रावण को गिनती कहा जो विधि हर वर पाय।
प्रभु के कालानल सरिस शरहि सके समुहाय ॥

पान पकवान विधि नाना को सँधानो सीधो . से लेकर रतन . जतन जारि किया है मृगाक सो : तक। तत्पश्चात् समुद्र मे कूद पडे। शरीर बडा भारी था इसलिए सिन्धु मझारी कहा।

दो पूँछ बुझाइ खोइ श्रम, धरि लघुरूप बहोरि।
जनक सुता कें आगे, ठाढ भयउ कर जोरि ॥२६॥

अर्थ : पूँछ बुझाकर थकावट दूर करके और फिर छोटा सा रूप धारण करके श्री जानकीजी के सामने हाथ जोडकर खडे हो गये।

व्याख्या : पूँछ बुझाने से ही स्नान सूचित है। स्नान से श्रमापनोदन होता है। समुद्रजी का मनोरथ पूर्ण किया। उन्होने मैनाक से कहा था कि मैं तो श्रमापनोदन मे असमर्थ हूँ। तुम श्रमहारी हो। सो हनुमान्जी ने समुद्र को ही श्रमहारी बनाया। फिर हनुमान्जी ने छठी बार लघु रूप धारण किया। जिस रूप से लङ्कादहन किया था उस रूप से जानकीजी के सामने जाने मे अभिमान सूचित होता। अत जितने बडे रूप से पहिले सामने आये थे उसी रूप से फिर सामने खडे हुए। सीताजी ने सुना था कि बन्दर पकडा गया। उसकी पूँछ जलायी जा रही है सो बहुत दुःखी थी। अत उनके सामने खडे हुए कि मैं कुशल हूँ। ये राक्षस मेरा कुछ न कर सके। पहिले ही कहा था तिन्ह कर भय माता मोहि नाही। जनकसुता का सब आशीर्वाद कार्य मे परिणत हुआ।

मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा। जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा॥
चूडामनि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवन सुत लयऊ॥१॥

अर्थ . हे माता! मुझे अब कोई चिह्न दीजिये। जैसे रघुनायक ने दिया था। तब चूडामणि उतार कर दिया। हनुमान्जी ने हर्षित होकर ले लिया।

व्याख्या . चिह्न का अर्थ इनाम न हो जाय इसलिए कहते हैं कि जैसे रघुनायक ने मुझे दिया था। आपके विश्वास के लिए चिह्न लेकर आये थे। अत सरकार के विश्वास के लिए चिह्न चाहिए। अथवा चिह्न पाकर जो हर्ष आपको हुआ सो देखा। डूबते के लिए आधार हो गया। सो सरकार के आधार के लिए चिह्न चाहिए। यह मुद्रिका मातु मैं आनी। अत मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा। सरकार को मालूम हो जाय कि मुद्रिका ठीक पते पर पहुँच गयी।

और सब आभूषण अशोक वृक्ष पर लटका दिया था। पर चूडामणि केश मे बँधा हुआ सिर पर था। रक्षा के लिए सरकार ने अँगूठी भेजी। प्रणाम के लिए माता चूडामणि भेज रही है। अथवा कन्यादान मे सरकार को सीताजी और चूडामणि दोनो मिली थी। अत अपनी सखीरूप चूडामणि को उस समय की याद दिलाने के लिए भेजा। हनुमान्जी ने हर्ष के सहित लिया। क्योंकि जैसा चिह्न चाहते थे वैसा ही मिला।

कहेहु तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरनकामा॥
दीन दयाल बिरदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥२॥

अर्थ : हे तात ! मेरा इस प्रकार से प्रणाम निवेदन करना और कहना कि यद्यपि सब प्रकार से प्रभु पूर्णकाम हैं तथापि अपने दीनदयाल विरद को सँभालकर मेरे भारी सङ्कट को दूर कीजिये।

व्याख्या : प्रणाम अभिनय करके वह परिपाटी भी बतला देती हैं जो कि महाराजों के आने पर अयोध्या मे महारानियो के प्रणाम करने की थी। यह दूसरा चिह्न उसी प्रकार का है। जैसा हनुमान्‌जी ने करुणानिधान पद से ध्वनित किया था। विरह का सन्देश पाने पर भी पूर्णकाम कहती हैं। क्योकि जानती हैं कि जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत विरह दु.ख दु.खी सुजाना।

विरद गरीबनेवाज राम को। सो वह विरद गिरा चाहता है। उसे सँभालिए। मुझे प्राणान्त सङ्कट है। एक तो दु·सह विरह अब नहिं सहि जाई। दूसरे सुनै को श्रवन सूल सम बानी। तीसरे यहाँ माँगने से आग नही मिलती। चूडामणि उतारि तब दयऊ यह : भेंट है। कहेतु तात अस मोर प्रनामा : यह पाँव पड़ना है। और हरहु नाथ मम संकट भारी : यह निवेदन है।

तात सक्रसुत कथा सुनाएहु। बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु॥
मास दिवस महुँ नाथ न आवा। तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा॥३॥

अर्थ : हे तात ! इन्द्र के पुत्र की कथा सुनाना और प्रभु को उनके बाण का प्रताप समझाना। महीने भर मे नाथ न आये तो मुझे जीती न पायेंगे।

व्याख्या : हनुमान्‌जी ने कहा था। तव वियोग संभव नाना दुःख बिसरि गयी महिमा सुवान की। अतः कहती हैं कि शक्रसुत की कथा सुनाना। यह कथा लक्ष्मणजी को भी नही मालूम है। एकान्त की कथा है। सरकार भगवती के गोद मे सोये थे। यथा : ममाङ्के भरताग्रजः। हनुमान्‌जी के मुख से रामायण पारायण सुनने से भगवती जान गईं कि इतनी कथा हनुमान् नही जानता। अतः उसे सुनाकर हनुमान्‌जी को रामचरित की जानकारी भी पूरी की और प्रभु के लिए यह तीसरा चिह्न है। साथ ही साथ बाण की महिमा की द्योतक यह कथा है। तात्पर्य यह है कि जिस भाँति तुमने मुझे समझाया है उसी भाँति उन्हे भी समझाना।

शर प्रताप जानत जगत कोउ न सामुहे होय।
कारण मोर अभाग जो भूलि गये प्रभु सोय॥
जगत रचत अरु संहरत अस समर्थ विधिरुद्र।
सके न राखि जयन्त कहँ यद्यपि कृपासमुद्र॥
रावण की गिनती कहा जो विधि हर धर पाय।
प्रभु के कालानल सरिस दारहि सकै समुहाय॥

मम हित कीन्ही काक पर प्रभु ब्रह्मास्त्र प्रयोग।
हरन हार को क्यों नही दससिर दलिबे जोग॥

शीघ्रता के लिए निवेदन करती है आज्ञा नही देती। एक बार आज्ञा दिया सत्य सध प्रभु बध करि एही। आनहु चर्म कहति वैदेही। सो इतनी विरह-यातना भोगनी पडी। अत न आने पर जो होगा उसे कहती हैं। मै प्राण दे दूँगी। इस अधम के हाथ से मृत्यु स्वीकार नही।

कहु कपि केहि बिधि राखउँ प्राना। तुमहू तात कहत अब जाना॥
तोहि देखि सीतलि भइ छाती। पुनि मो कहुँ सोइ दिनु सोइ राती॥४॥

अर्थ : हे कपि! कहो मैं किस प्रकार प्राण रक्खूँ। हे तात! तुम भी जाने को कह रहे हो। तुमको देखकर छाती ठण्डी हुई। फिर मुझे वही दिन और वही रात है।

व्याख्या : अब हनुमान्‌जी को विदा करती है। अत कहती है कि प्राण रखने की विधि बतलाते जाओ। तुम देख चुके हो कोई विधि नही है। पति के विरह मे पुत्र को देखकर सन्तोप होता है। यथा : बूडत विरह जलधि हनुमाना। भयउ तात मो कहँ जलजाना। तुम मेरे लिए जहाज हो गये थे। सो जहाज भी हटा चाहता है। विरह समुद्र मे डूबता हुआ प्राणी कैसे जीये।

हरिजन जानि प्रीति अति बाढी। सजल नयन पुलकावलि ठाढी। अत कहती हैं कि तुझे देखकर छाती ठण्ढी हुई। अब तेरे चले जाने पर उन्ही रात और उन्ही दिनो से सामना पडेगा जो काटे नही कटते। यथा : देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता।

दो. जनकसुतहि समुझाइ करि, बहु बिधि धीरजु दीन्ह।
चरन कमल सिरु नाइ कपि, गवनु राम पहिं कीन्ह॥२७॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ने जानकीजी को समझाकर बहुत प्रकार से धीरज दिया और उनके चरण कमलो मे सिर नवाकर श्रीरामजी के पास गमन किया।

व्याख्या : दो. अब मोहि यहँ ते चलन मे होइहि बेर जितेक।
प्रभु पयान मे जानकी जननी देर तितेक॥
तेहि खोजन हित कपि कटक गयउ चहूँ दिसि धाय।
सीता सुधि पायो नही कहे होयगे जाय॥
दच्छिन दिसि जे कपि गये, तिन पर आस लगाय।
बाट जोहते होहिंगे अति आरत रघुराय॥
समाचार तेरो सुनत प्रभु को धीरज होय।
घटै पीर रघुबीर हिय उचित करन अब सोय॥
मेरो लक प्रवेश कोउ सके न निसिचर जानि।
ताते मम गति विधि समुझि रहिहैं ते भय मानि॥

लंक संक आतंक अति दसकंधर उरमाहि ।
अब तोको दुख देन हित कोई आइ है नाहि ॥
याते मोहि अब एक छन जनि रोकै तू माय ।
जाइ वेगि रघुबीर को आवौं तुरत लवाय ॥

मुँदरी देखकर सन्तोप करना यह उनके स्वरूप से भिन्न नही है । यह अपने मुख से जाओ न कहेगी । अतः प्रणाम करके चल पड़े । आशीर्वाद का भी इन्तजार न किया : मन असीस दीन्ह्यौं होइहै तिहारोइ भायो । गी. ।

चलत महा धुनि गर्जेसि भारी । गर्भ स्रवहि सुनि निसिचर नारी ॥

६३. पुनः समुद्रोल्लङ्घन प्रसङ्ग

नाघि सिंधु एहि पारहि आवा । सबद किलिकिला कपिन्ह सुनावा ॥१॥

अर्थ : चलते समय महा ध्वनि से भारी गर्जना किया । जिसे सुनकर राक्षसों के स्त्रियों के गर्भ गिर गये । समुद्रोल्लंघन करके इस पार आये और बन्दरों को किलकिला शब्द सुनाया ।

व्याख्या : महाध्वनि से भारी गर्जना करने का अभिप्राय यह है कि जिसमें कोई यह न कह सके न जाने कब चोरी से बन्दर भाग गया । दूसरी बात यह भी हुई कि राक्षसियो को गर्भ गिरने का रोग हो गया । यथा : समुझत जासु दूत कर करनी । श्रवहि गर्भ रजनीचर घरनी । अब उनका वंश नहीं बढ़ सकता । इस गर्जन से जो गर्भ थे वे गिर गये और भविष्य में हनुमान्जी की करणी के स्मरण से गिर जावेंगे । रावण के सभी कुकृत्यों का फल हनुमान्जी ने दिया । रावण ने सुरलोक उजाड़ा । यथा : बेद बिरुद्ध महीसुर साधु ससोक कियो सुरलोक उजारयो : हनुमान्जी ने उसके प्राणों से प्रिय बाग को उजाड़ डाला । यथा : तेहि असोक बाटिका उजारी : रावण ने देवताओ का आहार बन्द किया । यथा : जाके डर सुर असुर डराही । निसि न नीद दिन अन्न न खाही । हनुमान्जी के भय से वही गति राक्षसों की हुई । यथा : लंक नहि खात कोउ भात राँधो । क. रा. । राक्षसो ने मुनियों को खाया । यथा : निसिचर निकर सकल मुनि खाये : हनुमान्जी ने कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूरि । रावण ने नगर ग्राम पुर में आग लगाया । यथा : नगर ग्राम पुर आग लगावहि : हनुमान्जी ने जारा नगर निमिष एक माही केवल गर्जत गर्भ स्रवहि सुररवनी का बदला वाको था सो उसे भी इस महाधुनि के भारी गर्जन से चुका दिया ।

एहि पारहि आवा का भाव यह कि जहाँ कवि कपि समाज के साथ बैठे हैं । हनुमान्जी ने कहा था : तब लगि मोहि परखेहु तुम्ह भाई । इसलिए कवि भी इस पार ही रह गये । इसलिए एहि पारहि आवा कह रहे हैं । जहाँ से हनुमान्जी दृष्टिगोचर हो सकते हैं वहाँ तक इस पार में ही गिनती है । किलकिला शब्द हर्षसूचक है ।

हरखे सब बिलोकि हनुमाना। नूतन जनम कपिन्ह तब जाना॥
मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा। कीन्हेसि रामचन्द्र कर काजा॥२॥

अर्थ हनुमान्‌जी को देखकर सब प्रसन्न हो गये। बन्दरो ने तब जाना कि हमारा नया जन्म हुआ है। हनुमान्‌जी का मुख प्रसन्न था। शरीर मे तेज विराजमान हो रहा था इससे मालूम हो गया कि इन्होने रामचन्द्र का कार्य सम्पादन किया।

व्याख्या शब्द सुनते ही बानर लोगो ने उधर देखा तो हनुमान्‌जी दिखायी पड़ गये। सब बडे दु खी थे कि इहाँ न सुधि सीता कर पाई। उहाँ गये मारिहि कपिराई। दोउ प्रकार भई मृत्यु हमारी। सो दोनो प्रकार से नया जन्म हुआ। अत हनुमान्‌जी को देखकर हरखे। यथा नाथ काज कीन्हेउ हनुमाना। राखेउ सकल कपिन्ह कर प्राना।

कृतकार्य होने का चिह्न बतलाते हैं। मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा। दूर से प्रत्यक्ष करने मे दो ही इन्द्रियाँ समर्थ हैं एक श्रोत्र और दूसरा चक्षु। दोनो से ही कृतकार्यता के ही लक्षण अनुभूत हुए। श्रोत्र से किलकिला शब्द का अनुभव किया और चक्षु से मुख की प्रसन्नता और शरीर क तेज का अनुभव हुआ। अत सबको निश्चय हो गया कि कृतकार्य होकर आ रहे हैं। सुग्रीव का भी निहोरा पूरा हुआ। यथा : राम काज अरु मोर निहोरा। रामचन्द्र कर काज सँवारेहु।

मिले सकल अति भये सुखारी। तलफत मीन पाव जिमि बारी॥
चले हरखि रघुनायक पासा। पूछत कहत नवल इतिहासा॥३॥

अर्थ · सब मिले और ऐसे सुखी हुए जैसे तडपती हुई मछली को जल मिल जाय। सब इस नये इतिवृत्त को पूछते और कहते रघुनाथजी के पास चले।

व्याख्या आयो हनुमान प्रान हेतु अंक माल देत लेत पग धूरि एक चूमत लगूर है। क रा। बिना हनुमान्‌जी के सब मछली की भाँति तडपते थे। यानी एक मछली बहुत होती है। अकेला पानी सबसे मिलता है। इसी भाँति हनुमान्‌जी सबसे मिले। इससे हनुमान्‌जी का प्राणप्रिय होना दिखलाया। पवनसुत हैं।

राम काज करि फिरि मैं आवौ। सीता कै सुधि प्रभुहि सुनावौ। इस बीच मे हनुमान्‌जी विश्राम नही लते। इसलिए सब रघुनाथजी के पास चल पडे। हनुमान्‌जी से वडे अविकत्थन स्वभाव के है। ब्यवरेवार सब बात कहने से अपना गौरव कहना पडेगा। अत अत्यन्त सक्षेप मे अपनी कृतकार्यता कह सुनायी। अब ब्योरेवार सब कथा सुनने के लिए वन्दर लोग एक एक बात को छेड छेडकर पूछते हैं। तब हनुमान्‌जी को भी कहना पडता है। इस भाँति वन्दर लोग प्रश्न पर प्रश्न करते चले और हनुमान्‌जी समाचार सुनाते चले। राम काज किया है। अत उन्ही के पास चलना लिखते है। पुर दहि नाँघेउ बहुरि पयोधी प्रसङ्ग समाप्त हुआ। अब आये कपि सब जहँ रघुराई बैदेही की कुसल सुनाई : प्रसङ्ग आरम्भ होता है।

६४. रघुनाथ सन्निकट प्रसङ्ग

तब मधुबन भीतर सब आए। अंगद संमत मधु फल खाए॥
रखवारे जब बरजइ लागे। मुष्टि प्रहार हनत सब भागे॥४॥

अर्थ : तब सब मधुबन के भीतर घुस गये और अङ्गदजी की सम्मति से सबो ने मधु और फल खाये। जब रखवारी करनेवालों ने रोका तो उन पर घूसों की मार पड़ी वे भाग खड़े हुए।

व्याख्या : जैसे इन्द्र का नन्दन वन है। रावण का अशोक वन है। वैसे ही राजा सुग्रीव का मधुवन है। इसमें मधु बहुत होती है इसीसे इसका नाम मधुवन है। बन्दर लोग उसी उपवन मे घुस गये और अङ्गदजी की सम्मति से मधु फल खाने लगे। हनुमान्‌जी के मुख से अशोक वन के फलो का स्वाद सुनते आ रहे हैं। सो फल के रसिकों का चित्त चलायमान हो रहा है। अतः अङ्गदजी ने आज्ञा दे दी।

वहाँ के मधु और फल खाने की किसी को आज्ञा नही है। अतः सब रखवालों ने मिलकर रोका। खानेवाले बहुत हैं। दो एक रखवालों के रोकने से काम चलनेवाला नही था। सो रोकने का उत्तर घूसो से मिला। अङ्गदजी के साथ रहने से सबो ने रोकने के रसम की तामीली मात्र की। घूँसा खाते ही भाग खडे हुए।

दो. जाइ पुकारे ते सब, बन उजार जुबराज।
सुनि सुग्रीव हरख कपि, करि आये प्रभु काज॥२८॥

अर्थ : उन सबों ने जाकर पुकार किया कि युवराज ने वन उखाड़ डाला। सुनकर सुग्रीवजी हर्षित हुए कि बन्दर प्रभु का कार्य करके आगये।

व्याख्या : सुग्रीव राजा के पास पुकार मचाया : वन उजार युवराज। सरदार का नाम ले रहे हैं। युवराज कहने का भाव यह है कि हम लोग मार खाकर भागे आ रहे है। युवराज के साथ होने से मार न सके। सुनकर सुग्रीवजी को क्रोध न होकर हर्ष हुआ। तुरन्त समझ गये कि बन्दर कृतकार्य होकर आगये। इस हर्ष से रखवारे चकित है। सुग्रीवजी प्रसन्न हो उठे कि मैने प्रतिज्ञा की थी : सब प्रकार करिहौं सेवकाई। तो भला एक सेवा तो हुई।

जौ न होति सीता सुधि पाई। मधुबन के फल सकहिं कि खाई॥
एहि[१] बिधि मन बिचार कर राजा। आइ गए कपि सहित समाजा॥१॥

अर्थ : यदि सीताजी की सुधि न मिली होती तो क्या मधुवन के फल खा सकते थे? इस प्रकार से मन मे विचार करते ही थे कि बन्दर लोग समाज के साथ आगये।

---

१. प्रहर्षण : तृतीय अलङ्कार है।

व्याख्या : सीता की सुधि पानेवाली ही खुशी इतनी बडी है कि जिससे मधुवन की लूट माफ हो सकती है। यदि सुधि न पाये होते तो अपने प्राण का ही डर होता। मेरे क्रोध को और भी दीप्त न करते। अत मधुवा के फल खाने के व्याज से अपने कृतकार्यता का समाचार पहिले ही भेजा है। राजा है मन मे विचार कर रहा है। प्रकट नही कहता। पर प्रसन्नता मुख पर झलक आयी। इतने मे सब लोग समाज सहित आगये। भाव यह कि मधुवन मे भी अधिक नही ठहरे। फल खाया और चल दिये। चौदहो वीर अपने समाज सहित गये थे सो समाज सहित आगये।

आइ सबहि नावा पद सीसा। मिलेउ सबन्हि अति प्रीति कपीसा॥
पूँछी कुसल कुसल पद देखी। राम कृपा भा काजु बिसेषी॥२॥

अर्थ आकर सबने चरणो मे सिर नवाया। वानरराज सभी से बडे प्रेम के साथ मिले। कुशल पूछा। उत्तर मिला कि चरणो के दर्शन से सब कुशल है। श्रीरामजी की कृपा से विशेष रूप से कार्य हुआ।

व्याख्या : जाते समय सुग्रीव को प्रणाम नही किया। सरकार की उपस्थिति मे उन्ही को प्रणाम किया जाता है और किसी को नही। यथा आइ रामपद नावहिं माथा। निरखि बदन सब होहिं सनाथा। तथा आयसु मांगि चरन सिर नाई। चले हरषि सुमिरत रघुराई। इस समय सरकार नही हैं। अत सुग्रीवजी को प्रणाम करते हैं। पहिले कहा : चले हरखि रघुनायक पासा। पर यहाँ सुग्रीव के पास पहुँचना कह रहे हैं। भाव यह कि जिसने भेजा है उसी को खबर देना चाहिए। अब उन्हे आगे करके रघुनाथजी के पास जावेंगे। नमस्कार सबने आकर किया। पता न चला कि किसके द्वारा काम हुआ और सुग्रीवजी को अति हर्ष है। अत सबसे मिले।

सुग्रीवजी तन मन वचन से वानरो के अनुकूल हैं। मन से यथा एहि विधि मन विचार कर राजा। तन से यथा : मिले सबहि। वचन से यथा : पूछी कुसल। जिस भाँति बडो के कुसल प्रश्न की चाल है उसी भाँति कुशल पद देखी। उत्तर देने की भी चाल है। यथा पूँछी कुसल नाथ अब कुसल देखि पदकज। सीता की सुधि तो कार्य है। लङ्कादहन आदि विशेष कार्य है। सो विशेष कार्य ऐसा हुआ कि उसे कृपासाध्य ही कहना चाहिए। क्रिया से ऐसा नही हो सकता।

नाथ काज कीन्हेउ हनुमाना। राखे सकल कपिन्ह के प्राना॥
सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ। कपिन्ह सहित रघुपति पहिं चलेऊ॥३॥

अर्थ : हे नाथ! हनुमान्जी ने कार्य किया। सब बन्दरो का प्राण बचाया। सुनकर सुग्रीव फिर उनसे मिले और वानरो के साथ रामजी के पास चले।

व्याख्या : अब स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि कार्य किसने किया। अत कहते हैं : कीन्हेउ हनुमाना। हम लोग तो व्यर्थ ही आदर के पात्र बन रहे हैं। हनुमान्जी के प्रति सब कृतज्ञ है। अत उनके नाम लेने मे उत्साह है। अवधि बीत

गयी सुधि न मिली। हम लोग तो वध्य हो गये थे। हनुमान् ने ही सबके प्राण की रक्षा की। अथवा हम लोग तो समुद्र के तट पर अनशन करने के लिए बैठ ही गये थे। परन्तु हनुमान्‌जी ने : तव लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई। सहि दुख कंदमूल फल खाई। कहकर सबके प्राणो की रक्षा की तथा रास्ते मे : मरन चहत सब बिनु जलपाना : वहाँ भी इन्होने ही सबके प्राणो की रक्षा की।

अब मालूम हो गया कि कार्य हनुमान् द्वारा हुआ। अत: कृतज्ञता प्रकाश के लिए पुन: मिलना समुचित हुआ। कार्य विशेष का ब्योरा सुनने के लिए ठहरे नही। जितनी जल्दी सरकार की पीडा मिट सके वही करते हैं। अत: सबके साथ तुरन्त रवाना हो गये। अब वही चलकर ब्योरेवार बात सुनी जाय।

राम कपिन्ह जब आवत देखा। किए काजु मन हरप विसेपा॥
फटिक सिला बैठे द्वौ भाई। परे सकल कपि चरनन्हि जाई॥४॥

अर्थ : श्रीरामजी ने जब वानरो को कार्य किये प्रफुल्लित मन आते देखा तो दोनों भाई स्फटिक शिला पर जा बैठे। सब वानर जाकर उनके चरणो मे गिरे।

व्याख्या : वानरो ने रामजी को न देखा। रामजी ने उनको आते देखा। हर्ष विशेष से कार्यसिद्धि का अनुमान हुआ। मन हर्ष का बाह्य लक्षण : मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा है। गिरि गुहा मे उस समय सरकार थे। अत: उन्होने बन्दरो को देखा। वे सरकार को न देख सके।

तब बाहर निकलकर दोनो भाई स्फटिक शिला पर जा बैठे सबके सुभीते के लिए। सुग्रीव के यहाँ : आइ सबहि नावा पद सीसा। पर रामजी के यहाँ : परे सकल कपि चरनन्हि जाई।

दो. प्रीति सहित सब भेंटे, रघुपति करुना पुंज।
पूँछी कुसल नाथ अब, कुसल देखि पद कंज॥२९॥

अर्थ : कृपा के समूह रघुनाथजी सबसे प्रेम के साथ मिले और कुशल पूछी। वानरो ने कहा : नाथ! अब श्रीचरणो के दर्शन से कुशल है।

व्याख्या : परे सकल कपि चरनन्हि जाई। इसलिए प्रीति सहित सबसे मिले। क्योकि रघुपति करुनापुञ्ज हैं। जानते हैं कि मेरे कार्य के लिए सब अनशन करके प्राण देने पर तुले हुए थे। दूसरी बात यह कि करुणापुञ्ज है। प्रेमाधिक्य से चरणो मे पडते देखकर गले लगा लिया। कायदा बिलकुल एक सा चल रहा है। सुग्रीवजी मिले सबहि अति हरप और रामजी प्रीति सहित सब भेंटे। सुग्रीवजी के कुशल पूछने पर उत्तर दिया : कुसल पद देखी। रामजी के कुशल पूछने पर भी वही उत्तर देते है : नाथ अब कुसल देखि पद कज। आये कपि सब जहँ रघुराई। प्रसङ्ग यहाँ तक है। आगे बैदेही की कुसल सुनाई : प्रसङ्ग चलेगा।

जामवंत कह सुनु रघुराया। जा पर नाथ करहु तुम दाया ॥
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर। सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर ॥१॥

अर्थ जाम्बवान ने कहा हे रामजी ! सुनिये। हे नाथ ! जिस पर आप दया करते हैं उसे सदा मगल और सर्वदा कुशल है। देवता मनुष्य और मुनि सभी उस पर प्रसन्न रहते हैं।

व्याख्या बूढे जाम्बवान ने देखा कि कुशल कहने के प्रेम म बन्दर कार्यसिद्धि कहना भूल गये। अत कुशल कथा का विस्तार करते हुए कहते हैं कि कुशल तो आपकी दया पर ही निर्भर है जासु कृपा नहिं कृपा अघाती। आपकी कृपा ही सुर नर मुनि की प्रसन्नता का कारण हैं। भाव यह कि सब ओर से उसे सहायता मिलती है और सबका स्वार्थ उसी स सिद्ध होता है। शुभ से मङ्गल का योग होना कहा। निरन्तर कुशल से बाधाओ का अतिक्रमण होना कहा। सुर नर मुनि स्वाथ के लिए प्रीति करनेवाल हैं। वे भी आपके कृपापात्र पर प्रसन्न हो जाते हैं। सबका स्वार्थ भी उसी से सधता है। मैनाक मिलन सुरसा आशीर्वाद बिभीषण मिलन शुभ वृत्तान्त है और सिंहिका वध काल का हटना लङ्किनी पराभव आदि निरन्तर कुशल की कथा है।

सोइ बिजई बिनई गुन सागर। तासु सुजसु त्रैलोक्य उजागर ॥
प्रभु की कृपा भयउ सब काजू। जन्म हमार सुफल भा आजू ॥२॥

अर्थ वही विजयी, वही विनयी है वही गुणसागर है। उसी का सुन्दर यश तीनो लोक मे प्रकाशित होता है। प्रभु की कृपा से सब कार्य हुआ और हम लोगो का जन्म सफल हुआ।

व्याख्या विजय भी उसी की होती है और वही विजय पर अभिमान नही करता। विजय की शोभा विनय से है। उसी म सब गुण आ जाते हैं। वही यशस्वी होता है। गुण की शोभा यश से है। विजयी यथा प्रभु मर्कट बल भूरि। विनय यथा सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल। गुनसागर यथा अजर अमर गुननिधि सुत होहू। सुयश यथा तासु चरित मन महँ सब गावा। कार्य तो प्रभु की कृपा से हुआ और निमित्त होने से जन्म हम लोगो का सुफल हो गया। कार्य सबके सब असाध्य थे। मनुष्य जन्म का सफल होना महा कठिन हो जाता है। सो बन्दर भालुओ का जन्म सुफल हुआ। सरकार का कार्य सम्पादन करके आ रहे हैं देह धरे कर यह फल भाई। भजिय राम सब काम बिहाई। सो सरकार की सेवा बन पडी।

६५ वैदेही कुशल कथन प्रसङ्ग

नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी। सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी ॥
पवनतनय के चरित सुहाए। जामवंत रघुपतिहि सुनाए ॥३॥

अर्थ : हे नाथ ! पवनसुत हनुमान्‌जी ने जो करणी की है वह सहस्रों मुख से वर्णन नही की जा सकती। तब जाम्बवान ने हनुमान्‌जी के सुन्दर चरित्र को श्रीरामजी से कह सुनाया।

व्याख्या : जान तो सबने लगाया। यथा : राम काज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह : पर प्रशंसनीय करणी हनुमान्‌जी की ही है। उसका यथार्थ वर्णन सहस्र मुख से भी असम्भव है : भोगावति जस अहिकुल वासा। अमरावति जस सक्र निवासा। तिन्ह तें अधिक रम्य अति बंका। जग विख्यात नाम तेहि लंका। सहस्र मुख के पुर मे ऐसा दुर्ग नही है : जिसका हनुमान्‌जी ने विनाश किया। इसलिए वे वर्णन नही कर सकते। अथवा हनुमान्‌जी साधु हैं। उनकी करणी का वर्णन सहस्र मुख नहीं कर सकते। यथा : कहि सक न नारद सेष सारद सुनत पद पंकज गहे।

हनुमान्‌जी अविकत्थन है। ब्योरेवार न कहेगे और सरकार को सब बातें ब्योरेवार सुनाना चाहिए। इसलिए रास्ते भर छेड़ छेडकर पूछते आये। यहाँ हनुमच्चरित का उपसंहार दिखलाया। वक्ता जाम्बवान श्रोता स्वयं रामचन्द्र। प्रवर्षण गिरि पर पहिले पहल हनुमच्चरित की कथा हुई।

सुनत कृपानिधि मन अति भाए। पुनि हनुमान हरषि हिय लाए ॥
कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की ॥४॥

अर्थ : सुनते ही कृपानिधि के मन मे बहुत अच्छे लगे। उन्होने हर्षित होकर फिर हनुमान्‌जी को हृदय से लगा लिया : और कहा : हे तात ! कहो जानकी किस प्रकार से रहती और अपने प्राणों की रक्षा करती है।

व्याख्या : कृपानिधि हैं : इन्हे सेवक के सुहाए चरित अत्यन्त भाए। उस चरित्र का उपक्रम जाम्बवान के अति सुहाए वचन से है। यथा : जामवंत के बचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए और उपसंहार भी उन्ही के वचन से है। यह अत्यन्त सुहाता है। इसलिए सुन्दरकांड की कथा प्रायेण सुनी जाती है। श्रीहनुमान्‌जी के चरित भाए सबको। परन्तु कृपानिधि को अत्यन्त भाए। अत. हरषि हिय लाए।

अब सरकार हनुमान्‌जी से पूछते है कि जानकी ने तो वन यात्रा के प्रसंग मे कहा था राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत जान अहि प्रान। और तदनुसार मैंने भी समझ लिया था कि हठि राखे नहि राखिहि प्राना। सो लङ्का मे वह कौन सी विधि है जिससे सीता के प्राणों की रक्षा हो रही है : बड़ा ही विकट प्रश्न सरकार ने हनुमान्‌जी से किया। हनुमान्‌जी उत्तर देते हैं :

दो. नाम पाहरु रात दिनु, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जन्त्रित, जाहि प्रान केहि बाट ॥३०॥

अर्थ : आपका नाम रात दिन पहरा देता है। आपका ध्यान ही किवाड़ है। चरणो मे नेत्रो का ताला लगा है। फिर प्राण किस रास्ते से जाय ?

व्याख्या : हनुमान्‌जी का कहना है कि शरीर पर रावण का पहरा है और प्राण पर तो सरकारी पहरा पड रहा है। प्राण तो निकल जाना चाहते हैं पर उन्हे रास्ता नही मिलता। सब वृत्तियो का अवरुद्ध होकर सरकार के आकार मे आकारित होना ही ध्यान है। सो ध्यानरूपी किवाड मे प्राण बन्द हैं। मन के रुकने से प्राण रुका हुआ है। यथा : चित्र से नयन अरु गढे से चरण कर मढे से 'नयन नहि सुनत पुकारे : गी :। चरणो मे नयन के यन्त्रित होने का कारण यह है कि चरण मे विष्णु भगवान् का निवास है। तिस पर नाम का श्वास नि.श्वासात्मक जप हो रहा है। इससे उसे रात दिन का पहरेदार बतलाया। इन्ही पहरेदारो के बल पर काल का जय होता है। श्रीजानकीजी का शरीर ही नही प्राण भी कैद है। जो किवाड मे बन्द हो, ताला लगा हो, उस पर भी पहरा पडता हो, वह बाहर निकले तो कैसे ?

चलत मोहि चूडामनि दीन्ही। रघुपति हृदय लाइ सोइ लीन्ही ॥
नाथ जुगल लोचन भरि बारी। बचन कहे कछु जनककुमारी ॥१॥

अर्थ : चलते समय मुझे चूडामणि दिया। श्रीरामजी ने उसे हृदय से लगा लिया। हनुमान्‌जी ने कहा ' हे नाथ ! दोनो आँखो मे आँसू भरकर कुछ वचन श्री जानकीजी ने कहा है।

व्याख्या : हनुमान्‌जी ने उत्तर समाप्त होते न होते दूसरी बात छेड दी। जिसमे इस प्रकार के दूसरे प्रश्न न उठने पावे। क्योकि माता पिता के वियोग के निरूपण मे पुत्र को बडी कठिनाई पडती है। यद्यपि माँगने पर चूडामणि मिली है पर यह बात हनुमान्‌जी नही कहते। हाथ मे लेकर चूड़ामणि उपस्थित करते हैं। कहते है कि चलते समय मुझे चूडामणि दिया। भाव यह कि देखने से जब चित्त द्रवीभूत हो तो सन्देश कहे। अभी तो चित्त तर्क वितर्क पर आरूढ है। वही बात सामने आयी। रामजी ने चूडामणि को हृदय से लगा लिया। भगवती के चिह्न को हृदय से लगाते हैं। तब हनुमान्‌जी बोले कि जनकनन्दिनी की दोनो आँखें बात कहने मे डबडबा आयी। कहना उन्हे बहुत था पर कुछ ही कह सकी। जनककुमारी कहकर दुःख सहने की अयोग्यता ध्वनित किया।

अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना। दीन बधु प्रनतारति हरना ॥
मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहि अपराध नाथ हौ त्यागी ॥२॥

अर्थ : जानकीजी ने कहा कि छोटे भाई समेत प्रभु का चरण पकडना और कहना कि आप दीनबन्धु है। शरणागत के दुःखो को हरनेवाले हैं। मैं मन वचन और कर्म से आपके चरणो की अनुरागिणी हूँ ? हे नाथ ! मै किस अपराध से त्यागी हुई हूँ ?

व्याख्या : अति आर्त्त होने से लघुदेवर के भी चरण ग्रहण के लिए कह रही हैं अथवा उनके प्रति जो कटु वचन कहा था उसका बड़ा पश्चात्ताप हृदय मे है। क्षमापन के लिए उनके चरण ग्रहण करने को कह रही है। दोनो भाई दीनबन्धु हैं, दोनो प्रणतार्ति हरण हैं और मै दीन, आर्त तथा प्रणत हूँ। पहिला प्रश्न जानकीजी का यही था कि : कपि केहि हेतु धरी निठुराई। उसी का विवरण करते हैं कि मन क्रम वचन अनुरागी के त्याग का आप कारण बतलाइये। भगवती ने पहिले प्रणाम कहा तब सन्देश कहा। यथा : कहेहु तात अस मोर प्रणामा : उसी को स्पष्ट करते हैं। अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना। इसके बाद सन्देश कहते हैं : पर जानकीजी के कहे हुए सन्देश से इस सन्देश के एक शब्द का मेल नहीं खाता। यही दूत की पण्डिताई है कि सन्देश के भावो को अवसरोचित रूप मे व्यक्त करे। अत. वाक्यो मे भेद होते हुए भी तात्पर्य ऐसे अवसरानुकूल शब्दों म कहा गया कि यदि सीताजी के वाक्य दोहरा दिये जाते तो वैसे प्रभावोत्पादक न होते।

अवगुन एक मोर मै माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना॥
नाथ सो नयनन्हि कर अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि बाधा॥३॥

अर्थ : एक दोष मै अपना मानती हूँ कि वियोग होते ही प्राण नही चले गये। किन्तु हे नाथ! यह तो नेत्रो का अपराध है जो प्राणो के निकलने मे हठपूर्वक बाधा देते हैं।

व्याख्या : एक अवगुण मैं अपना मानती हूँ कि यदि प्राण नही जाने पाते तो विरह ज्वाला से शरीर तो भस्म हो जाना चाहिए। क्योकि : अस कहि सीय विकल भइ भारी। वचन वियोग न सकी सँभारी। सो शारीरिक वियोग कैसे सँभला?

इस पर कहती हैं कि प्राण का कोई अपराध नही। वह तो निकल जाना चाहता है। अपराधी तो ये आँखें हैं जो उसके निकलने मे बाधा पहुँचाती हैं। अब मेरे अन्त करण प्राण और इन्द्रियो मे सामञ्जस्य नही है। गड़बड़ी मच गयी है। कोई कुछ चाहता है कोई कुछ चाहता है।

बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरै छन माहिं सरीरा॥
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी। जरै न पाव देह बिरहागी॥४॥

अर्थ : विरह अग्नि है। शरीर रूई है और श्वास पवन है। यह शरीर क्षणभर मे भस्म हो सकता है। परन्तु नेत्र अपने हित के लिए जल बरसाते हैं। विरह की आग से देह जलने नही पाती।

व्याख्या : भाव यह कि शरीर के स्थिर रहने से ही ध्यान श्वास नि.श्वासात्मक जप त्राटकादि क्रियायें बनती हैं तभी प्राण रुकता है। यदि शरीर ही विरह ज्वाला से जल जाय मकान ही न रहे तो किवाड़ पहरेदार और ताला क्या करेगा? इसके उत्तर म कहती हैं कि शरीर के भस्म होने की सब सामग्री ठीक है। विरहाग्नि अति तीव्र है। जिसके आगे लौकिकाग्नि शीतल मालूम होती

है। यथा : देहि अगिनि तन करहि निदाना। इस आग के सामने देह रूई है। सती के जलने का विज्ञान इसी दोहे मे है। और श्वास धौंकनी की भाँति इस अग्नि को बढाता है। सती को पति के पुनर्दर्शन की आशा नही रहती। उसकी आँखें आँसू नही बहाती। मेरी आँखो को दृढ आशा दर्शन की है। अत: वे शरीर को जलने देना नही चाहती। शरीर को भिगो देती हैं। भीगी हुई रूई नही जलती। अत. वे ही मेरे शरीर के दग्ध होने मे बाधक हैं। वे सरकार के दर्शन की लालची हैं। इतना ही अवगुण है। अब सरकार ही विचार लें कि क्या इतना अवगुण अनुरागी के त्याग के लिए यथेष्ट कारण हो सकता है कि ग्रहण का ? बडे मार्के का उत्तर है कि आपके दर्शन की आशा से जी रही है। नहीं तो उस मूर्ति का मैं दर्शन कर चुका हूँ। जब वे प्रेमोन्माद मे चन्द्र तारा और अशोक वृक्ष से अग्नि माँग रही थी।

सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहि कहे भल दीनदयाला ॥५॥

अर्थ : सीताजी की अत्यन्त विशाल विपत्ति का हे दीनदयाल ! न कहना ही अच्छा है।

व्याख्या : आप दीनदयाल है। दीन की विपत्ति देख नही सकते। और सीताजी ऐसी दीन हो रही हैं कि उनकी विपत्ति न कहने मे ही कुशल है। सरकार बहुत दु खी होगे सह न सकेंगे। रावण की कही शूलसम वाणी की ओर लक्ष्य है तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुए करिहि का सुधा तडागा। अत शीघ्र चलिए।

दो. निमिष निमिष करुनानिधि, जाहिं कलप सम बीति।
बेगि चलिअ प्रभु आनिअ, भुज बल खल दल जीति ॥३१॥

अर्थ . हे करुणानिधान ! एक एक पल कल्प के समान बीत रहा है। अत. हे प्रभु ! तुरन्त चलिए और अपनी भुजाओके बल से दुष्टो को जीतकर उन्हे ले आइये।

व्याख्या : सीताजी की विरह की दशा देखकर . सो छन कपिहिं कलप सम बीता। अत' जो स्वय अनुभव कर रहा है उसके एक पल के कल्प सम बीतने मे क्या सन्देह है। भाव यह कि बातचीत मे समय व्यर्थ बीत रहा है। एक निमेष इस समय कीमती : मूल्यवान् है। कौन कह सकता है कि कब उनका शरीर छूट जाय। अत: शीघ्रता कीजिये। हनुमान्जी जाम्बवान से सुन चुके हैं कि तब निज भुज बल राजिव नैना। कौतुक लागि सग कपि सैना। कपि सग सघारि निसिचर राम सीतहि आनिहैं। अत: कहते हैं भुजबल खल दल जीति। बिना युद्ध के सीता की प्राप्ति नही हो सकती।

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आए जल राजिव नयना ॥
बचन काय मन मम गति जाही। सपनेहु बूझिअ बिपति कि ताही ॥१॥

अर्थ : सीता का दुःख सुनकर सुखधाम प्रभु के नेत्रों में जल भर आया। वचन मन और तन से जिसे मेरी गति हो उसे क्या सपने मे भी विपत्ति आ सकती है।

व्याख्या : जिस सीता का नाम सोने में भी उच्चरित होता है। जिसके ऊपर आघात करने से काग पर भी ऐपीकास्त्र का प्रयोग किया गया उसी सीता का दुःख सुनकर सुखधाम प्रभु की आँखों मे आँसू भर आये। राजीव नयन शब्द का प्रयोग कृपाद्योतन के अर्थ में कवि करते हैं। यथा : चितइ कृपा करि राजिव नयना इत्यादि। उधर सन्देश कहने में भगवती के नयनों मे जल भर आया था। यथा : नाथ जुगल-लोचन भरि वारी। वचन कहे कछु जनककुमारी। इधर सन्देश सुनकर सरकार के नेत्रों मे जल भर आया। यथा : भरि आये जल राजिव नयना।

प्रभु ने कहा अनन्य चिन्तन करनेवाले को विपत्ति कहाँ ? सीताजी ने अपने को कहा था मन क्रम वचन चरन अनुरागी। और हनुमान्जी कहते हैं सीता कै अति विपति विसाला। इन दोनों बातों का सामञ्जस्य नही बैठता। क्योंकि सरकार के अनुराग मे विपत्ति हरण का सामर्थ्य है। रामानुरागी को विपत्ति कहाँ ? अतः कहते हैं : सपनेहु बूझिअ विपति कि ताही।

कह हनुमंत विपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजनु न होई ॥
केतिक बात प्रभु जातुधान की। रिपुहि जीति आनवी[1] जानकी ॥२॥

अर्थ : हनुमान्जी ने कहा कि हे प्रभो ! विपत्ति तो वही है जब कि तुम्हारा स्मरण और भजन न हो। हे प्रभो ! राक्षसों की बात ही कितनी है। आप शत्रु को जीतकर जानकी को ले आवेंगे।

व्याख्या : प्रभु का स्मरण भी निर्विघ्न नहीं होने पाता। राक्षस बाधक होते हैं। भजन तो दूर की बात है। सरकार का स्मरण भजन जब न हो तभी विपत्ति है। सांसारिक विपत्ति को तो भक्त स्वयं नही गिनते।

फिर हनुमान्जी ने उत्तर समाप्त होते ही दूसरी बात छेड़ दी। इन्हे सरकार के ले चलने की जल्दी है। चिन्ता को स्थान देना नहीं चाहते। चिन्ता कार्यविनाशिनी है अतः उत्साह बढ़ाते है। कहते हैं सरकार के सामने जातुधान क्या हैं ! ब्रह्म रुद्र को सरकार का भय रहता है। यथा : ब्रह्मधाम सिवपुर सबलोका। फिरा श्रमित व्याकुल भय सोका। अतः जीत निश्चय है। अकेला मैं सीता के लाने मे समर्थ था।

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी ॥
प्रति उपकार करौ का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥३॥

अर्थ : हे हनुमान्जी ! सुनो तुम्हारे ऐसा उपकारी शरीरधारी देवता मनुष्य

१. बुन्देलखण्ड मे आनिवी क्रिया का प्रयोग बहुवचन मे होता है।

और मुनियो मे कोई नही है। मैं तुम्हारे उपकार के बदले मे क्या करूँ। मेरा तो मन भी सामने नही हो रहा है।

व्याख्या : सुर नर मुनि सबकै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती। अत: उसके उऋण होने का उपाय शास्त्रो मे लिखा है। उनके स्वार्थ साधन से मनुष्य उऋण हो जाता है। यज्ञ करके देव ऋण से तर्पण करके पितृऋण से शास्त्राध्ययन करके ऋषिऋण से उत्तीर्ण होता है। अध्ययन करनेवाला ही मन्त्रो के ऋषियो को जानता है। उनके नाम को बनाये रखनेवाला है। उनके दिये हुए दिव्य ज्ञान को जीता जागता रखनेवाला अध्येतृवर्ग ही है। पर तुम्हारा तो कोई स्वार्थ ही नही है। तुम्हारा प्रत्युपकार कोई कैसे करे? और उपकारी का प्रत्युपकार करना सनातन धर्म है। अथवा तुम्हारा उपकार इतना बड़ा है कि मेरी यही इच्छा होती है कि तुम्हारा ऋणी ही बना रहूँ। क्योकि उपकार का बदला जो देना चाहता है वह उपकारी के ऊपर विपत्ति आने की प्रतीक्षा करता है। नर: प्रत्युपकारार्थी विपत्तिमभिकाक्षति। अत मेरा मन उस ओर जाता ही नही। प्रत्युपकार की बात ही सोचना नही चाहता।

सुनु सुत तोहि उरिन मै नाही। देखेउँ करि विचार मन माही॥
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता॥४॥

अर्थ : हे पुत्र! मैंने मनमे विचार करके देख लिया कि मै तुमसे उऋण नही हो सकता। देवताओ के रक्षक प्रभु बार बार हनुमान्‌जी को देखते हैं। नेत्रो मे जल भरा है और शरीर मे अत्यन्त पुलक है।

व्याख्या सरकार ने भी बेटा का नाता मान लिया। अत सुत सम्बोधन करते हैं। उऋण होने के लिए प्राण तक दिये जाते है। पर सीताजी की खोज उनकी सान्त्वना स्वयं प्रभु को सान्त्वना प्रस्थान के लिए प्रोत्साहन। अपने श्रम और प्राण को न गिनना। अति बुद्धिमत्ता ये सब एक एक बातें ऐसी है जिसके बदले मे प्राण दिया जा सकता है। अत प्राण देने पर भी शेष उपकारो के लिए ऋणी ही रहूँगी।

सीताजी के आशीर्वाद करहुँ बहुत रघुनायक छोहू का साफल्य हो रहा है। पुनि पुनि कपिहि चितव सुर त्राता। अति प्रेम होने से बार बार देखते हैं। यथा : कौसल्या पुनि पुनि रघुवीरहि। चितवति कृपा सिंधु रन धीरहि। बेटे के महान पुरुषार्थ कर आने पर जो अवस्था माता की होती है वही सरकार को इस समय हो रही है। सरकार सुरत्राता हैं। देवता लोग चाहा करते हैं कि मेरी ओर देखें। यथा : मामवलोकय पकज लोचन। कृपा विलोकनि सोच विमोचन। सो प्रभु बार बार हनुमान्‌जी की ओर देख रहे है। नेत्रो मे जल भरा है। शरीर अत्यन्त पुलकित है सात्त्विक भाव हो रहा है।

दो. सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख, गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल, त्राहि त्राहि भगवंत॥३२॥

अर्थ : प्रभु का वचन सुनकर और उनका मुख देखकर हनुमान्‌जी पुलकित शरीर हो गये और प्रेम से आकुल होकर हे भगवान् मेरी रक्षा करो रक्षा करो कहते हुए श्रीरामजी के चरणों में गिर गये।

व्याख्या : प्रभु का वचन सुना कि अपने को मेरा ऋणी मान रहे हैं। मुख देखा कि बार बार मेरी ओर देख रहे हैं। हनुमान्‌जी पुलकित हो उठे। चरणों पर गिर पड़े कि सरकार को सभी कहना और करना शोभा देता है। पर मुझे तो ऐसा कहने से मोह हो सकता है। सरकार ऐसा न कहें। अतः त्राहि त्राहि पुकारा। बड़ाई देने से हनुमान्‌जी सनेह सभीत हो गये। बड़ाई भजन में बाधक है। यथा : ए सब राम भगति के बाधक। यहाँ हनुमान्‌जी का मनसा वाचा कर्मणा शरण में आना कहा। मनसा प्रेमाकुल। वाचा त्राहि त्राहि भगवंत। कर्मणा चरण परेउ। प्रभो! मेरे त्राहि त्राहि शब्द को सुनके आप उऋण हो जायँ।

बार बार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठब न भावा॥
प्रभु कर पंकज कपि के सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥१॥

अर्थ : प्रभु बार बार उठाना चाहते हैं। प्रेम में डूबे हुए हनुमान्‌जी को उठना नहीं सोहाता। प्रभु का करकमल हनुमान्‌जी के सिर पर है। उस दशा का स्मरण करके शिवजी मग्न हो गये।

व्याख्या : जो प्रेम में मग्न होता है वह चरणों में पड़े रहने के सुख को छोड़ना नहीं चाहता और मालिक के उठाने में विलम्ब होने से उपेक्षा सूचित होती है। अत: सरकार उठाना चाहते हैं हनुमान्‌जी उठना नहीं चाहते। यथा : परे भूमि नहिं उठत उठाये। जब त्राहि त्राहि करके चरणों में गिरे तब रक्षा का हाथ भगवान् ने सिर पर रक्खा और सिर पर हाथ रक्खे हुए ही उठाना भी चाहते हैं।

सरकार का हाथ सिर पर पड़े। इस बात को भक्त सदा चाहा करते हैं। यथा :

कबहुँ सो कर सरोज रघुनायक धरिहौं नाथ सीस मेरे।
जेहि कर अभय किये जन आरत बारक बिबस नाम टेरे॥
सीतल सुखद छाँह जेहि करकी मेटत पाप ताप माया।
निसि बासर तेहि कर सरोज की चाहत तुलसिदास छाया॥

हनुमान् शरीर से उस सुख का अनुभव किया है और गौरीश शरीर से उसका स्मरण करते हैं। जिसे अनुभव होता है वही स्मरण कर सकता है। अत: शिवजी मग्न हो गये। कथा बन्द हो गयी। यही एक अवसर है जहाँ शिवजी आनन्द में विभोर होकर कथा कहना भूल गये।

सावधान मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा अति सुंदर॥
कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा॥२॥

अर्थ : फिर मन को सावधान करके शिवजी अत्यन्त सुन्दर कथा कहने लगे।

हनुमान्‌जी को उठाकर प्रभु ने हृदय से लगाया और हाथ पकड़कर अत्यन्त समीप बिठलाया।

व्याख्या : सावधान कहने से ही पहिले की असावधानता सूचित हुई। यह अनवधानता सावधानता से भी कही अच्छी है। फिर भी मन के सावधान करने का भाव यह कि परोपकार का दर्जा ब्रह्मानन्द से भी अधिक है। यथा : परोपकारकैवल्ये तोलयित्वा जनार्दनः। गुर्वीमुपकृतिं मत्वा ह्यवतारान् दशाग्रहीत्। भगवान् जनार्दन ने परोपकार और कैवल्य को तौल डाला। परोपकार का पलड़ा भारी मानकर दश अवतार धारण किये। इस अवसर पर कवि भी असावधान हो गये। कथा को सुन्दरी कहना चाहिए सो सुन्दर लिख दिया।

बलकरि कृपासिंधु उर लाये। हनुमान्‌जी परम निकट बैठना नहीं चाहते थे पर सरकार ने जबरदस्ती हाथ पकड़ कर परम निकट बिठाया। हनुमान्‌जी ने बड़ा भारी कार्य किया है। इसलिए उन्हें बड़ा भारी आदर दिया जा रहा है। पुनि हनुमान् हरषि उर लाये से उपक्रम करके कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा से उपसंहार किया। सीता के सन्देश की कथा समाप्त हुई। अब हनुमान्‌जी की बहादुरी की बात चली।

कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोला बचन बिगत अभिमाना॥३॥

अर्थ : हे कपि! लङ्का तो रावण द्वारा रक्षित है। उस बड़े बाँके दुर्ग को तुमने किस भाँति जलाया? हनुमान्‌जी ने प्रभु को प्रसन्न जाना अतः अभिमान रहित वचन बोले।

व्याख्या : सरकार अपना आश्चर्य प्रकट करते हैं कि अमरावती और भोगावती को जलाना सरल कार्य है पर लङ्का का जलाना कठिन है। तिसपर रावण ऐसा प्रतापी उसकी रक्षा कर रहा है जिसकी आज्ञा मे प्रलय के बादल हैं। ऐसी सोने की लङ्का रावणपालित होने पर जली कैसे?

जब सरकार प्रसन्न होते हैं तब ऐसी ही बात बोलते हैं। यह परीक्षा का समय है। यदि अभिमान आगया तो उन्नति रुक जाती है। यथा : करुणानिधि मन दीख बिचारी। उर अंकुरेउ गर्ब तरु भारी। बेगि सो मैं डारिहौं उखारी। पन हमार सेवक हितकारी। परन्तु सयाने भक्तो को अभिमान नहीं होता। ऐसा ही बर्ताव अंगद के साथ हुआ। सरकार पूछने लगे : रावन जातुधान कुलटीका। भुजबल अतुल जासु जगलीका। तासु मुकुट तुम चारि चलाये। कहहु तात कवनी बिधि पाये। उत्तर में अङ्गदजी अभिमान रहित बाणी बोले।

साखामृग के बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥
नाघि[1] सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा॥४॥

---

१. यहाँ पर्यस्तालङ्कार है।

सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई ॥५॥

अर्थ : शाखा के मृगो बन्दरो की बडी भारी प्रभुताई यही है कि एक डाल पर से दूसरे पर चला जाय। जो समुद्रोल्लघन किया सोने का पुर जलाया। राक्षसो को मारकर अशोक वन उजाडा। इसमे नाथ मेरी प्रभुताई कुछ भी नही सब आपके प्रताप से हुआ।

व्याख्या यहाँ शाखामृग कहने का भाव यह कि मै तो शाखा पर रहनेवाला पशु हूँ। एक डाल पर से दूसरे पर उछल जाऊँ और डाल न चूके। इतनी ही मेरी बहादुरी है। यह सामर्थ्य अन्य किसी पशु मे नही है। अत यह मेरी जाति की प्रभुताई है। न तो शाखामृग नदी लाँघ सकते हैं न आग लगा सकते हैं और न रक्षको को मारकर फुलवाडी ही उजाड सकते है। समुद्र लाँघना ग्राहादि से भी अशक्य है। हाटक सोना का जलाना स्वर्णकार से भी अशक्य है। निशिचरो को मारना देवताओ से भी अशक्य है और अशोक वन उजाडना इन्द्र से भी अशक्य है। इन सब कामो को मैंने किया तो क्या इनमे मेरी प्रभुता थी ?

यह सब सरकार की प्रभुता ने किया। यह कहकर हनुमान्जी ने बुद्धि म इन्द्रादिक को भी जीत लिया। वेद मे कथा है कि एक बार देवो के द्वारा ब्रह्म ने असुरो को जीता। देवताओ को अभिमान हुआ कि यह हमारी विजय है। हमारी महिमा है। तब यज्ञ रूप से ब्रह्म का प्रादुर्भाव हुआ। देवताओ ने उनके जानने के लिए अग्नि को भेजा। यक्ष ने उनके सामने एक तृण रख दिया कि इसे जलावो। वे न जला सके। तब वायु भेजे गये। उनका उडाया वह तृण न उडा। तब इन्द्र स्वयं गये। उनके अभिमान को देखकर ब्रह्म अन्तर्धान हो गये। तव उमा ने उनका परिचय दिया कि यही ब्रह्म है। इन्ही की सदा विजय होती है। इन्ही को जीत से तुम्हारी पूजा हो रही है। हनुमान्जी जानते थे कि जीत मे वस्तुत करामात प्रभु की प्रभुता की है। अत बुद्धि मे हनुमान्जी इन सबसे बढ गये।

दो ताकहुँ प्रभु कछु अगम नहि, जापर तुम्ह अनुकूल।
तव प्रताप बडवानलहि, जारि सकइ खलु तूल ॥३३॥

अर्थ : हे प्रभो ! जिस पर आप अनुकूल हो उसके लिए कोई भी बात कठिन नही है। आपके प्रभाव से रूई निश्चय करके बडवानल को जला सकती है।

व्याख्या सबइ लाभ जग जीव कहँ भये ईसु अनुकूल। बडवानल मे ऐसी दाहिका शक्ति है कि दिन रात एक योजन जल समुद्र का जलाया करता है और समुद्र उसे बुझा नही पाता। पर सरकार यदि रुई के अनुकूल हो जायँ तो वह बडवानल को जला सकती है। भाव यह कि एक अमोघ शक्ति करुनाकर अमोघ शक्ति केवल सरकार हैं। सरकार जिसके अनुकूल हो जाते हैं उसम सरकारी शक्ति काम करने लगती है। फिर उससे कुछ भी असाध्य नहीं है।

नाथ भगति अति सुखदायनी । देहु कृपा करि अनपायनी ॥
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी । एवमस्तु तब कहेउ भवानी ॥१॥

अर्थ : हे नाथ ! अत्यन्त सुख देनेवाली अविरल भक्ति कृपा करके दीजिये । हनुमान्‌जी की अत्यन्त सरल वाणी सुनकर तब प्रभु ने कहा कि ऐसा ही हो ।

व्याख्या : भक्त भगवान् के प्रताप से सब कुछ करता है और भगवान् ऐसे दयासागर हैं कि उसे उसका किया हुआ मान लेते हैं । यहाँ हनुमान्‌जी सोचते हैं कि मैंने क्या किया ? सब सरकार के प्रताप ने किया और सरकार इस चिन्ता से क्षुब्ध हैं कि इसका प्रत्युपकार मैं कैसे करूँ । मैं अति बहुमूल्य वस्तु जो ज्ञान और विराग से भी अधिक सुख देनेवाली है माँगकर क्षोभ मिटाये देता हूँ । वह वस्तु है अनपायनी भक्ति । जिसमे अपाय अर्थात् विघ्न न उपस्थित हो सके उसे अनपायनी कहते हैं । मेरी सेवा मे कुछ नही है । प्रभु कृपा करके दें तो सम्भव है ।

सरकार की वाणी सरल थी । यथा : कहु कपि रावन पालित लंका । केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका । पर हनुमान्‌जी की वाणी परम सरल थी । यथा साखामृग कै बडि मनुसाई इत्यादि । बिना परम सरल हृदय हुए ऐसी सरल वाणी कोई बोल नही सकता और निर्मल मन जन सो मोहि पावा । अतः सरकार ने एवमस्तु कहा । हनुमान्‌जी को अविरल भक्ति की प्राप्ति हुई ।

उमा राम सुभाउ जेहि जाना । ताहि भजनु तजि भाव न आना ॥
यह संवाद जासु उर आवा । रघुपति चरन भगति सोइ पावा ॥२॥

अर्थ : हे उमा ! जिसने रामजी का स्वभाव जान लिया उसे भजन छोड़कर दूसरी बात ही नही सोहाती । यह संवाद जिसके हृदय मे आगया वह रघुपति के चरणो की भक्ति पा जाता है ।

व्याख्या . अस सुभाउ कहुँ सुनौं न देखौं । केहि खगेस रघुपति सम लेखौं । सरकार का स्वभाव ही ऐसा है कि उसके जान लेने पर वे ही अच्छे लगते हैं । दूसरा कोई सुहाता ही नही । यथा : अब न आँखि तर आवत कोऊ । और न कोई दूसरी वस्तु ही अच्छी लगे । उसे फिर उनका भजन ही अच्छा लगता है । हनुमान्‌जी को प्रभु के स्वभाव का परिज्ञान था । यथा : तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ : अतः उन्हे प्रभु की भक्ति ही अच्छी लगी ।

अनपायिनी भक्ति तो हनुमान्‌जी ने पायी । पर उसे भी भक्ति की प्राप्ति होगी जिसके मन मे यह सम्वाद बैठ जायगा । यथा : सकल सुकृत कर बड़ फल एहू । राम सीय पद सहज सनेहू । इस सम्वाद की महा महिमा है । प्रत्येक काण्ड की पृथक् फलश्रुति तो दी हुई है । पर प्रसङ्ग विशेष की भी जो बडे महत्त्व के हैं पृथक् फलश्रुति दी गयी है ।

सुनि प्रभु बचन कहहिं कपि बृंदा । जय जय जय कृपालु सुखकंदा ॥

६६. सेना समेत रघुवीर का समुद्रतट प्रस्थान प्रसङ्ग

तव रघुपति कपिपतिहिं वोलावा। कहा चलै कर करहु वनावा ॥३॥

अर्थ . प्रभु के वचन सुनकर वानरगण कहने लगे कि कृपालु आनन्दकन्द रामजी की जय हो, जय हो, जय हो। तब रामजी ने कपिपति सुग्रीव को बुलाया और कहा कि चलने की तैयारी करो।

व्याख्या · अनपायिनी भक्ति की दुर्लभता का ज्ञान वानरो को है। यथा ·

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म व्रत धारी॥
धर्मसील कोटिक महँ कोई। विषय बिमुख बिराग रत होई॥
कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक् ज्ञान सकृत कोउ लहई॥
ज्ञानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवन मुक्त सकृत जग सोऊ॥
तिन सहस्र महुँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्म लीन विज्ञानी॥
सब ते सो दुर्लभ सुरराया। राम भगति रत गत मद माया॥

अत जब हनुमान्‌जी ने अनपायिनी भक्ति मांगी तब सभी सशङ्क हो गये कि देखें सरकार इस पर क्या कहते हैं। सो एवमस्तु सुनते ही सबों ने जय जयकार किया। यह भक्ति कृपासाध्य है इसलिए कृपा कहा। भक्ति सुखदायिनी है इसलिए सुखकन्द कहा अथवा हनुमान्‌जी के वर मिलने पर सब सुखी हुए। इसलिए सरकार को सुख का मेघ कह रहे हैं। उन लोगो के भी तापत्रय नष्ट हुए क्योकि यह सम्वाद उनके सामने हुआ था। अत तीन बार जय बोल रहे हैं।

सब वानरो पर कपिपति की आज्ञा चलती है और उन पर रघुपति की आज्ञा चलती है। इस समय सरकार के अति सन्निकट हनुमान्‌जी हैं और जाम्बवानजी हैं। सुग्रीवजी कुछ दूर पर है। इसलिए बुलावा कहते हैं। हनुमान्‌जी की विनती है कि बेगि चलिय प्रभु। अतः कहते हैं चलै कर करहु बनावा। सेना तैयार करो।

अव विलंवु केहि कारन कीजे। तुरत कपिन्ह कहुँ आयसु दीजे॥
कौतुक देखि सुमन वहु वरपी। नभ ते भवन चले सुर हरपी ॥४॥

अर्थ : अब विलम्ब क्यो किया जाय। वानरो को तुरन्त आज्ञा दीजिये। कौतुक देखकर बहुत से फूल बरसाकर और हर्षित होकर देवता आकाश से अपने अपने घर चले।

व्याख्या विलम्ब का कारण पता का न लगना था सो तो लग ही गया। भाव यह कि जब तक यह बातचीत हो रही थी इसी बीच मे सेना को तैयार होने के लिए आज्ञा दे देना प्राप्त था। वानरी सेना लेकर शत्रु पर चढाई करना न कभी देखा गया था और न सुना गया था। ऐसे कौतुकी सरकार हैं कि लङ्का ऐसे दुर्ग पर चढाई,.करने के लिए वानरी सेना तैयार करवा रहे हैं। यथा : कौतुक

लागि सग कपि सेना नही तो सभी निशाचरो के सहार के लिए केवल लक्ष्मणजी पर्याप्त थे। यथा जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमन हनइ निमिष महुँ तेते। जिस लक्ष्मण की उपासना से अर्जुन ने अकेले ही उत्तर कुरु तक विजय किया उस लक्ष्मणजी के लिए केवल लङ्का विजय कुछ नही है। लक्ष्मणजी का अवतार ही राक्षसो के नाश के लिए हुआ है। यथा जो अवतरेउ भूमि भय टारन।

यो जपेल्लक्ष्मणमनु नित्यमेकान्त आस्थित।
मुच्यते सर्वपापेभ्य स कामानश्नुतेऽखिलान्॥
प्रयोगायैव मन्त्रोऽयमुपदिष्टोहि सार्ङ्गिणा।
अर्जुनस्य पुरा सम्यगनेनैव धनञ्जय॥
दिशा विजित्य सकला स कुरूनेव एव हि।
प्रातिष्ठिपत् धर्मराज पैतृके राज्य उत्तम॥

—रामार्चनचन्द्रिका

दो कपिपति बेगि बोलाए, आए जूथप जूथ।
नाना बरन अतुल बल, बानर भालु बरूथ॥३४॥

अर्थ वानरराज ने तुरन्त बोलाया। सेनापतियो का समूह आ गया। अतुल बलवान् और वानर भालुओ की सेनाएँ अनेक रंग की है।

व्याख्या बडी भारी वानरी सेना है। वानरराज के बुलाने पर यूथपो का यूथ आया। वानरो की अनेक जातियाँ है उनके रंग भी अलग अलग है और भालुओ की भी एकाधिक जातियाँ है। जिनके रङ्गो मे भेद है। रामकृपा अतुलित बल तिनही। तृन समान त्रैलोकहि गिनही। अत उनके बल का तौल नही है और रग बिरंगी सेना है।

पूरा हनुमच्चरित देवताओ ने आकाश से देखा। यथा जात पवनसुत देवन्ह देखा तब से अभी तक साथ है। सरकार की वानरी सेना के प्रस्थान का कौतुक देखकर तब घर चले। सेना के साथ तमाशा देखने न जावेंगे। नही तो रावण का कोप होगा कि मेरे ऊपर ये ही सब रामजी को चढा लाये।

प्रभु पद पंकज नावहि सीसा। गर्जहि भालु महाबल कीसा॥
देखी राम सकल कपि सेना। चितइ कृपा करि राजिव नैना॥१॥

अथ बडे बलवान् रीछ और वानर प्रभु के चरणो मे सिर नवाते हैं और गरज रहे है। श्री रामजी ने वानरो की सारी सेना देखी। कमल से नेत्रवाले राम ने कृपा करके उन्हे देखा।

व्याख्या प्रभु वही है अत वानर रीछ गण उन्ही को नमस्कार कर रहे है। उनके सामने कोई भी नमस्य नही है। नावहि सीसा भक्ति मे और गर्जहि उत्साह से। आने मे वानर को पहिले कहा। गर्जने मे रीछो को पहिले कह रहे

है। महाबल शब्द देहलीदीपक न्याय से बानर और रीछ दोनो के साथ अन्वित है। द्विविद मयद नील नल अगदगद बिकटासि। दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवत बलरासि। इन अतुल बलो का गर्जन नही कहते। इन लोगो का गर्जन शत्रु के सम्मुख ही होता है। रामजी का पहिला देखना सेना विस्तार दर्शन परक है। दुसरादेखना कृपापरक है। कृपा करके देख रहे हैं इसलिए राजिवनयन पद आया है। यह अवलोकन मौलिक परिवर्तन मे समर्थ है। यथा . गरल सुधा रिपु करै मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई। गरुड सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही। इस कृपावलोकन का मद्य फल कहते हैं।

राम कृपा बलु पाइ कपिंदा। भए पच्छजुत मनहुँ गिरिंदा॥
हरखि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भए सुदर सुभ नाना॥२॥

अर्थ रामजी की कृपा का बल पाकर श्रेष्ठ वानर मानो पङ्खवाले बडे बड पर्वत हो गये। तब श्रीरामजी ने हर्षित होकर प्रस्थान किया। अनेक सुन्दर और शुभ शकुन हुए।

व्याख्या : रामजी की कृपा से उडने मे समर्थ हो गये। लङ्का पर चढाई करना है जिसके प्राकार पर चिडिया उडकर नही बैठ सकती। हनुमान्‌जी कहते हैं कि सम्पूर्ण वानरी सेना म केवल चार लङ्का पर चढ सकते हैं। यथा : चतुर्णामेव हि गतिर्वानराणा तरस्विनाम्। अत. उडने की सामर्थ्य दी गयी और राम कृपा कपि दल बल बाढा। जिमि तृन पाइ लाग अति डाढा। अत: गगनचारित्व तथा अपूर्व बल पाने से पक्षयुत पर्वत के समान हो गये अर्थात् निशाचरो से युद्ध करने म समर्थ हो गये।

कृपादृष्टि करि वृष्टि प्रभु अभय किये सुर वृद। सो वानरी सेना को पहिले ही अभय करके तब पयान किया। उस समय शकुन हुए जो देखने मे सुन्दर और फल देने मे शुभ थे। अनेक पकार के शुभ के विधान के लिए विधि नाना कहते हैं। यथा ' मगलमय कल्याणमय अभिमत फल दातार। सरकार के मन मे उत्साह है। इसलिए हरखि कहते है। मन में उत्साह होना अङ्गिरा के मत से यात्रा म शुभ है।

जासु सकल मगलमय कीती। तासु पयान सगुन यह नीती॥
प्रभु पयान जाना बैदेही। फरकि बाम अग जनु कहि देही॥३॥

अर्थ जिसकी सब कीर्ति मङ्गलमय है उसके प्रस्थान मे शकुन होना यह नीति है। प्रभु का प्रस्थान जानकीजी ने जान लिया। उनके बाम अग फडक फडककर मानो कह देते थे।

व्याख्या : सरकार का रूप मङ्गलमय यथा : श्याम सरीर सुभाय सुहावन। नाम मङ्गलमय यथा : नाम् जपत मगल दिसि दसहूँ। लीला मगलमय यथा : जासु सकल मगलमय कीती और धाम मगलमय है : रामपुरी मंगलमय पावनि। ऐसे क

प्रस्थान मे शकुन होना नीति है। अथवा उसका पयान ही सगुन है। सोभा कोटि मनोज लजावन। मंगलमय अति पावन पावन।

भगवती का वाम अंग बार बार फड़क रहा है। मानो कहे देता है कि सरकार चल पडे। वैदेही हैं प्रभु के ध्यान मे मग्न हैं। अतः उन्हे जानने के लिए बार बार सगुन हो रहा है। सरकार के मुख से सुन चुकी हैं कि सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी। अतः बार बार सगुन होने से समझ लिया कि मिलने के लिए सरकार ने प्रस्थान किया।

जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई। असगुन भयउ रावनहि सोई ॥
चला कटकु को बरनै पारा। गर्जहि बानर भालु अपारा ॥४॥

अर्थ : जानकीजी को जो जो सगुन हुए वही वही रावण के लिए अपशकुन हुए। सेना चली। उसका वर्णन कौन कर सकता है? वानर और रीछ अपार गर्जन कर रहे हैं।

व्याख्या : शकुन की कार्यकारिता दिखलाते हैं। विजय प्रस्थान मे शकुन और जहाँ के लिए प्रस्थान हो वहाँ अपशकुन हो रहा है। सीताजी के इष्ट से ही रावण का अनिष्ट है अथवा रावण के अनिष्ट से ही सीताजी का इष्ट है। अतः सीताजी को शकुन और रावण को अपशकुन हो रहा है। सोई का भाव यह कि वाम अङ्ग का फडकना स्त्री के लिए शुभ और पुरुष के लिए अशुभ है अथवा सीताजी को प्राणद शकुन और रावण को प्राणघातक अपशकुन हुए।

बानर कटक उमा मैं देखा। सो मूरख जो करन चह लेखा। गर्जहि भालु महाबल कीसा से गर्जन प्रारम्भ हुआ और गरजते ही चले जा रहे हैं। कुछ के गर्जन के समाप्त होने के पहिले दूसरों ने गर्जन प्रारम्भ कर दिये। अतः अपारा कहा। समुद्र की भाँति गर्जन करती सेना चली जा रही है।

नख आयुध गिरि पादपधारी। चले गगन महि इच्छाचारी ॥
केहरिनाद भालु कपि करही। डगमगाहि दिग्गज चिक्करही ॥५॥

अर्थ : नख ही जिनके शस्त्र हैं वे इच्छानुसार चलनेवाले पर्वत और वृक्षो को धारण किये कोई आकाश मार्ग से और कोई पृथ्वी पर चले जा रहे है। वे सिंह के समान गर्जना कर रहे हैं। उनके चलने और गर्जने से दिशाओ के हाथी विचलित होकर चिग्घाड़ रहे हैं।

व्याख्या : आकाश मे चलने की भी शक्ति सरकार के कृपावलोकन से हो गयी है। अतः इच्छाचारी हो गये। सो कोई कोई पाँव पाँव चल रहे हैं कोई कोई उड़ते जा रहे हैं। इस भाँति दो सेनायें चली। पृथ्वी से एक और आकाश से दूसरी। हथियार के नाम पर गिरि तरु और नख हैं। गिरि लेकर दूर से लडें। तरु लेकर निकट से और हाथ से हाथ मिलने पर नख से युद्ध करें। यथा : धरि गाल फारहि उर बिदारहि गल अतावरि मेलही।

गर्जन के उपक्रम मे वानरो की प्रधानता और उपसहार मे भालुओ की। इधर सेना का हलचल उधर घोर अपार गर्जन। अत दिग्गजो को आतङ्क हुआ। वे भी चिग्घाडने लगे। शब्द और भी बढा। सिंहनाद से गज को भय होता ही है।

छ चिक्करहिं[1] दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे।
मन हरष दिनकर सोम सुर मुनि नाग किंनर दुख टरे॥
कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावही।
जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुन गन गावही॥१॥

अर्थ दिशाओ के हाथी चिग्घाडने लगे। पृथ्वी डोलने लगी। पर्वत चञ्चल हो गये। समुद्र खलबला उठे। सूर्य चन्द्र के मन मे हर्ष हुआ। देवता मुनि नाग और किन्नर के दुःख टल गये। अनेको करोड भयानक वानर योद्धा कटकटा रहे हैं और दौड रहे हैं। प्रबल प्रताप कोशलनाथ रामजी की जय हो। ऐसा पुकारते हुए उनके गुणगण का गान कर रहे हैं।

व्याख्या दिग्गज का चिग्घाड पहले और भूकम्प उसके बाद होता है। भयानक भूकम्प म ऐसी बात होती है। पिछले भूकम्प म ऐसा ही देखा गया। पहिले बडा भारी शब्द पृथ्वी म हुआ। उसके बाद पृथ्वी डोली। पृथ्वी के डोलने पर पर्वतो का हिलना और समुद्र म खरभर होना स्वाभाविक है।

तब बलनाथ डोल नित धरनी। तेजहीन पावक ससि तरनी। अत शशि तरणी सूर्य को पुन तेजस्विता प्राप्ति की आशा से हर्ष है। यहाँ सूर्य म ही अग्नि का अन्तर्भाव कर लिया। किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पर्यहि लागा। अत लिखते हैं कि इनके दुःख टल गये। पर्यहि लागा का अर्थ ही यह है कि अनेक प्रकार से दुःख देता था। निश्चय होनहार की आशा स भूतकाल का प्रयोग किया। पृथ्वी का डोलना आदि विपत्ति है। पर यह डोलना रामजी की सेना के उत्कर्ष का द्योतक है। अत सुखद है।

अब भूकम्प आदि का कारण कहते है। पहाड ऐसे विशालकाय करोडो वीरो का एक साथ दौडना ही इसका कारण है। पहले गर्जन कहा था। अब कटकटाना कहते हैं। रावण के प्रति क्रोध बढता जा रहा है। यथा कटकटाइ गरजा अरु धावा। रास्ता जल्द तय करने के लिए सेना दौडती चली जा रही है। सेना बहुत थोडा रास्ता चलती है पर यहा यह बात नहीं है। क्योंकि वानर वीरो को अपने श्रान्त होने का भय नहीं है और लङ्का पहुँचने का बडा उत्साह है। जब से रावण का राज्य हुआ तब स लङ्का पर धावा करना देवताओ को भी मन से अशक्य था। सो वानरी सेना उस पर धावा करने के लिए घर स ही दौडती चली जा रही है।

---

१ यह हरिगीतिका छन्द है।

अपने मे अटूट बल और उड़ने की शक्ति पाकर सरकार के प्रबल प्रताप का जय जयकार कर रहे हैं। कोसलनाथ कहकर सरकार को लोक विख्यात धनुर्धर कहा। यथा कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता। धन्वी सकल लोक विख्याता। सरकार के वीरोचित गुणगणो का गान कर रहे हैं। सरकार और लक्ष्मणजी क्रमश हनुमान्‌जी और अगदजी के कन्धो पर चढे हुए सेना के मध्य भाग मे चले जा रहे हैं और चारो ओर जय जयकार होता चला जा रहा है।

छं. सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहि मोहई।
गह दसन पुनि पुनि कमठ पृष्ठ कठोर सो किमि सोहई ॥
रघुबीर रुचिर पयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी।
जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी ॥२॥

अर्थ : उदार सर्पराज शेष भी सेना का बोझ सह नही सकते। वे बार बार मोहित हो जाते हैं और पुन पुन कच्छप की कठोर पीठ को दाँतो से पकडते हैं। मानो रघुवीर की सुन्दर यात्रा के प्रस्थान को परम सुहावन जानकर उसकी अचल पवित्र कथा को सपराज शेपजी कच्छप की पीठ पर लिख रहे हो।

व्याख्या सकल जगत् का आधार होने से अहिपति शेपजी को उदार कहा। अथवा असह्य भार को वहन कर रहे हैं इसलिए उदार हैं। उन्हे भी अति परिश्रम से बार बार चक्कर आ रहा है पर बडे उदार है। उस समय भी लोकहित का ध्यान बना हुआ है। मेरे चक्कर आने से भी पृथ्वी क्यो अपने स्थान से विचलित हो। अत अपने आधार कच्छप की पीठ को दाँत से पकडते हैं। पर वह पीठ बडी कडी है मन्दर के पीठ पर घूमने से कच्छप भगवान् ने कण्डूयन का सुख अनुभव करके आँखें मीच ली थी और चौरस है पकड मे आती नही, दाँत छलक जाता है। फिर दूसरी जगह पकडते है फिर छलकता है उसी की शोभा कहते है कि विजय प्रयाण तो बहुत हुए पर ऐसा रुचिर प्रयाण कोई नही हुआ। लङ्का सा अजेय दुर्ग और रावण से प्रबल शत्रु पर चढाई हो रही है। वानरो की सेना साथ लेकर तीन लोक के आर्ति हरण के लिए यह प्रयाण है और वानरी सेना के बीच मे हनुमान् अगद के कन्धो पर सवार दोनो सरकारो की अद्भुत झाँकी है। इन कारणो से यह प्रयाण ऐसा अलौकिक है कि उसकी प्रस्थिति लिखी जानी चाहिए।

ऐसी पावनी प्रस्थिति के लिखने के लिए वैसी ही सामग्री चाहिए जिसमे वह प्रस्थिति टिकाऊ हो। इसीलिए ऐसी बातें लोग पत्थरो पर खुदवाते हैं। यहाँ कमठ की पीठ पर मानो सपराज अपने दाँतो से लिख रहे हैं। कमठ के पीठो पर जो लकीरें पाई जाती है वे मानो उसी लिखावट की छाप हैं। कमठ के पृष्ठ पर लिखा हुआ कभी मिटेगा नही और कच्छप कही जानेवाले भी नही हैं।

दो. एहि बिधि जाइ कृपानिधि, उतरे सागर तीर।
जहँ तहँ लागे खान फल, भालु बिपुल कपि बीर ॥३५॥

अर्थ इस प्रकार कृपानिधि समुद्रतट पर जा उतरे। बहुत से वार रीछ और वानर जहाँ तहाँ फल खाने लगे।

व्याख्या : जो सेना चली तो उसने बीच मे कही विश्राम नही किया। रात दिन कूच करती हुई प्रवर्षण गिरि से समुद्रतट तक चली गयी। कृपानिधि है विभीषण तथा सागर पर कृपा करनी है। अतः समुद्र तीर पर उतरे। रसद साथ नही है पर फलो की बहुतायत है। यथा : सब तरु फरे राम हित लागी। रितु अरु कुरितु कालगति त्यागी। कपि फल खाने लगे। यह किसी ने ख्याल न किया कि मालिक ने कुछ खाया या नही। अथवा भालु कपि वीर हैं। समुद्र देखकर डरे नही कि इसे पार कैसे करेंगे ? लगे फल खाने। जहाँ से कथा उठायी थो वही पहुँचा दिया। नाघि सिंधु एहि पारहि आवा से कथा उठी और उतरे सागरतीर जाकर रुकी।

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब से जारि गयउ कपि लका ॥
निज निज गृह सब करहिं बिचारा। नहिं निसिचर कुल केर उबारा ॥१॥

अर्थ : जब से हनुमान्‌जी लङ्का जलाकर गये तब से वहाँ राक्षस सशक रहने लगे। अपने अपने घरो मे सब विचार करते है कि अब राक्षसकुल का कुशल नही है।

व्याख्या . यहाँ का हाल कहकर अब कवि वहाँ : जहाँ पर कवि नही है तहाँ : का हाल कहते है। ग्रन्थभर मे यहाँ वहाँ शब्दो का प्रयाग इस बात को ध्यान रखकर किया गया है कि कवि की उपस्थिति कहाँ पर है। कवि अपने आराध्य देव रामजी के साथ हैं। अतः लङ्का के लिए वहाँ शब्द का प्रयोग किया।

चलत महाधुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्त्रवहिं सुनि निसिचर नारी। स्त्रियाँ इतनी डरी हुई हैं कि उन्हे गर्भ नही ठहरता। जा था वह गिर गया। अब पुरुषो का हाल कहते हैं कि वे सब भो लङ्का जलने के बाद से सशङ्क रहने लगे। इसके पहिले अशक रहते थे कि यहाँ कौन आ सकता है। रावण ने सहज अगम जानकर ही उसे राजधानी बनाया था। यथा : सुन्दर सहज अगम अनुमानी। कीन्ह तहाँ रावन रजधानी। सशंक रहने का कारण यह कि हनुमान्‌जी को न किसी ने आते देखा न जाते। अकस्मात् अशोक वाटिका मे प्रकट हो गये। फिर कब कहाँ प्रकट हो जावेंगे इसका क्या ठिकाना !

घर के बाहर रावण के डर से विचार नही करते। कही कोई गुप्तचर खबर न कर दे। क्योकि लङ्का मे रावण के अनेक गुप्तचर छूटे रहते हैं जो अनेक वेप धारण किये हुए नगर भर का भेद रावण तक पहुँचाया करते हैं। इन गुप्तचरो के भय से घर के बाहर कोई ऐसी बात नही करने पाता जो रावण को अप्रिय हो। अतः सभी राक्षस एक ही बात विचार करते हैं : पर घर के भीतर : कि रावण के अपराध से राक्षसकुल ही नष्ट हुआ चाहता है। बचने का कोई उपाय नही मालूम होता।

जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आये पुर कवनि भलाई॥

मन्दोदरी का रावण को समझाना

दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। मदोदरी अधिक अकुलानी॥२॥

अर्थ : जिसके दूत के बल का वर्णन नही हो सकता उसके नगर मे आने पर कौन भलाई है। दूतियो के मुख से नगरवासियो के वचन को सुनकर मन्दोदरी अधिक व्याकुल हो उठी।

व्याख्या : जिसके दूत के ही बल का पारावार नही है बारिध नाघि एक कपि आवा। तासु चरित मन महु सब गावा उसका पूरा वर्णन कोई कर नही सकता। वह सीता को देखकर यहाँ से गया है। अब उसका मालिक आवेगा। रावण की उत्कण्ठा पूरी हुए बिना न रहेगी : पूँछ हीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नार्थाह लै आइहि : तब न जाने क्या होगा। सब दुर्दशा तो दूत ने ही कर डाली। भाव यह है कि लङ्का म कोई ऐसा नही जिसे ऐसे बलवान् से युद्ध के लिए उत्साह हो : लका नहि खात कोउ भात रांधो।

बाहर बातचीत नही हुई। इसलिए रावण के दूतो ने नही सुना। घर के भीतर की बात है। अत दूतियो ने सब जानकर मन्दोदरी को खबर दे दी। रानी मन्दोदरी राजकार्य मे हाथ बँटाती है। जिस भाँति रावण की ओर से दूत छूटे रहते है उसी भाँति रानी मन्दोदरी की दूतियाँ भेद लेने के लिए छूटी रहती हैं। स्त्रियो मे बात बहुत जल्द फूटती है। आकुल तो सभी स्त्रियाँ हो गयी थी। पर प्रजा मात्र की आकुलता सुनकर मन्दोदरी अधिक आकुल हो उठी। क्योकि आपत्ति की धार तो सीधे उसी पर पडनेवाली थी। उसी का लडका अक्ष हनुमान्जी के हाथ से मारा गया था।

रहसि जोरि कर पति पद लागी। बोली बचन नीति रस पागी॥
कत करष हरिसन परिहरहू। मोर कहा अति हित हिय धरहू॥३॥

अर्थ : एकान्त मे हाथ जोडकर पति के चरणो मे गिरी और नीति रस मे पगी हुई वाणी बोली। हे कन्त! हरि से विरोध छोड दीजिये। मेरे अत्यन्त हितकर कहने को हृदय मे धारण कीजिये।

व्याख्या : अभिमानी दस आदमी के बीच मे तो किसी का सिखावन सुनेगा ही नही। एकान्त मे भी सिखावन के रूप मे किसी के बात को स्वीकार करना असम्भव है। अत. मन्दोदरी एकान्त मे सिखावन न देकर विनय करती है। अत. हाथ जोडकर पैर पर गिरी और अपने विनती के स्वीकृति के लिए प्रार्थना की। विनती करते हुए कहती है कि मैं जानती हूँ कि स्त्रीहरण तुमने आसक्ति के कारण नही किया है। सीताहरण का कारण वैर है। यथा सूपनखहि समुझाइ करि बल बोलेसि बहु भाँति। गयउ भवन अति सोच बस नीद परी नहि राति। सो उस

रात मे रावण को नीद नही आना मन्दोदरी से छिपा नही है। उसी के दूसरे दिन सीताहरण होता है। स्पष्ट है कि सूर्पणखा नासिकाछेदन का बदला सीताहरण करके आप चुका रहे हैं। अतः मेरी विनती है। आप हरि से वैर छोड दीजिये। क्योंकि वे हरि हैं। सबके दु खो का वही हरण करते हैं। साक्षात् भगवान् हैं ' उनसे वैर छोडने मे ही कल्याण है। दूसरा भाव यह है कि वे हरि हैं। सूर्पणखा को भी उन्होने दु ख देना नही चाहा। इसमे सूर्पणखा का ही अपराध होगा। वे किसी से वैर करनेवाले नहीं हैं। आप उनसे वैर कर रहे हैं सो वैर छोड दीजिये।

अथवा रामजी हरि : सिंह हैं। उनका डर स्वय रावण को ही कम नही है : जाके डर सुर असुर डेराही। निसि न नीद दिन अन्न न खाही। सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितै चला भड़िहाईं। इसीलिए चोरी से हरण किया।

मन्दोदरी कहती है कि मेरी बात मुँह देखी कहनेवालो की बात नही है। मेरी बात अतिहित है। इससे दोनो लोको का कल्याण सधेगा। इसे हृदय मे धारण कर लो। बाहर से मेरे ऊपर चाहे अप्रसन्नता ही दिखलाओ। कहो कि मैं इसके रोने गाने से लाचार हो गया हूँ। ले जाओ सीता को उस तपस्वी के पास पहुँचा दो।

समुझत जासु दूत कइ करनी। स्रवहिं गर्भ रजनीचर धरनी ॥
तासु नारि निज सचिव बोलाई। पठवहु कंत जो चहहु भलाई ॥४॥

अर्थ · जिसके दूत की करणी समझकर राक्षसो की स्त्रियो का गर्भपात होता जा रहा है। हे कन्त ! यदि भला चाहते हो तो अपने मन्त्री को बुलाकर उनकी स्त्री को भेज दो।

व्याख्या : लङ्कादाह का स्मरण करके निशाचरियो के गर्भ गिरते जा रहे हैं। हनुमान् चलते समय जो गर्जा उससे बहुत गर्भ गिरे। तब से नित्य समाचार मिलता है कि आज नगर में इतने गर्भ गिरे। सम्पूर्ण लङ्का भयभीत है। उसके मालिक के आने के भय स सम्पूर्ण नगर विचलित हो उठा है। मन्दोदरी बडी बुद्धिमती है। गर्भ गिरने का आड लेकर नगर मे भय के सञ्चार का हाल कहती है। यह नही कहती कि मुझे दूतियो से खबर मिली है। रावण के स्वभाव से परिचित है। जानती है कि तुरन्त वह दूती बुलायी जायगी और जिससे जिससे उसने सुना है उनकी न जाने कौन दुर्दशा रावण करेंगे। अतः नगर के भयभीत होने के प्रमाण मे लङ्का मे गर्भपात की बहुतायत बतला रही है और कहती है कि यही मेरे सामने अपने मन्त्री को बुलवाओ। ससार जाने कि रानी मन्दोदरी के अनुनय विनय पर रावण मान गये। मन्त्री के साथ सीता को भेज दो। सीता उनके पास चली जावेंगी तो ने क्यों आवेंगे। सीता के जाते ही नगर के लोग स्वस्थ हो जावेंगे। प्रजा के भय का दूर करना राजा का धर्म है।

तव कुल कमल बिपिन दुखदाई। सीता सीत निसा सम आई ॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हे। हित न तुम्हार संभु अज कीन्हे ॥५॥

अर्थ : आपके कुलरूपी कमल वन को दुःख देनेवाली जाड़े की रात के समान सीता आयी है। हे नाथ! सुनिये सीता को दिये विना शम्भु और ब्रह्मा के किये भी आपका भला नही हो सकता।

व्याख्या : आप समझते हैं कि सीता को मै हरण करके लाया हूँ पर बात ऐसी नही है। आपका कुल इस समय कमल वन की भाँति विकसित हो रहा है। उसके नाश के लिए यह सीता हिम की रात्रि होकर स्वय आयी है। यह केवल तुम्हारे ही निधान से तुष्ट नही है पूरे कुल का संहार चाहती है। यदि कहिए कि निज भुज बल मै बैर बढ़ावा। इस पर कहती है कि आपके दो ही हितु हैं। इन्ही का आपको बल है। शङ्कर और ब्रह्मा। सो बिना सीता के दिये वे भी आप का कल्याण नही कर सकते। सीता के दे देने पर ही आपकी ये रक्षा कर सकते है। दूसरों का किया क्या होगा? यथा : सकर सहस विष्णु अज तोही। सकहि न राखि राम कर द्रोही। भाव यह कि आप अपनी रक्षा क्या करेंगे? आपके इष्टदेव भी रक्षा नही कर सकते।

दो. राम बान अहि गन सरिस, निकर निसाचर भेक ॥
जब लगि ग्रसत न तब लगि, जतनु करहु तजि टेक ॥३६॥

अर्थ : रामजी के बाण सर्पों के समान और राक्षसो के समूह मेढको के समान हैं। जब तक ये नही ग्रसते तब तक हठ छोड़कर यत्न कर लो।

निशाचर मेढक हैं। कभी राम गुन गान नही करते। यथा : जो नहिं करहि राम गुन गाना। जीह सो दादुर जीह समाना। इनके लिए राम बाण सर्प हैं। यथा : राम मारगन गन चले लहलहात जनु ब्याल। मेढक सर्प के भक्ष्य हैं। इसी भाँति ये राक्षस रामबाण की खुराक हैं। ये अपने भक्ष्य को खोजा करते हैं। सर्प के ग्रसने के पहिले ही मेढक को उचित है कि अपने बचने का उपाय कर ले। हठ करने से सर्प का ग्रास बनना पडेगा। अत: मैं यत्न बतलाती हूँ उसे अवश्य करना चाहिए। देखिये जन स्थान म अकेले ने कितने निशाचरो का संहार किया।

श्रवन सुनी सठ ता करि बानी। बिहँसा जगत बिदित अभिमानी ॥
सभय सुभाव नारि कर साँचा। मंगल महु भय मन अति काँचा ॥१॥

अर्थ : शठ ने उसकी वाणी कान से सुनी। तो वह जगत् प्रसिद्ध अभिमानी खूब हँसा : बोला सचमुच स्त्रियो का स्वभाव बड़ा डरपोक होता है। मङ्गल मे उन्हे भय होता है। क्योकि उनका मन अत्यन्त कच्चा होता है।

व्याख्या : कान से बात सुन ली। मन मे न लाया। क्योकि शठ है और शठ से विनय करना व्यर्थ है। यथा :

सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती।
सहज कृपिन सन सुन्दर नीती ॥

ममतारत सन ग्यान कहानी।
अति लोभी सन विरति बखानी।।
क्रोधिहि सम कामिहि हरिमथा।
ऊसर बीज बए फल जथा।।

लोग आजतक कहते हैं कि अमुक को रावण सा अभिमान है। अत रावण का अभिमान जगत् प्रसिद्ध है। बडे जोरो से हँसा कि यह जन्मभर मेरे साथ रही और मेरे प्रभाव को जान न सकी। कहता है कि सच्ची डरपोक स्त्रियाँ ही होती हैं। कहाँ लङ्का मे मङ्गल उपस्थित है गृह बैठे अहार विधि दीन्हा। जौ आवै मरकट कटकाई। जिअँहि बिचारे निसिचर खाई और कहाँ यह अपना मन कच्चा कर रही है। झूठे डर से डरे वह कच्चा डरपोक। सच्चा डरपोक तो वही है जो मङ्गल उपस्थित होने पर अधीर हो जाय। अति काँचा कहने का भाव यह कि केवल डरी ही नही है। नर वानर के न आने देने के लिए अनुनय विनय करती है। जब इसका यह हाल है तब अन्य स्त्रियो का गर्भ गिरना ही चाहिए।

जौ आवै मरकट कटकाई। जियहि बिचारे निसिचर खाई।।
कपहिं लोकप जाकी त्रासा। तासु नारि सभीत बडि हासा।।२।।

अर्थ जो कही वानरो की सेना आजाय तो विचारे राक्षस खाकर जी जायँ। जिसके डर से लोकपाल काँपते हैं उसकी स्त्री डरती हो यह बडे हँसी की बात है।

व्याख्या अब रावण अपने हँसने का कारण कहते है कि मेरे राक्षस भूखे पडे है। यथा क्षुधावन्त सब निसिचर मेरे। बाहर से रसद मँगाते मै हैरान हूँ। इन्हे खाने के लिए नर वानर चाहिए। यहाँ नर वानर कहाँ ? इसलिए समुद्र पार से मँगाना पडता है। यथा कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छही। यहाँ वन्दर का सेना के आन की कौन सी आशा है। यदि कही भाग्य से आगयी ता मेरे भुक्खड राक्षस खाकर जी जावेंगे। अत मर्कट कटकाइ का आना मङ्गल है।

लोकपालो का भयरूप तो मैं हूँ। यथा जनि जल्पसि जड जन्तु कपि सठ बिलोकु मम बाहु। लोकपाल बल विपुल ससि ग्रसन हेतु सब राहु। तू मेरी स्त्री है। मै मौजूद हूँ। तेरे डरने का क्या कारण है ? भला दुनिया क्या कहेगी ? निशाचरिया का गर्भ गिरना ही हँसी की बात है। तेरा डर जाना तो बडी हँसी की बात है।

अस कहि विहँसि ताहि उर लाई। चलेउ सभा ममता अधिकाई।।
मदोदरी हृदय कर चिंता। भयउ कत पर विधि विपरीता।।३।।

अर्थ ऐसा कहकर और हँसकर उसे हृदय स लगा लिया और सभा मे

चला। ममता और बढ गयी। मन्दोदरी चिन्ता करने लगी कि कन्त पर विधाता प्रतिकूल हो गये।

व्याख्या : रावण ने केवल शब्द से ही नही कहा कि तासु नारि सभीत बड़ि हांसा। आप हँस भी पड़े। बिहँसा नारि बचन सुनि काना। से उपक्रम और अस कहि बिहँसि से उपसंहार। वह पैर पड़ी थी। अतः आदर के लिए उसे हृदय से लगा लिया। स्त्री के आलिङ्गन से ममता की अभिवृद्धि हुई। यथा : पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई।

रावण किसी की न सुनें पर मन्दोदरी की सुनते थे। आज उसकी भी नही सुन रहे है। अतः अनुमान करती है कि विधि विपरीत भलाई नाही। क सुखं तनोतीति कन्तः। सुख देने वाले पर ब्रह्म के विपरीत होने की चिन्ता होना स्वाभाविक है। एक बन्दर ने यह दुर्दशा की सो बानरी सेना का आना प्रिय मालूम हो रहा है।

रावण की सभा

बैठेउ सभाँ खबरि असि पाई। सिन्धु पार सेना सब आई॥
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू॥४॥
जितेहु [1]सुरासुर तब श्रम नाही। नर बानर केहि लेखे माही॥५॥

अर्थ : सभा मे जाकर बैठा। समाचार मिला कि सारी सेना समुद्र के उस पार आगयी। मन्त्रियो से पूछा कि उचित सम्मति दो। तब वे सब हँसे और बोले कि चुप रहिये : उन्हे इस पर चले आने दीजिये : आपने देवता और असुरों को जीता तब तो कुछ श्रम हुआ ही नही। फिर मनुष्य और वानर किस गिनती मे हं ?

व्याख्या : रावण सभा की ओर चले। इस बीच मे कवि ने मन्दोदरी का स्वगत विचार कहा। अब रावण का सभा मे जाकर बैठना कहते है। जब से लकादाह हुआ है तब से और राजकाज बन्द है। लका की मरम्मत हो रही है और चरो द्वारा खबर ली जा रही है। सो सभा मे आते ही समाचार मिला कि उस पार सारी बानरी सेना आगयो। कहने का अभिप्राय यह कि सेना बड़ी भारी है।

सेना आजाने पर दो ही मार्ग है। या तो स्वयं तैयार होकर उसके धावा की प्रतीक्षा की जाय या स्वय उसपर धावा बोल दिया जाय। अतः रावण मन्त्रियो से पूछते हैं कि इन दोनो उपायो मे कौन सा उचित है। सो तुम लोग बतलाओ : सरस्वती कहती हैं कि उचित मत कहहू : उचित न कहो। सो वही हुआ। मन्त्रियो को पता है कि रावण बानरी सेना पर हँसते हैं। अतः उसको प्रिय लगने के लिए वे भी हँसे और कहा कि चुपके रहिये। यहाँ चले आने दीजिये। छेड़छाड़ करने से वे भाग जायँगे।

---

१. यहाँ काव्यार्थापत्ति : अलङ्कार है।

यदि यह कहा जाय कि उनके समुद्र पार करने मे ही बाधा करना प्राप्त है। थोडे ही श्रम मे काम चल जायगा तो इसपर कहते हैं कि आपने सुरासुर को जीता और श्रम न हुआ। इनके जीतने मे कौन सा श्रम है ? नर कपि भालु अहार हमारा। यह सेना तो हमलोगो की भक्ष्य है। भक्ष्य आपसे आप मुँह मे चला आ रहा है। उसे आने दीजिए।

दो. सचिव बैद गुर तीन जौ, प्रिय बोलहि भय आस
राज धर्म तन तीनि कर, होइ बेगिही नास ॥३७॥

अर्थ · मन्त्री वैद्य और गुरु ये तीन यदि अप्रसन्नता के भय या लाभ की आशा से प्रिय बोलते हैं तो क्रमश राज्य शरीर और धर्म का शीघ्र ही नाश हो जाता है।

व्याख्या यहाँ प्रकरण केवल सचिव का है। रावण के यहाँ सचिव केवल राज्याङ्ग समझकर रक्खे गये हैं। उनकी सुनवाई कभी नही होती। मडलीक मनि रावन राज करै निज मन्त्र। अत स्वतन्त्र मन्त्र देने का उन्हे साहस नही है। वे भयभीत रहते हैं कि उचित कहने पर रावण का कोपभाजन होना पडेगा। जबतक रामजी न आजायँ कम से कम तबतक तो जीने की आशा है। उचित कहने पर तो अभी मारेगा। रावण ने सम्मति पूछने के समय बहुत बडा अवकाश मन्त्रियो को दिया था कि जो उचित हो सो कहा। ऐसे अवसर पर वे सीताजी के देने की भी सम्मति दे सकते थे और यही उन सबो की रुचि भी थी। यथा निज निज गृह सब करहिं बिचारा। नहिं निसिचर कुल केर उबारा। पर प्राणभय से उन सबो ने प्रकट नही कहा। राज धर्म और तन तीन मे क्रम न होने से क्रम नही दिया। एक-एक के प्रिय बोलने से तीनो का नाश होता है।

सोइ रावन कहुँ बनी सहाई। अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई॥
अवसर जानि बिभीषनु आवा। भ्राता चरन सीसु तेहि नावा॥१॥

अर्थ . रावण को वही सहायता आ मिली। सब उसे सुना सुनाकर स्तुति करते हैं। अवसर जानकर विभीषणजी आये। बडे भाई के चरणो मे सिर नवाया।

व्याख्या · तुलसी जसि भवितव्यता तैसइ मिलै सहाय। मन्त्री ऐसे मिले हैं। वैद्य सुषेणजी मिले हैं · जिन्होने लक्ष्मणजी को औषध बतलाकर स्वस्थ किया और गुरुजी का यह हाल है कि करत राम बिरोध तेहि सपनेहु न हटक्यो ईस। रावण सबके रुलाने वाले हैं। इनका नाश प्रिय वाणी से हुआ। सब मन्त्री सुना सुनाकर स्तुति करते है। अनसुनी स्तुति व्यर्थ समझते हैं। सुनेंगे तब रावण प्रसन्न होगे।

पुलस्त्य ऋषि के सन्देश कहने का अवसर जानकर अथवा इस समय पर युद्ध के लिए विचार हो रहा है जाने पर अवश्य मुझसे राय पूछेंगे यह जानकर विभीषण रावण के पास आये। ज्येष्ठ भ्राता होने से प्रणाम किया, राजा-बुद्धि से नही। विभीषणजी दरबार मे बराबर हाजिर नही रहते। पर खबर एक एक बात

को रखते हैं। बात बिगड़ती देखकर पहुँच जाते हैं। यथा : सुनत निसाचर मारन धाए। सचिवन्ह सहित बिभीषण आये। भ्राता शब्द से विभीषणजी की प्रीति कही।

पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन। बोला बचन पाइ अनुसासन ॥
जौं कृपाल पूछेहु मोहि बाता। मति अनुरूप कहौं हित ताता ॥२॥

अर्थ : फिर सिर नवाकर अपने आसन पर बैठे और आज्ञा पाकर वचन बोले : हे कृपालु ! जब आपने मुझसे बात पूछी है। तो हे तात ! तो मैं अपनी बुद्धि के अनुसार हित की बात कहता हूँ।

व्याख्या : आसन पर बैठने का दूसरा प्रणाम। दरबार में सबके लिए आसन नियत है। विभीषणजी की अनुपस्थिति में उनका आसन खाली रहता है। बड़े का अनुशासन और छोटे का विनय करना यही रीति है। सबकी सम्मति ली जाने पर भी इनकी सम्मति पूछी गयी। मन्दोदरी के कथन से कुछ रावण प्रभावित हैं अत: मन्त्रियों से कहा उचित : मत कहहू। रावण जानते हैं कि मुँह देखी बात कहते हैं। इसलिए स्वच्छन्द सम्मति प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। फिर भी उन सबों की राय उसके मन में जमी नहीं। अत विभीषणजी से भी राय पूछता है।

विभीषणजी के आने में बैठने में बोलने में सब में सज्जनता भरी है। छोटे से सम्मति पूछना बड़े की कृपा है। अत. विभीषणजी कृपाल सम्बोधन करते हैं। दूसरा भाव यह है कि जिस भाँति कृपा करके पूछा उसी भाँति कृपा करके मान भी जाइये। मति अनुरूप कहने का भाव यह कि मैं आपको उपदेश देने योग्य नहीं हूँ। जितनी बुद्धि है तदनुसार कहूँगा। कुछ त्रुटि हो जाय तो कृपा करके क्षमा कीजियेगा। भीतरी बात यह है कि मैं तो सुजस सुमति सुभगति सुख नानावाली सम्मति दूँगा। केवल शुभगतिवाली सम्मति नहीं। दोनों भाइयों की सम्मति में यही मौलिक भेद है। एक को सुजस सुमति शुभगति चाहिए। दूसरा किसी भाँति केवल सुगति चाहता है।

जो आपन चाहइ कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना ॥
सो पर नारि लिलारु गोसाईं। तजौ चौथि के चंद कि नाईं ॥३॥

अर्थ : जो मनुष्य अपना कल्याण, सुन्दरयश, सुबुद्धि, शुभगति और नाना प्रकार के सुख चाहता हो, वह हे स्वामी ! पर स्त्री के ललाट को चौथ के चन्द्रमा की भाँति त्याग दे।

व्याख्या : पुलस्त्यजी का सदेसा समयोचित होने से अपने शब्दों में कहते हैं। साधारण नियम यही है कि अपना अकल्याण चाहने वाला चाहे जैसा करे। पर जो कल्याण चाहता है उसके लिए चेतावनी है। कल्याण का ही विवरण करते हैं। सुयश से धर्म कहा। यथा : पावन जसु कि पुन्य बिनु होई : सुमति से अर्थ कहा। यथा : जहाँ सुमति तहँ संपति नाना . शुभगति से मोक्ष कहा और सुख नाना से काम कहा। ये ही चारों पदार्थ कल्याण हैं।

श्रीकृष्ण भगवान् ने चौथ का चन्दा देखा था। सो उन्हे झूठा कलङ्क लगा। स्त्री के ललाट की भी आकृति चौथ के चांद सी होती है। सो परस्त्री के ललाट की ओर आँख उठाकर देखने से झूठा कलक लगता है। अत कल्याणेप्सु उस ओर आँख उठाकर न देखे। सुयश का नाश यथा कामी पुनि कि होइ अकलका। बुद्धि का नाश यथा : बुधिबल सील सत्य सब मीना। बन्सी सम तिय कहहि प्रवीना। शुभगति का नाश यथा : सुभगति पावकि पर तियगामी। सुख का नाश यथा अवगुन मूल सूल प्रद प्रमदा सब दुख खानि। इससे धर्मविरुद्ध काम का निषेध किया।

चौदह भुवन एक पति होई। भूत द्रोह तिष्ठै नहिं सोई॥
गुन सागर नागर नर जोऊ। अलप लोभ भल कहइ न कोऊ॥४॥

अर्थ : चौदहो भुवनो का अकेला स्वामी हो। फिर भी वह जीवमात्र से द्रोह करके ठहर नही सकता। जो मनुष्य गुणो का समुद्र और चतुर हो उसे भी यदि अल्प लोभ हो तो कोई भला नही कहता।

व्याख्या चौदहों भुवन का अकेला मालिक होना बडा दुर्लभ है। पर मान लीजिये कि यदि कोई ऐसा हो और वह मद मे आकर भूतद्रोह मे लग जाय तो इस पाप से वह ठहर नही सकता। क्योकि भूत द्रोह बडा भारी पाप है। यथा ' विश्वद्रोह कृत अघ जेहि लागा। इधर किन्नर सिद्ध मनुज सुरनागा। हठि सबही के पर्थहि लागा। आप ने भूतद्रोह को अपना रखा है। रामजी से हठ करके वैर किया है। यह पतन का लक्षण है : इससे मद और क्रोध का निषेध किया।

कोई कोई दोष ऐसे हैं जो गुणाधिक्य के सामने गिने नही जाते। पर लोभ ऐसा दोष है कि गुणसागर नागर पुरुष भी अल्प लोभ से दुर्यश को प्राप्त होता है। यथा . लोभी जसु चह चार गुमानी। अत. कीर्ति के लिए लोभ विष है। तुम्हारा यह हाल है कि सोने की लका से पेट न भरा। साक्षात् लक्ष्मी को ही उठा लाये। इससे लोभ का निषेध करते हैं।

दो. काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहि, भजहु भजहिं जेहि संत॥३८॥

अर्थ : हे नाथ ! काम क्रोध मद और लोभ ये सब नरक के मार्ग हैं। इन सबको छोड़कर श्री रघुवीर को भजिये जिन्हे सन्त भजते हैं।

व्याख्या : त्रिविध नरकस्येद द्वार नाशनमात्मनः। कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रय त्यजेत्। नरक के तीन द्वार हैं : काम क्रोध और लोभ। इनसे अपना नाश होता है। इसलिए इनका परित्याग करना चाहिए। मद का क्रोध मे अन्तर्भाव करके तीन ही कहा। नरकपथ छोडकर भक्तिपथ ग्रहण का विभीषणजी उपदेश देते हैं कि सब ओर से चित्त को मोड़कर रघुवीर को भजो जिन्हे सन्त भजते हैं। सन्त कहने का भाव यह कि हमारे बाप दादा सन्त है उनके मार्ग का

अनुसरण करो। नगर के पथ सन्त मे वैषम्य के कारण तुकान्त मे भी विषम हो दिया।

तात रामु नहिं नर भूपाला। भुवनेश्वर कालहु कर काला॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। व्यापक अजित अनादि अनंता॥१॥

अर्थ हे तात! रामजी मनुष्य राजा नही है। ये भुवनेश्वर काल के भी काल हैं। ये ब्रह्म विकार रहित जन्म रहित भगवान् हैं। व्यापक अजित अनादि और अनन्त हैं।

व्याख्या रावण की सरकार के प्रति सशयात्मिका बुद्धि थी। यथा जौ नर रूप भूप सुत कोऊ। हरिहौ नारि जीति रन दोऊ। उसी के हटाने के लिए विभीषणजी कहते है कि नर की भाँति प्रतीत होते है पर है नही। भूपाल भी नही हैं। भुवनेश्वर हैं यथा भुवन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू। काल के भी काल हैं। यथा काल व्याल कर भच्छक जोई। इससे देश और काल दोनो का प्रभु कहा। अनामय ब्रह्म कहकर निरतिशय महत्ता कही। अजभगवन्त कहकर अवतार दिव्य जन्म कहा। व्यापक कहकर सर्वाधार कहा। सर्वाधार का कोई कैसे जीत सकता है? जिसका आदि अन्त हो वही बाधा देता है और बाधा पाता है। अनादि अनन्त पदार्थ न बाधा दे और न बाधा पावे। उसके जीतने के विषय मे प्रश्न ही नही बन सकता। यहाँ अनेक विशेषणो से निर्गुण का निरूपण किया।

गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपासिंधु मानुष तनु धारी॥
जन रंजन भंजन खल ब्राता। बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता॥२॥

अर्थ उन कृपा के समुद्र भगवान् ने पृथ्वी ब्राह्मण गौ और देवताओ के हित के लिए ही मनुष्य शरीर धारण किया है। हे भाई! सुनो। वे सेवको के आनन्द देनेवाले दुष्टो के समूह के नाश करनेवाले और वैदिक धर्म की रक्षा करने वाले हैं।

व्याख्या अब विभीषणजी अवतार का कारण कहते है। तुमसे गो द्विज धेनु और देवताओ का अहित हो रहा है। गो पृथ्वी का अहित। यथा अतिसय देखि धरम कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी। द्विज धेनु का अहित यथा जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं। देवो का अहित। यथा जपजोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनै दससीसा। आपुनु उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा। सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव विप्र गुरु मान न कोई। और वे गो द्विज धेनु देव हितकारी हैं। तुम्हारी मृत्यु मनुष्य के हाथ हैं। अत उन्होने मनुष्य शरीर धारण किया है। कृपासिन्धु कहने का भाव यह है कि इतनी कृपा दीनो पर है कि मनुष्य शरीर धारण मे सङ्कोच न किया

अथवा यद्यपि तुम्हारे वध के लिए ही अवतार हुआ है पर ऐसे कृपासिन्धु हैं कि तुम्हारे ऊपर भी कृपा कर सकते हैं।

और भी अवतार के कारण बतलाते हैं। वे जनरञ्जन हैं। तुम भी उनके जन हो जाओ। भञ्जन खल व्राता से खलमण्डली का नाश उपस्थित है। राक्षस खल मनुजाद द्विजामिष भोगी हैं सो एक न बचेंगे। वे वेद धर्मरक्षक हैं और तुम्हारे यहाँ वेद के निर्मूल करने की विधि काम मे लायी जाती है। अब यह न होने पावेगा। वेद धर्मरक्षक आगये। विभीषणजी भाई की दृष्टि से कहते हैं। सुनु भ्राता। भाव यह कि मैं भाई हूँ। आज लडूँगा। मेरी बात माननी होगी। मैं राजा के रोब से मुँहदेखी बात नही कह सकता।

ताहि बयरु तजि नाइअ माथा। प्रनतारति भंजन रघुनाथा ॥
देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही। भजहु राम बिनु हेतु सनेही ॥३॥

अर्थ : वैर त्यागकर उन्हे मस्तक नवाइये। वे रघुनाथजी शरणागत का दु ख मिटानेवाले हैं। हे नाथ ! प्रभु को जानकीजी दे दीजिये और विना कारण स्नेह करनेवाले रामजी को भजिये।

व्याख्या : तौ मैं जाइ बैर हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ। होइहि भजनु न तामस देही। यह सिद्धान्त ठीक नही। उनसे वैर छोडो। किसी के सामने माथा नही झुकाते पर उनके सामने झुकाओ। वे प्रणत की आर्ति के हरण करनेवाले हैं। तुम भी आर्त हो जाओ। आर्ति का कारण उपस्थित है। तुम्हे ज्ञान है कि मेरा तामस देह है। भजन नही हो सकता और सद्गति की इच्छा है। तुम्हे केवल प्रणत होने की देर है। इतने मे ही सब कल्याण हो जायगा। व्यर्थ सर्वनाश क्यो करते हो ?

वैर करने के लिए ही तुमने वैदेही हरण किया है। सो वैदेही देने से ही वैर समाप्त हो जायगा। उनकी ओर से तो प्रेम ही प्रेम है। वे तो निष्कारण प्रेम करते हैं। भजन करने से क्यो न करेंगे ? परमेश्वर के भजन करने ही मे शोभा है। उनसे वैर करना ही मूर्खता है। पहिले निर्गुण निरूपक विशेषण विभीषणजी ने दिये। अब सगुण निरूपक विशेषण दे रहे हैं। प्रभु को वैदेही दो। कहने का भाव यह कि : जनक सभा अगनित भुवपाला। रहे तुमहु बल अतुल विसाला। भजि धनुष जानकी बिआही। तब संग्राम जितेहु किन ताही।

सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा ॥
जासु नाम त्रय ताप नसावन। सोइ प्रभु प्रकट समुझु जिय रावन ॥४॥

अर्थ : जिसे सम्पूर्ण जगत् से द्रोह करने का पाप लगा है। शरण जाने पर प्रभु उसका भी परित्याग नही करते। जिनका नाम तीनो तापो का नाश करने वाला है वे ही प्रभु प्रकट हुए हैं। हे रावण ! हृदय मे यह समझ लो।

व्याख्या यदि अपने अपराध की गुरुता सोच करके निराश हो तो यह भी ठीक नही है। तुम्हारा अपराध निःसन्देह बहुत बडा है किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पथहि लागा। पर ऐसो को तो क्षमा वही से मिलती है जहाँ शरण गया तहाँ विश्वद्रोह कृत पाप भी क्षमा कर दिया जाता है। वह अपना लिया जाता है। वहाँ शरणागत का त्याग होता ही नही।

जिसके नाम से आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक तापो का नाश होता है आध्यात्मिक ताप का नाश यथा . ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायेउ अचल अनूपम ठाऊँ। आधिदैविक ताप का नाश यथा : नाम जपत मगल दिसि दसहूँ। आधिभौतिक ताप का नाश यथा नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमी को। यहाँ तो वे स्वय प्रकट है। यह सन्देह ही नही किया जा सकता कि कोई गम्भीर पाप कैसे मिटेगा ? भाव यह कि तुम्हे ऐसा सुअवसर प्राप्त है कि नाम जपकर उन्हे प्रकट भी करना नही है। दूसरो ने बडे बडे जप तप करके उन्हे प्रकट किया है। तुम केवल शरण मे जाकर अपना काम बना लो। तुम रावण हो। सबको रुलानेवाले हो। समझ लो तुम्हारे वध के लिए अवतार हुआ है। देवताओ की रक्षा के लिए आये हुए हैं। सो वैरियो का मनोरथ पूरा न होने पावे। तुम ही उन्हे अपना लो।

दो० बार बार पद लागउँ, बिनय करउँ दससीस।
परिहरि मान मोह मद, भजहु कोसलाधीस ॥
मुनि पुलस्ति निज सिष्य सन, कहि पठई यहि बात।
तुरत सो मै प्रभु सन कही, पाइ सुअवसरु तात ॥३९॥

अर्थ हे दशशीश ! मैं बार-बार पैर पडता हूँ और विनती करता हूँ कि मान मोह और मद को छोडकर कोसलपति रामजी का भजन करो। फिर पुलस्त्य ऋषि ने भी अपने शिष्य से यही बात कहला भेजी है। सुअवसर पाकर तुरन्त ही वह बात मैंने प्रभु से कही है।

व्याख्या . महात्मा लोग हाथ जोडकर पैरो पर गिरकर भी दूसरो का भला चाहते हैं और करते हैं। सो विभीषणजी महात्मा है। कह रहे हैं कि मै भाई हूँ। बार बार पैर पडता हूँ। हाथ जोडता हूँ। तुम जगत् विजयी होकर भी छवो रिपुओ के शरण मे पडे हो। काम क्रोध लोभ मद के लिए पहिले कह चुके हैं। यथा : काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पथ। और शेष दो मान मोह को इस समय कह रहे हैं। रावण अधिक मदान्ध हैं। इसलिए दोनो बार के निषेध करने मे मद की चर्चा की। इन छवो के रहते भजन हो नही सकता। तुम शत्रुओ को भज रहे हो। बिनु हेतु सनेही को नही भजते। दशशीश कहने का यह भाव कि किसी का दस प्रणाम और तुम्हारा एक प्रणाम। कोसलाधीस कहने का भाव

यह कि लोकप्रसिद्ध धन्वी हैं। यथा : कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता। धन्वी सकल लोक विख्याता। उनके भजन में ही कुशल है।

पुलस्त्यजी ने विभीषण के द्वारा रावण से सन्देश कहलाया। रावण से अप्रसन्न हैं। सीधे सीधे उसके पास सन्देश नहीं भेजते। निज शिष्य कहने का भाव यह कि विश्वस्त व्यक्ति है। मेरा पहिचाना हुआ है। उसे लङ्का में प्रवेश का अधिकार दिया हुआ है। अथवा पुलस्त्यजी का निज शिष्य है। वह सिद्ध है। लङ्का में आकर मुझसे बात भी कर गया। पता किसी को भी नही। ये बातें जो मैंने कही हैं वे मेरी नही हैं। पुलस्त्यजी ने कहला भेजा है। समयानुकूल होने से मैंने अपनी ओर से कहा क्योकि मेरा भी यही मत है। ज्योंही मुझे सन्देशा मिला त्योंही मैं कहनेके लिए आया। यहाँ उसी विषय की चर्चा चल रही थी। मुझे सुअवसर मिल गया मैंने कह डाला। दूसरी बात यह कि तुम्हारे लिए भी सुअवसर है। पुलस्त्य ऋषि के कहने पर यदि तुम रामजी से मेल कर लोगे सीताजी को दे दोगे तो तुम्हारा बड़ा सुयश होगा। कोई यह भी नही कह सकेगा कि रावण ने डरकर मेल कर लिया। सब तुम्हारे गुरु आज्ञा पालन की प्रशंसा करेंगे। पुलस्त्य जी के संदेश में नाम रूप लीला और धाम चारों का वर्णन है। नाम यथा : जासु नाम त्रय ताप नसावन। लीला यथा : जन रंजन भजन खल त्राता। वेद धर्म रक्षक सुनु भ्राता। रूप यथा : ब्रह्म अनामय अज भगवंता। धाम यथा : भजहु कोसलाधीस।

माल्यवंत अति सचिव सयाना। तासु बचन सुनि अति सुख माना॥
तात अनुज तव नीति बिभूषन। सो उर धरहु जो कहत बिभीषन॥१॥

अर्थ : माल्यवान् नाम का एक अति सयाना मन्त्री था। उसने उसकी : विभीषण की बात सुनकर बहुत सुख माना। उसने कहा : हे तात! आपका छोटा भाई नीतिविभूषण है। जो विभीषण कह रहे हैं उसे ही मनमें स्थान दो।

व्याख्या : माल्यवंत अति जरठ निसाचर। रावन मातु पिता मंत्री बर। अब रावण का मन्त्री है। इसीलिए अति सयाना कहा। अन्य मन्त्रियों की सम्मति पर दुःख माना था। अपना कोई अनुमोदक न देखकर मौन था। विभीषणजी के वचन पर फड़क उठा कि बड़े कल्याण की बात इसने कही। इधर विभीषण के प्रस्ताव का कोई अनुमोदक न था। अतः बोल उठा।

अति वृद्ध है। रावण के नाना का मन्त्री है। अतः तात सम्बोधन करता है। कहता है कि नीति विभूषण तो तुम्हारा भाई है। सचिव नीति विभूषण नही है। इनकी बातों को मन में न लाना विभीषण के वचन मानने योग्य हैं। अति प्रसन्न होकर विभीषण को नीतिविभूषण की पदवी प्रदान करता है।

रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहाँ है कोऊ॥
माल्यवंत गृह गयउ बहोरी। कहइ बिभीषनु पुनि कर जोरी॥२॥

अर्थ : ये दोनों शठ शत्रु की बड़ाई कर रहे हैं। यहाँ कोई है। इन्हें दूर क्यों नही करते ? माल्यवान् तो उठकर घर चले गये और विभीषण हाथ जोड़कर फिर कहने लगे।

व्याख्या : रिपु का उत्कर्ष तेजोवध के लिए कहा जाता है। बिभीषणने अपनी बात के साथ पुलस्त्य ऋषि का नाम ले दिया था। इसलिए रावण को कुछ कहने का मौका नही मिला था। जब माल्यवान् बोले तब मौका मिल गया। उसे किसी का उपदेश पसन्द नही। इससे रिपु के उत्कर्ष कथन का दोषारोपण कर रहा है। गो कि मन्त्रणा के समय उत्कर्ष अपकर्ष सब कुछ कहा जाता है। 'सठ' कहने का भाव यह कि ये दोनों शत्रु से मिल गये हैं। यहाँ पर बातें बनाते हैं। इन दोनों को बिना आज्ञा पाये ही : कायदे के मुताबिक : दरबार के बाहर निकाल देना चाहता था। सो क्यों ये निकाले नहीं जाते ? फिर भी कोई निकालने के लिए नही उठा। तब कहता है : इहाँ है कोऊ : भाव यह कि क्या सब मर गये ?

माल्यवान् बड़े सयाने हैं। धीरे से घर की राह ली। कोई उठा ही देगा। तब क्या रह जायगा ? विभीषण के उठाने के लिए फिर भी कोई नही उठा। राजा का भाई है। एक प्रकार से राजा ही है। यथा : करत राज लंका सठ त्यागी। विभीषणजी सब कहने को तैयार हैं। अभिप्राय यह है कि आज न कहूँगा तो फिर कब कहूँगा ?

सुमति कुमति सबके उर बसही। नाथ पुरान निगम अस कहही ॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना ॥३॥

अर्थ : सुमति और कुमति सबके हृदय मे बसती है। हे नाथ ! पुराण और वेद ऐसा कहते हैं कि जहाँ सुमति है वहाँ नानाप्रकार की सम्पदाएँ बसती हैं और जहाँ कुमति है, वहाँ परिणाम में विपत्ति रहती है।

व्याख्या : सात्त्विकी बुद्धि को सुमति और राजसी तामसी बुद्धि को कुमति कहते है। ये सबके हृदय में रहती है। पुराण और वेदो ने इसका पृथक्करण करके बतलाया है। बुद्धि से ही पुरुष की पहिचान होती है और बुद्धि ही सम्पत्ति और विपत्ति का कारण है। जहाँ सुमति है वहाँ नाना प्रकार की सम्पत्ति रहती है और जहाँ कुमति है वहाँ चाहे पहिले सम्पत्ति दिखायी पड़े पर अन्त में बड़ी भारी विपत्ति आती है। प्रवृत्ति निवृत्ति कार्य अकार्य भय और अभय बन्ध और मोक्ष को जो जानती है उसे सात्त्विकी बुद्धि कहते हैं और जो धर्माधर्म कार्याकार्य को ठीक तरह से नही जानती उसे राजसी बुद्धि कहते हैं और जो बुद्धि तमोगुण से ढकी हुई अधर्म को ही धर्म मानती है वह बुद्धि तामसी है। यथा : प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये। बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी। यथा धर्ममधर्मञ्च कार्यञ्चाकार्यमेव च। अयथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी। अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता। सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी : भगवद्गीता :

सात्त्विकी की ऊँची गति होती है। राजस बीच मे रहते हैं और निन्दित गुणवाले तामस का अध पतन होता है। यथा : ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसा । जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसा भगवद्गीता :

तव उर कुमति बसी बिपरीता। हित अनहित मानहु रिपु प्रीता ॥
कालराति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी ॥४॥

अर्थ तुम्हारे मन मे उलटी कुबुद्धि आ बसी है। हित को अहित और शत्रु को मित्र मान रहे हो। जो निशिचर कुल के लिए कालरात्रि तुल्य है उस सीता पर बडी प्रीति है।

व्याख्या : विपरीता कुमति अर्थात् तामसी बुद्धि तुम्हारे हृदय मे बस गयी है। मैं और माल्यवान् तुम्हारा हित कह रहे हैं। सो तुम्हे रिपु का उत्कर्ष कथन मालूम पड रहा है और तुम्हारे सचिव जो मष्ट करि रहहू ऐसी अहित शिक्षा दे रहे हैं सो तुम्हे हित मालूम हो रहा है। हनुमान्जी तथा विभीषणजी की शिक्षाओ मे बहुत साम्य है।

इतना ही नही यह सीता तुम्हारी बडी भारी शत्रु है। निशिचर मात्र का सहार चाहनेवाली साक्षात् कालरात्रि अर्थात् काली माई हैं। यथा : कालरात्रिर्महा-रात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा। यह निशिचर कुलको खा जावेगी। उसपर तुम्हारी इतनी प्रीति कि उसे लाकर लङ्का मे रख दिया। यह मानहु रिपु प्रीता का उदाहरण है। सीता के शब्दो का अर्थ भी मन मे नही लाते। सो भुज कठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा।

दो. तात चरन गहि माँगहु, राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुँ, अहित न होइ तुम्हार ॥४०॥

अर्थ : हे तात ! मैं चरण पकडकर आपसे माँगता हूँ। मेरा दुलार रख लो। रामजी को सीता दो। तुम्हारा अकल्याण न हो।

व्याख्या : भ्राता चरन सीस तेहि नावा से उपक्रम तात चरन 'गहि माँगौ राखहु मोर दुलार से उपसहार। मोर दुलार कहने का भाव यह कि मेरी सम्मति बुरी सही मैं छोटा भाई हूँ। मेरी रुचि है कि सीता लङ्का मे न रहे। मेरी रुचि रख लो। अपने मन मे यह समझ लो कि मैं छोटा भाई का दुलार रख रहा हूँ और सीताजी को दे दो। सीता के न देने से निश्चय अकल्याण है। चरन गहि माँगौ का भाव यह कि जो माँगता हूँ वही लूँगा। सन्त लोग चरण पकडकर विनयपूर्वक भी दूसरे का कल्याण चाहते हैं। सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी का यह बडा सुन्दर उदाहरण है। जीभ की भाँति विभीषणजी दाँत रूप रावण के हित मे रत हैं। दाँत के अन्तर मे तिनका आ पडा। सीता शीतनिशा की भाँति आगयी। विभीषण वहाँ से सीता

को बिना हटाये न मानेंगे। दशानन दशन रूप है। वे बल पडते ही चाम जाने मे आगापीछा न करेगा। फिर भी उसका कल्याण ही करेंगे।

बुध पुरान श्रुति समत बानी। कही बिभीषन नीति बखानी ॥
सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अब आई ॥१॥

अर्थ पण्डित पुराण और वेदसम्मत वाणी से विभीषण ने नीति का प्रतिपादन किया। किन्तु सुनते ही दशानन खिझला उठा बोला खल तेरी मौत निकट आगयी।

व्याख्या विभीषण ने स्वय कहा है। नाथ पुराण निगम अस कहही और उसका कहा हुआ स्वय पुलस्त्य ऋषि के कथनानुकूल था। यथा रिषि पुलस्त्य निज सिष्य सन कहि पठई यह बात। अत विभीषणजी की उक्ति बुध पुराण श्रुति सम्मत थी। इसमें सन्देह नही है। श्रुति ही परम प्रमाण है उसके अर्थ का उपबृहण करनेवाले पुराण हैं। फिर भी शिष्टो द्वारा परिगृहीत होने की आवश्यकता रहती है। श्रुति पुराण सम्मत भी यदि शिष्टो द्वारा परिगृहीत न हो तो आचरण योग्य नही रहता। इसलिए कवि कहते हैं कि विभीषणजी की वाणी तो सर्वथा उपादेय थी। उसम नीति का प्रतिपादन था। धर्मार्थ काम का भी अविरोध था। अथवा सुमति कुमति सबके उर बसही। नाथ पुरान निगम अस कहही। जहाँ सुमति तहँ सपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना इत्यादि वाणी वेद पुराण सम्मत थी। बार बार पद लागउँ बिनय करउँ दससीस परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस। पुनि पुलस्ति निज सिष्य सन कहि पठई यह बात इत्यादि उक्ति बुधसम्मत थी और जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभगति सुख नाना। सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चद की नाई इत्यादि उक्तियो में नीति का प्रतिपादन था। ऐसी वाणी का राजसभा मे आदर होना चाहिए था।

परन्तु रावण सीताजी का देना कान से सुनना नही चाहता। अत सुनते ही खिझला उठा। दूरि न करौ इहाँ है कोऊ कहने पर भी किसी को उठते न देखकर स्वयं उठ पडा। क्रोध को रोक न सका। रावण को शिक्षा देना अपनी मृत्यु का आह्वान करना है। उसके दरबार म शिक्षा देनेवाले के लिए मृत्युदण्ड है। यथा मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही। नियम भी यही है कि मूर्ख को उपदश से क्रोध होता है शान्ति नही होती। उपदेशो हि मूर्खाणा प्रकोपाय न शान्तये। पुलस्त्यजी का सँदेसा कहा। तभी रावण ने निकाल देने की आज्ञा दी। फिर भी विभीषणजी नही माने। नीति का प्रतिपादन करने लगे। तात चरन गहि मांगी राखहु मोर दुलार। सीता देहु राम कहँ अहित न होइ तुम्हार। तब रावण मारे क्रोध के सिंहासन छोडकर विभीषणजी को मारने उठा। भाव यह कि मेरी पहिली आज्ञा न मानकर अब तू हठ करता है। इसलिए अब मृत्यु ही तेरे निकट आगयी। यह विपरीत कुमति का उदाहरण है।

जियसि सदा सठ मोर जियावा। रिपुकर पच्छ मूढ़ तोहि भावा ॥
कहसि न खल अस को जगमाही। भुजबल जाहि [1]जिता मै नाही ॥२॥

अर्थ : रे शठ ! सदा तू मेरा जिलाया हुआ जीता है। रे मूढ ! पक्ष तुझे शत्रु का ही अच्छा लगता है। अरे दुष्ट ! बता न जगत् में ऐसा कौन है जिसे मैंने अपनी भुजाओ के बल से न जीता हो।

व्याख्या : जिसका खावे उसका गावे यही संसार की नीति है। खिलाया जिलाया मैंने। शादी ब्याह मैंने किया झोपड़ी में से निकालकर सोने की लङ्का में बिठा दिया। शत्रु से इसे कोई भी लाभ नही। उसका पक्ष इसे पसन्द क्यो है ? यह मूढ है शत्रु की ओर से पैर पड़ता है। दुलार रखने को कहता है। इसे शत्रु का पक्ष कितना प्रिय है। यह विचित्र बात है। यह भी विपरीत कुमति का उदाहरण है। रावण का जो कुछ विजय विभव है वह विभीषण के कारण है। यथा : रावन जबहि विभीषण त्यागा। भयउ विभव बिनु तबहि अभागा। और रावण समझ रहा है कि मेरे विजय और विभव का विभीषण उपभोग कर रहा है।

रह गयी यह बात कि विभीषण रावण के अहित न होने के लिए इतना हठ कर रहे हैं। इसपर रावण कहते हैं कि यह इसकी साधुता नही है खलता है। मेरे अहित का तो कोई प्रश्न ही नही है। यह मेरे शत्रु की भलाई के लिए मेरे हिताहित का प्रश्न उठा रहा है। मेरा अहित तो तभी सम्भव है जब शत्रु मुझसे अधिक बलवान् हो। अतः पूछते हैं कि तू नाम बतला किसको मैने भुजबल से नही जीता। यथा : भुजबल विश्ववस्य करि राखेसि कोउ न स्वतन्त्र। भुजबल जितेउ काल जम साईं : भाव यह है कि विश्व के जय करने में मैने तपोबल, वरदान बल या अस्त्रबल से तो काम ही नही लिया। केवल भुजबल से जगत् जीत लिया। मेरे अहित का कौन प्रश्न है।

मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीति। सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती ॥
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। [2]अनुज गहे पद बारहि बारा ॥३॥

अर्थ : मेरे पुर मे रहकर तपस्वियों से प्रीति करता है। रे शठ ! तू जाकर उन्ही से मिल और उन्ही को नीति बतला ऐसा कहकर रावण ने लात मारी। विभीषण ने बार बार उनका चरण पकड़ा।

व्याख्या : रावण कहते हैं कि तू मेरे पुर मे बसता है और मेरा तपस्वियो से वैर है। यथा : निसिचर निकर सकल मुनि खाये : और तू तपस्वियो से प्रेम करता है। तू दगा करेगा। तेरी नीति से मैं हैरान हूँ। लङ्का जली तेरी नीति से।

---

१. दीर्घह्रस्वौ मिथो वृत्तौ : दीर्घ का ह्रस्व और ह्रस्व का दीर्घ होता है : इस प्राकृत सूत्र से जीता शब्द का जिता रूप हुआ।

२. यहाँ विकस्वरालङ्कार है।

तेरा मेल उस तपस्वी से ही मिलता है। वह भी नीति के पीछे पागल है। यथा : नीति विरोध सोहाइ न मोही : नीति के पीछे राजपाट छोडे बैठा है। वही तेरी नीति सुनेगा और अपना अनभल करेगा। तू मेरे पुर मे रहने लायक नही है। तू लङ्का छोड दे : भलाई करनेवाले को लात मारना खल का असाधारण लक्षण है : ऐसा कहकर चरण प्रहार किया अर्थात् कसकर लात हृदय मे शत्रु की भाँति मारा। यथा : तुलसी हुमुकि हिये हन्यो लात। मले तात चल्यो सुरतरु ताकि तजि घोर घामे : गी.।

पहिले दरबार से निकालने की आज्ञा दी। अब लात मारकर लङ्का से बाहर निकाल रहा है। यह शत्रु के हित के लिए मेरा चरण पकड रहा है। ऐसा समझाकर रावण ने चरण प्रहार किया। भरी सभा मे भाई को चरण प्रहार करना अत्यन्त अप्रतिष्ठा के लिए भी है। जिसमे यदि जीता बचे तो भी लङ्का छोडकर चला जाय। रावण ने देखा कि विभीषण की इतनी प्रतिष्ठा यहाँ है कि मेरी आज्ञा पर भी कोई इसे सभा के बाहर निकालने का साहस नही करता। यह मानधन है इसका मानमर्दन भरी सभा मे करना चाहिए। तभी यह लङ्का छोडेगा। इसके लङ्का मे रहने से शत्रुपक्ष की वृद्धि होगी। विभीषणजी बार बार चरण ग्रहण कर रहे हैं। जिसमे अब भी इसके हृदय मे दया आवे। अथवा अभिमानी को अवसर देते हैं कि वह इससे लाभ उठावे और कहे कि विभीषण से मै लाचार हो गया। ले जाओ उस तपस्वी को उसकी स्त्री दे आओ। अथवा यह भाव है कि मुझे और भी दण्ड दे लो। पर सीता को लौटा दो अथवा मै चरण नहीं छोड़ना चाहता। क्योकि छोडाते हो। यह रघुनाथजी की बडी भारी कृपा है कि रावण के चरण का प्रहार हृदय पर होने पर भी विभीषण को चोट न आयी। जिसके पादविक्षेप से पृथ्वी डोलती थी उसके हृदय मे लात मारने पर विभीषणजी को मूर्च्छा तक नही हुई।

उमा संत कइ इहै बड़ाई। मंद करत जो करै भलाई॥
तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा। राम भजे हित होइ तुम्हारा॥४॥

अर्थ : हे उमा ! सन्त की यही बड़ाई है जो बुराई करने पर भी भलाई ही करते हैं। तुम पिता के समान हो। मुझे मारा सो अच्छा किया। परन्तु नाथ ! राम के भजने मे ही तुम्हारा भला है।

व्याख्या : शिवजी उमा से कहते हैं कि खल लोग सन्त के वेष वचन आदि सभी बातो की नकल कर लेते हैं। यथा : लखि सुवेप जग बंचक जेऊ। वेष प्रताप पूजि अहि तेऊ। पर सन्त की जो विशेष बडाई है उसकी नकल खल क्या करेंगे। कोई भी नही कर सकता। जो अपनी बुराई करता हो उसकी भी भलाई करना यह सन्त का ही काम है। दूसरे का किया यह नही हो सकता। भला करनेवाले के साथ भलाई तो सब करते हैं। पर बुरा करनेवाले के साथ भलाई करना सन्तो से ही बन सकता है : क्रुद्धयन्त न प्रतिक्रुध्येत आक्रुष्ट कुशल वदेत् :

सो रावण के क्रोध करने पर भी विभीषणजी ने क्रोध नही किया। लात खाने पर भी कल्याण ही बोलते हैं।

रावण ने कहा जिएसि सदा सठ मोर जिआवा उसके उत्तर मे कहते हैं तुम पितु सरिस भलेहि मोहि मारा। जेठे भाई हो, बाप के समान हो, मुझे मारा सो अच्छा ही किया। परन्तु हित करने मे मैं भी नही रुक सकता। तुम्हारा हित राम भजन मे है। सीता के न देने मे नही है। अपनी बात मे मुझे दृढता है। यह विभीषणजी का सत्याग्रह है।

सचिव सग लै नभ पथ गएऊ। सबहि सुनाइ कहत अस भएऊ ॥५॥

दो रामु सत्यसकल्प प्रभु, सभा कालबस तोरि।
मै रघुबीर सरन अब, जाउँ देहु जनि खोरि ॥४१॥

अर्थ विभीषण अपने मन्त्रियो को साथ लेकर आकाश मार्ग मे गये और सबको सुना करके ऐसा कहने लगे कि रामजी सत्यसकल्प एव प्रभु हैं। तुम्हारी सभा काल के वश है। मै अब रघुवीर के शरण मे जाता हूँ, मुझे दोष न देना।

व्याख्या जब देख लिया कि इतने पर भी रावण नही सुनते, कोई सभा मे उनका साथी नही है। न कोई सहारा देनेवाला है। मन्त्रणा की सभा मे इतना बडा अन्याय हुआ। कोई बोलनेवाला नही। अब लका मे मेरा निर्वाह नहीं हो सकता। क्योकि रावण ने बधो वा त्यागो वा वाली नीति को अपना कर मेरा परित्याग कर दिया। अत विभीषणजी ने केवल अपने मन्त्रियो को अपने साथ लिया और सारे कुटुम्ब को छोडकर आकाश मार्ग मे चले गये। करत राज लका सठ त्यागी। सो सब राज्याङ्गो का परित्याग किया। केवल मन्त्रियो को नही छोडा। सबको सुनाकर कहते हैं—

सठ मिलु जाइ तिनहि कहु नीती का उत्तर विभीषणजी देते हैं कि रामजी सत्यसकल्प हैं। उन्होने निसिचरहीन महि करने का सकल्प कर लिया है। अत तुम लोग अपने वश मे नही हो। कालवश हो गये हो। यथा हित मत तोहि न लागत कैसे। काल विवस कहँ भेषज जैसे मैं डके की चोट के साथ रामजी के शरण म जाता हूँ। चोरी से नही। भाव यह है कि अब भी मेरे साथ चले चलो। नहीं चलते तो मेरा दोष नही अथवा मुझे लौटाना चाहते हो तो लौटा लो। यदि सभी की इच्छा है कि मैं चला जाऊँ तो मैं जा रहा हूँ। जब शरण मे चला जाऊँगा तो सर्वात्मना उनका हो जाऊँगा। फिर मेरा दोष न देना।

अस कहि चला बिभीषनु जबही। आयूहीन भए सब तबही ॥
साधु अवग्या तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कै हानी ॥१॥

अर्थ ऐसा कहकर विभीषणजी ज्यो ही चले त्यो ही सब राक्षस आयुहीन हो गये। हे भवानी! साधु का अपमान तुरन्त ही सम्पूर्ण कल्याण की हानि कर देता है।

व्याख्या : सन्त ने : सभा कालवस तोरि कह दिया। अतः तत्काल सब आयुहीन हो गये। दूसरी बात यह कि विभीषण ही उन सबकी आयुरूप रहे। यथा : जीव भवदघ्रिसेवक विभीषन बसत मध्य दुष्टाटवीग्रसित चिता। एक साधु पुरुष के रहने से सम्पूर्ण कुटुम्ब तथा नगर की रक्षा रहती है। लङ्का मे केवल विभीषन ही सन्त थे। नही तो इहाँ कहाँ सज्जन कर वासा। केवल इन्ही के लिए कवि कहते हैं कि हृदय हरख कपि सज्जन चीन्हा। विभीषणजी ने सबको सुनाकर कहा और सबके सामने चले। किसी ने उन्हे लौटाने के लिए रावण से विनय तक न की। सबको विभीषणजी का आचरण अप्रिय था। सुनहु पवन सुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महु जीभ बिचारी। साधु के अपमान से जिस प्रकार हित की हानि होती है उसका उदाहरण लङ्कादाह प्रकरण मे दे चुके है। यथा : साधु अवज्ञा कर फल ऐसा। जरै नगर अनाथ कर जैसा। हनुमान्‌जी का भी अनादर लात मारकर लङ्का मे किया गया था। यथा . मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी। यहाँ विभीषण को लात मारा गया। उस बार नगर जरा इस बार सब आयुहीन हुए। दूसरे पाप देर मे फैलते हैं। साधु के अपमान का तुरन्त फल होता है। जहाँ सबके देखते हुए अधर्म से धर्म और झूठ से सत्य मारा जाता है उस सभा के सभासद् मारे पडते हैं। यथा यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च। हन्यते प्रेक्षमाणाना हतास्तत्र सभासद।

रावन जबहि बिभीषनु त्यागा। भयउ बिभव बिनु तबहि अभागा॥

विभीषण मिलन विधि प्रसङ्ग

चलेउ हरषि रघुनायक पाही। करत मनोरथ बहु मन माही॥२॥

अर्थ . रावण ने जब विभीषण को त्यागा तभी वह अभागा वैभव से हीन हो गया। विभीषणजी हर्षित होकर मन मे अनेको मनोरथ करते हुए श्रीरघुनाथजी के पास चले। सबलायक के समीप जा रहे हैं।

व्याख्या वेद विरुद्ध महीसुर साधु ससोक कियो सुरलोक उजारो। और कहा कहौं तीय हरी तबहूँ करुनाकर कोप न धारो। सेवक छोह ते छाडी छमा तुलसी लख्यो राम सुभाउ तिहारो। तौ लौं न दापु दल्यो दसकधर जौ लो विभीषन लात न मारो। कवि०। रावण ने विभीषण को त्यागा। विभीषण ने नही त्यागा। रावण का धर्मरथ टूट गया। उसमे से दो पहिया और एक घोडा रह गया। यथा . सौरज धीरज जेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ ध्वजा पताका। बल विवेक दम परहित घोरे। बडे भाग से सतसङ्ग मिलता है। सो उस अभागे ने लात मारकर सन्त को बाहर निकाल दिया। अत ऐश्वर्यहीन और अभागा हो गया।

विभीषणजी कहते थे। तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा। सो भानुकुल नाथ ने कृपा कर दी। भइ कूबर की लात विधाता राखी बात बनाइके गीतावली। सरस्वती सहाय हो गयी। रावण ने स्वय निकाल बाहर किया। इससे विभीषणजी को हर्ष है। सरकार के दर्शन का मनोरथ था।

मनोरथ करते-करते रास्ता कट जाता है। यथा : लागि नहिं विधि करत मनोरथ जात बहु बार। बहु मनोरथ का भाव यह कि यथा : महाराज, राम पहुँ जाऊँगो। सुख स्वारथ परिहरि करिहौं सोइ ज्यों साहिबहिं सोहाऊँगो। सरनागत सुनि बेग बोलिहौं निपटहिं सकुचाऊँगो। इत्यादि। गीतावली ५.३०।

देखिहौं जाइ चरन जलजाता। अरुन मृदुल सेवक सुखदाता ॥
जे पद परसि तरी रिषिनारी। दंडक कानन पावनकारी ॥३॥

अर्थ : मैं जाकर कोमल और लाल वर्ण के सुन्दर चरण कमलों का दर्शन करूँगा। जो सेवकों के सुख देनेवाले हैं जिन चरणों का स्पर्श करके ऋषिपत्नी अहल्या तर गयीं और जो दण्डक वन को पवित्र करनेवाले हैं।

व्याख्या : जिस चरण का अनुराग तपस्या करके माँगा था। यथा : तेहि माँग्यौ भगवंत पद कमल अमल अनुराग। आज उस चरण कमल का दर्शन होगा। अरुण होने से दर्शनीय मृदुल होने से स्पर्शनीय है। इसलिए सुखदाता हैं। जा को चरन बिरचि सेइ सिधि पाइ संकरहूँ। सुक सनकादि मुकुत बिचरत तेउ भजन करत अजहूँ।

ऋषिनारी अहल्या पाषाणरूप होने से देख नहीं सकती थी। अतः स्पर्श से पार हो गयी। यथा : परसि जासु पद पंकज धूरी। तरी अहल्या कृत अघ भूरी। परसि चरन रज अचर सुखारी। भये परम गति के अधिकारी। इससे स्पर्श कहा। दण्डकारण्य भी इसी प्रकार ब्रह्मशाप से विनिर्मुक्त हुआ। यथा : दंडक वन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिवर कर हरहू। सुखदातृत्व का उदाहरण देते हैं कि न ऋषिनारी सेविका थी न दण्डकारण्य सेवक था। पर दोनों ब्रह्मशाप से केवल स्पर्श द्वारा मुक्त हुए। मैं भी मृदुल चरणों के स्पर्श द्वारा विप्रशाप निसाचर योनि से मुक्त होऊँगा। यथा : उपजे जदपि पुलस्त्यकुल पावन अमल अनूप। तदपि महीसुर साप बस भये सकल अघरूप।

जे पद जनकसुता उर लाए। कपट कुरंग संग धर धाए ॥
हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मै देखिहौ तेई ॥४॥

अर्थ : जिन चरणों को जानकीजी ने हृदय में धारण कर रक्खा है, जो कपट-मृग को पकड़ने के लिए दौड़े थे और जो चरणकमल साक्षात् शिवजी के हृदयरूपी सरोवर में विराजते हैं। मेरा अहोभाग्य है कि उन्हीं को आज मैं देखूँगा।

व्याख्या : मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावत् वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्। जेहि बिधि कपट कुरंग सग धाइ चले श्रीराम। सोइ छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम। अरुण मृदुल से रूप पद परसि से स्पर्श जनकसुता उर लाये से रस और पदसरोज से गन्ध कहा। शब्द आगे कहेंगे।

इसमें से किसी को चरण प्रत्यक्ष नहीं है। चरण की सरोज से उपमा दी है। अब वह सर भी बतलाते हैं जहाँ कि वे खिले हुए हैं। वह सर हरका हृदय है। वे चरण मेरे नयन के विषय होंगे। अतः विभीषणजी अपने भाग्य की प्रशंसा करते हैं।

दो. जिन पायन्ह के पादुकन्हि, भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आज बिलोकिहौं, इन नयनन्हि अब जाइ ॥४२॥

अर्थ : जिन चरण के पादुकाओ मे भरतजी ने अपना मन लगा रक्खा है आज मैं उन्हीं चरणो को जाकर इन नेत्रो से देखूँगा।

व्याख्या : चरण बोलते नही पादुका बोलते है। यथा 'मांगि मांगि आयसु करत राज काज बहु भांति। इससे शब्द कहा। इन नयनन्हि कहने का भाव यह कि जो दिनरात राक्षस ही देखते रहे जिन चरणो का दर्शन आज भरतजी को प्राप्त नही हैं वे पादुका पर ही सन्तोष किये बैठे हैं। उन चरणो का दर्शन मेरी इन आँखो द्वारा होगा। अत मेरे अहोभाग्य मे सन्देह नही।

एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा। आयउ सपदि सिधु के पारा ॥
कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा। जाना कोउ रिपुदूत बिसेषा ॥१॥

अर्थ. इस प्रकार प्रेम सहित विचार करते हुए शीघ्र ही समुद्र के पार आ गये। वानरो ने विभीषण को आते हुए देखा। समझा कि शत्रु का कोई विशेष दूत है।

व्याख्या : सब विचार नही लिखा। प्रादेशमात्र दिखलाकर कहते हैं कि इस प्रकार विचार करते करते समुद्र के इस पार आ गये। इस पार कहने का भाव यह है कि जिस तट पर वानरी सेना के साथ कवि की उपस्थिति है। विचार समाप्त न न हुआ। समुद्र समाप्त हो गया। सप्रेम विचार और मनोरथ एक ही बात है। करत मनोरथ बहु मन माही से उपक्रम करके एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा से प्रकरण का उपसहार दिखलाते हैं। मनोरथ करने मे रास्ता कट गया। समय का भान ही न हुआ। इसलिए कहते हैं कि तुरन्त इस पार आ गये। अथवा जासु नाम सुमिरत इकबारा। उतरत नर भवसिन्धु अपारा। उसी के दर्शन के मनोरथ मे इस सिन्धु का पार पा जाना क्या कठिन है? अत तुरन्त आना लिखा।

विभीषणजी ने कपिसेना न देखी। अपने धुन मे चले आते रहे। वानरो ने विभीषणजी को देखा आकृति से वेषभूषा से। मन्त्रियो के साथ होने से जाना कि यह कोई रावण का भेजा हुआ विशेष दूत है। उस पार से आने से निर्भीकता से तथा वेष के अपरिवर्तन से दूत होने का अनुमान हुआ।

ताहि राखि कपीस पहिं आए। समाचार सब ताहि सुनाए ॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई ॥२॥

अर्थ : उसे ठहरा करके सुग्रीव के पास आये और उनको सब समाचार कह सुनाया। सुग्रीवजी ने कहा हे रघुनाथजी! सुनिये रावण का भाई मिलने आया है।

व्याख्या ताहि राखि से विभीषणजी का अपना परिचय देना और प्रयोजन कहना ध्वनित है। सेना के नियमानुसार उन्हे पड़ाव से बाहर ही ठहरा दिया।

विना सुग्रीवजी की आज्ञा के कोई पडाव के भीतर प्रवेश नही कर सकता। चारो ओर से वन्दरो का पहरा पड रहा है। शत्रु के देश के सन्निकट आ जाने से बडी सावधानी की जा रही है। अत सुग्रीवजी के पास आये और विभीपणजी का समाचार जो उनसे मालूम हुआ था सुग्रीवजी से कह सुनाया। रामजी भी वही हैं पर उनसे नही कहते। कायदे से काम हो रहा है। जिसे जो कहना हो सुग्रीवजी से कहे। सुग्रीवजी को यदि कुछ पूछना है तो सरकार से पूछेंगे। अथवा वे केवल किष्किन्धा की भापा वोल सकते हैं। इसलिए सुग्रीवजी से कहा।

नाम रावण का ही प्रख्यात है। अत विभीपणजी ने उसी के नाम से अपना परिचय दिया था। तदनुसार ही सुग्रीवजी कहते हैं अथवा बन्दरो के वचन का अनुवाद सस्कृत अथवा अवधी भापा मे करते हैं। उनके कहने का भाव यह कि दशानन स्वय नही आया। अपने भाई को भेजा है। दशानन है। पहिल भी यह ऐसा ही कर चुका है। स्वय यती वना हुआ कही छिपा बैठा था और मारीच को मृग वनाकर भेज दिया। उसी का भाई है। मिलने का स्वाँग रचकर आया है। उसने दगा किया। यह भी वैसा ही करेगा। यही ध्वनितार्थ है।

कह प्रभु सखा बूझिए काहा। कहै कपीस सुनहु नरनाहा ॥
जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया ॥३॥

अर्थ प्रभु ने कहा हे सखा! इसम पूछने की कौन सी बात है? सुग्रीव ने कहा हे नरनाथ! सुनिये राक्षस की माया जानी नही जाती। यह इच्छानुसार रूप बदलनेवाला न जाने किस कारण से आया है।

व्याख्या प्रभु ने कहा कि तुम सखा हो। तुम्हे मिलने देने का अधिकार है और यहाँ अवारित द्वार है। किसी को मिलने मे रोक नही है। इसम विचार की कौन सी वात है? आना चाहता है आने दो। यहाँ कपीश कहने का भाव यह है कि कपियो के कल्याण के विपय मे सशङ्क है। अत नरनाह सम्वोधन देकर बोलते हैं। भाव यह कि आप नरनाह हैं। मनुष्यो के साथ जैसा बरताव करना चाहिए उसे भलीभाँति जानत है। पर यह राक्षस है। मायावी है। यहाँ आकर न जाने कौन सी माया रचे। अत मैं इस विचार मे पडा हूँ कि इसे आपके सामने आने दिया जाय या नही।

देवमाया या नरमाया चाहे जानी भी जाय पर निशाचरो की माया जानी नही जाती। यथा करहि उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया। कामरूप जानहिं वहु माया। सपनेहुँ जिनके धरम न दाया। ये कामरूप है। जैसा चाहते हैं अपना रूप बना लते हैं। मेरी सेना मे आकर न जाने कौन रूप बनाकर किससे क्या कहेगा। कहाँ क्या करेगा। इस बात का कौन ठिकाना और उसका परिणाम भयङ्कर हो सकता है। लङ्का मे क्या घाटा है जो मिलने आया है। जो यह कहेगा वह वात तो होगी नही। हम लोग सब धोखा खा जायँगे। ये स्वय सरकार को धोखा देकर जानकी अपहरण कर ल गये। इ का विश्वास क्या?

भेद हमार लेन सठ आवा । राखिअ बाँधि मोहि अस भावा ॥
सखा नीति तुम नीकि बिचारी । मम पन सरनागत भयहारी ॥४॥
सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना । सरनागत बच्छल भगवाना ॥५॥

अर्थ : यह शठ हमारा भेद लेने आया है। इसलिए मुझे तो यही अच्छा लगता है कि इसे बाँधकर रक्खा जाय। रामजी ने कहा कि सखा ! तुमने नीति तो अच्छी विचारी। परन्तु शरणागत के भय का हरण करना मेरा प्रण है। प्रभु के वचन सुनकर हनुमान्‌जी हर्षित हुए कि भगवान् शरणागतवत्सल हैं।

व्याख्या : शठ है यहाँ आकर मीठी मीठी बातें करेगा और हमारा भेद लेगा। छिद्र देखकर कोई भारी उपद्रव कर बैठेगा। मेरी राय है कि इसे बाँधकर रक्खा जाय। शरणागत अवध्य हैं। मार सकते तो नही। बाँध रखना ही ठीक है। अथवा रावण ने हम लोगो को धोखा देने के लिए भाई को मिलने के व्याज से भेजा है तो यदि हम इसे बाँध रक्खेंगे तो उसकी चाल उलटी पड जायगी। उसके भाई को जान हमारे हाथ मे आ जायगी। इससे हम लोग बहुत लाभ उठा सकेंगे। रावण के यहाँ स्वय जानकीजी बन्दी हैं तो हमारे यहाँ कम से कम उसका भाई तो बन्दी रहे।

सरकार ने सुग्रीव से कहा कि तुम्हारी नीति बहुत अच्छी है। इसमे कोई दोष नही। सशयावस्था मे बन्धन ही उचित है और लाभ की भी बहुत कुछ सम्भावना है। पर प्रण के सामने नीति कुछ नही। मेरा प्रण दूसरे प्रकार का है। जो शरण मे आवे उसके भय को दूर करने का मेरा प्रण है। उसे अन्यथा कैसे करें ? प्रण पालन ही प्रधान धर्म है। उसके सामने अन्य धर्म अर्थ और काम की कोई गणना नही है।

यहाँ हनुमान्‌जी ही विभीषण से परिचित है। उसे मिलने के लिए प्रोत्साहन भी दे चुके है। यथा अस मैं अधम सखा सुनु मोहूँ पर रघुबीर। कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर। सो हनुमान्‌जी सुग्रीव का वचन सुनकर के असमञ्जस म पड गये थे। इनसे कुछ पूछा भी न गया कि हनुमान्‌जी ! तुम लङ्का हो आये हो। इसके बारे मे कुछ जानते हो कि नही। केवल रामजी और सुग्रीवजी मे बात हो रही है। अत सरकार की बातें सुनकर हनुमान्‌जी हर्षित हो उठे। अथवा हानि लाभ का कोई विचार न करके शरणागत पर प्रेम देखकर हर्षित हुए। हनुमान्‌जी ने घोषणा की . वात्सल्य भाव से श्रीराम अपने शरणागत के दोषो को साफ कर देंगे। यथा : आश्रितदोषे भोक्तृत्व वात्सल्यमिति केचन।

मालूम होता है कि विभीषण मिलन की बात बन्दर लोग छेड छेडकर पूछने पर भी हनुमान्‌जी से नही निकाल सके। अत उन्होने कहा भी नही। बन्दरो ने हनुमान्‌जो यह नही पूछा कि लङ्का मे जाकर किसी को अपनी ओर फोडने का प्रयत्न किया कि नही। क्योकि वे इसे असम्भव समझते थे। इधर सब असम्भवो

को सम्भव कर देनेवाले हनुमान्‌जी हैं। ये विभीषण को सिद्ध कर आये थे। अविकत्थन है। अतः बिना पूछे उस विषय पर कुछ नही कहा अथवा मानापमान न कहना चाहिए। ऐसी नीति है। अत. लङ्किनी द्वारा अपना अपमान और विभीषण द्वारा मान की चर्चा किसी से न की।

दो. सरनागत कहुँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पाँवर पापमय, तिन्हहि बिलोकत हानि ॥४३॥

अर्थ : जो अपने अकल्याण का अनुमान करके शरण में आये हुए का त्याग करते हैं। वे नर पामर हैं। पापमय हैं। उनके दर्शन में अकल्याण है।

व्याख्या : वेदविहित कर्म ही धर्म है। उसका अनुमान से बाध नही होता। अतः अनहित के अनुमान से शरणागत का त्याग उचित नही है। जो ऐसा करता है वह अनार्य है। परमार्थ है। महापातकी के संसर्ग से दोष होता है और इसके दर्शन में दोष है। अतः शरणागत का किसी अवस्था में भी परित्याग नही करना चाहिए। यह असाधारण धर्म है और रामजी कहते हैं कि मेरा तो यह प्रण है। जिसके त्याग में इतना बड़ा प्रायश्चित है उसका बन्ध कैसे किया जा सकता है। वह केवल मिलने नही आया है। शरणागत है। रावण से विमुख होकर केवल चार अनुचरों के साथ। बिना किसी छिपाव के तुम्हारी सेना में चला आया है। इससे उसका शरण में आना स्पष्ट है।

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आवें सरन तजउँ नहिं ताहू ॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबही ॥१॥

अर्थ : जिसे करोड़ हत्या लगी हो। शरण में आने पर मैं उसे भी नही त्यागता। ज्योंही मेरे सन्मुख होता है त्योंही उसके करोड़ों जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं।

व्याख्या : यदि कहा जाय कि खल मनुजाद द्विजामिष भोगी है। यह तो राजा का भाई है। न जाने कितने ब्राह्मणों को खाया होगा। अतः सर्वथा त्याज्य हैं। ऐसों का संसर्ग भी महापाप है। यथा : तत्संसर्गी तु पञ्चमः। इस पर कहते है कि एक नही करोड़ ब्रह्महत्या लगी हो मैं ऐसे को शरण आने पर नही त्यागता अर्थात् अपना ही लेता हूँ।

मैं तो न किसी के सम्मुख हूँ न विमुख हूँ। सम्मुख होना न होना जीव का काम है। ज्यों ही ससार से उसका मन लौटकर मेरी ओर आता है त्योंही उसके करोड़ जन्म के पाप : आप से आप नष्ट हो जाते हैं। यह शरण सम्मुख होने का माहात्म्य है। शरण आने पर उसे पाप कहाँ। सूर्य के सम्मुख होते ही अन्धकार का नाश हो जाता है। इसमे सूर्य को कुछ करना नहीं पड़ता।

पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ ॥
जौं पै दुष्ट हृदय सोइ होई। मोरे सनमुख आव कि सोई ॥२॥

भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा ॥
सखा नीति तुम नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी ॥४॥
सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना। सरनागत बच्छल भगवाना ॥५॥

अर्थ : यह शठ हमारा भेद लेने आया है। इसलिए मुझे तो यही अच्छा लगता है कि इसे बाँधकर रक्खा जाय। रामजी ने कहा कि सखा ! तुमने नीति तो अच्छी विचारी। परन्तु शरणागत के भय का हरण करना मेरा प्रण है। प्रभु के वचन सुनकर हनुमान्‌जी हर्षित हुए कि भगवान् शरणागतवत्सल हैं।

व्याख्या : शठ है यहाँ आकर मीठी मीठी बातें करेगा और हमारा भेद लेगा। छिद्र देखकर कोई भारी उपद्रव कर बैठेगा। मेरी राय है कि इसे बाँधकर रक्खा जाय। शरणागत अवध्य हैं। मार सकते तो नहीं। बाँध रखना ही ठीक है। अथवा रावण ने हम लोगों को धोखा देने के लिए भाई को मिलने के व्याज से भेजा है तो यदि हम इसे बाँध रक्खेंगे तो उसकी चाल उलटी पड़ जायगी। उसके भाई को जान हमारे हाथ में आ जायगी। इससे हम लोग बहुत लाभ उठा सकेंगे। रावण के यहाँ स्वयं जानकीजी वन्दी हैं तो हमारे यहाँ कम से कम उसका भाई तो वन्दी रहे।

सरकार ने सुग्रीव से कहा कि तुम्हारी नीति बहुत अच्छी है। इसमें कोई दोष नहीं। संशयावस्था में बन्धन ही उचित है और लाभ की भी बहुत कुछ सम्भावना है। पर प्रण के सामने नीति कुछ नहीं। मेरा प्रण दूसरे प्रकार का है। जो शरण में आवे उसके भय को दूर करने का मेरा प्रण है। उसे अन्यथा कैसे करें ? प्रण पालन ही प्रधान धर्म है। उसके सामने अन्य धर्म अर्थ और काम को कोई गणना नहीं है।

यहाँ हनुमान्‌जी ही विभीषण से परिचित है। उसे मिलने के लिए प्रोत्साहन भी दे चुके है। यथा : अस मैं अधम सखा सुनु मोहूँ पर रघुवीर। कीन्हीं कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर। सो हनुमान्‌जी सुग्रीव का वचन सुनकर के असमञ्जस में पड़ गये थे। इनसे कुछ पूछा भी न गया कि हनुमान्‌जी ! तुम लङ्का हो आये हो। इसके बारे में कुछ जानते हो कि नहीं। केवल रामजी और सुग्रीवजी में बात हो रही है। अतः सरकार की बातें सुनकर हनुमान्‌जी हर्षित हो उठे। अथवा हानि लाभ का कोई विचार न करके शरणागत पर प्रेम देखकर हर्षित हुए। हनुमान्‌जी ने घोषणा की : वात्सल्य भाव से श्रीराम अपने शरणागत के दोषों को साफ कर देंगे। यथा : आश्रितदोषे भोक्तृत्वं वात्सल्यमिति केचन।

मालूम होता है कि विभीषण मिलन की बात बन्दर लोग छेड़ छेड़कर पूछने पर भी हनुमान्‌जी से नहीं निकाल सके। अतः उन्होने कहा भी नहीं। बन्दरों ने हनुमान्‌जी यह नहीं पूछा कि लङ्का में जाकर किसी को अपनी ओर फोड़ने का प्रयत्न किया कि नहीं। क्योंकि वे इसे असम्भव समझते थे। इधर सब असम्भवों

को सम्भव कर देनेवाले हनुमान्जी हैं। ये विभीषण को सिद्ध कर आये थे। अविकत्थन हैं। अतः विना पूछे उस विषय पर कुछ नही कहा अथवा मानापमान न कहना चाहिए। ऐसी नीति है। अत. लङ्किनी द्वारा अपना अपमान और विभीषण द्वारा मान की चर्चा किसी से न की।

दो. सरनागत कहुँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पाँवर पापमय, तिन्हहि बिलोकत हानि ॥४३॥

अर्थ : जो अपने अकल्याण का अनुमान करके शरण में आये हुए का त्याग करते हैं। वे नर पामर हैं। पापमय हैं। उनके दर्शन में अकल्याण है।

व्याख्या : वेदविहित धर्म ही धर्म है। उसका अनुमान से बाध नही होता। अतः अनहित के अनुमान से शरणागत का त्याग उचित नही है। जो ऐसा करता है वह अनार्य है। परमार्थ है। महापातकी के संसर्ग से दोष होता है और इसके दर्शन में दोष है। अतः शरणागत का किसी अवस्था में भी परित्याग नही करना चाहिए। यह असाधारण धर्म है और रामजी कहते हैं कि मेरा तो यह प्रण है। जिसके त्याग में इतना बड़ा प्रायश्चित है उसका बन्ध कैसे किया जा सकता है। वह केवल मिलने नही आया है। शरणागत है। रावण से विमुख होकर केवल चार अनुचरों के साथ। बिना किसी छिपाव के तुम्हारी सेना में चला आया है। इससे उसका शरण में आना स्पष्ट है।

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आवें सरन तजउँ नहिं ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबही ॥१॥

अर्थ : जिसे करोड़ हत्या लगी हो। शरण में आने पर मैं उसे भी नही त्यागता। ज्योंही मेरे सन्मुख होता है त्योंही उसके करोड़ों जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं।

व्याख्या : यदि कहा जाय कि खल मनुजाद द्विजामिष भोगी हैं। यह तो राजा का भाई है। न जाने कितने ब्राह्मणों को खाया होगा। अतः सर्वथा त्याज्य हैं। ऐसों का संसर्ग भी महापाप है। यथा : तत्संसर्गी तु पञ्चमः। इस पर कहते हैं कि एक नही करोड़ ब्रह्महत्या लगी हो मैं ऐसे को शरण आने पर नही त्यागता अर्थात् अपना ही लेता हूँ।

मैं तो न किसी के सम्मुख हूँ न विमुख हूँ। सम्मुख होना न होना जीव का काम है। ज्यों ही संसार से उसका मन लौटकर मेरी ओर आता है त्योंही उसके करोड़ जन्म के पाप : आप से आप नष्ट हो जाते हैं। यह शरण सम्मुख होने का माहात्म्य है। शरण आने पर उसे पाप कहाँ। सूर्य के सम्मुख होते ही अन्धकार का नाश हो जाता है। इसमें सूर्य को कुछ करना नही पड़ता।

पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ॥
जौ पै दुष्ट हृदय सोइ होई। मोरे सनमुख आव कि सोई ॥२॥

अर्थ : पापी का सहज स्वभाव होता है कि मेरा भजन उसे कभी नहीं सोहाता। यदि उसका हृदय दुष्ट होता तो क्या वह मेरे सन्मुख आता ?

व्याख्या : भगवद्गीता मे भगवान् ने कहा है कि पापी अधम नर मेरी शरण मे नही आते। पापी को भजन अच्छा ही नहीं लगता। उसके सामने भजन होने लगे तो वह वहाँ से उठकर चला जाता है। उसकी पापीयसी वृत्ति भजन की ओर अग्रसर नही हो सकती। तुलसी राम भजन कर बाधक पाप। पापीयसी वृत्ति अपनी विरोधिनी वृत्ति को उत्पन्न नही होने देती। मेरी ओर से पापियों के लिए रोक नही है। पर पापियो को ही मेरे सम्मुख होना पसन्द नही है। उसे वे सामयिक सभ्यता के प्रतिकूल ठहराते हैं।

भेद हमार लेन सठ आवा का उत्तर देते हैं। विभीषण दुष्ट हृदय नही है। यदि दुष्ट हृदय होता तो मेरे सामने ही न आता। दुष्टहृदय को मेरी प्राप्ति ही नही होती। हृदय ही एक स्थान है। जहाँ से भगवत्साक्षात्कार होता है उसके सदोष होने से भगवत्साक्षात्कार हो नही सकता और उसके निर्मल होने पर भगवत्साक्षात्कार न क्यों होगा ? अवश्य होगा।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥
भेद लेन पठवा दससीसा। तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा ॥३॥

अर्थ : जो मनुष्य निर्मल मन का होता है वही मुझे पाता है। मुझे कपट छलछिद्र नही सुहाते। यदि दशशीश ने भेद लेने के लिए भेजा हो हे कपीश ! तो भी कोई भय या हानि नही है।

व्याख्या : मन का मल कपट छल छिद्र है। परदा देने या बात छिपाने को कपट कहते हैं। यथा : कीन्ह्यो कपट लाग भल मोही। धोखा देने को छल कहते हैं। यथा : होहु कपट मृग तुम छलकारी। पोल या दोष को छिद्र कहते हैं। यथा : सहि दुख परछिद्र दुरावा। इन तीनो को मन का मल कहते है। इन्ही के कारण मन मलिन हो जाता है। जहाँ कपट छल छिद्र नही है वही मन निर्मल है। निर्मल हृदय में मेरे प्रतिबिम्ब को कोई रोक नही सकता। मलिन हृदय मे वह पड सकता नही। इसीलिए साक्षात्कार नहीं होता।

भेद हमार लेन सठ आवा का उत्तर। यदि मान भी लिया जाय कि हमारे भेद लेने के लिए रावण का भेजा हुआ आया है। अर्थात् विभीषणजी के कथन के एकदम विपरीत मान लिया जाय तो भी न कोई भय है न हानि है। अनिष्ट को हानि और भावी अनिष्ट को भय कहते है। यहाँ दोनों सम्भव नही। कपीश सम्बोधन का भाव यह कि अपने बन्दरो के विषय मे शङ्का न करो। उनका कोई अनिष्ट न होगा। दशशीश है। अनेक प्रकार के प्रपञ्च सोचता है। उसका भेद लेने के लिए किसी को भेजना बहुत सम्भव है।

जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते ॥
जौ सभीत आवा सरनाईं। रखिहौ ताहि प्रान की नाईं ॥४॥

अर्थ : हे सखा ! जगत् में जितने राक्षस हैं लक्ष्मण क्षणभर में उन सबको मार सकते हैं और यदि वह भयभीत होकर मेरे शरण में आया है तो मैं उसे प्राण की भाँति रक्खूँगा।

व्याख्या : भेद लगाने मे हानि और भय वहाँ होता है जहाँ कोई कचाई हो। यहाँ तो भेद पाने से उसे और महत्व का ज्ञान होगा। अविकत्थन हैं। अपना बल नही करते। अतः लक्ष्मण का बल कहते हैं : वस्तुतः कपि सेना कौतुक के लिए ही है अथवा मुझे कुछ करना नही है। संसार में जितने राक्षस हैं उनके लिए अकेले लक्ष्मण यथेष्ट हैं। भू भार हरण के लिए इन्ही का अवतार है : जो अवतरेउ भूमि भय टारन और मेरा अवतार तो सन्तों पर अनुग्रह के लिए है। यथा : तुम सारिखे सन्त प्रिय मोरे। धरौ देह नहि आन निहोरे।

यदि वह सच्चे भाव से शरण में आया है तो उसकी रक्षा प्राण के समान करूँगा। प्राण के समान रक्षा करने का प्रण कर रहे हैं और प्राण से अधिक मानकर रक्षा किया। यथा :

आवत देखि सक्ति खर धारा। प्रणतारतिहर विरद सँभारा ॥
तुरत विभीषण पाछे मेला। सनमुख राम सह्यो सो सेला ॥

दो. उभय भाँति तेहि आनहु, हँसि कह कृपानिकेत।
जय कृपाल कहि कपि चले, अंगद हनू समेत ॥४४॥

अर्थ : कृपा के धाम श्रीरामजी ने हँसकर कहा कि दोनो ही विधि से उसे ले आओ। तब अङ्गद और हनुमान् के सहित बानरगण जय कृपाल कहकर चल पड़े।

व्याख्या : दोनों प्राण के समान प्रिय की भाँति तथा बद्ध की भाँति : दोनो भाँति से उसे ले आओ। ऐसी विचित्र आज्ञा हुई। कृपानिकेतन है। विभीषण पर भी कृपा किया और सुग्रीवजी का मनोभङ्ग नही होने दिया। अपनी विचित्र आज्ञा पर हँसते है। सरकार के सान्निध्य से बन्दर सब गुणआगर हो गये हैं। परन्तु अभिप्राय समझ लिया। अतः बन्दर चले। पर हनुमान् और अङ्गदजी आज्ञा की ठीक पूर्ति के लिए साथ हो गये। यहाँ छन्द के अनुरोध से हनू नाम दिया। नाम के एकदेश का ग्रहण किया अथवा सन्त के पास जाने मे नाम के लिए भी मान रखना उचित नही। अतः कवि ने मान शब्द न दिया।

सादर तेहि आगे करि बानर। चले जहाँ रघुपति करुनाकर ॥
दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता। नयनानंद दान के दाता ॥१॥

अर्थ : आदर के साथ बन्दर उसे आगे करके करुणाकर रघुनाथ के पास चले। दूर से ही नयानन्द दान के देनेवाले दोनो भाइयो को देखा।

व्याख्या : पहरे मे कर लेना ही बन्ध है और जो प्राणप्रिय होता है उसका भी पहरा ही दिया जाता है। अत विभीषणजी को आदर से आगे कर लिया। प्रेम द्योतन के लिए आदर है। हनुमान्‌जी मन्त्री हैं। अङ्गदजी युवराज हैं। विभीषणजी इनके आगे आगे चल रहे है। फिर भी पहरे मे हैं। अथवा वानरो के बीच मे आगे आगे चल रहे हैं। इसलिए पहरे मे है। युवराज और मन्त्री लेने आये। इसलिए बडा आदर है। एक दृष्टि से लकेश के भाई हैं। मिलने आये है। इसलिए स्वय युवराज और मन्त्री लेने गये। दूसरी दृष्टि से शत्रु के बन्धु है। निशाचर हैं। कोई भारी उपद्रव न कर बैठे। इसलिए अङ्गद हनुमान् साथ हैं एव उभय भाँति से ले चले। रघुपति हैं। करुणा करके इसे लकेश बनावेंगे। इसलिए उनका रघुपति करुणाकर विशेषण दिया।

दोनो सरकार मध्य सेना मे हैं और सेना बहुत बडी है। इसलिए बाहर से दिखाई नही पडते थे। जब कुछ दूर चले और दृष्टि फैलाई तो दूर से ही दिखाई पडे। दोनो सरकार का उच्चासन है। देखने मे और बैठने के अन्दाज से भी भाई मालूम पड रहे हैं। विभीषणजी दर्शन के भिखारी हैं। रास्ते भर मनोरथ करते चले आ रहे है। सो नयनानन्द दान के दाता को देखा। दोनो भाई दाता हैं।

बहुरि राम छबिधाम बिलोकी। रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी ॥
भुज प्रलंब कंजारुन लोचन। स्यामल गात प्रनत भय मोचन ॥२॥

अर्थ : फिर शोभा के धाम रामजी को देखकर पलक गिरना रोके हुए स्तब्ध होकर एकटक देखते ही रह गये। भगवान् की विशाल भुजाएँ हैं। लाल कमल के समान नेत्र हैं और शरणागत के भय का नाश करनेवाला साँवला शरीर है।

व्याख्या : सभी जगह देखनेवाले पहले दोनो भाइयो की शोभा पर मुग्ध होते हैं। पर अन्त मे रामजी की शोभा पर जा ठहरते हैं। यथा तदपि अधिक सुख सागर रामा। राम देखि मुनि बिरति बिसारी। साँवर कुँवर सखी सुठि लोना। रामहिं चितइ रहे थकि लोचन। इत्यादि। स्तब्ध होना एकटक देखना सात्त्विक भाव का उदय है। विभीषणजी वही स्तब्ध होकर खडे रह गये।

चरण दर्शन का मनोरथ करते चले हैं। पर यहाँ चरण का वर्णन नही है। कारण यह कि सरकार अभी दूर है वानरो से घिरे हैं। निचले भाग का दर्शन नही हो रहा है। वहाँ से कहकर चले हैं मैं रघुबीर सरन अब जाऊँ। अत वीररस प्रधान झाँकी मिली। पहिले दृष्टि भुजाओ पर गयी। वीरो के बाँहो की ही पहिल पूजा होती है। यथा सकल भुवन मगल मंदिर के द्वार बिसाल सुहाई सा हैं। जे पूजे कौसिक मख रिपि यनि जनक गनप सकर गिरिजा हैं। सो विक्रम द्योतक लम्बी भुजाएँ हैं। इन्ही से रक्षा की आशा है। फिर दृष्टि कजारुण लोचन पर गयी। यही से कृपादृष्टि की वृष्टि होती है। अब सम्पूर्ण शरीर का रंग कहते हैं।

विचित्र श्यामलता है। नीलसरोरुह नीलमनि नील नीरधर स्याम। सरकार की मूर्ति ही प्रणत भयमोचन है। यथा : दूरि ते दीनबंधु देखे जनु देत अभय वरदान हैं। गीता.।

सिंह कंध आयत उर सोहा। आनन अमित मदन मनु मोहा ॥
नयन नीर पुलकित अति गाता। मन धरि धीर कही मृदु बाता ॥३॥

अर्थ : सिंह सा कन्धा विशाल वक्ष.स्थल अत्यन्त शोभा दे रहा है। असंख्य कामदेवों के मन को मोहित करनेवाला मुख है। : देखकर नेत्रों में जल भर आया और शरीर अत्यन्त पुलकित हो उठा। मन में धैर्य धारण करके : विभीषणजी मृदु वचन बोले।

व्याख्या . वीरोचित अवयव संस्थान कहते हैं। परशुरामजी को : वृषभ कंध उर बाहु बिसाला कहा था। श्रीरामजी को : सिंह कंध आयत उर सोहा कहते हैं। वीररस और शृंगाररस का अद्भुत सम्मिश्रण है। मुख छबि कहि न जात मोहि पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाहीं। कटि वसन चरणादि का वर्णन नहीं है। इन्हें विभीषणजी नहीं देख रहे हैं। वानर समूह से घिरे रहने के कारण निचले अङ्ग दिखाई नहीं पड़ रहे हैं।

इतना देखते देखते आँखें आँसू से भर गयी। लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सात्त्विक भाव बढ गया। अत्यन्त पुलक हो उठा। प्रेमाधिक्य से धैर्य छूट रहा है। उसे बलपूर्वक धारण करके मधुर वचन बोले। सामने होते ही शरणागत को पुकार करनी चाहिए। यथा : कहेसि पुकारि प्रणत हित पाही। नयन नीर पुलकित अति गाता से तन की दशा कही। मन धरि धीर से मन की तथा कही मृदु बाता से वचन की दशा कही।

नाथ दसानन कर मै भ्राता। निसिचर बंस जनम सुरत्राता ॥
सहज पापप्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा ॥४॥

अर्थ : हे नाथ ! मैं दसानन का भाई हूँ। हे देवों के रक्षक मेरा जन्म राक्षसकुल में हुआ है। अतः तामसी शरीर है। स्वभाव से ही पापप्रिय हूँ। जैसे उल्लू का प्रेम अन्धकार पर होता है।

व्याख्या : जो परिचय कहला भेजा था उसी को मुख से भी निवेदन करते हैं। वह आया था:आवा मिलन दसानन भाई। अत कहते है :नाथ दसानन कर मै भ्राता। दसानन का भाई होने से मै भी दोषी हूँ। संसार चोर के भाई को गिरहकट मानता है अथवा कम से कम शङ्कनीय अवश्य हूँ। निसिचर वंश जन्म कहकर अपने को वध्य होना स्वीकार किया। किस मुँह से पुलस्त्य वंश कहें। अत मातृकुल से अपना परिचय देते हैं। यथा : काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा : भाई भतीजे निशाचर, माँ बहन निशाचरी, बाल बच्चे निशाचर, स्वय निशाचर, अतः निसिचर वंश जन्म कहा। मुनि पिता और

दानवकन्या माता : इनसे शङ्कर सृष्टि निशाचरी चली। विभीषणजी प्रणाम करना चाहते हैं। अतः पुलस्त्य वंश नहीं कहा निशिचर वंस कहा।

जो देह मुझे मिली है उसका स्वभाव पाप प्रिय है भजन प्रिय नहीं है। यथा : मोह निसा प्रिय ग्यान भानु गत : इसी से उलूक का दृष्टान्त देते हैं। अपने स्वभाव का परिचय देते हैं कि अधम स्वभाव है। जन्म संग स्वभाव और करणी से मनुष्य की पहिचान होती है। यथा जन्म सिंधु पुनि बंधु बिष दिन मलीन सकलङ्क वही सब दिखला रहे हैं। जन्म यथा : निसिचर वंस जन्म। संग यथा : दशानन कर मै भ्राता स्वभाव यथा : सहज पाप प्रिय। करणी यथा उलूकहि तम पर नेहा। इससे सब प्रकार से अपनी हीनता कही।

दो. श्रवन सुजसु सुनि आयउँ, प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन, सरन सुखद रघुबीर ॥४५॥

अर्थ : मैं कानो से सुयश सुनकर आया हूँ कि प्रभु भवभय का नाश करनेवाले हैं। हे आर्ति के हरण करनेवाले शरणागत को सुख देनेवाले रघुवीर ! मेरी रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये।

व्याख्या . सुयश सुनि श्रवन हौं नाथ आयो सरन।
उपल केवट गीध सबरी ससृति समन, सोक श्रमसीव सुग्रीव आरति हरन॥
राम सजीव लोचन बिमोचन बिपति, स्याम नवतामरस दाम बारिद बरन।
लसत जटाजूट सिर चारु मुनिचीर कटि, धीर रघुबीर तूनीर सर धनु धरन॥
जातुधानेस भ्राता बिभीषण नाम, बंधु अपमान गुर ग्लानि चाहत गरन।
पतित पावन प्रनतपाल ! करुनासिंधु ! राखिये मोहि सौमित्रि सेवित चरन॥

प्रभु का सुयश बिभीषन ने हनुमान्जी से सुना। यथा एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा। पावा अनिर्वाच्य बिश्रामा . अत. कहते हैं कि मै भवभय से डरा हुआ हूँ और प्रभु भजन भवभीर है, मैं आर्त हूँ, प्रभु आर्तिहरण हैं, मै शरण हूँ और प्रभु शरणसुखद हैं। मै त्राहि त्राहि पुकारता हूँ और प्रभु रघुवीर है। यथा : मैं पतित तुम पतितपावन दोऊ बानक बने।

भक्ति रूपी राका रजनी मे यह पन्द्रहवाँ गुणग्राम स्वातीनक्षत्र है। आवे सभय सरन तकि मोहो। विभीषणजी को एक मात्र रघुवीर शरण है। यही एक तारा चमकता है। सरकार को भी विभीषण के प्रति राग है। यथा : रखिहौं ताहि प्रान की नाईं। राग का रंग कविसम्प्रदाय मे लाल माना जाता है। इसलिए तारा का आकार विद्रुम : मूँगा के ऐसा कहा। फलश्रुति हैं · कामद घन दारिद दवारिके।

अस कहि करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरख बिसेषा॥
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदय लगावा॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर दण्डवत् करते देखा तो प्रभु हर्षित होकर तुरंत उठे। दीन वचन सुनकर : विभीषणजी प्रभु को अच्छे लगे। विशाल भुजाओं से पकड़कर हृदय से लगा लिया।

व्याख्या : कहना सुना दण्डवत् करते देखा। अनादर पाकर आरहा है। अत: आदर के लिए प्रभु तुरन्त उठे। विभीषण को सरकार के दर्शन से हर्ष हुआ। यथा : नयनानंद दान के दाता और प्रभु को विभीषणजी के देखने से अति हर्ष हुआ। भक्त को भगवान् जितने प्रिय हैं उससे अधिक भगवान् को भक्त प्रिय हैं। प्रभु ने विभीषणजी का आदर किया। स्वयं उठकर खड़े हो गये।

तुलसी राम कृपाल से कहि सुनाउ गुन दोष। होय दूबरी दीनता परम पीन संतोष। उपर्युक्त दीन वचन प्रभु के प्रसन्न करने के लिए महामन्त्र हैं। रावण ने कहा था कि रिपु कर पक्ष मूढ तोहि भावा। रावण को विभीषणजी के वचन अच्छे नही लगे परन्तु प्रभु को अच्छे लगे। यथा : दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा : दीन वचन ऐसे प्रिय लगे कि कञ्जारुण लोचन से देखा। प्रलम्ब भुजाओं से पकड़ा। श्यामलगात से मिले और हृदय से लगा लिया। रखिहौं ताहि प्रान की नाईं का साफल्य दिखलाया।

अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। बोले बचन भगत भयहारी ॥
कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा ॥२॥

अर्थ : छोटे भाई के साथ मिलकर उनको अपने पास बिठाया और भक्तों के भय को हरण करनेवाले वचन बोले। हे लंकेश ! परिवार सहित अपनी कुशल कहो तुम्हारा निवास स्थान बेढंगा है।

व्याख्या : सरकार सुग्रीव से भी अनुज के सहित मिले थे। यथा : भेंटेउ अनुज सहित रघुनाथा। विभीषण से भी उसी भाँति मिले। रावण ने कहा था सठ मिलु जाइ तिनहि कहु नीती। सो अनुज सहित मिले। अनुज सहित मिलने का भाव यह कि अब तुम हमारे भाई हो। समीप बैठाना अति आदरसूचक है। यथा : अति आदर समीप बैठारी। करगहि परम निकट बैठाये इत्यादि। विभीषणजी ने त्राहि त्राहि आरति हरण कहा था। अत: भयहारक वचन बोले।

लङ्केश सम्बोधन से ही भय हरण कर लिया। लङ्का के राज्य की मजूरी हो गयी। सहित परिवार यथा : प्रनत कुटुम्ब पाल रघुराई। कुशल पूछते हैं। क्योंकि विभीषणजी अपना परिवार लङ्का में ही छोड़ आये थे। कुशल में सन्देह मालूम होता है। सन्देह का कारण कहते है कि तुम्हारा निवास स्थान बुरी जगह है। यथा : जिमि दसनन्ह महँ जीभ बिचारी।

खल मंडली बसहु दिन राती। सखा धरम निबहै केहि भाँती ॥
मै जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती ॥३॥

अर्थ : दिन रात दुष्टों की मण्डली में रहते हो। हे सखे ! तुम्हारा धर्म कैसे निभता है ? मैं तुम्हारी सब रीति जानता हूँ। तुम अत्यन्त नीतिनिपुण हो। तुम्हें अनीति अच्छी नहीं लगती।

व्याख्या : विभीषणजी ने कहा था कि कुल भी मेरा खोटा है। सङ्ग भी खोटा है। स्वभाव भी खोटा है और करणी भी खोटी है। इस पर स्वभाव और करणी को खोटी न मानते हुए विभीषणजी की *अलौकिक करणी* द्योतन करते हुए प्रश्न करते हैं। आश्चर्य प्रकट करते हैं कि तुम अपने धर्म का निर्वाह कैसे कर पाते थे। जो खलमण्डली में दिन को बसे उसे रात को धर्म निर्वाह का अवसर है जो रात को बसे उसे दिन को धर्म निर्वाह का अवसर है। पर तुमने तो रात दिन खलमण्डली में ही बिताया। तुमने धर्म कैसे निबाहा ? वह विधि कौन सी थी जिस पर सरकार प्रसन्न होते हैं ? उससे इसी प्रकार का प्रश्न करते हैं। यथा : कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका। प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। तथा : अंगद के प्रति कहा : तासु मुकुट तुम चारि चलाए। कहहु तात कवनी बिधि पाए। यहाँ भी विभीषणजी से धर्म निर्वाह की विधि पूछते हैं।

हनुमान्‌जी की भाँति विभीषण भी उपालम्भ न करें कि पुनि प्रभु मोहि बिसारेहु दीनबन्धु भगवान। अतः उनके स्वभाव को खोटा न मानते हुए कहते हैं : मैं जानौं तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती अथवा हनुमान्‌जी ने कहा था : सुनहु बिभीषन प्रभु की रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती। उसी का साफल्य दिखला रहे हैं। न भाव अनीती का तात्पर्य यह है कि लङ्का में सब सुख रहते हुए भी तुम दिनरात दुःखी थे। क्योंकि वहाँ की अनीति तुमसे देखी नहीं जाती थी। तुम अतिनय निपुण हो। तुम्हारा अनादर भी वहाँ नीतिप्रियता के कारण हुआ। यथा : सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती। सरकार भक्त को पाकर ऐश्वर्य नहीं छिपाते। कहते हैं कि मैं यहीं से तुम्हारे गुणों को जानता हूँ।

बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता ॥
अब पद देखि कुसल रघुराया। जो तुम कीन्हि जानि जन दाया ॥५॥

अर्थ : हे तात ! नरक में निवास करना बल्कि अच्छा है पर विधाता दुष्ट का सङ्ग न दे। विभीषण बोले : हे रघुनाथ ! अब आपके चरणों के दर्शन से कुशल है जो आपने अपना सेवक जानकर मुझ पर दया की है।

व्याख्या : नरक का वास भला क्योंकि उससे पाप क्षय होता है और दुष्ट का सङ्ग बुरा क्योंकि उससे दारुण दुःख भी उपजता है और पाप की भी वृद्धि होती है। दुष्ट सङ्ग सज्जन चाहता नहीं पर विधिवश ऐसे सङ्ग में पड़ जाता है। सो तुम दुष्ट सङ्ग से छूटे यह बड़ा काम हुआ।

कहु लङ्केश कुसल का उत्तर विभीषणजी देते हैं : *अब पद देखि कुसल*। भाव यह कि इससे पहले कुशल कहाँ ? क्योंकि कुशल के मूल तो ये चरण हैं। यथा : कुसल

मूल पद पंकज पेखी। सहित परिवारा का उत्तर है कि उनको कुशल प्रभु की कृपा पर अवलम्बित है। यथा : अब प्रभु परम अनुग्रह तोरे। सहित कोटि कुल मंगल मोरे। अथवा जीवमात्र की कुशल प्रभु की कृपा पर अवलम्बित है। अब प्रभु ने जन जानकर कृपा की है तो अब मेरा भी कुशल है। परिवार का भी कुशल है। तुम्हारी दया बिना चरणदर्शन नहीं होता और दर्शन बिना कुशल नहीं।

दो. तब लगि कुसल न जीव कहुँ, सपनेहु मन बिश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ, सोक धाम तजि काम ॥४६॥

अर्थ : तब तक जीव कुशल नही और न सपने में भी मन को विश्राम है। जब तक वह शोकधाम काम को त्यागकर रामजी को नही भजता।

व्याख्या : अब अवान्तर प्रक्रिया कहते हैं। भजत कृपा करिहहिं रघुराई। काम के रहते कुशल हो नहीं सकती। यथा : काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं। न मनको विश्राम मिल सकता है। यथा : नाचत ही निसि दिवस मरयौ। तबही ते न भयो थिर जब ते जिव नाम धरयौं। बहु बासना विविध कंचुकि भूषन लोभादि भरयौं। चर अरु अचर गगन जल थल में कौन न स्वाँग करयौ। देव दनुज मुनि नाग मनुज नहि जाचत कोउ उबरयौ। मेरो दुसह दरिद्र दोष दुख काहू तो न हरयौ। थके नयन पदपानि सुमति जल संग सकल बिछुरयौ। अब रघुनाथ सरन आयो जन भवभय विकल डरयौ। राम और काम दोनों का भजन एक साथ हो नहीं सकता। अतः काम त्यागपूर्वक राम के भजन करने से ही मनमें विश्राम होता है। काम को शोकधाम समझकर जब भजन करे तो विश्राम पावै। यथा : इहै कह्यौ सुत वेद चहूँ। श्री रघुवीर चरन चिन्तन तजि नाहि न ठौर कहूँ। और जब मन में विश्राम हो तब कुशल है। सुख सम्पत्ति परिवार बड़ाई। ये सब काम के ही चेष्टित हैं। इन्हें छोड़कर जब सरकार के शरण आये तो मन को विश्राम मिला नहीं तो सपने में भी मुझे विश्राम दुर्लभ था।

तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मच्छर मद माना॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा॥१॥

अर्थ : लोभ मोह मत्सर मद मानादिक अनेक खल तभीतक हृदय में बसते हैं जबतक धनुष बाण और कमर में तरकस धारण किये हुए श्रीरघुनाथजी हृदय में नही बसते।

व्याख्या : जब सब कामनाओं का त्याग करके जीव भगवान् के सम्मुख होता है तब उसे भीतरी शत्रुओं का परिज्ञान होता है। इससे पहले तो वह इन्हें मित्र मानता था अब समझा कि ये खल हैं। क्योंकि निष्कारण अपकार करते हैं यथा : खल बिनु कारण पर अपकारी। अहिमूषक इव सुनु उरगारी। तब वह प्रार्थना करता है : मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ बहु चोरा। अति कठिन करहिं बरजोरा। मानहि नहि बिनय निहोरा। तम मोह लोभ अहंकारा। मद क्रोध बोध

रिपु मारा। अति करहिं उपद्रव नाथा। मर्दहिं मोहि जानि अनाथा। भागेहु नहि नाथ उबारा। रघुनायक करहु सँभारा। सगुण ब्रह्म के हृदय बसते ही ये भाग खड़े होते हैं। निर्गुण ब्रह्म तो सदा बसते हैं। पर वे निरुपाधि निष्क्रिय हैं। यथा ' अस प्रभु हृदयँ अछत अविकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी। नाम निरूपन नाम जतन ते। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन ते।

वचन करम मन मोरि गति भजनु करहिं निहकाम। तिन्हके हृदय कमल महुँ करे सदा विश्राम। ऐसे भक्तो के हृदय मे विश्राम होता है। अत. वही सरकार भी विश्राम करते हैं। धनुषबाण देखते ही खल भाग जाते हैं। भाव यह कि बाहर भी खलमण्डली और भीतर भी खलमण्डली थी। सो बाहर की खलमण्डली से तो रक्षा हुई अब हृदय मे बसकर भीतर की खलमण्डली से भी रक्षा कीजिये।

ममता तरुन तमी अँधियारी। राग द्वेष उलूक सुखकारी॥
तब लगि बसत जीव मनमाही। जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाही॥२॥

अर्थ : ममता पूर्ण अँधेरी रात है। जो राग द्वेष रूपी उल्लुओ को सुख देनेवाली है। वह तभी तक जीव के मन मे बसती है जबतक प्रभु प्रतापरूपी सूर्य नही हैं।

व्याख्या : चोर का उपद्रव रात को रहता है। अविद्या निशा मे आधी रात ममता है। इसमे कुछ नही सूझता। राग द्वेष रूपी उलूक का इसमे सञ्चार होता है। भक्ति उँजेली रात है। इसलिए ममता को अँधियारी कहा। उँजेली रात मे भी उल्लू का सुखसञ्चार नही होता। ज्ञान विराग सुख सन्तोष विज्ञान विवेक को यह अँधियारी रात दु खद है।

राम कृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम प्रभुताई। रामजी की प्रभुता का ज्ञान ही रामप्रताप रवि का उदय है। यथा . जब ते रामप्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा। तब तो आधी रात से मध्याह्न हो जाता है। फिर तो कही न चोर और न कही उलूक।

अब मै कुसल मिटे भयभारे। देखि राम पदकमल तुम्हारे॥
तुम्ह कृपाल जापर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिबिध भवसूला॥३॥

अर्थ : हे रामजी ! आपके चरणकमल के दर्शन से अब मैं कुशल से हूँ। मेरे भारी भय मिट गये। हे कृपालु ! आप जिसपर अनुकूल होते हैं उन्हे तीनो प्रकार के भवशूल नही व्यापते।

व्याख्या : विभीषणजी अब पद देखि कुसल रघुराया से उपक्रम करके अब मैं कुसल कहकर इस प्रसङ्ग का उपसंहार करते हैं। भारी भय मिट गया। भवरात्रि ही चली गई ' नयन विषय मोकहु भयऊ सो समस्त सुखमूल ' कुशल के तीन कारण हैं · १ निष्काम भजन २ रामजी का हृदय मे वास और ३ प्रताप रवि का उदय। अब तीनो की प्राप्ति हुई। अतः अब से कुशल है।

खल मण्डली बसहु दिन राती। सखा धर्म निबहै केहि भाँती। इस प्रश्न का उत्तर विभीषणजी देते हैं। कहते हैं कि :

मै निसिचर अति अधम सुभाऊ। सुभ आचरनु कीन्ह नहि काऊ ॥
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा। तेहि प्रभु हरपि हृदयँ मोहि लावा ॥४॥

अर्थ : मै अत्यन्त नीच स्वभाव का राक्षस हूँ। मैंने कभी शुभ आचरण किया नही जिसका रूप मुनियों के ध्यान में नही आता। उस प्रभु ने हर्षित होकर मुझे हृदय से लगा लिया।

व्याख्या : आनुकूल्यस्य संकल्प. प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्। रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा। आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः। सकल्प यथा : अस कहि चला देखिहौं जाइ चरन जल जाता। प्रातिकूल्यका वर्जन यथा : अस कहि करत विभीषण जबहीं। विश्वास : सरन गये प्रभु ताहु न त्यागा। वरण। यथा : श्रवन सुजसु सुनि आयेउँ प्रभु भंजन भवभीर। आत्मनिवेदन। यथा : अस कहि करत दंडवत देखा। इस भाँति पाँच का वर्णन ऊपर हो चुका अब छठे कार्पण्य का वर्णन करते हैं। स्वभाव से कपि अधम होते हैं। परहिंसक होने से निशिचर अत्यन्त अधम होते हैं। मैं धर्मनिर्वाह क्या करूँगा। सुभ आचरन कीन्ह नहि काऊ। विभीषणजी अपने को तीनों काण्ड का अनधिकारी बतलाते हैं। अपने को निशिचर कहकर भजन का अनधिकारी कहा। अपना अधम स्वभाव बतलाकर ज्ञान का अनधिकारी कहा। सुभ आचरन कीन्ह नहि काऊ बतलाकर कर्म का अनधिकारी कहा।

जिति पवन मनगो निरसकरि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं। योगसाधन करने पर कभी एक झलक सरकार की मिल जाती है। ध्यान मे आते नही। सो सरकार की रीति देखी। तीनो काण्ड के अनधिकारी : मुझ : को हृदय से लगाया। सरकार के अभिष्वङ्ग से बढ़कर कुछ प्राप्तव्य नही है। सरकार प्रतिज्ञा कर चुके हैं। निसिचर हीन करौं महि भुज उठाइ प्रन कीन्ह। सो मुझे हृदय से लगाया। मेरे लिए प्रतिज्ञा भी छोड़ी।

दो. अहोभाग्य मम अमित अति, राम कृपासुख पुंज।
देखेउँ नयन विरंचि सिव, सेव्य जुगल पदकंज ॥४७॥

अर्थ : हे कृपा और सुख के पुञ्ज रामजी ! मेरा अत्यन्त असीम सौभाग्य है जो मैंने ब्रह्मा और शिवजी के सेवनीय दोनों चरणों को आँखों से देखा।

व्याख्या : हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहौं तेई। चरण दर्शन से विभीषणजी ने अहोभाग्य माना। पर यहाँ तो दर्शन के साथ ही साथ अत्यन्त कृपा करके परिष्वङ्ग सुख का सौभाग्य प्राप्त कराया। अतः अति अमित अहोभाग्य है। तीन बार दर्शन का मनोरथ किया था। यथा : १. देखिहौं जाइ चरन जलजाता २. अहोभाग्य मैं देखिहौं सोई ३. ते पद आज विलोकिहौं। अतः

तीन वार मनोरथ की पूर्ति स्वीकार करते हैं : १ अब पद देखि २ देखि रामपद कमल तुम्हारे और ३ देखेउँ नयन विरंचि सिव सेव्य जुगल पद कंज। १. भजन का फल . कुशल तथा विश्राम है २ ध्यान का फल : लोभ मोह मत्सरादि का नाश है ३ चरण दर्शन का फल भवभय का नाश और रामकृपा का फल त्रयशूल का नाश है।

अथवा अमित अहोभाग्य होने से विरश्चि शिव का दर्शन होता है। सो मुझे विरश्चि शिव सेव्य युगल पद पङ्कज का दर्शन हुआ। अत मेरा अति अमित अहोभाग्य है।

सुनहु सखा निज कहहुँ सुभाऊ। जान भुसुण्डि संभु गिरिजाऊ॥
जौ नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥१॥

अर्थ : रामजी बोले : हे सखे! सुनो मैं अपना स्वभाव कहता हूँ। जिसे काकभुसुण्डि शिवजी और पार्वतीजी भी जानती हैं। यदि कोई सम्पूर्ण जड़चेतन जगत् का द्रोही हो और वह भयभीत होकर मेरे शरण मे आ जाय।

व्याख्या . विभीषणजी से सरकार ने सखा का नाता कायम किया। सखित्व मे स्वभाव का परिचय आवश्यक है। अत अपना स्वभाव कहते हैं भुसुण्डि की जानकारी। यथा ' अस सुभाव कहुँ सुनै न देखौं। केहि खगेस रघुपति सम लेखौं। उमा शम्भु की जानकारी यथा . उमा राम सुभाउ जेहि जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना। भुसुण्डिजी जीवकोटि मे है, इनका सम्पर्क पाप से रह चुका है। इसलिए पहिले इन्ही का नाम लिया। क्योकि इन्हे साक्षात् अनुभव है।

चराचर मात्र के द्रोह करने की सामर्थ्य ही मनुष्य मे नही है। यह पाप रावणादि अति सामर्थ्यवान् से ही सम्भव है। यथा विस्व द्रोह रत यह खल कामी। निज अघ गयउ कुमारग गामी। चराचर मात्र के द्रोह से बडा पाप भी कोई नही। यथा ' विस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा है ऐसा व्यक्ति भी यदि शरण मे आवे तो उसके लिए रोक नही है। यहाँ पर शरणागत के तीन अङ्ग भी कहे गये हैं : १ भयभीत होना २ अन्य साधन पर भरोसा न रखना और ३ अन्य आश्रय का न होना। आवै सभय सरन तकि मोही से ये ही तीन बातें कही।

तजि मद मोह कपट छल नाना। करौं सद्य तेहि साधु समाना॥
जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥२॥

अर्थ . मद मोह तथा नाना प्रकार के कपट छल त्याग दे तो मैं उसे तुरन्त साधु के समान बनाता हूँ। माता पिता भाई पुत्र स्त्री शरीर धन घर मित्र और परिवार।

व्याख्या ४. मद के रहते शरणागति नही होती। यथा : अजहुँ तात त्यागहु अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना। ५. न मोह के रहते स्वरूप ज्ञान होता है और जिसके शरण मे जाना है उसके स्वरूप का ज्ञान न होना शरणागति मे

प्रतिबन्धक है। ६ कपट छल शरणागति धर्म का विरोधी है। यथा मोहि कपट छल छिद्र न भावा।

ममता के पात्रो मे प्रथम परिचय जननी से तब जनक से तत्पश्चात् बन्धु से। पुत्रप्रयोजना भार्या है। अत पुत्र के बाद भार्या कहा। तत्पश्चात् शरीर कहा। यथा सबके देह परम प्रिय स्वामी। धन और भवन शारीरिक सुख के साधन हैं, अत जड होने पर भी अतिप्रिय है। सुहृद के लिए तो स्वय सरकार ने कहा है कि अनुज राज सपति वैदेही। देह गेह परिवार सनेही। सब मम प्रिय नहि तुमहि समाना। परिवार भी प्रिय है। यथा होइहि प्रिय परिवार दुखारी। भाव यह कि इतने ही प्रेम के पात्र हैं, इन्ही पर ममता होती है कि ये मेरे हैं।

सबकै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बर डोरी ॥
समदरसी इच्छा कछु नाही। हरप सोक भय नहि मन माही ॥३॥

अर्थ सबके ममता के तागो को बटोरकर और उन सबकी एक डोरी बटकर मेरे चरणो मे बाँध देवे। समदर्शी हो जावे। उसे कुछ इच्छा न रहे और न मन मे हर्ष शोक या भय रहे।

व्याख्या मन से वृत्तियाँ निकल कर इन्ही सबो मे बँधी हुई हैं। इन्ही वृत्तियो को ममता ताग कहा गया है। सो सब जगह से मनोवृत्तियो को हटाकर एकत्रित करके उनकी डोरी बट ले। यथा गुरु पितु मातु बधु पति देवा। सब मोहि कहँ जानै दृढ सेवा। त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव। त्वमेव विद्या द्रविण त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव। और उस डोरी को मेरे चरणो मे बाँध दे।

ममता की डोरी चरण म बँधते ही वह सब ओर से स्नेहशून्य होकर समदर्शी हो जायगा। तब उसे मालूम होगा कि सब जगत् प्रभुमय है। वह प्रभु से पृथक् कुछ देखता ही नही। इच्छा किसकी करे। जब कोई इष्ट अनिष्ट ही न रहा तब हर्ष भय शोक भी नही रह जाता। ये सब डोरी लग जाने के स्वाभाविक फल हैं। इस बात को पहचान के लिए कहा यदि कुछ इच्छा शेष हो हर्ष शोक भय मन मे हो तो समझना चाहिए कि डोरी ठीक बँधी नही और बँधी भी तो दृढ नही बँधी।

अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदय बसइ धन जैसें ॥
तुम सारिखे सत प्रिय मोरे। धरउँ देह नहि आन निहोरे ॥४॥

अर्थ ऐसा सज्जन मेरे हृदय मे कैसे बसता है, जैसे लोभी के हृदय मे धन बसता है। तुम सरीखे सन्त ही मुझे प्रिय हैं। मैं और किसी के निहोरे से देह धारण नही करता।

व्याख्या 'स्वय सरकार मुनिजन धन हैं। पर ऐसे सज्जन सरकार के भी धन हैं। लोभी प्राण जाने पर भी धन नही छोडता। इसी भाँति सरकार भी किसी

अवस्था मे ऐसे सज्जन का परित्याग नही करते। हृदय बसै कहने का भाव यह कि मुझे उनका ध्यान करने मे आनन्द होता है। सदा उनका ध्यान बना रहता है।

तुम सन्तो के लिए उदाहरण रूप हो। ऐसे ही सन्त है तजि मम चरनसरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह। ये ही मुझे प्रिय हैं। इन्हीके लिए मैं देह धारण करता हूँ। अन्य कारण गौण है। भावार्थ यह कि तुम्हारे से सन्तो के लिए मेरा अवतार हुआ। पृथ्वी का भार उतारने के लिए तो लक्ष्मण का अवतार है। यथा: जो सहस सीस अहीस महिधर लषन सचराचर धनी। सुरकाज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी।

दो० सगुन उपासक परहित, निरत नीति दृढ नेम।
ते नर प्रान समान मम, जिन्हके द्विज पद प्रेम ॥४८॥

अर्थ: जो सगुण उपासक है। दूसरे के हित मे लगे रहते हैं। नीति मे निरत है और नियम उनका दृढ है और जिन्हे ब्राह्मणो के चरण मे प्रेम है वे मनुष्य मेरे प्राणो के समान हैं।

व्याख्या: मै सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवन्त। सगुणोपासक चराचररूप विश्व को स्वामी रूप से मानते हैं। अत वे विश्व की सेवा मे दृढसकल्प होते हैं। इसलिए परहित कहा। निर्गुण ब्रह्म के उपासक तो अपने उपास्य की भाँति निष्क्रिय होकर बैठ जाते हैं। वे परहित के लिए यत्नशील नही हो सकते। परहित करने मे किसी का अहित भी हो जाता है। अत निरत नीति कहा। नीति के अनुसार वर्तने मे ही सबका हित है। कष्ट के भय से अपने नियम से विचलित नही होते। अत. दृढ नेम कहा. ये पाँचो गुण पाचो प्राण के समान हैं। अत कहते हैं ते नर प्राण समान मम।

सुनु लकेस सकल गुन तोरे। ताते तुम्ह अतिसय प्रिय मोरे॥
राम वचन सुनि वानरजूथा। सकल कहहि जय कृपाबरूथा॥१॥

अर्थ: हे लकेश! सुनो तुममे सब गुण हैं इससे तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो। रामजी का वचन सुनकर सब वानरो के समूह कहने लगे कृपा के समूह रामजी की जय हो।

व्याख्या: पहिले अपना स्वभाव कहा कि कौन कौन से गुण प्रिय होने के कारण है। अब विभीषणजी की ग्लानि मिटाने के लिए कहते है कि वे सब गुण तुममे हैं। तुम शरणागत भी हो तुम्हारी ममता की डोरी भी मेरे चरणो मे लग गयी है। सगुणोपासन तथा परहितादि गुण भी तुममे है। इसलिए अतिप्रिय हो। अतः हर्षित होकर हृदय से लगाया। मै निसिचर अति अधम सुभाऊ। सुभ आचरन कीन्ह नहि काऊ। ऐसा मत कहो। मेरा स्वभाव तुम्हारे स्वभाव से मिलता है। जो जो गुण मुझे प्रिय है व सब तुम मे है. सुनु लंकेस सकल गुन तोरे।

सरकार का ध्यान कुल पर नहीं है प्रीति पर है। यथा : रीझत राम सनेह निसोते। यह बात वानरों के अनुकूल है। वानर कुलीन नहीं होते। उन्हें प्रेम का ही भरोसा था। उसी प्रेम की विजय देखकर जय जयकार कर रहे हैं। अथवा : देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने। इस स्वभाव पर जय जयकार करते हैं।

सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी। नहिं अघात श्रवनामृत जानी ॥
पद अंबुज गहि बारहि बारा। हृदय समात न प्रेमु अपारा ॥२॥

अर्थ : विभीषणजी प्रभु की वाणी सुनकर उसे श्रवणामृत जानकर अघाते नहीं। वे बार बार रामजी के चरण कमलों को पकड़ते हैं। अपार प्रेम हृदय में समाता नहीं।

व्याख्या : श्रवणशूल के समान लङ्का के प्रभु रावण की वाणी सुनते रहे। यथा : रिपु उत्कर्ष कहत सठ दोऊ। दूरि न करउ इहाँ है कोऊ। मम पुर बसि तपसिन्ह सन प्रीती। सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती। इत्यादि। अब कवि कहते हैं कि मेरे प्रभु की श्रवणामृत वाणी सुनकर विभीषणजी अघाते नहीं। यथा : प्रभु वचनामृत सुनि न अघाऊँ।

परिमित हृदय में अपरिमित प्रेम नहीं समाता तब वाह्य क्रिया में व्यक्त होता है। यथा : पद अम्बुज गहि बारहि बारा। अथवा अन्तःकरण प्रेमानन्द से परिपूर्ण हैं। तब शरीर भी ब्रह्म संस्पर्श रूप अत्यन्त सुख के लिए चरण का आश्रयण करता है। अथवा अपने प्रेम का अपने को ही पार नहीं मिल रहा है। अतः बार बार चरणरूपी नौका का आश्रयण करते हैं।

सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अंतरजामी ॥
उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभुपद प्रीति सरित सो बही ॥३॥

अर्थ : हे देव ! चराचर जगत् के स्वामी ! हे प्रणतपाल ! हे अन्तर के प्रेरक ! सुनिए मेरे हृदय में पहले कुछ वासना रही। अब प्रभु के चरण की प्रीति की नदी में वह बह गयी।

व्याख्या : देवो भूत्वा देवं यजेत्। जिस देव की पूजा करना चाहे उसके ऐसा होकर उसकी पूजा करे। सरकार बड़े सरल हैं। अतः परम सरल होकर ही सरकार की पूजा करनी चाहिए। विभीषणजी परम चतुर हैं। समझते हैं कि सरकार से छिपाव उचित नहीं। मेरे हृदय में परिवर्तन हुआ है। पहिले रावण की यह बात सुनकर कि : मम पुर बसि तपसिन्ह सन प्रीती। राज्य की वासना हो गयी कि पुर इनका है। मैं कोई नहीं हूँ। सो सरकार अन्तर्यामी हैं। सब जान गये। देव हैं : रावण का संहार करेंगे ही। सचराचर स्वामी हैं : जिसे चाहें राजा बनावें। जिसे चाहे रंक बनावें तिस पर प्रणतपाल हैं। और मैं शरण में आया

हूँ। ये मेरे पूर्व वासनानुसार लङ्का का राज्य देना चाहते हैं। अत बार बार लकेश सम्बोधन कर रहे है।

अत स्पष्ट कह देना चाहिए कि सरकार! पहले अवश्य लङ्का की वासना रही। पर इस समय प्रेम की अविच्छिन्न धारा हृदय मे बह रही है। यह धारा उस वासना को कहाँ बहा ले गयी कुछ पता नही। अब मुझे इच्छा नही है।

अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी॥
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। माँगा तुरत सिधु कर नीरा॥४॥

अर्थ अब हे कृपालु! सदा शिव के मन को सदा प्रिय लगनेवाली अपनी पवित्र भक्ति मुझे दीजिये। एवमस्तु बहुत अच्छा कहकर रणधीर प्रभु ने तुरन्त ही समुद्र का जल माँगा।

व्याख्या प्रभु के वचनामृत सुनने के पहिले कुछ उपर्युक्त वासना थी। अत कहते है कि आप कृपाल हैं। पहिली बात का ख्याल न कर अब जो चाहते हैं सो दें। अपावनी लङ्का अब मुझ न चाहिए। पावनी भक्ति चाहिए। सो भी सदा शिव मन भावनी भक्ति चाहिए अर्थात् सिद्धि भक्ति चाहिए। अविरल भक्ति कृपासाध्य है क्रियासाध्य नही है।

प्रभु हैं रणधीर हैं अत विजय के पहिल ही अभिषेक करते हैं। सुग्रीवजी को पहिल अभिषिक्त नही किया। क्योंकि उन्हे प्रभुता म सन्देह उठ गया था। यथा कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महा बल अति रनधीरा। दुदुभि अस्थि ताल दिखराये। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाये। परन्तु विभीषण को प्रभु की प्रभुता पर सन्देह नही हुआ। यथा राम सत्य सकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि। अत प्रभु ने इन्ह रावण वध से पहिल ही अभिषिक्त किया। अभिषेक मे सिन्धु का जल प्रशस्त है। समुद्र सर्वतीर्थमय है। अत सिन्धु का जल अभिषेक करने के लिए माँगा। बही हुई वासना और प्रस्तुत वासना दोनो की पूर्ति की। प्रस्तुत वासना की पूर्ति एवमस्तु ऐसा ही हो कहकर किया और बही हुई वासना की पूर्ति के लिए अभिषेकार्थ सिन्धु जल माँगा।

जदपि सखा तव इच्छा नाही। मोर दरसु अमोघ जग माही॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन बृष्टि नभ भई अपारा॥५॥

अर्थ हे सखे! यद्यपि तुम्हे इच्छा नही है पर जगत् मे मेरा दर्शन अमोघ है। वह व्यर्थ जा नही सकता। ऐसा कहकर रामजी ने उन्हे तिलक कर दिया। आकाश से पुष्पो की अपार वृष्टि हुई।

व्याख्या सरकार क जल माँगने की देर थी। समुद्र पास ही था। जल आने म देर न हुई। जिस इच्छा को हृदय मे रखकर भाग्यवान जीव ईश्वर का दर्शन करता है वह इच्छा चाहे दर्शन के बाद नष्ट भी हो जाय पर सरकारी दर्शन अमोघ है। वह फल दिय बिना नही रहता। सुग्रीव की भी बालिवध की इच्छा

दर्शनोपरान्त जाती रही। पर सरकार ने यही कहा। जो कछु कहेहु सत्य सब सोई। सखा वचन मम मृषा न होई। उस इच्छा में परिवर्तन देखकर सरकार जल्दी करते हैं। तुरन्त : लै सुग्रीव संग रघुनाथा। चले चाप सायक गहि हाथा। इसी भाँति यहाँ भी शीघ्रता की। रावण वध में देर है अतः अभिषेक तुरन्त कर दिया। विभीषण साधु हैं कहीं राज्याप्राप्ति : राज्य न मिलने का वर न माँगे।

दो. रावन क्रोध अनल निज, स्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषनु राखेउ, दीन्हेउ राजु अखंड॥
जो संपति सिव रावनहि, दीन्हि दिये दसमाथ।
सो संपदा बिभीषनहि, सकुचि दीन्ह रघुनाथ॥४९॥

अर्थ : श्रीरामजी ने रावण के क्रोधरूपी अग्नि से जो अपनी स्वासरूपी पवन से प्रचण्ड हो रही थी जलते हुए विभीषण की रक्षा की और उसे अखण्ड राज्य दिया।

शिवजी ने जो सम्पत्ति रावण को दस सिर देने पर दी थी वही सम्पत्ति श्रीरघुनाथजी ने विभीषण को सकुचते हुए दी।

व्याख्या : रावण का क्रोध साक्षात् अग्नि ही था। वह क्रोध के पात्र को विना जलाये नहीं छोड़ता था। सो विभीषण पर भारी क्रोध हुआ। यथा : सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि मृत्यु निकट अब आई। विभीषणजी को अपने अनादर से तथा मरणान्त कष्ट से दीर्घ नि.श्वास चलने लगा। इससे रावण का क्रोध और बढ़ा। यथा : अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। लात मारकर लङ्का से निकाल दिया। खूब समझता है कि रामजी के यहाँ भी जाकर यह बाँधा या मारा जायगा। इस सन्दिग्धावस्था में शत्रु के भाई पर कौन विश्वास करेगा। और दूसरे किसी का साहस नहीं है कि विभीषण को शरण मे रख सके। सो रामजी ने विभीषण की रक्षा रावण के बढ़े हुए क्रोध से की। रावण की चलाई हुई शक्ति को जिसे उसने विभीषण के ऊपर फेंका था अपने ऊपर ली। इस भाँति भी रावण के क्रोध से जलते हुए विभीषण की रक्षा की और अखण्ड राज्य दिया। यथा : करेहु कल्प भर राज्य तुम मोहि सुमिरेहु मन माहि। वैवस्वत मन्वन्तर की चौबीसवीं चतुर्युगी में विभीषण को राज्य मिला। अतः कल्प पूरा होने तक सात मन्वन्तर और अड़तालीस चतुर्युगी विभीषण राज्य करेंगे। इस बीच मे सात बार इन्द्र देवगणों के साथ बदले जावेंगे। अतः विभीषण के राज्य को अखण्ड कहा।

या विभूतिर्दशग्रीवे शिरश्छेदेन शङ्करात्। दर्शनात् रामभद्रस्य सा विभूति-र्विभीषणे : ह. ना.। रावण ने जिस सम्पत्ति के लिए दस सिर दिये विभीषण को उसकी इच्छा नहीं। यथा : तेहि माँगेउ भगवंत पद कमल अमल अनुराग। अतः भगवान् को उस सम्पत्ति के देने मे सङ्कोच है। अथवा आत्मनिवेदन के सामने लङ्का की सम्पत्ति कोई वस्तु नहीं है। अतः सरकार को सङ्कोच है। रावण ने सिर

दिया पर आत्मनिवेदन न कर सका। विभीषण ने दो बार त्राहि किया। सो राज्य देकर रावण के भय से रक्षा की और भक्ति देकर भवभय से रक्षा की। यहाँ रामजी की कृपालुता तथा उदारता का अत्यन्त उत्कर्ष दिखलाया। शिवजी के ऐसा उदार कोई नही है। उन्होने भी जो सम्पत्ति रावण के सिर चढाने पर दी थी, उसी सम्पत्ति को शरण मे आने से रामजी ने विभीषण को सङ्कुचित होकर दी। भावार्थ यह कि दाता को देय के यथेष्ट न होने से सकोच है। यथा बार कोटि सिर काटि साटि लटि रावन सकर पै लई। सोइ लका लखि अतिथि अनवसर राम तृनाश्रम ज्यों दई। विनय।

अस प्रभु छाडि भजहिं जे आना। ते नर पसु बिनु पूंछ बिसाना ॥
निज जन जानि ताहि अपनावा। प्रभु सुभाव कपि कुल मन भावा ॥१॥

अर्थ ऐसे प्रभु को छोडकर जो दूसरे को भजते है वे मनुष्य मे पशु हैं। केवल सीग पूछ उन्हे नही। अपना सेवक जानकर उसे अपना लिया। प्रभु का स्वभाव वानर कुल के मन को अच्छा लगा।

व्याख्या ऐसे भक्ति और मुक्ति देने वाले प्रभु, ऐसे आशुतोष महादानी को भजना चाहिए बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाही। अन्य तो सामर्थ्यहीन जीव हैं। उन्हें छोडकर इन्हे भजना चाहिए और जो इसके विपरीत करता है राम को छोडकर जीव को भजता है वह नर नही है पशु है। यथा मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय पी के। पशु यावज्जीवन दूसरे को ही भजते हैं। पशुओ को विधाता ने लज्जा निवारण के लिए तथा मक्खी आदि बाधक जीवो के हटाने के लिए पूँछ और आत्मरक्षा के लिए सीग दो है। इन नर-पशुओ को वह भी नही है। यथा लोलुप भ्रमत गृहपशु ज्यों जहँ तहँ सिर पदत्रान बजैं। तदपि अधम विचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ लजैं। विनय।

रिपु को बधु बिभीषन निसिचर। कवन भजन अधिकारी। यहाँ जाति पाति धन धम बडाई की पूछ नही है। यहाँ तो केवल प्रम की पूछ है। यथा रामहि केवल प्रम पियारा। अत प्रभु का स्वभाव कपिकुल के मन मे अच्छा मालूम हुआ कि ऐसे ही प्रभु की हम लोगो को आवश्यकता है। जहाँ जाति पाँति धन धम बडाई की पूछ है वहाँ हम लोगा का निवाह कहाँ? अत वानरो क चरवाहे सरकार ही थे। दूसरा कोई न ऐसा हुआ न होगा। इसलिए वानर के चरवाहे को भजो।

पुनि सवग्य सब उर बासी। सर्व रूप सब रहित उदासी ॥
बोले बचन नीति प्रति पालक। कारन मनुज दनुज कुल घालक ॥२॥

अर्थ फिर सब कुछ जाननेवाले सबके हृदय मे बसनेवाले सर्वरूप सबसे रहित उदासीन तथा नीति की रक्षा करनेवाले वचन बोले। कारण यह कि राक्षसो के कुल का नाश करनेवाले मनुज बने हुए हैं।

व्याख्या : श्रोता की सावधानी के लिए जिसमे कि उसे मोह न हो वक्ता ने पांच विशेषण सरकार को दिये। क्योकि यहाँ पर सरकार माधुर्य प्रदर्शन करते हुए अल्पज्ञ वनवासी मनुष्य ससारी तथा लिप्त की भाँति पूछेंगे। स्वरूप ज्ञान रहने से माधुर्य का आनन्द आवेगा नहीं तो मोह होगा। यहाँ से मिला : बिभीषण जेहि विधि आई : प्रसङ्ग समाप्त हुआ।

मन्त्रियो से मन्त्रणा करके ही कार्य करना चाहिए। स्वयं नीति पालन करके उदाहरण खड़ा करते हैं। नीति पालन से ही दनुज कुल का नाश होता है। अनीति से दनुज कुल की वृद्धि होती है। यथा : निसिचर छल बल करै अनीती।

सुनु कपीस लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा ॥
संकुल मकर उरग झख जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँती ॥३॥

अर्थ : हे वीर वानरराज और लङ्कापति सुनो। इस गम्भीर समुद्र को किस प्रकार पार किया जाय ? अनेक जाति के मगर सर्प और मछलियो से भरा हुआ है। अत्यन्त अथाह है और सब भाँति से इसका तरना कठिन है।

व्याख्या : कपोश और लङ्केश दोनों सखा हैं अतः दोनों से पूछा। कपोश अपनी सेना के पराक्रम को जानते हैं। लङ्कापति अपने पडोसी समुद्र से परिचित हैं। अतः दोनों से पूछना प्राप्त था। बीर अधीर न होहिं इस न्याय से वैक्लव्य छोडकर उत्साहपूर्वक उपाय सोचें। अतः वीर शब्द से सम्बोधित किया। पावत नाव न बोहित बेरा। इसलिए सन्तरण की विधि पूछते हैं। वणिक् पोत को श्रीरामजी ऐसे शासक छीन सकते नही। पैर से हल करके पार किया नही जा सकता। क्योकि गम्भीर जलधि है देखने से साहस छूटता है।

बाहु सन्तरण मे भी बड़ी बाधा है। मकर उरग तिमिङ्गिल आदि मत्स्यो से भरा पड़ा है। यथा : मकर नक्र नाना झख व्याला। सत जोजन तनु परम बिसाला। ऐसेउ एक तिनहि जे खाही। एकन के डर तेऽपि डराही। अत. अति अगाध है। सन्तरण की कोई विधि दृष्टिगोचर नही होती। सर्वज्ञ सर्व उरवासी होकर दूसरो से पूछते हैं। सर्वरूप होकर भी मकर उरग झष से भयभीत हैं। सर्व रहित होकर भी समुद्र को अगाध कह रहे हैं। उदासीन होकर भी सन्तरण की विधि के लिए लालायित हैं।

कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि सिंधु सोषक तव सायक ॥
जद्यपि तदपि नीति असि गाई। बिनय करिय सागर सन जाई ॥४॥

अर्थ : लंकेश ने कहा हे रघुनायक सुनो। करोड़ समुद्र का शोषण करनेवाला यद्यपि आपका बाण है तथापि नीतिशास्त्र कहता है कि जाकर समुद्र से विनय कीजिये।

व्याख्या : बडी भारी परीक्षा विभीषण की हो रही है। अभी राज्य दिया है और अब कह रहे हैं कि समुद्र तरने की तो कोई विधि ही नही मालूम होती।

लङ्केश ने समझ लिया कि यद्यपि मान रखने के लिए सुग्रीवजी से भी पूछा गया है पर प्रधान लक्ष्य मै ही हूँ। सुग्रीवजी चुप हैं। समझते हैं कि विभीषणजी इस विषय के विशेष जानकार हैं। दिन रात उन्हे समुद्र से काम पडता है। अत ये ही कहे। विभीषणजी सरकार के बाणो का प्रताप जानते हैं। परन्तु उनसे काम लेना चौथा उपाय है। अत प्रथम साम के लिये ही मन्त्र देते हैं कि सामर्थ्य रहते भी नीति का पालन कीजिये।

साम प्रथम नीति है अत उसी का प्रयोग पहिले होना चाहिए। परन्तु यह प्रयोग दूत द्वारा भी हो सकता है। पर यह राजा सगर का खनाया खुदाया हुआ है। सगर आपके पूर्वज हैं। अत स्वय जाकर विनय करना उचित है। रावण के वचन का साफल्य हो रहा है। उसने पहिले ही कहा था सठ मिलु जाइ तिनहि कहु नीती। सरकार सेना के मध्य मे हैं। अत विभीषण समुद्र के किनारे विनय करने के लिये भेज रहे हैं। नीति यही है कि निर्बल से भी पहिले विनय करो।

दो प्रभु तुम्हार कुलगुरु जलधि, कहिहि उपाय बिचारि।
बिनु प्रयास सागर तरहि, सकल भालु कपि धारि ॥५०॥

अर्थ हे प्रभो! समुद्र आपका कुल गुरु हैं। वह विचारकर उपाय बतला देगा और बन्दर भालुओ की सब सेना बिना श्रम के समुद्र के पार उतर जायगी।

व्याख्या सगरस्यायम् सागर यह सगर का खुदाया हुआ उनके पुत्र स्थानीय है। सारा ससार इसे सागर अर्थात् सगर का पुत्र कहता है। अत यह आपका कुलगुरु पूर्वज हैं। कुल का कल्याण चाहनेवाला है। यथा जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तै मैनाक होहि श्रम हारी। अत यह नीति निष्फल न होगी। वह ऐसा उपाय विचारकर बतलायेगा कि यह महान् कार्य अल्पयास मे सिद्ध हो जायगा। बडे बडे के सन्तरण मे स देह है। यथा निज निज बल सब काहू भाषा। पार जाइ के सशय राखा। सो छोटे बडे सब पार चल जायँगे।

सखा कही तुम्ह नीकि उपाई। करिअ दैव जौ होय सहाई ॥
मत्र न येह लछिमन मन भावा। राम बचन सुनि अति दुख पावा ॥१॥

अर्थ रामजी ने कहा सखे! तुमने उपाय तो अच्छा बताया। यदि दैव सहाय हो तो किया जाय। यह मन्त्र लछिमनजी को नही अच्छा लगा और रामजी का वचन सुनकर बहुत ही दु ख हुआ।

पहिले निकाई की प्रशसा तत्पश्चात् मतभेद कथन की रीति है। यथा सखा नीति तुम नीक बिचारी। मम प्रण सरनागत भयहारी। सरकार पहिले उपाय की उपादेयता की प्रशसा करते हैं। १ साम सब उपायो मे श्रेष्ठ है। २ अपने मर्म को समुद्र ही ठीक जानता है। ३ इसमे हिसा भी नही है। पर यह उपाय निश्चित फलप्रसू नही है। दैव सानुकूल होने से कृतकार्यता हो सकती है। पूर्वजन्मकृत कर्म तद्दैवमिति कथ्यते पूर्वजन्म के किये हुए कर्म को ही दैव कहते हैं। प्रार्थना की

कृतकार्यता प्राथित की दया पर अवलम्बित है। उत्तम उपाय सशयास्पद होने पर भी करना चाहिए।

किसी ने विरोध न किया पर शत्रु की सीमा पर पहुँचकर विनय करना ठीक नही। ऐसी ही बात हुई। रावण को कहने का अवसर मिल गया सहज भीरु कर बचन दृढाई। सागर सन ठानी मचलाई। जो पुरुषार्थ से साध्य है उसके लिए विनय करना ठीक नही। अत लक्ष्मणजी के मन मे विभीषण का मन्त्र अच्छा न लगा। रामजी के स्वीकारात्मक उत्तर से तो लक्ष्मणजी अति दु खी हुए। मन मे सोचा कि पहिले भी इन्हे दैव का रोग लगा था। सो वसिष्ठजी के उपदेश से नष्ट हुआ योगवासिष्ठ देखिये अब यहाँ कौन उपदेश देगा ? यह सोचकर लक्ष्मणजी को अत्यन्त दु ख हुआ।

नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोखिअ सिंधु करिअ मन रोसा ॥
कादर मन कहुँ एकु अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा ॥२॥

अर्थ लक्ष्मणजी बोले हे नाथ ! दैव का कौन सा भरोसा है ? मन मे क्रोध कीजिये और समुद्र को सुखा डालिये। यह दैव तो कादर के मन का एकमात्र आधार है। आलसी दैव दैव पुकारते हैं।

व्याख्या पूर्वजन्म के अनुकूल होने या न होने का कौन ठिकाना है। दैव निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्य पूर्वजन्म के कम का भरोसा छोडकर यावद्बुद्धिबलोदय पुरुषार्थ करना चाहिए। बिना पूछे भी लक्ष्मणजी समय आने पर बोल बैठते हैं। यथा बिनु पूछे कछु कहहुँ गोसाईं। सेवकु समयँ न ढीठ ढिठाई। इसी भाँति यहाँ भी मन्त्र कहते हैं कि मन मे विनय को स्थान न देकर क्रोध को स्थान देना चाहिए। समुद्र को सुखा दीजिये। वानरी सेना पैदल पार हो जायगी।

तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणा क्षार जल कापुरुषा पिबन्ति। बाप का बनाया हुआ कुँआ है। यह सोचकर खारा पानी कादर लोग पीया करते हैं। सागर महाराज सगर का खुदाया हुआ है तो क्या हुआ ! यह कार्य मे बाधक है। इसे सोखिये। पूर्वजन्म का पुण्य समुद्र को सलाह देने के लिए लाचार न करेगा। दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति दैव देगा यह धारणा ही कादरोचित है। सरकार के स्वरूपानुकूल नही है। सरकार ने वीर सम्बोधन करके सम्मति माँगी सो कादरोचित सम्मति दी गयी। आलसी और कादर दोनो शब्द यहाँ समानार्थक माने गये।

सुनत बिहँसि बोले रघुबीरा। ऐसेइ करब धरहु मन धीरा ॥
अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई। सिंधु समीप गए रघुराई ॥३॥

अर्थ : यह सुनकर रघुवीर हँसकर बोले : ऐसा ही करूँगा। मन मे धैर्य रक्खो। ऐसा कहकर छोटे भाई को समझाकर रघुनाथजी समुद्र के पास गये।

व्याख्या रघुवीर हैं। वीरता के मन्त्र पर प्रसन्न हुए। लक्ष्मणजी की प्रकृति समझकर हँस पडे। इन्हे विभीषण कादर जँचा। उसके मन्त्र को कादरतासूचक

बतलाते हैं। यहां से सरकार का सिंहसना प्रारम्भ हुआ। लक्ष्मणजी से कहते हैं कि धैर्य धरो। तुम्हारा ही कहा करूँगा। हमारे यहां से विभीषण मन्त्र का अनादर होना चाहिए नहीं तो ससार कहेगा कि विभीषण का मन्त्र ही ठीक नहीं होता था।

लक्ष्मणजी को अति दु ख हुआ था। अतः पहिले उन्हे समझाया। यथा :

सिंधु सोखिबे ते यथा, विश्व नाश नहिं होय।
अपनो कारजहू सधै, जतन कीजिये सोय ॥१॥
यद्यपि एहि थल मामते, सरै न अपनो काज।
दण्डनीति धारण तदपि, उचित होय नहि आज ॥२॥
यहां बिभीषण मन्त्र को, जो आदर नहि होय।
यह न नीति जानै कछू, अवसि कहिहि सब कोय ॥३॥
रहिहि बिभीषण मान अरु, बनिहि नीति मर्याद।
सरिहि आपनो काजहू, ताते तजिअ बिषाद ॥४॥

तब अकेले समुद्र के निकट गये। तीर पर तो उतरे ही थे अब जल के निकट गये। सेवको ने जहां अनशन ठाना था आज कृपालु स्वामी भी वही अनशन कर रहे हैं।

प्रथम प्रनामु कीन्ह सिरु नाई। बैठे पुनि तट दर्भ डसाई ॥

शुकसारण की कथा

जबहिं विभीषनु प्रभु पहिं आए। पाछे रावन दूत पठाए ॥४॥

अर्थ : पहिले सिर नवाकर प्रणाम किया। फिर किनारे पर कुशा बिछाकर बैठ गये। ज्योही विभीषण प्रभु के पास आये थे त्योही रावण ने उनके पीछे दूत भेजे थे।

व्याख्या : कुलगुरु भाव से सिर झुकाकर प्रणाम किया। अनशन के लिए अथवा मुनिवृत्ति के लिए कुशा बिछाकर बैठ गये। तीन दिन तक सरकार ने अनशन किया। यथा : तीसरे उपाय वनवास सिंधु पास सो समाज महराज जू के एक दिन दान भो। मुझे सन्तरण का उपाय बताइये। मार्ग दीजिये : यही विनय है।

रावण ने यह सोचकर कि ऐसे समय मे विभीषण को निकाला है कि कोई नीतिज्ञ इसको स्थान नही दे सकता। देखना चाहिए कि इसके साथ कैसा व्यवहार उस ओर से होता है ? सेना कैसी है ?, राम लक्ष्मण की क्या दशा है ? इस पार कैसे आते हैं ? विभीषण के जाने पर सबका ध्यान उसी की ओर आकर्षित होगा। ऐसे समय सेना में प्रवेश करने मे दूत को भी सुभीता होगा। अतः रावण ने दूत भेजा।

दो. सकल चरित तिन्ह देखे, धरे कपट कपि देह।
प्रभु गुन हृदय सराहहिं, सरनागत पर नेह ॥५१॥

अर्थ कपट से वानर का शरीर धारणकर उन्होने सब चरित्र देखे। प्रभु के गुण हृदय से सराहने लगे कि शरणागत पर इतना प्रेम है।

व्याख्या : कृपारहित हिंसक सब पापी लङ्का मे बसते थे। अत. रावण के दूत बन्दर बन गये। बानरो सेना मे मिलेजुले सब चरित्र देख रहे हैं। शरणागत विभीषण पर इतना स्नेह कि उसके आने पर स्वागत के लिए स्वय प्रभु उठ खडे होते हैं हृदय लगाते हैं। भक्ति वरदान देते हैं। लङ्का का राज्य देते हैं। अब भाई की बात हटाकर विभीषण की बात रक्खो जा रही है। मन मे सराहना करते हैं कि मालिक हो तो ऐसा हो। बोलते नही कि कही स्वरभेद से बन्दर पहिचान न लें।

प्रगट बखानहिं राम सुभाऊ। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ ॥
रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने। सकल बाँधि कपीस पहिं आने ॥१॥

अर्थ · रामजी के स्वभाव की प्रशसा प्रकट रूप से करने लगे। अत्यन्त प्रेम मे छिपाव भूल गये। तब वन्दरो ने पहिचाना कि ये शत्रु के दूत हैं। उन्हे बाँधकर वन्दरो के राजा के पास ले आये।

व्याख्या : पहिले गुण का बखान हृदय मे करते थे। प्रेम बढा तब स्वभाव का बखान स्पष्ट रूप से करने लगे। पर वानरी भाषा मे बखान कर रहे थे। अब प्रेम और अधिक बढा तो कपट जाता रहा। कपट के हटते ही राक्षसी शरीर प्रकट हो गया और वही भाषा भी बोलने लगे। रामजी के स्वभाव के जानकार मे कपट रह नही सकता। यथा उमा राम सुभाउ जेहि जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना। प्रेमाधिक्य मे भी कपट नही रह जाता। यथा · निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई।

पहिले बन्दरो ने उन्हे अपना ही भाई बन्धु समझा था। जब वे दुराव भूल गये और उनका असली देह प्रकट हो गया तब बन्दर जान पाये कि ये शत्रु के भेदिया हैं। यहाँ दूत शब्द भेदिया के अर्थ मे प्रयुक्त है। अपराधी को बाँधकर ले जाने की प्रथा है। फिर कही बन्दर बनकर सेना मे घुस जाय तो इस सेना समुद्र मे पता चलना कठिन हो जायगा। इसलिए भी उन्हे बाँधकर राजा सुग्रीव के पास ले गये।

कह सुग्रीव सुनहु सब बानर। अग भग करि पठवहु निसिचर ॥
सुनि सुग्रीव बचन कपि धाए। बाँधि कटक चहुँ पास फिराए ॥२॥

अर्थ · सुग्रीव ने कहा सब वानरो! सुनो राक्षस को अग भग करके भेज दो। सुग्रीव के वचन सुनकर बानर दौडे। उन्हे बाँधकर सेना के चारो ओर घुमाया।

व्याख्या · सुग्रीवजी ने निश्चय किया कि जैसा व्यवहार शत्रु की ओर से मेरे दूत हनुमान्जी के साथ हुआ है वैसा ही उसके दूत के साथ होना चाहिए। रावण

ने आज्ञा दी थी कि अंग भंग करि पठवहु बन्दर। अतः सुग्रीवजी आज्ञा देते हैं कि अंग भंग करि पठवहु निसिचर। सुग्रीवजी की उसके वध की इच्छा नहीं थी। इसलिए उसके किसी अंग विशेष के जलाने की आज्ञा नहीं दी। दूसरी बात यह थी कि रावण ने कहा था कि पूँछहीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहि लेइ आइहि। सो वह तो अपने नाथ को यहाँ तक ले आया। अब यह अंगहीन होकर जाय और अपने मालिक को इस पार ले आवे।

पुलिस के काम करनेवाले बन्दर दूसरे थे और दण्ड देनेवाले बन्दर दूसरे थे। आज्ञा सुनते ही दण्ड देनेवाले दौड़ आये। अतः फिर से बाँधना कहते हैं। पहिले का बन्धन ऐसा था जिसमें भाग न जाय। दूसरा बन्धन ऐसा हुआ जिसमें दण्ड देते समय बाधा न दे सके। हनुमान्‌जी के लिए कहा गया है कि नगर फेरि पुनि पूँछ प्रचारी। अतः इन्हें बाँधि कटक चहुँ पास फिराए। जिसमें कटक सावधान हो जाय कि रावण की ओर से गुप्तचर छूटे हुए हैं।

बहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे॥
जो हमार हर नासाकाना। तेहि कोसलाधीस कै आना॥३॥

अर्थ : वानर उन्हें अनेक प्रकार से मारने लगे। वे दीन होकर पुकारते थे। फिर भी उन्हें नहीं छोड़ा। दूत चिल्लाये जो हमारा नाक कान काटेगा उसे कोसलाधीश की सौगन्ध।

व्याख्या : यद्यपि सुग्रीवजी की स्पष्ट आज्ञा नहीं है तथापि सब वानर हनुमान्‌जी का बदला ले रहे हैं। हनुमान्‌जी के साथ लंका में यह बरताव हुआ था कि कौतुक कहँ आए पुरबासी। मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी। अतः इधर बन्दर लोग बहुत प्रकार से मारने लगे। थप्पड़ घूँसा लात और पूँछों की ऐसी मार पड़ी कि गुप्तचर दीन होकर चिल्लाने लगे फिर भी छोड़ा नहीं। आज्ञापित दण्ड के लिए विचार करने लगे कौन सा अंग ऐसा भंग किया जाय कि जिसमें इनके लंका लौटने में बाधा न हो। निश्चय हुआ कि राक्षसों की पूँछ तो होती नहीं। इनके नाक कान बेकार अंग हैं और इन्हें प्रिय भी अधिक हैं। अतः इनके नाक कान काट लेना चाहिए।

महाजनो येन गतः स पन्थाः। बड़े लोग जिधर से गये हों वही रास्ता है। सो लक्ष्मणजी ने सूर्पणखा का नाक कान काटा था। वही रास्ता हम लोगों को भी ग्रहण करना चाहिए। यही सम्मति स्थिर हुई। दूतों ने सोचा कि किष्किन्धाधीश की आज्ञा यदि टल सकती है तो कोसलाधीश की ही आज्ञा से टल सकती है और कोसलाधीश का स्वभाव अति कोमल है। वे निश्चित कृपा करेंगे अथवा उन्हें यह भी आशा है कि बन्दरों में ऐसी भक्ति है कि वे कोसलाधीश की शपथ दिलाने पर सम्भव है कि नाक कान न काटें। उन गुप्तचरों को अंग भंग स्वीकार है नाक कटाना स्वीकार नहीं। अतः उन सबों ने कोसलाधीश की दोहाई मचायी।

सुनि लछिमन सब निकट बोलाए। दया लागि हँसि तुरत छोड़ाए ॥
रावन कर दीजेहु यह पाती। लछिमन बचन बाँचु कुलघाती ॥४॥

अर्थ : सुनकर लक्ष्मणजी ने सबको निकट बुलाया। दया लगी इसलिए हँसकर तुरन्त छुडा दिया : उनसे कहा यह चिट्ठी रावण के हाथ देना। कहना कि रे कुलघातक! लक्ष्मण के शब्दो को बाँच।

व्याख्या : दीन पुकार सुनकर लक्ष्मणजी को दया आयी। दूतो को छुडाना चाहते हैं। उसी समय चिट्ठी लिखा तब से दूतों ने कोसलाधीश की दुहाई दी। सरकार सयम मे हे बोलेंगे नही। उनकी दोहाई देनेवाले को दण्ड नही मिलना चाहिए। अन्य पर दया आने से करुणा और शत्रु पर दया आने से हँसी आती है। सो लक्ष्मणजी ने मारनेवालो और मार खानेवालो सभो को बुलाया। दोहाई देनेवालो का बन्धन देख नही सकते। अत. बन्ध और दण्ड दोनो से छुड़ा दिया। बन्दर लोग कपीश की आज्ञा से लक्ष्मणजी की आज्ञा को बड़ी मानते हैं। उनकी आज्ञा से उन दूतो को बन्धन से मुक्त कर दिया और उनका नाक कान भी न काटा। उधर से छोटा भाई शरण आया। इस नाते इधर छोटे भाई की ओर से पत्र दिया जा रहा है। यद्यपि पत्र बहुत ही छोटा है फिर भी उसका तात्पर्य जबानी भी कहला भेजते हैं कि तू कुलघाती है। तेरे अपराध से सम्पूर्ण राक्षसकुल का सहार हुआ चाहता है। लछिमन बचन का भाव यह है कि चुनौती देनेवाला तो मैं हूँ। यथा : ताके कर रावन कहुँ मनौ चुनौती दीन्ह। सो मेरा कुछ न बिगाड़ कर तू सरकार का अपराध कर बैठा।

दो. कहेहु मुखागर मूढ सन, मम सदेहु उदार।
सीता देइ मिलहु न त, आवा कालु तुम्हार ॥५२॥

अर्थ : मेरा उदार सन्देश उस मूढ़ से जबानी कहना कि सीताजी को देकर मिलो नही तो तुम्हारा काल आगया।

व्याख्या : मूढ है कदाचित् चिट्ठी न पढ़े तो जबानी सदेसा कह देना। यह सन्देश उदारता के कारण भेजा जा रहा है भय के कारण नही। हरण करने का अपराध क्षमा कर दिया जावेगा। केवल सीता को देकर मिलो। लक्ष्मण तुम्हारा काल है सो आ गया। यथा : मोहि बिलोकु तोर मैं कालू। छोटे भाई के शरण आने से तुम्हे अवसर दिया जाता है। नही तो मैं चुनौती देनेवाला तुम्हारा काल हूँ। काल सदेश दे के नही आता।

तुरत नाइ लछिमन पद माथा। चले दूत बरनत गुन गाथा ॥
कहत राम जसु लंका आए। रावन चरन सीस तिन्ह नाए ॥१॥

अर्थ : लक्ष्मण के चरणो मे मस्तक नवाकर गुणो की गाथा वर्णन करते हुए

दूत तुरन्त ही चल पडे। रामजी का यश कहते हुए लका मे आये और रावण के चरणो मे सिर नवाये।

व्याख्या : छुट्टी मिली, प्राण बचा, इसलिए कहते हैं कि तुरत चले अथवा उपकारी लक्ष्मणजी की आज्ञा पालन में तत्परता दिखलाते हैं। विदाई का प्रणाम है अथवा इन्ही की कृपा से सकुशल घर जा रहे हैं। इसलिए कृतज्ञतासूचक प्रणाम है। कई दूत हैं अत: गुणगाथा आपस मे वर्णन करते चले। सरकार के गुण ऐसे चित्त पर चढे हुए हैं कि कितनी मार खाने पर भी चित्त से नही उतरते अथवा लक्ष्मणजी ने छुड़ा दिया है। अत: दोनो भाइयो का गुणगाथा वर्णन करते चले।

अति प्रेम है। अत लक्ष्मणजी की गुणगाथा कहकर फिर राम गुणगान करने लगे अथवा प्राण बचानेवाले का वर्णन करके जिसकी दोहाई के कारण रक्षा हुई उस रामजी के यश का वर्णन करने लगे। यश कथन समाप्त न हुआ और लका पहुँच गये। हृदय मे तो राम प्रेम है पर प्रभु है इसलिए रावण को प्रणाम किया।

बिहँसि दसानन पूछी बाता। कहसि न सुक आपनि कुसलाता॥
पुनि कहु खबरि बिभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी॥२॥

अर्थ : दशानन ने हँसकर बात पूछी कि शुक! तू अपनी कुशल क्यो नही कहता? फिर विभीषण का समाचार सुना जिसके अत्यन्त निकट मृत्यु आगयी है।

व्याख्या : दसो मुखो से हँसे। इसलिए यहाँ दसानन कहा। चकित देखकर रावण हँसे कि एक : विभीषण तो यहाँ से उल्लू बनकर गया है और यह वहाँ से उल्लू बनकर आ रहा है। दूतों मे प्रधान शुक से उसकी कुशल पूछता है। जिस कार्य के लिए भेजा था उसे पहिले न पूछ कर कुशल पहिले पूछने का अभिप्राय कि अपने कार्य से मुझे तुम्हारा कुशल अधिक प्रिय है। रावण के यहाँ नियम था कि आनेवाला स्वय ही अपना कुशलादि कह दिया करता था। पर शुक प्रणाम करके चुप रह गया। अत: पूछता है कि तू अपनी कुशल क्यो नहीं कहता है? रूप पलटने पर भी कही पहिचाना तो नही गया?

दूसरा प्रश्न विभीषण विषयक है। वह तो शत्रु से जा मिला इसलिए उसकी खबर पूछता हूँ। शत्रु पक्ष की बात कहता था। तभी मृत्यु उसके निकट आ गयी थी। अब तो शत्रु से जा मिला है अत: अति निकट मृत्यु आ गयी है।

करत राजु लका सठ त्यागी। होइहि जव कर कीट अभागी॥
पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई॥३॥

अर्थ : शठ ने राज्य करते हुए लका को त्याग दिया। अभागा अब जव का कीड़ा बनेगा फिर भालु और वानरो की सेना का हाल कह जो कठिन काल की प्रेरणा से यहाँ चली आयी है।

व्याख्या : वह लंका में राज्य भोगता था। पर ऐसा शठ है कि उसे छोड़कर चला गया। पर शत्रु पक्ष की गीत गाता ही गया। शत्रु पक्ष की बात कहने का तात्पर्य ही यही था कि उसे लंका में रहना मंजूर नहीं था। वह अभागी है। सम्पत्ति छोड़कर विपत्ति भोगने गया है। कोई घुन पीसने नहीं जाता। पर जव के पीसने के समय घुन आप ही पिस जाता है। जब हम लोग शत्रु का संहार करने लगेंगे तो शत्रु मध्यवर्ती होने से वह भी मारा जायगा।

तीसरा प्रश्न भालु कीस की सेना विषयक है। उनके सामने कैसा उत्तर देना चाहिए इसका इशारा रावण स्वयं देते जा रहे हैं। कहते हैं कि देखो काल कैसा कठिन है कि उन्हे हम लोगों के पास हाँके लिए चला आ रहा है। यथा - आए कीस काल के प्रेरे। छुधावन्त सब निसिचर मेरे।

जिन्हके जीवन कर रखवारा। भएउ मृदुल चित सिंधु बिचारा ॥
कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी। जिन्हके हृदयँ त्रास अति मोरी ॥४॥

अर्थ : जिन्हके जीवन का रक्षक कोमल चित्तवाला समुद्र बन गया है। फिर उन तपस्वियों की बात बता जिनके हृदय में मेरा बड़ा डर है।

व्याख्या : जितने बिचारे दुखिया होते हैं वे मृदुलचित्त होते हैं। समुद्र का हटने बढने में कोई चारा नहीं। अतः बिचारा है। कठोर चित्त होता तो वानरो को यहाँ आने के लिए रास्ता देता और उन्हे राक्षस खा जाते। अतः वही बिचारा मृदुलचित्त रक्षक हो गया।

चौथा प्रश्न राम लक्ष्मण विषयक है। जिनका नाम रावण नही लेते तपसी कहते है। भालु कीश तो पशु हैं। जिधर हाँक दो उधर चले जाँय। उन्हें समझ भी नही। इसलिए त्रास भी नही। अत्यन्त त्रास तो तपस्वियो को है। फिर स्त्री तो हरण कर ही लिया। अब वही मरवा न डाले। अतः कुछ न हो सका तो बन्दर भालु ही बटोरे हैं।

दो. की भइ भेंट कि फिरि गये, श्रवन सुजसु सुनि मोर।
कहसि न रिपु दल तेज बल, बहुत चकित चित तोर ॥५३॥

अर्थ : उनसे तेरी भेंट भी हुई या वे मेरा सुयश सुनकर ही लौट गये? शत्रु सेना का तेज और बल बतलाता क्यों नहीं? तेरा चित्त चकित हो रहा है।

व्याख्या : विभीषण से उन लोगों की भेंट हुई कि वे सब मेरा सुयश सुनकर ही भाग गये। यदि नही भागे तो शत्रु सेना का तेज और बल बतला। शुक कुछ उत्तर नही देता। इस पर पूछता है कि तू कुछ कहता क्यों नही? तू बहुत चकित मालूम होता है। मालूम होता है कि यहाँ सुना कि : सिन्धु पार सेना सब आई। वहाँ जाकर देखा कि कहाँ कुछ भी नहीं। सब भाग गये थे। इसलिए तू चकित है कि वे सब गये कहाँ? रावण ने चार प्रश्न पूछे। हनुमान्‌जी से भी चार ही प्रश्न पूछा था।

नाथ कृपा करि पूँछेहु जैसे। मानहु कहा क्रोध तजि तैसें ॥
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। जातहिं रामतिलक तेहि सारा ॥१॥

अर्थ दूत ने कहा : हे नाथ ! आपने जिस भाँति कृपा करके पूछा उसी भाँति क्रोध छोड़कर मेरा कहना मानिये। जब आपका छोटा भाई जाकर रामजी से मिला। पहुँचते ही रामजी ने उसे राजतिलक कर दिया।

व्याख्या : रावण चार प्रश्न पूछते हैं। हनुमान्‌जी से भी चार ही प्रश्न पूछे थे। दूत से भी चार ही प्रश्न किये। अङ्गद के जाने पर भी चार ही प्रश्न करेंगे। यहाँ कहसि न सुक आपन कुसलाता से उपक्रम करके बहुत चकित चित्त तोर से प्रश्नों का उपसंहार किया। इससे दूत को परिज्ञात हुआ कि स्वामी की सेवक पर बड़ी कृपा है। सब कार्य पीछे पड़ गये। मेरी कुशल प्रधान हो गयी। उसने कहा कि मुझे भी आपके कुशल की बड़ी चिन्ता है। मै कुशल के लिए कुछ कहूँगा। उसे भी क्रोध छोड़कर मानिये। भाव यह कि वह अप्रिय सत्य है। पर हित की बात है। सुनने पर आपको क्रोध आ जाना सम्भव है शुक मन्त्री था। दूत होकर गया था। अत मानौ कहा। ऐसा कहने का अधिकार था।

पहिले प्रश्न का उत्तर न देकर दूसरे प्रश्न का उत्तर पहिले देता है। स्वामी की बड़ाई है कि पहले कुशल पूछते हैं। पर मुख्य प्रयोजन को ही पहिले निवेदन करना चाहिए। दूसरी बात यह कि कुशल का अन्दाज तो इन्हे मिल ही गया। स्वयं ही कहते हैं कि बहुत चकित चित तोर। अब जिसका अन्दाज इन्हे नहीं है वही पहले सुनाना चाहिए। मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। कहने का भाव यह कि उसकी ओर से भेद नीति का प्रयोग न होने पर भी तुम्हारा अनुज जाकर मिला। शत्रुपक्ष के लिए कैसी वाञ्छनीय घटना थी और अपनी ओर से कैसी कच्ची बात हुई। यह आप ही समझिये। जातहिं कहने का भाव यह कि न कोई बातचीत हुई न परस्पर मे कोई समय करार स्थिर हुआ और रामजी ने उन्हे तिलक कर दिया। अब तुम्हारा भाई ही संग्राम मे अग्रणी हुआ। रामजी की उदार और नीति निपुणता का परिचय देता है।

रावन दूत हमहि सुनि काना। कपिन्ह बाँधि दीन्हे दुख नाना ॥
श्रवन नासिका काटइ लागे। राम सपथ दीन्हे हम त्यागे ॥२॥

अर्थ : हम रावण के दूत हैं। ऐसा कानो से सुनकर वन्दरो ने हमे बाँधकर बहुत कष्ट दिये। नाक कान काटने लगे। रामजी की शपथ दी तब जाकर मुझे छोड़ा।

व्याख्या . बन्दरो ने मुझे पकड़ लिया। पर रावण का दूत है यह बात विभीषणजी ने बतलायी। विभीषण का आपके विरोध मे कार्य आरम्भ हो गया। अब अपनी कुशल कहता है बहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे। किसी ने मारने की आज्ञा न दी रावण दूत सुनते ही मार पडने लगी।

उन्हे मालूम है कि दूत की हमारे यहाँ क्या गति होती है। वही व्यवहार वे साथ करने लगे।

उग्रदण्ड देने को प्रस्तुत हुए। पर राम की शपथ का इतना मान है कि छूट गये। वानरो की स्वामिभक्ति और विपक्ष की उदारता पर चकित हूँ। आ नाम से नाक कटती थी। रामजी के नाम से बच गयी। इतने ही से उसके सु का परिचय जान लीजिये। जिसके विषय मे आप कहते हैं कि 'की भइ भेट फिरि गये श्रवण सुजस सुनि मोर।

पूँछिहु नाथ राम कटकाई। बदन कोटि सत बरनि न जाई ॥
नाना बरन भालु कपि धारी। बिकटानन बिसाल भयकारी ॥३

अर्थ : हे नाथ ! आपने श्री रामजी की सेना पूछी। सो वह तो सौ क मुख से भी वर्णन नही की जा सकती। वानर और भालुओ की सेना अनेक रग है। उनके मुख विकट और शरीर विशाल और भयानक हैं।

व्याख्या . तीसरे प्रश्न पुनि कहु भालु कीस कटकाई का उत्तर देते है सौ कोटि मुख से वर्णन नही की जा सकती। विभीषण का समाचार कहा। अ कुशल सुनायी। पर भालु कीस कटकाई वर्णनातीत है। निशिचर सेना तो उ सामने नगण्य हैं। यही सब समझकर चकित हूँ।

रग बिरगी सेना है। मेरे यहाँ केवल काली सेना है। यथा वीर तमी सब अति कारे। नाना बरन बलीमुख भारे। यहाँ के राक्षस क्या विकटानन विश भयकारी होगे जैसे वे सब विकटानन विशाल भयकारी हैं। योद्धाओ का ऐसा हो गुण है। विपक्षी देखकर ही डर जाते हैं। इसी से सेना की भयकरता कहा।

जेहि पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन्ह महू तेहि बलु थोरा ॥
अमित नाम भट कठिन कराला। अमित नाग बलु बिपुल बिसाला ॥४

अर्थ . जिसने नगर को जलाया और आपके पुत्र को मारा उसका बल सब वानरो की अपेक्षा कम है। असख्य नामवाले बडे ही कठोर और भयकर यो हैं। उन्हे असख्य हाथियो का बल है और वे बडे ही विशाल है।

व्याख्या असाध्य रोग देखकर तीव्रातितीव्र मात्रा का प्रयाग उपयुक्त लका जलानेवाले और अक्षहन्ता के पुरुषार्थ मे तो सन्देह को स्थान नही है। पर उसको तो वहाँ गिनती ही नही है। न उससे कोई राय पूछी जाती है न किसी काम मे आगे दिखाई पडता है। चुप्पी साधे बैठा रहता है। यहाँ निर्बलो वह अपना पराक्रम दिखला गया। वहाँ बलवानो मे उसकी एक नही चलती।

थोडे होते तो नाम याद कर लेता। पहिले दूत ने सैनिको का वर्णन कि विकटानन बिसाल भयकारी। अब सेनापतियो का वर्णन करता है कि भट क कराल हैं। यहाँ बल की नाप हस्तिबल मे है अश्वबल से नही। सैनिक विश भयकारो हैं और सेनापति बल बिपुल बिसाला हैं। इससे बल कहा।

दो. द्विबिद मयंद नील नलु, अंगद गद बिकटासि ।
दधिमुख केहरि निसठ सठ, जामवंत बलरासि ॥५४॥

अर्थ : द्विविद मयन्त नील नल अगद गद विकटास्य दधिमुख केसरी निशठ शठ और जामवन्त ये बल की राशि हैं।

व्याख्या : सेनापतियो मे भी अतिबलवालो का पता लाया हूँ। वे बारह है : द्विविद मयन्द नील नल इत्यादि। हमारे यहाँ पाँच ही है : कुमुख अकंपन कुलिसरद धूम्रकेतु अतिकाय। एक एक जग जीति सक ऐसे सुभट निकाय। इन बारहो मे हनुमान्‌जी को नही गिनाया। उनके विषय मे कह चुका है कि सकल कपिन्ह मह तेहि बल थोरा।

ए कपि सब सुग्रीव समाना। इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना ॥
रामकृपा अतुलित बल तिनही। तृन समान त्रैलोकहिं गनही ॥१॥

अर्थ : ये सब बन्दर बल मे सुग्रीव के समान हैं और इनके जैसे करोड़ो हैं। कहाँ तक गिना जा सकता है। रामजी की कृपा से उन्हे बेतोल बल है। वे तीनो लोक को तृण के समान गिन रहे हैं।

व्याख्या : समान शब्द का प्रयोग ईपत् न्यून के अर्थ मे होता है अर्थात् ये सुग्रीव से बल मे कुछ ही कम है और इनसे ईपत्न्यून करोड़ो हैं। इसलिए नाना कहा : अतः गिने नही जा सकते। यथा : बानर कटक उमा मै देखा। सो मूरख जो करन चह लेखा।

यदि कहा जाय कि बन्दरो मे अमित नागबल कहाँ से आया ? इस पर कहता है कि रामकृपा से सब कुछ सम्भव है। यथा : रामकृपा बल पाइ कपिंदा। भए पक्षजुत मनहु गिरिंदा। कुमुख अकपनादि तो एक एक जग जीत सकते है। पर ये तो त्रैलोक्य को तिनका गिन रहे है। यहाँ तक दल का बल कहा। अब तेज कहते हैं।

अस मै श्रवन सुना दसकंधर। पदुम अठारह जूथप बंदर ॥
नाथ कटक महँ सो कपि नाही। जो न तुम्है जीतै रन माही ॥२॥

अर्थ : हे दशकन्धर ! मैने ऐसा कानो से सुना है कि अठारह पद्म तो केवल बानरो के यूथपति हैं। हे नाथ ! उस सेना मे ऐसा कोई नही है जो आपको रण मे न जीत लें।

व्याख्या : अब सख्या बतलाता है कि मै गिन तो न सका पर उन लोगो ने अपनी गिनती कर रक्खी है। बातचीत करने पर पता चला कि व्यक्तियो की तो गणना नही है पर यूथपो की गणना है। वे अठारह पद्म है। श्रवण सुना कहने का भाव यह है कि कहने सुनने मे भूल हो सकती है पर जो सुना है सो कहता हूँ :

एतेषा गणना नवद्वयमहापद्मावधिर्वर्णिता अग्निवेशरामायणे। सचमुच कहने सुनने मे भूल हो गयी। अग्निवेश रामायण मे अठारह महापद्म सख्या दी हुई है।

कठिन काल प्रेरित चलि आई का उत्तर देते हुए कहता है कि हम लोगो का जीतना कौन सी बडी बात है। तृण का कुलिश और कुलिश को तृण बनानेवाले रामजी की कृपा से उनमे इतना बल आगया है कि तुम्हे युद्ध मे जीत लें। कठिन काल प्रेरित चलि आई कहना ठीक है। पर वह काल राक्षस कुल का विरोधी हो गया है।

परम क्रोध मीजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहिं रघुनाथा॥
सोखहिं सिधु सहित झष ब्याला। पूरहिं नत भरि कुधर बिसाला॥३॥

अर्थ सबके सब क्रोध से हाथ मीजते हैं पर श्रीरघुनाथजी आज्ञा नही देते। वे मछलियो और सर्पो के साथ समुद्र सोख लेंगे नही तो बडे बडे पर्वतो को लेकर पाट देंगे।

व्याख्या तिसपर वे परम क्रुद्ध हैं। प्रश्न उठता है कि तब वे समुद्र के किनारे ठहरे क्यो हैं। आते क्यो नही? इस पर कहता है कि आने के लिए हाथ मीजते हैं। सामर्थ्य रहते जब बडे की आज्ञा से रुकना पडता है तब लोग हाथ मीजते हैं। वहाँ अभी रघुनाथजी की आज्ञा नही है।

यदि कहिये कि आज्ञा होकर ही क्या होगा? जिन्हके जीवन कर रखवारा। भयउ मृदुल चित सिधु बिचारा। समुद्र कैसे तरेंगे? इस पर कहता है कि मछली और सर्पो के सहित वे समुद्र को ही पी जावेंगे। मछली और सर्पो को दाँत से भी न कुचलेंगे। इतने भारी भारी हैं और यदि इस भाँति पूरा शोषण न कर सके तो शेष को पर्वतो से पाट देंगे। समुद्र उन्हे नही रोक सकता।

मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा। ऐसेइ बचन कहहिं सब कीसा॥
गर्जहिं तर्जहिं सहज असका। मानहु ग्रसन चहत हहिं लका॥४॥

अर्थ रावण को मसलकर धूल मे मिला देंगे। सब वानर ऐसा ही वचन बोल रहे हैं। सब सहज ही निडर हैं। गरजते हैं और डपटते हैं मानो लङ्का ही निगल जाना चाहते हैं।

व्याख्या उत्साह कहता है कि ऐसा साहस बढा हुआ है कि प्रत्येक यही कहते हैं कि मैं ही दसशीश को रगडकर मिट्टी मे मिला दूँगा। एक शीश का भी पता न चलेगा। यहाँ तो केवल आप ही अशङ्क हैं। यथा तहँ रह रावण सहज असका। वहाँ सभी सहज अशङ्क हैं। यथा गूलर फल समान तव लका। बसहु मध्य तुम जतु असंका। मैं वानर फल खात न बारा। आयसु दीन्ह न राम उदारा। जो भाव अगदजी का है वही सब वन्दरो का है। प्रत्येक वन्दर आपका जय करने का साहस कर रहा है। राक्षसी सेना को वे क्या गिनते हैं। आपके सुयश सुनने से वे लौटनेवाले नही हैं।

उत्साह इतना बढ़ा हुआ है कि उस पार से ही सब गरजते तड़पते हैं।

दो० सहज सूर कपि भालु सब, पुनि सिरपर प्रभु राम।
रावन काल कोटि कहुँ, जीति सकहिं संग्राम ॥५५॥

अर्थ : सब बानर भालू सहज शूरवीर हैं। फिर उनके सिरपर प्रभु श्रीरामजी हैं। हे रावण! वे संग्राम में करोड़ों काल को भी जीत सकते हैं।

व्याख्या : गिरि तरु नख आयुध सब बीरा। हरि मारग चितवहिं मति धीरा। अतः सहज शूर हैं। रामजी ऐसे प्रभु की उनपर छाया है। अपने जीते जाने पर आश्चर्य न करिये। वे कोटि कोटि काल को जीत सकते हैं। उन्हें काल प्रेरित न समझिये। संग्राम करने का भाव यह कि जीव मात्र ही काल के वश हैं। अंड कटाह अमित लयकारी। काल सदा दुरतिक्रम भारी। सो कभी न कभी काल के वश सभी को होना है। मैं उस समय की बात नहीं कहता। इस समय संग्राम में वे रामकृपा से काल को जीत सकते हैं। यहाँ तक दलका तेज कहा।

राम तेज बल बुधि बिपुलाई। सेष सहस सत सकहिं न गाई॥
सक सर एक सोषि सत सागर। तव भ्रातहि पूछेउ नय नागर॥१॥

अर्थ : श्रीरामचन्द्र के तेज बल और बुद्धि की अधिकता को लाखों शेष भी नहीं गा सकते। वे एक ही बाण में सौ समुद्रों का शोषण कर सकते हैं। परन्तु नीतिनिपुण रामजी ने तुम्हारे भाई से उपाय पूछा।

व्याख्या : कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी का उत्तर देते हुए केवल रामजी का वृत्तान्त कहता है। लक्ष्मणजी का वृत्तान्त चिट्ठी कहेगी। रावण ने केवल तेज बल पूछा, क्योंकि रावण के यहाँ केवल बल की ही प्रधानता मानी जाती है। परन्तु यह पहिले उनकी बुद्धि की प्रशंसा करता है। सरकार की बुद्धि देखकर चकित है। जितनी बातें उसने रामदल में देखीं वे सब चकित करनेवाली थीं। सरकार के अहोरात्र के द्रष्टा तो शेष ही हैं। अतः अन्य वर्णन करनेवालों का नाम न लेकर शेष का ही नाम लेता है। शेष को सहस्रमुख हैं। अतः वर्णन करने की सामग्री बेजोड़ है। सौ लाख शेष भी अपने हजारों मुख से वर्णन नहीं कर सकते अर्थात् रामजी की बुद्धि सर्वथा अवर्णनीय है।

अब तेज और बल कहता है। एक बाण सौ समुद्र सोख सकता है। यथा कोटि सिंधु सोषक तव सायक। यहाँ सायक बहुवचन के अर्थ में प्रयुक्त है। अतः विभीषण तथा शुक की उक्तियों में कोई भेद नहीं है। फिर भी ऐसे नयनागर हैं कि तुम्हारे भाई से सम्मति पूछते हैं।

तासु बचन सुनि सागर पाहीं। मागत पंथ कृपा मन माहीं॥
सुनत बचन बिहँसा दससीसा। जौं असि मति सहाय कृत कीसा॥२॥

अर्थ : उसके वचन सुनकर वे समुद्र से मार्ग माँग रहे हैं। उनके मन में कृपा

है। दूत के ये वचन सुनते ही रावण हँसा कि जब ऐसी बुद्धि है तभी तो बानरों को सहायक बनाया है।

व्याख्या वहाँ विभीषणजी के वचन का आदर है। तुम्हारे यहाँ उनकी सुनवाई नहीं होती थी। उनका वचन मानकर जिसे एक बाण से सोख सकते हैं उससे विनय कर रहे हैं। उनके सैनिक तो झख व्याल के सहित समुद्र सोखने को तैयार हैं। पर सरकार के मन में कृपा है अत रास्ता माँग रहे हैं। वे भय से विनय नहीं करते। कृपा से विनय कर रहे हैं।

रावण बात सुनकर समझने का यत्न नहीं करते। छिद्रान्वेषण करते हैं। इतनी बातें शुक ने ऐसी सावधानता से कहीं कि कहीं छिद्र न मिला। पर मागत पथ कहते ही उस बोलने का अवसर मिल गया। हँसकर सब बातें उड़ा दीं। कहता है कि बन्दर न किसी की सहायता कर सकते हैं और उनसे कोई सहायता चाहता भी नहीं। क्योंकि किसी से उनका मेल नहीं खाता। पर तपस्वी की बुद्धि बन्दरों की बुद्धि से मेल खा गयी जभी बन्दर सहायक हुए। समानशीलव्यसनेषु मैत्री अथवा समुद्र जड है। उससे पन्थ माँगना भी उतना ही मूर्खतापूर्ण कार्य है जितना कि बन्दरों की सेना इकट्ठा करना है। न तो समुद्र रास्ता ही देगा और न बन्दरों की सेना युद्ध ही कर सकेगी।

सहज भीरु कर बचन दिढाई। सागर सन ठानी मचलाई ॥
मूढ मृषा का करसि बडाई। रिपु बल बुद्धि थाह मै पाई ॥३॥

अर्थ स्वाभाविक डरपोक के वचन को पुष्ट करके समुद्र से ही मचल बैठा है। अरे मूर्ख! तू झूठी बडाई क्या करता है। शत्रु के बल बुद्धि का थाह मुझे लग गया।

व्याख्या बुद्धि की निन्दा करके अब तेज बल की निन्दा करता है। एक भीरु वह जो समुद्र से मचलने की सम्मति दे और दूसरा भीरु वह है जो उसकी पुष्टि करे। मेरे यहाँ इसीलिए विभीषण की राय नहीं मानी जाती थी। क्योंकि सदा वह भीरुता की सम्मति देता था।

रावण ने कहा तू तो है मूढ। तुझे उसके बल बुद्धि का थाह न लगा। कहता है कि शेष सहस सत सकहिं न गाई अत तेरी की हुई बडाई भी झूठी है। मुझ तो केवल तेरी बातों से थाह लग गया। थाह मैं लगाता हूँ। तू क्या लगावेगा? तूने यही समझ लिया कि जलजन्तुओं पर दया करके रास्ता माँग रहे हैं।

सचिव सभीत बिभीषनु जाकें। बिजय बिभूति कहाँ जग ताकें ॥
सुनि खल बचन दूत रिसि बाढी। समय बिचारि पत्रिका काढी ॥४॥

अर्थ जिसे विभीषण सा डरपोक मन्त्री हो, उसे जगत में विजय और विभूति कहाँ? खल के वचन को सुनकर दूत का क्रोध बढा। अवसर जानकर उसने चिट्ठी निकाली।

व्याख्या विभीषण के साचिव्य से मेरा बड़ा नुकसान हुआ। लङ्का जल गयी। वह सभीत होकर यहाँ से भागा है, जो राय देगा कादरता ही की देगा। जिस राजा का मन्त्री कादर हो उसकी जीत हो ही नही सकती। विजय विभूति तो निर्भय का वरण करती हैं। वहाँ मालिक मन्त्री दोनो बेकाम हैं।

दूत को क्रोध तो रावण के हँसने पर ही आया था। अब खलता की बातें सुनकर क्रोध बढ़ा। खल का लक्षण ही यह है कि वचन वज्र जेहि सदा पियारी। सहस नयन परदोष निहारा। सरकार की निन्दा वे वचन वज्र से लगे। देखा कि यह बातो से मन को रिझा रहा है। यही समय पत्र देने का है। अतः उत्तर न देकर चिट्ठी निकाली और उसे बँचवाकर सुनाने के लिए कहता है। जिसमें सारी सभा सुन ले कि इस बात का यही उत्तर है।

रामानुज दीन्ही यह पाती। नाथ बँचाइ जुड़ावहु छाती॥
बिहँसि बाम कर लीन्ही रावन। सचिव बोलि सठ लाग बचावन॥५॥

अर्थ : रामजी के छोटे भाई ने यह चिट्ठी दी है। हे नाथ! इसे बँचवाकर छाती ठण्ढी कीजिये। रावण ने हँसकर उसे बायें हाथ से लिया और वह शठ मन्त्री को बुलाकर बँचवाने लगा।

व्याख्या : तासु अनुज काटे श्रुति नासा। सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा। यहाँ रामानुज कहने से यही भाव है कि जिसने तुम्हारी बहन को नाक काटी है। रावण का क्रोध बढ़ा हुआ है। इसीलिए जुड़ावहु छाती कहता है। अथवा आपके अनुज वहाँ पधारे तो उनके अनुज ने भी मेल के लिए चिट्ठी भेजी है। यह हृदय को शीतल करनेवाली बातें हैं।

लक्ष्मणजी ने कहा था : रावण कर दीजेउ यह पाती। सो उसने रावण के हाथ मे चिट्ठी दी। रावण हँसा कि समुद्र पार करने का कोई उपाय नही मिलता तब मेल करने चला है। वाम कर से लेना अनादर सूचक है। शठ है : मन्त्री से पढ़वाता है। जिसमे सब लोग सुनें कि उनका भाई भी डर गया है। समुद्र के व्यवधान से स्वय न आ सका तो मेरे दूत के हाथ से चिट्ठी भेजता है।

दो. बातन्ह मनहि रिझाइ सठ, जनि घालसि कुल खीस।
राम बिरोध न उबरसि, सरन बिष्नु अज ईस॥
की तजि[1] मान अनुज इव, प्रभुपद पंकज भृंग।
होइ कि राम सरानल, खल कुल सहित पतंग॥५६॥

अर्थ : रे खल! केवल बातो से मन को रिझाकर कुल का नाश न कर। तू रामजी से विरोध करके विष्णु ब्रह्मा और महेश का शरण ग्रहण करके भी नहीं

१. यहाँ विकल्प अलङ्कार है।

बच सकेगा। या तो अभिमान छोड़कर छोटे भाई की भाँति प्रभु के चरण कमलों का भ्रमर बन नही तो रे खल! रामजी के बाणरूपी आग मे परिवार सहित पतङ्ग हो।

व्याख्या : बातें बना बनाकर अपनी आत्मा को धोखा देना शठता की पराकाष्ठा है। इस दोष से तेरे कुल का सर्वनाश होगा। लक्ष्मणजी हनुमान्‌जी से सुन चुके हैं कि रावण ऐसी ही बातें किया करते हैं। अतः लिखकर चेतावनी देते हैं कि यह समय बातें बनाकर मन के रिझाने का नही है। तुम सबसे विरोध करके बच गये पर राम का विरोध कर बैठे अब नही बच सकते। केवल तुम्हारा ही नही सम्पूर्ण कुल का नाश उपस्थित है। यदि ब्रह्मा रुद्र का भरोसा हो तो उसे भी छोड़ो। दो की कौन कहे तीनो देव मिलकर भी तेरी रक्षा नही कर सकते। यथा : काहू बैठन कहा न ओही। राखि को सकै राम कर द्रोही।

अब तुम्हें दो गति है। भृङ्ग बनो या पतङ्ग बनो। यदि अभिमान नही छोड सकते तो कुल के सहित पतङ्ग बनोगे। यथा : निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु। जननी हृदय धीर धरु जरे निसाचर जानु। आसक्त दानों हैं भृङ्ग भी और पतङ्ग भी। सो भृङ्ग आनन्द से रस लेते हैं और पतङ्ग काल के मुख मे पड़ते हैं। सो यथेच्छसि तथा कुरु : जैसी इच्छा हो वैसा करो।

सुनत सभय मन मुख मुसुकाई। कहत दसानन सबहि सुनाई॥
भूमि परा कर गहत अकासा। लघु तापस कर बाग बिलासा॥१॥

अर्थ : सुनते ही मन मे भय हुआ। पर मुख से मुसकुराता हुआ दशानन सबको सुनाकर कहने लगा कि भूमि पर तो गिरा हुआ है और आकाश पकडना है। यह छोटे तपस्वी की बातचीत है।

व्याख्या : समय बिचारि पत्रिका काढी। सो समय की बात ऐसी बैठ गयी कि रावण भीतर से डर गया। बात सच्ची थी। रावण असली बात छिपाकर अपनी आत्मा को धोखा देता था। बड़ा अभिमानी है। फिर भी इस बार हँस न सका। नही तो हर एक बातों पर हँसता था। यथा : बिहँसि दसानन पूछी बाता। सुनत बचन बिहँसा दससीसा। बिहँसि बाम कर लीन्ही रावन। इस बार चेष्टा करने पर भी ओष्ठ विकास हुआ हृदय विकास न हो सका। यह मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यत् दुरात्मनाम् का उदाहरण है। मनस्यन्यत् यथा : सुनत सभय मन कर्मण्यन्यत् यथा : मुख मुसुकाई और वचस्यन्यत् यथा : कहत दसानन सबहि सुनाई। सबके ऊपर अपनी निर्भयता का सिक्का जमाये रखना चाहता है। अतः सबको सुनाकर कहता है।

कोठे पर चढ़कर भी कोई आकाश नही पकड़ सकता। क्योंकि आकाश स्पर्श की वस्तु ही नही है। इसी भाँति सिंहासनासीन पुरुष भी मुझसे युद्ध करने मे समर्थ नही है। क्योंकि मैं सर्वथा अजेय हूँ और यह तो भूमि पर पड़ा है। राज्य से भी

पतित है निकाला हुआ है। आकाश की भाँति मुझ अजेय को युद्ध करने का भय दिखला रहा है। और सबसे बढ़कर बात यह है कि यह छोटे तपस्वी का वाग्विलास है। जिसे न कभी राज्याधिकार था न है। रावण सदा तपस्वियों को दाम्भिक ही समझते हैं। यथा : मिलि तपसिन्ह तैं भएसि लबारा।

कह सुक नाथ सत्य सब बानी। समझहु छाडि प्रकृति अभिमानी॥
सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा। नाथ राम सन तजहु बिरोधा॥२॥

अर्थ : शुक ने कहा कि हे नाथ ! यह सभी वाणी सत्य है। आप अभिमानी प्रकृति का परित्याग करके समझिये। हे नाथ मेरा वचन क्रोध छोड़कर सुनिये। रामजी से विरोध छोड़ दीजिये।

व्याख्या शुक ने कहा वाग्विलास नहीं अक्षरशः सत्य है। बात के समझने में अभिमान बड़ा भारी बाधक है। राम गीता का उपदेश करते हुए रामजी ने इसी से लक्ष्मणजी से कहा : सुनहु तात मन मति चित लाई। अन्तःकरण चार हैं। मन बुद्धि चित्त और अहङ्कार। अतः रामजी ने कहा कि मन बुद्धि और चित्त लगाकर सुनो। अहङ्कार को स्थान मत दो नहीं तो बात समझ में नहीं आवेगी। अतः दूत कहता है कि अभिमानी प्रकृति को दूर रखकर समझो तो बात समझ में आ जावेगी। लक्ष्मणजी ने दूत से कहा था कि कहेहु मुखागर मूढ सन मम सदेस उदार। सीता देइ मिलहु नत आवा काल तुम्हार। इस सन्देश का निर्वाह दूत ने सत्य सब बाणी कहकर किया। जब सब सभा ने चिट्ठी सुन ली तब उसी बात के दोहराने की आवश्यकता न रह गयी।

दूत मानहु कहा क्रोध तजि तैसे से उपक्रम करके सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा से उपसहार करता है। जानता है कि अभिमानी है। शिक्षा सुनते ही क्रोध करेगा। अत भूमिका पूरी करके तब कहता है कि रामजी से विरोध छोड़ो। भाव यह कि वे किसी के विरोधी नहीं। तुमने नाहक उनसे विरोध कर रक्खा है। उनसे विरोध करने में कल्याण नहीं है। देवता तुम्हारे वैरी थे। उनसे विरोध किया तो एक बात थी। रामजी तो किसी के वैरी नहीं।

अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोक कर राऊ॥
मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिहीं। उर अपराध न एकउ धरिहीं॥३॥

अर्थ : रघुबीर का स्वभाव अखिल लोक के स्वामी होने पर भी अत्यन्त कोमल है। मिलते ही प्रभु तुम पर कृपा करेंगे और तुम्हारे एक अपराध को भी हृदय में स्थान नहीं देंगे।

व्याख्या : भूमि परा कर गहत अकासा। नहीं वे अखिल लोक के नाथ हैं। मनुष्य ऐसे होते नहीं। प्रमाण देता है कि अखिल लोक के नाथ होने पर भी उनका स्वभाव अत्यन्त कोमल है। श्रीमद वक्र न कीन्ह केहि। प्रभुता बधिर न

काहिं। जीव तो थोड़ी सी प्रभुता पाकर कठोर स्वभाववाला हो जाता है। उनमें जीवधर्म अहंमिति अभिमाना नही है।

वे मिलते ही कृपा करेंगे। तुम पर का भाव यह कि तुमने उनका कितना बड़ा अपराध किया है। सो ऐसा कोमल स्वभाव है कि विभीषण पर ही कृपा किया यह बात नहीं। तुम पर भी कृपा करेंगे। निःसन्देह तुमसे भगवदपराध तथा भागवतापराध असाधारण रूप से हो पड़े हैं। परन्तु तुम्हारे सब अपराध मिलकर भी उनकी दया से बड़े नही है। सब क्षमा हो जायगा।

जनकसुता रघुनाथहिं दीजे। एतना कहा मोर प्रभु कीजे ॥
जब तेहि कहा देन बैदेही। चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही ॥४॥

अर्थ : जानकीजी रघुनाथजी को दे दीजिये। हे प्रभो ! इतना मेरा कहा करिये। जब उसने जानकीजी को देने के लिए कहा तो उस शठ ने लात मारी।

व्याख्या : यावज्जीवन मैंने आपका कहा किया है। कोई बात सेवक की स्वामी भी मान जाता है। अतः इतना मेरा कहा कीजिये। भाव यह कि शत्रु के कहने से नहीं मेरी बात मानकर जानकीजी रघुनाथजी को दे दीजिये। ऐसी ही बात हनुमान्जी ने कही थी : मोरे कहे जानकी दीजै। विभीषण ने कहा : तात चरन गहि मागौं राखौ मोर दुलार। सीता देहु राम कहँ अहित न होइ तुम्हार।

जिस बात में राय नहीं पूछी जाती उसमें राय देने से रावण क्रुद्ध हो जाते हैं। रावण अपनी निजी बातो में राय नहीं चाहते। तिसपर सीता का देना तो वह कान से सुनना नही चाहते। इसी बात पर उन्होने विभीषण को लात मारा था। क्योकि शठ है विनय नही सुनता। यथा : सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती। लात मारने का अर्थ ही यही है कि लङ्का से निकल जाओ। वध नही करता त्याग करता है।

नाइ चरन सिरु चला सो तहाँ। कृपासिंधु रघुनायक जहाँ ॥
करि प्रनामु निज कथा सुनाई। रामकृपा आपनि गति पाई ॥५॥

अर्थ : वह सिर नवाकर वहाँ चला जहाँ कृपासागर रघुनाथजी थे। प्रणाम करके उसने अपनी कथा सुनाई और रामजी की कृपा से अपनी गति को प्राप्त हुआ।

व्याख्या : रावन चरन सीस तिन्ह नाए से उपक्रम और नाइ चरन सिर से उपसंहार। विदा होने का प्रणाम है। विभीषणजी का ही रास्ता इसने भी पकड़ा। जिसे राम प्रेम होता है वह मोह दसकण्ठ की सभा से लात मारकर निकाला ही जाता है। क्रोधसिन्धु को छोड़कर कृपासिन्धु की शरण मे चला।

सरकार समुद्र तट पर दर्भ डसाए बैठे हुए हैं। वही पहुँचा प्रणाम किया और अपनी कथा कह चला कि किस भाँति रावण द्वारा दूत बनाकर रामदल

में भेजा गया। किस भाँति पकड़ा गया कैसे छूटा। किस भाँति लक्ष्मणजी की चिट्ठी लेकर गया और किस भाँति निकाला गया। और कहने लगा कि मैं अनन्य शरण हूँ। रावण के क्रोधपात्र की रक्षा कौन त्रिभुवन में कर सकता है अथवा मोह की सभा से निकाले जाने के कारण दिव्य ज्ञान हो गया। सो अपने शाप की कथा सुनाई। प्रभु मौन थे न बोले।

रिपि अगस्ति की साप भवानी। राक्षस भएउ रहा मुनि ग्यानी॥
बंदि रामपद बारहिं बारा। मुनि निज आश्रम कहुँ पगु धारा॥६॥

अर्थ : हे भवानी ! वह ज्ञानी मुनि था। अगस्त्य ऋषि के शाप से राक्षस हो गया था। बार बार श्रीरामचन्द्र के चरणों को वन्दना करके वह मुनि अपने आश्रम को चला गया।

व्याख्या : आपनि गति पाई इस पद को कवि स्पष्ट करते हैं। पहिले मुनि ज्ञानी था। अगस्त्यजी के शाप से सद्यः राक्षस हो गया था। सो सरकार की कृपा से ब्रह्म शाप से विनिर्मुक्त होकर फिर जैसा का तैसा मुनि हो गया।

कृतज्ञता प्रकाशन के लिए बारम्बार वन्दना करता है। अब मुनि का जाना कहते हैं। यथा : गई पति लोक अनन्द भरी। इस भाँति यह भी अपने आश्रम को चला गया। जब तक यह राक्षस था तब तक उसका आश्रम सूना पड़ा था। ज्ञानीभक्त की बाधा सरकार दूर करते हैं। अतः ज्ञानघाट के वक्ता भवानी सम्बोधन करके अपने वक्ता को सावधान करते हैं। भक्त अवश्य होना चाहिए।

सागरनिग्रह प्रसङ्ग

दो. बिनय न मानत जलधि जड़, गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीति॥५७॥

अर्थ : जड़ समुद्र विनय नहीं मानता। तीन दिन बीत गये। रामजी क्रोध के साथ बोले कि बिना भय के प्रीति नहीं होती।

व्याख्या : विनय न मानत कहने का भाव यह कि विभीषणजी ने कहा था कि : प्रभु तुम्हार कुल गुरु जलधि कहिहि उपाय बिचारि। सो तीन दिन विनय करते बीत गये। सिन्धु के सिर पर जूँ न रेंगी। इसलिए उसे जड़ कह रहे हैं। विभीषणजी की सम्मति से काम न चला तब लक्ष्मणजी के सम्मति के अनुकूल कार्य किया। यथा : सोखिअ सिंधु करिय मन रोसा। अतः रामजी सकोप बोले। सिन्धु रावण के कृपापात्र थे। इन्हीं के कारण लङ्का अगम्य थी। रावण इन्हीं के लिए प्रीति युक्त वचन बोले थे। यथा : भयउ मृदुल चित सिन्धु बिचारा। सो ये बिना भय प्रेम न करेंगे। सुर नर मुनि सबके यह रीती। स्वारथ लागि करहिं

सब प्रीती। जब कोई स्वार्थ नहीं है तब भय के अतिरिक्त अन्य उपाय भी नहीं है।

लछिमन बान सरासन आनू। सोखौ बारिधि बिसिख कृसानू ॥
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपिन सन सुंदर नीती ॥१॥

अर्थ : हे लक्ष्मण ! धनुष बाण लाओ। मैं अग्नि बाण से समुद्र सोख डालूँ। शठ से विनय कुटिल के साथ प्रीति और स्वभाव से जो कृपण हैं उससे सुन्दर नीति :

व्याख्या सरकार मुनिवृत्ति मे थे। इसलिए धनुष बाण लक्ष्मण के पास था। और लक्ष्मणजी स्वय पहरे पर थे तथा लक्ष्मणजी से जो कहा था कि ऐसेइ करब धरहु मन धीरा वही करने को प्रस्तुत हैं। अत लक्ष्मणजी से कहते हैं धनुष बाण लाओ। तूणीर नही माँगा क्योकि : द्वि शर नाभिसन्धत्ते दो बार बाण चढाते नही। तब कौन सा बाण चाहिए। अत कहते हैं कि समुद्र सोखना है आग्नेयास्त्र की आवश्यकता है।

यह समुद्र शठ है। इसकी जड करणी है। इससे विनय करना ऊसर मे बीज वपन की भाँति निष्फल है। यह कुटिल है। डुबोनेवाला है। इससे प्रीति कैसी ? प्रीति सरल पुरुष से की जाती है। यह सहज कृपण है। लेना ही जानता है देना जानता ही नही। इससे सब नीतियो से सुन्दर नीति साम का प्रयोग निष्फल है। साम का पात्र उदार पुरुष है।

ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी ॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा। ऊसर बीज बए फल जथा ॥२॥

अर्थ : ममता मे फँसे हुए मनुष्य से ज्ञान की कथा अत्यन्त लोभी से वैराग्य का वर्णन क्रोधी से शम : शान्ति की बात और कामी से भगवान् की कथा ऊसर मे बीज बोने के समान निष्फल है।

व्याख्या . यह सिन्धु ममता रत है। जल पर इसकी बडी ममता है। सम्पूर्ण जल को नमकीन बनाये रहता है जिसमे कोई पी न सके। इसके लिए ज्ञान : समता का उपदेश कि जिस भाँति बलवान् लघन करनेवालो को मार्ग देते हो उसी भाँति निर्बल कपि भालु को भी मार्ग दो निष्फल है। यह रास्ते भर जमीन भी अपने अधिकार के बाहर नही किया चाहता। निर्लोभ पुरुष ही वैराग्य की महिमा को समझ सकता है।

यह समुद्र क्रोधी है। दिनरात गर्जन किया करता है। इससे शान्ति की कथा निष्फल है। यह कभी क्षीणकल्लोल नही हो सकता। बिना थपेडा दिये नही मान सकता। क्रोधरहित पुरुष ही शान्ति कथा का अधिकारी है। यह सिन्धु कामी है। सहस्रो नदियो का पति है। इसका चित्त विषय पराङ्मुख होकर भगवत् कथा मे नही लगता। अत इसके सामने हरिकथा निष्फल है। रावण वध होकर हरि

रामजी अथवा कपि की कथा पूर्ण हो। इस बात की रुचि इसे नहीं है। सन्त ही हरि कथा के सहायक होते हैं। इस भाँति सात अवगुणों को हरिभक्ति का बाधक तथा तद्विपरीत सात गुणों को साधक बतलाया। अथवा सठ सन विनय प्रसङ्ग प्राप्त है। शेष छ केवल उदाहरण हैं।

अस कहि रघुपति चाप चढावा। यह मत लछिमन के मन भावा॥
सधानेउ प्रभु विसिख कराला। उठी उदधि उर अंतर ज्वाला॥३॥

अर्थ ऐसा कहकर श्रीरघुनाथजी ने धनुष चढाया। यह मत लक्ष्मणजी को पसन्द आया। प्रभु ने कराल बाण का सन्धान किया तो समुद्र के हृदय मे ज्वाला उठी।

व्याख्या : बोले राम से उपक्रम और अस कहि से वचन का उपसहार करते हैं। कहने मात्र की देर थी। लक्ष्मणजी ने धनुष तथा आग्नेयास्त्र ला दिया। ऊसर बीज बए फल जथा कहकर धनुष पर गुण आरोपित किया। पहिला मन्त्र लक्ष्मण को नहीं भाया था। इसलिए कहते हैं कि यह मत लछिमन के मन भावा।

इतने पर भी समुद्र ने कुछ ख्याल न किया। तब कालानल के सदृश बाण का सन्धान किया। छोडा नहीं। लक्ष्यमात्र के स्थिर करते ही समुद्र के हृदय मे ज्वाला उठी। आग या ऊपर से लगती है या नीचे से लगती है। यहाँ बीच मे आग उठी।

मकर उरग झख गन अकुलाने। जरत जतु जलनिधि जब जाने॥
कनक थार भरि मनि गन नाना। बिप्ररूप आएउ तजि माना॥४॥

अर्थ : मगर सर्प तथा मछलियों के समूह व्याकुल हो उठे। जब समुद्र ने जीवो को जलते हुए जाना तब सोने के थाल मे मणियों को भरकर ब्राह्मण का रूप धारण किये हुए मान छोडकर आया।

व्याख्या : जल खौलने लगा। जलजन्तु विकल हो उठे। जब समुद्र ने जाना कि जो जलजन्तु बडवानल से नहीं जले इस ज्वाला से जल रहे हैं। सम्पूर्ण प्रजा का सहार उपस्थित है। भय देने की सीमा का अतिक्रमण हो चुका अब दण्डपात हुआ ही चाहता है।

भय बिनु होइ न प्रीति इस नीति का साफल्य दिखलाते हैं। उपहार की तैयारी हुई। रिक्तपाणि न पश्येत् राजानं भिषज गुरुम्। राजा वैद्य और गुरु का दर्शन खाली हाथ नहीं करना चाहिये। यह नीति है। और ये रत्नाकार हैं अत सोने का थाल भरकर मणि लिये हुए आये। बाण छूट न जाय इसलिए विप्ररूप धारण किया। प्रभु ब्रह्मण्य देव हैं। ब्राह्मण पर अस्त्र न छोडेंगे। जिसकी विभूति है उन्ही से मान किये बैठे थे। उसे छोडकर आये। इसपर कवि की उक्ति है कि

दो. काटेहि पै कदली फरै, कोटि जतन कोउ सीच।
विनय न मान खगेस सुनु, डाटहि पइ नवै नीच॥५८॥

अर्थ : हे गरुड़ ! सुनो । काटने पर केला फलता है । चाह
करके सींचे । नीच विनय से नही मानता । वह डाटने से ही झुकत

व्याख्या : जल की सदा नीच गति होती है । इसलिए समु
और है भी समुद्र संसार भर से नीचा । इसीलिए ऊँचाई की नाप
जाती है । नीच विनती करने से और भी आसमान पर चढ जाता ह
ने यहाँ नीच की परिभाषा दे दी । नीच से विनती करते जाइये वह
मानो उसे श्रवणेन्द्रिय है ही नही । और जहाँ उसने किसी पुरुषार्थ
सुना तहाँ उसके सामने पानी पानी हो जाता है । यथा : फला हुआ
फल नही देता । कितना ही सींचिये कोई नतीजा नही । उनका एकम
काट डालना है । कट जाने पर वह फिर फल देता है । कदली को भी
नीच कहा । भुसुण्डिजी ने गरुड से कहा कि आप तो समुद्र का हाल ज
जब आपने डाँटा तब उसने टिट्टिभ का अंडा दे दिया । नही तो टिट्टि
कितना आर्त्तनाद करती रही । पक्षी समाज ने कितना प्रयत्न किया
निष्फल गये । महाभारते ।

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे । छमहु नाथ सब अवगुन मे
गगन समीर अनल जल धरनी । इन्हकइ नाथ सहज जड़ करनी

अर्थ . समुद्र ने सभीत होकर प्रभु का चरण पकड़कर कहा : हे नाथ
सब अवगुण क्षमा करो । हे नाथ । आकाश वायु अग्नि जल और पृथ्वी इन
करणी स्वभाव से ही जड़ है ।

व्याख्या . भय बिनु होइ न प्रीति सो भय से प्रीति हुई । समुद्र ने आकर
पकड़ लिया । सात अवगुण जो सरकार ने कहा था उन सबको स्वीकार
क्षमा चाहता है । और भी जो अवगुण हैं जिसका पता पीछे से चलेगा उ
लिए भी क्षमा चाह रहा है ।

पञ्च महाभूत यद्यपि चेतन है पर इनकी करणी स्वभाव से ही जड़ है
सदा जड की भाँति वर्तते हैं । ये पञ्च महाभूत विवेक से काम नही लेते । केवल
ही नही चार और भी ऐसे हैं जिनसे मैं उत्पन्न हूँ : अग्नि और जो मुझसे उत्पन्न
है : पृथिवी सब ऐसे ही है : आकाशाद्वायु । वायोरग्निः अग्नेराप.। अद्भ्य
पृथिवी ।

तव प्रेरित माया उपजाए । सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाए ॥
प्रभु आयसु जेहि कहँ जो अहई । सो तेहि भाँति रहे सुख लहई ॥२॥

अर्थ : तुम्हारी प्रेरणा से माया ने इन्हे सृष्टि के लिए उत्पन्न किया है । सब
ग्रन्थो ने ऐसा ही वर्णन किया है । जिसके लिए प्रभु की जैसी आज्ञा है वह उसी
भाँति रहने मे सुख पाता है ।

व्याख्या : जड़ता का कारण कहते है । प्र...

जड है। प्रेरणा सरकारी : चेतन की। हमारी उत्पत्ति ही सृष्टि के लिए है इस बात मे किसी शास्त्र का मतभेद नही है। यदि कहिए कि तुम चेतन होकर अपनी करणी जड सी क्यो बनाये हो ? तो इसपर कहते हैं कि मेरे लिए सरकारी आज्ञा ही ऐसी है। इसीलिए यह हमारा धर्म है। हम साधु असाधु दोनो को शीतलता पहुँचाते हैं। दोनो को डुबाते हैं। इससे विपरीत करना मेरे अधिकार के बाहर की बात है। इसी भाँति रहने मे मुझे सुख है। यही मेरा स्वभाव है। प्रभु की आज्ञा ही धर्म है चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म । अत अपने धर्मानुसार चलने मे ही सुख है।

प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही। मरजादा पुनि तुम्हरिअ कीन्ही ॥
ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। सकल ताडना के अधिकारी ॥३॥

अर्थ प्रभु ने अच्छा ही किया जो मुझे शिक्षा दी। परन्तु मर्यादा भी आपकी ही बनाई हुई है। ढोल गँवार शूद्र पशु और स्त्री ये सब दण्ड के अधिकारी हैं।

व्याख्या यद्यपि स्थूल दृष्टि से मेरा दोष नही प्रतीत होता पर वस्तुत मै दोषी हूँ। सरकार ने मुझे भय दिखलाया सो बहुत ही अच्छा किया। इससे मेरा बडा कल्याण होगा। आपकी बनाई हुई मर्यादा है। आपका अधिकार है कि उसे हटाकर दूसरी मर्यादा स्थापन करें। जब आपने पहिली बार मार्ग माँगा तभी मुझे हाजिर हो जाना चाहिए था।

चार दण्ड के अधिकारी है। इसमे ढोल को पहिले कहा। यही चौपाई लगने की किल्ली है। जिस भाँति हिसाब से ढीला पड जाने से ठीक काम न देने से ढोल को ठोक ठाँककर ठीक कर लेते है इसी भाँति गँवार शूद्र पशु और नारी का भी ठोक ठाँक उनके सुधार की दृष्टि से होना चाहिए। नही तो ये ढोल की भाँति ढीला पडकर बेकार हो जाते है। विशेषता यह है कि ताडन[1] का अधिकार तीन रात्रि उपवास के बाद प्राप्त होता है। अर्थात् जब सुधार के सब उपाय करके हार जाय तो इस मात्रा से दण्ड दें। जिससे वह कार्य लायक हो जाय। यहाँ ताडन का अर्थ शिक्षा देना है। यथा दशवर्षाणि ताडयेत्। दण्ड का अर्थ लाठी लकर पीटना ही नही है वाग्दण्ड भी दण्ड है। श्रीरामचरितमानस मे कही स्त्रियो के शारीरिक दण्ड का उदाहरण नही है। कूबरी और सूर्पणखा ऐसी स्त्रियाँ नि सन्देह

---

१ शास्त्र स्त्री-स्वातन्त्र्य का पक्षपाती नही है। उनको पिता पति और पुत्र के वशवर्ती रहने की आज्ञा है। उनका शरीर सघटन भी ऐसा है कि उनके शील की रक्षा के लिए दूसरे की आवश्यकता है। सत्य से आँख मीचना उचित नहीं। पति परिस्थिति विशेष मे ताडन कर सकता है। इसमे वेद प्रमाण है सा चेदस्मै न दद्यात् काममेनामवक्रीणीयात् सा चेदस्मै नैव दद्यात् काममेना यष्टया वा पाणिनावोपहत्यातिक्रामेमदिन्द्रियेण ते यशसा यश आदद इत्ययशा एव भवति। वृ छ ब्रा ७। दण्ड एवहि मूर्खाणा सन्मार्गप्रापक प्रभो। अध्यात्मरामायणे।

शारीरिक दण्ड की भागिनी थी। समुद्र ने अपनी गणना गँवारो मे किया। यदि चतुर होते तो पहिले ही उपस्थित हो जाते।

प्रभुप्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई ॥
प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई। करउँ सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई ॥४॥

अर्थ : प्रभु के प्रताप से मैं सूख जाऊँगा। सेना पार हो जायगी। पर मेरी बड़ाई : सरसामस्मि सागरः न रह जायगी। वेद कहते हैं कि प्रभु की आज्ञा अपेल है। अतः तुरन्त वही करिये जो आपको अच्छा लगे।

व्याख्या : आग्नेयास्त्र से मैं नही सूख सकता। कितनो के पास आग्नेयास्त्र है पर कोई सुखा न सका। मैं सरकार के प्रताप से निःसन्देह सूख जाऊँगा और ऐसा सूख जाऊँगा कि सेना पैदल पार चली जायगी। पर सरकार तो दासो को बड़ाई देनेवाले हैं। श्रीमुख से कहा है कि सरो मे मैं सागर हूँ। सो मेरी बडाई जाती रहेगी।

रामरजाइ मेटि मन माँही। देखा सुना कतहुँ कोउ नाही। अत निग्रहानुग्रह जो हो मैं प्रस्तुत हूँ। सरकार बाण सन्धान करके रोके हुए हैं सो इतना कष्ट न सहे। जो उचित हो शीघ्र करें। जिसमे सरकार को कष्ट न हो अथवा हृदय की ज्वाला सहने मे असमर्थ हैं। अत. शीघ्रता के लिए अनुरोध करता है अथवा देर होने मे मेरी प्रजा सब मर जायगी।

दो. सुनत बिनीत बचन अति, कह कृपाल मुसुकाइ।
जेहि बिधि उतरै कपि कटकु, तात सो कहहु उपाइ ॥५९॥

अर्थ : अति विनीत वचन सुनकर कृपाल ने मुसुकराकर कहा। हे तात! जिस प्रकार बानरी सेना पार उतर जाय। हे तात! वह उपाय बतलाओ।

व्याख्या : गुन तुम्हार समुझइ निज दोषा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा। ऐसे ही पुरुष विनीत वचन कहने मे समर्थ हैं। प्रभु कृपाल हैं। तुरन्त दया आगयी। मुसकुरा पडे। भाव यह कि मैं तो उपाय बतलाने के लिए विनय कर रहा हूँ। मर्यादा भङ्ग चाहता तो विनय क्यो करता। जिसने तीन दिन तक विनय करने पर न माना उसके विनय पर तुरन्त दया किया। इसलिए कृपालु कहते हैं। मुसकुराने का भाव यह कि मेरी तो बानरी सेना है। यह तो नाव पर भी नही उतर सकती है। जिस नाव पर बन्दर रहे उसे बिना डुबाये नही छोड़ते। विभीषणजी ने भी उपाय के लिए ही सम्मति दी थी। यथा : प्रभु तुम्हार कुलगुरु जलधि कहिहि उपाय बिचारि।

नाथ नील नल कपि द्वौ भाई। लरिकाईं रिषि आसिष पाई ॥
तिनके परस किएँ गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे ॥१॥

अर्थ : हे नाथ! नील और नल दोनो वानर भाइयो ने बचपन मे ऋषि से

आशीर्वाद पाया था। उनके स्पर्श करने से भारी भारी पहाड भी आप के प्रताप से समुद्र तर जायँगे।

व्याख्या. समुद्र ने कहा कि जिनके छूने से पहाड समुद्र तरेंगे वे दोनो भाई तो आपके सेना मे ही हैं। उनके नाम हैं नल और नील। ये दोनो बन्दर बचपन मे किसी ऋषि की पाषाणमयी वस्तु जल मे फेंक देते थे। ऋषिजी को इससे कष्ट होता था। परन्तु ऋषिजी को उन बन्दरो पर क्रोध न हुआ। उन्हे आशीर्वाद दे दिया कि इनके फेंके हुए पाषाण जल मे न डूबें।

उनका आशीर्वाद तो अपनी वस्तुओ की रक्षा के लिए था। अब उसी आशीर्वाद के सहारे काम होगा। सरकार के प्रताप से उसी गुण का उत्कर्ष बहुत बढ ज यगा। उनके छूने से बडे बडे पर्वत तरने लगेंगे। भाव यह कि जिस प्रताप के बल से आग्नेयास्त्र द्वारा मेरा शोषण होता था वही प्रताप नल नील को निमित्त बनाकर कार्य करेगा।

मै पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई। करिहो बल अनुमान सहाई॥
एहि विधि नाथ पयोधि बँधाइअ। जेहि यह सुजसु लोक तिहु गाइअ॥२॥

अर्थ · मैं भी प्रभु की प्रभुता को हृदय मे धारण करके यावच्छक्य सहायता करूँगा। हे नाथ! इस प्रकार से समुद्र बँधाइये जिससे यह सुयश तीनो लोक मे गाया जाय।

व्याख्या. उपाय बतलाकर ही चुप न रह जाऊँगा यथाशक्ति सहायता भी करूँगा। जड होने से नियमो से अत्यन्त नियन्त्रित हूँ। फिर भी प्रवाहादि द्वारा बालू रेत आदि इकट्ठा करके पर्वतो को स्थिर करूँगा। धारण करूँगा। प्रभु की प्रभुताई को हृदय मे धारण करने से सहायतानुकूल सामर्थ्य का प्रादुर्भाव होगा।

जेहि विधि उतरै कपि कटकु का उत्तर देते हुए कहते है कि बिना पुल के यह सेना पार नही हो सकती और पुल बांधने की विधि यही है। सरकार यशोधन है। सो यश की भी वृद्धि होगी। जगत् मे आज तक कोई समुद्र पर पुल न बाँध सका। इससे तीनो लोक का कल्याण होगा। सब इस सुयश का गान करके बिना नौका आदि के ही भवसिन्धु तर जायेंगे।

एहि सर मम उत्तर [1]तट बासी। हतहु नाथ खल नर अघरासी॥
सुनि कृपाल सागर मन पीरा। तुरतहि हरी राम रनधीरा॥३॥

अर्थ: इस बाण से मेरे उत्तर तट के रहनेवालो का वध कीजिये। हे नाथ! वे मनुष्य पाप की राशि हैं। रणधीर कृपाल रामजी ने समुद्र के मन की पीड़ा सुनकर तुरन्त हरण कर ली।

---

१ द्रुमकुल्यनिवासी आभीर।

व्याख्या सत्यसन्ध हैं। शर सन्धान कर चुके अब उसके लिए लक्ष्य बतलाना चाहिए। वह खाली नही जा सकता। अत कहते हैं कि मेरे उत्तर तट के रहनेवाले पापमय हैं। उनका वध कीजिये। क्योंकि पापियो का वध उनके कल्याण का कारण होता है। जिस भाँति पापियों का पाप पृथ्वी नही सह सकती उसी भाँति तटवासियो का पाप तीर्थ नही सह सकता।

कृपाल ने केवल अपराध ही नही क्षमा किया चिरस्थायिनी पीडा भी हरन की। उस शर को चलाकर उन पापियो का वध किया। इतना नही वह स्थल मरुभूमि हो गया। उसे ढोलढमक्का कहते हैं। वहाँ आज भी सरकार के शर की पूजा होती है। सरकार किसी का वध नही करते। वे सज्जनो की पीडा हरण करते हैं। उसी पीडा हरण मे खलो की मृत्यु होती है। उन्हे स्वय किसी का वध इष्ट नही है। रणधीर शब्द से शर प्रक्षेप का पाण्डित्य कहा। कृपाल हैं तुरन्त पीडा हर ली। समुद्र ने तुरन्त ही पीडा निवृत्ति अनुभव की।

देखि राम बल पौरुष भारी। हरखि पयोनिधि भएउ सुखारी॥
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा। चरन बंदि पाथोधि सिधावा॥३॥

अर्थ श्रीरामजी का भारी बल और पौरुष देखकर समुद्र हर्षित होकर सुखी हो गये। सब चरित्र प्रभु को कह सुनाया और चरण वन्दना करके समुद्र घर गये।

व्याख्या सैकडो कोस पर बाण प्रक्षेप करना बल है। इतनी दूर जाकर बाण ने महा पुरुषार्थ दिखलाया। यह पौरुष है अथवा बल से अस्त्रबल तथा पौरुष से शारीरिक बल कहा।

इस समय सरकार लङ्का पर धावा करने चले हैं। यह अवसर उत्तर तट वासी के वध के लिए प्रार्थना करने का नही है और लौटते समय भरत मिलन की शीघ्रता मे रहेगे। और फिर मुझे कब समय मिलेगा इसका क्या ठिकाना? उपाय कहने के बदले भी उत्तर तटवासियो के वध की प्रार्थना अनुपयुक्त थी। अत मैंने इतनी अवज्ञा की कि सरकार शर सन्धान करें। शरसन्धान होने पर शरण आया। अब उसी शर से उन खलो का वध हुआ। सरकारी प्रतिज्ञा है। मम प्रण सरनागत भयहारी। अत भयहरण द्वारा सरकारी प्रतिज्ञा की भी पूर्ति हो गयी। यह अपना चरित्र समुद्र ने सुना दिया। इसका सुनाना आवश्यक था। भगवत् शरण मे मद मोह कपट छल का परित्याग अपरिहार्य है।

छ निज भवन गवनेउ सिंधु श्रीरघुपतिहि यह मत भाएऊ।
येह चरित कलि मलहर जथामति दास तुलसी गाएऊ॥
सुख भवन ससय समन दवन बिषाद रघुपति गुन गना।
तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि सतत सठ मना॥

अर्थ समुद्र अपने घर चला गया। श्रीरघुनाथजी को यह मत अच्छा लगा। इस कलिमल के हरण करनेवाल चरित्र को यथाबुद्धि तुलसीदास ने गान किया है। रघुनाथजी के गुण समूह सुख के धाम सन्देह के नाश करनेवाले और विषाद के दमन करनेवाले हैं। रे शठ मन! तू ससार की सब आशा भरोसा छोडकर निरन्तर इन गुणसमूह का गानकर और सुन।

व्याख्या सिन्धु जलराशि के अधिष्ठात्री देवता हैं। अत उनका घर जाना कहते है। सुयश वाला मन्त्र प्रिय लगा। अत श्रीरघुपति कहते हैं कि अविद्या की तीन शक्तियाँ हैं १ मल २ आवरण और ३ विक्षेप। सो मल के विषय मे पहिल ही कह आये हैं। यथा यह चरित कलिमल हर दमन विषाद कहकर आवरण शक्ति का नाश कहा और सशय शमन कहकर विक्षेप शक्ति का नाश कहा और सुखभवन कहकर परमानन्द की प्राप्ति कहा। सासारिक आशा भरोसा छोडकर गान करने का विधान है।

दो सकल सुमगल दायक, रघुनायक गुनगान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव, सिंधु बिना जलयान ॥६०॥

अथ श्रीरघुनाथजी का गुणगान सभी सुन्दर मङ्गलो का देनेवाला है। जो इसे आदर सहित सुनेगे वे बिना किसी जहाज के भवसागर को तर जायँगे।

व्याख्या प्रेय श्रेयदायक अथवा सकल धम के फल का देनेवाला रामजी का गुणग्राम है। अत बिना वेद के भी सादर सुननेवाला भवसागर तर जाता है। क्योकि वेद ही जलयान माना गया है वदउँ चारिउ वेद भव वारिधि बोहित सरिस। जिनहि न सपनेहुँ खेद बरनत रघुबर बिसद जस। रघुबर यश साक्षात् वेदावतार है वद प्राचेतसादासीत् साक्षाद् रामायणात्मना। वेद की प्राप्ति न होने पर भी वेदावतार से काम निकल जाता है।

शुभम्।

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वसने
विमलज्ञानसम्पादनो नाम पञ्चम सोपान।

श्रीराम

श्रीगणेशाय नमः । श्रीगुरवे नमः

श्रीरामचरितमानस

लंकाकाण्ड : षष्ठ सोपान

सटीक

मङ्गलाचरण

दो. लव निमेष परवानु जुग, बरष कल्प सर चंड ।
भजसि न मन तेहि राम कहुँ, काल जासु कोदंड ॥

अर्थ : हे मन ! तू उस राम को क्यो नही भजता जिसका धनुष काल है और लव निमेष परमाणु युग वर्ष और कल्प जिसके तीखे भयानक बाण हैं ।

व्याख्या : काल के सबसे छोटे अश को परमाणु कहते हैं । कमल के पत्ते को सूई से छेदने मे जो समय लगता है लव कहलाता है और ये लवो का एक निमेष होता है । ये ही काल के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवयव हैं । सत्य त्रेता आदि युग हैं । प्रभव आदि वर्ष हैं । ब्राह्मादि कल्प हैं । ये काल के बडे बड़े विभाग है । इन्ही से आयु की इयत्ता नापी जाती है । प्राणी की क्षुद्रता और महत्ता के तारतम्यानुसार उनकी आयु की इयत्ता का भी तारतम्य है । कितने जीव इतने क्षुद्र हैं कि उनकी आयु की इयत्ता का नाप परमाणु से होता है । किसी का लव से होता है । किसी का निमेष से होता है । देवता आदि ऐसे महान् जीव है कि उनकी आयु की इयत्ता युग से नापी जाती है । जैसे इन्द्र की आयु लगभग बहत्तर चतुर्युगी है । मनुष्यो की आयु की इयत्ता वर्ष से नापी जाती है । ब्रह्मदेव की आयु की इयत्ता कल्प से नापी जाती है ।

मनुष्य का एक वर्ष देवताओ का एक दिन होता है । इस हिसाब से देवताओ के हजार वर्ष की एक चतुर्युगी होता है । ४०० वर्ष का सत्ययुग, ३०० वर्ष का त्रेता, २०० वर्ष का द्वापर और १०० वर्ष का कलियुग होता है । १००० चतुर्युगी का एक कल्प होता है ।

ये ही खण्ड काल रामजी के अमोघ बाण हैं । इनमे कोई बच नही सकता । जो उत्पन्न हुआ है वह एक न एक दिन अवश्य मरेगा । ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब

अति सूक्ष्म जीव तक खण्ड काल के वशीभूत हैं। यथा अग जग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जगु काल कलेवा।

खण्ड काल से अतिरिक्त एक अखण्ड दण्डायमान काल है जो इन खण्ड कालो का प्रेरक है। वह रामजी के हाथ का धनुप है। गोस्वामीजी अपने मनको समझाते हैं कि तू ऐसे समर्थ राम को क्यो नही भजता। जिसकी कृपा से ही काल के अधिकार का अतिक्रमण हो सकता है। जब तक काल का अधिकार बना है तब तक ससार से छुट्टी नही।

इस काण्ड को श्री गोस्वामीजी ने दोहे से ही प्रारम्भ किया। श्री गोस्वामीजी मे यह विचित्रता है कि ये महात्मा किसी नियम को निभने नही देते। अत श्लोक से प्रारम्भ करने के नियम को लङ्काकाण्ड मे निभने नही दिया। हिन्दी मे मङ्गलाचरण पहले किया और उसके पीछे सस्कृत म मङ्गलाचरण किया। आरण्य सुन्दर और उत्तर इन तीन काण्डो मे हिन्दी म मङ्गलाचरण ही नही है। बाल अयोध्या और किष्किन्धा इन तीन काण्डो म सस्कृत म मङ्गलाचरण पहिले और हिन्दी मे पीछे से मङ्गलाचरण किया। और भी बहुत से स्थल दिखाये जा सकते हैं जिनसे यही सिद्ध होता है कि कवि जानबूझकर क्रम नही निभने देते।

दूसरी बात यह है कि लङ्काकाण्ड की कथा म राम के न भजनेवालो को दण्ड मिलता है। यथा काहुहि लात चपेटन्हि केहू। भजेहु न रामहि सो फल लहू। अत गोस्वामीजी मङ्गलाचरण करने के पहिल ही अपने मनको रामभजन के लिए समझा रहे हैं। प्रबोध दे रहे हैं कि कही दण्डभागी न हो जाय और प्रबोध मातृभाषा मे ही ठीक बनता है। यथा भाषा बद्ध करब मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई।

श्लो रामं[1] कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं
योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारं।
मायातीतं सुरेशं खलबधनिरतं ब्रह्मवृन्दैकदेवं
वंदे कंदावदातं सरसिजनयनं देवमुर्वीशरूपं ॥१॥

अर्थ कामारि से सेवित ससार के भय को हरण करनेवाल कालरूपी मतवाले हाथी के लिए सिंह योगेश्वर ज्ञान से प्राप्य गुणो के भण्डार अजित निर्गुण निर्विकार माया से परे देवताओ के स्वामी दुष्टो के वध मे लगे हुए ब्राह्मण समूह के एकमात्र देवता मेघ के समान सुन्दर कमल से नेत्रवाल पृथ्वीपति रूप देवता राम की मैं वन्दना करता हूँ।

व्याख्या: यहाँ राम के सोलह विशेषण हुए हैं। भाव यह कि षोडशकल पुरुष हैं। पूर्णावतार हैं। काम से बलवान् हैं। रावणादिक ने सब देवताओं को वश

१, यह स्रग्धरा छंद है। इसमे २१ अक्षरो का एक पाद होता है। इसमे एक मगण एक रगण एक भगण एक नगण और तीन यगण होते हैं।

कर रखा था। पर वह भी काम का दासानुदास था। उस काम के भी नाश करनेवाले भगवान् रुद्र भी जिसकी सेवा करते हैं उससे बडा और कौन हो सकता है। ससार का भय जन्म मरण जिसका लक्षण है जो किसी का छुडाया नही छूटता। यदि राम छुडावें तभी छूटे। यथा :

साधक सिद्ध विमुक्त उदासी। कवि कोविद कृतज्ञ सन्यासी॥
जोगी सूर सुतापस ग्यानी। धर्म निरत पडित बिग्यानी॥
तरहिं न बिनु सेए मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी॥

उसके हरण करनेवाले हैं। काल रूपी मतवाल हाथी के लिए सिह हैं। यथा

जाके डर अति काल डराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥

रामजी तो सच्चिदानन्द दिनेश है तब उनमे हरणादि क्रिया तथा सिहादि के गुणो का होना कैसे बनेगा ? इसके उत्तर मे कहते हैं कि वे योगीन्द्र हैं। भगद्गीता म कहते हे मया ततमिद सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना। मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाह तेष्ववस्थित। न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्। मेरी अव्यक्त मूर्ति से यह सब ससार व्याप्त है। ये सब भूत मेरे मे हैं। मैं उनमे नही हूँ। फिर भी ये भूत मेरे म नही हैं हे अर्जुन ! मेरे ऐश्वर योग को देख। अर्थात् महायोगेश्वर मे सब कुछ सम्भव है। वे प्रभु ज्ञान से पाये जा सकते हैं। यथा वेदान्ते सुप्रतिष्ठाऽह वेदान्त समुपाश्रय। मुक्तिकोपनिषद् मे स्वय भगवान् ने अञ्जनीनन्दन से कहा कि हे हनुमान्जी ! मैं वेदान्त म सुप्रतिष्ठित हूँ। तुम वेदान्त का समाश्रयण करो। श्री गोस्वामीजी स्वय कहते हैं वेदान्तवेद्य विभुम्। श्रीरामजी निर्गुण होने पर भी गुणनिधि हैं। क्योकि सर्वाधिष्ठान हैं। निरतिशय उत्कर्ष होने से अजित हैं। यथा जीति को सकै अजय रघुराई। एकरस होने से निर्विकार हैं। क्योकि माया से परे निर्माय हैं। यथा रबि सनमुख तम कबहुँ कि जाही। सुरेश कहकर देवो सम्पत् वालो का रक्षक कहा खलबधनिरत कहकर अवतार कहा। तथा हम छत्री मृगया बन करही। तुमसे खल मृग खोजत फिरही। ब्रह्मवृन्देकदेव कहकर सूर्यरूप कहा क्योकि कुर्यादन्य नवा कुर्यान् मैत्रो ब्राह्मण उच्यते। और कुछ करे या न करे सूर्यभक्त को ब्राह्मण कहते हैं। बृहत्पाराशर मे श्रीरामचन्द्र को सूर्य का और श्रीकृष्ण को चन्द्र का अवतार कहा है। कन्दावदात कहकर नीलनीरद वर्ण कहा सरसिज नयन कहकर शोकविमोचन कहा। यथा

मामवलोकय पकजलोचन। कृपा बिलोकनि सोक बिमोचन॥

और देवमुर्वीशरूप कहकर रामवतार की वन्दना कर रहे हैं।

इस श्लोक द्वारा पूरे लङ्काकाण्ड की कथाओ के प्रतीक भी दे दिये। कामारि सेव्यो यस्य स कामारि। बहुव्रीहिसमास से अर्थ निकलेगा कि कामारि सेव्य हैं जिसके। इस भाँति रामजी के द्वारा रामेश्वर की स्थापना द्योतित की। भवभयहरण से सेतुबन्ध लक्षित किया। यथा मम कृत सेतु जे दरसन करही। सो बिनु श्रम भवसागर तरही। कालमत्तेभसिह आदि आठ विशेषण कहकर मन्दोदरी का समझाना

इङ्गित किया। यथा : अति बल मधुकैटभ जेहि मारे। महाबीर दितिसुत संहारे। जेहि बल बाँधि सहसभुज मारा। सोइ अवतरेउ हरन महिभारा। तासु बिरोध न कीजिअ नाथा। काल कर्म जिव जाके हाथा। इससे काल का भी नियन्ता कहा : तासु भजन कीजिअ तहँ भरता। जो करता पालक संहरता। इससे योगीन्द्र कहा : सोइ रघुबीर प्रनत अनुरागी। भजहु नाथ ममता सब त्यागी। इससे ज्ञानगम्य कहा। मुनिवर जतन करहिं जेहि लागी। भूप राजु तजि होहिं बिरागी। सोइ कोसलाधीस रघुराया। आयेउ करन तोहि पर दाया। इससे गुणनिधि कहा। पिय तुम ताहि जितव संग्रामा। जाके दूर केर यह कामा। इससे अजित कहा। तेहि कहँ पिय पुनि पुनि नर कहहू। मुधा मान ममता मद बहहू। इससे निर्गुण निर्विकार तथा मायातीत कहा। सुरेश और खलवधनिरत इन दो विशेषणों से देवताओं की रक्षा के लिए रावणादि निशाचरों का वध द्योतित किया। यथा : जब जब नाथ सुरन्ह दुख पायो। नाना तनु धरि तुम्हहिं नसायो। ब्रह्मवृंदैकदेव कहकर ब्रह्मादिक कृत स्तुति लक्षित की। कन्दावदात तथा सरजिसनयन कहकर श्रीरामजी की समराङ्गण की शोभा द्योतित की। सिर जटा मुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजही। जनु नीलगिरि पर तड़ित पटल समेत उड़गन भ्राजही। कृपादृष्टि करि वृष्टि प्रभु अभय किये सुरवृन्द। भालु कीस सब हरखे जय सुखधाम मुकुंद। देशमुर्वीशरूपम् कहकर श्रीरामजी का अपने राज्य पर लौटना दिखलाया। यथा : मन महुँ विप्र चरन सिर नाये। उत्तर दिसिहि बिमान चलाये।

श्लो. [1]शंखेन्द्वाभमतीवसुन्दरतनुं शार्दूलचर्माम्बरं
कालव्यालकरालभूषणधरं गंगाशशांकप्रियं।
काशीशं कलिकल्मषौघशमनं कल्याणकल्पद्रुमं
नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं कन्दर्पहं शंकरं ॥२॥

अर्थ : शङ्ख तथा चन्द्रमा के समान आभायुक्त अत्यन्त सुन्दर शरीरवाले सिंह के चर्म का कपड़ा पहने हुए कालसर्प का भयानक गहना पहने हुए गङ्गा और चन्द्रमा से प्रीति रखनेवाले काशीपति कलियुग के पापों के समूह को नष्ट करनेवाले कल्याण के कल्पवृक्ष पार्वती के पति गुण के निधान काम के शत्रु पूज्य शङ्करजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : शङ्ख से श्वेत रङ्ग तथा कठोरता कहा। इन्दु से चमक तथा आह्लादकत्व कहा। श्याम रङ्ग में अतीव सुन्दर रामजी और श्वेत रङ्ग में अतीव सुन्दर शङ्करजी हैं। शार्दूलचर्माम्बर से क्रोध का जय कहा। कालव्यालकराल-भूषणधर से सर्वाभिभावक कहा। गङ्गाशशाङ्कप्रिय से पापताप का नाशक कहा। काशीश कहने से मोक्षदायक कहा। कलिकल्मषौघशमन कहकर काल के प्रभाव

---

१. यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

का मिटानेवाला कहा। कल्याणकल्पद्रुम कहकर सर्वाभीष्टप्रद कहा। ईड्य से जगद्वन्द्य और गिरिजापति से मायापति द्योतित किया। गुणनिधि कहकर भजनीय होना कहा। काम का शत्रु कहकर भगवच्चरणारविन्दो मे अगाध प्रेम दिखलाया अथवा अमोघ सामर्थ्य सूचित किया। ऐसे गुणवाले महादेव को श्री ग्रन्थकार प्रणाम करते हैं।

सुन्दरकाण्ड मे भगवान् रुद्र हनुमान्‌जी के रूप से सेवक बने। अत शिवजी की वन्दना रामजी की वन्दना के बाद की गयी।

श्लो [1]यो ददाति सता शम्भु कैवल्यमपि दुर्लभम्।
खलाना दण्डकृद्योऽसौ शङ्कर श तनोतु माम्॥

अर्थ जो शम्भु भलो को दुर्लभ कैवल्य भी दे देते है और जो दुष्टो को दण्ड देनेवाले हैं ऐसे शङ्कर मेरा कल्याण करें।

व्याख्या अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। सत पुराण निगम आगम बद। जिसके प्रसाद से सज्जनो को ऐसा दुर्लभ पद प्राप्त होता है। यथा जोग कोटि करि जो गति हरि सो मुनि मॉगत सकुचाही। वेद बिदित तेहि पद पुरारिपुर कीट पतग समाँही। वही शिवजी दुष्टो को दण्ड देनेवाले हैं। यथा जौं नहिं दड करौ खल तोरा। भ्रष्ट होइ श्रुति मारग मोरा। श्री गोस्वामीजी कहते हैं कि मैं तो साधु और खल दोनो की वन्दना करनेवाला हूँ। यथा वन्दौं सत असज्जन चरना। न साधु मे ही मेरी गिनती है न खल मे ही। मैं तो उपेक्षणीय हो गया। अत प्रार्थना करता हूँ कि आपका नाम शङ्कर है। इस बात पर ध्यान रखते हुए मेरा कल्याण कीजिये

६९ सेतुबन्ध प्रसग

सो सिधु बचन सुनि राम, सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ।
अब बिलबु केहि काम[2], करहु सेतु उतरै कटकु॥
सुनहु भानुकुलकेतु, जामवत कर जोरि कह।
नाथ नाम तव सेतु, नर चढि भवसागर तरहिं॥

अर्थ समुद्र के वचन सुनकर प्रभु रामजी ने मन्त्री को बुलाकर ऐसा कहा कि अब देर का क्या काम है। सेतु बनाओ जिसमे सेना पार उतरे। जाम्बवान ने

---

१ यह अनुष्टुप् छन्द है।

२ हनुमान्‌जी ने सीताजी से कहा था कि जौ रघुबीर होत सुधि पाई। करते नहि बिलम्ब रघुराई। सो जब से सीताजी की सुधि मिली है। अत कहते हैं कि अब बिलम्ब केहि काम।

हाथ जोडकर कहा कि हे सूर्यकुल की पताका रूपी रामजी सुनिये। आपका नाम ही सेतु है। जिस पर चढकर मनुष्य भवसागर पार होता है।

व्याख्या सिन्धुवचन। यथा एहि विधि नाथ पयोधि बँधाइअ। जेहि यह सुजस लोक तिहुँ गाइअ। इसे सुनकर रामजी ने मन्त्रियो जाम्बवान हनुमान् आदि को बुलाकर कहा। कहना नही होगा कि रामजी के मन्त्री बन्दर भालु थे। यथा उपल कीन्ह जल यान जेहि, सचिव सुमति कपि भालु। सीताजी का पता लग जाने पर सरकार को विलम्ब सह्य नही है। पहिले सुग्रीवजी से कहा था अब विलम्ब केहि कारन कीजे। तुरत कपिन्ह कहँ आयसु दीजे। और अब समुद्र के चले जाने के बाद मन्त्रियो से कहते हैं कि अब विलम्ब किसलिए हो रहा है। भाव यह है कि किष्किन्धा से धावा मारती हुई वानरी सेना समुद्र के किनारे तक चली आई और समुद्र के उतरने का कोई साधन न होने से सेना को रुक जाना पडा। तब से यही रुकी पडी है। अब समुद्र मे सेतुबन्ध का उपाय बतला दिया। अत उपाय को कार्य मे परिणत करना चाहिए। वानरी सेना सेतु से ही पार जा सकती है।

उत्साह बढाते हुए वृद्ध मन्त्री जाम्बवानजी ने कहा कि आपका नामरूपी सेतु तो बँधा बँधाया है जिसपर चढकर मनुष्य भवसागर के पार हो जाते हैं। उस पुल के सामने नील क्या पुल बाँधेंगे। फिर भी सरकार की आज्ञा है तो पुल बांधा जायगा। देर करने का यही अभिप्राय था कि कदाचित् उसी पुल से काम लिया जाय।

यह लघु जलधि तरत कति बारा। अस सुनि पुनि कह पवनकुमारा॥
प्रभु प्रताप बडवानल भारी। सोखेउ प्रथम पयोनिधि बारी॥१॥

अर्थ इस छोटे से समुद्र को पार करने म क्या देर लगेगी। ऐसा सुनकर फिर हनुमान्‌जी ने कहा कि प्रभुप्रताप रूपी भारी बडवानल ने पहिले समुद्र का पानी सोख लिया था।

व्याख्या क्षार समुद्र सातो समुद्रो से छोटा है और भवसागर मे ऐसे न जाने कितने समुद्र हैं। यथा अगनित सरित सिन्धु महि कानन। भवसागर के लिए भले ही जहाज या पुल की आवश्यकता पडे परन्तु इस समुद्र के तरने म क्या देरी है। यह तो बिना पुल के भी तरा जा सकता है। बेफिक्री के कारण विलम्ब हुआ। सरकारी काम न रुकेगा।

जब समुद्र के आ जाने से सेना को रुकना पडा था उस समय सरकार ने सुग्रीव और विभीषण केवल दो से प्रश्न किया था। यथा सुनु कपीश लङ्कापति वीरा। केहि विधि तरिअ जलधि गभीरा। यहाँ जाम्बवान और हनुमान्‌जी से प्रश्न हो रहा है। सो जाम्बवानजी के उत्तर दे देने पर पवनकुमार हनुमान्‌जी बोले। हनुमान्‌जी का वेग प्रख्यात है। मारुतनदनमारुत को मनको खगराज को वेग लजायो। गोष्पदीकृतवारीश मशकीकृतराक्षस। इन्हे समुद्र आँसू का जल मालूम

पड़ता है। बोले कि यह बडवानल तो कब से समुद्र मे पडा है। पर उसका कुछ भी बिगाड़ न सका। पर भारी बडवानल सरकार का प्रताप है। पहिले समुद्र गम्भीर था। यथा : केहि विधि तरिअ जलधि गभीरा। उसे तो आपके प्रताप ने सोख लिया। समुद्रजी भी कह गये कि प्रभु प्रताप मैं जाव सुखाई। अब जो समुद्र मे पानी है सो शत्रुओं के स्त्रियो की आँसू की धारा का जल है।

तव रिपु नारि रुदन जल धारा। भरेउ बहोरि भयेउ तेहि खारा ॥
सुनि अति उक्ति पवनसुत केरी। हरषे कपि रघुपति तन हेरी ॥२॥

अर्थ : आपके शत्रुओ की स्त्रियो के रोने से जो जल की धारा बही उसीसे यह समुद्र भर गया और उसी कारण से खारा हो गया। हनुमान्जी की अत्युक्ति सुनकर बन्दर लोग रघुपति की ओर देखकर हर्षित हो गये।

व्याख्या : प्रमाण यह है कि यह समुद्र खारा होता है आँसू भी खारा होता है। आँसू पर कवियो ने जल प्रलय तक का वर्णन किया है। यथा : अहो पथिक कहियो तुरत गिरधारी सन टेरि। दृग झरि लाई राधिका अब बूडत वृज फेरि। गोपिन के अँसुआन के धार पनारे बहे बहि ह्वै गये नारे। नारे ते नद केते भये नद ते नदियाँ भईं काटि करारे। वेगि चलो मिलिये जदुनन्दन नेक सुनो यह बैन हमारे। वे नद चाहत सिन्धु भयो अरु सिन्धु ते ह्वै है जलाहल सारे।

सो ऐसा अद्भुत वर्णन रोचकता के लिए है। इसे अत्यन्तातिशयोक्ति अलङ्कार कहते हैं। यहाँ रावण वध से पहिले ही स्त्री रुदन के आँसू से समुद्र का भर उठना अत्यन्तातिशयोक्ति है। अलङ्कार की कथा कहकर यदि कोई उसे इतिहास की भाँति साधु सिद्ध करने का प्रयत्न करे तो यह उसकी स्वादु पराङ्मुखता है। यथा : आनन्दनिष्यन्दनरूपकेषु व्युत्पत्तिमात्र फलमल्पबुद्धेः। योऽपीतिहासादिवदाह साधु तस्मै नम स्वादुपराङ्मुखाय। सुजान शिरोमणि को प्रसन्न करने के लिए भगवान् मारुति ने अत्यन्तातिशयोक्ति से जिसके प्रति अत्युक्ति की गयी उसे देखकर कपिगण हर्षे। कपियो को भी अत्युक्ति का आनन्द मिला। यही काव्य का चमत्कार है।

जामवंत बोले दोउ भाई। नल नीलहि सब कथा सुनाई ॥
राम प्रताप सुमिरि मन माँही। करहु सेतु प्रयास कछु नाँही ॥३॥

अर्थ : जाम्बवान ने नल नील दोनो भाइयो को बुलाकर सारी कथा सुनाई। कहा कि रामजी के प्रताप का मन मे स्मरण करके सेतु बनाओ कुछ परिश्रम नही होगा।

व्याख्या . सरकार से विलम्ब का कारण कहकर अब आज्ञा पालन करते है। समुद्र से बातचीत के समय केवल मन्त्रिमण्डल वहाँ था। नलनील केवल सेनापति होने के कारण सेना मे थे। उन्हे ये सब बातें नही मालूम थी। अत जाम्बवानजी ने उन्हे बुलाकर सब इतिवृत्ति सुनाया कि लड़कपन मे तुम दोनो भाइयो को ऋषि

का आशीर्वाद मिला है। तुम्हारे फेंके हुए सिल लोढा पथरी आदि जल मे नही डूबती। अब राम प्रताप से तुम्हारे छूए हुए बडे बडे पर्वत तरेगे। समुद्र भी यथाशक्ति तुम लोगो की सहायता करेगा। रामजी का प्रताप सेतु बाँधेगा। तुम निमित्त मात्र हो जाओ। तुम लोगो को यश मिलना है। परिश्रम कुछ भी न पडेगा। सरकार का प्रताप काम करेगा।

बोलि लिए कपि निकर बहोरी। सकल सुनहु बिनती कछु मोरी ॥
राम चरन पकज उर धरहू। कौतुक एक भालु कपि करहू ॥४॥

अर्थ : फिर उन्होने वानरो के समूह को बुला लिया और कहा कि सब लोग मेरी थोडी सी बिनती सुनो। रामजी के चरण कमल को हृदय मे धारण कर सब भालू और बन्दर एक खेल करो।

व्याख्या : कारीगर ठीक करके सामग्री सञ्चय का उपाय कर रहे हैं। समस्त वानरी सेना बुलायी गयी। आज्ञा नही देते विनती करते हैं। सिपाही का काम बोझा ढोना नही है और इस समय इनसे बोझा ढोने का ही काम लिया जावेगा इसलिए विनती करते हैं। युद्ध मे भेजने के समय बिनती नही करेंगे। यथा प्रभु प्रताप सब कहि समुझाये। सुनि कपि सिंहनाद करि धाए।

सेनापति स्थपति हो गये। सुभट भारवाही हो गये। विटप गिरि मसाला हो गया। इसलिए जाम्बवानजी कहते हैं कि अब करने योग्य कार्य इतना ही रह गया कि रामचरण को हृदय मे धरो। उसके हृदय मे धारण करने से वक्ष्यमाण कार्य कौतुक हो जावेगा और कौतुक मे आलस्य को स्थान नही है। यथा तौ कौतुकिअन्ह आलस नाही।

धावहु मरकट बिकट बरूथा। आनहु बिटप गिरिन्ह के जूथा ॥
सुनि कपि भालु चले करि हूहा। जय रघुबीर प्रताप समूहा ॥५॥

अर्थ हे मरकट बिकट वरूथ! तुम लोग दौड जाओ। वृक्षो और पर्वतो का समूह उठा लाओ। सुनकर बन्दर भालू हुहा करते चले और बोले कि रघुबीर के प्रताप समूह की जय हो।

व्याख्या : जाम्बवानजी ने कहा कि तुम लोग विकट वरूथ हो। प्राण को भी गिननेवाले नही हो। तुम्हे एक खेल बतलाता हूँ। तुम लोग दौड जाओ और पर्वत या वृक्ष जो जिस योग्य हो उठा लाओ। जाने के समय मे ही दौडना कहते हैं। लाने के समय दौडना नही कहते। क्योकि बोझा भारी रहेगा।

कहा कि कौतुक एक भालु कपि करहू सो भालु कपि ने कौतुक ही माना। हूहा करते बडे उमग से चले। पर्वत लाकर समुद्र पाटना कठिन नही मालूम पडा। अत: कवि कहता है कि उत्कर्ष राम प्रताप म है अथवा राम प्रताप के भरोसे से राम प्रताप की जय बोलते चले।

दो. अति उतंग गिरिपादप, लीलहि लेहि उठाइ।
आन देहि नल नीलहि, रचहिं ते सेतु बनाइ ॥१॥

अर्थ : अत्यन्त ऊँचे ऊँचे पर्वत और वृक्ष बन्दर भालू खेल मे ही उठा लेते थे। लाकर नल नील को देते थे और वे रचकर सेतु बनाते थे।

व्याख्या : रामचरण के हृदय मे ध्यान रखने का साफल्य दिखाते हैं कि बन्दर भालुओ को बोझा मालूम ही नही पडता। इतने बन्दर ला ला कर देनेवाले हैं पर लेनेवाले केवल दो नील और नल। लाकर कही ढेर नही लगाया जाता। हाथो हाथ काम हो रहा है और वे कारीगरी के साथ सेतु बना रहे हैं। लहरो द्वारा यथाशक्ति समुद्र सहायता भी कर रहे हैं। गारे की आवश्यकता नही है। जहाँ के तहाँ पर्वत दृढ़ होते चले जा रहे हैं। श्रीरामनाम एव श्रीरामप्रताप ही गारा मसाला हुआ।

सैल बिसाल आनि कपि देही। कंदुक इव नल नील ते लेही ॥
देखि सेतु अति सुदर रचना। बिहँसि कृपानिधि बोले बचना ॥१॥

अर्थ : वानर बडे बडे पहाड़ लाकर देते थे और नल नील उन्हे गेंद की भाँति लेते थे। सेतु की अति सुन्दर रचना देखकर कृपासिन्धु रामजी हँस कर बोले।

व्याख्या : अति उतग पर्वतो का उठा लाना कहा। अब नल नील का लेना कहते हैं। उन्हे भी प्रयास नही है। बन्दर पर्वतो को नल नील तक पहुँचाने के लिए उछाल देते हैं और वे उन्हे गेंद की भाँति लोक लेते है। पाँच दिनो तक यही क्रम चलता रहा। पहले दिन चौदह योजन। दूसरे दिन बीस योजन। तीसरे दिन इक्कीस योजन। चौथे दिन बाईस योजन और पाँचवें दिन तेईस योजन पुल बँधकर तैयार हो गया।

रामजी ने देखा कि सेतु की रचना बडी सुन्दर हुई है। केवल काम चलाने की दृष्टि से नही बना है। सो हँस पडे कि हमारी वानरी सेना सेतु रचना मे भी बडी कुशल है। कृपानिधि हैं। इन्ही की कृपा से सब काम होता है और स्वय उसे भक्त का किया हुआ मानकर बडे प्रसन्न भी होते हैं। पांच ही दिन मे सौ योजन सेतुबन्ध होना और फिर भी रचना का सुन्दर होना अनाखी बात है। अब सेतुबन्ध को सनाथ करने के लिए प्रमाण युक्त वचन बोले।

परमरम्य उत्तम येह धरनी। महिमा अमित जाइ नहि बरनी ॥
करिहौं इहाँ संभु थापना। मोरें हृदय परम कलपना ॥२॥

अर्थ . यह भूमि अत्यन्त रमणीय और उत्तम है। इसकी अपार महिमा कही नही जा सकती। मै यहाँ शिवजी की स्थापना करूँगा। मेरे हृदय मे यह एक बड़ी भावना है।

व्याख्या : यह भूमि कैलास की भाँति परमरम्य है। यथा : परमरम्य गिरवर कैलासू। सदा जहाँ सिव उमा निवासू। अत शिव उमा निवास योग्य है। पर्वतो मे उत्तम कैलास और स्थलो मे उत्तम यह धरणी। कैलास की भी अमित महिमा अवर्णनीय है। यथा : सिद्ध तपोधन योगिजन सुर किन्नर मुनिवृंद। बसहिं तहाँ सुकृती सकल सेवहिं सिव सुखकंद। हरि हर विमुख धर्म रति नाही। ते नर तहँ सपनेहुँ नहिं जाही। इस धरणी की भी अमित महिमा अवर्णनीय है। यथा : मम कृत सेतु जो दरसन करिही। सो बिनु श्रम भवसागर तरिही। समुद्र पाटकर सेतु बँधा। इसलिए धरणी कहा।

रामजी कहते हैं कि शकर की स्थापना का मेरे हृदय मे सुदृढ विचार है। सो इस परमरम्य उत्तम धरणी मे स्थापन करूँगा।

सुनि कपीस बहु दूत पठाए। मुनिवर सकल बोलि लै आए॥
लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा॥३॥

अर्थ : सुनकर राजा सुग्रीव ने बहुत से दूत भेजे जो सब श्रेष्ठ मुनियो को बुला लाये। लिङ्ग की स्थापना करके और विधिपूर्वक पूजन करके · रामजी ने कहा कि शिवजी के समान मुझे दूसरा कोई प्रिय नही है।

व्याख्या : श्रीरामजी ने इतना ही कहा कि : करिहौ इहाँ सम्भु स्थापना शेष कार्य कपिराज सुग्रीव का है। सुनते ही कपिराज ने बहुत से दूत भेजे। उस प्रान्त के सब मुनियो को बुलाने के लिए। स्थापनासम्बन्धी अन्य सामग्री सम्पादन के लिए। उसी समय की कथा है कि शिवलिङ्ग लाने के लिए हनुमान्‌जी काशी भेजे गये। वहाँ से लिङ्ग लेकर हनुमान्‌जी चले। पर भैरवनाथ ने उन्हे ऐसा करने से रोका। फलतः हनुमानजी और भैरवजी मे बड़ा सग्राम हो पडा। शिवजी के स्वय बीच मे पडने से युद्ध रुका। हनुमान्‌जी लिङ्ग लेकर चले पर वहाँ बहुत देरी हो जाने के कारण रामजी बालुका का लिङ्ग बनाकर स्थापन कर चुके थे। अत. उस लिङ्ग को वही पर हनुमान्‌जी ने स्थापित किया जो काशी विश्वनाथ कहलाते हैं। सब मुनि बुलाये गये जिसमे कोई विधि शेष न रह जाय। चारो वेद के सभी शाखावाले मुनि बुलाये गये।

लिङ्ग[1] स्थापन के अन्तर्गत ही उमा स्थापन भी है। क्योंकि जलधरी उमा का प्रतीक है। सावयव मूर्ति से लिंग का अधिक महत्त्व है। महाभारत के युद्ध मे *महानारायण अस्त्र* के निष्फल जाने पर जब अश्वत्थामा शास्त्र को दोष देते युद्ध

---

१ मूले ब्रह्मा तथा मध्ये विष्णुस्त्रिभुवनेश्वर.। रुद्रोपरि महादेव. प्रणवाख्य सदाशिव। लिङ्गवेदी महादेवी लिङ्ग साक्षान्महेश्वर। तयो सम्पूजनान्नित्य देवी देवश्च पूजितो। लि. पू।

अर्थ लिङ्ग के मूल मे ब्रह्माजी मध्य मे विष्णु उपरिभाग मे प्रणव नामवाले शङ्करजी स्थित हैं। लिङ्गवेदी महादेवी है लिङ्ग साक्षात् महेश्वर है। वेदी और लिङ्ग के पूजन से देवी और देवता का पूजन हो जाता है।

त्यागकर चले तब व्यासजी ने उन्हे समझाया कि तुम अर्जुन और श्रीकृष्ण जन्मजन्मान्तर के शिवोपासक हो। तुमने शिवजी की सावयव मूर्ति की पूजा की है और कृष्णार्जुन ने लिंग मूर्ति की पूजा की है। अतः तुम कृष्णार्जुन को छोड़कर और सबको जीत सकते हो। इनके सामने तुम्हारी कुछ नही चल सकती। विजय लिंगोपासक की ही होगी। स्थापना के बाद प्रथम पूजा बड़े समारोह और विधि से होती है। यह पूजा होने पर स्थापना की समाप्ति मानी जाती है। अतः स्थापना समाप्त होने पर श्रीरामजी ने जगत् के कल्याण के लिए उपदेश दिया कि शिवजी के समान मुझे कोई प्रिय नही है। यथा : कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरे। अस परतीति तजहु जनि भोरे। इतने प्रिय हैं कि उन्ही के हाथ भक्ति का भण्डार सौंप दिया है। यथा : औरो एक गुपुत मत सबहि कहउ कर जोरि। संकर भजन बिना नर भगति न पावै मोरि। तथा : सिव सेवा कर फल सुत सोई। अविरल भगति रामपद होई।

सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहिं न पावा॥
संकर विमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी॥४॥

अर्थ : शिवद्रोही है और मेरा भक्त कहलाता है ऐसा मनुष्य स्वप्न मे भी मुझे नही पाता। शिवविरोधी होकर जो मेरी भक्ति चाहता है वह नरक का अधिकारी मूढ थोड़ी बुद्धिवाला है।

व्याख्या : शिवद्रोही मेरा भक्त हो नही सकता भले ही वह अपने को मेरा भक्त कहा करे। मेरा भक्त कहलावे और मेरे परम प्रिय से वैर करे उसे मेरी प्राप्ति कैसे होगी। यहाँ पर श्रीकृष्ण गीतावली का एक पद जो कि गोपियो ने उद्धवजी से कहा है मनन करने योग्य है यथा :

कही है भली बात सबके मनमानी।
प्रिय सम प्रिय सनेह भाजन सखि, प्रीति रीति जग जानी॥
भूषन भूति गरल परिहरि के हरमूरति उर आनी।
मज्जन पान किये के सुरसरि कर्म नाश जल छानी॥
पूँछ सो प्रेम विरोध सीग सो यह विचार हित हानी।
कीजे कान्हकूबरी सो नित नेह करम मन बानी॥
तुलसी तजिअ कुचालि आलि सब सुधरै सत्रै नसानी।
आगे करि मधुकर मधुरा कहँ सोधिय सुदिन सपानी॥

शिव राम का अभेद दर्शन ही पूर्ण दर्शन है। परम स्नेहभाजन के विमुख होना मूढ मन्दमति का काम है यथा : सीता चरन चोच हति भागा। मूढ मदमति कारन कागा। इतना ही नही रामजी के परम स्नेह भाजन शिवजी का द्रोही रामभक्ति चाहता हुआ भी नरकगामी होता है।

दो. संकर प्रिय मम द्रोही, सिवद्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि, घोर नरक महुँ बास॥२॥

अर्थ : जो शिव के भक्त और मेरे द्रोही है और जो शिव के द्रोही और मेरे दास है वे नर कल्प भर घोर नरक मे निवास करते हैं।

व्याख्या : श्री रामजी कहते हैं कि वही गति उनकी भी है जिन्हे शकर प्रिय हैं और मुझसे द्रोह है वे भी शिवद्रोही मेरे दास की भाँति एक कल्प घोर नरक मे निवास करते हैं। इससे शिव राम मे भेददर्शी को अधोगति का होना ध्रुव बतलाया। उभयोरेका प्रकृति. प्रत्ययभेदात् पृथग्वद् भाति। कल्पयति कश्चन मूढ हरिहरभेद विनाशास्त्रम्। दोनो की प्रकृति एक है। प्रत्यय के भेद से अलग अलग मालूम पडते हैं। कोई मूढ ही हरिहर मे भेद की कल्पना शास्त्र के विरुद्ध किया करते हैं अथवा अपने विनाश का अस्त्र तैयार करते हैं।

ये नमस्यन्ति गोविन्द ते नमस्यन्ति शङ्करम्।
येऽर्चयन्ति हरिं भक्त्या तेऽर्चयन्ति वृषध्वजम्॥
ये द्विषन्ति विरूपाक्ष ते द्विषन्ति जनार्दनम्।
ये रुद्र नाभिजानन्ति ते न जानन्ति केशवम्॥
: रुद्रहृदयोपनिषदि।

ममैषा परमा मूर्तिर्नारायणसमाह्वया।
सर्वभूतात्मभूतस्था शान्ता चाक्षरसस्थिता॥
येऽन्यथा मा प्रपश्यन्ति लोके भेददृशो जना।
न ते मुक्ति प्रपश्यन्ति जायन्ते च पुन पुन॥ कूर्मपुराणे।

जो गोविन्द को नमस्कार करते हैं वे शकर को नमस्कार करते है। जो भक्ति से हरि की पूजा करते हैं वे वृषध्वज की पूजा करते है : रुद्रहृदय ईश्वरगीता मे कहा है कि यह जो नारायण नामवाली मूर्ति है वह मेरी परम मूर्ति है। सब भूतो के आत्मभूत होकर जो स्थित है शान्त है जिसे अक्षर कहते हैं जो भेद देखनेवाले हैं और मुझे अन्यथा देखते हैं उन्हे मुक्ति का दर्शन नही होता। वे बार बार जन्म लते हैं।

जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं॥
जो गगाजलु आनि चढाइहि। सो सायुज्य मुक्ति नर पाइहि॥१॥

अर्थ : जो लोग रामेश्वर का दर्शन करेंगे वे शरीर छोडकर मेरे लोक को जावेंगे और जो गङ्गाजल लाकर चढायेगा वह मनुष्य सायुज्यमुक्ति पावेगा।

व्याख्या अपने नाम से नामकरण करते हैं। प्रश्न उठा कि फिर रामेश्वर शब्द का क्या अर्थ होगा ? श्रीरामजी ने कहा सीधा सीधा षष्ठीसमास है रामस्य ईश्वर रामेश्वर। रामके स्वामी रामेश्वर है। लिङ्ग से शब्द हुआ कि यहाँ बहुव्रीहि समास है। राम ईश्वरो यस्य जिसके स्वामी राम हैं वह रामेश्वर हैं। मुनियो ने विचार किया कि दोनो वचन प्रमाण है। पर हम लोग क्या मानें ? सो यह निर्णय किया

कि यहाँ कर्मधारय समास है रामश्चासौ ईश्वरश्च रामेश्वरः जो राम हैं वही ईश्वर है।

नामकरण करने के बाद श्रीरामजी श्रीमुख से दर्शन की महामहिमा कहते हैं। एक बार चाक्षुष सम्बन्ध हो जाने से मनुष्य सालोक्य मुक्ति का अधिकारी हो जाता है अर्थात् साकेत लोक को प्राप्त होता है।

शिवजी को गङ्गा बड़ी प्रिय हैं। यथा : गंगाशशांकप्रियम्। सो जो गङ्गाजल लाकर चढ़ावेगा वह सायुज्यमुक्ति पावेगा। स्वयं शिवजी मे लीन हो जायगा। लाकर चढ़ाने का भाव यह कि दर्शनोपरान्त सकल्प करे कि मैं गङ्गाजल लाकर चढ़ाऊँगा। तब वहाँ से वाराणसी पुरी जावे और वहाँ से गङ्गाजल लाकर श्रीरामेश्वरजी को चढ़ावे और भार को समुद्र में डाल दे। इस विधान से गङ्गाजल चढ़ाने से सायुज्य मुक्ति होती है। तपस्या बड़ी है इसलिए सर्वोत्तम फल भी मिलता है।

होइ अकाम जो छलु तजि सेइहि। भगति मोर तेहि सकर देइहि॥
मम कृत सेतु जो दरसनु करिही। सो बिनु श्रम भव सागर तरिही॥२॥

अर्थ : जो निष्काम बुद्धि से छल छोड़कर सेवा करेगा उसे शिवजी मेरी भक्ति देंगे। मेरे किये हुए सेतु का जो दर्शन करेगा वह बिना परिश्रम के ही ससार सागर के पार हो जायगा।

व्याख्या : शिव सेवा कर फल सुत सोई। अविरल भगति राम पद होई। यहाँ शिवसेवा शब्द से कामनारहित और छलरहित होकर भजन करना इङ्गित किया। यथा : सिरभर जाउँ उचित अस मोरा। सबते सेवक धर्म कठोरा। सकाम सेवन करनेवाले को भक्ति नही मिलती। क्योंकि उसके हृदय मे अन्य कामना है। यथा : नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा। भक्ति प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे और छल से सेवन करनेवाले को तो भक्ति स्वप्न मे भी दुर्लभ है। क्योकि कपट छल छिद्र भगवान् को नापसन्द है। यथा : मोहि कपट छल छिद्र न भावा। शङ्कर भगवान् रामभक्ति के भण्डारी हैं। बिना इनकी कृपा रामभक्ति मिलती ही नही। यथा : औरउ एक गुपुत मत सबहि कहौ कर जोरि। संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि। रामेश्वर लिङ्ग साक्षात् प्रभु के कर कमल से स्थापित है। अतः इसकी सेवा से शीघ्र ही निश्चित फल की प्राप्ति होगी।

शङ्कर भगवान् के दर्शन और भजन की फलश्रुति कहकर अब सेतु के दर्शन का माहात्म्य कहते हैं कि इसके दर्शन से मनुष्य बिना परिश्रम के भवसागर पार हो जायगा। भाव यह कि नामरूपी सेतु तो भवसागर सन्तरण के लिए अनादि काल से बँधा है। यथा : नाथ नाम तव सेतु नर चढ़ि भवसागर तरहिं। परन्तु अब जो सेतु बँधा है उसमे विशेषता यह है कि इस पर चढ़कर पार करने के श्रम की

भी आवश्यकता नही है। केवल दर्शन से ही भवपार पहुँच जाता है। विश्वास अवश्य करे।

राम बचन सबके जिय भाए। मुनिवर निज निज आश्रम आए ॥
गिरिजा रघुपति कै यह रीती। सतत करहि प्रनत पर प्रीती ॥३॥

अर्थ रामजी के वचन सबके जी मे अच्छे लगे। श्रेष्ठ मुनि लोग अपने अपने आश्रमो मे आये। हे गिरिजे ! रघुपति की यह रीति है कि सदा प्रणत पर प्रीति करते हैं।

व्याख्या कर्मठ उपासक और ज्ञानी सभी का हित प्रभु के वचन मे निहित था। ज्ञानी की चाही हुई सायुज्य मुक्ति का भी इसमे उपाय कहा गया। भक्ति मिलने का भी रास्ता बतलाया गया और कर्मठ के लिए धाम की प्राप्ति अथवा ससार सागर तरण का भी सरल मार्ग दिखलाया गया। स्थापना का कार्य समाप्त हुआ। जिन जिन मुनिया को बुला लाये थे वे अपने आश्रमो पर आये। गये नही कहते क्योकि वे अपने अपने आश्रमो पर आये तो सही पर मन उनका भगवान् के चरणो मे ही रहा।

इस कथा के कहने म शिवजी को अपना महत्त्व कहना पडा। अपना महत्त्व स्वय कथन करना बडो लघुता है। अत शिवजी अपने श्रोता गिरजाजी से कहते हैं कि इसमे मेरा महत्त्व कुछ भी नही। रामजो को यह रीति है कि सदा प्रणत पर प्रीति करते हैं। मै प्रणत हूँ। इससे सदा मुझपर प्रीति करते हैं। परमरम्य उत्तम धरणी देखकर मेरी स्थापना की और अपने मुख से मेरी मूर्ति के दर्शन का महत्त्व कहा। अपने म और मुझमे अभेद प्रतिपादन किया। यह सब उनके प्रणतपालकता का उदाहरण है।

बाँधा सेतु नील नल नागर। राम कृपा जसु भयेउ उजागर ॥
बूडहि[1] आनहि बोरहि जेई। भए उपल बोहित सम तेई ॥४॥
महिमा यह न जलधि कै बरनी। पाहन गुन न कपिन्ह कै करनी ॥५॥

अर्थ चतुर नील नल ने राम की कृपा से सेतु बाँधा। उन्हे उज्ज्वल यश मिला। जो पत्थर स्वय डूबते हैं और दूसरे को भी ले बैठते हैं वे जहाज के सदृश स्वय तीर्ण होकर दूसरे के भी तारक हुए। यह न तो समुद्र की महिमा है न पत्थर के गुण हैं और न बन्दरो की करणी है।

---

१ यहाँ विभावना चतुर्थ अलकार है। हनुमन्नाटक मे ठीक इसी आशय का श्लोक है। यथा ये मज्जन्ति निमज्जन्ति च परास्ते प्रस्तरा दुस्तरे वार्धौ वीर तरन्ति वानरभटान् सन्तारयन्तेऽपि च। नैते ग्रावगुणा न वारिधिगुणा ना वानराणा गुणा श्रीमद्दाशरथ प्रतापमहिमारम्भ समुज्जृम्भते।

व्याख्या : सैल बिसाल आनि कपि देही। कंदुक इव नल नील सो लेही। यहाँ से नल नील का प्रसङ्ग छोड़ा था। अब कहते हैं कि नल नील ने रामकृपा से समुद्र मे सेतु बाँधा। उनका यश जगत् मे प्रकाशमान हो गया। रामकृपा यह कि दूसरो को भी ले डूबनेवाले पत्थर दूसरो के उद्धार के लिए जहाज हो गये। रामकृपा से वस्तु का स्वाभाविक गुण बदल गया। न समुद्र मे सेतु बाँधने मे सहायक होता है न पत्थर तरते हैं और न बन्दर शिल्पी होते हैं और यहाँ सब हुआ। इस पर गोस्वामीजी कहते हैं।

दो. श्रीरघुबीर प्रताप तें, सिंधु तरे पाखान।
ते मतिमद जे राम तजि, भजहि जाइ प्रभु आन ॥३॥

अर्थ : श्रीरघुवीर के प्रताप से पत्थर समुद्र मे तर गये। ऐसे स्वामी राम को छोडकर जो दूसरे प्रभु को भजते हैं वे मतिमन्द हैं।

व्याख्या : श्रीरामजी के प्रताप से पर्वत : पत्थर समुद्र तर गये। अर्थात् उस प्रताप मे असम्भव को सम्भव करने की शक्ति है। बुद्धिमान् का कर्त्तव्य है कि प्रतापी का भजन करे। असमर्थ के भजन से क्या लाभ है ? सो श्रीरामजी सा समर्थ प्रभु कोई नही है। यथा : जो चेतन कहँ जड करै जडहि करै चैतन्य। अस समर्थ रघुनायकहि भजहि जीव ते धन्य। अतः जो रामजी को छोडकर दूसरे प्रभु देव दनुज नर नाग मनुज को भजते हैं वे मतिमन्द हैं। यथा : देव दनुज नर नाग मनुज खग माया बिबस बिचारे। तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे। रामजी महामाया के पति हैं। उन्हे छोड़कर दूसरे के भजनेवाले नर पशु हैं। यथा अस प्रभु छाडि भजहि जे आना। ते नर पसु बिनु पूछ बिषाना। भजहि जाइ कहने का भाव यह कि रामजी को भजने के लिए कही जाना नही है। वे तो सबके हृदय मे विराजमान हैं। यथा : सबके उर अन्तर बसहु जानहु भाउ कुभाउ। दूसरे के भजने मे उनके पास जाना पडेगा।

बाँधि सेतु अति सुदृढ बनावा। देखि कृपानिधि के मन भावा॥
चली सेन कछु बरनि न जाई। गरजहि मरकट भट समुदाई ॥१॥

अर्थ : सेतु बाँधकर उसे खूब मजबूत बनाया। देखकर कृपानिधि रामजी को बहुत प्रिय लगा। सेना चली जिसका वर्णन नही किया जा सकता। योद्धा बन्दरो का समाज गर्जन कर रहा है।

व्याख्या . बड़ी भारी सेना को उस पर से जाना है इसलिए अत्यन्त दृढ बनाया। इधर शङ्कर की स्थापना हो रही थी उधर सेतु को बाँधने के बाद भी सब प्रकार से उसे दृढ कर रहे थे। सेना के पार जाने के समय पुल के टूटने का डर रहता है। सैनिको के एक साथ पादप्रक्षेप से ऐसा स्पन्दन होता है जिससे पुल टूट जाता है। अत: पुल पार करने के लिए सेना को सुव्यवस्थित रूप से चलने की आज्ञा दी जाती है।

सरकार कृपानिधि हैं। उन्ही की कृपा से कार्यसिद्धि होती है और वे सेवक का बडाई देने के लिए कार्यसिद्धि पर प्रसन्न होते हैं। इसीलिए सेतु बंधने पर जब प्रभु ने उसे देखा तब भी कवि ने कृपानिधि कहा था और जब सुदृढ किया गया तब भी उसको देखकर सन्तुष्ट होने पर कवि कृपानिधि ही विशेषण देते हैं। यथा देखि कृपानिधि के मन भावा।

बानर कटक उमा मैं देखा। सो मूरख जो करन चह लेखा। अत कवि कहते हैं कि सेन कछु बरनि न जाई। उधर समुद्र का गर्जन इधर सेना का गर्जन। वानरी सेना को बडा उत्साह है। अत गर्जन करती हुई सेतु पर से चली जा रही है। सेना भी समुद्र है।

सेतुबध ढिग चढि रघुराई। चितव कृपाल सिंधु बहुताई ॥
देखन कहुँ प्रभु करुना कदा। प्रगट भये सब जलचर वृदा ॥२॥

अर्थ सेतुबन्ध के पास चढकर रघुराई रामजी समुद्र का विस्तार देख रहे हैं। करुणा के मेघरूप रामजी के दर्शन के लिए जलचरो का समूह सब का सब जल के ऊपर आगया।

व्याख्या : सिन्धु का विस्तार बिना ऊँचे चढे दृष्टिगोचर नही होता। बेला से ही समुद्र ऊँचा होता चला जाता है। अत तट से उसके विस्तार का पता नही चलता। समुद्र दर्शन का आनन्द लेनेवाले किसी ऊँचे स्थल पर चढकर समुद्र का विस्तार देखते है। जहाँ से चढकर सरकार ने समुद्र का विस्तार देखा था उस स्थान को आज भी लोग राम झरोखा के नाम से अभिहित करते हैं। वस्तुत विस्तार देखने के व्याज से कृपालु रामजी को अपना दर्शन देकर जलचरो का सुखी करना इष्ट था। हृदय मे बडी करुणा है कि मेरे बाण सन्धान से बिचारे जलने लगे थे विकल हो गये थे।

जलचर वृन्द जल मे छिपे रहते हैं। कभी कभी साँस लने के लिए उछल कर फिर गोता लगा लेते हैं। सो सब प्रभु के दर्शन के लिए जल के ऊपर प्रकट हो गये। उन्हे प्रभु के दर्शन मे बडा आनन्द मिलता था। प्रभु की करुणा से उनके हृदय मे जल के बाहर आने की प्रेरणा हुई। इसीलिए करुणाकन्द विशेषण दिया। करुणा की वर्षा सब जलचरो पर हो रही है। खारे समुद्र मे रहनेवाल जलचर आज मीठे समुद्र श्रीराम का रस ल रहे हैं।

मकर नक्र नाना झख व्याला। सत जोजन तनु परम बिसाला ॥
ऐसेउ एक तिन्हहि जे खाही। एकन के डरतेपि डेराही ॥३॥

अर्थ अनेक प्रकार के मगर नाक मछली सर्प जिनके शरीर बडे विशाल सौ योजन तक के थे। कोई ऐसे विशाल भी थे जो उन्हे खा सकते थे और वे भी अपने से बडे के डर स डरते थे।

व्याख्या : हनुमन्नाटक मे कहा है : अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम शतयोजनविस्तरः। तिमिङ्गिलगिलोप्यस्ति तद्गिलोप्यस्ति राघवः। एक मछली ऐसी होती है जिसका विस्तार सौ योजन का होता है उसे तिमि कहते हैं। परन्तु उसे भी निगलनेवाली मछली होती है जिसे तिमिङ्गिल कहते हैं और जो मछली तिमिङ्गिल को निगल जाती है उसे राघव कहते है। इससे यह दिखलाया कि शरीरधारियो मे मछली सबसे बडी होती है जिसका पता भी लोगो को नही है। अथाह जल मे रहती है वे सब भी प्रकट हो गईं।

प्रभुहि बिलोकहिं टरहि न टारे। मन हरखित सब भये सुखारे॥
तिन्हकी ओट न देखिअ बारी। मगन भए हरि रूप निहारी॥४॥
चला कटकु प्रभु आयसु पाई। को कहि सक कपिदल बिपुलाई॥५॥

अर्थ : प्रभु को देखते हुए वे टालने से नही टलते थे। सब के मन हर्षित और सब सुखी हो गये। उनकी आड़ मे पानी नही दिखलायी पड़ता था। वे हरि का रूप देखकर मग्न हो गये। प्रभु की आज्ञा पाकर सेना चली। वानरी सेना के दल का कौन वर्णन कर सकता है। दोहावली ४०४ :

व्याख्या : जलचर एक दूसरे से भयभीत रहते हैं। एक दूसरे के भय से भागते फिरते है। यथा : सहवासी कांचो गिलहिं पुरजन पाक प्रवीन। कालछेप केहि मिलि करेंहि तुलसी खग मृग मीन। सो ये जलचर प्रभु को देखकर दर्शन मे ऐसे तल्लीन हो गये कि उनको सुधबुध न रह गयी। इस समय वे एक दूसरे के हटाये नही हटते। पहिले व्याकुल और दुःखी हो गये थे। यथा : मकर उरग झख गन अकुलाने। जरत जन्तु जलनिधि जब जाने। सो हर्षित और सुखारे हो गये। आज उन्हे जल के ऊपर रहने मे सुख मिल रहा है। सिन्धु मे मग्न न होकर रूपसुधा सिन्धु मे मग्न है। छोटे बडे सब जलचरो के बाहर आजाने से जल बिलकुल ढक गया। अति विचित्र दृश्य उपस्थित हो गया।

प्रभु सिन्धु का विस्तार देख रहे हैं। जल जन्तु प्रभु की रूप सुधामृत का आनन्द ले रहे हैं। सेना सेतु पर से पार चली जा रही है। चली सेन कछु बरनि न जाई से प्रसङ्ग छोड़ा था अब फिर वही से प्रसङ्ग उठाते हैं। यथा : चला कटक कछु बरनि न जाई। को कहि सक कपि दल बिपुलाई। भाव यह कि जब शिवजी ने कह दिया है कि : सो मूरख जो करन चह लेखा तब दूसरा कौन कह सकता है।

दो. सेतुबंध भई भीर अति, कपि नभ पंथ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि ऊपर, चढि चढि पारहि जाहिं॥४॥

अर्थ : सेतु बन्ध पर बड़ी भीड़ हुई। वानर आकाश मार्ग से उड़ रहे हैं। अन्य जलचरो के ऊपर चढ़ चढ़कर पार जा रहे हैं।

व्याख्या इतने विस्तृत सेतु पर भी सेना समाती नहीं है। अत दो रास्ते और बन गये एक आकाश मार्ग और दूसरा जलचर मय मार्ग। बन्दर ही तो ठहरे जलचरो के ऊपर कूदते हुए पार चले जा रहे हैं आकाश मार्ग से जानेवाले विहगमार्गी ज्ञानी सेतु पर जानेवाले उपासक और जलचर मय मार्ग से जानेवाले कर्मठ हैं।

अस कौतुक बिलोकि दोउ भाई। बिहँसि चले कृपाल रघुराई ॥
सेन सहित उतरे रघुबीरा। कहि न जाइ कपि जूथप भीरा ॥१॥

अर्थ · ऐसा कौतुक दोनो भाइयो ने देखा। कृपाल रघुराई हँसकर चल पडे। सेना के सहित रघुबीर रामजी उतरे। वानर यूथपो की भीड कही नही जा सकती।

व्याख्या . पहिले बन्दरो द्वारा सेतु की ऐसी रचना देखकर हँसे थे अब जलचर मय सेतु पर बन्दरों को जाते देखकर विहँस रहे हैं। अब स्वयं प्रभु का प्रयाण लिखते हैं। भाव यह कि प्रभु सेना के मध्य मे चल रहे हैं। कृपाल रघुराई कहने का भाव यह है कि सेना की रक्षा के लिए चले अथवा भक्तो पर कृपा करने के लिए चले।

इस भाँति शत योजन चले गये। समुद्र पार जाकर उतरे। भाव यह कि हनुमान्‌जी के कन्धे पर रामजी और अङ्गद के कन्धे पर लक्ष्मणजी थे। चारो ओर से वन्दरो के यूथप चारो ओर से घेरे हुए हैं। इस भाँति समुद्र पार जाकर उतरे। इन यूथपो की भीड अकथनीय है।

सिधु पार प्रभु डेरा कीन्हा। सकल कपिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा ॥
खाहु जाइ फल मूल सोहाए। सुनत भालु कपि जहँ तहँ धाए ॥२॥

अर्थ प्रभु ने समुद्र पार डेरा डाला और सब बानरो को आज्ञा दी कि जाकर अच्छे अच्छे फल और फूल खाओ। सुनते ही भालू और बन्दर जहाँ तहाँ दौड पडे।

व्याख्या · सौ योजन से सेतु पर बीच म कही डेरा नही डाला। धावा मारते चले ही गये। बीच मे मीठे जल तथा फल मूल के मिलने का योग नही था। अत डेरा डालना उचित भी नही था। वानरी सेना भी बिना खाये पीये सौ योजन बराबर चली गयी। अत डेरा देत ही प्रभु ने भालू बन्दरो को सुन्दर सुन्दर फल मूल खाने की आज्ञा दी। बन्दर भालू भी भूखे थे जहाँ तहाँ दौड पडे। हनुमान्‌जी उस वन की शोभा देख गये थे। यथा तहाँ जाइ देखी बन सोभा। गुंजत चचरीक मधु लोभा। नाना तरु फल फूल सोहाए। इसलिए आज्ञा हुई खाहु जाइ फल मूल सोहाए। आज्ञा मिलने की देर थी सब दौड पडे। फूल खाने की आज्ञा नही हुई। फूल के नष्ट होने से फल का आगम मारा जाता है।

सब तरु फरे राम हित लागी । रितु अरु कुरितु काल गति त्यागी ॥
खाहिं मधुर फल विटप हलावहिं । लंका सन्मुख सिखर चलावहिं ॥३॥

अर्थ : रामजी के प्रीत्यर्थ सब पेड फले । ऋतु और कुऋतु तथा कालगति का त्याग किया । बन्दर भालु : मीठे फल खाते हैं पेडो को झकझोरते हैं और लंका की ओर पर्वत शिखर फेंकते हैं ।

व्याख्या : कालगति के अनुकूल पेडो मे फल लगते है । आम मे पांच बरस पर फल लगता है । महुआ पचीस वर्ष मे फलता है । इमली तीस वर्ष म फलती है । सरसोई मे फल लगने मे महीनो लगते हैं । इसी भांति सब पेडो मे फल आने का काल है । इसी भांति सब पेडो मे फल आने का ऋतु है । दूसरे ऋतु उसके लिए कुऋतु है । जैसे आम के फलने का ऋतु ग्रीष्म तथा पावस है । शरद हेमन्तादि उसके लिए कुऋतु है । महुआ के फलने के अनुकूल ऋतु वसन्त है । पावस आदि उसके लिए कुऋतु है । सो रामजी के प्रीत्यर्थ सभी पेड फल उठे । ऋतु का कोई नियम न रह गया । इसी भांति छोटे बडे सभी पेडो मे फल लग गया ।

बन्दर भालु कच्चे पक्के फल का विचार नही करते । काट काटकर गिरा देते है । पेडो को तोड डालते हैं । पर वे ऐसा नही कर रहे है । मीठे फल खाते हैं और पेड को हिलाते हैं जिसमे पके पके फल टपक पडे । दूसरे भी लाभ उठावें । लंका के सम्मुख शिखर फेंकना एक प्रकार से ललकार है ।

जहँ कहुँ फिरत निसाचर पावहिं । घेरि सकल बहु नाँच नचावहिं ॥
दसनन्हि काटि नासिका काना । कहि प्रभु सुजसु देहिं तब जाना ॥४॥

अर्थ वे जहां कही घूमते फिरते राक्षसो को पाते हैं तो उन्हे घेरकर अनेक प्रकार का नाच नचाते है । उनके नाक कान दांत से काट लेते हैं और प्रभु का सुयश बोलवाकर तब उन्हे जाने देते हैं ।

व्याख्या निशाचर लोगो का निवास तो लंका मे है पर वन मे भी घूमने का उनका स्वभाव है । यथा व्याल कराल बिहंग वन घोरा । निसिचर निकर नारि नर चोरा । बन्दर लोग फल मूल के लिए वन मे घुसे तो कही कही उनको घूमते फिरते राक्षस भी हाथ लग गये तो सब मिलकर उसे घेर लेते है । बन्दर जानते हैं कि परवश पड जाने पर नाचना पडता है अत उस राक्षस को नचाते हैं । उसकी भलीभांति दुर्गति करते हैं । पास मे कोई हथियार तो है नही । अत दांत से ही उनके नाक कान काटकर रावण को चुनौती देते हैं । सूर्पणखा के नासिकाच्छेदन से लक्ष्मण की ओर से तो चुनौती दे दी गयी है अब सैनिको की ओर से चुनौती दी जा रही है । उससे राजा रामचन्द्र की जय इत्यादि रामजी के सुयशसूचक घोषणा कराकर तब जाने देते हैं जिसमे व जाकर वानरी सेना के आजाने का शुभ समाचार दें ।

मन्दोदरी का रावण को समझाना . दूसरी बार

जिनकर नासा कान निपाता । तिन्ह रावनहि कही सब बाता ॥
सुनत श्रवन बारिधि बंधाना । दसमुख बोलि उठा अकुलाना ॥५॥

अर्थ : जिनके नाक कान काटे गये उन्होने रावण से सब बातें कही। समुद्र का बांधा जाना सुनते ही दसो मुख से व्याकुल होकर बोल उठा।

व्याख्या ' रावण को दूतो से पता चला ' फरयादियो से पता चला कि समुद्र बँध गया और सेना इस पार चली आयी। प्रमाद की पराकाष्ठा है। जब से विभीषण गये हैं और शुकसारन की दुर्दशा देख चुके हैं तब से दूत रामदल के सन्निकट जाते हुए डरते हैं। रावण भी किसी को भेजकर छेडछाड नही करता। समझे बैठा है कि सेना इस पार कैसे आ सकती है। शत्रु सेना यदि किसी भाँति आ भी जाय तो आ जाने दो। सभा मे यही निश्चित हुआ है। यथा पूछेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू। जितेहु सुरासुर तब श्रम नाही। नर बानर केहि लेखे माही। तथा जो आवै मरकट कटकाई। जियहिं बिचारे निसिचर खाई।

रावण बडे स्वार्थी हैं। उन विचारो के नाक कान कटने से उन्हे व्याकुलता नही है सेतु के बँध जाने से व्याकुता है। जो इनका किया जन्म भर नही हुआ उसे शत्रु ने कई एक दिनो मे कैसे कर लिया ? शत्रु उपेक्षा करने योग्य नही है। वह असम्भव का सम्भव करनेवाला है। इसलिए व्याकुलता है। पहिले भी बहन के नाक कान कटने पर इन्हे व्याकुलता नही हुई। खरदूषण वध सुनने पर शरीर मे आग लगी। यथा ' खरदूषन त्रिसिरा कर घाता। सुनि दससीस जरे सब गाता।

दो बाँध्यो बननिधि नीर निधि, जलधि सिंधु बारीस।
सत्य तोयनिधि कपति, उदधि पयोधि नदीस ॥५॥

अर्थ क्या सचमुच १ बननिधि २ नीरनिधि ३ जलधि ४ सिंधु ५ बारीस ६ तोयनिधि ७ कपति ८ उदधि ९ पयोधि १० नदीस बाँध लिया।

व्याख्या जब यह रावणु जनमियो दह मुहु इक्कु सरीरु। जणणि वियम्भी चिन्तवइ कवणु पियावउँ खीरु। जब यह रावण दसमुख और एक शरीरवाला जन्मा तो माँ आश्चर्य म आकर चिन्ता करने लगी कि किसे दूध पिलाऊँ। सो रावण की शक्ति तो दसो मुख से बोलने की थी पर वे किसी एक मुख से ही बोला करते थे। कई मुखो से एक साथ बोलने से सुननेवाले को बात समझ मे नही आ सकती थी। अत रावण ध्यान रखते थे कि एक मुख से ही बोले। समुद्र बन्धन का समाचार लगते ही अधीर हो उठे। अत दसो मुख से बोल उठे। इस दोहे मे केवल दश नाम समुद्र के ही गिनाये गये हैं : बन नीर जल ताय क उद पय : ये सब

पर्यायवाची शब्द हैं। भाव यह कि समुद्र का बँधना इतने आश्चर्य की बात थी कि रावण ने चकित होकर दसो मुख से समुद्र शब्द का उच्चारण[1] किया।

निज विकलता विचारि बहोरी। बिहँसि गयउ गृह करि भय भोरी ॥
मदोदरी सुनेउ प्रभु आयो। कौतुकही पाथोधि बँधायो ॥१॥

अर्थ फिर अपनी व्याकुलता को समझकर हँसकर और भय को भुलाकर घर चला। मन्दोदरी ने सुना कि प्रभु आगये और उन्होने खेलवाड मे ही समुद्र को बांध लिया।

व्याख्या : एक बार तो रावण व्याकुल होकर दसो मुख से समुद्र बोल उठे। पीछे से समझा कि मेरी कमजोरी : व्याकुलता सब पर प्रकट हो गयी अत: हँसकर उसे छिपाया। भय सिर पर उपस्थित है। इसे जानकर भी भुलाया और सभागृह से घर चला। वहाँ रहने से हृद्गत भावो के अधिक प्रकट होने का भय था।

मन्दोदरी रानियो मे वडी कुशल है। राजकाज मे हाथ बँटाती है। उसकी दूतियाँ हैं जो नगर भर का समाचार उसे दिया करती हैं। पहिले भी दूतिन्ह मन सुनि पुरजन बानी। मन्दोदरी अधिक अकुलानी। पुरजन को डर पैठ गया था कि : जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आये पुर कवनि भलाई। उस समय मन्दोदरी ने रावण को समझाया था पर उसने न माना। अब मन्दोदरी ने सुना कि प्रभु आगये। भाव यह कि जिसके दूत के बल का वर्णन नही हो सकता था वह प्रभु स्वय आगये। शका यह उठती है कि समुद्र के उस पार आये होगे। समुद्रोल्लघन का तो कोई सामान ही नही है। इस पर कहते हैं कि समुद्र पर सेतु बांधकर आये पर समुद्र पर सेतु बांधना हँसी खेल नही है। इतने बडे राजा प्रतापी हो गये पर किसी ने आज तक समुद्र पर सेतु बांधने का मन से भी साहस नही किया पर प्रभु ने हँसी खेल मे ही उसपर पुल बांध दिया। पहिले ही महापुरुषार्थ का अद्भुत प्रदर्शन किया।

करगहि पतिहि भवन निज आनी। बोली परम मनोहर बानी ॥
चरन नाइ सिरु अचल रोपा। सुनहु वचन पिय परिहरि कोपा ॥२॥

अर्थ : हाथ पकडकर पति को अपने घर ले गयी और बडी ही मन हरण करनेवाली वाणी बोली। चरण मे सिर नवाकर अञ्चल फैलाकर और कहा कि हे प्रिय ! क्रोध छोडकर मेरी बात सुनो।

व्याख्या : सुनना का अर्थ बात पर ध्यान देना है। रावण किसी की सुनते नही। अत उन्हे सुनाने का प्रयत्न रानी मन्दोदरी कर रही है। अन्त पुर मे रानियो

---

[1] यथा श्रुत्वा सागरबन्धन दशशिरा सर्वैर्मुखैरेकदा तूर्णं पृच्छति वार्तिवान् स चकितो भीत्या पर सम्भ्रमात्। बद्धः सत्यमपा निधिर्जलनिधि कीलालधिस्तोयधि पाथोधिर्जलधि पयोधिरुदधिर्वारानिधिर्वारिधिः।

भोगा। हानि लाभु प्रिय मिलन वियोगा। काल कर्म वस होहिं गोसाईं। बरबस राति दिवस की नाईं। ईश्वर के हाथ में काल कर्म की बागडोर है। यथा : काल कर्म गति अगति जीव की सब हरि हाथ तुम्हारे। विनय०। अतः उनसे वैर न कीजिये।

दो. रामहि सौंपि जानकी, नाइ कमल पद माथ।
सुत कहुँ राज समर्पि बन, जाइ भजिय रघुनाथ ॥६॥

अर्थ : चरण कमल में सिर नवाकर रामजी को जानकी सौंपकर और राज्य बेटे को सौंपकर वन में जाकर रघुनाथ का भजन कीजिये।

व्याख्या : यदि कहो कि मैं तो इसी तरह से रहता चला आया हूँ। जिसका छीना उसका कभी लौटाया नहीं। अतः कहती कि अपना रास्ता बदलो। अब सब कुछ छोड़ो। मधुकैटभ हन्ता को जानकी सौंपो। क्योंकि यह योगमाया हैं। उन्हीं के वक्षःस्थल पर निवास करती हैं। दितिसुत हन्ता को प्रणाम करो। ये बलि को बाँध कर त्रैलोक्य ले लेनेवाले हैं। अतः राज्य अपने हाथ में न रक्खो। बेटे को दे दो और सहस्रभुजहन्ता को तुम बीस भुजावाले भजो। क्योंकि भजन करनेवाला रमाविलास का त्याग बिना किये रह नहीं सकता। यथा : रमा बिलास राम अनुरागी। तजत बमन जिमि नर बड़ भागी। अतः उसे वन में ही विश्राम मिलता है।

नाथ दीन दयाल रघुराई। बाघौ सनमुख गये न खाई ॥
चाहिअ करन सो सबु करि बीते। तुम सुर असुर चराचर जीते ॥१॥

अर्थ : हे नाथ! रघुराई तो दीन दयाल हैं। बाघ भी सामने जाने पर नहीं खाता। जो करना चाहता था सो सब आप कर चुके। आपने सुर असुर चर अचर सबको जीत लिया।

व्याख्या : यदि कहो कि वे पृथ्वी का भार हरण के लिए अवतार लिया है और मैं पृथ्वी के लिए भारभूत हूँ तो मुझे वे कभी नहीं छोड़ेंगे। तो मैं अपनी सी क्यों न करूँ? तो इसका उत्तर यही है कि वे दीनदयाल हैं। वेद उनको ऐसा ही बतलाता है। यथा : जो प्रभु दीनदयाल कहावा। आरति हरन वेद जस गावा। तुम्हें शरण सम्मुख देखकर तुमपर विशेष कृपा करेंगे। व्याघ्र बड़ा क्रूर जन्तु है। गुर्गने पर अपने बच्चे को मार डालता है। पर सामने चले जाने पर वह चोट नहीं करता। व्याघ्र का स्वभाव है कि सामने से चोट नहीं करता। उसके आँख से आँख मिली रहे तो कभी नहीं मारता। जो रघुराई हैं : जिसके यहाँ मङ्गन : याचक को नहीं नहीं किया जाता। जो दीन दयाल हैं : आर्त्ति हरण हैं वह शरण सम्मुख प्रणत को कैसे मारेंगे?

आप राजधर्म में स्थित हैं। राजाओं के लिए जो कर्त्तव्य है वह सब कर चुके। शैशव में विद्या का अच्छा अभ्यास किया। यहाँ तक कि वेदों पर भाष्य

बनाया। युवावस्था में विषयोपभोग भी यथेष्ट किया। यहाँ : सुनासीर सत सरिस सो संतत करत बिलास। राजा लोग दिग्विजय करके अपने को कृतकृत्य मानते हैं और आपने तो तीनो लोक को जीत लिया। देवताओं के जीतने से स्वर्ग का जीतना कहा। असुरों के जीतने से पाताल का जीतना कहा। चराचर के जीतने से मृत्युलोक का जय कहा। अचर का जय कुहकविद्या से होता है जिसे आजकल साइन्स कहते हैं।

संत कहहि अस नीति दसानन। चौथेपन जाइहि नृप कानन ॥
तासु भजन कीजिअ तहँ भर्त्ता। जो कर्त्ता पालक संहर्त्ता ॥२॥

अर्थ : हे दशानन! सन्त लोग ऐसी नीति कहते हैं कि चौथेपन में राजा वन में चले जायँ। हे भर्ता! वहाँ उसका भजन कीजिए। जो कि संसार का कर्ता पालक और संहार करनेवाला है।

व्याख्या : राज कि रहै नीति बिनु जाने। अतः राजा को नीति का पालन अवश्य करना चाहिए। सो सन्त की कही हुई नीति श्रुतिपुराणस्मृति सम्मत होती है। यथा : संत कहहि अस नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव। और आप तो सन्त के वंशज हैं। आपको उनकी कही नीति का अवश्य पालन करना चाहिए। वह नीति यह है कि सब प्रकार से कृतकृत्य होकर वृद्धावस्था में राजा वानप्रस्थ होकर वन में चला जाय। यथा : शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्। वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् : रघुवंश।

यदि विषय से विराग न हो तो भी साहस करके राज्य बेटे को दे दे और स्वयं जाकर जगत् के उत्पत्ति स्थिति लयकर्ता को भजे। यथा : होइ न विषय विराग भवन बसत भा चौथपन। हृदय बहुत दुख लाग जन्म गयउ हरि भगति बिनु। बरबस राज सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा। आपने कर्ता और संहर्ता अर्थात् ब्रह्मा और रुद्र का भजन करके यह ऐश्वर्य प्राप्त किया। अब उसका भजन करिये जो कर्ता पालन और संहर्ता तीनो हैं अर्थात् रामजी का भजन कीजिए। क्योंकि जन्म का साफल्य उन्ही के भजन से है। यथा : जौ पै रहनि राम सो नाहीं। तौ नर खर कूकर सूकर सो समवृथा जाय जियत जग माहीं। काम क्रोध मद लोभ नीद भय भूख प्यास सबही के। मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय पी के। सूर सुजान सपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई। बिनु हरि भजन इंदारुन के फल तजत नहीं करुआई। कीरति कुल करतूति भूति भलि सील सरूप सलोने। तुलसी प्रभु अनुराग रहित जस सालन साक अलोने। विनय १७५ पद।

सोइ रघुबीर प्रनत अनुरागी। भजहु नाथ ममता सब त्यागी ॥
मुनिवर जतनु करहि जेहि लागी। भूप राजु तजि होहि बिरागी ॥३॥

अर्थ : वह प्रणत पर अनुराग करनेवाले रघुवीर हैं। हे नाथ! सब ममता

त्यागकर उन्ही को भजिए जिसके लिए मुनीश्वर यत्न करते हैं। राजा राज्य छोड़कर विरागी होते है।

व्याख्या : सोइ रघुवीर कहकर मन्दोदरी रामजी को कर्ता पालक संहर्ता बतला रही है। रघुवीर कहकर श्रुतिसिद्ध रघुकुल में अवतार ग्रहण कह रही है। यथा : रघो. कुले खिल राति राजते यो महीस्थितः। : तापनीयाश्रुति। प्रणत अनुरागी कहकर स्वभाव कह रही है। भजहु ममता सब त्यागी कहकर भजन का मार्ग प्रदर्शित कर रही है। यथा : सबकै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बर डोरी।

जन्म जन्म मुनि लोग यत्न करते हैं पर प्राप्ति दुर्लभ है। अन्त मे उनका नाम भी मुख से नही निकलता। यथा : जनम जनम मुनि जतन कराही। अन्त राम कहि आवत नाही। और जिसके लिए राजा लोग राज्य छोड़कर वैराग्य धारण करते है। क्योंकि राजपाट रामभक्ति का बाधक है। यथा : सुख सम्पति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई। ये सब राम भगति के बाधक। कहहि संत तव पद अवराधक।

सोइ कोसलाधीस रघुराया। आयउ करन तोहि पर दाया ॥
जौ पिय मानहु मोर सिखावन। सुजसु होइ तिहु पुर अतिपावन ॥४॥

अर्थ : वही अयोध्यापति रघुराई आप पर दया करने आये हैं। हे प्रिय ! यदि मेरी शिक्षा मानो तो तीनो लोको में तुम्हारा अत्यन्त निर्मल यश होगा।

व्याख्या : वे ही दुराराध्य और दुष्प्राप्य रामजी अयोध्या का राज्य छोड़कर वहाँ से चलते चलते आपके द्वार तक आपके ऊपर दया करने चले आये। आपका भाग्य बहुत बड़ा है। यह अवसर चूकने लायक नही है। आपकी प्रसिद्धि तो है पर दुर्यश है। सुयश नही है। यदि मेरी बात मान लो तो तीनो लोक में आपका अति पावन सुयश हो जाय कि रामजी को अपने यहाँ तक बुलाकर रावण ने अपना अन्त भी बना लिया।

दो. अस कहि नयन नीर भरि, गहि पद कंपित गात।
नाथ भजहु रघुनाथहि, अचल होइ अहिवात ॥७॥

अर्थ : ऐसा कहकर आंखों में जल भरे हुए कांपते हुए शरीर से चरण पकड़ कर : मांगा कि हे नाथ ! रघुवीर पद को भजो। मेरा अहिवात अचल हो जाय।

व्याख्या : रावण का रुख बात मानने का न देखकर अपने सौभाग्य के चले जाने के भय से कांपने लगी। आंखो मे आँसू भर आये। चरण पकड़ लिया और जो आँचल पहिले से पसारे हुए है उसी मुद्रा से सौभाग्य भिक्षा मांगती है कि आप रामचरण का भजन करें तो मेरा अहिवात अचल हो। मैं वैधव्य से भयभीत हूँ। मेरी रक्षा करो।

तब रावन मयसुता उठाई। कहै लाग खल निज प्रभुताई ॥
सुनु तै प्रिया वृथा भय माना। जग जोधा को मोहि समाना ॥१॥

अर्थ : तब रावण ने मय की बेटी को उठा लिया और वह खल अपनी प्रभुता कहने लगा। हे प्रिये ! सुन। तू व्यर्थ ही डर गई। ससार मे मेरे समान योद्धा कौन है ?

व्याख्या : मयतनया मंदोदरि नामा। मयतनया कहने का भाव यह कि असुरो के विश्वकर्मा की बेटी है। इसलिए रावण उसका बड़ा मान करते हैं। उसे अत्यन्त सभीत होकर काँपते हुए चरण पर गिरी देखकर उठा लिया। पर स्वभाव से खल है। हरिहर यशराकेश के लिए राहु के सदृश है। मन्दोदरी के मुख से हरियश सुनकर उसे अपनी प्रभुता सुनाने लगा। मन्दोदरी ने प्रार्थना की थी कि सुनहु बचन पिय परिहरि क्रोधा : अतः उसकी बातें चुपचाप सुनता रहा। बात समाप्त होते ही अपनी प्रभुताई का वर्णन प्रारम्भ कर दिया। अपने मुख से अपनी बड़ाई करना शिष्टसमाज मे निन्दित है पर खलो को ऐसा विचार नही होता।

मन्दोदरी ने कहा था : जौ प्रिय मानहु मोर सिखावन। उसी के उत्तर मे कहता है कि तू मेरी बात सुन। तू व्यर्थ ही डर रही है। जितनी बातें तू कर गयी उन सबका एकमात्र कारण भय है। तू मेरे लिए डर रही है। उस डर का काई कारण नही है। डर तो जब हो जब किसी समबल योद्धा से काम पड़े। पहिले चाहे कोई रहा भी हो पर बतला इस समय मेरे समान योद्धा कौन है ?

बरुन कुबेर पवन जम काला। भुजबल जितेउँ सकल दिगपाला ॥
देव दनुज नर सब बस मोरे। कवन हेतु उपजा भय तोरे ॥२॥

अर्थ : वरुण कुबेर पवन यम काल और सब दिक्पालो को मैंने भुजा के बल से जीत लिया। देवता दानव और मानव सब मेरे वश मे हैं। किस कारण से तुम्हारे मन मे भय उपजा है ?

व्याख्या : यह बात भी नही कि मेरे बल की परीक्षा न हुई हो। बरुन कुबेर सुरेस समीरा। रन सनमुख धरि काहु न धीरा। भुज बल जितेउ काल यम साईं। इन सब दिक्पालो को अस्त्रबल शस्त्रबल तपबल वरदानबल सैन्य बल आदि की अपेक्षा न करके मैंने केवल भुजबल से जीत लिया। यथा : लोकपाल बल विपुल ससि ग्रसन हेतु सब राहु। लोकपालो से बढ़कर और कौन है। मैंने काल को भी जीत लिया। आयु मेरी चाहे जितनी हो वृद्धावस्था मुझे स्पर्श नही कर सकती। इसलिए चौथापन आ ही नही सकता। ,बन जाने की चर्चा ही क्या है ?

कभी किसी ने किसी को मार दिया हो यह दूसरी बात है। पर कोई देव दनुज नर को वश न कर सका। न तो विष्णु न नृसिंह ने न वामन ने न परशुराम ने ही कभी राज किया और यहाँ तो ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनु धारी। दसमुख बसवर्ती

नर नारी। कोई मेरी आज्ञा के बाहर नही है। तब तेरे भय का क्या कारण है जो अहिवात चिल्ला रही है।

नाना विधि तेहि कहेसि बुझाई। सभा बहोरि बैठ सो जाई ॥
मंदोदरी हृदय अस जाना। काल बस्य उपजा अभिमाना ॥३॥

अर्थ : अनेक प्रकार से उसे समझाकर कहा। फिर जाकर सभा मे बैठा। मन्दोदरी ने मनमे समझ लिया कि काल विवश होने से इन्हे अभिमान उत्पन्न हो गया।

व्याख्या : उसे अनेक विधि से समझाया। मुझसे सग्राम करने के लिए मेरे इतना तपोबल चाहिए। उपासना बल चाहिए। वरदान बल चाहिए। फिर सेना बल दुर्गबल बन्धुबल भी मेरे ऐसा किसमे है। अतः खतरे की कोई बात ही नही है। यथा :

तपबल भुजबल सैनबल कोष दुर्ग अरु राज।
मेरो वरबल छदम बल सब विधि सुदृढ समाज ॥
मुण्डमाल निज सिरन्ह को को सक शिवहिं चढाय।
वीर धीर दसकण्ठ तजि जग मे जन्यो न माय ॥
सहित शिवा शिवको सकै गिरि कैलाश उठाय।
जानि बूझि सामर्थ्य मम तू नाहक घबराय ॥
रह्यो महाबल कीश एक गयो अन्त मे हारि।
धोखा दैके धूर्त कपि सक्यो लक को जारि ॥
कै दिनको तपसी बसी कहा तपस्या कीन्ह।
काहि पूजि केहि देव ते कहा महावर लीन्ह ॥
तिय बियोग दुख ते विकल राज कोप ते हीन।
वैर असन वलकल वसन सब प्रकार ते छीन ॥
ऐसे नर ते कौन भय जाके कीश सहाय।
नहिं मानुप गुन लेश लखि दीन्ह पिता बहिराय ॥

उसे तो अनेक प्रकार से समझाया पर स्वय विचलित हो गये। वहाँ से उठकर सभा मे फिर जाकर बैठे। इधर मन्दोदरी ने मन मे समझ लिया कि ऐसा अभिमान इन्हे नही था। सदा बातो को समझते बूझते थे। यह प्रकृति विपर्यय कालविवश होने से हुआ है अर्थात् रावण के वचनो का प्रभाव मन्दोदरी पर कुछ भी न हुआ।

रावण सभा

सभा आइ मंत्रिन्ह तेहि बूझा। करब कवन विधि रिपु सै जूझा ॥
कहहि सचिव सुनु निसिचर नाहा। बार बार प्रभु बूझहु काहा ॥४॥

कहहु कवन भय करिअ विचारा। नर कपि भालु अहार हमारा ॥५॥

अर्थ : सभा में आकर उसने मन्त्रियों से पूछा कि शत्रु से किस प्रकार युद्ध किया जायगा? मन्त्री लोग कहने लगे हे निशिचर नाथ! हे प्रभो आप बार बार क्या पूछते हैं। कहिये कौन सा डर है जिसका विचार करें। नर कपि और भालु तो हमारे आहार ही ठहरे।

व्याख्या : जब सिन्धु पार सेना आयी थी उसी समय एक बार और रावण ने मन्त्रियों से पूछा था। तब उन लोगों ने कहा था कि चुप रहा जाय जिसमे बन्दर और निकट चले आवें। इस समय छेड़ छाड़ करने से सब भाग जावेंगे। मुख मे आया हुआ आहार जाता रहेगा। तदनुसार सब चुप रह गये। अब तो सेतु बाँधकर सेना इस पार आगयी। युद्ध हुआ ही चाहता है। अतः रावण फिर मन्त्रियों से पूछते हैं कि युद्ध का नक्शा ठीक कर लिया जाय कि युद्ध किया जायगा?

मन्त्री लोग राजा का पूरा पता रखते थे। राज्य का पता चाहे उन्हे न भी हो। उन्हे पता लग गया था कि रावण महल से यह कहकर आ रहे हैं कि भय का कोई कारण नहीं है। अतः वे भी ठकुरसोहाती सम्मति दे रहे हैं कि कहहु कवन भय करिय विचारा। यदि कोई भय उपस्थित हो तब तो पूछना भी और विचार करना भी शोभा देता है। आहार मुख में चला आ रहा है तो इसे कैसे उदरस्थ कर लेंगे इसमे बार बार पूछने की न तो कोई आवश्यकता है और न विचार करने से कोई प्रयोजन सिद्धि है। नर अहार रजनीचर करही। अतः पहिले नर का ही नाम लेते हैं। कपि का दूसरा नम्बर है। ये नर की भाँति स्वादु नहीं हैं। भालु तो अधिक कठिन होते हैं। अतः उनका तीसरा नम्बर है।

दो. सबके बचन स्रवन सुनि, कह प्रहस्त कर जोरि।
नीति बिरोध न करिअ प्रभु, मंत्रिन्ह मति अति थोरि ॥८॥

अर्थ : सबके वचन कान से सुनकर प्रहस्त ने हाथ जोड़कर कहा कि हे प्रभो! नीतिविरोध न कीजिये। इन मन्त्रियों की बड़ी अल्प बुद्धि है।

व्याख्या : सेनापति प्रहस्त ने सबकी बातें सुनी। देखा कि सब ठकुरसोहाती बोलनेवाले हैं। अब रावण की सभा मे कोई हित कहनेवाला नहीं है। तब हाथ जोड़कर बोले कि नीति विरोध हो रहा है। ये मन्त्री पूछने पर हित और परिणाम मे सुखावह सम्मति नहीं दे रहे हैं। ये प्रियवक्ता हैं। ये मित्र रूप मे शत्रु हैं। यथा : यो न पृष्टो हितं ब्रूते परिणामे सुखावहम्। स मन्त्री प्रियवक्ता च केवलं स रिपुः स्मृतः। प्रहस्त स्पष्ट शब्द मे उन्हे रिपु न कहकर अल्पबुद्धि कह रहा है। आगे चलकर प्रियवक्ता भी कहेगा।

कहहिं सचिव सठ ठकुरसोहाती। नाथ न पूर आव एहि भाँती॥
बारिधि नाँघि एकु कपि आवा। तासु चरित मन महुँ सबु गावा ॥१॥

अर्थ : ये मन्त्री शठ हैं। ठकुरसोहाती कहते है। हे नाथ! इस भाँति पूरा न पड़ेगा। समुद्रोल्लघन करके एक बन्दर आया था। उसका चरित मन ही मन सब ने गान किया।

व्याख्या : ये बड़ी भारी हानि कर रहे हैं जो सच्ची बात छिपा रहे हैं और मीठी मीठी बातें बनाते हैं। जो आपको अच्छा लगता है वही ये सब कहते है। मालिक का पूरा ठकुरसोहाती कहने से नही पड़ता। इससे मालिक को धोखा होता है और वह बड़े संकट मे पड़ जाता है। अब मन्त्रियों की बातो का खोखलापन दिखलाता है।

इस समय तो अगणित बन्दर सेतु बाँधकर आगये हैं। इसके पहिले अकेला बन्दर समुद्र उल्लघन करके आगया था। उसने क्या क्या किया। उन करणियों की बड़ाई सब लोगो ने मन ही मन की। यथा : उहाँ निसाचर रहहिं ससका। जबसे जारि गयउ कपि लंका। निज निज गृह सब करहिं विचारा। नहि निसिचर कुल केर उबारा। जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आये पुर कौनि भलाई। आपके भय से प्रकट किसी ने कुछ नही कहा। राक्षस लोग हनुमच्चरित्र का मानसिक गान करके मोक्ष के पात्र हो गये। जो सानन्द वाणी से गाता है उसके लिए कहना ही क्या? तुलसी फल चारो करतल जस गावत गई बहोर को। विनय. पद ३१।

छुधा न रही तुमहि तब काहू। जारत नगरु कस न धरि खाहू॥
सुनत नीक आगे दुखु पावा। सचिवन्ह अस मत प्रभुहि सुनावा॥२॥

अर्थ : तब क्या तुम लोगों को भूख नही थी? नगर जलाने के समय उसे पकड़कर खा क्यो नही लिया? सुनने मे अच्छो लगे पर पीछे जिससे दुःख हो ऐसी सम्मति मन्त्रियों ने प्रभु को दी है।

व्याख्या : अब मन्त्रियों से पूछते हैं कि क्या उस समय किसी को भूख नही थी। आप लोग इतने हैं किसी को तो उस समय भूख रही ही होगी। जब वह बन्दर नगर जला रहा था तो उसे पकड़कर खा क्यों नही गये? भाव यह कि जिन बन्दरो को राक्षस खाया करते है वे बन्दर ये नही हैं। जब किसी ने उत्तर नही दिया तब रावण से कहता है कि विषसम्पृक्त मधु की भाँति मन्त्रियो की सम्मति है। जो सुनने में मीठी लगे और परिणाम उसका घोर हो।

जेहि बारीस बँधायेउ हेला। उतरे सेन समेत सुबेला॥
सोभनु मनुज खाब हम भाई। बचन कहहि सब गाल फुलाई॥३॥

अर्थ : जिसने खेल मे समुद्र बाँध लिया और सेना सहित जो सुबेल पर्वत पर उतरा हुआ है उस सुन्दर मनुष्य को हम खायेंगे। यह वचन सब गाल फुलाकर कह रहे हैं।

व्याख्या : इस संसार मे बडे बडे पराक्रमी हुए पर आज तक समुद्र पर सेतु किसी ने नही बाँधा। जिसका ऐसा पराक्रम है कि खेल मे समुद्र पर सेतु बाँध दिया और साहस ऐसा है कि ठीक लका के सामने सुवेल पर्वत पर सेना के सहित उतर पड़ा है।

उसके लिए कहते हो कि सुन्दर मनुष्य को हम खायेंगे। उसका खा जाना इतना सरल है कि यहाँ सभी लोग उसके खा जाने का हौसला अभिमान के साथ कर रहे हैं। मानो वह कोई सुन्दर फल है जिसके खाने के लिए सबका मन ललच उठा है।

तात बचन मम सुनु अति आदर। जनि मन गुनहु मोहि करि कादर॥
प्रिय बानी जे सुनहि जे कहही। ऐसे नर निकाय जग अहही॥४॥

अर्थ हे तात! मेरी बात अत्यन्त आदर के साथ सुनिये। मनमे मुझे कादर न समझ लीजियेगा। ऐसे मनुष्य बहुत हैं जो प्रिय वाणी कहते है और सुनते हैं।

व्याख्या : आपने इस ठकुरसोहती कहनेवाले मन्त्रियो की बात आदर के साथ सुनी। पर मेरी बात अत्यन्त आदर के साथ सुनिये अर्थात् तदनुसार कार्य कीजिये। मै युद्ध से भयभीत होकर ऐसा नही कह रहा हूँ। मै कादर नही हूँ। कादर समझकर मेरी वाणी की उपेक्षा न कीजिये। मै उचितवक्ता हूँ। मेरी वाणी अप्रिय है परन्तु हित है।

प्रियवाणी लोग इसलिए कहते है कि सुननेवाला रुष्ट न हो और प्रियवाणी इसलिए सुनना चाहते है कि इससे उन्हे सुख होता है। लाभ हानि का वाणी की प्रियता के साथ कोई सरोकार नही है। अत प्रिय बोलने और सुननेवालो से ससार भरा पडा है।

बचन परम हित सुनत कठोरे। सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे॥
प्रथम बसीठ पठउ सुनु नीती। सीता देइ करहु पुनि प्रीती॥५॥

अर्थ . बडे कल्याण की बात जो सुनने मे कठोर हो उसके कहने और सुननेवाले थोडे हैं। नीति सुनिये। पहिले सुलह के लिए दूत भेजिये। तत्पश्चात् सीता देकर के उनसे प्रीति कर लीजिये।

व्याख्या : अप्रियस्य च पथ्यस्य श्रोता वक्ता सुदुर्लभ.। कल्याण की बात कहकर शत्रुता कौन मोल ले। इसलिए सब लोग प्रिय बात कहते हैं। सुननेवाला भी प्रिय बात सुनना चाहता है। कल्याण के सुननेवाले परम दुर्लभ हैं। अर्थात् मैं ऐसे दुर्लभ व्यक्तियो मे से हूँ और आपका भी उसी भाँति दुर्लभ होने की आशा करता हूँ। पहिले साम का प्रयोग करना ही नीति है। दूत भेजिये और सीता देकर प्रीति कर लीजिये। युद्ध तो वहाँ किया जाता है जहाँ साम और दान से काम न चले। पहिले युद्ध ही करना नीति विरोध है।

दो. नारि पाइ फिरि जाहिं जौ, तौ न बढ़ाइअ रारि।
नाहित सनमुख समर महि, तात करिअ हठि मारि ॥९॥

अर्थ : यदि स्त्री पाकर फिर जाँय तो झगड़ा न बढ़ाइये। नही तो हे तात ! सामने होकर रणाङ्गण में हठ करके युद्ध कीजिये।

व्याख्या : साम का प्रयोग भी अपनी प्रतिष्ठा रखते हुए कीजिये। उनकी स्त्री है उसे लौटा देने में अप्रतिष्ठा नही है। यदि वे इतने मे ही सन्तुष्ट हो तो झगड़ा न बढायें और यदि उनकी इच्छा बदला लेने को हो दण्ड देना चाहते हो तो उनके आक्रमण करने का बाट न जोहकर स्वय उनपर धावा बोलिये और सम्मुख होकर संग्राम भूमि में युद्ध कीजिये। इन मन्त्रियो की नीति में कादरता है। ये दुर्ग मे रहकर युद्ध करना चाहते हैं।

यह मत जौं मानहु प्रभु मोरा। उभय प्रकार सुजसु जग तोरा ॥
सुत सन कह दसकंठ रिसाई। अस मति सठ केहि तोहि सिखाई ॥१॥

अर्थ : हे प्रभो ! मेरी यह सम्मति यदि आप माने तो दोनों तरह से आपका सुन्दर यश संसार मे होगा। रावण क्रुद्ध होकर पुत्र से बोला कि रे शठ ! यह बुद्धि तुझे किसने सिखलाई ?

व्याख्या : रावण अपनी छोड़कर दूसरी बात सुनेंगे' इस बात मे सबको सन्देह है। मन्दोदरो ने भी यही कहा कि : जौ पिय मानहु मार सिखावन। प्रहस्त भी यही कहता है : यह मत जौ मानहु प्रभु मोरा। दोनो ने सुयश का लोभ दिखलाया। मन्दोदरी ने कहा : होय सुजसु तिहु पुर अति पावन। और प्रहस्त कहता है : उभय प्रकार सुजसु जग तोरा। प्रहस्त के कहने का भाव यह है कि मेरा मत न मानकर युद्ध करने से ससार मे तुम्हारा दुर्यश होगा और मेरे मत के मानने पर यदि युद्ध भी करना पड़े तो भी तुम्हारा सुयश होगा।

गोस्वामीजी के मत से प्रहस्त रावण का बेटा था। सुत सन कह का भाव यह कि रावण इस बात पर बहुत चिढे हुए हैं कि मेरा बेटा होकर इसकी ऐसी बुद्धि कैसे हुई। अत. कहता है कि यह तेरो उपज नही है। तुझे किसो ने सिखा-पढाकर दरबार मे भेजा है। मन्दोदरी अभी यही बात कहती रही। सम्भव है उसीने यह सब इसे सिखाया हो। प्रहस्त ने मन्त्रियो को शठ कहा था। रावण कहता है कि मन्त्री मेरे शठ नही हैं। तू शठ है : सर्वनाशकारी बात बोलता है। कौन कौन वस्तु दूसरो को मैं लौटाऊँगा। यहाँ तो जो कुछ है सो सब दूसरा से ही छीना हुआ है। लोग जान पावेंगे कि रावण चढ़ाई करने पर छीनी वस्तु लौटा देते हैं तो नित्य चढाई लङ्का पर हुआ करेगी।

अबही ते उर संसय होई। बेनु मूल सुत भयेउँ घमोई ॥
सुनि पितु गिरा परुष अति घोरा। चला भवन कहि बचन कठोरा ॥२॥

अर्थ अभी से तेरे हृदय मे संशय होने लगा। तू बाँस के जड मे घमोई भडभाँड हुआ। पिता का अति घोर कटु वचन सुनकर कठोर वचन कहकर घर चला।

व्याख्या संशय का ध्यान तो संग्राम मे सावधानी के लिए है। यथा युद्धसिद्धिहि चचला। तुझे संग्राम की चर्चा चलने से जय मे सन्देह उठ रहा है। यही कादर का लक्षण है। बाँस के जड मे बाँस ही होता है। दूसरा कोई पेड बाँस के जड मे नही जम सकता। क्योंकि उसके चारो ओर की भूमि उसके जड से ऐसी व्याप्त हो जाती है कि दूसरा वृक्ष उग ही नही सकता। भँडभाँड की जड बहुत नीचे नही जाती। अत यदि उसका बीज बाँस के क्षेत्र मे जा पडे तो भँडभाँड उग सकता है पर बाँस के कोई गुण नहीं होते। वह छूते ही टूट जाता है। भाव यह कि तू मेरे वीर्य से नही है तू कादर है।

इसी भावार्थ पर दृष्टि रखते हुए कहते हैं कि पिता का अतिघोर परुष गिरा सुनकर कठोर बोलता घर चला। दूसरा कोई ऐसी बात नही बोल सकता। बोलने से सिर कटता है। पर पिता ने कहा सो पिता का अपमान ही उसका वध है। अत प्रहस्त ने कठोर वचन कहा। वैसा ही कठोर वचन कहा जैसा पुत्र ऐसे समय पिता को कह सकता है।

हित मत तोहि न लागत कैसें। काल बिबस कहुँ भेषज जैसे॥
संध्या समय जानि दससीसा। भवन चलेउ निरखत भुजबीसा॥३॥

अर्थ भलाई की बात तुझ पर इस भाँति कोई प्रभाव नही करती जैसे काल विवश पर दवा का प्रभाव नहीं पडता। सन्ध्या का काल जानकर दशग्रीव बीसो भुजाओ को देखते घर चले।

व्याख्या भलाई की बात भगवान् पुलस्त्य ने कहलाया। बराबर के भाई विभीषण ने कहा पट्टमहिषी मन्दोदरी ने कहा। पुत्र होकर मैं कह रहा हूँ पर तेरे ऊपर कोई प्रभाव ही नही पडता। सौ रोग की दवा है एक की नही वह रोग काल है। उसके विवश जो हो जाता है उस पर कोई ओषधि काम नही करती अर्थात् तू काल के वश हो गया है। तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। हित की बात मनमे नही बैठती।

रावण दरबार करने मे आलस्य नही करते। दोनो समय दरबार होता है। सन्ध्या करने का समय आया हुआ देखकर रावण घर चले। अग्निहोत्री हैं। नित्य नैमित्तिक कर्म का निर्वाह करते हैं। अपने भुजाओ का बडा गर्व है। अंगद से कहेंगे· हरगिरि मथन निरखि मम बाहूँ। पुनि कपि सठ निज प्रभुहि सराहूँ। इत्यादि। सो उन भुजाओ को देखते हुए चले कि मम भुज सागर बल जल पूरा। जहँ बूडे बहु सुर नर सूरा। बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहि पारा।

लंका सिखर उपर आगारा। अति विचित्र तहँ होइ अखारा ॥
बैठि जाइ तेहि मंदिर रावन। लागे किन्नर गुन गन गावन ॥४॥
बाजहिं ताल पखाउज बीना। नृत्य करहिं अपछरा प्रवीना ॥५॥

अर्थ : लका मे चोटी पर एक बंगला था। उसमे अति अद्भुत अखाडा हुआ करता था। रावण उसी घर मे जाकर बैठा। किन्नर उसके गुणगण गाने लगे। ताल पखाउज और वीणा बज रही थी। नृत्यकला मे चतुर अप्सराएँ नाच रही थी।

व्याख्या : राजाओ के बहुत से महल होते हैं पर पर्वत के शिखर पर का आगार बडा मनोरजक होता है। जैसा वह आगार था वैसा ही वहाँ अखाडा होता था। जहाँ गुणी जन एकत्र होकर अपना अपना हुनर दिखावें वही अखाडा कहा जाता है। आजकल केवल मल्लविद्या के प्रदर्शन स्थान को ही अखाडा कहते हैं। वहाँ सङ्गीत का अखाडा था। रावण सङ्गीत शास्त्र के प्रधान आचार्य हैं।

आज रावण उसी सर्वोच्च मन्दिर मे जाकर विराजमान हुए जिसमे शत्रु देख सकें कि रावण को उनका रत्ती भर भय नही। वे यथापूर्व अपने भोग विलास मे आसक्त हैं। वहाँ देवयोनि विशेष किन्नरो का गान होता था। मण्डलीक मणि रावण के गुणगण गाये जाते थे। किन्नर गन्धर्व गान मे बडे निपुण होते हैं।

मजीरा आदि की ताल मे गणना है। पखाउज मृदग को कहते हैं और वीणा बज रही थी। वीणा पर गान करने की सामर्थ्य किन्नरो को ही है। मनुष्यो के गले मे इतना माधुर्य नही कि वीणा पर गान कर सकें और प्रवीण अप्सरा मेनका उर्वशी रम्भा आदि का नृत्य होता था। सामान्य अप्सराओ की भी सामर्थ्य नही कि रावण के सामने नृत्य कर सकें। मन्दोदरी साथ बैठी है। अप्सराओ से भी अधिक सुन्दरी है।

दो. सुनासीर सत सरिस सो, संतत करै बिलास।
परम प्रबल रिपु सीस पर, तद्यपि सोच न त्रास ॥१०॥

अर्थ : सौ इन्द्र के समान वह सदा भोग विलास किया करता था। अत्यन्त प्रबल शत्रु सिर पर है फिर भी उसे कुछ भी डर नही है।

व्याख्या : रावण बडा भारी व्यसनी है। सौ इन्द्र के बराबर भोग विलास नित्य करता है। भानु प्रताप के रूप मे इन्द्र से सौ गुना अधिक यज्ञ भी कर चुका है। इन्द्र तो शतक्रतु है। सौ अश्वमेध यज्ञ कर चुके है पर भानुप्रताप के शरीर से रावण अगणित यज्ञ किये हुए है। यथा जहँ लगि कहे पुरान स्रुति एक एक सब जाग। बार सहस्र सहस्र नृप किए सहित अनुराग। उसी पुण्य का फल सुनासीर सत सरिस विलास करके ले रहा है। सहज अशङ्क है। अत श्रीरामचन्द्र से प्रबल शत्रु के चढ आने पर भी उसे तनिक भी भय नही है। भाव यह है कि कितना बलवान राजा

क्यों न हो भोग विलास में पड़कर मारा पड़ता है और शत्रु की उपेक्षा करनेवाले की भी ऐसी गति होती है। रावण में पराभव के दोनों लक्षण अत्यन्त स्पष्ट हैं।

सुवेली की झाँकी

इहाँ सुवेल सैल रघुबीरा। उतरे सेन सहित अति भीरा॥
सिखर एक उतंग अति देखी। परम रम्य सम सुभ्र बिसेखी॥१॥

अर्थ : यहाँ रघुवीर रामजी सुवेल पर्वत पर सेना सहित उतरे। बड़ी भारी भीड़ हुई उस पर्वत की एक चोटी को सुन्दर देखकर जो कि अत्यन्त ऊँची समतल और स्वच्छ थी।

व्याख्या : सिन्धु पार प्रभु डेरा कीन्हा। सकल कपिन्ह कहँ आयसु दीन्हा से प्रसङ्ग छूटा हुआ है। अब उसी प्रसङ्ग को उठाते हैं। प्रहस्त रावण की सभा में कह चुका है कि : उतरे सेन समेत सुवेळा। इससे पता चलता है कि बन्दरों के फल खा लेने के बाद सुवेल पर बड़ी भीड़ हुई। तब सरकार के ठहरने के लिए एक सुन्दर शृङ्ग तजवीज किया गया। पर्वत का आनन्द उसके शृङ्ग पर से ही मिलता है। जितना ऊँचा शृङ्ग हो उतना ही प्राकृत दृश्य अधिक दृष्टिगोचर होता है। पर्वतों के पथिक इस बात से परिचित हैं कि वहाँ समतल भूमि की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ होती है। सो वह शृङ्ग अत्यन्त ऊँचा था और समतल था। अन्य शृंगों से रमणीय भी अधिक था। दूसरी बात यह है कि शत्रु से युद्ध करना है। अतः अपनी तथा सेना की रक्षा के लिए गिरि दुर्ग का आश्रयण किया गया।

तहँ तरु किसलय सुमन सुहाए। लछिमन रचि निज हाथ डसाये॥
तापर रुचिर मृदुल मृगछाला तेहि आसन आसीन कृपाला॥२॥

अर्थ : वहाँ पेड़ों के पत्ते और सुन्दर फूलों को लक्ष्मणजी ने अपने हाथ से बिछाये। उसपर सुन्दर और कोमल मृगछाला बिछाया गया। उसी आसन पर कृपाल रामजी विराजमान हुए।

व्याख्या : लक्ष्मणजी राजकुमार हैं। पुष्प शय्या रचना जानते हैं। अतः उन्होंने अपने हाथों पत्ते और फूलों की शय्या तैयार की। पहिले ही कह आये हैं : नाना तरु फल फूल सुहाये सो फल बन्दरों के काम आये। फूलों से शय्या की रचना की गई।

वीर रस के बढ़ाने के लिए लक्ष्मणजी ने उसपर कपट मृग का चर्म बिछाया। उसे लक्ष्मणजी साथ लाये थे। यथा : हेम को हरिन हनि फिरे रघुकुल मनि लखन ललित कर लिए मृगछाल। वह कपट मृग परम रुचिर था। यथा : सीता परम रुचिर मृग देखा। कपट कुरंग कनक मनि मय लखि प्रिय सों कहति हँसि बाला। पाए पालिबे जोग मंजु मृग मारेहु मंजुल छाला। यहाँ रुचिर मृग छाला कहकर उसी मृग के चर्म को लक्षित करते हैं। विश्राम के लिए सरकार उसी आसन पर

भगवान् की सेवा कर रहे हैं और करुणाकर भगवान् सेवा स्वीकार कर रहे हैं। अत. इस मित्रगोष्ठी मे स्थित भगवान् के ध्यान की विशेष महिमा कही। जीव का हृदयस्थल श्रीरामराज्य होने के पहले लङ्का ही है। अत लङ्का का ध्यानकर विशेष माहात्म्य कहा गया।

दो. पूरब दिसा बिलोकि प्रभु, देखा उदित मयंक।
कहत सबहि देखउ ससिहि, मृगपति सरिस असक ॥११ख॥

अर्थ : रामजी ने पूर्व दिशा मे देखकर चन्द्रमा को उदय हुआ देखा। सबसे कहने लगे चन्द्रमा को देखो। यह सिंह की तरह नि शङ्क है।

व्याख्या · सरकार पश्चिम की ओर पैर किये लेटे थे। पूर्व और दक्षिण की ओर पैर करके सोना निषिद्ध है। यथा : पश्चिमोत्तरशायी च हन्ति पुण्य पुराकृतम्। जब चन्द्रोदय होने मे प्रकाश मालूम हुआ तो उधर देखा। चन्द्रमा के देखने से जो भाव हृदय मे आया उसी को व्यक्त करने के लिए सबसे कहते हैं। सबसे उत्प्रे... करने के लिए कहेगे। अत सबको दिखलाते हैं। मयङ्क शब्द मृगाङ्क का प्रा... रूप है। यहाँ मयङ्क और शशि दोनो शब्द चन्द्रमा के लिए ऐसे कहे जिससे उस... सकलङ्क होना सूचित होता है।

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्। व्यसनेन च मूर्खाणां नि... कलहेन वा। बुद्धिमान् का समय काव्यशास्त्र के विनोद मे व्यतीत होता है। ... का समय व्यसन मे निद्रा मे अथवा कलह मे व्यतीत होता।

यहाँ कवि दिखला रहे है कि सरकार के विश्रामके समय मे काव्यशास्... विनोद होगा। इसके बाद ही यह दिखलावेंगे कि रावण के विश्राम का ... व्यसन मे बीतता है। सरकार अपनी वाणी का प्रारम्भ ही रूपकालङ्कार ... रहे हैं। चन्द्रमा का रूपक सिंह से बाँधा गया है।

पूरब दिसि गिरिगुहा निवासी। परम प्रताप तेज बलरासी ...
मत्त नाग तम कुंभ बिदारी। ससि केसरी गगन बनचारी ...

अर्थ पूर्व दिशा रूपी पर्वत की गुहा मे रहनेवाला अत्यन्त प्रताप ... बल की राशि यह चन्द्ररूपी सिंह अन्धकाररूपी मतवाले हाथी का ... करके आकाशरूपी वन मे विचरण कर रहा है।

व्याख्या · यहाँ सुवेलाचल पर सरकार है। त्रिकूटाचल पर राव... उदयाचल पर चन्द्रमा है। सुवेलाचल पर पहिले उदयाचल की चर्चा ... पर्वत की गुफा मे रहता है और यह चन्द्रमारूपी सिंह उदयाचल है। ... तेज और बल की राशि है और यह चन्द्रमारूपी सिंह परम प्रताप तेज ... ...ति है। ऊपर दोहे मे प्रताप का सूचक मृगपति विशेषण दिया ... ...ल आगे कहेंगे।

गुफा से निकलते ही यह चन्द्ररूपी सिंह अन्धकाररूपी मत्तनाग पर टूट पड़ा और उसके मस्तक को विदीर्ण कर दिया। अन्धकाररूपी हाथी मारा गया। दिशा रक्त से लाल हो गयी। अब आगे गगनरूपी वन में बढ़ रहा है।

बिथुरे नभ मुकुताहल तारा। निसि सुदरी केर सिंगारा॥
कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई। कहहु काह निज निज मति भाई॥२॥

अर्थ तारारूपी मोतियाँ आकाश में बिखरी हैं। वे ही रात्रिरूपी सुन्दरी के शृङ्गार रूप हैं। प्रभु ने कहा भाई! चन्द्रमा में जो कालापन है वह क्या है? अपनी अपनी बुद्धि से कहो।

व्याख्या जब हाथी का मस्तक विदीर्ण हुआ तो गजमुक्ता छलककर वन में बिखर गयी। इसी भाँति अन्धकाररूपी हाथी के मस्तक के मुक्तारूप ये तारे हैं। उसके मारे जाने पर वनरूपी गगन में बिखर गये हैं।

यहाँ स्मरणालङ्कार है। चन्द्रमा में कलङ्क देखकर पुलस्त्य वंश में रावण का स्मरण हुआ। यथा रिषि पुलस्त्य जस विमल मयका। तेहि ससि महँ जनि होहु कलका। अत सबको अपनी अपनी बुद्धि के अनुकूल उत्प्रेक्षा के लिए आज्ञा हो रही है। जिस भाँति सरकार ने पूछा उसी भाँति उत्प्रेक्षा में ही कलङ्क के विषय में अपना अपना मत सब लोग कहेंगे।

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। ससि महुँ प्रगट भूमि कै झाईं॥
मारेहु राहु ससिहि कह कोई। उर महँ परी स्यामता सोई॥३॥

अर्थ. सुग्रीव ने कहा हे रघुराई! सुनिये। चन्द्रमा में पृथिवी का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ रहा है। किसी ने कहा कि राहु ने चन्द्रमा को मारा। उसके हृदय में वही कालापन पड़ गया है।

व्याख्या राजा सुग्रीव सम्पूर्ण भुवन के जानकार हैं। बड़े भूगोलवेत्ता हैं। सबकी यात्रा कर चुके हैं। यथा ताके भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला। यह कहते हैं कि चन्द्रमा में भूमि की परिछाईं पड़ी हुई है। सुन्दर उत्प्रेक्षा है। भूगोल में जलांश और स्थलांश दोनों हैं। यदि सम्पूर्ण स्थलांश को सामने करके भूगोल को देखा जाय तो सचमुच जल के बीच में स्थलांश चन्द्र की कालिमा के आकार का ही मालूम होता है। इसलिए चन्द्र के कलङ्क को पृथिवी की छाया बतला रहे हैं एवं यह लक्षित करा रहे हैं कि यह पृथिवीपति होने का अभिमान है। पृथिवीपति अपने को रत्नभुक् मानते हैं। अत रावण ने स्त्रीरत्न सीता का हरण किया। इसी प्रकार की बात शुम्भ-निशुम्भ ने भी जगदम्बा पार्वतीजी से कहलाया था। यथा : मां वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम्। भज त्वं चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः। परमैश्वर्य्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात्। एतद्बुध्या समालोच्य मत्परिग्रहता व्रज। हे चञ्चल नेत्रवाली! तू मुझे या बड़े पराक्रमी मेरे भाई निशुम्भ को स्वीकार कर। क्योंकि तू स्त्रियों में रत्न है। मुझे

स्वीकार करने से अतुल महा ऐश्वर्य तुझे प्राप्त होगा। ऐसा मन मे समझकर मेरी स्त्री होना स्वीकार कर ले।

शरीर के जिस अङ्ग पर चोट कडी पड जाती है वहाँ काला दाग पड जाता है। चन्द्रमा को राहु प्रायेण ग्रसा करता है। सो ग्रास करने के समय चन्द्रमा के उर मे जो राहु ने प्रहार किया है वही काला दाग चन्द्रमा के उर मे है।

लक्ष्य यह है कि राहु तम है अन्धकार है। तम अन्धकार अज्ञान पर्यायवाची शब्द हैं अर्थात् यह कलङ्क अज्ञानकृत है। अङ्गदजी ने भी सीताहरण का कारण कहते हुए दो पक्ष रावण के सामने उपस्थित किया था कि नृप अभिमान मोह बस किंवा। हरि आनेहु सीता जगदंबा। वे ही दोनो पक्ष यहाँ क्रम से दिखाये गये हैं।

यद्यपि यहाँ अनिश्चयात्मक सर्वनाम कोई का प्रयोग कवि ने किया है। नाम नही दिया फिर भी मानस के रहस्यज्ञो का यही निश्चय है कि यह उत्प्रेक्षा विभीषणजी की है रावण के चरण प्रहार से ये व्यथित हैं। अत इन्हे वही उत्प्रेक्षा सूझ रही है। यथा यातुधानेस भ्राता विभीषन नाम बन्धु अपमान गुरु ग्लानि चाहत गरन। गीतावली।

कोउ कह जब बिधि रतिमुख कीन्हा। सार भाग ससि कर हरि लीन्हा॥
छिद्र सो प्रगट इदु उर माही। तेहि मग देखिअ नभ परिछाही॥४॥

अर्थ किसी ने कहा कि जब ब्रह्मदेव ने रति का मुख बनाया तो चन्द्रमा का सार भाग हरण कर लिया। वही छेद चन्द्रमा के हृदय मे स्पष्ट है। उसी मार्ग से आकाश की परिछाही दिखाई पडती है।

व्याख्या यहाँ भी कोऊ शब्द का प्रयोग है नाम नही दिया गया। पर महात्माओ का अनुमान है कि यह उक्ति अङ्गदजी की है। अङ्गदजी नवयुवक है। शृङ्गार रस लिए हुए उत्तर देते हैं। सौन्दर्य मे काम की शक्ति रति की ही प्रधानता है। सो अङ्गदजी उत्प्रेक्षा करते है कि ब्रह्मदेव जब रति के मुख का निर्माण करने लगे तो चन्द्रमा के साराश को लकर ही निर्माण किया। अत चन्द्रमा क हृदय मे छिद्र हो गया है। वहाँ शून्य है और कुछ नही। उसी मार्ग से आकाश की नीलिमा झलकती है।

लक्ष्य यह है कि वरदान देने के समय ब्रह्मदेव ने इस रावण की बुद्धि हरण कर ली और उसी से सरकार की विजयलक्ष्मी का मुख बनाया। यथा रावन कुभकरण वर माँगत सिव बिरचि बाचा छल्यो। अत इसका हृदय शून्य हो गया है। मूर्खस्य हृदय शून्य। वह शून्यता ही कलङ्क सी दीख रहा है। कहा भी है कि फूले फरे न बेंत जदपि सुधा बरषहिं जलद। मूरख हृदय न चेत जौं गुरु मिलहिं बिरंचि सिव।

प्रभु कह गरल बधु ससि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा॥
बिष सजुत कर निकर पसारी। जारत बिरहवत नर नारी॥५॥

अर्थ : सरकार ने कहा कि विष चन्द्रमा का भाई है और ऐसा प्रिय है कि उसे हृदय मे बसाया है। अब उसी विष से संयुक्त किरनों को फैलाकर यह विरही नर नारियो को जलाया करता है।

व्याख्या : सरकार विरही हैं। अतः चन्द्रमा इन्हे दाहक मालूम होता है। अत: ये यह उत्प्रेक्षा करते हैं कि चन्द्रमा को भाई तो अनेक हैं। पर चन्द्रमा को कोई भी इतने प्रिय नही हैं जितना कि विष प्रिय है और जो अतिप्रिय होता है। वही हृदय मे बसता है। सो चन्द्रमा के हृदय मे विष बसा हुआ है। उसी गरल की झाग किरनो से मानो झरता है। जिससे विरहवन्त नर नारी जले जा रहे हैं। लक्षित यह कर रहे हैं कि दशशीश बन्धु प्रेम के कारण हमारा दाहक हो रहा है। खरदूषन त्रिसिरा कर घाता। सुनि दससीस जरे सब गाता। खर उसका भाई था उसको बहुत प्रिय था। उसके वध का बदला लेने के लिए ही रावण ने सीताहरण किया जो सरकार के विरहजन्य दाह का कारण है।

दो. कह हनुमंत सुनहु प्रभु, ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु उर बसति, सोइ स्यामता अभास ॥१२॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ने कहा हे प्रभो! सुनो चन्द्रमा तुम्हारा प्रिय दास है। तुम्हारी मूर्ति उसके हृदय मे बसती है वही श्यामता की झलक है।

व्याख्या : हनुमान्‌जी परम भक्त हैं। सरकार के दासो पर हनुमान्‌जी की सदा कृपादृष्टि रहती है। अत चन्द्रमा के ऊपर किये हुए आक्षेपो को न सहन करते हुए सरकार की उक्ति हो जाने पर भी बोल बैठे कि चन्द्रमा आपका प्रियदास है और दास के हृदय मे सरकार का निवास रहता है। यथा : सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ दोख धरे धनुबाना। करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि के उर डेरा। अतः जो श्यामता चन्द्र के हृदय मे झलकती है वह सरकार के शरीर की श्यामता है।

लक्ष्य यह है कि : द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु विजय जान सब कोऊ। विप्र स्राप ते दूनौ भाई। तामस असुर देह तिन पाई। भये निसाचर जाइ ते महाबीर बलवान। कुंभकरन रावन सुभट सुर बिजई जग जान। यह श्यामता कलङ्क नही सरकारी प्रेम ही इस रूप मे प्रादुर्भूत हुआ है। यथा : सुर रंजन भंजन महि भारा। जौ भगवंत लीन्ह अवतारा। तउ मैं जाइ बयरु हठि करऊँ। प्रभुसर प्रान तजे भव तरऊँ। होइहि भजन न तामस देहा। मन क्रम बचन मन्त्र दृढ एहा। तामस शरीर से दशशीश भजन करने मे असमर्थ है। अतः प्रभु की प्राप्ति के लिए प्रभु के बाणो द्वारा शरीर त्यागने का यह उपाय निकाला है।

दो. पवनतनय के बचन सुनि, बिहँसे राम सुजान।
दच्छिन दिसि अवलोकि प्रभु, बोले कृपानिधान ॥१२॥

अर्थ : पवनसुत के वचन सुनकर सुजान रामजी हँस पड़े। फिर दक्षिण दिशा की ओर देखकर कृपानिधान प्रभु बोले।

व्याख्या : हनुमान्‌जी बड़ी दूर की बात कहते है। इसपर रामजी प्रसन्न हो गये क्योंकि सुजान हैं। यथा : यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ। जान सिरोमनि कोसल राऊ। रीझत राम सनेह निसोते। को जग मंद मलिन मन मोते। सुजानता दिखला कर कृपानिधित्व दिखलाते है। शत्रु को भी सावधान करना है कि अब भी चेत जावे। पहिले पूर्व की ओर देखकर सब से बोले। अब दक्षिण की ओर देखकर केवल विभीषण से कहेंगे। इधर जो दृश्य दिखाई दे रहा है वह भी अद्भुत है। अतः उसे देखकर मानो रामजी को मोह हो रहा है। यथार्थ ज्ञान के लिए विभीषणजी को दिखला रहे हैं।

देखु विभीषन दच्छिन आसा। घन घमंड दामिनी बिलासा॥
मधुर मधुर गरजै घन घोरा। होइ वृष्टि जनु उपल कठोरा॥१॥

अर्थ : विभीषण ! दक्षिण की ओर देखो बादल घुमड़ आया है। बिजली चमक रही है। बादल मीठे मीठे घोर ध्वनि से गर्जन कर रहे हैं। मानो पत्थरो की कठोर वर्षा हो रही है।

व्याख्या : दक्षिण आशा कहकर दूरी द्योतित करते हैं। मालूम होता है कि दक्षिण ओर से बादल उमड़ आया है। परन्तु दूर से पर्वत शृङ्ग भी बादल से ही दिखाई पड़ते हैं। अतः बादल होने की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि बिजली भी चमकती है। इतना ही नही मधुर मधुर गर्जन करते करते घोर ध्वनि से भी गर्जन कर बैठता है। ऐसी तड़तड़ाहट हो रही है मानो कठोर पत्थर पड़ रहा हो। अत. यही सिद्ध होता है कि यह बादल ही है।

कहत विभीषन सुनहु कृपाला। होइ न तड़ित न बारिद माला॥
लंका सिखर उपर आगारा। तहँ दसकंधर देख अखारा॥२॥

अर्थ : विभीषणजी बोले कि हे कृपाल ! सुनिये। न तो बिजली है और न घन घमण्ड है। लङ्का के शिखर पर सुन्दर बँगला है। उसमें रावण अखाड़ा : नाच रंग देख रहा है।

व्याख्या : सरकार ने कहा था कि : घन घमंड दामिनी बिलासा। उसी का उत्तर देते हुए विभीषणजी कहते हैं कि न तो घन घमण्ड है और न बिजली ही चमक रही है। वहाँ दृश्य ही दूसरा है। वह लङ्का की चोटी पर वाला बँगला है। रावण वही बैठे बैठे नाच रग देख रहे हैं। मूर्खों का समय इसी भाँति व्यसन मे व्यतीत होता है। अखाडा उस स्थान को कहते हैं जहाँ गुणीजन अपना कलाकौशल दिखाते हैं।

छत्र मेघ डंबर सिरधारी। सोइ जनु जलद घटा अतिकारी॥
मंदोदरी स्रवन ताटंका। सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका॥३॥

अर्थ : जो मेघडम्बर छत्र सिर पर धारण किये हुए हैं वही मानो अति काली घटा है। मन्दोदरी के कान में कुण्डल है वही मानो बिजली चमक रही है।

व्याख्या : रावण के सिर पर जो काला छत्र है वह इतना विस्तृत है कि उसे देखकर मेघपटल का भ्रम होता है। उस छत्र का नाम भी मेघाडम्बर है। रावण के साथ रानी मन्दोदरी भी विराजमान है। उनके कानों के कुण्डल की झलक यहाँ बिजली को चमक सी दिखायी पड़ रही है। भाव यह कि ऐसा अद्भुत लोल कुण्डल रावण के ही पास है जिसकी झलक इतनी दूर से बिजली की चमक मालूम पड़ रही है।

बाजहि ताल मृदंग अनूपा। सोइ रव मधुर सुनहु सुरभूपा ॥
प्रभु मुसुकान समुझि अभिमाना। चाप चढ़ाइ बान संधाना ॥४॥

अर्थ : अनुपम ताल और मृदङ्ग बज रहे हैं। हे देवताओं के स्वामी सुनिये ! वही मधुर ध्वनि है। सरकार अभिमान समझकर मुसकुराये और धनुप चढ़ाकर बाण सन्धान किया।

व्याख्या : जैसे मृदङ्ग और ताल रावण के यहाँ बज रहे हैं वैसे लोक मे नही पाये जाते इसलिए अनूप कहा। जिससे बादल के गर्जने और पत्थर पड़ने सा शब्द होने पर भी सरस है अथवा मृदङ्ग से मधुर मधुर शब्द होता है। बीच बीच में ताल आ जाने पर थाप पड़ता है। उसी का घोर शब्द होता है और जो ताल बज रहे हैं उनका शब्द पत्थर पड़ने सा हो रहा है। सब मिलकर जो ध्वनि हो रही है वह सरस है।

सरकार के यहाँ अवकाश मे काव्यशास्त्र का विनोद होता है। रावण के यहाँ अवकाश के समय व्यसन होता है : यही मूर्ख का लक्षण है। सरकार अवकाश के समय शस्त्रास्त्र सुधारा करते हैं। रावण नाच देखते हैं। अतः सरकार की विजय निश्चित है।

रावण ने इस समय जो नाच गाने का आयोजन किया है वह यह दिखलाने के लिए किया है कि मुझे कोई भय नही है। मैं ऐसी ऐसी सेनाओं को किसी गिनती मे नही मानता। ऐसा रावण का अभिमान देखकर गर्वप्रहारी प्रभु ने भी अपने पराक्रम प्रदर्शन के लिए धनुप चढ़ाकर बाण सन्धान किया।

दो. छत्र मुकुट ताटंक तव, हते एकही बान।
सबके देखत महि परे, मरमु न कोऊ जान ॥
अस कौतुक करि राम सर, प्रबिसेउ आइ निषंग।
रावन सभा ससंक सब, देखि महा रस भंग ॥१३॥

अर्थ : तब एक ही बाण से छत्र मुकुट और कुण्डल काट दिया। सबके देखते वे पृथ्वी पर गिरे। मर्म किसीने न जाना। ऐसा खेल करके रामजी का बाण

लौटकर तरकस मे प्रविष्ट हो गया। बड़ा भारी रङ्ग में भङ्ग देखकर रावण की सभा की सभा डर उठी।

व्याख्या : एक ही बाण ने मेघाडम्बर छत्र को काट गिराया। रावण के सिर पर से मुकुट को नीचे गिरा दिया। मन्दोदरी के दोनों कानों में कुण्डलों को भी काट गिराया। बनैती की पराकाष्ठा है। न तो रावण को चोट आयी न मन्दोदरी के शरीर का बाण ने स्पर्श किया और न किसी ने बाण को आते जाते देखा। यह तो रावण मन्दोदरी तथा सम्पूर्ण सभा ने देखा कि छत्र मुकुट और कुण्डल गिर गये पर कैसे गिरे यह कोई समझ न सका।

इसी बाण से सरकार रावण का सिर गिरा सकते थे पर ऐसा करना उन्हे इष्ट न था। सरकार बड़े कौतुकी हैं। कौतुक के लिए बाण छोड़ा था। इसीलिए बाण ने तो किसी पर आघात नही किया। अभिमान तोडने के लिए छत्र मुकुट ताटंक गिरा दिया और लौटकर हाथ में भी नही आया। तरकस में प्रवेश कर गया। यहाँ की सभा ज्यो की त्यो बनी है पर रावण की सभा सशङ्क हो गयी। नाच गाना बन्द हो गया। यहाँ से सब लोग देख रहे है कि घन घमण्ड दामिनी अन्तर्धान हो गये और मधुर मधुर घोर गर्जन भी मेघ का बन्द हो गया।

कंप न भूमि न मरुत बिसेखा। अस्त्र सस्त्र कछु नयन न देखा॥
सोचहिं सब निज हृदय मँझारी। असगुन भयउ भयंकर भारी॥१॥

अर्थ : न भूकम्प हुआ न हवा ही विशेप रूप से चली। अस्त्र शस्त्र कोई आँख से दिखाई न पड़ा। सब अपने में सोचने लगे कि यह तो भारी भयङ्कर अपशकुन हुआ।

व्याख्या : ऐसी घटना के निर्धारण में तीन विकल्प उठते है। यदि भूकम्प आवे तो ऐसा हो सकता है। अति तीव्र वायु के झोके से भी ऐसा होना सम्भव है या हथियार फेंककर भी ऐसा किया जा सकता है। सो तीनो मे कोई बात न हुई। न भूकम्प हुआ न हवा का कोई ऐसा झोंका आया और हथियार कोई दिखायी न पड़ा। तब हुआ क्या?

इसी बात को सभा के लोग मन में विचारने लगे। सब इसी निर्णय पर पहुँचे कि अकस्मात् राजचिह्न छत्र मुकुट गिरना तथा सौभाग्यसूचक ताटङ्क का भी उसी समय गिर पडना असाधारण घटना है। जब रावण सीता हरण कर ले आये हैं तभी से लङ्का में भयङ्कर असगुन हो रहे है। यथा : जब ते तुम सीता हरि आनी। असगुन होहिं न जाहिं बखानी। पर यह असगुन तो सबसे भारी भयङ्कर हुआ। शत्रु की सेना सिर पर है। इस समय ऐसा अपशकुन हुआ सो क्या होनेवाला है? बोलता कोई नही पर मन मे सब यही एक बात सोच रहे हैं।

दसमुख देखि सभा भय पाई। बिहँसि बचन कह जुगुति बनाई॥
सिरौ गिरे संतत सुभ जाही। मुकुट परे कस असगुन ताही॥२॥

अर्थ : दशानन ने देखा कि सभा डर गयी। तब वह हँसकर युक्ति रचकर कहने लगा कि सिर का गिरना भी जिसके लिए सदा शुभ है उसके लिए मुकुट का गिरना अपशकुन कैसे है ?

व्याख्या : दशमुख हैं। बिना सिर घुमाये सबका मुख देख रहे हैं। सबके भय निवारणार्थ हँस पड़े और युक्ति की रचना करके ऐसी बात कही जिसमें सबका भय जाता रहे और सब लोग इसे सगुन समझने लगें। हँसने से उसी भाव को दृढ किया।

रावण कहते हैं कि सामान्य लोगों के लिए मुकुट का गिरना अवश्य असगुन है। परन्तु सिर गिरने से बढकर असगुन क्या होगा ? सो मेरा जब सिर गिरा तो मुझे वरदान मिला। मेरे ऊपर सामान्य नियम लागू नही हो सकता। मुकुट का गिरना भले ही दूसरो के लिए असगुन हो पर मेरे लिए तो सगुन ही है। ऐसा कहकर सभा विसर्जन करता है।

सयन करहु निज निज गृह जाई। गवने भवन सकल सिर नाई ॥
मंदोदरी सोच उर बसेऊ। जबतें स्रवनपूर महि खसेऊ ॥३॥

अर्थ : तुम सब अपने अपने घर जाकर सोओ। सब निशाचर सिर नवाकर अपने अपने घर गये पर जब से कान का कुण्डल पृथ्वी पर गिरा तब से मन्दोदरी के हृदय मे चिन्ता बस गयी।

व्याख्या : रावण ने कहा कि भय की कोई बात नही है। तुम लोग अपने अपने घर जाकर सोओ। लङ्का की सावधानी से रक्षा करने को भी नही कहता है। उनकी बातें सुनकर सब सिर झुकाकर चले। सिर झुकाने से रावण को प्रणाम करना कहा तथा यह भी द्योतित किया कि रावण की बात सभासदो के गले नही उतरी। वे सब सिर झुकाये हुए अति चिन्तित होकर घर गये।

मन्दोदरी को कभी कभी विशेष घटना घटित होने पर सोच हो जाता था। लङ्कादाह पर सोच हुआ था। समुद्र पर सेतुबन्ध हो जाने पर सोच हुआ था और तब तब उसने रावण को समझाया भी। अपने अहिवात : सौभाग्य की भिक्षा भी उसने माँगी पर रावण ने बात अनसुनी कर दी। पर इस बार सौभाग्य का चिह्न ताटङ्क के भूमि पर गिरने से उसके हृदय मे सोच ने डेरा कर लिया।

मन्दोदरी का रावण को समझाना : तीसरी बार

सजल नयन कह जुग कर जोरी। सुनहु प्रानपति बिनती मोरी ॥
कंत राम बिरोध परिहरहू। जानि मनुज जनि हठ मन धरहू ॥४॥

अर्थ : आँखो मे आँसू भरकर दोनो हाथ जोड़कर कहने लगी। हे प्राणनाथ ! मेरी विनती सुनो। हे कन्त ! रामजी से विरोध छोड़ दो। उन्हे मनुष्य जानकर मन मे हठ न पकड़ो।

व्याख्या : जब सब चले गये एकान्त हो गया। तब रावण से विनती करने लगी। इसके पहिले चरन नाइ सिर अचल रोपा। इस भांति विनती की थी। पर आज तो और भी दीन हो गयी है। आंखो मे आंसू भरकर दोनो हाथ जोडकर विनती कर रही है कि आप प्राणपति हैं। आपके ही कल्याण से मेरा कुशल है। स्त्री को प्राणपति को छोड़कर दूसरी गति नही होती। आपने औरो की विनती नही सुनी पर मेरी सुनिये।

क सुख तनोति इति कन्त । सुख देनेवाले को कन्त कहते हैं। आप कन्त हैं, मै दुःखी हूँ, मुझे सुखी कीजिये। सुखी करने का उपाय कहती है। रामजी से विरोध करना आप छोड दें। रामजी किसी का विरोध नही करते। विरोध आप कर रहे हैं। राम विरोध कहने का भाव यह है कि राम विरोध से कुशल नही होता। यथा : कहुधौ कत कुशल बीती केहि किये राम अपराधु। आप रामजी को मनुष्य मानने का हठ छोड दें। मनुष्य क्या ऐसे होते हैं। मनुष्य शरीर धारण किये हुए भगवान् की अवहेलना करना उन्हे न पहिचानना मूढता है. अवजानन्ति मा मूढा मानुषी तनुमाश्रितम्। पर भावमजानन्तो मम लोकमहेश्वरम्। गीतायाम्। श्री राम बाण का स्पर्श मन्दोदरी के कानो से हो गया है। अत. उसे इतना ज्ञान हो गया कि प्रभु के विश्वरूप का वर्णन कितना सुन्दर कर रही है।

दो. बिस्वरूप रघुबंस मनि, करहु बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेद कर, अग अंग प्रति जासु ॥१४॥

अर्थ : रघुकुल मणि रामजी सर्वरूप हैं। मेरी बात का विश्वास करो। जिसके प्रत्येक अग मे लोको की कल्पना वेद करता है।

व्याख्या : उसी परम महेश्वर भाव को जनाती हुई मन्दोदरी कहती है कि रघुवशमणि रामजी विश्वरूप हैं। यह सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् उन्ही का रूप है। रामजी के अन्य नाम न लेकर रघुवशमणि कहने से सूचित करती है कि तापनीयश्रुतियो मे उनका रघुकुल मे अवतार ग्रहण करना वर्णित है। यथा : रघोः कुलेऽखिल राति राजते यो महीस्थितः। मेरा कहना वेदानुमोदित है अत विश्वास करो। वेद उनके अग अग मे लोको की कल्पना करता है। यथा .

नाभ्या आसीदन्तरिक्ष शीर्ष्णो. द्यौ. समवर्तत।
पद्भ्या भूमिर्दिश. श्रोत्रास्तथा लोकानकल्पयन् ॥

इसी का उपबृहण करता हुआ श्रीमद्भागवत कहता है :

पातालमेतस्य हि पादमूल पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम्।
महातल विश्वसृजोऽथ गुल्फौ तलातल वै पुरुषस्य जङ्घे ॥
द्वे जानुनी सुतल विश्वमूर्तेरूरुद्वय वितल चातलञ्च।
महीतल तज्जघन महीपते नभस्तल नाभिसरो गृणन्ति ॥
उर स्थल ज्योतिरनीकमस्य ग्रीवामहर्वदन वै जनोऽस्य।
तपोरराटी विदुरादिपुस सत्य तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः ॥

उस सहस्रशीर्षा पुरुष का पाद मूल पाताल है। रसातल उसका चोगा है। महातल टखना . गुल्फ है। तलातल पिंडली है वितल और अतल दोनो जंघे हैं। पृथ्वी उसका जघन है आकाश उसकी नाभि है। तारागण उसके वक्षःस्थल हैं। महर्लोक उसकी ग्रीवा है। जनलोक उसका चेहरा है। तपोलोक उसका ललाट है और ब्रह्म : सत्य लोक उसका सिर है।

पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अँग अँग बिश्रामा ॥
भृकुटि बिलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घन माला ॥१॥

अर्थ : पाताल जिसके चरण हैं। ब्रह्मलोक जिसका सिर है अन्य लोक जिसके अङ्ग अङ्ग मे बसते हैं। जिसका भ्रूसञ्चालन भयङ्कर काल है। सूर्य नेत्र हैं और बादल केश है।

व्याख्या : पातालादि सात लोक नीचे हैं। और ब्रह्मलोकादि सात ऊपर हैं। अतः सबसे नीचे पाताल है सबसे ऊपर ब्रह्मलोक है। यहाँ मन्दोदरी ने रावण ऐसे पण्डित को जताने के लिए पद पाताल सीस अजधाम कह देना ही यथेष्ट समझा। अन्य लोको के लिए कह दिया कि बीच के अग हैं। भाव यह विश्वरूप भगवान् के शरीर ही मे चौदहो लोक हैं। वे चौदहो लोको की आत्मा हैं। हम लोग उनके जघन : कटि भाग पृथिवीतल के कीट स्थानीय हैं। हमारा उनका वैर कैसा ?

उनके भृकुटिविलास से सृष्टि और लय होता है। यथा : भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहुं सकट परइ कि सोई। इसलिए भृकुटिविलास को भयकर काल कहा : क्योकि अड कटाह अमित लयकारी। काल सदा दुरतिक्रम भारी।

सूर्य ही चक्षुमात्र के अनुग्राहक हैं। इसलिए सूर्य को उनका नेत्र बतलाया। कहा भी है : द्यौरक्षिणी चक्षुरभूत् पतङ्गः। भाग.। बड़े बड़े बाल कभी आँखो पर आ जाते हैं और उन्हे ढक लेते हैं। इसलिए बालों को मेघमाल कहा। यथा : ईशस्य केशान् विदुरम्बुवाहान्। भाग.।

जासु घ्रान अस्विनीकुमारा। निसि अरु दिवसु निमेष अपारा ॥
स्रवन दिसा दस बेद बखानी। मरुत स्वास निगम निज बानी ॥२॥

अर्थ : अश्विनीकुमार जिसकी नाक : घ्राणेन्द्रिय हैं। जिसका पलक पड़ना ही अपार रात और दिन है। दसो दिशाएँ जिसके कान हैं ऐसा वेद वर्णन करते हैं। वायु जिसका श्वास है और वेद उनकी निजवाणी है।

व्याख्या : अश्विनीकुमार दो हैं। दोनों साथ ही रहते और साथ ही सब व्यापार करते हैं। इसी से उनकी उपमा घ्राणेन्द्रिय से दी गयी। यथा : नासत्यदस्रौ परमोऽस्य नासे। भाग.। अपार रात दिन तो कल्प और कल्पान्त है। भगवद्गीता मे उसी को यथार्थ रात दिन माना है। यथा : सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः। रात्रि युगसहस्रान्ता तेऽहोरात्रविदो जनाः। अर्थ : ब्रह्मदेव का दिन एक सहस्र युग :

चतुर्युगी का और रात्रि भी एक सहस्र युग की होती है। जो इस रात दिन को जानता है वही अहोरात्रविद् है।

दशो दिशाएँ श्रवणेन्द्रिय के अनुग्राहक हैं। इसलिए उन्हे सरकार का श्रवण कहा। दिश. श्रोत्रा। यजु ऐसा स्वय वेद कहते हैं। वेद उनकी निजी वाणी है अर्थात् ब्रह्मा की शक्ति जो वाणी है उस वाणी से यहाँ अभिप्राय नही है। यहाँ उस वाणी से अभिप्राय है जो परमेश्वर द्वारा ब्रह्माजी के हृदय मे पहुँचाई गयी। यथा : यो ब्राह्मण विदधाति पूर्वं यो वै वेदाश्च प्रहिणोति तस्मै। तह देव मात्म-बुद्धिप्रकाश मुमुक्षुर्वै शरणमह प्रपद्ये। श्वेताश्वतरोपनिषदि। जो परमेश्वर पहिले ब्रह्मा को बनाता है और ब्रह्मा के हृदय मे पहिले वेदो को पहुँचाता है मोक्ष के लिए मैं उसके शरण मे जाता हूँ। अर्थात् वेद स्वय सरकार की वाणी है। यह किसी के बनाये हुए नही हैं। वे अपौरुषेय हैं।

अधर लोभ जम दसन कराला। माया हास बाहु दिगपाला॥
आनन अनल अबुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा॥३॥

अर्थ . लोभ जिसके होठ हैं, यम जिसके कराल दाँत है, माया जिसकी हँसी, दिक्‌पाल जिसकी भुजाएँ अग्नि मुख वरुण जिह्वा जगत् की उत्पत्ति पालन और प्रलय जिसकी इच्छा है।

व्याख्या नीचे के होठ को लोभ कहा है। दोनो मे ग्रहण करना साधारण धर्म है। कहा भी है कि ओष्ठोत्तरोष्ठोऽधर एव लोभ.। भाग। यम को कराल-दष्ट्रा कहा है। चर्वण करना साधारण धर्म है। यथा : दष्ट्रा यम स्नेहकला द्विजानि। माया उनकी हँसी है। इसी मे पडा हुआ मनुष्य उन्मत्तसा हुआ फिरता है। यथा हासो जनोन्मादकरी च माया। और दिक्‌पाल लोग उनके बाहुस्थानीय हैं। क्योकि सब दिशाओ का पालन करते हैं। यथा इन्द्रादयो बाहव आहुरुस्रा। अग्नि को मुख कहा है। क्योकि उसी से यज्ञ पुरुष भगवान् आहुति ग्रहण करते हैं। यथा मुखमग्निरिद्ध' जिह्वा को वरुण कहा रसमय होने से। यथा रस एव जिह्वा। भा०। उत्पत्ति पालन और प्रलय को उनकी इच्छा बतलाया। क्योकि उन्ही से इस जगत् की उत्पत्ति स्थिति और भङ्ग होता है। यथा जन्माद्यस्य यत। वेदान्तसूत्र।

रोमराजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा॥
उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु की बहु कलपना॥४॥

अर्थ अठारह धान्यो का समूह जिसके रोम की पक्तियाँ हैं। पर्वत हड्डी है। नदियाँ नसो का जाल है। समुद्र पेट है। नीचे की इन्द्रिय नरक है। इस प्रकार विश्वरूप प्रभु की अनेक कल्पनाएँ हैं। भृञ्+घञ्=भार.।

व्याख्या . सम्पूर्ण पृथिवी अठारह प्रकार के धान्यो के समूह से भरी है। यथा यवगोधूमधान्यानि तिला कङ्गुकुलत्थका। मापा मुद्गा मसूराश्च निष्पावा

श्यामसर्षपा । गवेधुकाश्च नीवारा आढक्योऽथ सतीनका । चणकाश्चीनकाश्चैव धान्यान्यष्टादशैव तु ।

१ जव, २ गेहूँ, ३ धान, ४ तिल, ५ कगुनी, ६ कुथली, ६ उडद, ८ मूग, ९ मसूर, १० वाजला, ११ सांवा, १२ सरसो, १३ गवेधुका मुनि अन्न, १४ तिन्नी, १५ आढक्य, १६ केराव, १७ चना, १८ चीना ये अठारह धान्य हैं। विश्वम्भर के रोम से विश्वका पोषण होता है भृञ् धारणपोषणयो । भ्रियते अनेनेति भारो धान्यम्। कारण म घञ् प्रत्यय होता है। शैल को अस्थि कहा। क्योंकि पहाड भी अस्थि की भाँति पृथिवी को धारण किये हैं। यथा गिरयोऽस्थि-सघा । नदियो को नस जाल कहा । क्योंकि नदियाँ नसो की भाँति पृथिवी का सिञ्चन करती हैं। यथा नद्योऽस्यनाड्य । उदर को उदधि कहा भण्डार होने से। यथा कुक्षि समुद्रा । नीचे की इन्द्रिय को यातना कहा शुद्धि का कारण होने से। इस भाँति विश्वरूप भगवान् की अनेक प्रकार की कल्पनाएँ हैं। यथा ब्राह्मानन क्षत्रभुजो महात्मा विड्रूरुरङ्घ्रि श्रितकृष्णवर्ण । ब्राह्मण मुख है, क्षत्रिय भुजा है, वैश्य जघा है और शूद्र चरण हैं इत्यादि। इससे भगवान् का सगुण साकार रूप स्वयसिद्ध हो जाता है।

दो अहकार सिव बुद्धि अज, मन ससि चित्त महान ।
मनुज बास सचराचर, रूप राम भगवान ॥१५॥

अर्थ अहकार शिव बुद्धि ब्रह्मा मन चन्द्रमा और चित्त महत् तत्व है। मनुष्य का निवासस्थान चर अचरमय रूप भगवान् राम है।

व्याख्या बाह्य करणा का वर्णन करके अब अन्त करण का वर्णन करते हैं। अन्त करण चार है मन, बुद्धि, चित्त अहङ्कार। यजमान रूप होने से भगवान् अष्टमूर्ति शिवजी को अहङ्कार कहा। गिरापति होने से ब्रह्मदेव का बुद्धि कहा। सब विकार कोष होने से मन को चन्द्रमा कहा। यथा अव्यक्तमाहुर्हृदय मनश्च सचन्द्रमा सर्वविकारकोश और सत्वप्रधान होने से महत् तत्व को चित्त कहा।

दो अस बिचारि सुनु प्रानपति, प्रभु सन बैरु बिहाइ ।
प्रीति करहु रघुबीर पद, मम अहिवात न जाइ ॥१५॥

अर्थ ऐसा विचार कर हे प्राणपति ! सुनो वैर छोडकर प्रभु रघुवीर के चरणो मे प्रीति करो जिसमे मेरा सुहाग न जाय।

व्याख्या आपने ऐसे प्रभु से वैर ठान रक्खा है जो कुशल का परम आश्रय है। उससे विरोध करने से कैसे कुशल होगा ? विचार तो करो विश्वरूप से वैर करनेवाले को स्थान कहाँ है। आप मेरे प्राणपति हैं। आपके कुशल से मेरा सुहाग है। आप यदि अपने ऊपर दया न करें तो मेरे ऊपर दया करके चरणो मे प्रेम करिये। विरोध करने से आप अपनी गति तो बना लेंगे पर मेरा सुहाग चला जायगा और प्रेम करने से आपकी भी सद्गति निश्चित है और मेरा सुहाग भी

बना रहेगा। सुनहु प्रान पति से उपक्रम और अस विचार सुनु प्रानपति से उपसंहार। कन्त राम विरोध परिहरहू से उपक्रम और प्रभु सन बैर बिहाइ से उपसंहार। मन्दोदरी के कहने का भाव यह कि मेरे सुहाग के अक्षुण्ण रहने का एक ही उपाय है : प्रीति करहु रघुबीर पद। क्योंकि वे विश्वरूप होने से तुम्हारी भी आत्मा है। ब्रह्म प्रभु जीव सेवक प्रभु सेवकहि समरु कस।

बिहँसा नारि बचन सुनि काना। अहो मोह महिमा बलवाना ॥
नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं ॥१॥

अर्थ : स्त्री का वचन कान से सुनकर जोर से हँसा। कहने लगा : अहो मोह की महिमा बड़ी बलवती है। सब लोग स्त्री का स्वभाव जो कहते हैं सो सत्य ही कहते हैं कि उनके हृदय मे सदा आठ अवगुण रहते हैं।

व्याख्या : मन्दोदरी नारायण की महिमा कहती है। रावण मोह की महिमा की स्तुति कर रहे हैं। स्तुति का भाव यह कि जिसके ऊपर ममता रहती है उसके प्रति सदा मन पापशङ्की बना रहता है। इसकी मेरे ऊपर ममता है। अत युद्ध मे मेरे लिए अनिष्ट की शङ्का कर रही है। अथवा मेरी स्त्री होते हुए भी इसे मेरे पराक्रम का ज्ञान नही है। यही मोहमहिमा है। नारि बचन कहने का भाव यह कि स्त्री है। अतः सुहाग के भय से व्याकुल है। सुनि काना का भाव यह कि कान से सुना पर मन मे स्थान न दिया। मन्दोदरी इस स्वभाव से परिचित थी। अत उसने सुनहु करके ही उपक्रम किया और सुनु कहके ही उपसहार करती है। पर रावण हँस पडे कि यह इतनी बडी बेवकूफ है कि मुझे उपदेश देने का साहस करती है। मोह की महिमा देखो कि उस तपस्वी को भगवान् बतला रही है और मुझे निर्बल समझती है।

पहिले मैंने समझा था कि स्त्रियो से चिढकर लोगो ने अनृत साहस माया इत्यादि श्लोक गढ लिये है पर इसकी बातें सुनकर तो मालूम होता है कि उन लोगो ने सत्य ही कहा है। ये बातें चाहे कितनी भी बुद्धिमानी की करें पर इनके हृदय मे आठ अवगुण सदा डेरा जमाये रहते है। यथा :

साहस अनृत चपलता माया। भय अबिबेक असौच अदाया ॥
रिपु कर रूप सकल तैं गावा। अति बिसाल भय मोहि सुनावा ॥२॥

अर्थ : १. साहस २ झूठ ३. चपलता ४ माया ५ भय ६. अविवेक ७ अपवित्रता और ८ निर्दयता ये ही आठो अवगुण हैं। तू ने शत्रु का सब रूप वर्णन किया और मुझे बड़ा भारी भय सुनाया।

व्याख्या : १. मुझे सिखाने चली है यह इसका साहस है। २. शत्रु तो सुवेल के एक श्रृङ्ग पर सुग्रीव के गोद मे सिर डाले पड़ा है। उसे पद पाताल सीस अज धामा बतला रही है। यह इसका अनृत है। ३ इसे अपने वचन की पुष्टि के लिए

युक्ति तो कोई मिलती नहीं तो तुरन्त करहु वचन विश्वास कह रही है। यह इसकी चपलता है। ४ सजल नयन कह जुग कर जोरी। यह इसकी माया है। ५ विरोध त्याग के लिए प्रार्थना करती है। यह इसका भय है। ६ प्रीति करहु रघुबीर पद कहकर मनुष्य के चरणों में प्रीति करने को कहती है। यह इसका अविवेक है। मेरे ऐसा वीर कौन है ' सूर कवन रावन सरिस स्वकर काटि जेहि सीस। हुने अनल अति हरष बहु बार साखि गिरीस। सो उसे अविवेक से रघुवीरपद प्रीति करने को कहती है। रघुवीर ने भी कभी अपना सिर काटकर हवन किया है ? ७ अपना ही स्वार्थ देखती है। मेरी प्रतिष्ठा की ओर दृष्टि ही नहीं है। बस मम अहिवात न जाइ। एकमात्र यही लक्ष्य है। यह इसका आभ्यन्तर अशौच है। ८ इसे अपनी प्रजा पर भी दया नहीं है। जो आवै मरकट कटलाई। जियहिं बिचारे निसिचर खाई। सो इसमें बाधा कर रही है। यह इसकी निर्दयता है।

रूप सकल का भाव यह कि पाताल से लेकर ब्रह्मलोक तक सबको शत्रु का रूप बतला दिया। इस भाँति अपने समक्ष मे बड़ा भारी भय मुझे सुनाया। अथवा सब भयो से बड़ा प्राण भय है। सो शत्रु से तूने मुझे निश्चित प्राणभय बतलाया।

सो सबु प्रिया सहज बस मोरे। समुझि परा प्रसाद अब तोरे ॥
जानेउ प्रिया तोरि चतुराई। एहि बिधि कहेउ मोरि प्रभुताई ॥३॥

अर्थ हे प्रिये ! वह सब तो स्वभाव से ही मेरे वश मे है। तुम्हारे प्रसाद से यह बात अब समझ म आयी है। हे प्रिये ! तुम्हारी चतुराई मैंने जान ली। इस विधि से तुम मेरी प्रभुता कह रही हो।

व्याख्या पाताल से ब्रह्मलोक तक तो हमारे वश मे है। इस भाँति शत्रु के अङ्ग प्रत्यङ्ग पर मेरा अधिकार है। मैं समझा था कि उसे अभी जीतना है। तेरे प्रसाद से अब बात समझ मे आयी है कि उसे जीतना नहीं है वह जीता जिताया ही ठहरा। तू प्रिया है। सदा प्रिय आचरण किया करती है। तू शत्रु वर्णन के व्याज से मेरी प्रभुता का वर्णन कर रही है अत्यन्त अभिमानियो का यह स्वभाव होता है कि प्रत्येक बातो म अपनी बड़ाई का अर्थ बड़े प्रयत्न से लगाया करते हैं और अपने विरुद्ध बातो को भी अपनी बड़ाई के अनुकूल सिद्ध करने का प्रयत्न किया करते हैं। रावण महा अभिमानियो के अग्रगण्य हैं। अत बैठकबाजी से मन्दोदरी की बातें उड़ाना चाहते हैं।

तव बतकही गूढ़ मृगलोचनि। समुझत सुखद सुनत भय मोचनि ॥
मदोदरि मन महुँ अस ठयऊ। पियहि कालबस मति भ्रम भयऊ ॥४॥

अर्थ हे मृगनयनी ! तेरी गूढ़ बातें समझने मे सुख देनेवाली और सुनने मे भय सूचित करनेवाली है। मन्दोदरी ने मन मे निश्चय कर लिया कि प्रियतम का कालवश होने से मतिभ्रम हो गया है।

व्याख्या गूढ का अर्थ ही छिपा हुआ है। रावण मन्दोदरी की बातो को गूढ बतलाते हैं। क्योकि उसका भेद छिपा हुआ है। सुनने मे तो उससे भय की सूचना मिलती है पर यदि डूबकर समझे तो उससे बडा सुख मिलता है। भावार्थ यह कि तुम्हारी बात सुनने मे तो ऐसी मालूम होती है कि तुम शत्रु की महिमा कह रही हो और मुझे भय की सूचना दे रही हो। पर उसी बात को जब डूबकर समझे तो मालूम होता है कि तुम हमारी प्रशसा कर रही हो और निर्भय रहने के लिए उत्साह बढा रही हो।

रावण के इस उत्तर सुनने मे मन्दोदरी को निश्चय हो गया कि इन्हे मतिभ्रम हो गया। यह सीधी बात को उलटी समझने लगे। यही काल के निकट आने का चिह्न है। भाव यह है कि रावण को ऐसा मतिभ्रम पहिले नही होता था। मन्दोदरी की सम्मति पर ध्यान देता था। सो ध्यान तो अब भी देता है। पर अर्थ उलटा लगाता है।

दो एहि विधि करत बिनोद बहु, प्रात प्रगट दसकध।
सहज असक लकपति, सभा गयउ मदअध॥
फूलै फरै न बेंत, जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरुख हृदय न चेत, जौ गुरु मिलहिं बिरचि सिव॥१६॥

अर्थ . इस विधि से अनेक प्रकार से विनोद करते हुए पौ फटने पर स्वाभाविक ही अशङ्क मदान्ध लङ्कापति दशकन्धर सभा मे गये।

यदि बादल से अमृत बरसे तो भी बेत फूलता फलता नही। इसी भाँति यदि शिव या ब्रह्मदेव गुरु मिलें तो भी मूर्ख के हृदय म चेत नही होता।

व्याख्या मद से अन्ध है। इसलिए इतने बडे अपशकुन होने को भी कुछ नही गिनता। यथा अतिगर्व गनइ न सगुन असगुन सहज अशङ्क है। अत मन्दोदरी के अति विशाल भय दिखलाने पर भी कुछ भी प्रभावित नही हुआ। सारी रात उसकी बातो को टालता और विनोद करता गया। जब रात बीत गयी प्रात काल हो गया तब सभा म गया। लकापति है। अत नित्य समय से सभा मे जाना अपना कर्त्तव्य समझता है।

जिस भाँति जल की वर्षा होने से वृक्ष फूलने फलने लगते है पर बेंत नही फूलता फलता। बगाल के बेंतो म फल और फूल देखे भी गये हैं पर वे भी नही के बराबर। न तो उससे फूल म कोई गुण फूल के सौन्दर्य सुगन्ध आदि देखे जाते है और न उसके फल म फल के गुण स्वाद प्रभावादि होते हैं। अत उस फूलने फलने को फूलना फलना नही कह सकते। यदि कहिए कि अमृत की वर्षा से उसके फूल फल मे रसोत्पत्ति होकर उसे फूल फल कहलाने योग्य बना देवेंगी तो यह भी सम्भव नही है। क्योकि जिसमे जो गुण स्वभाव से नही है उसे अमृत का सिञ्चन भी नही ला सकता। पर्वत पर के बेंतो मे तो फल फूल एकबारगी नही होते।

फारसी के महाकवि शेख सादी ने अपने प्रख्यात रचना गुलिस्तां मे कहा है कि • अब्र गर आवे जिन्दगी वारद । हरगिज अज शाखे बेद बर नखुरी । यदि अभ्र मेघ अमृत की वर्षा करे तब भी तुम बेंत की शाखा से फल नही खा सकते । यहाँ पर नही खा सकते शब्द ध्यान देने योग्य है । फल खाया जाता है । फूल सूँघा जाता है । जो खाया न जा सके या सूँघा न जा सके उसकी गणना फूल फल मे नही । वह नगण्य है । इसीसे गोस्वामीजी कहते हैं कि फूलै फलै न बेंत ।

यहाँ मूर्ख की उपमा बेंत से उसके चेत होने की उपमा फूलने फलने से और शिव ब्रह्मदेव के गुरु मिलने की उपमा अमृत बरसनेवाले मेघ से है । यहाँ विचार करने की बात है कि चेत से अभिप्राय ऐसे चेत से है जिसमे विवेक की सामर्थ्य हो खाने पीने आदि का स्वाभाविक चेत तो मूर्ख को भी रहता है । अत स्पष्ट है कि फूलने फलने से अभिप्राय ऐसे फूल फल देने से हो जिससे कुछ काम निकल सके ।

कहा भी है कि सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहित मूर्खस्य नास्त्यौषधम् । सबकी दवा शास्त्र मे कही गयी है पर मूर्ख की दवा नही है । यहाँ गोस्वामीजी ने रावण को मूर्ख कहा है । यद्यपि महात्मा रावण बडे पण्डित थे । इनके रचे हुए वेदभाष्य के अश अब भी जहाँ तहाँ पाये जाते हैं । फिर भी जो विचार से काम न ले वह पण्डित होने पर मूर्ख है ।

७० अगददूतप्रसग

इहाँ प्रात जागे रघुराई । पूछा मत सब सचिव बोलाई ॥
कहहु बेगि का करिअ उपाई । जामवत कह पद सिरु नाई ॥१॥

अर्थ यहाँ रामजी प्रात काल जागे और सब मन्त्रियो को बुलाकर सलाह पूछी कि बतलाओ शीघ्र कौन उपाय किया जाय । चरणो मे सिर नवाकर जाम्बवानजी बोले ।

व्याख्या • वहाँ का हाल कहकर अब यहाँ जहाँ कवि की उपस्थिति है का हाल कहते हैं । वहाँ तो अशङ्क लकापति रात भर स्त्री से विनोद करते रहे । यहाँ भी शङ्का नही है । सरकार रात भर सोते रहे । प्रात काल रावण मदान्ध होकर सभा मे जाकर विराजमान हुए सभा की शोभा बढाने के लिए मन्त्र के लिए नही और सरकार ने जागते ही सब मन्त्रियो को बुलाया । मन्त्रियो से सम्मति लेकर तब नीति का निर्णय करते हैं । नीति है कि अचिर कुरु राजेन्द्र भोजने शयने रणे । हे राजन् ! भोजन शयन और रण मे शीघ्रता करनी चाहिए । अत जो कुछ करना है उसमे शीघ्रता होनी चाहिए । उपाय चार हैं साम दान भेद और दण्ड । इनमे से किस उपाय का अवलम्बन करना चाहिए ।

सब मन्त्रियो से प्रश्न किया गया । पर जाम्बवानजी चरणो मे सिर नवाकर बोले । ये मन्त्रियो मे वृद्ध हैं । अत इनका अधिकार बडा है । यथा जामवत मन्त्री अति बूढा ।

सुनु सर्बग्य सकल उर बासी । बुधि बल तेज धरम गुन रासी ॥
मंत्र कहहुँ निज मति अनुसारा । दूत पठाइअ बालिकुमारा ॥२॥

अर्थ : हे सर्वज्ञ ! सबके हृदय मे रहनेवाले ! बुद्धि बल तेज धर्म और गुन के राशि ! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार सम्मति देता हूँ । बालि के बेटे अंगद को : अपना दूत बनाकर भेजिये ।

व्याख्या : हम लोग अल्पज्ञ हैं : अल्पगुण हैं । आप मोघसंकल्प और परावरदर्शी है । सर्वज्ञ सकलगुण राशि सत्यसन्ध और सब उरवासी को क्या सलाह दे सकते है । जो प्रभु निर्णय कर वही ठीक है । पर जब मुझसे मन्त्र पूछा गया तो अपनी मति के अनुसार कहूँगा । मेरे मन मे यही बात ठीक जँचती है कि बालि के बेटे को दूत बनाकर भेजा जाय । पहिली बात यह कि चारो उपायो मे प्रथम साम है । विशेषत. जब शत्रु की ओर से न सेतुबन्ध मे कोई बाधा उपस्थित की गयी और न हम लोगो के यहाँ ठहरने मे ही कोई रोक-टोक की गयी । अत' दूत भेजकर उससे सन्धि की वार्त्ता की जाय । हनुमान्‌जी न भेजे जायँ नही तो शत्रु समझेगा कि रामदल मे केवल एक वीर हनुमान् ही है । उसी को बार-बार भेजते हैं । दूसरी बात यह कि रामदूत का पद हनुमान्‌जी को मिल चुका है अङ्गद को नही मिला है । अङ्गद के मन मे इस पद की अभिलाषा है । सीताजी का समाचार लेने के लिए अङ्गदजी तैयार हो गये थे । परन्तु मेरे रोकने से रुक गये । यथा : जामवंत कह तुम सब लायक । पठइअ किमि सबही कर नायक । अतः इस बार अङ्गद का ही जाना प्राप्त है । और भी बात है अङ्गद बल और नियम मे बालि के तुल्य हैं । यदि रावण अपने स्वाभाविक अभिमान से अङ्गद का निरादर करना चाहेगा तो ये बल के मन्थन मे भी समर्थ हैं । रावण अपने भाई को सँभाल न सका । वह आकर हमारे दल मे मिल गया । उसे दिखाना है कि मैं उसको अपना दूत बनाकर भेज रहा हूँ । जिसके पिता का मैने वध किया है यदि तुम मे सामर्थ्य हो तो तुम इसे अपनी ओर मिला लो । यदि इतना भी नही कर सके तो मेरा सामना करने का व्यर्थ प्रयास क्यो करते हो । यह भी बात है कि अङ्गद बालि के पुत्र हैं । रावण बालि का सखा था । अत रावण किसी की बात सुन सकता है तो अङ्गद की ही बात सुन सकता है । अङ्गद मे प्रशस्त दूत के सब गुण भी हैं । यथा साकारो निस्पृहो वाग्मी नानाशस्त्रविचक्षण । परचित्तावगन्ता च राज्ञो दूत प्रशस्यते । शारीरिक सम्पत्तिवाला इच्छारहित बोलनेवाला नानाशास्त्र का जानकार दूसरे के मन की बात जाननेवाला पुरुष का ही राजदूत होना प्रशंसित है । अत सब जगह से विचार करने पर अङ्गद को ही दूत बनाकर भेजना ठीक जँचता है ।

नीक मंत्र सबके मन माना । अंगद सन कह कृपानिधाना ॥
बालितनय बुधि बल गुन धामा । लंका जाहु तात मम कामा ॥३॥

अर्थ : यह राय सबको जँच गयी । कृपानिधान रामजी ने अङ्गद से कहा कि

की ओर उठ पडे और कहा कि हे ईश ! वही गुणो का समुद्र है जिसपर तुम कृपा करो।

सब कार्य तो स्वयसिद्ध है। नाथ ने केवल मुझे आदर दिया है। ऐसा विचार कर युवराज अङ्गद का शरीर पुलकित और हृदय हर्षित हो उठा।

व्याख्या अङ्गदजी के हृदय मे महादेवजी का सिद्धान्त जमा हुआ है। यथा बोल विहँसि महेस तब ग्यानी मूढ न कोइ। जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ। अत. कहते है कि आपकी कृपा मे बडी सामर्थ्य है। वह कृपापात्र को गुणसागर बना देती है।

आज्ञा होते ही अङ्गदजी ने शिरोधार्य करके प्रणाम किया और तुरन्त उठ खडे हुए। चलते समय गलित अभिमान होकर सरकार की कृपा का आश्रय ग्रहण किया और कहा कि आपका कार्य तो स्वयसिद्ध है। भाव यह कि मै जाता हूँ रावण को चरणो पर गिरने के लिए समझाने। सो रावण का सिर सरकार के सामने पृथिवी पर बिना गिरे नही रह सकता। चाहे कटकर गिरे चाहे बिना कटे गिरे। यदि शरण मे आया तो स्वय गिरेगा नही तो बाण काटकर गिरा ही देवेंगे। यथा . सन्धौ वा विग्रहे वापि मयि दूते दशाननी। अक्षता माक्षता वापि क्षितिपीठे लुठिष्यति। (दूताङ्गद)। विचारा कि नाथ ने मुझे आदर दिया है। सरकारी इच्छा है कि बलकही मे मैं रावण को निरुत्तर कर दूँ कि युद्ध करने मे तेरी भलाई नही है। सो रामकृपा से मेरे द्वारा सुसाध्य होगा और मेरी बडाई होगी कि रावण की सभा मे अङ्गद ने बडी पण्डिताई से काम लिया। रामदूत पद प्राप्ति से अङ्गदजी को सात्त्विक भाव हो उठा।

बंदि चरन उर धरि प्रभुताई। अगद चलेउ सबहि सिरु नाई ॥
प्रभु प्रताप उर सहज असका। रन बाँकुरा बालिसुत बका ॥१॥

अर्थ चरणो की वन्दना करके और प्रभुता को हृदय मे धारण करके अङ्गद सबको सिर नवाकर चले। प्रभु का प्रताप हृदय मे और स्वभाव से ही निर्भय रण मे विकट बालि का पुत्र बाँका था।

व्याख्या प्रभु अग्या धरि सीस चरन बंदि अगद उठेउ। इस कमल की पुरइन है बंदि चरन उर धरि प्रभुताई। स्वयसिद्ध तव काज। इस कमल की पुरइन है काज हमार तासु हित होई। प्रभु की प्रभुता को हृदय मे धारण करने से असाध्य साधन होता है। यथा मैं पुनि उरधरि प्रभु प्रभुताई। करिहौ बल अनुमान सहाई। और चरणो की वन्दना से सिद्धि प्राप्त होती है। यथा जाको चरन विरचि सेइ सिधिपाई संकरहु। अङ्गदजी ने यहाँ चरण-वन्दन भी किया और प्रभु की प्रभुताई को भी हृदय मे स्थान दिया। हनुमान्‌जी ने जिस भाँति लका की ओर चलते समय सबको माथ नवाया था उसी भाँति अङ्गदजी ने भी सबको सिर नवाया। ध्येय सदा श्रीमद्भागवत के दो श्लोकों का नित्य प्रात पाठ कर लेना चाहिए।

लंका में जो कि सर्पों से भरी हुई गुफा सी भयङ्कर है जाते हुए अङ्गदजी को भय नहीं है। क्योंकि बालि के बेटे हैं। बालि के ऐसा ही इनका पराक्रम है। स्वभाव से ही अशङ्क हैं। स्वभाव से ही अशङ्क हैं। युद्धविद्या में बड़े प्रवीण और आनशानवाले : बाँके हैं। रावण सहज अशङ्क है। यथा : तहँ रह रावन सहज अशंका। उसके यहाँ दूत बनाकर रामजी ने सहज अशङ्क अङ्गदजी को भेजा है। अंगदजी में विशेषता यह है कि इनके हृदय में राम प्रताप है। वानरी सेना में चार रणबाँकुरे हैं। उनमें एक अङ्गदजी भी हैं। यथा : हनुमन्त अंगद नील नल अति बल लरत रन बाँकुरे। बाँका से उठती जवानी कहा।

पुर पैठत रावन कर बेटा। खेलत रहा होइ गइ भेंटा॥
बातहि बात करष बढ़ि आई। जुगल अतुल बल पुनि तरुनाई॥२॥

अर्थ : पुर में प्रवेश करते ही रावण के बेटे से भेंट हो गयी। रावण का बेटा खेल रहा था। बात ही बात में बैर बढ़ गया। एक तो दोनों के बल का तौल नहीं था और दूसरे दोनों की युवावस्था थी।

व्याख्या : रावण का बेटा पुर के द्वार पर जवानों का खेल चौगान आदि खेल रहा था। अङ्गद के प्रवेश करते ही उससे भेंट हुई। रावण कर बेटा। कहने का भाव यह कि रावण के ऐसा यह भी महा अभिमानी तथा तामसी प्रकृति का था।

नये व्यक्ति के लंका प्रवेश करते देखकर उसका पूछना स्वाभाविक था। अतः यह मालूम होता है कि छेड़छाड़ उसी की ओर से हुई। उसका मुँहतोड़ उत्तर अङ्गद की ओर से दिया गया। प्रत्युत्तर में असमर्थ होकर उसने खिझलाकर लात चलाना चाहा। अब प्रश्न उठता है : दोनों में क्या बातचीत हुई ? निश्चय वे बातें असभ्यता से भरी थीं। इसीलिए ये महात्मा ऐसी बातें नहीं लिखते। यथा : तेहि कारन करुना निधि कहे कछुक दुर्बाद। अथवा, लखन कहे कछु बचन कठोरा। परन्तु रामायणी लोगों ने अनुमान किया है और बात बैठती सी है। रावण के पुत्र ने कहा तू कौन है ? अंगद ने कहा मैं राम दूत हूँ। रावण के बेटे ने कहा कौन राम जिनकी स्त्री मेरे पिता हर लाये हैं। अंगदजी ने कहा : हाँ वही राम जिसने तुम्हारे बूआ का नाक कान काट लिया। यदि वस्तुतः ऐसी बात न भी हुई हो तो भी कहा जा सकता है कि इसी प्रकार की कोई बात हुई दोनों असहनशील थे। क्योंकि दोनों तरुण थे और अपने समाज में अतुल बल माने जाते थे।

तेहि अंगद कहुँ लात उठाई। गहि पद पटकेहु भूमि भँवाई॥
निसिचर निकर देखि भट भारी। जहँ तहँ चले न सकहिं पुकारी॥३॥

अर्थ : उसने अंगद को लात उठाया। अंगद ने उसका पैर पकड़कर घुमाया और पृथिवी पर पटक दिया। राक्षसों के समूह ने देखा कि भारी योद्धा है। जो जहाँ था वह वहीं से खिसका। पुकार तक न मचा सके।

व्याख्या : अङ्गदजी ने देखा कि यह पैर उठा रहा है मेरे प्रति चलाने के

लिए। तुरन्त लपककर उसका वही पैर पकड़ लिया और पैर पकड़कर उसे आसमान में घुमाकर जमीन में पटका। कहना नहीं होगा कि अपने समाज में अतुलबल होने पर भी अंगदजी के सामने वह कुछ नहीं था। इस तरह से घुमाकर जो जमीन पर पटका जायगा उसकी मृत्यु के लिए कहने की आवश्यकता नही है। रावण का बेटा है। खेल रहा है। अतः वहाँ राक्षसों का समूह जुटा था। उसके मारे जाने पर उन्हें लड़ना चाहिए। पर अंगदजी के इस पराक्रम को देखकर वे इस नतीजे तक पहुँच गये कि यह बन्दर हमलोगों की मान का नही है। इससे बोलना काल का आवाहन करना है। इसलिए जो जहाँ था वह वही से खिसका। उनका इतना साहस भी न हुआ कि पुकार मचाते। उन्होने समझ लिया कि लंका से सहायता आने के पहिले ही हम लोग मारे जावेंगे। अतः पुकार भी न मचाया।

एक एक सन मरमु न कहही। समुझि तासु बध चुप करि रहही॥
भयउ कोलाहलु नगर मंझारी। आवा कपि लंका जेहि जारी॥४॥

अर्थ: एक दूसरे से भेद नही कहते। उसका बध समझकर चुप रह जाते हैं। नगर में बड़ा कोलाहल हुआ कि वही बन्दर फिर आया जिसने लंका जलायी थी।

व्याख्या: एक दूसरे से यह भेद नही बतलाते कि रावण का बेटा मारा गया। बतलाने से यह सिद्ध हो जाता कि यह भी उस समय वहाँ थे। ऐसा होने से रावण के कोपभाजन होने का भय था। रावण कुपित हो उठते कि लड़का मारा गया यह वही था और कुछ न बोला। अतः भगदड़ मच गयी पर यह कोई नही कहता कि हुआ क्या?

हनुमान्‌जी का आतङ्क छाया हुआ है। पुर में प्रवेश करते ही खबर फैल गयी। एक दूसरे से पुकार कर कह रहे है कि जिसने लंका जलायी थी वही बन्दर फिर आया है। बड़ी भारी आपत्ति आयी चाहती है। अङ्गदजी का आकार तेज आदि देखकर सबको हनुमान्‌जी का भ्रम हुआ। अतः नगर भर मे खलबली पैठ गयी। लोग अपना माल असबाब घर के बाहर निकालने लगे कि पहिले बार के लङ्कादाह मे बड़ा नुकसान हुआ। सब असबाब घर में ही जल गया। क्या जाने बन्दर फिर लंका दाह करे। अतः पहिले से ही सावधान रहना चाहिए। यथा: आया आयो आयो सोई बानर बहोरि भयो सोर चहुँओर लंका आए जुवराज के। एक काढ़ै सौंज एक धौंज करै कहा ह्वै है पोच भई महा सोच सुभट समाज के। गाज्यो कपिराज रघुराज की सपथ करि मूदे कान जातुधान मानो गाजे गाज के। सहमि सुखात बात जात की सुरति करि लवा ज्यौं लुकात तुलसी झपेटे बाज के। कविता०।

अब धौं काह करिहि करतारा। अति सभीत सब करहिं बिचारा॥
बिनु पूछे मगु देहिं देखाई। जेहि बिलोक सोइ जाइ सुखाई॥५॥

अर्थ: हे करतार! अब न जाने क्या करेगा? ऐसा विचारकर सब लोग

व्याख्या : देखकर समझ लिया कि ये चोबदार लोग हैं। उन्ही मे से एक को भेजा कि लकेश्वर को मेरे आने का समाचार दो। अङ्गदजी को रोकने का किसी को साहस नही। दुर्गद्वार पर भी इन्हे किसी ने न रोका। दूतधर्म का पालन करते हुए ये यहाँ पर स्वय रुक गये और रावण की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे। सुनते ही हँसा कि यह छोकडा प्रहस्त मुझे नीति सिखाता था कि पहिले वसीठी : सुलह के लिए दूत भेजो। मै क्या निर्बल हूँ कि वसीठ . दूत भेजूँ। देखो शत्रु की ओर से वसीठ आया। पहिली विजय तो हमारी यही हुई। मालूम होता है कि उस राक्षस ने आकर कहा कि एक बन्दर आया है। द्वार पर खडा है। आपके सामने आना चाहता है। सुनकर हँसने के बाद रावण बोले। उसको बुला लाओ। मै देखना चाहता हूँ कि वह बन्दर कहाँ से आया है। अति अभिमान की बातें करता है। बन्दरो ने लकापुरी घेर रक्खा है। फिर भी पूछता है कहाँ कर कैसा।

आयसु पाइ दूत बहु धाए। कपि कुजरहि बोलि लइ आए ॥
अगद दीख दसानन बैसे। सहित प्रान कज्जल गिरि जैसे ॥२॥

अर्थ : आज्ञा पाकर बहुत से दूत दौडे और हाथी के समान बन्दर को बुला ले गये। अङ्गद ने रावण को बैठा हुआ देखा। जैसे जीता जागता अञ्जन का पहाड हो।

व्याख्या वडा भारी सभाभवन है। जहाँ बाहर जाने के लिए दूत को दौडना भी पडता है। आदर के लिए बहुत से दूत दौडे अथवा बन्दरो से सशङ्क हैं। अत अकेले का जाना उचित नही समझा। अङ्गदजी का विशाल आकार होने से उन्हे कपिकुञ्जर कहा अथवा कुञ्जर है। यह रावण के विटपरूपी भुजा के भजन मे समर्थ हैं। इसलिए कुजर कहा।

अगदजी ने पहिले पहल रावण को देखा है। इसलिए वर्णन करते हैं कि बैठे हुए रावण कज्जल के पहाड से दीख पडते हैं। भेद इतना ही है कि कज्जल के पहाड मे प्राण नही है। इसमे प्राण है। हनुमान्‌जी के सभाभवन जाने के समय रावण के आकार का वर्णन नही है। क्योकि हनुमान्‌जी उसको पहिले भी देख चुके हैं। यथा . सयन किये देखा कपि तेही। मदिर महुँ न दीख बैदेही।

भुजा बिटप सिर सृङ्ग समाना। रोमावली लता जनु नाना ॥
मुख नासिका नयन अरु काना। गिरि कदरा खोह अनुमाना ॥३॥

अर्थ : भुजा मानो पेड है। सिर मानो पहाड की चोटियाँ है। रोमावली मानो लता और पेड हैं। मुख नाक आँख और कान तो मालूम होता है कि पर्वत की कन्दराएँ हैं।

व्याख्या : पर्वतो पर पेड होते है। उनमे लताएँ लिपटी रहती है। पर्वतो के अनेक शृग होते है। यहाँ भी सब कुछ है। रावण को बहुत सी भुजाएँ पेड की

पक्तियाँ हैं। उसकी रोमावली ही लताएँ हैं। उसके दस सिर पर्वत के शृंग से प्रतीत होते हैं।

पर्वत में कन्दराएँ होती हैं। खोह होते हैं। कन्दराएँ बड़ी होती हैं। खोह छोटे होते हैं। रावण रूपी पर्वत में उसके मुख कन्दराकार हैं। नासिका नयन और कान के गोलक खोह के समान हैं। ऐसा विशाल भयानक राक्षसराज है। उसकी सभा है।

गयउ सभा मन नेकु न मुरा। बालितनय अति बल बाँकुरा॥
उठे सभासद कपि कहुँ देखी। रावन उर भा क्रोध बिसेखी॥४॥

अर्थ : सभा में गये मन में तनिक सा भी क्षोभ न हुआ। बालि का बेटा अत्यन्त बलवान् और बाँका है। बन्दर को देखकर सभासद उठ खड़े हुए। रावण के मन में विशेष क्रोध हुआ।

व्याख्या : जिस भाँति हनुमान्‌जी के लिए कवि ने कहा था कि देखि प्रताप न कपि मन सका वही बात अंगदजी के लिए कह रहे हैं कि ऐसी भयानक सभा में भी अङ्गदजी को क्षोभ न हुआ। कारण कहते हैं कि क्षोभ निर्बल और कादर को होता है। अथवा कुलहीन को होता है। अङ्गदजी तो वानरराज बालि के बेटे हैं। अतिबल हैं और बाँके वीर हैं। इन्हें क्षोभ कैसे हो?

शत्रु के दूत के आने पर राजा के सभासदों का खड़ा होना बड़ी भारी कचायी है। पर अङ्गदजी का व्यक्तित्व ऐसा है। साकारता ऐसी है कि उनके प्रवेश करने से सभासद बैठे न रह सके। जब अङ्गदजी को बुलाने बहुत से दूत गये तभी रावण को क्रोध हुआ और सभासदों के खड़े हो जाने पर तो विशेष क्रोध हुआ। पर क्रोध को उनने अनवसर जानकर प्रकट नहीं किया। मनमें ही छिपाये रहा।

दो० जथा मत्त गज जूथ महुँ, पचानन चलि जाइ।
राम प्रताप सुमिरि मन, बैठ सभा सिरु नाइ॥१९॥

अर्थ : जैसे मतवाले हाथियों के समूह में सिंह चला जाय। राम प्रताप को हृदय में सुमिरन कर सिर नवाकर सभा में बैठ गये।

व्याख्या : भाव यह कि जैसे मतवाले हाथियों के समूह में सिंह चला जाय तो हाथी बैठे नहीं रह सकते। स्वभाव से ही खड़े हो जाते हैं। उसी भाँति राक्षस अङ्गदजी को देखकर बैठे न रह सके। खड़े हो गये। जिस भाँति हनुमान्‌जी रामजी को हृदय में लेकर चले थे और समुद्रोल्लङ्घन के समय सँभाला था। यथा : बार बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवनतनय बल भारी। उसी भाँति अङ्गदजी प्रभु की प्रभुता को हृदय में रखकर चले थे। उसी को इस समय फिर सँभालते हैं। सिर नवाकर सभा में जा बैठे। दूत है अतः शत्रु राजा को भी प्रणाम करना उचित हो पड़ा।

प्रमाण नही है। यथा : तेहि अवसर रावन तहँ आवा। संग नारि बहु किये बनावा।। अत इनका साथ ले चलना परम आवश्यक है।

जानकीजी को आगे करने का भाव यह कि ये मेरी बडी हैं। माँ के सदृश हैं। इस विधि का पालन करने से फिर भय का कोई कारण नही है। मैं दूत होकर उधर से आया हूँ। मैं वचनबद्ध होता हूँ। अन्यथा न होगा।

दो प्रनतपाल रघुवंस मनि, त्राहि त्राहि अब मोहि।
आरत गिरा सुनत प्रभु, अभय करैगो तोहि ॥२०॥

अर्थ . हे प्रणतपाल ! रघुवंशमणि ! मेरी रक्षा करो। ऐसा आर्त्त वचन सुनते ही प्रभु तुम्हे अभय कर देंगे।

व्याख्या सरकार प्रणतपाल हैं। उनकी प्रतिज्ञा है सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रत मम। भगवान् कहते हैं कि मेरी शरण मे आकर एक बार भी मै तुम्हारी शरण हूँ ऐसी याचना करता है तो उसे मैं प्राणिमात्र से निर्भय कर देता हूँ। यह मेरा व्रत है।

अङ्गदजी कहते हैं कि उनके सामने जहाँ त्राहि त्राहि किया। वहाँ आर्त्त वचन के सुनते ही तुम्हे वे अभय कर देंगे। अपने व्रत को वे कभी न छोडेंगे।

रे कपिपोत बोलु सभारी। मूढ न जानेहि मोहि सुरारी ॥
कहु निज नामु जनक कर भाई। केहि नाते मानिये मिताई ॥१॥

अर्थ अरे बन्दर के बच्चे ! सँभालकर बोल। मूढ ! तू मुझे नही जानता मै देवताओ का शत्रु हूँ। अरे भाई ! अपना और अपने बाप का नाम तो बतला। जिस नाते से मित्रता मान रहा है।

व्याख्या पहिले तो बन्दर ही महा अज्ञानी होते हैं तिसपर तू अभी बच्चा है। नही समझता कि किसके सामने कैसा बोला जाता है। तू मूढ है क्योकि मालूम होता है कि तू मुझे भी नही जानता। कोई जानकार ऐसा नही हो सकता जो मुझ न जाने। अपनी प्रसिद्धि का कारण कहते हैं। मैं देवताओ का शत्रु हूँ। देवता भले ही अपमान सह लें दीन हो जायँ पर मैं नही हो सकता। इस भाँति दसन गहहु तृन कठ कुठारी का उत्तर दे रहा है। देवता हरण की हुई वस्तु लौटा सकते हैं। मैं सुरारि हूँ मैं नही लौटा सकता।

अब मम जनकहि तोहि रही मिताई का उत्तर देते हुए कहता है कि बिना नाम बतलाये कैसे पता लग सकता है कि वस्तुतस्तु उस व्यक्ति से मैत्री थी या नही। अपना नाम भी तुमने नही बतलाया। मै रघुवीर दूत कह देना पूरा परिचय नही है। अङ्गदजी ने कहा था तव हित कारन आयेउँ भाई। अत रावण भी कहते हैं कहु निज नाम जनक कर भाई। भाव यह कि अपना और अपने बाप का नाम बतलाओ। बन्दर और राक्षस मे मैत्री कैसी ? एसी कौन घटना हुई जिसके सम्बन्ध से मित्रता मानी जाय ?

अंगद नाम बालि कर बेटा। तासो कबहुँ भई ही भेटा ॥
अंगद वचन सुनत सकुचाना। हाँ बाली बानर मै जाना ॥२॥

अर्थ : मेरा नाम अङ्गद है मैं बालि का बेटा हूँ। उनसे कभी तुम्हारी भेंट हुई थी। अङ्गद का वचन सुनकर कुछ संकुचित हुआ। कहने लगा : हाँ बालि नामक बन्दर को मैं जानता हूँ।

व्याख्या : रे कपिपोत बोल सँभारी। मूढ न जानेहि मोहि सुरारी का उत्तर अगद नाम बालि कर बेटा। भाव यह है कि मै बालि का बेटा हूँ। जानता हूँ कि तुममे कितना पानी है। अत जो कुछ कहा है बहुत समुझबूझकर कहा है। अब नाता भी सुन लो। तुम से बालि से कभी भेंट हुई थी। उसी समागम के नाते मैं तुमको उनका मित्र मानता हूँ। भाव यह कि उस समागम मे ही ऐसी घटना हुई कि तुम्हे उनसे अग्निसाक्षिक मैत्री करनी पडी।

रावण ने जान लिया कि इसने अपने पिता के मुख से मेरे पराभव की कथा सुन रक्खा है और उसी ओर लक्ष्य करके उत्तर दे रहा है। अतः कुछ सङ्कुचित हुआ। मित्रता तो नही पर परिचय स्वीकार करता है कि हाँ मै उसे जानता हूँ। अब अङ्गद के वचन से लाभ उठाकर बाप के परिचित होने के नाते नाराज होता है।

अंगद तही बालि कर बालक। उपजेउ बंस अनल कुल घालक ॥
गर्भ न गयहु व्यर्थ तुम जायेहु। निज मुख तापस दूत कहायेहु ॥३॥

अर्थ : हे अङ्गद ! तू ही बालि का बेटा है। तुम तो बाँस की आग की भाँति कुलघालक पैदा हुए। गर्भ मे ही क्यो नही नष्ट हो गये। तुम व्यर्थ ही पैदा हुए। अपने ही मुख से तुम तपस्वी के दूत कहलाते हो।

व्याख्या : तू ही बालि का बेटा है ? तेरी क्या दशा है ? राजा का बेटा होकर तपस्वी का दूतत्व करता है। अरे कुलघालक नालायक तेरी उत्पत्ति से वश का नाश हुआ। राज्य कुल से चला गया। तुम गर्भ मे ही नष्ट हो गये होते तो सन्तोष की बात थी कि बालि को पुत्र ही नही हुआ। तुम्हारा जन्म लेना व्यर्थ हुआ : गुणिजनगणनारम्भे न पतति कठिनी ससम्भ्रमाद्यस्य। तेनाम्बा यदि सुतिनी वद वन्ध्या कीदृशी नाम। जब गुणियो की गणना होने लगे उस समय सम्भ्रम के साथ जिसकी ओर उँगली न उठे उससे यदि माँ बेटेवाली होती हो तो बतलाओ वन्ध्या किसे कहते हैं ?

तुम इतना नीचे गिरे कि तुम्हे पूर्व गौरव का स्मरण भी नही है। यदि तुम्हे कोई किसी का दूत कहता तो तुम्हे उसे गाली समझना था न कि तुम स्वयं अपने को दूत कहते हो और सो भी एक तपस्वी का।

अब कहु कुसल बालि कहँ अहई। बिहँसि वचन तब अंगद कहई ॥
दिन दस गये बालि पहिं जाई। बूझेउ कुसल सखा उर लाई ॥४॥

अर्थ : कुशल तो बता वालि कहाँ है ? अङ्गद ने हँसकर कहा : दस दिन बाद वालि के पास जाओगे तब सखा को हृदय से लगाकर कुशल पूछना।

व्याख्या : जानबूझकर कि बालि मारा गया है अङ्गद से कुशल पूछता कि वालि सकुशल तो हैं ? और आजकल कहाँ है ? जो तुम्हारी यह दशा हो रह है। उनसे बहुत दिन से भेंट भी नही हुई। रावण समझता है कि इस तरह पूछ से अङ्गद रो पड़ेगा। कहेगा कि चाचा ! उन्हे तो राम ने मार डाला। तब इ अपनी ओर मिला लेंगे। इसके मिलने से वानरी सेना भी छूट जावेगी। राव अङ्गद के रो पड़ने की आशा करते थे सो अङ्गदजी हँस पड़े। रावण के भेदनीि प्रयोग पर हँसे अथवा रामविरोधी के कुशल पूछने पर हँसे। अथवा हँसकर उसे बतला दिया कि हम तदीय हो गये। रामविरोधी जो हो गया। वह मेरे स्नेह य आदर का पात्र नही रह गया।

उसके भेद नीति के प्रयोग से अङ्गदजी समझ गये कि यह बात नही मानेगा अतः कहते हैं कि जब इतने दिन तक कुशल नही पूछा तो दस दिन और ठहर जाओ। तुम्हे भी बहुत शीघ्र वही जाना है जहाँ बालि गये हैं। तब स्वय उन्ही से कुशल पूछ लेना। वे तुम्हार प्यारे सखा हैं। उन्ही के रास्ते पर तुम चल रहे हो। अतः तुम लोगों मे बड़ा प्रेम है। अतः हृदय लगाकर पूछने का अवसर प्राप्त होगा। मेरा उनका रास्ता दो है। अतः मै ठीक कुशल न सुना सकूँगा।

राम बिरोध कुसल जसि होई। सो सब तोहि सुनाइहि सोई॥
सुनु सठ भेद होइ मन ताके। श्रीरघुबीर हृदय नहि जाके॥५॥

अर्थ : राम का विरोध करने पर जैसा कुशल होता है वह सब तुमको वे ही सुनावेंगे। हे शठ ! सुन भेद उसके मन मे होता है। जिसके मन मे रघुवीर न हो।

व्याख्या : तुमने विरोध किया है। उन्होने भी विरोध किया था। मेरे कहने पर तो नाराज होते हो क्योकि मैं छोटा हूँ। पर वे सखा है भुक्तभोग है। वे तुम्हें जैसा कुशल रामविरोध से होता है सो सब सुनावेंगे।

तुमने मुझ पर भेदनीति का प्रयोग किया। पर मेरे हृदय मे सरकार हैं। यहाँ भेदनीति काम नही कर सकती। यथा : तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना। जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा। रावण को अङ्गदजी ने शठ कहा। भाव यह कि तुमको मैंने परम हित का उपदेश दिया। उसका अनादर करके तुम भेदनीति द्वारा अपने पक्ष मे लाकर राम विरोधी बनाना चाहते हो सो होना नही है।

दो. हम कुल घालक सत्य तुम्हँ, कुल पालक दससीस।
अंधौ बधिर न अस कहहि, नयन कान तव बीस॥२१॥

अर्थ : तुम सच कहते हो हम तो कुलघालक हैं और तुम दसशीश कुलपालक हो। ऐसी बात तो कोई अन्धा बहरा भी नही कहेगा। तुम्हे तो बीस आँख कान हैं।

व्याख्या : यहाँ सत्य आक्षेप के अर्थ में प्रयुक्त है। अङ्गदजी कहते हैं मेरे हृदय में रघुवीर हैं। मैं धर्मपरायण कुलत्राता हूँ। यथा : धर्मपरायन सोइ कुलत्राता। रामचरन जाकर मन राता। मैं कुलघालक कैसे हुआ। तुम राम-विरोधी हो। तुम मुनि वंशज होकर मुनियों का संहार करते हो। यथा : निसिचर निकर सकल मुनि खाये। तुम्हारे ऐसा कुलघालक संसार में कहाँ मिलेगा। जो अन्धा होगा वह भी सुना होगा कि तुम कितने बड़े कुलघालक हो और जो बहिरा होगा उसने तुम्हारी कुलघालकता देखी होगी। अतः अन्धे बहिरे करणहीन पुरुष भी ऐसा नहीं कहेंगे। तुम्हें तो बीस आँख कान दिखाई पड़ते हैं। क्या उनसे दिखाई सुनाई नहीं पड़ता? बीस नयन मंदिर के से मोखे। अर्थात् तुम्हारी कुलघालकता तो जगद्विख्यात है।

सिव बिरंचि सुर मुनि समुदाई। चाहत जासु चरन सेवकाई॥
तासु दूत होइ हम कुल बोरा। ऐसिहु मति उर बिहर न तोरा॥१॥

अर्थ : शिव ब्रह्म और देवता तथा मुनिराज जिसके चरण की सेवकाई चाहते हैं। उसका दूत होकर मैं कुल को डुबोनेवाला हूँ। ऐसी बुद्धि होने पर तुम्हारा हृदय विदीर्ण क्यों नहीं होता?

व्याख्या : कुलपालक दससीस का उत्तर देकर कुलघालक का उत्तर देते हैं। जितने महान् हैं चाहे शिव हों चाहे ब्रह्मा हो चाहे देवसमाज हो चाहे मुनिसमाज हो : सभी चरण सेवकाई का अवसर ढूँढते हैं मिलता नहीं। जिसके शरण में जाने से कुल धन्य हो जाता है। यथा : सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत। श्रीरघुवीर परायन जेहि नर उपज बिनीत। उनके दूत होने से तुम मुझे कुलघालक बतला रहे हो। ऐसी बुद्धिवाले का तो हृदय फट जाना चाहिए। यथा : हिय फाटउ फूटउ नयन जरौ सो तन केहि काम। द्रवै स्रवै पुलकै नहीं तुलसी सुमिरत राम।

सुनि कठोर बानी कपि केरी। कहत दसानन नयन तरेरी॥
खल तव कठिन बचन सब सहऊँ। नीति धर्म मै जानत अहऊँ॥२॥

अर्थ : कपि की कठोर वाणी सुनकर रावण आँख तरेर कर बोला। रे खल! मैं तेरे कठिन शब्दों को इसलिए सुनता हूँ कि मैं धर्मनीति को जानता हूँ।

व्याख्या : जिसके सुनने से चित्त को चोट लगे उसे कठोर वाणी कहते हैं। यदि कोई बड़ा होकर कठोर बोले तो किसी प्रकार सह्य भी हो सकता है। रावण नर वानर को किसी लेखे में नहीं समझते। पहले सन्देश सुनते ही रावण बिगड़ उठे। कहने लगे : रे कपिपोत बोल सँभारी। सो सँभालकर बोलना तो दूर गया बन्दर कठोर वाणी बोलने लगा। अतः रावण बीसो आँखों से टेढ़ा देखते हुए बोले। इसीलिए दसानन कहा। रावण नाराज होकर अङ्गदजी को खल कहते हैं। पर दण्ड देने का साहस नहीं है कि कहीं यह भी हनुमान् की भाँति उपद्रव

न कर बैठे। वहाँ तजवीजकर दूत भेजे जाते हैं। अत बैठकबाजी से काम लेते है। अपनी दुर्बलता को पण्डिताई से छिपाते है। अत. कहते है कि तेरे अविनय का सहन मैं धर्म नीतिज्ञता के कारण कर रहा हूँ। क्योंकि अपराधी दूत का वध भी धर्मनीति के विरुद्ध है।

कह कपि धर्मसीलता तोरी। हमहु सुनी कृत परतिय चोरी ॥
देखी नयन दूत रखवारी। बूडि न मरहु धर्मव्रत धारी ॥३॥

अर्थ : अङ्गदजी ने कहा कि तुम्हारी धर्मशीलता मैने सुनी है। तुमने परायी स्त्री चुराया और आँख से दूत की रक्षा देखा। हे धर्मव्रतधारी डूब नही मरते।

व्याख्या ' अङ्गदजी उसकी धर्मशीलता पर आक्षेप करते हुए कहते है कि तुम्हारी धर्मशीलता की प्रसिद्धि तो मेरे कानो तक पहुँची है कि आपने परायी स्त्री चुरायी। चोरी : जारी रोकने के लिए ही राजा की सृष्टि हुई है। सो तुमने राजा होकर परायी स्त्री चुरायी। भाव यह कि केवल पापी ही नही : कादर भी हो। और हनुमान्‌जी की जली हुई पूँछ तो मैने आँख से देखी है। तुमने अपने समक्ष मे मारने में कोई कसर नही रखी। ऐसे धर्म व्रतधारी को तो डूब मरना चाहिए। अर्थात् ऐसे जीवन से आत्मघात अच्छा।

नाक कान बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्हि तुम धर्म बिचारी ॥
धर्मसीलता[1] तव जग जागी। पावा दरसु हमहु बड भागी ॥४॥

अर्थ : अपनी बहन को बिना नाक और कान की देखकर तुमने धर्म बिचार कर ही तो क्षमा किया था। तुम्हारी धर्मशीलता ससार मे जग रही है। मैं बडा भाग्यवान् हूँ जिसने ऐसे धर्मशील का दर्शन पाया।

व्याख्या : नीति धर्म मैं जानत अहहूँ का उत्तर हो चुका। अब तव कठिन बचन मै सहहूँ का उत्तर देते हैं। सहना अर्थात् क्षमा भी तुममे अत्यन्त अधिक है। क्योंकि क्षमा बडन को धर्म है। तुम बहिन का नाक कान कटना क्षमा कर गये। खर दूषण नही क्षमा कर सके। तुमने क्षमा किया इसी से बचे हो। सो वह क्षमा नही है कादरता और असमर्थता है। वैसी ही क्षमा तुम यहाँ भी कर रहे हो।

तुम्हारी धर्मशीलता ससार विख्यात है। मै भी भाग्यवान् हूँ जो दर्शन पाया : कहने से ध्वनि यह निकलती है कि तुम जगद्विख्यात पापी हो। तुम्हारा मुख देखने से प्रायश्चित्त है। यह मेरा अभाग्य है कि तुम्हारा मुख देखना पडा। सो तुम धर्मात्मा बन रहे हो।

दो. जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि, सठ बिलोकु मम बाहु।
लोकपाल बल बिपुल ससि, ग्रसन हेतु सब राहु ॥२२॥

---

१. यहाँ वक्रोक्ति अलङ्कार है।

अर्थ : रे जडजन्तु बन्दर ! बक बक न कर । रे शठ ! मेरी भुजाएँ तो देख । लोकपालो के विशाल बलरूपी चन्द्रमा को ग्रास करने के लिए जो राहु रूप हैं ।

व्याख्या : जन्तुओ मे भी बन्दर जड होते हैं अथवा कपि की गणना पशु में है । उनमे भी तू जड़ है । इसलिए निरर्थक बात बोलता है । मुझे किसका भय है ? मैंने धर्म नीति का ही ख्याल किया है । प्रमाण मे मेरी भुजा देख ले । है तेरे कटक में किसी की ऐसी भुजा ? भुजा विटप सिर सृंग समाना । ये भुजाएँ पोली नही हैं । ये लोकपालो के बलो को इस प्रकार निस्तेज कर देती हैं जैसे राहु चन्द्रमा को निस्तेज कर देते हैं । दस दिक्पाल हैं और मुझे बीस भुजाए हैं । अत: दशो दिक्पालो को एक साथ निस्तेज करती हैं ।

दो. पुनि नभ सर मम कर निकर, कमलन्हि पर करि बास ।
सोभित भयउ मराल इव, संभु सहित कैलास २२॥

अर्थ : फिर आकाशरूपी तालाब मे मेरे बाहुरूपी कमलो पर बैठकर शम्भु के सहित कैलास हस की तरह शोभित हुआ ।

व्याख्या एक एक भुजाओ का पृथक् पृथक् बल कहकर अब सबका एक साथ बल कहता है कि जब मैंने बीसो भुजाओ से कैलास उठाया जिस पर स्वयं शङ्कर भगवान् विराजमान थे तो ऐसी शोभा हुई जैसे आकाशरूपी सरोवर मे कमलो के ऊपर हंस आकर विराजमान हुआ हो । भाव यह कि एक तो कैलास पर्वत्त ही बडा भारी है उसे कोई हिला नही सकता । उस पर लोकसहार कर्त्ता साक्षात् शङ्कर भगवान् विराजमान थे । उसे मेरी इन भुजाओ ने उठा लिया । अत: इनकी बराबरी करनेवाला ससार मे कौन है जिससे मुझे भय हो सके ?

तुम्हरे कटक माँझ सुनु अंगद । मोसन भिरिहि कवन जोधा बद ॥
तव प्रभु नारि विरह बल हीना । अनुज तासु दुख दुखी मलीना ॥१॥

अर्थ : सुनो अङ्गद ! तुम्हारी सेना मे ऐसा कौन योद्धा है जो मुझसे भिड सके । तुम्हारा मालिक तो स्त्री के विरह से निर्बल हो रहा है । उसका छोटा भाई उसके दु ख से दु खी और मलिन हो गया है ।

व्याख्या : रावण अङ्गद से कह रहे हैं कि लोकपालो की सेना मे तथा स्वय शङ्करजी की सेना में तो कोई ऐसा मिला ही नही जो मुझसे लड़ सके । तुम्हारी बन्दरो की सेना किस गिनती मे है जो उसमें मेरा जोड मिल सके । रावण को अपने भुज बल पर बड़ी आस्था है । उसी के भरोसे बैर बढ़ाया था । यथा : निज भुज बल मैं बैर बढावा । अत कहता है कि सिवा धर्मनीति के और कोई वस्तु मेरे दण्डपात करने मे बाधक हो नही सकता ।

रावण सरकार का नाम कभी नही लेता । पहिले तापस कहा था । यथा : निज मुख तापस दूत कहावा । अब तव प्रभु कह रहा है । शङ्कर के धनुष भङ्ग करनेवाले तथा खरदूषण के वध करनेवाले को अल्पबल किस मुँह से कहें । और

बिना अल्पबल प्रमाणित किये उनकी बात बैठती नही। अत कहते हैं कि पहिले चाहे बल रहा हो पर जब से उनकी स्त्री हरण हो गयी है तब से उनके प्रेम की उत्कट विकलता से अब बलहीन हो गये हैं। युद्ध करने की योग्यता नही रह गयी।

यदि कहो कि उनके छोटे भाई तो स्वस्थ हैं। उन्होने धनुष भङ्ग के समय तथा खरदूषण वध के समय उत्साह दिखलाया था। वे तुम से लड सकते हैं। इस पर कहता है कि वह भी बडे भाई के दु ख से दु खी रहते हैं। मन के विकृत होने का प्रभाव नि सन्देह शरीर पर पडता है। अत वह भी चाहे पहले युद्ध मे समर्थ रहे हो इस समय तो नही है।

तुम्ह सुग्रीव कूल द्रुम दोऊ। अनुज हमार भीरु अति सोऊ॥
जामवत मत्री अति बूढा। सो कि होइ अब समरारूढा॥२॥

अर्थ तुम और सुग्रीव दोनो तट पर के वृक्ष हो। मेरा छोटा भाई है वह भी बडा कादर है। जामवन्त मन्त्री है वह भी बहुत बूढा हो गया। भला अब क्या वह युद्ध मे प्रवृत्त होगा ?

व्याख्या रावण कहते हैं कि यदि तुम कहो कि मेरे चचा सुग्रीव हैं और मैं हूँ। तो तुम लोगो की भी स्थिति बहुत खराब है। घर की लडाई ने तुम लोगों को निर्बल बना रक्खा है। तुम लोगो की दशा नदीतट के वृक्षो की सी है। जो देखने म तो बडे मालूम होते हैं पर दृढमूलक नही होते। नदी के वेग को नही सह सकते। इसी भाँति तुम लोग समर सरिता का वेग न सह सकोगे तुरन्त जा पडोगे।

मेरा छोटा भाई बलवान् तो है। पर उसे साहस नही है। और जिसे साहस नही उसका बल युद्ध के समय व्यर्थ पड जाता है। वह भी लडने योग्य नही है।

जामवन्त पहिले लडने लायक था। देवासुर सग्राम म इन्द्र की ओर से लडा भी था। पर अब बहुत बूढा हो गया। उस बल का अब लश भी उसम नही है। यथा जरठ भयउँ अब कहै रिछेसा। नहि तन रहा प्रथम बल लेसा। लडना तो दूर की बात है। अब उसके मन मे युद्ध की प्रवृत्ति भी नही हो सकती।

सिल्पि कर्म जानहि नल नीला। है कपि एक महाबल सीला॥
आवा प्रथम नगरु जेहि जारा। सुनत बचन कह बालि कुमारा॥३॥

अर्थ नल नील तो शिल्प कर्म जानते हैं। पर एक कपि महाबलशील है। जो पहिले आया था जिसने नगर जला दिया। सुनते ही बालि का बेटा बोला।

व्याख्या रावण कहते हैं कि नल और नील तो कारीगर हैं। इनसे युद्ध से क्या सम्बन्ध ? अत तुम्हारी सेना देखने मात्र की है। इस मे मुझसा पराक्रमी कोई नही। हाँ एक बन्दर महाबलशील है। रावण को भी हनुमान्‌जी का लोहा मानना पडा। रावण से हनुमान्‌जी ने अपना नाम नही बतलाया था। केवल इतना

ही कहा था : तासु दूत मैं जाकर हरि आनेहु प्रिय नारि। इसलिए : आवा प्रथम नगर जेहि जारा। कहकर परिचय देता है।

हनुमान्‌जी के पराक्रम से रावण इनकार भी नहीं कर सकते थे। क्योंकि वे सबकी जानी हुई बात है। अतः रावण स्वीकार करते हैं कि तुम्हारी सेना भर मे केवल एक बन्दर है जिसे महा बलवान् कह सकते हैं। उसे न किसी का विरह है न वह कादर है न बूढ़ा है और न शिल्पी है। मैं उसके बल की कदर करता हूँ। यह कहकर रावण अपनी सभा को धैर्य बँधाते हैं कि वही एक बन्दर बलवान् है। शेष सब शत्रु की सेना में निर्बल हैं। प्रहस्त ने कहा था : बारिधि लाँघि एक कपि आवा। तासु चरित मन महँ सब गावा। अतः यहाँ रावण कहते हैं : है कपि एक महाबल सीला।

सत्य बचन कहु निसिचर नाहा। साँचेहु कीस कीन्ह पुर दाहा ॥
रावन नगर अलप कपि दहई। सुनि अस बचन सत्य को कहई ॥४॥

अर्थ : हे निशाचरराज ! सच बताना। क्या सचमुच बन्दर ने लंका जला दी ? रावण के नगर को एक छोटा सा बन्दर जला दे ऐसी बात को सुनकर कौन इसे सच कहेगा ?

व्याख्या : अपने स्वामी का बलहीन कहना तथा सेना के सभी प्रतिष्ठित वीरों में बलहीनता का आरोप करना तथा हनुमान्‌जी को बन्दर बतलाना अङ्गदजी सह न सके। अतः जिसे रावण ने बड़ा बलशील मान लिया उसी मे निबलता का आरोप करके रावण द्वारा निन्दित सभी वीरों की प्रतिष्ठा का स्थापन कर रहे हैं और हनुमान्‌जी को बन्दर बतलाने के उत्तर रूप मे आश्चर्य प्रकट करते हुए कहते हैं कि तुम निशाचरों के राजा हो और राजा को परिनिष्ठित वचन कहना चाहिए। नीतिशास्त्र कहता है : असम्भाव्य न वक्तव्य साक्षाद् दृष्टिगत यदि। शिला तरति पानीयं गीतं गायति वानरः। यदि अपने आँखो की देखी भी बात हो तो भी असम्भव होने से नही कहनी चाहिए। जैसे पानी पर पत्थर का तरना और बन्दर का गीत गाना। तुम असम्भव बात कह रहे हो। बन्दर अग्नि का स्पर्श नही करते। बन्दरों का उत्पात करना तो जगत् मे प्रसिद्ध है। पर बन्दर ने कही आग लगाया हो यह बात तो संसार में कही सुनी नही गयी। तिसपर जो रावण कि दूसरो के नगर और पुरों में आग लगानेवाले हैं यथा : जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं। नगर ग्राम पुर आग लगावहिं। उस रावण से पालित नगर को वह छोटा बन्दर जला डाले यह बात किसी के मन में बैठ नही सकती। कहनेवाले पर असत्य भाषण का सन्देह होगा। मुझे भी सन्देह हो रहा है। अतः पूछता हूँ कि तुम सत्य कहते हो कि हँसी करते हो ?

जो अति सुभट सराहेहु रावन। सो सुग्रीव केर लघु धावन ॥
चले बहुत सो बीरन होई। पठवा खबरि लेन हम सोई ॥५॥

अर्थ हे रावण ! जिसको बड़ा भारी योद्धा कहकर तुम प्रशंसा करते हो वह तो सुग्रीव का छोटे दर्जे का हरकारा है। वह चलता बहुत है पर सुभटो मे उसकी गिनती नही है। उसे तो हम लोगो ने समाचार लेने के लिए भेजा था।

व्याख्या अङ्गदजी उसी निर्बलता के आरोप को पुष्ट करते हुए कहते हैं कि तुम्हे हमारी सेना के बल का कुछ पता नही है। जिसको महाबलशील कहते हो वह सुग्रीव के हरकारो मे छोटे दर्जे का है। वह बहुत चलता है। हम लोग उतना नही चल सकते। पर वीर मे उसकी गणना नही है। भाव यह कि जिसका हरकारा इतना बलवान् है उस सुग्रीव को कूलद्रुम कहना तुम्हारा अज्ञान है। सुग्रीव तो बडे दर्जे के हरकारो को भेजते हैं। उससे तो हम लोग काम लिया करते हैं। उसे हम लोगो ने सीताजी का समाचार लने को भेजा था। हम लोगों ने इससे अधिक कुछ करने की आज्ञा नही दी थी।

दो सत्य नगरु कपि जारेउ, बिनु प्रभु आयसु पाइ।
फिरि न[१] गयउ सुग्रीव पहिं, तेहि भय रहा लुकाइ॥

अर्थ सचमुच बन्दर ने स्वामी की आज्ञा बिना ही नगर जला दिया। वह सुग्रीव के पास वापस नही गया। इसी डर से छिपा रहा।

व्याख्या यहाँ रावण की झुठाई सिद्ध करने के लिए अङ्गदजी ने हनुमान्‌जी के न लौटने और डर से छिप रहने की कथा गढ ली। अर्थात् रावण ने राम लक्ष्मण सुग्रीव अङ्गद जाम्बवान नल नील सबको निर्बल बतलाया। एक हनुमान्‌जी की प्रशंसा की जिसमे सभासद् समझें कि रावण सच कहते है। यदि हनुमान्‌जी को भी निर्बल कह देते तो सभासद् राम लक्ष्मण सुग्रीवादि के निर्बल बतानेवाली बात को भी झूठी समझ लेते। क्योकि हनुमान्‌जी के पराक्रम को तो सभी देख चुके है।

रावण की इस धूर्तता को समझकर अङ्गदजी ने कहा कि जिसे तुम इतना बलवान् समझते हो वह अपनी सेना मे सबसे दुर्बल है। बिना आज्ञा ही उसने नगर जला तो दिया पर डरा कि स्वामी सुग्रीव सुनकर अप्रसन्न होगे और दण्ड देगे। इसलिए उनके पास लौटकर नही गया। कही छिप बैठा है। तात्पर्य कि हनुमान् की मेरी सेना मे कोई गणना नही। अत राम लक्ष्मणादि को निर्बल बतलानेवाली तुम्हारी उक्ति झूठी है।

ऐसे झूठ को झूठ नही कहते। क्योकि वह सत्य के प्रकाशन मे सहायक होता है। यह तो वाक्य का अलङ्कार है। काव्यशास्त्र मे इसे मिथ्याध्यवसित कहते हैं। यथा एक झुठाई सिद्ध को झूठो बरनै और। सो मिथ्याध्यवसाय है भूषन कविसिरमौर।

---

१ यहा मिथ्याध्यवसित अलङ्कार है।

धन छीन लेना देश से निकाल देना यही अधम ब्राह्मण का वध है। उसके शरीर का वध नहीं होता। इसलिए तेरे वध में बड़ा दोष भी है। इसी से तुम अब तक बचे हो और इसीलिए उन्होंने साम का प्रयोग किया है। तुम्हारे पास सन्धि के लिए दूत भेजा है। नहीं तो तुम्हारे ऐसे अपराधी का तो एकमात्र वध ही दण्ड है। यदि नहीं मानोगे तो वे क्षत्रिय है। लघुता या दोष का विचार न करके तुम्हारा वध करेंगे।

दो. वक्र उक्ति धनु बचन सर, हृदय दहेउ रिपु कीस।
प्रति उत्तर सड़सिन्ह मनहुँ, काढ़त भट दससीस ॥

अर्थ : वक्रोक्तिरूपी धनुष और वचनरूपी बाण से अङ्गद ने शत्रु के हृदय में दाह उत्पन्न कर दिया। सो प्रत्युत्तररूपी सड़सियों से वीर रावण उसे निकाल रहा है।

व्याख्या : भाव यह है कि इस वक्रोक्तिरूपी बाण ने रावण के हृदय पर चोट किया और उसके हृदय में दाह उत्पन्न हुआ। परन्तु रावण भट है। युद्ध में बाण लगने पर धैर्य से उसे सँड़सी से निकालकर शरीर के बाहर फेंक देता है। उसी स्वभाव से इस समय भी काम ले रहा है। अङ्गदजी की बातों से मर्माहत होने पर भी प्रत्युत्तर देकर उस पीड़ा को शान्त किया चाहता है।

दो. हँसि बोलेउ दसमौलि तब, कपि कर बड़ गुन एक।
जो प्रतिपालै तासु हित, करै उपाय अनेक ॥२३॥

अर्थ : रावण ने हँसकर कहा कि बन्दर में एक बड़ा गुण होता है कि जो उनका प्रतिपालन करे उसकी भलाई के लिए अनेक उपाय करते हैं।

व्याख्या : रावण के मर्म में अङ्गदजी का वाक्य बाण लगा है और हृदय जला रहा है पर बाहर से हँसता है। हँस करके पीड़ा को छिपाता है। यथा : ऐसिउ पीर बिहँसि तेहि गोई और कहता है कि बन्दरों में तो दोष ही दोष है। सदा दूसरों का नुकसान किया करते हैं। पर एक गुण भी बड़ा है कि अपने पालनेवाले के हित के लिए अनेक उपाय करते हैं। देखो इस बन्दर ने अपने स्वामी की बड़ाई के लिए कितनी बातें गढ़ लीं। हनुमान् को सेनाभर से निर्बल बतलाने के लिए उसका न लौटना और डरकर कहीं छिप रहना आदि बातें बना लीं। अब उसी के हित के लिए क्षत्रिय जाति का रोष कहकर मुझे डराना चाहता है। मै इसके गुण को समझ रहा हूँ।

धन्य कीस जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचैं परिहरि लाजा ॥
नाचि कूदि करि लोग रिझाई। पति हित करै धर्म निपुनाई ॥१॥

अर्थ : वानर धन्य हैं जो अपने स्वामी के लिए लज्जा छोड़कर जहाँ तहाँ

नाचते हैं। नाच कूदकर लोगों को प्रसन्न करके अपने स्वामी का कल्याण करते हैं। यही धर्म में निपुणता है।

व्याख्या : अब धर्मात्मा तथा नीतिवेत्ता होनेवाली बात ओछी पड़ी। तब रावण सुजान गुणग्राहक होने की आड़ पकड़ रहे हैं। वस्तुतः अङ्गदजी इस बात पर तुल गये हैं कि रावण उन्हें दण्ड दे। जिसमें उन्हें पराक्रम प्रकट करने का अवसर मिले और सारी सभा देख ले कि रामदल में कैसे कैसे पराक्रमी वीर है और रावण की भी आँख खुले। रामजी का काम भी हो जाय और रावण का भी हित हो। पर रावण ऐसा नही चाहता। अतः दण्ड न देने की कमजोरी को बातों की चतुरता से छिपाना चाहता है। अतः रावण अपनी गुणग्राहकता प्रकट करता हुआ कहता है कि वानर जाति ही पुण्यवान है। ये लोग अपने स्वामी के लिए जहाँ नचाना चाहे नाचने लगते हैं। नाचने में उनका स्वार्थ कुछ भी नहीं होता। तमाशा देखनेवाले जो पैसे देते हैं वह स्वामी के जेब में जाते हैं। सब लोग उसके नाचने पर हँसते हैं पर उसे लाज नही। हनुमान् जब पकड़कर आया था तो उसने यह स्वीकार किया था। यथा : मोहि न कछु बाँधे कर लाजा। कीन्ह चहौ निज प्रभु कर काजा।

बन्दरों का नाचना यही है कि सलाम करते हैं। गौना लेकर चलते है। सूम की नकल करते हैं इत्यादि। इसलिए तुम भी अङ्गद! स्वामी के हित के लिए नाच कूद कर रहे हो। यह तुम्हारी धर्मनिपुणता है।

अंगद स्वामिभक्त तव जाती। प्रभु गुन कस न कहसि एहि भाँती ॥
मै गुनग्राहक परम सुजाना। तव कटु रटनि करौ नहि काना ॥२॥

अर्थ : हे अङ्गद! तुम्हारी जाति स्वामिभक्त है तो तुम अपने स्वामी का गुण इस भाँति क्यों न कहो। मैं गुणग्राहक हूँ। बड़ा सुजान हूँ। तुम्हारे कटु वचनों पर ध्यान नहीं देता।

व्याख्या : जो जाति स्वामिभक्त है उसी जाति के तुम एक व्यक्ति हो। अतः अपने प्रभु को सिंह बतलाना अन्य महाभटों को मेढक बतलाना इत्यादि बातें कहना तुम्हारे लिए स्वभाव सिद्ध है। अङ्गदजी ने कहा था कि : मोहि न सुनि कछु कोह। वही रास्ता पकड़े हुए रावण कहता है कि : तव कटु रटनि करहु नहि काना। भाव यह कि, सुनता तो हूँ पर ध्यान नही देता। कारण यह कि मै परम सुजान हूँ। सुजान लोग मूर्खो की बातो पर ध्यान नही देते। यथा : सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना। बालक बचन करिब जनि काना। इतना ही नही मैं गुणग्राहक हूँ। तेरी कटु रटनि में मुझे स्वामिभक्ति का परिचय मिलता है। इसलिए दूत की रक्षा कर रहा हूँ। कुछ असमर्थ होने से नही।

कह कपि तव गुन गाहकताई। सत्य पवनसुत मोहि सुनाई ॥
बन बिधंसि सुत बधि पुर जारा। तदपि न तेहिं कछु कृत अपकारा ॥३॥

अर्थ : अङ्गद ने कहा तुम्हारी गुणग्राहकता जो हनुमान्‌जी ने सुनायी थी सो सच है। उसने बाग को उजाडा बेटा को मारा और नगर को जलाया फिर भी तुमने उसका कोई अपकार नही किया।

व्याख्या : अङ्गदजी का भाव यह है कि पुरुषार्थ दिखाने के समय बगल दे जाना गुणग्राहकता नही है। असमर्थता है। उसी बात को व्यग मे कहते हैं कि चलते समय हनुमान्‌जी ने मुझसे कहा कि रावण बडे गुणग्राहक हैं। गुण प्रदर्शन मे उनका बाग भी उजडे, बेटा भी मारा जाय, नगर भी जल जाय तब भी वे बुरा नही मानते। अपकारी के गुण पर ही लुब्ध रहते है। मैंने यह सब किया। अशोक वाटिका को उजाडा उनके बेटे अक्ष को मारा और लका जला दी फिर भी रावण ने मेरा कुछ अपकार नही किया। तुम्हारे व्यवहार के देखने से मुझे मालूम हो गया कि हनुमान्‌जी ने अक्षरशः सत्य कहा था।

सोइ बिचारि तव प्रकृति सोहाई। दसकंधर मै कीन्ह ढिठाई॥
देखेउँ आइ जो कछु कपि भाखा। तुम्हरे लाज न रोप न माखा॥४॥

अर्थ : हे रावण! तुम्हारा वही सुन्दर स्वभाव समझकर मैने भी ढिठाई की है। हनुमान्‌जी ने जो कहा था मैंने वही आकर देखा। न तो तुम्हे लज्जा है न क्रोध है और न अपमान बोध होता है।

व्याख्या : तुम्हारी ऐसी सुन्दर प्रकृति का विचार करके मुझे भी इच्छा हुई कि कुछ अपना गुण दिखाऊँ। अत. मैने ढिठाई की है। ध्वनि है कि मैंने भी तुम्हारे पुत्र का वध किया है और प्रत्यक्ष बात यह है कि कठोर वाणी का प्रयोग किया है। जी मे आया कि देखें तो रावण अप्रसन्न होते हैं कि नही। सो देख लिया हनुमान्‌जी ने सत्य ही कहा है। न तो तुम्हे लाज है न रोप है न माख है : तुम्हरे कटक माझ सुनु अगद। मो सन भिरिहि कवन जोधा बद। यह कहते हुए तुम्हे लज्जा होनी चाहिए थी सो नही हुई। और मैंने जो उत्तर दिया कि : कोउ न हमरे कटक मह तुम सन लरत जो सोह। इस बात पर तुम्हे रोप होना चाहिए था सो भी न हुआ। मैंने कहा : जौ मृगपति वध मेढुकन्हि भल कि कहै कोउ ताहि। इस बात पर तुम्हे माप : क्रोध होना चाहिए पर नही हुआ।

जौ असि मति पितु खायेहु कीसा। कहि अस वचन हँसा दससीसा॥
पितहि खाइ खातेउँ पुनि तोही। अबही समुझि परा कछु मोही॥५॥

अर्थ : हे बानर! यदि ऐसी बुद्धि है तभी तो बाप को खा डाला। ऐसा कहकर दसशीश हँसा। मैं तो पिता के खाने के बाद तुम्हे भी खा जाता। पर अभी मेरे मन मे एक बात आयी है।

व्याख्या : ऐसे अवसर पर खाना शब्द का प्रयोग देहात मे प्रिय मरण इष्ट होने के अर्थ मे करते हैं। रावण कहता है कि यदि तुम्हारी ऐसी बुद्धि है कि लाज रोप और माख के न होने को गुणग्राहकता मानते हो तभी अपने पिता का मरण

तुम्हे इष्ट हुआ : बाप के मारनेवाले के सेवक होकर तुम अपने को बड़ा मानी समझ रहे हो। मेरी ऐसी मति नहीं है। मै तो नाक कान विहीन भगिनी को देखकर कुरूप करनेवाले की स्त्री को हर लाया।

इस पर अङ्गदजी का कहना है : जाके प्रिय न राम बैदेही। तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही। रामविरोधी पिता भी हो तो वह वैरी ही है। अत. सचमुच मैने उसे खाया और यहाँ तुम्हे खाने के लिए आया था। पर एक बात अभी मन मे आगयी इसलिए तुम्हे छोड देता हूँ।

वालि विमल जस भाजनु जानी। हतौ न तोहि अधम अभिमानी॥
कहु रावन रावन जग केते। मै निज स्रवन सुने सुनु जेते॥६॥

अर्थ : रे अधम अभिमानी! बालि के निर्मल यश का पात्र समझकर मैं तुझे नहीं मारता हूँ। हे रावण! कह तो इस ससार मे कितने रावण हैं? जितनो को मैने सुन रक्खा है उन्हे सुन।

व्याख्या : तुम सरकार के भुजबल का अपमान करते हो। अत अधम अभिमानी हो। यथा : मम भुजबल आस्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी। तुम वधयोग हो पर तुम बालि के निर्मल यश के पात्र हो। बालि ने तुम्हे पकड़कर छोड़ दिया। न मारा और न राज्य लिया। यह बालि का निर्मल यश है। जब तक तुम जीते हो बालि के निर्मल यश का चिह्न बना हुआ है। मै अपने हाथ से उस चिह्न को मिटाना नही चाहता। यही तुम्हारे न मारने का कारण है।

रावण ने कहा है : सठ बिलोकु मम बाहु। लोकपाल बल बिपुल ससि ग्रसन हेतु जिमि राहु इत्यादि। इसका उत्तर देते हुए अङ्गदजी कहते हैं कि तुमने अपनी इतनी बड़ाई की। पर रावण का चरित मैने इससे विपरीत सुना है सो क्या वे दूसरे रावण है? अतः पूछते हैं कि यदि तुम्हे ठीक न मालूम हो कि तुम्हारे नामराशी कितने हैं तो मैने जितने सुने हैं उन्हें सुनाये देता हूँ। उनमे से यदि कोई तुम हो तो बोल देना।

बलिहि जितन एकु गयउ पताला। राखेउ बाँधि सिसुन्ह हयसाला॥
खेलहि बालक मारहि जाई। दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई॥७॥

अर्थ : बलि को जीतने एक पाताल गया था। उसे लड़को ने अश्वशाला मे बाँध रक्खा था। लड़के उससे खेलते थे और मारते थे। दया लगी तो बलि ने उसे छुड़ा दिया।

व्याख्या : उस रावण को भी बड़ा अभिमान था। राजा बलि पाताल मे रहते हैं। किसी से उनका सम्बन्ध नही। सो उन्हे जीतने को पाताल मे गया। वहाँ के निवासी बालको ने देखा कि दसशिर और बीस बाहु का यह कोई विचित्र पशु

है सो उसे पशु समझकर घोडसार में बालको ने बाँधा कि दोनो शाम इस पर सवारी करेंगे।

लडको का खेल आरम्भ हुआ। कभी एक सवार होना है कभी दूसरा। और उन सबो ने ऐसी पिटाई की कि बलि महाराज को दया आगयी। उसे छुड़ा दिया। जिसको जीतने गये थे उन्ही की कृपा से बन्धनमुक्त हुए और तुम कहते हो कि बिलोकु मम बाहु। लोकपाल बल बिपुल ससि ग्रसन हेतु जिमि राहु। यह सामञ्जस्य कैसे बैठेगा।

एकु बहोरि सहसभुज देखा। धाइ धरा जिमि जंतु बिसेखा॥
कौतुक लागि भवन लै आवा। सो पुलस्ति मुनि जाइ छोडावा॥८॥

अर्थ: एक रावण को कीर्तवीर्यार्जुन ने देख पाया। सो जन्तु विशेष समझकर दौडकर उसे पकड लिया। तमाशा के लिए घर ले आया। उसे पुलस्त्य मुनि ने जाकर छोडा दिया।

व्याख्या: एक और रावण था जो सहस्र भुजावाले अर्जुन की दृष्टि मे पड गया। उन्होने समझा कि यह कोई विशेष जन्तु है। हाथ से निकल न जाय। इसलिए दौडकर पकड लिया कि मेरे अजायबखाने मे ऐसा जन्तु नही है। इसी कौतुक से घर ले गया। उसके छोडाने के लिए स्वय पुलस्त्यजी को कष्ट करना पडा। उनके गौरव का ध्यान करके उसने छोड दिया। लङ्काभर के योद्धा मेघनाद कुम्भकरण आदि की एक न चली तब बूढे बाबा गये और छुडा लाये।

दो. एकु कहत मोहि सकुच अति, रहा बालि की काँख।
इन्ह महु रावण तै कवन, सत्य बदहि तजि माँख॥२४॥

अर्थ: एक रावण की बात कहने मे मुझे बडी लज्जा लगती है कि वह बालि के काँख मे रहा। इनमे तू कौन रावण है? माँख छोडकर सत्य बतला दे।

व्याख्या: एक बात को मुझे कहते लज्जा आती है। उस रावण का न आयी। वह बालि के काँख मे दबा रहा। भला एक शत्रु दूसरे की काँख मे कैसे दबा रहता है? यह मेरे समझ मे बात नही आती। शत्रु के हाथ से मर जाने मे लज्जा नही है। पर इस प्रकार से अपमानित होकर जीना ऐसी लज्जा की बात है कि कहनेवाले को लज्जा आती है। इन्ही तीन रावणो की प्रसिद्धि है। इन्ही मे से तुम कोई होगे सो अपमान की भावना छोडकर सत्य बतला दो। मुझे उस रावण पर ध्यान रखना है जो बालि के काँख मे रहा।

सुनु सठ सोइ रावन बलसीला। हरगिरि जान जासु भुज लीला॥
जान उमापति जासु सुराई। पूजेउँ जेहि सिर सुमन चढाई॥१॥

अर्थ: रावण ने कहा रे शठ सुन! मैं वही बलवान रावण हूँ जिसके भुजाओ

की लीला कैलास जानता है। जिसकी शूरता को उमापति जानते हैं जिनको मैंने सिररूपी फूल चढ़ाकर पूजा है।

व्याख्या : रावण ने कहा तुझे अपने हृदय मे अपना बड़ा पक्ष है इसलिए तू शठ है। यथा : सठ स्वपच्छ तव हृदय बिसाला। तेरी सब बातें अप्रमाण हैं। क्योकि वे सुनी सुनायी हैं। उनका कोई साक्षी नही है। मैं जो बातें कहता हूँ उसके साक्षी हैं। इसलिए सब प्रमाण हैं। रावण अङ्गद के तीन आक्षेपो के उत्तर पाँच घटनाएँ अपनी महिमा को द्योतक वर्णन करते हैं। पहिले तो अपना कहते हैं और साक्षी मे कैलास पर्वत को देते हैं। यथा · कौतुक ही कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ। मनहु तौलि निज बाहु बल चला बहुत सुख पाइ।

दूसरे अपना शौर्य वर्णन करते हैं और उसके साक्षी उमापति को बतलाते हैं कि मैंने जब उनकी पूजा की थी तो फूल के स्थान पर सिर उतार उतारकर चढाये थे। सिर को काटकर चढाने मे न तो विकलता का अनुभव किया न अश्रद्धा का।

सिर सरोज निज करन्हि उतारी। पूजेउँ अमित बार त्रिपुरारी ॥
भुज बिक्रम जानहि दिगपाला। सठ अजहूँ जिनके उर साला ॥२॥

अर्थ : सिररूपी कमलो को अपने हाथो से उतारकर उनसे मैने असख्य बार शिवजी की पूजा की। दिक्पाल मेरे भुजाओ के पराक्रम को जानते है। रे शठ! आज भी जिनके हृदय मे शाल मौजूद है।

व्याख्या · अब लकेश अपना धैर्य और श्रद्धा कहते हैं। पूजन के लिए फूल अपने हाथ से उतारना चाहिए। सो अपने सिरो को मैने अपने हाथ से काटा। युद्ध मे भले हो दूसरा कोई सिर काट ले पर अपने हाथ से अपना सिर काटनेवाला कौन है? इससे अपना वीरतातिशय कहा और इस भाँति असख्य बार त्रिपुरारि की पूजा की। यथा : सादर सिव कहँ सीस चढाये। इससे पूजातिशय कहा ऐसा पूजन करनेवाला कौन है? जैसे एक बार फूल लेने पर फिर फूल निकलते हैं। इस भाँति मेरे सिरो मे भी बाढ आती है। यह बात भी ससार मे कहाँ है? इससे सिर कटने पर भी दूसरे सिर निकलने से अपना अजेयत्व कहा। ऐसे रावणको क्या लडकर जीत सकते हैं?

मेरे भुजाओ का विक्रम कैलास जानता है। यदि जड समझकर उसे साक्षी रूप से स्वीकार न करो तो दिक्पालो से पूछ लो। उनसे युद्ध हुआ है। ऐसी चोट लगी कि कलेजे मे साल पड गयी। साँस लते नही बनता। लडाई के समय उनको क्या दशा हुई थी यह इसी से समझ लो।

जानहि दिग्गज उर कठिनाई। जब जब भिरेउँ जाइ बरिआई ॥
जिन्हके दसन कराल न फूटे। उर लागत मूलक इव टूटे ॥३॥

अर्थ : दिग्गज मेरी छाती की कठोरता को जानते हैं। जब जब मैं उनसे

जाकर जबरदस्ती भिडा उनके दाँत बडे कराल हैं। कभी फूटे नहीं थे। पर मेरी छाती मे लगने से मूली की भाँति टूट गये।

व्याख्या : वीरो के भुजा और वक्ष स्थल की प्रशसा होती है। सो अपना बल और शौर्य कहकर भुजाओ की प्रशसा की। अब वक्ष स्थल की प्रशसा करता है कि वक्ष स्थल की कठिनाई के साक्षी दिग्गज हैं जो सब दिशाओ से पृथिवी को सँभाले हुए हैं। उनसे युद्ध करने का प्रयोजन नही था और न वे मुझसे लडना चाहते थे। पर मैं बल परीक्षा के लिए जबरदस्ती जाकर उनसे लडा। उनके दाँत बडे कराल हैं। हाथियो के दाँत बडे हो जाने पर किसी न किसी आघात से फूट जाया करते हैं। नही तो हाथी वृक्ष की सन्धियो मे डालकर उनको फोड देते हैं। पर उनके दाँत ऐसे कराल हैं कि वे फूट न सके। उन दाँतो से उन्होने पीछे हटकर चोट की। मैंने उस चोट को अपनी छाती पर ली और वे दाँत टूट गये। मेरी भुजाएँ ऐसी, वक्ष स्थल ऐसा मुझे पकडनेवाला कौन है ?

जासु चलत डोलत इमि धरनी। चढत मत्त गज जिमि लघु तरनी ॥
सोइ रावन जग विदित प्रतापी। सुनेहि न स्रवन अलीक प्रलापी ॥४॥

अर्थ जिसके चलने से इस भाँति पृथिवी डोल उठती है जैसे मतवाले हाथी के चढने से छोटी नाव डोल उठती है। वही ससारप्रसिद्ध प्रतापी रावण मैं हूँ। रे बेसिर पैर की हाँकनेवाला ! क्या तूने इसको कभी कान से भी नही सुना ?

व्याख्या · अङ्गदजी ने रावण के तीन पराभवो का वर्णन किया था। एक तो पाताल लोक निवासी बालको से एक सहस्रबाहु से और एक बालि से। सो दो उदाहरणो से रावण ने पहिले पराभव को असम्भव बतलाया। फिर तीसरा और चौथा उदाहरण देकर दूसरे पराभव का असम्भाव्य होना सिद्ध किया। अब तीसरे पराभव बालि के काँख मे रहनेवाली कथा को असम्भवता सिद्ध करते हैं कि मेरे भार से नित्य ही भूकम्प होता है। इसे तो सभी जानता है। साक्षी देने की आवश्यकता नही। सो ऐसा भूडोल आता है जैसे मत्त हाथी के चढने से छोटी नाव डोल उठती है। हाथी के चढने से बडी से बडी नाव भी डोल उठती है। छोटी नाव डूब नही जाती यही बहुत है। ऐसे महान् गौरवशाली को काँख मे लेनेवाला कौन है ?

जिसे *कैलास जानता है उमापति जानते हैं दिग्पाल जानते हैं दिग्गज जानते* हैं ससार जानता है। जो जग विदित प्रतापी है। यथा रावन आवत सुनेउ सकोहा। दवन तवउ मेरु गिरि खोहा। ऐसे को तूने सुना ही नही और कहता है . मैं निज स्रवन सुना सुनु जेते। तू अलीक प्रलापी बिना समझे बकता है। तेरी बातें सब असाक्षिक होने से अप्रमाण हैं।

दो तेहि रावन कहुँ लघु कहसि, नर कर करसि बखान।
रे कपि बर्बर खर्ब खल, अब जाना तव ग्यान ॥२५॥

अर्थ : उस रावण को तू छोटा कहता है और नर की प्रशसा करता है। रे बन्दर! तू असभ्य तुच्छ और खल है। अब तेरी बुद्धि को मैंने जान लिया।

व्याख्या : अब अपने कथन का उपसहार करते हुए रावण कहते हैं कि ससार मे नर की कोई गिनती नही है। ये तो कीट है। यथा : कहा कीट बपुरे नर नारी। सो तू नर की प्रशसा करता है और ऐसा जग विदित प्रतापी मै हूँ। सो मेरी निन्दा करता है। मुझे छोटा बतलाता है। बतला तो उस नर ने कभी कैलास उठाया था? सिर को काटकर कभी शकर पर चढाया था? दिक्पाल और दिग्गजो से कभी लडा था? उसके चलने से कभी भूचाल आती है? फिर वह बडा कैसे हुआ? बन्दरो मे भी तू असभ्य है तुच्छ है और खल है। (१) कोउ न हमरे कटक महँ (२) जो मृगपति बध मेडुकहि (३) जद्यपि लघुता राम कहँ तोहि बधे बड दोष। ये तीन बातें अङ्गद ने कही हैं। इन्ही तीनो वाक्य के लिए तीन गालियाँ अङ्गदजी को सुनाता है। बर्बर खर्व और खल। और कहता है कि तेरी बुद्धि का अब मुझे पता लग गया कि वह तामसी है। उल्टी बात समझती है। मै तो धर्म का विचार करके तुझ दूत को छोड देता हूँ और तू उसे मेरी निर्बलता समझता है। तेरी समझ मे दूत का वध धर्म है और मुझे निर्बल समझना और उस तपस्वी को बलवान समझना ठीक है। अत कहता हूँ कि तेरी बुद्धि तामसी है और तू उलटा समझता है।

सुनि अंगदु सकोप कह बानी। बोलु सँभारि अधम अभिमानी॥
सहसबाहु भुज गहन अपारा। दहन अनल सम जासु कुठारा॥१॥

अर्थ यह सुनकर अङ्गदजी क्रोध के सहित बोले कि रे अधम अभिमानी। सँभालकर बोल। सहसबाहु की भुजाओ के अपार वन के जलाने के लिए जिसका कुठार अग्नि हुआ।

व्याख्या . जिस भाँति . आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैंगे ताहि। सुनकर रावण को क्रोध हुआ और उसने रे कपिपोत बोल समारी। कहा उसी भाँति : नर कर करनि बखान। सुनकर अङ्गदजी को क्रोध हुआ और बोले कि रे अधम अभिमानी सँभालकर बोल। सरकार के बल का अनादर करता है। तू अधम अभिमानी है।

तुम्हारी भुजाएँ विटप हैं। यथा भुजा विटप सिर सृङ्ग समाना। गिनती मे बीस हैं। पर जिसकी भुजाएँ जगल थी। नाम ही सहस्रबाहु था। जगल को तो कितने लोग पार कर जाते हैं पर उस जगल को कोई पार नही कर सकता था। तुमने भी पार नही पाया था। यथा : धाइ धरा जिमि जन्तु बिसेखा। एक पुरुष ऐसा है कि जिसके परशुरूपी अग्नि को पाकर पूरा जंगल ही समाप्त हो गया अर्थात् उसे परशुरामजी ने मारा।

जासु परसु सागर खर धारा। बूडे नृप अगनित बहु बारा॥
तासु गर्ब जेहि देखत भागा। सो नर क्यों दससीस अभागा॥२॥

अर्थ जिसके परशुरूपी समुद्र के तीखे धार मे असख्य राजा अनेक बार डूब गये। उनका गर्व जिसके देखते ही दूर हो गया। अरे अभागा दसशीश! वे मनुष्य कैसे हैं ?

व्याख्या परशुरामजी का क्रोध सहस्रबाहु को मारकर ही शान्त नही हुआ। इक्कीस बार पृथिवी को नि क्षत्र किया। यथा जिसने बार इक्कीस लहू की नदी बहाया। नृपति मास मस्तिष्क पङ्क मय कूल बनाया। किया तहाँ असनान दिया पितरो को पानी। जिसके कठिन कुठार धार की विदित कहानी। बाल वृद्ध वनिता निधन म भी जो निर्दय महा। कन्द कूट नृप यूथ के काटन मे अति पटु रहा। प्र० च०। उन्हे बडा गर्व था और ठीक था। पर जिसके दर्शन से उनका गर्व दूर हुआ। यथा अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता। छमहु छमा मन्दिर दोउ भ्राता। उस महापुरुष को तुम नर कहते हो। तुम्हे सिर तो दस हैं पर भाग्य किसी मे नही है। तुम भवभञ्जन पद विमुख हो। इसलिए तुम अभागी हो।

साहिब सीतानाथ सो, जब घरिहैं अनुराग।
तुलसी तबही भाल ते, भभरि भागिहै भाग ॥ दोहावली ७०॥

रामु मनुज कस रे सठ बगा। धन्वी कामु नदी पुनि गगा ॥
पसु सुरधेनु कल्पतरु रूखा। अन्न दान अरु रस पीयूखा ॥३॥

अर्थ • अरे नटखट! रामजी मनुष्य कैसे है ? कामदेव क्या धन्वी है या गगा नदी है ? क्या कामधेनु पशु है। कल्पवृक्ष पेड है। अन्न दान है और अमृत रस है ?

व्याख्या जो किसी का उपदेश न मानकर मनमाना करे उसी को बगा कहते हैं। अगदजी कहते हैं कि तू शठ है और बगा है। विनय नही सुनता इसलिए शठ है और शिक्षा नही सुनता इसलिए बगा है। यहाँ पर अङ्गदजी ने उसे व्याज से विभूतियोग का उपदेश किया।

रामजी माया से मनुष्य रूप धारण किये हैं। अत मूढ लोग उन्हे मनुष्य ही मानते हैं। मारीच ने भी रावण को समझाया था। यथा तेहि पुनि कहा सुनहु दससीसा। ते नर रूप चराचर ईसा। तासो तात बयर नहि कीजे। मारे मरिय जियाये जीजे। पर रावण सठ बगा है। किसी की नही सुनता। अत आक्षेप करते हुए अङ्गदजी कहते हैं। यहाँ बारह विभूतियो का वर्णन है। जिन भावो से भगवान् चिन्ता करने योग्य है

१ मनुष्यो मे रामरूप से चिन्त्य हैं। यथा राम शस्त्रभृतामहम्। भगवद्गीता।

२ काम कुसुम धनुसायक लीन्हे। सकल लोक अपने बस कीन्हे। उसे गीता मे धर्माविरुद्धो भूतेपु कामोऽस्मि भरतर्षभ। भगवान् कहते हैं कि धर्माविरोधी काम स्वय मैं हूँ। उसे लौकिक धन्वी कहना अनर्थ है। सुख के चाहनेवाले कामरूप से भगवान् को उपासना करते हैं। यथा सुखार्थी कामरूपेण स्मरेदङ्गजमीश्वरम्।

३. गङ्गा : गंगाजी तो निराकार ब्रह्म ही मानी जाती हैं। यथा : करहिं प्रनाम नगर नर नारी। मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी। श्रीमद्भगवद्गीता मे भगवान् ने कहा है कि नदियो मे गंगा मैं हूँ। स्रसामस्मि जाह्नवी। उनमे नदी की दृष्टि रखना परम मूढता का परिचायक है।

४. सुरधेनु : कामधेनु के लिए गीता मे भगवान् ने कहा है कि गायो मे मैं कामधेनु हूँ; यथा : धेनूनामस्मि कामधुक्। स्वयम् भगवान् की उपमा कामधेनु से दी जाती है। यथा : सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। उसमे पशु की दृष्टि करना अविवेक की पराकाष्ठा है।

५. कल्पतरु : सबके मनोरथ का पूर्ण करनेवाला कल्पवृक्ष है। यथा : जाइ निकट पहिचानि तरु छाँह समनि सब सोच। माँगते अभिमत पाव जग राउ रंक भल पोच। उस कल्पवृक्ष को केवल रूप के साम्य से पेड माननेवाला नितान्त बुद्धिहीन है।

६. अन्नदान : अन्न से ही जीवन है। जो अन्न देता है वह जीवन दान करता है। अतः अन्नदान सरकार की विशेष विभूति है। अन्न की ब्रह्मदृष्टि से उपासना का विधान है। अन्न की निन्दा न करने का व्रत है। अन्नदाता पिता समझा जाता है। उस अन्न का दान क्या अन्य वस्तुओ के दान के समकक्ष समझा जायगा ?

७. पीयूष : जिसके लिए सम्पूर्ण सुर और असुरों ने मिलकर समुद्र मन्थन किया। जिसके लिए देवासुर संग्राम हुआ और जिसके पीने से तुरन्त बलवान् होकर देवताओ ने असुरो पर विजय पाया। जो सम्पूर्ण स्वादु पदार्थ का सिरमौर है। जो सम्पूर्ण रोगो की अव्यर्थ औषध है। जिसे पान करने से जरा मरण टल जाता है। जिसके निवास से चन्द्र की इतनी शोभा है। जो जगत् का जीवन है। जिसकी उपमा रामनाम से दी जाती है। उस अमृत को द्रवरूप होने से रस : शर्बत समझना कितना बड़ा अविवेक है।

वैनतेय खग अहि सहसानन। चिंतामनि पुनि उपल दसानन॥
सुनु मतिमंद लोक बैकुंठा। लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा॥४॥

अर्थ : क्या गरुड़ पक्षी हैं शेषजी सर्प हैं या चिन्तामणि पत्थर है ? रे मतिमन्द सुन; क्या बैकुण्ठ लोक है और रामजी की तीव्रभक्ति भी क्या लाभ है ?

व्याख्या : ८. गरुड़जी ज्ञानी हैं, भक्तशिरोमणि हैं ? त्रिभुवनपति की सवारी है। साक्षात् नारायण की विभूति विशेष हैं। यथा : वैनतेयश्च पक्षिणाम्। सामच्छनि जिसका शरीर है। यथा : सामच्छनिशरीरस्त्वं वाहनः परमेष्ठिनः। मात्स्ये। वे गरुड़ भगवान् केवल पक्षधर होने से चिड़िया कहे जायँगे ?

९. सहसानन : शेषजी ! जिसके सहस्र सिरो मे से एक पर यह ब्रह्माण्ड धूलि के कण सा रक्खा हुआ है। यथा : ब्रह्माड भुवन बिराज जाके एक सिर जिमि रज कनी। उस त्रिभुवनधनी को केवल सर्प सा आकार धारण करने से क्या साँप कहा जायगा ?

१० चिन्तामणि : जिस चिन्तामणि के प्रभाव से दरिद्रता का नाश होता है। अन्धकार दूर होता है। खल निकट नही जाते। विष नष्ट होता है। रोग दूर होते हैं। सब सुखो की प्राप्ति होती है। जिसकी उपमा भक्ति से दी जाती है। उसका रूप पत्थर सा होने से क्या वह पत्थर कहा जायगा ?

११. वैकुण्ठ : जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। वेद पुरान विदित जग जाना। जिस वैकुण्ठ की प्रशसा वेद पुराण करते है। जो संसार मे प्रसिद्ध है। जो साक्षात् भगवद्-विग्रह है। साक्षात् लक्ष्मीनारायण का जहाँ निवास है। जो ब्रह्मलोक से भी परे हैं। उसे जीव का निवास स्थान कहना बुद्धिमान्द्य का ही परिचायक है।

१२ भक्ति : जितने साधन वेद ने बतलाये हैं : तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग विराग ग्यान निपुनाई। नाना कर्म धर्म व्रत दाना। सजम दम जप तप मख नाना। जहँ लगि साधन वेद बखानी। सबका फल हरिभक्ति है। उस भक्ति की गणना फायदा : लाभ मे करना सामान्य मूढता नही है।

दो. सेन सहित तव मान मथि, बन उजारि पुर जारि।
कस रे सठ हनुमान कपि, गयेउ जो तव सुत मारि ॥२६॥

अर्थ : सेना के सहित तेरे अभिमान को मथकर वन उजाडकर नगर जलाकर तेरे बेटे को मारकर जो चला गया। वह हनुमान् क्यो रे शठ ! बन्दर है ?

व्याख्या : जिसने सेना के सहित तेरे मान का मर्दन किया। यथा

मत्तभट मुकुट दसकठ साहस सैल शृग बिद्दरनि जनु बज्र टाँकी।
दसनधरि धरनि चिक्करत दिग्गज कमठ शेष सकुचित शकित पिनाकी ॥
चलत महि मेरु उच्छलत सागर सकल बिकल बिधि बधिर दिसि बिदिस झाँकी।
रजनिचर घरनि धर गर्भ अर्भक स्रवत सुनत हनुमान की हाँक बाँकी ॥
क० रा०

बड़ो बिकराल वेष देखि सुनि सिंहनाद उठ्यो मेघनाद सविषाद कहै रावनो।
वेग जीत्यो मारुत प्रताप मारतड कोटि कालऊ करालता बडाई जित्यो बावनो ॥
तुलसी सयाने जातुधान पछिताने मन जाको ऐसो दूत सोतो साहिब अबै आवनो।
काहे को कुसल रोषे राम वामदेवहू की बिषम बली ते वादि बैर को बढावनो ॥

तेरे प्राण से प्यारे अशोक वन को उजाडा। यथा :

बासव बरुन बिधि बन ते सुहावनो दसानन को कानन बसत के सिंगारु सो।
समय पुराने पात परत डरत बात पालत लालत रति मार के बिहारु सो ॥
देखे बर बापिका तडाग बाग को बनाव रागबस भो बिरागी पवनकुमार सो।
सीय की दसा बिलोकि बिटप असोक तर तुलसी बिलोक्यो सो तिलोक सोक सारसो ॥
मालो मेघमाल बनपाल बिकराल भट नीके सब काल सीचे सुधासार नीर को।
मेघनाद तें दुलारो प्रान ते पियारो बाग, अति अनुराग जिय जातुधान धीर को ॥
तुलसी सो जानि सुनि सीयको दरस पाइ पैठो बाटिका बजाइ बल रघुबीर को।
विद्यमान देखत दसानन को कानन सो तहस नहस कियो साहसी समीर को ॥

तेरे नगर को जलाया। यथा :

पात्र पकवान विधि नाना को सँधानो सीधो विविध विधान धानवरत बखारहीं।
कनक किरीट कोटि पलंग पिटारे पीठ काढत कहार सब जरे भरे भारहीं॥
प्रबल अनल बाढै, जहाँ काढै तहाँ डाढै झपट लपट भरे भवन भंडारहीं।
तुलसी अगारु न पगारु न बजार बच्यो हाथी हथिसार जरे घोर घोरसारहीं॥

तेरे बेटे को मारा। यथा :

आवत देखि विटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा॥
देखत तोहि अच्छ जेहि मारा। तासु पंथ को रोकनि हारा॥

उसे बन्दर कहते तुम्हे लज्जा नही आती। जो तूने कह डाला कि 'है कपि एक महा बलसीला। यहाँ पर अंगदजी ने संक्षेप से विभूतियोग कहा।

सुनु रावन परिहरि चतुराई। भजसि न कृपासिंधु रघुराई॥
जौ खल भयेसि रामकर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही॥१॥

अर्थ : हे रावण ! सुनो तुम चालाकी छोड़कर कृपासिन्धु रघुपति को क्यों नही भजते। रे खल ! यदि तू राम का द्रोही हुआ तो ब्रह्मा और शंकर तेरी रक्षा न कर सकेंगे।

व्याख्या : भाव यह कि तुम तथ्य पर नही जा रहे हो। चालाकी से बातें बना बनाकर आत्मा और आत्मीय को धोखा दे रहे हो। तुम चालाकी छोड़ दो। क्योकि चालाकी भजन में बड़ी भारी बाधक है। यथा : मन क्रम वचन छाड़ि चतुराई। भजन कृपा करिहहिं रघुराई। भजन में सरलता की अनिवार्य आवश्यकता है। दो गुण हैं। जिनका होना भजनीय मे आवश्यक है। एक सामर्थ्य और दूसरी दया। सो रघुपति मे दोनों गुणों का अत्यन्त उत्कर्ष है। कृपा के तो वे समुद्र ही हैं। और सामर्थ्य ऐसा है कि ब्रह्मा और रुद्र की भी वहाँ एक नही चलती। इन्ही दो देवो का तुम्हे भरोसा है। इन्ही के बल पर तुमने इन्द्रादि का द्रोह किया और ये तुम्हारी रक्षा करते आये। पर राम का द्रोह करने से ये चाहने पर भी रक्षा न कर सकेंगे। जयन्त की रक्षा नही कर सके। क्योकि इन्ही के बनाये ये ब्रह्मा रुद्र बने हैं। तू खल है। खल बिनु कारन पर अपकारी। निष्कारण वैर करता फिरता है। रामजी से भी तू निष्कारण विरोध कर रहा है।

मूढ़ वृथा जनि मारसि गाला। राम वयर अस होइहि हाला॥
तव सिर निकर कपिन्ह के आगे। परिहरि धरनि राम सर लागे॥२॥

अर्थ : रे मूढ ! व्यर्थ डीग न हाँक। राम के वैर से तेरी गति ऐसी गति होगी कि तेरे सिर रामजी के बाणो के लगने से बन्दरो के आगे पृथ्वी पर गिरेंगे।

व्याख्या : नर कर करेसि बखान का उत्तर देकर अब अङ्गदजी : सुनु सठ सोइ रावन बल सीला। हर गिरि जान जासु भुज लीला। आदि उक्तियों का उत्तर देते हुए कहते हैं कि तू मूढ है। बात नही समझता। तेरा डीग हाँकना व्यर्थ है।

रामजी ही बल के मूल स्रोत हैं। उन्ही के बल से ब्रह्मा विष्णु रुद्र उत्पत्ति पालन और सहार करते हैं, तुमने भी जो कुछ किया है सो उन्ही के बल के लवलेश से किया है। मूढता से तुम अपने को कर्ता मान रहे हो। उसी मूल स्रोत से विरोध करने पर बल कहाँ से आयेगा ? फिर ता तुम्हारी बुरी गति होगी।

बखसीस ईस जू की खीस होत देखियत ! ये जो तेरे सिर शङ्करजी पर चढे थे वे रामजी के बाण लगने से बन्दरो के आगे पृथ्वी पर गिरेंगे। लोकपालो के गिराये ये सिर नही गिरे पर रामजी के बाण के आगे ये न ठहर सकेंगे।

ते तव सिर कंदुक सम नाना। खेलिहहिं भालु कीस चौगाना ॥
जबहि समर कोपिहि रघुनायक। छुटिहहि अति कराल बहु सायक ॥३॥

अर्थ : तुम्हारे सिरो को अनेक गेदो की भाँति वे भालू और बन्दर चौगान खेलेंगे। जब रघुनायक युद्ध मे क्रोध करेंगे तो अत्यन्त कराल बहुत से बाण छूटेंगे।

व्याख्या : वे भालू बन्दर यह विचार न करेगे कि यह सिर शिव निर्माल्य है। वे उसे गेंद बनाकर चौगान खेलगे। छोटा होने से हाथो से खेला जाता है और बड़ा होने से लात की ठोकर देकर खेलते हैं।

रघुनायक कभी कोप नही करते। इनका कोप समराङ्गण मे ही व्यक्त होता है। : तब चले बान कराल। फुँकरत जनु बहु व्याल। कोपे समर श्रीराम। चले विसिख निसित निकाम। अवलोकि खरतर तीर। मुरि चल निसिचर वीर। उन खरतर तीर का सामना खरदूषण नही कर सके। वे ही कराल बाण जब बहुत से छूटेगे तब तुम्हे समझ मे आवेगा। रावण ने पहिले अपने सिर की कथा कही थी और तत्पश्चात् शेष अङ्गो का पराक्रम कहा था। अत अङ्गदजी सिर की दुर्दशा पहिले कहके तब शेष अङ्गो को दुर्गति कहते हैं।

तबकि चलिहि अस गाल तुम्हारा। अस विचारि भजु राम उदारा ॥
सुनत बचन रावनु पर जरा। जरत महानल जनु घृत परा ॥४॥

अर्थ : तब तुम्हारा क्या ऐसा गाल चलेगा ? ऐसा विचारकर उदार राम को भज। वचन सुनते ही रावण भभक उठा। जैसे जलती हुई आग मे घी पडे।

व्याख्या : घर बैठे ही गाल चलता है। जो चाहते हो बोलते हो चले जा रहे हो। जब सरकार के अति कराल बाण चलगे। तब तुम्हारा गाल बजाना बन्द हो जायगा। तुम विकल हो जाओगे। करते धरते कुछ न बनेगा। तुम्हारे समान कोटि के तथा तुमसे बडे वीरो से भी करते कुछ न बना। ऐसा विचार कर राम को भजो। वे बडे उदार हैं। उनके सामने दीनता स्वीकार करने मात्र की आवश्यकता है। उनके द्रवीभूत होते देर नही लगती। यथा : ऐसो को उदार जगमाही। बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाही। रावण बोलु सभारि अधम अभिमानो' आदि उक्तियो पर पहल से ही जल रहे थे। परन्तु अपनी दुर्दशावाली बात पर तो

एक दम भभक उठे, जिस भाँति जलती हुई भारी आग में घी पड़ने से वह भभक उठती है।

दो. कुंभकरन अस बंधु मम, सुत प्रसिद्ध सक्रारि।
मोर पराक्रम नहि सुनहि, जितेउँ चराचर झारि ॥२७॥

अर्थ : कुम्भकर्ण जैसा मुझे भाई है। बेटा मेरा शक्रारि : इन्द्रशत्रु नाम से प्रसिद्ध है। तूने मेरा पराक्रम नही सुना। मैंने सम्पूर्ण चर और अचर को जीत रक्खा है।

व्याख्या : रावण ने कहा कि तू तो ऐसा बोल रहा है जैसे कोई किसी अनाथ की दुर्दशा कह रहा हो। जो सब तरह से सनाथ है उसके लिए ऐसी बात कैसे सम्भव है। कुसमय मे भाई काम आते हैं। यथा : ओडिअहि हाथ असनिहुँके घाए। होहि कुठाँय सुबंधु सहाए। सो मुझे अतिबल कुंभकरन अस भ्राता। जेहि कहुँ नहि प्रतिभट जगजाता। मेरे भाई का जोड़ संसार मे पैदा ही नही हुआ। ब्रह्मदेव देखकर स्वयं आश्चर्य में आ गये कि उसे रहते मुझे भय कहाँ। ससार जानता है कि मेरा आज्ञाकारी बेटा इन्द्र को जीतनेवाला है। यथा : जे सुर समर धीर बलवाना। जिन्हके लरिबे कर अभिमाना। तिन्हहि जीति रन आनेसु बाँधी। उठि सुत पितु अनुसासन काँधी। वारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महुँ प्रथम लीक जग जासू। जेहि न होइ रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहि परावन होई है जिसे ऐसा बेटा हो उसे भय के लिए स्थान कहाँ। तिस पर अकेला मैं चराचर को जीत चुका हूँ। मुझे किसी की सहायता की आवश्यकता नही है। मालूम होता है तूने मेरा पराक्रम सुना नही है। इसी से ऐसा बोलता है।

सठ साखामृग जोरि सहाई। बाँधा सिंधु इहै प्रभुताई॥
नाघहि खग अनेक बारीसा। सूर न होहि ते सुनु सब कीसा ॥१॥

अर्थ : रे शठ! वानरो की सेना जुटाकर समुद्र बाँध लिया यही प्रभुता है। अनेक पक्षी समुद्र लांघा करते हैं। इसलिए वे शूर नही हो जाते।

व्याख्या : भाव यह है कि तीन लोक मे उस तपस्वी को मेरे भय से सहायक तो कही मिले नही। बन्दर की जाति मूर्ख होती है। वे ही सहायता के लिए तैयार हुए। वे भी शाखामृग हैं। उनकी इतनी ही प्रभुता है कि एक शाखा पर से दूसरी पर जा रहें और चूकें नही। उनकी सेना जोड़कर समुद्र पर सेतु बांधा, यही उनकी प्रभुता है। इसके अतिरिक्त और कोई प्रभुता तुम उनकी बतला नही सकते। पर इसमें भी उस तपस्वी ने क्या किया : राम बैर अस होइहि हाला का यह उत्तर रावण ने दिया।

तुम लोग तो समुद्र मे सेतु बाँधकर पार आये हो। कितनी चिड़ियाएँ बिना सेतु के ही समुद्र लाँघा करती है। कार्य करने का पौरुष पृथक् सामग्री है। तू जड़ है

समझ नहीं सकता। समुद्र के बन्धन पर ही रीझा है। अजी! समुद्रोल्लंघन से चिड़िया वीर नहीं हो जाती।

मम भुज सागर बल जल पूरा। जहँ बूड़े बहु सुर नर सूरा॥
बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहि पारा॥२॥

अर्थ : मेरी भुजारूपी समुद्र बलरूपी जल से पूर्ण है। जिसमे अनेक देवता और मनुष्य डूब गये हैं। ये बीस समुद्र अथाह और अपार है। ऐसा कौन वीर है जो इनका पार पा जाय।

व्याख्या : तव सिर निकर कपिन्ह के आगे। परिहहिं धरनि राम सर लागे। का उत्तर रावण देते हैं। इस समुद्र मे तो उड़नेवाले की सामर्थ्य देखी जाती है। पर मेरे भुजसागर मे तो वीरों की परीक्षा है। ये बलरूपी जल से भरे हुए बीस समुद्र इकट्ठे हैं। इनमें कितने सुर नर शूर डूब मरे—उनकी गिनती नहीं पर किसी ने पार न पाया क्योंकि न तो इनके आयाम का पता न गहराई का पता। अतः एक का पार होना दुस्तर है। बीसों को पार करनेवाला वीर है कौन ?

दिगपालन्ह मै नीरु भरावा। भूप सुजसु खल मोहि सुनावा॥
जौ पै समर सुभट तव नाथा। पुनि पुनि कहसि जासु गुनगाथा॥३॥

अर्थ : मैंने दिक्पालो से पानी भराया है और तू शठ मुझे राजा का सुयश सुनाने चला है। यदि तेरा नाथ जिसके गुण गाथा का तू बार बार वर्णन करता है युद्धवीर है :

व्याख्या : अस विचारि भनु राम उदारा। का उत्तर देते हुए रावण कहते हैं कि दिक्पालो से मैंने नीच टहल करवाया। यह देखने के लिए कि देखें इनमे कुछ स्वात्माभिमान शेष है कि नहीं। तो मालूम हुआ कि कुछ भी शेष नहीं है। लगे पानी भरने। सेतु बाँधना तो प्राकृत राजाओ का सुयश है। यथा : अति अपार जे सरित वर जे नृप सेतु कराहिं। तासु गर्व जेहि देखत भागा। सो नर क्यों दस सीस अभागा। का उत्तर देते हुए रावण कहते है कि तेरा नाथ तो वाक्वीर है युद्धवीर तो है नहीं। तू उसके गुणगाथा को बार बार कह रहा है। इस कारण यदि मान भी लें तो भी सामञ्जस्य नहीं बैठता।

तौ बसीठ पठवत केहि काजा। रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा॥
हरगिरि मथन निरखि मम बाहू। पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू॥४॥

अर्थ : तो सन्धि के लिए दूत क्यों भेजता है। शत्रु से प्रीति करते हुए उसे लज्जा नहीं लगती ? कैलास के मथनेवाले मेरे बाहु को देख ले। तब शठ बन्दर! तू अपने प्रभु की प्रशंसा कर।

व्याख्या : युद्धवीर तो प्रतिभट खोजते फिरते हैं। यथा : रन मद मत्त फिरइ जग धावा। प्रति भट खोजत कतहुँ न पावा। यदि वह युद्धवीर है तो उसने

दूत क्यों भेजा। दूत तो सन्धि चाहनेवाले भेजते हैं। मैं उसका दारापहर्ता परम शत्रु मुझसे प्रीति करने के लिए दूत भेजते उसे लज्जा नही आयी।

तब कि चलिहि अस गाल तुम्हारा। का उत्तर मेरी भुजाएँ देख ले। है तेरी सेना मे किसी की भुजा ऐसी? इन भुजाओं ने शिवजी के पर्वत का मन्थन किया है। अर्थात् पर्वत सहित शिवजी को भी उठा लिया। इनके देखने से फिर तुझे अपने प्रभु के सराहने का साहस न रह जायगा।

दो. सूर कवन रावन सरिस, स्वकर काटि जेहि सीस।
हुने अनल अति हरख बहु, बार साखि गौरीस ॥२८॥

अर्थ : रावण के ऐसा शूर कौन है जिसने अपने हाथ से अपना सिर काट डाला और अति हर्षित होकर अनेक बार अग्नि मे हवन कर दिया। शिवजी इसके साक्षी हैं।

व्याख्या : अब रावण अपनी शूरता कहते हैं। मैने अपना सिर अपने हाथ से काटा। कोई काटे तो हम उसे शूर माने। शूरो की अन्तिम परीक्षा सिर का काटना ही है। सो अपने हाथ से अपना सिर नही काटा जा सकता। सो मैंने कर दिखाया। अत: मुझसा शूर कोई नही। सिर कटते ही तो शूर की इतिश्री हो जाती है। उसे अग्नि मे हवन करने की किसे सामर्थ्य? तिस पर हर्षित होकर बार बार सिर काटकर चढनेवाला कौन है? चढाना तो दूर की बात है : इस बात पर विश्वास होना कठिन है। परन्तु इसके महादेवजी साक्षी है कि सब बातें सच्ची हैं। मूढ मृषा जनि मारेसि गाला। इत्यादि का उत्तर देते हुए रावण कहते हैं कि तेरी सब बातें झूठी हैं। मैं मृषा गाल बजानेवाला नही हूँ।

जरत विलोकेउँ जबहि कपाला। विधि के लिखे अंक निज भाला ॥
नर के कर आपन बध बाँची। हँसेउ जानि बिधि गिरा असाँची ॥१॥

अर्थ : जब मैंने अपनी जलती हुई खोपड़ी देखी और उसमें ब्रह्मदेव के लिखे अङ्क देखे तो मनुष्य के हाथ से अपना वध बाँचकर ब्रह्मा का लिखा हुआ झूठा समझकर मैं हँसा।

व्याख्या : एक सिर जल रहा है और दूसरा सिर तमाशा देख रहा है। विधि ने जो कपाल मे लिख रक्खा है उसे बाँच रहा है। विधि के अङ्क सभी के कपाल मे रहते हैं। पर सब कोई उसे पढ नहीं सकता। उस विषय के पण्डित उसे पढ सक्ते हैं। अत: हस्तरेखा से काम चलाया जाता है। यथा : अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि, परी हस्त अस रेख। हाथ मे रेखा रहती है और कपाल मे अङ्क रहता है। जब सिर जलने लगा तब रावण को ख्याल पड़ा कि ऐसा अवसर फिर न मिलेगा। देखें तो ब्रह्मदेव ने क्या लिखा है। तो उसमे देखा तो उसकी मौत मनुष्य के हाथ लिखी थी। रावण को उस पर हँसी आ गयी कि देखो ब्रह्मा भी

झूठ लिख गये। भाव यह कि इस विषय मे रावण ब्रह्मदेव का कहना भी प्रमाण नही मानते। अङ्गद का कहना कि तव सिर निकर कपिन के आगे। परिहैं धरनि राम सर लागे। किस गिनती मे है।

सोउ मन समुझि त्रास नहि मोरें। लिखा बिरंचि जरठ मति भोरें॥
आन बीर बल सठ मम आगे। पुनि पुनि कहसि लाज पति त्यागें॥२॥

अर्थ उसे समझकर भी मुझे भय नही है। क्योकि बूढे ब्रह्मदेव ने भूल से ऐसा लिख दिया। रे दुष्ट! तू दूसरे वीर का बल मेरे सामने लज्जा और मर्यादा छोडकर बार बार कहता है।

व्याख्या अस बिचारि भजु राम उदारा। का उत्तर देते हुए रावण कहते हैं कि स्वय ब्रह्मदेव का लेख देखकर तो मैं डरा ही नही। मुझे तो हँसी आ गयी कि बूढे होने से ब्रह्मा की भी अक्ल बुद्धि मारी गयी। तू चला है मुझे डराने। मेरी धारणा के प्रतिकूल यदि ब्रह्मा कह तो भी नही मानता।

रामजी का नाम तो रावण लेते नही। इसलिए कहते हैं कि दूसरे वीर का बल मेरे सामने नही कहना चाहिए। मुझसे यदि कोई अधिक हो तो उसका बल मेरे सामने कहना प्राप्त हो सकता है। सो मुझसे अधिक तो कोई है नही। ऐसा कौन है जो अपने हाथ से अपना सिर काटे। सिर कटने पर विचार करने की शक्ति रक्खे। ब्रह्मदेव का लिखा बाँचे और हँसे? अत दूसरे वीर की प्रशसा मेरे सामने करनेवालो को लज्जा होनी चाहिए। क्योकि एसा करके वह अपनी ही अप्रतिष्ठा कर रहा है।

कह अगद सलज्ज जग माही। रावन तोहि समान कोउ नाही॥
लाजवत तव सहज सुभाऊ। निजमुख निजगुन कहसि न काऊ॥३॥

अर्थ अङ्गद ने कहा हे रावण! तेरे समान लज्जाशील ससार मे दूसरा कोई नही है। लज्जाशीलता तुम्हारा जन्मसिद्ध स्वभाव है। अपने मुख से तुम अपनी प्रशसा कभी नही करते।

व्याख्या ध्वनि यह है कि तुम्हारे सा निर्लज्ज कोई ससार मे नही है। आत्मप्रशसा का तुम्हारा सहज स्वभाव है। बैठे बैठे दिन रात शेखी बघाडा करते हो। आत्मप्रशसा करना महा निर्लज्जता का काम है सो तुम निरन्तर किया करते हो और मैंने तो रामजी की प्रशसा की अपनी प्रशसा नही की। सो मुझ निर्लज्ज बतला रहे हो। निर्लज्ज तो वह है जो आत्मप्रशसा करे।

सिर अरु सैल कथा चित रही। ताते बार बीस तै कही॥
सो भुजबल राखे उर घाली। जीतेउ सहसबाहु बलि बाली॥४॥

अर्थ सिर और पर्वत की कथा याद रही। इससे तुमने बीस बार कहा।

भुजाओं के उस बल को तुमने हृदय मे रख छोड़ा था। जब कि सहस्रबाहु बलि और बाली को जीता था।

व्याख्या : भाव यह कि सहस्रबाहु बलि और बालि तीनो से रावण का पराभव हुआ था। वे सब बातें तो तुम्हे सब भूल गयी। बस सिर और शैल की कथा याद रह गयी। इसलिए तुम इन कथाओं को बीस बार दोहरा चुके। जब सहस्रबाहु बलि और बालि से काम पड़ा तब तुम्हारा वह बल कहाँ रहा। क्या अपने लज्जाशील स्वभाव के कारण उसे हृदय मे छिपाये रहे।

सुनु मतिमंद देहि अब पूरा। काटे सीस कि होइअ सूरा॥
इन्द्रजालि कहुँ कहिअ न बीरा। काटइ निज कर सकल सरीरा॥५॥

अर्थ : रे मतिमन्द! यही से बात समाप्त कर। क्या कोई अपना सिर काटने से वीर होता है? बाजीगर को वीर नही कहा जा सकता। वह अपने हाथ से अपना सम्पूर्ण शरीर काट डालता है।

व्याख्या : अपने हाथ से अपना सिर काटना दूसरी बात है और युद्ध करना दूसरी बात है। बाजीगर लोग अपने हाथ से अपना सारा शरीर काट डालते हैं। उस समय बाजीगरी की विद्या यहाँ तक बढी थी कि सूत पकड़कर आकाश मे चढ जाते थे और वहाँ से उनका अङ्ग प्रत्यङ्ग कटकर गिरता था। इस समय भी ऐसा दृश्य दिखलानेवाले हैं कि टेबुल पर कटा हुआ सिर रक्खा हुआ है और वह बोलता है। अतः अपने हाथ से सिर काटने मे बाजीगरी की प्रशसा है शौर्य की नही।

दो. जरहिं पतंग मोह बस, भार बहहिं खरबृंद।
ते नहिं सूर कहावहिं, समुझि देखु मतिमंद॥२९॥

अर्थ : पतग मोहवश जलते हैं। गधे बोझा ढोते है। पर वे शूर नही कहलाते। रे मतिमन्द समझकर देख।

व्याख्या : बाजीगर का सिर काटना तो झूठा है केवल बाजीगरी मात्र है। क्योंकि उससे वह मरता नही फिर सिरवाला हो जाता है। पर पतङ्ग ता सचमुच अपने प्राणो को दीप की लौ पर निछावर कर देता है। इसमे उसका अज्ञान कारण है। शौर्य नही। अतः तुम्हारा सिर काटने का कोई मूल्य नही है। इसी प्रकार बहुत बड़ा बोझा उठाने मे भी कोई वीरता नही है। गधे जैसा बोझा ढोते है ताजी घोडे नही ढो सकते। अतः कोई पतङ्ग और गधे को वीर नही कह सकता। अतः तुम्हारा कैलास उठा लेना तुम्हारे बोझा उठाने का परिचायक है: वीरता का नही।

अब जनि बत बढ़ाव खल करही। सुनु मम बचन मान परिहरही॥
दसमुख मै न बसीठी आयेउँ। अस बिचारि रघुबीर पठायेउँ॥१॥

अर्थ : रे खल! अब बतबढाव न कर। मेरी बात सुनकर अभिमान छोड़।

रे दसमुख ! मैं सन्धि का प्रस्ताव करनेवाला दूत होकर नहीं आया हूँ। रघुवीर ने ऐसा विचारकर मुझे भेजा है।

व्याख्या : अङ्गदजी रावण के कहे हुए वाक्य : रिपु सन प्रीति करत नहि लाजा। का उत्तर देते हुए कहते हैं कि व्यर्थ बात को न बढ़ाओ नहीं तो यहीं युद्ध प्रारम्भ होगा। तुम खल हो सद्भाव को नहीं समझ सकते। बतबढ़ाव का फल मैं तुरन्त देता हूँ। यथा : बातहि बात करष बढ़ि आई। जुगल अतुल बल पुनि तरुनाई। तेहि अगद कहु लात उठाई। गहि पद पटक्यौ भूमि भँवाई। तुम मेरी बात सुनकर मान छोड़ दो। मान रहने से बात समझ में नही आती।

बार बार अस कहइ कृपाला। नहि गजारि जसु बधे सृगाला ॥
मन महुँ समुझि बचन प्रभु केरे। सहेउँ कठोर बचन सठ तेरे ॥२॥

अर्थ : कृपाल ने बार बार ऐसा कहा है कि शृगाल के मारने में सिंह का यश नही होता। रे शठ ! प्रभु के वचन को मन में समझकर मैंने तेरे कठोर वचन सह लिये।

व्याख्या : तौ बसीठ पठवत केहि काजा। का उत्तर देते हुए अङ्गदजी कहते हैं कि मैं प्रीति के लिए दूत बनकर नही आया हूँ। मैंने प्रीति करने के लिए कहा भी नहीं। शरण जाने के लिए कहा है। यथा : दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी। सादर जनकसुता करि आगे। एहि विधि चलहु सकल भय त्यागे। प्रनतपाल रघुबंसमनि त्राहि त्राहि अब मोहिं। आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैंगो तोहिं। वे काम क्रोध मद गज पंचानन हैं। तू काम क्रोध का दासानुदास शृगाल है। चोरी करके स्त्री हरण करता है। बार बार अस कहेउ : का भाव यह है कि शृगाल के मारने में कीर्ति नही है। तुम्हें उसके पास भेज रहे है। वह अपनी बोली बिना बोले न रहेगा। तुम क्रोध करके उसे मार न देना। मालिक के वचन पर ध्यान देकर मैंने तेरे कठोर वचन को सहा। नहीं तो इस प्रकार कटुभाषी का दण्ड वध ही है।

नाहि त करि मुखभंजन तोरा। लै जातेउँ सीतहि बरजोरा ॥
जानेउँ तव बलु अधम सुरारी। सूने हरि आनिसि पर नारी ॥३॥

अर्थ : नही तो तेरे मुँह को तोड़कर सीता को अपने बल से ले जाता। रे अधम देवशत्रु ! तेरा बल जान गया। जब कि तू पराई स्त्री को अकेला पाकर हरण कर लाया।

व्याख्या : श्रीरामजी के समरसुभट होने की बात तो दूर है मैं अकेला तेरा मुख तोड़कर सीताजी को अपने भुजबल से ले जाता। खीरा सिर से काटिये दीजे नमक भराय। रहिमन कडुए मुखन को चहियत इहै सजाय। इसी से अङ्गदजी ने मुखभंजन कहा। जिस मुख से यह बात निकली : रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा।

उसे तोड़ डालता और जिस सीता को तू चुराकर लाया उसे मैं भुजबल से ले जाता।

अब दिगपालन मैं नीर भरावा। का उत्तर देते हुए कहते हैं कि तुम अपने को सुरारि कहने मे बडी प्रतिष्ठा मानते हो। उसे अपने बल का परिचायक समझते हो और पराई स्त्री की चोरी करते हो। यदि तुममे बल होता तो सामने से न ले जाते। सुरारि तो खरदूषण भी थे पर वे अधम नही थे। तू अधम है।

ते निसिचरपति गर्व बहूता। मै रघुपति सेवक कर दूता॥
जौ न राम अपमानहि डरऊँ। तोहि देखत अस कौतुक करऊँ॥४॥

अर्थ : तुम राक्षसो के राजा हो। घमण्ड बहुत है। मैं तो रघुपति के सेवक का दूत हूँ। यदि मै रामजी के अपमान का भय न करूँ तो तुम्हारे देखते हुए ऐसा खेल करूँ।

व्याख्या : मम भुज सागर बल जल पूरा। का उत्तर देते हुए अङ्गदजी कहते हैं कि तुम अपने समाज मे सबसे महान् हो और मेरी गणना अपने समाज मे तीसरी श्रेणी मे है। सबसे महान् रामजी दूसरी श्रेणी राजा सुग्रीव और मै तो उनका दूत हूँ। इस समय रामजी का दूत बनकर आया हूँ। यदि मैं तुम्हारी दुर्दशा कर दूँ तो रामजी का अपमान होगा। क्योंकि वे तुझे अपने हाथ से दण्ड देगे। तब लोग कहेगे कि जिसकी अङ्गद ने दुर्दशा कर डाली थी उसे रामजी ने मारा तो कौन बड़ा पुरुषार्थ किया? इस भाँति उनका अपमान होगा और उस अपमान को मैं डरता हूँ तुम्हे नही। तुम्हारे लिए तो मै ऐसा कर सकता हूँ कि तुम देखते ही रह जाओ और मै खेल कर जाऊँ।

दो. तोहि पटकि महि सेन हति, चौपट करि तव गाउँ।
तव 'युवतिन समेत सठ, जनकसुता लै जाउँ॥३०॥

अर्थ : रे शठ! तुम्हे पृथ्वीपर पटककर तेरी सेना मारकर तेरे गाँव को चौपट करके तुम्हारे युवतियो सहित मै जानकीजी को ले जाऊँ।

व्याख्या : पलक गिरने के पहिले मै तुझे सिंहासन के नीचे गिरा दूँगा। जब से तू सँभालकर उठे उठे तब तक तेरी सेना निपटा दूँगा। जब तक तू सेना सँभाले तब तक लङ्का उजाड़ दूँगा। तुम लका सँभालने के फेर मे फँसे रहोगे तब तक मैं जानकीजी को लेकर चला जाऊँगा और साथ मे सीताजी की तपस्या वर्णन करने के लिए मन्दोदरी को भी बलपूर्वक ले जाऊँगा। जिसमे जगत् देख ले कि जो दूसरे की स्त्री चुराकर लाता है। उसकी स्त्री बलपूर्वक हरण की जाती है।

जौ अस करउँ तदपि न बड़ाई। मुयेहि बधे नहि कछु मनुसाई॥
कौल कामबस कृपिन विमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा॥१॥

अर्थ : यदि ऐसा करूँ तो भी कोई बड़ाई की बात नही है। क्योकि मरे हुए

को मारने में कोई बड़ाई नही है। १. कौल २ कामी ३. कृपिण ४. विमूढ ५. अतिदरिद्र ६. ऐसा पुरुष जिसकी अकीर्ति हो। ७ अत्यन्त वृद्ध।

व्याख्या : अब अङ्गदजी : कुभकरन सम बंधु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि। मोर पराक्रम सुनेसि नहिं जितेउँ चराचर झारि। का उत्तर दे रहे है कि ये सब के सब मृतवतुल्य हैं। इनके पाप ने इनको पहिले मार दिया है। इनके मारनेवाले को निमित्तमात्र होने की देर है। क्योकि निम्नलिखित प्राणियो की गणना मृतको मे है :

१. पहिले कौल जिन्हे वाममार्गी कहते हैं। स्वय कवि ने कहा है : तजि स्रुतिपंथु वाम पथ चरही। वचक बिरचि वेप जगु छरही। तन्त्र शास्त्रो मे दो मार्गों की चर्चा है : १. दक्षिण मार्ग और २ वाम मार्ग। वाम मार्ग मे पञ्च मकार : १ मद्य २ मांस ३ मत्स्य ४ मुद्रा और ५ मैथुन का प्रचार है। इसी के अनुयायी अपने को कौल कहते है। यथा :

नर कपाल को पात्र बनाया मरघट मे आवास लिया।
पहना गले हार हाडो का ईश बेष स्वीकार किया॥
योगाञ्जन से शुद्ध हुई हैं आँख देखता हूँ अब मैं।
आपस मे ये जगत भिन्न है, भेद रहित ईश्वर से हैं॥
मेद आंत चरबो मनुष्य का मास मनोहर।
लेकर के देते हं पावक मे आहुतिवर॥
ब्राह्मण की खोपड़ी वही है मेरा चुक्कड।
भरके दुधुआ पारण करते हैं नित अक्खड़॥
विप्रमुण्ड ताजा कटा लोहू को धारा गरम।
देव महाभैरव निकट देते हैं बलि नित्य हम॥
देखा है न कही विना बिषय के आनन्द होवे जुदा।
मुक्ति पत्थर है भला यह गती क्यो तू लिया चाहता॥
देवी सी रमणी गले लपटती है शम्भु तू भी बना।
ऐसी अद्भुत मौज ही मुकुति है भूतेश ने यो कहा॥

: प्रबोध चन्द्रोदय

पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा पीत्वा पतति भूतले। पुनरुत्थाय वै पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।

सब आचारो से जो भ्रष्ट हो जाता है वही कौल होता है और उससे भी पतित होकर रौरव नरक मे जाता है। यथा : सर्वाचारपरिभ्रष्टः कुलाचार समाश्रयेत्। कुलाचारपरिभ्रष्टो रौरवं नरकं व्रजेत्। मेरुतन्त्रे। ऐसे आचारवाले प्राणियो को मृतक ही समझना चाहिए।

२. कामवश : धर्म से अविरुद्ध काम की तो प्रशसा है। यथा : धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ। परन्तु जो काम के वश हो जाता है वह धर्माधर्म नही देख सकता। अत. काम के वशीभूत पुरुष भी मृतक तुल्य ही है।

जो सन्तत क्रोधी हैं वे सदा क्रोध से जला करते हैं। उनको कभी सुख नहीं। वह यदि और कुछ न करे तो साधु पुरुषों पर आक्षेप किया करता है। भावार्थ यह कि वह व्यर्थ पाप कमाता रहेगा। उसके दोनों लोक नष्ट होते हैं। अत वह भी मृतकतुल्य है।

१० विष्णु विमुख मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय पी के। आहार निद्रा भय और मैथुन तो पशु और मनुष्य में समान ही हैं। मनुष्य में विशेषता यही है कि वह ईश्वर को पहिचानता और जानता है। परमेश्वर का भजन करता है और जो मनुष्य शरीर धारण करके परमेश्वर का विरोध हुआ उससे पशु अच्छे हैं। यथा

तिनते खर सूकर स्वान भले जडता बस ते न कहै कछु वै।
तुलसी जेहि राम सो नेह नहीं सो सही पसु पूंछ विषान न द्वै॥
जननी कत भार मुई दस मास भई किन बाँझ गई किन च्वै।
जरि जाहु सो जीवन जानकि नाथ जियै जग मे तुम्हरो बिनु ह्वै॥
कवित्त रामायण

११ श्रुति सन्त विरोधी अद्भुत महिमा वेद की तुलसी कियो विचार। जेहि निन्दत निन्दित भयो विदित बुद्ध अवतार। वेद के विरोधी ही पाखण्डी और नास्तिक नगे कहे गये हैं। सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान की प्रसूति वेद का जिसने विरोध किया वही ईश्वर का विरोधी है वही धर्म का विरोधी है। ईश्वर और धर्म के विरोध करनेवाले का कल्याण कैसे होगा। इसी भाँति सन्त विरोधी का भी कल्याण नहीं हो सकता। यथा साधु अवज्ञा तुरत भवानी। कर कल्याण अखिल कर हानी।

१२ तन पोषक देहात्मवादी जिनका मत है कि जब तक जीवे सुख से जीवे। ऋण करके भी घी खाय। भस्म हुए देह का फिर से लौटना कैसे हो सकता है। जिसने अनात्मा देह को आत्मा मान लिया उस चोर आत्मापहारी ने कौन सा पाप नहीं किया ? अत ऐसे पापी का जीवन भी व्यर्थ है। यथा सब विधि सोचिअ पर अपकारी। निज तन पोषक निर्दय भारी।

१३ निन्दक दूसरों की कीर्तिमयी देहों पर प्रहार करने का स्वभाव रखने वाले के बराबर पापी कौन है ? क्योंकि सम्भावित कहं अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू। अत निन्दक स्वभाव से ही व्यर्थ पाप सचय किया करता है। उसका जीवन निष्फल है।

१४ अघखानी जो पापमय जीवन व्यतीत करता है और दूसरों में भी पाप का प्रचार करता है वह स्वय भी दुख उठाता है और दूसरों को भी दुखगर्त के उन्मुख करता है। यथा करहिं पाप पावहिं दुख, भय रुज सोक वियोग। इनका जीवन स्पष्ट ही व्यर्थ है।

ये चौदह प्राणी शव के समान जीते हैं। अर्थात् इनका शरीर मात्र अक्षुण्ण बना है। उससे न स्वय उनका कोई उपकार हो न दूसरों का। वे ससार के लिए भारभूत हैं। अमङ्गलमय हैं। शव की भाति अस्पृश्य हैं।

अस बिचारि खल बधउँ न तोही । अब जनि रिस उपजावसि मोही ॥
सुनि सकोप कह निसिचर नाथा । अधर दसन दसि मींजत हाथा ॥३॥

अर्थ : रे खल ! ऐसा विचारकर मैं तुझे नहीं मारता । अब तू मुझमें क्रोध न पैदा कर । यह सुनकर राक्षसेश्वर दाँतों से होठ चबाता हुआ और हाथ मलता हुआ बोला ।

व्याख्या : खल मेरे वध्य हैं और तू खल है । पर तुझे शव के समान समझकर नहीं मारता । क्योंकि मरे हुए के मारने में कोई बहादुरी नहीं है । अब तक तो मैं क्रोध रोक सका । पर इससे अधिक क्रोध का वेग मैं नहीं रोक सकूँगा । अतः अब ऐसी बात न बोलना जिसमे मेरा क्रोध अधिक बढ़े ।

निशिचरनाथ है बड़ा गर्व है । अङ्गदजी की ऐसी वाणी सुनकर क्रोध से होठ चाबता है । पर कुछ किया नहीं हो सकता । इसलिए हाथ मलता है । रावण बातों से ही डरा धमकाकर चतुरता से काम निकालना चाहता है । हनुमान्‌जी का पराक्रम देख चुका है इसलिए सशङ्क है । अतः फिर बोला ।

रे कपि अधम मरन अब चहसी । छोटे बदन बात बड़ि कहसी ॥
कटु जल्पसि जड़ कपि बल जाकें । बल प्रताप बुधि तेज न ताके ॥४॥

अर्थ : रे अधम बन्दर ! अब तू मरना चाहता है । छोटे मुँह बड़ी बात कहता है । जिसके बल पर तू ऐसा कटु : कडुआ बोल रहा है उसे बल प्रताप बुद्धि और तेज नहीं है ।

व्याख्या : सब विधि से हीन हो उसे अधम कहते हैं । यथा : कपि चञ्चल सबही विधि हीना । अस मैं अधम सखा सुनु । रावण अङ्गदजी से कहता है कि तू तपस्वी का दास है । इसलिए सब विधि से हीन है । बन्दरों में भी अधम है और बड़ी बड़ी बातें करता है । यथा : तोहि पटकि महि सैन हति चौपट करि तव गाँव । इत्यादि । दूत होने के कारण मैं तुझे नहीं मारना चाहता था पर अब स्वयं मरना चाहता है तो मैं क्या करूँ । इस प्रकार की बात मेरे सामने वही कर सकता है । जिसे मृत्यु इष्ट हो । तूने समझ रक्खा है कि मेरा स्वामी बड़ा बलवान् है । वह मेरी रक्षा करेगा । इसी बल पर तू कटु बोल रहा है । पर तू यह नहीं जानता कि उसे बल प्रताप बुद्धि और तेज नहीं है । बलवान् प्रतापी बुद्धिमान् और तेजस्वी ही अपने आश्रित की रक्षा मे समर्थ होता है ।

दो. अगुन अमान जानि तेहि, दीन्ह पिता बनबास ।
सो दुख अरु जुबती बिरह, पुनि निसि दिन मम त्रास ॥
जिन्हके[1] बल कर गर्ब तोहि, ऐसे मनुज अनेक ।
खाहि निसाचर दिवस निसि, मूढ़ समुझु तजि टेक ॥२१॥

---

१. यहाँ प्रतीप : द्वितीय अलङ्कार है ।

अर्थ : गुण रहित और मान रहित जानकर उसे पिता ने वनवास दिया। वह दुःख और स्त्री का विरह और दिन रात मेरा डर उसे बना रहता है।

जिनके बल का तुझे अभिमान है ऐसे मनुष्य बहुत से पड़े हैं। उन्हे रात दिन राक्षस खाया करते हैं। रे मूढ ! इस बात को तू हठ छोड़कर समझ।

व्याख्या : अब रावण इस बात का प्रमाण देते हैं कि रामजी मे बल प्रताप बुद्धि और तेज नही है। कहते हैं कि यदि उनमे गुण होता तो जेठे पुत्र थे। बाप राज देता। उसने देख लिया कि न तो इसमे राजोचित गुण है न मान है। यह वश परम्परागत प्रतिष्ठा की रक्षा न कर सकेगा यह तो तपस्वी होने योग्य है। इसलिए पिता ने वनवास दे दिया। भला कही पिता भी पुत्र को वनवास देता है ? इसकी अयोग्यता इतनी है कि पिता ने वनवास दे दिया। इससे सिद्ध है कि इसमे बल नही है। यदि इसमे बल होता तो पिता के कहने मात्र से यह राज्य कैसे छोड़ देता ? इसमे बल तो था नही इसलिए इसे राज्य छोडना पडा।

छोड़ने को राज्य तो छोड़ दिया पर उस बात का दुःख सदा बना रहता है। ऐसे राज्यभ्रष्ट दुःखी के प्रताप की चर्चा ही क्या है। स्त्री के विरह से उसकी बुद्धि भी मारी पडी और रात दिन मुझसे भयभीत रहता है : क्योंकि मेरा अपराध किया है। सूर्पनखा का नाक कान काटा है : भयभीत को तेज कहाँ ? अत राम को बल प्रताप बुद्धि और तेज नही है।

अब राम मनुज कस रे सठ बगा। आदि का उत्तर देते हुए कहता है कि तुझे ऐसे ही बल प्रताप बुद्धि तेजहीन मनुष्य का गर्व है। ऐसे मनुष्यो से तो ससार भरा पड़ा है और राक्षस रात दिन ऐसे मनुष्यो को खाया करते हैं। यथा : कहुँ महिष मानुष धेनु अज खर खल निसाचर भच्छही तथा खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। तुझे हठ हो गया है कि राम मनुष्य नही है। सो इस हठ को छोड़कर यदि तू समझना चाहेगा तो मेरी बात तेरी समझ मे आ जावेगी।

जब तेहि कीन्हि राम कइ निंदा। क्रोधवंत अति भयउ कपिंदा ॥
हरिहर निंदा सुनै जो काना। होइ पाप गोघात समाना ॥१॥

अर्थ : जब उसने रामजी की निन्दा की तब कपीन्द्र अङ्गदजी अतिक्रुद्ध हो गये। विष्णु और शिव की निन्दा जो कान से सुनता है उसे गोवध का पाप होता है।

व्याख्या : यथार्थ दोष कथन को परिवाद और असत्य दोष कथन को निन्दा कहते है। निन्दा करने से कीर्तिरूपी देह का वध होता है। अतः निन्दा करने से वध से अधिक पाप होता है। जितनी अधिक पुण्यवान् की निन्दा हो उतना ही अधिक पाप निन्दक को होता है। जिस भाँति निन्दा करना पाप है उसी भाँति निन्दा सुनना भी पाप है। इसमे भी विष्णु और शिव की निन्दा सुननेवाले को गोहत्या के समान पाप लगता है। सुनहि जो काना का भाव यह कि जो सुनने की इच्छा से सुनता है अथवा बिना विरोध किये सुनता है। भाव यह कि सत सभु श्रीपति

अपवादा। सुनिय जहाँ तहँ असि मरजादा। काटिय तासु जीभ जो बसाई। स्रवन मूँदि नत चलिअ पराई।

अत: जब उसने रामजी की निन्दा की। रामजी साक्षात् महाविष्णु हैं। अत: अङ्गदजी क्रुद्ध हुए। बिना विरोध प्रदर्शन के सुनने से गोघात का पातक लगता है और परिस्थिति ऐसी है कि जिसके यहाँ दूत बनकर आये हैं वही निन्दा करता है। अत: न तो उसकी जिह्वा काट सकते हैं और न वहाँ से कान बन्द करके भाग सकते हैं अत: :

कटकटान कपिकुंजर भारी। दुहु भुजदंड तमकि महि मारी॥
डोलत धरनि सभासद खसे। चले भाजि भयमारुत ग्रसे॥२॥

अर्थ : बन्दरों में हाथी के समान अङ्गदजी ने अत्यन्त कटकटाकर दोनो भुजाओं को क्रोध करके जमीन पर पटक दिया। पृथ्वी डोल उठी। सभासद् गिर पड़े और उन्हे भय की बाई चढ गयी सबके सब भाग चले।

व्याख्या : बन्दर जब क्रोध करते हैं तो कटकटाते हैं। प्रसन्न होते हैं तो किलकिला शब्द करते हैं। यथा : कटकटाइ गर्जा अरु धावा यहाँ पर भारी कपि कुंजर कहकर अङ्गदजी का विशालाकार होना द्योतित करते हैं। भारी शब्द देहलीदीपक न्याय से कटकटान के साथ भी लगेगा अर्थात् भारी कपि कुंजर भारी कटकटाया। क्रोध के वेग मे दोनों हाथ पृथ्वी पर पटका। पृथ्वी डोल उठी और ऐसी ड.ली कि सभासद् मुँह के बल आ पड़े। डरे तो पहिले से ही थे। यथा : अबधौ कहा करिहिं करतारा। अति सभीत सब करहिं विचारा। अङ्गदजी के आने से ही उठ खड़े हो गये थे। यथा : उठे सभासद कपि कहँ देखी। अब अङ्गदजी के कटकटा कर हाथ पटकने के साथ ही पृथ्वी के डोलने से सब गिरे तो उठकर भाग चले कि यह कौन सी बला आयी। सबको मानो भय की बाई चढ़ गयी। जिस भाँति व्याघ्र से आहत पुरुष को भय की बाई चढ़ जाती है और वह अस्पताल में पड़ा हुआ भी अपने को व्याघ्र के वश मे मानता है। इस भाँति उन सभासदों की गति हुई। वे लौटकर देखते भी नही कि हुआ क्या? बस भागते ही चले जाते हैं।

गिरत सँभारि उठा दसकंधर। भूतल परे मुकुट अति सुन्दर॥
कछु तेहि लै निज सिरन्हि सँवारे। कछु अंगद प्रभु पास पँवारे॥३॥

अर्थ : दशानन गिरते गिरते सँभलकर उठे। उसके अतिसुन्दर मुकुट पृथ्वी पर गिर पडे। कुछ तो उसने उठाकर अपने सिरो पर रख लिया और कुछ को अङ्गदजी ने प्रभु के पास फेंक दिया।

व्याख्या : दशानन हैं। चारों ओर एक साथ देखते हैं। झुक तो वे भी गये। पर गिरते गिरते सँभल गये। वे तो सँभले पर दसो मुकुट पृथ्वी पर गिर गये। यहाँ दो बार कछु शब्द आया है तो पहिले कछु से छः मुकुटों का अभिप्राय है और दूसरे कछु से चार मुकुटो का। रावण ने चाहा कि जल्दी से मुकुटो को सिर पर

रख लें। सो बीस हाथ होने पर भी जब से वह छ' मुकुट उठावे तब से दो हाथवाले अङ्गद ने चार मुकुट रघुनाथजी के पास फेंक दिये।

आवत मुकुट देखि कपि भागे। दिनहि लूक परन विधि लागे ॥
की रावन करि कोपु चलाये। कुलिस चारि आवत अति धाये ॥४॥

अर्थ : मुकुटो को आता हुआ देखकर बन्दर भागे। हे विधाता! क्या दिन को ही लूक गिरने लगा अथवा रावण ने क्रोध करके ये चार वज्र चलाये हैं जो *बड़े वेग से चले आ रहे हैं।*

व्याख्या : पहिले कह चुके हैं कि अङ्गदजी ने चार मुकुट प्रभु के पास फेंके। उन मुकुटो को आते हुए बन्दरो ने देखा तो वे भी चले। क्योंकि लङ्का के ऊपर वे उन्ही की ओर चले आ रहे थे। मुकुटो मे चमक ऐसी है कि दिन मे भी वे ऐसे चमक रहे हैं जैसे रात को लूक चमकता है। दिन मे लूक गिरता भी है तो किसी को मालूम नही होता। सूर्य की ज्योति मे उनकी ज्योति का पता नही चलता। अतः रात के लूक से ही ससार परिचित है। दिन को लूक का गिरना अनहोनी बात है। इससे बन्दर डर के भागे। वे कुछ स्थिर न कर सके कि यह क्या है? उन्हे यह भी भय हुआ कि कही रावण ने क्रोध करके चार वज्र चलाये हो जो हमारे ऊपर गिरा चाहते हैं। इस भय से सभी भागे अथवा पहिले लूक का भ्रम हुआ। कुछ और निकट आनेपर वज्र की धारणा हुई। जब और निकट आये तो बन्दरो को राहु केतु का भ्रम हुआ कि ये चन्द्र सूर्य के ग्रास करनेवाले हम लोगों का ग्रास करेंगे।

कह प्रभु हँसि जनि हृदय डराहू। लूक न असनि केतु नहिं राहू ॥
ए [1]किरीट दसकंधर केरे। आवत बालितनय के प्रेरे ॥५॥

अर्थ : प्रभु ने हँसकर कहा कि मन मे डरो मत। न तो ये लूक है न वज्र है न राहु केतु हैं ये रावण के मुकुट हैं। बालि के बेटे के फेंके हुए आ रहे हैं।

व्याख्या . सब लोग तो डरे पर सरकार हँस पड़े। ठीक समझ लिया कि अङ्गद ने अपना पराक्रम दिखलाया और साथ ही साथ वहाँ की परिस्थिति का भी परिचय दे दिया कि रावण *बात नही मान रहा है। बात बढ़ चली है पर विजय* सरकार की है। तब सरकार ने बन्दरो से कहा कि मन मे भय न मानो। तुमलोगो का अनुमान ठीक नही है। यह लूक वज्र अथवा राहु केतु नही हैं। ये रावण के मुकुट है। बालि के बेटे के फेंके हुए आ रहे हैं। बालितनय कहने का भाव है कि अङ्गद ने बालि की भाँति अपना पराक्रम रावण पर प्रकट किया है।

दो. तरकि पवनसुत कर गहेउ, आनि धरे प्रभु पास।
कौतुक देखहि भालु कपि, दिनकर सरिस प्रकास ॥३२॥

---

१. यहाँ भ्रान्त्यापह्नुति अलङ्कार है।

अर्थ : हनुमान्‌जी ने कूदकर उन्हे हाथ से पकड लिया और लाकर प्रभु के पास रख दिया। बन्दर और भालु तमाशा देखने लगे कि इनका प्रकाश तो सूर्य के प्रकाश सा है।

व्याख्या : पवनसुत हैं बडा लाघव है। उछले तो दो ही हाथ से चारो को पकड लिया। पृथ्वी पर नही गिरने दिया कि कही टूट न जाय। लाकर प्रभु के सामने रख दिया। क्योकि अङ्गदजी ने प्रभु के पास ही फेंका था। दूसरी बात यह है कि प्रभु के पास रखने से सब दूर दूर से देखेगे। नही तो इन बन्दरो के देखने मे ही मुकुट का विध्वस हो जायगा। मुकुट के रख देने पर भालु और बन्दर लगे तमाशा देखने। क्योकि वह मुकुट सूर्य की भाँति प्रकाशमान था। ऐसा दिव्य मुकुट था कि उमपर आँख नही ठहरती थी।

दो. उहाँ सकोप दसानन, सब सन कहत रिसाइ।
धरहु कपिहि धरि मारहु, सुनि अंगद मुसुकाइ ॥३२॥

अर्थ : वहाँ क्रुद्ध रावण सबसे नाराज होकर कहता है कि पकड लो बन्दर को और पकडकर मारो। उपर्युक्त दोहे के स्थान मे किसी किसी प्रति मे यह अर्धाली है। यथा 'उहाँ कहत दसकध रिसाई। धरि मारहु कपि भागि न जाई। अर्थ मे कुछ अधिक भेद नही है। धरि मारहु कहने का अभिप्राय ही यह है कि भागने न पावे।

व्याख्या रावण क्रुद्ध होकर आज्ञा देते हैं कि देखो बन्दर कही कूदकर निकल न जाय। पहिले इसे सब लोग मिलकर पकड लो तब मारो। सब को आज्ञा देता है। क्योकि जानता है कि अकेले यह किसी के वश का नही है। इस आज्ञा को सुनकर अङ्गदजी मुसकुरा रहे हैं कि वे तो भागे जाते है और ये उन्हे मुझे पकडने की आज्ञा देते हैं।

एहि बिधि बेगि सुभट सब धावहु। खाहु भालु कपि जहँ तहँ पावहु॥
मरकट हीन करहु महि जाई। जिअत धरहु तापस दोउ भाई ॥१॥

अर्थ : इसी विधि से शीघ्रता के साथ सब सुभट लोग दौडते चले जाओ और जहाँ जहाँ भालु बन्दर मिले उन्हे खा जाओ। पृथिवी को बिना बन्दर का कर दो और दोनो भाई तपस्वियो को जीता ही पकड लो।

व्याख्या रावण बात बनाने मे बडे चतुर हैं। सबका भागना और अङ्गद का मुसकुराना देख कर कहते हैं कि बस इसी भाँति शीघ्रता से तुम लोग दौडते चले जाओ। लका दुर्ग के बाहर जहाँ तहाँ बहुत से बन्दर भालू पडे हुए हैं उन सब को खा जाओ। और देखो लका मे आये हुए बन्दरो को खाकर ही मत लौट आना। संसार भर मे फेरा लगा दो। सब बन्दरो को खा जाओ। इनकी नसल न रह जाय। पर इसका ध्यान रखना कि इस वेग मे कही उन दोनो तपस्वियो को

न मार डालना। उन्हे जीता ही पकड लेना। वे तापस दोनों भाई बडे वीर बने हुए हैं। क्योंकि जीते हुए पकडे जाने से मारा जाना उनके लिए बहुत अच्छा है।

यह सब रावण अपने सुभटो की कमजोरी छिपाने के लिए कह रहे हैं। मानो वे सब राजा के मुकुट गिरने से क्रुद्ध होकर वानरी सेना पर धावा करने के अभिप्राय से दौड पडे हैं।

पुनि सकोप बोलेउ जुबराजा। गाल बजावत तोहि न लाजा॥
मरु गर काटि निलज कुलघाती। बल बिलोकि बिहरति नहि छाती॥२॥

अर्थ : फिर युवराज अङ्गदजी क्रोध करके बोले कि तुझे गाल बजाते लज्जा नही आती। रे निर्लज्ज कुलघाती ! तू गला काटकर मर जा। बल देखकर तेरी छाती नही फटी।

व्याख्या : इसी को गाल बजाना कहते हैं कि वे तो मारे डर के भागे चले जाते हैं और आप कह रहे हैं : एहि विधि वेगि सुभट सब धावहु। खाहु भालु कपि जहँ तहँ पावहु। राजा होकर ऐसी बात बोलता है। इसी पर अङ्गदजी कहते हैं कि गाल बजाते तुझे लज्जा नही लगती। मेरा बल देखकर तेरी छाती फट जानी चाहती थी। इतने बडे पराभव को तू कैसे सह रहा है। यदि छाती नही फटी तो गला काटकर प्राण दे दे। अब कौन सा मुख ससार मे दिखलावेगा। जिसे छोटे बदन बात बड कहसी कहता था उसने पराक्रम करके दिखला दिया। तेरी सारी सभा भाग खड़ी हुई और स्वयं तुम छ सिरो पर मकुट लगाये बैठे हो। चार सिर नङ्गे ही हैं।

रे तियचोर कुमारग गामी। खल मलरासि मंदमति कामी॥
सन्यपात जल्पसि दुर्बादा। भयेसि कालबस खल मनुजादा॥३॥

अर्थ : रे स्त्रीचोर ! कुमार्गी खल मल की ढेर मन्दबुद्धि कामी ! तुझे मानसिक सन्निपात हो गया है। उसी मे दुर्वाद बक रहा है। रे मनुष्यो का भक्षण करनेवाला खल ! तू काल के वश हो गया है।

व्याख्या : अङ्गदजी ने रावण के कहे हुए रामजी के प्रति छ निन्दासूचक वचनो के बदले उतने ही कठोर शब्द कहे। वस्तुत: यह कठोर शब्द नही है। रावण के कथन का उत्तर है। अङ्गदजी कहते हैं तू स्त्रीचोर सरकार को बलहीन बतलाया है। तू कुमार्गगामी उन्हे गुणहीन कहता है। तू खल है और उन्हे प्रतापहीन कहता है। तू मलराशि होकर उन्हे तेजहीन बतलाता है। स्वय तू मन्दमति है और सरकार को बुद्धिहीन कह रहा है। तू कामी सरकार की निन्दा अमान कहकर कर रहा है। तुझे मानसिक सन्निपात हो गया है। यथा : काम वात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा। प्रीति करहि जो तीनो भाई। उपजै सन्निपात दुखदाई। जैसे सन्निपात मे लोग दुर्वाद कहते हैं वैसे ही मानसिक सन्निपातवश तू दुर्वाद कह रहा है। कालदंड गहि काहु न मारा। हरै धर्म बल

वुद्धि विचारा। सो तू कालवश हो गया है। यह : रे कपि अधम मरन अब चहसी। का उत्तर है।

याको फल पावहुगे आगे। बानर भालु चपेटन्हि लागे॥
राम मनुज बोलत असि बानी। गिरहिं न तव रसना अभिमानी॥४॥
गिरिहहिं रसना संसय नाही। सिरन्हि समेत समर महि माही॥५॥

अर्थ : इसका फल तुमको बन्दर भालु के चपेटा लगने से आगे चलकर मिलेगा। राम मनुष्य हैं : ऐसी वाणी बोलते हुए रे अभिमानी ! तुम्हारी जीभ नही गिर पड़ती ? तुम्हारी जीभ गिरेगी इसमे सन्देह नही। पर सिरो के साथ रणांगण में गिरेगी।

व्याख्या : दुर्वाद का फल चपेटा है। सो इस समय नही मिल रहा है। क्योंकि यह अनुकूल देशकाल नही है। आगे चलकर मिलेगा। यथा : चहुँ दिसि चपेटन्हि मारि नखन्हि विदारि तेहि व्याकुल कियो।

अब अङ्गदजी ऐसे मनुज अनेक का उत्तर देते हुए कहते हैं कि तुम जान करके भी अभिमान वश उनको मनुज कहते हो। इसका फल तो यही है कि ऐसो अकल्याणकर बात बोलनेवाली जीभ गिर जाय। क्योंकि जिह्वा का फल तो सरकार की स्तुति है। यथा : रसना साँपिनि वदन बिल, जे न जपहिं हरि नाम। तुलसी प्रेम न राम सो, ताहि विधाता वाम। सो जीभ गिरने मे जो देर हो रही है वह इसलिए कि वह जीभ समरांगण मे सिरो के समेत गिरेगी। यह अपराध इतना बड़ा है कि खाली नही जा सकता।

सो. सो[1] नर क्यों दसकंध, बालि बधेउ जेहि एक सर।
बीसहु लोचन अंध, धिग तव जनम कुजाति जड़॥३३॥

अर्थ : हे दसकण्ठ ! जिसने एक वाण से वालि को मारा वह मनुष्य कैसे है ? तुम बीसो आँखो से अन्धे हो। तुम कुजाति हो जड हो। तुम्हारे जन्म को धिक्कार है।

व्याख्या : अमानुष कर्म दिखलाते हुए अङ्गदजी कहते हैं कि उन्होने वालि को एक बाण से मारा। रामजी ने जब प्रतिज्ञा की कि : सुनु सुग्रीव मैं मारिहौं बालिहि एकहि बान। तब सुग्रीव को विश्वास नही हुआ कि एक वाण से वालि मारा जा सकता है। बोल बैठे कि : बालि महाबल अति रनधीरा। जब परीक्षा लेने पर विश्वास हुआ तो साथ ही साथ यह ज्ञान भी हुआ कि ये मनुष्य नही हैं। ईश्वर हैं। यथा : देखि अमित बल बाढी प्रीती। बालि बधब इन्ह भइ परतीती। उपजा ज्ञान बचन तब बोला। नाथ कृपा मन भयउ अलोला। अत रामजी मनुष्य

---

१. यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

नही हैं। सुग्रीव को दो आँखें हैं। उन्होंने पहिचान लिया। तुम्हे बीस आँखें हैं। तुम नही पहिचान सकते। क्या किसी आँख से कुछ नही सूझता ?

साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगत महु जासु न रेखा। जाय जिअत जग सो महि भारू। जननी जोवन बिटप कुठारू। अत तुम्हारे जीवन को धिक्कार है। तू पितृ पितामह क्रम म न पडके मातामह के क्रम म पडा। अत तू कुजाति है और तू जडमति है। इसलिए जड है।

दो तव सोनित की प्यास, तृपित राम सायक निकर।
तजौ तोहि तेहि त्रास, कटु जल्पक निसिचर अधम ॥३३ क॥

अर्थ रामजी के बाण तेरे रक्त के प्यासे हो रहे हैं। रे कटुवादी अधम राक्षस ! उसी भय से मैं तुम्ह छोड देता हूँ।

व्याख्या प्यासे का पेय यदि कोई हरण कर ले तो वे उसपर अत्यन्त क्रुद्ध हो जाते है। रामजी के बाणो को तेरे रक्त की पिपासा है। यदि मैं तुम्ह मार डालूँ तो वे मुझपर बडे क्रुद्ध हो जावेंगे और मै उनके क्रोध से डरता हूँ। इससे तुझे नही मारता। नही तो निशिचर होने से अधम होने से तथा कटु जल्पक होने से तू सब प्रकार से वध्य है।

मैं तव दसन तोरिबे लायक। आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक ॥
अस रिसि होत दसौ मुख तोरौ। लका गहि समुद्र महँ बोरौ ॥१॥

अर्थ मैं तेरे दाँत तोडने म समर्थ हूँ। पर मुझे रघुनायक ने आज्ञा नही दी। ऐसा क्रोध होता है कि तेरे दसो मुख को तोड डालूँ और लका को उठाकर समुद्र मे डुबा दूँ।

व्याख्या मरकट हीन करहु महि जाई। जिअत धरहुँ तापस दोउ भाई। का उत्तर देते हुए अङ्गदजी कहते है कि ये जो भागे जाते हैं इनकी गिनती क्या है। मैं तेरे दाँत तोडने मे समर्थ हूँ। सरकार ने मुझे केवल बतकही की आज्ञा दी है। यथा काज हमार तासु हित होई। रिपुसन करेहु बतकही सोई। इसका अभिप्राय ही यही है कि कोई उपद्रव न कर बैठना।

मैं समर्थ भी हूँ और मुझे क्रोध भी ऐसा है कि तेरे सब मुखों को खण्डित कर दूँ जिन मुखो से तेरे ऐसी बेतुकी बातें निकली हैं और मही को राक्षसहीन करने के लिए लका को उठाकर समुद्र मे डुबा दूँ। तेरे एक मुख ने राम की निन्दा की है। पर मेरा क्रोध इतना है कि उसी एक को तोडकर शान्त न होगा। दसो को तोड डालूँ और लका को समुद्र म डुबा दूँ तो शान्त होगा।

गूलरि फल समान तव लका। बसहु मध्य तुम जतु असका ॥
मैं बानर फल खात न बारा। आयसु दीन्ह न राम उदारा ॥२॥

अर्थ गूलर के फल के समान तेरी लका है। उसी म तुमलोग कीडो की

भाँति नि.शङ्क होकर बसते हो। मैं वानर ठहरा। मुझे फल खाने में देर नही। पर उदार रामजी ने आज्ञा न दी।

व्याख्या : गूलर के फल के भीतर जन्तुओ को बाह्य जगत् से कोई सम्बन्ध नही रहता। वे निडर होकर उसी गूलर फल मे बसते है। इसी भाँति लकापुरी भी ससार भर से असम्बद्ध है। यथा : खाईं सिंधु गभीर अति चारिहि दिसि फिरि आव। मैं ऐसा बन्दर हूँ कि इस लंका को गूलर के फल के समान भक्षण कर सकता हूँ अर्थात् लंका के लिए मैं कालस्वरूप हूँ। यथा : ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया। जीव चराचर जन्तु समाना। भीनर बसहि न जानहि आना। ते फल भच्छक कठिन कराला। तव भय डरत मदा सोउ काला। मै ऐसा बन्दर नही हूँ कि तुम्हारे राक्षस मुझे पकड़कर मार डालें। निर्गलितार्थ यह कि सम्पूर्ण लका को विध्वम करना मेरे लिए खेल है और तेरी उक्तियो से मुझे क्रोध भी ऐसा ही है। पर स्वामी हमारा बड़ा उदार है। शत्रु का भी अहित नही चाहता। यदि तुम सीताजी को देकर मिल जाओ तो तुम्हारा अपराध क्षमा हो सकता है। उन्होने आज्ञा नही दी और विना उनको आज्ञा हम फल नही खाते। यथा : सिंधु पार प्रभु डेरा कीन्हा। सकल कपिन्ह कहँ आयसु दीन्हा। खाहु जाइ फल मूल सुहाये। सुनत भालु कपि जहँ तहँ धाये।

जुगुति सुनत रावन मुसुकाई। मूढ़ सिखिहि कह बहुत झुठाई॥
बालि न कबहुँ गालु अस मारा। मिलि तपसिन्ह तै भयेसि लबारा॥३॥

अर्थ : युक्ति सुनते ही रावण मुसुकराया। कहने लगा कि मूढ ! तूने ऐसी झुठाई कहाँ सीखी ? बालि ने तो कभी ऐसी शेखी नही बघाड़ी। तपस्वियो के साथ से तू भी झूठा हो गया।

व्याख्या : अङ्गदजी ने जानबूझकर ऐसी बात कही जिसमे रावण उन्हें झूठा कहे और तब उन्हे बल प्रदर्शन का अवसर मिले। इससे अधिक उसे निरुत्तर करने का कोई उपाय नही था। अङ्गदजी की युक्ति काम कर गयी। रावण मुसकुरा पडे। कहने लगे कि तूने इतना झूठ कहाँ से सीखा ? तू मूढ है। तुझे इतना परिज्ञान नही है कि मैं तेरी धमकी मे नही आ सकता। यदि कहो कि बालि से सीखा तो बालि ऐसा गप्प नही हाँकता था। भाव यह कि वह भी गप्प हाँकता था। कहता था कि मैंने रावण को काँख मे दाब रक्खा था। पर इतना गप्प नही हाँकता था जितना कि तू हाँकता है।

ये तपस्वी झूठ बहुत बोला करते हैं और न हो तो अपनी आयु ही बहुत बडी बतलाते हैं। अथवा श्रीरामजी तथा लक्ष्मणजी पर आक्षेप करता है कि ये लोग झूठ बोलते हैं। उनका साथ करते करते तू भी झूठा हो गया।

साँचेहु मै लबार भुज बीहा। जौ न उपारिउँ तव दस जीहा॥
समुझि राम प्रताप कपि कोपा। सभा माँझ पन करि पद रोपा॥४॥

अर्थ : यदि मैं तेरी दसो जीभ न उखाड लूँ तो सचमुच ही मैं झूठा हूँ। मजी के प्रताप को स्मरण कर अङ्गदजी ने क्रोध किया और सभा मे प्रण करके रोप दिया।

व्याख्या : अङ्गदजी कहते है कि तुझे बीस भुजा होने का अभिमान है तो प्रतिज्ञा सुन। मैं तेरी दसो जीभ उखाड लूँगा अर्थात् तुझे चुप कर दूँगा। प्रतिज्ञा करके अङ्गदजी ने प्रभु के प्रताप का स्मरण किया और क्रोध करके के बीच मे पैर रोप दिया। सभा के बीच मे पैर रोपने का भाव यह कि सम्पूर्ण ा के निवासियो को ललकार है। और तब तक जो राक्षस भागे थे वे लौटकर ाये थे।

मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहि राम सीता मै हारी॥
हु सुभट सब कह दससीसा। पद गहि धरनि पछारहु कीसा॥५॥

अर्थ : अङ्गदजी ने कहा कि रे शठ! यदि तू मेरा चरण हटा सके तो जी लौट जायँगे। मैं सीता को हारता हूँ। रावण ने कहा : सब वीरो! सुनो बन्दर का पैर पकडकर पृथ्वी पर पटक दो।

व्याख्या : भाव यह कि अभी झूठ सच की परीक्षा हुई जाती है। मैं दूत हूँ सन्धि विग्रह आदि करने का अधिकार है। मैं स्वामी की ओर से हार जीत कर ता हूँ। मैं पैर रोपे हुए हूँ। इस पैर को यदि तुम हटा दो तो रामजी विना युद्ध ये लौट जायँगे। मैं उनकी ओर से सीता को हारता हूँ। यह स्वामी की महा हमा और सेवक के वज्र विश्वास का उदाहरण है। यथा : तेहि समाज कियो ठन पन जेहि तौल्यो कैलास। तुलसी प्रभु महिमा कहौं सेवक को विस्वास।

जिस भाँति अङ्गदजी अपने स्वामी के प्रतिनिधि होकर हार जीत की प्रतिज्ञा ते है उसी भाँति रावण स्वयं न उठकर अपने प्रतिनिधि रूप से लङ्का के वीरो आज्ञा देता है कि लो! सब झगडा खतम हुआ जाता है। बस इस बन्दर का पकडकर पृथ्वी पर पछाड दो।

द्रजीत आदिक बलवाना। हरषि उठे जहँ तहँ भट नाना॥
पटहिं करि बल विपुल उपाई। पद न टरै बैठहिं सिरु नाई॥६॥

अर्थ : इन्द्र के जीतनेवाले मेघनाद आदि योद्धा होकर उठ खडे हुए तथा य नाना भट भी खडे हुए। वे बहुत बल लगाकर अनेक उपाय करके झपटते थे। जब पैर न टला तो सिर नीचे करके बैठ गये।

व्याख्या : वारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महँ प्रथम लीक जग जासू। सो हले ही मेघनाद उठ पडे। मन मे सोचा कि यह कौन सी बडी बात है और उसके मकक्ष और भी वीर कुमुख अकपन कुलिसरद धूम्रकेतु अतिकाय। एक एक जग ीत सक ऐसे सुभट निकाय। उठ खडे हुए। इनके अतिरिक्त नाना भट भी हर्षित

होकर उठ खड़े हुए कि बिना युद्ध किये पैर पकड़ कर गिरा देना कौन सी बड़ी बात है। यह तो हम भी कर सकते है। बड़ी प्रसन्नता है कि सहज मे ही बड़ी भारी बला टली जिसकी चिन्ता हम लोगो को रात दिन थी।

झपेटा मे ही गिरा देना चाहते हैं। फिर पूरी शक्ति लगा देते है। फिर भी काम होते न देखकर नखक्षत आदि करते है। पैर नही टलता तो सिर नीचा करके बैठते हैं। एक अङ्गद द्वारा सबका पराभव हुआ। अङ्गद ने दिखला दिया : मैं बानर फल खात न बारा।

पुनि उठि झपटहि सुर आराती। टरै न कीस चरन एहि भाँती ॥
पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। मोह बिटप नहि सकै उपारी ॥७॥

अर्थ : देवशत्रु फिर उठ उठकर झपटते हैं। परन्तु अङ्गदजी का चरण इस भाँति नही हिलता जिस भाँति कुयोगी पुरुष मोह के वृक्ष को नही उखाड़ सकते।

व्याख्या : जब बल करके खत्र थक जाते थे तब आकर बैठ जाते थे। दम ले लेकर फिर उठते थे यह समझकर कि इतने वीर बल लगा चुके। अब तो अङ्गद थक ही गये होगे। पर उनका चलाया अङ्गद का पैर नही चलता। यहाँ कवि उपमा देते हैं कि जैसे जिन योगियो के हृदय मे रामप्रेम नही है वे योग करते करते मर जाते हैं पर उनका मोह नही जाता। यथा ' जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नही राम प्रेम परधानू।

दो. भूमि न छाड़त कपि चरन, देखत रिपु मद भाग।
कोटि बिघ्न ते संत कर, मन जिमि नीति न त्याग ॥३४॥

अर्थ : अङ्गदजी का पैर पृथ्वी नही छोड़ता। यह देखकर शत्रु का अभिमान दूर हो गया। जैसे कठोर विघ्न होने पर भी सन्त का मन नीति को नही त्यागता।

व्याख्या : यहाँ पृथ्वी की उपमा नीति से है और सन्त की उपमा कपिचरण से है और सुर आराती के झपट की उपमा कोटि विघ्न से है। इतने वीर उठे और थककर बैठ गये। अङ्गदजी का पैर हटा न सके। यह देखकर रावण का अभिमान दूर हो गया। रावण कहते थे : तुम सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ। सो जिसे कूलद्रुम समझते थे वह तो कैलास से भी अधिक अचल प्रमाणित हो रहा है। जिसका पैर उठाया नही उठता उससे युद्ध करने की कौन सी कथा है। वह ठीक कहता है : आयसु पै न दीन्ह रघुनाथा। इस भाँति रावण का अभिमान दूर हुआ।

अब कपि के चरण के पृथ्वी न छोड़ने की उपमा सन्त के मन का नीति के न त्यागने से देते है। नीति पथ पर चलने में अनेकानेक बाधाएँ उपस्थित होती हैं। जिनसे अभिभूत होकर सामान्य लोग नीति छोड़ देते हैं पर सन्त की यही परीक्षा है कि चाहे कितने विघ्न आवें पर वे कभी नीति पथ का परित्याग नही कर सकते। यदि नीतिपथ से विचलित हो गये तो वे सन्त नही। ,न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पद न धीरा.।

कपि बलु देखि सकल हिय हारे। उठा आप कपि के परचारे॥
गहत चरन कह बालि कुमारा। मम पद गहे न तोर उबारा॥१॥

अर्थ : बन्दर का बल देखकर सबकी हिम्मत छूट गयी। तब अङ्गदजी के ललकारने पर स्वयं उठा। पर पकडते समय वालि के बेटे ने कहा कि मेरे पैर पकड़ने से तेरी रक्षा न होगी।

व्याख्या : जब किसी उपाय से पैर न उठा तब सबका साहस जाता रहा। अब कोई पैर उठाने नहीं आ रहा है। अङ्गदजी ने यह दिखला देना चाहा कि तू केवल निर्भयता का दिखावा करता है। वस्तुतस्तु तू श्रीरामजी के आगमन से भयभीत है। यदि भयभीत न होता तो सबको मेरा चरण पकड़ने को क्यो कहता? कह सकता था कि सीता लंका मे कैद है। तुम उसे हारने क्या आये हो? बात तो यह है कि राम किसी भाँति फिर जायँ। हम लोगो की रक्षा हो। इसी भावना से रावण ने चरण पकड़ने की आज्ञा दो और इसी अभिलाषा से इन्द्रजीत आदिक योद्धा तैयार हो गये। जब अङ्गदजी ने देख लिया कि अब कोई पैर उठाने नहीं आता है तब रावण को ललकारा कि बहुत कहते थे कि मैंने कैसे कैलास उठाया है। आज तुम्हारा कैलास उठाना देखा जायगा। आओ उठाओ।

रावण रामजी के लौट जाने के इतने इच्छुक थे कि स्वयं राज सिंहासन छोडकर दूत का पैर पकडने चले। साहस तो उनका भी छूटा हुआ था पर ललकार पर उठ ही गये। रावण अङ्गदजी के पास पहुँच गये और झुके पैर उठाने को। अङ्गदजी ज्यो का त्यो पैर रोपे हुए उससे बोले कि मेरे पैर पकडने से तेरी रक्षा न होगी। तू पैर नहीं उठा सकेगा। जब तू इतना आर्त्त है कि अपनी रक्षा के लिए उठकर मेरा पैर पकडने आया तो :

गहसि न रामचरन सठ जाई। सुनत फिरा मन अति सकुचाई॥
भजेउ तेजहत श्री सब गई। मध्य दिवस जिमि ससि सोहई॥२॥

अर्थ : रे शठ! तू रामजी का चरण क्या नहीं पकडता। सुनते ही मन से बहुत लज्जित होकर लौट आया : वह तेज हत हो गया। उसकी श्री चली गयी। जैसे मध्याह्न के समय चन्द्रमा की गति हो जाती है।

व्याख्या : अङ्गदजी जानते हैं कि यहाँ रामप्रताप काम कर रहा है। रावण भी मेरा पैर नहीं उठा सकता। परन्तु यह नहीं चाहते थे कि वह पैर उठावे और उनका पैर उससे न उठे। क्योंकि ऐसा होने से रावण वध का यश जो रामजी को मिलनेवाला है बहुत कुछ कम हो जायगा। लोग कहेंगे कि जो रावण अङ्गद का पैर नहीं उठा सका उसके मारने से रामजी का कौन सा पुरुषार्थ है। अतः अङ्गदजी ने ऐसी बात कही जिससे रावण का परम हित हो और रामजी का भी कार्य हो। उन्होने कहा कि जब रामजी के लौट जाने के लिए तुम मुझ दूत का भी चरण ग्रहण कर रहे हो तो इसी भाँति रामजी का चरण ग्रहण करो। जब यहाँ तक के

लिए तुम तैयार हो गये तब भी रामजी के चरणग्रहण करने मे पराड्मुख होना तुम्हारी शठता है।

रावण यह बात सुनते ही अति सङ्कुचित हुए और तुरन्त लौट गये सम्भावित सम्राट् होकर दूत के ललकार पर पैर पकड़ने उठे और वह मजाक करता है। रावण यदि समझते कि वे पैर उठा सकते है तो वे ऐसे जीव नही थे कि अङ्गदजी के ऐसा कहने पर सङ्कुचित होकर लौट जाते। उन्होने समझ लिया कि जब इन्द्रजीत इसे नही उठा सकता तो मुझसे भी नही उठेगा; मुझसे बड़ी चूक हुई जो मैं दूत के पैर पकडने उठ पड़ा। अब जो कुछ वह कहता है ठीक है।

यहाँ रावण ऐसे चूके कि उनके पास कोई उत्तर नही है। उनका तेज जाता रहा। बडा भारी पराभव होने से मुखपर से राज्यश्री जाती रही। रामजी प्रबल प्रताप मध्याह्न के सूर्य की भाँति ऐसे चमके कि रावण की दशा उस समय के चाँद की भाँति हो गयी। अङ्गदजी ने रामप्रताप का स्मरण करके प्रतिज्ञा की सो रामप्रताप ने पूरा कर दिया।

सिंहासन बैठेउ सिर नाई। मानहु संपति सकल गँवाई॥
जगदातमा प्रानपति रामा। तासु बिमुख किमि लह बिश्रामा॥३॥

अर्थ : वह सिर नवाकर सिंहासन पर जा बैठा। मानो उसने सारी सम्पत्ति गँवा दी। रामजी जगत् के आत्मा और प्राणपति है। उनके विमुख को विश्राम कैसे मिलेगा?

व्याख्या : रावण का गाल बजाना बन्द हो गया। दसो जिह्वाएँ स्तम्भित हो गयी। अङ्गद का प्रण पूरा हुआ। यही दसो जिह्वाओ का उखाड़ना है। जिस तरह पैर न उठा सकने पर सब सिर नीचा करके बैठे थे उसी भाँति रावण भी सिंहासन पर सिर नीचा करके बैठे[1]। अतः भयेउ तेज हत कहा। अब मानहु संपति सकल गँवाई से श्री सब गयी इस उक्ति को स्पष्ट करते है।

अब श्री गोस्वामीजी कहते हैं कि रामजी जगत् की आत्मा हैं। अत. रावण की भी आत्मा है। उसके भी प्राण के पति है। ससार को विश्राम आत्मा मे ही मिलता है। क्योंकि वही अत्यन्त प्यारा है। उस जगदम्बा से जो विमुख हुआ उसे विश्राम कहाँ?

उमा राम की भृकुटि बिलासा। होइ बिस्व पुनि पावै नासा॥
तृन ते कुलिस कुलिस तृन करई। तासु दूत पन कहु किमि टरई॥४॥

---

१. दो प्रकार की चतुराई होती है। एक हरि सम्मुख ले जानेवाली और दूसरी विमुख ले जानेवाली। रावण अङ्गद सवाद मे दोनो का सामना पड गया। अन्त मे पहिली चतुराई की विजय हुई। रावण सिर झुकाकर बैठे।

अर्थ : हे उमा ! रामजी के भृकुटि विलास से विश्व उत्पन्न होता है। और लय हो जाता है जो तृण को वज्र और वज्र को तृण बनाता है उसके दूत का पैर कैसे टल सकता है।

व्याख्या : संशय का अवसर देखकर शिवजी स्वयं समाधान किये देते हैं। कहते हैं कि विश्व की उत्पत्ति स्थिति और संहार रामजी के भृकुटि विलास से होता है। अर्थात् जगत् की उत्पत्ति स्थिति तथा लय ऐसा महान् कार्य उनके द्वारा अनायासेन होता है और यह भी भाव है कि एक कल्प जो ब्रह्मदेव का एक दिन है वह रामजी का एक निमिष है। अतः वे ब्रह्मदेव से भी अत्यन्त महान् हैं। तृण को वज्र और वज्र को तृण वे दिन रात बनाया करते हैं। बन्दर तृण से वज्र और राक्षस वज्र से तृण बना रहे हैं। ऐसे समर्थ का जो दूत है उसका पैर कैसे टलेगा। ऐसे समय पर शिवजी उमा को बराबर सावधान किया करते हैं। यथा : उमा न कछु कपि के अधिकाई। प्रभुप्रताप जो कालहि खाई।

पुनि कपि कही नीति बिधि नाना। मान न ताहि कालु नियराना॥
रिपुमद मथि प्रभु सुजस सुनायो। यह कहि चल्यो बालि नृपजायो॥५॥

अर्थ : फिर अङ्गदजी ने नाना प्रकार की नीति कही। पर उसकी मृत्यु निकट थी। उसने एक न मानी। शत्रु के मद का मन्थन करके प्रभु का सुयश सुनाया और बालि का राजकुमार यह कहकर चला।

व्याख्या : अब अभिमान भंग हो गया है। सम्भव है कि इसे श्रवण का अधिकार प्राप्त हो गया हो। अत: ऊँचा नीचा दिखाते हुए उसे अनेक प्रकार की नीति वह कहकर समझाया। पर रावण का काल सन्निकट था। उसने न माना : कालदंड गहि काहु न मारा। हरै धर्म बल बुद्धि बिचारा।

भूमि न छाड़त कपि चरन देखत रिपु मद भाग। इसलिए कहते हैं कि अङ्गदजी ने पहिले शत्रु के मद का मन्थन किया तत्पश्चात् प्रभु का सुयश सुनाया। पहिले तो रावण सुयश सुनता ही नहीं था। उत्तर देने लग जाता था। परन्तु अब निरुत्तर होकर सुन तो लिया पर माना एक नहीं। तब अङ्गदजी अन्त मे यह कहकर वहाँ से चले कि :

हतउँ न खेत खेलाइ खेलाई। तोहि अबहिं का करौ बड़ाई॥
प्रथमहि तासु तनय कपि मारा। सो सुनि रावन भयउ दुखारा॥६॥
जातुधान अंगद पन देखी। भय ब्याकुल सब भये बिसेखी॥७॥

अर्थ : तुझे रणक्षेत्र मे खेल खेलाकर न मारूँ तो अभी तुझसे क्या बड़ाई करूँ। अङ्गदजी ने पहिले ही उसके पुत्र का वध किया था। यह सुनकर रावण और भी दु:खी हुआ। राक्षस लोग अङ्गद का प्रण देखकर विशेषरूप से व्याकुल हुए।

व्याख्या : थकाकर मारना तथा युद्ध करने के लिए अवसर देते जाना इसी

को खेलाना कहते हैं। शत्रु को अवसर पाते ही वध कर देने का नियम है। परन्तु अत्यन्त बलवान् लोग शत्रु को अवसर पाने पर भी कई बार छोड देते हैं। जिसमे उसको युद्ध का हौसला बाकी न रहे। अङ्गदजी कहते है कि हम लोग तुम्हे खेला खेलाकर मारेंगे। यथा : गहि भूमि पारेउ लात मारेउ बालिसुत प्रभु पहँ गयो। यथा : अस कहि अगद मारेउ लात। अङ्गदजी कहते हैं कि इस समय बडाई क्या करूँ। भाव यह कि समरांगण मे कहूँगा। यथा : रन ते निलज भाजि गृह आवा। इहाँ आइ बक ध्यान लगावा। इत्यादि।

अङ्गदजी के चले जाने पर राक्षसो ने प्रशस्तकुमार के मारे जाने का वृत्तान्त सुनाया। पहिले कहने से रावण पूछते कि कौन कौन उस समय थे और उन्होने बन्दर को क्यो नही मारा। समाचार देनेवाले का बडा उत्तरदायित्व था। अब ऐसे प्रश्न के लिए किसी का मुँह नही रह गया। तब राक्षसो ने समाचार सुना दिया। रावण ने भी चुपके से सुन लिया और बहुत दुखी हुआ।

हनुमान्जी का बल देखकर तो सब विकल थे। पर रावण अपनी उक्तियो से धैर्य देता जाता था कि सेनाभर मे एक वही बन्दर बलवान् है। पर आज वह धारणा भी जाती रही। दूसरा बन्दर जो आया। उसके बल का भी वारापार किसी को न मिला। अत वे सब विशेषरूप से भयव्याकुल हुए।

दो. रिपु बल धरषि हरषि कपि, बालितनय बलपुज।
पुलक सरीर नयन जल, गहे रामपद कज॥

मन्दोदरी का रावण को समझाना : चौथी बार

दो. साँझ जानि दसकंधर, भवन गये बिलखाइ।
मदोदरी रावनहि, बहुरि कहा समुझाइ॥३५॥

अर्थ : शत्रु के बल को रगडकर बालि के पुत्र बलपुज अङ्गद ने प्रसन्न होकर रामजी के चरणकमल को पकडा। सन्ध्या समय जानकर रावण बिलखकर महल मे आये। तब मन्दोदरी ने उस राक्षस को फिर समझाकर कहा।

व्याख्या बल का अर्थ सेना भी होता है। अङ्गदजी ने रावण को और उनके सम्पूर्ण सुभटो का अच्छी तरह से रगड दिया। उनको बतकही के लिए आज्ञा हुई थी। यथा काज हमार तासु हित होई। रिपुसन करेहु बतकही सोई। सो बतकही मे रावण की जिह्वा स्तम्भित कर दिया। इस सफलता पर हर्षित हैं। चलने के समय : स्वयं सिद्ध सब काज नाथ मोहि आदर दयउ। अस विचारि जुवराज तन पुलकित हरषित हिये। और आये तब भी पुलक तन होकर आये। चलने के समय रामदूत के पद प्राप्ति के आनन्द से पुलक उठ रहा था और लौटे तो सरकार के कृपाकटाक्ष के प्रभाव की असीम महिमा का ध्यान करके आनन्द से सजल नयन और पुलकतन हो रहे थे। पूरा दिन रावण की सभा मे बीता।

रावण सन्ध्या समय सभा से घर जाते थे। यथा : सन्ध्या समय जानि दससीसा। भवन चलेउ निरखत भुज बीसा। सो आज भी सन्ध्या समय घर चले। परन्तु बिलखाकर घर गये। भुज बीस का भरोसा जाता रहा। लडका मारा गया इस बात का भी बडा दु ख है। सभा के बीच मे मानमर्दन हुआ यह ऊपर से। मन्दोदरी तीन बार समझा चुकी है। अन्तिम बार फिर समझाने चली है कि इतनी दुर्दशा पर सम्भव है कि मेरी बातों का कोई प्रभाव पडे। पर वह निशाचर है। भली बात मान नही सकता।

कंत समुझि मन तजहु कुमतिही। सोह न समर तुमहि रघुपतिही ॥
रामानुज लघु रेख खँचाई। सोउ नहि नाघेहु असि मनुसाई ॥१॥

अर्थ . हे कन्त ! मन मे समझकर कुमति को छोड़ दो। तुम्हारे और रघुपति के बीच की लडाई शोभा नही देती। रामजी के छोटे भाई ने छोटी सी रेखा खँच दी। उसका उल्लघन न कर सके। ऐसा तो तुम्हारा पुरुषार्थ है।

व्याख्या · मन्दोदरी को सभा मे जो जो दुर्गति हुई है उसका अक्षरश पता है। आज सभा सहित रावण का पराभव अङ्गद द्वारा हुआ है। किसी मे इतना पुरुषार्थ नही था कि अङ्गद का पैर हटा सके। अत आज रावण को यह उत्तर देने का मुँह नही है कि ' जो आवै मरकट कटकाई। जियहि बिचारे निसिचर खाई। कपहि लोकप जाकी त्रासा। तासु नारि सभीत बडि हाँसा। जानेउँ प्रिया तोरि चतुराई। एहि बिधि कहेउ मोर प्रभुताई। इत्यादि। अत मन्दोदरी बोली। यहाँ कन्त सम्बोधन का भाव यह कि केवल स्त्री ही भाग्य की सगिनी है। अत उसे भले बुरे मे सम्मति देने का अधिकार है। स्थिति बड़ी गम्भीर है। गाल बजाकर बात टालने से काम न चलेगा। तुमने कुमति का आश्रयण कर रक्खा है उसका परित्याग करो। विभीषण ने ठीक कहा था कि : तव उर कुमति बसी बिपरीता। तुम अनीति कर रहे हो। प्रीति बिरोध समान सन करिअ नीति अस आहि। श्रीरामचन्द्र मे और तुम म बडा भारी अन्तर है। उनसे वैर बढाना बडी भारी कुबुद्धि है। अनीति है। अब उस अन्तर को स्पष्ट करती हुई कहती है कि तुम्हारा पुरुषार्थ तो इतना अल्प है कि रामजी की बात तो दूर रहे उनके छोटे भाई ने सीताजी के चारों ओर रक्षा के लिए एक रेखा खेंच दी थी। उसका उल्लघन करके सीताजी का हरण न कर सके। वहाँ जाकर भिक्षा माँगना पडा। जब सीताजी रेखा के बाहर आयी तब तुम हरण कर सके। जिसकी खेंची हुई रेखा का उल्लङ्घन करना तुम्हारे सामर्थ्य के बाहर की बात है उससे युद्ध करने की बात मन मे लाना भी अकल्याणकर है। ऐसे बलवान् से युद्ध करने मे शोभा नही है। सूर्य के साथ खद्योत का युद्ध कैसा ?

पिय तुम ताहि जितब सग्रामा। जाके दूत केर यह कामा ॥
कौतुक सिधु नाँघि तव लका। आयेउ कपि केहरी असंका ॥२॥

अर्थ हे प्रिय ! तुम उसे युद्ध मे जीतोगे ? जिसके दूत की ऐसी करणी है।

खेल में ही समुद्र का उल्लङ्घन करके तुम्हारी लंका में वह कपि केसरी बेडर चला आया।

व्याख्या : तुम प्रिय हो। तुम्हारा अनिष्ट न हो इसलिए कहती हूँ कि विचारो तो तुम सीता को जो नहीं देते हो। वह जीत की आशा से ही नहीं दे रहे हो। सो क्या तुम उन्हें जीत सकोगे ? : पीड़ा बढ़ाने के लिए पुत्रवध तथा पैर न उठा सकने का नाम नहीं लेती है। केवल इंगित किये देती है : जिसके दूत की ऐसी करणी है। दूत के योद्धा होने का नियम नहीं है। उसके सुभट सेनापति और स्वयं उसके सामने तुम क्या कर सकोगे ? यह बात भी नहीं कि सेनाभर में केवल अङ्गद ही बलवान् है। इसके पहिले भी दूत के ही रूप से कपिकेसरी आया था। शौर्य क्रौर्य आदि गुणों से हनुमान्‌जी को कपिकेसरी कहती है। अथवा केसरी के पुत्र होने से कपि केसरी कह रही है। अङ्गद तो सेतु बँधने पर आया है और वह कपि केसरी तो समुद्र लाँघकर आया। समुद्रोल्लघन उसके लिए खेल था। यथा : लीलहि लाँघउँ जलनिधि खारा। उसके पराक्रम और साहस को देखो कि अकेला तुमसे रक्षित जो लङ्कापुरी है उसमे घुस आया।

रखवारे हति बिपिन उजारा। देखत[1] तोहि अच्छ तेहि मारा॥
जारि सकल पुर कीन्हेहि छारा। कहाँ रहा बल गर्ब तुम्हारा॥३॥

अर्थ : रखवालों को मारकर वन को उजाड़ डाला। तुम्हारे आँखों के सामने अक्षकुमार को मारा नगर को जलाकर छार कर दिया। तब तुम्हारे बल का अभिमान कहाँ रह गया ?

व्याख्या : इतनी जबरदस्ती उसने तुम्हारे साथ की। प्राणों से प्यारा मेघनाद सा दुलारा बाग उसने उजाड़ा रक्षकों को मार डाला। तुम्हारे सामने अक्षकुमार का वध किया। सोने की लङ्का जलाकर छार कर दिया। थोड़े से सोने का जलाना कठिन होता है। उसने तुम्हारी सोने की लङ्का जलाई। बेटा मारा सेना का संहार किया और तुम उसका कुछ न कर सके। तुम्हारा बल का अभिमान तो उसी ने तोड़ डाला अब क्या बल का अभिमान करते हो।

अब पति मृषा गाल जनि मारहु। मोर कहा कछु हृदय बिचारहु॥
पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु। अगजगनाथ अतुल बल जानहु॥४॥

अर्थ : हे पति ! अब झूठी डींग न हाँको मेरा कहा कुछ मन में विचारो। हे स्वामी ! रामजी को राजा न मानो। उन्हे चराचर का स्वामी और अतुल बल जानो।

व्याख्या : पति हो। तुम से ही मेरा सौभाग्य है। तुमने किसी के कहने का विचार नहीं किया। न बेटे का सुना न भाई का सुना न दादा : पुलस्त्य का सुना।

---

१. यहाँ विभावना : तृतीय : अलङ्कार है।

मै तुम्हारी अर्धाङ्गिनी हूँ। मेरी बात को तो मन मे विचारो। झूठे गाल बजाने मे कुछ रक्खा नही है। हे स्वामिन्! रघुपति को कोरा नरपति न समझ रक्खो। मनुष्य कही ऐसे होते हैं? जो घटना घट रही है वह मनुष्य के सामर्थ्य की बात नही है। बन्दर समुद्रोल्लघन करके तुम्हारी लङ्का मे प्रविष्ट होकर अशोक वन विध्वस और अक्ष का वध नही कर सकता। बन्दर मे इतना सामर्थ्य नही हो सकता कि उसका पैर कोई न हटा सके। यहाँ परमेश्वरी शक्ति काम कर रही है। जिसके सामने तुम्हारे ऐसे की कुछ नही चल रही है। यह विचारने की बात है। अतः रामजी चराचर के नाथ हैं। तुमने चराचर से द्रोह कर रक्खा है। अत चराचर की रक्षा के लिए वे आये हुए है उनके बल से ही सब बलवान् है उनके बल का नाप तौल नही है। उनका अपमान न करो।

बान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहि मानेहि नीचा॥
जनक सभा अगनित भुव पाला। रहे तुम्हउ बल अतुल बिसाला॥५॥

अर्थ . बाण का प्रताप मारीच जानता था। तुमने नीचता करके उसका कहना नही माना। जनक की सभा म असख्य राजा थे और बडे अतुल बलवाल तुम भी थे।

व्याख्या : उनके बाण का प्रताप मारीच जानता था। उसने तुमसे कहा मुनि मख राखन गयउ कुमारा। बिनु फरसर रघुपति मोहि मारा। सत जोजन आयउँ छन माही। तिन सन बैर किये भल नाही। पर तुमने ऐसी नीचता की कि उस हितवादी को गालियाँ दी और अन्त मे उसका प्राण लेकर छोडा। यथा : जाहु भवन कुल कुसल बिचारी। सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी। : इस भाँति मन्दोदरी ने मुनिमख रक्षण की कथा कही अब सीता स्वयम्बर कह रही हैं।

जनक की सभा मे द्वीप द्वीप के राजा इकट्ठे थे। यथा : दीप दीप के भूपति नाना। आये सुनि हम जो पन ठाना। देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आये रनधीरा। तुम भी अपने को बड़ा अतुल बल माननेवाले वही थे। भाव यह कि उस सभा मे पुरुषार्थ प्रकट करने का अवसर था।

भजि धनुप जानकी बिआही। तब सग्राम जितेउ किन ताही॥
सुरपति सुत जानइ बल थोरा। राखा जियत आँखि गहि फोरा॥६॥
सूपनखा के गति तुम्ह देखी। तदपि हृदय नहि लाज बिसेखी॥७॥

अर्थ : वहाँ रामजी ने धनुप तोड़कर जानकी को ब्याहा। तब तुमने उन्हे युद्ध मे क्यो नही जीता। इन्द्र के पुत्र ने उनके बल को थोड़ा समझा। उसे जीता तो छोडा पर पकड़कर आँख फोड़ दी। सूर्पणखा की दशा तुमने देखी तो भी तुम्हारे हृदय मे विशेप लज्जा नही है।

व्याख्या . इतने लोग वहाँ एकत्रित थे। पर किसी का तोड़ा धनुप न टूटा।

रामजी ने अपने पुरुषार्थ का आश्रयण करके धनुष तोडकर जानकी व्याहा। यदि जानकी की इच्छा थी तो तुमने धनुष क्यो नही तोडा ? यदि कहा कि गुरु का धनुष था इसलिए नही तोडा तो मैं पूछती हूँ कि उस समय रामजी का सग्राम म जीतने से तुम्हे किसने रोक रक्खा था ? बात यह थी कि तुम्हारा कुछ किया उस समय भी नही हुआ तो इस समय क्या करोगे ? इस भाँति बालकाण्ड की कथा मन्दोदरी ने सुनायी। अयोध्या मे सरकार ने अपना पराक्रम कही नही दिखलाया और यहाँ पराक्रम की चर्चा चल रही है। इसलिए अयोध्या न कहकर आरण्य की कथा कहती हैं।

उनके बल के देखने की इच्छा ही उनके बल को थोडा समझना है। उनमे इतना अपरिमित बल है कि उसे कोई दरा नही सकता। इन्द्र के बेटे ने परिमित बल माना। इसलिए उसने देखने की इच्छा की। उसकी यह गति हुई कि उसके प्राण पर आ बनी। सारे लोकपालो के यहाँ भागता फिरा। कही शरण न मिली तो फिर उन्ही के शरण गया। सो प्राण तो छोड दिया। पर एक आँख फाड दी। कोई देवता हिल न सके। तुम्हे देवताओ के विजय का अभिमान है। तुमने युद्ध करके देवताओ पर विजय पायी है। उनके एक बाण के सामना का साहस सम्पूर्ण देवमण्डल न कर सका।

बल विक्रम सम्पन्न कामगा कामरूपिणी तुम्हारी बहन सूर्पणखा का उन लोगो ने नाक कान काट लिया। न वही कुछ कर सकी न खर दूषण कुछ कर सके। बहन के नाक कान कटने की लज्जा तो तुम्हे आनी थी पर वह भी तुम्हे विशेष रूप से न आयी। विशेष रूप से आती तो खरदूषण की भाँति धावा बोल देते। चोरी करके बदला चुकाने न चलते।

दो बधि बिराध खरदूखनहि, लीला हतेउ कबध।
बालि एक सर मारयो, तेहि जानहु दसकध ॥३६॥

अर्थ विराध और खरदूषण को मारकर जिसने खेल म कबध को मारा। एक बाण से जिसने बालि को मारा हे दसकठ ! उसे जानो।

व्याख्या जब से होश सँभाला है निशाचरो का सहार कर रहे हैं और विशेष रूप से जब से वन म आये हैं। विराध अमर था। खरदूषण तुम्हारे तुल्य बलवान् थे उन्हे मारा। कबध इन्द्र के वज्र से नही मरा। उसे इन लोगो ने खेल म मारा। यहाँ तक आरण्यकाण्ड की कथा हुई। अब किष्किन्धा काण्ड की कथा कहती है।

बालि तुमसे अधिक बलवान् था उसे एक बाण से मारा। हे दसकण्ठ ! उसे जानो कि वह कौन है। उसका मनुष्य का रूप देखकर न भूलो। सुन्दर और लङ्का काण्ड के उनके दूतो का पुरुषार्थ है सो सब मन्दोदरी ऊपर कह आयी है।

जेहि जलनाथ बधायेउ हेला। उतरे प्रभु दल सहित सुबेला ॥
कारुनीक दिनकर कुलकेतू। दूत पठायेउ तव हित हेतू ॥१॥

अर्थ जिसने खेल मे समुद्र बांध लिया और जो प्रभु सेना के सहित सुवेल पर उतरे उन्ही कारुनीक सूर्यकुल के पताका ने तुम्हारे कल्याण के लिए दूत भेजा।

व्याख्या सरकार की प्रभुता मन्दोदरी कहती है कि जब से सृष्टि हुई तब से और आज तक किसी ने समुद्र पर पुल नही बांधा। सो इन्हाने पाँच दिनो मे ऐसा पुल बाँधा जिस पर से इतनी बडी सेना चढकर पार हो गयी। यथा रामचरन पकज उर धरहू। कौतुक एक भालु कपि करहू। करहु सेतु प्रयास कछु नाही। और सेना सहित सुवेल पर उतरे। यथा इहाँ सुवेल सैल रघुवीरा। उतरे सेन सहित अति भीरा। सुवेल लका की छाती पर है। इम से निभयता कहा।

परन्तु बात यह है कि रघुवीर युद्धवीर दानवीर तो हैं ही। साथ ही दयावीर भी हैं। बडी करुणा है। शत्रु का भी अनभल नही करते। यथा अरिहुँ के अनभल कीन्ह न रामा। दूत भेजने की कोई आवश्यकता नही रही। फिर भी तुम्हारे हित के लिए दूत भेजा।

सभा माझ जेहि तव बल मथा। करि बरूथ महु मृगपति जथा ॥
अगद हनुमत अनुचर जाके। रनबाँकुरे बीर अति बाँके ॥२॥

अर्थ जिसने सभा के बीच मे तुम्हारे बल को मथ डाला। जैसे हाथियो के झुण्ड मे सिंह। अङ्गद और हनुमान् जिसके सेवक हैं। जो रण मे तीखे और बाँके वीर हैं।

व्याख्या उस दूत ने भरी सभा मे हाथ पटककर तुम्हारा मुकुट गिराया। और अपने स्वामी के पास फेंक दिया। तुम्हारे सब सुभट भाग चले। पैर रोप दिया जो किसी का हटाया नही हटा। इस भाति सेना सहित सबके बल का मन्थन किया। किसी का किया कुछ न हुआ। इतने बडे डीलडौलवाल मुँह देखते रह गये। जैसे हाथियो की सभा मे सिंह जा पडे वही तुम लोगो की गति हुई। यथा मत्तगज जुत्थ महँ पचानन चलि जाइ।

जिनके सेवक अङ्गद और हनुमान् है। जिनका पुरुपार्थ देख ही चुके हो ये रण म बडे कुशल है। और अत्यन्त बाँके वीर हैं। उन स्वामी के रण कौशल और शौर्यातिशय का कहना ही क्या है।

तेहि कहुँ पिअ पुनि पुनि नर कहहू। मुधा मान ममता मद बहहू ॥
अहह कत कृत राम बिरोधा। काल बिबस मन उपज न बोधा ॥३॥

अर्थ हे पति। उसे तुम बार बार नर कहते हो। तुम व्यर्थ ही मान और ममता के अभिमान को ढो रहे हो। हाय ! तुमने रामजी से विरोध किया। कालवश हो जाने से मन म ज्ञान नहीं उत्पन्न हो रहा है।

व्याख्या मन्दोदरी अङ्गद सम्वाद सुन चुकी है। रावण को नर कर करेसि बखान। ऐमे मनुज अनेक इत्यादि कहते सुन चुकी है। इसलिए कहती है कि ऐसे

महान् को तुम बार बार मनुष्य कहकर अपमान करते हो। जिस मान को तुम प्रधानता देते हो। यथा : मोर पराक्रम नहिं सुनेहि जितेउँ चराचर झारि। और जिस ममता का तुम्हें भरोसा है। यथा : कुंभकरन अस बन्धु मम सुत प्रसिद्ध सकारि। वह सब व्यर्थ है मिथ्या है। रामजी के सामने ये कुछ नहीं हैं। इन्हें तुम व्यर्थ लिये फिरते हो।

कालदंड गहि काहु न मारा। हरै धर्म बल बुद्धि बिचारा॥
निकट काल जेहि आवत साईं। तेहि भ्रम होइ तुम्हारेहि नाईं॥४॥

अर्थ : काल किसी को लाठी लेकर नहीं मारता। वह धर्म बल बुद्धि और विचार को हरण कर लेता है। हे स्वामी ! जिसके निकट काल आता है उसे तुम्हारी ही भाँति भ्रम हो जाता है।

व्याख्या : काल अदृश्य पदार्थ है। वह किसी का दृश्य अस्त्र शस्त्र का प्रयोग करके किसी को नहीं मारता। फिर भी लक्षणों से जाना जाता है अर्थात् जिसके वह निकट आता है उसके धर्म बल बुद्धि और विचार को वह हरण कर लेता है। उसके निकट आने का लक्षण यही है कि उसे भ्रम हो जाता है। किसी का कहना वह नहीं सुनता। हित कहनेवाले को वह शत्रु समझता है। वह तुम्हारे ऐसा हो जाता है। भाव यह कि ऐसे पुरुषों के तुम आदर्शरूप हो गये हो। उनके ऐसे तुम नहीं हुए हो। तुम्हारे ऐसे वे हो जाते है।

शिशुपाल जब कृष्ण भगवान् को गाली देने लगा। समझाने पर स्वयं भीष्मजी को खरी खोटी सुनाने लगा तो उन्होंने यही कहा कि जिसको ये कृष्ण मारना चाहते है उनकी ऐसी ही बुद्धि हो जाती है। जैसी कि शिशुपाल ! तुम्हारी हो गयी है।

दो. दुइ सुत मरे दहेउ पुर, अजहुँ पूर प्रिय देहु।
कृपासिन्धु रघुनाथ भजि, नाथ बिमल जसु लेहु॥३७॥

अर्थ : दो बेटे मारे नगर जलाया। हे प्रिय ! अब भी बात समाप्त करो। हे नाथ ! कृपा के समुद्र राम को भजकर निर्मल कीर्ति लो।

व्याख्या : तुम्हारे इस रार के कारण दो बेटे मारे गये। नगर जल गया। अर्थात् धन जन दोनों का नाश हुआ। सो जो हुआ सो हुआ यहीं से इतिश्री करो। पूर देहु का प्रयोग ऐसे ही अर्थ में हुआ है। यथा सुनु मतिमन्द देहि अब पूरा। उनसे रार न करो उनको भजो। इससे तुम्हारी निर्मल कीर्ति होगी। तुम्हारी प्रसिद्धि तो है परन्तु दुर्यश है। निर्मल यश तो राम भजन से होता है। तुम्हारा हित लक्ष्य करके दूत भेजा। ऐसे कृपासिन्धु को भजो। वे निश्चय कृपा करेंगे सन्देह न करो। कारुनीक शब्द से उपक्रम करके कृपासिन्धु शब्द में उपसंहार करती है।

नारि बचन सुनि बिसिख समाना। सभा गयउ उठि होत बिहाना ॥
बैठ जाइ सिंहासन फूली। अति अभिमान त्रास सब भूली ॥१॥

अर्थ बाण के समान स्त्री के वचन सुनकर सवेरा होते ही सभा मे चला गया। अति अभिमान से सब भय भूल गया और सिंहासन पर फूलकर बैठा।

व्याख्या आज रावण के पास उत्तर देने के लिए शब्द नही है। पर भीतर अपने सकल्प पर ही दृढ है। जब जब किसी ने समझाया तो रावण ने बुरा ही माना। भाई को तो लात मारकर निकाल दिया। आज स्त्री बाण सा वचन बोल रही है और रावण सह रहे हैं। जगद् विजयी रावण काम के तो दासानुदास ही ठहरे। अत बाण से वचन सुनते रहे। सवेरा कब होगा इसी की प्रतीक्षा रही। रात को सोये नही इसीलिए जागना नही कहते। केवल लेटे रहे इसलिए उठना कहते हैं। सवेरा होते ही उठकर सभाभवन पहुँचे। किसी की बात एकान्त मे सुनने का अवसर जिस मे न मिले।

सिंहासन पर आसीन हुए। सभासद् हाथ जोडे खडे हैं। अत्यन्त अभिमान के वेग मे त्रास भूल गये। कल ग्रस्त हो गये थे। यथा भवन गयेउ बिलखाइ। आज सब भूल गया। कवि रावण का स्मृतिभ्रश दिखला रहे हैं।

७१ निशाचर कीस लडाई प्रसग

इहाँ राम अगदहिं बोलावा। आइ चरन पकज सिरु नावा ॥
अति आदर समीप बैठारी। बोले बिहँसि कृपाल खरारी ॥२॥

अर्थ यहाँ रामजी ने अङ्गद को बुलाया। उन्होने आकर चरणकमल मे सिर नवाया। कृपालु खरारि रामजी अङ्गद को बडे आदर से पास बिठाकर हँसकर बोले।

व्याख्या वहाँ लका का हाल कहकर यहाँ रामजी के यहाँ का हाल कहते हैं कि प्रात काल होने पर अङ्गदजी बुलवाये गये। इसके पहिले दिन जब अङ्गद लौटे थे तब सन्ध्या हो गयी। इसलिए बातचीत नही हुई। दिवा निरीक्ष्य वक्तव्य रात्रौ नैव च नैव च। जब लका से लौटे थे तो सजल नयन अति पुलक तन गहे रामपद कज। रात बीत जाने पर वह बात नही रह गयी। इसलिए . सजल नयन अति पुलक तन नही लिखते।

सत्कार जब आदर देते हैं तो अपने निकट बिठाते हैं। हनुमान्‌जी जब लका से लौटे थे उस समय की बात कवि कहते हैं कि कर गहि परम निकट बैठावा। आज अङ्गदजी को अति आदर से समीप बैठाते हैं। पहिले दिन के कौतुक का स्मरण करके हँसकर बोलते हैं। कृपाल शब्द का प्रयोग कौतुक के प्रसग मे आया है। यथा कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी। यहाँ भी कौतुक कर रहे हैं। अत कृपाल खरारी विशेषण दिया।

बालितनय कौतुक अति मोही। तात सत्य कहु पूछउ तोही ॥
रावनु जातुधान कुल टीका। भुजबल अतुल जासु जग लीका ॥३॥

अर्थ : हे बालिपुत्र ! मुझे बड़ा कौतूहल है। हे तात ! मैं तुमसे पूछता हूँ। सच बतलाना। रावण राक्षस कुल का टीका है। उसके बेतौल बल की समार मे धाक है।

व्याख्या : लंका भेजने के समय सरकार ने कहा था : बालितनय बुधि बल गुन धामा। इस समय भी बालितनय सम्बोधन से बुधि बल गुणधाम होना अभिप्रेत है। मुझे कौतुक ही नही बड़ा भारी कौतुक है। क्योकि जो कार्य हुआ है वह महा असम्भव है। जो कौतुक करता है वह पूछने पर कौतुक का पोषक उत्तर भी देता है। इसलिए कहता हूँ कि सच बताना। सरकार को इतना कौतुक है कि सम्वाद का समाचार न पूछकर पहिले मुकुट का ही प्रश्न करते हैं।

जितने राक्षस हैं उनका सरदार रावण है। सभी राक्षस उसके अधीन है। उसकी आज्ञा पर प्राण निछावर करनेवाले हैं और वह स्वयं अतुल बल प्रसिद्ध है। सबको रुलाता है इसलिए रावण कहलाता है। अतः सब प्रकार से दुराधर्ष है।

तासु मुकुट तुम चारि चलाए। कहहु तात कवनी बिधि पाए ॥
सुनु सर्बज्ञ प्रनत सुखकारी। मुकुट[1] न होहिं भूप गुन चारी ॥४॥

अर्थ : उसके चार मुकुट तुमने फेंके। हे तात ! बताओ तुमने कैसे पाये ? हे सर्वज्ञ ! हे प्रणत को सुख देनेवाले ! वे मुकुट नही हैं राजा के चारो गुण हैं।

व्याख्या : ऐसे दुराधर्ष रावण का मुकुट तुमने कैसे पाया ? मुकुट तो राजा के सिर पर रहता है। सिर रहते उसकी ओर कोई आँख उठाकर देख नही सकता। तुम दूत होकर गये थे। सो दूत को राजा के चार मुकुट कैसे हाथ लगे ? यह विधि समझ मे नही आती। सरकार प्रसन्न होते हैं तो ऐसे ही प्रश्न करते है। हनुमान्जी से भी ऐसा ही पूछा : कहु कपि रावन पालित लका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका।

अङ्गदजी उत्तर का उपक्रम करते हुए कहते है कि आप सर्वज्ञ है। आपसे क्या छिपा है। परन्तु प्रणत को यशोभाजन बनाना चाहते हैं। इसलिए इस भाँति पूछ रहे हैं। अत. सुनिये : वे चार मुकुट नही हैं। वे राजा के चार गुण हैं। यहाँ अपह्नुति अलङ्कार है। उपमेय का निषेध करके उपमान का आरोप करते हैं।

साम दान अरु दंड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा ॥
नीति धर्म के चरन सुहाए। अस जिअ जानि नाथ पहिं आए ॥५॥

अर्थ : साम, दान, दण्ड और भेद ये चार राजा के हृदय मे बसते हैं। ऐसा

---

१ यहाँ हेतु अपह्नुति अलङ्कार है।

वेद ने कहा है। ये नीति धर्म के सुन्दर चरण हैं। ऐसा मन मे समझकर नाथ के पास आये हैं।

व्याख्या राजनीति का जो धर्म है उसके चार चरण हैं अर्थात् इन्ही चारो को एकत्र करने से राजनीति का धर्म पूरा होता है। ऐसा वेद ने कहा है। कहने का भाव यह है कि इस बात मे सन्देह को स्थान नही है। वे चारो चरण हैं : साम दान दण्ड और भेद। इनका निवास राजाओ के हृदय मे रहता है। इन्ही के समयोचित बर्ताव से सारी राजनीति चलती है। पहिले ये रावण मे थे। यथा : बहु विधि खल सीतहि समुझावा। साम दान भय भेद देखावा। अब इन सबो ने रावण को छोडकर सरकार का आश्रय ग्रहण किया है।

दो धर्म हीन प्रभु पद विमुख, काल विवस दससीस।
तेहि परिहरि गुन आये, सुनहु कोसलाधीस ॥३८॥

अर्थ दसशीश धर्म से रहित प्रभुपद के विमुख और काल के वश हो गया है। हे कोसलेश! सुनिये। इसलिए गुण गण रावण को छोडकर आपके पास आये हैं।

व्याख्या : इन तीन लक्षणवालो को चारो गुण साम दान दण्ड और भेद परित्याग करते हैं। वे लक्षण हैं १ धर्म से रहित होना २ प्रभुपद के विमुख होना और ३ काल के वश होना। सो रावण मे ये तीनो लक्षण आगये हैं। धर्महीन भी यदि प्रभुपद विमुख न हो तो उसका सब बन जाता है। यथा : अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवहितो हि सः। जो नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोहि। तजि मद मोह कपट छल नाना। करौं सद्य तेहि साधु समाना। और यदि धर्महीन और प्रभुपद विमुख भी है तो उसे काल विवश ही समझना चाहिए। सो रावण काल विवश है। चारो गुण उसे त्याग करके प्रभु के पास चले आये। वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धा स्वयमेव सम्पदः। इतने मे ही सक्षेप मे अङ्गदजी ने सब कह दिया।

दो परम चतुरता स्रवन सुनि, बिहँसे राम उदार।
समाचार पुनि सब कहे, गढ के बालिकुमार ॥३८क॥

अर्थ : राम उदार परम चतुरता सुनते ही हँस पडे। तब बालि के बेटे ने सब समाचार गढ के कह सुनाये।

व्याख्या तुमने रावण के चारो मुकुट कहाँ से पाये। इस प्रश्न के उत्तर मे ही अङ्गदजी ने सब कुछ कह दिया। रावण के यहाँ साम और दान का अभाव है। भेद और दण्ड मे वह असमर्थ है धर्म उसमे छूकर नही है। स्त्री हरण करके भी लौटाना नही चाहता। सरकार के विमुख है। उसके सिर पर काल सवार है। वह बिना युद्ध नही मानेगा। उसके सम्वाद का इतना ही तत्त्व है। सो अङ्गदजी ने युक्ति से अपह्नुति अलङ्कार से उत्तर देने मे कह डाला। यह अङ्गदजी की परम

चतुरता है। रावण में साम का अभाव यथा : तौ बसीठ पठवत केहि काजा। रिपुसन प्रीति करत नहि लाजा। दान का अभाव यथा : मूढ़ न जानेसि मोहि सुरारी। भेद में असमर्थ यथा : सुनु सठ भेद होइ मन ताके। श्रीरघुबीर हृदय नहिं जाके। दण्ड में असमर्थ यथा : उहाँ सकोप दसानन सब सन कहत रिसाइ। धरहु कपिहि धरि मारहु सुनि अंगद मुसुकाइ। रावण कालवश यथा : पुनि कपि कही नीति बिधि नाना। मान न ताहि काल निअराना। तत्पश्चात् अङ्गदजी ने लंका का सब समाचार कह सुनाया। अर्थात् वहाँ जो बातचीत हुई थी और गढ़ की जो मरम्मत इत्यादि हुई थी सब अङ्गदजी ने वर्णन किया।

रिपु के समाचार जब पाए। राम सचिव सब निकट बुलाए ॥
लंका बाँके चारि दुआरा। केहि बिधि लागिअ करहुँ बिचारा ॥१॥

अर्थ : जब शत्रु का समाचार पा लिया तब रामजी ने मन्त्रियों को निकट बुलाया और कहा कि लंका के बाँके चार द्वार हैं। सो किस विधि से धावा किया जाय इस बात का विचार करो।

व्याख्या : रावण शत्रु से प्रीति करना लज्जा समझता है। उसने कहा भी कि : रिपुसन प्रीति करत नहि लाजा। अतः अब तो युद्ध ही शेष रहा। अतः मन्त्रणा के लिए रामजी ने मन्त्रियों को अपने पास बुलाया और कहा कि लंका पर धावा करना अब अपरिहार्य है। अतः अब यह विचार होना चाहिए कि किस विधि से लंका पर धावा किया जाय। किसी एक फाटक पर धावा हो या चारों फाटक पर एक साथ धावा बोला जाय। सेना की व्यवस्था क्या होगी ? किसके सेनापतित्व में धावा किया जायगा ? देखरेख किसके जिम्मे रहेगी ? इत्यादि सभी बातें पहले ही विचार कर लेनी चाहिए।

तब कपीस रिच्छेस बिभीषन। सुमिरि हृदय दिनकर कुल भूषन ॥
करि बिचार तिन्ह मंत्र दृढ़ावा। चारि अनी कपि कटकु बनावा ॥२॥

अर्थ : तब वानर के राजा भालू के राजा और विभीषण ने हृदय में सूर्यकुल भूषण का स्मरण करके विचारपूर्वक उन लोगों ने मन्त्र दृढ़ किया और वानरी सेना का चार अनीक सेनामुख बनाया।

व्याख्या : वानरराज और रीछराज तो वस्तुतः सेना के स्वामी हैं। और विभीषण लंका के राज्य के लिए अभिषिक्त हैं। अतः तीनों राजा ही मन्त्र के लिए एकत्रित हुए : लंका का भेद तो विभीषण से ही लगेगा। विभीषणजी लंका का सब-हाल जानते हैं। अतः उनकी सम्मति का मूल्य अधिक है। इन लोगों ने विघ्न-निवारणार्थ तथा निशाचर संहारार्थ सूर्यकुल भूषण का स्मरण किया। श्रीरामजी की साक्षात् उपस्थिति होने पर भी हृदय में उनके स्मरण की आवश्यकता प्रतीत हुई। उन्होने विचार किया कि अपने पास जब सेना यथेष्ट है तो चारों फाटक पर एक साथ धावा बोलना चाहिए। अतः चार सेनामुख बनाया। मुख्य सेना पृथक्

थी। जहाँ से चार अनी चारो फाटक पर धावा करेगी। आवश्यकता जहाँ पडती जावेगी वहाँ वीर लोग मुख्य सेना से भेजे जावेंगे।

जथाजोग सेनापति कीन्हे। जूथप सकल बोलि तब लीन्हे॥
प्रभु प्रताप कहि सब समुझाए। सुनि कपि सिंहनाद करि धाए॥३॥

अर्थ: उन अनीको के लिए जैसा चाहिए वैसे सेनापति नियत किये। तत्पश्चात् यूथपतियो को बुलाया और सबको प्रभु का प्रताप कहकर समझाया। सुनकर बन्दर लोग सिंहनाद - गर्जन करके दौड पडे।

व्याख्या : उत्तर फाटक की स्वय रावण रक्षा करते हैं। पूर्व फाटक की रक्षा सेनापति प्रहस्त करते हैं। दक्षिण फाटक की रक्षा महोदर और पश्चिम की मेघनाद करते हैं। अत उत्तर पर धावा करनेवाली अनीक की रक्षा का भार स्वयं सरकार दोनो भाइयो ने अपने ऊपर लिया। सेनापति प्रहस्त के जोड मे सेनापति नील रक्खे गये। महोदर की जोड मे अङ्गद और मेघनाद की जोड मे हनुमान्‌जी रक्खे गये।

सेनापति के चुनाव के पश्चात् यूथपति बुलाये गये जो उपर्युक्त सेनापतियो के आदेशानुसार सेना सञ्चालन करेंगे। उन्हें समझाया गया कि :

प्रभुप्रताप सम्भव करत, सकल असम्भव काम।
ललकि लीजिये लंकगढ, राखि हृदय श्रीराम॥१॥
पाहन वन वाहन कियो, जाको प्रबल प्रताप।
करिहि घरौदा लक सोइ, सुजस लीजिये आप॥२॥
पाइ जासु बल आप सब, पाट्यो सिन्धु गभीर।
कहा शक तब लक की, रक्षक श्रीरघुवीर॥३॥
दुर्गति लंका को कियो, एक वीर हनुमान।
हर्यो अकेलेइ बालिसुत, दसकन्धर को मान॥४॥
आज वीर सिगरे जुटे, लीन्हे कटक अपार।
तापर सर कोदण्ड घर, साथ युगल सरकार॥५॥
सिंहनाद सुनि आपको, होइ लक आतक।
गरजि परौ रिपु कटक पर, वीर होइ नि शक॥६॥

अब सेना का उत्साह कहते हैं कि बन्दर वीर सिंह की भाँति गरजकर दौडे।

गर्जहिं तर्जहिं भालु कपीसा। जय रघुबीर कोसलाधीसा॥
जानत परम दुर्ग अति लका। प्रभु प्रताप कपि चले असंका॥४॥
घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी। मुखहि निसान बजावहिं भेरी॥५॥

अर्थ : जय रघुवीर कोसलाधीश का जयकार लगाते हुए भालु और बन्दर गरजते हैं और डाँटते हैं। लका के किला को अत्यन्त बीहड जानते हुए प्रभु के प्रताप से बन्दर नि शङ्क होकर चले।

उमड़ घुमड़कर चारो ओर से घेर लिया और मुख से ही डंका और भेरी सा शब्द करने लगे।

व्याख्या : भालु और बन्दर रणोत्साह से गर्जन करते हैं। गर्जन के साथ तर्जन भी होता है। शत्रु के प्रति डाँटने में जो शब्द उच्चरित होते हैं उसे तर्जन कहते हैं। अब राम दल का जयकार नारा कहते हैं : जय रघुवीर कोसलाधीस। रघुवीर शब्द से सरकार के पराक्रम और कोसलाधीश पद से प्रताप की घोषणा करते हैं। यथा : सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा।

एक तो दुर्ग पर धावा करना बड़ा कठिन कार्य है। दुर्ग पर से एक धनुर्धर नीचे के सौ धनुर्धर का सामना कर सकता है। दुर्ग शब्द का अर्थ ही यह है कि जहाँ कठिनता से जाया जा सके। सो लका दुर्ग अत्यन्त विकट है। जिसके परकोटा पर चिड़िया उड़कर नही बैठ सकती। त्रिकूटाचल के ऊपर यह दुर्ग बना है। ब्रह्मदेव ने ही उसे अति दुर्गम बनाया है। तिसपर मय दानव ने उसे सँवारा है। यथा : विधि निर्मित दुर्गम अति भारी। तेहि मय दानव बहुरि सवारा। उसके निवासियो पर दृष्टि देते हुए कवियो ने कहा है कि लका सर्पों से भरी गुफा है और महा नाग रावण से रक्षित है। यथा : जस पावन रावन नाग महा।

परन्तु प्रभु के प्रताप का बड़ा प्रभाव वन्दरो पर पड़ा हुआ है। वे लका के स्वरूप को जानते हुए भी नि शङ्क होकर चल पडे। वानरी सेना ने धावा बोल दिया पर यहाँ निशान भेरी कहाँ? कौतुकी वन्दर लोग मुख से ही भेरी निशान बजाते चले। इससे कवि ने धावा करनेवालो की साधन विहीनता का दिग्दर्शन कराया।

जैसे घटा आकाश मे घिर आती है और सम्पूर्ण आकाश को घेर लेती है। उसी भाँति बन्दरो ने लका घेर ली। बाहर से लका का सम्बन्ध विच्छेद हो गया। राक्षसो की ओर से कोई विरोध नही हुआ। रावण की सभा मे यही निर्णय हुआ था कि चुपके रहो। बन्दरो को आजाने दो। यथा : ते सब हँसे मष्ट करि रहहू। कहहु कवन भय करिअ विचारा। नर कपि भालु अहार हमारा। बिल्ली चूहा से घिर जाने का विरोध क्यो करे?

दो. जयति राम जय लछिमन, जय कपीस सुग्रीव।
गरजहि सिहनाद कपि, भालु महाबल सीव ॥३९॥

अर्थ : सिहनाद करते हुए महा बलसीव भालु और वन्दर कहते है कि रामजी की जय हो लक्ष्मणजी की जय हो और बन्दरो के राजा सुग्रीव की जय हो।

व्याख्या : जो शत्रुञ्जय सिहनाद महावीरजी ने लका दहन के समय किया था : जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः। राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः। वही सिहनाद आज सारी वानरी सेना कर रही है। रामजी का नाम सर्व प्रथम लेने से ही उन्हें अतिबल कहा। उसके बाद महाबल लक्ष्मणजी का नाम

लेते है। तत्पश्चात् अपने राजा सुग्रीव का नाम लेते हैं जो श्रीराम द्वारा पालित हैं। अत: उनका नाम पीछे लिया। पहिले कह आये है : गर्जंहि तर्जंहि भालु कपीसा। पहिले भालु का नाम लिया तब बन्दर का नाम लिया। अब कहते हैं : गर्जंहि केहरि नाद कपि भालु। पहिले बन्दर का तत्पश्चात् भालु का नाम लेते हैं। भाव यह कि एक बार भालु की प्रधानता कहते हैं। दूसरी बार बन्दर की प्रधानता कहते है अर्थात् दोनो प्रधान हैं।

लंका भयउ कोलाहलु भारी। सुना दसानन अति अहंकारी ॥
देखहु बनरन्ह केरि ढिठाई। बिहंसि निसाचर सेन बोलाई ॥१॥

अर्थ : लका मे भारी कोलाहल हुआ। अत्यन्त अहकारी रावण ने सुना। बोले कि वन्दरो की ढिठाई देखो और हँसकर सेना बुलायी।

व्याख्या : अङ्गदजी के जाने से ही कोलाहल मच गया था। यथा : भयउ कोलाहल नगर मझारी। आवा कपि लका जेहि जारी। आज तो लङ्का बन्दरो से घिर गयी अत भारी कोलहल मचा। रावण अति अहकारी है। यथा : बैठ जाइ सिहासन फूली। अति अभिमान त्रास सब भूली। मारे अभिमान के त्रास भूल जाते हैं। इतना बडा भय उपस्थित है पर आप त्रास को भूले हुए है। जब समाचार मिला कि लका बन्दरो से घिर गयी तब कहते है कि देखो बन्दरो की ढिठाई। मानो ये पहिली बार ढिठाई देख रहे हैं। लका का जलाना। वन का विध्वंस। राक्षसी सेना का विनाश। पुत्रो का मरण। मुकुट का गिरना। अङ्गद का पैर रोपना आदि सब भूल बैठे हैं। समाचार सुनकर बन्दरो की ढिठाई पर ठहाका लगाकर हँसते हैं। पहिले ही सभा मे मन्त्रणा होकर निश्चय हो चुका है कि नर वानर किसी गिनती मे नही हैं। अतः उनके लिए कुछ नही करना चाहिए। उन्हे चले आने देना चाहिए। यथा : ते सब हँसे मष्ट करि रहहू। जितेउ सुरासुर तव स्रम नाही। नर बानर केहि लेखे माही। कहहु वचन भय करिअ बिचारा। नर कपि भालु अहार हमारा। सो वे सब आगये। अब भागकर भी नही बच सकते। अत. उन्हे खा जाने के लिए राक्षसी सेना बुलायी गयी।

आये कीस काल के प्रेरे। छुधावंत सब निसिचर मेरे ॥
अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा। गृह बैठें अहार बिधि दीन्हा ॥२॥

अर्थ : बन्दर काल की प्रेरणा से आगये हैं और मेरे राक्षस भूखे हैं। ऐसा कहकर उस शठ ने अट्टहास किया कि घर बैठे ब्रह्मा ने आहार भेज दिया।

व्याख्या : रावण कहते हैं कि काल की प्रेरणा इसे कहते हैं कि मेरी पुरी मे इतने बन्दर मरने के लिए चले आये। मेरे राक्षस सब बडे भुक्खड़ हैं इनका पेट ही नही भरता। यथा : कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छही। ये गधे तक को नही छोडते। सो इनके पेट भरने का बडा भारी सयोग आप से आप जुट गया। यह कहकर आप खूब हँसे। बडी खुशी है कि ब्रह्मदेव हमारा बडा ख्याल

रखते हैं। घर बैठे भोजन पहुँचा दिया। रसद के लिए समुद्र पार से व्यवस्था करनी पड़ती थी। यह संयोग ब्रह्मदेव ने बिठाया। नही तो नर वानर तो राक्षस का नाम सुनकर भागते हैं। वे मेरी पुरी मे कैसे आते।

सुभट सकल चारिहु दिसि जाहू। धरि धरि भालु कीस सब खाहू॥
उमा रावनहि अस अभिमाना। जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना॥३॥

अर्थ : योद्धाओ! चारो दिशाओं मे चले जाओ और पकड़ पकड़कर भालु वन्दरो को खा जाओ। शिवजी कहते हैं कि उमा! रावण को ऐसा अभिमान है जैसे टिटिहरी पक्षी उतान शयन करती है।

व्याख्या : सेना के आ जाने पर रावण उन योद्धाओ को रणोपयोगी कोई परामर्श नही देते। प्रत्युत उन्हे असावधानता का उपदेश देते हैं कि यह कोई युद्धयात्रा नही है। यहाँ तो मानो भोज में जाना है। सो चारो दिशाओ मे तुम लोग फैल जाओ। वन्दर तो तुम्हारे आहार ही ठहरे उन्हे पकड़ पकड़कर खा जाओ। भागकर बच न जायँ।

शङ्कर भगवान् कहते हैं कि उमा! रावण को कैसा अभिमान है। उसके ऊपर आकाश फटा चाहता है। स्वय सरकार भाई के साथ उत्तर फाटक पर आ गये हैं और वह इस भयानक आपत्ति का रोकना सैन्यबल से सुकर मान रहा है। पक्षी मात्र छोटे बड़े सब पेट के बल सोते है कि आवश्यकता पड़ने पर अपने पक्षो से काम ले सके। पर टिटिहरी पक्षी छोटे होने पर भी पीठ के बल सोता है कि यदि आकाश भी ऊपर आजाय तो पञ्जो पर रोक रक्खेंगे। सस्कृत में कहावत है कि उत्क्षिप्य टिट्टिभः पादावास्ते भङ्गभयाद्दिवः।

चले निसाचर आयसु माँगी। गहि कर भिंडिपाल बर साँगी॥
तोमर मुद्गर परस प्रचंडा। सूल कृपान परिघि गिरिखंडा॥४॥

अर्थ : राक्षस लोग आज्ञा माँगकर हाथो मे भिण्डिपाल : ढेलवाँस साँगी तोमर मुद्गर प्रचण्ड परिघ शूल कृपाण परशु और गिरिखण्ड ले लेकर चले।

व्याख्या : रावण के कह चुकने पर राक्षस आज्ञा माँगकर चले। जाने की आज्ञा हो जाने पर भी आज्ञा माँगने का भाव यह कि सग्राम के विषय मे कुछ और आज्ञा तो नही है। यद्यपि रावण की आज्ञा तो गढ के बाहर निकलकर वन्दरो को पकड़ पकड़कर खा जाने के लिए थी। परन्तु राक्षसो ने दूर से प्रहार करने के लिए ढेलवाँस लिये और सन्निकट से प्रहार के लिए साँगी ली। कुछ एक ने तोमर लोहे की गदा मुँगड़ा और भारी वेवँड़ा लिया और कुछ लोगो ने शूल दुधारी तलवार परशु लिया तथा मतवाला लिया। जिस प्रस्तरखड को आक्रमणकारी सेना के वध के लिए ऊपर से ढकेलते हैं उसे मतवाला कहते हैं।

जिमि अरुनोपल निकर निहारी । धावहि सठ खग मांस अहारी ॥
चोंच भंग दुख तिनहि न सूझा । तिमि धाये मनुजाद अबूझा ॥५॥

अर्थ जिस भांति लाल पत्थर का समूह देखकर शठ मांसाहारी पक्षी उस पर टूट पडते हैं उन्हे चोंच भंग का दुःख सूझता ही नही । उसी भांति वे नरभक्षक मूर्ख दौड पडे ।

व्याख्या रावण भलीभांति इन राक्षसो के स्वभाव को जानते हैं कि इन्हे जहाँ मांसभक्षण का लोभ दिखाया गया तहाँ इन्हे आगा पीछा का विचार नही रहता । वही बात हुई । रावण की आज्ञा पाते ही सब खाने के लिए दौड पडे । जैसे लाल पत्थर के समूह को देखकर बाज आदि शिकारी चिडियो को मांस का भ्रम हो जाता है और वे उसपर टूटते है पर वे तो पत्थर ठहरे । उनका चोंच तोड डालते हैं । उन मूर्ख पक्षिया को इतना ज्ञान कहाँ ? इसी भांति इन अज्ञानी राक्षसो ने रामदल के योद्धाओ को बन्दर समझ लिया । यह न जाना राम कृपा अतुलित बल तिनही । तृन समान त्रैलोकहि गिनही । इनका हम कुछ नही बिगाड सकते । हमारी ही हानि होगी ।

दो नानायुध सर चाप धर, जातुधान बलबीर ।
कोट कगूरन्ह चढि गये, कोटि कोटि रनधीर ॥४०॥

अर्थ अनेक प्रकार के हथियार और धनुष बाण लेकर करोडो वीर बलवान् राक्षस किले के कगूरो पर चढ गये ।

व्याख्या ऊपर राक्षसो की उपमा मांसाहारी खगा से दिया । क्योकि वे दुर्ग के कगूरो पर हैं और बन्दरो की उपमा अरुणोपल निकर से दिया । क्योकि ये नीचे हैं । उपर्युक्त आयुधो के अतिरिक्त भी अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र लेकर बलबीर राक्षस किले के कगूरो पर चढ गये । किले का फाटक बन्द है । बन्दर लोग उसे तोडने और प्राकार के उल्लङ्घन कर जाने की झांक म हैं । अत किले के कगूरो पर से प्रहार करने के लिए धनुष बाण धारण किया । प्राकार पर चढने के समय चोट करने के लिए अन्य प्रकार के अस्त्र शस्त्र लिये । राक्षस बलवीर रणधीर हैं । अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित हैं । दुर्ग के कगूरो पर स्थित हैं और वानर अस्त्रहीन शस्त्रहीन दुर्ग के नीचे खडे हैं । ऐसी विषम स्थिति इन लोगो की है ।

कोटि कगूरन्हि सोहहि कैसे । मेरु के सृंगनि जनु घन बैसे ॥
बाजहि ढोल निसान जुझाऊ । सुनि धुनि होइ भटन्हि मन चाऊ ॥१॥

अर्थ किले के कगूरो पर वे ऐसे शोभायमान हुए जैसे मेरु के शृंगो पर बादल बैठे हो । जुझाऊ ढोल और डके बज रहे थे । जिनकी ध्वनि को सुनकर वीरो के मन म उत्साह हो रहा था ।

व्याख्या राक्षस लोग चले थे तो बडे चाव से पर बानरी सेना देखकर

उतरकर लड़ने का साहस न हुआ। कोट के कंगूरों पर सुरक्षित स्थान जानकर बैठे। बन्दरों के आक्रमण के रोकने के प्रयत्न मे लगे। कोट सोने का है अतः उसकी उपमा मेरु पर्वत से दी गयी। उसके कंगूरे शृङ्ग की भाँति शोभित थे। उनपर काले काले राक्षसों का समूह जो इकट्ठा हुआ उनकी शोभा बादल सी हुई। स्वभाव से ही बादल पर्वत शृङ्ग पर जमा होते हैं। वानरी सेना मे तो मुख से ही निशान और भेरी बज रही थी। पर राक्षस लोग तो साधन सम्पन्न हैं। उनकी सेना में जुझाऊ बाजे बजे। जुझाऊ बाजे की कार्यकारिता कहते हैं कि उनकी ध्वनि के सुनने से वीरों मे रणोत्साह उत्पन्न होता है।

बाजहिं भेरि नफीरि अपारा। सुनि कादर उर जाँहि दरारा॥
देखि न जाइ कपिन्ह कै ठट्टा। अति बिसाल तनु भालु सुभट्टा॥२॥

अर्थ : कितनी नफीरी और भेरी बजने लगी इसका ठिकाना नहीं। उनके शब्द से कादरो का कलेजा फटा जाता था। बन्दरों का समूह देखा नही जाता था। सुभट भालु बड़े विशाल शरीर वाले थे।

व्याख्या : नफीरी मुख से बजायी जाती है। उन नफीरियों में वीरो को सुखद मारू राग बज रहा है। यथा : मारू राग सुभट सुखदायी : लोकोक्ति है कि : कौरव पाण्डव जे दल साजे। ते रावण घर बाजे बाजे। अतः अपार कहा। जो ध्वनि वीरो का उत्साहवर्धक वही कादरो के कलेजे को दहलानेवाली है। भेरी तुरही के समान मुख से बजनेवाला बाजा है। राजपुताना मे आज भी बजाया जाता है। नफीरी के साथ भेरी भी बजने लगी। राक्षस लोगो ने रावण के कथनानुसार बन्दरों को भक्ष्य पदार्थ समझ लिया था और बाझ की भाँति झपटे पर बन्दरो को देखकर ऐसे ठण्ढे पड़े कि उनकी ओर देखते नही बनता। शुक ने ठीक कहा था : अमित नाम भट कठिन कराला। अमित नाग बल बिपुल बिसाला। और भालु तो आकार मे बन्दरों से विशाल होते हैं। उनके बालो से उनमे और भी विशालता तथा भयङ्करता आजाती है।

धावहिं गनहिं न अवघट घाटा। पर्वत फोरि करहिं गहि बाटा॥
कटकटाहिं कोटिन्ह भट गर्जहिं। दसन ओठ काटहिं अति तर्जहिं॥३॥

अर्थ : वे दौडते थे। खन्दक और उतार की परवाह नही करते थे। पहाड को फोडकर राह बना लेते थे। करोड़ो वीर कटकटाते और गर्जते थे। दाँतों से होठ चबाते हुए डाँटते थे।

व्याख्या : बन्दर भालुओं का यह हाल है कि खन्दक या उतार से उनका वेग रुकता नही है। पहिले से ही ठट्ट लगा है। फिर भी सेना चलती ही चली आ रही है। उत्साह इतना बढ गया है कि खन्दक खाईं डाँकते पर्वत को फोडकर रास्ता बनाते हुए आगे बढे चले आते हैं जिसमे पीछे की सेना को आने मे बाधा न हो। करोड़ो बन्दर बलाभिमान से गर्जते हैं। साथ ही साथ क्रोध भी बढा हुआ

है इसलिए कटकटाकर गर्जते है। बन्दर क्रोध करते हैं तब कटकटाते हैं। क्रोध से भरे हुए दांतो से होठो को चबा रहे हैं और शत्रुओ को देखकर उन्हे नीचे से ही डांटते हैं। लका के ऊपर और नीचे का दृश्य कहकर युद्धारम्भ का निश्चित चिह्न लडाई के बाजो का बजना भी कहा।

उत रावन इत राम दोहाई। जयति जयति जय परी लराई[1] ॥
निसिचर सिखर समूह ढहावहि। कूदि धरहि कपि फेरि चलावहि ॥४॥

अर्थ उधर से रावण और इधर से राम की दोहाई देते हुए जय जयकार करके लडाई प्रारम्भ हो गयी। राक्षसो ने मतवाले छोडे। बन्दरो ने कूदकर उन्हे पकड लिया और फिर उन्हे उन्ही पर फेंका।

व्याख्या : लडाई के बाजे बजे। वीरो ने गर्जना की। लका के ऊपर से रावण का जय जयकार हुआ। इधर वानरी सेना से रामजी का जयकार हुआ और लडाई हो पडी। पत्थर के बडे बडे कोल्हू बने होते हैं। वे ही मतवाला कहलाते हैं। शत्रु की सेना कुचलने के लिए वे चढती हुई सेना पर छोडे जाते हैं। यहाँ : सिखर समूह से वे ही मतवाले अभिप्रेत हैं। बन्दरो ने जब धावा बोल दिया और लका पर चढ जाने का प्रयत्न करने लगे तब राक्षसो ने मतवाले छोडे। बन्दरो का पराक्रम और लाघव ऐसा बढ़ा चढा है कि उन्हे कूदकर बीच ही से पकड लेते हैं और लका के ऊपर फेकते हैं।

छं [2]धरि कुधर खड प्रचड मरकट भालु गढ पर डारही।
झपटहि चरन गहि पटकि महि भजि चलत बहुरि प्रचारही ॥
अति तरल तरुन प्रताप तर्पहि तमकि गढ चढि चढि गये।
कपि भालु चढि मदिरन्ह जहँ तहँ राम जसु गावत भये ॥

अर्थ . उन पर्वत के प्रचण्ड खण्डो को लेकर बन्दर भालु गढ के ऊपर फेंकने लगे। झपटकर पैर पकडते हैं और पृथ्वी पर गिरा देते हैं। भाग चलने पर ललकारते हैं। अति तीखे और प्रचण्ड प्रतापवाले डांटते थे। वे क्रोध से उबल करके किले पर चढ गये। बन्दर भालु मकानो पर चढकर जहाँ तहाँ रामयश का गान करने लगे।

व्याख्या पहिली लडाई तो यही हुई कि ऊपर से मतवाले छूटे और नीचे से बन्दरो ने उन्हे उलटकर राक्षसो पर फेंका। अब बन्दर उछलकर राक्षसो का पैर पकडकर पृथ्वी पर पटक देते हैं। भाव यह कि पहाड पर चढ गये। अब प्राकार के नीचे से झपटकर ऊपर खडे हुए। राक्षसो को नीचे फेंक देते है। वे भो

---

१. *यह चारो फाटक की लडाई पुनर्वसु नक्षत्र की वर्षा है।*
२ यह हरिगीतिका छद है।

इतने बलवान् हैं कि इतने नीचे गिरने पर फिर उठकर भागते हैं। पर बन्दर फिर उन्हे ललकारते हैं। अब तीसरे धावा में प्रचण्ड प्रतापवाले भालु कपि क्रोध करके चढ़ गये और सन्निकट के मकानो पर चढ़कर राम सुयश सुनाने लगे।

दो. एकु एक निसिचर गहि, पुनि कपि चले पराइ।
ऊपर आपुन हेठ भट, गिरहि धरनि पर आइ ॥४१॥

अर्थ : एक एक राक्षस को पकड़कर बन्दर भाग चले और किले के नीचे पृथ्वी पर गिरते थे। परन्तु स्वयं ऊपर होते थे और राक्षसो को नीचे कर लेते थे।

व्याख्या : तीसरे धावा में गढ पर तो चढ़ गये पर थोड़े ही चढ पाये। अतः ऊपर अधिक देर तक ठहर न सके। भागते समय एक एक राक्षस को पकड़कर ऊपर से नीचे गिरते थे। पर उस गिरने मे बन्दरों का यह कौशल होता था कि आप ऊपर होते थे और राक्षस नीचे पड़ जाते थे।

राम प्रताप प्रबल कपि जूथा। मर्दहि निसिचर सुभट बरूथा ॥
चढ़े दुर्ग पुनि कहँ तहँ बानर। जय रघुबीर प्रताप दिवाकर ॥१॥

अर्थ : रामजी के प्रताप से बन्दरों का जुत्था प्रबल हैं। वे राक्षसों के झुण्डो के समूहो को मर्दन कर रहे थे। बन्दर फिर जहाँ तहाँ किले पर चढ़ गये : जयकार लगाया कि रामजी के प्रतापरूपी सूर्य की जय हो।

व्याख्या : एक लड़के को लेकर भागना कठिन होता है। बन्दर लोग एक एक राक्षस को लेकर कैसे भागे ? इसपर कहते है कि बन्दरो मे राम के प्रताप का बल है। इसलिए राक्षसो के झुण्डों के समूहो का मर्दन करते हैं। नही तो कहाँ राक्षस अग्नि और कहाँ बन्दर तिनके। तिनके और आग की कौन लड़ाई। फिर बन्दरो ने धावा किया और इस बार : जय रघुवीर प्रताप दिवाकर का जयकार लगाते हुए किले पर चारो ओर से चढ गये। प्रभु प्रताप सब कहि समुझाये। अतः उन लोगो ने प्रभु प्रताप को हृदय मे धारण कर रक्खा है और उसी की दोहाई देते हैं। उसे सूर्य कह रहे है। क्योंकि उसके उदय के अन्धकाररूपी राक्षस भाग गये।

चले निसाचर निकर पराई। प्रबल पवन जिमि घन समुदाई ॥
हाहाकार भयउ पुर भारी। रोवहिं बालक आतुर नारी ॥२॥

अर्थ : राक्षसों का समूह ऐसा भागा जैसे प्रबल वायु के चलने पर घन का समूह भाग चलता है। पुर मे भारी हाहाकर हुआ। बीमार बालक और स्त्रियाँ रो रही है।

व्याख्या : पहिले राक्षस लोग बादल की भाँति घिर आये थे। यथा : मेरु के सृंगन्हि जिमि घन वैसे। सो ऐसे भगे जैसे प्रबल वायु चलने से मेघ भागते हैं। यथा : कबहुँ प्रबल वह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।

बन्दरो द्वारा लका के घिर जाने से ही लका भयउ कोलाहल भारी । अब तो बन्दर भीतर घुस आये । राजसेना भी भाग खडी हुई । अब रक्षा का कौन उपाय है और न जाने कितने राक्षस लडाई मे काम आ गये । अत बीमार अनाथा स्त्रियाँ और अबोध बालक चारो ओर से रोने लगे । तमाम हाहाकार मच गया ।

सब मिलि देहिं रावनहि गारी । राजु करत एहि मृत्यु हकारी ॥
निज दल बिचल सुनी तेहि काना । फेरि सुभट लकेसु रिसाना ॥३॥

अथ सब मिलकर रावण को गाली देने लगे कि राज्य करते हुए यह मृत्यु को आह्वान लाया । अपने दल का भागना सुनकर रावण बिगडा तो भागते हुए योद्धा लौट पडे ।

व्याख्या रावण की धाक इतनी थी कि जो बात उसको नापसन्द हो उसकी चर्चा करने मे लोग भयभीत होते थे । परन्तु आज स्त्री बच्चे सब मिलकर रावण को गाली दे रहे हैं कि इसी के अपराध से आज हम लोगो पर इतनी बडी विपत्ति आयी है । यह राजा है रक्षक है इसे रक्षा करनी चाहिए । सो यह सुख से राज करता था । निष्कारण इसने मौत को बुला भेजा । यथा पूँछ हीन बानर जहँ जाइहि । तब सठ निज नाथहि लइ आइहि । सोई हुआ उसका नाथ आगया । अब राक्षसा का सहार हो रहा है । अथवा इसने राक्षसो को कालरात्रिरूपी सीता को लाकर मृत्यु को नेवता दिया । यथा काल राति निसिचर कुल केरी । तेहि सीता पर प्रीति घनेरी ।

पर रावण ने जब सुना कि राक्षसी सेना भाग रही है तब बिगडा । यह सुनकर राक्षस लौट पडे । क्योकि अब भागकर बचने का भी रास्ता बन्द हो गया ।

जो रनबिमुख सुना मै काना । सो मै हतब कराल कृपाना ॥
सरबसु खाइ भोग करि नाना । समरभूमि भये बल्लभ प्राना ॥४॥

अथ जो लडाई से भागा और मैंने सुना उसे मैं स्वय कराल कृपाण से मारूँगा । सवस्व खाकर और नाना प्रकार का भोग करके समरभूमि मे प्राण प्यारा लगने लगा ।

व्याख्या रावण ने ससार को दु ख दिया पर राक्षसो को सुखी कर रखा था । यथा सुखी सकल रजनीचर की हे । कहुँ महिप मानुप धेनु खर अज खल निसाचर भच्छही । राजा लोग इसीलिए सेना का भरण करते है कि युद्ध मे काम आवें । दूसरी बात यह कि रावण वीर है । उसे कादर नापसन्द है । अत कहता है जो रण स भागेगा उसे मै मारूँगा । भागना था तो रण मे गया क्यो ? बन्दरो को खाने गये सो उन्ही के भय से भागते हैं । पहिले तो मैने इस बात का लखा नही रखा था । पर अब रखूँगा । मुझ पता लग जायगा कि अमुक रण छोडकर भागा । उस मैं अपने हाथ स चन्द्रहास द्वारा वध करूँगा । जिस प्राण के बचाने क लिए भागते हैं वह न बचने पावगा ।

जो कुछ मैंने अर्जन किया सब सेना को खिला दिया और सब भोग इन्हे सुलभ कर दिया। इसलिए कि समरभूमि मे प्राण निछावर करें। सो इन्हे प्राणप्रिय मालूम होने लगा।

उग्र बचन सुनि सकल डेराने। चले क्रोध करि सुभट लजाने ॥
सनमुख मरन बीर कै सोभा। तब तिन्ह तजा प्रानकर लोभा ॥५॥

अर्थ रावण के भयदायक वचन सुनकर सब डरे। योद्धा लज्जित हुए और क्रोध करके चल पडे। सामने मरने मे ही वीर की शोभा है। तब उन लोगो ने प्राण का लोभ छोड दिया।

व्याख्या सो मैं हतब कराल कृपाना यह उग्र वचन है। सब डर उठे कि घर म भी नही बचने पावेंगे। यहाँ रावण मारेगा और सर्बस खाइ भोग करि नाना। समरभूमि भये वल्लभ प्राना। यह सुनकर लजाये। भय क्रोध मे पलट गया। सब लौट पडे कि घर मे घुसे हुए का रावण के हाथ से मरने मे शोभा नही है। समर सम्मुख शत्रु द्वारा मरने मे शोभा है। प्राण देना ही है तो शोभा के साथ देंगे। ऐसा निश्चय करके उन्होने प्राण का लोभ छोडा अर्थात् प्राण पर खेल गये।

दो बहु आयुध धर सुभट सब, भिरहिं पचारि पचारि।
ब्याकुल किये भालु कपि, परिघ त्रिसूलन्हि मारि ॥४२॥

अर्थ बहुत से हथियार लिये हुए वीरगण ललकार ललकार कर भिडने लगे। उन्होने परिघ और त्रिशूलो से मारकर भालुओ और बन्दरो को व्याकुल कर दिया।

व्याख्या वही निसिचर हैं जो हवा के प्रवल झोके के सामने मेघ की भाँति भाग चले थे। अब प्राण का लोभ छोडने से दूसरे ही हो गये। पहल बन्दर उन्हे ललकारते थे। यथा भजि चलत बहुरि प्रचारही। अब राक्षस प्रचार प्रचारकर बन्दरो से भिड रहे हैं और परिघ तथा त्रिशूलों से ऐसे लडे कि भालू बन्दर व्याकुल हो गये। बन्दर लोग किले पर चढ गये है। अत अति निकट से लडाई हो रही है। राक्षस लोग परिघ और त्रिशूल से काम ले रहे हैं। बन्दर नि शस्त्र हैं। वृक्षादि भी किले के ऊपर सुलभ नही है।

भय आतुर कपि भागन लागे। जद्यपि उमा जीतिहहिं आगे ॥
कोउ कह कहँ अगद हनुमंता। कहँ नल नील द्विविद बलवंता ॥१॥

अर्थ हे उमा! भय से आतुर होकर बन्दर भागने लगे। यद्यपि आगे चलकर इनकी जीत होगी। कोई कहने लगा कि अङ्गद हनुमान् कहाँ हैं? बलवान् नल नील और द्विविद कहाँ हैं?

व्याख्या परिघ त्रिशूल के चोट से बन्दर गिरने लगे। उनके पास प्रतिकार के योग्य कोई शस्त्र नही था। असहाय होकर साथियो को गिरते देखकर शेप

सेना व्याकुल हो गयी। वानरी सेना जो बढ़ी चढ़ी आती थी सो रुक गयी। इतना ही नहीं भगेड़ भी मच गयी। जिस स्थल मे उमा को शंका होने का योग रहता है वहाँ शिवजी सँभालते हैं। उमा को सम्बोधन करके कहते हैं कि यह शंका न करो कि रामजी की कृपा रहते हुए बन्दर हारे क्यो ? हार जीत का निर्णय अन्त मे होता है सो अन्त मे जीत बन्दरों की ही होगी।

जो भाग रहे हैं वे भी बलवान् के बुलाने के लिए दौड़े चले जा रहे हैं। जिनसे आशा है उन्हीं को पूछ रहे हैं। कोई हनुमान् अङ्गद को पूछता है। कोई नल नील द्विविद को पूछता है अर्थात् प्रख्यात पौरुष वीरो के लिए पुकार मची। इस समय ऐसे वीरो का काम है जो परिघ और त्रिशूल के प्रहार को न गिनै।

निज दल बिकल सुना हनुमाना। पच्छिम द्वार रहा बलवाना॥
मेघनादु तहँ करै लराई। टूट न द्वार परम कठिनाई॥२॥

अर्थ : हनुमान् ने सुना कि हमारी सेना भाग रही है। ये बलवान् पश्चिम फाटक पर रहे। वहाँ मेघनाद युद्ध कर रहा था। फाटक टूटता नहीं था। बड़ी कठिनता थी।

व्याख्या : उधर निज दल बिचल सुनी तेहि काना। फेरि सुभट लंकेस रिसाना। यह आसुरी सम्पत्ति है कि भीत भगोड़ो को तीव्रतर भय दिखलाकर लड़ने के लिए विवश करना। यथा : भये क्रुद्ध तीनउ भाइ। जो भाजि रन ते जाइ। तेहि हतब हम निज पानि। फिरे मरन मन महु ठानि। इत्यादि। दैवी सम्पत्ति ऐसी नहीं होती। हनुमान्‌जी ने भी निज दल बिकल सुना। पर बन्दरो को डराकर फेरना नहीं चाहा। स्वय पुरुषार्थ के लिए उद्यत हुए। जब समय आया रामजी ने भी ऐसा ही किया। यथा : राम सैन निज पाछे घाली। चले सकोप महा बलसाली।

जिस समय यह समाचार लगा हनुमान्‌जी पश्चिम फाटक पर थे। वहाँ का सेनापतित्व उन्हीं के जिम्मे था। वहाँ की दशा और भी भयानक थी। तीनो ओर के फाटक टूट गये थे। पर जहाँ हनुमान्‌जी थे वह फाटक ही अभीतक टूटा न था। क्योंकि मेघनाद वहाँ युद्ध कर रहा था। सामर्थ्य किसकी कि फाटक तक पहुँच जाय।

पवनतनय मन भा अति क्रोधा। गर्जेउ प्रबल काल सम जोधा॥
कूदि लंकगढ़ ऊपर आवा। गहि गिरि मेघनाद कहुँ धावा॥३॥

अर्थ : हनुमान्‌जी के मन मे बड़ा क्रोध हुआ। योद्धा हनुमान् प्रबल काल के समान गर्जे। कूदकर गढ के ऊपर चढ गये और पहाड़ लेकर मेघनाद पर दौडे।

व्याख्या : हनुमान्‌जी को फाटक न टूटने पर क्रोध हो ही रहा था कि वानरी सेना के भागने का समाचार लगा। अतः अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। तब तो प्रबल काल

के समान गर्जे। जिस काल की प्रतिक्रिया न हो वही प्रबल काल है। काल का गर्जन प्राण हरण के लिए ही होता है। मेघनाद पर चोट करना है जो मेघ की भाँति गर्जन करता है। उसका गर्जन प्रबल काल के गर्जन के सामने फीका पड गया। केवल गर्जे ही नहीं पराक्रम भी वैसा ही किया। पर्वत लिये हुए लङ्का ऐसे दुर्ग पर जिस पर चिडिया उडकर नही बैठ सकती थी कूदकर चढ गये। और वही पर्वत लिए मेघनाद पर दौडे कि जिसके कारण से फाटक नही टूटता है उसी को मारना है।

भजेउ रथ सारथी निपाता। ताहि हृदय महुँ मारेसि लाता॥
दुसरे सूत बिकल तेहि जाना। स्यदन घालि तुरत गृह आना॥४॥

अर्थ रथ को तोडा सारथी को मारा और मेघनाद के हृदय म लात मारी। दूसरा सारथी उसे विकल जानकर रथ म डालकर घर ल आया।

व्याख्या ऐसा पहाड फेंका कि रथ चूर हो गया और सारथी पिस गया। परन्तु मेघनाथ अति लाघव से रथ पर से कूद गया। हनुमान्जी का लाघव और भी बढा चढा है। उसके कूदने के समय म ही उसके हृदय म लात मारी। हनुमान्जी की मुष्टिका से वह मूर्च्छित हो चुका था। यथा मुठिका मारि चढा तरु जाई। ताहि एक छन मुरछा आई। इस समय तो लात लगी है। अत केवल मूर्च्छा ही नही हुई। उसके साथ विकलता के चिह्न भी दृष्टिगोचर हुए। राजकुमार है उसके साथ अनेकों रथ हैं। पहिला सारथी तो पहिले ही मर गया था। दूसरे ने मेघनाद को विकल देखकर उसे रथ पर डालकर घर पहुँचा दिया। जिससे ऐसी अवस्था म बन्दरो की चपलता से रक्षा हो।

दो अगद सुनेउ पवनसुत, गढ पर गये अकेल।
रन बाँकुरा बालिसुत, तरकि चढेउ कपि खेल॥४३॥

अर्थ अङ्गदजी ने सुना कि हनुमान्जी किले पर अकेले ही गये तो युद्ध म तीखा वालि का बेटा उछलकर बन्दर के खेल की तरह किले पर चढ गया।

व्याख्या वानरी सेना म अङ्गद हनुमान् की पुकार मची थी। हनुमान्जी को पहिले समाचार मिला कि वानरी सेना विचलित हो गयी। सो वे तो पहाड लेकर कूदे। अङ्गदजी को पता लगा कि हनुमान्जी गढ पर अकेले गये। अकेले जाना अच्छा न समझकर अङ्गदजी अनायासेन कूदकर चढ गये। अङ्गद का हनुमान्जी पर बडा प्रेम है। रावण ने बन्दर कहा। इसपर अङ्गदजी बिगडकर कहते हैं बस रे सठ हनुमान् कपि गयउ जो तव सुत मारि। अत हनुमान्जी की सहायता के लिए गये। अङ्गदजी का पराक्रम कहते हैं कि लङ्का के प्राकार पर इस भाँति कूदकर चढ गये जैसे बन्दर खेल म उछल कूद करते हो।

जुद्ध बिरुद्ध क्रुद्ध दोउ बन्दर। राम प्रताप सुमिरि उर अतर॥
रावन भवन चढे द्वौ धाई। करहि कोसलाधीस दोहाई॥१॥

अर्थ युद्ध मे विरुद्ध दोनो वन्दर क्रुद्ध होकर राम के प्रताप को हृदय मे स्मरण करके रावण महल पर दौडकर चढ गये और कोसलाधीश की दोहाई बोलने लगे।

व्याख्या अङ्गदजी गढ पर चढ जाने के बाद हनुमान्‌जी से मिल गये। अपनी सेना के पराभव से क्रुद्ध हैं। युद्ध मे विरुद्ध होकर पराक्रम दिखाना चाहिए। अत हृदय म रामजो के प्रताप को स्मरण किया। असाध्य साधन उसी से होता है। यथा राम समुझि प्रताप कपि कोपा। सभा माँझ करि पन पद रोपा। विचार किया कि सभी ओर सेना मे गडवडो मची हुई है। कहाँ सँभालें। अत ऐसा उपाय किया कि सब शत्रुओ का ध्यान आक्रमण करने से हटकर घर सँभालने की ओर आकृष्ट हो जाय। अत दौडकर रावण के घर पर चढ गये। राजमहल है। सबसे ऊँचा है। उस पर चढने से लकाभर देख सकेगा कि राजमहल शत्रु के हाथ आगया। अब प्राकार पर युद्ध व्यर्थ है। सब लोग देख लें इसलिए कोसलाधीश की दोहाई की घोषणा कर रहे हैं।

कलस सहित गहि भवन ढहावा। देखि निसाचरपति भय पावा॥
नारि वृद कर पीटहिं छाती। अब दुइ कपि आये उतपाती॥२॥

अर्थ उन्होने कलश के सहित महल को पकड़कर गिरा दिया देखकर राक्षसो के स्वामी डर गये। स्त्रियाँ लगी छाती पीटने कि अब तो दोनो उत्पाती वन्दर आ गये।

व्याख्या राजमहल ही धराशायी हो गया। लकाभर देखे कि जव राजमहल ही गिरा दिया गया तब हार मे शेष क्या है? कलश सहित भवन गिरना तो ढकेल कर गिराने से ही सम्भव है। एक झोपडी ढकेल कर गिरायी नही जा सकती। यहाँ तो राजप्रासाद ढकेलकर गिराया जा रहा है। अत इस पौरुप को देखकर दूसरे की कौन कहे स्वय लकापति डर गये। सबका ध्यान इधर खिच गया उधर युद्ध मे स्वभावत ढिलाई आ गयी।

राजमहल गिरते देखकर स्त्रियाँ छाती पीटती हैं कि जब राजमहल का यह हाल है तो हमलोगो का क्या होनेवाला है? क्योकि दोनो उत्पाती वन्दर एक साथ आ गये हैं। पहिले एक के आने से नगर जला और दूसरे के आने पर भूकप आया। आज तो दानो एक साथ आये हैं। कौन सा उत्पात करेंगे। क्या ठिकाना है?

कपि लीला करि तिनहि डेरावहि। रामचद्र कर सुजसु सुनावहि॥
पुनि करगहि कचन के खभा। कहेन्हि करिअ उतपात अरभा॥३॥

अर्थ वे वन्दरो की लीला करके उनको डराने लगे और रामचन्द्र का सुयश सुनाने लगे। तत्पश्चात् सोने के खम्भो को हाथ से उठा लिया और कहा कि अब उत्पात का आरम्भ करना चाहिए।

व्याख्या स्त्री अवध्य हैं। अत उन्हे वन्दरो की लीला करके डराते है

महा महा मुखिया जे पावहिं। ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं ॥
कहइ विभीषनु तिन्ह के नामा। देहिं राम तिन्हहू निज धामा ॥१॥

अर्थ बडे से बडे मुखिया को पाते थे तो उनका पैर पकडकर सरकार के पास फेंक देते थे। विभीषण उनका नाम बतलाते थे और रामजी उनको भी अपना धाम देते थे।

व्याख्या : शत्रुसेना मे जो बडे से बडे मुखिया थे वे बडे से बडे पापी भी थे। क्योकि पाप करना भी सामर्थ्य पर निर्भर है। सामान्य राक्षस के वर्णन मे कहा गया है कि देखत भीमरूप सब पापी। निसिचर निकर देव परितापी। करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया। जेहि बिधि होइ धर्म निरमूला। सो सब करहिं वेद प्रतिकूला। अत महा महामुखिया अपने सामर्थ्यानुसार उपद्रव भी अधिक करते थे। वेद प्रतिकूलाचरण भी अधिक करते थे। ऐसो को हनुमान्‌जी और अङ्गदजी पैर पकडकर सरकार के पास फेंक देते थे कि हम लोग इन्हे गति देने मे असमर्थ हैं। इन पर सरकार ख्याल करें।

वे महा महामुखिया थे। उनका नाम सब जानते थे। विभीषणजी भी जानते थे। अत उनका नाम बोलते थे। जिसमे चित्रगुप्त की वही से नाम कट जाय और सरकार उन्हें अपना धाम देते थे जहाँ से फिर लौटना नही होता : यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परम मम।

खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। पावहिं गति जो जाँचत जोगी ॥
उमा राम मृदु चित करुनाकर। बैर भाव सुमिरत मोहि निसिचर ॥२॥

अर्थ नरभक्षी तथा ब्राह्मणो के मास को भोग माननेवाले वह गति पाते थे जिसकी याचना योगी लोग करते है। हे उमा ! रामजी कोमलचित्त और करुणा की खानि है। मुझे वैर भाव से राक्षस स्मरण करते हैं।

व्याख्या उन बडे से बडे मुखियाओ के लिए कहते है कि वे मनुष्यभक्षी थे। मास का व्यसन यहाँ तक बढता है कि मनुष्य खाने लगते हैं। मनुष्य का मास अन्य सभी मासों से अधिक स्वादु होता है। अत राक्षसो का प्रधान भोजन मनुष्य है। उसमे भी यदि ब्राह्मण मिल जायँ तब तो मानो वडा ही दुर्लभ पदार्थ मिल गया। अत कहते हैं खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। ऐसो को नरक मे भी स्थान नही। सो उन्हे ऐसी गति मिल रही है जो योगियो को भी नही मिलती। योगी उस गति के लिए याचना करते हैं।

यहाँ सन्देह का स्थल है कि यदि ऐसे पापियो को ऐसी दुर्लभ गति मिली जो योगियो को नही मिलती तो न्याय के लिए स्थान कहाँ है ? इसलिए सन्देह निवारण के लिए शिवजी उमा से कहते हैं कि करुणा न्याय से भी बडी है। सरकार का स्वभाव कोमल है और करुणा की खानि है। यहाँ पर भगवत् स्मरण का माहात्म्य कहते हैं। भगवान् अपनेवाले पर दया करते हैं। चाहे वह वैरभाव से ही क्यो न

स्मरण करे। ये राक्षस वैरभाव से स्मरण करते है। सरकार से कोई सम्बन्ध स्थिर कर लेना चाहिए और न हो तो वैरभाव ही सही। उपेक्षा न होनी चाहिए।

देहि परमगति सो जिअ जानी। अस कृपालु को कहहु भवानी ॥
अस प्रभु सुनि न भजहि भ्रम त्यागी। नर मति मंद ते परम अभागी ॥३॥

अर्थ : ऐसा जी मे जानकर उन्हे परम गति देते थे। हे भवानी ! बताओ तो ऐसा कृपालु कौन है। ऐसा सुनकर ऐसे स्वामी को जो भ्रम छोड़कर नही भजते वे मनुष्य मतिमन्द और बड़े अभागे हैं।

व्याख्या : भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दसि दिसिहूँ। ये अनख से भजते थे। नारदजी का मत है कि : कामक्रोधादय. तस्मिन्नेव करणीया:। उसी पर काम क्रोधादि करे। भजन से परम गति मिलेगी ही चाहे रीझकर करे चाहे खीझकर करे। यथा : तुलसी अपने ईस को रीझि भजे या खीझ। खेत पडेते जामिहैं उलटो सीधो बीज। चित्तरूपी लाख को द्रवीभूत करने के लिए द्वेष भी तापक वस्तु है। भगवान् से द्वेष करनेवाले का चित्त भी द्रवीभूत होकर भगवदाकार से आकारित हो जाता है। बड़ा दृढ छाप चित्त पर पड जाता है। इससे उसका कल्याण हो जाता है। उस छाप से उसे इस देह से सुख नही मिलता जैसा भक्तो को मिलता है। पर सद्गति मे उनके भेद नही पडता। शिवजी भवानी से आक्षेपार्थक प्रश्न करते हैं कि हे भवानी ! बतलाओ ऐसा कृपालु कौन है जो द्वेष पूर्वक स्मरण करनेवाले को परमगति दे ? स्मरण करने का तो ख्याल करे और द्वेषभाव पर ध्यान न दे। अर्थात् कोई नही है।

भजनीय मे दो गुण होना चाहिए। एक तो वह समर्थ हो और दूसरे कृपालु हो। सो दोनो गुणो की सरकार मे पराकाष्ठा है। समर्थ ऐसे है कि परमगति दे सकते हैं और कृपालु ऐसे हैं कि द्रोह भाव पर ध्यान नही देते। केवल स्मरण करने पर रीझ जाते हैं ऐसे प्रभु के भजन मे जिसे भ्रान्ति होती है वह मतिमन्द है। जो अवसर चूक जाय वह मतिमन्द है। यथा : अहह मन्द मति अवसर चूका। मनुष्य शरीर पाकर उसने रामजी को नही भजा इसलिए मतिमन्द है और बड़ा भारी अभागा है। क्योंकि सेवा के समय दैव ने उसे भ्रम मे डाल दिया। वह इस भ्रम मे रह गया कि कदाचित् कोई दूसरा इनसे अधिक समर्थ और दयालु प्रभु हो।

काय न कलेस लेस लेत मानि मनकी।
सुमिरे सकुचि रुचि जोगवत जनकी ॥
रीझे वस होत खीझे देत निजधाम रे।
फलत सकल फल कामतरु नाम रे ॥ विनय० पद ७१

अंगद अरु हनुमंत प्रवेसा। कीन्ह दुर्ग अस कह अवधेसा ॥
लंका द्वौ कपि सोहहिं कैसे। मथहि सिंधु दुइ मंदर जैसे ॥४॥

अर्थ : अवधेश रामजी कहने लगे कि हनुमान् अङ्गद ने दुर्ग में प्रवेश किया। सो लंका में उन दोनों वन्दरों की कैसी शोभा हुई। जैसे दो वन्दर समुद्र मथ रहे हों।

व्याख्या : लंका में प्रविष्ट तो वानरी सेना कब की ही हो गयी थी पर यथेष्ट फल न हुआ। अङ्गद और हनुमान् के प्रवेश से अद्भुत दृश्य आँख के सामने आ गया। समुद्र मन्थन के समय वन्दर के घुमने से समुद्र का जल उथल पुथल होने लगा। अतः बड़ा घोर शब्द हुआ। यहाँ लंकारूपी समुद्र में हनुमान् अङ्गद भी दो मन्दर घूम रहे हैं। सो उलथ पुलथ मचा हुआ है। राक्षसों से हाहाकार का बड़ा घोर शब्द हो रहा है। दो मन्दर कहने का भाव यह कि समुद्र मन्थन में अकेला मन्दर यथेष्ट है और यदि दो मन्दर हों तो कहना ही क्या है। इसी भाँति लंका के मन्थन में दोनों में से एक ही यथेष्ट थे। इस समय तो दोनों अङ्गद हनुमान् मन्थन कर रहे हैं। अस कह अवधेसा का भाव यह कि सरकार श्रीमुख से इन दोनों वीरों का प्रशंसा कर रहे हैं।

दो. भुजबल रिपुदल दल मलि, देखि दिवस कर अंत।
कूदे जुगल बिगत स्रम, आये जहँ भगवंत ॥४५॥

अर्थ : भुजा के बल से शत्रु की सेना का मर्दन करके सन्ध्या का समय जानकर दोनों बिना थकावट के कूदे और जहाँ भगवान् थे वहाँ आये।

व्याख्या : शत्रु की सेना शस्त्रास्त्र से सुसज्जित है। इन दोनों वीरो के पास कोई अस्त्र शस्त्र भी नही है। केवल भुजा के बल से उस सेना का ऐसा मर्दन किया कि नितान्त शिथिल हो गयी। इधर सन्ध्या भी हो गयी अतः युद्ध समाप्त करते हैं। कुछ थकावट आने से नही। कूदकर ही चढ़े थे और कूदकर ही उतरे। शत्रु के गृह में बेरास्ते जाने का विधान है। मित्र के घर में रास्ते से ही जाने का विधान है। अतः ये लोग कूदकर लंका में गये थे और कूदकर सरकार के पास आ गये।

प्रभु पद कमल सीस तिन्ह नाए। देखि सुभट रघुपति मन भाए ॥
राम कृपा करि जुगल निहारे। भये बिगत स्रम परम सुखारे ॥१॥

अर्थ : उन लोगों ने प्रभु चरण कमल में सिर नवाया। योद्धा देखकर रघुपति के मन में अच्छे लगे। रामजी ने कृपा करके दोनों को देखा तो उनकी थकावट मिट गयी और परम सुखी हो गये।

व्याख्या : विजय करके आ रहे हैं। अतः प्रभु के चरण कमलों में प्रणाम करते हैं। सरकार रघुपति हैं। रघुवंशी स्वभाव से वीर होते हैं। वीर के गुण को ठीक ठीक वीर ही समझते हैं। सरकार इनकी करणी वहीं से देख रहे थे कि लंका की समस्त सेना को केवल इन दो महात्माओं ने मन्थन कर डाला। अतः मालिक को प्रिय लगे।

रामजी ने कृपादृष्टि से उन दोनो सुभटों को देखा। उनकी कृपादृष्टि से शक्ति की वृद्धि होती है। यथा : कृपा दृष्टि कपि भालु बिलोके। भये प्रबल रन रुकहिं न रोके। तथा : राम कृपा कपिदल बल बाढ़ा। अतः बल के बढ़ने से थकावट जाती रही और बड़ा सुख प्राप्त हुआ। सुख का कारण मालिक की कृपादृष्टि है।

गये जानि अंगद हनुमाना। फिरे भालु मर्कट भट नाना ॥
जातुधान प्रदोष बल पाई। धाए करि दससीस दोहाई ॥२॥

अर्थ : अङ्गद और हनुमान् को गया हुआ जानकर नाना भट भालू और बन्दर लौट चले। राक्षस लोग सन्ध्याकाल का बल पाकर रावण की दोहाई बोलते हुए दौड़ पड़े।

व्याख्या : जब भालू बन्दर को मालूम हो गया कि अङ्गद हनुमान् चले गये तो निश्चय हो गया कि लड़ाई बन्द करने की आज्ञा हो गयी। अतः वे लोग भी लड़ना बन्द करके लौट चले। दिन का अन्त ही प्रदोष का समय है। प्रदोष के समय राक्षसो का बल बहुत बढ़ जाता है। काल का बल बड़ा भारी बल है। वह राक्षसों को मिला और अङ्गद हनुमान् उनका संहार करते थे। सो चले गये इसी समय भालू बन्दर की सेना लौटी तो राक्षस लोग रावण का जयकार करते हुए लौटती सेना के पीछे पीछा करने को दौड़े। गढ़ के नीचे तक चले आये।

निसिचर अनी देखि कपि फिरे। जहँ तहँ कटकटाइ भट भिरे ॥
द्वौ दल प्रबल प्रचारि प्रचारी। लरत सुभट नहिं मानहि हारी ॥३॥

अर्थ : राक्षसो की सेना देखकर वन्दर लौट पड़े और जहाँ तहाँ कटकटाकर वीर लोग भिड़ गये। दोनों प्रबल सेना ललकार ललकार लड़ती है और सुभट लोग हार नही मान रहे हैं।

व्याख्या : जब बन्दरों ने देखा कि राक्षसी सेना पीछा कर रही है तो लौट पड़े। उन्हे क्रोध हुआ कि हमलोग तो लड़ाई को बन्द मानकर लौट रहे हैं और ये पीछा करके उसे पराङ्मुख होने का रूप देना चाहते हैं। इसलिए कटकटाकर भिड़ गये।

वानरी सेना रामजी के बल से प्रबल है और राक्षसी सेना प्रदोष काल बल से प्रबल हो उठी है। अतः ललकार ललकारकर बड़े उत्साह से लड़ते हैं। हार नही मानते। क्योकि हार न मानने के लिए ही तो पीछा [illegible] बन्दर लौटे हैं और उनकी हार स्थापन के लिए ही राक्षसों ने [illegible] अतः हार मानने को कोई तैयार नही। सुभट हैं ललकार [illegible] रहे हैं

बीर तमीचर सब अति कारे। नाना बरन [illegible] ।
सबल जुगल दल समबल जोधा। कौतुक करत [illegible]

अर्थ : राक्षस योद्धा सभी अत्यन्त काले हैं और [illegible]

हैं। दोनो सेनाएँ बलवान् हैं। बराबर के योद्धा लोग क्रोध करके अनेक प्रकार से भिड रहे हैं।

व्याख्या : रात हो गयी। रंग से पहिचान हो रही है। काले तो भालू भी हैं। पर राक्षस अत्यन्त काले हैं और बन्दर अनेक रंग के हैं। अत्यन्त काला देखकर ही राक्षस का निश्चय और रंग बिरंगा देखकर बन्दर का निश्चय हो रहा है। अन्धकार मे इतनी ही पहिचान सम्भव है।

दोनों सेनाएँ प्रबल हैं और बराबर के जोडो मे लडाई हो रही है। योद्धा लोग अनेक प्रकार से लड रहे हैं। वृक्षो से पत्थरो से अस्त्र शस्त्र से नखो से और दाँतो से लडाई हो रही है।

प्रावृट सरद पयोद घनेरे। लरत मनहु मारुत के प्रेरे ॥
अनिप अकंपन अरु अति काया। बिचलत सेन कीन्हि इन्ह माया ॥५॥
भयेउ निमिष महुँ अति अँधियारा। वृष्टि होइ रुधिरोपल छारा ॥६॥

अर्थ : वर्षा और शरद के बहुत से बादल मानो वायु की प्रेरणा से लड रहे हैं। अकम्पन और अतिकाय नामी सेनापतियो ने सेना को भागते हुए देखकर माया किया। क्षण भर मे घोर अन्धकार हो गया और रुधिर पत्थर और राख की वृष्टि होने लगी।

व्याख्या : वर्षा के बादल काले होते हैं और शरद के बादल अनेक रङ्ग के होते है। सो उस युद्ध की शोभा वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि बन्दर लोग तो मानो शरद के बादल हैं और राक्षस मानो वर्षा के बादल हैं। दोनो मे लडाई होती है। बादल तो पङ्गु हैं। चल फिर नही सकते। फिर वे लडते कैसे हैं। इस पर कवि कहते हैं मानो वायु की प्रेरणा से लड रहे हैं।

फिर भी राक्षसो के पैर उखड गये। बन्दर भालुओं के सामने टिक न सके। तब अकम्पन और अतिकाय ने माया की। ये दोनो राक्षसी सेना के सेनापति थे। शारीरिक बल के न चलने पर राक्षस माया से काम लेते हैं। वही इन लोगो ने भी किया। बादल आते किसी ने न देखा और तमाम अँधेरा हो गया। वर्षा जल की होती है। यहाँ रुधिर पत्थर और छार की वर्षा हो रही है।

दो. देखि निबिडतम दसहु दिसि, कपिदल भयउ खभार।
एकहि एकु न देखई, जहँ तहँ करहि पुकार ॥४६॥

अर्थ : दसो दिशाओ मे घोर अन्धकार देखकर वानरी सेना मे विषाद छा गया। एक दूसरे को देख नही पा रहे हैं। जहाँ तहाँ से पुकार कर रहे है।

व्याख्या : किसी ओर भी कुछ प्रकाश हो तो उधर ही चल जायँ। पर यहा तो दसो दिशाओ मे अन्धकार छाया हुआ है। रात मे बन्दरो को दिखाता नही। उजेली रात हो तो कुछ दिखाई पडे। यहाँ तो घोर अन्धेरा मे आ फँसे। पता नही

कि मैं कहाँ हूँ और साथी कहाँ हैं। युद्ध मे साथो से बडी सहायता मिलती है और उधर राक्षसो की दृष्टि का अन्धकार मे भी सञ्चार होता है। अत वे सुभीते मे हैं। अत. वानरी सेना मे हाय हाय मची। जो जहाँ है वह वही से सहायता के लिए पुकार कर रहा है।

सकल मरमु रघुनायक जाना। लिये बोलि अंगद हनुमाना ॥
समाचार सब कहि समुझाए। सुनत कोपि कपिकुंजर धाए ॥१॥

अर्थ . रघुनाथजी ने सब रहस्य जान लिया। उन्होने अङ्गद और हनुमान्‌जी को बुला लिया। उन्हे सब समाचार कहकर समझा दिया। सुनते ही बन्दरो मे हाथी के समान अङ्गद और हनुमान् क्रोध करके दौडे।

व्याख्या : रघुनायक कहकर अमानुष शक्तिसम्पन्न अवतार कहा। यथा . हैं दससीस मनुज रघुनायक। अर्थात् सुरनायक का रघुनायक होना कहा। सर्वज्ञ है सब जान गये। केवल वृत्तान्त ही नही जाना। उसका मर्म भी जाना कि उस अन्धकार उपद्रव का कारण आसुरी माया है। यदि सहायता न पहुँची तो सारी सेना मारी जायगी। इसलिए अङ्गद हनुमान् को बुलाया और सेना का सब इतिवृत्त कहा। यथा :

जानि दिवस को अन्त जब, आयो इत तुम दोय।
लौट चली बानर चमू, बिरत युद्ध ते होय ॥ ॥
ताहि प्रचारयो दुर्ग ते, उतरि निसाचर सेन।
लरति करति माया जबहि, जीति न सक्यो बलेन ॥२॥
एहि छन कपिदल अति बिकल, दशदिशि लखि अंधियार।
जाइ सँभारो सेन निज अङ्गद पवन कुमार ॥३॥

सुनते ही क्रुद्ध होकर दोनो वीर दौड पडे। बडे बलवान् होने से अङ्गद हनुमान् को कपिकुञ्जर कहा। ये दोनो सुनते ही सहायता के लिए दौड पडे। राक्षसो की नीचता पर क्रुद्ध हैं। शीघ्र पहुँचने के लिए दौडे।

पुनि कृपाल हँसि चाप चढावा। पावक सायक सपदि चलावा ॥
भयउ प्रकास कतहुँ तम नाही। ग्यान उदय जिमि ससय जाही ॥२॥

अर्थ : फिर कृपाल ने हँसकर धनुष चढाया और तुरन्त अग्निबाण चला दिया। तमाम उँजेला हो गया। अंधकार कही नही रह गया। जैसे ज्ञान के उदय होने से सशय नही रह जाता।

व्याख्या : पहिले बन्दरो की सहायता के लिए अङ्गद हनुमान् को भेजा और माया नाश के लिए हँसकर धनुष चढाया। अग्निबाण का प्रयोग किया। उसके प्रकाश से तमाम उँजेला हो गया। उपमा देते हैं कि ज्ञान के उदय से जैसे सशय नष्ट हो जाता है। सशय महा दुखद है। यथा : ससय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद

लहर कुतर्क बहु व्राता। ज्ञान के उदय से वह नष्ट होता है और परमानन्द की प्राप्ति होती है। सो अन्धकार दूर हुआ और वन्दरो को परमानन्द हुआ। अङ्गद हनुमान् के पहुँचने के पहिले ही माया भी नष्ट हो गयी और उजेला भी हो गया।

भालु बलीमुख पाइ प्रकासा। धाए हरषि बिगत स्रम त्रासा॥
हनूमान अंगदु रन गाजे। हांक सुनत रजनीचर भाजे॥३॥

अर्थ भालू और वन्दर प्रकाश पाकर दौडे। उनकी थकावट और डर जाता रहा। हनुमान् और अङ्गद रण मे गर्जे। उनकी हाँक सुनते ही राक्षस भाग खडे हुए।

व्याख्या पहले कपिदल मे खभार पडा था। अब प्रकाश पाते ही उनका श्रम और भय जाता रहा। राक्षसी सेना को देखा कि दूर खडी है। सो उन पर दौड पडे। तब तक इधर हनुमान् और अङ्गदजी भी पहुँच गये। उनकी गर्जना को राक्षस पहचानते हैं। उन्हे बिना देखे ही उनकी गर्जना से उनके आने का अनुमान करके भागे। एक तो प्रकाश होने से ही हिम्मत छूट गयी थी कि अब तो वन्दर भालू बिना लडे न मानेंगे और वन्दर भालू दौड़ भी पडे। तब से जो हनुमान् अङ्गद का गर्जन कान तक पहुँचा तो भागते ही बन पडा।

भागत भट पटकहि धरि धरनी। करहिं भालु कपि अद्‌भुत करनी॥
गहि पद डारहिं सागर माहीं। मकर उरग झख धरि धरि खाहीं॥४॥

अर्थ · भागते हुए वीरों को पकडकर पृथ्वी पर पटकते हैं। इस भाँति भालु कपि अद्भुत करणी कर रहे हैं। उनका पैर पकडकर समुद्र मे फेंक देते हैं। मगर सर्प और मछलियाँ पकड पकडकर खा रही हैं।

व्याख्या : वन्दर भालू बहुत दुःख पा चुके थे। अतः भागते हुए को भी नही छोड़ते। पकडकर पृथिवी पर पटक देते हैं। इतना ही नही अद्भुत करणी भी करते हैं। उनका पैर पकडकर समुद्र मे फेंक देते हैं। जलजन्तु उन्हें पकड़ पकड़कर खा रहे हैं।

दो. कछु मारे कछु घायल, कछु गढ़ चले पराइ।
गर्जहिं भालु बलीमुख, रिपुदल बल बिचलाइ।४७॥

अर्थ : कुछ घायल हुए। कुछ रण मे मारे गये। कुछ गढ पर भाग चले। शत्रु के दलबल को विचल करके भालू और वानर वीर गरजने लगे।

व्याख्या : अब भागते हुओ की दुर्दशा कहते हैं। हनुमान् और अङ्गद को कुछ करना न पडा। उनका गर्जना ही यथेष्ट था। वानरी सेना ने ही आसुरी सेना की सब दुर्दशा कर दी। कुछ तो घायल होकर रणभूमि मे गिर गये कुछ मारे गये और कुछ भागकर किले पर चढ गये। अब वन्दर खडे नीचे से गर्ज रहे हैं कि आओ नीचे तो तुम लोगो की खबर लें और वे नहीं उतरते।

निसा जानि कपि चारिउ अनी । आए जहाँ कोसला धनी ॥
राम कृपा करि चितवा सबही । भए बिगत स्रम बानर तवहीं ॥१॥

अर्थ : रात जानकर चारो सेना के बन्दर कोशलेश के पास आये। रामजी ने कृपा करके ज्यों ही देखा त्यो ही बन्दरो की थकावट जाती रही।

व्याख्या : पहिले ही चारो फाटक पर धावा करने के लिए चार सेना बनायी गयी थी। यथा : चार अनी कपि कटक बनावा। सो चारो सेना के बन्दर लोग सरकार के पास आये। राक्षसो की सेना को भगाकर गर्जन करते थे। पर राक्षसी सेना रात होने पर भी युद्ध के लिए नही आयी तब वहाँ से लौट कर सरकार के पास आये।

वीर लोग दिन भर युद्ध करके लौटे हैं। उनके श्रमापनोदन का उपाय होना चाहिए। सो सरकार ने जैसे अङ्गद हनुमान् के श्रमापनोदन का उपाय किया था वही सेवा के लिए भी किया। अर्थात् कृपादृष्टि से देखा। कृपादृष्टि मे बड़ी सामर्थ्य है। देखते ही सबकी थकावट दूर हो गयी। क्योंकि सबके सब निहाल हो गये। यथा :

नाथ हाथ माया प्रपंच सब जीव दोष गुनकाम कालु।
तुलसिदास भलो पोंच रावरो नेकु निरखि कीजिये निहालु॥
विनय० पद १५४

रावण की सभा

उहाँ दसानन सचिव हँकारे। सब सन कहेसि सुभट जे मारे॥
आधा कटकु कपिन्ह संहारा। कहहु बेगि का करिअ बिचारा ॥२॥

अर्थ : वहाँ रावण ने मन्त्रियो को बुलाया और सबसे कहा कि इतने वीर मारे गये। वन्दरो ने आधी सेना मार दी। जल्दी विचार कहो कि क्या करना चाहिए।

व्याख्या : यहाँ का हाल कहकर अब कवि वहाँ अर्थात् रावण के यहाँ का हाल कहते हैं। रावण के पास जितने वीर मारे गये उनकी नामावली और हताहत सैनिको की सूची पेश हुई। जानकर रावण चिन्तित हुए। तुरन्त मन्त्री बुलाये गये। रावण ने सबको वतलाया कि अमुक वीर मारे गये और आधी सेना वन्दरों ने मार गिराया। भाव यह कि तुम लोग कहते थे कि : कहहु कवन भय करिअ विचारा। नर कपि भालु अहार हमारा। सो तुम लोग कुछ न कर सके और राक्षसो का इतना संहार पहिले ही लड़ाई मे हो गया। बन्दरो के प्रधान वीर कोई नही मारे गये। सेना भी कुशल से लौट गयी। सो तुम लोगो के उस विचार से तो बहुत हानि हुई। अब विचारकर बतलाओ कि क्या करना चाहिए।

माल्यवंत अति जरठ निसाचर। रावन मातु पिता मंत्री वर॥
बोला बचन नीति अति पावन। सुनहु तात कछु मोर सिखावन ॥३॥

अर्थ माल्यवन्त नाम का राक्षस बडा बूढा था। वह रावण के नाना का श्रेष्ठ मन्त्री था। वह अत्यन्त पवित्र नीति का वचन बोला। कहने लगा कि हे तात! कुछ मेरा भी कहना मानो।

व्याख्या रावण के पूछने पर अब किसी मन्त्री के मुख से कोई बात नहीं निकलती। कोई भी यह कहने को तैयार न हुआ कि मैं सब बन्दरो को मारूँगा। वे तो भय और आशा से प्रिय बोलनेवाले थे। घर पर तो वे भी यही विचार करते थे कि नहिं निसिचर कुल केर उबारा। परन्तु यह बात रावण को प्रिय न थी। अत कह नही सकते थे सब के सब चुप हैं। तब माल्यवान् बोले। ये बडे बुढे थे। रावण के नाना का मन्त्रित्व कर चुके थे। रावण को गोद खिलाये हुए हैं। इस समय रावण का मन्त्रित्व कर रहे हैं। इन्ही ने विभीषण का समर्थन किया था।

सबको चुप देखकर धर्मनीति का वचन बोले कि यह समय विचार करने का नहीं है। मेरे सिखावन सुनने का समय है। तुम किसी का सिखावन नही सुनते पर मेरी तो सुनो। तुम्हारे नाना मेरी सुनते थे।

जब ते तुम सीता हरि आनी। असगुन होहिं न जाहिं बखानी ॥
वेद पुरान जासु जस गायो। राम बिमुख काहु न सुख पायो ॥४॥

अर्थ जब से तुम सीताहरण कर लाये तब से ऐसे अपशकुन हो रहे हैं जो वर्णन नही किये जा सकते। जिसके यश का गान वेद पुराण करते है उस राम के विमुख होने से किसो को सुख न मिला।

व्याख्या माल्यवान् कहते हैं कि तुम लोगो को कुछ होश नही है। मैं बैठे बैठे देखा करता हूं। लका सदा निरापद रहा है। परन्तु जब से तुम सीता को हरण करके ले आये हो तब से ऐसे असगुन लका मे हो रहे हैं कि मैं उनका वर्णन नही कर सकता। पहिले अधर्म से प्रकृति म विकार आता है। पीछे अनिष्ट होता है। वही प्रकृति का विकार ही असगुन है। अत असगुन से अशुभ फल होना निश्चय है। असगुन भविष्य घटना का द्योतक है। कभी खाली नही जाता।

तुमने बडा भारी अधर्म किया है। राम का यश वेद पुराण गान करते हैं। यथा वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्य। उनकी आज्ञा ही धर्म है। उनकी आज्ञा का उल्लघन अधर्म है। सो तुम उनके विमुख हो गये हो। राम जगदात्मा हैं। उनके विमुख होना अपनी आत्मा के विमुख होना है। अत उनके विमुख जो हुआ उसे विश्राम मिल नही सकता। यथा जगदातमा प्रानपति रामा। तासु बिमुख किमि लह बिश्रामा। पहिले भी जो उनमे बिमुख हुए हैं उन्हे सुख नही मिला है।

दो हिरण्याक्ष भ्राता सहित, मधुकैटभ बलवान।
जेहि मारे सोइ अवतरेउ, कृपासिंधु भगवान ॥
कालरूप खल बन दहन, गुनागार घनबोध।
सिव बिरंचि जेहि सेवहिं, तासो कवन बिरोध ॥४८॥

अर्थ : भाई के सहित हिरण्याक्ष को तथा बलवान् मधुकैटभ को जिसने मारा था वही कृपासिधु भगवान् अवतीर्ण हुए हैं। वे कालरूप है। खलवन के लिए दावानल हैं। गुणागार और ज्ञानघन हैं। जिसको शिव ब्रह्म सेवन करते हैं उससे विरोध कैसा ?

व्याख्या : रामविमुख सुख काहु न पावा। इसी बात को स्पष्ट करते हुए माल्यवान कहते हैं कि उनके विरोधी चाहे कैसे ही पुरुषार्थी हो पर वे बच नही सकते।

हिरण्याक्ष के ऐसा पुरुषार्थी कौन होगा जो एकाकी गदा लिए हुए त्रैलोक्य मे अपना जोड खोजता फिरता था। पर उसे कोई न मिला। वह जिसके हाथ से मारा गया। फिर उसके भाई हिरण्यकश्यप सा वरदान से सुरक्षित वीर कौन होगा। जो न रात को मरे न दिन को मरे। न घर के भीतर मरे न बाहर मरे। वह भी जिनके हाथ से मारा गया तथा बलवान मधुकैटभ जिन से डर के स्वय ब्रह्मदेव जगदम्बा की स्तुति करने लगे। जिनके हाथ से मारे गये। यथा : अतिबल मधुकैटभ जिन मारे। महावीर चिति सुत संहारे। जेहि बलि बाँधि सहजभुज मारा। सोइ अवतरेउ हरन महि भारा। वे ही कृपासिन्धु भगवान् अवतीर्ण हुए है इस बात को में जानता हूँ और राक्षस नही जानते। इनसे मन्त्रणा करना व्यर्थ है। मै जानता हूँ। मेरी शिक्षा ग्रहण करो।

उन्हे मनुष्य न जानो। वे कालरूप हैं। यथा : कलोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धः लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्त.। कालरूप तिन कर मैं ताता। सुभ अरु असुभ कर्मफल दाता। खल के वन के लिए दावानल ही हैं। भस्म करके ही छोड़ते हैं। जैसा खलवन हो तदनुसार ही आकार करके उसका दाह करते हैं। जितने सद्गुण हैं उनके वे ही आश्रय है। अत उनसे विरोध करना उचित नही। वे किसी से विरोध करते नही और विज्ञानघन है। अतः शिव विरञ्चि से सेवित हैं। अन्य जीव उनके सामने क्या हैं ? ता सों तात बैर नहि कीजे। मारे मरिअ जिआये जीजै। जिसके जिलाने से सब जीते हैं 'और मारने से सब मर जाते हैं उनसे विरोध कैसा ? प्रीति विरोध समान सन, करिअ नीति अस आहि। गरुड़ से मच्छड विरोध क्या करेगा।

क से कालरूप ख से खलवनदहन ग से गुनागार घ से घनबोध। मानो माल्यवान रावण को ककहरा पढा रहे है।

परिहरि बैरु देहु बैदेही। भजहु कृपानिधि परम सनेही ॥
ताके बचन बान सम लागे। करिया मुँह करि जाहि अभागे ॥१॥

अर्थ : वैर छोड़कर वैदेही को दे दो। परम स्नेही कृपानिधि को भजो। उसके वचन बाण के समान लगे। बोला कि रे अभागा ! काला मुख करके चला जा।

व्याख्या : भाव यह कि तुम्हारा जो निश्चय है कि : तउ मैं जाइ बैर हठि करऊँ। उसे छोड़ो और वैर का मूल वैदेही हरण है सो उन्हे दे दो। तुमने कृपाल

और स्नेही ब्रह्मरुद्र का भजन किया था। अब कृपानिधि और परम स्नेही का भजन करो। भाव यह कि तुम कृपानिधि और परम स्नेही से वैर करते हो। सरकार कृपानिधि हैं। यथा : बिगरी सुधारै कृपानिधि की कृपा नई। वे बिगडी बात बना देते हैं। तुमसे जो कुछ बिगडा है सब बना देवेंगे। वे ब्रह्म है जीव पर उनका सहज स्नेह है। यथा : ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू। तुम्हारे ऐसे आचरण पर भी तुम्हारे ऊपर उनका स्नेह बना ही हुआ है। कारुनीक दिनकर कुलकेतू। दूत पठायेउ तव हित हेतू।

माल्यवान के वचन परम हितकर थे। पर रावण को बडे बुरे लगे। जैसे किसी ने बाण मारा हो। मन्दोदरी ने भी ऐसे ही वचन कहे थे। उन वचनो का भी चोट बाण सा ही लगा था। यथा : नारि वचन सुनि बिसिख समाना। सभा गयउ उठि होत बिहाना। पर उसे रावण सहन कर गये। मन्त्री के वचन न सह सके। बोले रे अभागा ! तू काला मुँह करके यहाँ से चला जा। हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्। इस क्षात्र धर्म के तू विरुद्ध बोलता है। तू अभागा है। इतने सुभट मारे गये। आधी सेना समाप्त हो गयी। अब सुलह कैसा ? अब तो सुलह करके मुँह मे कालिख पोतना है। इस प्रकार का मन्त्र देनेवाला तू है। तू अपने मुँह मे कालिख पोत ले। और यहाँ से चला जा मेरा क्रोध बढ रहा है।

बूढ भयेसि नत मरतेउँ तोही। अब जनि नयन देखावसि मोहीं ॥
तेहि अपने मन अस अनुमाना। बध्यौ चहत एहि कृपानिधाना ॥२॥

अर्थ तू बूढा हुआ नही तो मैं तुझे वध दण्ड देता। अब मुझे आँख न दिखाना। उसने अपने मन मे यह अनुमान किया कि इसे कृपानिधान मारना चाहते हैं।

व्याख्या : समर मन्त्रणा मे ऐसी कच्ची बात बोलनेवाला वध्य है। तू मुझे सिखावन देने चला है। बच्चो की भाँति मुझे ककहरा पढाता है. काल रूप खल बन दहन गुनागार घनबोध। हम लोग खल है ? वृद्धावस्था में बुद्धि मारी जाती है। यथा लिखा विरचि जरठ मति भोरे। तेरो बुद्धि बूढे होने से मारी गयी। अत. तुझे वध दण्ड तो नही देता पर तू यहाँ से निकल जा और फिर मेरे सामने कभी न आना। नयन देखावसि पाठ प्राचीन मिलता है। वहाँ यह अर्थ करना पडेगा कि रावण के . करिया मुख करि जाहि अभागे कहने पर माल्यवान के नेत्रो से क्रोध का भाव प्रकट हुआ। इसपर रावण कहता है कि तू वयोवृद्ध है। नही तो मेरे हाथ से तेरा वध हो जायगा।

तब माल्यवान ने अनुमान किया कि मैं इसके नाना का मन्त्री हूँ। मैंने इसे गोद खिलाया है। मैं इसके भल की बात कहता हूँ। यह मुझे गाली देता है। निश्चय इसकी मृत्यु निकट है। रामजी कृपानिधान हैं। इसका वध करके ससार पर और स्वय इसपर कृपा करना चाहते है।

सो उठि गयउ कहत दुर्बादा। तब सकोप बोलेउ घननादा ॥
कौतुक प्रात देखिअहु मोरा। करिहौं बहुत कहौ का थोरा ॥३॥

अर्थ—वह तो दुर्वाद कहता चला गया। तब क्रुद्ध होकर मेघनाद ने कहा कि सवेरे मेरा तमाशा देखना। मैं बहुत कुछ करूँगा थोड़ा क्या कहूँ।

व्याख्या : पहिले तो नेत्रों में ही क्रोध का भाव व्यक्त हुआ। अब वचन से भी व्यक्त हो रहा है। माल्यवान इतना बड़ा अपमान नही सह सकता। जैसे बड़े लोग छोटे से अपमानित होने पर दुर्वाद कहते हुए उठकर चले जाते हैं उसी भाँति माल्यवान भी असाध्य व्याधि देखकर मतिमंद अभागा आदि दुर्वचन बोलता चला गया। माल्यवान् ही थे जिसका रावण इतना सह गया।

रावण ने यह समझकर प्रश्न किया था कि इसपर वीर लोग खड़े होगे कि मैं युद्ध करूँगा मैं युद्ध करूँगा पर माल्यवान के चले जाने पर भी कोई न बोला। इस पर क्रुद्ध होकर जिसका भटों में प्रथम गणना है वह मेघनाद बोला।

सवेरा होने दीजिए। मैं कौतुक दिखलाऊँगा सब सेना खड़ी तमाशा देखे। देखिए मैं क्या करता हूँ। मेरे लिए यह खेलवाड़ होगा। शत्रु के लिए बहुत हो जायगा। यदि मैं इस समय कहूँ तो थोड़ा ही कह सकूँगा। अर्थात् अवर्णनीय पुरुषार्थ प्रकट करूँगा।

सुनि सुत वचन भरोसा आवा। प्रीति समेत अंक बैठावा ॥

[1]मेघनाद का गढ़ से उतरकर युद्ध करना

करत विचार भयउ भिनुसारा। लागे कपि पुनि चहूँ दुआरा ॥४॥

अर्थ—बेटे की बात सुनकर रावण को भरोसा हुआ। प्रेम के साथ गोद में बिठाया। विचार करते ही करते सवेरा हो गया। वानरो ने फिर चारो फाटक पर धावा बोल दिया।

व्याख्या : किसी ने भरोसा नही दिया। रावण निराश हो गये थे। बेटे पर बड़ा नाज है सुत प्रसिद्ध सक्रारि। अत: भरोसा हुआ। मानदान के लिए अपनी गोद में बिठा लिया अथवा प्रेम के वशीभूत होकर अंक में स्थान दिया।

तत्पश्चात् विचार होने लगा कि क्या करना चाहिए। समस्या ऐसी कठिन थी कि विचार करने मे ही रात व्यतीत हो गयी विचार समाप्त न हुआ। स्थिर यह हुआ कि उपेक्षा करना ठीक नही हुआ। किले पर से तोप चलनी चाहिए। इतना सवेरा हो गया कि बन्दर लोगो ने चारो फाटक पर धावा बोल दिया।

कोपि कपिन्ह दुर्घट गढु घेरा। नगर कोलाहलु भयउ घनेरा ॥
बिबिधायुध धरि निसिचर धाये। गढ़ ते पर्बत सिखर ढहाये ॥५॥

---

१. यह युद्ध पुष्यनक्षत्र की वर्षा है।

अर्थ : क्रोध करके बन्दरो ने दुर्घट गढ को घेर लिया। नगर में बडा भारी कोलाहल हुआ। अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लेकर राक्षस दौड़े और किले पर से पर्वत के शिखर गिराये।

व्याख्या : पहिले वन्दर लोग चारो फाटक पर आये फिर क्रोध करके पूरी लका घेर ली जिसमे सब ओर से युद्ध हो। जहाँ से अवसर मिले चढ जायँ। फिर नगर मे भारी कोलाहल हुआ। शब्द सभा तक पहुँचा। राक्षस अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित होकर दौड़ पडे कि जिसमे ऊपर बन्दर चढने न पावें। आकर देखा कि चढ रहे हैं तो किले पर से पहाड के शिखर ढकेलने लगे।

छं. [1]ढाहे महीधर सिखर कोटिन्ह बिबिध बिधि गोला चले।
घहरात जिमि पविपात गर्जत जनु प्रलय के बादले॥
मर्कट बिकट भट जुटत कटत न लटत तन जर्जर भये।
गहि सैल तेहि गढ़ पर चलावहिं जहँ सो तहँ निसिचर हये॥

अर्थ : राक्षसो ने करोडो शिखर ढकेले और अनेक प्रकार के गोले चलने लगे। जो ऐसा वज्रपात के समान घहराते थे और प्रलय के बादल के समान गर्जन करते हैं। विकट वीर वानर जुटते थे कटते थे शरीर जर्जर हो जाता था। तब भी वे शिथिल नही पडते थे। उन्ही पहाडो को लेकर वे गढपर फेकते थे। जिससे जहाँ के तहाँ राक्षस मारे गये।

व्याख्या : असख्य पर्वत शिखर प्राकार के सन्निकट पहुँची हुई सेना से सहार के लिए ढकेले गये। दूरपर स्थित सेना के विनाश के लिए अनेक प्रकार के गोला चले। अर्थात् तोप की मार आरम्भ हुई। यहाँ यह सन्देह न करना चाहिए कि उस समय तोप नही थी। बारूद का प्रयोग बहुत प्राचीन काल से चला आता है। शुक्रनीति आदि ग्रन्थ द्रष्टव्य हैं। गोला चलने के समय ऐसा घोर शब्द होता था जैसे प्रलय के बादलो द्वारा वज्रपात के समय होता है। राक्षसी सेना की उपमा बादल से प्रथम दिन के युद्ध मे दे चुके हैं। यथा : मेरु के सृंगन जिमि घन बैसे। आज भारी सेना आयी है। तोपो के चलने से धुआँ भी उठा हुआ है। इससे प्रलय के बादल से उपमा देते हैं। तोपो से अग्नि की लपक निकलती है। उसके बाद गड़-गडाहट होती है। अत· उसकी उपमा वज्रपात से दे रहे हैं। मर्कट भी विकट भट है। पर्वत और गोलो की मार से छितर-बितर हो जाते हैं पर फिर जुट जाते हैं। चोट से कट जाते हैं। शरीर चिथड़ा हो जाता है पर हार नही मानते। रामजी की कृपा से उन्हे अतुलित बल है। राक्षसो के फेंके हुए पर्वतो को बीच मे से ही पकड़कर उन्हे ऊपर इस भाँति फेंकना आरम्भ किया कि राक्षसी सेना जहाँ की तहाँ ही मारी पड़ी।

---

१. यह हरिगति छद है।

दो० मेघनाद सुनि स्रवन अस, गढ़ पुनि छेंका आइ।
उतरेउ बीर दुर्ग तें, सनमुख चलेउ बजाइ ॥४९॥

अर्थ मेघनाथ ने कान से सुन पाया कि फिर किला घेर लिया। तब वह श्रेष्ठ वीर किले से उतरकर सामने डंका देकर चला।

व्याख्या मेघनाथ के पास समाचार पहुँचा कि मोरचे पर की सेना मारी गयी। तोप से भी काम न चला। वानरी सेना ने लंका घेर रक्खा है। मेघनाथ बड़ा वीर है। योद्धाओं में उसकी प्रथम गणना है। उसे किले के भीतर से युद्ध करना पसन्द नहीं। किले के भीतर से कमजोर लड़ाई करते हैं। अतः किले से नीचे उतर आया और डंका देकर सरकार के सामने चला। उसने निश्चय किया कि जब हम उन पर धावा बोल देवेंगे तो आप से आप वानरी सेना लंका का घेरा छोड़ देगी। नहीं तो चारों ओर युद्ध हो रहा है किधर किधर हम सँभालें। भाव यह कि जो चाल अङ्गद और हनुमान्‌जी प्रथम दिवस के युद्ध में चले थे वही चाल आज मेघनाथ चल रहा है।

कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता। धन्वी सकल लोक बिख्याता ॥
कहँ नल नील द्विबिद सुग्रीवा। अंगद हनूमंत बल सींवा ॥१॥

अर्थ कहाँ हैं कोसलाधीश दोनों भाई जो कि लोकप्रसिद्ध धनुर्धर हैं कहाँ हैं? नल नील द्विविद सुग्रीव और बल की सीमा अङ्गद और हनुमान् कहाँ हैं?

व्याख्या मेघनाथ ललकारता है कि मैं आज उन दोनों भाइयों से युद्ध करूँगा जिनके धनुर्धर होने की प्रशंसा सम्पूर्ण संसार में है। आज मैं उनकी धनुर्विद्या देखूँगा। तुम लोग हट जाओ क्यों प्राण देने आते हो। उन्हें बुलाओ या दिखला दो। कल की लड़ाई में तुम लोग नल नील द्विविद अङ्गद और हनुमान् को सेना विचलित होने के समय खोजते थे। वे ही मालूम होता है तुम्हारी सेना में बलवान् हैं। आज मैं उन्हीं लोगों को खोज रहा हूँ। सो उन लोगों को मेरा सामना करने को बुलाओ या मुझे उन लोगों को दिखला दो कि वे कहाँ हैं?

कहाँ बिभीषनु भ्राता द्रोही। आजु सठहि हठि मारौं ओही ॥
अस कहि कठिन बान संधाने। अतिसय क्रोध स्रवन लगि ताने ॥२॥

अर्थ भाई से विरोध करनेवाला विभीषण कहाँ है। आज मैं उस शठ को हठ करके मारूँगा। ऐसा कहकर उसने कठिन बाण चढ़ाये और अत्यन्त क्रोध से धनुष को कान तक खैंचा।

व्याख्या विभीषण भ्राता द्रोही है। लंकेश बनकर आया है। वह शठ है। भाई से मीठी मीठी बातें करता था। परन्तु हृदय में उसके लंकेश बनने की अभिरुचि रही। प्रधान विरोधी होकर तो वही आया है। आज उसे तो हठ करके मार ही

डालूँगा। और लोग तो भागकर बच सकते हैं पर वह भागकर भी मेरे हाथ से न बचेगा। बतला दो उसको कि कहाँ है? मुझे तुम लोगों के मारने से प्रयोजन नहीं है।

उसकी चेतावनी का जब कोई प्रभाव वानरी सेना पर न पड़ा तो उसने कठिन बाणों को चढ़ाया। जिसका रोक न हो सके और अत्यन्त क्रुद्ध होकर कान तक प्रत्यञ्चा खैंचकर बाण छोड़े जिससे दूर तक चोट हो और चोट दबाकर कोई बच न सके।

सरसमूह सो छाड़ै लागा। जनु सपच्छ धावहिं बहु नागा ॥
जहँ तहँ परत देखिअहिं बानर। सनमुख होइ न सके तेहि अवसर ॥३॥

अर्थ : वह बाणों का समूह छोड़ने लगा। मानो बहुत से पङ्खवाले सर्प दौड़ रहे हो। बानर जहाँ तहाँ गिरते हुए दिखाई पड़ने लगे। उस अवसर मे कोई उसके सामने न हो सका।

व्याख्या : कमनैती की कुशलता दिखाते हैं। एक एक बाण नहीं मारता। समूह के समूह छोड़ता है। वे पक्षसहित सर्प मालूम पड़ते हैं। बाण में पंख लगाये जाते हैं इसलिए सपक्ष कहा। विष से बुझाये हुए हैं इसलिए नाग कहा। अथवा फुंकार करते चलते हैं इसलिए नाग कहा। यथा : फुकरत जनु बहु व्याल बन्दरों का किया कुछ नही हो रहा है। जो जहाँ हैं वे वही गिर रहे हैं। किसी की सामर्थ्य नहीं जो मेघनाथ के सामने जा सके।

जहँ तहँ भागि चले कपि रीछा। बिसरी सबहिं युद्ध कै ईछा ॥
सो कपि भालु न रन महँ देखा। कीन्हेसि जेहि न प्रान अवसेखा ॥४॥

अर्थ : वानर और भालू जहाँ तहाँ भाग चले। लड़ाई की इच्छा सबको भूल गयी। रण में ऐसा कोई भालू या वानर न दिखाई पड़ा जिसे उसने प्राणावशेष न कर दिया हो।

व्याख्या : वानरी सेना भाग चली। जिन बन्दरों को युद्ध की ऐसी इच्छा थी कि परम क्रोध मीजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहिं रघुनाथा। मदि गर्द मिलवहिं दससीसा। ऐसइ बचन कहहिं सब कीसा। उनके मन से युद्ध की इच्छा जाती रही। उन्हें स्मरण भी नही है कि कभी उनको युद्ध की इच्छा थी।

मेघनाथ की बाणवर्षा ऐसी भयानक हुई कि जो जीते रहे वे भी प्राणविशेष रह गये। मेघनाथ उत्तर फाटक से बाहर आया है। वही युद्ध कर रहा है वहीं की यह व्यवस्था हुई।

दो. दसदस सर सब मारेसि, परे भूमि कपि बीर।
सिंहनाद करि गर्जा, मेघनाद बलधीर ॥५०॥

अर्थ : उसने सबको दस दस बाण मारे सब वीर धराशायी हुए। बलधीर मेघनाथ सिंहनाद करके गर्जा।

व्याख्या : सेना की यह दुर्दशा सुनकर चारों ओर से वीर उधर ही दौड़ पड़े। उन्हें सहायता करने के लिए आते देखकर सबको दस दस बाण मारे। धनुर्वेद में दस दस बाण मारने की कोई विधि है जिससे समूह पर प्रहार करने में सबको दस दस बाण लगते हैं। यथा दसदस विसिष उरमाझ, मारे सकल निसिचर नायकों। वे सबके सब वीर पृथ्वी पर गिर गये। तब सेना और वीरों का पराजय करके मेघनाद सिंहनाद करके गरजा। यह विजयसूचक गर्जन है।

देखि पवनसुत कटकु बिहाला। क्रोधवंत जनु धायेउ काला॥
महासैल एक तुरत उपारा। अतिरिसि मेघनाद पर डारा॥१॥

अर्थ हनुमान्‌जी सेना को विहाल देखकर क्रुद्ध हो काल की भाँति दौड़े। तमककर बड़ा भारी पर्वत उखाड़ लिया और अत्यन्त क्रोध से मेघनाद पर फेंका।

व्याख्या हनुमान्‌जी पवनतनय हैं। पवन सा ही इनको बल है। पहिले तो विचलित होना सुना था। यथा निज दल विकल सुना हनुमाना। पर इस बार तो आँखों देखा कि हमारी सेना विहाल है। देखा तो बहुतों ने पर किसी का किया कुछ हो न सका। पवनसुत काल की भाँति दौड़े 'अडक्टाह अमित लय कारी। काल सदा दुरतिक्रम भारी। हनुमान्‌जी का भी अतिक्रमण नहीं हो सकता। अतः काल के ऐसा कहा। काल अपने वेग से ही मारता है। अत. धावा जिमि काला कहा।

महा महीधर अर्थात् ऐसा पहाड़ जो बाण से तोड़ा न जा सके क्रोध से उखाड़ लिया। और सेना को बेहाल देखने से क्रोध बहुत बढ़ा हुआ है। इसलिए बड़े वेग से मेघनाद पर फेंका। मेघनाद उस समय कठिन बाण चला रहा था। उसी समय हनुमान्‌जी ने अप्रतिक्रिय चोट महीधर द्वारा की।

आवत देखि गयो नभ सोई। रथ सारथी तुरग सब खोई॥
बार बार पचार हनुमाना। निकट न आव मरमु सो जाना॥२॥

अर्थ : पहाड़ आते देखकर वह आकाश में चला गया पर रथ सारथी और घोड़े समाप्त हो गये। हनुमान्‌जी बार बार ललकारते हैं पर वह मर्म जानता है। इसलिए निकट नहीं आता।

व्याख्या : पहाड़ सिर पर आते देखकर मेघनाद समझ गया कि इससे न बचेंगे। अत. आकाश में चला गया। नीचे नहीं कूदा उसे भय था कि वल की भाँति हनुमान्‌जी लात से मारेंगे। पहाड़ रथपर गिरा सो रथ सारथि और घोड़े पिस गये। यह मेघनाद की दूसरी पराजय हनुमान्‌जी द्वारा हुई।

मेघनाद आकाश में ही स्थित है। हनुमान्‌जी नीचे से बार बार ललकारते हैं। वह पहिले बार बार ललकार चुका है। उसके जवाब में इधर से भी ललकार हो रही है। कहँ नल नील द्विविद सुग्रीवा। अंगद हनूमन्त बलसींवा। सो हनुमन्त आ

गये और वार वार ललकार रहे हैं। यह समय भिड जाने का है पर वह इनके निकट नही आता। मर्म जाना हुआ है कि एक मुक्का मे मूर्च्छित हो गये थे और कल ही लात खानेपर लादकर घर पहुँचाये गये थे और इस समय परम क्रुद्ध हैं। निकट जाने मे कल्याण नही है।

रघुपति निकट गयउ घननादा। नाना भाँति कहेसि दुर्बादा॥
अस्त्र सस्त्र आयुध सब डारे। कौतुकही प्रभु काटि निवारे॥३॥

अर्थ मेघनाद तब रामजी के पास गया और अनेक प्रकार के दुर्वचन कहे। अस्त्र शस्त्र तथा बहुत से हथियार चलाये। सरकार ने खेल मे ही सब काट डाले।

व्याख्या तब तो हनुमान्जी को वही छोडा और सरकार के पास पहुँचा। नाना भाँति से गालियाँ दी। इस भाँति अपना पुण्य क्षीण कर रहा है। क्योंकि भगवदपराध से पुण्य क्षीण होता है। मेघनाद शुभाशुभ कर्म का नाश करके मोक्ष चाहता है। सीताहरण मे इसका अपराध कुछ भी नही अथवा आसुरी प्रकृति है। अत इसने वैर का नाता जोड रक्खा है। ससार स्तुति करता है। यह गाली देता है कि जानबूझकर तुमने झगडा मोल लिया है। तुम्हारी स्त्री हरण की गयी तो इतना क्रोध है सूपणखा अनाथा की नाक कटी सो कुछ नही हुआ ?

दुर्वाद का कोई उत्तर न पाकर अस्त्र शस्त्र चलाने लगा। अब सरकार का कौतुक आरम्भ हुआ। अस्त्र शस्त्र काटते हैं पर उसे नही मारते जिसमे उसके जी मे लडाई का हौसला न रह जाय। सरकार तो इसके बाणपर प्रहार करते हैं।

देखि प्रताप मूढ खिसिआना। करैं लाग माया बिधि नाना॥
जिमि कोउ करैं गरुड से खेला। डर पावै गहि स्वल्प सँपेला॥

अर्थ सरकार का प्रताप देखकर वह मूढ खिसिया गया। तब नाना प्रकार की माया करने लगा। जैसे कोई गरुड से खेलवाड करे और छोटा सा साँप का बच्चा लेकर उसे डरावे।

व्याख्या जिन अस्त्रो को अप्रतिक्रिय समझता था वे सब काटे गये। धन्वी होने का अभिमान टूटा। सामर्थ्य नही चलने पर खिसियाया। प्रभाव देख लेनेपर शरण जाना चाहिए था परन्तु मूढ है। उसे चिढ हुई तब अनेक प्रकार की माया दिखलाने लगा।

उसका भी प्रभाव सरकार पर कुछ न हुआ। यदि गरुड को कोई साँप का बच्चा दिखाकर डरावे तो गरुड पर क्या प्रभाव पडेगा ? साँप का बच्चा भी उपेक्षा की वस्तु नही है। पर हम लोगो के लिए गरुड के लिए नही। क्योंकि गरुडजी तो बडे बडे सर्पों का ही आहार करते हैं। सर्प का विप उनके मन्त्र से उतर जाता है। साँप के बच्चे से गरुड को क्या भय हो सकता है ? इसी भाँति माया का प्रभाव जीव पर पड सकता है। मायानाथ के सामने माया क्या करेगी ?

दो. जासु प्रबल माया बस, सिव बिरंचि बड़ छोट ।
ताहि देखावै निसिचर, निज माया मति खोट ॥५१॥

अर्थ : जिसकी प्रबल माया के विवश शिव विरञ्चि तथा सभी छोटे बडे हैं उसे मन्दबुद्धि निशाचर अपनी आसुरी माया दिखा रहा है ।

व्याख्या : जिसकी माया जगत् के कर्ता धर्ता शिव विरञ्चि को मोहन करती है तथा सम्पूर्ण ससार जिसके वश मे है यथा : यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवा सुराः । शिव विरचि कहँ मोहै को है बपुरा आन । उस प्रभु को यह निशाचर अपनी माया दिखाने चला । यह उसकी मतिमन्दता है । अथवा जब देख लिया कि सच्चे हानिकारक अप्रतिक्रिय अस्त्र शस्त्र का बल जिसपर नही चलता । उसपर माया क्या काम करेगी जो स्वय सत्त्वरहित हैं । अतः उसके माया दिखाने का प्रयास उसके बुद्धिमान्य का ही परिचायक है ।

नभ चढि बरप बिपुल अगारा । महि ते प्रगट होहि जलधारा ॥
नाना भाँति पिसाच पिसाची । मारु काटु धुनि बोलहि नाची ॥१॥

अर्थ : वह आकाश चढकर अगारो : गोलो की बड़ी वृष्टि करता था । पृथ्वी से पानी की धारा फूट निकलती थी । अनेक प्रकार के पिशाच और पिशाचिनियाँ नाच नाचकर मारो काटो की ध्वनि करती थी ।

व्याख्या : आकाश अत्यन्त सूक्ष्म भूत है । वह ऐसी वस्तु नही है जिसपर चढा जा सके । परन्तु मेघनाद आकाश पर चढ जाता है और वहाँ से अङ्गारे बरसाता है । जल बरसते तो सब ने देखा है पर अगारो का बरसना तो किसी ने सुना भी नही । इस वैज्ञानिक युग मे अगारो : गोलो का बरसाना सुना जाता है । असुरो मे कुहक विद्या प्राचीन काल से चली आती है । बीच मे लोप हो गया था । अब फिर वह विद्या प्रकट हुई है और वे अगारे इतने वेग से गिरते थे कि पृथ्वी से फूटकर जलधारा निकल पड़ती थी । सिनेमा का दृश्य दिनदहाड़े रणागण मे दिखला देता था । अकम्पन और अतिकाय ने तो दिन की लडाई मे पहिले अन्धकार उत्पन्न करके तब सिनेमाभवन की भाँति माया के दृश्य दिखाये थे पर मेघनाद उँजेले मे दिखा रहा है । पिशाच पिशाची आदि उग्रजीवो का नाच हो रहा है । भयानक नाच है । ताल टूटने के साथ मारो काटो की धुनि की जाती है ।

बिष्टा पूय रुधिर कच हाड़ा । बरषै कबहुँ उपल बहु छाड़ा ॥
बरषि धूरि कीन्हेसि अँधियारा । सूझ न आपन हाथु पसारा ॥२॥

अर्थ : विष्ठा पीव रक्त बाल हड्डियाँ और कभी बहुत से पत्थर और वान्त : उलटी बरसाता था । उसने धूलि वर्षा करके ऐसा अँधियारा कर दिया कि अपना फैलाया हुआ हाथ नही सूझता था ।

व्याख्या : बन्दर रीछ लोग देवांश हैं यथा : जो कुछ आयसु ब्रह्मा दीन्हा ।

हरखे देव बिलंब न कीन्हा। बनचर देह धरी छिति माही। अतुलित बल प्रताप तिन पाही। सो उनका तेज नष्ट करने के लिए अपवित्र वस्तुओं की वर्षा करता है।

वन्दर लोग तब तक तो भला किसी भाँति सहन कर सकते थे जब तक कि दिखलाई देता था। पर जब धूल की वर्षा उसने की और उससे ऐसा अन्धकार हो गया कि अपना ही हाथ फैलाने पर नहीं दिखाई पड़ने लगा।

कपि अकुलाने माया देखें। सबकर मरनु बना एहि लेखें॥
कौतुक देखि राम मुसुकाने। भये सभीत सकल कपि जाने॥३॥

अर्थ: माया देखकर वन्दर घबराये कि इस भाँति तो हम लोग सभी मर जायँगे। यह खेल देखकर रामजी मुसुकुराए। समझ लिया कि सभी वन्दर त्रस्त हो गये हैं।

व्याख्या: सबके लिए तो यह अपार माया थी पर रामजी के लिए कौतुक था। वे मुसुकुराए कि इसी लिये यह बाप से कह आया है: कि कौतुक प्रात देखिअहु मोरा। करिहौं बहुत कहौं का थोरा। परन्तु यह मेरे बन्दरो के डराने के लिए बहुत है। वे तो इस दृश्य को सच्चा मानेंगे।

एक बान काटी सब माया। जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया॥
कृपादृष्टि कपि भालु बिलोकें। भए प्रबल रन रहहिं न रोकें॥४॥

अर्थ: एक ही बाण से सारी माया काट दी जैसे सूर्य अन्धकार के समूह को नष्ट कर देता है। रामजी ने बानर भालुओ को कृपादृष्टि से देखा जिससे वे इतने हो गये कि रोके नहीं रुकते थे।

व्याख्या: यहाँ बाण से माया काटी जाती है। सिनेमा का यन्त्र ही तोड़ दिया गया। एक बाण से सब माया वैसी ही कटी जैसे एक सूर्य से सब अन्धकार का नाश हो जाता है। विष्ठा पूय रुधिर कच हड्डी आदि का पता ही नहीं कि क्या हो गये। न कहीं अंगारे: गोले गिरे थे न पृथ्वी फटी थी। पर सेना प्राणावशेष हो गयी थी। सो सरकार की कृपादृष्टि के देखने से ऐसी प्रबल हो उठी कि रोकने से नहीं रुकती थी। नहीं तो सबकी युद्ध की इच्छा ही समाप्त हो गयी थी यथा: बिसरी सबहिं युद्ध की इच्छा।

दो. आयसु माँगि राम पहिं, अंगदादि कपि साथ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ, बान सरासन हाथ॥५२॥

अर्थ: तब रामजी से आज्ञा माँगकर अङ्गद आदि बन्दरों के साथ अत्यन्त क्रुद्ध होकर लक्ष्मणजी धनुष बाण हाथ मे लिये हुए चले।

व्याख्या: मेघनाद के अन्याय को नहीं सह सके। अतः लक्ष्मणजी ने उठकर युद्ध करने की आज्ञा माँगी। क्योंकि मेघनाद सरकार से युद्ध कर रहा था और सरकार उसके ऊपर प्रहार नहीं करते थे। केवल उसके प्रहारों को व्यर्थ कर देते

थे। अत लक्ष्मणजी ने स्वय युद्ध करना चाहा। आज्ञा मिलने पर अङ्गद आदि वीरो के साथ बहुत क्रुद्ध होकर चले। उसने नाना भाँति से सरकार को दुर्वाद कहा है। इसलिए लक्ष्मणजी को बडा क्रोध है। उसने ललकारा भी है कि कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता। इस कारण से भी लक्ष्मणजी का उसके सामने जाना प्राप्त था क्रोध के वेग मे सरकार को प्रणाम करना विस्मरण हो गया।

छतज नयन उर बाहु बिसाला। हिमगिरि निभ तनु कछु एक लाला॥
इहाँ दसानन सुभट पठाए। नाना शस्त्र अस्त्र गहि धाये॥१॥

अर्थ लक्ष्मणजी की आँखें रक्त की तरह लाल छाती और भुजायें विशाल और शरीर हिमाचल पर्वत की आभावाला है। पर कुछ लाली भी है। इधर रावण ने योद्धाओ को भेजा। वे अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र लेकर दौडे।

व्याख्या मेघनाद ने सरकार को दुर्वाद कहा है। इससे क्रोध विशेप होने से आँखें रक्त की भाँति लाल हो गई हैं। अवयत्र सस्थान वीरोचित आकारवाला है अर्थात् छाती और वक्ष स्थल विशाल है। स्वभाव से लक्ष्मणजी का वर्ण हिमालय की भाँति श्वेत है। पर इस समय उस श्वेत वर्ण मे कुछ ललाई क्रोध के कारण आ गयी यथा सीस जटा ससि बदन सुहावा। रिसिबस कछुक अरुन होइ आवा। मेघनाद ने रावण से कहा था कौतुक प्रात देखि अहु मोरा। सो रावण कौतुक देख रहे थे। जब देखा कि सब माया समाप्त हो गई। वानरी सेना को कोई विशेष क्षति नही हुई। तब रावण ने सहायता के लिए योद्धाओ को भेजा। दशानन है सब ओर दृष्टि रखता है। रत्ती-रत्ती का समाचार लगाये रहता है। लक्ष्मणजी युद्ध के लिए उठे हैं। अङ्गदादि बडे बडे वीर साथ हैं। अत लका के प्राय सभी वीरो को सहायतार्थ भेजा।

भूधर नख बिटपायुध धारी। धाए कपि जयराम पुकारी॥
भिरे सकल जोरिहि सनजोरी। इतउत जयइच्छा नहिं थोरी॥२॥

अर्थ पर्वत नख और विटपरूपी हथियार धारण किये हुए जयरामजी की ऐसा पुकारकर बन्दर दौड पडे। जोडो से जोडी भिड गयी। इधर और उधर दोनो ओर से जय की थोडी इच्छा नही है।

व्याख्या अस्त्र शस्त्र लिये निशाचरी सेना का धावा देखकर वानरी सेना भी दौड पडी। इनके पास हथियार के नाम से पहाड नख और पेड थे। सात्त्विक कर्त्ता है ईश्वर प्रीत्यर्थ युद्ध करते हैं। अपना स्वार्थ उनका कुछ भी नही है। जयराम के पुकार से अपना उत्साह बढाते हैं तथा शत्रु को सावधान करते हैं। अपनी जोडी खोजने मे कठिनता नही है। स्वामी के साथ वीर लोग योग्यता के क्रम से आ रहे हैं। धर्मयुद्ध हो रहा है। जोडी से जोडी भिडी हुई है। निर्बलो की हत्या नही हो रही है। आज सम्पूर्ण भट लका के और रामदल के उतर पडे हैं। हनुमान् अङ्गद सुग्रीव नील नल द्विविद मयद आदि तथा दुर्मुख सुररिपु अतिकाय अकम्पन आदि

सब वीर युद्ध मे प्रवृत्त हैं। दोनो ओर से जीत की प्रबल इच्छा है। प्राणपण से युद्ध हो रहा है। श्रीराम जय राम जय जय राम : यह महामन्त्र तृण को भी वज्र बनाता है।

मुठिकन्ह लातन्ह दातन्ह काटहिं। कपि जयसील मारि पुनि डाटहिं ॥
मारु मारु धरु धरु धरु मारू। सीस तोरि गहि भुजा उपारू ॥३॥

अर्थ : वानर राक्षसो को पजे लात और दाँतो से काटते है। जीत बन्दरो को होती थी। वे मारकर फिर दूसरो को डाँटते थे। मारो मारो धरो धरो पकडो मारो सिर तोडकर पकडकर भुजा उखाड लो।

व्याख्या : बन्दरो को पैर नही होते। चारो हाथ ही होते हैं। अत वे जिस भाँति अगले पजो से नख प्रहार करते थे उसी भाँति पिछले पजो से भी जिन्हे लात कहा गया है नख प्रहार करते थे। नख भी शस्त्र की भाँति काट कर रहे हैं। इसलिए मुष्टि लात और दाँत से भी काटना कहा गया है। केवल काटने मारने मे वीर रस नही है। वीररस डाँटने मे है। जब जयशील होकर वीर डाँटता है कि अन्यायी फिर तू लडने का साहस करेगा : तब वीर रस का परिपाक होता है।

जो सामने आता है उसे मारू जो अपने साथी को पीछे से प्रहार किया चाहता है उसे धरू और जो साथी को मार रहा हो उसे धरूँ मारूँ। मारने की विधि कहते हैं कि शीश तोरू नही टूटता हो तो भुजा उपारू। सग्राम भूमि मे वीरो की इस प्रकार की चिल्लाहट हो रही है।

असि रव पूरि रही नवखडा। धावहि जहँ तह रुड प्रचडा ॥
देखहि कौतुक नभसुर बृदा। कबहुँक बिसमय कबहुँ अनदा ॥४॥

अर्थ : नवो खण्डो मे ऐसी ध्वनि भर रही है। जहाँ तहाँ प्रचण्ड रुण्ड दौडने लगे। आकाश मे देवगण यह कौतुक देख रहे थे। कभी तो उन्हे विस्मय हो जाता था और कभी आनन्दित हो जाते थे।

व्याख्या : यहाँ अत्युक्ति अलङ्कार है। भाव यह कि ऐसी ध्वनि दिगन्त मे व्याप्त हो रही थी। बडा भारी सग्राम हुआ। अभी तक युद्ध मे रुण्ड नही उठे थे। सो जिधर देखिए उधर ही रुण्ड दौडते दिखाई पडते है। जब तलवार का लडाई थी उस समय रण रस मे मत्त वीर सिर कटने पर भी कुछ देर तक तलवार चलाते हुए लड़ते थे। बहुत से वीरो के कटने पर कोई रुण्ड उठता है लोग कहते हैं कि अन्तिम रुण्ड ऊदल का महाराज पृथ्वीराज की लडाई मे उठा था। फिर रुण्ड नही उठा। वैसा युद्ध यज्ञ हो नही हुआ कि रुण्ड उठे। अब तो युद्ध यज्ञ ही बन्द है, युद्ध के नाम पर नर हत्या होती है।

देवता लोग जिनके लिए यह सब हो रहा है आकाश मे दूर से तमाशा देख रहे हैं। जब निशाचर दल बीस पडता है तब उन्हे विस्मय होता है और जब

वानरी सेना दीख पडती है तब आनन्द होता है। आनन्द के जोड़ मे विस्मय शब्द के प्रयोग से उसका अर्थ दु ख करना पडा।

दो. रुधिर गाड़ भरि भरि जमेउ, ऊपर धूरि उडाइ।
जनु अगार रासिन्ह पर, मृतक धूम रह्यो छाइ ॥५३॥

अर्थ : गड्ढो मे भरकर रक्त इकट्ठा हो गया। उस पर धूल उड़कर पड़ी जैसे अङ्गार की राशियो पर राख छा जाय।

व्याख्या : रुधिर गाढा होता है और बहुत शीघ्र जम जाता है। सो युद्ध मे सद्य. रक्त प्रवाह ऐसा बहा कि गड्ढे भर गये और अधिक ऊँचे हो गये। युद्ध मे जो धूलि उठी उससे ढक जाने पर भी लाली चमकती है। उसकी उपमा देते हुए कहते हैं जैसे अङ्गार राशि पर हलकी राख स्वभाव से ही हो जाती है। इस भाँति रणाङ्गण का वर्णन करके वीरो का वर्णन करते हैं।

घायल बीर बिराजहि कैसे। कुसुमित किंसुक के तरु जैसे॥
लछिमन मेघनाद द्वौ जोधा। भिरहि परसपर करि अति क्रोधा ॥१॥

अर्थ : घायल वीर ऐसी शोभा दे रहे हैं जैसे फूला हुआ टेसू का वृक्ष हो। लक्ष्मण और मेघनाद दोनो योद्धा अत्यन्त क्रोध से एक दूसरे पर प्रहार कर रहे है।

व्याख्या : जब टेसू फूलता है तो सम्पूर्ण जङ्गल लाल हो जाता है। एक एक पेड लाल फूलो से भर उठता है। इसी भाँति घायल वीर लोग घाव के बहुतायत से लाल हो उठे हैं। रणाङ्गण टेसू का वन हो रहा है। सब जोडियो का इस भाँति वर्णन करके प्रधान जोडी लक्ष्मण और मेघनाद के युद्ध का वर्णन करते हैं। बिना क्रोध का युद्ध हत्या है। युद्धयज्ञ मे क्रोधाग्नि का प्रज्वलित होना अत्यन्त आवश्यक है। यथा . चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोप मोर अति घोर कृसानू। समिध सेन चतुरग सोहाई। महा महीप भये पसु आई। मै एहि परसु काटि बलि दीन्हे। समर जग्य जप कोटिन्ह कीन्हे। अत. सभी जोड़ियो मे क्रोध हो रहा है। पर लक्ष्मण मेघनाद की जोडी मे क्रोध अधिक है। ये दोनो ओर के सिरे के वीर हैं। मेघनाद के विषय मे कहा गया है : वारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महँ प्रथम लीक जग जासू। जेहि न होइ रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहि परावन होई। और लक्ष्मणजी के लिए स्वय सरकार कहते हैं . जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमन हनइ निमिष महुँ तेते।

एकहि एक सकै नहि जीती। निसिचर छल बल करै अनीती॥
क्रोधवंत तब भयउ अनंता। भजेउ रथ सारथी तुरंता ॥२॥

अर्थ : एक दूसरे को जीत नही पा रहे हैं। राक्षस छल के बल से अनीति करता है। तब अनन्त क्रुद्ध हुए उसके रथ और सारथी का विध्वस किया।

व्याख्या ' लक्ष्मणजी के जीतने मे मेघनाद सर्वथा असमर्थ है। लक्ष्मणजी

अनन्त हैं : इनका पराभव हो नही सकता । पर मेघनाद राक्षस है उसे छल के बल से अनीति करने मे कोई हिचक नही है । अत: उसका जीतना लक्ष्मणजी के लिए भी कठिन हो रहा है अथवा लक्ष्मणजी उसे खेला रहे हैं । जिसमे उसका हौसला वाकी न रहे । देखने मे यह मालूम हो रहा है कि : सकहि नहि जीती ।

मेघनाद रथ पर से युद्ध करता था और लक्ष्मणजी पदाती थे । फिर भी उसे अनीति करते देखकर क्रोध किया अर्थात् वध करने की इच्छा की । अतः पहिले उसे विरथ किया । रथ तोड दिया । सारथी को मार दिया । मेघनाद रक्षा न कर सका । अभी तक रथ रहने दिया था कि तू रथ पर से लड मै पैदल ही तेरा सामना करूँगा ।

नाना बिधि प्रहार कर सेषा । राक्षस भयउ प्रान अवसेषा ॥
रावनसुत निज मन अनुमाना । संकट भयउ हरिहि मम प्राना ॥३॥

अर्थ : लक्ष्मणजी ने अनेक प्रकार से उसपर प्रहार किया । तब तो राक्षस प्राणावशेष हो गया । रावण के बेटे ने मन मे अनुमान किया कि सकट आ पडा है । अब यह मेरा प्राण हरण करेगा ।

व्याख्या : लक्ष्मणजी शेष हैं । जैसे शेषजी सहस्रफण से प्रहार करें उस भाँति अति लाघव से नाना प्रकार से ऐसा प्रहार किया कि उसमे प्राणमात्र शेष रह गया । वह अपने को बचा न सका । उसे मालूम होता था कि सहस्रो प्रहार एक साथ हो रहे हैं । मेघनाद ने बन्दरो की सेना को प्राणावशेष कर दिया था यथा : सो कपि भालु न रन महँ देखा । कीन्हेसि जेहि न प्रान अवसेषा । लक्ष्मणजी ने उसके बदले मे इसे प्राणावशेष कर दिया ।

रावण का बेटा युद्ध विद्या मे बडा चतुर है । तुरन्त समझ गया कि पहिले विरथ करके मुझे सकटापन्न अवस्था मे ले आये अब मेरा प्राण लिया चाहते हैं । वह वीरघातिनी साँगी साथ लाया था पर उसे छोडता न था । चाहता था कि अन्य उपाय से काम निकल जायगा । पर जब देखा कि मरा चाहते हैं तो निश्चय किया कि अब साँगी किस दिन काम आयेगी ।

बीर घातिनी छाडेसि सागी । तेजपुज लछिमन उर लागी ॥
मुरछा भई सक्ति के लागें । तब चलि गयउ निकट भय त्यागे ॥४॥

अर्थ : तब उसने वीरघातिनी शक्ति चलायी । वह तेज की पुञ्ज थी । लक्ष्मणजी के हृदय मे लगी । शक्ति के लगने से मूर्च्छा हुई तब भय छोडकर उनके पास चला गया ।

व्याख्या : वीरघातिनी शक्ति प्रख्यातप्रभावा है । जब मेघनाद के चलाने से वह चली तो मालूम हुआ कि तेज का पुञ्ज ऊपर आ गया । वह शक्ति लक्ष्मणजी के हृदय मे लगी । इतना ता उसने कर ही दिया कि लक्ष्मणजी मूर्च्छित हो गये । मेघनाथ लक्ष्मणजी से बहुत भयभीत हो गया था पर मूर्च्छित देखकर लका मे उठा ले

जाने के लिए निकट चला गया। उसने समझ लिया कि लक्ष्मणजी अजेय हैं। वीरघातिनी शक्ति भी इनका घात नही कर सकी। अत मूर्च्छा छूटने से पहिले इन्हे लका मे ले जाकर वन्दी कर लेना चाहिए।

दो मेघनाद सम कोटि सत, जोधा रहे उठाइ।
जगदाधार सेष किमि, उठइ चले खिसिआइ ॥५४॥

अर्थ मेघनाद के समान सौ करोड योद्धा लक्ष्मणजी को उठाने लगे। पर जगत् क आधार अनन्त कैसे उठ सकते हैं। अत खिसियाकर सब लौट चले।

व्याख्या यहाँ सम शब्द ईषत् न्यून के अर्थ मे आया है। कोटिशत का अर्थ बहुत है। भाव यह कि मेघनाद ने अकेल ही उठाना चाहा पर जब न उठे तो और भी वीर लोग उसकी सहायता म लग गये। पर लक्ष्मणजी को हिला न सके। सरकार का प्रभाव देखकर मेघनाद खिसियाकर रह गया। यथा देखि प्रभाव मूढ खिसिआना। इस समय लक्ष्मणजी का प्रभाव देख खिसियाकर चला गया। कवि कहते हैं कि लक्ष्मणजी जगदाधार हैं। अनन्त हैं। वे उठ नही सकते। शान्त पदार्थ ही हिलडोल सकता है। लक्ष्मणजी अवतारावस्था मे भी स्वरूप मे ही स्थित हैं।

सुनु गिरिजा क्रोधानल जासू। जारै भुवन चारिदस आसू ॥
सक सग्राम जीति को ताही। सेवहि सुरनर अगजग जाही ॥१॥

अर्थ हे गिरिजा ! सुनो जिसके क्रोध की आग चौदहो भुवन को तुरन्त भस्म कर देती है। जिसकी देवता मनुष्य चर अचर सब सेवा करते हैं उसे युद्ध मे कौन जीत सकता है ?

व्याख्या कथा कहते कहते महादेवजी गिरिजा को सावधान करते चले जाते हैं। सरकार के अति नर अनुहारी चरित देखने या सुनने से मोह हो जाने की बडी सम्भावना रहती है। अत बार बार श्रोता को सावधान करते रहना चाहिए। अत जब जब अति नर अनुहारी चरित का प्रकरण आ जाता है तब तब शिवजी उमा को सावधान करते हैं।

अग्नि लगने से सम्पूर्ण भुवन नही जल सकता। दीवार आदि शेष रह ही जाता। पर शेष भगवान् की कोपाग्नि इतनी प्रबल है कि सारा ससार तुरन्त भस्म हो जाता है। वही शेष लक्ष्मणजी हैं, इनका क्रोध ही सारे जगत् को भस्म करता है और कुछ करने की आवश्यकता नही। ये यदि सग्राम करें तो इन्हे कौन जीत सकता है ? ये सबके स्वामी हैं। जड चेतन मनुष्य देवता सब इनकी सेवा करते हैं। लडने की तो कोई बात ही नही।

यह कौतूहल जानै सोई। जापर कृपा राम कै होई ॥
सध्या भई फिरी दोउ वाहिनी। लगे सँभारन निजनिज अनी ॥२॥

अर्थ : यह कौतुक वही जान सकता है जिसपर रामजी की कृपा हो। सन्ध्या हुई दोनो सेनाएँ लौटी। सब अपनी अपनी सेना को सँभालने लगे।

व्याख्या : यहाँ प्रश्न यह उठता है कि जब ऐसा पराक्रम है तो मूर्च्छा कैसे हुई ? यदि अलौकिक पराक्रमी हैं तो मूर्च्छित कैसे हुए और यदि मूर्च्छित हुए तो उन्हे अलौकिक पराक्रमी कैसे मानें ? इस पर कहते हैं कि इसके जानने का कौतूहल होना बहुत सम्भव है। पर इसका रहस्य वही जानता है जिसपर रामकृपा हो। प्रभु के कृपापात्र वाल्मीकिजी ने कहा : तुम जो कहहु करहु सब साँचा। जस काछिय तस चाहिय नाचा। जो स्वाँग लावे तदनुसार ही अभिनय करना चाहिए। अन्यत्र भी कहा है : नट कृत विकट कपट खगराया। नट सेवकहिं न व्यापै माया। सो नर इन्द्रजाल नहि भूला। जापर होइ सो नट अनुकूला। दिन भर युद्ध होता था। साय काल को समाप्त हो जाता था। उस दिन भी सन्ध्या होने पर दोनो सेनाएँ लौट गयी। यूथप लोग अपने अपने यूथ को सँभालने लगे। कौन मारा गया कौन घायल हुआ। कितना घायल हुआ : इत्यादि।

लक्ष्मण का उपचार

व्यापक ब्रह्म अजित भुवनेश्वर। लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर ॥
तब लगि लै आयउ हनुमाना। अनुज देखि प्रभु अति दुखु माना ॥३॥

अर्थ : व्यापक ब्रह्म अजेय सम्पूर्ण भुवनो के ईश्वर करुणाकर पूछने हैं कि लक्ष्मण कहाँ है। तब तक हनुमान्‌जी उन्हे ले आये। भाई को देखकर सरकार ने बहुत दु ख माना।

व्याख्या : व्यापक उसे कहते हैं जो सर्वत्र हो। पर आकाश भी व्यापक हैं। अत. ब्रह्म कहते है। जिसकी व्यापकता आकाश से भी बढकर है और चेतन है। अत अजेय हैं। व्याप्य से व्यापक नही जीता जाता। वही भुवनेश्वर हैं। उसका आज्ञा अपेल है और जो इतना होने पर भी कारुणीक है। अपने भक्तो पर बड़ी करुणा करता है ऐसे प्रभु रामजी है।

अब दूसरा कौतुक सुनिये। रामजी अपने स्वरूप को छिपाये हुए सामान्य मनुष्य की भाँति पूछते है। लक्ष्मण युद्ध करने गये थे सो अबतक नही लौटे। वे कहाँ हैं ? पर कोई उत्तर नही देता। इस अप्रिय समाचार को कोई कहना नही चाहता। तब तक हनुमान्‌जी उन्हे उठा लाये। क्योकि हनुमान्‌जी सरकार के बडे कृपापात्र हैं। यथा : तैं मम प्रिय लछिमनते दूना। इन्द्रजाल के जाननेवाले है। छोटे भाई की दशा मृतप्राय देखकर सरकार बहुत दु खी दिखाई पडे।

जामवंत कह बैद सुखेना। लंका रहै को पठई लेना ॥
धरि लघुरूप गयउ हनुमंता। आनेउ भवन समेत तुरंता ॥४॥

अर्थ : जाम्बवान् ने कहा : सुषेण वैद्य लका में रहता है उसे ले आने के

लिए किसी को भेजा जाय। हनुमान्‌जी छोटा रूप करके गये और तुरन्त उसे घर के सहित उठा लाये।

व्याख्या : इस समय विभीषण को कहना प्राप्त था परन्तु नही कहते। सोचते हैं कि यदि सुषेण की चिकित्सा से भी लक्ष्मण नही अच्छे हुए तो मेरी क्या परिस्थिति होगी ? सुग्रीवजी की ही बात ठीक पड जायगी : जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारण आया। सभी कहेगे : इस भाँति सुषेण द्वारा लक्ष्मण का प्राण विभीषण ने लिया। परन्तु जाम्बवान्‌जी भेद जानते हैं। वह वैद्य है। जान बूझकर कभी हानि नही पहुँचा सकता। अत जाम्बवान्‌जी ने कहा कि मैं जानता हूँ। लका का वैद्य सुषेण बडा प्रवीण है। उसे लिवा आना चाहिए। पर सुषेण का घर कौन जानता है। लका मे जाकर सुषेण को लिवा लाने मे समर्थ कौन है ? यह बात विचारणीय थी। हनुमान्‌जी यह सुनते ही आप से आप चल पडे। इनका घर घर देखा हुआ है। इन्हे सुषेण का औषधालय स्मरण है। जैसा छोटा रूप धारण करके पहिले लका मे गये थे उसी रूप से गये और सुषेण का घर के सहित उठा लाये। इससे रावण से सुषेण की रक्षा भी हो गयी और सुषेण को यह कहने का अवसर न मिले कि दवा तो घर पर ही छूट गयी।

दो. राम पदारबिन्द सिरु, नायउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधी, जाहु पवनसुत लेन ॥५५॥

अर्थ : सुषेण ने आकर रामजी के चरण कमलो मे सिर नवाया। उसने पहाड़ और औषध का नाम बतलाया ' आज्ञा हुई कि पवनपुत्र जाओ ले आवो।

व्याख्या : सुषेण भक्ति से प्रभु को प्रणाम करते हैं। यहाँ सब कुछ बडी जल्दी से हो रहा है। इसलिए कवि भी बड़ी जल्दी मे है। कथा को अति सक्षेप मे कह रहे हैं। सुषेण द्वारा लक्ष्मण का देखना आदि न कहकर सुषेण का वाक्य भी अति सक्षेप मे कह रहे हैं कि उसने पर्वत का नाम जिसपर वह औषधि होती है और उस औषधि का भी नाम बतला दिया। कहा कि सूर्योदय के पहिले यह औषधि आ जानी चाहिए। यहाँ सबसे पूछा गया। कौन कितनी देर मे जा सकता है ? सबने अपना वेग कहा। पर रात भर मे लाने का साहस किसी को भी नही हुआ। केवल राजा सुग्रीव ने कहा कि मैं चार पहर मे ला सकता हूँ। अङ्गदजी ने कहा तीन पहर मे मै ला सकता हूँ। हनुमान्‌जी ने कहा खौलते हुए तेल मे राई छोड़िये। जितने देर मे फूटेगी उतनी देर मे मैं ला दूँगा। अतः पवनसुत को आज्ञा हुई।

रामचरन सरसिज उर राखी। चला प्रभजनसुत बल भाषी ॥
उहाँ दूत एकु मरमु जनावा। रावनु कालिनेमि गृह आवा ॥१॥

अर्थ : रामजी के चरण कमलो को हृदय मे रखकर प्रभञ्जन : पवन कुमार अपना बल कथन करके चले। वहाँ एक दूत ने जाकर भेद कहा। रावण कालिनेमि के घर आये।

व्याख्या : रामजी के चरणकमलों को हृदय में धारण करना ही सब सिद्धियों का अमोघ साधन है। यह ध्यान असाध्यसाधन करता है। अतः हनुमान्‌जी ने पहिले उन चरणों को हृदय में स्थान दिया। यहाँ प्रभञ्जनतनय कहने का यह भाव है कि माया को ये भञ्जन कर डालनेवाले हैं। इन्हें कोई मायावी जीत नहीं सकता। यथा : उठि बहोरि कीन्हेसि बहु माया। जीति न जाय प्रभंजन जाया। तत्पश्चात् आश्वासन देने के लिए अपना बल कहा। यथा :

जौं हौं अब अनुसासन पावौं।
तौ चन्द्रमहिं निचोरि चैल ज्यों आनि सुधा सिर नावौं॥
कै पाताल दलौं व्यालावलि अमृत कुंड महि लावौं।
भेदि भुवन करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं॥
विबुध बैद बरबस आनौं धरि तौ प्रभु अनुग कहावौं।
पटकौं मीचनीच मूषक ज्यौं सबहि को पापु बहावौं॥
तुम्हरिहिं कृपा प्रताप तिहारेहि नेकु विलम्ब न लावौं।
दीजै सोइ आयसु तुलसी प्रभु जेहि तुम्हरे मन भावौं॥
· गीतावली ८ ८

इस गड़बड़ में रावण का एक भेदिया दूत वानरी सेना में प्रविष्ट हो गया। उसने यह सब बातें देखी सुनीं। उसने वहाँ . रावण के यहाँ जाकर सब भेद बतला दिया कि सूर्योदय के पहिले यदि सञ्जीवनी बूटी मिल जाय तो लक्ष्मण जी सकते हैं। यथा : जिऐं कुँअर निसि मिलै मूलिका कीन्ही विनय सुखेन। सो हनुमान्‌जी मूलिका लेने चल पड़े। रावण ने देखा कि इस समय कालनेमि का काम है। इसके ऐसा मायावी लंका में कोई है नहीं। यथा : कालनेमि कलिकपट निधानू। पर इस समय उसका झुकाव निवृत्ति की ओर है। वह इच्छापूर्वक प्रवञ्चनादि कर्म में प्रवृत्त नहीं होगा। यदि मैं स्वयं उसके पास जाऊँ तभी उसका इस काम में हाथ लगाना सम्भव है। अत. रावण स्वयं उठकर कालनेमि के पास गये। अपने स्वार्थ के लिए जब किसी के बलि की आवश्यकता होती है तब रावण स्वयं उसके पास जाते हैं। मारीच के पास भी इसी भाँति गये थे।

दसमुख कहा मरमु तेहि सुना। पुनि पुनि कालनेमि सिरु धुना॥
देखत तुमहि नगरु जेहि जारा। तासु पंथ को रोकन पारा॥२॥

अर्थ . रावण ने कहा उसने मर्म सुना। लगा बार बार सिर पीटने बोला कि तुम्हारे देखते जिसने नगर जला दिया उसके रास्ते को कौन रोक सकता है।

व्याख्या : रावण ने वही भेद कालनेमि से कहा जो दूत से सुना था। अभिप्राय यह कि तुम हनुमान्‌जी का रास्ता रोको। पहाड़ तक रात में जाने न पावे। बस इतने ही में शत्रु का पराजय निश्चित है।

कालनेमि अपनी बेबसी पर सिर पीटने लगा। समझा कि कार्य सिद्धि असम्भव है। हनुमान् किसी के वश में नहीं। लंका से मकान सहित वैद्य को उठा ले गया।

इनका किया कुछ हुआ नही। मुझे उसका रास्ता रोकने को कहते हैं। रावण उत्तर दे सकता है कि मुझे पता नही लगा। इसलिए कालनेमि नगर का उदाहरण देते हैं कि मैं हनुमान् के सामने क्या हूँ। आप देखते रह गये। उसने नगर जला दिया। मेरा भी घर जल गया। न आपका किया कुछ हुआ न मेरा किया कुछ हुआ न किसी का किया कुछ हुआ। वह मूलिका लेने चला है। उसका रास्ता कौन रोक सकता है ? इस प्रयत्न मे मृत्यु तो ध्रुव है। कार्य होना नही है। भाव यह कि स्वय आप भी नही रोक सकते तो मेरी क्या गिनती है ?

भजि रघुपति करु हित आपना। छाडहु नाथ मृषा जलपना॥
नीलकंज तनु सुन्दर स्यामा। हृदय राखु लोचन अभिरामा॥३॥

अर्थ : रघुपति का भजन करके अपना कल्याण कीजिये। इस निस्तत्त्व कथा को छोडिये। नीलकमल के समान श्यामसुन्दर नयनाभिराम को हृदय मे धारण कीजिये।

व्याख्या : रघुपति कहकर रघुकुल मे अवतार होना जो तापनीय श्रुति मे कहा गया है उसी ओर लक्ष्य करता है। देवता लोग भी निर्विशेष ब्रह्म के जानने मे असमर्थ हैं। वे भी अवतार का ही भजन करते हैं। आप अपना अनहित रघुपति से विरोध करके कर रहे हैं। उनकी सेवकाई मे ही जीव का हित है। यथा : हित हमार सियपति सेवकाई। जो बातें आप कह रहे हैं वे सब निस्तत्त्व हैं। कभी होनेवाली नही हैं झूठी हैं। इन्हे सत्य कोई कर नही सकता। आप नाथ हैं अत आपके भले की बात कह रहा हूँ।

राम लोचनाभिराम हैं। उनका नीलकमल सा सुन्दर शरीर हृदय मे स्थान देने योग्य है। वह मङ्गलमय अतिपावन पावन हैं। उन्हे हृदय मे धारण करने से सुख भी है और परम कल्याण भी है।

मै तै मोर मूढता त्यागू। महामोह निसि सूतत जागू॥
काल व्याल कर भच्छक जोई। सपनेहुँ समर कि जीतिअ सोई॥४॥

अर्थ : मैं तैं और मेरा यही मूढता है। इसे छोडिये। महामोह रूपी रात्रि मे सो रहे हो सो जागो। जो कालरूपी व्याल का भक्षक है वह क्या स्वप्न मे भी रण मे जीता जायगा।

व्याख्या : कालनेमि कपट निधान होनेपर भी मारीच के ढग का भक्त तथा ज्ञानी भी था। उसने रावण को दिव्य ज्ञान का उपदेश दिया। उसने पहिले माया के स्वरूप का निरूपण किया कि मैं तैं और मोर यही मूढता है। यथा : अहं ममेत्यविद्येय व्यवहारस्तथानयो। मैं और मेरा ऐसी बुद्धि तथा इनका व्यवहार अविद्या है जबकि आत्मा आकाश वायु अग्नि जल और पृथ्वी से सर्वथा पृथक् है तो कौन बुद्धिमान् व्यक्ति शरीर मे आत्मबुद्धि करेगा। फिर देह के उपभोग्य गृहक्षेत्रादि मे तथा पुत्र पौत्रादि मे कौन विद्वान् अपनापन मानेगा ? देह मे आत्म बुद्धि तथा पुत्र

कलत्रादि से ममता मूढता : बेवकूफी है यह त्यागना योग्य है। मोह निसा सब सोवनिहारा। देखहि सपन अनेक प्रकारा। आप जागिये आप सोये हुए हैं। वस्तुतस्तु स्वप्न देख रहे हैं और अपने को जगा हुआ मान रहे हैं। विषय विलास मे जिसका चित्त है वह सो रहा है। उससे विराग होना ही जागना है। यथा : जानिअ तबहि जीव जग जागा। जब सब विषय बिलास बिरागा।

अगजग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जगु काल कलेवा। अंड कटाह अमित लयकारी। काल सदा दुरतिक्रम भारी। इस जगत् मे सब काल के वश है। रामजी कालव्याल के भक्षक हैं। काल के भी काल हैं। उन्हें जीतने के स्वप्न देखने का भी प्रश्न नही है। आप जीत नही सकते। व्यर्थ मे परिजन परिवार का संहार क्यो करा रहे हैं।

दो. सुनि दसकंठ रिसान अति, तेहि मन कीन्ह बिचार।
रामदूत कर मरौं बरु, यह खल रत मलभार ॥५६॥

अर्थ : यह सुनकर रावण बहुत बिगड़ा। तब कालिनेमि ने मन मे विचार किया कि राम के दूत के हाथ से मरना अच्छा है। यह खल तो पाप के भार मे अनुरक्त है।

व्याख्या : उपदेशो हि मूर्खाणा प्रकोपाय न शान्तये। उपदेश सुनकर मूढ को क्रोध आता है शान्ति नही होती। सो रावण उपदेश सुनकर बिगड़ खडे हुए। मारने को तैयार हुए जैसे मारीच पर बिगडे थे। यथा : गुरु जिमि मूढ करसि मम बोधा। कहु जग मोहि समान को जोधा। कालनेमि ने देखा कि यदि इसकी बात नही मानते तो यह मारता है और मानते हैं तो हनुमान्‌जी के हाथ से मरते हैं। मैं तो बँचता नही। तब रामदूत के हाथ से मरना भला है। मार खाकर लकिनी कहती है : तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता। इसके हाथ से मरना अच्छा नही है। यह रामजी के विमुख है। अत. मल भार मे रत है।

यथा : मोह जनित मल लाग बिबिध कोटिउ जतन न जाई।
जनम जनम अभ्यास निरत चित अधिक अधिक अधिकाई॥
नयन मलिन परनारि निरखि मन मलिन विषय संग लागे।
हृदय मलिन वासना मान मद जीव सहज सुख त्यागे॥
पर निन्दा सुनि श्रवण मलिन भए बचन दोष पर गाए।
सब प्रकार मलभार लाग निज नाथ चरन बिसराये॥

अस कहि चला रचिसि मग माया। सर मंदिर बर बाग बनाया॥
मारुत सुत देखा सुभ आस्रम। मुनिहि बूझि जलु पिअउँ जाइ स्रम॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर चला रास्ते मे माया रची। तालाब श्रेष्ठ मन्दिर और बाग बनाया। पवनपुत्र ने देखा कि आश्रम अच्छा है। मुनिजी से आज्ञा लेकर जल पीवें तो थकावट मिटे।

व्याख्या : यह कहकर चला कि अच्छा रामदूत के हाथ से मरने जाता हूँ। अघटित घटना पटीयसी माया का लक्षण है। उसने माया रची। अघटित घटना की पटुता देखिये। हनुमान्जी से पीछे चला और आगे निकल गया। क्षण भर मे तालाव मन्दिर और श्रेष्ठ बाग लगाया और उसी रास्ते में ऐसे स्थान पर बनाया जहाँ पहुँचने पर हनुमान्जी को प्यास लग जाय और खेल में समुद्रोल्लङ्घन करनेवाले को थकावट आ जाय। ये सब अघटित घटना है। उसने माया का प्रयोग सर मन्दिर बाग बनाने मे ही नही किया। उसने माया का प्रभाव हनुमान्जी पर भी डाला। उनके वेग को स्तम्भनी विद्या से रोका। हनुमान्जी को उस स्तम्भनी विद्या का अतिक्रमण करते हुए आगे बढना पड़ा। इससे श्रम भी हुआ और जहाँ उसने चाहा वहाँ प्यास भी लगी। सर मन्दिर वर बाग बनाया का अर्थ इतना ही करना चाहिए कि सर मन्दिर बाग को ऐसा सँवारा कि शुभ मालूम पडे। बनाना का अर्थ सँवारना होता है। यथा : वसन भरत निज हाथ बनाये। आज भी इसका प्रयोग सँवारने के अर्थ मे होता है। यथा : खूब बना बनाकर लिखो। अर्थात् पहिले के बने हुए सर मन्दिर और बाग को मुनि के आश्रम का रूप दे दिया। देखनेवाले समझें कि मुनिजी सर मे स्नान करते हैं। बाग का फल फूल खाते हैं। मन्दिर में पूजा करते हैं। इनका संसार से कोई सम्बन्ध नही है।

मारुतसुत कहने का भाव यह कि देवांश हैं। शुद्ध स्थल का ही जल ग्रहण करते हैं। माया के अवरोध से चलने मे श्रम अधिक हुआ। उसी के प्रभाव से प्यास भी लगी। शुभ आश्रम का तालाब है। मुनिजी से रक्षित है। इसके जल के शुद्ध होने मे संदेह नही। बिना स्वामी की आज्ञा तालाव का भी जल हनुमान्जी पीना नही चाहते। अतः प्यास और श्रम निवारण के लिए मुनिजी से आज्ञा लेना निश्चय किया और मुनिजी के पास गये।

राच्छस कपट वेप तहँ सोहा। मायापति दूतहि चह मोहा ॥
जाइ पवनसुत नायेउ माथा। लाग सो कहै रामगुन गाथा ॥२॥

अर्थ : राक्षस वहाँ कपटवेप में विराजमान था। मायापति के दूत को मोहना चाहता था। पवनसुत ने जाकर प्रणाम किया। वह लगा रामजी की गुणगाथा का वर्णन करने।

व्याख्या : आश्रम बनाकर कालनेमि स्वयं मुनि बनकर बैठा हनुमान्जी को मोह मे डालने के लिए। मुनि का स्वाग बिना लिए हनुमान्जी के मोहन का अन्य उपाय न था। स्रक् चन्दन वनितादिक पर हनुमान्जी मोहित होनेवाले न थे वह इस बात को खूब समझता था। मायापति सेवक सन माया। करिअत उलटि परइ सुरराया। यह नही समझा। उसने मायापति के सेवक का वध चाहा। अतः स्वयं मारा जायगा।

हनुमान्जी ने उसे मुनि समझ जाकर प्रणाम किया। लखि सुवेप जग वचक जेऊ। वेप प्रताप पूजिअहि तेऊ। उसने देखा कि माया काम कर गयी। हनुमान् ने

मुझे नही पहिचाना। अतः उसने और माया फैलाया। जानता था कि रामगुण-गाथा के ये बड़े रसिक हैं: यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्। बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्। अतः रामजी की गुणगाथा कहना आरम्भ किया। यह समझकर कि यदि ये सुनने लगेंगे तो कार्य मे देर होगी और देर होना हमारा इष्ट है। यदि जल्दी मे होंगे तब भी मुझ पर इनकी श्रद्धा होगी।

होत महा रन रावन रामहि। जितिहहिं रामु न संसय यामहि ॥
इहाँ भये मैं देखौं भाई। ग्यान दृष्टि बलु मोहि अधिकाई ॥३॥

अर्थ: रावण और राम मे बड़ा भारी सग्राम हो रहा है। रामजी की जीत निश्चय है। इसमे सशय को स्थान नही। मैं यहीं से देख रहा हूँ। मुझमे ज्ञानदृष्टि का बल बढ़ा हुआ है।

व्याख्या: कालनेमि ने कहा कि इस समय सरकार के चरित्र मे राम रावण सग्राम चल रहा है। रामजी जीतेंगे इसमे सशय नही। भाव यह कि मैं मुनि हूँ। त्रिकालज्ञ हूँ। वर्तमान भी जानता हूँ और भविष्य भी जानता हूँ। लक्ष्यार्थ यह कि तुम्हे सशय है। इसलिए जल्दी मे हो। अभिमानवश समझते हो कि मेरे ओषधि लाने पर ही उनकी विजय निर्भर करती है: अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।

फिर कहता है कि ज्ञान होने से देश काल की बाधा मेरी हट गयी है। यहाँ से ही बैठे बैठे मैं सब देख रहा हूँ। लक्ष्यार्थ यह कि तुम अज्ञानी हो। तुम्हे व्यवधान बाधा कर रहा है। यदि तुम्हे भी ज्ञान होता तो इतने दौड़ने की आवश्यकता न पड़ती। जहाँ के तहाँ रहते हुए भी सब कुछ की प्राप्ति हो जाती।

माँगा जल तेहि दीन्ह कमंडल। कह कपि नहि अघाउँ थोरे जल ॥
सर मंज्जन करि आतुर आवहु। दीक्षा देउँ ग्यान जेहि पावहु ॥४॥

अर्थ: पानी माँगा तो उसने कमण्डल दिया। हनुमान्जी ने कहा कि थोड़े जल से मेरी तृप्ति न होगी। बोला कि तालाब मे स्नान करके शीघ्र आवो। तुम्हे मैं दीक्षा दूँ जिससे ज्ञान हो जाय।

व्याख्या: हनुमान्जी प्यासे थे कहा पानी चाहिए। इस समय ज्ञान से अधिक मुझे पानी की आवश्यकता है। उसने कमण्डल दिया कि लो पीओ। जल विपाक्त था पर भगवान् की इच्छा। हनुमान्जी ने कहा कि इतने जल से मेरा काम न चलेगा। तब उसने मज्जन की आज्ञा दी। यथा: मज्जन कीन्ह पथ श्रम गयऊ। सुचि जल पियत मुदित मन भयऊ। बोला कि जल्दी करो तुम्हे देशकृत बाधा का अतिक्रमण करना है। लौटने पर तुम्हे दीक्षा[1] दे दूँ जिसमे तुम्हे ज्ञान हो जाय। फिर तो कार्य साधन सरल हो जायगा। यहीं से ओषधि प्राप्ति कर सकोगे।

---

१. दीक्षा में सिद्ध गुरु द्वारा शक्तिपात होने से सद्यः कल्याण होता है।

दो. सर पैठत कपि पद गहा, मकरी तब अकुलान ।
मारी सो धरि दिव्य तनु, चली गगन चढ़ि जान ॥५७॥

अर्थ : तालाब में घुसते ही हनुमान्‌जी के पैर को मकरी ने पकड़ लिया तब अकुला गयी। जब मारी गयी तब दिव्य तन पाकर विमान में चढ़कर आकाश को चली।

व्याख्या : उस तालाब में मगरी थी। इसलिए उसने केवल पानी पीने को नहीं कहा स्नान करने को कहा। क्योंकि दीक्षा देना है। जिसमें स्नान करने के समय मगरी उन्हें निगल जाय। हनुमान्‌जी मुनि के वचन पालन के लिए तालाब में स्नान करने को प्रविष्ट हुए। मगरी वहाँ थी ही। उसने निगलने के लिए पैर पकड़ा। हनुमान्‌जी ने उसी पैर को उसके पेट में घुसेड़कर मार डाला। मगरी ने पैर पकड़ा। निगल न सकी। अत: आकुल हुई। मारे जाने पर सुखी हुई। उसका : मकरी का शरीर छूट गया। उसे दिव्य शरीर मिला और उसके लिए विमान आया जिस पर चढ़कर वह स्वर्ग चली।

कपि तव दरस भइउँ निःपापा। मिटा तात मुनिवर कर सापा ॥
मुनि न होइ यह निसिचर घोरा। मानेहु सत्य वचन कपि मोरा ॥१॥

अर्थ : हे कपि ! तुम्हारे दर्शन से मैं पाप रहित हुई। हे तात ! मुनि श्रेष्ठ का शाप मिट गया। यह मुनि नहीं है। यह घोर निशाचर है। हे कपि ! मेरे वचन को सत्य मानो।

व्याख्या : दिव्य शरीर धारण करने से उसे दिव्य ज्ञान भी हो गया। हनुमान्‌जी ने उसका वध किया इसका उसे क्रोध नहीं है। मकर की योनि से हनुमान्‌जी द्वारा वह मुक्त हुई इसलिए वह कृतज्ञ है। हनुमान्‌जी को खतरे से आगाह कर रही है तथा उस राक्षस को भी राक्षस योनि से मुक्ति पाने का उपाय कर रही है। उसने संक्षेप में पूर्व जन्म की कथा सुनायी। कहने लगी मुनि के शाप से मुझे मकर योनि प्राप्त हुई थी। मैं मुनि की अवज्ञा रूपी पाप का फल भोग रही थी। सो हे कपि ! तुम्हारे दर्शन से वह पाप छूट गया। जिसे तुम मुनि समझ रहे हो यह मुनि नहीं है घोर राक्षस है। ऐसा मायावी है कि तुम भी उसे नहीं लख पा रहे हो। हे कपि ! मैं विमान पर आरूढ़ हूँ। स्वर्ग जा रही हूँ। मैं झूठ नहीं बोल सकती। झूठ बोलने से सद्यः पतन होगा। अत: मेरी बात को सत्य मानो।

अस कहि गई अपछरा जबहीं। निसिचर निकट गयउ कपि तबहीं ॥
कह कपि मुनि गुरु दछिना लेहू। पाछें हमहि मंत्र तुम्ह देहू ॥२॥

अर्थ : ऐसा कहकर ज्यों ही वह अप्सरा गयी त्यों ही उस राक्षस के निकट हनुमान्‌जी गये और बोले कि मुनिजी ! पहिले गुरुदक्षिणा ले लो मन्त्र मुझे पीछे देना।

व्याख्या : पहिले दिव्य तन कहा था। अब उसी बात को स्पष्ट करते हैं कि मारे जाने के बाद वह मकरी अप्सरा हो गयी। अर्थात् थोड़े दिनों के लिए वह शाप के कारण मकरी हो गयी थी। वस्तुतः वह पहिले भी अप्सरा थी। अब फिर अप्सरा होकर राम कार्य मे विघ्न न हो तथा इस राक्षस का भी उद्धार हो : इसलिए भेद बतलाती हुई विमानारूढ़ हो चली गयी। तब हनुमान्जी उस राक्षस के पास चले गये जिसमे उसके भाग जाने का अवसर न मिले। उसने हनुमान्जी को निकट आते देखकर समझा कि उसके आज्ञानुसार नहा धोकर आ रहे है। अत. मन्त्र प्रदान का उपक्रम करने लगा। निश्चय कर लिया कि मकरी से भी यह बच गया। अब इसे चेला मूँड़कर बातो मे फँसाना चाहिए। हनुमान्जी बड़े बुद्धिमान् हैं। उसे यह नही मालूम होने दिया कि भेद खुल गया। उससे बोले कि पहिले गुरु दक्षिणा ले लो मन्त्र पीछे देना।

सिर लंगूर लपेटि पछारा। निज तनु प्रगटेसि मरती बारा॥
राम राम कहि छाँड़ेसि प्राना। सुनि मन हरखि चलेउ हनुमाना॥३॥

अर्थ : उसके सिर को पूँछ मे लपेटकर उसे पृथ्वी पर पटक दिया। उसने मरने के समय अपना शरीर प्रकट कर दिया। राम राम कहकर उसने प्राण छोड़ा। सुनकर मनमे हर्षित हो हनुमान्जी चले।

व्याख्या : मन्त्र ग्रहण के पीछे गुरुदक्षिणा दी जाती है और यह कहता है कि पहिले ही ले लो मन्त्र पीछे ग्रहण करूँगा। इसलिए उसने समझा कि कोई बहुमूल्य भूषण युद्ध मे इसके हाथ लगा है। उसी के देने के लिए लालायित है। तब से तो हनुमान्जी की पूँछ ऊपर से आकर उसके गले मे लिपट गयी और पूँछ ने ही उसे उठाकर ऐसा पटका कि उसके प्राण पखेरू उड गये। हनुमान्जी ने देखा कि यह बडा मायावी है। यदि यह जान जायगा कि मेरा भेद खुल गया तो न जाने कौन सी माया करेगा। अतः कोई दूसरी माया करने का उसे अवसर ही न दिया। उससे बात करने लगे और पूँछ द्वारा उसे कब्जे मे कर लिया। फिर वह कर ही क्या सकता था। हनुमान्जी सब भाँति समर्थ थे। यथा : नाम सुमति समरथ हनुमानू। बिना हाथ लगाये पूँछ द्वारा ही उसका काम तमाम कर दिया।

पर कालनेमि बड़ा सयाना था। कपट निधान होने पर भी मन में कपट रखकर उसने मरना न चाहा। मुनि का शरीर त्याग दिया। अपने असली रूप : राक्षस रूप मे आगया और मरने के समय राम राम उच्चारण किया : जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुकुत होई श्रुति गावा। सो मरते समय उसने परलोक बना लिया। रामनाम के रसिक हनुमान्जी उसके मुख से अन्त समय रामनाम निकलते सुनकर हर्षित होकर चल पडे। अब चलने मे आयास नही है।

देखा सैल न औषध चीन्हा। सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा॥
गहि गिरि निसि नभ धावत भयऊ। अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ॥४॥

अर्थ : पर्वत तो देखा पर औषध का पहिचान न हुआ तो एकाएक पर्वत को ही उखाड़ लिया। पर्वत लिये हुए रात को जो आकाश में दौड़े तो अयोध्यापुरी के ऊपर चले गये।

व्याख्या : हनुमान्‌जी पर्वत के पास पहुँचे। पर्वत पहिचान लिया पर औषध न पहिचान सके। वैद्य ने बताया था कि वह औषधि रात को प्रकाशमान हो जाती है। यही पहिचान थी। अब वहाँ देखते हैं तो जितनी औषधियाँ हैं वे सभी प्रकाशमान हैं। रावण के अनुचरों ने वहाँ पहुँचकर पहिले ही सब औषधियों को माया से प्रकाशमान बना दिया था। तब हनुमान्‌जी ने निश्चय किया कि पर्वत ही उठा ले चलो। वैद्यजी खोज लेंगे। कालनेमिवाली घटना के कारण देर हो रही थी। रात का समय था। पर्वत लिये हुए आकाश मार्ग से उड़े। आकाश में कोई निश्चित मार्ग तो है नही। शाहजहाँपुर : जहाँ कालनेमि मारा गया था और अयोध्या में कुछ बहुत अन्तर नहीं है। भगवदिच्छा हनुमान्‌जी अयोध्यापुरी के ऊपर से चले। यह श्रीराम का कौतूहल है। श्री हनुमान्‌जी को भरत बाहुबल दिखलाना है।

दो. देखा भरत बिसाल अति, निसिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सायक मारेउ, चाप श्रवन लगि तानि ॥५८॥

अर्थ : भरतजी ने अति विशाल देखकर अनुमान किया कि कोई राक्षस है। उन्होंने कान तक धनुष चढ़ाकर निशाना बाँधकर तुक्का : बिना फूल का बाण चला दिया।

व्याख्या : अति विशाल राक्षस होते हैं और वे ही रात को चलते हैं। यह जो अयोध्या के ऊपर चला आरहा है यह अति विशालकाय है और रात के समय में आरहा है। अतः अनुमान यही है कि यह राक्षस है। ऐसा हनुमान्‌जी को अयोध्या के ऊपर आते देखकर भरतलाल ने सोचा। अभी तक इसने कोई अपराध नहीं किया है। अतः इसको मार देना भी ठीक नही। पर ठीक ऊपर आकर भारी उपद्रव कर सकता है। अतः इसका आने देना भी ठीक नही। यह सब सोच विचारकर भरतजी ने यह निश्चय किया कि इसे नीचे गिरा देना चाहिए। पर मरे भी नहीं। इसलिए बिना फरके बाण अर्थात् तुक्का से मारा। धनुप को कान तक खीचकर मारा। यह निश्चय करके कि हलका चोट से यह गिरनेवाला भी नही है।

परेउ मुरुछि महि लागत सायक। सुमिरत राम राम रघुनायक ॥
सुनि प्रिय बचन भरतु तब धाए। कपि समीप अति आतुर आए ॥१॥

अर्थ : बाण के लगते ही राम राम रघुनायक स्मरण करते हुए मूर्च्छित होकर गिरे। प्रिय वचन सुनकर भरतजी तब दौड़ पडे और वन्दर के पास अत्यन्त आतुर होकर आये।

व्याख्या : बाण लग गया। आकाश से पृथ्वी पर गिरे। चोट गहरी लगी।

मूर्च्छा का प्रभाव आकाश से ही काम करने लगा। पर पूरी अचेतना पृथ्वी पर गिरने से हुई। हनुमान्‌जी का नाम स्मरण किसी दशा में बन्द नही होता। चोट लगने पर भी : राम राम रघुनायक कहते हैं। पूर्णतः अचेतन होने पर ही नामोच्चारण बन्द हुआ। इस नामोच्चारण ने बड़ा काम किया। सरकार से हनुमान्‌जी का सम्बन्ध भरतजी को व्यक्त हो गया। हनुमान्‌जी गिरे। पर्वत न गिरा। यथा : पवन राख्यौ गिरि पुर तेहि तेज पियो। हनुमान्‌जी के ऊपर पर्वत न गिरे अथवा सरकारी प्रजाओ की हानि न हो। इसलिए वायु ने गिरने न दिया और अयोध्यापुरी ने उसके तेज को पी लिया।

भरतजी नाम के बडे प्रेमी हैं। यथा : जबहि राम कहि लेहि उसासा। उमगत प्रेम मनहुँ चहुँ पासा। द्रवहि बचन सुनि कुलिस पखाना। पुरजन प्रेम न जाइ बखाना। राम राम रघुनायक : यह वचन बड़ा प्रिय है। इससे यह भी पता चलता है कि हनुमान्‌जी श्रीराम राम राम इस तारक मन्त्र का जप सदा किया करते हैं। रघुनायक का अर्थ भी राम ही है। सायक के अनुप्रास बैठने के लिए रघुनायक लिखा। अभिप्राय राम शब्द से ही है। यह वचन सुनकर भरतजी दौडे कि हुई तो मुझसे बडी चूक। यह राक्षस नही है। राम भक्त जान पड़ता है। सन्निकट पहुँचकर रुके। देखा राक्षस नही है कपि है। तब उसे सँभालने के लिए अत्यन्त आतुर होकर आये।

बिकल बिलोकि कीस उर लावा। जागत नहि बहु भाँति जगावा ॥
मुख मलीन मन भये दुखारी। कहत बचन भरि लोचन बारी ॥२॥

अर्थ : विकल देखकर वानर को हृदय से लगा लिया। बहुत भाँति से जगाया पर जागे नही। भरतजी का मुख मलीन हो गया। बडे दुःखी हुए। आँखों मे आँसू भरकर कहने लगे।

व्याख्या : देखा मरा नही है पर विकलता बड़ी है। हाथ पैर पीटता है। कलेजे से लगाया। प्रिय होने से तथा सान्त्वना के लिए भक्त लोग रूप नही देखते। हृदय देखते हैं। वानर को भी भक्त होने से हृदय लगाते हैं। अब हनुमान्‌जी को मूर्च्छा से जगाने का उपाय करने लगे। मूर्च्छा का अन्तर्भाव सुषुप्ति मे है। इसलिए जगाना कहते हैं। चोट के स्थान को हाथ से सहलाया। पानी का छीटा मुख पर दिया। पखा किया। फिर भी हनुमान्‌जी नही जागे। इससे भरतजी का मुख मलीन हो गया। मूर्च्छा मे मृत्यु भी हो जाती है। इससे दु खी हुए कि मेरे हाथ से यह क्या हो पडा ? मुख मलीन : से कायेन। भये दुखारी : से मनसा। कहत बचन भरि लोचन बारी : से वाचा दु खी होना दिखलाया।

जेहि बिधि रामबिमुख मोहि कीन्हा। तेहि पुनि यह दारुन दुख दीन्हा ॥
जौ मोरे मन बच अरु काया। प्रीति रामपदकमल अमाया ॥३॥

अर्थ : जिस ब्रह्मा ने मुझे रामजी के विमुख किया। उसी ने यह दारुण दु ख

भी मुझे दिया। यदि रामजी के चरणकमलो मे मेरी माया रहित प्रीति मनसा वाचा कर्मणा हो।

व्याख्या : कल्याण के लिए कुछ करते हुए यदि अनर्थ हो पडे तो वहाँ ब्रह्मा की मर्जी मानी जाती है कि मैंने तो यह सोचा भी नही था। होनहार बलवान् है। मैंने विमुख होना स्वप्न मे भी नही चाहा था पर विधि ने कर दिया। माँ पगली हो गयी। उसी विधि ने मेरे हाथ से बाण भी छोड़वाया। मैंने तो राक्षस समझा था। रामभक्त नही समझा था।

आज ऐसा समय आगया कि भरतजी को अपनी भक्ति का फल माँगना पड़ा। नही तो महाराज जनक कहते हैं : साधन सिद्धि रामपग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू। कार्पण्य छोड़कर अपनी भक्ति की दृढता पर विश्वास करते हैं। इसी से पता लगा कि भरतजी मे कैसी प्रीति है। भरतजी की प्रीति रामजी मे माया रहित है। मैं अरु मोर तोर तैं माया : वह माया उस प्रीति मे नही है। सबके ममता का तागा सरकार के चरणो मे बाँध रक्खा है। उसी प्रीति मे असाध्य साधन का सामर्थ्य है।

तौ कपि होउ बिगत स्रमसूला। जौं मोपर रघुपति अनुकूला ॥
सुनत[1] वचन उठि बैठ कपीसा। कहि जय जयति कोसलाधीसा ॥४॥

अर्थ : तो यह वानर श्रम और शूल से रहित हो। यदि मुझ पर श्रीरामजी अनुकूल हो। वचन सुनते ही वानरो के स्वामी अयोध्यापति का जय जयकार करते हुए उठ बैठे।

व्याख्या : कपि को श्रम और शूल दोनो है। श्रम का अर्थ मूर्च्छा है। यथा : देखि विभीषन प्रभु श्रम पायेउ। बाण के प्रहार से शूल हो गया है। भरतजी कहते हैं कि यदि मेरी भक्ति मे कचाई हो तो सरकार की अनुकूलता मे तो सन्देह नही है। यथा : गुरु गोसाइँ साहिब अनुकूला। अत. सरकार की अनुकूलता के बल पर कपि के श्रम शूल से रहित होने की इच्छा कर रहे हैं। सरकार की अनुकूलता से शूल नहीं रह जाता। यथा : तुम्ह कृपाल जापर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिविध भव सूला।

वचन सुनते ही मूर्च्छा चली गयी। जो मूर्च्छा विविध उपाय से न गयी वह इस वचन से चली गयी। जागे तो जय जय कोसलाधीश कहते जगे। मूर्च्छित होने के पहिले राम राम रघुनायक कहकर मूर्च्छा हुई और जागे तो कोसलाधीश की जयकार करते जागे।

दो. लीन्ह कपिहि उर लाइ, पुलकित तन लोचन सजल।
प्रीति न हृदय समाइ, सुमिरि राम रघुकुल तिलक ॥५९॥

---

१. यह चपलात्युक्ति है।

अर्थ : पुलकित शरीर और सजल नेत्र होकर बानर को हृदय से लगाया। रघुकुल तिलक रामजी को स्मरण करके प्रीति हृदय में नहीं समाती थी।

व्याख्या : बानर को हृदय लगाने के समय भरतजी का अतिप्रेम से शरीर पुलकित और नयन सजल है। मूर्च्छा होने पर आतुर होकर हृदय से लगाया और जागने पर गद्‌गद होकर हृदय से लगाया। सरकार की कृपा से मूर्च्छा गयी। सरकार भक्त पर अनुकूल है। ऐसा समझकर भरतजी के हृदय में प्रीति अत्यन्त बढ़ गयी है। रघुकुल तिलक कहने का भाव यह कि मेरी चूक से कुल में कालिमा लगती। यथा : सुरमहिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन्ह पर न सुराई। यह बिरद मिट जाता। सो सरकार की कृपा से नहीं मिटा।

अथवा भरतजी ने समझ लिया कि यह रामजी का दूत है। मूर्च्छित होते समय और मूर्च्छा से जागने के समय भी रामजी का ही स्मरण इसने किया। इतनी रात को अयोध्या आया तो अवश्य सरकार के पास से आरहा है। बात कुछ बिगडी हुई है। आजतक अपने से कोई समाचार नहीं भेजा। आज इतनी रात को दूत भेजते हैं। कारण क्या है ? अतः पूछते हैं :

तात कुसल कहु सुख निधान की। सहित अनुज अरु मातु जानकी ॥
कपि सब चरित समास बखाने। भए दुखी मन महुँ पछिताने ॥१॥

अर्थ : हे तात ! सुख के धाम रामजी की छोटे भाई और माँ जानकीजी की कुशल कहो। कपि ने संक्षेप में सब चरित कह सुनाया। भरतजी दु.खी हुए और मन मे पछताये।

व्याख्या : भरतजी पहिले सुखनिधान रामजी को कुशल पूछते हैं। यद्यपि सुखनिधान की सदा ही कुशल है। फिर भी दूत के मुख से सुनना चाहते हैं। चुप देखकर लक्ष्मणजी और माँ जानकी की कुशल पूछते हैं। हनुमान्‌जी : सब कुशल है ऐसा नहीं कह सकते। अतः उन्हे सब चरित्र सीताहरण सुग्रीव मैत्री वालिवध लङ्का पर आक्रमण तथा लक्ष्मणजी को शक्ति लगने का वृत्तान्त संक्षेप में कहना पड़ा। सुनकर भरतजी दुःखी हुए और मन में पछताये। यथा : स्वामि सकट हेतु हौ जड़ जननि जनम्यो जाय। समौ पाइ कहाइ सेवक घट्यो तौ न सहाय।

अहह दैव मै कत जग जायेउँ। प्रभु के एकहु काज न आयेउँ ॥
जानि कुअवसरु मन धरि धीरा। पुनि कपि सन बोले बलबीरा ॥२॥

अर्थ : हा देव मैंने क्यों संसार में जन्म लिया। प्रभु के एक काम भी मैं न आया। कुअवसर जानकर मन मे धैर्य धारण करके बलवान् वीर भरतजी हनुमान्‌जी से बोले।

व्याख्या : प्रभु भाई तथा माँ जानकी के सहित कष्ट मे हैं। यह सुनकर दैव को उपालम्भ देते है। अपने को धिक्कारते हैं। अहह धन्य लछिमन बड़ भागी। राम

पदारबिंद अनुरागी। लक्ष्मण काम आया और मैं न आ सका। लक्ष्मण का जीवन सफल और मेरा निष्फल है। जाय जिअत जग सो महि भारू। जननी जोवन बिटप कुठारू। मैं सरकार के किसी काम न आया। न तो सेवा कर सका न विरह के समय सान्त्वना दे सका। न संग्राम में सहायता कर सका। इस प्रकार भरतजी मन ही मन पछताये। परन्तु पछताने का भी अवसर नहीं है। भरतजी का धैर्य छूट रहा था। उसे सँभाला। बल से जो सहायता हो सकती है उसके लिए बद्धपरिकर हुए। चला प्रभजनसुत बलभाखी। उस मान का उन्मूलन हो रहा है।

तात गहरु होइहि तोहि जाता। काजु नसाइहि होत प्रभाता ॥
चढु मम सायक सैल समेता। पठवौं तोहि जहँ कृपानिकेता ॥३॥

अर्थ हे तात! तुम्हे जाने मे देर लगेगी और सवेरा होते काम बिगड जायगा। पर्वत सहित मेरे बाण पर चढो। मै तुम्हे जहाँ कृपानिकेत रामजी हैं वहाँ भेज देता हूँ।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि तुम थके हो। चोट खाये हो। अभी मूर्च्छा से जगे हो और रात मे ही तुम्हे वहाँ पहुँचना है। वैद्य ने जैसा कहा है वैसा ही होना चाहिए। यदि जाने मे सवेरा हो गया तो जाकर ही क्या होगा? बाण से अधिक तीव्र गति किसी की नहीं हो सकती। अत तुम्हे बाण पर बिठलाकर सरकार के पास भेजे देता हूँ। तुम चढो मेरे बाण पर और इस पर्वत को भी ले लो। मैं अभी लका तुम्हे पहुँचाता हूँ। श्रीभरतजी की कृपा से श्रीराम के पास पहुँचा जाता है। जीवमात्र प्रभु को प्राप्त कर सकते हैं।

सुनि कपि मन उपजा अभिमाना। मोरे भार चलिहि किमि बाना ॥
राम प्रभाव बिचारि बहोरी। बंदि चरन कह कपि करजोरी ॥४॥

अर्थ यह सुनकर हनुमान्‌जी को अभिमान उत्पन्न हुआ कि मेरे बोझ से बाण कैसे चलेगा? फिर रामजी का प्रभाव सोचकर चरण वन्दना करके बोले।

व्याख्या अभिमान उपजा नष्ट होने के लिए। पर्वत के बोझ से बाण न चलेगा। यह प्रश्न नहीं उठा। प्रश्न यह उठा कि मेरे बोझ से बाण कैसे चलेगा। बाण थोडा सा भी बोझ नहीं सह सकता। पर्वत सहित मुझे बाण पर रखकर फेंक देना क्या साधारण व्यापार है। मेरे बोझ के सामने पर्वत का बोझा कुछ नहीं है। भरतजी कैसे बाण पर चढाकर फेंकने मे समर्थ होगे? फिर हनुमान्‌जी ने विचार से काम लिया। रामजी के प्रभाव से क्या नहीं हो सकता। गरुड सुमेरु रेनु सम ताही। रामकृपा करि चितवा जाही। अत निरभिमान होकर भरतजी की वन्दना करते हैं और हाथ जोडकर अति विनम्र भाव से बोलते हैं।

तव प्रताप उर राखि गोसाईं। जैहौं रामबान की नाईं ॥
भरत हरषि तब आयसु दयऊ। पद सिरनाइ चलत कपि भयऊ ॥५॥

अर्थ : हे स्वामी ! मैं आपका प्रताप हृदय में रखकर रामजी के बाण की भाँति जाऊँगा। भरतजी ने हर्षित होकर आज्ञा दी और चरणों में सिर नवाकर हनुमान्जी चले।

व्याख्या : हनुमान्जी ने कहा कि बाण पर न चढ़कर आपका प्रताप ही हृदय में रखे लेता हूँ। क्योंकि मुख्य काम करनेवाला आपका प्रताप है। नहीं तो बोझा ले जाने का काम बाण का नहीं है। आपके प्रताप के बल से मैं रामबाण की भाँति जाऊँगा। यथा : जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चला हनुमाना।

हनुमान्जी की प्रताप पर इतनी श्रद्धा देखकर हर्षित हुए। आज्ञा दे दी। समझ लिया कि अवश्य कार्य होगा। हनुमान्जी विदाई के लिए दूसरा प्रणाम करते हैं।

दो. भरत बाहुबल सीलगुन, प्रभुपद प्रीति अपार।
मन महुँ जात सराहत, पुनिपुनि पवन कुमार ॥६०॥

अर्थ : पवनपुत्र भरतजी का बाहुबल शील गुण और प्रभु के चरणों में अपार प्रीति की मन ही मन प्रशंसा करते हुए चले जाते हैं।

व्याख्या : बाहुबल यथा : चढ़ु मम सायक सैल समेता।
पठवौं तोहि जहँ कृपानिकेता॥
शील यथा : सुनि प्रिय बचन भरत उठि धाए।
कपि समीप अति आतुर आए॥
गुण यथा : अहह दैव मै कत जग जायेउँ।
प्रभु के एकहु काज न आयेउँ॥
जानि कुअवसरु मन धरि धीरा।
पुनि कपि सन बोले बल बीरा॥
प्रभुपद प्रीति यथा : जौं मोरे मन बच अरु काया।
प्रीति रामपद कमल अमाया॥
तौ कपि होउ बिगत स्रमसूला।
जौ मोपर रघुपति अनुकूला॥

ये चार बातें जो हनुमान्जी ने भरतजी में पायीं वे अप्रतिम थी। अतः हृदय में उन्ही की प्रशसा करते हुए हनुमान्जी चले। यहाँ हनुमान्जी की मुदिता कवि ने दिखलाई।

उहाँ राम लछिमनहि निहारी। बोले बचन मनुज अनुसारी॥
अर्ध रात्रि गइ कपि नहि आयउ। राम उठाइ अनुज उर लायउ॥१॥

अर्थ : वहाँ रामजी लक्ष्मण को देखकर मनुष्यों की तरह वचन कहने लगे। आधी रात बीत गयी। हनुमान्जी नही आये। यह कहकर छोटे भाई को उठाकर हृदय से लगा लिया।

व्याख्या : कवि अपने मन से हनुमान्‌जी के साथ हैं। अतः रामजी का समाचार कहते समय उहाँ कह रहे हैं। लक्ष्मण लाल सरकार को अतिप्रिय हैं। यथा : जोगवहि प्रभु सिय लखनहि कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे। उनको एक बारगी सज्ञाशून्य देखकर चेतना के लौटने का कोई लक्षण न देखकर इस भाँति बोलने लगे जैसे सामान्य मनुष्य बोलते हैं। मनुज चरित कर अज अविनासी : का उदाहरण है।

रामजी कहते हैं कि आधी रात तो बीत गयी और अभी हनुमान् नही आया। कहा था : तैलाग्नेः सर्पपस्य स्फुटनरवपरस्तत्र गत्वात्र चैमि : हनुमन्नाटके। खौलते हुए तेल मे सर्षप के फूटने में जो शब्द होता है उतनी देर मे वहाँ जाकर लौट आऊँगा। सो अभी तक नही आया। क्या बाधा उपस्थित हुई। हनुमान् के आने मे यदि अधिक विलम्ब हुआ तो लक्ष्मण के प्राण नही बचेगे। यह भावना मन मे उठते ही शोकसागर उमग उठा। रामजी ने छोटे भाई को उठाया और हृदय से लगा लिया।

सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ। बधु सदा तव मृदुल सुभाऊ ॥
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेहु बिपिन हिम आतप बाता ॥२॥

अर्थ : हे भाई! तुम मुझे कभी दुःखित नही देख सके। तुम्हारा स्वभाव सदा से ही कोमल है। तुमने मेरे लिए माता पिता को छोडा और वन मे पाला और लू सहा।

व्याख्या : शोक के वेग मे मूर्च्छित भाई से इस भाँति बातें कर रहे हैं मानो वह सचेत हैं। उन्हे बन्धु कहकर सम्बोधन करते हैं। भाव यह : होहि कुठाँयसु बधु सहाए। ओड़िअहि हाथ असनिहु के घाए। तुम मेरे विपत्ति के सहायक हो। तुम्हारा ऐसा मृदुल स्वभाव है और मेरे प्रति ऐसा स्नेह है कि तुम मुझे दु खित नही देख सकते। इसके प्रमाण के लिए दूर नही जाना है। तुमने मेरे लिए माता पिता का परित्याग किया। यथा : गुरु पितु मातु न जानहुँ काहू। कहहुँ सुभाउ नाथ पतिआहू। सुरदुर्लभ सुख छोड़कर मेरे लिए वन मे आकर हिमपात, आतप, वात, झझावात आदि सहन किया।

सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न सुनि मम बच बिकलाई ॥
जौ जनत्यौं बन बंधु बिछोहू। पिता बचन मनत्यौं नहि ओहू ॥३॥

अर्थ : हे भाई! वह प्रेम कहाँ गया। मेरे बचन की व्याकुलता सुनकर उठते क्यो नही? यदि मैं जानता कि वन मे भाई का वियोग होगा तो मैं पिता का वह वचन भी नही मानता।

व्याख्या : श्री रामजी इस भाँति बोल रहे हैं मानो लक्ष्मणजी सुन रहे हैं। कहते हैं कि तुम भाई हो। तुम्हे प्रेम बनाये रखना चाहिए। तुम मुझे दु खित नही देख सके। जब कभी मैं विकल हो जाता था तो तुम्ही प्रेम से समझाते थे। यथा :

लछिमन समुझाये बहुभाँती। पूछत चले लता तरु पाँती। इस समय मेरी विकलता की वाणी सुनकर क्यों नही उठते ?

तो क्या तुम न बोलोगे ? तुम्हारा विछोह हो हो गया ? मैं नही जानता था कि वन में जाने से बन्धु विछोह होगा। यदि मैं जानता तो मै वन न आता। पिता का वचन मानकर ही मैं चौदह वर्ष के लिए वन में आया। पीछे से पिताजी ने उस अवधि का सङ्कोच कर दिया और सुमन्त्र से कहा : रथ चढ़ाइ देखराइ बन फिरेउ गये दिन चारि। यदि मुझे मालूम होता कि वन में जाने से तुम्हारा विछोह होगा तो चौदह वर्ष की कौन कहे मैं चार दिनवाला भी वचन न मानता। मुझे तो पिता के वचन से अधिक भाई का सङ्कोच प्रतीत होता है। यथा : तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार संकोचू। फिर भाई के विछोह के सामने मेरे लिए पिता का वचन न मानना ही उपादेय था। अब प्रश्न यह उठता है कि भाई पर इतना प्रेम क्यों ? इस पर कहते हैं :

सुत वित्त नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा ॥
अस बिचारि जिय जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता ॥४॥

अर्थ : पुत्र धन स्त्री घर और परिवार ये तो बार बार जगत् में होते जाते हैं। हे तात ! ऐसा विचार करके जाग जाओ कि संसार में सहोदर भाई नही मिलते।

व्याख्या : ससार मे तीन एषणाएँ प्रबल होती है। यथा : सुत वित नारि ईषणा तीनी। इनका छूटना कठिन कार्य है। घर और परिवार का सुख भी बड़ा सुख है। यह छोडा नही जाता। यथा : मम हित लागि भवन सुख त्यागे। पर ये पाँचो आगमापायी हैं। आते जाते रहते हैं। इन सबको मैं छोड़ सकता हूँ। पर सहोदर भाई नही छोड़े जा सकते क्योकि सबसे दुर्लभ हैं। अर्थात् तुम मुझे परम दुर्लभ हो। मुझे तुम्हारा सा भाई कहाँ मिलेगा ? यहाँ सरकार लक्ष्मणजी को सहोदर न होने पर भी सहोदर कहते हैं।

यथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिवर कर हीना ॥
अस मम जीवनबंधु बिनु तोही। जौ जड़ दैव जियावै मोही ॥५॥

अर्थ : जैसे पक्ष के बिना पक्षी मणि के बिना सर्प और शुण्ड के बिना हाथी अत्यन्त दीन होता है वैसा ही मेरा जीवन तुम्हारे बिना है। यदि जड़ दैव मुझे जीवित रक्खे तो।

व्याख्या : पक्ष के बिना पक्षी असहाय है। वह किसी समय हिंस्र जन्तु का ग्रास हो सकता है। ऐसा ही मैं तुम्हारे बिना असहाय हूँ। यथा : मेरो सब पुरुषारथ थाको। बिपति बँटावनिहार बधु बिनु करौ भरोसो काको। सुनु सुग्रीव साँचेहू मोपर फेरयौ बदन बिधाता। ऐसे समय समर संकट हो तज्यो लखन सो भ्राता। जैसे मणि के बिना सर्प विहाल हो जाता है वैसे ही मै तुम्हारे बिना विहाल हूँ। हाथी का शुण्ड ही सर्वस्व है। बिना शुण्ड के हाथी जल भी नही पी सकता और काम करना तो

दूर की बात है। भाव यह कि बिना पक्ष के पक्षी बिना मणि के सर्प और बिना शुण्ड के हाथी का जीवन हो नहीं सकता। इसी भाँति तुम्हारे बिना मैं जीवित न रहूँगा। परन्तु दैव जड है। पूर्वजन्मकृत कर्म तद्दैवमिति कथ्यते। उसे दया नहीं है। कदाचित् वह मुझे मरने न दे तो भी मेरा जीवन तुम्हारे बिना अति दीनावस्था में बीतेगा।

जैहौं अवध कवन मुँहु लाई। नारिहेतु प्रिय भाइ गँवाई॥
बरु अपजसु सहत्यौं जगमाहीं। नारि हानि बिसेष छति नाहीं॥६॥

अर्थ स्त्री के लिए प्रिय भाई को खोकर मैं किस मुँह से अयोध्या जाऊँगा। चाहे संसार में अपयश ही सहता। क्योंकि स्त्री की हानि कोई बडी भारी हानि नहीं है।

व्याख्या यदि जड दैव ने मुझे मरने न दिया तो कौन मुँह लेकर अयोध्या जायँगे। जहाँ भरत सा भाई बैठा है। जिसने भाईपन के लिए राज्य ठुकरा दिया और प्राण निछावर करने के लिए तैयार बैठा है। सुमित्रा ऐसी माँ बैठी है जिसने 'तात तुम्हार मातु वैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही। कहकर अपने पुत्र को मेरे साथ वन भेज दिया। प्रजावर्ग मुझे विचारमूढ कहेंगे। क्योंकि स्त्री के लिए मैंने प्रिय भाई खो दिया है अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन् विचारमूढ प्रतिभासि मे त्वम्।

मृत्यु से अधिक कष्टदायक अपयश है। उसे मैं सह जाता। क्योंकि तुम्हारा बिछोह उससे भी अधिक कष्टदायक है। स्त्रीसम्बन्धिनी क्षति पूरी की जा सकती है। क्योंकि पुत्रप्रयोजना भार्या सो पुत्रोत्पत्ति दूसरी स्त्री से भी हो सकती है। अत स्त्री की हानि विशेष हानि नहीं है। भाव यह कि जानकी सी स्त्री नहीं मिल सकती। फिर भी स्त्री मिल सकती है। भाई तो नहीं मिल सकता।

अब अपलोकु सोकु सुत तोरा। सहिहि निठुर कठोर उर मोरा॥
निज जननी के एकु कुमारा। तात तासु तुम प्रान अधारा॥७॥

अर्थ हे सुत! मेरा निष्ठुर कठोर हृदय अब यह अपयश और तुम्हारा शोक सहन करेगा। तुम अपनी माता के एक ही पुत्र हो। इसलिए हे तात! तुम उसके प्राण के आधार हो।

व्याख्या अब तो अपयश और शोक दोनों सहना पडा। स्त्री हरण का अपयश सब अपयशों से बडा है और पुत्र शोक सब शोकों से बडा है। सरकार का लक्ष्मणजी पर पुत्र सा प्रेम था। मेरा हृदय ऐसा निष्ठुर है कि उस अपयश को भी सह जायेगा और ऐसा कठोर है कि उस शोक को भी सह जायगा। मेरा हृदय विदीर्ण होनेवाला नहीं है।

तुमसे ही सुमित्रा माता अपने को पुत्रवती मानती है। यथा पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगत जासु सुत होई। नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम

विमुख सुत ते हित जानी''''''भूरिभाग भाजन भयेउ मोहि समेत बलि जाउँ। जौ तुम्हरे मन छाडि छल कीन्ह रामपद ठाउँ। प्रिय शत्रुघ्न भी है। पर प्राणाधार तुम ही हो। अर्थ ठीक बिठाने के लिए यहाँ एक का अर्थ प्रधान किया जा सकता है। यथा : एकै धर्म एक व्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा।

सौंपेसि मोहि तुमहि गहि पानी। सब बिधि सुखद परम हित जानी॥
उतरु काह दैहौ तेहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई॥८॥

अर्थ : मुझे सब विधि से सुख देनेवाला और हितचिन्तक समझकर तुम्हे हाथ पकड़कर मुझे सौंपा था। मै अब जाकर उसे क्या उत्तर दूँगा। हे भाई! तुम उठकर मुझे सिखाते क्यो नही।

व्याख्या : तात तुम्हार मातु बैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही। तुम कहँ बन सब भाँति सुपासू। सग पितु मातु राम सिय जासू। यह कहना ही सुमित्राजी का हाथ पकड़कर सौंपना है। सरकार ने कहा था : बिदा मातु सन आवहुँ माँगी। लक्ष्मणजी माता के पास विदा माँगने गये। माँ ने सहर्ष विदा कर दिया। कहने लगी : जौं पै सीय राम बन जाही। अवध तुम्हार काजु कछु नाही। तुम्हरेहि भाग रामु बन जाही। दूसर हेतु तात कछु नाही। इससे अधिक हाथ पकडकर सौंपना और क्या होता है?

वहाँ जायेंगे तो उस माँ को क्या उत्तर देंगे। जहाँ मुझसे उत्तर नही फुरता था वहाँ तुम मेरी ओर से उत्तर देते थे। परशुरामजी ने जब पूछा : सेवक सो जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करिअ लराई। तो इस बात का उत्तर तुम्ही ने दिया। माँ के पूछने का क्या उत्तर दूँगा। मुझे नही सूझता। तुम उठकर मुझे उत्तर समझा दो।

बहु बिधि सोचत सोच बिमोचन। स्रवत सलिल राजिव दल लोचन॥
उमा एक अखंड रघुराई। नरगति भगत कृपालु देखाई॥९॥

अर्थ सोच विमोचन राम बहुत प्रकार से सोचने लगे। उनके कमलदल से नेत्रो से आँसू गिर रहे थे। हे उमा! रघुराई तो एक और अखण्ड हैं। भक्तो पर कृपा करनेवाले रामजी ने मनुष्यो की दशा दिखलायी।

व्याख्या : जो सोचविमोचन है। ससार के सोच को दूर करनेवाले हैं। वे बहुत प्रकार से सोच रहे हैं। यहाँ प्रादेशमात्र दिखलाया गया है। वस्तुत: इस प्रकार सोचना भी मनुष्य दशा का अभिनय है। सरकार भक्त पर कृपा करनेवाले हैं। अभिनय भी उनकी भक्तवत्सलता से पूर्ण होता है। नही तो सरकार एक और अखण्ड हैं। उनसे पृथक् कुछ है नही। उन्हे सयोग वियोग कैसा?

दो. प्रभु प्रलाप सुनि कान, बिकल भए बानर निकर।
आइ गयउ हनुमान, जिमि करुणा महँ बीर रस॥६१॥

अर्थ : प्रभु के अनर्थक वचन कान से सुनकर वानरसमूह विकल हो गया। तबतक हनुमान्‌जी आगये। जिस भाँति करुणारस मे वीररस का प्रवेश हो जाय।

व्याख्या ' प्रलाप अनर्थक वचन को कहते हैं। प्रलापोऽनर्थक वच इत्यमर। यहाँ : पिता वचन मनत्यौं नहि ओहू। मिलै न जगत सहोदर भ्राता। निज जननी के एक कुमारा। सौंपेसि मोहि तुमहि गहि पानी। ये सब वचन अनर्थक हैं। इनके अर्थ करने मे खीचातानी करनी पडती है। वस्तुत यहाँ प्रलापका अभिनय है। कवि स्पष्ट किये देते हैं ' प्रभु प्रलाप सुनि कान।

प्रभु के मुख से अनर्थक वचन सुनकर वानरगण विकल हो उठे। सरकार के चरणो मे वानरो का इतना प्रेम है कि सरकार को दु ख मे वे नही देख सकते। सो इस समय लक्ष्मणजी की सशयावस्था है। औषध लेने हनुमान्‌जी गये। वे लौटे नही। शोक मे सरकार को यह अवस्था है कि अनर्थक वचन बोल रहे हैं। क्या होनेवाला है इसे सोचकर वानरगण विकल हो गये। इतने ही मे हनुमान्‌जी आगये। इनके आते ही बात दूसरी हो गयी। सब मे आशा का सचार तथा उत्साह हो उठा। कवि उपमा देते हैं कि जैसे करुणारस मे एकाएक वीररस का उदय हो जाय तो तुरन्त परिस्थिति पलटा खा जाती है।

हरषि राम भेटेउ हनुमाना। अति कृतग्य प्रभु परम सुजाना॥
तुरत वैद तब कीन्हि उपाई। उठि बैठे लछिमनु हरखाई॥१॥

अर्थ : रामजी हर्षित होकर हनुमान्‌जी से मिले। परम सुजान प्रभु अति कृतज्ञ हैं। वैद्य ने तुरन्त उपाय किया और लक्ष्मणजो प्रसन्न होकर उठ बैठे।

व्याख्या : कवि सरकार की अतिकृतज्ञता और परम सुजानता दिखलाते हैं। अभी लक्ष्मणजी अच्छे भी नही हुए पर सरकार ने हनुमान्‌जी को गले लगा लिया। दवा देने पर ध्यान उतना नही हनुमान्‌जी के सत्कार पर जितना ध्यान है। परिष्वङ्ग से अधिक सरकार के पास कुछ देने को नही है। क्योकि ब्रह्मसस्पर्श का सुख ही आत्यन्तिक सुख है। इसके साथ यह भी बात है कि लक्ष्मणजी के अच्छे हो जाने पर उन्हे भेंटना अनिवार्य हो पडता। तत्पश्चात् हनुमान्‌जी से मिलने मे अतिकृतज्ञता का भाव न रह जाता। इसलिये परम सुजान प्रभु ने पहिले हनुमान्‌जी को ही गले लगाया।

इधर वैद्यजी की तत्परता दिखलाते है कि उपाय करने मे उन्होने तनिक भी विलम्ब न किया। हनुमान्‌जो औषधि नही लाये पर्वत ही उखाड लाये थे। अत. वैद्यजी पर्वत पर चढकर तुरन्त औषधि लाकर जैसा उपचार करना चाहिए ठीक ठीक किया। कवि को भी जल्दी है। अत अति सक्षेप मे कहते हैं : तुरत वैद तब कीन्ह उपाई। अब उस दिव्य औषधि का चमत्कार कहते हैं कि उपचार होते देर नही और लक्ष्मणजी हर्षित होकर उठ बैठे। इतने गहिरे घाव की पीडा भी शेष नही रही।

हृदय लाइ प्रभु भेटेउ भ्राता। हरषे सकल भालु कपिव्राता ॥
कपि पुनि वैद तहाँ पहुँचावा। जेहि बिधि तबहि ताहि लै आवा ॥२॥

अर्थ : प्रभु ने भाई को हृदय से लगाकर आलिङ्गन किया। तब हनुमान्‌जी वैदराज को उसी भाँति वहाँ पहुँचा दिया जिस भाँति कि उसे उठा लाये थे।

व्याख्या : भाई को उठाने के लिए कितना विलाप किया था। मूर्च्छितावस्था में उठाकर हृदय से लगाया था। यथा : राम उठाइ अनुज उर लायउ। विलाप करते करते प्रलाप करने लगे : उतर ताहि देहो का जाई। उठि किन मोहि समुझावहु भाई। सो भाई उठ बैठे। अत सरकार ने आनन्द से हृदय लगाकार आलिङ्गन किया। प्रभु का विलाप सुनकर बन्दर समाज विकल हो उठा था। वह इस दृश्य को देखकर हर्षित हो उठा। घोर जय जय ध्वनि हुई।

अब वैद्यजी से मिलने का समय आया। पर ग्रन्थ में वैद्य से मिलने या कृतज्ञता प्रकाशन भी नही लिखा। क्योकि इसी बीच हनुमान्‌जी जिस विधि से उन्हे लाये थे उसी विधि से अर्थात् भवन सहित लङ्का पहुँचा दिया। हनुमान्‌जी जानते थे कि वैद्यजी का किसी प्रकार का यहाँ सत्कार होना उनके लिए बहुत ही बुरा होगा। रावण उन्हे जीता न छोडेगा। वैद्य का पवित्र कर्तव्य है कि शत्रु-मित्र का ध्यान न करके आर्त की पीडा का हरण करना। यहाँ तक तो रावण के यहाँ भी क्षम्य समझा जायगा पर शत्रु के दिये हुए सम्मान को स्वीकार करना रावण न सह सकेगा और सरकार कृतज्ञ है। अवश्य ही सत्कार करेगे। अतः जब तक दोनो भाई मिलें तब तक हनुमान्‌जी उसे लङ्का पहुँचा आये।

७२. कुम्भकर्ण बल पौरुष संहार प्रसंग

यह बृत्तान्त दसानन सुनेउ। अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेउ ॥
ब्याकुल कुंभकरन पहि आवा। बिबिध जतन करि ताहि जगावा ॥३॥

अर्थ : यह समाचार रावण को लगा। उसने अत्यन्त विषाद से सिर पीटा। व्याकुल होकर कुम्भकर्ण के पास गया और बहुत प्रकार के यत्न करके उसे जगाया।

व्याख्या : लक्ष्मणजी के अच्छे होते ही वानरी सेना का जय जयकार और सिंहनाद सुनाई पडा। पूछा क्या बात है। दूतो ने लक्ष्मणजी के जी उठने का समाचार दिया। सुनते ही रावण को बडा विषाद हुआ। जय की आशा पर पानी फिर गया। इतने वीरो के वध के बाद उस ओर का एक बडा वीर गिरा वह भी उठ खड़ा हुआ। मेघनाद का सब पुरुषार्थ समाप्त हुआ। वीरघातिनी साँगी भी हाथ से जाती रही। सचमुच लक्ष्मण काल है अब इसके हाथ से रक्षा नही। वैद्य हमारा और काम आगया उन लोगो के। हम लोग वैद्य का ले जाना भी नही रोक सके। मालूम होता है कालनेमि भी हनुमान् के हाथ से मारा गया। यह सब सोचकर रावण को बडा विषाद हुआ। लगा बीसो हाथ से दसों सिर पिटने। इसीलिए यहाँ रावण न कहकर दशानन कहा। रावण वैद्य पर नाराज नही हुआ।

सवेरा होते ही फिर वानरी सेना से काम पड़ेगा। अब कौन वीर है। जिसे भेजें इस चिन्ता से व्याकुल होकर कुम्भकर्ण के पास गया। कुम्भकर्ण का बड़ा भरोसा रावण को है। यथा : कुम्भ करण सम बंधु मम। कुम्भकर्ण की कच्ची नींद थी। अभी सोने का काल पूरा नहीं हुआ था। उनको जगाना साधारण व्यापार नहीं था। पुकारकर उन्हें कोई नहीं जगा सकता था। अतः उनके जगाने के लिए अनेक यत्न करने पड़े। अनेक प्रकार के बाजे बजाये गये। मुद्गर गदा आदि से उसे मारने लगे। फिर भी वह न जगा तो उसके ऊपर सहस्रों हाथी घुमाये गये। भगवान् वाल्मीकि कहते हैं वानरणानां महस्रश्च शरीरेऽस्य प्रधावितम्। कुम्भकर्णस्तदा बुद्ध्वा स्पर्शं परमबुध्यत। तब कहीं कुम्भकर्ण जागे। श्रीगोस्वामीजी ने संक्षेप में कहा कि बहुत यत्न करके उसे जगाया।

जागा निसिचरु देखिअ कैसा। मानहु काल देह धरि बैसा॥
कुंभकरन बूझा कहु भाई। काहे तव मुख रहे सुखाई॥४॥

अर्थ : वह राक्षस जगा तो ऐसा मालूम पड़ा कि मानो काल देह धारण करके बैठा हुआ। कुम्भकर्ण ने पूछा कि भाई! तुम्हारे मुख सूख क्यों रहे हैं।

व्याख्या : जब जागकर कुम्भकर्ण उठ बैठा तब वह कैसा मालूम पड़ा। इस पर कवि कहते हैं कि मानों वीभत्स रस के अधिष्ठाता स्वयं काल ही शरीर धारण करके आकर बैठ गये हों। लकाकाण्ड में दो के ही शरीर का वर्णन मिलता है। यथा : अंगद दीख दसानन बैसे। सहित प्रान कज्जल गिरि जैसे। भुजा विटप सिर सृंग समाना। रोमावली लता तरु नाना। उसमें रावण तो सहित प्राण कज्जल गिरि के समान थे। पर कुम्भकर्ण तो साक्षात् कलरूप दिखाई पड़ रहा था। कच्ची नींद से उठा है। अतः अधिक भयानक मालूम पड़ता है।

कुम्भकर्ण ने जब रावण को देखा तो विषाद के लक्षण स्पष्ट दिखाई पड़े तो पूछता है कि तुम्हारे मुख सूखे हुए क्यो हैं? देव दानव का मुख तो तुम्हारे भय से सूखा करता है। वह कौन सा भय है जिसके कारण से तुम्हारा मुख सूखा हुआ है। आज तक मैंने तुम्हारा मुख सूखा हुआ नहीं देखा। अपने जगाये जाने और रावण के सूखे चेहरे से किसी भारी भय के उपस्थित होने का अनुमान करता है।

कथा कही सब तेहि अभिमानी। जेहि प्रकार सीता हरि आनी॥
तात कपिन्ह सब निसिचर मारे। महा महा जोधा संहारे॥५॥

अर्थ : तब उस अभिमानी ने सब कथा वह सुनायी : जिस प्रकार से सीता को हर लाया था। हे तात! बन्दरों ने सब राक्षसों को मार डाला। बड़े बड़े योद्धाओं का संहार कर दिया।

व्याख्या : रावण ने कुम्भकर्ण से सूर्पणखा नासिकाच्छेदन, खरदूषण वध सीताहरण लङ्कादाह सेतुबन्ध आदि सब कथा सुनाई। परन्तु रावण स्वभाव से

अभिमानी है। यद्यपि ये कथाएँ उसके अपकर्ष से भरी हैं। फिर भी उसने इन कथाओ को इस ढग से कहा। जिसमे अपना गौरव बना रहे।

अब आश्चर्य करता है कि मैंने तो यह सोचा था कि यदि वानरी सेना आ जायगी तो ये भूखे राक्षस उन्हे खाकर तृप्त होगे। सो बात उलटी पड गई। वानरो ने ही राक्षसो को मार डाला। सामान्य राक्षसो को ही नही महा महा योद्धाओ को मार डाला। यथा महा महा मुखिया जे पावहिं। ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं। कहहिं बिभीषन तिन्हके नामा। देहिं राम तिन्हहूँ निज धामा।

दुर्मुख सुररिपु मनुज अहारी। भट अतिकाय अकपन भारी॥
अपर महोदर आदिक बीरा। परे समर महि सब रनधीरा॥६॥

अर्थ दुर्मुख देवशत्रु नरान्तक अतिकाय और अकम्पन भारी भट थे और दूसरे महोदर आदिक रणधीर वीर सब खेत रहे।

व्याख्या बडे बडे योद्धाओ का मारा जाना कहकर अब जगद्विख्यात योद्धाओ का निधान कहता है। दुर्मुख देवान्तक नरान्तक अतिकाय इन चार को रावण महाभट मानता है। इसके अतिरिक्त महोदर को रणधीर वीर मानता है। आदिक से वज्रदष्ट्र धूम्रकेतु आदि का ग्रहण है। यथा कुमुख अकपन कुलिसरद धूम्रकेतु अतिकाय। एक एक जग जीत सक ऐसे सुभट निकाय। रावण के कहने का तात्पर्य यह कि अब लका वीरो से शून्य सी हो रही है। युद्ध ठन गया है। अब तुम्हारी अतीव आवश्यकता पड गई। अत तुम्हारी नीद पूरी होने के पहिले तुम्हे जगाया है। इस भाँति रावण ने अपने मुख सूखने तथा चिन्ता का कारण कह सुनाया।

दो सुनि दसकधर बचन तब, कुभकरनु बिलखान।
जगदबा हरि आनि अब, सठ चाहत कल्यान॥६२॥

अर्थ दसशीष की वाणी सुनकर कुम्भकर्ण रो पडा। बोला: शठ! तू जगदम्बा का हरण करके अब कल्याण चाहता है।

व्याख्या अपने स्वजन महा महा सुभटो का निधन सुनकर कुम्भकर्ण रो पडा। क्योकि एक साथ हो उसे इतने आत्मीयो के मरण का समाचार मिला। वह एकदम स्थिति को समझ गया। रावण को कुल सहार का कारण समझकर बिगड उठा और शठ सम्बोधन करके बोला। जिस भाँति साधु राजाओ ने सीताजी को पहचान लिया। यथा सिख हमार सुनि परम पुनीता। जगदम्बा जानहु जिअ सीता। उसी भाँति नारदजीके उपदेश से उसने समझ लिया कि रामजी की स्त्री जगदम्बा सीताको इसने हरण किया। श्रीरामावतार हम लोगो के वध के लिए हुआ है। सो इसने सीता हरण करके राक्षसो के सहार का मार्ग निर्गल कर दिया। इसलिए कहता है कि जगदम्बा को हरण करके कल्याण चाहना शठता है। पूर्व मे

भी शुम्भ निशुम्भादि की ऐसी ही भावना हुई थी। 'मा वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम्। भज त्वं चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः। इत्यादि शुम्भ ने भी जगदम्बा से यही कहलाया था कि हे चञ्चल नेत्रवाली! तू मुझे या मेरे भाई को जैसी तेरी इच्छा हो स्वीकार कर ले। क्योंकि तू स्त्रियो मे रत्न है और हम लोग रत्नभुक् हैं और इसी प्रयत्न में शुम्भ निशुम्भ का संहार हो गया और तुमने तो जगदम्बा को हरण करके लका मे लाकर बिठा दिया है। तुम्हारा कल्याण कैसे होगा? तुम्हारा कल्याण का चाहना असाध्य साधन है।

भल न कीन्ह तै निसिचर नाहा। अब मोहि आइ जगाएहि काहा॥
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना॥१॥

अर्थ : हे राक्षसो के राजा! तुमने अच्छा नही किया। अब आकर मुझे क्या जगाया। हे तात! अब भी अभिमान को छोड़ो और राम को भजो तो कल्याण होगा।

व्याख्या : तुम राक्षसो के नाथ हो। तुम्हे ऐसा कर्म न करना चाहिए जिससे सब राक्षसों का नाश हो जाय। देखो तुम्हारे अपराध से राक्षस मात्र का संहार हो रहा है। मुझे जगाया तो तुमने पर काम बिगड़ने पर। अब मेरे जागने से क्या होगा। जगदम्बा का हरण हो गया है। इस समय जो खड़ा होगा सो सब मारा जायगा।

तुमने सीताहरण की जो कथा सुनाई तथा अब तक की कथा कही: उसमे अभिमान भरा है। अभिमान के कारण न तो यथार्थ बात समझ में आती है और न भजन हो सकता है। तुम्हारे अभिमान ने तुम्हे इस दर्जे तक पहुँचाया। अपने कल्याण के लिए तुमने हमे जगाया। सो कल्याण तो हमारे जागकर युद्ध करने से नही होगा। अभिमान के परित्याग करने और राम के भजने से अब भी सम्भव है।

है दससीस मनुज रघुनायक। जाके हनूमान से पायक॥
अहह बंधु तै कीन्हि खोटाई। प्रथमहि मोहि न सुनायेहि आई॥२॥

अर्थ : हे दसशीश! राम क्या मनुष्य हैं जिन्हे हनुमान् ऐसे दूत हैं, शोक है कि बन्धु होकर तुमने खोटापान किया जो पहिले ही आकर मुझे ये सब बातें न सुनाया।

व्याख्या : सिर तो तुम्हे कहने को दस हैं पर मोटी सी बात समझ मे नही आयी। हनुमान् की करणी तुमने आंखो देखी: कौतुक सिंधु बाँधि तब लंका। आयेउ कपि केसरी असका। रखवारे हति विपिन उजारा। देखत तोहि अच्छ तेहि मारा। जारि सकलपुर कीन्हेसि छारा। ऐसा हनुमान् जिसका दासत्व करता है वह क्या मनुष्य है। अभिमानके कारण ही तुम्हे अब भी हनुमान् वन्दर और राम नर मालूम हो रहे हैं।

तुम बन्धु हो, ऐसे कार्यके ठाननेके पहिले तुम्हे मुझसे सम्मति लेनी चाहिए

थी सो तुमने नहीं कया। जब हनुमान् दूत होकर आया था भला तब तो आकर मुझे सब बातें सुनाते। यह न करना तुम्हारा खोटापन है। तुमने बन्धु के योग्य कार्य न किया। इस बात का शोक है। अथवा तुम बन्धु हो, कुठाहर मे सहायता करना मेरा कर्तव्य है। यदि दूसरे ने ऐसा कार्य किया होता तो वह मेरे द्वारा दण्डनीय होता।

कीन्हहु प्रभु बिरोध तेहि देवक। सिव बिरंचि सुर जाके सेवक॥
नारद मुनि मोहि ग्यान जो कहा। कहतेउँ तोहि समय निरवहा॥३॥

अर्थ तुमने उस समर्थ देवता का विरोध किया जिसके शिव ब्रह्मादि देव सेवक है। नारद मुनि ने जो ज्ञान मुझसे कहा था वह मैं तुम्हे सुनाता। पर अब उसका समय निकल गया।

व्याख्या तुम देवताओका विरोध तो करते ही थे पर करते करते तुमने यहाँ तक कर डाला कि उस समर्थ देव से विरोध कर लिया। जिसके शिव और ब्रह्मादि सेवक हैं। शिव और ब्रह्मा का ही तुम्हे बल है। मैं नही समझता था कि तुमसे ऐसी मूर्खता होगी कि उनके स्वामी से तुम बैर मोल लोगे। यदि तुम मुझसे पहिले कहे होते तो मैं वह ज्ञान तुम्हे सुनाता जो नारद[1] मुनि ने मुझसे कहा था पर वह समय तो हाथ से निकल गया। अब तो युद्ध छिड गया और इतने आत्मीय मारे गये। अब उस ज्ञानका प्रकाश करना व्यर्थ है।

अब भरि अक भेटु मोहि भाई। लोचन सुफल करौ मै जाई॥
स्यामगात सरसीरुह लोचन। देखौ जाइ तापत्रय मोचन॥४॥

अर्थ हे भाई! अब अङ्क भर के मुझसे मिल ला। मैं जाकर अपने नेत्रो का सफल करूँ। श्याम शरीर और कमल लोचन तीनो तापो के मिटानेवाले का दर्शन करूँ।

व्याख्या तुम भाई हो। मेरी तुम्हारी अन्तिम भेंट है। इसलिए जी भरकर भेंट लो फिर मिलना नही होगा। अब तो मैं अपने नेत्रो को सफल करने जा रहा हूँ। सरकार का ध्यान कह रहा है कि श्याम शरीर है और कमल ऐसी आँखें हैं

---

१ एक दिन रात के समय कुम्भकर्ण विशालापुरी के पर्वत पर बैठे थे कि नारदजी को आते हुए देखा। कुम्भकर्ण ने पूछा कि महात्मा! कहाँ से आ रहे हो? उन्होने कहा कि मैं देवताओ की सभा से आ रहा हूँ। वहाँ की व्यवस्था सुनो। तुम दोनो भाइयो से बहुत दुःखी होकर देवता लोग विष्णु के शरण गये और प्रार्थना किया कि आप त्रैलोक्य के कण्टक रावण को मारिये। ब्रह्मदेव ने उसका निधन मनुष्य के हाथो निश्चित किया है। अतः उसके मारने के लिए आप नरावतार धारण कीजिये। विष्णु ने कहा ऐसा ही होगा। सो महाविष्णु सत्यसङ्कल्प ईश्वर रघुकुल में राम होकर अवतीर्ण होगे। वह तुम लोगो का बध करेगे। यह कहकर मुनिजी चल गये।

जिससे आधिभौतिक आधिदैविक और आध्यात्मिक ताप मिट जाता है। तथा : मामवलोकय पंकज लोचन। कृपा बिलोकन सोच बिमोचन। कुम्भकर्ण के वाक्यों में सरकार की भक्ति भरी है। पहले के राक्षस भी जानते थे कि नेत्रो की सफलता हरिदर्शन में ही है।

दो. रामरूप गुन सुमिरत, मगन भयेउ छन एक।
रावन माँगेहु कोटि घट, मद अरु महिष अनेक ॥६३॥

अर्थ : रामजी के रूप और गुण को स्मरण करके एक क्षण के लिए मग्न हो गया। तब रावण ने करोड़ो घडा मद्य और बहुत से भैंसे माँगे।

व्याख्या : सरकार का रूप और गुण दोनों का स्मरण किया। बिना अनुभव के स्मरण होता नही है। अतः मालूम होता है कि नारदजी से सुनकर ध्यान में उसने अनुभव किया था। केवल रूप के स्मरण से काष्ठ पाषाणमयी मूर्ति की भाँति मूर्ति ध्यान मे आती है। यदि साथ साथ गुणों का भी स्मरण हो तब जीती जागती मूर्ति ध्यान मे आ सकती है। अतः दोनो का स्मरण किया और स्मरण करते ही एक क्षण के लिए मग्न हो गया। देहाध्यास जाता रहा। रावण ने देखा कि कामे तो बिगड़ा चाहता है। वह इनकी प्रकृति से खूब वाकिफ : परिचित था जानता था कि जहाँ इनके सामने इनका प्रिय भक्ष्य और पेय आया तहाँ इनका ज्ञान ध्यान सब गया। अतः उसने तुरन्त कोटिघट मद्य माँगा। इतने से कम में कुम्भकर्ण की तृप्ति नही हो सकती थी। मद्य पीनेवाले के लिए चिखना चाहिए। जिसे वे बीच बीच में खाते जायँ। अतः चिखना के स्थान में अनेक महिष माँगे।

महिष खाइ करि मदिरा पाना। गर्जा बज्राघात समाना ॥
कुम्भकरन दुर्मद रन रंगा। चला दुर्ग तजि सेन न संगा ॥१॥

अर्थ : भैंसे खाकर और मद्य पीकर वह वज्रपात की भाँति गरजा। कुम्भकर्ण रणरङ्ग मे दुर्मद था। वह बिना सेना साथ लिये किले के बाहर निकलकर चला।

व्याख्या : सामग्री पहिले से प्रस्तुत थी। रावण के इशारे की देर थी। सब सामान आ गया। कुम्भकर्ण की दृष्टि बहिर्मुख होते ही खाद्य पेय पर पड़ी। खाना पीना आरम्भ कर दिया। जब खा पी चुका तो मस्त होकर गर्जा। मालूम हुआ कि बिजली गिरी। गर्जकर आप चल पड़े। भाई से मिलना भूल गये। रणरङ्ग मे उसका मद आज तक कोई चूर्ण न कर सका। इसलिए दुर्मद है। दुर्ग से रक्षा होती है। उसके बाहर निकल पड़ा और सेना भी साथ न ली। किसी को कुछ गिनता नहीं। मुझे किसी रक्षा की क्या आवश्यकता है? वानर भालु के लङ्का घेरने के पहिले ही बाहर निकल पड़ा।

देखि बिभीषनु आगे आयेउ। परेउ चरन निज नाम सुनायेउ ॥
अनुज उठाइ हृदय तेहि लायो। रघुपति भगत जानि मन भायो ॥२॥

अर्थ : देख करके विभीषण आगे आया। चरणों पर गिरा और अपना नाम सुनाया। उसने उठाकर भाई को कलेजे से लगा लिया। रामजी का भक्त जान करके मनमें अच्छा लगा।

व्याख्या : विभीषण ने देखा कि बड़े भाई साहब चले आ रहे हैं। इनसे विदा नही हुए थे। लङ्का छोड़ने के समय ये सो रहे थे। उस समय जगाये भी नही जा सकते थे। अतः इस समय उनके सामने गये। उनके चरणो पर गिरे। वह मद से मत्त था। उसका पहिचानना कठिन था। अतः अपना नाम सुनाया कि मैं विभीषण आपको प्रणाम करता हूँ।

छोटा भाई है। इस लिए कुम्भकर्ण ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया। समझता था कि यह अन्तिम भेंट है। रावण मन में नही भाया था। यथा : भल न कीन्ह तैं निसिचर नाहा। अब मोहि आइ जगाएहि काहा। क्योंकि रामजी का वैरी था। वैरभाव से भजन करनेवाले को रसोत्पत्ति नही होती। अतः उनकी भागवतो मे गणना नही है। विभीषण पर कुम्भकर्ण का प्रेम है। क्योंकि महाभागवत हैं।

तात लात रावण मोहि मारा। कहत परमहित मन्त्र बिचारा॥
तेहिं गलानि रघुपति पहिं आयेउँ। देखि दीन प्रभु के मन भायेउँ॥३॥

अर्थ : हे तात! रावण ने मन्त्र विचार के समय परमहित करते हुए मुझे लात से मारा। उसी ग्लानि से रामजी के पास आया। दीन जानकर मैं सरकार को प्रिय लगा।

व्याख्या : विभीषण जानते हैं कि कुम्भकर्ण कम से कम अपने घर के लिए वाजिब पसन्द है। यद्यपि मुझसे प्रेम है। फिर भी रावण के सङ्कोच से सरकार से लड़ने जा रहा है। अतः अपने विरोधी दल मे आने का कारण कह रहे है।

मुझे रावण ने लात मारा : शूल मारता गदा मारता खड्ग मारता तो मुझे कष्ट नही था। किन्तु मुझे लात मारा। मैं तपस्या मे शरीक यथा : कीन्ह बिबिध तप तीनिउ भाई। राज्य मे शरीक यथा : करत राज लंका सठ त्यागी। सेवा मे शरीक यथा : सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महँ जीभ बिचारी। सो मुझे लात मारा। वह भी भरी सभा मे जबकि मन्त्र विचार हो रहा था। उस समय सबको सब कुछ कहने का अधिकार होता है और मैंने तो परमहित कहा था।

विभीषण कहते हैं कि वही ग्लानि मेरे हृदय मे बैठ गयी। संभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू। मैं संसार में मुख दिखलाने लायक नही रह गया। 'जिअसि सदा सठ मोर जिआवा। रिपु कर पच्छ मूढ तोहि भावा। सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती। इस भाँति मेरी भर्त्सना करके मेरा त्याग किया। दूसरी जगह कही शरण नही थी। यथा : नाहिन मोहि और कतहुँ कछु जैसे काग जहाज को। अत. मैं दीन होकर प्रभु के शरण आया। मेरी दशा पर उन्होने दया की। उनको दीन प्यारे होते हैं। यह उनका स्वभाव है। यथा ' बंदौ सीताराम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न।

सुनु सुत भयउ काल बस रावन । सो कि मान अब परम सिखावन ॥
धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषन । भयेउ तात निसिचर कुल भूषन ॥४॥
बंधु बंस तै कीन्ह उजागर । भजेहु राम सोभा सुखसागर ॥५॥

अर्थ : बेटा ! सुनो रावण काल के वश हो गया । वह क्या अब परम शिक्षा मान सकता है ? हे विभीषण तुम धन्य हो धन्य हो धन्य हो । हे तात ! तुम निशिचर कुल में भूषण हुए । हे बन्धु ! तुमने वंश को उजागर कर दिया । तुमने शोभा और सुख के सागर रामजी का भजन किया ।

व्याख्या : कुम्भकर्ण अत्यन्त प्रेम से विभीषण को पुत्र कहता है । अथवा उसी को नरक से उद्धार करनेवाला समझकर पुत्र कह रहा है । जब कोई अत्यन्तहित सिखावन न सुने तो समझ लेना चाहिए कि इसका बड़ा अनिष्ट होनेवाला है । यह भवितव्यता के वश है । नहीं तो हितवचन किसे अच्छा नहीं लगता । जो काल के वश हो जाते हैं वे दीप बुझने का गन्ध नहीं सूँघ सकते । ध्रुव को नहीं देख सकते और न अतिहित वचन सुन सकते हैं । यथा : दीपनिर्वाणगन्धञ्च ध्रुवञ्चातिहितं वचः । न जिघ्रन्ति न पश्यन्ति न शृण्वन्ति गतायुषः । सो रावण कालवश हो गया है । मैंने भी कहा : अजहूँ तात त्यागि अभिमाना । भजहु राम होइहि कल्याना । इसके उत्तर में जब मद्य और महिष आया तब मैं समझ गया कि मेरी बात मन में नहीं बैठी । युद्ध की तैयारी के लिए यह सब हो रहा है ।

भूयोर्थ में तीन बार धन्य शब्द का प्रयोग किया । अथवा निशिचरकुल-भूषण होने के लिए प्रथम बार धन्य कहा । वंश उजागर करने के कारण दूसरी बार धन्य कहा । रामजी के भजन करने के कारण तीसरी बार धन्य कहा । भाव यह कि तुम निशिचरकुल-भूषण हुए । निशिचर का नाम कोई सवेरे उठकर नहीं लेता । सो तुम पुण्यश्लोक हो गये । अब सब लोग सवेरे उठकर तुम्हारा नाम लेवेंगे । तुम्हारे कारण वंश उजागर हुआ । यथा : सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत । श्रीरघुबीर परायन जेहि नर उपज बिनीत । कारण देता है कि तुमने शोभासुखसागर रामजी का भजन किया और सबने तो द्रोह किया । मैं भी द्रोह करने ही जा रहा हूँ । अतः तुम्हीं अकेले भजन करनेवाले निकले । शोभासागर के भजन करते समय भी सुख और सुखसागर की प्राप्ति ही जीवमात्र का इष्ट है ।

दो. बचन कर्म मन कपटु तजि, भजेहु राम रनधीर ।
जाहु न निजपर सूझ मोहि, भयेउँ काल बस बीर ॥६४॥

अर्थ : मनसा वाचा कर्मणा कपट छोड़कर रणधीर रामजी का भजन करना । अब जाओ मुझे अपना पराया नहीं सूझ रहा है । हे वीर ! मैं काल के वश हो गया हूँ ।

व्याख्या : कुम्भकर्ण ने देखा कि जब वह ग्लानि के कारण रामजी के पास गया है तो ग्लानि के कारण के हट जाने से पलट भी सकता है । अतः शिक्षा दे रहे

हैं कि राक्षसी प्रकृति से सावधान रहना। रणधीर राम के भजन में मनसा वाचा कर्मणा कपट को स्थान न मिलने पावे। वे रणधीर हैं। मुझको रावण को सबको मारेंगे। तुम सच्चे हृदय से सहायता करना। अब मेरा या रावण का कोई सङ्कोच नहीं। यथा : करइ स्वामि हित सेवक सोई। दूपन कोटि देइ किन कोई। अब मैं भी कालवश हो गया। क्योंकि मुझे भी अपना पराया नहीं सूझ रहा है। यही काल विवश का लक्षण है। यथा : निकट काल जेहि आवत साईं। तेहि भ्रम होइ तुम्हारहि नाईं। मैं बहुत अपने को सँभाले हूँ। फिर भी मेरी तबियत मेरे हाथ में नहीं है। नहीं जानता किस समय क्या कर बैठूँ। अतः तुम भी मेरे सामने से चले जाओ। मेरा ठिकाना नहीं। कहीं तुम्हारे ऊपर ही चोट न कर बैठूँ।

बंधुवचन सुनि चला विभीपन। आयेउ जहँ त्रैलोक विभूपन॥
नाथ भूधराकार सरीरा। कुम्भकरन आवत रनधीरा॥१॥

अर्थ : भाई का वचन सुनकर विभीषणजी चले। और जहाँ त्रैलोक्य विभूषण रामजी थे वहाँ आये। : बोले हे नाथ! पर्वताकार शरीरवाला रणधीर कुम्भकर्ण आरहा है।

व्याख्या : जो कुम्भकर्ण ने कहा कि : जाहु न निज पर सूझ मोहि। विभीषणजी तुरन्त लौट पड़े कि बात ठीक है। इनका क्या ठिकाना। भयेउ काल बस बीर। कहकर उन्होने स्पष्ट ही कह दिया कि मैं युद्ध करके मरूँगा। अब मेरा प्रहार आरम्भ होगा। उस समय तुम भी मिल जाओगे तो मार ही डालूँगा। इसलिए चले जाओ। अतः विभीषण ने प्रणाम भी न किया और तुरन्त लौट पड़े और सीधे सरकार के पास आये। निशिचर कुलभूषण त्रैलोक्य विभूषण के पास आये। भाव यह कि यह बड़ा वीर है। यह दूसरे के मान का नहीं है।

सरकार को सूचना देते हैं कि आप मेरे नाथ हैं अथवा सारे समाज के नाथ हैं। सो समाज पर भारी संकट उपस्थित है। यह देखिये जो पर्वताकार दिखलाई पड़ता है। यह रणधीर कुम्भकर्ण है। सरकार को ही लक्ष्य करके चला आरहा है। पर्वताकार शरीर से उसका पराक्रम और रणधीर से उसका युद्ध कौशल भी द्योतित किया।

एतना कपिन सुना जब काना। किलकिलाइ धाए बलवाना॥
लिये उठाइ बिटप अरु भूधर। कटकटाइ डारहिं ता ऊपर॥२॥

अर्थ : इतनी बात कान से सुनते ही बलवान् बन्दर लोग किलकारी देते हुए दौड़े। पेड़ और पर्वत उखाड़ लिया और कटकटाकर उसके ऊपर डालने लगे।

व्याख्या : विभीषण ने तो सरकार से अर्ज किया। परन्तु वहाँ पर प्रधान बन्दर थे, उन लोगों ने सुन लिया कि सरकार को लक्ष्य करके आरहा है। अतः इसे रास्ते में ही मार गिराना चाहिए। यह निश्चय करके बड़े उत्साह से दौड़े। देखा कि सचमुच वह तो साक्षात् पर्वत ही है। अतः इसकी सेवा पर्वत और वृक्ष से ही

अर्थ · फिर उसने नल नील को पृथिवी पर पछाड दिया और भी योद्धाओ को जहाँ तहाँ पटककर डाल दिया। बन्दरो की सेना भाग चली। अत्यन्त भय से सन्त्रस्त हो गयी। कोई सामने नही आरहा है।

व्याख्या अभी तक तो कुम्भकर्ण ने वानरी सेना पर प्रहार ही नही किया था। उनके चोटो को कुछ न गिनता हुआ लोचन सुफल करने के लिए बढता ही चला जाता था। पर हनुमान्‌जी के घूँसे से वह समझ गया कि शत्रु उपेक्षा करने लायक नही है। अत प्रधान प्रधान बन्दरो पर चोट करने लगा। सेनापति नील तथा नल को पृथिवी पर पटक दिया। घर से कोई शस्त्र लेकर चला नही है। शस्त्र की आवश्यकता नही समझता था कि भुजबल ही यथेष्ट है। जिसे पाया उसे पृथिवी पर पटका। ऐसे बडे बडे वीरो के गिरने से वानरी सेना मे भगदड मच गयी। सब बन्दर भालु अत्यन्त डर गये। किसी का साहस सामने जाने का नही रहा।

दो. अगदादि कपि मुरछित, करि समेत सुग्रीव।
काँख दाबि कपिराज कहुँ, चला अमित बलसीव ॥६५॥

अर्थ अङ्गदादि बन्दरा को सुग्रीव के सहित मूर्च्छित कर दिया और सुग्रीव को काँख मे दबाकर अमित बलसीव चल पडा।

व्याख्या अब वानरी सेना मे अङ्गद और सुग्रीव दो ही रह गये थे। सो इनको भी मूर्च्छित किया। सुग्रीव को पहिचानता था। इन्हे काँख मे दबाकर लंका की ओर चला। सुग्रीव के पकडे जाने से उसने अपनी जीत मान ली। रावण ने कहा था कि बन्दरो ने राक्षसो को मारा और बडे बडे योद्धाओ का सहार किया। कुम्भकर्ण रावण के पास सुग्रीव का शरीर लेकर चले। इस प्रमाण मे कि वानरी सेना का सत्यानाश हो गया। कुम्भकर्ण अमित बलसीव है। सुग्रीव ऐसे योद्धा को काँख मे दाबे चला जा रहा है। मानो बाली द्वारा रावण के काँख मे दाबे जाने का बदला चुका रहा है।

उमा करत रघुपति नरलीला। खेल गरुड जिमि अहिगन मीला ॥
भृकुटि भग जो कालहि खाई। ताहि कि सोहै ऐसि लराई ॥१॥

अर्थ हे उमा! रघुपति नरलोला करते है। जैसे गरुड साँपा म मिलकर खेल करे। जिसका भृकुटि विलास काल को खा जाता है। उसे क्या ऐसी लडाई शोभा देती है?

व्याख्या जहाँ किसी प्रकार की कच्चाइ सरकार की ओर से दिखायी पडती है तुरन्त वही शिवजी अपने श्रोता को सावधान करते जाते हैं। यहाँ सरकार सीधे सीधे नरलीला कर रहे हैं। सेना मारी जा रही है। सेनापति लोग घायल मूर्च्छित हैं। मित्र राजा जिसकी सेना लेकर चढाई हुई है शत्रु द्वारा पकडा गया। सरकार का किया कुछ हो नही रहा है। ऐसे स्थलो मे ही लोगा को मोह होता है। अत शिवजी कहते हैं कि यह सरकार की नरलीला है। यथा जस काछिअ तस चाहिअ

नाचा । अतः मनुष्य का अनुकरण करते हुए खेल कर रहे हैं । उन्हें किसी प्रकार का कुछ भी न भय है न अनिष्ट की शङ्का है । बिगड़ती हुई बात को जहाँ से चाहें सँभाल सकते हैं । जैसे गरुड़ कौतुकवश साँपो में मिलकर खेले । साँपों को पता नहीं कि यह गरुड़ हैं । उसे सामान्य जीव समझकर उस पर अपना पौरुष दिखलावें और गरुड़ कौतुक वश उस पौरुष से अपने को पराभूत सा दिखलावें । यह गरुड़ का विनोद है । सर्प तो उनके भक्ष्य हैं । सर्पों से उन्हें भय कैसा ।

भृकुटि मध्य में आज्ञाचक्र है । वहीं से आज्ञा होती है । प्रभु लोगों के इच्छानुरूप अनुचर केवल भृकुटि विलास देखकर आचरण करते हैं । यहाँ तो भृकुटि विलास में ही यह सामर्थ्य है कि काल को खा जावे । संकल्पमात्र से काल की इतिश्री हो जाय । यथा : उमा काल मर जाकी इच्छा । ऐसे प्रभु को क्या ऐसी लड़ाई शोभा देती है ? भाव यह कि रावणादि ने तो काल के भय से तप करके व्याज से अमरत्व माँगा । फिर भी अमरत्व नहीं मिला । काल के वश में ही रह गये । उस काल की स्थिति भी जिसकी इच्छा पर निर्भर करती है । उसकी लड़ाई काल से तो शोभा देती ही नहीं । कुम्भकर्णादि तो काल के कलेवा हैं । इनके साथ क्या शोभा देगी । युद्ध की शोभा तो बराबरवाले से है और सरकार के बराबर कोई है नहीं । न हो सकता है । अतः रणशोभा के लिए कभी पराभूत से हो जाते हैं । यथा : रनसोभा लगि आपु बँधावा ।

जगपावनि कीरति बिस्तरिहहिं । गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहहिं ॥
मुरुछा गइ मारुतसुत जागा । सुग्रीवहि तब खोजन लागा ॥२॥

अर्थ : संसार को पवित्र करनेवाली कीर्ति का लोग विस्तार करेंगे । जिसका गान करके ससार सागर का लोग सन्तरण करेंगे । मूर्च्छा गयी । हनुमान्‌जी जागे । तब सुग्रीव को खोजने लगे ।

व्याख्या : प्रश्न उठेगा कि सरकार तब ऐसा युद्ध क्यों करते हैं कि जिसमें उनकी शोभा नहीं ? उसी का उत्तर देते हुए कवि कहते हैं कि लोकोपकार के लिए भक्तों को अभय करने के लिए । परम पद की प्राप्ति बड़ी कठिन है । बड़े बड़े *साधनाओं से भी दुष्प्राप्य है । उसकी प्राप्ति भगवद्यश के गान और श्रवण से* अनायासेन होती है । उसके गान और श्रवण से पुण्यसस्कार अन्तःकरण मे होता है और उससे अन्तःकरण पवित्र हो जाता है । इसलिए सरकार की कीर्ति को जगपावन कहा है । यथा : तब निज भुजबल राजिव नैना । कौतुक लागि संग कपि सेना । कपिसेन संग संघारि निसिचर राम सीतहि आनिहैं । त्रैलोक पावन सुजस सुर मुनि नारदादि बखानिहैं । जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई । रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई ।

हनुमान्‌जी के मूच्छित होने से कपिसेना पर आपत्ति आगयी । वैराग्य के मूच्छित होते ही साधन समूह अनाथ हो गये । जब मूर्च्छा बीती तो देखा कि सब वानर वीर रणक्षेत्र में पड़े हैं । कुम्भकर्ण चला गया । पर राजा सुग्रीव नहीं दिखाई

पड रहे हैं। अत उन्हे खोजने लगे। कही उन्हे कुम्भकर्ण ले तो नही गया। यदि राजा बन्दी हो गये तो युद्ध ही समाप्त हो जायगा।

सुग्रीवहु कै मुरुछा बीती। निबुक गयेउ तेति मृतक प्रतीती ॥
काटेसि दसन नासिका काना। गरजि अकास चलेउ तेहि जाना ॥३॥

अर्थ : सुग्रीव भी मूर्च्छा से जागे तो वे : कांख से निकल गये। कुम्भकर्ण ने समझ रक्खा था कि मर गया। उन्होने कुम्भकर्ण के नाक और कान को दांत से काट लिया और गर्जन करके आकाश की ओर चले तब उसने जाना।

व्याख्या : इधर हनुमानजी सुग्रीव को खोज रहे हैं। उधर सुग्रीवजी भी मूर्च्छा से जग गये तो अपने को शत्रु के कांख मे दबा पाया। उसने समझ रक्खा था कि सुग्रीव मर गया। इसलिए उसने सावधानी से नही दबा रक्खा था। अतः सुग्रीवजी उसकी कांख से निकल गये।

सुग्रीवजी अपने इस पराभव को न सह सके। अत. उसे जीत मे परिणत करने के लिए उसके नाक कान को दांत से काट लिया। अति लाघव से काटा बहिन की भांति भाई भी धोखे मे रह गये। नाक कान कट जाने पर सूर्पणखा को पता चला और सुग्रीव जब गर्जन करके आकाश की ओर चले तब कुम्भकर्ण जान पाया।

गहेउ चरन धरि भूमि पसारा। अति लाघव उठि पुनि तेहि मारा ॥
पुनि आयेउ प्रभु पहिं बलवाना। जयति जयति जय कृपानिधाना ॥४॥

अर्थ : उसने सुग्रीव का पैर पकडकर पृथ्वी पर पछाडा पर सुग्रीव ने अत्यन्त फुरती से उठकर फिर उसे मारा। तत्पश्चात् बलवान् सुग्रीव सरकार के पास कृपानिधान की जय हो जय हो जय हो करते हुए आगये।

व्याख्या : कुम्भकर्ण समझ न सके कि क्या हुआ ? देखते हैं कि शत्रु आकाश की ओर मेरे पहुँच से बाहर होने के लिए जा रहा है। पकडने को झपटे तो टाँग पकड पाये। उसने पृथ्वी पर पटका परन्तु राजा सुग्रीव मे बडी फुरती है। पृथ्वी पर पहुँचते न पहुँचते उठ गये और फिर उसे मारा और वहाँ से सरकार के पास निकल गये। सुग्रीव के लाघव से स्वय वालि हैरान था। वालि ने बहुत सुग्रीव का पीछा किया था। पर सुग्रीव हाथ न आये। सो यहाँ भी कुम्भकर्ण के हाथ से निकल गये। बड़ी भारी जीत हुई है। कुम्भकर्ण को नाक और कान काटकर आ रहे हैं। अतः सरकार का जयघोष करते उनके पास आये।

नाक कान काटे जिय जानी। फिरा क्रोध करि भै मन ग्लानी ॥
सहज भीम पुनि बिनु स्रुति नासा। देखत कपिदल उपजी त्रासा ॥५॥

अर्थ : नाक कान कट गया। यह जानकर उसके मन मे बड़ी ग्लानि हुई

और वह क्रुद्ध होकर लौट पडा। एक तो वह स्वभाव से ही भयकर था। तिसपर नाक कान भी नही। उसे देखते ही वानरी सेना त्रस्त हो गयी।

व्याख्या जब कुम्भकर्ण को मालूम हुआ कि नाक कान कट गये तो उसके मन मे बडी ग्लानि हुई। बडे प्रसन्न होकर लका आ रहे थे कि जीतकर आ रहा हूँ। वानरराज का शव उपहार रूप मे रावण को देने के लिए कांख मे दाबे लिये जा रहे थे। एकाएक नाक कान कट जाने से सब बात ही बिगड गयी। अब कौन मुँह लेकर लङ्का जाँय। अब तो मर जाना ही ठीक है। अत क्रुद्ध होकर वानरी सेना की ओर लौटा।

सौम्य स्वरूप भी बिना नाक कान के भयानक हो जाता है। नासिका मुखमण्डनम्। नाक ही मुख की शोभा है। कुम्भकर्ण तो स्वभाव से ही भयकर थे। अब नाक कान बिना तो महा भयकर हो गये। उसे देखकर ही वानरी सेना सन्त्रस्त हो उठी।

दो जय जय जय रघुबस मनि, धाये कपि दै हूह।
एकहि बार तासु पर, छाडेन्हि गिरि तरु जूह ॥६६॥

अर्थ रघुवशमणि की जय हो जय हो जय हो ऐसा जयकार लगाकर बन्दर हूह करके दौडे। एक साथ ही उस पर पर्वत और पेड का समूह फेंका।

व्याख्या सन्त्रस्त होने पर रघुवशमणि रामजी के नाम का जयकारा लगाया और बानर लोग पर्वत और वृक्ष लिये हुए दौड पडे। चारो ओर से हूह करके दौडे और सबने एक साथ ही उसपर पर्वत और पेड फेंके। वानरी सेना समुद्र की भाँति उमडी हुई चारो ओर से चली आ रही है और सब ओर से पर्वत और वृक्ष के प्रहार हो रहे हैं। भयानक रूप कुम्भकर्ण उस सेना समुद्र के बीच मे पहाड की भाँति दिखाई पड रहे हैं।

कुभकरन रनरग बिरुद्धा। सनमुख चला काल जिमि क्रुद्धा॥
कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई। जनु टिड्डी गिरि गुहाँ समाई॥१॥

अर्थ कुम्भकर्ण रणरङ्ग मे विरुद्ध होकर सन्मुख चला मानो क्रुद्ध काल है। करोडो बन्दरो को पकड पकडकर खाये जाता है। मानो टिड्डी पवत की कन्दरा मे समाई जाती हैं।

व्याख्या कुम्भकर्ण रणरङ्ग मे दुर्मद है। सो रणरङ्ग मे विरुद्ध हुआ। जब सोकर जागा था तब कवि ने उपमा दी थी कि जागा निसिचर देखिय कैसा। मानहु काल देह धरि वैसा। इस समय रणरङ्ग विरुद्ध है तो कपि कहते हैं कि क्रुद्ध काल की भाँति मालूम पड रहा है। काल तो यो ही प्राणियो को खाया करता है और यदि क्रुद्ध हो तो सहार उपस्थित हो जाय। यहाँ बन्दरो का सहार उपस्थित हो गया। करोडो बन्दरो को पकड पकडकर खा गया। फाँकता चला जाता है। मुँह चलाने की फुरसत नही। इसीलिए उसके मुख की उपमा गिरिगुहा से दिया और

बन्दरो की टिड्डी के दल से। सामने बढता बन्दरो का सहार करता चला जाता है। कोई रोकने मे समर्थ नही है।

कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा। कोटिन्ह मीजि मिलव महि गर्दा ॥
मुख नासा स्रवनन्हि की बाटा। निसरि पराहि भालु कपि ठाटा ॥२॥

अर्थ : करोडो को पकड़कर शरीर मे मसल डाला और करोडो को मीजकर पृथ्वी के गर्दे मे मिला दिया। मुँह नाक और कानो के रास्ते से बन्दर और भालुओ के ठट्ट निकलकर भागे जा रहे हैं।

व्याख्या : उसका रणमदमत्त होना वर्णन कर रहे हैं। करोडो बन्दरो को पकडकर शरीर मे मसल रहा है। मानो उबटन अभ्यङ्ग लग रहा है। करोडो को पकडकर पृथ्वी के गर्दे मे मिला रहा है। उनके अस्थिपञ्जर चूर्ण होकर धूलि मे मिल गये। अद्भुत काण्ड उपस्थित है। कुम्भकर्ण का शरीर इतना विस्तृत है कि बहुत बातो का तो उसे स्वय पता नही लगता है। वह बन्दरो को मुँह मे तो डालता चला जाता है पर इस बात का उसे पता नही कि वे पेट मे जाते हैं कि नही। वे मुख नासिका और कान के रास्ते से बाहर निकलकर भागे जा रहे हैं।

रन मदमत्त निसाचर दर्पा। बिस्व ग्रसिहि जनु एहि बिधि अर्पा ॥
मुरे सुभट सब फिरहि न फेरे। सूझ न नयन सुनहि नहि टेरे ॥३॥

अर्थ : रणमद मे मत्त होकर राक्षस ने ऐसा दर्प किया कि ससार को ही निगल जायगा। मानो ब्रह्मा ने उसे अर्पण कर दिया है कि तुम खा जाओ। सुभट लोग ऐसे भागे कि लौटाने से नही लौटते हैं। उन्हे न आँख से दिखायी पडता है और न पुकारने पर सुनाई पडता है।

व्याख्या : रण मदमत्त होकर कुम्भकर्ण वानरी सेना का ऐसा सहार कर रहा है और कोई उसे रोकनेवाला नही है। मानो ब्रह्मा ने उसे ससार ही दे डाला कि वह जिस भाँति चाहे वैसे नाश करे। किसी की सामर्थ्य नही कि हस्तक्षेप कर सके। प्रश्न उठेगा कि बडे बडे बीर वहाँ हैं तो उनकी दशा कहते हैं कि वे सब भाग निकले। यदि कोई उन्हे प्रोत्साहन करके फेरना चाहे तो वे फिरते नही। क्योकि त्रासातिरेक से न तो उन्हे सुझाई पडता है और न पुकारने पर उन्हे सुनाई देता है। त्रास से इन्द्रियाँ व्याकुल है। काम नही करती। केवल किसी प्रकार से भागकर प्राण बचाने के सिवा कुछ सूझ नही रहा है।

कुभकरन कपि फौज बिदारी। सुनि धाई रजनीचर धारी ॥
देखी राम बिकल कटकाई। रिपु अनीक नाना बिधि आई ॥४॥

अर्थ 'कुम्भकर्ण ने शत्रु सेना को तितर बितर कर दिया' यह सुनकर राक्षसी सेना दौड पडी। रामजी ने देखा कि अपनी सेना विकल है। तिसपर शत्रु की सेना अनेक प्रकार की आ पहुँची।

व्याख्या वानरी सेना के इस प्रकार सहार का हाल जब लका पहुँचा त राक्षसी सेना दौड पडी कि वानरी सेना को निर्मूल करनेका इससे अच्छा समय मिलेगा। कुम्भकर्ण ने जो अकेले कर सकता था किया। सेना का व्यूह टूट गया भगदड मची हुई है। अब उन तितर बितर हुए सैनिको को कही जमने न देने लिए सेना की आवश्यकता है। इस भगदड के समय यदि हमलोग धावा करके उन खदेडते और मारते जाँय तो नि सन्देह निर्मूल कर देने मे हमलोग समर्थ हो जावेंगे नही तो यह छितराई हुई सेना समय पाकर फिर इकट्ठी हो जायगी। अत राक्षस सेना दौड आयी।

रामजी ने देखा कि यह चाल वानरी सेना को निर्मूल करने के लिए चल गयी है। अत इस नयी आयी हुई सेना का सामना करना चाहिए और अपनी भागते हुई सेना को सँभालना चाहिए। इस समय वानरी सेना बडे सकट मे है। कुछ क नही सक्ती।

दो सुनु सुग्रीव विभीपन, अनुज सँभारेहु सैन।
मैं देखौ खल बल दलहि, बोले राजिवनैन ॥६७॥

अर्थ सुग्रीव विभीपण और लक्ष्मण सुनो। तुम लोग वानरी सेना क सँभालो। मैं इस खल के बल और सेना को देखूँगा। यह बात राजीवनयन रामज ने कहा।

व्याख्या यहाँ दो भिन्न भिन्न कार्य हैं एक तो अपनी सेना को सम्भालन और दूसरा कुम्भकर्ण का तथा नयी आयी हुई अनेक प्रकार की राक्षसी सेना का सामन करना। अत पहिला काम तो रामजी ने सुग्रीव विभीपण और लक्ष्मणजी के सुपुर्द किया और दूसरा काम अपने ऊपर लिया। भाव यह कि कुम्भकर्ण तथा नयी आय हुई राक्षसी सेना का वध करने का भार स्वय अपने ऊपर लिया।

कर सारग साजि कटि भाथा। अरिदल दलन चले रघुनाथा ॥
प्रथम कीन्ह प्रभु धनुप टकोरा। रिपुदल बधिर भएउ सुनि सोरा ॥१॥

अर्थ हाथ मे सारङ्ग और कमर मे तरकस साजकर शत्रु सेना का सहार करने रघुनाथजी चले। प्रभु ने पहिले धनुप का टङ्कोर किया। जिसके शब्द से शत्रु की सेना बहरी हो गयी।

व्याख्या सारङ्ग दिव्य धनुप है। यह शत्रु के आघात से कट नही सकता और इससे छूटे हुए बाण बहुत दूर तक काम करते हैं, यह धनुप सरकार को परशुरामजी से मिला था। यथा दखि राम बल निज धनु दीन्हा। सरकार ने उस धनुप को साजा अर्थात् प्रत्यञ्चा चढाया और कमर में अक्षय तूणीर बाँधा। तब शत्रु सेना के सहार के लिए रघुनाथजी चले। कुम्भकर्ण युद्ध करन चले थे तो सेना साथ नहीं लिया। अकेले चले थे। इधर सरकार भी कुम्भकर्ण और उसकी सेना का सामना करने के लिए अकेले ही चल।

जब सरकार अकेले शत्रु की सेना का सामना करने चलते है तो सेना मे गडबड़ पैदा करने के लिए ऐसा धनुष का टङ्कार करते हैं कि उसके शब्द से शत्रु सेना बधिर हो जाती है। यथा : 'प्रभु कीन्ह धनुष टंकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा। भये बधिर व्याकुल जातुधान न ज्ञान तेहि अवसर रहा।' यह खरदूषण के युद्धका हाल है। वैसे ही इस बार भी ज्याघोष किया। जिससे राक्षसी सेना बहरी हो गयी।

सत्यसंध छाडे सरलक्षा। काल सर्प जनु चले सपक्षा॥
जहँ तहँ चले बिपुल नाराचा। लगे कटन भट बिकट पिसाचा॥२॥

अर्थ : सत्यप्रतिज्ञ रामजी ने लाख बाण छोडे। वे पक्षवाले काल सर्प की भाँति चले। जहाँ तहाँ बहुत से नाराच छूटे जिनसे विकट पिशाच भट कटने लगे।

व्याख्या : सरकार सत्यसन्ध हैं। कहकर चले हैं कि मैं देखउँ खलबल दलहि तो अकेले ही सबका सामना करेंगे। अतः एक लाख बाण चलाया अथवा निशाना ऐसा अचूक है कि लाख बाण छोडे खाली कोई न गया। वे बाण काल सर्प के समान थे। जिसे छू लिया वह नही बच सकता। बाण अन्तरिक्ष मार्ग से चलते हैं। अतः सपक्षकालसर्प से उपमा दिया। लोहे के बने बाण को नाराच करते हैं। ये नाराच जिधर जिधर से राक्षसी सेना आ रही थी उधर उधर चलाये गये। सो विकटभट पिशाच कटने लगे। पिशितमाचामति इति पिशाचः। मांस खाते हैं इसलिए उनका नाम पिशाच है। अर्थात् खल मनुजाद द्विजामिष भोगी कटने लगे। ये बन्दरो को खाने आये थे इसलिए पिशाच कहा।

कटहिं चरन उर सिर भुज दंडा। बहु तक बीर होहिं सत खंडा॥
घुर्मि घुर्मि घायल महि परही। उठि सँभारि सुभट पुनि लरही॥३॥

अर्थ : पैर छाती सिर और भुजाएँ कट रही थी और बहुत से वीर तो सौ टुकडे हो जाते थे। चक्कर खा खाकर घायल हो पृथिवी पर गिरते थे। सँभालकर वीर फिर उठ जाते थे और लडते थे।

व्याख्या : पहिले कहा कि 'लगे कटन भट बिकट पिसाचा' अब उनके कटने की विधि कहते हैं कि पाँच पाँच टुकड़े होकर गिर रहे हैं। ठीक इसी प्रकार का खरदूषण युद्ध हुआ था। यथा : कर सीस उर भुज चरन। जहँ तहँ लगे महि परन। बाणो का वेग और बढा तो वीर लोग सौ सौ टुकडे होने लगे। यथा खरदूषण के सग्राम मे : भटकटत तन सत खड। पुनि उठत करि पाखड।

बन्दर वीर कुम्भकर्ण के प्रहार से चक्कर खाकर गिरे थे। यथा : घुर्मित घायल परेउ तुरंता। अब राक्षस सरकार के प्रहार से चक्कर खाकर गिरे हैं परन्तु सुभट हैं। सँभालकर उठते हैं और फिर लड़ते हैं।

लागत बान जलद जिमि गाजहिं। बहु तक देखि कठिन सर भाजहिं॥

अर्थं बाण लगने पर बादल की भाँति गर्जते हैं। बहुत से कठिन बाण देखकर भागते हैं। कितने कबन्ध बिना सिर के दौड़ने लगे और पकड़ो पकड़ो मारो मारो यही धुन चढ़ी है। सो यही गा रहे है।

व्याख्या बाणवर्षा हो रही है। 'वर्षा घोर निसाचर रारी।' सो घन गर्जन भी होना चाहिए। इसलिए कहते हैं कि बाण लगते ही ऐसा चिल्लाते हैं मानो बादल गरज रहा है। यथा चिक्करहि लागत बान। धरपत कुधर समान। कितने तो कठिन बाणो को देखकर ही भाग चले। यथा अवलोकि खरतर तीर। मुरि चले निसिचर वीर। अब राक्षसी सेना मे भगदड पडी। सरकार के बाण का लाघव दिखलाते है कि बाण लगते ही सिर उड गया। वह अलग पडा हुआ धरु धरु मारु मारु कह रहा है और धड दौडता चला जा रहा है। यथा नभ उडहिं बहु भुज मुड। बिनु मौलि धावहिं रुड। शरीर मे इतना प्राण भरा हुआ है कि सिर कटने पर भी दोनो भाग पृथक् पृथक् काम कर रहे हैं। सिर धरु धरु मारु मारु धुन से गान कर रहा है और रुण्ड अलग तलवार चलाते चले जाते हैं। उन्हे शत्रु मित्र की पहिचान नही। मुण्ड गाते चल जा रहे हैं। उन्हे और कोई सुधि नही। बार बार उसी बात के कहने को गाना कहते हैं।

दो, छन महु प्रभु के सायकन्हि, काटे बिकट पिसाच।
पुनि रघुबीर निषग महु, प्रविसे सब नाराच ॥६८॥

अर्थं क्षण भर मे प्रभु के बाणो ने विकट पिशाचो को काट गिराया और तब सब बाण रामजी के तरकस मे प्रवेश कर गये।

व्याख्या लाख बाण छूटे थे। उन्होने क्षण भर मे नाना विधि रिपु अनीक का सहार कर दिया इस सेना मे विकट पिशाच थे, ये किसी भाँति मरनेवाले नही थे। टुकडे हो होकर गिरे फिर माया से उठ खडे होते थे। परन्तु इन बाणो ने उनकी इतिश्री करके ही छोडा। सरकार के अस्त्र-शस्त्र सब सजीव हैं। अपना काम करके सब के सब लौट आये और तरकस मे प्रवेश कर गये। वह अक्षय तूणीर था। बाणा के निकालने पर वह खाली नही होता था। सदा पूण रहता था। इसी भाँति प्रवेश करने से उसमे बाणो की सख्या बढती नही थी।

कुभकरन मन दीख बिचारी। हति छन माझ निसाचर धारी ॥
भा अति क्रुद्ध महा बल बीरा। करयौ मृगनायकनाद गभीरा ॥१॥

अर्थं कुम्भकर्ण ने मन मे विचारकर देखा कि एक पलमे राक्षसो सेना मारी गयी। दारुणबल वीर क्रुद्ध हुआ और गम्भीर सिंहनाद करके

व्याख्या इतनी शीघ्रता से राक्षसी सेना का सहार हो गया कि कुम्भकर्ण देखते ही रह गये। कुछ करते-धरते न बना। जब सब सेना मारी गयी तब विचार किया कि मेरी सेना तो पूरी की पूरी मारी गयी। इनको सेना तो फिर इकट्ठी हो गयी। अत इसी भाँति इनकी सेना को भी क्षण मात्र मे ही नष्ट करना चाहिए।

अपने पराजय से क्रुद्ध हुआ। बली वीरोमे दारुण है। पराक्रम से काम लेना चाहता है। अत गम्भीर सिंहनाद किया। और

कोपि महीधर लेइ उपारी। डारै जहँ मरकट भट भारी ॥
आवत देखि सैल प्रभु भारे। सरन्हि काटि रज सम करि डारे ॥२॥

अर्थ वह क्रोध करके पर्वत उखाड लेता था और जहाँ भारी वानर भट थे वहाँ फेंकता था। सरकार ने बडे पर्वतो को आते देखकर वाणोंसे काटकर उन्हे धूलि के समान कर डाला।

व्याख्या कुम्भकर्ण क्रोध करके पर्वत उखाडता है और वहाँ फेंकता है जहाँ बडे बडे सुभट बन्दर सुग्रीव अङ्गदादि इकट्ठे हैं। उसने यह निश्चय किया कि जो काम इन्होने लाख बाण से किया वही काम मैं पर्वतो के प्रहार से करूँगा। मैं भी वानरी सेना को इसी भाँति क्षण भर मे पीस दूँगा। अत पर्वत उखाडता है और उसे निशाना ठीक करके वहाँ फेंकता है जहाँ सुग्रीव, अङ्गद, जाम्बवानादि एकत्रित है। भाव यह कि पहले सुभटो का ही सफाया करो।

सरकार ने देखा बडे-बडे पर्वत चले आ रहे हैं। ये बन्दरो के मान के नही। इनके नीचे तो मेरी वानरी सेना पिस जायगी। अत अपनी सेना की रक्षा के लिए सरकार ने बनैती दिखाई। ऐसी शरवर्षा की कि पर्वत धूल होकर उड गये। रामजी की चोट से कुम्भकर्ण अपनी सेना की रक्षा न कर सके। पर कुम्भकर्ण की चोट से सरकार ने अपनी सेना बचा ली।

पुनि धनु तानि कोपि रघुनायक। छाडे अति कराल बहुसायक ॥
तनमहु प्रविसि निसरि सर जाही। जिमि दामिनि घनमाझ समाही ॥३॥

अर्थ फिर धनुष तानकर क्रुद्ध होकर रामजी ने बहुत से अत्यन्त कराल बाण छोडे। वे बाण शरीर मे प्रवेश करके पार निकल जाते थे। जैसे बिजली बादल मे समा जाती है।

व्याख्या शत्रु की सेना का सहार करके अपनी सेना की रक्षा करके कुम्भकर्ण पर सरकार टूटे। कहा था मैं देखौं खलबल दलहि। सो खल दल को तो देख चुके। अब खल केवल को देखते हैं। एक तो रघुनायक हैं। दूसरे क्रुद्ध हैं। तीसरे धनुष को ताना है। चौथे बहुत से अति कराल बाण छोड रहे हैं। भाव यह है कि सामान्य बाण कुम्भकर्ण पर काम नही कर सकते। इसलिए अति कराल बाण छोडे। तानने का भाव यह है कि धनुष को कान तक खैंचा जिसमे चोट गहरी हो।

कुम्भकर्ण का शरीर बडा दृढ है। पत्थर की चोट उसे मदार के फल की चोट मालूम होती है। यथा जिमि गज अर्क फलन्हि को मारयो उस कुम्भकर्ण के शरीर मे ये अति कराल बाण घुसकर पार निकले जा रहे हैं। जैसे बिजली चमककर

बादल में प्रवेश करती है। उस पार निकलकर बाण बिजली की भाँति अदृश्य हो जाते हैं।

सोनित स्रवत सोह तन कारे। जनु कज्जलगिरि गेरु पनारे॥
बिकल बिलोकि भालु कपि धाए। बिहँसा जबहि निकट कपि आए॥४॥

अर्थ : खून बहता हुआ उस काले शरीर पर ऐसा शोभायमान हुआ जैसे काजल के पहाड़ पर गेरू के पनाले शोभित हो। उसे विकल देखकर वन्दर भालू दौड़े पर जब वे निकट आगये तब हँसा।

व्याख्या : काली देह में शोणित स्राव की शोभा हुई। कज्जल के पर्वत के समान कुम्भकर्ण का शरीर : उनमें बाणों के किये हुए क्षतों से जो रक्त की धाराएँ बह निकली उनकी उपमा कवि गेरू के पनाले से दे रहे हैं। वीर की शोभा घायल होने पर अधिक हो जाती है। यथा : घायल वीर बिराजहि कैसे। इस समय कुम्भकर्ण बाणों की चोट से पर्वत न फेंक सका।

उसे विकल देखकर बन्दरों ने धावा बोल दिया। समझा कि इसने हम लोगों का बड़ा संहार किया है। इसका संहार हम लोगों के हाथ होना चाहिए। अब इसे हमलोग मार लेंगे। सरकार को बड़ा परिश्रम पड़ रहा है। सो अब अधिक परिश्रम की आवश्यकता नहीं। अब हमलोग काम बना लेंगे। बन्दरों का धावा देखकर सरकारने बाण चलाना बन्द कर दिया। उसने भी बन्दरों का धावा देखा। चुप रह गया कि इन सबों को निकट आने दो। जब निकट आगये तब जोर से हँसा।

दो. महानाद करि गर्जा, कोटि कोटि गहि कीस।
महि पटकै गजराज इव, सपथ करै दससीस॥६९॥

अर्थ : गर्जन करता हुआ बड़े वेग से दौड़ा। वह करोड़ों बन्दरों को पृथिवी पर इस भाँति पटकता था जैसे हाथी पटकता है और रावण की दोहाई देता था।

व्याख्या : दर्प से गर्जन करता है। इतना बड़ा धीर है कि इतना घायल होने पर भी बड़े वेग से दौड़ा। अब तीसरे प्रकार का युद्ध आरम्भ किया। न तो बन्दरो को खाता है न मर्दन करता है। उन्हे पकड़-पकड़कर हाथी की भाँति घुमाकर जमीन पर पटकता है। जिसमें शरीरके चिथड़े उड़ जायँ और रावण की दोहाई देता है कि एक को जीता न छोड़ूँगा। इस भाँति उसने करोड़ों बन्दरों को पटका। पहिले से ही कवि इसकी गजराज से उपमा देते हैं। पहिले कहा था : जिमि गज आक फलन्हि के मारे अब कहते हैं : महि पटकै गजराज इव।

भागे भालु बलीमुख जूथा। वृकु बिलोकि जिमि मेष बरूथा॥
चले भागि कपि भालु भवानी। बिकल पुकारत आरत बानी॥१॥

अर्थ : भालु और बन्दरों का जूथ भाग चला। जिस भाँति भेड़िये के देखने

से भेंड भागे। हे भवानी! बन्दर भालु विकल होकर आर्त्तवाणी से पुकार करते हुए भाग चले।

व्याख्या कहाँ तो भालु कपि उसे विकल देखकर उसे मारने के लिए आये थे वहाँ ये ही लोग विकल होकर भाग चले। भेडिया कितना ही घायल हो पर लाख भेंड उसका कुछ नही कर सकती। सो भेडिया मे सामर्थ्य है दौडकर भेडो पर चोट करता है। फिर भेड कैसे ठहर सकती हैं। वे जिस भाँति मे-मे करती हुई भागती हैं उसी भाँति बन्दर भालु भी भाग चले।

आगे-आगे भेंड मे-मे करती भागी जाती हैं और पीछे भयानक भेडिया पीछा करता चला जाता है। वही दशा बन्दर भालुओ की हुई कि वे आर्त्तनाद करते भागे जा रहे है। पीछे कुम्भकर्ण दौडा आ रहा है। एक बार भागे भालु बलीमुख कहा था। अब चले भागि कपि भालु कहते हैं। अर्थात् भागने मे कोई गौण नही है। दोनो की प्रधानता है। इसलिए कवि ने एक स्थल पर कपि को पहिले कहा। दूसरे स्थल पर भालु का नाम पहिले ले रहे हैं। सरकारी सेना का पराजय हो रहा है। इसलिए शिवजी भवानी को सावधान करते है। जैसा ऐसे अवसरो पर करते चले आये हैं।

यह निसिचर दुकालसम अहई। कपिकुल देस परन अब चहई॥
कृपा बारिधर राम खरारी। पाहि पाहि प्रनतारत हारी॥२॥

अर्थ . यह राक्षस तो दुर्भिक्ष की भाँति है। बन्दरो के कुलरूपी देश पर पडा चाहता है। हे कृपा वारिवाह खरारि रामजी! हे प्रणत के आर्त्ति के हरण करनेवाले! रक्षा करो रक्षा करो।

व्याख्या : दुर्भिक्ष ऐसी विपत्ति है जो देश के देश पर एक साथ ही पडती है और उसका सहार कर डालती है। अन्य राक्षस भी विपत्ति रूप थे। पर यह तो दुर्भिक्ष रूप है। दुर्भिक्ष किसी देश विशेष मे पडता है यह बन्दर कुलरूपी देश पर पडना चाहता है। दुर्भिक्ष पर किसी का बल नही चलता। इसी भाँति इस पर किसी का बल नही चल सकता। बादल यदि कृपा करें तो दुर्भिक्ष दूर हो। इस भाँति खरारि राम जो कृपा वारिधर हैं रक्षा करें तो हमारी रक्षा हो सकती है। खरारि कहने का भाव यह कि अकेले शत्रु सेना के सहार मे समर्थ हैं।

सकरुन बचन सुनत भगवाना। चले सुधारि सरासन बाना॥
राम सेन निज पाछे घाली। चले सकोप महा बलसाली॥३॥

अर्थ करुणा युक्त वचन सुनते ही भगवान् धनुष और बाण सुधारकर चले। रामजी ने अपनी सेना को पीछे कर लिया और महाबलशाली क्रुद्ध होकर चले।

व्याख्या . भगवान् षडैश्वर्य सम्पन्न हैं। सकरुण वचन सुनने से विचलित हो उठे। धनुष और बाणो को सुधार लिया जिसमे ठीक काम दे सकें। इतने बडे

अर्थ : उन भुजाओं के कट जाने पर वह खल कैसा शोभित हुआ जैसे पक्ष छेदन के बाद मन्दरगिरि की शोभा हुई। उग्र भयानक दृष्टि से सरकार को उसने देखा। मानो तीनों लोक को निगलना चाहता है।

व्याख्या : खल की शोभा भुजाछेदन पर ही होती है। क्योंकि वे : पर अकाज भट सहसबाहु से होते हैं। अब पर अकाज की सामग्री गयी। अतः वह खल शोभित हुआ। सुना जाता है कि पहिले पर्वतों को पक्ष थे। वे उड़ा करते थे। जहाँ पर जा बैठते थे वहाँ के ग्रामादि का संहार हो जाता था। मन्दर भारी पर्वत था। इसके बैठने से भारी संहार होता था। इन्द्र भगवान् ने पर्वतों के पक्षों को काटा। मन्दर के भी दोनों पक्ष काट डाले। तब जैसी मन्दर की शोभा हुई वैसे ही दोनों हाथ कटने पर कुम्भकर्ण की शोभा हुई।

कुम्भकर्ण ने उग्रदृष्टि से तब रामजी को देखा। इस भाँति लोचन सफल कर रहा है। यही तामसी रीति है। लोचन सफल करौं मैं जाई। यह बात रावण से कही थी। उसका साफल्य यों हो रहा है। दोनों हाथ कटने पर भी विकलता नहीं क्रोध की अभिवृद्धि मात्र हो रही है। उसके देखने में निगल जाने का भाव है। केवल रामजी को ही नहीं मानो लोक को निगलना चाहता है।

दो. करि चिक्कार घोर अति, धावा बदन पसारि।
गगन सिद्ध सुर त्रासित, हा हा हेति पुकार ॥७०॥

अर्थ : अत्यन्त घोर चिग्घाड़ करके मुँह फैलाकर दौड़ा। आकाश में सिद्ध और देवता डर गये। हाय हाय पुकारने लगे।

व्याख्या : फिर उसने अत्यन्त घोर चिग्घाड़ किया। अति वेदना होने से चिग्घाड़ किया और रामजी के निगलने के लिए मुख को फैलाकर दौड़ा। हाथ न होने पर भी मुख से काम लिया चाहता है। रामजी पर यह बड़ी भारी विपत्ति पड़ती देखकर आकाश से रणक्रीडा देखनेवाले सिद्ध और देवता हाय हाय हाय करने लगे। समझा कि रामजी इसके ग्रास मे अब नहीं बचेंगे।

सभय देव करुना निधि जान्यो। स्रवन प्रजंत सरासनु तान्यो॥
बिसिख निकर निसिचर मुख भरेऊ। तदपि महाबल भूमि न परेऊ॥१॥

अर्थ : करुणानिधि ने जान लिया कि देवता डर गये। सो कान तक धनुष का सन्धान किया और बाणों के समूह से उन्होंने राक्षस के मुख को भर दिया। फिर भी महाबल पृथ्वी पर नहीं गिरा।

व्याख्या : देवताओं का हाहाकार सुना। इससे जाना कि देवता लोग त्रस्त हो गये। सरकार करुणानिधि हैं। उनकी आर्त्ति को दूर करने के लिए धनुष को कान तक खैंचा। कान ही धनुष के खींचने की सीमा है। अभी तक तो बाणों को कुम्भकर्ण की त्वचा से काम पड़ा था। अब उसके वज्र से दाँतों से काम पड़ेगा। इसलिये धनुष को कान तक खैंचा। ओठ से लेकर, दाँत, मसूढ़, जिह्वा, लम्बिका

आदि मुख के भीतरी भाग सब बाणों से भर गये। मुख बाणों का पञ्जर हो गया। फिर भी कुम्भकर्ण इस महावेदना को सह गया। पृथिवी पर नहीं गिरा।

सरन्हि भरा मुख सनमुख धावा। कालत्रोन सजीव जनु आवा॥
तब प्रभु कोपि तीव्र सर लीन्हा। धर ते भिन्न तासु सिर कीन्हा॥२॥

अर्थ : मुख बाणों से भरा हुआ वह सन्मुख दौड़ा। जैसे काल का तरकस सजीव होकर चला आता हो। तब प्रभु ने क्रोध करके तीखा बाण लिया और उसके सिर को धड़ से जुदा कर दिया।

व्याख्या : मुख बाणों से भरा हुआ है। ऐसा मालूम पड़ा कि यह काल का तरकस है। तरकस जड़ होता है। चल नहीं सकता। परन्तु यह तरकस सजीव है और दौड़ता चला आ रहा है। यह राक्षस इतना भयानक है कि कवि इसकी उपमा प्रायेण कालसम्बन्धी ही देते हैं। इसके बैठने की उपमा : मानहु काल देह धरि बैसा। चलने की उपमा : सनमुख चला काल जिमि क्रुद्धा। पड़ने की उपमा : यह निसिचर दुकाल सम अहई। दौड़ने की उपमा : कालत्रोन सजीव जनु धावा।

उसके पराक्रम को देखकर सरकार को क्रोध हुआ। अतः तीक्ष्ण बाण ऐन्द्रास्त्र उठाया और उसके सिर को धड़ से अलग कर दिया।

सो सिरु परेउ दसानन आगे। बिकल भयेउ जिमि फनि मनि त्यागे॥
धरनि धसै धर धाव प्रचंडा। तब प्रभु काटि कीन्ह दुइ खंडा॥३॥
परे भूमि जिमि नभ ते भूधर। हेठ दाबि कपि भालु निसाचर॥

अर्थ : वह सिर जाकर रावण के आगे गिरा। वह ऐसा विकल हुआ जैसे मणि के बिना सर्प। उसका प्रचण्ड धड़ दौड़ने लगा और उससे पृथिवी दबने लगी। तब प्रभु ने काट कर दो टुकड़े कर दिये। वे पृथिवी पर ऐसे गिरे जैसे आकाश से पहाड़ गिरे और बन्दर भालू तथा निशाचरों को नीचे दबा दिया।

व्याख्या : बाण ने केवल सिर ही नहीं काटा उसे ले जाकर रावण के आगे गिरा दिया। सरकार के अस्त्र शस्त्र सब सजीव हैं। यह रावण को उपहार रूप में भेजा गया। रावण को बड़ा अभिमान था कि : कुम्भकर्ण अस बन्धु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि। सो कुम्भकर्ण तो गये। अब शक्रारि की पारी है। हनुमान्‌जी और अङ्गदजी भी ऐसे ही उपहार रावण को दे चुके हैं। यथा : रावन आगे परहिं ते जनु फूटहिं दधिकुण्ड। पर यह सरकार का भेजा हुआ उपहार बेजोड़ था। इसे देखने पर रावण का हाल बिना मणि के सर्प सा हो गया। यथा : मनि बिनु फनि जियै व्याकुल बेहाल रे। कुम्भकर्ण के बाद भी रावण जीवे। पर उसकी व्याकुलता और बेहालता नहीं गयी।

कुम्भकर्ण का रुण्ड उठा और वह दौड़ने लगा। उसके बोझ से पृथिवी दबने लगी। इस उपद्रव की शान्ति के लिए सरकार ने उस धड़ के भी दो टुकड़े किये।

वे टुकड़े इतने विशाल थे कि उनके गिरने से दोनों पक्ष की हानि हुई। बन्दर भालु भी दबे और राक्षस भी दबे।

तासु तेज प्रभु बदन समाना। सुरमुनि सबहि अचंभव माना॥
सुर दुन्दुभी बजावहिं हरखहिं। असतुति करहिं सुमन बहु वर्षहिं॥४॥

अर्थ: उसका तेज सरकार के मुख में समा गया। देवताओं और मुनियों ने आश्चर्य माना। आकाश में दुन्दुभी बजाते हैं और हर्षित होते हैं। देवता लोग स्तुति करके फूल बरसाते हैं।

व्याख्या: कुम्भकर्ण के शरीर से तब तेज निकला और सरकार के मुख मे चला गया अर्थात् सरकारी तेज में उसका तेज लीन हो गया। कुम्भकर्ण को सायुज्य मुक्ति हुई। ऐसे बड़े खल को ऐसी सद्गति कैसे मिली? इस बात पर देवताओं को भी आश्चर्य हुआ और मुनियों को भी आश्चर्य हुआ।

आज लंका के ऊपर देवताओं की दुन्दुभी बज रही है। जो सभीत होकर भृकुटी देखते रहे वे आज रावण के इतने बड़े अनिष्ट पर निर्भय होकर दुन्दुभी बजा रहे हैं। रावण ने भय के द्वारा देवताओं को अपनाना चाहा। यथा: तब मारिहौं कि छाड़िहौ भली भाँति अपनाइ। पर भय से कोई अपनाया नही जा सकता। ऊपर से आज्ञाकारी भी हो जायँ। पर भीतर से वैर ही बढ़ता है।

करि बिनती सुर सकल सिधाए। तेही समय देवरिषि आए॥
गगनोपरि हरि गुन गन गाये। रुचिर बीररस प्रभु मन भाये॥५॥
वेगि हतहु खल कहि मुनि गए। राम समर महि सोहत भए॥६॥

अर्थ: बिनती करके सब देवता चले गये। उसी समय नारदजी आये। आकाश पर से ही रामजी के गुणगण का गान किया। जो कि सुन्दर वीररस मे होने से सरकार के मन में अच्छे लगे: खल को जल्दी मारिये। यह कहकर मुनिजी चले गये और रामजी रणभूमि में शोभित हुए।

व्याख्या: विजय स्तुति करके देवता लोग चले गये। युद्ध देखने आये थे। कुम्भकर्ण का वध हो जाने से उस दिन का युद्ध समाप्त हुआ। अतः स्तुति करके चले गये। उसी समय भगवान् वीणापाणि नारदजी आगये। शिष्य को सद्गति से हर्षित होकर आये है और यह कहने आये हैं कि खल का शीघ्र वध कीजिये। भाव यह कि इस खल के वध के बाद मेघनाद खल आयेगा। इष्टदेव के बल पर युद्ध करेगा। इष्टदेव की मानरक्षा के लिए। रणशोभा के लिए आप बँध जायँगे। इतना ही बहुत है। इन्द्र की भाँति यदि बन्दी करके लंका ले जायगा तो कथा बहुत बढ़ेगी। अतः जल्दी कीजियेगा। नारदजी नीचे नही आये। आकाश मार्ग से ही सरकार के गुणगणो का गान किया। समयोपयोगी राग और पद्य में गान किया। वह वीररस से भरी हुई स्तुति सरकार को प्रिय लगी। साहित्य और सङ्गीत के योग से सरकार प्रसन्न हो गये। यथा: मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।

तेजोवर्धक गान के बाद सरकार को प्रसन्न देखकर मुनिजी यह कहकर चले गये कि : खल को शीघ्र मारिये। रणशोभा के लिए अधिक न खेलाइये। रामजी रणभूमि मे शोभित हुए। इस खल के वध के बाद जो शोभा सरकार की रणभूमि मे हुई उसे अब वर्णन करते हैं। विजय के पश्चात् तुरन्त ही देवताओ की स्तुति होने लगी। उसके बाद नारदजी आगये। कवि को वर्णन का अवसर ही नही मिला। अत. अब उस झाँकी का वर्णन कर रहे हैं।

[1]छं. संग्राम भूमि बिराज रघुपति अतुल बल कोसलधनी।
स्रमबिंदु मुख राजीव लोचन रुचिर तन सोनितकनी॥
भुजबल जुगल फेरत सर सरासन भालु कपि चहुँदिसि बने।
कह दास तुलसी कहि न सक छबि सेप जेहि आनन घने॥

अर्थ : जिसके बल का तौल नही है ऐसे कोसलाधीश रघुपति सग्रामभूमि मे शोभित हुए। कमल से नेत्रवाले मुख पर पसीने की बूँद और सुन्दर शरीर पर रक्त के कण शोभायमान थे। दोनो हाथो से धनुप और बाण फेर रहे हैं और वानर भालु चारो ओर से घेरे हुए हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि इस छवि को शेप भी वर्णन नही कर सकते जिन्हे बहुत से मुख हैं।

व्याख्या : लका पर चढाई करने मे समर्थ कोशलधनी ही हैं। रघुनाथ से उपक्रम करके। यथा : कर सारग साजि कटि भाथा। अरि दल दलन चले रघुनाथा। रघुपति से उपसहार करते हैं। पहिले महा बलशाली कहा था। अब अतुलबल कहते हैं। क्योंकि महाबल वीर का वध किया है। मुख पर श्रमविन्दु आ जाने से सरकार के मुखकमल की बडी शोभा हो जाती है। कुम्भकर्ण रक्त के छीटे श्याम शरीर पर पडे हुए हैं। इससे शरीर की अधिक शोभा हो रही है। दोनो हाथो से धनुप बाण फेर रहे हैं। बन्दर और भालू चारो ओर से घेरकर शोभा देख रहे हैं। इस रणाङ्गन मे वानरी सेना के बीच जैसी शोभा सरकार की हुई उसे सहस्र मुखवाले शेप भी नही कह सकते। कवि को तो एक ही मुख है। कैसे कहे? यहाँ कहने मे मुख की अधिकता पर लक्ष्य है। इसलिए श्रुति शारदा का उल्लेख नही किया अथवा श्रुति शारदा ने तो देखा ही नही। शेप का तो लक्ष्मणरूप से देखा हुआ है। फिर भी वे नही कह सकते।

दो. निसिचर अधम मलाकर, ताहि दीन्ह निज धाम।
गिरिजा ते नर मंदमति, जे न भजहिं श्रीराम॥७१॥

अर्थ : राक्षस अधम और पाप का घर था। उसे अपना धाम दिया। हे गिरिजे! वे मनुष्य मन्दमति हैं जो श्रीराम को नही भजते।

---

१. यह हरिगीतिका छन्द है।

व्याख्या : जन्म से राक्षस जिससे कोई साधन नही हो सकता उसमें भी यह अधम था। यथा : करै पान सोवै षट मासा। जागत होइ तिहूँ पुर त्रासा। पाप का तो घर ही था। यथा : सहज पाप प्रिय तामस देहा। यथा उलूकहि तम पर नेहा। ऐसे पापी को अपना धाम दिया। यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम। जहाँ जाकर फिर लौटना नही होता वह धाम सरकार का है। भाव यह कि श्रीराम ऐसे कृपालु और ऐसे समर्थ हैं कि अपने से वैर का सम्बन्ध रखनेवाले को निज धाम दिया। ऐसे श्रीराम का जिसने नरतन पाकर भजन न किया उसके मन्दमति होने मे सन्देह नही। यथा : *नरतन भवसागर कहँ बेरो। सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो।* कर्णधार सद्गुरु दृढ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा। जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ। सो कृतनिन्दक मंदमति आतमहन गति जाइ। पहिले कुम्भकर्ण की सायुज्यमुक्ति कहा। यहाँ सालोक्य मुक्ति कह रहे हैं। यहाँ कल्पभेद होने से मुक्ति मे भेद कहा। यह कथा शिवजी पार्वतीजी से कह रहे हैं। इसलिए ज्ञानघाट के वक्ता बोले।

दिन के अंत फिरी दोउ अनी। समर भई सुभटन्ह स्रम घनी॥
रामकृपा कपिदल बलु बाढा। जिमि तृन पाइ लाग अति डाढ़ा॥१॥

अर्थ : दिन के अन्त में दोनो सेनाएँ लौटी। युद्ध मे सुभटों को बड़ी थकावट हुई। रामजी की कृपा से वानरी सेना का बल बढ़ गया। जैसे तृण पाकर वन की आग अधिक बढ़ जाती है।

व्याख्या : कुम्भकर्ण का युद्ध कई दिन तक चलता रहा। सायंकाल को लड़ाई समाप्त हुई तब दोनो सेनाएँ लौटी। यद्यपि दोनों सेनाओं का संहार बहुत हुआ था पर निःशेष कोई भी नही हुई थी। राक्षस भी बहुत से भागकर बच गये थे। यथा : बहुतक देखि कठिन सर भाजहि और सरकार की प्रतिज्ञा है कि : समर विमुख मैं हतौ न काहू। वे ही सब लौटे। जो लौटे वे भी दिनभर युद्ध करते करते क्षीणबल हो गये थे। यहाँ वानरी सेना का बल रामजी की कृपा से बहुत बढ़ गया। जैसे क्षीण अग्नि भी तृण पाकर दावानल हो जाती है। जिन्हे थोड़ा भी प्राण था वे कूदते हुए रणांगन से चले आये।

छीजहि निसिचर दिन अरु राती। निजमुख कहे सुकृति जेहि भाँती॥

७३. मेघनाद बल पौरुष संहार प्रसंग

बहु बिलाप दसकंधर करई। बंधुसीस पुनि पुनि उर धरई॥२॥

अर्थ : राक्षस दिन रात घटते जाते हैं। जैसे अपने मुख कहने से पुण्य घटता है। रावण ने बड़ा विलाप किया। बार बार भाई के सिर को हृदय से लगाया।

व्याख्या : परन्तु राक्षस दिन रात छीजते जाते हैं। दिन में युद्ध में मारे जाते हैं और जो घायल हैं वे रात को मर जाते हैं। कवि उपमा देते हैं कि जैसे

अपने मुख से कहने से अपना पुण्य छीज जाता है : अपने मुख से कहने से बढ़कर पुण्य निर्मूल करने का सरल मार्ग दूसरा नही। राजा ययाति का इन्द्रपद के अतिक्रमण करने योग्य महापुण्य कथनमात्र से तत्क्षण नष्ट हो गया।

सो सिर परेउ दसानन आगे। विकल भयउ जिमि फनिमनि त्यागे : से प्रसङ्ग छोड़ा था। अब फिर वही से आरम्भ करते हैं। आज रावण सबसे अधिक विलाप करते हैं। दशकन्धर है : दसो मुँह से रोते है। अतिप्रिय था। इसलिए उसके सिर को बार-बार छाती से लगाते हैं। होहिं कुठाँय सुबघु सहाए। सोचते हैं कि मेरे लिए इसकी यह दशा हुई। नही तो यह लड़ना नही चाहता था। कह दिया · अजहुँ तात त्यागहु अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना। मेरी इच्छा मे विघात न हो इसलिए इसने जान-बूझकर प्राण दे दिया। ऐसा भाई कहाँ मिलेगा इत्यादि।

रोवहिं नारि हृदय हति पानी। तासु तेज बल विपुल बखानी ॥
मेघनाद तेहि अवसर आएउ। कहि बहु कथा पिता समझाएउ ॥३॥

अर्थ : स्त्रियाँ हाथ से छाती पीटकर रो रही हैं और उसके तेज बल का बड़ा बखान कर रही हैं। उसी अवसर पर मेघनाद आया। उसने बहुत सी कथाएँ कहकर बाप को समझाया।

व्याख्या · रावण सिर को छाती मे लगाकर रोते है। स्त्रियाँ अपनी छाती पीट पीटकर रो रही थी। राजमहल मे कोहराम मचा था। रोने के समय मृत व्यक्ति के गुण का वर्णन भी स्त्रियाँ करती हैं। सो कुम्भकर्ण के बल तेज का वर्णन करती हुई विलाप करती हैं। कुम्भकर्ण राजा नही थे। अत रानियाँ न कहकर स्त्रियाँ लिखते हैं। कुम्भकर्ण मे रूप गुण शीलादि सद्गुण तो कोई थे नही। अत. उसके तेज बल का वर्णन हो रहा था।

अब लङ्का मे रावण को दिलासा देनेवाला कोई न रहा। कोई क्या कहके रावण को समझावे। उस अवसर पर मेघनाद आया। इसका भी रावण को बड़ा गर्व था। यथा · कुम्भकर्ण अस बंधु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि। सो कुम्भकर्ण तो गये। अब तो शक्रारि मेघनाद का ही भरोसा है। सो मेघनाद आया। उसने बहुत सी कथाएँ कहकर बाप को समझाया। हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु के सामने ही मारा गया। पर हिरण्यकशिपु ने सब स्त्रियो को दिलासा दिया और भाई का वैर लिया। आप सबको समझाइये और शत्रु से वैर चुकाइये। आपके विलाप करने पर तो सबकी · हिम्मत ही छूट जायगी। आपको चिन्ता करने के लिए स्थान कहाँ है। मैं चाचा का वैर चुकाऊँगा। आपको कुछ करना धरना नही पड़ेगा। यद्यपि मध्यम तात बध अनरथ भयउ महान। करहिं विलाप तथापि नहिं तुमसे धीर सुजान। एकाकी तुम्हो सको तीनि लोक कहँ जीति। याते चिन्ता जनि करो क्षुद्र जनन की रीति। विधि की दीन्हीं शक्ति तोहिं कवच धनुष अरु बान। खर सहस्र सयुच रथ घन इव शब्द महान। देव दनुज भुज बल जिते तुमने केतिक बार। क्यो न होइगो अस्त्र

बलते राघव सहार। बैठि रहहु तुम करब हम सदल शत्रु को नास। जैसे करैं विहँगपति सब विधि व्याल विनास। इस भाँति मेघनाद के समझाने पर रावण को दिलासा हो गयी।

देखेहु कालि मोरि मनुसाई। अबहिं बहुत का करौ बड़ाई॥
इष्टदेव सैं बर रथ पाएउँ। सो बलु तात न तोहि देखाएउँ॥४॥

अर्थ : कल मेरा पुरुषार्थ देखियेगा। अभी बहुत बडाई क्या करूँ। इष्टदेव से मैंने वरदान पाया है और रथ पाया है। उस बल को तो मैंने आपको दिखाया ही नही।

व्याख्या : पहिले कहा था कि कौतुक तात देखियहु मोरा। सो उस दिन लक्ष्मण को शक्ति लगी : वह तो मेरा कौतुक था। कल मैं अपना पुरुषार्थ दिखलाऊँगा। वह पुरुषार्थ बहुत बडा है। उसकी बड़ाई इस समय न करूँगा। दिखला देने पर ससार बडाई करेगा।

मेघनाद रावणादि सभी आस्तिक थे। मेघनाद की इष्ट देवता निकुम्भिला देवी थी। उन्ही से उसे वरदान मिला था और रथ मिला था। उसी की चर्चा करता है। कहता है कि उस इष्टदेव से मिले पुरुषार्थ के दिखाने का आजतक अवसर ही नही आया। इसलिए आपको न दिखा सका। अब अवसर आगया है : कल दिखलाऊँगा। उस दिन की लडाई इसके सामने खेल थी। क्योकि मै अपने बल से लड रहा था। कल इष्टदेव के बल से उन्ही के दिये हुए रथ पर चढकर लडूँगा।

एहि विधि जलपत भयउ विहाना। चहुँ दुआर लागे कपि नाना॥
इत कपि भालु काल सम बीरा। उत रजनीचर अति रनधीरा॥५॥
लरहिं सुभट निज निज जय हेतू। बरनि न जाइ समर खगकेतू॥

अर्थ : इस भाँति बकवाद करते-करते सवेरा हो गया। चारो फाटको पर अनेक बन्दरो ने धावा किया। इधर बन्दर और भालु काल के समान वीर थे। उधर राक्षस युद्ध मे अत्यन्त दक्ष थे। अपनी-अपनी जीत के लिए वीर लोग लड़ रहे हैं। हे गरुडजी ! उस युद्ध का वर्णन नही हो सकता।

व्याख्या : इस विधि से पिता के समझाने मे अपना पुरुषार्थ वर्णन करने लगा कि सबेरा हो गया। कवि ने इसको बकवाद ' जल्पना कहा। अपने पुरुषार्थ का वर्णन बकवाद ही है। यथा : जनि जल्पना करि सुयस नासहि। इतनी देर हुई कि बन्दर चारो फाटक पर आगये। केवल कुम्भकर्ण की लडाई मे बन्दर फाटक तक नही पहुँच सके थे।

रामजी की कृपा से बन्दरो का बल बढा हुआ है। इसलिए कवि उन्हे कालसम वीर कह रहे हैं। ये विना प्राण लिये न मानेंगे। उधर राक्षस वीर रणकौशल मे बड़े पण्डित है। जल्दी काबू मे आते नही।

फिर चारों फाटक पर युद्ध आरम्भ हुआ। फाटक बन्द नहीं है। बाहर निकलकर राक्षस लड रहे हैं। भुसुण्डिजी गरुड से कहते हैं कि वह युद्ध वर्णन नहीं किया जा सकता है। इसी युद्ध मे गरुड को मोह हुआ है। इसलिए भुसुण्डिजी बोल रहे हैं।

दो. मेघनाद मायामय रथ चढि गएउ अकास।
गर्जेउ अट्टहास करि भा कपि कटकहिं त्रास ॥७२॥

अर्थ मेघनाद माया के रचे हुए रथ पर चढकर आकाश मे चला गया और प्रलयकाल के बादल के समान गरजा। वानरी सेना सन्त्रस्त हो उठी।

व्याख्या : जो मेघनाद ने कहा था तदनुसार वह इष्टदेव से मिले हुए मायामय रथ पर चढकर आकाश मे चला गया। मायामय रथ है। आकाश मे चलता है। न किसी को वह रथ दिखाई पडे और न रथी। जब आकाश मे पहुँचा तब गरजा। वैसे ही उसका गर्जन मेघ की भाँति होता था। आज तो वह प्रलयकाल के मेघ की भाँति गरजा। सब बन्दर भालु चौकन्ने होकर ऊपर आकाश मे देखते है। वहाँ कही कुछ नही और गर्जन इतना घोर सुनाई पडता है। इस गर्जन से राक्षस नही डरे क्योकि यह गर्जन उन्ही के पक्ष से था। डरे बन्दर जिनके प्रतिकूल गर्जन हो रहा था। सन्त्रस्त इसलिए हुए कि गर्जनेवाला अदृश्य है। अदृश्य रहकर जो चाहे सो कोई भी कर सकता है। यह अप्राकृत दृश्य सर्वथा भयजनक था।

सक्ति सूल तरवारि कृपाना। अस्त्र सस्त्र कुलिसायुध नाना ॥
डारै परसु परिघ पापाना। लागेउ वृष्टि करै बहु बाना ॥१॥

अर्थ वह बरछी, शूल, तलवार, कृपाण, अस्त्र, शस्त्र, वज्र और अनेक प्रकार के हथियार फरसा, बेंवडा, पत्थर और अगणित बाणो की वर्षा करने लगा।

व्याख्या पहिली लडाई मे विष्ठा पूय रुधिर कच हाड बरसा था। अब अस्त्र शस्त्र बरस रहा है। शक्ति बरछी को कहते हैं। त्रिशूल को शूल भी कहते हैं। यथा शिवजी को शूलपाणि कहते हैं। एक ओर धार जिसमे रहती है उसे तलवार कहते हैं और दुधारी तलवार को कृपाण कहते हैं। फेंककर मारनेवाले हथियार को अस्त्र और हाथ से चलाया जानेवाला शस्त्र कहलाता है। कुलिश वज्र को कहते है। परशु गँडासा को कहते है। परिघ बेंवडे को कहते हैं। इन सब हथियारो की वर्षा मेघनाद करने लगा और बाणो की तो झडी लगा दी। प्रलय पयोद की भाँति गरजा था। अत प्रलय करनेवाली वृष्टि भी कर रहा है।

दस दिसि रहे बान नभ छाई। मानहु मघा[1] मेघ झरि लाई ॥
धरु धरु मारु सुनिअ धुनि काना। जो मारै तेहि कोउ न जाना ॥२॥

---

१ यह लडाई मघानक्षत्र की वर्षा है।

अर्थ : दसो दिशाओमे बाण छा गये। मानो मघा नक्षत्र का मेघ झरी लगाये हुए है। धरो धरो मारो कान मे शब्द सुनाई पडता है। पर जा मारता है उसे कोई नही जानता।

व्याख्या : अन्यत्र कहा हुआ है कि : बरसा घोर निसाचर रारी। सो दो महीने सावन और भादो वर्षा के है। पर वर्षा आपाढ से ही प्रारम्भ हो जाती है। इस समय मघा बरस रही है। इससे मालूम होता है कि सावन खतम हो गया। चार नक्षत्र बरस चुके। आपाढ को गिनती ग्रीष्म ऋतु मे है। सो मृगशिरा की वर्षा दर्वगरा तो खरदूषण का सग्राम है। आर्द्रा की वर्षा लङ्कादाह मे हुई। पुनर्वसु की वर्षा चारो फाटक की लडाई है। पुष्य की वर्षा मेघनाद युद्ध है। जिसमे लक्ष्मण को शक्ति लगी थी। आश्लेपा की वर्षा कुम्भकर्ण का बध था। इस समय मानो मघा की वर्षा हो रही है। दसो दिशाओ मे बाणो का झर लगा हुआ है। जैसे मघा नक्षत्र मे झर लगता है।

दसो दिशाओ मे पकड़ो पकडो मारो मारो का शब्द सुनाई पड रहा है। मार भी पड रही है। परन्तु मारनेवाला कही दिखलाई नही पडता। मारनेवाला ही पकडो पकडो मारो मारो बोलता है। सो यह शब्द तो सब ओर से आ रहा है। अत. यह निश्चय नही हो पाता कि मारनेवाला कहाँ है ? वर्षा के जल की बूँद की चोट सही नही जाती। क्योकि इतने ऊपर से गिरती हैं। यहाँ अस्त्र गिर रहे है। उनके चोट के असह्य होने मे सन्देह ही क्या है। इससे बढकर कपट युद्ध और क्या होगा कि मारनेवाले का ही पता नही।

गहि गिरितरु अकास कपि धावहिं। देखहि तेहि न दुखित फिरि आवहिं॥
अवघट घाट बाट गिरि कदर। माया बल कीन्हेसि सर पंजर ॥३॥

अर्थ : वानर पर्वत और वृक्ष लेकर आकाश मे दौडते हैं पर उसे नही देख पाते। दुखी होकर लौट आते हैं। खड्ढा घाट रास्तो और गुफाओ को माया के बल से उसने बाणो का पिंजडा बना दिया।

व्याख्या : एक बात से निश्चय होता है कि शत्रु आकाश मे है। क्योकि वही से अस्त्र शस्त्र गिर रहे है। रामजी की कृपा से बन्दरो को आकाश मार्ग मे उडने की शक्ति है। यथा ' रामकृपा बल पाइ कपिंदा। भये पक्ष जुत मनहु गिरिंदा। सो शत्रु की खोज मे पर्वत वृक्ष लेकर शस्त्र की बौछार सहते हुए भी बन्दर आकाश मे दौडते हैं कि यदि मिल जाय तो उस पर चोट करें। परन्तु वह तो मायामय रथ पर चढा हुआ अदृश्य हो रहा है। किसी को दिखाई नही पड रहा है। बन्दर घायल हो होकर लौट रहे हैं। यहाँ यह हाल है कि रास्तो मे खडे बाण लगे हैं। ऐसे समय गिरिकन्दर शरण है। गड्ढे शरण हैं, सो उनमे भी बाण ही बाण खोसे हुए हैं। माना रणाङ्गन बाणो का पिंजडा बना हुआ है। यह मेघनाद का मायाबल है। जो इष्ट देवता से प्राप्त हुआ है।

जाहि कहाँ व्याकुल भये बंदर। सुरपति बंदि परेउ जनु मंदर ॥
मारुत सुत अंगद नल नीला। कीन्हेसि बिकल सकल बलसीला ॥४॥

अर्थ : अब बन्दर जाते कहाँ? व्याकुल हो गये। जैसे इन्द्र के बन्दी मे मन्दर पडे हों। हनुमान् अङ्गद नल नील आदि सभी बलवानो को व्याकुल कर दिया।

व्याख्या : भागने के लिए भी रास्ता नही। अतः वानरी सेना व्याकुल हो गयी। जैसे मन्दर इन्द्र की कैद में पड गये हो। यहाँ मन्दर शब्द पर्वत मात्र का उपलक्षण है। हनुमान् अङ्गद नल और नील सिरे के वीर हैं। जो सङ्कट के समय सहाय होते हैं। और भी इनके सदृश जितने वीर हैं सब विकल हो गये। यह इष्टदेव का बल है। इसके सामने कोई बल काम नही दे रहा है। अतः चारो अतिबल रणबाँकुरे भी विकल हो गये। हनुमंत अंगद नील नल अति बल लरत रन बाँकुरे।

पुनि लछिमन सुग्रीव बिभीषन। सरन्हि मारि कीन्हेसि जर्जर तन ॥
पुनि रघुपति सें जूझै लागा। सर छाँड़ै होइ लागहिं नागा ॥५॥

अर्थ : तब लक्ष्मण सुग्रीव और विभीषण को बाणोसे मारकर उनके शरीर को जर्जर कर दिया। तत्पश्चात् रामजी से युद्ध करने लगा। मारता था बाण वे साँप होकर लगते थे।

व्याख्या : पहिले सेना को घायल किया। परन्तु उस बाणवर्षा को सहकर भी जिन रणबाँकुरे वीरो ने आकाश मे उसे खोजने का प्रयत्न किया उन्हे भी उसने विकल कर दिया। उन लोगो को बेकाम करने के बाद सिरे के तीनो सरदार सुग्रीव विभीषण और लक्ष्मण को ऐसा घायल किया कि उनके शरीर क्षत विक्षत हो गये। अन्त मे सरकार पर प्रहार करना आरम्भ किया। उन प्रहारो मे यह विचित्रता थी कि उसके बाण सर्प होकर सरकार को बाँधते चले जाते थे। सर्वथा अवध्य देखकर उसने उन्हे नागपाश मे बाँधने की चेष्टा की। स्वयं युद्ध करते समय अलक्ष्य रहने से वह सभी को घायल करने मे कृतकार्य हुआ।

ब्याल पास बस भयउ खरारी। स्ववस अनंत एक अबिकारी ॥
नट इव कपट चरित कर नाना। सदा स्वतन्त्र एक भगवाना ॥६॥
रन सोभा लगि प्रभुहि बँधायो। देखि दसा देवन्ह भय पायो ॥७॥

अर्थ : जो स्ववश हैं अनन्त हैं एक हैं अविकारी हैं ऐसे खर के शत्रु नागपाश से बँध गये। नट की भाँति अनेक चरित्र करते हैं। भगवान् राम सदा स्वतन्त्र हैं। युद्ध की शोभा के लिए अपने को बँधवा लिया। उनकी दशा देखकर देवता तो डर गये।

व्याख्या : सरकार खरारि हैं अर्थात् मायानाथ हैं। यथा : मायानाथ अस कौतुक करयौ देखत परसपर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मरयौ। सो आसुरी माया से पराभूत हुए। जो स्ववश हैं सर्वेश्वर हैं वे व्यालपाशवश हुए। जो

अनन्त है वे बन्धनगत हुए। जो अद्वैत हैं वे द्वैत में आ फँसे। जो अविकारी हैं वे अत्यन्त घायल होकर मूर्च्छित हो गये। ऐसी असंभाव्य घटना कैसे हुई ? इसके उत्तर में कवि कहते हैं कि मेघनाद समझता है कि मैने बाँध लिया। पर बँध जाना उनका कपट चरित माया है। नट की भाँति उन्होने बँध जाने का अभिनय किया। यथा : अनेक वेष धरि नृत्य करै नट कोई। सोइ सोइ भाव दिखावै आपुन होइ न सोई। अस रघुपति लीला उरगारी। दनुज विमोह निज जन सुखकारी। नही तो भगवान् राम सदा षडैश्वर्य सम्पन्न हैं। सदा स्वतन्त्र हैं। उन्हे बन्धन हो नही सकता। परन्तु बिना कारण कार्य नही होता। सो कारण यह है कि अब रण की शोभा हुई है। यदि वैरी हुंकार करने से ही भस्म हो जाय। तो पुरुषार्थ का परिचय तो होता है। रण की शोभा नही होती। जब तक रण मे संशय न दिखाई पडे तबतक रण ही क्या हुआ ? देवता डर गये कि इसी भाँति इसने इन्द्र को बाँध लिया और इन्द्र सदा के लिए इसके अधीन हो गये।

दो. गिरिजा जासु नाम जपि, नर काटहिं भव पास।
सो कि बंध तर आवइ, ब्यापक बिस्व निवास ॥७३॥

अर्थ : हे गिरिजे ! जिसका नाम जपकर नर संसारपाश को काट डालते हैं क्या वह प्रभु बन्ध में आसकता है जो व्यापक है और विश्व का निवासस्थल है।

व्याख्या : शिवजी अपने श्रोता को सावधान करते हैं। क्योंकि इसी अवसर पर गरुड़जी को मोह हुआ था और सरकार की महिमा की ओर ध्यान आकर्षित करते है। कहते हैं कि यह संसारपाश ही बड़ा भारी पाश है। जिसके भीतर ऐसे कितने नागपाश पड़े हुए हैं। उस संसारपाश को जिसके नाम का स्मरण करके मनुष्य काट डालता है। यथा : सेवक सुमिरत नाम सप्रीती। बिनु स्रम प्रबल मोह दल जीती। फिरत सनेह मगन सुख अपने। नाम प्रसाद सोच नही सपने। यह जन्म मरण ही संसारपाश है। यथा : जनम मरन जहँ लगि जगजालू। वह जाल रामनाम के स्मरण से कट जाता है। यथा : जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुकुत होत स्रुति गावा। उस नामी के बद्ध होने को क्या कथा है क्योंकि वह व्यापक है और विश्वनिवास है। श्री रामजी के मूर्तिमान होने पर भी उसकी व्यापकता तथा अनन्तादि गुणो में अन्तर नही पड़ता। यथा : राम उदर देखेउँ जग नाना। इत्यादि। बन्ध तो परिच्छिन्न पदार्थ का सम्भव है। आकाश का ही बन्ध नही हो सकता चिदाकाश के बन्ध की क्या कथा है।

चरित राम के सगुन भवानी। तरकि न जाहिं बुद्धि बल बानी ॥
अस बिचारि जे तज्ञ बिरागी। रामहि भजहिं तर्क सब त्यागी ॥१॥

अर्थ : हे भवानी ! रामजी के सगुण चरित्र बुद्धि मन वाणी के तर्क में नही आ सकते। ऐसा विचार करके तत् पद के जाननेवाले विरागी सब तर्क का त्याग करके राम को भजते हैं।

व्याख्या : निर्गुण रूप सुलभ अति सगुन न जानै कोइ। सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ। त्रिगुणात्मिका माया है। सगुण चरित्र मायामय है और माया अघटितघटनापटीयसी है। जो घटना न घट सके उसे घटाकर दिखा देती है। यहाँ ही व्यापक विश्वनिवासको बँधा हुआ दिखला दिया। यदि बुद्धि के बाहर की बात न हो तो माया ही नही। तिसपर राम की माया अत्यन्त प्रबल है। यथा : सुनु खग प्रबल राम की माया। जो ज्ञानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआई विमोह बस करई। राम स्वयं बुद्धि मन वाणी से अतक्यं हैं। उनके चरित भी उसी भाँति अतर्क्य हैं। यहाँ तर्क नही चल सकता।

रामजी का चरित अतर्क्य है। ऐसा तज्ञ और वैराग्यवान् जानते हैं। जो तामसी माया को वे उपाधिरूपेण स्वीकार करके जगत् का उपादान कारण होता है और विशुद्ध सत्त्वमयी माया का आश्रयण करके निमित्त कारण होता है उस ब्रह्म को तत् कहा जाता है। उसे जो जाने उसे तज्ञ कहते हैं। जो तज्ञ भी है और वैराग्यवान् है ब्रह्मलोक तक के ऐश्वर्य को तुच्छ माननेवाले हैं राम को वे भजते है। यथा : रमन्ते योगिनो यस्मिन् नित्यानन्दे चितात्मनि अतः रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते। चिदात्मा मे योगी लोग रमण करते हैं। इसलिए रामपद से पर ब्रह्म कहा जाता है और सब तर्क छोड़ देते हैं। क्योकि तर्क की वहाँ गति नही। यस्यावताररूपाणि समर्चन्ति दिवौकसः। अपश्यन्तः पर रूप नमस्तस्मै महात्मने। विष्णुपुराण। देवतालोग सरकार के अवतार रूप का ही भजन करते हैं। क्योकि उनका परम रूप बुद्धि मन वाणी के परे है।

ब्याकुल कटकु कीन्ह घननादा। पुनि भा प्रकट कहै दुर्बादा॥
जामवंत कह खलु रहु ठाढ़ा। सुनिकर ताहि क्रोध अति बाढ़ा॥२॥

अर्थ : मेघनाद ने सेना को व्याकुल कर दिया। फिर वह प्रकट हुआ और दुर्वचन कहने लगा। जामवन्त ने कहा कि खल! खडा रह। सुनकर उसे बड़ा क्रोध बढा।

व्याख्या : रामजी के विषय मे कहकर अब कटक के विषय मे कह रहे हैं कि सारी सेना को मेघनाद ने व्याकुल कर दिया। ऐसी परिस्थिति मे कटक का व्याकुल होना आश्चर्य नही है। अब तक जीता रहना ही आश्चर्य है। जब मेघनाद ने देख लिया कि अब सेना मे कही कुछ भी नही है तब मायामय रथ को छोडकर और अन्तर्धान होने की माया छोड़कर निर्भय होकर प्रकट हुआ। गाली देना राक्षसी प्रकृति है। पहिले रामजी के सामने गया था तब भी दुर्वचन बोलता था। यथा : रघुपति निकट गयउ घननादा। नाना भाँति कहेसि दुर्बादा। इस समय सारी सेना को असमर्थ देखकर गालियाँ दे रहा है। अब जो वध्य है उन्हे वध करने के लिए तथा अवध्य को बाँधकर लंका ले जाने के लिए प्रकट हुआ है।

सरकार को दुर्वचन कह रहा है। इस बात को जाम्बवान् न सह सके। क्योकि सारी सेना मे ये ही सचेत थे। जिसे रावण कहता था। यथा : जामवंत

मन्त्री अति बूढा। सो कि होई अब समराल्ढा। उस बूढे ने उठकर मेघनाद को ललकारा। यह सरकार की माया है कि इस समय काम करने के लिए जाम्बवान् बचे रहे। इन्हे उतनी चोट नही आयी थी। इनकी ललकार सुनकर मेघनाद आगबबूला हो गया।

बूढ जानि सठ छाडेउ तोही। लागेसि अधम प्रचारै मोही ॥
अस कहि तरल त्रिसूल चलायो। जामवत कर गहि सोइ धायो ॥३॥

अर्थ रे शठ ! तुझे मैंने बूढा समझकर छोड दिया था। सो अधम तू मुझे ही ललकारने लगा ? ऐसा कहकर तीखा त्रिशूल उसने चलाया। जाम्बवान् उसे हाथ मे पकडकर दौडे।

व्याख्या : मेघनाद कहता है कि जिस समय मैंने हनुमदादि अङ्गद नल नील आदि बलवानो को मारकर विकल कर दिया था उस समय तुझे बूढा असमर्थ समझकर छोड दिया था। जैसी चोट उन लोगो पर हुई वैसी तुझ पर नही किया। तुझे मेरा कृतज्ञ होना चाहिए। पर तू अधम है। यह नही सोचता कि तू मेरी कृपा से सचेत बना हुआ है। उलटा मुझे ललकारता है। अच्छा तो ले ऐसा कहकर तीखा त्रिशूल चलाया जिससे जाम्बवान् समाप्त ही हो जायँ। पर जाम्बवान् ने फुरती से उस त्रिशूल को रास्ते मे ही पकड लिया। अब त्रिशूल जाम्बवान् के हाथ आगया। सो उसी को लेकर जाम्बवान् दौडे।

मारेसि मेघनाद कै छाती। परा धरनि घुर्मित सुरघाती ॥
पुनि रिसान गहि चरन फिरायो। महि पछारि निज बल दिखरायो ॥४॥

अर्थ : मेघनाद की छाती मे मारा। देवताओ का शत्रु चक्कर खाकर गिरा। फिर क्रुद्ध होकर उसका पैर पकडकर घुमाया और पृथिवी पर पछाडकर अपना बल दिखलाया।

व्याख्या . मेघनाद का त्रिशूल लेकर मेघनाद की ही छाती मे मारा। यह जाम्बवान्जी का रणकौशल है। वानर वीर लोग जिस देवशत्रु के चोट से घुर्मित होकर गिरते थे वही मेघनाद इस समय जाम्बवान्जी के चोट से वही चक्कर खाकर गिर रहा है।

मेघनाद की बात से जाम्बवान्जी को क्रोध हुआ कि यह बूढा कहकर मेरे बल का अपमान करता है। इसलिए उसका पैर पकडकर उठा लिया और घुमाकर पृथिवी पर पटका कि देख ले मेरा बल।

बरप्रसाद सो मरै न मारा। तब गहि पद लका पर डारा ॥
इहाँ देवरिषि गरुड पठायो। राम समीप सपदि सो आयो ॥५॥

अर्थ : वर के प्रसाद से वह मारे नही मरा। तब उसका पैर पकडकर लका पर फेंक दिया। यहाँ नारदजी ने गरुडजी को भेजा। वह तुरन्त रामजी के पास आये।

व्याख्या : जाम्बवान्‌जी ने मेघनाद को मार डालना चाहा। उसके हृदय में तीखा त्रिशूल मारा। पैर पकड़कर घुमाकर पृथिवी पर पटका। मार डालने में कोई कसर न रक्खा। फिर भी वह न मरा। जाम्बवान्‌जी ने समझ लिया कि उनके हाथ से उसकी मृत्यु नहीं है। इसकी रक्षा वरदान द्वारा हो रही है। यथा : इष्टदेव सन वर रथ पायेउँ। तब उसका पैर पकड़कर लंका पर फेंक दिया। यह जाम्बवान्‌जी का निज बल है कि मेघनाद ऐसे योद्धा को जिसकी वीरों में प्रथम गणना है पैर पकड़कर लंका पर फेंक देते हैं।

नारदजी का ध्यान इस युद्ध पर है। इसके पहिले ही कह गये हैं कि बेगि हतहु खल। अतः उस खल के वध में शीघ्रता के लिए गरुड़जी को भेजा। गरुडजी तुरन्त रामजी के पास आये। यहाँ आने पर जो दशा रामजी की देखा वही देखकर गरुड़जी को मोह हुआ। यथा : प्रभु बंधन समझत बहु भाँती। करत बिचार उरग आराती। व्यापक ब्रह्म विरज बागीसा। माया मोह पार परमीसा। सो अवतरा सुनेउँ जग माहीं। देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं। भव बन्धन ते छूटहिं नर जपि जाकर नाम। खर्व निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम।

दो. खगपति सब धरि खाए, माया नाग बरूथ।
माया बिगत भये सब, हरखे बानर जूथ॥
गहि गिरि पादप उपल नख, धाये कीस रिसाइ।
चले तमीचर बिकलतर, गढ़ पर चढ़े पराइ॥७४॥

अर्थ : गरुड ने साँपों के समूह को पकड़कर खा लिया। सरकार माया से मुक्त हो गये। माया से मुक्त सम्पूर्ण वानरी सेना हर्षित हो उठी। वानर क्रुद्ध होकर पर्वत, पेड़, पत्थर और नख धारण करके दौड़े। राक्षस अति विकल होकर भाग चले और किले पर चढ़ गये।

व्याख्या : गरुडजी पन्नगारि ठहरे। सब साँपों को खा गये। उनके आगमन के दिव्य प्रभाव से माया भी निवृत्त हो गयी। सबका खेद जाता रहा। माया विनिर्मुक्त होकर बन्दर लोग हर्षित हुए। उनके पक्ष की वायु लगने से सबके घाव पूरे हो गये। वहाँ ऐसा आनन्द हुआ मानो कुछ हुआ ही न था।

अतः बन्दर लोग अपने आयुध से सुसज्जित होकर दौड़े युद्ध के लिए। उनका आयुध पर्वत, पेड़, पत्थर और नख था। जो पीड़ा उनको इस माया युद्ध में हुई है इससे बड़े क्रुद्ध हैं। राक्षस लोग माया के नष्ट हो जाने से ही विकल थे। अब बन्दर भालुओं के धावे से अधिक विकल हुए। अतः भागकर किले पर चढ़ गये।

मेघनाद कै मुरछा जागी। पितहि बिलोकि लाज अति लागी॥
तुरत गयउ गिरिबर कंदरा। करौं अजयमख अस मन धरा॥१॥

अर्थ : मेघनाद जब मूर्च्छा से जागे तो पिता को देखकर बड़ी लज्जा लगी।

तुरन्त वह पर्वत की कन्दरा मे चला गया। मन मे ठान लिया कि अजय यज्ञ करूँगा।

व्याख्या : मेघनाद ने इष्टदेव के बल का आश्रयण करके जिन लोगो को मूच्छित किया था वे लोग तो चङ्गे हो गये पर मेघनाद मूच्छित हो पड़े हैं। रावण को समाचार मिला। वे भी दौड़े वहाँ चले आये। अनेक प्रकार के उपचार होने लगे। अन्ततो गत्वा उन्हे होश हुआ तो देखा लोग घेरे हुए हैं। उपचार हो रहा है। अत मेघनाद लज्जित हुआ और बाप को देखकर तो अत्यन्त लज्जित हुआ। क्योकि उनसे कहकर चला था कि . देखेउ कालि मोरि मनुसाई। सो यही मनुसाई देख रहे हैं कि बुड्ढे ने टाँग पकडकर लका पर फेंक दिया। जहाँ मृत व्यक्ति की भाँति पड़े थे।

लज्जा के मारे उठकर घर नही गया। पर्वत की गुफा मे चला गया। जिसमे किसी को पता न लगे। किसी से कुछ कहा नही। मन मे यह निश्चय किया कि अजय यज्ञ करूँगा। जिसके सिद्ध होने से यजमान अजेय हो जाता है। निर्विघ्न सिद्धि के लिए लका छोडकर पर्वत की कन्दरा मे चला गया। यज्ञ विद्या मे मेघनाद की पटुता कवि दिखला रहे हैं।

इहाँ बिभीषन मंत्र बिचारा। सुनहु नाथ बल अतुल उदारा ॥
मेघनाद मख करै अपावन। खल मायावी देव सतावन ॥२॥

अर्थ : यहाँ विभीषण ने सलाह दी। कहने लगे कि हे अतुलबल उदार नाथ! सुनिये। ऐसा समाचार है कि दुष्ट मायावी देवताओ को सतानेवाला मेघनाद अपावन यज्ञ कर रहा है।

व्याख्या : विभीषणजी बराबर इस बात की खबर रखते हैं कि लंका मे क्या हो रहा है। उनके चारो मन्त्री कपोत होकर लका मे जाते हैं और सब समाचार दिया करते है। उन लोगो ने मेघनाद के पर्वत की गुफा मे जाने का समाचार दे दिया। विभीषणजी समझ गये कि गुफा मे जाकर क्या करेगा ? अथवा पूरा समाचार उन्हे मिला। उन्होने जाकर सरकार से सब हाल सुनाया कि मेघनाद यज्ञ कर रहा है। मेघनाद के लिए कहते हैं कि वह खल है। दुष्टहृदय है। बडा मयावी है। उसके गतिविधि का थाह नही लगता और देवताओ को सतानेवाला है। उसका यज्ञ भी देवताओ का तृप्तिकारक नही होता। बल्कि उनके तेज का हरण करनेवाला होता है। ससार पावन यज्ञ करता है। मेघनाद अपावन यज्ञ करता है।

जौ प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि। नाथ बेगि रिपु जीति न जाइहि ॥
सुनि रघुपति अतिसय सुख माना। बोले अगदादि कपि नाना ॥३॥

अर्थ हे प्रभो! यदि वह सिद्ध हो पावेगा तो हे नाथ! शत्रु का शीघ्र जीतना कठिन हो जायगा। सुनकर रामजी ने बहुत सुख माना और अङ्गद आदि अनेक वानरो को बुलाकर कहा।

व्याख्या : विभीषणजी का कहना है कि यह यज्ञ विध्वंस करने योग्य है। क्योकि इसका यजमान मेघनाद खल है। वह यज्ञ भी परोपकार के लिए नही करता। उसके यज्ञ से माया का बल ही बढेगा। उस देव सतावन की आहुति से देवताओ को दु ख होगा। क्योकि मन्त्र बल से उन्हें आहुति ग्रहण करना पडेगा और उससे निस्तेज होते चले जायँगे। इसमे हवि की आहुति न होगी। अपावन द्रव्य की आहुति होगी। इसलिए यह यज्ञ अपावन है। इसका विध्वस करना ही प्राप्त है। यह सब विभीषणजी इसलिए कहते हैं कि सरकार यज्ञ के रक्षक हैं। कदाचित् यज्ञ विध्वंस के लिए आज्ञा न दें। और उस यज्ञ का फल कह रहे हैं कि यदि यह यज्ञ उसका सिद्ध हो गया तो वह शीघ्र नही जीता जायगा। नारदजी कह गये हैं कि खल को शीघ्र मारिये। अतः यज्ञ विध्वंस के लिए आज्ञा होनी चाहिए।

यह बात सुनकर सरकार को अत्यन्त सुख हुआ। विभीषण की राय ठीक जँची। यज्ञविध्वस से उसकी सिद्धि न होकर उलटा नाश होगा। तुरन्त अङ्गद आदि वीर वानरो को बुलाया। नहि यज्ञसमो रिपु'।

लछिमन संग जाहु सब भाई। करहु बिधंस जज्ञ कर जाई ॥
तुम्ह लछिमन मारेहु रन ओही। देखि सभय सुर दुख अति मोही ॥४॥

अर्थ : सब भाई लक्ष्मण के साथ जाओ और यज्ञ का विध्वस जाकर करो। लक्ष्मण ! तुम उसे युद्ध मे मारना। देवताओ को भयभीत देखकर मुझे अत्यन्त दु ख है।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि तुम लोग भाई हो। क्योकि कुठाहर सहाय होते हो। तुम लोग लक्ष्मण के साथ जाओ। भाव यह कि लक्ष्मण के साथ रहने से तुम लोग उसके वध मे समर्थ होगे अथवा तुम लोग तो यज्ञ का विध्वस करना। उसका वध लक्ष्मण करेंगे।

लक्ष्मण को आज्ञा हो रही है कि तुम उसका वध करना। उसके कारण देवता अत्यन्त सभीत हैं। उनको मैने अभय दिया। यथा : जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। अथवा प्रभु प्रनाम करि दीन्ह भरोसो। चले मुदित मन भय न खरोसो। उनके सभीत होने से मुझे दु ख हो रहा है। भाव यह कि खेल आगे न बढाना। सरकार लक्ष्मणजी का पुरुषार्थ जानते हैं। वर्णन भी कर चुके हैं। जगमहुँ सखा निसाचर जेते। लछिमन हनइ निमिष महुँ तेते। सरकार का रुख देखकर ही युद्ध लीला को शीघ्र समाप्त नही करते। इसलिए स्पष्ट आज्ञा हो रही है कि उसे मारकर आना।

जामवंत सुग्रीव बिभीषन। सेन समेत रहहुँ तीनिउँ जन ॥
जब रघुबीर दीन्ह अनुसासन। कटि निषंग कसि साजि सरासन ॥५॥

अर्थ : जामवत सुग्रीव और विभीषण ! तुम तीनो व्यक्ति सेना के सहित साथ रहो। जब रामजी ने आज्ञा दी तब कमर मे तरकस कसकर और धनुष को चढाकर :

व्याख्या ऋक्षराज कपिराज और राक्षसराज तीनो राजाओ को आज्ञा हु कि सेना के साथ रहे। भाव यह कि अङ्गदादि वीरो को तो यज्ञ विध्वस करने क कार्य सौंपा गया और मेघनाद वध का कार्य लक्ष्मणजी को सौंपा गया। ऋक्षे कपीश और लंकेश को सेना सहित साथ रहने का कार्य सौंपा गया कि यदि लक से कुमक मेघनाद की सहायता के लिए आवे तो उसे ये लोग रोकें।

जब रामजी की आज्ञा हो गयी तो लक्ष्मणजी ने कमर मे तरकस कसा औ धनुष को चढाया। भाव यह कि लक्ष्मणजी पहिले से ही तैयार हैं। आज्ञा की देर थी

प्रभु प्रताप उर धरि रनधीरा। बोले घन इव गिरा गँभीरा ॥
जौ तेहि आज वधे बिनु आवौ। तौ रघुपति सेवक न कहावौ ॥६॥
जौ सत सकर करहि सहाई। तदपि हतौ रन राम दोहाई ॥७॥

अर्थ प्रभु के प्रताप को हृदय मे रखकर रणधीर लक्ष्मण बादल की भाँति गम्भीर शब्द से बोल। यदि मैं आज उसे बिना मारे आऊँ तो सरकार का सेवक न कहलाऊँ। यदि सौ शङ्कर भी उसकी सहायता करें तो राम दोहाई उसे तो लडाई मे मार ही डालूँगा।

व्याख्या भक्तो का परम बल प्रभु प्रताप है। अत प्रभु प्रताप को हृदय मे धारण किया। पहिले भी लक्ष्मणजी जब कुछ कहते है तो प्रभु प्रताप के बल से ही कहते हैं। यथा तोरौ छत्रक दण्ड जिमि तव प्रताप बलनाथ। मेघनाद के वध के लिए जा रहे हैं। अत मेघ के समान गम्भीर शब्द से बोल।

शपथ लेते हैं क्योकि पहिली बार युद्ध करने गये थे तो शक्ति लग गयी। हनुमान्जी उठाकर लाये। यथा तब लागि लै आये हनुमाना। अत साथियो के विश्वास के लिए शपथ लेते हैं कि इस बार वह मेरे हाथ से बच नही सकता। निश्चय मारूँगा। शपथ भी साधारण नही है। सरकार की आज्ञा वध के लिए इस बार हो चुकी है। अत यदि मैंने वध न किया तो मानो सरकार को आज्ञा भङ्ग की और जो आज्ञा भङ्ग करे वह सेवक कैसा ? अत उसके न मारने पर सेवक न कहलाने की शपथ लते हैं।

यदि इस पर सन्देह हो कि वह इष्टदेव के बल से युद्ध करेगा इस पर लक्ष्मणजी कहते हैं कि सहार करनेवाल शङ्कर हैं। इनसे बलवान् कोई नही है। सो यदि सौ शङ्कर भी सहायता करें तो भी उसे युद्ध मे निश्चय मारूँगा। क्योकि मैं भी अपने इष्टदेव का बल पाकर चल रहा हूँ जिससे विधि को विधिता हर को हरता और हरि को हरिता मिलती है। यथा बिधिहि बिधिता हरिहि हरिता हरहि हरता जिन दई। सो जानकीपति मधुर मूरति मोदमय मगलमई।

दो रघुपति चरन नाइ सिरु चलेउ तुरत अनत।
अगद नील मयद नल सग सुभट हनुमत ॥७५॥

अर्थ : रामजी के दोनो चरणो की वन्दना करके अनन्त तुरन्त चले। साथ साथ मे अङ्गद नील मयन्द और नल सुभट हनुमान्‌जी थे।

व्याख्या : पहिली लड़ाई मे जिसमे शक्ति लगी थी लक्ष्मणजी सरकार को प्रणाम करके नही चले थे। यथा : आयसु माँगि राम पहिं अंगदादि कपि साथ। लछिमन चले क्रुद्ध होइ बान सरासन हाथ। इस बार प्रणाम करके चले हैं। निश्चय कृतकार्य होगे। सरकार के लिए कहा गया है : बोले अगदादि कपि नाना। उसी आदि शब्द को यहाँ स्पष्ट करते हैं : अंगद नील मयद नल सग सुभट हनुमत।

जाइ कपिन्ह देखा सो बैसा। आहुति देत रुधिर अरु भैंसा॥
कीन्ह कपिन्ह सब जज्ञ बिधंसा। जब न उठइ तब करहिं प्रसंसा॥१॥

अर्थ : बन्दरो ने जाकर उसे बैठा हुआ देखा। रक्त और भैंसे की आहुति दे रहा था। बन्दरो ने सब यज्ञ विध्वंस कर डाला। फिर भी जब नही उठा तो प्रशसा करने लगे।

व्याख्या : बन्दरो ने जाकर उसे बैठा देखा। उसने बन्दरो को नही देखा। स्वार्थ मे एकाग्र है। इधर उधर नही देख रहा है। यज्ञ मे दत्तचित्त है। अब यज्ञ की अपावनता कहते हैं। गोघृत के स्थान पर तो रुधिर से काम लेता है और साकला के स्थान मे भैंसे की आहुति दे रहा है। मैं इस अर्धाली को प्रक्षिप्त मानता हूँ।

बन्दरो ने सब यज्ञ विध्वंस कर दिया। पर मेघनाद उठा नही। इस विचार से बैठा है कि ये सब विध्वंस करके चले जायँ तो फिर सम्पन्न कर लूँगा। पर बन्दर भी बडे जानकर हैं। उसकी आसन सिद्धि को भी नष्ट करना चाहते है। जब उन्होने देखा कि यज्ञ को तो हम लोगो ने पूरी तरह से विध्वस कर दिया फिर भी यह उठता नही है तब उसकी प्रशसा करने लगे कि मेघनाद बडे क्षमाशील हैं। साधु हैं। इनका चाहे कोई कितना भी अपकार करे पर तनिक भी क्रोध नही करते। देखो कैसा ध्यान लगाये बैठे हैं। इत्यादि।

तदपि न उठै धरेन्हि कच जाई। लातन्हि हति हति चले पराई॥
लै त्रिसूल धावा[1] कपि भागे। आए जहँ रामानुज आगे॥२॥

अर्थ : फिर भी न उठा तो जाकर उसकी शिखा पकड़ ली और लात मार मारकर भागने लगे। तब त्रिशूल लेकर दौडा। तो बन्दर भागे और लक्ष्मणजी के आगे आगये।

व्याख्या : जब उनकी व्यङ्ग्योक्ति से भी मेघनाद नही उठा तब जाकर उसकी शिखा पकड़ ली कि उठ। फिर भी न उठा तो बन्दरो ने पद्धलत्ती आरम्भ कर दी। लात मार मारकर भागने लगे। सरकारी आज्ञा है : जग्य बिधस करहु तुम जाई। सो जब तक यह आसन परित्याग नही करता तब तक विध्वस्त हुआ भी यज्ञ फिर

---

१ यह लडाई पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र की वर्षा है।

से सम्पन्न किया जा सकता है। अत उसके उठाने के उपाय मे लगे। निश्चय किया कि जगद्विख्यात मानी वीर है। यह लात न सह सकेगा। अस्त्र शस्त्र सब सह लेगा। अत इस पर पच्छलत्ती उडनी चाहिए।

वही बात हुई। मेघनाद लात न सह सका। त्रिशूल लेकर दौडा। बन्दर भागकर लक्ष्मणजी के आगे गये। बन्दर चाहते भी यही थे कि इसे लक्ष्मणजी तक पहुँचा दें। लक्ष्मणजी उस स्थान पर खडे हैं जहाँ पहुँचकर मेघनाद अन्तर्धान होता है। इसलिए लक्ष्मणजी के आगे पहुँचे और पीछा करता हुआ मेघनाद भी वहाँ पहुँच गया।

आवा परम क्रोध कर मारा। गर्ज घोर रव बारहि बारा॥
कोपि मरुत सुत अगद धाए। हति त्रिसूल उर धरनि गिराए॥३॥

अर्थं परम क्रोध का मारा हुआ आया। घोर रव से बार बार गरजता था। क्रुद्ध होकर हनुमान् और अङ्गदजी दौडे। उसने त्रिशूल से मारकर पृथिवी पर गिरा दिया।

व्याख्या लात का मारा नही आया। परम क्रोध का मारा आया। लात लगने से उसे बडा क्रोध हुआ था। बार बार घोर गर्जना करता है कि जिस वीर को आना हो आवे। ये लात मारनेवाले तो भाग जाते हैं। हनुमान्जी तथा अङ्गदजी ललकार के सहनेवाले नही। अत ये लोग क्रोध करके दौडे। पर उसने त्रिशूल से मारकर धराशायी कर दिया। यज्ञ लगभग पूरा हो चला था। अत उसमे इस समय इष्टदेव के बल का आवेश है।

प्रभु कहँ छाडेसि सूल प्रचडा। सरहति कृत अनत जुग खडा॥
उठि बहोरि मारुति जुबराजा। हतहि कोपि तेहि घाउ न बाजा॥४॥

अर्थं प्रभु के ऊपर उसने प्रचण्ड शूल फेंका। अनन्त ने उसे बाण मारकर दो टुकडे कर दिया। फिर उठकर हनुमान् और अङ्गदजी उसे क्रोध करके मारते हैं। पर उसपर चोट चढती ही नही।

व्याख्या हनुमान् और अङ्गदको गिराकर अब लक्ष्मणजी पर चोट करता है। उनपर उसने प्रचण्ड शूल छोडा। जानता है कि वीरघातिनी सागी के सहन करनेवाल पर सामान्य शूल का क्या प्रभाव होगा। अत प्रचण्ड शूल छोडा। पर लक्ष्मणजी अनन्त हैं। प्रभु हैं। इन्होने इसे बीचमे ही काट दिया। इस युद्धम कवि बार बार लक्ष्मणजी को अनन्त कह रहे हैं। जिसका अन्त हो नही उसके अन्त को कोई कैसे पा सकता है।

यद्यपि यज्ञ पूरा नही हुआ है। फिर भी इसका बल इतना बढ़ गया है कि जिसके एक घूँसे से मेघनाद मूच्छित हो गया था। वे हनुमान् तथा उनके समकक्ष और अङ्गद उठकर उसपर क्रुद्ध होकर प्रहार कर रहे हैं। पर उसे घाव नही लग रहा है।

फिरे वीर रिपु मरै न मारा। तब धावा करि घोर चिकारा ॥
आवत देखि क्रुद्ध जनु काला। लछिमन छाडे बिसिख कराला ॥५॥

अर्थ : शत्रु मारने से नही मरता है। इसलिए वीर लौट पडे। तब घोर चिक्कार करके दौडा। लक्ष्मणजी ने देखा कि यह काल के समान क्रुद्ध होकर आ रहा है। अतः उन्होने कराल बाण छोडा।

व्याख्या : जाम्बवान्‌जी की भाँति अङ्गद और हनुमान्‌जी ने भी समझ लिया कि यह अवध्य है। यथा 'बर प्रसाद सो मरै न मारा। तब लौट पडे। हनुमान् और अङ्गद से पिण्ड छूटते ही वह कुम्भकर्ण की भाँति चिक्कार करके दौडा। यथा : करि चिक्कार घोर अति धावा बदन पसार। तब लक्ष्मणजी ने उसपर कराल बाण का प्रयोग किया। आगे चलकर उस बाण की करालता कहते हैं।

देखिसि आवत पविसम बाना। तुरत भयउ खल अंतरधाना ॥
बिबिध वेप धरि करै लराई। कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरि जाई ॥६॥

अर्थ : वज्र के समान बाण को आता देखकर वह खल तुरन्त अन्तर्धान हो गया। अनेक प्रकार का वेप धारण करके युद्ध करने लगा। कभी प्रकट हो जाता था कभी छिप जाता था।

व्याख्या . उसने देखा कि यह बाण तो वज्र के समान कराल है। इसकी प्रतिक्रिया नही हो सकती तो अन्तर्धान हो गया। जिसमे लक्ष्य ही ठीक न हो सके। माया से युद्ध कर रहा है। इसी से कवि उसे खल कह रहे है। लक्ष्मणजी के नानाविध प्रहार करने के कौशल जानता है। अतः अनेक प्रकार के वेप धारण करके धोखा देता है। कभी बन्दर या भालु बनकर चोट कर बैठता है। कभी व्याघ्र सिंह बनकर झपट पड़ता है। कभी प्रकट हो जाता है। कभी छिप जाता है। पता ही नही चलने पाता कि वह कहाँ है और किधर से क्या करना चाहता है और किधर से कब प्रकट होकर चोट कर बैठेगा ?

देखि अजय रिपु डरपे कीसा। परम क्रुद्ध तब भएउ अहीसा ॥
लछिमन मन अस मंत्र दृढावा। एहि पापिहि मै बहुत खेलावा ॥७॥

अर्थ : शत्रु को अजय देखकर बन्दर डर गये। तब तो सर्पराज परम क्रुद्ध हो गये। इस पापी को मैं बहुत खेला चुका। ऐसा मन्त्र लक्ष्मणजी ने अपने मन मे दृढ किया।

व्याख्या : बन्दरो ने देखा कि अजय यज्ञ पूरा नही होने पाया। हम लोगो ने विध्वस कर दिया। फिर भी यह अजय हो ही गया। अत. डर गये कि यह न मरेगा और सबको मार डालेगा। अपने आश्रितो को डरा हुआ देखकर लक्ष्मणजी परम क्रुद्ध हुए। सर्प जब क्रोध करता है तो प्राण लेता है। लक्ष्मणजी तो सर्पराज है। परम क्रुद्ध हुए हैं। अब मेघनाद को बिना प्राण लिये नही छोड सकते।

मन मे विचार किया कि यह पापी है। धर्मयुद्ध नही करेगा। कपट करता ही चला जायगा। बडे योद्धा छोटे योद्धाओ को युद्ध मे खेलाते हैं जिसमे उसका हौसला बाकी न रह जाय। सो मैं इसे बहुत खेला चुका। अब इसे मार देना ही उचित है। क्योकि बन्दर बहुत डर गये हैं।

सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा। सर संधान कीन्ह करि दापा॥
छाडा बान माँझ उर लागा। मरती बार कपटु सबु त्यागा॥८॥

अर्थ : कोशलाधीश के प्रताप को स्मरण करके दर्प के साथ बाण का सन्धान किया और बाण छोडा जो बीच कलेजे मे लगा। मरती समय उसने सब कपट छोड दिया।

व्याख्या रामजी के प्रताप का स्मरण किया। जिसके द्वारा कार्यसिद्धि होती है और उसी का दर्प करके बाण चलाया। धर्मात्मा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदि। पौरुषेणाप्रतिद्वन्द्व तदैभ जहि रावणिम्। यदि दाशरथि राम धर्मात्मा और सत्यसन्ध हैं और पौरुष मे कोई उनके समान नही है तो हे बाण! तुम रावण के इस बेटे को मारो। यही लक्ष्मणजी का रामप्रताप का स्मरण और दर्प है। यही रामास्त्र है। इस मन्त्र के उच्चारण से वह बाण रामास्त्र हो गया। उसने उसका कलेजा वेध दिया। मेघनाद समझ गया कि मर रहा हूँ। यावज्जीवन कपट किया है। कपट रखते हुए मरना ठीक नही। अत सब कपट छोडकर अपने स्वरूप मे आगया।

दो. रामानुज कहँ रामु कहँ, अस कहि छाडेसि प्रान।
धन्य धन्य तव जननी, कह अगद हनुमान॥७६॥

अर्थ : रामानुज कहाँ है। राम कहाँ है ऐसा कहकर प्राण छोड दिया। अङ्गद हनुमान् ने कहा कि इन्द्रजित्! तेरी माँ धन्य धन्य है।

व्याख्या राम के भाई कहाँ है। राम कहाँ है। ऐसा कहकर प्राण छोडा। मरने के समय कुल परिवार किसी का स्मरण नही किया। रामानुज और राम का स्मरण किया और वीररस को भी हृदय से जाने न दिया। भगवान्नाम स्मरण करते हुए प्राणत्याग किया। जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमी मुक्त होत स्रुति गावा। सो मेघनाद ने तो जानबूझकर उच्चारण किया। इसलिए अङ्गद हनुमान् ने उसकी माँ की प्रशसा की कि तुम्हारे कारण तुम्हारी माँ पुत्रवती हुई। यथा : पुत्रवती युवती जग सोई। रघुपति भक्त जासु सुत होई। अथवा उन लोगो ने उस माता की प्रशसा की कि जिसके गर्भ से ऐसा पराक्रमी पुत्र हुआ जिसने इन्द्र को जीता और अन्त समय मे मुनिगण से भी दु साध्य रामनामोच्चारण किया। यथा : जन्म जन्म मुनि जतन कराही। अन्त राम कहि आवत नाही। तथा आरम्भ से अन्त तक वीरता का निर्वाह किया। कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता। कहता हुआ लका से पहिले पहल बाहर निकला और अन्त तक उसी भाव का निर्वाह किया। प्राण त्यागते समय भी

रामानुज कहँ राम कहँ कहकर ललकारा। हनुमान् अङ्गद के जन्म से ही उसकी परम गति दिखलायी।

बिनु प्रयास हनुमान उठायो। लका द्वार राखि पुनि आयो॥
तासु मरन सुनि सुर गधर्बा। चढि बिमान आए नभ सर्बा॥१॥

अर्थ हनुमान्जी ने उसे अनायास ही उठा लिया और लका के फाटक पर उसे रख आये। उसका मरना सुनकर देवता और गन्धर्व सब विमान पर चढकर आकाश मे आगये।

व्याख्या लक्ष्मणजी को मेजनाद ने उठा ले जाने का प्रयत्न किया था पर उठा न सका। पर मेघनाद को हनुमान्जी ने अनायास ही उठा लिया और लका के फाटक पर रख आये। भाव यह कि सुषेण आदि को बुलाकर यदि चिकित्सा योग्य हो तो यत्न करो। हम लोग मूर्च्छित या मृत वीर को उठा नही ल जाते। घर पहुँचा देते हैं।

देवता लोग रणाङ्गन देखने नही आये थे। रात को अकस्मात् सग्राम हो गया अथवा मेघनाद के भय से नही आये। जब तक मेघनाद जीता था तब तक लका अजेय थी। अत मेघनाद के वध से भय भी कम हो गया और बडी खुशी हुई। सभी देवता और गन्धर्व विमान पर चढकर आकाश मे आगये।

बरषि सुमन दुदुभी बजावहिं। श्री रघुनाथ विमल जस गावहिं॥
जय अनत जय जगदाधारा। तुम प्रभु सब देवन्हि निस्तारा॥२॥

अर्थ फूलो की वर्षा करके दुन्दुभी बजाते हैं और श्रीरघुनाथ के निर्मल यश का गान करते हैं। अनन्त की जय हो। जगदाधार की जय हो। हे प्रभु! तुमने सब देवताओ का उद्धार किया।

व्याख्या देवता लोग पुष्पवृष्टि करके दुन्दुभी बजा रहे हैं और गन्धर्व लोग श्रीरघुवीर के निर्मल यश का गान करते हैं। रावण के जीते ही उसके लडके के मारे जाने पर गान हो रहा है। सरकार का यश त्रैलोक्य पावन है। इसलिए विमल जस कहा। पहल सरकार का यशोगान करके तब लक्ष्मणजी की स्तुति करते हैं।

कहते हैं कि हे अनन्त तुम्हारी जय हो। आपका अन्त है नही। इसलिए मेघनाद अन्त नही पा सका। सब कुछ लय हो जाने पर भी आप रह जाते हैं। इसीलिए शेष कहलाते हैं। य शिष्यते स शेष। जो बच जाय उसे शेष कहते है। अत आप ब्रह्मरूप हैं। आप जगत् के आधार हैं। यथा लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत् आधार। गुरु बसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार। आपने सब देवताओ का उद्धार कर लिया। इस मेघनाद के कारण देवता कभी कल नहीं पाते थे। यथा जेहि न होय रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहि परावन होई।

अस्तुति करि सुर सिद्ध सिधाए। लछिमन कृपासिंधु पहिं आए ॥

७४. निशिचर निकर मरण प्रसंग (रावण का प्रथम युद्ध)

सुत वध सुनेउ दसानन जबही। मुरुछित भयउ परेउ महि तबही ॥३॥

अर्थ : जब स्तुति करके सुरसिद्ध चले गये तब लक्ष्मणजी कृपासिन्धु के पास आये। दशानन ने जब पुत्र का मारा जाना सुना तभी वह मूच्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़ा।

व्याख्या : जब तक देवता लोग स्तुति करते थे लक्ष्मणजी उनके सम्मान के लिए वहीं खड़े रहे। जब वे लोग चले गये तब लक्ष्मणजी कृपासिन्धु के पास आये। उन्ही के अनुशासन से और उन्ही की कृपा से मेघनाद वध हुआ है।

पहिले समाचार देवताओं को लगा। वे लोग अपावन आहुति पाकर विकल थे। तुरन्त देवदूतों ने समाचार दिया कि लंका द्वार पर मेघनाद का शव रक्खा गया है। उस शव को देखकर राक्षसोने रावण को समाचार दिया। उसे ऐसी मानसिक चोट हुई कि मूच्छित होकर भूमि पर गिर गया। कुम्भकर्ण के वध पर मणि बिना फणि की भाँति विकल हुआ था। पर इस बार तो ऐसा मूच्छित हुआ कि पृथिवी पर जा पड़ा।

मन्दोदरी रुदनु कर भारी। उर ताड़न बहु भाँति पुकारी ॥
नगर लोग सब ब्याकुल सोचा। सकल कहहिं दसकंधरु पोचा ॥४॥

अर्थ : मन्दोदरी बड़ी रोई। छाती पीटकर अनेक प्रकार से पुकारने लगी। नगर के लोग व्याकुल होकर सोचने लगे। सब कहते थे कि रावण नीच है।

व्याख्या : मेघनाद के मरने पर अन्तःपुर में हाहाकार मच गया। पर मन्दोदरी बहुत रोई; क्योंकि यह उसी का औरस पुत्र था। अक्षय पहले ही मारा गया था। आज यह भी मारा गया। अक्षय के मरने पर रुदन नहीं कहा। पर इस बार तो उसने भारी रुदन किया। छाती पीटने लगी और मेघनाद को अनेक प्रकार से पुकारने लगी जैसे कोई जीते हुए को। आर्त होकर पुकार करे।

नगर के लोग व्याकुल होकर सोचने लगे कि अब नगर की रक्षा कौन करेगा। मेघनाद का बड़ा बल लंका भर को था। आज उसके मरने से सब अनाथ हो गये। सब कहते है कि रावण बड़ा नीच है। इसी की नीचता का यह परिणाम है कि राक्षस कुल का संहार उपस्थित है। यह नीच अब भी नहीं मानेगा। किसी की सुनता ही नहीं।

दो. तब दसकंठ बिबिध बिधि, समुझाईं सब नारि।
नस्वर रूप जगत सब, देखहु हृदय बिचारि ॥७७॥

अर्थ : तब रावण ने अनेक प्रकार से सब स्त्रियों को समझाया कि यह प्रपञ्च ही नश्वररूप है। हृदय में विचारकर देखो।

व्याख्या आज रावण को कोई समझानेवाला नही है। अत स्वय धैर्य धर कर उठा और स्त्रियो को समझाने लगा कि यह जितना ससार है सभी नाशवान् है। जो पैदा हुआ है वह मरेगा ही। अत विनशनशील के लिए दु ख करना व्यर्थ है। यह मर्त्यलोक है। यहाँ आकर सभी को मरना पडता है। तुम्हे भी मरना पडेगा। हमे भी मरना पडेगा। सभी मृत्यु के मुख मे पडे हैं। अज्ञान से दूसरे के लिए रोते हैं। यथा

ब्रह्मा इन्द्र मुनीश सागर मही मन्वादि दीर्घायु हैं,
वे भी लाख करोड होकर मरे ये जीव अल्पायु हैं।
कोहै मोह अहो ! प्रकाश करता जो शोक को लोक मे,
बुदबुद से तन के मरे मिलन है जो पाँच का पांच मे ॥१॥

बोते हैं विषवल्लि बीज दुख की जो प्रेम के नाम से,
होते हैं अँसुए भरे अनल के जो नेह के धाम से।
शोकारण्य बढा विशाल इनसे सौ लाख शाखा धरे,
देहो को दहता तुषानल यथा निर्धूम ज्वाला भरे ॥२॥

उत्पन्न होय तन मे बहु कीट भाई।
काढे निकारि तन से उनको सदाई॥
बेटे जिन्हें कहत वे सब भी वही है।
सोखै शरीर यह मोह महत्व ही है ॥३॥
पिता या बेटा या सुहृद यदि हो जायगत जो।
पडा छाती पीटै दुसह दुखसे बुद्धिहत सो॥
बुधोको है झूठे भवजलधि मे नित्य कटुता।
बिछोहो से होता समसुख इढाती बिराजता ॥४॥
और सभी कुछ कल्पना एक ब्रह्म ही सत्त।
कौन मोह को शोक है लखै एक अलक्त ॥५॥

तिनहि ज्ञान उपदेसा रावन। आपुन मद कथा सुभ पावन ॥
पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे ॥१॥

अर्थ : उन्हे तो रावण ने ज्ञान का उपदेश किया। आप तो मन्द थे पर उनकी कथा शुभ पावन थी। दूसरो के उपदेश मे बहुतेरे लोग कुशल होते हैं। परन्तु जो आचरण करते हैं ऐसे लोग बहुत नही होते।

व्याख्या : प्रपञ्च को नश्वर समझकर विचार करने से ही ज्ञान होता है। सो ज्ञान का उपदेश रावण ने दे डाला। यह उपदेश शुभ है और पावन है। परन्तु इसके उपदेष्टा रावण स्वय इस सिद्धान्त को चरितार्थ करनेवाले नही हैं। वे स्वयं मन्द हैं। जिसे नश्वर कहते हैं उसी मे लिप्त हैं। कालनेमि ने कहा : मैं तैं मोर मूढता त्यागू। महा मोह निसि सोवत जागू। सो उस पर बडे नाराज हुए।

कवि कहते हैं कि परोपदेशे पण्डित्यम् तो बहुत लोगो को है पर तदनुसार आचरण करनेवाले कितने हैं। जिन्हे शास्त्र ज्ञान है वे सभी दूसरो को ऐसा उपदेश किया करते हैं। परन्तु यह पण्डिताई उनके किसी काम की नहीं। वे तो तोते और बन्दर की भाँति बँधे हुए हैं। बँध्यौ कीर मरकट की नाई। अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए दूसरे को उपदेश देते है। स्त्रियो के रोने से रावण की पीड़ा बढती थी। इसलिए उन्हे समझा-बुझाकर किसी भाँति चुप किया।

निसा सिरानि भएउ भिनुसारा। लगे भालु कपि चारिहुँ द्वारा॥
सुभट बोलाइ दसानन बोला। रन सनमुख जाकर मन डोला॥२॥

अर्थ : रात बीती सबेरा हुआ और भालु बन्दरो ने चारो फाटको पर धावा बोल दिया। सुभटो को बुलाकर रावण बोला : लड़ाई मे सामने जाने पर जिसका मन डाँवाडोल हो।

व्याख्या : विपत्तिकारी रात्रि समाप्त नही होती। यथा : जुग सम भइ सिराति न राती। सो वह रात्रि भी समाप्त हुई। सबेरा हुआ। भाव यह कि रात्रि को युद्ध बन्द रहता था। उँजेला होने पर फिर आरम्भ होता था। उँजेला हो गया। युद्धकाल उपस्थित हुआ। वानरो की ओर से बड़ी मुस्तैदी है। बन्दर भालुओ ने चारो फाटक पर धावा बोल दिया। यहाँ लगने का अर्थ आक्रमण करना है। यथा : लका बाँके चार दुआरा। केहि विधि लागिअ करिअ विचारा।

अब तो रावण की सेना : शाही फौज शेष है। सो उसमे से सुभटो : सरदारो को बुलाकर रावण ने कहा। जिसमे वे लोग सारे सैनिको तक समाचार पहुँचा दें कि जिसका मन लड़ाई से डरता हो। जो कुछ भी कदराता हो या शत्रु का सामना पडने पर : घोर आघात होने पर जिसके विमुख होने की सम्भावना हो।

सो अबही बरु जाउ पराई। संजुग बिमुख भए न भलाई॥
निजभुज बल मइँ बयरु बढावा। देहौं उतरु जो रिपु चढि आवा॥३॥

अर्थ : वह अभी बल्कि भाग जाय। युद्ध मे पराङ्मुख होने मे भलाई नही है। मैंने अपनी भुजाओं के बल पर वैर बढाया है। जो शत्रु चढ़ आया है उसका उत्तर मैं दूँगा।

व्याख्या : वह इसी समय भाग जाय। पहिले मैं भागने पर नाराज हुआ था। यथा : जो रन बिमुख सुना मैं काना। सो मैं हतब कराल कृपाना। सखसु खाइ भोग करि नाना। समर भूमि भयो बल्लभ प्राना। अब मैं छुट्टी देता हूँ। भागना बुरा है। परन्तु समरभूमि से भागना और भी बुरा है। तथा : एकेनापि सुधीरेण सोत्साहेन रण प्रति। सोत्साहं जायते सैन्यं भग्ने भङ्गमवाप्नुयात्। : पं० तं० : एक भी वीर के रण के लिए उत्साह देखकर सेना मे उत्साह हो जाता है। और भागने से सेना भाग खड़ी होती है। इसलिए अभी से भाग जाना ही अच्छा है।

यदि कहा जाय हि इस भाँति छुट्टी आप दे रहे हैं तो अकेल आप क्या कर लेंगे ? इस पर रावण कहते कि वैर मैंने बढाया है। सो कुम्भकर्ण या मेघनाद या किसी और के बल पर नही बढाया है। जो शत्रु चढ आया उसका उत्तर मैं दूँगा। मैंने वैर अपने बल के भरोसे बढाया। इसीलिए वैर बढाने म किसी की सम्मति मैंने नही ली। जिसको प्रसन्नतापूवक मेरा साथ देना हो तो वह चल नही तो घर वैठे रहे। मैं छुट्टी देता हूँ। रावण को अपने भुजबल का बडा गर्व है। यथा मम भुज सागर बल जल पूरा। जहँ बूडे बहु सुर नर सूरा। बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहि पारा।

अस कहि मरुत बेग रथु साजा। बाजे सकल जुझाऊ बाजा ॥
चले बीर सब अतुलित बली। जनु कज्जल कै आँधी चली ॥४॥
असगुन अमित होहिं तेहि काला। गनै न भुजबल गर्ब बिसाला ॥५॥

अर्थ ऐसा कहकर उसने वायुवेगवाला रथ सजाया। सब जुझाऊ बाजा बजने लगे। बेतौल बलवाले वीर चले। जैसे काजल की आँधी वह उठी। उस समय असख्य असगुन होने लगे। पर भुजबल का बडा भारी गर्व था। इसलिए वह उन्हे गिनता न था।

व्याख्या आज सर्वोत्तम रथ जिसमे वायु के समान वेग है साजा गया। जिसमे उस पर सवार होकर सम्पूर्ण वानरी सेना मे विचरण कर सके। रावण के रथारूढ होते ही सब जुझाऊ बाजा बजने लगे। युद्ध का बडा उत्साह है। पहिल चारो फाटक की लडाई मे जुझाऊ बाजे बजे थे। पर बार बार पराभव से उत्साह जाता रहा। कुम्भकर्ण मेघनाद के युद्ध म बाजे न बजे। आज स्वय लकेश युद्ध के लिए चल रहे हैं। अत जुझाऊ बाजे बजे।

सेना चल पडी। सम्राट की सेना शाही फौज है। इसमे छँटे हुए वीर हैं। जो देवसेना से युद्ध कर चुके है। इसलिए कवि अतुलितबली लिख रहे है। रणोत्साह विशेष है अत बडे वेग से सेना चली। सभी राक्षस काले हैं। इसलिए राक्षसी सेना की उपमा काजल की आँधी से दे रहे हैं। भविष्य के अनुकूल प्रकृति मे परिवर्तन पहिले ही होने लगता है। इसलिए उस समय असख्य अपशकुन हुए। रावण महा पण्डित थे। शकुन अपशकुन की उन्हे पूरी जानकारी थी। पर उन्हे अपने भुजबल का इतना अभिमान है कि वे समझते हैं कि अल्पबल लोगो पर ही परिस्थिति की प्रतिकूलता का प्रभाव पडता है। मेरे ऐसे बलवान् तो प्रतिकूल परिस्थिति को अनुकूल बना लते हैं। यथा सिरो गिरे सन्तत सुभ जाही। मुकुट गिरे कस असगुन ताही।

छ अति गर्ब गनै न सगुन असगुन स्रवहि आयुध हाथ ते।
भट गिरत रथ ते बाजिगज चिक्करत भाजहि साथ ते ॥

गोमायु गीध करार खर रव स्वान बोलहिं अति घने।
जनु काल दूत उलूक बोलहिं बचन परम भयावने॥

अर्थ : अत्यन्त अभिमान से सगुन असगुन नही गिनता। हथियार हाथ से छूटे जाते हैं। वीर रथ से नीचे गिर पडते हैं। घोडे हाथी चिग्घाड करके साथ छोडकर भागते हैं। शृगाल और गीध अत्यन्त भयानक शब्द कर रहे हैं। कुत्ते वहुत से रो रहे है। काल के दूत की भाँति उल्लू वडे भयानक शब्द कर रहे हैं।

व्याख्या : रावण को इतना गर्व है कि जब उसे सगुन हुआ तो भी उसने कुछ न गिना। आज असगुन हो रहे है तो उन्हे भी नही गिनता। अपशकुन ऐसे स्पष्ट हो रहे हैं जो किसी को विना खटके नही रह सकते। वीर युद्ध के लिए चल रहे हैं और हाथ से हथियार गिरा जाता है। ये क्या लडेंगे। रथ पर से रथी नीचे गिर पडते हैं। शत्रु के प्रहार पर ये कैसे जमेगे। घोडे हाथी बिना प्रहार के ही चिग्घाडकर भागे जाते हैं। संग्राम भूमि मे ये कैसे अडेगे। शृगाल गीध मासाहारी जन्तु भयानक शब्द करते हैं। मास की प्राप्ति उन्हे सुलभ दिखायी पड रही है। कुत्ते असमय मे रो रहे हैं। दिन मे उल्लू परम भयावन शब्द करते हैं। उल्लू का शब्द भयावन होता ही है। पर वे रात को बोलते हैं। सो इस समय तो ऐसा शब्द कर रहे हैं कि मालूम होता है कि ये काल के दूत हैं। सेना को मृत्यु के लिए आह्वान कर रहे हैं।

इस भाँति रावण के प्रयाण मे कवि अपशकुन का होना दिखला रहे हैं। रामजी के प्रयाण मे कह चुके हैं कि : हरखि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भये सुदर सुभ नाना। वारात के प्रयाण के समय उन्हे गिना चुके हैं। इसलिए यहाँ नही गिनाया। रावण के प्रयाण के समय प्रधान प्रधान अपशकुन गिनाये गये।

दो. ताहि कि संपति सगुन सुभ, सपनेहुँ मन बिस्राम।
भूत द्रोह रत मोह बस, राम बिमुख रत काम॥७८॥

अर्थ : जो भूत द्रोहरत हो मोहवश हो राम विमुख हो और काम मे रत हो उसे क्या सम्पत्ति शुभ शकुन और स्वप्न मे भी मन मे विश्राम हो सकता है।

व्याख्या : जो राम विमुख है। वही भूत द्रोहरत मोहवश और कामरत होता है। उसे सम्पत्ति शुभ शकुन और विश्राम हो नही सकता। यथा . राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई विनु पाई। रामविरोध कुमल चह सठ हठ बस अंत अग्य। जगदातमा प्रानपति रामा। तासु बिमुख किमि लह बिस्रामा।

चलेउ निसाचर कटकु अपारा। चतुरंगिनी अनी बहु धारा॥
बिबिध भाँति बाहन रथ जाना। बिपुल बरन पताक ध्वज नाना॥१॥

अर्थ : राक्षसो की अपार सेना चली। चतुरङ्गिनी सेना अनेक प्रकार की पङ्क्तियो से व्यूढ थी। अनेक प्रकार के वाहन रथ और यान अनेक रङ्ग की ध्वजाएँ और पताके थे।

व्याख्या : श्रावण की वर्षा समाप्त हुई। अब भादो आरम्भ हुआ। वर्षा घोर निसाचर रारी। पहिले कह आये हैं। जितने पदो मे अभी तक युद्ध कह आये हैं उतने पदो मे रावण युद्ध कहेगे। राक्षसो की अपार सेना चल पड़ी। अपार इसलिए कह रहे हैं कि इस सेना का पार आज तक कोई नही पा सका था। सेना मे रथ, हाथी, घोड़ा और पैदल हैं इसलिए चतुरङ्गिनी कहा। सेना व्यूहबद्ध है। बहुधारा इसलिए कहा कि ऐसी पण्डिताई से व्यूढ है कि जिधर से काम पडे उधर से ही चोट कर सके। चलते ही पहिला असगुन हुआ। वीरो के हाथ से शस्त्र गिरने लगे। यथा स्रवहिं आयुध हाथते।

पहिले पैदल सेना थी। उसके बाद सवार थे। कुछ राक्षस गर्धभ वृषभ आदि वाहनो पर भी थे। इसलिए विविध भाँति वाहन लिखते हैं। पीछे रथ थे तथा अन्य सवारियाँ थी। रथो पर ध्वजा पताका रहता है। सा रथियो के रुचि के अनुसार उनके ध्वजा पताकाओ का रङ्ग था। इसलिए उनके विपुल वर्ण होने का वर्णन करते हैं। इनके चलने पर दूसरा असगुन हुआ। भट गिरहि रथते।

चले मत्त गज जूथ घनेरे। प्राविट जलद मरुत जनु प्रेरे॥
बरन बरन बिरदैत निकाया। समर सूर जानहि बहु माया॥२॥

अर्थ : मतवाले हाथियो के बहुत से समूह चले। माना वायु के उड़ाये हुए बरसात के बादल हैं। अनेक वर्ण के विरुदवाले वीरो का समूह था। जो युद्ध मे बडे लड़ाके और बहुत सी माया जानते थे।

व्याख्या : तत्पश्चात् हाथियो की सेना चली। मालूम पड़ा कि भादो की घटा उमड आई है। बादल जड़ है। उनमे गति नही। इसलिए कहते हैं कि मरुत जनु प्रेरे। अब तीसरा अपशकुन हुआ। वाजि गज चिक्करहि भाजहि साथ ते।

असुरो की भी अनेक जातियाँ होती हैं। यथा : काल का दौहृंदा मौर्या कालकेयास्तथाऽसुरा शतं कुलानि धौम्राणा निर्गच्छन्तु ममाज्ञया · सप्तशता। अथवा अनेकाग के ये सब वीर विरुदवाले थे। ये वाक् शूर नही शमशूर थे और विशेषता यह थी कि बहुत सी माया जानते थे। इनके चलने मे चौथा अपशकुन हुआ। गोमायु गीध कराल खर रव स्वान बोलहिं अति घने। जनु काल दूत उलूक बोलहि बचन परम भयावने।

अति बिचित्र बाहनी बिराजी। बीर बसंत सेन जनु साजी॥
चलत कटकु दिगसिंधुर डिगही। छुभित पयोधि कुधर डगमगही॥३॥

अर्थ : अत्यन्त विचित्र सेना शोभायमान हुई। जैसे वीर वसन्त ने सेना सजाई हो। सेना के चलते हुए दिग्गज डगमगाते थे। समुद्र क्षुब्ध हो उठा और पहाड़ हिलने लगे।

व्याख्या : यद्यपि अति विकट सेना थी। परन्तु व्यूहबद्ध होने से और सर्वाङ्ग सम्पन्न होने से उसकी भी शोभा हो रही थी। अति विचित्र इसलिए कहा कि

ध्वजल की आंधी सी होने पर भी सुशोभित है। इसीलिए उपमा देते हैं कि वीर वसन्त ने मानो सेना सजा रखी हो। वसन्तऋतु काम का सहायक है। उसकी सेना भी शृंगार रस के उद्दीपन का काम करती है। परन्तु यह सेना वीर वसन्त की है जो शोभायमान होकर वीर रस के उद्दीपन का काम करती है।

जब रामजी ने प्रयाण किया था उस समय का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है : चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे। लगभग वैसा ही वर्णन रावण के प्रयाण मे भी कर रहे हैं। दिग्गज हिल रहे हैं। समुद्र क्षुब्ध हो रहा है और पहाड डगमगा रहे हैं। भाव यह कि यह प्रधान सेना : शाही फौज बडी भारी है। अभीतक यह बिल्कुल अछूती थी। इसके भार से पृथिवी कम्पमान है।

उठी रेनु रबि गयउ छपाई। मरुत थकित बसुधा अकुलाई ॥
पनव निसान घोर रव बाजहिं। प्रलय समय के घन जनु गाजहिं ॥४॥

अर्थ : धूलि उड़ी तो सूर्य छिप गये। वायु रुक गयी पृथिवी व्याकुल हो गयी। ढोल और डंको का घोर शब्द हो रहा है मानो महाप्रलय के बादल गरज रहे है।

व्याख्या : चतुरङ्गिनी सेना जब चलती है तो आकाश मे धूलि छा जाती है। यथा : नभ धूरि खगमृग भूरि भागे बिकल प्रभु आस्रम गये। धूरि पूरि नभमंडल रहा। राम बोलाइ अनुज सन कहा। लै जानकिहि जाहु गिरिकंदर। आवा निसिचर कटक भयंकर। यह सेना इतनी बड़ी थी कि ऐसी धूलि उठी कि रविमंडल का पता नहीं लग रहा है। रज के कण इतने अधिक हवा मे भर गये कि वायु की गति मन्थर हो गयी। भाव यह कि आकाश से लेकर पृथिवी तक धूलि भर उठी। श्वास-प्रश्वास लेना कठिन हो गया। इससे कहते हैं : बसुधा अकुलाई लक्षणा से अर्थ करना पड़ेगा कि लोग व्याकुल हो उठे।

सेना मे ढोल और डङ्के बज रहे हैं। उत्सव मे ढोल डके मधुर स्वर मे बजाये जाते है पर यहाँ तो वीर रस के अनुकूल बजाये जा रहे हैं। अत: उनका ऐसा शब्द हो रहा है मानो महाप्रलय के बादल गरज रहे हैं। महाप्रलय अत्यन्त सन्निकट है। चारो फाटक की लड़ाई मे लिखते हैं : बाजहिं ढोल निसान जुझाऊ। सुनि धुनि होइ भटन्ह मन चाऊ।

भेरि नफीरि बाज सहनाई। मारू राग सुभट सुखदाई ॥
केहरिनाद बीर सब करही। निज निज बल पौरुप उच्चरही ॥५॥

अर्थ : भेरी नफीरी और शहनाई बज रही है। मारू राग वीरो को सुख दे रहा है। वीर लोग सिंहनाद कर रहे हैं और अपना-अपना बल पौरुष उद्घोषित कर रहे हैं।

व्याख्या : भेरी नफीरी और शहनाई फूँक से बजनेवाले बाजे हैं। अत: इनमे राग बजते हैं। समयानुकूल यहाँ मारू राग बज रहा है जिसके सुनने से वीर को

सुख होता है। भाव यह कि कादरों का तो कलेजा दहल उठता है। यथा : बार्जाहि भेरि नफीरि अपारा। सुनि कादर उर जाहि दरारा।

मारू राग सुनने से जब वीरों को आनन्द हुआ तो वे लोग सिंहनाद करने लगे और दर्प से अपने बल पौरुष का उद्घोषण करने लगे जिससे जोश बढ़ चला। यथा : एकहि एक बढ़ावहि कर्पा। वीर सब करहीं कहने का भाव यह है कि रावण के आज्ञानुसार सेना में ऐसा कोई नहीं है जिसका मन रण सन्मुख क्षुब्ध हो।

कहै दसानन सुनहु सुभट्टा। मर्दहु भालु कपिन्ह के ठट्टा ॥
हौ मारिहौं भूप दोउ भाई। अस कहि सनमुख फौज रेंगाई ॥६॥
यह सुधि सकल कपिन्ह जब पाई। धाये करि रघुबीर दोहाई ॥७॥

अर्थ : रावण ने कहा कि वीरो सुनो। तुम लोग बन्दर और भालुओं की भीड़ का मर्दन करो। दोनों भाई राजा को मैं मारूँगा। ऐसा कहकर सेना को सामने चलाया। यह समाचार जब बन्दरों ने पाया तो रामजी की दोहाई करते हुए दौड़े।

व्याख्या : जब रावण ने देखा कि सैनिकों में वीर रस भर गया। अब और आगे बढ़ने पर युद्ध आरम्भ होगा। तब कार्य विभाग की घोषणा करता हुआ बोला कि वीरो! तुम लोग अपना लक्ष्य भालु बन्दरों के वध पर रक्खो। तुम लोग एक-एक भालु बन्दर के झुण्डों के नाश में समर्थ हो। रामजी का नाम[1] नहीं लेता इसलिए कह रहा है कि दोनों भाई राजा जिन्होंने कुम्भकर्ण मेघनाद का वध किया उनकी चिन्ता छोड़ दो। उन दोनों को मैं अपना भाग कल्पित करता हूँ। उन दोनों को अकेले में करूँगा। ऐसी आज्ञा देकर फौज को आगे बढ़ाया।

जब बन्दरों को यह समाचार मिला कि स्वयं रावण बड़ी विशाल सेना लेकर लड़ने आ रहे हैं और सरकार दोनों भाइयों से स्वयं लड़ेंगे। राक्षसी सेना को बन्दरों के संहार के लिए आज्ञा दे दी है। तब उन लोगों ने तुरन्त समझ लिया कि इस अवसर पर उत्तर फाटक पर जो सेना भेजी गयी है उससे काम नहीं चल सकता। अतः प्रधान सेना के बन्दर लोग राजा रामचन्द्र की दोहाई देते दौड़े। यही दोहाई अन्त में लङ्का में फिरनेवाली है। यथा : नगर फिरी रघुबीर दोहाई। दौड़ने का भाव यह कि रास्ते ही में मिलकर स्वागत करना चाहिए।

छं.[2] धाए बिसाल कराल मरकट भालु काल समान ते।
मानहु सपक्ष उड़ाहि भूधर बृंद नाना बान ते ॥
नख दसन सैल महाद्रुमायुध सकल संक न मानहीं।
जयराम रावन मत्त गज मृगराज सुजस बखानहीं ॥

---

१. आज भी रावणी सम्प्रदायवाले रामनगर को नामनगर कहते हैं।
२. हरिगीतिका छन्द है।

अर्थ विशाल और कराल बन्दर और भालु दौडे। वे काल के समान थे। मानो पक्ष के सहित पहाडो के समूह उड रहे हैं और वे अनेक रङ्ग के हैं। नख दाँत पर्वत और बडे बडे पेड ये ही उनके हथियार हैं और सभी नि शङ्क हैं। रावणरूपी मत्तगजराज के लिए सिंह ' रामजी की जय हो ऐसा कहकर सुयश का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या यहाँ न कोई व्यूह है न ध्वजा पताका है न बाजा है न गज रथ तुरंग है न अस्त्र शस्त्र है फिर भी बन्दर भालु काल के समान कराल है और ऐसे विशाल हैं कि उनके दौडने से ऐसी शोभा हो रही है कि मानो अनेक रङ्ग के पहाडो को पख मिल गया है और वे उडे चले जाते हैं। हथियार के नाम से उन्हे नख है पर्वत हैं बडे-बडे पेड हैं फिर भी वे ऐसे सबल हैं कि ऐसी भयानक सेना का उन्ह कुछ भी परवाह नही है। राक्षस लोग अपना अपना बल पौरुष उद्घोषित करते हैं पर ये लोग रामयश का उद्घोष कर रहे हैं कि रावणरूपी मत्तगज के लिए मृगराज रामजी हैं उनको जय हो। भाव यह कि इन लोगो ने भी कार्य विभाग कर लिया रावण को रामजी के भाग मे कल्पना कर दिया और राक्षसी सेना का सामना करने स्वय दौडे।

दो दुहु दिसि जय जयकार करि, निज निज जोरी जानि।
भिरे बीर इत रामहित, उत रावनहि बखानि ॥७९॥

अर्थ दोनो ओर से जय जयकार करके अपनी-अपनी जोडो जानकर इधर रामजी का और उधर रावण का बखान करके बीर भिडे गये।

व्याख्या दोनो सेनाओ की ओर से जय जयकार पहिले हुआ। अब अत्यन्त निकट आने पर भिडने का समय आ गया तब वीरो ने अपनी अपनी जोडी तजवीज कर लिया दुर्बल पर टूट न पडे। युद्धारम्भ के पहिले वीरो ने अपने-अपने स्वामी का बखान किया तब भिड गये। रणाङ्गन भर मे जोडी से जोडी भिड गई। यथा भिरे सकल जोरिहि सन जोरी। इत उत जयइच्छा नहि थोरी। राम रावण की जोडी है। अत सरकार उठ पडे।

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषनु भएउ अधीरा॥
अधिक प्रीति मन भा सदेहा। बदि चरन कह सहित सनेहा ॥१॥

अर्थ रावण रथ पर चढा है और रघुवीर के पास रथ नही यह देखकर विभीषणजी अधीर हो उठ अधिक प्रीति होने से मन मे सन्देह हुआ। चरण वन्दना करके स्नेह के साथ कहा।

व्याख्या रुलानेवाल को रावण कहते हैं। दशानन ऐसे बलवान् अत्याचारी

---

१ यह लडाई उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र की वर्षा है।

थे कि उनका नाम ही रावण पड़ गया था। कवि कहते हैं कि एक तो स्वयं रावण तिस पर आज रथ पर चढा हुआ है। पैदल ही प्रतिभट के खोज में दौडता था। यथा : रन मद मत्त फिरइ जग धावा। प्रति भट खोजत कतहुँ न पावा। आज तो रथ पर सवार है। उसका सामना कौन करेगा। यद्यपि रामजी भी रघुकुल मे वीर हैं। युद्ध से हट नही सकते। पर पैदल हैं। इन्हे रथ नही। रथी पैदल का क्या जोड़ है ? विभीषणजी यह देखकर अधीर हो उठे। जानते तो पहिले ही से थे कि यहाँ सेना में टुटही घोड़ियाँ भी किसी के पास नही। पर जानना और देखना दो बात है। रावण को देखकर धैर्य छूट गया। विभीषण युद्ध के मर्म को जानते हैं। रथ के सुभीते को समझते है। इसलिए वे ही अधीर हुए। बन्दर न हुए। क्योकि उनमें पदाती रहकर ही युद्ध करने की चाल है। उन्हे रथ के सुभीते का पता ही नही। इसलिए अधीर भी नही हुए।

विभीषणजी को कभी रामजी के विषय में सन्देह नही था। ललकारकर रावण से कह दिया था : राम सत्य संकल्प प्रभु सभा काल बस तोरि। पर प्रेमी का मन पापशंकी होता है। विभीषणजी को अधिक स्नेह के कारण सन्देह उठ गया। अतः प्रेमी के साथ चरण वन्दना करके कहते हैं : बन्दि चरण से शिष्य की शुश्रूषा कहा।

नाथ न रथु नहि तन पदत्राना। केहि विधि जितब वीर बलवाना ॥
सुनहु सखा कह कृपा निधाना। जेहि जय होइ सो स्यंदन आना ॥२॥

अर्थ : नाथ को न तनत्राण : वर्म है न पदत्राण जूते हैं। किस विधि से वीर बलवान् को जीतेंगे। कृपानिधान ने कहा कि सखा सुनो। जिससे जीत होती है वह रथ ही दूसरा है।

व्याख्या : विभीषणजी कहते हैं कि सरकार के पास रथ नही और शत्रु के पास मरुत वेग रथ है। सरकार के पास तनत्राण वर्म नही है जो शरीर की रक्षा कर सके और न पैर मे जूती है जो गिरे हुए शस्त्र के पैर में गड़ने से रक्षा कर सके। यदि कहिये कि बिना रथ के ही कुम्भकर्ण और मेघनाद को जीता तो उनमे से एक बलवान् और दूसरा वीर था। यह रावण तो वीर भी है और बलवान् भी है। इसके बराबर की सामग्री बिना हुए इसके जीतने की कोई विधि ही नही। अत. पहिले विधि बतला दीजिये तब जाइये। आप हम लोगो के नाथ हैं। ऐसी अवस्था मे हम नही जाने दे सकते।

उत्तर देने मे सरकार ने सखा कहकर सम्बोधन किया। भाव यह कि तुम सखा हो। रहस्य बतलाने के पात्र हो। यथा : भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्। दूसरा कोई वीर होता तो चिढ जाता। ठीक युद्ध के समय तेजोवध की बात कहनेवाला शत्रु समझा जाता। परन्तु सरकार कृपानिधान हैं। विभीषण तो रावण के जय को विधि पूछते थे। सरकार ने उन्हे संसार के जय की विधि बतला दो। कहने लगे कि : मरुत वेग रथ से जय नही होता। जयप्रद रथ दूसरा

है। भाव यह कि वह रथ अब रावण के पास नहीं रह गया। तुम्हारे चले आने के पहिले कुछ टूटी फूटी अवस्था मे था। जिससे उसने सुरासुर का विजय किया था। अब तो उसके पास रथ के दो चक्र शौर्य धैर्य तथा एक घोडा बल मात्र रह गया। उस रथ का शेष भाग तो तुम्हारे गुणगण थे। यथा : तुम सारिखे सन्त प्रिय मोरे। धरहुँ देह नहि आन निहोरे। तुम्हारे त्याग से उसका विजय रथ ही टूट गया। यथा रावन जबहिं विभीषन त्यागा। भयउ विभव बिनु तबहिं अभागा। अब उस जयप्रद रथ का वर्णन करते हैं।

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ ध्वजा पताका ॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे ॥३॥

अर्थ : १ शौर्य और २ धैर्य उस रथ के पहिये हैं। ३ सत्य और ४ शील उसके दृढ ध्वजापताका हैं। ५ बल ६ विवेक ७ दम और परहित ८ घोडे हैं। क्षमा कृपा और समतारूपी ९ रस्सी से जोडे हुए हैं।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि उस रथ के काष्ठ लोहमय चक्र नहीं होते। उसके चक्र है शौर्य और धैर्य। जैसे बिना चक्र के इस रथ मे गति नही होती उसी भाँति बिना शौर्य धैर्य के उस रथ मे गति नही होती। जिसे शौर्य धैर्य नहीं उसके भाग्य मे विजय नही है। कादर को परलोक की प्राप्ति भी नही होती। ध्वजापताका का दर्शन दूर से ही होता है। उनका बना रहना रथी के सकुशल होने का चिह्न है। सो उस रथ मे वस्त्र धातुमय ध्वजापताका नही लगते। सत्य और शील उस रथ का ध्वजा और पताका है। यदि सत्य शील बना हुआ है तो उस रथ का रथी सुरक्षित है। इसलिए दृढ ध्वजापताका कहा। अथवा यह ध्वजापताका तो शत्रु के काटे कट जाता है। पर सत्य शील ऐसा दृढ ध्वजापताका है जिसे शत्रु काट नही सकता और जो रथ दर्शन से पूर्व ही दृष्टिगोचर होता है। यथा : राम सत्य सकल्प प्रभु सभा कालबस तोर।

प्राचीनकाल के रथो मे चक्र तो दो रहते थे। पर घोडे चार जोते जाते थे। सो उस रथ के घोडे भी दूसरे हैं। उन घोडो का नाम है बल, विवेक, दम और परोपकार। रथ के घोडो की भाँति इन्हे परोपकारक तथा सुशिक्षित होना चाहिए। बिना इसके शौर्य और धैर्यरूपी चक्र मे गति नही आती। केवल बलरूपी घोडा भी शौर्य और धैर्यरूपी चक्र को गति दे सकता है। परन्तु विवेक दम और परहित का सहयोग न होने से वह शौर्य और धैर्य का विनियोग महा अनर्थ मे करेगा। जिस भाँति रावण के शौर्य और धैर्य का विनियोग हो रहा है।

इन घोडो को जोडने के लिए रस्सी चाहिए तो क्षमा कृपा समता रस्सी है। क्षमा कृपा और समतारूपी लडियो को बटकर रस्सी बनी है। वही बल विवेक दम और परहित रूपी घोडो को एक मे जोडने मे समर्थ है।

ईस भजन सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना ॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा ॥४॥

अर्थ : १० महादेव की सेवा सुजान सारथी है। ११ विरति ढाल है और १२ सन्तोष तलवार है। १३. दान गँडासा है और १४ बुद्धि प्रचण्ड शक्ति है और श्रेष्ठ १५. विज्ञान ही कठिन धनुष है।

व्याख्या : यह सब होने पर भी सुजान सारथी होना चाहिए। क्योंकि सारथी ही रथ को लक्ष्य तक पहुँचाता है। सब विघ्नो का अतिक्रमण करता है। घोड़ो का नियमन करता है। रथी की रक्षा करता है। सो उस रथ मे ईशभजन ही सुजान सारथी है। वही धर्म रथ को लक्ष्य की ओर ले जायगा। समस्त विघ्न बाधाओ से रथ को बचाता हुआ घोड़ो मे सामञ्जस्य बनाये रखेगा और रथी की सब प्रकार से रक्षा करेगा। उस रथ का बागडोर ईश भजन के हाथ मे है। यथा : औरउ एक गुपुत मत सबहि कहौं कर जोरि। सकर भजन बिना नर भक्ति न पावइ मोरि। अब रथ का रूपक पूरा हुआ। पर रथ दो प्रकार का होता है। एक विहार रथ और दूसरा युद्ध रथ। युद्ध रथ सब शास्त्रास्त्र से सुसज्जित रहता है। क्योकि सब कुछ होने पर भी युद्ध तो रथी को ही करना है। यदि रथ पर सब उपकरण न रहेगे तो रथी युद्ध कैसे करेगा ? विजय रथ तो स्पष्ट ही युद्ध के लिए है। अत उसके उपकरणो का वर्णन करते हैं।

युद्धरथ मे ढाल, तलवार, परशु, शक्ति, धनुष, तरकस, बाण और कवच ये सब यथास्थान रक्खे रहते हैं। यहाँ वैराग्य ही ढाल है। यथा . वैराग्यमेवाभयम् वैराग्य ही अभय है। क्योंकि काम क्रोधादिक शत्रुओ की चोट को वैराग्य ही रोकता है। अतः रथी की रक्षा के लिए पहिले वैराग्यरूपी ढाल ही कहा। युद्ध मे केवल बचाने से ही काम नही चलता। शत्रु के वध के लिए अस्त्र शस्त्र चाहिए। इसलिए कहते हैं कि सन्तोष तलवार है। अत्यन्त निकट आये हुए शत्रु का वध तलवार से ही होता है। जो कुछ प्राप्त है उसी मे सन्तोष करना। यह ऐसी पैनी तलवार है कि इसके काट से काम क्रोधादि शत्रु बच नही सकते। यथा : बिनु सतोष न काम नसाही। जिमि लोभहि सोखै सतोपा। नहि सन्तोष त पुनि कछु कहहू।

जो शत्रु तलवार की पहुँच के बाहर हैं उन पर परशु का वार होना चाहिए। यहाँ दान ही परशु है। यथा : दान दुर्गतिनाशनम्। दुर्गति सन्तोष के पहुँच के बाहर की वस्तु है। इसका नाशरूपी परशु से करना चाहिए। परन्तु जाड्य : अज्ञान दानरूपी परशु के भी पहुँच के बाहर की वस्तु है। उसके नाश के लिए बुद्धि प्रचण्ड शक्ति है। बुद्धि को बरछी कहने का भाव यह है कि उसके अग्र भाग मे लोहा लगा रहता है। उसी भाँति धीवृत्ति के अग्र भाग मे चिदाभास रहता है। उसी को ज्ञान कहते हैं। जो जाड्य का नाश करता है। यथा : चिदाभासान्तधीवृत्तिर्ज्ञानं लोहान्त कुन्तवत् : प० द०। इससे परोक्ष आत्मज्ञान हो सकता है।

परन्तु ससार के मूल अविद्या तक उस ज्ञान की भी पहुँच नही है। अत. उसके लिए बर विज्ञानरूपी कठिन धनुष की आवश्यकता है। अपरोक्ष ज्ञान ही बर विज्ञान है। यही ससार के कारणभूत अज्ञान का नाश करता है। यथा : अपरोक्षात्मविज्ञान

शाब्दं देशिकपूर्वकम्। संसारकारणाज्ञानतमसश्चण्डभास्करः। पं० ८०। अपरोक्ष आत्मविज्ञान गुरुमुख से पाया हुआ संसार के कारण अज्ञानरूपी अन्धकार के लिए प्रचण्ड सूर्य है। यह अपरोक्षज्ञान अत्यन्त दृढ होना चाहिए। अतः बर विज्ञान कठिन को दंडा कहा।

अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥
कवच अभेद बिप्र गुरुपूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा ॥५॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके ॥६॥

अर्थ : १६ निर्मल और निश्चल मन तरकस के समान है और १७ शम यम नियम अनेक प्रकार के बाण हैं। ब्राह्मण और गुरु की पूजा १८. अभेद्य कवच है। इसके समान विजय का दूसरा उपाय नही है। हे सखे ! जिसके पास ऐसा धर्ममय रथ हो उसके लिए जीतने को कही शत्रु नही है।

व्याख्या : वासनाहीन तथा स्थिरीकृत मन ही तरकस है, उसीमे शम-यम-नियमरूपी बाणो के धारण की क्षमता है। चञ्चल मन मे इसकी योग्यता ही नही होती। शम शान्ति को कहते हैं। यह मोह के जड़ को जला देती है। यथा : जहाँ शान्ति सद्गुरु की हई। तहाँ मोह की जरि जर गई। यम पाँच हैं : ब्रह्मचर्य अहिंसा सत्य अस्तेय और अपरिग्रह। नियम भी पाँच हैं। शौच सन्तोप तप स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान। इन सब के अलग अलग फल कहे गये हैं। ब्रह्मचर्य से वीर्य लाभ होता है। अहिंसा से उसके पास मे वैर त्याग हो जाता है। अस्तेय से सर्वरत्नोपस्थान होता है। अपरिग्रह से जन्मकथन्ता का सम्बोधन होता है। शौच से अपने शरीर मे घृणा और दूसरे से असंसर्ग होता है। सन्तोप से अत्युत्तम सुख लाभ होता है। तप से कार्य सिद्धि होती है। स्वाध्याय से इष्ट देवता संप्रयोग होता है और ईश्वरप्रणिधान से समाधि सिद्धि होती है। परन्तु ज्ञानपूर्वक इनके अनुष्ठान से प्रकाश के आवरण का नाश होता है। सत्य से ख्याति भी होती है और सन्तोप से कामादि का नाश भी होता है। अतः सत्य को ध्वजा और सन्तोप को तलवार भी कहा गया है। अतः अङ्ग की गणना मे इन्हे दो वार नही गिना गया।

इस पर भी युद्ध मे यदि शत्रु की चोट आ पहुँचे तो उसकी रक्षा के लिए विप्र गुरु पूजा रूपी अभेद्य कवच है जो किसी के काटे नही कट सकता। इस कवच को जो धारण करता है वह सर्वथा शत्रु के प्रहार से निर्भय हो जाता है। विप्र की पूजा कवच है और विप्र गुरु पूजा अभेद्य कवच है। विजय के उपाय तो और भी दूसरे हैं पर इसके समान दूसरा कोई उपाय नही है। किसी उपाय से इस लोक मे जय की प्राप्ति होती है और किसी उपाय से परलोक मे जय की प्राप्ति होती है। परन्तु इससे दोनो लोको का जय होता है। काष्ठमय रथ से क्या होगा ! इस धर्ममय रथ के पास होने से जीतने के लिए कही शत्रु ही नही होते। सब शत्रु जीते हो जिताये हैं। सखा सम्बोधन का भाव हो यही है कि तुम्हे दैवी सम्पत् की प्राप्ति है।

तुम पुलस्त्यवशोचित स्वधर्म पर आरूढ हो। स्वधर्म ही धर्ममय रथ का ढाँचा है। उसे दृढ करो। अठारह अगो से युक्त करो। यथा : चलहि स्वधर्म निरत स्रुति नीतो। नीति भी यही है कि इष्ट धर्मेण योजयेत्। अपने प्रिय को धर्म मे लगा देना चाहिए। लक्ष्मणजी ने सखा निषादराज को धर्म मे लगाया। यथा : सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम वचन राम पद नेहू। रामजी ने सखा विभीषण को इस अठारह अगवाले उपदेश द्वारा धर्ममे लगाया। जिस भाँति कृष्ण भगवान् ने अर्जुन को अठारह अध्यायवाली गीता द्वारा धर्ममे लगाया।

दो. महा अजय संसार रिपु, जीत सकै सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ, सुनहु सखा मतिधीर ॥८०॥

अर्थ : यह ससार रूपी शत्रु बडा अजय है। इसको वही वीर जीत सकता है। जिसके पास ऐसा दृढ रथ हो। हे मतिधीर सखा! सुनो।

व्याख्या : यह ससार बन्धन का कारण है इसलिए शत्रु है। सारा दु ख इसी के कारण से भोगना पडता है। यथा : तब से जीव भयेउ ससारी। छूट न ग्रन्थि न होइ सुखारी। और यह महा अजय है। अनादि काल से प्राणी दु ख उठा रहा है पर इससे छूट नही सकता। जिन्होने इन्द्रादिक को जीता वे भी इसके जीतने मे समर्थ नही हुए। इसे तो वही जीत सकता है जिसके पास ऐसा रथ हो और वह हलचल न हो खूब दृढ हो। फिर भी रथी को वीर होना चाहिए।

रावण अजय है पर ससाररिपु महा अजय है। जब वह इस अठारह अगवाले धर्ममय रथ से जीता जा सकता है तो रावण की बात ही क्या है? वह तो कामादिक का दास है। सखा सम्बोधन से उपक्रम उसी से अभ्यास और उसी से उपसहार करते हैं। भाव यह कि यह बडे हित की बात है। निर्गलितार्थ यह कि तुम चिन्ता न करो। रावण के पास यदि मारुतवेग रथ है तो मेरे पास धर्ममय रथ है। शौर्य यथा : जौ नर तात तदपि अति सूरा। धैर्य यथा : जौ नहि फिरै धीर दोउ भाई। सत्यसील यथा : सत्यसध दृढ ब्रत रघुराई। बल यथा : देखि राम बल पौरुष भारी। विवेक यथा : प्रभु करुणामय परम बिबेकी। दम यथा : राम पुनीत बिषय रस रूखे। परहित यथा : बिप्र धेनु सुर सत हित लीन्ह मनुज अवतार। क्षमा यथा : सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा। कृपा यथा : को कृपाल रघुबीर सम। समता यथा : जद्यपि राम सीम समता की। ईश भजन यथा : पूजि पारथिव नायउ माथा। विरति यथा : नव गयद रघुबीर मन राज अलान समान। छूटि जानि बन गमन सुनि उर अनद अधिकान। सन्तोष यथा : भरत प्रान प्रिय पावहि राजू। बिधि सब बिधि मोहि सम्मुख आजू। दान यथा : जो सपति सिव रावनहि दीन्ह दिये दसमाथ। सो सपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्ह रघुनाथ। बुद्धि यथा : राम तेज बल बुधि बिपुलाई। सेष सहस सत सकहि न गाई। विज्ञान यथा : विज्ञानधामावुभौ। शम यम नियम यथा : राम पुनीत बिषय रस रूखे। तथा : भये राम सब विधि सब लायक। विप्रपद पूजा यथा : विप्र चरन पकज

सिर नावा। गुरुपद पूजा यथा : गुरुपद कमल पलोटत प्रीते। युद्धोपस्थिति का समय ही संशयोच्छेदक ज्ञान के उपदेश के लिए उपयुक्त समय है।

दो. सुनि प्रभु वचन बिभीषनु, हरषि गहे पदकंज।
एहि मिस मोहि उपदेसेहु, राम कृपा सुख पुंज ॥८०क॥

अर्थ : विभीषण ने प्रभु का वचन सुनकर हर्षित होकर चरण कमल पकड़ लिया। समझा : कि इस व्याज से कृपा तथा आनन्द की राशि रामजी ने मुझे उपदेश किया।

व्याख्या : विभीषण अधीर हो उठे थे। सो प्रभु के वचन सुनकर हर्षित हो गये। चरण कमल को पकड़ लिया। इससे शिष्य की कृतकृत्यता दिखलायी। रामजी कृपा की राशि हैं। मैंने रावण के जीतने की विधि पूछा सो उसे बतलाते हुए सरकार ने मुझे ससार सागर सन्तरण का उपाय बतला दिया। कृपा निधान हैं : उत्तर के व्याज से मुझे उपदेश दिया। आनन्द की राशि हैं : मेरे दु ख को दूर करके आनन्दित कर दिया।

दो. उत पचार दसकंधर, इत अंगद हनुमान।
लरत निसाचर भालुकपि, करि निजनिज प्रभु आन ॥८०ख॥

अर्थ · उधर रावण के वीर ललकारते थे और इधर अङ्गद हनुमान् ललकारते थे और राक्षस तथा भालु वन्दर अपने अपने मालिक की दोहाई देकर लड़ रहे थे।

व्याख्या : उत अर्थात् विरोधी पक्ष मे रावण के सुभट लोग अपनी सेना के उत्साह वर्धन के लिए ललकारते हैं और इत अर्थात् अपने पक्ष मे अङ्गद और हनुमान् उत्साह वर्धन कर रहे हैं। दसकठभट-पाठ मे यदि भट शब्द को दसकठ का विशेषण मान लिया तो यह अर्थ करना पडेगा कि उधर से वीर दसकंठ ललकार रहा था। दसकन्धर शब्द हेतु गर्भ है। भाव यह कि दसो कण्ठ से ललकारता है। इस समय अपने सेना का सेनापतित्व स्वय रावण कर रहा है क्योंकि उसके प्रधान सेनापति सब मारे गये हैं और इधर प्रधान सेनापति सब बचे है। इसलिए अङ्गद हनुमान् सेना का उत्साह वर्धन कर रहे हैं। दोनो ओर की सेना अपने अपने प्रभुओ की दोहाई देकर उनके लिए प्राण निछावर कर रही हैं।

सुर ब्रह्मादि सिद्ध मुनि नाना। देखत रन नभ चढे बिमाना॥
हमहू उमा रहे तेहि संगा। देखत रामचरित रनरगा ॥१॥

अर्थ : ब्रह्मादि देवता और अनेक सिद्ध मुनि विमान पर चढे हुए थे। हे उमा ! मैं भी उसी साथ मे था और रण रङ्गवाला रामचरित देख रहा था।

व्याख्या : बडा भारी युद्ध हो रहा था। अतः ब्रह्मादि देवता सिद्ध मुनि लोग जिस भाँति यज्ञो के देखने के लिए आते हैं उसी भाँति आये थे। शङ्कर भगवान् कहते है कि मै भी उसी समाज मे था। यह कहने का भाव यह है कि तुम यह न समझना

कि उस समय १०८७ वर्ष की समाधि लगाये मैं बैठा था। इसलिए वहाँ उपस्थित नही था। एक शरीर से समाधि लगी थी और दूसरे शरीर से जिस भाँति सब यज्ञो मे उपस्थित होता था : सब भक्तो को उनकी पूजा ग्रहण करके अनुगृहीत करता था उसी भाँति उस युद्ध यज्ञ मे उपस्थित था। बडा भारी लाभ तो वहाँ यह था कि सरकार युद्ध मे कैसा चरित करते हैं यह देखने का अवसर मिला था। उसे देखने के लिए रामचरित रसिक सभी देवगण सिद्धगण मुनिगण विमानो पर चढकर आये थे। क्योकि उसी भाँति युद्ध का पूरा दृश्य दृष्टिगोचर होता था। उमा : सम्बोधन का भाव यह कि तुम उस समय सती शरीर से कैलास मे थी। रामरावणयोर्युद्ध रामरावणयोरिव।

सुभट समर रस दुहु दिसि माते। कपि जयसील राम बल ताते॥
एक एक सन भिरहिं प्रचारहिं। एकन्ह एक मर्दि महि पारहिं॥२॥

अर्थ : दोनो ओर वीर रणरस मे मत्त हो रहे थे। पर जीत बन्दरो की होती थी। क्योकि उन्हे रामजी का बल था। एक एक से भिडते थे और ललकारते थे और एक दूसरे का मर्दन करके पृथिवी पर फेंक देते थे।

व्याख्या वीर लोगो को युद्ध का चाव तो बाजे की ध्वनि सुनकर ही हो उठा था। इस समय तो वे रणमद से मत्त हो रहे थे। रण मे वीरो को नशा सा चढ जाता है। वे अपने होश मे नही रहते। गहरा चाट खाकर शत्रु की प्रशसा करते हैं। मनस्विनामिव सत्सप्रहार। यथा कपि बल बिपुल सराहन लागा। सो दोनो ओर के वीर रणमदमत्त होकर युद्ध कर रहे हैं। पर जीत बन्दरो की होती है। क्योकि उन्हे रामजी का बल है। रामो राक्षसमर्दन। श्रुति मे रामनाम की यह व्युत्पत्ति भी दी हुई है। राम कृपा कपि दल बल बाढा। जिमि तृन पाइ लाग अति डाढा। अनेक प्रकार से युद्ध हो रहा है। एक दूसरे से भिडते है और दूसरे को ललकारते हैं कि चलाओ चोट। एक दूसरे को आटे की भाँति मर्दन करके उसे एक पिण्ड की भाँति बनाकर पृथिवी पर डाल देते है।

मारहिं काटहिं धरहिं पछारहिं। सीस तोरि सीसन्ह सन मारहिं॥
उदर बिदारहिं भुजा उपारहिं। गहि पद अवनि पटकि भट डारहिं॥३॥

अर्थ मारते हैं। काटते हैं। पृथिवी पर पछाड देते हैं। सिर तोडकर सिरो से मारते हैं। पेट फाडते हैं। भुजा उखाडते हैं। पैर पकडकर पृथिवी पर पटक देते हैं और डाँटते हैं।

व्याख्या : दाँत से काटते हैं। पेड पत्थर से मारते पूँछ मे लपेटकर पटक देते हैं। यहाँ पर राक्षसो की युद्ध विधि का वर्णन नही करते हैं क्योकि वे अस्त्र शस्त्रादि साधन से सम्पन्न हैं। वर्णन तो करना है बन्दरो के युद्ध विधि का। जिनके पास युद्ध का कोई साधन नही है और जीत रहे हैं। रामबल दिखलाते हुए कहते हैं कि फल तोडने की भाँति राक्षसो के सिरो को तोड लते हैं और उन्ही सिरो को लेकर दूसरे

पर प्रहार करते हैं। नख से पेट फाड डालते हैं। बल के उत्कर्ष से भुजा उखाड़ लेते हैं। हाथ से पैर पकड़कर पृथिवी पर पटक देते है और डांटते है कि फिर लड़ोगे।

निसिचर भट महि गाड़हि भालू। ऊपर ढारि देहि बहु बालू॥
बीर बलीमुख जुद्ध बिरुद्धे। देखिअत बिपुल काल जनु क्रुद्धे॥४॥

अर्थ : राक्षस वीरों को भालू पृथिवी मे गाड देते थे और उनके ऊपर बालू की ढेरी लगा देते थे। वीर वानर गण युद्ध मे विरुद्ध ऐसे दिखाई पड़ते हैं मानो बहुत से क्रुद्ध काल हैं।

व्याख्या : भालू अपने भोजन का बन्दोबस्त करते हैं। क्योंकि ये माँस खाते हैं। अतः सवेरे कलेवा के लिए निसिचर भट को पृथ्वी मे गाड़ देते है और निशान के लिए उस पर बालू का टीला बना देते हैं। रावण ने जो जो अत्याचार किये थे सबका बदला हनुमान्‌जी ने फेरा। रावण : जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं। नगर ग्राम पुर आग लगावहिं। हनुमान्‌जी : उलटि पलटि कपि लंका जारो। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी। रावण : गर्जत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी। हनुमान्‌जी : गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी। रावण : देइ देवतन्ह गारि प्रचारी। हनुमान्‌जी ' बार बार प्रचार हनुमाना। रावण : क्रोधवत तब रावन लीन्हेसि रथ बैठाइ। हनुमान्‌जी : धरि केस नारि निकारि बाहर तेति दीन पुकारही। इत्यादि। परन्तु निसिचर निकर सकल मुनि खाए। इस बात का बदला हनुमान्‌जी नही ले सके थे। वह बदला भालु चुका रहे हैं। राक्षसो को खाते है और दूसरे दिन के कलेवा के लिए पृथिवी मे गाड़कर उनके ऊपर बालू का टीला बना देते थे।

छं.[1] क्रुद्धे कृतात समान कपि तनु स्रवत सोनित राजही।
मर्दहिं निसाचर कटकु भट बलवत घन जिमि गाजही॥
मारहिं चपेटन्हि डाँटि दातन्ह काटि लातन्ह मीजही।
चिक्करहिं मर्कट भालु छल बल करहि जेहि खल छीजही॥
धरि गाल फारहि उर बिदारहि गल अंतावरि मेलही।
प्रहलाद पति जनु बिबिध तन धरि समर अंगनि खेलही॥
धरु मारु काटु पछारु घोर गिरा गगन महि भरि रही।
जय राम जो तृन ते कुलिस कर कुलिस ते कर तृन सही॥

अर्थ : काल के समान बन्दर क्रुद्ध है। उनके शरीर से रक्त बह रहा है। उससे उनकी शोभा हो रही है। राक्षसी सेना के वीरो का मर्दन करते हैं और वे बलवान् बादल की भाँति सिंहनाद करते हैं। चपेटा मारते हैं। दाँत से काट लेते हैं और पैरो

---

१. यह हरिगीतिका छन्द है!

से रौंद देते हैं। बन्दर भालू चीत्कार करते हैं और ऐसा छलबल करते हैं जिससे खल मारे जाते हैं। पकडकर गाल फाडते हैं। छाती चीर डालते हैं। आँतो को गले मे पहन लेते हैं। मानो नृसिंह भगवान् अनेक रूप धारण करके रणाङ्गण मे क्रीडा कर रहे हैं। पकडो मारो काटो पछाडो . यही ध्वनि आकाश और पृथिवी मे भर रही है। रामजी की जय हो। जो तृण को वज्र और वज्र को तृण निश्चय करके कर देते हैं।

व्याख्या काल बीभत्स रस के अधिष्ठाता है। क्रुद्ध बन्दरो की उपमा काल से दी है। अत यहाँ बीभत्स दृश्य का वर्णन करते हैं। राक्षसो के शस्त्राघात से बन्दरो के शरीर से रक्तस्राव हो रहा है। रक्तस्राव से वीरो की शोभा अधिक बढ जाती है। राक्षसो के शस्त्राघात से बन्दर पीडित नही हैं। क्रुद्ध हैं। अत राक्षसी सेना का मर्दन कर रहे हैं। बन्दर होकर सिंहनाद कर रहे हैं। क्योकि रामकृपा से बल बढा हुआ है। हाथ से राक्षसो को चपेटा मारते हैं। दाँतो से काट लेते हैं और लातो से रौंद डालते हैं। बन्दर भालु चीत्कार करते हैं और मायावी राक्षसो के साथ ऐसा छलबल करते है जिसमे वे मारे जायँ। व्रजन्ति ते मूढधिय पराभव भवन्ति मायाविपु ये न मायिन । वे बेवकूफ हार जाते हैं जो कपटियो के साथ कपट नही करते। अत बन्दर लोग उन मायावियो के साथ छलबल से युद्ध करते हैं।

युद्ध करते करते रणरस भी बढा और बल भी बढा। तब तो एक एक बन्दर भगवान् नृसिंह की प्रतिमूर्ति से दिखाई पडने लगे। वे नखो से राक्षसो का गाल फाड डालते है। कलेजा चीरकर आँत निकाल लेते है और उसे माला की भाँति पहन लेते हैं। मानो नृसिंह भगवान् का आवेश उनमे आगया है। युद्ध मे घोर शब्द हो रहा है। पृथिवी मण्डल से आकाश मण्डल तक पकडो मारो काटो पछाडो यही ध्वनि व्याप्त हो रही है। कवि कहते हैं कि रामजी की जय हो। जिनका यह बाना[1] है तृन से कुलिस कुलिस तृन करई। तृण को वज्र और वज्र को तृण बनाया करते हैं। दुर्बल के हाथ से सबल का पराजय कराते है। कहाँ राक्षस वज्र के तुल्य उनके सामने बन्दर भालू तृण के समान है। सो आज वे रामकृपा से वज्र हो गये और राक्षस तृण हो गय। बन्दरो के हाथ से राक्षस मारे जा रहे है।

दो निजदल विचलत देखेसि, बीस भुजा दस चाप।
रथ चढि चलेउ दसानन, फिरहु फिरहु करि दाप ॥८१॥

अर्थ अपनी सेना को विचलित देखकर बीस भुजा और दस धनुषवाले दसानन रथ पर चढकर दर्प के साथ लौटो लौटो कहते हुए चल।

व्याख्या बन्दरो ने ऐसा भयङ्कर युद्ध किया कि राक्षसी सेना के पैर उखड

---

१ अम्भोधि स्थलता स्थल जलधिताम् धूलीलव शैलताम् शैलो मृत्कणता तृण कुलिशता वज्र तृणक्षीणताम्। अग्नि शीतलता हिमो दहनतामायाति यस्येच्छया लीलादुर्ललिताद्भुतव्यसनिने तस्मै नमो ब्रह्मणे।

गये। जब रावण ने यह देखा तो उसने बीसो भुजाओ से काम लेने के लिए दस धनुष सँभाले। दसो दिसाओ मे दृष्टि रखने के लिए दसमुख है ही। अब दसो दिशा मे प्रहार करने के लिए दस धनुष भी उठाये। रथ पर ता पहिले से ही सवार थे। फिर भी कवि उसकी प्रबलता द्योतित करने के लिए कहते हैं : रथ चढि चलेउ दसानन। रावन ने पहिले ही आज्ञा दे दी थी : रन सनमुख जाकर मन डोला। सो अबही बरु जाउ पराई। संयुग बिमुख भये न भलाई। फिर भी सेना भाग चली। इस पर रावण ने क्रोध नही किया। दर्प करके कहता है कि भागो मत। लौटो देखो कि भालु कपिठट्ट का कैसे मर्दन किया जाता है। मैंने अपनी भुजा के बल के भरोसे बैर बढाया है। सो देखा मेरे भुजा का बल। मैं बानरो सेना को भी मारूँगा और उन दोनो तपस्वियो को भी।

धाएउ परम क्रुद्ध दसकंधर। सनमुख चले हूह दै बंदर ॥
गहिकर पादप उपल पहारा। डारेन्हि तापर एकहि बारा ॥१॥

अर्थ : रावण अत्यन्त क्रुद्ध होकर दौडे। बन्दर लोग हूह करके सामने आये और पेड पत्थर और पहाड़ हाथो मे लेकर उसके ऊपर एक साथ फेंकने लगे।

व्याख्या : रावण ने अपनी सेना को विचलित देखकर परम क्रोध के साथ रथ दौडाया। सेना का निरीक्षण पीछे से करता था। सो आगे आकर युद्ध करने के लिए वेग से रथ चलाया। बन्दर ऐसे ढीठ हैं कि रावण को आते देखकर उन भागते हुओ का पीछा छोडा और उसका सामना करने के लिए हूह देकर चले। जिस भाँति कुम्भकर्ण से युद्ध किया था उसी भाँति इससे युद्ध करना ठानकर पेड पत्थर पहाड लेकर सब एक ही साथ उसके ऊपर फेंकने लगे। बन्दरो ने देख लिया कि यह भी एक के मान का नही है। क्योंकि यह भी पर्वताकार है। यथा : अगद दीख दसानन वैसे। सहित प्रान कज्जल गिरि जैसे।

लागहि सैल बज्र तनु तासू। खड खड होइ फूटहि आसू ॥
चला न अचल रहा रथ रोपी। रन दुर्मद रावन अति कोपी ॥२॥

अर्थ : उसके वज्र शरीर मे पहाड टक्कर खाकर शीघ्र टुकडे टुकडे होकर गिर जाते हैं। वह दुर्मद रावण बडा क्रोधी था। वह रथ को रोककर अचल हो गया। चलायमान न हुआ।

व्याख्या : चाहे वज्र पर पत्थर गिरे चाहे वज्र पत्थर पर गिरे बात एक ही है। पत्थर ही टूटेंगे। वज्र का कुछ नही बिगड़ सकता। सो जितने पत्थर पहाड बडे वेग से बन्दरो ने फेंके वे रावण के वज्र से शरीर मे टक्कर खाकर टुकड़े टुकडे हो गये। रावण ने बन्दर भालुओ को आते देखकर रथ रोक दिया कि जिनसे संघर्ष के लिए रथ दौडाया वे स्वय चले आरहे हैं और उनके प्रहार करने पर भी अचल रह गया। क्योंकि युद्ध मे उसका मद और भी बढ जाता है महाक्रोधी भी है। क्रोधी प्राण दे देते हैं हटते नही।

इत उत झपटि दपटि कपि जोधा। मर्दइ लाग भएउ अति क्रोधा ॥
चले पराइ भालु कपि नाना। त्राहि त्राहि अंगद हनुमाना ॥३॥

अर्थ इधर उधर झपटकर और दपटकर बन्दर योद्धाओ का मर्दन करने लगा। क्योकि उसे अत्यन्त क्रोध आगया। बन्दर और भालुगण भाग चले। कहने लगे कि हे अङ्गद ! हे हनुमान् ! रक्षा करो। रक्षा करो।

व्याख्या कुम्भकर्ण और रावण दोनो भाई रण मे दुर्मद थे। कुम्भकर्ण के लिए पहिले कह आये हैं। कुम्भकर्ण दुर्मद रन रगा। रावण के लिए यहाँ कह रहे हैं। रावण अतिक्रोधी है। उसने धनुप रख दिया कि इनसे खाली हाथ लडेंगे। देखें तो इनका बल कितना है। मैं तो सदा से प्रति भट के खोज मे रहा। यथा प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा। सो इधर उधर जिधर अवसर हाथ लगता है झपटकर बन्दर योद्धाओ का मर्दन करने लगा। कितने तो उसके झपट से और कितने उसके दपट से मरने लगे। अपनी सेना को दिखलाता है कि ऐसे मर्दन किया जाता है। प्रहार से अत्यन्त क्रुद्ध हो गया है।

अब तो बन्दर भालुगण भाग चले। लगे अङ्गद हनुमान् को पुकारने। क्योकि इन्ही के ललकार पर लड रहे थे। उधर का ललकारनेवाला तो सामने आगया। अब आप लोगो की आवश्यकता है। यथा उत प्रचार दसकठ भट इत अगद हनुमान्। आप लोग रक्षा कीजिये। हम लोगो के पेड और पत्थर का प्रहार तो इसके शरीर पर काम नही करते। टूट टूटकर गिर जाते हैं।

पाहि पाहि रघुबीर गोसाईं। यह खल खाइ काल की नाईं ॥
तेहि देखे कपि सकल पराने। दसहु चाप सायक सधाने ॥४॥

अर्थ हे रघुवीर गोसाईं ! रक्षा करो। रक्षा करो। यह खल तो काल की भाँति खाये जाता है। उसने देखा कि सब बन्दर भाग गये। तब दसो धनुषो पर बाण चढाये।

व्याख्या कुम्भकर्ण तो दुकाल था। उसके पजे से हम निकल भी जाते थे। यथा मुख नासा स्रवनन की बाटा। निकसि पराहिं भालु कपि ठाटा। दुकाल यथा यह निसिचर दुकाल सम अहई। कपिकुल देस परन अब चहई। पर रावन तो साक्षात् काल है। इसके हाथ से तो कोई बचता ही नही। अत हे रघुवीर गोसाईं ! जिस भाँति आपने दुकाल से रक्षा की उसी भाँति काल से भी बचाइये।

रावण ने देखा कि सब बन्दर भाग गये। किसके पीछे रथ दौडायें। ये भाग जाते हैं और फिर जुट जाते हैं। इसलिए इन्हे मार ही डालना चाहिए। रावण की आसुरी बुद्धि है। भागते हुए पर भी शस्त्र चलाना चाहता है। सो उसने दसो धनुषो पर बाण चढाये। बन्दर सब दिशाओ मे भाग रहे हैं। सो किसी ओर से बचने न पावें।

छं.[1] संधानि धनुसर निकर छाडेसि उरग जिमि उडि लागही ।
रहे पूरि सर धरनी गगन दिसि बिदिसि कहँ कपि भागही ॥
भयो अति कोलाहलु बिकल कपिदल भालु बोल्हि आतुरे ।
रघुबीर करुनासिंधु आरतबंधु जनरक्षक हरे ॥

अर्थ धनुष चढाकर उसने बाणो के समूह छोडे जो उडकर सर्प की भाँति लगते थे । पृथिवी आकाश दिशा और विदिशा सर्वत्र बाण भर गये । बन्दर भागें तो कहाँ भागें । बडा भारी कोलाहल हुआ । बन्दर और भालु की सेना विकल होकर पुकार रही है । हे रघुवीर ! हे करुणासिन्धु ! हे आर्त्तबन्धु ! हे जनरक्षक ! हे दु खो को हरण करनेवाले !

व्याख्या दसो धनुष सन्धान करके दसो दिशाओ मे बाणो का प्रहार करने लगा । वे उड उडकर साँप की तरह लग रहे थे । साँप की उपमा बाणो से दे रहे हैं । क्योकि वे विष से बुझाये हुए थे । रावण के बाण चलने म इतना लाघव है कि दसो दिशायें बाण से भर गयी । ऊपर नीचे अगल बगल तमाम बाण ही बाण हो गया । हाहाकार मच गया । भालु बन्दर सेना अति विकल हो उठी । बन्दर भालु आतुर होकर बोलने लगे हे हरे ! हम लोग दु खी हैं । आप करुणासिन्धु हैं । हम आरत हैं । आप आरतबन्धु है । हम मारे जाते हैं । आप जनरक्षक हैं । इससे युद्ध वीर, दया वीर, दानवीर कहकर रघुवीर होना सार्थक द्योतित किया ।

दो निजदल बिकल देखि कटि, कसि निषग धनु हाथ ।
लछिमन चले सक्रोप तब, नाइ रामपद माथ ॥८२॥

अर्थ अपनी सेना को विचलित देखकर कमर मे तरकस और हाथ मे धनुष लेकर लक्ष्मण रामजी के चरणो म सिर नवाकर क्रोध करके चले ।

व्याख्या अपना कटक विचलित देखकर रावण चला था और अपना कटक विचलित देखकर लक्ष्मणजी चले । रावण रथपर चले । लक्ष्मणजी पैदल चले । सरकार को बन्दरो ने पुकारा । लक्ष्मण को तरकस कसते देखकर सरकार चुप रह गये । रावण क्रुद्ध होकर चले थे । इधर लक्ष्मण क्रुद्ध होकर चले । रावण के अस्त्र शस्त्र सब रथ पर हैं । लक्ष्मणजी तरकस कमर मे कसे हुए हैं । चलने के पहिले रामजी के चरणो मे प्रणाम किया ।

रे खल का मारेसि कपि भालू । मोहि बिलोकु तोर मैं कालू ॥
खोजत[2] रहेउँ तोहि सुतघाती । आजु निपाति जुडावौ छाती ॥१॥

अर्थ अरे शठ ! बानर भालुओ को क्या मारता है । मुझे देख । मैं तेरा काल

---

१ हरिगीतिका छन्द है ।
२ यहाँ भाविकालंकार है ।

हूँ। रे पुत्रघाती। तुझी को तो मैं खोजता रहा। आज तुझे मारकर छाती ठण्ढी करूँगा।

व्याख्या : लक्ष्मणजी बोले। तू शठ है। समर विमुख के ऊपर प्रहार करता है। बन्दर और भालु अल्पवीर्य हैं। उन पर पुरुषार्थ दिखला रहा है। मुझे देख। भाव यह कि मैंने तेरी बहन का नाक कान काटा, तेरे बेटे को मारा और तुझे मारने को प्रस्तुत हूँ। अथवा जिसने चिट्ठी भेजी थी : सीता देइ मिलहु नत आवा काल तुम्हार। सो मैं तेरा कालरूप आ पहुँचा। अथवा बन्दर भालुओ के लिए तू काल हो रहा है। यथा : यह खल खाइ काल की नाई। सो तेरा काल मैं हूँ। मुझे देख : कहने का भाव यह कि मुझसे युद्ध कर। रावण को बन्दरो से हटाकर अपनी ओर उन्मुख करते है। रावण ने कहा था : हौं मारिहौ भूप दोउ भाई। उसीका उत्तर लक्ष्मणजी की ओर से हो रहा है। रावणसे युद्ध के लिए सरकार स्वय उठे थे। परन्तु समय पाते ही लक्ष्मणजी आगे आगये।

रावण ने कहा कि तूने मेरा पुत्र मारा है। मैं तो तुझी को खोजता था। बानरो को इसलिए मारता था कि ये हटें तो तेरा पता चले। जब से लडका मरा है तब से कलेजा जल रहा है। वह बिना तेरे मारे ठण्ढा हो नही सकता। अत. तुझे आज ही मारूँगा।

अस कहि छाडेसि बान प्रचंडा। लछिमन किए सकल सत खंडा ॥
कोटिन्ह आयुध रावन डारे। तिल प्रवान करि काटि निवारे ॥२॥

अर्थ : ऐसा कहकर उसने प्रचण्ड बाण चलाये। लक्ष्मणने उन सबो के सौ सौ टुकडे कर दिये। करोडो हथियार रावण ने चलाये। परन्तु प्रभु ने : उनको तिल के बराबर करके काट डाला।

व्याख्या : तुझे मारकर छाती ठण्ढी करूँगा। ऐसा कहकर प्रचण्ड बाण चलाये लक्ष्मणजी के वध के लिए। लक्ष्मणजी ने उन्हें काट काटकर सौ-सौ टुकडे कर दिये। बीस हाथवाले बाण मार रहे हैं और दो हाथवाले उनके सौ सौ टुकडे कर रहे हैं। यह लक्ष्मणजी की बनैती है। रावणने देखा कि इन पर बाण काम नही करते तो दूसरे हथियार फेंकने लगे। इधर लक्ष्मणजी के बाणो का वेग बढा तो उन हथियारो को तिल के बराबर टुकडे करके गिराने लगे।

पुनि निज बानन्ह कीन्ह प्रहारा। स्यंदनु भंजि सारथी मारा ॥
सत सत सर मारे दस भाला। गिरिसृंगन्हि जनु प्रविसहिं व्याला ॥३॥

अर्थ : तत्पश्चात् अपने बाणो का प्रहार किया। रथ को तोड डाला और सारथी को मार दिया। दसो सिरो मे सौ सौ बाण मारे। वे इस भाँति घुस गये जैसे पर्वतकी चोटियो मे साँप घुसते हैं।

व्याख्या : लक्ष्मणजी वीरव्रत हैं। पहिले स्वय प्रहार नही करते। जब रावण के अनेक प्रहार सह चुके रावण भी देख चुके कि उनके प्रहार का कोई फल नहीं

हो रहा है तब लक्ष्मणजी बाणों से चोट करने लगे। वह मारुत वेग रथ भी तोड़ दिया और सारथी को भी मार गिराया। रथारूढ रावण अपने रथ और सारथी की रक्षा न कर सके और विरथ हो गये। तब सौ सौ बाण दसा सिरो मे मारे। जो उनमे प्रवेश करके उन्ही मे रह गये। रावण पहाड़ की भाँति है। उनके सिर पहाड़ की चोटियो के से हैं। उनमे बाणो के घुसने की उपमा कवि सर्पों के घुसने से देते हैं। पर रावण की खोपडी न जाने कैसी थी कि फिर भी धराशायी नही हुआ।

पुनि सत सर मारा उर मांही। परेउ धरनि तल सुधि कछु नाही ॥
उठा प्रबल पुनि मुरछा जागी। छांडेसि ब्रह्म दीन्ह जो सागी ॥८॥

अर्थ : फिर सौ बाण छाती मे मारे। पृथिवी पर एकदम अचेत होकर गिरा। प्रबल फिर उठा। मूर्च्छा जाती रही। तब ब्रह्माजी की दी हुई जो सागी थी उसे चला दिया।

व्याख्या : तब सौ बाण हृदय मे मारे। रावण लक्ष्मणजी के बाणो के काटने मे समर्थ न हुए। पृथिवी पर ऐसे गिरे कि कुछ भी चेत न रहा। लक्ष्मणजी ने प्रहार करना बन्द कर दिया।

इतना चोट खाने पर कोई उठ नही सकता। पर रावण बडा बलवान् था। मरा नही उसे केवल मूर्च्छा हो गयी थी। मूर्च्छा गयी। रावण उठ गये। देख लिया कि सचमुच लक्ष्मण काल ही है। यह तो प्राण ले लेगा। तब ब्रह्मदेव की दी हुई सागी छोड़ी थी। ये तपस्या के प्राप्त अस्त्र उसी समय छोडे जाते हैं जब कि शत्रु से रक्षा का कोई उपाय नही रह जाता और वे शत्रु को ले बीतते है।

छं. सो[1] ब्रह्मदत्त प्रचंड शक्ति अनन्त उर लागी सही।
परचो वीर विकल उठाव दसमुख अतुलबल महिमा रही ॥
ब्रह्माण्ड भुवन बिराज जाके एक सिर जिमि रज कनी।
तेहि चह उठावन मूढ रावन जान नहि त्रिभुवन धनी ॥

अर्थ : वह ब्रह्मदेव की दी हुई प्रचण्ड शक्ति अनन्त की छाती मे ठीक लगी। वीर विकल होकर गिरे तो रावण उठाने लगे। बेतौलवाले लक्ष्मणजी की महिमा को न डगा सके : बनी रह गयी। भुवन और ब्रह्माण्ड जिसके सिर पर धूल के कण की भाँति शोभित है उसे मूढ रावण उठाने लगा। त्रिभुवन धनी को जाना नही।

व्याख्या : ब्रह्मदेव की दी हुई अमोघ शक्ति और रावण के हाथ से चली हुई ठीक कलेजे मे जाकर लगी। पर अनन्त का अन्त उसे भी न लगा। लक्ष्मणजी विकल होकर गिरे। प्रधान वीर के मूच्छित होने पर रावण की ओर से बराबर प्रयत्न उठा ले जाने का होला है। जिसमे उसे बन्दो करके अपना काम निकाल लें। मेघनाद की

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

शक्ति लगने पर लक्ष्मणजी गिरे थे। तब मेघनाद ने यही प्रयत्न किया। सुग्रीव के मूर्च्छित होने पर कुम्भकर्ण ने भी ऐसा ही प्रयत्न किया था। इस बार लक्ष्मणजी के मूर्च्छित होने पर रावण भी उसी प्रयत्न मे लगा। पर लक्ष्मणजी न तो मेघनाद के उठाये उठे और न कैलाश उठानेवाले रावण के ही उठाये उठे। लक्ष्मणजी ने केवल ब्रह्मदेव की महिमा की रक्षा के लिए सांगी के प्रहार को स्वीकार कर लिया है, नही तो उनका बल अतुल है, महिमा अतुल है। रावण यदि उन्हे उठा लेता तो वह महिमा न रह जाती। लक्ष्मणजी की महिमा कहते हुए कवि कहते हैं कि चौदहो भुवन सहित ब्रह्माण्ड जिस शेष भगवान् के एक सिर पर धूलि के कणो के समान सुशोभित है। लक्ष्मणजी वही शेष हैं। किसकी सामर्थ्य है कि उनकी इच्छा के विरुद्ध उन्हे उठा ले। इस महिमा को रावण ने न जाना। इसलिए उठाने का प्रयत्न किया।

दो. देखत पवन सुत धाये, बोलत बचन कठोर।
आवत कपिहि हनेउ तेहि, मुष्टि प्रहार प्रघोर ॥८३॥

अर्थ : देखते ही हनुमान्‌जी कठोर वचन बोलते दौडे। परन्तु आते ही उनके हृदय पर उसने अत्यन्त घोर मुष्टि प्रहार किया।

व्याख्या : देखा सबने पर दौडे हनुमान्‌जी। वायु वेग से दौडे इसलिए पवनसुत लिखा। कठोर वचन बोलते हुए कि तू मूढ है, शठ है, खल है, मूर्च्छित वीर को उठा ले जाना चाहता है। अभी तू मूर्च्छित हुआ था। तब हम लोगो ने कुछ न किया। तू पापी है इत्यादि। रावण ने उत्तर न देकर हनुमान्‌जी के हृदय मे यावद्बल घोर मुष्टिका प्रहार किया। क्योकि लक्ष्मणजी के उठाने के समय हथियार रख दिया था।

जानु टेकि कपि भूमि न गिरा। उठा सँभारि बहुत रिस भरा ॥
मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा ॥१॥

अर्थ . घुटना टेककर हनुमान्‌जी पृथिवी पर नही गिरे। अत्यन्त क्रोध मे भरे हुए सँभालकर उठे। हनुमान्‌जी ने उसे एक घूसा मारा। तो ऐसा गिरा जैसे वज्र के प्रहार से पर्वत गिरे।

व्याख्या : रावण के मुष्टि प्रहार से हनुमान्‌जी घुटने के बल आगये। भूमि मे नही गिरे। रावण ने समझा था कि मेरी मुष्टिका न सह सकेंगे। हनुमान्‌जी ने सँभालकर क्रोध से भरे उठकर जब घूसा मारा तब तो रावण ऐसे गिरे जैसे वज्र के प्रहार से पर्वत गिरे। रावण का शरीर वज्र का था। उससे टक्कर खाकर पहाड़ टूट जाते थे। पर हनुमान्‌जी का शरीर ऐसा वज्र है कि उसके मुष्टि प्रहार से रावण पहाड की भाँति पृथिवी पर आपडे।

मुरुछा गै बहोरि सो जागा। कपिबल बिपुल सराहन लागा ॥
धिग धिग मम पौरुष धिग मोही। जौ तै जियत रहेसि सुरद्रोही ॥२॥

अर्थ · मूर्च्छा जब बीती तो वह जागा। हनुमान्‌जी के विशाल बल की प्रशसा करने लगा। हनुमान्‌जी ने कहा कि मेरे पौरुष को बार बार धिक्कार और मुझे धिक्कार है जो हे देवद्रोही! तू जीता उठ खडा हुआ।

व्याख्या : इस दूसरी मूर्च्छा से भी वह जग गया। ऐसा घूसा कभी खाया नही था। इसलिए हनुमान्‌जी के बल की विपुलता की प्रशसा करने लगा। रावण वीर है। हनुमान्‌जी के बल पर ऐसा प्रसन्न हुआ कि अपनी चोट भूल गया। साथ ही साथ यह भाव है कि रावण वडा चतुर है। समझता है कि बल की प्रशसा करने पर दूसरा घूसा न मारेगे। हनुमान्‌जी के घूसे से मेघनाद भी मूर्च्छित हुआ था। कुम्भकर्ण भी धराशायी हुए थे। आज रावण भी मूर्च्छित हुए।

रावण की प्रशसा से हनुमान्‌जी को तुष्टि नही हुई। परन्तु ग्लानि हुई। कहने लगे कि तू सुरद्रोही है। मै पवनपुत्र हूँ। तू बाप का वैरी ठहरा। मैंने तुझे घूसा मारा और तू बच गया, तो मेरे पुरुषार्थ को और मुझको भी धिक्कार है। वह बल ही क्या जिसके द्वारा बाप का वैरी नही मारा गया। हनुमान्‌जी ने देख लिया कि रावण अब लडना नही चाहता।

अस कहि लछिमन कहुँ कपि ल्यायो। देखि दसानन बिसमय पायो॥
कह रघुबीर समुझु जिय भ्राता। तुम्ह कृतात भच्छक सुरत्राता॥३॥

अर्थ · ऐसा कहकर हनुमान्‌जी लक्ष्मण को ले आये। देखकर रावण को आश्चर्य हो गया। रामजी ने कहा कि भाई। हृदय मे समझो तुम तो काल के भी भक्षण करनेवाले देवरक्षक हो।

व्याख्या : सरकार ने लक्ष्मणजी की पहले बार की मूर्च्छा मे माधुर्य दिखलाया। इस बार ऐश्वर्य दिखलाते है। हनुमान्‌जी लक्ष्मण को उठा लाये। हनुमान्‌जी के बल को देखकर रावण चकित रह गये। जो रावण के हिलाये न हिले। उसे हनुमान्‌जी अनायास उठाये लिये जा रहे हैं। लक्ष्मणजी को मूर्च्छित देखकर सरकार ने उनके स्वरूप का स्मरण दिलाया। कहा कि भाई! चेतो। तुम तो कृतान्त भक्षक हो। प्रलयकाल मे सब कुछ सहार करने के बाद जब काल और काली का नृत्य होने लगता है तब नृत्य करते करते काली काल मे लीन हो जाती हैं। तब काल भी नृत्य करते करते जिस अनन्त वस्तु मे लीन हो जाते हैं वही शेप रह जाता है। उसी को शेप कहते हैं। वही सर्वाधार सृष्टि होने पर सबको धारण करते हैं। सुप्तशक्ति असुप्तदृक् परमेश्वर भी उसी पर शयन करते हैं। वही तुम हो। देवताओ की रक्षा के लिए अवतीर्ण हो।

सुनत बचन उठि बैठ कृपाला। गई गगन सो सक्ति कराला॥
पुनि कोदड बान गहि धाए। रिपु समीप अति आतुर आए॥४॥

अर्थ . वचन सुनते ही कृपाल उठ बैठे। वह करालशक्ति आकाश मे

चली गयी। फिर धनुष बाण लेकर दौड़े और अत्यन्त आतुर होकर शत्रु के पास आये।

व्याख्या : सरकार के वचन के सुनते ही स्वरूप का स्मरण हो गया। लक्ष्मणजी बड़े कृपालु हैं। कृपा करके ब्रह्मदेव की मर्यादा की रक्षा के लिए विकलता को स्वीकार किया है। सरकार के वचन को सुनते ही उसका त्याग किया। जानते हैं कि उनकी मूर्च्छा से सरकार को बड़ा कष्ट होता है। अतः तुरन्त उठ बैठे। वह कराल शक्ति आकाश मे लय हो गयी। रावण के काम की न रह गयी।

रावण कही अपनी जीत मानकर चला न जाय। इसलिए धनुप बाण लेकर दौड पडे। तरकस पहिले से ही कसा है। आतुरता ब्रह्मदत्त शक्ति के उत्तर देने के लिए है।

छं.[1] आतुर बहोरि बिभंजि स्यंदनु सूत हति ब्याकुल कियो।
गिरचौ धरनि दसकंधर बिकलतर बानसत बेध्यो हियो॥
सारथी दूसर घालि रथ तेहि तुरत लंका लै गयो।
रघुबीर बंधु प्रताप पुंज बहोरि प्रभु चरनन नयो॥

अर्थ : आतुरता से फिर रथ को तोड़कर सूत को मारकर रावण को व्याकुल कर दिया। रावण अत्यन्त विकल होकर सौ बाणो से कलेजा छिदा हुआ पृथिवी पर गिरा। दूसरे सारथी ने उसे रथ पर लाद लिया और तुरन्त लका ले गया। रघुवीर के भाई प्रताप के पुञ्ज हैं। उन्होने आकर फिर सरकार के चरणो मे प्रणाम किया।

व्याख्या : लक्ष्मणजी चोट सह चुके हैं। इसलिए जाते ही चोट करते हैं। मरुतवेग रथ को पहिले ही तोड चुके हैं। रावण दूसरे रथ पर है। ऐसे वेग से प्रहार किया कि रथ भी टूटा सारथी भी मरा। रावण का किया कुछ भी न हुआ। घायल होकर पृथिवी पर गिरे। तब देखा गया कि उनका हृदय सौ बाणो से छिदा हुआ है। हालत बहुत खराब है। दूसरा सारथी उन्हे दूसरे रथ पर लादकर लका ले गया। जो रावण इतने ठाटबाट से युद्ध के लिए निकले थे। जिन्हे अकेले दोनो भाइयो के मारने का हौसला था। आज छोटे भाई के मारे अधमरे होकर रथ पर लदे हुए लका लाये जा रहे हैं। इधर लक्ष्मणजी ने आकर सरकार के चरणो मे नमस्कार किया। चले थे तब नमस्कार करके चले थे। लौट के आने पर फिर नमस्कार करते हैं। इसलिए कवि ने बहोरि कहा। जैसा सरकार का पुरुषार्थ है वैसा ही लक्ष्मणजी का है। यह बात रघुवीर बन्धु पद से द्योतित करते हैं और वैसा ही प्रताप है। यह बात प्रताप पद से दिखलाते हैं। यथा : जिनके जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे।

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

अर्थ · मूर्च्छा जब बीती तो वह जागा। हनुमान्‌जी के विशाल बल की प्रशसा करने लगा। हनुमान्‌जी ने कहा कि मेरे पौरुष को बार बार धिक्कार और मुझे धिक्कार है जो हे देवद्रोही! तू जीता उठ खडा हुआ।

व्याख्या : इस दूसरी मूर्च्छा से भी वह जग गया। ऐसा घूसा कभी खाया नही था। इसलिए हनुमान्‌जी के बल की विपुलता की प्रशसा करने लगा। रावण वीर है। हनुमान्‌जी के बल पर ऐसा प्रसन्न हुआ कि अपनी चोट भूल गया। साथ ही साथ यह भाव है कि रावण बडा चतुर है। समझता है कि कल की प्रशसा करने पर दूसरा घूसा न मारेगे। हनुमान्‌जी के घूसे से मेघनाद भी मूर्च्छित हुआ था। कुम्भकर्ण भी धराशायी हुए थे। आज रावण भी मूर्च्छित हुए।

रावण की प्रशसा से हनुमान्‌जी को तुष्टि नही हुई। परन्तु ग्लानि हुई। कहने लगे कि तू सुरद्रोही है। मैं पवनपुत्र हूँ। तू बाप का वैरी ठहरा। मैंने तुझे घूसा मारा और तू बच गया, तो मेरे पुरुषार्थ को और मुझको भी धिक्कार है। वह बल ही क्या जिसके द्वारा बाप का वैरी नही मारा गया। हनुमान्‌जी ने देख लिया कि रावण अब लडना नही चाहता।

अस कहि लछिमन कहुँ कपि ल्यायो। देखि दसानन बिसमय पायो॥
कह रघुबीर समुझु जिय भ्राता। तुम्ह कृतात भच्छक सुरत्राता॥३॥

अर्थ ऐसा कहकर हनुमान्‌जी लक्ष्मण को ले आये। देखकर रावण को आश्चर्य हो गया। रामजी ने कहा कि भाई। हृदय मे समझो तुम तो काल के भी भक्षण करनेवाले देवरक्षक हो।

व्याख्या : सरकार ने लक्ष्मणजी की पहले बार की मूर्च्छा मे माधुर्य दिखलाया। इस बार ऐश्वर्य दिखलाते है। हनुमान्‌जी लक्ष्मण को उठा लाये। हनुमान्‌जी के बल को देखकर रावण चकित रह गये। जो रावण के हिलाये न हिले। उसे हनुमान्‌जी अनायास उठाये लिये जा रहे हैं। लक्ष्मणजी को मूर्च्छित देखकर सरकार ने उनके स्वरूप का स्मरण दिलाया। कहा कि भाई! चेतो! तुम तो कृतान्त भक्षक हो। प्रलयकाल मे सब कुछ सहार करने के बाद जब काल और काली का नृत्य होने लगता है तब नृत्य करते करते काली काल मे लीन हो जाती हैं। तब काल भी नृत्य करते करते जिस अनन्त वस्तु मे लीन हो जाते हैं वही शेष रह जाता है। उसी को शेष कहते है। वही सर्वाधार सृष्टि होने पर सबको धारण करते हैं। सुप्तशक्ति असुप्तदृक् परमेश्वर भी उसी पर शयन करते हैं। वही तुम हो। देवताओ की रक्षा के लिए अवतीर्ण हो।

सुनत बचन उठि बैठ कृपाला। गई गगन सो सक्ति कराला॥
पुनि कोदंड बान गहि धाए। रिपु समीप अति आतुर आए॥४॥

अर्थ · वचन सुनते ही कृपाल उठ बैठे। वह करालशक्ति आकाश मे

चली गयी। फिर धनुष बाण लेकर दौडे और अत्यन्त आतुर होकर शत्रु के पास आये।

व्याख्या : सरकार के वचन के सुनते ही स्वरूप का स्मरण हो गया। लक्ष्मणजी बडे कृपालु हैं। कृपा करके ब्रह्मदेव की मर्यादा की रक्षा के लिए विकलता को स्वीकार किया है। सरकार के वचन को सुनते ही उसका त्याग किया। जानते हैं कि उनकी मूर्च्छा से सरकार को बडा कष्ट होता है। अतः तुरन्त उठ बैठे। वह कराल शक्ति आकाश मे लय हो गयी। रावण के काम की न रह गयी।

रावण कही अपनी जीत मानकर चला न जाय। इसलिए धनुष बाण लेकर दौड पडे। तरकस पहिले से ही कसा है। आतुरता ब्रह्मदत्त शक्ति के उत्तर देने के लिए है।

छं[1] आतुर बहोरि बिभजि स्यदनु सूत हति व्याकुल कियो।
गिरचौ धरनि दसकधर बिकलतर बानसत बेध्यो हियो॥
सारथी दूसर घालि रथ तेहि तुरत लका लै गयो।
रघुबीर बंधु प्रताप पुंज बहोरि प्रभु चरनन नयो॥

अर्थ : आतुरता से फिर रथ को तोडकर सूत को मारकर रावण को व्याकुल कर दिया। रावण अत्यन्त विकल होकर सौ बाणो से कलेजा छिदा हुआ पृथिवी पर गिरा। दूसरे सारथी ने उसे रथ पर लाद लिया और तुरन्त लका ले गया। रघुवीर के भाई प्रताप के पुञ्ज हैं। उन्होने आकर फिर सरकार के चरणो मे प्रणाम किया।

व्याख्या लक्ष्मणजी चोट सह चुके हैं। इसलिए जाते ही चोट करते हैं। मरुतवेग रथ को पहिले ही तोड चुके हैं। रावण दूसरे रथ पर है। ऐसे वेग से प्रहार किया कि रथ भी टूटा सारथी भी मरा। रावण का किया कुछ भी न हुआ। घायल होकर पृथिवी पर गिरे। तब देखा गया कि उनका हृदय सौ बाणो से छिदा हुआ है। हालत बहुत खराब है। दूसरा सारथी उन्हे दूसरे रथ पर लादकर लका ले गया। जो रावण इतने ठाटबाट से युद्ध के लिए निकले थे। जिन्हे अकेले दोनो भाइयो के मारने का हौसला था। आज छोटे भाई के मारे अधमरे होकर रथ पर लदे हुए लका लाये जा रहे हैं। इधर लक्ष्मणजी ने आकर सरकार के चरणो मे नमस्कर किया। चले थे तब नमस्कर करके चले थे। लौट के आने पर फिर नमस्कार करते हैं। इसलिए कवि ने बहोरि कहा। जैसा सरकार का पुरुषार्थ है वैसा ही लक्ष्मणजी का है। यह बात रघुवीर बन्धु पद से द्योतित करते हैं और वैसा ही प्रताप है। यह बात प्रताप पद से दिखलाते हैं। यथा : जिनके जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रवि सीतल लागे।

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

रावन यज्ञ विध्वंस

दो. उहाँ दसानन जागि करि करै लाग कछु जग्य।
राम विरोधी बिजय चह सठ हठ बस अति अग्य ॥८४॥

अर्थ : वहाँ रावण जगकर कोई यज्ञ करने लगा। रामजी के विमुख होकर जीत चाहता है। ऐसा शठ हठी और मूढ़ है।

व्याख्या : यहाँ का हाल कहकर अब वहाँ का हाल कहते हैं। रावण मूर्च्छा से जागे। *आसुर बल से काम चलने न देखकर देवबल का आश्रयण* किया। जो यज्ञ को अनिष्टकर समझते थे। जिनके कारण संसार मे यज्ञ करना दुष्कर व्यापार था : जप जोग बिरागा तप मख भागा स्रवन सुनै दससीसा। आपुन उठि धावै रहै न पावै धरि सब घालै खीसा। आज संकट मे पड़ने पर स्वयं यज्ञ करने चले। जो जीत देनेवाले हैं। जिनके नाम स्मरण से अत्यन्त प्रबल मोहदल जीता जाता है। उससे विरोध करके विजय चाहता है। शठ है : यज्ञपुरुष की आराधना उन्ही को जीतने के लिए कर रहा है। बड़ा हठी है। सर्वस्व नाश हुआ जाता है। पर हठ नही छोड़ता। इतना बड़ा पण्डित होकर ऐसी मूर्खता कर रहा है। इसलिए कवि उसे : अतिअग्य कह रहे हैं।

इहाँ बिभीषन सब सुधि पाई। सपदि जाइ रघुपतिहि सुनाई ॥
नाथ करै रावन एक जागा। सिद्ध भए नहि मरिहि अभागा ॥१॥

अर्थ : यहाँ विभीषण को सब पता लग गया। तुरन्त जाकर रामजी को सुनाया कि : नाथ ! रावण एक यज्ञ कर रहा है। उसके सिद्ध होने पर अभागा न मरेगा।

व्याख्या : उधर रावण यज्ञ करने लगे। इधर विभीषण को सब पता लग गया। लंका का पता रखना विभीषण के जिम्मे है। मेघनाद के यज्ञ का भी पता इन्होने ही दिया था। आज रावण के यज्ञ का भी पता इन्हे लग गया। पहिले कहा भी जा चुका है कि इनके चार मन्त्री कबूतर बनकर लका का पता लगाया करते हैं : आज भी युद्ध के समय शिक्षित कबूतरो द्वारा युद्ध के सन्देश आया जाया करते हैं। उसकी प्रतिक्रिया के लिए विभीषणजी ने जाकर रामजी को सुनाया कि रावण कोई एक ऐसा यज्ञ कर रहा है जिसका नाम नही मालूम। पर इतना पता चला है कि उसके सिद्ध हो जाने पर वह मारा नही जा सकेगा। यह अभागा है। इतने दिनो तक इसे यज्ञ करने की फुरसत न मिली। जब सारे कुटुम्ब का नाश हो गया तब अपने जीने के लिए अब यज्ञ करने चला है।

पठवहु नाथ वेगि भट बंदर। करहिं बिधंस आव दसकंधर ॥
प्रात होत प्रभु सुभट पठाए। हनुमदादि अंगद सब धाए ॥२॥

अर्थ : हे देव ! वीर बन्दरो को शीघ्र भेजिये। वे यज्ञ विध्वंस कर दे और

रावण आवे। सबेरा होते ही प्रभु ने सुभटो को भेजा। हनुमान् अङ्गदादि सब दौड पडे।

व्याख्या आप देव हैं। आप आज्ञा दीजिये। वीर बन्दर लोग जाकर यज्ञ विध्वस कर दें। यह यज्ञ लका के भीतर तहखाने मे हो रहा है। वहाँ लक्ष्मणजी की आवश्यकता नही है। केवल इतना ही काम है कि यज्ञ विध्वस हो जाय। सो इतना वीर वानर लोग भली भांति सम्पन्न कर सकते हैं। जहाँ यज्ञ विध्वस हुआ कि रावण यहाँ आया। मैं उनके स्वभाव से भली भांति परिचित हूँ। यहाँ आने पर सरकार उसका वध कर सकेंगे।

रात भर मे यज्ञ सम्पन्न हो नही सकता था। इसलिए रात को ही बन्दर लोग नही भेजे गये। प्रात काल होते ही सरकार ने हनुमान् अङ्गदादि वीरो को भेजा और वे लोग दौड पडे कि जितना शीघ्र यज्ञ विध्वस हो जाय उतना ही अच्छा अथवा बडे उत्साह से दौड पडे। हनुमान् और अङ्गद लका के भीतरी भाग से अधिक परिचित थे। अत मुखिया बनाकर ये ही भेजे गये।

कौतुक कूदि चढे कपि लका। पैठे रावन भवन असका॥
जग्य करत जबही सो देखा। सकल कपिन्ह भा क्रोध बिसेखा॥३॥

अर्थ : खेल मे ही बन्दर कूदकर लका पर चढ गये और रावण के महल मे नि शङ्क घुस गये। जब उसे यज्ञ करते बन्दरो ने देखा तो उन लोगो को विशेष क्रोध हुआ।

व्याख्या लका का प्राकार इतना ऊँचा था कि उस पर उडकर चिडिया नही बैठ सकती थी। सो उस प्राकार पर खेल मे ही कूदकर चढ गये। फाटक से प्रवेश नही किया। शत्रु के घर मे युद्ध के लिए रास्ते से नही जाने की नीति शास्त्र की आज्ञा है। रावण का महल जहाँ पर प्रवेश करने मे ब्रह्मादिक देव सशङ्क रहते थे : ब्रह्मन्नध्ययनस्य नैष समयस्तूष्णी बहि. स्थीयताम् स्वल्प जल्प बृहस्पते जडमते नैषा सभा वज्रिण.। स्तोत्र सहर नारद स्तुतिकथालापैरल तुम्बुरो सीताराल्लकभल्लभग्न-हृदय. स्वस्थो न लकेश्वर.। प्रतीहारी कहता है कि ' ब्रह्मा ! यह वेद पढने का समय नही है। चुप होकर बाहर बैठो। और हे जडमति बृहस्पति ! तुम थोडा बोलो। यह इन्द्र की सभा नही है। नारद तुम अपनी स्तुति समाप्त करो। तुम्बुर तुम अपना अलाप बन्द करो। सीता के अलक से भग्न हो गया है हृदय जिसका ऐसे लङ्केश्वर की तबीयत ठीक नही है। उस महल मे वीर बन्दर नि.शङ्क घुस गये।

जब उसे यज्ञ करते देखा। भाव यह कि पता नही लगता था कि कहाँ यज्ञ कर रहा है। विभीषण की स्त्री के इङ्गित से पता लगा कि तहखाने मे यज्ञ कर रहा है। तब शिला तोडकर भीतर घुसे और वहाँ उसे यज्ञ करते देखकर बन्दरो को विशेष क्रोध हुआ कि यहाँ छिपा हुआ यह कार्य साधन कर रहा है। इसी उद्गार को स्पष्ट रूप से कहते हैं।

रन ते निलज भाजि गृह आवा। इहाँ आइ बक ध्यान लगावा ॥
अस कहि अंगद मारेउ लाता। चितव न सठ स्वारथ मन राता ॥४॥

अर्थ रे निर्लज्ज ! तू रण से भागकर घर आया और यहाँ आकर बगुलाभक्त बन बैठा है। ऐसा कहकर अङ्गद ने लात मारा। परन्तु उस शठ ने देखा भी नही। अपने स्वार्थ में ही मन लगाये रहा।

व्याख्या जिसे लज्जा होती है पर यदि रण से विमुख भी होता है तो अपने घर मे मुख नहीं दिखलाता। यथा समर सैन तजि गयउ पराई। गयउ न गृह मन बहुत गलानी। तू निर्लज्ज है। रण से भागकर घर आया और यहाँ आकर ध्यान लगाकर बैठा है। सो यह तेरा ध्यान बगलवाला ध्यान है। बगुला मछली पर ध्यान लगाये एक पैर से खडा रहता है। उसका ध्यान पाखण्डमात्र है। इसी भाँति तेरा यज्ञ ध्यानादि भी पाखण्ड मात्र है। यह भगवद् आराधना नही है। ऐसा कहकर अङ्गद ने लात मारा। जिसमे अपमान न सहकर उठ पडे। पर उसने देखा भी नही कि कौन है। अपने स्वार्थ म ही मन लगाये रहा कि भला लात मार क चल जायँ। शठ है हठ के वश दुर्गति सहन कर रहा है।

छं[1] नहि चितव जब करि कोप कपि गहि दसन लातन्ह मारही।
धरि केस [2]नारि निकारि बाहेर तेऽतिदीन पुकारही ॥
तब उठेउ क्रुद्ध कृतांत सम गहि चरन बानर डारई।
एहि बीच कपिन्ह बिधंस कृत मख देखि मनमहुँ हारई ॥

अर्थ जब नही देखा तब बन्दर क्रोध करके दाँत से पकडते और लातो से मारते हैं। बाल पकडकर स्त्रियो को बाहर खैंच ले आये। वे अत्यन्त दीन होकर पुकारने लगी। तब क्रोध करके काल के समान उठा। पकडकर बन्दरो को फेंकने लगा। इसी बीच मे बन्दरो ने यज्ञ विध्वंस कर दिया। यह देखकर मन मे उसने हार माना।

व्याख्या जब उसने न देखा तब बन्दर उसे दाँत से पकडकर काटने और लात से मारने लगे। मेघनाद की चोटी पकडकर लात से मारा था। रावण को दाँत काटते हैं। अङ्गदजी ने यह कहा था कि युद्ध मे जब तेरे सिर गिरेंगे तो बन्दर उससे गद का खेल करेंगे। तेरे सिर को लात का ठोकर लगावेंगे। सो रावण को जीते ही लात मारते हैं। फिर भी नही उठा। यजमान को आसन से विचलित करना भी यज्ञविध्वस का अङ्ग है। मेघनाद का पहिले यज्ञ ही विध्वस किया। फिर भी वह न उठा। तब बन्दरो ने समझ लिया कि जब तक यजमान आसन न

---

१ हरिगीतिका छंद है।
२ यह लडाई हस्तनक्षत्र की वर्षा है।

छोडे तब तक यज्ञ की क्षति पूर्ति की जा सकती है। अत यजमान को आस छोडाने के लिए लाचार करने का प्रयत्न यहाँ पहिले ही करने लगे। जब किस प्रकार से नही उठा तो हनुमान्जी मन्दोदरी का केश पकडकर वहाँ खैंच लाये यथा जयति मन्दोदरी केश कर्षण निपुण विद्यमान दसकठ भट मुकुटमानी जगदम्बा का केश पकडकर रथ पर बिठाया था। उसी कर्म का यह परिपाक था इन लोगो के कर्म के फल देनेवाले हनुमान्जी थे। यथा जयति दुष्ट रावन कुम्भकर पाकारिजित् मर्मभित् कर्मपरिपाकदाता। सम्भव है कि अन्य बन्दरो ने और रानिय की यही गति की हो। सो वे सब पुकार करने लगी। यह रावण नही सह सके काल की भाँति क्रुद्ध होकर उठा तो बन्दरो का पैर पकडकर फकने लगा। इत ही देर मे हनुमान् अङ्गद ने यज्ञ विध्वस कर दिया। देखकर रावण ने मन मे हा मान लिया। इसी यज्ञ का भरोसा था। सो नष्ट हो गया। नष्ट हुआ यज्ञ यजमा का नाश करेगा। अत उपाय उलटा पड गया।

७५ रघुपति रावण समर प्रसग

दो जग्य विधसि कुसल कपि, आये रघुपति पास।
चलेउ निसाचर क्रुद्ध होइ, त्यागि जिवन कै आस ॥८५।

अर्थ यज्ञ विध्वस करके सब बन्दर सकुशल रामजी के पास आये। लङ्कापि जीने की आशा छोडकर क्रुद्ध होकर चले।

व्याख्या सब बन्दर यज्ञ विध्वस करके सरकार के पास आगये। एक बन्द भी मारा न गया। तब लका के स्वामी रावण क्रुद्ध होकर चल। बन्दरो से ब भारी मानभङ्ग हुआ। इससे क्रुद्ध हैं और यज्ञ विध्वस हो गया इसलिए अप जीवन से हताश हो गये है। लङ्कापति पाठ मे कहने का भाव यह कि फिर भी ब ठाटबाट से चले।

चलत होहिं असि असुभ भयकर। बैठहि गीध उडाइ सिरन्ह पर॥
भयेउ कालबस काहु न माना। कहेसि बजावहु जुद्ध निसाना ॥१।

अर्थ चलने के समय अत्यन्त भयङ्कर अशुभ हो रहा है। उड उडकर गि सिरो पर बैठते हैं। वह कालवश हो गया था। उसने एक न माना। आज्ञा दे कि जुझाऊ डङ्का बजे।

व्याख्या पहिली ही युद्धयात्रा म बहुत से असगुन हुए। गामायु गीध करा खर रव स्वान रोवहिं अति घने। परन्तु इस बार तो अत्यन्त भयकर अपशकुन हुए गीध उडकर सिरो पर बैठने लगे। परमेश्वर के दिये दस सिर हैं। एक सिर पर गीध को उडाते हैं तो दूसरे पर जाकर बैठते हैं। सैनिको के सिर पर भी गीध उ उडकर बैठ रहे हैं।

रावण अत्यन्त अभिमानी हैं। न शकुन को गिनते है। न अपशकुन को गिन

हैं। परन्तु वह अपशकुन तो ऐसा भयकर है कि अति अभिमानी भी इसकी उपेक्षा नही कर सकता। पर रावण कालवश है। जो कालवश हो जाता है वह कुछ नही मानता। यथा जाहु न निजपर सूझ मोहि भयउँ कालवस बीर। रावण ने आज्ञा दे दी कि जुझाऊ डङ्का बजे। सब सेना तैयार होकर चले।

चली तमीचर अनी अपारा। बहु गज रथ पदाति असवारा ॥
प्रभु सनमुख धाये खल कैसे। सलभ समूह अनल कहुँ जैसे ॥२॥

अर्थ निसाचरो की अपार सेना चली। बहुत से हाथी रथ पैदल और असवार थे। प्रभु के सामने खल कैसे दौडे। जैसे बडी भारी चतुरङ्गिनी सेना थी। पहिली बार भी लगभग इस आशय की अर्धाली कवि ने लिखी है। चलउ निसाचर कटक अपारा। चतुरंगिनी अनी बहुधारा। अर्थात् पहिल युद्ध मे जो कमी हुई थी वह पूरी हो गयी। सारी सेना चल पडी।

राक्षसो मे उत्साह की कमी नही है। जैसे पतङ्गो का दल अग्नि पर टूटता है। इस भाँति वे खल बडे वेग से उड चले। प्रज्वलित अग्नि की ओर फनगे अपने नाश के लिए बडे वेग से दौडते हैं। यथा प्रदीप्त ज्वलन पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगा। हनुमान्जी ने जो भविष्य वाणी की थी वह चरितार्थ होने जा रही है। निसिचर निकर पतग सम रघुपति बान कृसानु। जननी हृदय धीर धीरु जरे निसाचर जानु। शलभ समूह की भाँति राक्षस उडते चल आते हैं। इसलिए उठी रेनु रबि गयउ छपाई। मरुत थकित बसुधा अकुलाई। आदि वणन नही किया।

इहाँ देवतन्ह बिनती कीन्ही। दारुन बिपति हमहि एहि दीन्ही ॥
अब जनि राम खेलावहु एही। अतिसय दुखित होति बैदेही ॥३॥

अर्थ यहाँ देवताओ ने विनती की कि इसने हमे दारुण दुख दिया है। रामजी! अब इसे न खेलाइये। वैदेही अत्यन्त दुखी हो रही हैं।

व्याख्या अब कवि अपने पक्ष का ब्यौरा सुनाते हैं कि यहाँ देवता लोग पहुँचे। सरकार से बडी विनती की कि इस खल के वध मे शीघ्रता कीजिये। इसे खेलाइये मत। मेघनाद वध के लिए शीघ्रता करने को नारदजी कह गये थे और रावणवध मे शीघ्रता कराने के लिए देवता आये। पहिले अपना दुख सुनाया। ललकार ललकारकर गाली देता है। कन्या हरण करता है। हम लोगो को मेरु पर्वत के खोह मे छिपाकर प्राण बचाना पडता है। कुछ लोगो को उसके दरबार मे हाजिरी बजानी पडती है। तिस पर अपावन यज्ञ करता है। जिससे हम लोगो को अशुद्ध हवि ग्रहण करना पडता और उससे सद्य तेज नष्ट होता है। पावन यज्ञ होने नही देता इत्यादि। हम लोग तो बहुत दिन से दुख पा ही रहे हैं। अब वैदेही का दुख हम लोगो से नही देखा जाता। सरकार कहते थे एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं। कालहु जीति निमिष महुँ आनौं। सो उसका समय आगया।

देव बचन सुनि प्रभु मुसकाना। उठि रघुबीर सुधारे बाना ॥
जटाजूट दृढ बाँधे माथे। सोहहिं सुमन बीच बिच गाँथे ॥४॥

अर्थ देवताओ के वचन सुनकर प्रभु मुसकुराये और उठकर बाण सुधारा। जटा का जूट माथे पर कस करके बाँधा। बीच बीच मे उसके फूल गुँथे थे। उनकी शोभा हो रही थी।

व्याख्या देवताओ का वचन अतिसय दुखित होति वैदेही। सुनकर मुसकुराये। वैदेही हरण के लिए ही तो वनवास का प्रपञ्च इन लोगो ने रचा। सो आज वैदेही के दु ख से इतने दु खित हो गये। परन्तु देवताओ की विनती सुनकर रामजी उठ गये और बाण सुधारने लगे। अथवा वीरो के अट्टाहास की भाँति उनका मुसकुराना भी भय सूचक है।

युद्ध के समय मुख के सामने जटा न आजाय इसलिए उसका जूडा बनाकर सिर मे दृढ करके बाँधा। राजकुमार हैं। अत निर्वेद और वीर रस मे भी शृङ्गार की झलक कुछ आ ही जाती है। जटा मे भी बीच बीच मे फूल गुँथे हैं। सरकार के जटाजूट मे होने से उन फूलो की अधिक शोभा हा रही है।

अरुन नयन बारिद तनु स्यामा। अखिल लोक लोचनाभिरामा ॥
कटितट परिकर कस्यो निपगा। कर कोदड कठिन सारगा ॥५॥

अर्थ अरुणारे नयन हैं। शरीर मेघ की भाँति श्याम है जो सम्पूर्ण लोक के नेत्रो को सुख देनेवाला है। कमर मे फेटा और तरकस कसा हुआ है और हाथ मे कठोर सारङ्ग धनुप है।

व्याख्या . जैसे सावन घन की घटा देखकर सम्पूर्ण लोक की आँखें तृप्त हो जाती हैं उसी भाँति सरकार के श्याम शरीर के दर्शन से ससार कृतार्थ होता है। अत उसकी उपमा मेघ से दी। देवताओ की विपत्ति सुनने से क्रोध भी है। अत गुलाबी नेत्र लाल हो रहे हैं। कमरे मे फेटा बाँधा और तरकस कस लिये। निपङ्गा वहुवचन है और हाथ म वही सारङ्ग धनुप लिया जिसके द्वारा कुम्भकर्ण वध हुआ था। निर्गलितार्थ यह कि सरकार स्वय युद्ध के लिए खडे हो गये।

छ[1] सारग कर सुदर निपग सिलीमुखाकर कटि कस्यो।
भुजदड पीन मनोहरायत उर धरासुरपद लस्यो ॥
कह दास तुलसी जबहि प्रभु सर चाप कर फेरन लगे।
ब्रह्माड दिग्गज कमठ अहिमहि सिंधु भूधर डगमगे ॥

अर्थ सुन्दर शार्ङ्ग धनुप हाथ मे है और बाण का खान अक्षय तुणीर

---

१ हरिगीतिका छन्द है।

कमर मे कसे हुए हैं। सुन्दर मोटी भुजाएँ और चौडी छाती म ब्राह्मण का चरण चिह्न शोभायमान है। तुलसीदासजी कहते हैं कि जिस समय प्रभु हाथ से धनुप बाण फेरने लगे तो ब्रह्माण्ड, दिग्गज, कच्छप, शेप, समुद्र, पृथिवी और पहाड इत्यादि सब डगमगाने लगे।

व्याख्या शार्ङ्ग धनुष दिव्य है और बाणो की खानि तरकस से अक्षय तूणीर अभिप्रेत है। वह भी दिव्य है और उस दिव्य धनुष के सञ्चालन के लिए दिव्य बल से पूर्ण पोन भुजदण्ड है और आयत वक्ष स्थल मे ब्राह्मण के चरण चिह्न होने से दिव्य कवच की सूचना देता है। यथा कवच अभेद विप्र गुरु पूजा। ऐसी दिव्य मूर्ति के पराक्रमोन्मुख होने से चाप शर के फेरने से १ ब्रह्माण्ड २ दिग्गज ३ कच्छप ४ शेप ५ पृथिवी ६ समुद्र और ७ पहाड हिलने लगे।

अथवा यहाँ सात क्रिया सरकार ने की। १ मुसकुराने से ब्रह्माण्ड हिला २ उठने से दिग्गज हिले। ३ बाण सुधारने से कच्छप हिले। ४ जटाजूट बाँधने से शेष हिल। ५ कटितट मे निपङ्ग कसने से पृथिवी हिली। ६ हाथ म शार्ङ्ग लने से समुद्र हिला। ७ और फेरने से पहाड हिले।

दो सोभा देखि हरखि सुर बरखहिं सुमन अपार।
जय जय जय करुनानिधि छबि बल गुन अगार ॥८६॥

अर्थ यह छवि देखकर देवता लोग हर्पित हुए। अपार पुष्पो की वर्षा हुई और बोले कि करुणानिधि और छवि बल तथा गुण के आगार प्रभु का जय हो।

व्याख्या इस छवि को देखकर देवता लोग हर्पित हैं। क्योकि यह वीर रस की अपूर्व झाँकी है। इसी से मनोरथ पूर्ण होगा। अत अपार फूलो की वर्षा की। राक्षसो की अपार सेना का नाश करेंगे। अत यदि एक निशाचर वध के उपलक्ष मे एक फूल भी चढ़ावें तो अपार फूल चढाना प्राप्त था। कहते हैं कि प्रभो! आप गुणो के धाम हैं। यथा देव वचन सुनि प्रभु मुसुकाना। उठि रघुबीर सुधारे बाना। आप ज्ञान के धाम है। यथा उर धरासुर पद लस्यौ। यह आपके ज्ञान धाम होने का चिह्न है। आप बलधाम है। आपके युद्ध के लिए प्रस्तुत होने मे ब्रह्माण्ड आदि हिल रहे हैं। आपकी जय हो। जय हो कहकर स्तुति करत हैं।

एही बीच निसाचर अनी। कसमसात आई अति घनी ॥
देखि चले सनमुख कपि भट्टा। प्रलयकाल के जनु घनघट्टा ॥१॥

अर्थ इसी बीच मे अतिघनी निशाचरी सेना कसमस करती हुई आयी। देख करके बानर वीर सामने चल जैसे प्रलय काल की घनघटा हो।

व्याख्या: पुष्पवर्षा और स्तुति हो रही थी कि निशाचरी सेना आगयी। युद्ध का बडा उत्साह है। बडे प्रात काल ही आगयी। बानरी सेना को चारो फाटक पर पहुँचने का अवसर न मिला। सेना बहुत बडी है फिर भी इतनी घनी है कि

सैनिक एक दूसरे से सटे हुए आ रहे हैं। पहिले उपमा दे चुके हैं। सेना तो कज्जल की आँधी सी आ रही है और हाथी का समूह वर्षा के बादल सा है। ऐसी सेना को आती देखकर इधर से वानरी सेना चली जैसे प्रलयकाल की घनघटा उठी हो। प्रलयकाल की घनघटा लाल पीली हरी आदि अनेक रग की होती है। इधर बन्दर अनेक रङ्ग के हैं। अत उनका समूह प्रलयकाल के घनघटा से उपमित किया गया। यथा महाबली निसिचर सब कारे। नाना रग भालु कपि भारे।

बहु कृपान तरवारि चमंकहि। जनु दहदिसि दामिनी दमकहिं॥
गज रथ तुरग चिकार कठोरा। गर्जहि मनहुँ बलाहक घोरा॥२॥

अर्थ : बहुत सी तलवारें तथा कृपाण चमक रहे हैं। मानो दसा दिशाओ मे बिजली चमक रही है हाथी और रथ के घोडे कठोर चिग्घाड कर रहे हैं, मानो बादल घोर गर्जन कर रहे हैं।

व्याख्या नगी तलवार लिये योद्धा चले आ रहे हैं। पक्ति की पक्ति नगी तलवार लिये हुए है। उन पर प्रात काल के सूर्य की किरणें पड रही हैं। इसलिए चमक अधिक है। सेना के चलने से चमक स्थिर नही है। अत उस चमक की उपमा बिजली की दमक से दे रहे हैं जो दिशाओ मे चमक रही है।

पहिली सेना जब आयी थी उसमे भी वाजि गज चिक्कार करते थे। इस बार की अवाई मे कठोर चिक्कार कर रहे हैं। यह भी महा अशुभ है। नही तो : गर्जंहि गजघटा धुनि घोरा। रथरव बाजि हिंस चहुओरा। यहाँ रथतुरग का अर्थ रथ का घोडा किया गया। यदि रथ और घोडा किया जाय तो यह अर्थ करना पडेगा कि रथ से भी चिक्कार के शब्द सुनाई पड रहे हैं। इनकी उपमा घोर बादल के गर्जन से दे रहे हैं।

कपि लगूर बिपुल नभ छाए। मनहुँ इद्रधनु उए सुहाए॥
उठै धूरि मानहु जलधारा। बान बुद भै बृष्टि[1] अपारा॥३॥

अर्थ : बन्दरो की बहुत सी पूँछे आकाश मे छायी हुई हैं। जैसे सुन्दर इन्द्रधनु उदय हुआ हो। धूलि ऐसी उठी मानो जल की धारा है और बाणरूपी बूँदो की अपार वृष्टि हुई।

व्याख्या वर्षा का रूपक बिना इन्द्रधनुष के वर्णन किये पूरा नही होगा। सो कहते हैं कि आवेश से बन्दरो ने पूँछे उठा रक्खी हैं। जिस जिस रङ्ग के बन्दर हैं उसी उसी रङ्ग की उनकी पूछें हैं। सतरगे बन्दर हैं। अत उनके पूछो के समूह की इन्द्रधनु ऐसी शोभा है। प्रलय घन के समान वानरी सेना चली है। सो पक्तिबद्ध पूँछो की शोभा कह रहे हैं। सेना के चलने से जो धूलि उठी उसने पृथिवी आकाश को

---

१ यह लड़ाई चित्रानछत्र की वर्षा है।

एक कर दिया। जिस भाँति मेघो से जलधारा छूटने से आकाश और पृथिवी एक हो जाती है। कवि युद्ध से अलग खडे होकर दृश्य देख रहे हैं। जहाँ वृष्टि न होती हो वहाँ से ही देखने से जलधारा की शोभा दिखाई पडती है। अब आती हुई जलधारा की बूँदें पृथिवी पर पडनी चाहिए। सो जैसे पहिली बूँदे फट् फट् शब्द करती हुई पृथिवी पर पड़ती हैं इसी भाँति ऊपर से बाण पडने लगे। दोनो सेनाएँ बाण के चोट की दूरी पर आगयी।

दुहुँ दिसि पर्वत करहिं प्रहारा। बज्रपात जनु बारहिं बारा॥
रघुपति कोपि बान झरि लाई। घायल भे निसिचर समुदाई॥४॥

अर्थ : दोनो ओर से पर्वत की चोट चलने लगी। मानो बार बार वज्रपात हो रहा है। रामजी ने क्रोध करके बाणो की झरी लगा दी। राक्षसो का समूह घायल हो गया।

व्याख्या : अब सेनाएँ और निकट आगयी। पत्थर के चोट की दूरी पर आगयी। तो दोनो ओर से पत्थर का प्रहार प्रारम्भ हुआ। आज राक्षसी दल से भी पत्थर चल रहा है। देख लिया कि युद्ध मे पत्थर की चोट के सामने हथियार काम नही करते। अत राक्षस भी आज पर्वत लेकर आये है। पर्वत से पर्वत टक्कर खा रहे हैं। अतः बार बार वज्रपात होने से उपमा दे रहे हैं। वज्रपात का शब्द गर्जन के शब्द से अधिक होता है।

उधर राक्षसी सेना की ओर से बाण चलने लगे। पहिली लडाई मे रावण ने अपनी बनैती दिखायी थी। यथा : सन्धानि धनु सर निकर छाडे उरग जिमि उडि लागही। रहे पूरि सर धरनी गगन दिसि बिदिसि कहँ कपि भागही। अत इस बार सरकार स्वय खडे होकर बाणो की झर लगा दिया। केवल बाण बाण दिखाई पड़ रहे हैं। न धनुष न तरकस न सन्धान न खैंचना न छोडना कुछ दिखाई नही पड रहा है। एक कदम राक्षसी सेना आगे नही बढ सकती। बन्दरो की सेना भी जहाँ की तहाँ रह गयी। रावण भी मुँह देखते रह गये। किसी का किया कुछ हुआ नही। निशाचरी सेना की सेना घायल हो गयी।

लागत बान बीर चिक्करहीं। घुर्मि घुर्मि जहँ तहँ महि परहीं॥
स्रवहिं सैल जनु निर्झर बारी। सोनित सरि कादर भयकारी॥५॥

अर्थ : बाण लगते ही वीर चिग्घाड़ने लगते थे। घूम घूमकर जो जहाँ सो तहाँ ही पृथिवी पर गिरने लगे। जैसे पर्वत झरना द्वारा पानी बहता है वैसे ही कायरो को भयभीत करनेवाली रक्त की नदी बह चली।

व्याख्या : यद्यपि बाणो की झरी लगी थी फिर भी बाणो का वेग हलका नही है। बाण लगते ही वीर चिग्घाड उठते हैं। जिसे बाण लगा वह वही घूमकर गिरा। रावण के बाण साँप की भाँति उडकर लगते थे। साँप मे विष चाहे जैसा हो पर घाव गहरा नही कर सकता। यहाँ तो झरने की भाँति रक्त की धार बह चली।

अगणित वीर गिरे हैं। सबके शरीर से झरने के जल की भाँति रक्तस्राव हो रहा है। बहुत से झरने के जल एकत्रित होकर ही नदी बहती है सो रक्त की नदी बह चली। सबके शरीर से झरने के जल को बह चली। रक्त जब तक गरम रहता है तभी तक उसमे द्रवता रहती है। जहाँ ठण्ढा पडा तहाँ जम जाता है। यहाँ एक साथ इतना रक्त बहा कि उसकी नदी बह चली। उसे देखकर कादर के तो प्राणपखेरू उड जायँ।

छ.[1] कादर भयकर रुधिर सरिता चली परम अपावनी।
दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अवर्त बहति भयावनी ॥
जल जंतु गज पदचर तुरग खर बिबिध बाहन को गने।
सर सक्ति तोमर सर्प चाप तरग चर्म कमठ घने ॥

अर्थ : कादरो को भय उपजानेवाली रक्त की परम अपावन नदी बह चली। दोनो दल उसके दोनो किनारे थे। रथ बालू और पहिये भँवर थे। भयानकरूप से नदी बह रही थी। हाथी पैदल घोडे गधे और अगणित वाहन ही उसमे जलजन्तु रूप थे। बाण बरछी और तोमर सर्प रूप थे। धनुष लहर और ढाल कछुए थे।

व्याख्या : कादर को तो रक्त देखते ही चक्कर आता है। रक्तनदी के देखने मे तो वे सर्वथा असमर्थ हैं। नदी पावनी होती है पर रक्तनदी परम अपावनी है। भीभत्स रस की पराकाष्ठा है। ऐसी नदी इतने बडे सग्राम मे न बही और न बहेगी। अत भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी की बाढ है। भाद्रकृष्णत्रयोदश्या श्रीगङ्गा यत्र तिष्ठति। गगागर्भ. स विज्ञेयस्तटस्तु तदनन्तरम्। भादो बदी तेरस की जहाँ तक गङ्गा रहे तहाँ तक गङ्गागर्भ समझना चाहिए। किनारा तो उसके बाद है। अत भादो बदी तेरस तक की बाढ को बाढ की सीमा माना गया है। वह रक्त की नदी दोनो दल के बीच से बही। इसलिए दोनो दल उसके किनारे हुए युद्ध मे टूटे हुए रथ मानो किनारे के बालू है। रथ के चक्र मानो नदी के भँवर है। मरे हुए हाथी घोडा पैदल गधे आदि वाहन मानो उस नदी के जलजन्तु हैं। बाण बरछा तोमर आदि शस्त्र सीधे-सीधे होते हैं। वे वीरो के हाथ से छूटे हुए पडे हैं। वे ही मानो सर्प हैं और गोलाकार ढाल ही मानो कछुवे हैं।

दो. बीर परहिं जनु तीरतरु, मज्जा बह जनु फेन।
कादर देखत डरहिं तेहि, सुभटन के मन चैन ॥८७॥

अर्थ : वीर लोग तीर के पेडो की भाँति गिर रहे हैं। चरबी फेन की भाँति बह रही है। कायर तो उसे देखकर डरते हैं। पर वीरो के मन मे चैन है।

व्याख्या : जब नदी बढती है तो तट के वृक्ष गिरने लगते हैं। इसीलिये तट के वृक्ष सदा मृत्यु के मुख मे रहते हैं। रावण ने कहा . तुम सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ। नदी मे बाढ आने से फेन बहने लगता है। यहाँ रक्तनदी मे चर्बी बह रही है।

---

१ हरिगीतिका छन्द।

सोनित सरि कादर भयकारी : से उपक्रम करके : कादर देखि डरहिं तेहि कहकर उपसंहार करते हैं। ऐसी नदी को देखकर वीरो को प्रसन्नता होती है। क्योकि उनको वीरता की परख तो उसी समय है। उन्हें वहाँ युद्धयज्ञ की दृष्टि होती है। कादर को हिंसा ही हिंसा दिखाई पडती है।

मज्जहिं भूत पिसाच बेताला। प्रमथ महा झोटिंग कराला ॥
काक कंक लै भुजा उड़ाही। एक ते छीनि एक धरि खाही ॥१॥

अर्थ : भूत, पिशाच, बेताल, रुद्रगण तथा कराल महाभैरव वहाँ स्नान कर रहे हैं। कौवे और चील्ह भुजा लेकर उडते हैं। एक से छीनकर दूसरे पकडकर खा जाते हैं।

व्याख्या : भूत नीचे दर्जे के देवगण हैं। पिशाच मांस खानेवाले प्रेतगण हैं। छाया सा रूप रखनेवाले प्रेत को बेताल कहते हैं। ये लोग तथा रुद्रगण और कराल महाभैरव उसमे नहाने वाले है। इन्द्रद्युम्न पर्व लग गया है। गङ्गाजी जब बहुत बढ जाती हैं तब यह पर्व लगता है। काशी के लोग ही इस पर्व से परिचित हैं।

बिना महाभैरव के इतना बड़ा संहार हो नही सकता। सो वे भी आगये। सद्य शोणित के प्रेमी रुद्रगण भी पहुँच गये। यथा भूषण कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरे। इन्हे ताजा शोणित इतना प्रिय है कि उसीमे इनका स्नान होता है। युद्धमे इनका आगमन होता है। स्थूल दृष्टि से नही देखे जाते।

चील्ह और कौवे मासभक्षी पक्षी हैं, जहाँ कसाइयो की दूकान होती है वहाँ ये बहुत से उडते दिखाई पडते हैं। सग्राम मे ही इनकी इच्छा पूर्ति होती है। सो बहुत से काककङ्क आये हुए है। उन्होने पेट भर लिया और संग्रह के लिए कटी हुई भुजा लेकर उड चले। पता पाकर नये काककङ्क चले आ रहे थे। उन्हे ये रास्ते मे मिले। वे इनसे भुजाओ को छीनने लगे।

एक कहहिं ऐसिउ सौघाई। सठहु तुम्हार दरिद्रु न जाई ॥
कहँरत भट घायलतट गिरे। जहँ तहँ मनहु अर्ध जल परे ॥२॥

अर्थ : एक ने कहा कि इतनी बहुतायतमे भी दुष्ट! तुम्हारा दारिद्र्य नही दूर होता। घायल वीर कराहते हुए तट पर गिरे हैं। जहाँ तहाँ मानो : मृतक आधे जल मे पडे हुए है।

व्याख्या : उनमे कुछ समझदार काककङ्क रहे। वे उन छीनछोर करनेवालो से बोले कि दुष्टो! इतनी बहुतायत यहाँ मास की है। क्या घाटा है जो छीनछार करते हो। तुम्हारा दरिद्र स्वभाव पड गया है जो नही छूटता। भाव यह कि ऊपर मासभक्षी पक्षी आपस मे मास के लिए लड रहे थे। इसस यह न समझना कि उस रणभूमि मे मास की कमी थी। उनका स्वभाव ही ऐसा है। इसलिए लड रहे थे।

पहले कह आये हैं कि वीर परहिं जनु तीरतरु। सो उनमे से कुछ एक के प्राण बाकी हैं। वे कराहते हुए गिरे हैं। आधे बाहर और आधे रक्तनदी के भीतर पडे हुए

हैं। उनकी उपमा नदी किनारे लाये हुए आसन्न मरण की भाँति जो कि आधा जल में और आधा जल के बाहर रख दिये जाते हैं।

खैचहिं गीध आँत तट भएँ। जनु बंसी खेलत चित दएँ॥
बहुँ भट बहहिं चढे खग जाही। जनु नावरि खेलहिं सरि माही॥३॥

अर्थ : कहीं गीध किनारे पर से आँत खैच रहे हैं। जैसे मन लगाकर मछली का शिकार खेलते हो। बहुत से योद्धा बहे जा रहे हैं। उन पर पक्षी बैठे हुए हैं मानो नदी मे नावरि खेल रहे हैं।

व्याख्या : कुछ मर गये हैं और नदी मे आ पडे हैं। उनकी आँत गीध तट पर से खैंच रहे हैं। उनकी उपमा उन मछली मारनेवालो से है जो पानी मे बसी डालकर मछली फँसाते हैं।

कविने नदी का पूरा रूपक खैचा है। जब नदीमे बाढ आती है तो उसकी सैर करने के लिए लोग नावो पर विहार करते हैं। जिसे नावरि खेलना कहा जाता है। उन मुर्दो मे से जो नदी के वेग मे आ पडे वे बहे जा रहे हैं। पक्षी आकर उन पर बैठ जाते हैं। उनकी उपमा नावरि खेलनेवालो से है।

जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहिं। भूत पिसाच बधू नभ नंचहिं॥
भट कपाल करताल बजावहिं। चामुंडा नाना विधि गावहिं॥४॥

अर्थ : योगिनियाँ खप्पर भर भरकर सञ्चय कर रही हैं। भूत पिशाच की वधू आकाश मे नाच रही हैं। वीर लोगो के कपाल को बजाकर ताल दे रही हैं और चामुण्डा अनेक प्रकार का गान कर रही हैं।

व्याख्या : प्रेतयोनि विशेष को योगिनी कहते हैं। उन्होंने जी भरकर रक्त पान तो कर लिया। अब कल के लिए खप्पर मे रक्त भर भरकर सञ्चित कर रही हैं। भूत पिशाच की वधू आनन्द के आकाश मे नृत्य कर रही हैं। इतना ही नही चण्ड मुण्ड की वध करनेवाली काली भी प्रकट हो गयी। यस्माच्चण्डञ्च मुण्डञ्च गृहीत्वा त्वमुपागता। चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवी भविष्यति। देवी ने काली से कहा कि तुम चण्ड और मुण्ड का सिर लेकर आयी। इसलिए तुम्हारा नाम चामुण्डा होगा। सो चामुण्डा भी प्रकट होकर आनन्द से वीरो के मुण्डको बजा बजाकर अनेक प्रकार से गान करने लगी। पार्ष्णिग्राहाङ्कुशग्राहियोधघण्टासमन्वितान्। समादायैक-हस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान्। तथैव योधं तुरगै. रथं सारथिना सह। निक्षिप्य वक्त्रे दशनै. चर्वयन्त्यतिभैरवम्। उन काली देवी का यह हाल था कि एक हाथ से हाथी घण्टा हाथीवान् और योधा को पकड़कर मुख मे डाल लेती थी। उसी भाँति सारथी, रथी, रथ और घोड़ो को मुख मे डालकर बडे भयंकर रीति से चबाती थी। वे भी आज सन्तुष्ट होकर गान कर रही हैं। इससे आश्विन के नवरात्र मे ब्रह्मदेव द्वारा रावण वध के लिए देवी के जगाने का जो कथा है उसका भी इङ्गित मिलता है कि कालिका भगवती लंका मे आगयीं।

जंबुक निकर कटक्कट कट्टहिं। खाहिं हुहाहि अघाहिं दपट्टहिं ॥
कोटिन्ह रुण्ड मुड बिनु डोल्लहि। सीस परे महि जय जय बोल्लहि ॥५॥

अर्थ · गीदडोका झुण्ड कटाकट काट रहा है। खा रहा है। हुआं हुआं करता है। डपटता है। करोडो घड बिना सिर के चल रहे हैं और सिर पृथिवी पर पडे हुए जय जय बोल रहे हैं।

व्याख्या : शृगालो का समूह भी पहुँच गया। ये शवोको काट काटकर खाने लगे और आनन्द से हुआं हुआं करने लगे। पेट भर जाने पर नवागन्तुको को डपटने लगे। भाव यह कि आकाश मे पृथिवी पर सर्वत्र अति भयानक और बीभत्स दृश्य है।

रुण्ड तो कुम्भकर्ण के युद्ध मे भी उठे थे। लाखो सेना के मारे जाने पर कही एक रुण्ड उठता है। इस काल मे सुनते है कि ऊदल का रुण्ड उठा था। सो यहाँ करोडो रुण्ड उठे। जीत की धुन उनके सिर पर ऐसी सवार है कि सिर कटने पर भी युद्ध के लिए बढते चले जाते हैं और उनका मुण्ड पृथिवी पर पडा जय जय बोल रहा है।

छं.[1] बोल्लहि जो जय जय मुड रुड प्रचड सिर बिनु धावही।
खप्परन्हि खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावही ॥
बानर निसाचर निकर मर्दहिं रामबल दर्पित भए।
संग्राम अंगन सुभट सोवहिं रामसर निकरन्हि हए ॥

अर्थ . कही मुण्ड जय जय बोलते थे। कही प्रचण्ड रुण्ड बिना सिर के दौडते थे। वे खोपडियो मे तथा खड्ग से उलझकर जूझते थे। कही अच्छे योद्धा दूसरे योद्धा को गिरा रहे थे। राक्षसो के समूह को मर्दन करके घमण्ड से भालू और बन्दर गरजते थे। रामजी के बाणो से मारे हुए योद्धा रणाङ्गन मे सो रहे थे।

व्याख्या : रुण्ड अन्धो की भाँति दौडते है। क्योकि सिर तो उन्हे है नही। वह तो पृथिवी पर पडा हुआ अलग जय जय कर रहा है। अत वे रुण्ड योगिनियो के खप्पर अथवा वीरो के खड्ग से उलझकर जूझ जाते हैं अर्थात् गिर जाते हैं। अथवा सुभट लोग भटो को गिरा देते हैं। रुण्ड यदि गिरा तो फिर नही उठ सकता। मर ही जायगा। बचे बचाये निशाचरो को भालु कपि मर्दन कर रहे हैं। उनका दर्प बढ गया है कि हम लोगो ने राक्षसो का सहार कर दिया। सग्राम भूमि मे जहाँ देखिये तहाँ रामजी के बाणो के मारे हुए वीर सो रहे हैं। अर्थात् मरे पडे हैं।

दो रावन हृदय बिचारा भा निसिचर सघार।
मैं अकेल कपि भालु बहु, माया करौ अपार ॥८८॥

---

१ हरिगीतिका छन्द।

अर्थ : रावण ने हृदय मे विचार किया कि राक्षसो का तो संहार हो गया। मैं अकेला हूँ। भालु बन्दर बहुत हैं। ऐसी माया रचूँ कि जिसका पार न हो।

व्याख्या : निसिचर हीन करउँ महि : यह प्रतिज्ञा पूरी हुई। रावण के मन ने कह दिया कि राक्षसो का संहार हो गया। अकेला मैं बचा हूँ। बन्दर भालु बहुत हैं। इनसे लड़ना मुझसे साध्य नही है। जो सेना बची है वह नही के बराबर है। रावण अपने को अकेला समझ रहे हैं। अतः अब ऐसी ऐसी माया करनी चाहिए कि इन सबो को उसका पार हाथ न लगे। इनके समझ मे न आवे कि असली मालिक कौन है। कुम्भकर्ण ने भी सेना का संहार देखा था। यथा : कुभकरन मन दीख बिचारी। हतौ छन माँझ निसाचर धारी। पर उसने बल से काम लिया। रावण माया से काम लेना चाहते है।

देवन्ह प्रभुहि पयादे देखा। उपजा उर अति छोभ बिसेखा॥
सुरपति निज रथु तुरत पठावा। हरख सहित मातलि लै आवा॥१॥

अर्थ : देवताओ ने सरकार को पैदल देखा। हृदय मे अत्यन्त विशेष क्षोभ उत्पन्न हुआ। इन्द्र ने अपना रथ तुरन्त भेज दिया। मातलि हर्षित होकर ले आया।

व्याख्या : पहिले कहा जा चुका है कि देवता लोग विनती करने आये थे। उसी समय निशाचरी सेना आयी। सरकार पैदल ही लडने चले। इस बात को देवताओ ने देखा। इधर रावण को रथ पर देखा। विभीषण की भाँति देवताओ के हृदय मे भी अति विशेष क्षोभ हुआ। अर्थात् वे भी अत्यन्त अधीर हो उठे। रावण का पराक्रम जानते हैं। सो इस समय रथारूढ है। देखा तो देवताओ ने उसी समय पर कवि को उस कथा के लिखने का अवसर अब मिला।

सुरपति हैं। इनका रथ भी सब देवताओके रथ से उत्तम है। उसे उन्होने तुरन्त भेजा। जल्दी इस बात की है कि सरकार बड़ी फुरती से निशाचरी सेना का सहार कर रहे हैं। अब राम रावण युद्ध हुआ ही चाहता है। सो उस युद्ध के आरम्भ होने के पहिले ही रथ पहुँच जाना चाहिए। इन्द्र भगवान् ने मातलि : अपने सारथी को आज्ञा दी कि तुरन्त रथ लेकर जाओ। मातलि बड़े हर्षित हुए कि अभी तक तो मुझे इन्द्र के सारथी होने का गौरव प्राप्त था। अब स्वय रामजी के सारथी होने जा रहे हैं। अत. बहुत प्रसन्न होकर रथ ले आये।

तेज पुंज रथ दिव्य अनूपा। बिहँसि चढे कोसलपुर भूपा॥
चंचल तुरग मनोहर चारी। अजर अमर मन सम गति कारी॥२॥

अर्थ : वह तेज पुंज रथ दिव्य था। कोशलपुर भूप उस पर हँसकर चढ गये। उसमे मन के हरण करनेवाले चार चञ्चल घोड़े थे जो अजर अमर और मन के सदृश वेगवाले थे।

व्याख्या : अब कवि उस रथ का, वर्णन करते हैं। साक्षात् देवराज का रथ है। अतः लौकिक रथ नही हो सकता। उसकी गति स्वर्ग से मृत्युलोक तक है।

इसलिए दिव्य कहा। तेजपुञ्ज से काष्ठादि का अभाव कहा। उसका उपादान कारण तेज था। अत संग्राम मे तोडा नही जा सकता था। अत दूसरा कोई रथ ऐसा नही था जिससे उसकी उपमा दी जा सके।

घोडे मे चञ्चल होने की ही प्रशसा है। यथा अपइ वजरत धरत पग धरनी और सुन्दर होने की प्रशसा है। सो इस रथ के घोडे सर्वलक्षण सम्पन्न हैं। देखने मे मनोहर हैं। चञ्चल हैं। रावण मरुत वेग रथ पर बैठते हैं। ये घोडे मन के समान गतिवाले हैं। अत रथ की भी गति मन के समान हुई। रावण के रथ को लक्ष्मणजी ने कई बार तोडा था। घोडे भी मारे थे। पर यह रथ शत्रु द्वारा न तो तोडा जा सकता था। न घोडे मारे जा सकते थे। क्योकि अजर अमर थे।

रथारूढ रघुनाथहि देखी। धाए कपि बल पाइ बिसेखी ॥
सही न जाइ कपिन्ह कै मारी। तब रावन माया बिस्तारी ॥३॥

अर्थ रामजी को रथारूढ देखकर बन्दर लोग विशेष बल पाकर दौडे। बन्दरो की चोट रावण सह न सके। तब उन्होने माया का विस्तार किया।

व्याख्या रामजी ने पैदल ही सम्पूर्ण राक्षसी सेना का सहार किया। अब तो रथारूढ हैं। अब इन्हे कौन पा सकता है। अत मालिक के उत्कर्ष से सेवको का बल बढ गया। सेवको को मालिक का बल रहता है। अब बन्दर रावण को मारने दौडे। क्योकि वे ही बच रहे थे। सो खूब पर्वत वृक्षादि से आघात किया।

पहिले बन्दरो ने जो आघात किया उसे रावण सह गये। लागहिं सैल बज्र तन तासू। खड खड होइ फूटहिं आँसू। चला न अचल रहा रथ रोपी। रन दुर्मद रावन अति कोपी। पर इस बार बन्दरो ने ऐसा पिटान पीटा कि शरीर ढीला पड गया। अब चोट नही सही जाती। तब रावण ने माया फैलायी। कौन सी माया फैलाना चाहिए इस बात का निश्चय उसने पहिल ही कर रक्खा है कि अमुक माया का कोई पार न पा सकेगा।

सो माया रघुबीरहि बाँची। लछिमन कपिन्ह सो मानी साँची ॥
देखी कपिन्ह निसाचर अनी। अनुज सहित बहु कोसलधनी ॥४॥

अर्थ उस माया को रघुवीर ने ही समझा। वानरो ने और लक्ष्मण ने उसे सच्चा ही समझा। बन्दरो ने राक्षसो की सेना मे लक्ष्मण के सहित बहुत से रामचन्द्र को देखा।

व्याख्या जिस वर्णमाला से जो परिचित होता है उस वर्णमाला के लेख को वही बाँच सकता है। इसी भाँति जिस माया से जो परिचित होता है वही उसके मर्म को समझ सकता है। सरकार मायापति हैं। उनकी माया के वशवर्ती ब्रह्मादिक देवता और असुर सभी हैं। वे सभी माया को जानते हैं। उन्होने ता समझ लिया कि यह माया है। उसका भेद उनके सामने तो खुला ही खुलाया

था। लक्ष्मणजी और बन्दर उस माया को नही समझ सके। उन लोगों ने उसे सच्ची ही मान लिया। रज्जु के सर्प से तभी तक भय रहता है जब तक यह ज्ञान नही होता कि यह रज्जु है। ज्ञान होने पर सर्प दिखाई पड़ने पर भी भय नही होता। सो लक्ष्मणजी और बानरी सेना रज्जु को नही पहिचान सके। यह रज्जुस्थानीय राक्षसो की बची बचाई सेना थी। माया द्वारा वे ही राक्षस लक्ष्मणजी तथा बन्दरो को राम और लक्ष्मण दिखायी पड़ने लगे।

छं.[1] बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे।
जनु चित्रलिखित समेत लछिमन जहँ सो तहँ चितवहिं खरे॥
निज सेन चकित बिलोकि हँसि सर चाप सजि कोसलधनी।
माया हरी हरि निमिष महुँ हरषी सकल मरकट अनी॥

अर्थ : बहुत से राम और लक्ष्मण को देखकर बन्दर और भालु मिथ्या भय से डर गये। लक्ष्मण के सहित वे मानो चित्र मे लिखे हुए हैं। इस भाँति खडे देखने लगे। अपनी सेना को चकित देखकर हँसकर कोशलाधीश ने धनुष बाण चढाकर एक निमिष मे माया हरण कर ली। तब तो बानरी सेना प्रसन्न हो गयी।

व्याख्या : अब बन्दर भालु राक्षसो को राम लक्ष्मण देख रहे हैं। किस पर प्रहार करें। अथवा राम और लक्ष्मण की आज्ञा से ही वे सब काम करते थे। सो इतने राम लक्ष्मण हो गये कि पता नही चलता कि जिनकी हम आज्ञा मानते थे वे इनमे से कौन हैं ? अब किसकी आज्ञा मानें। यह अद्भुत दृश्य देखकर वे सब स्तब्ध हो गये। लक्ष्मणजी बन्दरो के सहित इस भाँति खडे देख रहे हैं। जैसे चित्र मे लिखा हुआ व्यक्ति बिना पलक गिराये निश्चल रहता है। अपनी सेना को चकित देखकर सरकार हँस पडे कि लक्ष्मण भी धोखा खा गये। रावण ने दर्पणास्त्र का प्रयोग किया था। जिससे राम लक्ष्मण के प्रतिबिम्ब का आवरण राक्षसो पर पड रहा था। सो सरकार ने धनुष बाण सन्धान करके उस दर्पणास्त्र को काट दिया। प्रतिबिम्ब का आवरण दूर हो गया। पलक पडते पडते माया दूर हो गयी। बानरी सेना प्रसन्न हो उठी।

दो. बहुरि राम सब तन चितइ बोले बचन गँभीर।
द्वंदजुद्ध देखहु सकल स्रमित भए अति बीर॥८९॥

अर्थ : फिर रामजी सबकी ओर देखकर गम्भीर वाणी बोले कि सब कोई अब द्वन्द्व युद्ध देखो। वीर लोग अत्यन्त थक गये हैं।

व्याख्या : तब रामजी ने सबकी ओर देखा। जान गये कि वीर लोग युद्ध करते करते अत्यन्त थक गये हैं। दूसरा भाव सबकी ओर देखकर बोलने का यह

---

१ हरिगीतिका छन्द है।

है कि यह आज्ञा सबके लिए है कि तुम लोग तमाशा देखो। द्वन्द्व युद्ध मेरे और रावण के बीच होने दो। तुम लोग इतने थक गये हो कि लड़ने लायक नहीं हो। सरकार का वचन ऐसा गम्भीर था कि सारी सेना ने सुना और तात्पर्य की दृष्टि से भी गम्भीर था। रावण के मनोरथ को भी पूर्ण करना चाहते हैं। वह अब अकेले लड़ना चाहता है। यथा : मैं अकेल कपि भालु बहु। और अकेले उस मायावी से कोई लड़ नहीं सकता। अतः मैं उससे अकेले लड़ूँगा।

अस कहि रथ रघुनाथ चलावा। बिप्रचरन पंकज सिर नावा॥
तब लंकेस क्रोध उर छावा। गर्जत तर्जत सनमुख आवा॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर रामजी ने रथ चलाया। ब्राह्मण के चरण कमलों में सिर नवाया। तब तो लंकेश के हृदय में क्रोध छा गया। गरजता हुआ और डाँटता हुआ सामने आया।

व्याख्या : सबको युद्ध से विरत करके रामजी ने मातलि को आज्ञा दी कि रावण के सामने रथ ले चलो। यह रथ उस धर्मरथ का मानो प्रतीक होकर आया जिसका वर्णन विभीषण से कर चुके हैं। कवच के स्थान पर रामजी ने ब्राह्मण के चरण कमलों को प्रणाम किया : कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा। अर्थात् गुरु वसिष्ठजी के चरण कमलों को प्रणाम किया। आगे कहेंगे भी : गुरु बसिष्ठ कुलपूज्य हमारे। इनकी कृपा दनुज रन मारे।

श्री रामजी को युद्ध के लिए आते देखकर रावण को बड़ा क्रोध हुआ कि इसने जानबूझकर मुझसे लड़ाई मोल ली। मेरे कुल का संहार किया। अब मेरे प्राण लेने के लिए रथारूढ़ हुआ चला आरहा है। रथ देखकर और भी क्रोध बढ़ा। मातलि को पहिचानता है। देखो इन्द्र ने दगा किया। अपना रथ भेज दिया। जब उसे मेघनाद ने बाँध लिया था तब ब्रह्मदेव ने यह कहकर उसे छोड़ाया था कि यह तुम्हारी आज्ञा मे रहेगा। सो इस गाढे समय में शत्रु के पास अपना रथ भेज दिया। गर्जता है डराने के लिए। डाँटता है कि मँगनी के रथ पर चढ़कर रथवाले बने हो। उसने भी सारथी को आज्ञा दी कि शत्रु के सम्मुख रथ ले चलो।

जीतेहु[1] जे भट संजुग माँही। सुनु तापस मैं तिन्ह सम नाँही॥
रावन नाम जगत जस जाना। लोकप जाके बंदीखाना॥२॥

अर्थ : जिन वीरों को तुमने लड़ाई मे जीता है। तपस्वी! सुन। मैं उनके समान नहीं हूँ। मेरा नाम रावण है। मेरा यश संसार जानता है कि मेरे जेलखाने मे लोकपाल बन्द रहते हैं।

व्याख्या तापस सम्बोधन करने से रावण का भाव यह कि तू अपने धर्म का अतिक्रमण कर रहा है : तापस बेष बिसेष उदासी रहने का मुझे वचन है।

---

१ यहाँ प्रतिवेधालंकार है।

तुझसे युद्ध से क्या सम्बन्ध। युद्ध करके तू पिता के वचन का उल्लघन कर रहा है। तू खरदूषणादि के धोखे से मेरे सामने आरहा है। सो मुझे वैसा न समझना। जिनको तूने रण में जीता है उन्हें कौन जानता है। मैं रावण हूँ। मेरा यश संसार जानता है कि मैं रुलाकर छोडता हूँ: रावयतीति रावणः। मेरे बन्दी गृह मे लोकपाल पड़े रोया करते हैं। साधारण लोगों की गिनती ही क्या है।

खरदूषन कबंध तुम्ह मारा। बधेहु ब्याध इव बालि बिचारा॥
निसिचर निकर सुभट संघारेहु। कुंभकरन घननादहि मारेहु॥३॥

अर्थ : तुमने खरदूषण और कबन्ध को मारा। बाली बिचारे को व्याध की भाँति मारा। निशिचर समूह तथा सुभटों का संहार किया। कुम्भकर्ण मेघनाद को मारा।

व्याख्या : तुमसे मेरा बड़ा भारी वैर है। तुमने मेरा बड़ा अनिष्ट किया है। तुम मुझसे वैर पर वैर करते ही चले आते हो। पहिला वैर तो यही किया कि खरदूषण को मारा। दूसरा वैर यह किया कि मेरे मित्र बाली बिचारे को व्याध की भाँति छिपकर मार डाला। तीसरा वैर यह कि तुमने राक्षसो का सहार कर दिया। चौथा यह कि कुम्भकर्ण और मेघनाद को मारा। मेघनाद को यद्यपि लक्ष्मणजी ने मारा पर उन्होने रामजी की आज्ञा से मारा। यथा : तुम लछिमन रन मारेहु ओही। देखि सभय सुर दुख अति मोही। अतः उसके वध के भी प्रयोजक कर्ता रामजी ही हुए। इतने वैरो का बदला मुझे चुकाना है: ऐसी ही बात लक्ष्मणजी से भी कही थी। यथा : खोजत रहेउँ तोहि सुतघाती।

आजु बयरु सब लेउँ निबाही। जौं रन भूप भाजि नहि जाही॥
आजु करौं खलु काल हवाले। परेहु कठिन रावन के पाले॥४॥

अर्थ : हे राजा! यदि आज तू लड़ाई से भाग न गया तो मैं सब वैर चुका लूँगा। आज निश्चय तुम्हे काल के सुपुर्द कर दूँगा। अब तो कठिन रावण के पाले पड़ गये हो।

व्याख्या : इन सब वैरो से कलेजा जल रहा था। आज तू सामने पड़ गया है। सो सब वैरो का बदला चुका लूँगा। यदि भाग गया तो दूसरी बात है। जिस भाँति सरकार ने खरदूषण से कहा था : जौं न होइ बल घर फिरि जाहू। समर बिमुख मैं हतौं न काहू। वैसी ही बात आज रावण कह रहा है। उसके कहने का भाव यह है कि यदि अब भी तुम भाग जाओ तो यह भय मत करो कि रावण पीछा करेगा। मैं छोड़ दूँगा।

नही तो आज निश्चय ही तुम्हें काल के सुपुर्द कर दूँगा। अर्थात् मार ही डालूँगा। काल मेरे वश में है। यथाः भुजबल जितेउ काल जमसाइँ। रावण कठिन है। वह शत्रु पर दया करना जानता ही नहीं। उसके पाले जो पड़ा वह किसी

भाँति बच नही सकता । खल कहने का भाव यह कि तू खल है । निष्कारण दूसरे का अपकार करता है । मेरा अपकार तुमने निष्कारण किया । सूर्पणखा के नाक कान काटने का कोई कारण नही था ।

सुनि दुर्बचन कालवस जाना । बिहँसि बचन कह कृपानिधाना ॥
सत्य सत्य सब तव प्रभुताई । जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई ॥५॥

अर्थ : दुर्वचन सुनकर उसे काल के वश जान लिया । कृपानिधान ने हँसकर कहा कि तेरी सब प्रभुता सच्ची है सच्ची पर बक मत पौरुष दिखला ।

व्याख्या : उसके दुर्वचन को सुनकर सरकार ने समझ लिया कि इसे मानसिक सन्निपात हो गया है । इसलिए दुर्वचन कह रहा है । यथा : सन्नपात जल्पसि दुर्बादा । भयेसि कालबस खल मनुजादा । रावण दुर्वचन कहकर भी क्रुद्ध है । सरकार दुर्वचन सुनकर भी हँसते हैं । हँसने का कारण उसका डराना है । कृपानिधान हैं । उसके दुर्वचन पर भी क्रोध नही है । उसे उपदेश करने की कृपा करते हैं ।

अर्धाङ्गीकार मे सत्य सत्य कहते है । दसमुख सभा दीखि कपि जाई । कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई । कर जोरे सुर दिसिप बिनीता । भृकुटि बिलोकत सकल सभीता । अतः सरकार कहते हैं कि जो अपनी दो प्रभुताई तुमने कही है १ रावन नाम जगत जस जाना और २ लोकप जाके बन्दीखाना । सो दोनो सत्य है । पर यहाँ तो युद्ध करना है । सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आप । विद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रताप । अतः समर मे प्रताप कथन जल्पना : बकवाद मात्र है । वहाँ तो पुरुषार्थ दिखाना चाहिए । अत. बकबक मत कर पुरुषार्थ दिखला ।

छं.[1] जनि जल्पना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करहि छमा ।
संसार महु पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा ॥
एक सुमन प्रद एक सुमन फल एक फलहि केवल लागही ।
एक कहहि कहहिं करहि अपर एक करहिं कहत न बागही ॥

अर्थ : जल्पना करके अपनी कीर्ति का नाश न कर । क्षमा करके नीति सुन । संसार मे तीन प्रकार के पुरुष होते हैं । गुलाब आम और कटहल के सदृश । एक फूल देते है । एक फूल फल दोनो देते है और एक केवल फल ही देते है । एक कहते है । एक कहते भी हैं और करते भी हैं । एक कर देते है । कहते नही फिरते ।

व्याख्या : समर मे जल्पना करने से सुयश का नाश होता है । लोग समझते हैं कि यह कादर है कुछ कर नही सकता । इसलिए प्रताप कथन कर रहा है । क्रोध को रोको क्षमा करो और नीति सुनो । संसार में तीन प्रकार के पुरुष होते हैं । कोई गुलाब सा होता है । कोई आम सा और कोई कटहल सा । गुलाब केवल सुन्दर

---

१. यहाँ गूढोत्तर अलंकार है ।

सुन्दर फूल देता है। फल के नाम से वहाँ कुछ भी नही। अतः जिन लोगो की उपमा गुलाब से दी गयी है 'उनसे बड़ी बडी बातें सुन लो करना धरना कुछ नही। आम का फूल भी बड़ा सुगन्धित होता है और फल तो जगद्विख्यात है। अत. जिनकी आम से उपमा दी गयी है वे कहते भी हैं और कर भी दिखाते हैं। कटहल का पेड सीधे सीधे फल देता है। फूल उसमे होता ही नही। अतः जिनकी कटहल से उपमा दी गयी है वे कर दिखाते हैं। कहते कुछ नही। निर्गलितार्थ यह कि मैं कटहल की भाँति हूँ कर दिखाऊँगा कहूँगा कुछ भी नही। मेरा भाई आम की भाँति है। वह कहता भी है और कर भी दिखलाता है। तुम गुलाब के से हो। बड़ी बड़ी बात करते हो पर कर कुछ न सकोगे।

दो. राम वचन सुनि विहंसा, मोहि सिखावत ज्ञान।
वैर करत तव नहि डरे, अब लागे प्रिय प्रान ॥९०॥

अर्थ : रामजी का वचन सुनकर हँसा कि मुझे ज्ञान सिखाता है। वैर करते तो नही डरा। अब प्राण प्रिय लग रहा है।

व्याख्या : रावण भी रामजी की बात सुनकर हँसे। पर यहाँ हँसी भी क्रोध की हँसी है कि कल का छोकड़ा मुझे ज्ञान सिखाने चला है। ससार को तो मै ज्ञान सिखलाऊँ। यह क्षत्रिय अल्पवयस्क अल्पश्रुत मुझ महापण्डित को ज्ञान सिखाता है। कहता है क्षमा करो। नही क्षमा करूँगा। तेरा अपराध क्षमा योग्य नही है। सूर्पणखा का नाक कान काटना मुझसे वैर मोल लेना है। सो वैर मोल ले लेने मे ही डरने का समय था। जिसे प्राणप्रिय हो वह मेरा अनिष्टाचरण न करे। सो तब तो न डरे। अनिष्टाचरण कर बैठे। तब प्राण प्रिय न लगा। अब फलकाल उपस्थित है। इस समय प्राणप्रिय लगने से तुम बच नही सकते।

कहि दुर्वचन क्रुद्ध दसकंधर। कुलिस समान लाग छाडै सर ॥
नानाकार सिलीमुख धाये। दिसि अरु बिदिसि गगन महि छाये ॥१॥

अर्थ : दुर्वचन कहकर क्रुद्ध रावण वज्र के समान बाण छोड़ने लगा। अनेक प्रकार के आकारवाले बाण वेग से चले। वे दिशा विदिशा आकाश और पृथिवी पर छा गये।

व्याख्या : वैर करते समय तो न डरे मुझे चुनौती दिया। ऐसा कहकर सूर्पणखा नासिकाच्छेदन की ओर इङ्गित करके उस विषय पर उत्तर प्रत्युत्तर न चाहकर वह वज्र समान बाण क्रुद्ध होकर छोड़ने लगा। रावण ने अपने मुख से स्पष्ट कभी सूर्पणखा नासिकाच्छेदन की चर्चा नही की। अङ्गदजी ने ताना भी दिया : नाक कान बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्ह तुम धर्म बिचारी। तब भी उसने उस विषय पर कुछ नही कहा। यह ऐसी मार्मिक चोट रावण पर बैठी है कि उसके स्मरण से ही वह लज्जा का अनुभव करता है। सरकार ने दुर्वचन सुनकर उसे कालवश जाना और हँस दिया। यह दुर्वचन कहकर भी क्रुद्ध है। बन्दरो पर शर

निकर छोडा। लक्ष्मणजी पर प्रचण्ड बाण छोडा। अब सरकार पर वज्र के तुल्य बाण छोड रहा है। बाण के अर्धचन्द्र आदि अनेक आकार होते हैं। सो अनेक प्रकार के बाण छोडने से अपना लाघव दिखला रहा है कि चारो दिशाओ और चारो विदिशाओ तथा ऊपर और नीचे बाण ही बाण दिखाई पडने लगे।

पावक सर छाडे रघुबीरा। छन महुँ जरे निसाचर तीरा ॥
छाडिसि तीव्र सक्ति खिसिआई। बान सग प्रभु फेरि पठाई ॥२॥

अर्थ सरकार ने आग्नेयास्त्र छोडा। राक्षस के सब तीर जल गये। तब खीझकर उसने तीव्र शक्ति चलायी प्रभु ने बाण के साथ उसे लौटा दिया।

व्याख्या इन सब बाणो के उत्तर मे सरकार ने आग्नेयास्त्र का प्रयोग कर दिया। उस अस्त्र ने उसके चलाये हुए सब तीरो को जला दिया। उसने देखा कि बाण की वर्षा निष्फल गयी। इसी भाँति और भी वर्षा निष्फल जायगी। अत उसने अमोघशक्ति जो जल न सके न निष्फल जा सके उसे चला दिया। सरकार ने बनैती की पराकाष्ठा दिखला दी। बाण के चोट से उसका रुख फेर दिया और दूसरे बाणो द्वारा रावण के पास लौटा दिया कि इसे किसी अनजान पर चलाना।

कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पवारइ। बिनु प्रयास प्रभु काटि निवारइ ॥
निफल होहिं रावन सर कैसे। खल के सकल मनोरथ जैसे ॥३॥

अर्थ उसने करोडो चक्र और त्रिशूल चलाये। सबो को सरकार ने अनायास ही काट गिराया। राक्षस के बाण किस भाँति निष्फल हो रहे हैं जैसे खल के सब मनोरथ।

व्याख्या बाणवर्षा भी निष्फल गयी। शक्ति ने भी काम नही किया तो अन्य अस्त्रो से काम लेने लगा। चक्र चलाने लगा तो करोडो चक्र चलाया। उससे भी काम न होते देखकर त्रिशूल चलाना आरम्भ किया। तो करोडो त्रिशूल ही चलाता चला जा रहा है। परन्तु सरकार ने उनमे से एक एक को काट गिराया और उन्हे कुछ भी आयास न हुआ।

कवि कहते हैं कि रावण के अस्त्र इस भाँति निष्फल हो रहे हैं जैसे खल के सभी मनोरथ निष्फल होते हैं। यहाँ पर शर शब्द अस्त्र मात्र का उपलक्षण है। खल के मनोरथ यदि कहीं सफल हो तो ससार का ही नाश हो जाय। अत यह नियम है कि खल के सभी मनोरथ निष्फल होते हैं। मनोरथ तो सभी के कुछ न कुछ निष्फल होते हैं। पर सफल भी होते हैं। खल मे यह विशेषता है कि उसका कोई भी मनोरथ पूर्ण नही होता।

तब सत बान सारथी मारेसि। परेउ भूमि जय राम पुकारेसि ॥
राम कृपाकरि सूत उठावा। तब प्रभु परम क्रोध कहुँ पावा ॥४॥

अर्थ तब उसने सौ बाण सारथी को मारा। वह पृथिवी पर गिर गया और

उसने रामजी की जय पुकारा। रामजी ने कृपा करके सारथी को उठाया तब प्रभु परमक्रोध को प्राप्त हुए।

व्याख्या : रावण ने जब देखा कि रथी पर कोई बल नही चल रहा है। तो एकाएक सारथि पर चोट कर दिया। जानता है कि मातलि इन्द्र का सारथि है। बडे बडे सग्राम मे इसने असुरों के अस्त्रो को सहन किया है। दश पाँच बाण से इसका कुछ न होगा। इसलिए उस पर सौ बाण से एक साथ चोट कर बैठा। मातलि पृथिवी पर जा गिरे और रामजी की जय पुकारा। भाव यह कि मृत्युकाल उपस्थित समझकर रामजी का स्मरण किया। अथवा सहायता के लिए रामजी को पुकारा। अमर भी अवध्य नही होते। इतनी ही विशेषता है कि उनकी मृत्यु कठिनता से होती है। यथा : सकौ तोर अरि अमरहु मारी।

रामजी ने कृपा करके सारथि को उठाया। उनके कृपापूर्वक स्पर्श से उसकी पीडा जाती रही। *यथा : कर परस सुग्रीव सरीरा। तनु भा कुलिस गयी सब पीरा।* सारथि पर चोट आ जाना रथी की असावधानी का द्योतक है। अत सरकार ने परम क्रोध दिखलाया। उन्हे क्रोध नही आया। बल्कि वे ही क्रोध को प्राप्त हुए।

छं.[1] भए क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे।
कोदंड धुनि अतिचंड सुनि मनुजाद भय मारुत ग्रसे॥
मंदोदरी उर कंप कंपित कमठ भू भूधर त्रसे।
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे॥

अर्थ : विरुद्ध युद्ध से रामजी क्रुद्ध हुए तो तरकस मे बाण कसमस करने लगे। धनुष की टङ्कार अत्यन्त तीव्र सुनकर राक्षसो को तो डर की बाई चढ गयी। मन्दोदरी का कलेजा काँपने लगा। समुद्र कमठ पृथिवी और पर्वत डर गये। दिग्गज लोग दाँत से पृथिवी को पकड़कर चिग्घाड़ने लगे यह कौतुक देखकर देवता हँसे।

व्याख्या : यहाँ विरुद्ध युद्ध का अर्थ है रथी को छोड सारथि को मारा है। सारथि के आहत होने से क्रुद्ध हुए हैं। सरकार को क्रुद्ध जानकर अग्रसर होने के लिए तरकस के बाण कसमस करने लगे। पहिले निशाचर सेना कसमस करती आयी। उन्हे समाप्त करके बाण अब रावण का रक्त पीने के लिए कसमस कर रहे हैं। यथा : तव सोनित की प्यास तृषित राम सायक निकर। तब सरकार ने धनुष का टकार किया। उसका ऐसा शब्द हुआ कि मन्दोदरी का कलेजा काँपने लगा। समुद्र क्षुब्ध हो गया। पृथिवी हिल गयी और पर्वत डगमगाने लगे। कमठ भी स्थिर न रह सके। अथवा समुद्रादि के अधिष्ठातृदेवता डर गये। ब्रह्माण्ड खण्ड समझकर दिग्गजो ने पृथिवी दाँत से पकड़ ली फिर भी नही सँभलती तो चिक्कार करने लगे।

---

१. यह हरिगीतिका छन्द है।

यह कौतुक देवताओं ने देखा तो प्रसन्नता से हँसे कि अब रावण को अच्छे से काम पड़ा है। श्रीरामजी के पाले स्वयं पड़ गया।

दो. तानेउ चाप स्रवन लगि, छाड़े बिसिख कराल।
राम मार्गन गन चले, लहलहात जनु ब्याल ॥९१॥

अर्थ : कान तक धनुष खैंचकर कराल बाण छोडे। रामजी के बाण ऐसे लहलहाते हुए चले जैसे साँप।

व्याख्या : सरकार क्रुद्ध हैं। इसलिए गहरी चोट करने के लिए कान तक धनुष खैंचा। यही तक धनुष खैंचने की अवधि है। शार्ङ्गधनुष इतना अधिक खैंचा गया और उस पर कराल बाण चढाये गये। छूटने पर वे बाण लहलहाते हुए आकाश मार्ग से ऐसे चले जैसे साँप उड़ चलते हैं। अनेक बाणो के साथ चलने से लहलहाना कहा।

चले बान सपच्छ जनु उरगा। प्रथमहि हत्यो सारथी तुरगा ॥
रथ बिभंजि हति केतु पताका। गर्जा अति अतर बलु थाका ॥१॥

अर्थ : पखवाले सर्प की भाँति बाण चले तो पहिले उन्होने सारथि और घोडे मारे। रथ को तोडा। ध्वजा पताका काटा। रावण भीतर से थक गया। पर बाहर से अत्यन्त गर्जन किया।

व्याख्या . बाणो की साँपो से उपमा दिया कि ये प्राण लेकर छोडेंगे। साँप उडते नही। अत बाणो की उपमा सपक्ष सर्प से दिया। दूसरा भाव यह कि बाणो का आकार सर्प सा होता है और उसमे मयूर चील्ह आदि के पक्ष भी लगाये जाते हैं। इसलिए सपक्ष सर्प की उपमा दी। रावण ने सारथि पर चोट की थी। यहाँ सारथि घोडा रथ ध्वजा और पताका सब पर चोट हुआ। सारथि भी मर गया। घोडे भी मर गये। रथ टुकडे टुकड़े हो गया। ध्वजा पताका धराशायी हुआ। रावण विरथ हुए। कुछ किया न हुआ। ध्वजा पताका की भी रक्षा न कर सके। पृथिवी पर आ पडे। भीतर से तो तबीयत ने हार मान ली। पर अपना दर्प द्योतन के लिए अत्यन्त गर्जन करने लगे कि मैं थका नही हूँ। ध्वजा पताका गिरने से रथी पर विपत्ति सूचित होती है। अतः आप अत्यन्त गरजे जिसमे सब जान जायँ कि कोई विपत्ति नही है।

तुरत आन रथ चढि खिसिआना। अस्त्र सस्त्र छाड़ेसि बिधि नाना ॥
बिफल होइ सब उद्यम ताके। जिमि परद्रोह निरत मनसाके ॥२॥

अर्थ : तुरन्त दूसरे रथ पर चढ गया और खीझकर अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र छोडने लगा। उसके सब प्रयत्न व्यर्थ जा रहे हैं जैसे दूसरे के द्रोह मे मन लगानेवाले का मनोरथ निष्फल हो जाता है।

व्याख्या : एक रथ टूटा। दूसरा तैयार है। लका मे रथो की कमी नही है। युद्ध के समय अनेक अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित रथ प्रस्तुत रहते हैं। रावण दूसरे रथ पर सवार हो गये। नाना प्रकार के अस्त्र शस्त्र छोड़ने लगे। सरकार के स्वभाव से परिचित हो गये है कि जब तक शत्रु अस्त्र शस्त्र चलाता रहे तब तक उन्हे काटते ही रहते हैं। जब वह चलाना बन्द कर दे तब समझते है कि वीर ने मुझे प्रहार के लिए अवसर दिया। तब अपने अस्त्र छोड़ते हैं। अतः रावण चोट पर चोट करते ही जाते हैं।

जिसका मन परद्रोह मे निरत रहता है उसके सब यत्न निष्फल होते हैं। उसी भाँति रावण के सब यत्न निष्फल जा रहे हैं। पहिले भी लगभग ऐसी ही बात कह आये हैं। यथा : विफल होहिं रावन सर कैसे। खल के सकल मनोरथ जैसे। परद्रोह निरत और खल पर्यायवाची शब्द हैं। दोनो उपमाओ मे भेद इतना ही है कि पहिले मनोरथ होता है और उद्यम उसके बाद आरम्भ होता है। अत पहिले मनोरथ का विफल होना कहा। अब उद्यम का निष्फल होना कह रहे हैं। रावण के मनोरथ पहिले आप से आप सिद्ध होते थे। यथा : सुख सपति सुत सेन सहाई। जय प्रताप बलबुद्धि बड़ाई। नित नूतन सब बाढ़त जाई। जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई। सो इस युद्ध मे नही हुआ। मनोरथ सब निष्फल गये। तब उद्यम आरम्भ हुआ। वे भी व्यर्थ पड़ते जाते हैं।

तब रावन दस सूल चलावा। बाजि चारि महि मारि गिरावा॥
तुरत उठाइ कोपि रघुनायक। खैंचि सरासन छाड़े सायक॥३॥

अर्थ : तब रावण ने दश शूल चलाये और चारो घोड़ो को मारकर पृथिवी पर गिरा दिया। रामजी ने तुरन्त घोड़ो को उठाया और धनुप को खैचकर बाण चलाये।

व्याख्या : रावण अपने रथ टूटने का बदला लेना चाहता है। पहिले उसने सारथि को मारा। पर वह नही मरा। रामजी के कर स्पर्श से स्वस्थ हो गया। फिर अवसर पाकर उसने घोडो पर दस शूल चला दिये। तीन तीन अगले और दो दो पिछले घोडो पर। घोड़े चारो पृथिवी पर गिर गये। सरकार ने तुरन्त उन्हे भी उठाया। वे भी स्वस्थ हो गये। देख लिया कि शत्रु का यह भी उद्यम व्यर्थ गया। तब धनुप को खैचकर प्रहार के लिए बाण छोड़ने लगे।

रावन सिर सरोज बनचारी। चलि रघुबीर [1]सिलीमुख धारी॥
दस दस बान भाल दस मारे। निसरि गये चले रुधिर पनारे॥४॥

अर्थ : रावण के सिररूपी कमलवन में विचरण करनेवाले रघुवीर के बाण

---

१. यहाँ श्लेषालकार है।

रूपी भौरो की पंक्ति चली। दस दस बाण दसो सिर मे मारे। वे पार हो गये और रक्त के पनाले बह चले।

व्याख्या : फिर सरकार को रथ पर से कूदकर घोड़े उठाने पड़े। अब फिर क्रुद्ध होकर बाण चलाये। अभी तक रावण पर बाण नही चलाया था। रात के प्यासे भौंरो की पंक्ति प्रातःकाल कमलवन मे मकरन्द पान के लिए वेग से जाती है। इसी भांति रघुनाथजी के बाणोकी पंक्ति रावण के मस्तको के रक्त से अपनी प्यास बुझाने के लिये चली। अङ्गदजी ने पहिले कहा था कि रामजी के बाण तेरे रक्त के प्यासे हो रहे हैं। उसी का साफल्य दिखला रहे है। सिलीमुख शब्द मे श्लेष है। इसका अर्थ बाण भी है और भौरा भी है। यहाँ कमलवन के पक्ष मे भौंरा अर्थ होगा और रावण सिर के पक्ष मे बाण अर्थ होगा। ये बाण उसके सिरो मे घुसकर रक्त पीने लगे। फिर भी रावण न गिरा।

तब एक एक सिर मे दस दस बाण मारे। इस भांति सौ बाण चलाये जो कि सिर म छेदकर पार निकल गये। सौ पनाले रक्त के बह चले। यथेष्ट समझकर सरकार ने बाण मारना बन्द कर दिया। यहाँ यह भी देखने लायक है कि सरकार के बाणो के काटने मे रावण असमर्थ है।

स्रवत रुधिर धावा बलवाना। प्रभु पुनि कृत धनु सर संधाना ॥
तीस तीर रघुबीर पवारे। भुजन्ह समेत सीस महि पारे ॥५॥

अर्थ : बलवान् रावण रक्त बह रहा है फिर भी दौड़ा। तब फिर सरकार ने धनुष बाण चढ़ाये और तीस बाण मारा। भुजा के समेत सिर पृथिवी पर गिर गये।

व्याख्या : रावण महा बलवान् है। उन चोटो की परवाह न करता हुआ रुधिर बहता हुआ ही दौड़ा। तब तो और भी कड़ी मात्रा देने के लिए सरकार ने धनुष पर बाण सन्धान किया। इस बार तीस बाण ऐसे मारे कि उनमे से दस बाणो ने दस सिर काटे और बीस बाणो ने बीसो भुजायें काटी और ऐसा काटा कि तस्मा बाकी न रहा। सिर और भुजायें कटकर पृथिवी पर गिर गयी।

काटत ही पुनि भये नबीने। राम बहोरि भुजा सिर छीने ॥
कटत झटिति पुनि नूतन भए। प्रभु बहु बार बाहु सिर हए ॥६॥

अर्थ : काटते ही फिर नये सिर और भुजायें हो गयी। रामजी ने फिर सिर और भुजायें काटी। कटते ही फिर नये निकल पड़े। सरकार ने बार बार सिर और भुजाओ को काटा।

व्याख्या : महा आश्चर्य हो गया। सिर कटने पर कोई जीता नही। एक सामान्य क्षत के अच्छे होने मे समय लगता है। यहाँ देखिये तो नये सिर और नई भुजायें निकल आईं। रामजी ने आश्चर्य न करके फिर सिर और भुजाओ को काटा।

तो कटते ही तुरन्त दूसरे सिर और दूसरी भुजायें निकल आयी। इस भाँति सरकार ने अनेकों बार सिर और भुजायें काटी। रावण बड़े धैर्य से सिर और भुजाओं के कटने की वेदना सहन कर रहे हैं। शङ्कर की अपूर्व आराधना का अद्भुत चमत्कार प्रकट हुआ है।

पुनि पुनि प्रभु काटत भुज सीसा। अति कौतुकी कोसलाधीसा ॥
रहे[1] छाइ नभ सिर अरु बाहू। मानहु अमित केतु अरु राहू ॥७॥

अर्थ : बार बार सरकार सिर और भुजायें काटते हैं। कोशलाधीश भी बड़े कौतुकी हैं। आकाश सिर और भुजाओं से पट गया। मानो अगणित राहु और केतु प्रकट हो गये।

व्याख्या : सिर और बाहु नये निकलते ही चले जा रहे हैं और सरकार काटते ही चले जा रहे हैं। उन्हें आश्चर्य न हुआ। बड़ा कौतुक न हुआ कि देखो कैसे नये सिर और नये बाहु निकलते चले आ रहे हैं। कवि कहते हैं कि कोशलाधीश बड़े कौतुकी हैं। तो कौतुकिअन्ह आलस नाही। कौतुकी को आलस्य नहीं होता। यह नहीं ख्याल करते कि जब यही हाल है तो कहाँ तक सिर भुजा काटेंगे। अति कौतुकी हैं। काटते ही चले जाते हैं। संग्राम ने भी कौतुक करना इन्हीं का काम है। इनके सेना संग्रह में भी कौतुक था। यथा : कौतुक लागि संग कपि सेना। सेना प्रयाण में भी कौतुक था। यथा : कौतुक देखि सुमन बहु बरखी। सेतुबन्ध में भी कौतुक यथा : कौतुक एक भालु कपि करहू। बाण चलाने में कौतुक यथा : अस कौतुक करि राम सर प्रविसेउ आइ निषंग। धनुष टङ्कार में कौतुक यथा : देखि कौतुक सुर हँसे। इस समय सिर-भुजच्छेदन मे कौतुक हो रहा है। अब और कौतुक देखिये। वे काटे हुए सिर और भुजा पृथिवी पर नहीं गिरते। आकाश मे चले जाते हैं और वहाँ ऐसी शोभा दे रहे हैं जैसे अगणित राहु केतुओं से आकाश भरा हुआ है। सिर राहु की भाँति और बाहु केतु की भाँति शोभित हो रहे हैं।

छं.[2] जनु राहु केतु अनेक नभ पथ स्रवत सोनित धावहीं।
रघुबीर तीर प्रचंड लागहिं भूमि गिरन न पावहीं ॥
एक एक सर सिर निकर छेदे नभ उड़त इमि सोहहीं।
जनु कोपि दिनकर कर निकर जहँ तहँ बिधुतुद पोहहीं ॥

अर्थ : मानो अनेक राहु और केतु आकाशमार्ग में रक्त बहाते हुए दौड़ते हैं। रामजी के प्रचण्ड बाण जा लगते हैं। इसलिए पृथिवी पर गिरने नहीं पाते। एक एक बाण से सिर समूहों को बेधा। वे आकाश मे उड़ते ऐसे शोभित हैं जैसे क्रोध करके सूर्य की किरणें जहाँ तहाँ राहुओं को गूँथ रही हों।

---

१. यहाँ विशेषालंकार है।
२. हरिगीतिका छन्द है।

व्याख्या : बड़ा ही अद्भुत भयानक दृश्य है। बाणो के वेग से सिर और बाहु उड़ उडकर राहु केतु की भाँति तमाम आकाश मे छाये हुए हैं। उनमे से रक्त गिर रहा है। साथ ही साथ बनैती की अद्भुत कला का भी प्रदर्शन हो रहा है। बाणों के चोट से वे सिर पृथिवी पर गिरने नही पा रहे हैं। तत्पश्चात् एक एक बाण से वे सिर एक दूसरे मे गुँथे जा रहे है। उसकी उपमा कवि देते हैं कि मानो सूर्य की किरणें क्रोध करके जहाँ जहाँ राहु मिलते हैं उन्हे गूँथती चली जा रही है।

दो. जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर, तिमि तिमि होहि अपार।
सेवत विषय विवर्ध जिमि, नित नित नूतन मार ॥९२॥

अर्थ : जैसे जैसे सरकार उसके सिरो को काटते है वैसे ही वे अपार होते चले जाते हैं। विषय की सेवा करते करते जैसे नित्य नया काम बढता जाता है।

व्याख्या : इधर सिर कटता है उधर कटे हुए सिरो की संख्या अपार होती जाती है। न जातु काम कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एव विवर्धते। कामो के उपभोग से काम का कभी शमन नही होता। हवि से अग्नि की भाँति बढता ही जाता है। इसी भाँति जितना सिर काटा जाता है उतना ही सिर सख्या बढ़ती ही जाती है। जैसे अग्नि मे जितना हवि डाला जाता है। उतना ही बढता जाता है।

दसमुख देखि सिरन्ह कै बाढ़ी। बिसरा मरन भई रिस गाढी ॥
गर्जेउ मूढ महा अभिमानी। धाएउ दसहु सरासन तानी ॥१॥

अर्थ : रावण सिरो की बढती देखकर मरना भूल गया। उसे बडा क्रोध हुआ। महा अभिमानी मूढ गर्जा और दसो धनुष तानकर दौडा।

व्याख्या : पहिले तो रावण गडबडा गया। सिर बाहु बराबर कटते जाते हैं। बेबसी की हालत मे पड़ गया। पर है बडा धीर। देखा कि सिर और बाहु निकलते ही जाते है और निकलते ही जावेंगे। इसके पहिले उसे भी मालूम नही था कि मुझमे यह शक्ति है कि सिर बाहु कटने पर नये निकलते जावेंगे। सो उसे बड़ा भरोसा हो गया। पहिले जो मृत्यु सिर पर खड़ी थी उसका स्मरण भी जाता रहा। समझा कि मैं इनका मारा नही मर सकता। सिर काटनेवाले के बराबर कोई शत्रु नही है। सो यह सिर काटता ही चला जाता है। मुझे तो नये सिर निकल रहे है। इसका सिर यदि मैं काट सका तो इसको तो सिर न निकलेगा। यदि एक बार भी सिर काट सकें तो जीत मेरी है। शत्रु भी थका ही होगा।

कवि कहते हैं कि रावण मूढ़ है। नही समझता है कि सिर काटने मे कोई मतलब नही है। यह तो उनका कौतुक है। विभीषण इस बात को समझते हैं। रावण महा अभिमानी है। उसे तुरन्त अभिमान उपजा कि अब मुझे कौन मार सकता है। तपस्वी को मैं मारूँगा। उसका एक धनुष मेरे दस धनुष का सामना नही कर सकता। अतः दसो धनुष तानकर दौड़ा।

समर भूमि दसकंधर कोप्यो। बरषि बान रघुपति रथ तोप्यो ॥
दंड एक रथु देखि न परेऊ। जनु निहार महु दिनकर दुरेऊ ॥२॥

अर्थ . रणभूमि मे रावण ने क्रोध किया और बाणो की वर्षा से रामजी का रथ तोप दिया। एक दण्ड तक रथ दिखायी न पडा। जैसे कुहरे मे सूर्य छिप जायँ।

व्याख्या . सिर कटने के समय बडे विपत्ति मे पकडकर दु खी हो गया था। अपनी अद्भुत शक्ति देखकर उत्साह बढा। अत क्रोध करके दसो धनुषो से बाण बरसाने लगा। रथ को ढक दिया। घोडा और रथ समेत रामचन्द्रजी का पता नही। सरकार को सबकी रक्षा करना कठिन हो पडा।

चौबीस मिनट तक यही दशा रही। रथ घोडे सारथि और रथी सभी सुरक्षित थे। पर दिखायी नही पडते थे। सूर्य ज्यो की त्यो रथ सारथि के साथ सुरक्षित रहते हैं। पर कोहरे की ओट से दिखायी नही पडते। इसी भाँति रामजी दिखायी न पडे। बाण ही बाण चारो ओर दिखायी पडते थे।

हाहाकार सुरन्ह जब कीन्हा। तब प्रभु कोपि कारमुक लीन्हा ॥
सर निवारि रिपु के सिर काटे। ते दिसि बिदिसि गगन महि पाटे ॥३॥

• अर्थ : जब देवताओ मे हाहाकार मचा तब सरकार ने क्रोध करके धनुष उठाया और बाणो को काटकर शत्रु के सिर काटे। उनसे दिशा विदिशा आकाश और पृथिवी पट गयी।

व्याख्या • ऐसे ही बाण वर्षा मे वीर मारे जाते। अत देवताओ मे हायहाय मच गयी। तब प्रभु कोपि कारमुक लीन्हा। इससे अगस्त्य ऋषि द्वारा आदित्यहृदय के उपदेश की ओर इङ्गित किया। धनुष यदि रक्खा नही तो लेने का प्रसङ्ग कहाँ से आ पडा ?

ततो युद्धपरिश्रान्त समरे चिन्तया स्थितम्। रावण चाग्रतो दृष्ट्वा युद्धाय समुपस्थितम्। सरकार ने लाघव दिखाते हुए शत्रु के बाणो को नष्ट करके शत्रु के सिर काटे। सिर निकलते ही गये। सरकार उसे काटते ही गये। इतने सिर काटे कि दसो दिशाओ मे सिर ही सिर भर गये।

काटे सिर नभ मारग धावहिं। जय जय धुनि करि भय उपजावहिं ॥
कहँ लछिमनु सुग्रीव कपीसा। कहँ रघुबीर कोसलाधीसा ॥४॥

अर्थ कटे हुए सिर आकाश मार्ग से दौड रहे है। जय जय शब्द बोलकर भय उत्पन्न करते हैं और कहते हैं कि कहाँ लक्ष्मण हैं। कहाँ हनुमान् हैं। कहाँ सुग्रीव हैं और कोशलाधीश राम कहाँ हैं ?

व्याख्या अब रावण ने नया रास्ता पकडा। उसके कटे सिर पक्षियो की भाँति आकाश मे दौडने लगे और जयजय बोलने लगे। यह दृश्य और भी भयावना हुआ जब वे सिर कहने लगे कि कहाँ हैं लक्ष्मण ? हनुमान् कहाँ हैं ? सुग्रीव कहाँ हैं ?

और कोशलाधीश राम कहाँ है ? जहाँ सिर काटने को दौड रहे हैं और नाम ले लेकर खोज रहे हैं वहाँ की भयानकता का कौन वर्णन कर सकता है ?

छं.[1] कहँ राम कहि सिर निकर धाये देखि मरकट भजि चले ।
संधानि धनु रघुबंसमनि हँसि सरन्हि सिर बेधे भले ॥
सिर मालिका कर कालिका गहि बृंद बृंदन्हि बहु मिली ।
करि रुधिर सर मज्जन मनहु संग्राम बट पूजन चली ॥

अर्थ : राम कहाँ हैं ऐसा कहकर सिर समूह दौडे । देखकर बन्दर भाग चले । धनुष सन्धान करके तब रघुवशमणि ने हँसकर बाणो से सिरो को भली भाँति बेध डाला । कालिकाएँ हाथो मे सिरो की माला लेकर एक झुण्ड दूसरे से मिली । मानो रुधिर की नदी मे स्नान करके सग्राम बट को पूजने जाती है ।

व्याख्या : रावण के मुण्डो का दौडना और उनका कहाँ है राम ? इत्यादि बोलना सुनकर बन्दर डर गये और भाग चले । उनका भागना देखकर सरकार हँसे और बाणो से सिरो को ऐसा बेधा कि सिरो की मालाएँ हो गयी । या यो कहिये कि मुण्डमाल बन गये । रावण के मुण्डमाल कालिका देवी को अर्पण हुए । वे रुधिर की नदी मे स्नान तो पहले ही कर चुकी थी । अब मुण्डमाल ले लेकर एक दूसरे से मिलकर कालिकाओ का झुण्ड हो गया और वे जब समराङ्गण मे आयी तो ऐसी शोभा हुई जैसे स्त्रियाँ स्नान करके माला लेकर बटसावित्री व्रत मे बट का पूजन करने चलती हैं । यहाँ कालिकाओ की उपमा स्त्रियो से मुण्डमाल की उपमा पुष्पमाल से और रणाङ्गण की उपमा बट से दी गयी ।

दो पुनि [2]दसकंठ क्रुद्ध होइ, छाडी सक्ति प्रचड ।
चली बिभीषन सनमुख, मनहु काल को दड ॥९३॥

अर्थ फिर रावण ने अति कोप करके प्रचण्ड शक्ति छोडी । जो विभीषण के सामने चली जैसे काल का दण्ड चलता है ।

व्याख्या मालूम होता है कि जब से मातलि गिरे हैं तब से सारथि का काम विभीषण कर रहे हैं । रावण ने देखा कि प्रचण्ड शक्ति लक्ष्मण को मारी गयी । फिर भी लक्ष्मण बच गये । यथा : सो ब्रह्मदत्त प्रचड सक्ति अनन्त उर लागी सही । यदि राम पर चलायी जावेगी तो नि सन्देह बच जायँगे । इस समय विभीषण मेरा बडा भारी शत्रु हुआ है । शत्रु का सारथि बना हुआ है । इसी को मारना चाहिए । यह तो निश्चय मर जायगा । जिसकी शरण मे यह गया है उसी के सामने इसका तो वध कर ही डालना चाहिए । मैं कह भी चुका हूँ : होइहि जब कर कोट

---

१ हरिगीतिका छन्द है ।

२ प्रत्यनीकालंकार है ।

अभागी। अतः रावण ने क्रोध करके प्रचण्ड शक्ति छोड़ी। उसके लक्ष्य विभीषण थे। इसलिए कवि कहते हैं कि काल के दण्ड की भाँति विभीषण के सम्मुख चली। जैसे काल के दण्ड से कोई नहीं बच सकता उसी भाँति विभीषण भी नहीं बच सकते।

आवत देखि सक्ति खर घोरा। प्रनतारति भंजन पन मोरा॥
तुरत बिभीषनु पाछें मेला। सनमुख राम सहेउ सोइ सेला॥१॥

अर्थ : तीखे धार की शक्ति को आते देखकर सरकार ने अपने प्रणतार्तिहर विरद को सँभाला। तुरन्त विभीषण को पीछे ढकेल दिया और स्वयं रामजी ने उस शक्ति को अपने ऊपर ले लिया।

व्याख्या : सरकार ने देखा कि इस तीखी शक्ति से विभीषण तो नहीं बचते और यदि विभीषण मरे तो मेरा प्रणतार्तिहर बाना भी गिर जायगा। अतः सरकार ने अपना बाना सँभाला उसे गिरने न दिया। विभीषण से कहने का भी अवसर नहीं है कि हट जाओ। अतः उसे पीछे ढकेल दिया और उस अमोघ शक्ति को अपने ऊपर लिया। कह चुके थे : जो सभीत आवा सरनाई। रखिहौं ताहि प्रान की नाई। सो प्राण से अधिक मानकर रक्षा की।

लागि सक्ति मुरुछा कछु भई। प्रभुकृत खेलु सुरन्ह बिकलई॥
देखि बिभीषनु प्रभु स्रम पायो। गहि कर गदा क्रुद्ध होइ धायो॥२॥

अर्थ : शक्ति के लगने से सरकार को कुछ मूर्च्छा आ गयी। सरकार के इस खेल ने देवताओं को विकल कर दिया। विभीषण ने देखा कि सरकार को कुछ मूर्च्छा हो गयी तो हाथ में गदा लिये हुए क्रुद्ध होकर दौड़ा।

व्याख्या : अमोघ शक्ति है। अतः उसे व्यर्थ न जाना चाहिए। सरकार ने शक्ति की मर्यादा सुरक्षित रखने के लिए उसे मान लिया। मूर्च्छा सी आगयी। यह उनके लिए खेल था। पर देवता लोग तो विकल हो गये।

रथी की रक्षा सारथि का परम कर्तव्य है। यहाँ कोई उपाय रक्षा का नहीं। रावण पापी है। मूर्च्छित वीर पर भी प्रहार कर सकता है। अतः यदि इससे युद्ध करूँ तो बहुत सम्भव है कि इस बीच में सरकार सचेत हो जायँ। अथवा मेरे लिये सरकार ने चोट सहा है। मैं प्राण देकर भी इसकी रक्षा करूँगा। विभीषणजी का जहाँ तहाँ गदापाणिर्विभीषणः करके वर्णन हुआ है। गदा इनके पास सदा रहती थी उसी को लेकर दौड़े।

रे कुभाग्य सठ मंद कुबुद्धे। तैं सुर नर मुनि नाग बिरुद्धे॥
सादर सिव कहुँ सीस चढ़ाए। एक एक के कोटिन्ह पाए॥३॥

अर्थ : अरे अभागा, शठ, मन्द, दुर्बुद्धि, तूने देवता मनुष्य मुनि और नागों का विरोध किया। आदर के साथ शिवजी को सिर चढ़ाया। सो एक एक के बदले करोड़ों पा चुका।

व्याख्या : तू अभागा है। जो देवता यज्ञ से पूजित होकर इष्ट कामना की पूर्ति करते हैं : उनसे तूने विरोध किया। यथा : इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः। तू शठ है। मनुष्य के हाथ अपना वध जानकर भी तूने मनुष्य से विरोध किया। नर के कर आपन बध बाँचो। हँस्यो जानि बिधि गिरा असाँची। तू मन्द है। उदासीन तपस्वी वन मे रहनेवाले मुनियों से विरोध किया जो संसार से कोई सम्बन्ध नही रखना चाहते। तू दुर्बुद्धि है : जिन नागों को शिवजी भूषण बनाये रहते हैं उनसे तूने विरोध किया। वे लोग तुझसे विरोध करने नही आये। तू नाहक उनके पीछे पडा। यथा : किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पर्थहि लागा। इस भाँति तूने भूतद्रोह किया। चौदह भुवन एक पति होई। भूतद्रोह तिष्ठै नहि सोई। अतः तुम्हारा वध तो कितना पहिले ही हो गया होता।

तू ने एक महान् पुण्य किया था कि आदर के साथ शिवजी को सिर चढाया था। शिवार्पण की हुई वस्तु अनन्त गुणित होकर प्राप्त होती है। सो एक एक सिर के बदले करोड़ो पा चुका।

तेहि कारन खल अब लगि बाँच्यो। अब तव काल सीस पर नाच्यो ॥
रामबिमुख सठ चहसि संपदा। अस कहि हनेसि माँझ उर गदा ॥४॥

अर्थ : रे खल ! उसी कारण से तू अब तक बचता आया। पर अब तेरा काल तेरे सिर पर नाच रहा है। रे शठ ! राम के विमुख होकर सम्पदा चाहता है। ऐसा कहकर बीच हृदय में गदा मारा।

व्याख्या : उसी शिवार्पण के प्रसाद से तू आज तक बचता आया है और अब तक बचा हुआ है। नही तो पहिले बार के सिर कटने पर ही मर गया होता। पर अब तेरा सब पुण्य समाप्त हो गया। क्योकि तूने सरकार पर शक्ति प्रहार कर दिया। जीव ईश्वर का प्रतिविम्ब है। बिम्ब पर प्रहार होने से प्रतिबिम्ब कैसे बचेगा। अथवा : मुनिजन धनसर्वस सिव प्राणा को तेरी शक्ति लग गयी। अतः सिर चढानेवाला पुण्य समाप्त हो गया। अब तेरे सिर पर काल नाच रहा है। तेरे मरने मे देर नही है। वध की इच्छा से ही हृदय के मध्य भाग पर विभीषण ने गदा प्रहार किया।

छं.[1] उरमाझ गदा प्रहार घोर कठोर लागत महि परयो।
दसबदन सोनित स्रवत पुनि सँभारि धायो रिसि भरयो ॥
दोउ भिरे अतिबल मल्ल जुद्ध बिरुद्ध एकु एकहि हनै।
रघुबीर बल दर्पित बिभीषनु घालि नहि ताकहुँ गनै ॥

अर्थ : हृदय के बीच में गदा का घोर और कठोर प्रहार लगते ही पृथिवी पर

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

जा पड़ा। दसोमुख से रुधिर उगलते हुए सँभालकर क्रोध से भरा दौड़ा। दोनों अति बलवान् मल्लयुद्ध में भिड़ गये। विरुद्ध होकर एक दूसरे को मार रहे हैं। रघुवीर के बल से गर्वित विभीषण उसे पासङ्ग के बराबर भी नहीं गिनता।

व्याख्या : हृदय के मध्य मे मुष्टिका का प्रहार भी बहुत है। यहाँ गदा का प्रहार कठोर प्रहार है। सो विभीषण ने कसकर मारा है। इसलिए घोर कहा। ऐसे प्रहार के लगते ही रावण रथ से पृथिवी पर आ पड़े। दसोमुख से रुधिर उगलने लगे। पहिले तो चकरा गये। फिर सँभालकर क्रोध से भरे हुए दौड़े। विभीषणजी भी भिड़ गये। दोनों भाई अति बलवान् है। पहिले भी रावण ने विभीषण में निर्बलता का दोष कभी नही दिया। विभीषणजी को वह भीरु समझता था। यथा : बन्धु हमार भीरु अति सोऊ। दोनों में मल्लयुद्ध हो गया और दोनों एक दूसरे के विरुद्ध होकर प्रहार करते थे। सो यद्यपि रावण दसगुणित सामग्री से सम्पन्न थे। बीस हाथ और दस सिर था। पर विभीषण को सरकार का बल था। यथा : जनहि मोर बल निज बल ताही। अतः विभीषण ने उसे पासंग बराबर भी नही माना। कवि ने यहाँ पर घालि शब्द का प्रयोग किया है। जिसका अर्थ घेलुआ कहा जा सकता है : सौदे के अन्त में कुछ ऊपर से जो देते हैं उसे घेलुआ कहते हैं। मुहावरे का ख्याल करके मैंने पासंग अर्थ किया।

दो. उमा विभीषनु रावनहि सनमुख चितव कि काउ।
सो अब भिरत काल ज्यौं श्रीरघुवीर प्रभाउ ॥९४॥

अर्थ : शिवजी कहते हैं कि उमा ! विभीषण कभी रावण के सम्मुख आँख उठाकर न देख सके। वह जो काल समान भिड़ रहा है : यह रघुवीर का प्रभाव है।

व्याख्या : विभीषणजी ने स्वयं हनुमान्जी से कहा था : सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्ह महुँ जीभ विचारी। विभीषण सामान्य राक्षसों से भी दबकर रहते थे। रावण के सामने आँख उठाकर देखने की कथा ही क्या है। वही विभीषण जो लात खाकर लंका से निकाले गये थे आज रावण से किस बूते पर लड़ रहे हैं ? शिवजी कहते हैं कि विभीषण रामजी के प्रभाव से काल के समान लड़ रहे हैं। भाव यह कि विभीषण का साहस इतना बढा हुआ है कि समझते हैं कि यह मेरा कुछ नहीं कर सकता। मैं इसे मार डालूँगा। यथा : राम प्रताप प्रबल कपि जूथा। मर्दहि निसिचर निकर बरूथा। उमा को सन्देह हुआ कि विभीषण का साहस रावण से लड़ने का कैसे हुआ। इस पर शिवजी ने यह उत्तर दिया।

देखा स्रमित बिभीषनु भारी। धावा हनूमान गिरिधारी ॥
रथ तुरंग सारथी निपाता। हृदय माँझ तेहि मारेसि लाता ॥१॥

अर्थ : हनुमान्जी ने देखा कि विभीषण बहुत थक गये हैं। तो हनुमान्जी पर्वत लेकर दौड़े। रथ, घोड़ा और सारथि को मारा और रावण के हृदय में लात मारा।

व्याख्या : तू अभागा है। जो देवता यज्ञ से पूजित होकर इष्ट कामना की पूर्ति करते हैं उनसे तूने विरोध किया। यथा : इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविता। तू शठ है। मनुष्य के हाथ अपना वध जानकर भी तूने मनुष्य से विरोध किया। नर के कर आपन बध बाँची। हँस्यो जानि बिधि गिरा असाँची। तू मन्द है। उदासीन तपस्वी वन मे रहनेवाले मुनियो से विरोध किया जो संसार से कोई सम्बन्ध नही रखना चाहते। तू दुर्बुद्धि है। जिन नागो को शिवजी भूषण बनाये रहते हैं उनसे तूने विरोध किया। वे लोग तुझसे विरोध करने नही आये। तू नाहक उनके पीछे पडा। यथा : किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहि लागा। इस भाँति तूने भूतद्रोह किया। चौदह भुवन एक पति होई। भूतद्रोह तिष्ठै नहि सोई। अत तुम्हारा वध तो कितना पहिले ही हो गया होता।

तू ने एक महान् पुण्य किया था कि आदर के साथ शिवजी को सिर चढाया था। शिवार्पण की हुई वस्तु अनन्त गुणित होकर प्राप्त होती है। सो एक एक सिर के बदले करोडो पा चुका।

तेहि कारन खल अब लगि बाँच्यो। अब तव काल सीस पर नाच्यो ॥
रामबिमुख सठ चहसि संपदा। अस कहि हनेसि माँझ उर गदा ॥४॥

अर्थ : रे खल! उसी कारण से तू अब तक बचता आया। पर अब तेरा काल तेरे सिर पर नाच रहा है। रे शठ! राम के विमुख होकर सम्पदा चाहता है। ऐसा कहकर बीच हृदय मे गदा मारा।

व्याख्या : उसी शिवार्पण के प्रसाद से तू आज तक बचता आया है और अब तक बचा हुआ है। नही तो पहिले बार के सिर कटने पर ही मर गया होता। पर अब तेरा सब पुण्य समाप्त हो गया। क्योकि तूने सरकार पर शक्ति प्रहार कर दिया। जीव ईश्वर का प्रतिबिम्ब है। बिम्ब पर प्रहार होने से प्रतिबिम्ब कैसे बचेगा। अथवा : मुनिजन धनसर्बस सिव प्राणा को तेरी शक्ति लग गयी। अतः सिर चढानेवाला पुण्य समाप्त हो गया। अब तेरे सिर पर काल नाच रहा है। तेरे मरने मे देर नही है। वध की इच्छा से ही हृदय के मध्य भाग पर विभीषण ने गदा प्रहार किया।

छं.[1] उरमाझ गदा प्रहार घोर कठोर लागत महि परचो।
दसबदन सोनित स्रवत पुनि सँभारि धायो रिसि भरचो ॥
दोउ भिरे अतिबल मल्ल जुद्ध बिरुद्ध एकु एकहि हनै।
रघुबीर बल दर्पित बिभीपनु घालि नहि ताकहुँ गनै ॥

अर्थ : हृदय के बीच मे गदा का घोर और कठोर प्रहार लगते ही पृथिवी पर

१ हरिगीतिका छन्द है।

जा पड़ा। दसोमुख से रुधिर उगलते हुए सँभालकर क्रोध से भरा दौड़ा। दोनों अति बलवान् मल्लयुद्ध में भिड़ गये। विरुद्ध होकर एक दूसरे को मार रहे हैं। रघुवीर के बल से गर्वित विभीषण उसे पासङ्ग के बराबर भी नहीं गिनता।

व्याख्या : हृदय के मध्य में मुष्टिका का प्रहार भी बहुत है। यहाँ गदा का प्रहार कठोर प्रहार है। सो विभीषण ने कसकर मारा है। इसलिए घोर कहा। ऐसे प्रहार के लगते ही रावण रथ से पृथिवी पर आ पड़े। दसोमुख से रुधिर उगलने लगे। पहिले तो चकरा गये। फिर सँभालकर क्रोध से भरे हुए दौडे। विभीषणजी भी भिड़ गये। दोनों भाई अति बलवान् हैं। पहिले भी रावण ने विभीषण में निर्बलता का दोष कभी नही दिया। विभीषणजी को वह भीरु समझता था। यथा : बन्धु हमार भीरु अति सोऊ। दोनों में मल्लयुद्ध हो गया और दोनों एक दूसरे के विरुद्ध होकर प्रहार करते थे। सो यद्यपि रावण दसगुणित सामग्री से सम्पन्न थे। बीस हाथ और दस सिर था। पर विभीषण को सरकार का बल था। यथा : जनहि मोर बल निज बल ताही। अतः विभीषण ने उसे पासंग बराबर भी नही माना। कवि ने यहाँ पर घालि शब्द का प्रयोग किया है। जिसका अर्थ घेलुआ कहा जा सकता है : सौदे के अन्त में कुछ ऊपर से जो देते हैं उसे घेलुआ कहते हैं। मुहावरे का ख्याल करके मैंने पासंग अर्थ किया।

दो. उमा विभीषनु रावनहि सनमुख चितव कि काउ।
सो अब भिरत काल ज्यौं श्रीरघुबीर प्रभाउ ॥९४॥

अर्थ : शिवजी कहते हैं कि उमा ! विभीषण कभी रावण के सम्मुख आँख उठाकर न देख सके। वह जो काल समान भिड़ रहा है : यह रघुवीर का प्रभाव है।

व्याख्या : विभीषणजी ने स्वयं हनुमान्जी से कहा था : सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्ह महुँ जीभ बिचारी। विभीषण सामान्य राक्षसों से भी दबकर रहते थे। रावण के सामने आँख उठाकर देखने की कथा ही क्या है। वही विभीषण जो लात खाकर लंका से निकाले गये थे आज रावण से किस बूते पर लड़ रहे हैं ? शिवजी कहते हैं कि विभीषण रामजी के प्रभाव से काल के समान लड़ रहे हैं। भाव यह कि विभीषण का साहस इतना बढा हुआ है कि समझते हैं कि यह मेरा कुछ नही कर सकता। मैं इसे मार डालूँगा। यथा : राम प्रताप प्रबल कपि जूथा। मर्दहि निसिचर निकर बरूथा। उमा को सन्देह हुआ कि विभीषण का साहस रावण से लड़ने का कैसे हुआ। इस पर शिवजी ने यह उत्तर दिया।

देखा स्रमित बिभीषनु भारी। धावा हनूमान गिरिधारी ॥
रथ तुरंग सारथी निपाता। हृदय माँझ तेहि मारेसि लाता ॥१॥

अर्थ : हनुमान्जी ने देखा कि विभीषण बहुत थक गये हैं। तो हनुमान्जी पर्वत लेकर दौड़े। रथ, घोड़ा और सारथि को मारा और रावण के हृदय में लात मारा।

व्याख्या सरकार के मूर्च्छित होते ही हनुमान्जी दौडनेवाले थे। तब तक देखा कि विभीषण लड गये। वे ही उस समय निकट थे। सारथि का काम करते थे। अत हनुमान्जी खडे होकर युद्ध की गतिविधि देखते रहे। देखा कि विभीषण थक गये। अब रावण प्रबल पड रहा है। कही विभीषण का वध न हो जाय। अत पहाड लेकर दौडे। उसे तो रावण के रथ पर फेंका। जिससे दबकर रथ चूर हो गया। सारथि और घोडे पिस गये और स्वय पहुँचकर रावण को लात मारा। रावण के लिए कवि कह आये हैं बिसरा मरण भई रिसि गाढी। अत रावण का पराक्रम इस समय बहुत बढा हुआ है। यह निश्चय हो जाता कि मुझे कोई मार नही सकता और साथ ही साथ गाढी रिसि होने से मानसिक स्थिति बडी बलवती हो जाती है और मानसिक स्थिति पर ही बहुत कुछ जय पराजय निर्भर करता है।

ठाढ रहा अति कपित गाता। गएउ बिभीषनु जहँ जनत्राता॥
पुनि रावन कपि हतेउ पचारी। चलेउ गगन कपि पूंछ पसारी॥२॥

अर्थ शरीर अत्यन्त कांपने लगा। पर खडा रह गया। विभीषणजी भक्त-रक्षक रामजी के पास गये। फिर रावण ने उन्हें ललकारकर मारा। हनुमान्जी पूँछ फैलाकर आकाश मे चले।

व्याख्या जो रावण हनुमान्जी की मुष्टिका न सहकर धराशायी हुआ था वही इस समय हृदय मे लात मारने से भी नही गिरता है। यद्यपि उसका शरीर अत्यन्त कांपने लगा। पर खडा रह गया। विभीषणजी ने देखा कि हनुमान्जी आगये। अब मेरी आवश्यकता नही। तो सरकार के पास उन्हे सँभालने के लिए चले गये।

कम्प शान्त होते ही रावण ने हनुमान्जी को ललकारकर मारा। हनुमान्जी पर उस प्रहार का कोई प्रभाव न पडा। उन्होने चाहा कि रावण को वहाँ से हटा ले जायँ। सरकार मूर्च्छित हैं। इस समय रावण का यहाँ रहना अच्छा नही। अत आप आकाश मे चल। प्रहार होने पर दूसरी जगह हटने का अर्थ भागना है। जिसमे रावण भागना समझकर पीछा करे। तिस पर आप ने पूँछ फैला दो। जिसमे क्रोधावेश मे उसी को पकडकर मेरे साथ ही जहाँ मैं जा रहा हूँ वही चला आवे।

गहेसि पूँछ कपि सहित उडाना। पुनि फिरि भिरेउ प्रबल हनुमाना॥
लरत अकास जुगल सम जोधा। एकहि एकु हनत करि क्रोधा॥३॥

अर्थ पूँछ पकडकर हनुमान्जी के साथ ही उड चला। तब तो प्रबल हनुमान्जी घूमकर लड गये। दोनो बराबरी के योद्धा आकाश मे भिड गये। एक दूसरे पर क्रोध करके प्रहार करने लगे।

व्याख्या हनुमान्जी बुद्धिमतावरिष्ठ हैं। उनकी युक्ति काम कर गयी। रावण अत्यन्त क्रुद्धावस्था मे हनुमान्जी की चाल को न समझ सका। पकड ली पूँछ कि कहाँ जाता है और हनुमान्जी के साथ ही उडा। हनुमान्जी प्रबल हैं। निर्बलता

के कारण भागे नही हैं। जब देख लिया कि जितनी दूर इसे लाना चहते थे उतनी दूर यह चला आया तो घूमकर भिड़ गये। रावण उन्हे भागता हुआ समझकर जोश मे पीछा करते ही चले गये।

अब आकाश मे युद्ध आरम्भ हुआ। दोनो योद्धाओ मे बराबरी का युद्ध होने लगा। एक दूसरे पर क्रोध करके प्रहार कर रहे हैं। गिरता कोई नही है। यह आकाश युद्ध अद्भुत हुआ।

सोहहिं नभ छल बल बहु करही। कज्जलगिरि सुमेरु जनु लरही॥
बुधि बल निसिचरु परै न पारयो। तब मारुत सुत प्रभु संभारयो॥४॥

अर्थ : बहुत से दांवपेंच करते हुए आकाश मे ऐसे शोभित हुए जैसे कज्जलगिरि और सुमेरु लड रहे हों। बुद्धिबल से वह राक्षस गिराये न गिरा तब हनुमान्‌जी ने सरकार को सँभाला।

व्याख्या : दोनो वीर आकाश मे दांवपेंच कर रहे हैं। रावण कज्जल के पर्वत के समान काले और भारी हैं। इधर हनुमान्‌जी सुमेरु पर्वत की भाँति विशाल और सोने के रङ्ग के हैं। यथा : पीतस्ताम्रमुख: कपि:। अत: ऐसी शोभा हो रही है मानो कज्जलगिरि और सुमेरु मे युद्ध आकाश मण्डल मे हो रहा है।

इस समय रावण ऐसा युद्ध कर रहा है कि न तो दांवपेंच से और न बल से ही गिराया जा सकता है। तब हनुमान्‌जी ने सरकार को सँभाला। हनुमान्‌जी सरकार की मानसी मूर्ति सदा हृदय मे रखते है और समय समय पर दरिद्र के धन की भाँति उसे सँभाला करते हैं कि कही गिर न जाय। यथा : मन माधव को नेकु निहारहि। सुनु सठ सदा रंक के धन ज्यौं पुनि पुनि प्रभुहि सँभारहि। रावण के न गिरने पर हनुमान्‌जी को सन्देह हुआ कि क्या बात है। यह गिरता क्यो नही ? क्या सरकार मेरे हृदय से निकल गये। अत हनुमान्‌जी ने सरकार को सँभाला।

छं.[1] संभारि श्रीरघुबीर धीर प्रचारि कपि रावन हन्यो।
महिपरत पुनि उठि लरत देवन्ह जुगल कहुँ जयजय भन्यो॥
हनुमंत संकट देखि मर्कट भालु क्रोधातुर चले।
रनमत्त रावन सकल सुभट प्रचड भुजबल दलमले॥

अर्थ : श्रीरघुवीर धीर को सँभालकर हनुमान्‌जी ने ललकारकर रावण को मारा। पृथिवी पर गिरते और फिर उठकर लड़ते हुए दोनो की जय जयकार देवताओ ने की। हनुमान्‌जी का सकट देखकर बन्दर और भालु क्रुद्ध होकर चले। रण मे मत्त रावण ने सभी सुभटों को प्रचण्ड भुजाओ के बल से छिन्न भिन्न कर दिया।

व्याख्या : सरकार के वीर धीर भाव की मूर्ति को हृदय मे धारण करके

१. हरिगीतिका छन्द।

ललकारकर हनुमान्जी ने रावण को मारा। तो इस बार रावण पृथिवी पर गिर गया। परन्तु फिर उठकर लडने लगा। यह लड़ाई ऐसी बराबरी की हुई कि देवताओ को दोनो का जयकार बोलना पड़ा। देवता हैं : असत्य भाषण नही कर सकते। जब बराबरी का युद्ध होने लगता है तब दोनो ओर सङ्कट उपस्थित होता है। रावण के पक्ष मे तो इस समय कोई ऐसा है नही जो सहायता कर सके। पर हनुमान्जी के पक्षवाले सभी हैं। सो बन्दर और भालु क्रोध मे आतुर होकर चले। जब बन्दर भालु रावण पर टूट पड़े तब हनुमान्जी युद्ध से विरत हो गये। रावण को भी दम लेने का अवकाश मिला। बन्दर भालु उसका क्या कर सकते थे। सो उन्हे उसने भुजाओ के बल से ही छिन्न भिन्न कर दिया।

दो. तब रघुबीर प्रचारे, धाये कीस प्रचंड।
कपिदल प्रबल देखि तेहि, कीन्ह प्रगट पाखंड ॥९५॥

अर्थ तब श्रीरघुवीर के ललकारने पर प्रचण्ड वीर वानर दौड़े। वानरों के प्रबल दल को देखकर रावण ने माया प्रकट की।

व्याख्या : सरकार मूर्च्छा से जागे तो बन्दर भालुओ का रावण के हाथ से विध्वस होते देखा। तब रामजी ने ललकारा। इनकी आज्ञा पर बन्दरो मे जो प्रचण्ड वीर थे अङ्गद नीलादि वे दौडे। रावण ने देखा कि यह दल जो युद्ध के लिए आ रहा है मेरे मान का नही है। तब उसने माया प्रकट की। राक्षस जब देखते हैं कि बल काम न करेगा तब अपने परम बल माया का आश्रयण करते हैं।

अतरधान भएउ छन एका। पुनि प्रगटे खल रूप अनेका ॥
रघुपति कटक भालु कपि जेते। जहँ तहँ प्रगट दसानन तेते ॥१॥

अर्थ : वह खल एक क्षण के लिए अन्तर्धान हो गया और तब अनेक रूप प्रकट किया। रामजी की सेना मे जितने बन्दर भालु थे जहाँ तहाँ उतने ही दशानन प्रकट हो गये।

व्याख्या . प्रचण्ड बानर वीर तो दौडे पर रावण का पता नही। वह अन्तर्धान हो गया। वीर लोग इधर उधर देखते हैं कि वह गया कहाँ ? तब तक सबके सामने एक एक रावण मौजूद हो गये या तो कही रावण नही। क्षणभर बाद सम्पूर्ण रणाङ्गन मे रावण ही रावण हो गये।

देखे कपिन्ह अमित दससीसा। जह तहँ भजे भालु अरु कीसा ॥
भागे बानर धरहिं न धीरा। त्राहि त्राहि लछिमन रघुबीरा ॥२॥

अर्थ : बन्दरो ने अगणित रावण देखे तब तो भालु भी भागे और विकट बीर बन्दर भी भागे। बन्दर ऐसे भागे कि धैर्य धारण ही नही करते। पुकारते हैं कि हे लक्ष्मण ! हे रघुबीर रक्षा करो, रक्षा करो।

व्याख्या . अपने सामने एकाएक रावण को देखकर जो चौके तो जिधर देखते

हैं उधर रावण ही रावण। इस दृश्य के देखते ही बन्दर भालु ऐसे भयभीत हुए कि प्राण लेकर भागे। धैर्य धारण करके कोई यह नही देख रहा है कि आखिर इतने रावण कर क्या रहे हैं। किसी को मारते काटते हैं या नही। उनका धैर्य ऐसा छूटा कि भागते ही चले जाते हैं। कोई लौटकर देखता ही नही। रक्षा के लिए लक्ष्मणजी और रामजी को पुकारते हैं। क्योकि अप्रतिक्रिय सङ्कट के समय वे ही सहाय होते और उन्ही का बल बन्दर भालुओ को है।

दह दिसि धावहि कोटिन्ह रावन। गर्जहिं घोर कठोर भयावन ॥
डरे सकल सुर चले पराई। जय कै आस तजहु अब भाई ॥३॥

अर्थ दसो दिशाओ मे करोडो रावण दौडते हैं। घोर कठोर और भयावन गर्जन कर रहे हैं। सब देवता डर गये और भाग चले। कहने लगे कि भाई! अब जीत की आशा छोड दो।

व्याख्या चारो दिशा चारो विदिशा ऊपर और नीचे करोडो रावण दौड रहे हैं। सेना को तितर बितर करके ऐसा भगाना चाहते है कि फिर इकट्ठी न हो सके। प्रधान ज्ञानेन्द्रिय चक्षु और श्रोत्र ही हैं। सो दोनो पर आसुरी माया का अधिकार हो गया है। नेत्र करोडो रावण देख रहे हैं और कान उनका घोर कठोर और भयावन गर्जन सुन रहे हैं। उच्च स्वर होने से घोर कर्णकर्कश होने से कठोर और हृदय को कँपानेवाला होने से भयावन कहा। इस शब्द से सभी भालु बन्दर समझते हैं कि आया मेरे सिर पर। अत अधिक वेग से भागते है।

माया साधारण नही है। वह बन्दर भालु पर ही नही देवताओ पर भी काम कर गयी। वे भी ऐसा ही दृश्य देखते और ऐसे ही शब्द सुनते हैं। टाकी बायस्कोप म भी अनेक रावण दौड सकते हैं। भयानक शब्द कर सकते है। पर किसी को मार काट नही सकते। रावण की माया टाकी बायस्कोप की माया से कहीं बढकर थी। वह दिन दहाडे रणाङ्गन मे काम करती थी। देवताओ पर उसने काम किया। वे भी डर गये। नीचे बन्दर भालु भागे। ऊपर आकाश म देवता भाग चले। आपस मे कहने लगे कि अब जीतने की आशा छोडो।

सब सुर जिते[1] एक दसकधर। अब बहु भए तकहु गिरिकदर ॥
रहे बिरचि सभु मुनि ज्ञानी। जिन्ह जिन्ह प्रभु महिमा कछु जानी ॥४॥

अर्थ सब देवताओ को एक रावण न जीत लिया। अब तो बहुत हुए। अब पहाड की कन्दरा ताको। ब्रह्मा शम्भु और मुनि ज्ञानी रह गये। जिन लोगो ने प्रभु की कुछ महिमा जानी थी।

व्याख्या जीत की आशा छोडने का कारण कहते हैं कि अकेले रावण ने तो सब देवताओ को जीत लिया था। अब तो असख्य रावण हो गये। इतने रावण

---

१ यहाँ मीलितालकार है।

कैसे जीते जायेंगे । अतः जैसे पहिले बचे थे वही रास्ता पकड़ना चाहिए । रावन आवत सुनउ सकोहा । देवन्ह तकेउ मेरु गिरि खोहा । अत. हम लोगो को मेरुगिरि का खोह ही शरण है । यहाँ से जितनी जल्दी हो निकल जाना ही ठीक है ।

ये देवता लोग सरकार की महिमा से वस्तुतः अनभिज्ञ थे । ज्ञानी देवता शम्भु और ब्रह्मा तथा ज्ञानी मुनि सरकार की अनन्त महिमा से थोड़ा बहुत परिचित थे । वे समझते थे कि यह माया है । वस्तुस्थिति नही है, यह सरकार के सामने कितने देर तक ठहरेगी ।

छं.[1] जाना प्रताप ते रहे निर्भय कपिन्ह रिपु माने फुरे ।
चले बिचलि मर्कट भालु सकल कृपालु पाहि भयातुरे ॥
हनुमंत अंगद नील नल अति बल लरत रन बाकुरे ।
मर्दहि दसानन कोटि कोटिन्ह कपटभू भट अंकुरे ॥

अर्थ : जो प्रताप जानते थे वे निर्भय थे । बन्दरो ने शत्रुओ को सच्चा माना । भय से विकल होकर हे कृपाल ! रक्षा करो पुकारते हुए भाग चले । हनुमान् अगद नील और नल ये रणबांकुरे अत्यन्त बली लड़ रहे हैं । करोडो रावणो को पकड पकड़कर रगड रहे हैं । पर ये माया से उत्पन्न होनेवाले योद्धा अकुर की भाँति निकल पडते थे ।

व्याख्या : उन ज्ञानियो ने सरकार के प्रताप को जान पाया था । इसलिए निर्भय थे । पर बन्दरो ने तो उन रावणो को सच्चा जाना । अत. वे भयातुर होकर हे कृपाल ! रक्षा करो ऐसा पुकारते हुए भाग चले । परन्तु उनमे भी रणबाकुरे अति बलवान् वीर थे । जैसे हनुमान् अङ्गद नील और नल । ये भागनेवाले नही । इन्होने उन रावणो से लडना आरम्भ किया तो वे कुछ ठहरते नही । एक को कौन कहे वे करोडो रावण पर झपटते हैं और उन्हे रगड देते हैं । मानो हवा से लड़ रहे है । अपने समझ मे मर्दन करते है पर जहाँ पर मर्दन करते हैं वही से दूसरे रावण निकल पडते हैं । भाव यह कि वे रावणो को मर्दन करते-करते हैरान हैं ।

दो. सुर बानर देखे बिकल, हँस्यो कोसलाधीस ।
सजि सारग एक सर, हते सकल दससीस ॥९६॥

अर्थ : देवताओ और बानरो को विकल देखकर कोशलाधीश हँसे और धनुष को सज्जित करके एक बाण से सब रावणो को मार दिया ।

व्याख्या : सरकार ने देखा कि देवता लोग चुपके चुपके भागे जाते हैं । बन्दर लोग त्राहि त्राहि चिल्लाते भागे जा रहे हैं । सुभट लोग हवा से लड़ रहे हैं पर विकल सब हैं । इस पर सरकार हँसे कि देवता भी धोखा खा गये । तब धनुष सन्धान

---

१. हरिगीतिका छ द है ।

करके एक बाण से उन सब माया से बने हुए रावणों को मार दिया। जिस भाँति एक रावण से अगणित रावणों का प्रकट होना अद्भुत हुआ उसी भाँति एक बाण से सबका मारा जाना भी महा अद्भुत हुआ।

प्रभु छन महुँ माया सब काटी। जिमि रबि उए जाहि तम फाटी॥
रावनु एक देखि सुर हरखे। फिरे सुमन बहु प्रभु पर बरखे॥१॥

अर्थ सरकार ने एक क्षण मे सब माया काट दी। जैसे सूर्योदय होने से अन्धकार फट जाता है। रावण को अकेला देखकर देवता प्रसन्न हुए लौट पडे और सरकार पर बडी पुष्पवृष्टि की।

व्याख्या जिस भाँति रावण को माया प्रकट करने मे एक क्षण लगा था। यथा अन्तरधान भयउ छन एका। पुनि प्रगटेउ खल रूप अनेका। उसी भाँति माया के कटने मे भी एक ही क्षण लगा। सरकार ने अनायास ही सब माया दूर कर दी। जिस भाँति सूर्योदय होने पर अन्धकार आपसे आप फट जाता है। सूर्यनारायण को कोई आयास नही करना पडता। नारायण तो अपने ही को प्रकाशित करते हैं। उनका किया हुआ अन्धकार दूर नही होता। चन्द्रमा को अन्धकार दूर करने मे पराक्रम करना पडता है। यथा मत्त नाग तम कुंभ बिदारी। ससि केसरी गगन बन चारी। सूर्य उदय हुए और अन्धकार आपसे आप नष्ट हो जाता है। इसी भाँति सरकार के बाणरूपी सूर्य के उदय होते ही मायान्धकार जिसमे ये भ्रमात्मक दृश्य दिखाई पडते थे आपसे आप ही नष्ट हो गया नही तो हनुमान् अङ्गद नील नल बडा पराक्रम करके उस माया से लड रहे थे पर वह दूर नही होती थी।

बन्दरो ने तो उलटकर भी नही देखा कि क्या हो रहा है पर देवता उलटकर देखते थे कि कही हमारा पीछा तो कोई रावण नही कर रहा है क्योंकि ऊपर भी बहुत से रावण दौड रहे थे। उन्होने देखा कि अकस्मात् सब रावण बेपता हो गये। रणाङ्गन मे केवल एक ही रावण रह गया। तब तो देवता लोग लौट आये और मारे खुशी के सरकार पर पुष्प वृष्टि करने लगे।

भुज उठाइ रघुपति कपि फेरे। फिरे एक एकन्ह तब टेरे॥
प्रभु बल पाइ भालु कपि धाए। तरल तमकि संजुग महि आए॥२॥

अर्थ भुजा उठाकर सरकार ने बन्दरो को लौटाया। वे सब एक दूसरे के पुकारने पर लौटे। सरकार का बल पाकर भालु बन्दर दौड पडे और फुरती से क्रुद्ध हुए रणाङ्गन मे आये।

व्याख्या . बन्दरो को लौटाने मे सरकार को भुजा उठाकर बुलाना पडा। जिन बन्दरो ने सरकार का भुजा उठाना देखा उन्होने आगे के भागते हुओ को पुकारकर लौटने को कहा और उन लोगो ने आगेवालो को पुकारा। इस भाँति वानरी सेना लौट पडी।

बन्दरो ने देखा कि मैदान खाली है सब रावण नष्ट हो गये। तब तो वे दौड़ पडे और बड़ी तेजी से अमर्षयुक्त होकर समराङ्गन मे आये। एक रावण से लड़ने के लिए उन्हे उत्साह है। उन्हे रामजी का बल है। उन्ही को सङ्कट के समय पुकारते हैं और वे ही सहाय होते हैं। भुजा के उठाने का तात्पर्य भी अभयदान है। अतः उनके बल पाने से बन्दर भालुओ मे नवीन प्राण का सञ्चार हुआ।

अस्तुति करत देवतन्हि देखे। भएउ एक मैं इन्हके लेखे ॥
सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल। अस कहि कोपि गगन पर धायल ॥३॥

अर्थ : देवताओ को स्तुति करते देखा। क्या मै इनके लिए भी अकेला हो गया। हे शठो ! तुम सदा मेरे पीटे हुए हो ऐसा कहकर आकाश मार्ग मे दौड़ा।

व्याख्या : देवताओ ने सरकार के ऊपर पुष्पवृष्टि की। तत्पश्चात् स्तुति करने लगे। रावण इसे सहन नही कर सके। ये सब सदा मेरी स्तुति करते थे सो आज मेरा पराभव देखकर शत्रु की स्तुति मेरे सामने कर रहे हैं। मैं भले ही राम के लिए बन्दर भालुओ के लिए अकेला हो गया हूँ तो फिर क्या इनके लिए भी अकेला हो गया ? इनके लिए अकेला ही मै बहुत हूँ।

रावण ने ललकारा कि दुष्टो ! तुम तो सदा मुझसे पीटे गये हो। अतः मेरी ही स्तुति करनी तुम्हे प्राप्त है। इस तपस्वी ने तुम्हे कब पीटा जो इसकी स्तुति करते हो। रावण उचित अनुचित की परख बल के तारतम्य से करते हैं। अतः देवताओं को दण्ड देने के लिए क्रुद्ध होकर आकाश मार्ग मे दौड़े।

हाहाकार करत सुर भागे। खलहु जाहु कहँ मोरे आगे ॥
देखि बिकल सुर अंगद धायो। कूदि चरन गहि भूमि गिरायो ॥४॥

अर्थ : देवता लोग हाहाकार करते हुए भागे। दुष्टो ! मेरे सामने से कहां भागकर जा सकोगे। देवताओ को विकल देखकर अङ्गदजी दौड़े और कूदकर उसकी टाँग पकड़कर पृथिवी पर गिरा दिया।

व्याख्या : रावण को अपनी ओर आग बबूला होकर आते देखकर देवता लोग उत्तर की ओर भाग चले। रावण से बचने के लिए एक मात्र शरण मेरु पर्वत की गुफाएँ थी। जहां पापियो की गति नही है। रावण ने ललकारा कि दुष्टो ! मेरे सामने से तुम भागकर भी नही बच सकते। दिग्विजय के समय तुम लोग मेरा सामना पड़ने के पहले ही भाग गये थे। यथा : दिगपालन के लोक सुहाये। सूने सकल दसानन पाये।

अङ्गदजी ने देखा कि देवता लोग विकल है। इनकी सहायता करनी चाहिए। मैंने कह भी रक्खा है : हलौं न खेत खेलाइ खेलाई। सो खेलाने के लिए दौड़े। उड़े नही। कूदकर उसकी टाँग पकड़ ली और पृथिवी पर गिरा दिया। हनुमान्‌जी की इसने पूँछ पकड़ी थी। अतः अङ्गदजी ने उसकी टाँग पकड़कर पटका।

छं.[1] गहि भूमि पारचौ लात मारचौ बालिसुत प्रभुपहि गयो।
संभारि उठि दसकंठ घोर कठोर रव गर्जत भयो॥
करि दाप चाप चढाइ दस सधानि सर बहु बरपई।
किए सकल भट घायल भयाकुल देखि निज बल हरपई॥

अर्थ : अङ्गद ने उसे पकड़कर : पृथिवी पर गिराया। लात मारा और रामजी के पास चले गये। सँभालकर रावण उठा और घोर कठोर ध्वनि से गर्जा। दर्प करके दस धनुप चढाकर और बाण सन्धान करके बाण वर्षा करने लगा। सब वीरो को घायल और भयाकुल कर दिया और अपने बल को देखकर हर्षित होने लगा।

व्याख्या : विभीषण को इसने लात मारकर निकाला है। उसका फल यह मिल रहा है कि बराबर लात खाता ही जाता है। यज्ञ विध्वस के समय अङ्गद ने लात मारा था। फिर हनुमान्जी ने रणाङ्गन मे लात मारी। इस समय फिर अङ्गद ने लात मारी। इसीलिए कवि अङ्गद न कहकर बालिसुत कह रहे हैं। दूसरा किसे यह सामर्थ्य है कि रावण को पैर पकडकर पटके और लात मारे। मारकर प्रभु के पास चले गये। समझा कि यह जल्दी नही उठेगा।

पर रावण सँभालकर उठे। लज्जित नही हुए। घोर कठोर ध्वनि से गर्जन करने लगे। दर्प से दसो धनुओ से बाण की वर्षा आरम्भ की और सब वन्दरो को घायल और भय से आकुल कर दिया। तब अपना बल देखकर बडे प्रसन्न हुए कि ठीक है : बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहि पारा।

दो तब रघुपति रावन के सीस भुजा सर चाप।
काटे बहुत बढे पुनि जिमि तीरथ कर पाप॥९७॥

अर्थ तब रामजी ने रावण के सिर भुजा और दसो धनुपो को काटा और वे फिर बहुत से हो गये जैसे तीर्थ मे किया हुआ पाप।

व्याख्या रामजी ने सेना को अभय देकर लौटाया था। अत त्राहि त्राहि होने के पहिले ही रावण पर टूटे और एक साथ ही उसके सिर भुजा बाण और धनुप को काट दिया। बाण वर्षा बन्द हो गयी। परन्तु फिर सब ठीक हो गया। सिर बाहु दूसरे निकल आये और धनुप बाण तो बहुत से रथ पर रक्खे ही होते हैं। बार बार काटने पर भी सिर और भुजायें फिर ज्यो की त्यो हो जाती हैं। जैसे तीर्थ पाप को काट देता है। पर तीर्थ मे किया हुआ पाप बहुत बढ जाता है। तनिक सी असावधानी मे फिर पाप ज्यों का त्यों हो जाता है। तीर्थ उपजाऊ भूमि है। उसमे पाप पुण्य दोनों बीज अत्यधिक पनप जाते हैं।

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

सिर भुज बाढि देखि रिपु केरी। भालु कपिन्ह रिसि भई घनेरी ॥
मरत न मूढ कटेहुँ भुज सीसा। धाए कोपि भालु भट कीसा ॥१॥

अर्थ शत्रु के सिर और भुजा की बढती देखकर भालु और बन्दरो को बडा क्रोध हुआ कि यह मूढ सिर के कटने पर भी नही मरता है। अत भालु और वीर बन्दर क्रोध करके दौडे।

व्याख्या शत्रु की इस प्रकार की बढोत्तरी बन्दर भालुओ से न देखा गया। कार्य मे सफलता होते न देखकर रिसि हुई और सरकार को सिर भुजा छेदन मे कितना परिश्रम पडता है इसे सोचकर घनेरी रिसि हुई। जिसका ससार मे चित्त लगा रहता है वह जल्दी नही मरता है और मर भी जाय तो प्रेत होकर यही रहता है। यह जीवित प्रेत है। सिर कटने पर भी नही मरता। बालि ज्ञानी था। जो अचल करौ तन राखहु प्राना। सरकार के ऐसा कहने पर भी जीना न चाहा। यह मूढ है। इतनी दुर्दशा और इतनी पीडा पाने पर भी जीना चाहता है। मरणान्त कष्ट अगणित बार भोग चुका और भोगता जाता है। फिर भी जीने के लिए लड रहा है। यह सिर भुज काटने से नही मरेगा। इसे कुचल डालना चाहिए। ऐसा विचारकर क्रुद्ध होकर वीर भालु और बन्दर दौडे। सरकार ने बाण चलाना बन्द कर दिया।

बालि तनय मारुति नल नीला। बानरराज दुबिद बलसीला ॥
बिटप महीधर करहिं प्रहारा। सोइ गिरितरु गहि कपिन्ह सो मारा ॥२॥

अर्थ बालि का बेटा, पवनतनय, नल, नील, द्विविद आदि बलवान् पेड और पहाडो से प्रहार कर रहे हैं। उन्ही पहाडो और पेडो से उसने बन्दरो को मारा।

व्याख्या इस बार मन्त्र दृढ करके स्वय राजा सुग्रीव सुभटो के साथ झपटे और पेड तथा पहाडो का प्रहार करने लगे। इस प्रहार करने मे सुग्रीव के साथ प्रधान वीर थे। अङ्गद हनुमान् नल नील द्विविद आदि। वीर प्रहार कर रहे हैं। पर रावण को दस सिर और बीस भुजाएँ हैं। अत सबके फेंके हुए पत्थर और पेडो को वह रोक लेता है और उन्ही को उन सुभटो पर फेंकता है।

एक नखन्हि रिपु बपुष बिदारी। भागि चलहिं एक लातन्ह मारी ॥
तब नल नील सिरन्हि चढ़ि गयेऊ। नखन्हि लिलार बिदारत भयेऊ ॥३॥

अर्थ कोई उसके देह को नखो से फाडकर और कोई लात मारकर भागते हैं। तब नल नील उसके सिरो पर चढ गये और नखो से उसका माथा फाड डाला।

व्याख्या पत्थर पेड से लडनेवाली विधि ठीक न पडी। तब बन्दरो ने दूसरा रास्ता पकडा। कोई नख से उसके शरीर मे क्षत करके भागता है। जब वह उस पर झपटता है तब से दूसरा उसे लात मार कर भागता है। इस प्रकार से चारो ओर से उस पर चोट लगने लगी। तब तक नल नील कूद करके उसके सिर पर

चढ़ गये। रावण रणमदमत्त है। उसे पता नहीं। उन लोगों ने इसके ललाट को फाड़ डाला। युद्ध की गरमी मे उसे इस बात का भी पता नही।

रुधिर देखि बिषाद उर भारी। तिन्हहिं धरन कहुँ भुजा पसारी ॥
गहे न जाँहि करन्हि पर फिरही। जनु जुग मधुप कमलवन चरहीं ॥४॥

अर्थ : रुधिर देखकर उस देवशत्रु ने उनके पकड़ने के लिए भुजा फैलायी। वे पकड़ में नही आते। सिरों के ऊपर घूम रहे हैं। जैसे दो भौंरे कमलवन में विचरते हों।

व्याख्या : जब रक्त बहकर आँखों में आया तब उसे पता चला। देखा कि रक्त है पसीना नही है। तब उनको पकड़ने के लिए उसने हाथ बढाये। ये महात्मा एक सिर से दूसरे पर कूद गये। उधर हाथ पहुँचा तो तीसरे पर कूद गये। जिस भाँति जैसे एक शिखर से बन्दर दूसरे पर और दूसरे से तीसरे पर कूद जाते हैं उसी भाँति ये सिरों पर चौकड़ी लगाने लगे। कवि उपमा देते हैं कि जैसे दो भौंरे कमलवन में विहार करते हों। रावण का सिर कमलवन हुआ और नल नील भौंरे की भाँति शोभित हुए। रावण के हाथ नही लग रहे हैं।

कोपि कूदि द्वौ धरेसि बहोरी। महि पटकत भजे भुजा मरोरी ॥
पुनि सकोप दस धनु कर लीन्हे। सरन्ह मारि घायल कपि कीन्हे ॥५॥

अर्थ : उसने क्रोध करके कूदकर दोनों को पकड़ा। पृथिवी पर पटकते समय वे भुजाओं को मरोड़ कर भागे। तब तो क्रोध करके उसने दसो धनुष उठाये और बाणों के आघात से बन्दरो को घायल कर दिया।

व्याख्या : रावण ने देखा कि ये तो यों ही सिर पर कूदा करेंगे। सिर के ऊपर मैं देख नही सकता। अत: ये इस भाँति हाथ न लगेंगे। इसलिए उछला। नल नील नीचे पड़ गये। तुरन्त उसने पकड़ लिया। चाहा कि दोनों को पृथिवी पर पटक दूँ। तबतक वे दोनों उसके हाथों को मरोड़कर निकल भागे। इस युद्ध में भालु सम्मिलित नहीं थे।

तब तो उसे बड़ा क्रोध हुआ कि ये यों न मानेंगे। मैं तो चाहता था कि जो जिस शस्त्र से लड़े उससे उसी शस्त्र से लड़ूँ। पर ये अन्यायी हैं। इन्हें बाण से मारूँ। अत: दस धनुष उसने दसों हाथों से उठाये और बाणों के अघात से बन्दरों को घायल कर दिया।

हनुमदादि मुरुछित करि बंदर। पाइ प्रदोष हरष दसकंधर ॥
मुरुछित देखि सकल कपि बीरा। जामवंत धाएउ रनधीरा ॥६॥

अर्थ : हनुमान् आदिक वीरों को मूर्च्छित करके प्रदोष का समय पाकर रावण हर्षित हुआ। सब वीर बन्दरों को मूर्च्छित देखकर रणधीर जामवन्त दौड़े।

व्याख्या : रावण के बाणों के आघात से हनुमान् आदिक वीर मूर्च्छित हो

गये। तब से सन्ध्या हो चली। प्रदोष काल के आते ही राक्षसो का बल बढता है। इसलिए रावण हर्षित हुए। बूढे जाम्बवान् तबतक नही बोलते जबतक देखते हैं कि अपने ओर के वीर लड रहे हैं। जब देखते है कि अपनी ओर से कोई लडनेवाला नही रह गया तब उठते हैं और करामात कर दिखाते हैं। मेघनाद द्वारा सबके मूर्च्छित होने पर जाम्बवान् जी उठे थे। अब रावण द्वारा सबके मूर्च्छित होने पर रणधीर जाम्बवान्जी दौडे।

सग भालु भूधर तरु धारी। मारन लगे पचार पचारी ॥
भयेउ क्रुद्ध रावनु बलवाना। गहि पदि महि पटकै भट नाना ॥७॥
देखि भालुपति निजदल घाता। कोपि माझ उर मारेसि लाता ॥८॥

अर्थ साथ मे भालु पहाड और पेड लिये हुए उसे ललकारकर मारने लगे। रावण बलवान् क्रुद्ध हुआ और पैर पकडकर बहुत से भटो को पटकने लगा। भालुपति ने अपनी सेना का वध देखकर क्रुद्ध होकर बीच हृदय मे लात मारी।

व्याख्या जाम्बवान्जी के साथ भालुओ की सेना पहाड और वृक्ष लिये चली। जाम्बवान्जी की सेना अलग है। उसमे भालु ही भालु हैं। वन्दर एक नही। ये बाणो की परवाह न करके रावण के पास पहुँच गये। भालु लोग ललकार ललकारकर रावण को वृक्षो और पर्वतो से मारने लगे। बाण दूर से चलता है। निकट आ जाने पर बाण नही चल सकता। रावण बडा बलवान् है उसने धनुष रख दिया और क्रुद्ध होकर भालुओ का पैर पकड पकडकर पृथिवी पर पटकने लगा। जाम्बवान् ने देखा कि यह मेरी सेना का सहार ही कर डालेगा। सो क्रोध करके उसके रथ पर चढ गये और उसके बीच हृदय मे लात मारा।

छं[1] उर लात घात प्रचड लागत बिकल रथ ते महि परा।
गहे भालु बीसहु कर मनहु कमलन्ह बसे निसि मधुकरा ॥
मुरुछित बिलोकि बहोरि पदहति भालुपति प्रभु पहि गयो।
निसि जानि स्यदन घालि तेहि तब सूत जतनु करत भयो ॥

अर्थ लात का प्रचण्ड आघात लगते ही विकल होकर रथ से पृथिवी पर गिरा। बीसो हाथो मे भालुओ को पकडे हुए जैसे भौरे रात के समय कमल मे बस गये हो। मूर्च्छित देखकर फिर लात मारकर जाम्बवान्जी प्रभु के पास चले गये। रात आयी देखकर सारथि उसे रथ पर लादकर उपाय करने लगा।

व्याख्या जाम्बवान्जी के लात का आघात ऐसा प्रचण्ड लगा कि रावण छटपटाता हुआ रथ से पृथिवी पर आ पडा। फिर भी भालुओ को बीसो हाथो से पकडे हुए था। भालू की सेना उसके रथ पर आक्रमण कर रही थी और वह बीसो

---

१ हरिगीतिका छन्द है।

हाथो से भालुओ को पकड पकडकर पृथिवी पर पटक रहा था। उसी समय उसे लात लगी और वह भालुओ को पकडे हुए गिरा। उसी की उपमा कवि देते हैं कि मानो कमलो मे रात को भौंरे बस गये हो। रावण के हाथ कमल वन से उपमित है और भालु भौरो से।

रावण के गिरने पर जाम्बवान् ने दूसरी लात फिर लगायी। जिसमे ये कुछ देर के लिए लेटे रहे और सेना विश्राम करे तब जाम्बवान् सरकारके पास चले गये। इधर से मूर्च्छित वीर के बन्दी करने का यत्न कभी नही किया जाता। रावण के सारथि ने देखा कि रात हो गयी। अत उसने रावण को रथ पर लाद लिया और उसकी रक्षा का उपाय करने लगा।

दो मुरुछा बिगत भालु कपि सब आये प्रभु पास।
निसिचर सकल रावनहिं घेरि रहे अति त्रास ॥९८॥

अर्थ . मूर्च्छा बीत जाने पर सब बन्दर भालु प्रभु के पास आये सब राक्षस रावण को अत्यन्त त्रस्त होकर घेरे रहे।

व्याख्या सब बन्दर भालुओ की मूर्च्छा गयी और वे सरकार के पास आगये पर रावण की मूर्च्छा नही गयी। सूत उन्हे उसी दशा मे लका ले गया। अब राक्षसो के आधार एक मात्र रावण रह गये हैं। उनकी दशा चिन्तनीय है। क्या जाने मूर्च्छा से उठते हैं या नही। अत अत्यन्त त्रस्त होकर राक्षस लोग रावण को घेरे रहे।

सीता विलाप

तेही निसि सीता पहिं जाई। त्रिजटा कहि सब कथा सुनाई॥
सिर भुज बाढि सुनत रिपु केरी। सीता उर भै त्रास घनेरी ॥१॥

अर्थ उसी रात को सीताजी के पास जाकर त्रिजटा ने सब कथा कह सुनायी। शत्रु के सिर और भुजा की वृद्धि की बात सुनने से सीताजी के हृदय मे बडा भय उत्पन्न हुआ।

व्याख्या त्रिजटा ने ही सपना सुनाया था। यथा यह सपना मैं कहौं पुकारी। होइहि सत्य गये दिन चारी। उसी की पूर्ति होते देखकर उसी रात को जिसमे रावण मूर्च्छित पडा था और राक्षस लोग उसे घेरे खडे थे। त्रिजटा सीताजी के पास गयी और युद्ध की सब कथा सुनायी कि कुम्भकर्ण मारा गया। मेघनाद मारा गया। अब रावण स्वय युद्ध कर रहा है। रामजी उसके सिर और भुजाओ को काटे जा रहे हैं और उसे नये सिर और भुजाएँ निकलती जा रही हैं। इस समय तो जाम्बवान् के आघात से मृतप्राय लङ्का मे पडा हुआ है। उपचार हो रहा है। इत्यादि सब बातें सुनायी।

सीताजी ने जब सुना कि शत्रु के सिर भुजा कटने पर नयी सिर भुजाएँ

निकल रही हैं। तब तो सीताजी बहुत डर गयी। जिसे सिर कटने पर नया सिर निकले उसकी मूर्च्छा से क्या हानि होगी ? और वह मर ही कैसे सकता है।

मुख मलीन उपजी मन चिंता। त्रिजटा सन बोली तब सीता॥
होइहि काह कहसि किन माता। केहि बिधि मरिहि बिस्वदुखदाता॥२॥

अर्थ उनका मुख मलीन हो गया और मन मे चिन्ता उत्पन्न हो गयी। तब सीताजी त्रिजटा से बोली कि हे माता! क्या होगा ? यह तू क्यो नही बतलाती। यह विश्व दु खदाता किस विधि से मरेगा ?

व्याख्या कुम्भकर्ण मेघनाद वध कथा से मुखकमल खिल उठा था। सो रावण के सिर भुजा बढने की कथा सुनने से मलीन हो गया। हृद्गत भाव का प्रभाव तुरन्त मुख पर पडता है। मन मे चिन्ता उत्पन्न हुई। इसी से मुख मलीन हो गया। तब सशय निवारण के लिए सीताजी ने त्रिजटा से कहा।

त्रिजटा से उन्होने माता का नाता मान रक्खा है और उसकी भविष्यद् वाणी पर विश्वास करती है इसलिए उसे माता सम्बोधन करके पूछती हैं कि तूने जो कथा कही उससे इतना ही मालूम हुआ कि युद्ध मे क्या क्या हुआ। पर तूने यह नही बतलाया कि होगा क्या ? यह रावण मुझ ही को नही दु ख देता यह विश्वभर को दु ख देता है। भूतद्रोही है। यह कैसे मरेगा ?

रघुपति सर सिर कटेहु न मरई। बिधि बिपरीत चरित सब करई॥
मोर अभाग्य जियावत ओही। जेहि हौ हरिपद कमल बिछोही॥३॥

अर्थ रघुपति के बाणो से सिर कटने पर नही मरता है। ब्रह्मदेव विपरीत ही सब चरित्र करता है। मेरा अभाग्य उसे जिला रहा है जिसने मेरा हरिचरणो से बिछोह करा रक्खा है।

व्याख्या सिर कटने पर कोई जी नही सकता। यही ब्रह्मदेव का बनाया नियम है। तिस पर रघुपति के बाण अमोघ हैं जिस काम के लिए प्रयुक्त होते हैं उसे बिना किये नही लौटते। यह भी ब्रह्मदेव का नियम है। बिना सिर काटे ही उन्होने कितने राक्षस मारे। सो उनके बाण के कटने से नही मरता। इसके तो सब चरित्र ही विधि के विपरीत हो रहे हैं। स्वय देवता लोग जब अनेक रावण देखकर भागे तो कहना ही पडेगा कि इसके सब चरित विधि विपरीत है।

सामर्थ्य रहते कोई अपना सिर नही कटने देता। जब उसका बल न चला तभी सरकार ने उसका सिर काटा और कोई जिलानेवाला दिखाई नही पडता। तब प्रश्न यह है कि उसे जिलाता कौन है ? कौन ऐसा सामर्थ्यवान् है जो सिर कटे हुए को दूसरा सिर प्रदान करके जिला दे ? तो मुझे तो ऐसा सामर्थ्यवान् अपना अभाग्य ही दिखलाई पडता है जिसने सरकार के चरण से मेरा बिछोह करा दिया। सूर्य से प्रभा को पृथक् कर दिया। चन्द्रिका को चन्द्र से बिछोह करा दिया।

जेहिं कृत कपट कनक मृग झूठा । अजहुँ सो दैव मोहिं पर रूठा ॥
जेहिं बिधि मोहिं दुख दुसह सहाए । लछिमन कहुँ कटु बचन कहाए ॥४॥

अर्थ : जिसने सोने का झूठा कपट मृग बनाया वह दैव अब भी रूठा हुआ है। जिस विधि ने मुझे दुःसह दुःख सहाये। लक्ष्मण को कटु वचन कहलाया।

व्याख्या : पूर्व जन्म के किये हुए कर्म को ही दैव कहते हैं। वही भाग्य कहलाता है। उसी ने सोने का झूठा मायामृग बनाया। नहीं तो, कहीं सोने का मृग होता है ? असम्भवं हेममृगस्य जन्म। उसे जिस दैव ने कर दिखलाया मालूम होता है कि इतना दुख देने पर भी वह सन्तुष्ट नहीं हुआ। अब भी मुझ से रूठा हुआ है।

कर्म तो जड़ है स्वयं फल देने में असमर्थ है। सुभ अरु असुभ कर्म अनुहारी। ईस देइ फल हृदय बिचारी। अतः जिस कर्म फलदाता विधि ने मुझ से ऐसे बड़े दुःख को सहवाया। मैं वियोग के बचन नहीं सह सकती थी। सो मैंने इतने दिन का वियोग कैसे सहा ? विधि में ही यह सामर्थ्य है कि इतना दुःख मुझसे भोगवाया। इतना ही नहीं लक्ष्मण ऐसे देवर क्या कटु वचन कहने के पात्र हैं। क्या मैंने अपने होश में लक्ष्मण को कटु वचन कहा ? केवल उस बलवान् दैव की प्रेरणा से ही मेरे मुख से ऐसे वचन निकल पड़े।

रघुपति बिरह सबिष सर भारी । तकि तकि मार बार बहु मारी ॥
ऐसहु दुख जो राखु मम प्राना । सोइ बिधि ताहि जिआव न आना ॥५॥

अर्थ : रघुपति विरहरूपी भारी विषैले बाण ताक ताककर मुझे कामदेव ने अनेक बार मारे। ऐसे दुःख में भी जो मुझे जिला रहा है वही विधाता रावण को जिलाता है दूसरा नहीं।

व्याख्या : रघुपति विरहरूपी वाण बड़े विषैले हैं। वे सच्चे प्रेमी का प्राण लेकर ही मानते हैं। सो बाण ऐसा विषम और काम ऐसे अद्वितीय धन्वीने निशाना बाँधकर मुझे बार बार मारा और मैं नहीं मरी। उस बाण के मर्मभेदी दुःख में जिसने मेरे प्राण नहीं निकलने दिया। यथा : बिरह अगिनि तनु तूल सरीरा। स्वास जरै छन माहि सरीरा। सो शरीर जलने न दिया। मुझे जिलाया। उस विधाता में ऐसी जिलाने की शक्ति है। दूसरे में नहीं है। अतः वही विधाता उसे जिला रहा है।

बहु बिधि करति बिलाप जानकी । करि करि सुरति कृपानिधान की ॥
कह त्रिजटा सुनु राजकुमारी । उर सर लागत मरै सुरारी ॥६॥
प्रभु ताते उर हतै न तेही । एहि के हृदय बसत बैदेही ॥७॥

अर्थ : कृपानिधान की याद करके जानकी जी बहुत प्रकार से विलाप करने

---

१. यहाँ निदर्शना द्वितीय अलंकार है।

लगी। त्रिजटा ने कहा कि राजकुमारी ! सुनो यह देवशत्रु कलेजे मे बाण लगे
मरेगा। प्रभु इस कारण से हृदय मे बाण नही मारते कि इसके हृदय मे वे
बसती हैं।

व्याख्या देवता लोग वैदेही के अतिशय दु खित होने का समाचार सरक
को दे चुके हैं। उसी बात को कवि यहाँ दिखला रहे हैं कि वैदेही अनेक प्रका
विलाप करने लगी। जो ऊपर दिखलाया गया है वह तो प्रादेशमात्र है। जित
कृपानिधानका स्मरण करती हैं उतनी ही व्यथा बढती है और उतना ही विल
करती है।

तब त्रिजटा ने केहि बिधि मरिहि बिस्व दुखदाता। इसका उत्तर देते
कहा कि सिर काटने से वह नही मरेगा। कलेजे मे बाण मारने से मरेगा। सिर क
पर न मरने का कारण है। उसका सिर तो कभी कट चुका है। ये सिर
शिवनिर्माल्य हैं। ये नही घटेंगे। अत इसके मरने की विधि यही है कि इसके कल
मे बाण मारें। तब प्रश्न यह उठता है कि फिर सरकार उसके कलेजे मे बाण
नही मारते ? इसके उत्तर मे कहती है कि उसके हृदय मे जानकी बसती हैं। सरक
इस बात को जानते हैं। इसीलिए हृदय मे नही मारते।

छ एहि के हृदय बस जानकी जानकी उर मम बास है।
मम उदर भुवन अनेक लागत बान सबको नास है॥
सुनि बचन हरष बिषाद मन अति देखि पुनि त्रिजटा कहा।
अब मरिहि रिपु एहि बिधि सुनहि सुदरि तजहि ससय महा॥

अर्थ इसके हृदय मे जानकी बसती हैं और जानकी के हृदयमे मेरा बास
और मेरे हृदय मे भुवननिकाय है। बाण लगने से सब नष्ट हो जायँगे। वचन स
करके मन में बडा हर्ष विषाद हुआ। यह देखकर त्रिजटाने कहा कि अब इस वि
से रावण मरेगा। हे सुन्दरि ! सुनो और बडे भारी सशय का त्याग करो।

व्याख्या तुम्हारा अभाग्य उसे नही जिला रहा है। बल्कि तुम्हारे कारण
वह जी रहा है। सरकार उसके हृदय मे बाण नही मारते कि कही असमय में
महा प्रलय न हो जाय। क्योंकि वे जानते हैं कि इसके हृदय मे जानकी का निवा
है। जिस जानकी के लिए उसका कुम्भकर्ण ऐसा भाई मारा गया। मेघनाद ऐस
बेटा मारा गया। स्वयं उसका अगणित बार सिर कटा और फिर उन्हे देना नह
चाहता। अत स्पष्ट है कि उसके हृदय मे जानकी बसती हैं। मनोमय मूर्ति क
भावना ऐसी दृढ हो गयी है कि उस मनोमय मूर्ति मे और जानकी मे भेद नही र
गया और उसी भाँति जानकी के हृदय मे मेरा बास है और मेरे उदर में असंख
ब्रह्माण्ड हैं। यथा . राम उदर देखेउ जग नाना। यदि मैं बाण मारूँगा तो ये नश्व

ब्रह्माण्ड सब के सभी नष्ट हो जायँगे राम जानकी तो अनादि मिथुन हैं। इनका तो बाण से कुछ होना नहीं है। नश्वर हैं रावण और ब्रह्माण्ड निकाय। सो रावण के साथ ब्रह्माण्डो का नाश हो जायगा। जानकीजी को उसके मरने की सम्भावना सुनकर अतिहर्ष हुआ। पर साथ ही विषाद भी बडा भारी हुआ कि तब तो उसके मरने का उपाय नही के बराबर है। सीताजी को अतिविषण्ण देखकर त्रिजटा फिर बोली कि हे सुन्दरी! अब शत्रु के मरने की विधि सुन लो और बडे भारी सशय को छोड दो। रावण नि सन्देह मारा जायगा।

दो काटत सिर होइहि विकल, छुटि जाइहि तब ध्यान।
तब रावनहि हृदय महँ, मरिहहिं राम सुजान ॥९९॥

अर्थ सिर काटते काटते जब विकल होगा तब ध्यान छूट जायगा और तब रामसुजान उसके हृदय मे मारेंगे।

व्याख्या इस बात पर भी ध्यान करो कि रावण को कितनी भारी वेदना हो रही है। सिर भुज कटने पर दूसरा सिर भुज तो निकलता जाता है। पर सिर भुज कटने की जो अतीव तीव्र वेदना है वह तो हर बार हो ही रही है। यह तो उसी का अपूर्व धैर्य है कि ऐसी दशा मे भी उसके हृदय से तुम्हारा ध्यान नही छूटता। परन्तु यह धैर्य कितने दिनों तक चलेगा। अन्त मे वेदना सहते सहते यह विकल हो जायगा। तब ध्यान भी छूट जायगा। रामजी बडे सुजान हैं। वे जो सिर भुज काटते ही चले जाते हैं इसका भी कुछ तात्पर्य है। जब वे जान लेंगे कि ध्यान छूट गया। तब हृदय मे बाण मारेंगे।

अस कहि बहुत भाँति समुझाई। पुनि त्रिजटा निज भवन सिधाई ॥
राम सुभाउ सुमिरि बैदेही। उपजी बिरह बिथा अति तेही ॥१॥

अर्थ ऐसा कहकर और बहुत प्रकार से समझाकर फिर त्रिजटा अपने घर चली गयी। रामजी के स्वभाव को स्मरण करके वैदेही को अत्यन्त विरह की व्यथा हुई।

व्याख्या : त्रिजटा रामचरण रत थी और विवेक मे निपुण थी। उसने रावण के वध की विधि बतलाने के बाद सीताजी को अनेक प्रकार से समझाया। यथा

हिय नहि मानहु ग्लानि तुम अब बिधि नहि प्रतिकूल।
बैदेही मो कह भयउ सपन सुमगल मूल॥
मृषा होइ नहि सपन मम यह जानै सब कोय।
सोई मोहि दिखात जब जैसी होनी होय॥
लंक दहन निसिचर मरन भई बात सब साँच।
रावन वध की बातहू होइ सकत नहिं काँच॥
बडे बडे जोधा जिते रहे लकगढ माहि।
सब के सर मारें गये जिमि दिन रैन नसाहि॥

कपिदल के योधा कुसल जिसके रक्षक राम।
सो कैसे दसकंठ को नहिं जीतिहिं संग्राम॥
द्वै भुजसे दससीस अरु बारबार भुज बीस।
हरत करत कौतुक समर कुसल कोसलाधीस॥
करि न सकत रावन कछू राम सामुहे आय।
रावन वध अब होइगो बेटी जनि घबराय॥

तत्पश्चात् त्रिजटा अपने घर चली गयी। यह यथावश्यक सीताजी के पास ठहरती थी फिर घर चली जाती थी। पहिले भी यह इसी भाँति घर चली गयी थी। यथा : निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी। वह आश्वासन देने के लिए आजाती थी।

त्रिजटा ने रावण वध की विधि बतलाते हुए रामजी के स्वभाव की चर्चा कर दी। जगत् के हित के लिए वध में विलम्ब कर रहे हैं और स्वयं संकट सह रहे हैं। अब जगदम्बा की मनोवृत्ति रामजी के स्वभाव की ओर लग गयी। अस सुभाउ कहुँ सुनौं न देखौं। केहि खगेस रघुपति सम लेखौं। अतः उनकी विरह व्यथा अधिक बढ़ गयी।

निसिहि ससिहि निदति बहु भाँती। जुग सम भई सिराति न राती॥
करति बिलाप मनहि मन भारी। राम बिरह जानकी दुखारी॥२॥

अर्थ : रात्रि की और चन्द्रमा की बहुत भाँति निन्दा करती है। रात्रि युग के समान हो गयी। बीतती ही नहीं। मन ही मन भारी विलाप कर रही हैं। रामजी के विरह में जानकीजी दुखी हैं।

व्याख्या : बिरही को रात्रि कालरात्रि के समान हो जाती है काटे नहीं कटती। मानो वह युग के समान हो गयी। मन की अवस्था के अनुकूल अल्पकाल भी बहुत बड़ा और बहुत काल भी अल्प सा प्रतीत होता है। बन्दरों को अयोध्या में छः महीने का समय कुछ मालूम ही न हुआ। जात न जान्यो दिवस निसि गये मास षट बीति। और लंका में सीताजी को एक रात्रि युग के समान हो गयी। अतः रात्रि की निन्दा करती हैं। इसी भाँति चन्द्रमा भी विरह में अति दुःखद है। इसलिए उसकी भी निन्दा करती हैं। यथा : संतत दुखद सखी रजनीकर। यद्यपि है दारुन बड़वानल राख्यो है जलधि गँभीर धीर तर। ताहू ते परम कठिन जान्यो ससि तज्यो पिता तब भएउ ब्योमचर। सकल बिकार कोष बिरहिन रिपु काहें याहि सराहत सुरनर। तुलसिदास त्रैलोक्य मान्य भयो, कारन इहै गह्यो गिरिजा बर। कृ० गी० : ३१

पास में सहानुभूति करनेवाला नहीं है। जिससे विरहव्यथा कहे। कहेहू ते कछु दुःख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई। अतः मन ही मन भारी विलाप कर रही हैं। जिसका क्षणभर का विरह सह्य नहीं था। यथा : चालति न भुजबल्ली

बिलोकनि बिरह भय बस जानकी । उसी प्रभु से इतने दीर्घकाल का विरह हुआ । अतः जानकी दुःखी हैं । अतिसय दुखित होत वैदेही । जो देवताओं ने निवेदन किया था उसे यहाँ स्पष्ट करके कवि ने दिखला दिया ।

जब अति भएउ बिरह उर दाहू । फरकेउ वाम नयन अरु बाहू ॥
सगुन बिचारि धरी मन धीरा । अब मिलिहहिं कृपालु रघुबीरा ॥३॥

अर्थ : जब हृदय में अत्यन्त विरह का दाह उठा तब बायीं आँख और भुजा फरकी । सगुन विचारकर मन में धीरज धारण किया कि अब कृपाल रघुबीर मिलेंगे ।

व्याख्या : इस भाँति विरह का दाह जब हृदय में बहुत बढ़ा उसी समय सगुन हुआ । जब से भगवती लङ्का में आयी हैं तब से यह दूसरी बार सगुन हो रहा है । पहिला सगुन सरकार के प्रस्थान के समय हुआ था । यथा : फरकि बाम अंग जनु कह देई । आज वाम नेत्र और बाहु फड़क रहे हैं । स्त्रियों का वाम अंग फड़कना शुभ है और : सगुन प्रतीति भेंट प्रियकेरी । सगुन से प्रिय के भेंट का विश्वास होता है ।

अतः सगुन का विचार करके धैर्य धारण किया । नहीं तो धैर्य छूट गया था । मन में विश्वास हुआ कि अब सरकार से भेंट होगी ।

७६. रावण वध प्रसंग

इहाँ अर्ध निसि रावनु जागा । निज सारथि सन खीझन लागा ॥
सठ रन भूमि छड़ायसि मोही । धिग धिग अधम मंदमति तोही ॥४॥

अर्थ : यहाँ आधी रात को रावण जगा । तब अपने सारथि पर बिगड़ा कि शठ ! तैने मुझसे रणभूमि छोड़ा दी । रे अधम । मन्दमति तुझे धिक्कार है ।

व्याख्या : कवि इस समय लङ्का में जानकीजी के पास हैं । अतः लंका को इहाँ कहते हैं । लंका में रावण की मूर्च्छा आधी रात को बीती । दोपहर तक मूर्च्छित पड़ा रहा । होश में आने पर अपने को लंका में पाया । समझ गया कि यहाँ सारथि ले आया । अब उसे जीने की आशा तो है नहीं पर अपनी वीरता पर धब्बा नहीं लगने देना चाहता । अतः सारथि पर बिगड़ा । कहने लगा कि तू शठ है । मेरा मुख्य काम बिगाड़ दिया । दिखावावाला काम किया । रणभूमि न छोड़ना ही वीर का मुख्य काम है । वीर को रणभूमि इतनी प्रिय होती है कि उसी का आलिङ्गन करके महानिद्रा को प्राप्त होते हैं । उसे तूने छुड़ा दिया । तू अधम और मन्दमति दोनों है । इसलिए तुझे बार बार धिक्कार है । तू अधम है । क्योंकि इस क्षणभंगुर जीवन को ही सब कुछ मानता है । तू मन्दमति है । अवसर चूक गया । प्राण संशय के समय रथी को मरने के लिए घर लाना मन्दमति का काम है । तुझे अपना प्राण प्यारा था तो तू चला आता । मुझे रणभूमि से यहाँ क्यों लाया ?

तेहिं पद गहि बहु बिधि समुझावा। भोर भए रथ चढ़ि पुनि धावा ॥
सुनि आगवनु दसानन केरा। कपिदल खरभर भएउ घनेरा ॥५॥
जहँ तहँ भूधर बिटप उपारी। धाए कटकटाइ भट भारी ॥६॥

अर्थ : उसने रावण का पैर पकड़कर बहुत प्रकार से समझाया। सवेरा होते ही रथ पर चढ़कर दौड़ा। रावण का आगमन सुनकर वानरी सेना में बड़ी खलबली मची। जहाँ तहाँ से पर्वत और पेड़ उखाड़कर कटकटाकर भारी भट दौड़े।

व्याख्या : अपराध के क्षमापन के लिए सारथि ने रावण के पैर पकड़ लिये। शान्त होने पर उसे अनेक प्रकार से समझाया। यथा : मूच्छित प्रभुहि बिलोकि सो अन्यायी रीछेस। कीन्हेसि कठिन प्रहार पुनि करन हेतु नि.शेष। ये अनीतिरत भालु कपि चपल बिगत मर्याद। समर धर्म लंघन करत इनहि न हर्ष बिषाद। याते प्रभुहि चढाइ रथ लै आयों मैं लंक। करहि उचित उपचार सब जामे होइ निशंक। रक्षा मूच्छित पीर की मुख्य सारथी धर्म। लै आयों प्रभु को इहाँ जानिबूझि सब मर्म। रावण ने उसके विनय के औचित्य को मान लिया। पर इस इन्तजार मे रहा कि कब सवेरा हो और मै रणभूमि में जाऊँ। सवेरा होते ही रथ पर सवार होकर दौड़ा। अभी बन्दर तैयार भी नही थे। इतने सवेरे कभी धावा नही हुआ था। यह नहीं समझा था कि रावण की ओर से इतनी मुस्तैदी होगी। कल बानरो का बड़ा भारी मर्दन हुआ था। इसलिए खलबली मची। आज रावण के साथ बड़ी सेना नही है। फिर भी : निज भुजबल मै बैर बढावा। इसी बात पर दृढ़ता किये हुए रथ पर चला आरहा है। भारी भट बन्दर क्रोध करके पर्वत और वृक्ष उखाड़कर दौड़े।

छं.[1] धाए जो मर्कट बिकट भालु कराल कर भूधर धरा।
अति कोपि करहिं प्रहार मारत भजि चले रजनीचरा ॥
बिचलाइ दल बलवंत कीसन्ह घेरि पुनि रावन लियो।
चहुदिसि चपेटन्हि मारि नखन्हि बिदारि तेहिं ब्याकुल कियो ॥

अर्थ : कराल भालु और विकट बन्दर जो पर्वत लेकर दौड़े तो अत्यन्त क्रोध करके मारने लगे। राक्षस भाग निकले। तब सेना को भगाकर बलवान् बन्दरों ने रावण को घेर लिया। चारो ओर से चपेटा मारकर और नखों से खरोचकर उसे व्याकुल कर दिया।

व्याख्या : पहिले जो भट भारी कहा था उसीको स्पष्ट करते हैं कि विकट बन्दर और कराल भालु पहाड़ हाथ में लेकर दौड़े। उन्होने निश्चय कर लिया कि पहिले इसकी जो कुछ बची बचायी सेना है इसे मार भगाया जाय। तब रावण पर प्रहार किया जाय। अत. पहिले सेना पर टूटे और पत्थरों का ऐसा प्रहार किया कि

---

१. हरिगीतिका छन्द। यह लड़ाई वर्षा का अन्तिम नक्षत्र स्वाती है।

मे धनुष बाण लिये हुए हैं जिसमे उनसे कोई भाग कर भी न बच सके। योगिनियाँ प्रकट हुईं। वे मार-काट के लिए तलवार और एक हाथ मे नरकपाल लिये हुए थी। उसमे भर भरकर ताजा खून पीती और आनन्द से नृत्य कर रही थी और रावण का गुणगान करती थी कि बडे उपकारी हैं। हम लोगो को आवाहन करके बुलाया है। यहाँ खान पान का बडा सुभीता है। रक्त मांस की बहुतायत है।

[1]छ धरु मारु बोलहि घोर। रहि पूरि धुनि चहुँ ओर॥
मुख बाइ धावहि खान। तब लगे कीस परान॥
जहँ जाहि मर्कट भागि। तहँ बरत देखहि आगि॥
भए बिकल बानर भालु। पुनि लाग बरखै बालु॥

अर्थ घोर शब्द मे धरो मारो बोलती थी। यह ध्वनि चारो ओर भर गयी। जहाँ बन्दर भागकर जाते हैं वहाँ आग जलती देखते हैं। वानर भालु विकल हो गये। फिर बालू बरसने लगा।

व्याख्या पहिले तो बन्दरो को देखकर गायी नाची। अब लगी: धरु मारु बोलने सो बडे घोर रव से सब दिशायें प्रतिध्वनित हो उठी। अब बन्दरो की ओर उन्मुख हुईं। अब तक बन्दर लोग हिम्मत किये हुए डटे रहे। तलवार लिये हैं परन्तु मारती नही। धरु मारु धुनि कर रही हैं पर न किसी को मारती हैं न काटती हैं। दृश्य भयानक अवश्य है पर वास्तविक हानि कुछ नही थी। अत बन्दर भागे नही पर जब मुख फैलाकर खाने दौडी तब तो बन्दर भागे। इतना बडा मुख फैलाया कि एक ही ग्रास कर जायँ। माया से सबके आँखो पर पट्टी बँधी हुई है। जहाँ बन्दर भालु भागकर जाते हैं वहाँ आग जलती हुई देखते हैं। बन्दर कभी आग छूते नही बहुत डरते हैं। भालु को तो बडे बडे बाल होते हैं। वे भी बहुत डरते हैं। बन्दर भालु विकल हुए कि कहाँ जायँ। तब से बालू रेत की वर्षा होने लगी। आँख नही खोल सकते दम घुटा जाता है। पता नही कि सेना का क्या हाल है। सबको योगिनियाँ खा गयी कि कोई बचा भी है। अभी तक तो मैं बचा हूँ पर कितने देर तक बच सकूँगा। यह दशा बन्दर भालुओ की हुई।

छ. जहँ तहँ थकित करि कीस। गर्जेउ बहुरि दससीस॥
लछिमन कपीस समेत। भए सकल बीर अचेत॥
हा राम हा रघुनाथ। कहि सुभट मीजहि हाथ॥
एहि बिधि सकल बल तोरि। तेहि कीन्ह कपट बहोरि॥

अर्थ. बन्दरो का जहाँ तहाँ स्थगित करके फिर रावण गर्जा। लक्ष्मण और

---

१ यह तोमर छन्द है।

सुग्रीव के सहित सब वीर अचेत हो गये। हा राम ! हा रघुनाथ ! कहकर सब वीर हाथ मलते थे। इस प्रकार से सबका बल तोड़कर उसने फिर माया की।

व्याख्या : जो बन्दर जहाँ थे वे वहीं थककर बैठ गये। तब रावण गर्जे कि है किसी में दम ? कहाँ गये चपेटा मारनेवाले ? और किसकी बात कही जाय। सभी वीर अचेत हो गये। लक्ष्मण और सुग्रीव की भी वही दशा हो गयी। हा राम ! हा रघुनाथ ! कह रहे हैं। मरती समय सरकार का दर्शन भी नहीं पा सकते। क्या करें आँखों में बालू भरा हुआ है। यदि देख पाते तो इस गर्जन का उत्तर देते। कुछ करते नहीं बन रहा है। इसलिए हाथ मलते हैं। इस भाँति सब सेना भंग कर दिया। सबका बल तोड़ दिया। पर सरकार पर माया कुछ काम नहीं कर रही है। अतः उसने फिर माया की।

छं. प्रगटेसि विपुल हनुमान। धाए गहे पाखान ॥
तिन्ह रामु घेरे जाइ। चहुँ दिसि बरूथ बनाइ ॥
मारहु धरहु जनि जाइ। कटकटहिं पूँछ उठाइ ॥
दह दिसि लँगूर बिराज। तेहि मध्य कोसलराज ॥

अर्थ : उसने बहुत से हनुमान् प्रकट किये जो पत्थर लेकर दौड़े। उन्होंने रामजी को जाकर घेर लिया। चारों ओर सेना बना ली। मारो पकड़ो भाग न जाने पावे ऐसा कहते हैं और पूँछ उठाकर कटकटाते हैं। दसो दिशाओं में पूँछें शोभा दे रही थी। उनके मध्य में रामजी थे।

व्याख्या : यह समझकर कि हनुमान्‌जी ही वानरी सेना के प्राण है। इन्हीं का रामजी को भी बड़ा भरोसा है। जब बहुत से हनुमान् को अपना विरोध करते देखेंगे तो इनका भी साहस छूट जायगा। अतः उसने बहुत से हनुमान् प्रगट किये। वे पत्थर ले-लेकर दौड़े और अपनी सेना बनाकर रामजी को चारो ओर से घेर लिया। भाव यह कि तुम्हारा एक हनुमान् इतने हनुमानों के सामने क्या करेगा ? और वे हनुमान् पूँछ उठाकर कटकटा रहे हैं और कहते हैं कि पकड़ो मारो भागकर निकल न जाने पावे। सरकार रथ पर हैं। अतः दशो दिशायें हनुमानों के पूँछों से घिर गयी। बीच में रामजी हैं और चारो ओर पूँछ ही पूँछ है।

छं.[1] तेहि मध्य कोसलराज सुंदर स्याम तन सोभा लही।
जनु इंद्रधनुष अनेक की बर बारि तुंग तमालही ॥
प्रभु देखि हरष बिषाद उर सुर बदत जय जय जय करी।
रघुबीर एकहि तीर कोपि निमेष महुँ माया हरी ॥

अर्थ : उसके बीच में कोशलाधीश के सुन्दर श्याम शरीर ने ऐसी शोभा पायी

---

१. यह हरिगीतिका छन्द है।

जैसे ऊँचे तमाल वृक्ष को इन्द्रधनुष की बाड लगी हो। सरकार को देखकर देवताओ के हृदय मे हर्ष और विषाद है। वे जय जय-जय कर रहे हैं। रघुवीर ने क्रोध करके एक ही तीर से माया हरण कर ली।

व्याख्या : चारो ओर पूँछो का वर्तुलाकार घेरा है और उसके बीच मे भी सरकार के श्यामसुन्दर शरीर की शोभा हो रही है। कवि उपमा देते हैं कि जैसे ऊँचे तमाल वृक्ष के चारो ओर इन्द्रधनुष की बाड़ लगी हो। वृक्षो के फल को सुरक्षित रखने के लिए उनके चारो ओर काँटो का घेरा बनाया जाता है जिसे बाड़ कहते हैं। यहाँ सरकार का श्यामसुन्दर शरीर ऊँचे, तमाल वृक्ष सा शोभायमान है। ऊँचे रथ पर आरूढ़ होने से, ऊँचे तमाल से उपमित किया और पूँछो के घेरे का इन्द्रधनुष की बाड से उपमित किया।

देवताओ को उस झाँकी के दर्शन से हर्ष हुआ। पर सरकार के घिर जाने से विषाद हुआ। सशयावस्था मे पडे हुए देवताओ ने जय जयकार किया। जिसमे सरकार को अपने स्वरूप का स्मरण हो आवे। इतनी बडी घनी माया हुई है और ये मानो अपने स्वरूप को भूले बैठे हैं। रावण के माया की कार्यकारिता पूरी हो जाने पर सरकार ने एक तीर से क्रोध करके पलक पडने मात्र मे माया हरण कर ली। सरकार के तीर दिव्य हैं ये माया हरण मे भी समर्थ हैं।

[1]छं. माया बिगत कपि भालु हरषे बिटप गिरि गहि सब फिरे।
सर निकर छाँडे राम रावन बाहुँ सिर पुनि महि गिरे॥
श्रीराम रावन समर चरित अनेक कल्प जे गावही।
सतसेष सारद निगम कवि तेउ तदपि पार न पावही॥

अर्थ : माया के दूर हो जाने से बन्दर भालु हर्षित हुए और पेड तथा पर्वत लेकर सब लौटे। रामजी ने बाणो के समूह छोडे जिससे रावण के बाहु और सिर फिर पृथ्वी पर गिरे। श्रीराम रावण का समर चरित्र अनेक कल्पतक जो गान करते हैं बेचारे शेष हो, चाहे शारदा हो, चाहे वेद हो, चाहे कवि हो तथापि वे भी पार नही पाते।

व्याख्या : माया जो हटी तो कही कुछ नही। जैसे कोई घोर दु स्वप्न देखते देखते जाग पडे वैसे हर्षित हुए। जहाँ तक भागे थे वही से लौट पडे और युद्ध की इच्छा से लौटे। अतः पर्वत वृक्ष लिये हुए लौटे।

अब सरकार बाण मारने लगे। रावण के सिर और भुजा फिर पृथिवी मे गिरे। भाव यह कि राम रावण युद्ध फिर आरम्भ हुआ। कवि कहते हैं कि राम रावण युद्ध मे जो जो घटनाएँ हुई उनका वर्णन यदि शेष शारदा वेद तथा कवि सब लोग अनेक कल्प तक करें फिर भी पार नही पा सकते। रामरावणयोर्युद्धं

१. यह हरिगीतिका छन्द है।

रामरावणयोरिव। भाव यह कि राम रावण के युद्ध का अन्त नही, वह प्रत्येक ब्रह्माण्ड और प्रत्येक पिण्ड मे होता रहता है और अनेक प्रकार से होता रहता है। अत उसका पार है ही नही। सभी गान करनेवाले अपने सामर्थ्यानुरूप ही गान करेंगे और सबको कहना पडेगा कि इसका अन्त नहीं चाहे वे शेष शारदा निगम कवि ही क्यो न हो। यथा

वपुष ब्रह्माड सुप्रवृत्ति लका दुर्गरचित मन दनुजमय रूपधारी।
विविध कोषौघ अति रुचिर मन्दिर निकर सत्व गुन प्रमुख त्रैकटककारी॥
कुनप अभिमान सागर भयकर घोर विपुल अवगाह दुस्तर अपार।
नक्र रागादि सकुल मनोरथ सकल सग सकल्प बीची विकार॥
मोहदसमौलि तद्भ्रात अहकार पाकारिजित काम विश्रामहारी।
लोभ अतिकाय मत्सर महोदर दुष्ट क्रोध पापिष्ट विबुधातकारी॥
द्वेष दुर्मुख दभ खर अकपन कपट दर्प मनुजाद मद सूलपानी।
अमित बल परम दुर्जय निसाचर निकर सहित षड्वर्ग गोजातुधानी॥
जीव भवदघ्रि सेवक विभीषन बसत मध्य दुष्टाटवी ग्रसित चिता।
नियम यम सकल सुरलोक लोकेस लकेस बसनाथ अत्यत भीता॥
ग्यान अवधेस गृह गेहनी भक्ति शुभ तत्र अवतार भूभार हर्ता।
भक्त सकष्ट अवलोकि पितु वाक्य कृत गवन किया गहन वैदेहिभर्ता॥
कैवल्य साधन अखिल भालु मर्कट विकट ग्यान सुग्रीव कृतजलधि सेतू।
प्रबल वैराग्य दारुन प्रभजनतनय विषम वन भवन इव धूमकेतू॥
दुष्ट दनुजेस निर्वंसकृत दासहित विस्व दुख हरन बोधैकरासी।
अनुज जानकी सहित हरि सर्वदा दास तुलसी हृदय कमलवासी॥

विनय० पद ५८

दो ताके गुनगन कछु कहे, जडमति तुलसीदास।
जिमि निज बल अनुरूप ते, माछी उडै अकास॥१०१॥
काटे सिर भुज बार बहु, मरत न भट लकेस।
प्रभु क्रीडत मुनि सिद्ध सुर, व्याकुल देखि कलेस॥

अर्थ उनके कुछ गुण जडमति तुलसीदास ने कहे जैसे अपने बल के अनुरूप मक्खी आकाश मे उडती है। बहुत बार सिर भुज कटने पर भी वीर लङ्कापति मरता नही। प्रभु तो खेल करते हैं। पर सिद्ध देवता और मुनि क्लेश देखकर व्याकुल हैं।

व्याख्या जिसके गुण गण का वर्णन शेष शारदा वेद तथा कवि ये विमलमति नही कर सकते उसके कुछ गुणगण जडमति तुलसीदास ने कहे। आकाश अपार है उसका पार गरुड आदि महापराक्रमी भी नही पा सकते। तथापि अल्प पराक्रम मक्खी उडना नही बन्द करती अपने उडान भर उडती है। कवि कहते हैं कि राम के

गुण आकाश की भाँति अनन्त है। उसका पार शेष शारदारूपी गरुड को नहीं मिलता। फिर भी मक्खी की भाँति अपने उडान भर उडा जो वर्णन कर सका सो मैंने वर्णन किया।

त्रिजटा ने कहा था कि सिर काटते काटते जब विकल होगा तब ध्यान छूटेगा परन्तु रावण ऐसा योद्धा है कि उसके सिर कटते जाते हैं असह्य वेदना सहता जाता है पर ऐसा विकल नही होता कि ध्यान छूट जाय। अत मरता नही। सरकार के लिए तो इतने बार का घोर परिश्रम खेल है। पर सुर सिद्ध मुनि सरकार का कठोर श्रम जो सिर काटने मे पड रहा है देखकर व्याकुल हो गये। रावण के कष्ट पर किसी का ध्यान नही है क्योकि उसने कितने सिर अन्यायपूर्वक काटे हैं। उन्ही का फल भोग रहा है।

काटत बढहिं सीस समुदाई। जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई॥
मरै न रिपुस्रम भएउ बिसेखा। राम बिभीषन तन तब देखा॥१॥

अर्थ काटने पर सिर का समूह बढता ही जाता है। जैसे लाभ प्रति लाभ लोभ बढता है। शत्रु मरता नही और परिश्रम बहुत हुआ। तब रामजी ने विभीषण की ओर देखा।

व्याख्या • लाभ के लिए ही लोभ होता है। अत लाभ होने पर लोभ शान्त होना चाहिए पर ऐसा नही होता। जितना लाभ द्वारा लोभ शान्त का प्रयत्न करता जाय उतनी लोभ मे अभिवृद्धि होती ही जाती है। लोभ समाप्त नही होता। वही गति रावण के सिरो की है। उसे सरकार काटते हैं समाप्ति के लिए। पर उनकी समाप्ति नही होती वृद्धि होती ही जाती है।

रावण का शरीर वज्र है। जिस पर टक्कर खाकर पर्वत चूर हो जाते हैं। उसके सिर काटने मे बडा परिश्रम है। सो सरकार काटते काटते थक गये। सिर कटा तहाँ वह व्यक्ति मरा। यहाँ असख्य बार सिर काटा गया पर शत्रु मरता नही है। तब रामजी ने विभीषण की ओर देखा। भाव यह कि विभीषण से सलाह पूछते हैं।

उमा कालु मर जाकी ईछा। सोइ प्रभु जन कर प्रीती परीछा॥
सुनु सर्बग्य चराचर नायक। प्रनतपाल सुरमुनि सुखदायक॥२॥

अर्थ हे उमा! जिसके सकल्प मात्र से काल मर जाता है। सो प्रभु भक्त की प्रीति की परीक्षा करते हैं। हे सर्वज्ञ, चराचरनायक, प्रणतपाल, सुरमुनिसुखदायक! सुनो।

व्याख्या विशेष विशेष अवसर पर शिवजी अपने श्रोता को सरकार का उत्कर्ष कहकर सावधान करते जाते हैं। यहाँ सशय को स्थान है कि रावण ऐसे कीट के वध के लिए स्वय महाप्रभु को विभीषण से उपाय पूछने की आवश्यकता क्यो पडी? क्या उनकी सर्वज्ञता मे कोई त्रुटि है? चराचर नायक सर्वशक्तिमान्

रावणवध में असमर्थ क्यों हो रहे हैं ? अतः शिवजी कहते हैं कि उमा ! सर्वभक्षक काल भी जिसके संकल्पमात्र से मर जाता है। जो काल काल है उसके सामने रावण क्या है ? यहाँ सरकार भक्त की प्रीति की परीक्षा कर रहे हैं कि विभीषण की सर्वात्मना प्रीति मुझ पर है या नहीं। भाई पर प्रीति हृदय में कहीं छिपी तो नहीं पड़ी हुई है ? क्योंकि इसे मालूम है कि रावण सिर कटने से नहीं मरेगा। जिस भाँति वह मरेगा सो उपाय यह जानता है। मुझे कितनी बार सिर काटते हो गया पर यह कुछ नहीं कहता है। अतः पूछकर देख लें कि बतलाता है या नहीं। जिसके ऊपर भक्त की कुछ भी प्रीति हो उसका वध कैसे करें ? सुग्रीव ने भी जब कह दिया : बन्धु न होइ मोर यह काला। तब बालिवध किया। यहाँ भी जब विभीषण स्वयं वध का उपाय बतलावेंगे तब रावण का वध करेंगे। अतः विभीषणजी की ओर देखा।

विभीषणजी आशय समझ गये। उत्तर देते हैं कि सरकार सर्वज्ञ हैं। चराचर नायक हैं। सर्वशक्तिमान् हैं। सब कुछ जानते हैं। सब कुछ कर सकते हैं। मुझे कष्ट न हो इस बात पर इतना ध्यान है। क्योंकि मैं प्रणत हूँ और साथ ही साथ सुरमुनिसुखदायक है सुरमुनि का धैर्य छूट जा रहा है। यथा : प्रभु क्रीडत सुरसिद्ध मुनि व्याकुल देखि कलेस। अतः क्रीडा को अधिक नहीं बढ़ाना चाहते हैं। अतः सुनिये।

नाभिकुंड पियूष बस जाके। नाथ जियत रावन बल ताके॥
सुनत विभीषन बचन कृपाला। हरषि गहे कर बान कराला ॥३॥

अर्थ : इसके नाभिकुण्ड में अमृत बसता है उसी के बल से रावण जीता है। विभीषण के वचन को सुनते ही कृपाल ने हर्षित होकर कराल बाण हाथ में लिये।

व्याख्या : विभीषण साधु हैं। मरने की विधि न बतलाकर रावण के जीने का कारण बतला रहे हैं। कहते हैं कि रावण के नाभिकुण्ड में अमृत बसता है। सभी के शरीर के भीतर के चन्द्रमण्डल से जो सहस्रार में है अमृतस्राव होता है। उसे नाभि में स्थित सूर्य पीते जाते हैं। फिर भी उसी स्राव से मनुष्य जीता है। रावण ने योग्य के विपरीत क्रिया द्वारा सूर्य को ऊपर और चन्द्र को नीचे कर रक्खा है। इसलिए इसके अमृत को सूर्य पी नहीं पाते। वह नाभि देश में इकट्ठा होता जाता है। उसी के बल से रावण जीता है।

सरकार कृपाल हैं। तीनों लोकों पर कृपा करना चाहते हैं। स्वयं रावण पर भी कृपा करना चाहते हैं। क्योंकि अन्यायी का वध उसके कल्याण का कारण होता है। विभीषणजी की सलाह से हर्षित हुए और कराल बाण को हाथ में लिया। जिसके द्वारा रावणवध किया चाहते हैं।

असगुन होन लगे तब नाना। रोवहिं खर सृगाल बहु स्वाना॥
बोलहिं खग जग आरति हेतू। प्रगट भए नभ जहँ तहँ केतू ॥४॥

दस दिसि दाह होन अति लागा। भएउ परब बिनु रबि उपरागा॥
मंदोदरि उर कंपति भारी। प्रतिमा स्रवहिं नयन मग बारी॥५॥

अर्थ : तब नाना प्रकार के अपशकुन होने लगे। बहुत से गीदड़ गधे और कुत्ते रोने लगे। जिनका बोलना अत्यन्त आर्त्ति का कारण है वे पक्षी बोलने लगे। आकाश में जहाँ तहाँ केतु प्रकट हो गये। दसों दिशाओं में दाह होने लगा। बिना अमावस्या के ही सूर्य ग्रहण लग गया। मन्दोदरी का हृदय बहुत काँपने लगा। देवमूर्त्तियों के आँख से जल बह चला।

व्याख्या : सरकार ने इधर हाथ में कराल बाण लिया और उधर अपशकुन प्रकट हुए। रावण अत्यन्त अत्याचारी होने पर भी बड़े महान् व्यक्ति थे। ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसवर्ती नरनारी। उनका मृत्युरूप जो बाण था उसके प्रयोग के समय महा उत्पात सूचक अपशकुन हुए। बहुत से शृगाल खर और श्वान रोने लगे। रावण की युद्धयात्रा के समय भी अपशकुन हुए। पर इतने नहीं। अत्यन्त आर्त्ति के हेतु जिन खगों का बोलना है। यथा : गीध उलूक आदि। वे भी बोलने लगे : जनु काल दूत उलूक बोलहिं बचन परम भयावने। दिन के समय आकाश में केतुओं का उदय हुआ। केतु अनेक हैं। उनकी संख्या लगभग सौ के हैं। उनमें से कोई कभी उदय होते हैं। सो बहुत से प्रकट हो गये। दसो दिशाओं में दिग्दाह होने लगा। आश्विन सुदी नवमी को रावण बध हुआ। न तो उस दिन अमावस्या थी न पूर्णिमा। अतः किसी ग्रहण का योग नहीं था। सो सूर्य ग्रहण लग गया। प्रकृति में विक्षोभ हो गया। सरकार के धनुष के टङ्कार पर ही मन्दोदरी का हृदय काँपा था। सो इस समय अत्यन्त कम्पित हो रहा है। देवता प्रतिमाओं के आँख से जल बह रहा है। यह वैष्णव उत्पात है।

छं.[1] प्रतिमा स्रवहिं पविपात नभ अति बात बहु डोलति मही।
बरषहिं बलाहक रुधिर कच रज असुभ अति सक को कही॥
उतपात अमित बिलोकि नभ सुर बिकल बोलहिं जयजये।
सुर सभय जानि कृपाल रघुपति चाप सर जोरत भये॥

अर्थ : देवप्रतिमाएँ रोती हैं। आकाश से वज्रपात होता है। बड़े वेग से हवा बहती है। पृथिवी काँप रही है। मेघ रक्त, बाल और धूलि की वर्षा कर रहे हैं। अत्यन्त अवर्णनीय अशुभ हो रहे हैं। अगणित उत्पात देख करके आकाश में देवतालोग जय जय बोलने लगे। देवताओं को भयभीत जानकर कृपाल रामजी धनुष पर बाणों को जोड़ने लगे।

व्याख्या : इतने उत्पात एक साथ ही बाण हाथ में लेते ही हुए। आकाश से

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

वज्रपात हुआ। अन्तरिक्ष में वायु अति वेग से वह उठी। पृथिवी पर बादलों ने रक्त बालू और धूलि की वर्षा कर दी। असंख्य उत्पात को एक साथ होते देखकर आकाश में देवता विकल हो उठे कि पृथिवी अराम या अरावण हुआ चाहती है। अतः रामजी के कल्याण के लिए जय जय किया। अथवा सरकार को सूचना देने के लिए जय जय किया कि यही समय है रावणवध का। सो इसे जीतिये। सरकार ने देखा कि देवता भयभीत हो गये। अतः उस बाण को धनुष पर चढ़ाया और उसके साथ अन्य बाणों को भी जोड़ा।

दो. खैंचि सरासन स्रवन लगि, छाड़े सर एकतीस।
रघुनायक सायक चले, मानहु काल फनीस ॥१०२॥

अर्थ : कान तक धनुष खैंचकर एकतीस बाण चलाये। रामजी के बाण कालसर्प की भाँति चले।

व्याख्या : कान तक धनुष को खैंचा, बाण को अधिक गति देने के लिए। पहिले तीस बाण चलाते थे। अब उस कराल बाण के साथ तीस और जोड़े। सब बाणों से पृथक् पृथक् काम लेना है। इसलिए जोड़ने में विधि से काम लेना पड़ा। जब बाण छूटे तो ऐसे चले जैसे कालसर्प चले। ये प्राण लेवेंगे। इसलिए कालसर्प से उपमित किया।

सायक एक नाभि सर सोखा। अपर लगे सिर भुज करि रोषा ॥
ले सिर बाहु चले नाराचा। सिर भुज हीन रुण्ड महि नाचा ॥१॥

अर्थ : एक बाण ने नाभि में के कुण्ड को सोख लिया और क्रोध करके शेष तीस में से दस सिर में लगे और बीस बीस बाण बाहु में लगे। सिर और बाहु को लेकर नाराच चले। सिर और भुजा से हीन होकर धड़ पृथिवी पर नाचने लगा।

व्याख्या : विभीषणजी ने बतलाया था कि : नाभि कुण्ड पियूष बस जाके। नाथ जियत रावण बल ताके। सो उस कुण्ड को उस कराल बाण ने सोख लिया। शेष तीस सिर और बाहों में लगे और उन्हें काटकर ले चले। शरीर में प्राण भरा हुआ है गिरा नहीं और युद्ध का प्रयत्न कर रहा है। अतः बिना सिर भुजा के रुण्ड पृथिवी पर नाच रहा है। सरकार के बाण सजीव हैं। सरकारी प्रेरणानुसार कार्य करते हैं।

धरनि धसै धर धाव प्रचंडा। तब प्रभु सर हति कृत जुग खंडा ॥
गर्जेउ मरत घोर रव भारी। कहाँ रामु रन हतौं प्रचारी ॥२॥

अर्थ : प्रचण्ड धड़ के दौड़ने से पृथिवी धँसने लगी। तब प्रभु ने बाण मार कर दो टुकड़े कर दिये। मरते समय घोर ध्वनि से गर्जन किया। राम कहाँ हैं? ललकारकर रण में मारूँगा।

व्याख्या : पहिले धड़ नाचा फिर दौड़ने लगा । पूर्वाभ्यासानुसार कार्य हो रहा है । प्रचण्ड धड़ है : सेषकमठ सहि सकें न भारा । सो पृथिवी धँसने लगी । तब सरकार ने उसे काटकर दो टुकड़े कर दिया । जिसमें बोझ हलका हो जाय । तब जाकर धड़ गिरा और दौड़ना रुका ।

अब दूसरे प्रकार का मरण कहते हैं । जहाँ सिर नहीं कटता हृदय में बाण लगता है वही वीर चिक्कार करते हैं । अतः जिस कल्प के रावण के सिर न कटे केवल हृदय या नाभि में बाण लगा । वह मरने के समय घोर रव से गर्जा कि कहाँ हैं राम । अभी लड़ाई में ललकार कर मारता हूँ । मरण के समय दृष्टि धुँधली हो गयी है । अतः कहाँ हैं राम कहता है । हृदय में भाव भरा है कि : आज बैर सब लेउँ निबाही । वही मरती समय कहता है : रन हतौ प्रचारी । अन्त समय भगवन्नाम उच्चारण किया । नहीं तो रावण कभी राम ऐसा उच्चारण करते ही नहीं थे ।

डोली भूमि गिरत दसकंधर । छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर ॥
धरनि परेउ द्वौ खण्ड बढ़ाई । चापि भालु मर्कट समुदाई ॥३॥

अर्थ : रावण के गिरने से पृथिवी डोल गयी । समुद्र, नदियाँ, दिग्गज और पहाड़ क्षुब्ध हो उठे । दोनों खण्डों को बढ़ाता हुआ बन्दर भालु के समूह को दबाकर वह पृथिवी पर गिरा ।

व्याख्या : रावण के चलने पर नित्य ही भूकम्प होता था । यथा : तब बलनाथ डोल नित धरनी । अतः उसके धड़ गिरने से पृथिवी डोल गयी और इतने जोर से डोली कि समुद्र, नदी, दिग्गज, पहाड़, सभी चञ्चल हो गये ।

धड़ के दो टुकड़े होने पर भी उनमें बढ़ने का सामर्थ्य है । वे बहुत बड़े होकर गिरे । जिससे बन्दर और भालु के समूह दब गये । जिस भाँति हनुमान्‌जी ने मूच्छित होते हुए शत्रु सेना का नाश किया था । यथा : परतिहुँ बार कटकु संहारा ।

मंदोदरि आगे भुज सीसा । धरि सर चले जहाँ जगदीसा ॥
प्रविसे सब निषंग महु जाई । देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाई ॥४॥

अर्थ : मन्दोदरी के आगे भुजा और सिर रखकर बाण जगदीश के पास चले । सब तरकस में प्रवेश कर गये । देखकर देवताओं ने दुन्दुभी बजायी ।

व्याख्या : लै सिर बाहु चले नाराचा । पहिले कह आये हैं । अब उन्हीं की कथा कहते हैं कि वे उन सिर और बाहुओं को ले जाकर मन्दोदरी के आगे रख दिया और फिर वहाँ से लौट पड़े । सो जहाँ सरकार थे वहाँ आये और निषङ्ग में प्रवेश कर गये । उनका कार्य समाप्त हो गया । सरकार ने इसी भाँति कुम्भकर्ण का सिर रावण के पास भेज दिया था । यथा : सो सिर परा दसानन आगे । भाव यह कि वैर मरणान्त रहता है । मरणान्तानि वैराणि । अतः सिर को और्ध्वदैहिक कृत्य के लिए उसके अधिकारी के पास भेज देते हैं । यदि कोई सती होना चाहे तो उसके लिए सिर मौजूद है । समर भूमि में उसकी रक्षा नहीं हो सकती ।

बाणों ने चार क्रियायें की। पहली यह कि उन्होने सिर काटे। दूसरी यह कि लेजाकर मन्दोदरी के पास रख आये। तीसरी यह कि वहां से रामजी के पास लौट आये और चौथे यह कि आप से आप निषङ्ग में प्रवेश कर गये। देवताओं ने तब समझा कि इसकी वध क्रिया पूरी हो गयी। बाणो के निषङ्ग प्रवेश के समय देवताओ ने दुन्दुभी बजाई कि अब जीत पूरी हुई।

तासु तेजु समान प्रभु आनन। हरषे देखि संभु चतुरानन ॥
जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा। जय रघुबीर प्रबल भुजदंडा ॥५॥
बरषहिं सुमन देव मुनि बृंदा। जय कृपाल जय जयति मुकुंदा ॥६॥

अर्थ : उसका तेज सरकार के मुख मे समा गया। देखकर शिवजी तथा ब्रह्माजी हर्षित हुए। जय जय ध्वनि ब्रह्माण्ड मे भर उठी। प्रबल भुजदण्डवाले रघुवीर की जय। देवता और मुनिगण फूल बरसा रहे हैं। कहते हैं कृपाल की जय हो। मुक्ति देनेवाले की जय हो। जय हो।

व्याख्या : रावण शम्भु चतुरानन का भक्त था। उसके तेज को प्रभु के मुख में समाते देखकर ये देवता प्रसन्न हो गये कि भक्त को परम गति की प्राप्ति हुई और देवता तथा मुनियो का हर्षित होना नही कहते। वे लोग तो आश्चर्य में आगये। यथा : अधम सिरोमनि तव पद पावा। यह हमरे मन बिसमय आवा।

चारों ओर से जयध्वनि हुई। रघुवीर के प्रबल भुजदण्ड का उत्कर्ष है। नही तो रावण के भुजदण्ड के सामने कोई टिकता न था। यथा : भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न स्वतंत्र। देवता और मुनि आकाश में हैं। वही से फूल वरसाते हैं और कहते हैं :

[1]छं. जय कृपाकंद मुकुंद द्वंद हरन सरन सुखप्रद प्रभो।
खलदल बिदारन परम कारन कारुनीक सदा बिभो ॥
सुर सुमन बरखहिं हरष संकुल बाज दुंदुभि गह गही।
संग्राम अंगन राम अंग अनंग बहु सोभा लही ॥

अर्थ : कृपा के बादल मुक्ति के देनेवाले, द्वन्द्व के हरण करनेवाले, शरणागत को सुख देनेवाले समर्थ, खल दल के नाश करनेवाले, परम कारण, कारुणीक और सदा व्यापक की जय हो। देवता सिद्ध मुनि और गन्धर्व हर्षित हुए। गहगही दुन्दुभी बजी। संग्राम भूमि मे रामजी के अङ्गो ने अनेक कामदेव की शोभा प्राप्त की।

व्याख्या : सरकार कृपा के बादल है। कृपा की वृष्टि सब पर करते हैं। प्रेय तो देते ही हैं। श्रेय : मुक्ति भी देते हैं। अभी रावण ऐसे अधम को मुक्ति दिया और संसार सुखी हो गया। सरकार द्वन्द्व का हरण करते हैं। सुख दुःखादि जोड़े

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

ही द्वन्द्व हैं। दु:ख के साथ मे रहनेवाला सुख भी दु ख रूप ही है। महात्माओं का कथन है कि दु ख दु:ख नही है। स्वल्प सुख ही दु ख है। नाल्पे सुखमस्ति यद्वै भूमा तत्सुखम्। अल्प मे सुख नही है। जो टिकाऊ हो उसमे सुख है। अतः भूमा सुख देने के लिए द्वन्द्व का हरण करते हैं। सरकार शरणागतवत्सल हैं और समर्थ हैं। असमर्थ शरणागतवत्सल होने पर भी सुखप्रद नही हो सकता। शरणागत विभीषण को लङ्का का राजतिलक दिया। उसे रावण वध करके पूरा किया। इतना कहकर अवतार का प्रथम कारण साधु परित्राण दिखलाया। अब दूसरा कारण दुष्कृत विनाश दिखलाते हे कि सरकार खल और उसके दल के विदारण के परम कारण हैं। खलदल का विदारण तो लक्ष्मणजी तथा हनुमदादि बीरो ने भी किया। अत' वे कारण हुए। परन्तु परम कारण आप ही हैं। यथा : कपि जयसील राम बल ताते। सरकार कारुणीक हैं। करुणा करके आप ने ही प्रतिज्ञा की थी : निसिचर हीन करौं महि। सो पूरा किया और उन्हे भी करुणा करके परम गति दिया। यथा : उमा राम मृदुचित करुणाकर। बेर भाव सुमिरत मोहि निसिचर। देहि परम गति सो जिअ जानी। अस कृपाल को कहहु भवानी। और यह सब होते हुए भी आपकी व्यापकता मे कोई अन्तर न पड़ा। व्यापक न वाधा देता है, न बाधा पाता है। वह स्थिति सरकार की ज्यो की त्यो बनी रही और अचिन्त्य दिव्यलीला शक्ति द्वारा सब कार्य सम्पादन हो गया।

इस भाँति आकाश मे देवता सिद्ध मुनि और गन्धर्व हर्षित हुए और खूब दुन्दुभी बजी और सग्राम भूमि मे सरकार की ऐसी शोभा हुई कि अङ्ग अङ्ग मे अनेक कामदेवो की छवि छायी हुई थी। यथा : अंग अंग पर वारि अहि कोटि कोटि सत काम।

[1]छ. सिर जटा मुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजही।
जनु नील गिरिपर तडितपटल समेत उडुगन भ्राजही॥
भुजदड सर कोदंड फेरत रुधिर कन तन अति बने।
जनु रायमुनी तमाल पर बैठी बिपुल सुख आपने॥

अर्थ : सिर पर जटा मुकुट है। जिसके बीच बीच मे फूल अत्यन्त सुन्दर शोभायमान हैं मानो नील पर्वत पर बिजलियो का समूह तारागणो के साथ शोभायमान हैं। भुजदण्डो से धनुप बाण फेर रहे हैं। शरीर मे रक्त के बिन्दु ऐसी शोभा दे रहे हैं जैसे बहुत सी रायमुनी पक्षी तमाल वृक्ष पर अपने सुख से बैठी हुई हो।

व्याख्या : अब सरकार की शोभा कहते हैं कि सिर पर जटा का ही मुकुट बना हुआ है और उसमे जहाँ तहाँ सुन्दर फूल गुथे हुए हैं। कवि उपमा देते हैं कि

१ यह हरिगीतिका छन्द है।

जैसे नीलमणि पर्वत पर बिजली का समूह इकट्ठा हो गया हो और बहुत से तारे उतर आये हों। यहाँ सरकार के शरीरकी उपमा नीलमणिके पर्वत से दी गयी है और जटामुकुट की उपमा तडित पटल से दी गयी और मनोहर फूलो की उपमा तारागण से दी गयी। जटा में ऐसी चमक है कि उसकी उपमा सर्वत्र तडित पटल से ही दी गयी है। यथा : मरकत सैल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यौं।

भुजदण्ड से धनुष बाण फेर रहे हैं। सरकार का स्वभाव है। धनुष बाण को सदा ठीक रखने के लिए फेरा करते हैं। यथा : कर कमलन्हि धनु सायक फेरत। जिय की जरनि हरत हँसि हेरत। और क्या कहा जाय सरकार के शरीर पर आजाने से फूलों की शोभा आकाश मण्डल के तारे सी हो गयी। अभी युद्ध समाप्त किया है। अतः शरीर रक्त रंजित है। श्याम शरीर पर उन रक्त बिन्दुओं की भी ऐसी शोभा हुई कि जैसे रायमुनी चिड़ियायें तमाल वृक्ष पर सुख से बैठी हों। हिलती डोलती नहीं। सरकार के शरीर की उपमा तमाल वृक्ष से और रक्त बिन्दुओं की उपमा रायमुनी से दी गयी।

दो. कृपा दृष्टि करि वृष्टि, प्रभु अभय किये सुर वृंद।
भालु कीस सब हरखे, जय सुखधाम मुकुंद ॥१०३॥

अर्थ : कृपादृष्टि की वृष्टि करके प्रभु ने देवगण को अभय किया। बन्दर भालु हर्षित हुए। सुखधाम मुकुन्द की जय हो।

व्याख्या : देवताओं ने सरकार की स्तुति : कृपा वारिधर रूप में की। सो कृपादृष्टि की वृष्टि की। सरकार ने उनकी ओर कृपा करके देखा। सरकार का अवलोकन शोक विमोचन है। यथा : मामवलोकय पंकजलोचन। कृपा बिलोकनि सोच विमोचन। सो देवता लोग अभय हो गये कि जब सरकार की हम पर कृपा है तो फिर भय किसका ? इधर रावण वध के बाद सरकार की वीर रस की झाँकी का दर्शन और उसपर देवताओं द्वारा पुष्पवृष्टि और जय जयकार से बन्दर भालु हर्षित हुए। उन्होंने भी सुखधाम मुकुन्द की जय जयकार किया। बन्दर भालु हैं। बड़ी स्तुति नही कर सकते। फिर भी सारभूत बात कह दिया कि सुखदाता और मोक्षदाता की जय हो।

७७. मन्दोदरी शोक प्रसंग

पति सिर देखत मंदोदरी। मुरुछित विकल धरनि खसि परी॥
जुवति वृंद रोवत उठि धाईं। तेहि उठाय रावन पहिं आईं॥१॥

अर्थ : पति का सिर देखते ही मन्दोदरी विकल और मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर गयी। स्त्रियाँ रोती हुई दौड़ी। उसे उठाकर रावण के पास आयीं।

व्याख्या : मन्दोदरि आगे भुज सीसा। धरि सर चले जहाँ जगदीसा। यहाँ से प्रसङ्ग छूटा हुआ है। फिर वहीं से उठाते हैं। भुजा से पहिचान नही हुआ। पर

खाते हैं। राम विरोधी के लिए यह अनुचित नही है। हे पति ! कालविवश होने से तुमने कहना नही माना। चराचर के नाथ को तुमने मनुष्य जान लिया।

व्याख्या : ब्रह्मा का सब प्रपञ्च ईश्वराधीन है। यथा : ईस अधीन जीव गति जानी। सब तुम्हारे अधीन हो गया था। क्योंकि दिक्‌पाल ईश्वर के बाहुरूप हैं। सो वे ही तुमसे भयभीत होकर सिर झुकाते थे। यथा : दानव देव दयावने दीन दुखो दिन दूरहिं ते सिर नावे। तब तिनके के सदृश अन्य जीवो को क्या गिनती थी। तुम्हारा ऐश्वर्य ऐसा था। अब तुम्हारे सिर और भुजाओ को जम्बुक खाते हैं। भाव यह कि अति दीन हीन के शव को लोग जम्बुक का आहार नही बनने देते। कफन मे लपेटकर सुरक्षित रूप से उसे श्मशान पहुँचाते हैं। तुम्हारे ऐसे ऐश्वर्यशाली की यह गति नही होनी चाहिए थी। पर तुम रामविमुख हो गये। इसलिए इसे अनुचित नही कह सकते : जेहि तन दियो ताहि बिसरायेउ ऐसो निमक हरामी। हे पति ! तुम तो सदा मेरा कहना मान जाते थे। परन्तु कालविवश होने से मेरा कहना भी नही माना। मैंने बार बार समझाया : विस्वरूप रघुबस मनि करहु बचन बिस्वास। हिरण्याक्ष भ्राता सहित मधुकैटभ बलवान। जेहि मारे सोइ अवतरेउ कृपासिंधु भगवान। परन्तु तुमने नही माना। मोहवश तुमने चराचर नाथ को मनुष्य जान लिया। उनका अपमान किया।

छं.[1] जान्यो मनुज करि दनुज कानन दहन पावक हरि स्वयं।
जेहि नमत सिव ब्रह्मादि सुर पिय भजेहु नहि करुनामयं॥
आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमय तव तनु अयं।
तुम्हहू दियो निजधाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं॥

अर्थ : राक्षसो के कुल के दहन करनेवाले अग्नि स्वयं हरि को तुमने मनुष्य जान लिया। जिसे शिव ब्रह्मादि देवता नमस्कार करते हैं उस करुणामय को तुमने नही भजा। जन्म से ही परद्रोह मे तुम रत थे। तुम्हारी यह देह पाप समूहमय है। सो तुम्हे भी अपना धाम दिया। ऐसे निर्विकार ब्रह्म राम को मै नमस्कार करती हूँ।

व्याख्या : राक्षस वन के लिए जो दावानल हैं। जब से अवतीर्ण हुए राक्षस वध करते ही चले आते हैं। खरदूषण बध के समय कह ही दिया : यद्यपि मनुज दनुज कुल घालक। उस अशेष कारण से परे स्वय हरि को तुमने मनुष्य जान लिया। वन का महा वृक्ष जैसे दावानल से खेल करने चले तो उसकी जो गति होती है वही तुम्हारी भी हुई। वे भस्म करनेवाले अग्नि ही नहीं हैं वे बडे करुणामय हैं। ऐसे प्रभु हैं कि उनका शिव ब्रह्मादि देवता भजन करते हैं। सो तुमने उनका भजन नही किया। मैं कहती ही रह गयी : तासु भजन कीजिय तँह भर्ता। जो कर्त्ता

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

पालक संहर्ता। सुत कहँ राज समर्पि बन जाइ भजिय रघुनाथ। फिर भी वे ऐसे करुणामय है कि तुम्हारे सरीखे व्यक्ति को भी जिसका शरीर ही पापमय है जिसने जन्म से ही परद्रोह ही किया उसे भी अपना धाम दिया। ऐसे निर्विकार ब्रह्म को मैं नमस्कार करती हूँ।

दो. अहह नाथ रघुनाथ सम, कृपासिंधु नहिं आन।
जोगि बृंद दुर्लभ गति, तोहि दीन्ह भगवान ॥१०४॥

अर्थ : अहो नाथ ! रघुनाथ के समान दूसरा कौन है। क्योंकि जो योगियों को दुर्लभ परमगति है वही भगवान् ने तुम्हें दिया।

व्याख्या : कृपासिन्धु को रावण ने नहीं भजा। इसलिए खेद प्रकट करती है। कहती है कि ऐसा कृपासिन्धु कौन होगा ? तुम क्या ऊर्ध्वगति के पात्र थे ? तुम्हें गति देने की इच्छा या सामर्थ्य किसे हो सकती थी ? सो भगवान् ने तुम्हे मुनि दुर्लभ परमगति दिया। परमगति की प्राप्ति तो तुम्हें हुई। फिर भी यह पछतावा मुझे रह गया कि ऐसे प्रभु को तुमने भजा नहीं।

मन्दोदरी बचन सुनि काना। सुरमुनि सिद्ध सबन्हि सुख माना ॥
अज महेस नारद सनकादी। जे मुनिबर परमारथबादी ॥१॥

अर्थ : मन्दोदरी के वचन कान से सुनकर देवता मुनि और सिद्धों ने सुख माना। ब्रह्मा शिव नारद और सनक आदि जो श्रेष्ठ मुनि ब्रह्मवादी थे।

व्याख्या : मन्दोदरी का विलाप भी नहीं पुकार भी नहीं बल्कि प्रामाणिक वचन थे। ऐसा वचन कभी ऐसी स्त्री के मुख से नहीं सुने गये जिसका पति मारा गया हो। दूसरे से सुनते तो विश्वास न होता। इसलिए कहते हैं कि अपने कानो से सुनकर सुर मुनि सिद्ध जो विमान पर बैठे रण देख रहे थे सबके हृदय में सुख उपजा।

अज साक्षात् ब्रह्मदेव, नारद अज्ञान के खण्डव करनेवाले, महेश्वर साक्षात् दक्षिणामूर्ति और सनकादि सिद्ध निवृत्त मार्ग के प्रवर्त्तक और भी जो मुनि परमार्थ कथन करनेवाले थे। एक ब्रह्म ही परमार्थ है और सब स्वप्न के तुल्य मिथ्या हैं। इस सिद्धान्तवाले :

भरि लोचन रघुपतिहि निहारी। प्रेम मगन सब भएउ सुखारी ॥
रुदनु करत बिलोकि सब नारी। गयउ बिभीषनु मन दुख भारी ॥२॥

अर्थ : सब लोग छविसमुद्र रामजी को देखकर प्रेम में मग्न होकर सुखी हुए। सब स्त्रियों को रोती देखकर विभीषण के मन में बड़ा दुःख हुआ और वहाँ गये।

व्याख्या : अरूप अस्पर्श अगन्ध का ध्यान करनेवाले छविसमुद्र हरि के रूप को देखकर प्रेम में मग्न होकर सुखी हुए। सुनि गुनगान समाधि बिसारी। सादर

रसम लंका में नही हुई। अतः लंका मे तिलक देने के लिए लक्ष्मणजी को बुलाया। अपना प्रतिनिधि बनाकर लक्ष्मणजी को भेजते है।

लक्ष्मणजी को आज्ञा हो रही है और साथ ही साथ राजा सुग्रीव युवराज अङ्गद सेनापति नील नल ऋक्षेश जाम्बवान् तथा नीतिनिपुण हनुमान्‌जी को भी आज्ञा हो रही है। इन्ही सात में अपनी ओर के सब बड़े बड़े सरदार आगये। अथवा नयशील शब्द का अन्वय सबके साथ है।

सब मिलि जाहु बिभीषन साथा। सारेहु तिलक कहेउ रघुनाथा॥
पिता बचन मैं नगर न आवौं। आपु सरिस कपि अनुज पठावौं॥२॥

अर्थ : सब लोग मिलकर विभीषण के साथ जाओ और इनको तिलक दो। पिता के वचन से मैं नगर मे नही जाता। अतः अपने समान बानर तथा छोटे भाई को भेजता हूँ।

व्याख्या : उपर्युक्त छः व्यक्तियों तथा अनुज को सरकार अपने समान मानते है। अतः इनको आज्ञा देते हैं कि तुम लोग नीति मे निपुण हो। ऐसी नीति बर्तना जिसमे लंका निवासी इन्हे राजा माने। रावण वध हो जाने से लका तुम लोगो का विक्रमार्जित राज्य है। जब से तुम लोग जाकर गद्दी न दोगे तब तक प्रजा का सन्देह न जायगा। चलता तो मैं स्वय इन्हे गद्दी देने परन्तु पिताजी का वचन ऐसा है जिसके कारण मै नगर मे नही जा सकता। अतः तिलक देने के लिए अपने प्रतिनिधि रूप से अपने सखा तुम लोगो को भेज रहा हूँ। तुम लोग विभीषणजी को आगे करके लका जाओ।

तुरत चले कपि सुनि प्रभु बचना। कीन्ही जाइ तिलक कै रचना॥
सादर सिंघासन बैठारी। तिलकु सारि अस्तुति अनुसारी॥३॥

अर्थ : बानर सरकार का वचन सुनकर तुरन्त चल पड़े और जाकर तिलक का आयोजन किया। आदर के सहित सिंहासन पर विभीषणजी को बिठाया। तिलक दिया और स्तुति करने लगे।

व्याख्या : यद्यपि आज्ञा लक्ष्मणजी को हुई पर सब सरदार वहाँ पर थे। उन्होने बात सुन ली। लक्ष्मणजी को सरकार की आज्ञा सुनानी न पड़ी। वे लोग चल पड़े। नीतिनिपुण हनुमदादि सरदारो ने अभिषेकोत्सव किया। नगरवासियो को बुलवाया। बड़े सम्मान के साथ विभीषणजी को रावण के सिंहासन पर बिठलाया और सब लोगो ने उनकी स्तुति की। विभीषणजी का भाग्य है कि लक्ष्मण सुग्रीव हनुमदादि उनकी स्तुति करते हैं। अतः विभीषण की सभा रावण की सभा से भी बढकर हुई।

जोरि पानि सबही सिर नाए। सहित बिभीषन प्रभु पहिं आए॥
तब रघुबीर बोलि कपि लीन्हे। कहि प्रिय बचन सुखी सब कीन्हे॥४॥

अर्थ : हाथ जोडकर सबने सिर झुकाये और विभीषण के साथ सरकार के पास आये। तब रामजी ने बन्दरो को बुलाया और प्रिय वचन कहकर सबको सुखी किया।

व्याख्या : सबने हाथ जोडकर सिर नवाया। भाव यह कि हम लोग तुम्हारी आज्ञा मे हैं। हम लोग लका के स्वामी नही स्वामी आप हैं। वह सिंहासन विश्व-प्रणम्य है। आज उस पर साधु विभीषण विराजमान हैं। विभीषणजी ने भी रसम मात्र अदा किया। वहाँ ठहरे नही। सबको साथ लिये सरकार के पास आये। रावण वध के बाद पहिला कार्य सरकार ने यह किया कि विभीषण को राज्य दिया।

अब दूसरा कार्य यह कर रहे हैं कि धन्यवाद देने के लिए वानरो को बुलाया और ऐसा प्रिय वचन कहा जिसे सुनकर वे कृतकृत्य हो गये। तुलसी कहत पुकार के सुनो सकल दे कान। हेमदान गजदान ते बडो दान सनमान।

[1]छ. किये सुखी कहि बानी सुधासम बल तुम्हारे रिपु हयो।
पायो विभीषनु राज तिहुँपुर जस तुम्हारो नित नयो॥
मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परमप्रीति जे गाइहै।
संसार सिंधु अपारपार प्रयास बिनु नर पाइहै॥

अर्थ : अमृत के समान बातें कहकर सबको सुखी कर दिया। कहा कि तुम्हारे बल से मैंने शत्रु को मारा और विभीषण ने राज्य पाया। तीनो लोक मे तुम्हारा यश नित्य नया रहेगा। मेरे साथ जो तुम्हारी शुभ कीर्ति परम प्रेम से गान करेगा वह इस अपार ससारसमुद्र का पार बिना प्रयास ही पा जायगा।

व्याख्या : अमृत राजसम्मानम्। राजा का सम्मान अमृत है। सो सरकार इतना बडा सम्मान करते हैं। कह रहे हैं कि तुम्हारे बल से मैंने शत्रु को मारा। तुम यदि मेरा साथ न देते तो मेरे किये क्या हो सकता था। सो तुम्हारी सहायता से मैं समर सागर पार ही नही गया अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने मे भी समर्थ हुआ। विभीषण ने राज्य पाया। यह यश तुम्हारा इस ससार मे नित्य नया रहेगा। अथवा अपूर्व होगा जो न पहिले हुआ था न पीछे सम्भव है।

अब कीर्तिगान की फलश्रुति कहते हैं कि समुद्र पार होना कठिन व्यापार है। बडे प्रयास से साध्य है और ससारसागर के पार होना तो महा दुस्तर है। महाप्रयास से भी अशक्य है। सो तुम्हारी कीर्ति गान करने से : साथ साथ मेरी भी कीर्ति रहेगी : बिना प्रयास लोग पार पा जावेंगे। सरकार के श्रीमुख से ऐसा कथन करने से यशोगान की महिमा अचल हो गयी।

दो. प्रभु के बचन स्रवन सुनि, नहि अघाहिं कपि पुंज।
बार बार सिर नावहिं, गहहिं सकल पदकंज॥१०६॥

---

१ हरिगीतिका छन्द है।

अर्थ : सरकार के वचन कान से सुनकर बन्दर समूह अघाते नही। बार बार सिर झुकाते हैं और चरणकमल पकड़ते हैं।

व्याख्या : श्रवणामृत वचन है। इससे बन्दर सुनकर अघाते नही है। मालिक ऐसे वचन सेवक से नही कहते। कृतकृत्य होकर बन्दर बार बार प्रणाम करते हैं। सोचते हैं कि प्रात.काल मेरा कोई नाम नही लेता। सो हमारे कीर्तिगान से ससार भवसागर से पार होगा। अब हमारे पार होने मे तो सन्देह ही नही है।

७९. सीता रघुपति मिलन प्रसङ्ग

पुनि प्रभु बोलि लिएउ हनुमाना। लंका जाहु कहेउ भगवाना॥
समाचार जानकिहि सुनावहु। तासु कुसल लै तुम चलि आवहु॥१॥

अर्थ फिर रामजी ने हनुमान्‌जी को बुला लिया और कहा कि लका जाओ। समाचार जानकी को सुनाओ और उनकी कुशल जानकर तुम चले आओ।

व्याख्या : वानरो को भी कृतकृत्य करने के बाद प्रभु ने हनुमान्‌जी को बुलाया सीताजी का समाचार लेने के लिए। हनुमान्‌जी भी वचनबद्ध हो चुके हैं : कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा। निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं। अत हनुमान्‌जी को आज्ञा हो रही है और ये ही जानते भी हैं कि सीताजी कहाँ हैं। आज्ञा हुई कि लका जाओ और विजय का समाचार जानकीजी को सुनाओ। विजय का समाचार मेरी ओर से जाना चाहिए। जब से हमारी ओर से समाचार न जायगा जानकी विश्वास न करेंगी। इतने बड़े आनन्द समाचार सुनाने का श्रेय तुमको ही मिलना चाहिए। साथ न लेते आना। केवल कुशल समाचार लेकर आओ। पहिले भी हनुमान्‌जी को भेजने के समय ऐसी ही आज्ञा हुई थी। यथा : कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आयेहु। रावण ने कहा था . मास दिवस महँ कहा न माना। तौ मैं मारब काढि कृपाना। सो युद्ध मे अधिक समय लग गया। अत कुशल जानने की आवश्यकता है। सरकार ने सीताजी की कुशल जानने के पहिले विभीषण को राज्य और बन्दरो को धन्यवाद देने की आवश्यकता समझी।

तब हनुमंत नगर महुँ आए। सुनि निसिचरी निसाचर धाए॥
बहु प्रकार तिन्ह पूजा कीन्ही। जनकसुता दिखाइ पुनि दीन्ही॥२॥

अर्थ : तब हनुमान्‌जी नगर मे आये। सुनकर राक्षसी राक्षस दौड़े। बहुत प्रकार से उन लोगो ने पूजा की और तब जानकीजी को ले जाकर दिखला दिया।

व्याख्या : आज हनुमान्‌जी प्रच्छन्न वेष से नही गये। हनुमान्‌जी का लका मे जाना घटना विशेष है। इनका नाम लंकाभयंकर है। इसके भ्रम से अंगद के जाने पर कोलाहल मच गया। भयउ कोलाहल नगर मझारी। आवा कपि लंका जेहि जारी। सो कोलाहल तो अब भी हुआ। पर परिस्थिति बदल गयी। कहाँ तो : मारहिं चरन करहिं बहु हांसी। और कहां पूजन के लिए दौडे। राक्षसियाँ अलग दौड़ी

आ रही हैं। राक्षस अलग दौडे आ रहे हैं। पूजन के लिए होड लगी हुई है। पूजक श्रद्धा सामग्री तथा विधि भेद से अनेक प्रकार से पूजा हुई। हनुमान्‌जी को पूछना न पडा। वे सब समझ गये कि सीताजी के लिए आये है। सो सीधे मार्ग से ले जाकर दर्शन करा दिया।

दूरहिं ते प्रनामु कपि कीन्हा। रघुपति दूत जानकी चीन्हा ॥
कहहु तात प्रभु कृपानिकेता। कुसल अनुज कपि सेन समेता ॥३॥

अर्थ हनुमान्‌जी ने दूर से ही प्रणाम किया। जानकीजी ने पहिचान लिया कि रामजी का दूत है। बोली हे तात! बतलाओ कृपानिकेत प्रभु भाई और वानरी सेना के साथ सकुशल तो हैं?

व्याख्या पहिले दर्शन मे प्रणाम तक करने का अवसर नही था। देखि मनहि मन कीन्ह प्रनामा। आज सब बाधायें दूर हो गयी हैं। दूर से ही हनुमान्‌जी प्रणाम करते हैं। भगवती ने दूतरूप से परिचय पाया था। अत प्रणाम करते ही पहिचान गयी कि यह सरकारी दूत है। अत पूछती हैं। पहिले कपिसेना का पता नही था। अत दो की कुशल पूछा था। यथा अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुखभवन खरारी। आज तीन का कुशल पूछती हैं कृपानिकेतकी अनुज की तथा कपिसेना की।

सब बिधि कुसल कोसलाधीसा। मातु समर जीत्यो दससीसा ॥
अबिचल राजु बिभीषनु पायो। सुनि कपि बचन हरष उर छायो ॥४॥

अर्थ कोशलाधीश सब विधि से कुशल हैं। माता! सरकार ने युद्ध मे रावण को जीता। विभीषण ने अटल राज्य पाया। हनुमान्‌जी का वचन सुनकर हृदय मे आनन्द छा गया।

व्याख्या पहिले कुशल पूछने पर कहा था मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। तव दुख दुखी सुकृपानिकेता। एक दुःख था। इसलिए सब विधि कुशल नही कहा। आज किसी प्रकार की चिन्ता या दुःख नही है। इसलिए सब विधि कुशल कह रहे हैं। सेना तथा अनुज की कुशल भी सब विधि के अन्तर्गत है। भगवती को रावण के सिर भुज के बढने के समाचार से बडी चिन्ता थी केहि बिधि मरिहि बिस्व दुखदाता। अत कहते हैं मातु समर जीतेउ दससीसा। और यही समाचार सुनाना भी था। साथ ही साथ हनुमान्‌जी ने यह भी कहा कि विभीषण को अटल राज्य मिला। भाव यह कि रावण का राज्य अटल नही था। उसने छीन छोर कर लिया था। विभीषण को तो सरकार राज्य दे रहे हैं। किसकी सामर्थ्य है कि उसे चलायमान कर सके। विभीषण के हृदय मे सरकार के चरण हैं। ये बातें भगवती ने औरो के मुख से भी सुना था। पर पूरा विश्वास नही था। न जाने किस अभिप्राय से कह रहे हैं। पर हनुमान्‌जी पर पूरा विश्वास है। अत हृदय मे हर्ष भर गया।

छं.[1] अति हरप मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा।
का देउँ तोहि त्रैलोक महुँ कपि किमपि नहि बानी समा॥
सुनु मातु मैं पायों अखिल जगराज आजु न संसयं।
रनजीति रिपुदल बंधु जुत पस्यामि राममनामयं॥

अर्थ : मन मे अत्यन्त हर्ष है। शरीर में रोमाञ्च हैं। आँखो मे आनन्दाश्रु भरे हुए रमा बार बार कह रही हैं कि त्रैलोक्य मे मैं तुझे क्या दूँ। हनुमान् तुम्हारी वाणी के समान तो कुछ भी नही है। माता सुनो मैं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का राज्य आज पा गया। इसमे सन्देह नही है। क्योकि युद्ध मे शत्रु को जीतकर तथा उसकी सेना को जीतकर भाई सहित रामजी को मैं सकुशल देख रहा हूँ।

व्याख्या : कवि ने यहाँ जानकीजी का हर्ष तन मन वचन तीनो से दिखलाया। सात्त्विक भाव होने से तन मे पुलक है। लोचन सजल है। यहाँ पर भगवती जनकनन्दिनी को रमा कहकर उनका ऐश्वर्याधिष्ठात्री देवी होना द्योतित किया। उन्हे त्रैलोक्य के ऐश्वर्य पर अधिकार है। अतः वे कहती हैं कि क्या दूँ। शुभ समाचार देनेवाले को पुरस्कार देने को विधि है। समाचार के सुखद होने के तारतम्यानुकूल पुरस्कार मे भी तारतम्य होता है। अतः कहती हैं कि इस समाचार समान तो त्रैलोक्य मे कुछ भी नही है। अतः जो तुम्हे रुचे सो बोलो।

हनुमान् ने कहा कि माँ! आज तो मुझे तीनो लोको का राज्य मिल गया। *त्रैलोक्य की सब वस्तुयें उसी के अन्तर्गत हैं।* मेरे तो सर्वस्व सरकार हैं। उन्होने रिपुदल जीता इससे मैंने इस लोक का राज्य पा लिया। बन्धुयुत हैं इसलिए पाताल का राज्य पाया और सरकार को अनामय देख रहा हूँ इसलिए स्वर्ग का राज्य पा लिया।

दो. सुन सुत सदगुन सकल तब हृदय बसहुँ हनुमंत।
सानुकूल कोसलपति रहहुँ समेत अनंत॥१०७॥

अर्थ : हे पुत्र हनुमान्! सुनो सब सद्गुण तुम्हारे हृदय मे बसें और अनन्त सहित रामजी तुम पर प्रसन्न रहे।

व्याख्या : हनुमान् की बात सुनकर जगदम्बा ने विचार किया कि अखिल जगत् से बढकर तो अखिल सद्गुण है। अत. हनुमान् को अखिल सद्गुण देना चाहिए। बोली कि सब सद्गुण तुम्हारे हृदय मे निवास करें और भक्तो के सुख देनेवाले लक्ष्मणजी तथा त्रिविध भवशूल के निवारण करनेवाले रामजी की अनुकूलता सदा तुम पर बनी रहे। यथा : तुम्ह कृपाल जापर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिबिध भवसूला।

---

१ हरिगीतिका छन्द है।

अब सोइ जतनु करहु तुम्ह ताता। देखौं नयन स्याम मृदुगाता ॥
तब हनुमान रामपहिं जाई। जनकसुता कै कुसल सुनाई ॥१॥

अर्थ : हे तात ! अब तुम वही उपाय करो जिसमे श्याम और कोमल शरीर रामजी को आँख से देखूँ। तब हनुमान्‌जी ने रामजी के पास जाकर जानकीजी की कुशल सुनायी।

व्याख्या : भाव यह कि यह यत्न भी तुम्हारे ही किये होगा। कार्यं सिद्धिर्हनूमति। कार्य सिद्धि तो हनुमान्‌जी मे ही प्रतिष्ठित है। तुम्हारे यत्न से ही सब हुआ है। कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता। मैंने तुमसे कहा था। सो वह समय तुमने ला दिया। कण्टक दूर हो गया। अब आँख से भी दिखला दो।

सुनकर हनुमान्‌जी चल पडे। प्रणाम भी नही किया। इससे यह द्योतन किया कि अभी लौटता हूँ। आज्ञा हुई थी : तासु कुसल लै तुम चलि आवहु। सो जाकर रामजी से कुशल सुनाया। सन्देश भी सुनाया कि अविलम्ब दर्शन चाहती हैं।

सुनि संदेसु भानुकुल भूषन। बोलि लिए युवराज बिभीषन ॥
मारुतसुत के संग सिधावहु। सादर जनकसुतहि लै आवहु ॥२॥

अर्थ : सन्देश सुनकर सूर्यकुल भूषण ने युवराज अङ्गदजी और विभीषण को बुला लिया और कहा कि हनुमान्‌जी के साथ चले जाओ और आदर के साथ श्रीजनकनन्दिनी को ले आवो।

व्याख्या : कार्य करने मे प्रधानता माँ ने हनुमान्‌जी को ही दिया था। अतः इधर रामजी भी इन्ही को प्रधानता देते हैं। अङ्गद और विभीषण को बुलाकर हनुमान्‌जी के साथ जाने को कहते हैं। कपिसेना को ओर से प्रतिनिधि युवराज अङ्गदजी हैं और राक्षस समाज के राजा विभीषणजी है। इनके लेने जाने से आदर सूचित होगा। सरकार भानुकुल भूषण हैं। कुल की मर्यादा के अनुसार कार्य किया चाहते है। अतः आज्ञा देते हैं कि आदर के साथ लाओ अर्थात् कृसतन सीस जटा एक बेनी : इस वेष मे न लाना। असस्कृत रूप मे पति के पास जाना निषिद्ध है। राजा जनक की बेटी हैं। अत' उसी ठाट बाट से ले आवो।

तुरतहिं सकल गए जहँ सीता। सेवहिं सब निसिचरी विनीता ॥
बेगि बिभीषण तिन्हहि सिखायो। तिन्ह बहुविधि मज्जन करवायो ॥३॥

अर्थ : सब तुरन्त ही सीता जहाँ थी वहाँ गये। देखा कि सब राक्षसी विनय से सेवा कर रही हैं। विभीषण ने जल्दी से उन्हे सिखाया और उन्होने आदर के साथ सीताजी को नहलाया।

व्याख्या : आज्ञा की देर थी। सबको भगवतीजी के दर्शन की उत्सुकता है। तुरन्त ये लोग सीताजी के यहाँ गये। वहाँ जाकर देखा कि राक्षसी सब बडे विनय

ीताजी की सेवा कर रही हैं। त्रिजटा ने पहिले ही कहा था : सीतहि सेइ करो अपना। तब से सब सेवा मे लगी हैं।

भगवती को मज्जन कराना है। अत: निशिचरियो को समझाकर आज्ञा वे सब भी राजमहल की परिचारिकायें हैं। मज्जन शृङ्गारादि कराना ती हैं।

प्रकार भूषन पहिराए। सिविका रुचिर साजि पुनि लाए ॥
र हरपि चढी बैदेही। सुमिरि राम सुखधाम सनेही ॥४॥

अर्थ : बहुत प्रकार से गहने पहनाये और फिर सुन्दर पालकी साजकर लाये। पर वैदेही सुखधाम और स्नेही रामजी को स्मरण करके हर्षित होकर चढी।

व्याख्या : भूषण पहनाने का भी अनेक प्रकार है। उसे सब नही जानते। महल की सेविकायें ही जानती है। मज्जन के बाद भूषण का विधान है। सो ा प्रकार से भूषण पहिराये। तब सरकार के पास ले जाने के लिए सुन्दर की मँगायी।

उस पर सीताजी हर्षित होकर चढी। सरकार के पास जा रही हैं। जब ण ने मारने के लिए तलवार निकाली थी उस समय परम स्नेही रामजी का ण किया था। यथा : सुमिरि अवधपति परम सनेही। आज वह दिन आया है मिलने जा रही है। अतः पुनः सुखधाम स्नेही को स्मरण किया।

ानि रक्षक चहुँ पासा। चले सकल मन परम हुलासा ॥
त भालु कीस सब आये। रक्षक कोपि निवारन धाये ॥५॥

अर्थ : चारो ओर छडी लिये परम उल्लास के साथ रक्षक चले। रीछ बानर त के लिए आये। तब रक्षक क्रोध से रोकने दौड़े।

व्याख्या : चारो ओर वेत्रपाणि : चोबदार रक्षक चले। उनके मन मे भी हुलास है कि जन्म भर तो राक्षसियो की सेवा मे बीता। भला इतनी सेवा ाती के भी करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इनका कार्य है कि कोई उचित दूरी धिक सवारी के निकट न आने पावे। इधर जगज्जननी के दर्शन की भालु रो को बडी अभिलाषा है। सो सवारी आते देखकर भगवती के दर्शन के लिए की वे निकट चले गये। रक्षक लोग उनके सन्निकट आने से क्रुद्ध हुए। उन्हे ने के लिए दौडे। जिन भालु बन्दरो ने राक्षसो का संहार किया वे आज ाणि रक्षको के क्रोध करने पर हट रहे हैं।

रघुबीर कहा मम मानहु। सीतहि सखा पयादे आनहु ॥
; कपि जननी की नाईं। बिहसि कहा रघुबीर गोसाईं ॥६॥

अर्थ रामजी ने कहा कि मेरा कहना मानो। सखा! सीता को पैदल ही

ले आवो। बन्दर लोग माता की भाँति दर्शन करें। ऐसा रघुवीर गोसाईं ने हँसकर कहा।

व्याख्या : बात पर जोर देने के लिए सरकार कहते हैं कि मेरा कहना मानो। सीता को पैदल लाओ। सीता को पैदल लाना अति अनुचित समझकर सरकार के प्रथम कथन की उपेक्षा की थी। क्योंकि सखा हैं। कुछ अपने मन की कर ही सकते हैं और ऐसा करने के लिए कारण सुनना चाहते हैं। केवल आज्ञा नही चल सकती।

सरकार हँसे कि मेरी आज्ञा पर प्राण निछावर करनेवाले लोग सीता के पैदल लाने की आज्ञा मानने के अनिच्छुक हैं। अत: कहते हैं कि मेरा कहना मानो बन्दरो को माँ की भाँति देखने का अवसर दो। इनके निकट जाने मे रोक क्यो ?

सुनि प्रभु बचन भालु कपि हरषे। नभते सुरन्ह सुमन बहु बरषे ॥
सीता प्रथम अनल महु राखी। प्रगट कीन्हि चह अंतर साखी ॥७॥

अर्थ : प्रभु का वचन सुनकर भालु बन्दर हर्षित हुए। आकाश से देवताओं ने फूल बरसाये। सीताजी को पहिले अग्नि मे रक्खा था सो अन्त.साक्षी भगवान् उन्हे प्रकट करना चाहते हैं।

व्याख्या : बन्दर भालुओ के मन की बात सरकार ने कही। इसलिए वे हरषे और देवताओ ने स्वामी के सेवक मनोरञ्जन स्वभाव पर प्रसन्न होकर पुष्पवृष्टि की। सीता हरण के पहिले ही सरकार ने सीताजी को अग्नि मे रख दिया था। यथा : तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौं लगि करौं निसाचर नासा। उस आज्ञा को मानकर सीताजी अपना प्रतिविम्ब वहाँ रखकर अग्नि में समा गयी। अत: रावण ने प्रतिबिम्ब रूपा सीता का हरण किया। वही प्रतिबिम्ब रूपा सीताजी आगयी। सरकार सबके अन्त.साक्षी है। उनसे कुछ छिपी नही है। उन्हे विम्बरूपी सीता को अग्नि से बाहर निकालना है और प्रतिविम्ब को बिम्ब मे लय करना है तथा लौकिक कलङ्क का प्रक्षालन करना है। इसलिए जो शत्रु ऐसे समय कह सकते थे वे बातें स्वयं कहने लगे।

दो. तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुरबाद।
सुनत जातुधानी सब लागी करै बिषाद ॥१०८॥

अर्थ : उस कारण से करुणायतन ने कुछ दुर्वाद[१] कहे। जिसे सुनकर सब राक्षसियाँ विषाद करने लगी।

व्याख्या : प्रकट करने के लिए दुर्वाद कह रहे हैं। करुणायतन हैं। कोई दुर्वाद न कह सके। इसलिए अग्नि परीक्षा ले रहे हैं। राक्षसियाँ विषाद करने लगी

---

१. किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति से तुम अपनी सफाई दो . कहना ही दुर्वाद है।

कि ऐसी साध्वी को कह क्या रहे हैं। भगवती के गुण ऐसे हैं कि उनपर राक्षसियाँ मुग्ध हैं।

प्रभुके वचन सीस धरि सीता। बोली मन क्रम वचन पुनीता ॥
लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम्ह वेगी ॥१॥

अर्थ : प्रभु के वचन को सीताजी ने सिर पर धारण किया। मनसा वाचा कर्मणा पुनीत जनकनन्दनी बोली : लक्ष्मण! तुम धर्म के नेगी बनो और शीघ्र अग्नि प्रकट करो।

व्याख्या : प्रभु के वचन सुनकर राक्षसियाँ जो साथ पहुँचाने आयी थी विषाद करने लगी। पर सीताजी ने उनके वचन को सिर पर धारण किया। उन वचनो से ज्ञात हुआ कि यदि तुम शुद्ध हो तो सबके सामने परीक्षा दो। तभी मैं तुम्हें ग्रहण कर सकता हूँ। अशुद्ध होने का आक्षेप ही दुर्वाद है। पराये घर मे इतने दिनो तक रही हुई स्त्री को मैं नही ग्रहण कर सकता। सीताजी ने प्रभु के ऐसे आक्षेप को उचित समझा। प्रभु हैं : इन्हे मेरी परीक्षा लेने का अधिकार है। मैं मनसा वाचा कर्मणा पवित्र हूँ। मुझे परीक्षा लेने से भय क्या? और बिना परीक्षा दिये लौकिक कलङ्क कैसे मिटेगा? अतः लक्ष्मणजी से बोली। यह सीताजी का विवेक है।

लक्ष्मणजी से कहने का भाव यह कि तुम देवर हो। तुम्हे अग्नि देने का अधिकार है। तुम अरणि मन्थन करके अग्नि शीघ्र प्रकट करो। अग्नि प्रकट करने का नेग होता है सो नेग तुम्हे क्या दूँ। तुम्हे धर्म होगा यही नेग है। यह सीताजी की धर्मनिष्ठा है। जल्दी प्रकट करो। इस आज्ञा मे विरह भरा हुआ है। जबतक अग्नि परीक्षा नही हो जाती तबतक सयोग होने पर भी वियोग ही है। सरकार से कुछ न कहकर लक्ष्मणजी से कहना सीताजी की विनम्रता है।

सुनि लछिमन सीता कै बानी। बिरह बिबेक धर्म निति सानी ॥
लोचन सजल जोरि कर दोऊ। प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ ॥२॥

अर्थ : लक्ष्मणजी ने सीता की विरह विवेक धर्म और नम्रता युक्त वाणी सुनी। उनके नेत्रो मे जल भर आया। हाथ जोडा। पर प्रभु से वे भी कुछ कह न सके।

व्याख्या : सीताजी की विरह विवेक धर्म नीति सानी वाणी सुनकर लक्ष्मणजी समझ गये कि ये अग्नि परीक्षा दिया चाहती हैं। उनकी आँखो मे आँसू भर आया कि क्या सीताजी को अग्नि परीक्षा देनी होगी? हनुमान्‌जी से तथा राक्षसियो से सीताजी की सब बातें मालूम होने पर भी क्या अग्नि परीक्षा की आवश्यकता है? अतः कुछ कहना चाहते हैं। परन्तु प्रभु से उन्हे भी कुछ कहने का साहस नही होता। भाव यह कि हनुमान् सुग्रीव आदि भी कहना चाहते थे। पर कह नही सकते थे।

देखि राम रुख लछिमनु धाए। पावक प्रकटि काठ बहु लाए ॥
पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदय हरप नहि भय कछु तेही ॥३॥

अर्थ : रामजी का रुख देखकर लक्ष्मण दौडे। अग्नि प्रकट करके बहुत स काठ ले आये। वैदेही ने जब देखा कि अग्नि प्रज्वलित हो गयी तो उनके हृदय हर्ष हुआ। भय कुछ भी न हुआ।

व्याख्या : लक्ष्मणजी ने रामजी का रुख देखा कि इनकी भी इच्छा है। त दौडे। क्योंकि भगवती की आज्ञा शीघ्रता के लिए है। पहिले अग्नि प्रकट किया परन्तु यहाँ थोडे काठ से काम नही चलनेवाला था। अत. बहुत सा काठ लाये यहाँ ख्याल करने की बात है कि काठतक लाने के लिए बन्दरो को आज्ञा नही द जा रही है। लक्ष्मणजी ही सब कार्य अपने हाथ कर रहे हैं।

पावक प्रबल अर्थात् भस्म करने योग्य अग्नि को प्रज्वलित देखकर सीताज को भय नही है : हर्ष है। दोष युक्त व्यक्ति का अग्नि के समीप जाने का साहस नह होता। एकदम निर्दोष व्यक्ति ही को प्रवेश का साहस हो सकता है। सो यहाँ प्रवेः करने के लिए उत्साह है। जो अशोक वाटिका मे अङ्गार के लिए लालायित थी औ न मिला। अङ्गार के सदृश अङ्गुलीयक को देखकर हर्ष हुआ था। यथा : जनु असो अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ। उसे अग्निराशि की प्राप्ति से भय न होकर ह होने का पर्याप्त कारण है। इस अग्नि से कलङ्क नष्ट होगा। इसलिए हर्ष है। निर्दो हैं। इसलिए भय नही है।

जौ मन बच क्रम मम उर माही। तजि रघुबीर आन गति नाही ॥
तौ कृसानु सबकै गति जाना। मो कहुँ होहु श्रीखंड समाना ॥४॥

अर्थ . यदि मनसा वाचा कर्मणा मेरे हृदय मे रामजी को छोडकर अन्यगा न हो तो हे अग्नि ! तुम सबकी गति जानते हो मेरे लिए चन्दन हो जाओ।

व्याख्या : अग्निप्रवेश के पूर्व संकल्प लेना पडता है और उस सकल्प क रचना बडी सावधानी से की जाती है। जिसमे उससे न्यूनातिरिक्त भाव का द्योत न हो। अत. भगवती सकल्प लेती हैं कि मनसा वाचा कर्मणा रामजी को छोडक मेरे हृदय मे अन्यगति नही है। मनसा यथा : सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहु कि नलनी करइ बिकासा। वचसा यथा : सो भुज कठ कि तव असि घोरा। सु सठ अस प्रवान पन मोरा। कर्मणा यथा : तृन धरि ओट कहति वैदेही।

हे कृशानु ! तुम्हारे कृश अणु होने से तुम सर्वत्र व्याप्त हो। तुम सबकी गा जानते हो। तुम सबको जलानेवाले हो। यदि मनसा .वाचा कर्मणा रघुवीर क छोडकर दूसरी गति न हो तो मेरे लिए चन्दन के समान शीतल हो जाओ। तुम्हार मेरे लिए शीतल होना ही मेरी शुद्धि मे प्रमाण है।

छं.[1] श्रीखड सम पावक प्रवेसु कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोसलेस महेस वंदित चरनरति अति निर्मली ॥

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

प्रतिबिम्ब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महु जरे।
प्रभु चरित काहु न लखे नभ सुरसिद्ध मुनि देखहि खरे ॥

अर्थ : मैथिली जानकीजी प्रभु का स्मरण करके चन्दन की भाँति अग्नि में प्रवेश कर गयी। शिवजी से वन्दित कोशलेश के चरण की अति निर्मल रति की जय हो। प्रतिबिम्ब और लौकिक कलङ्क तो प्रचण्ड अग्नि में जल गये। प्रभु के चरित को कोई लख न पाया। आकाश मे देवता सिद्ध मुनि खड़े देखते ही रह गये।

व्याख्या : प्रभु के चरणों में जगदम्बा का इतना प्रेम है कि अग्निप्रवेश के समय भी प्रभु का स्मरण करती हैं। तत्पश्चात् अग्नि मे उसी भाँति प्रविष्ट हुई जैसे चन्दन मे कोई प्रवेश करे। भाव यह कि कुछ भी उष्णता का अनुभव नही हुआ और अग्निराशि के भीतर चली गयी। चारो ओर ज्वालामाल है और बीच में सीताजी खड़ी हैं। अग्नि का कोई प्रभाव नही पड़ रहा है। ऐसे समय कवि कहते हैं अथवा चारो ओर से सब लोग कहते हैं कि रामजी के महेश वन्दित चरणो के प्रेम की जय हो। चारों ओर से जयजयकार हो रहा है। अब यहाँ पर प्रभु ने चरित्र किया। जिसे किसी ने न लखा। देवता सिद्ध मुनि जो आकाश मे थे और अति उत्सुकता से खड़े होकर यह दृश्य देखते थे वे भी न लख सके। वह चरित्र क्या है उसे वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि यह अद्भुत चरित्र हुआ। यदि प्रतिबिम्ब जल जाय तो कलङ्क नही जलता और यदि कलङ्क जल जाय तो प्रतिबिम्ब नही जलता। यहाँ दोनो ही जल गये और किसी को पता न चला।

बात यह है कि प्रतिबिम्ब और कलङ्क जलनेवाली वस्तु नही है। यथा : घृतपूरन कराह अन्तर्गत ससि प्रतिबिंब लखावै। इधन अनल लगाइ कल्पसत औटत नास न पावै। अतः लक्षणा से यह अर्थ करना पड़ेगा कि नष्ट हो गये। यहाँ जलने का अर्थ लक्षणा से नष्ट होना करना ही पड़ेगा। प्रतिबिम्ब का बिम्ब मे लय हो जाना ही नष्ट होना है और किसी भाँति प्रतिबिम्ब नष्ट नही होता। बिम्बभूता सीता पहिले से ही अग्नि मे थी। उन्ही मे यह प्रतिबिम्बभूता सीता लय हो गयी। अतः प्रतिबिम्ब की पृथक् स्थिति भी नही रह गयी और कलङ्क भी धुल गया। यह प्रभु का चरित्र है : नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न रामसम जान जथारथ।

छं.[1] धरि रूप पावक पानि गहि स्री सत्य स्रुति जग बिदित जो।
जिमि छीर सागर इंदिरा रामहि समर्पी आनि सो ॥
सो राम बाम बिभाग राजति रुचिर अति सोभा भली।
नवनील नीरज निकट मानहुँ कनकपंकज की कली ॥

अर्थ : तब अग्निदेव ब्राह्मण का रूप धारण करके श्रुति विदित सत्य श्री को

१. हरिगीतिका छन्द है।

हाथ पकडे हुए लाकर श्री रामजी को इस प्रकार समर्पित किया जैसे क्षीरसागर ने विष्णु भगवान् को लक्ष्मी समर्पित की थी। सो रामजी के वामभाग मे ऐसी सुशोभित हुईं जैसे नये नीले कमल के पास स्वर्णकमल की कली हो।

व्याख्या ब्राह्मण का रूप धारण किये हुए अग्निदेव निकले। जो लका मे गयी थी वह सत्य श्रुतिविदित लक्ष्मी नही थी। उनका अपहरण हो नही सकता था। अत. जो अपहृत हुई थी वे प्रतिबिम्बभूता थी। अब अग्निदेव उन श्रुतिविदित सत्यलक्ष्मी को लिये हुए निकले। इन्दिरा ' लक्ष्मी तो सनातनी वैष्णवी शक्ति है। फिर भी क्षीरसागर ने जिस भाँति इन्दिरा को विष्णु भगवान् को सुपुर्द किया उसी भाँति अग्निदेव ने भी श्रुतिविदित श्री जनकनन्दिनी को रामजी के सुपुर्द किया। रामजी ने स्वीकार किया। वामभाग मे आसन दिया। भगवती की श्रृंगारित मूर्ति हैं। इसलिए : रुचिर अति सोभा भली ' कहते हैं। उपमा देते हैं कि श्याम गौर जोडी ऐसी विराजमान हुई जैसे श्याम कमल के साथ स्वर्णकमल की कली विराजमान हो। सरकार खिले हुए हैं। इसलिए नवनील नीरज से उपमा दी। भगवती सकुचित हैं। इसलिए कली से उपमा देते हैं।

दो. बरषहिं सुमन हरषि सुर, बाजहिं गगन निसान।
गावहिं किन्नर सुरबधू, नाचहिं चढी बिमान॥
जनकसुता समेत प्रभु, सोभा अमित अपार।
देखि भालु कपि हरषे, जय रघुपति सुखसार॥१०९॥

अर्थ. देवता हर्षित होकर फूल बरसाते हैं। आकाश मे डङ्के बज रहे हैं। किन्नर लोग गा रहे हैं और अप्सरायें विमान पर चढी नाच रही है। श्री जानकी के सहित प्रभु की अमित अपार शोभा है। देखकर बन्दर भालु आनन्दित हो उठे। बोले सुखसार रघुपति की जय हो।

व्याख्या. जगदम्बा जानकीजी को सरकार के सहित विराजमान देखकर देवता हर्षित होकर फूल बरसाने लगे। पहिले जानकीजी के दुःख से दुःखित थे। सरकार से निवेदन भी किया था ' अब जनि नाथ खेलावहु एही। अतिसय दुखित होत बैदेही। पुष्पवर्षा से युगल मूर्ति की पूजा है। किन्नर गन्धर्व गानेवाले देवयोनि हैं। सो उन्होने आनन्दातिरेक से गान आरम्भ किया और स्वर्वेश्या उर्वशी आदि विमान पर ही नाचने लगी। भावार्थ यह कि इस समय आकाश मे भी आमोद प्रमोद हो रहा है।

सरकार की शोभा अपार है। एक एक अग मे अनेक कामदेव की छबि है। यथा : सग्राम अगन राम अग अनग बहु सोभा लही। इस समय साक्षात् लक्ष्मी जानकीजी के साथ होने से अमित अपार शोभा हो गयी। भालु बन्दरो ने युगल मूर्त्ति की झांकी नही देखी थी। आज पहिली बार देख रहे हैं। अत हर्षित हुए। कहने लगे कि सुख के भी सारभूत आनन्द के भी आनन्द देनेवाले रघुपति की जय हो।

तब रघुपति अनुसासन पाई। मातलि चलेउ चरन सिरु नाई ॥

८०. देवस्तुति प्रसंग

आये देव सदा स्वारथी। बचन कहहिं जनु परमारथी ॥१॥

अर्थ : तब रामजी की आज्ञा पाकर मातलि चरणो मे सिर झुकाकर चले। सदा स्वार्थी देवता लोग आये और ऐसी बात बोलते हैं मानो परमार्थी हैं।

व्याख्या : जब सरकार वैदेहीजी के साथ विराजमान हो गये तब मातलि ने जाने के लिए आज्ञा माँगी। इन्द्र का सारथि है। समझता है कि जबतक जानकीजी न आजायँ तबतक कार्य पूरा हुआ नही मानना चाहिए। युद्ध की आशका बनी ही है। पर अब वह आगयी। अब सब पूर्ण हो गया। अत: जाना चाहता है। सरकार ने भी आज्ञा दे दी। मातलि रथ लेकर चले। यद्यपि कृतकार्य होकर जा रहे हैं फिर भी हर्षित नही हैं। आने के समय हर्षित थे। यथा : हरष सहित मातलि ले आवा। सरकार का साथ छोडना उसे भी अखरता है। अतः प्रणाम करके चला।

स्वार्थी तो सब ससार है। पर देवलोक मे सदा स्वार्थ बना रहता है। परमार्थ की ओर इनकी दृष्टि ही नही जाती। भोगातिरेक से उन्हे ज्ञान होता ही नही। अत सदा स्वार्थ परायण रहते है। स्वार्थ पूरा हुआ तो आपहुँचे। नही तो तिन्हहि सोहाइ न अवध बधावा। चोरहि चदिनि रात न भावा। सारद बोलि बिनय सुर करही। बारहि बार पाँव लै परही। बिपति हमारि बिलोकि बडि मातु करिअ सोइ आजु। रामु जाहि बन राजु तजि होइ सकल सुर काज। इनका स्वार्थ ही सर्वस्व है। मित्र शत्रु कोई नही। पर बात परमार्थी की भाँति बोलते हैं।

दीनबधु दयाल रघुराया। देव कीन्हि देवन्ह पर दाया ॥
बिस्व द्रोह रत यह खल कामी। निज अघ गएउ कुमारग गामी ॥२॥

अर्थ : हे दीनबन्धु ! हे दीनदयाल ! हे रघुराया ! हे देव ! आपने देवो पर दया की। यह खल विश्वद्रोहरत और कामी था। कुमार्गगामी अपने ही पाप से गया।

व्याख्या हे रघुराया ! आप दीनबन्धु हैं। सकट के समय उनके सहाय होते हैं। यथा : होहिं कुठाँय सुबन्धु सहायें। आप दयालु हैं। दूसरे के दु ख से दु खी होते हैं। हम लोग रावण के कारण दीन हो रहे थे। यथा मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकजा। सरकार ने भूमि भार हरण करके हम लोगो को निर्भय किया। आप दयालु देव हैं। आपने हम लोगो पर दया की।

यह रावण ऐसा खल था कि विश्व के द्रोह मे सदा लगा रहता था। यह पृथिवी के लिए महारोग रूप हो गया था। दससीस बिनासन बीस भुजा। कृत दूरि महामहि भूरि रुजा। तिस पर कामी था देव यक्ष गन्धर्व नर किन्नर नाग कुमारि। जीति बरी निज बाहुबल बहु सुदर बर नारि। सो अपने पाप से गया। सीताहरण किया और माँगने से दिया नही। कुमार्गगामी इसी भाँति अपने पाप से ही मारे

जाते हैं। उनके मारने के लिए कोई पृथक् प्रयत्न करना नहीं पड़ता। सरकार ने उसे नहीं मारा। उसी ने ही सरकार को मारने के लिए लाचार किया।

तुम्ह समरूप ब्रह्म अबिनासी। सदा एकरस सहज उदासी॥
अकल अगुन अज अनघ अनामय। अजित अमोघसक्ति करुनामय॥३॥

अर्थ : आप समरूप, ब्रह्म, अविनाशी, सदा एकरस, स्वभाव से ही उदासीन, निष्कल, निर्गुण, जन्मरहित, दोषरहित, निर्विकार, अजेय, निष्फल न जानेवाली शक्ति और करुणामय हैं।

व्याख्या : आप तो समरूप हैं। न आपको कोई द्वेष्य है न प्रिय है। देश से काल से आपका परिच्छेद नहीं है। आप में कभी कोई परिवर्तन नहीं होता। इसलिए सदा एकरस हैं। अतः अजन्मा हैं। स्वभाव से ही उदासीन हैं। ससार से सम्पर्क नहीं रखते। आप निरवयव हैं। गुणातीत हैं। आपका जन्म नहीं होता। न आप में कोई दोष है न विकार है। आप जीते नहीं जा सकते क्योंकि आप अमोघ शक्तिरूप हैं। सत्य सकल्प हैं फिर भी करुणामय हैं। भक्तों के लिए अपनी अचिन्त्य लीलाशक्ति द्वारा अवतीर्ण होते हैं।

मीन कमठ सूकर नरहरी। बामन परसुराम बपुधरी॥
जब जब नाथ सुरन्ह दुख पायो। नाना तनु धरि तुमहि नसायो॥४॥

अर्थ : मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन और परशुराम रूप धारण किया। जब जब हे नाथ! देवताओं ने दुःख पाया तब तब अनेक शरीर धारण करके तुमने ही उनका नाश किया।

व्याख्या : आपने मत्स्यावतार धारण करके वेदों का उद्धार किया। कच्छपावतार धारण करके आपने अपने पीठ पर मन्दराचल धारण किया। जिससे समुद्र मन्थन हो सका और देवताओं ने अमृत पाया। वाराहावतार धारण करके आपने देवतापी महा बलवान् हिरण्याक्ष को मारा। नृसिंहावतार धारण करके महा प्रतापी हिरण्यकशिपु का सहार किया। परशुरामावतार धारण करके अन्यायी क्षत्रियों का संहार किया। रामावतार के पूर्व के छः अवतारों का वर्णन करके कहते हैं कि इनके अतिरिक्त सरकार के आवेशावतार विभवावतार आदि सहस्रा अवतार होते हैं। निदान सरकार ही देवताओं के शरण हैं। जब जब देवताओं को दुःख पडा तब तब अनेक शरीर धारण करके आपने ही उन्हें दुःख विनिर्मुक्त किया।

यह खल मलिन सदा सुरद्रोही। काम लोभ मद रत अति कोही॥
अधम सिरोमनि तव पद पावा। यह हमरे मन बिसमय आवा॥५॥

अर्थ : यह मलिन खल सदा देवताओं का द्रोही था। काम लोभ मद में रत था और बड़ा क्रोधी था। वह भी हे कृपालु : आपके धाम में चला गया। इस बात का हम लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ।

व्याख्या अब प्रसक्त सातवाँ अवतार कहते हैं। यद्यपि हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु भी सुरद्रोही थे। पर रावण तो पापमूल सुरद्रोही था। इसकी आज्ञा से धर्म निर्मूल की विधि निर्णय करके शासन चलता था। यथा जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं वेद प्रतिकूला। और सुरद्रोही तो इतना बडा था कि देवताओ को क्षुधाक्षीण बलहीन करके मारना चाहता था। और नरक के चार रास्ते हैं। यथा काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पथ। सो इसने चारो को अपनाया था। अत इसे सद्य नरक प्राप्ति होनी चहिए थी। सो वह सीधे आपके धाम मे चला गया। जहाँ से फिर लौटना नही होता। यह बडे भारी आश्चर्य की बात हुई। आप कृपालु हैं। आपकी करुणा की शक्ति अचिन्त्य है। आप करुणा परवश होकर ही वध करते हैं। जिसमे आपके शररूपी तीर्थ मे शरीर त्यागकर सच्ची गति को प्राप्त हो।

हम देवता परम अधिकारी। स्वारथ रत तव भगति बिसारी॥
भव प्रवाह सतत हम परे। अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे॥६॥

अर्थ हम देवता परम अधिकारी हैं। स्वार्थ परायण होकर आपकी भक्ति को भूले हुए हैं। हम सदा ससार के प्रवाह मे पडे हैं। हे प्रभो अब रक्षा करो। हम शरण आये हुए हैं।

व्याख्या रावण तो राक्षस था इसलिए अनधिकारी था। उससे यदि बिगड गया तो कोई बडी बात नही हुई। हम तो देवता हैं। परम अधिकारी हैं। हमे तो ब्रह्मज्ञानी होना चाहिए। सो हम स्वार्थ मे ऐसे फँसे कि आपकी भक्ति भूल बैठे। स्वार्थान्ध होकर हम लोग वस्तुत सरकार के वनवास के कारण हुए। जिससे अत्यन्त कष्ट सरकार को हुआ अपनी चूक स्पष्ट दिखाई पडती है कि हम भव प्रवाह मे पडे हैं। अत हम लोग शरण मे आये हैं। अब रक्षा कीजिये। पहिले तो स्वार्थवश अपराध किया। अब काम निकलने पर फिर स्वार्थ वशीभूत होकर अपराध क्षमापन के लिए शरण मे पहुँच गये।

यह गुणग्राम विशाखा नक्षत्र है। इसमे चार तारे तोरण की भाँति चमकते है। इसी भाँति इस स्तुति मे भी चार बातें है। १ सरकार ने दया की। २ पहिले भी जब दु ख पडा सरकार सहाय हुए। ३ महा पापी रावण को निज धाम दिया और ४ हम भव प्रवाह मे पडे है हमारी रक्षा हो। ये चार बातें अलग अलग दयारूपी तागे मे गुथी हुई तोरणाकार हैं। अत विशाखा से उपमित हैं। इसकी फलश्रुति है मन्त्र महामनि विषय व्यालके।

दो. करि बिनती सुरसिद्ध सब, रहे जहँ तहँ कर जोरि।
अति सप्रेम तन पुलकि बिधि, अस्तुति करत बहोरि॥११०॥

अर्थ बिनती करके देवता और सिद्ध लोग जहाँ के तहाँ खडे रहे। अत्यन्त प्रेम से ब्रह्मदेव फिर से स्तुति करने लगे।

सरकार के गुणगण ही ऐसे हैं कि सिद्ध मुनीन्द्र कवि को उन्ही के गान करने मे विश्राम मिलता है। यथा विश्रामस्थानमेक कविवरवचसाम्।

सरकार का यश पावन है इसका गान करके मनुष्य भवसागर पार हो जाते हैं। यह रावण बडा भारी क्रूर दुष्ट सर्प था जो प्राणियो के प्राण का नाशक था। जो उद्वेग करनेवाले है वे साँप ही हैं। यथा ये नृशसा दुरात्मान प्राणिना प्राणनाशका। उद्वेजकाश्चभूताना व्याला इव भवन्ति ते। उसे कोई काबू मे न ला सका था। सरकार ने उसे सर्प भक्षक गरुड की भाँति पकड लिया। ऐसी शोभा ऐसा गुण और ऐसा पराक्रम सरकार मे ही है।

जनरजन भजन सोक भय। गत क्रोध सदा प्रभु बोध मय ॥
अवतार उदार अपारगुन। महिभार बिभजन ज्ञानघन ॥३॥

अर्थ : भक्तो को सुख देनेवाले शोक और भय को दूर करनेवाले क्रोध रहित और सदा बोधमय प्रभु हैं। आपका उदार अवतार है। आपके गुण अपार हैं। आप पृथिवी के भार को दूर करनेवाले और ज्ञानघन हैं।

व्याख्या भक्त भगवान् को प्रिय हैं। अत भगवान् जनरञ्जन हैं। आगत और अनागत दु खो के दूर करनेवाले हैं। क्रोध तो कभी करते ही नही। यथा जेहि करुनाकर कीन्ह न कोहू क्योकि सदा बोधमय हैं। जिस काम क्रोध से प्रेरित होकर मनुष्य पापाचरण नही करता वह काम क्रोध नही है। वह काम क्रोधाभास है। अत जहाँ जहाँ पर सरकार का क्रोध दिखलाया गया है वहाँ क्रोधाभास ही समझना चाहिए। क्योकि सरकार बोधमय है। वहाँ क्रोध को स्थान कहाँ ? सरकार के ही अवतार तो अनेक हुए। पर जैसी उदारता इस अवतार मे देखी जाती है वैसी अन्यत्र नही देखी जाती। ब्रह्मदेव को भी सरकार के गुणो का पारावार नही मिलता। अत कहते हैं अपारगुन। परद्रोही पृथिवी के भार है। पृथिवी कहती है गिरिसर सिंधु भार नहि मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही। उनका सहार करके पृथिवी का भार उतारा। अब सरकार का मुख्यरूप कहते हैं कि ज्ञानघन हैं। ठोस ज्ञानरूप है। जिसमे किसी अन्य वस्तु का स्थान नही है।

अज ब्यापकमेकमनादि सदा। करुनाकर राम नमामि मुदा ॥
रघुबस बिभूषन दूषनहा। कृतभूप बिभीषनु दीन रहा ॥४॥

अर्थ आप अज हैं, व्यापक हैं, एक हैं, अनादि हैं, सदा करुणा करनेवाले हैं, मै प्रसन्न होकर नमस्कार करता हूँ। हे रघुवश विभूषण ! आप दूषण के नाश करनेवाले हैं। आपने विभीषण को जो दीन था राजा बना दिया।

व्याख्या आपका जन्म नही होता। क्योकि आप सर्वव्यापक है। अद्वैत हैं और अनादि हैं। जन्म परिच्छिन्न सद्वय और सादि का होता है। हे राम ! आप सदा करुणाकर हैं। आपकी करुणा मे कभी अन्तर नही पडता। क्रोध करते दिखाई पडने पर भी चित्त से करुणा कभी नही हटती। मैं आपको प्रसन्न होकर नमस्कार करता

हूँ। सभीत होकर देवता रावण को भी नमस्कार करते थे। यथा : दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरहि ते सिर नाव। परन्तु आपको आनन्द परिप्लुत होकर मैं नमस्कार करता हूँ।

हे रघुकुल के भूषण आप दूषण के नाश करनेवाले हैं : यहाँ दूषण शब्द श्लिष्ट है। दूषण नामी राक्षस का भी सरकार ने वध किया और दूषण अर्थात् दोष को भी हरण करनेवाले हैं। आपने विभीषण के दीनतारूपी दोष का हरण करके राजा बना दिया।

गुन ग्यान निधान अमान अजं। नित राम नमामि विभु विरजं ॥
भुजदंड प्रचंड प्रताप वलं। खलवृंद निकंद महा कुसलं ॥५॥

अर्थ : गुण और ज्ञान के निधान, अमान, अज, विभु और विरज राम को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ। आपके भुजदण्ड का प्रताप और बल प्रचण्ड है। खल वृन्द के नाश मे आप बड़े कुशल हैं।

व्याख्या : गुण अर्थात् कल्याण गुणगणो के निधान हैं और सम्पूर्ण विद्याओं के निधान हैं तथा आप अमान हैं। आप मे इयत्ता नही है : मीयते इति मानम्। अथवा अभिमान नही है। अभिमान जीव को होता है ईश्वर को नही। यथा : माया वस्य जीव अभिमानी। ईस वस्य माया गुन खानी। आप अजन्मा हैं। व्यापक हैं तथा निर्माय हैं। आपके भुजदण्ड का प्रचण्ड प्रताप और वल है : यथा : असरव पूरि रही नव खडा। जय रघुवीर प्रवल भुज दडा। और खलवृन्द के सहार मे वडे निपुण हैं। ऐसी युक्ति किया कि खलवृन्द आपसे आप आ आकर आपके शरानल मे पतङ्ग हो गये। यथा : कहा अनुज सन सैन बुझाई। लछिमन अति लाघव सो नाक कान बिनु कीन्ह। ताके कर रावन कहँ मनहुँ चुनौती दीन्ह। जिस युक्ति से खल मारे जायँ वैसी युक्ति करके आप उन्हे मार ही डालते हैं। यथा : खरदूषन बिराध वध पडित। रावण सिर कटने पर भी नही मरता था। उसके नाभि कुण्ड सुधा को सर से शोषण करके मारा।

बिनु कारन दीन दयाल हितं। छविधाम नमामि रमासहितं ॥
भवतारन कारन काज परं। मन सभव दारुन दोष हरं ॥६॥

अर्थ : आप बिना कारण ही दीन पर दया करते हैं और कल्याण करते हैं और शोभा के धाम हैं। आपको लक्ष्मी के सहित नमस्कार है। आप ससार से पार करनेवाले हैं और कार्य कारण से परे हैं और मन से उत्पन्न होनेवाले दारुण दोष के हरण करनेवाले हैं।

व्याख्या : बिना कारण ही दीन पर दया करते हैं और उनका हिताचरण करते हैं। यथा : कबहुँक करि करुना नरदेही। देइ ईस बिनु हेतु सनेही। आप शोभाधाम हैं। राक्षसी सूर्पणखा नाक कटने पर भी कहती है : सोभा धाम राम अस नामा। लक्ष्मी के सहित आपको मैं नमस्कार करता हूँ। अथवा छविधाम लक्ष्मी के साथ मैं

आपको नमस्कार करता हूँ। भावार्थ यह कि आप भी छविधाम है और रमारूप सीताजी भी छविधाम हैं। यथा विष्णु चारि भुज बिधि मुख चारी। बिकट बेष मुख पच पुरारी। अपर देव अस कोउ न आही। एहि छवि सखि पटतरिए जाही। तथा गिरा मुखर तन अर्ध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी। विष बारुनी बधु प्रिय जेही। कहिय रमा सम किमि बैदेही।

भवाम्भोधि के सन्तरण चाहनेवाले के लिए आपका चरण ही एकमात्र नौका है। यथा यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावताम्। अत आप भवतारण हैं। आप अशेष कारण से परे हैं। ससार मे कार्य कारण की परम्परा चलती है। घट कार्य है। उसका कारण पृथिवी है। पर पृथिवी भी कार्य है। उसका कारण जल है। पर जल भी कार्य है। उसका कारण अग्नि है। इस भाँति कार्य कारण की परम्परा प्रकृति तक चली जाती है। आप उससे भी परे हैं। यथा प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी।

दु ख का मूल मनोमय जगत् है। ईश्वरकृत द्वैत बन्ध का कारण नही है। जीव ने जो उसमे द्वैत की मानसिक सृष्टि की है वही बन्ध का कारण होती है। ईश्वरकृत स्त्री बन्ध का कारण नही है मनोमयी स्त्री ही बन्ध का कारण है। उस बन्ध से आप ही मुक्ति देने मे समर्थ हैं। इसलिए कहते हैं मन सभव दारुण दु ख हर। अथवा मानस रोग बडे दारुण है। वे किसी भाँति नष्ट नही होते। रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा अतिरूरी। एहि बिधि भलहि सो रोग नसाही। नाहित कोटि जतन नहि जाही।

सर चाप मनोहर त्रोन धर। जलजारुन लोचन भूपवर ॥
सुख मदिर सुदर श्रीरमन। मदमार मुधा ममता समन ॥७॥

अर्थ मन के हरण करनेवाल धनुप बाण और तरकस धारण करनेवाले हैं। लाल कमल से आपके नेत्र हैं। राजाओ मे आप श्रेष्ठ है। आप सुख के घर हैं। सुन्दर हैं। लक्ष्मी के पति हैं। मद मार और झूठी ममता के शमन करनेवाले है।

व्याख्या आपका अच्छेद्य धनुप कराल बाण तथा अक्षय तूणीर सब मन के हरण करनेवाल हैं। भक्त लोग तूण बाण धनुधारी राम को हृदय मे बसाना चाहते है। आपके लाल कमल से सुन्दर नेत्र चक्रवर्ती के चिन्ह है। आप राजाओ मे श्रेष्ठ हैं। अपने चरित्र से राजाओ का धर्मोपदेश करते हैं। ससार सुख का भिखारी है और आप सुख के मन्दिर है। ससार लक्ष्मी का कृपाकटाक्ष चाहता है और आप उनके पति हैं। मोहप्रद मद शोकप्रद काम और बन्धप्रद मिथ्या ममता इन्हे आप नाश करके परम पद देते हैं।

अनवद्य अखड न गोचर गो। सब रूप सदा सब होइ न गो ॥
इति बेद बदति न दतकथा। रबि आतप भिन्न न भिन्न जथा ॥८॥

अर्थ आप अनिन्दित हैं। अखण्ड है। इन्द्रियो के विषय नही हैं। आप सदा

सर्वरूप हैं फिर भी सब हो नही गये हैं ऐसा वेद कहते हैं। दन्त कथा : बकवाद नहीं है। जैसे सूर्य और सूर्य का प्रकाश अलग भी है नही भी है।

व्याख्या : ससार अवद्य है। सखण्ड है। इन्द्रिय का विषय है। सरकार अनवद्य हे अखण्ड हैं। इन्द्रियातीत हैं। एकरस होने से अनवद्य हैं। परिपूर्ण होने से अखण्ड हैं। स्थूल सूक्ष्म से परे होनेसे इन्द्रियातीत हैं। सर्वरूप होने पर भी अरूप हैं। अपने चिद्रपु का उल्लङ्घन नही करते। यह बात मन मे जल्दी नही बैठती। क्योकि दोनो विरुद्ध हैं। इसलिए कहते हैं कि इसे दन्तकथा न समझना चाहिए। यह बात वेद कहते हैं। फिर भी समझने के लिए दृष्टान्त चाहिए। इसलिए दृष्टान्त भी देते हैं। जैसे सूर्य धूप से अभिन्न भी है और भिन्न भी है। सूर्य से पृथक् धूप क्या है ? फिर भी धूप सूर्य नही है। वेद सरकार को अरूपमस्पर्शमगन्धम् कहकर भी वर्णन करता है और सर्वरूप सर्वरस सर्वगन्ध कहकर भी वर्णन करता है।

कृतकृत्य विभो सब बानर ए। निरखति तवानन सादर ए ॥
धिग जीवन देवसरीर हरे। तव भक्ति बिना भव भूलि परे ॥९॥

अर्थ : हे विभो ! ये बन्दर कृतकृत्य हैं जो आपका मुख आदर के साथ देख रहे हैं। हे हरे ! देव शरीर के जीवन को धिक्कार है। जो तुम्हारी भक्ति बिना ससार मे भूले पडे हैं।

व्याख्या : हे प्रभो ! ये वन्दर कृतकृत्य हो गये। इनका कर्तव्य समाप्त हो गया। जीवन धारण करके उसे इन्होने सरकार की सेवा मे लगाया और अब कृतकृत्य होकर आपके मुख का दर्शन कर रहे हैं। इतने देवता आये हुए हैं पर उनकी ओर देखने के लिए इन्हे अवकाश नही है। ये भवदीय मुखावलोकन मे ही दत्तचित्त हैं। अत: ये कृतकृत्य हैं। देव शरीर पाकर ही क्या हुआ ? यदि हरि मे भक्ति नही हुई और देवसुलभ ऐश्वर्य मे ही भूले रह गये। बानरो ने सरकार की सेवा की और देवताओ ने सरकार से सेवा ली। इसलिए वानरो को धन्यवाद और देवताओ को धिक्कार है।

अब दीनदयाल दया करिए। मति मोरि बिभेदकरी हरिए ॥
जेहि ते बिपरीत क्रिया करिए। दुख सो सुख मानि सुखी चरिए ॥१०॥

अर्थ : हे दीनदयाल ! अब दया करिये। मेरी विभेदकरी बुद्धि को हरण कर लीजिये जिससे मैं विपरीत क्रिया करूँ। दु ख से सुख मानकर सुखी हो विचरूँ।

व्याख्या : ब्रह्मदेव कहते हैं कि मै दीन हूँ आप दीनदयाल हैं। मुझ दीन पर दया कीजिये। विभेदकारी बुद्धि होने से मैं ब्रह्मपद पाकर भी दीन हूँ। क्योकि द्वितीयाद्वै भय भवति दूसरे से भय होता ही है। मुझे अभय कर दीजिये। ब्रह्मपद देने पर भी भय बना ही है। बुद्धि के प्रेरक आप हैं। आपके ही हरण करने से विभेदकरी बुद्धि दूर होगी। तब विपरीत क्रिया करने मे समर्थ हूँगा। जिसे लोग दु ख कहते हैं उसी को सुख मान सकूँगा और तब सुखी होकर विचरण करूँगा।

छं. खल खंडन मंडन रम्य छमा । पदपंकंज सेवित संभु उमा ॥
नृपनायक दे बरदानमिद । चरनाबुज प्रेमु सदा सुभदं ॥१॥

अर्थ : आप खलो के खण्डन करनेवाले और पृथिवी के सुन्दर अलङ्कार हैं। आपके चरण कमल शिव पार्वती द्वारा सेवित हैं। हे नृपनायक! यह वरदान दीजिये कि आपके सदा शुभ देनेवाले चरण कमल मे प्रेम हो।

व्याख्या : यहाँ पर अवतार के दोनो कृत्य दिखलाये खल खण्डन कहकर दुष्कृतो का विनाश कहा और मण्डन रम्य छमा कहकर साधुपरित्राण दिखलाया। सबसे बडे महादेव हैं सो सस्त्रीक होकर चरणो की सेवा करते हैं। सरकार ने रावण वध किया है अतः नृपनायक कह रहे हैं। अथवा माधुर्य के उपासक है अत. नृप नायक कहते हैं। ऐसी खुशी के समय स्तुति करनेवाले राजाओ के यहाँ से पुरस्कार पाते हैं। सरकार नृपनायक हैं। मुँह माँगा दीजिये। यही वरदान है कि सदा शुभ देनेवाले चरण कमल का प्रेम मुझे हो।

दो. बिनय कीन्हि चतुरानन, प्रेम पुलक अति गात।
सोभासिधु बिलोकत, लोचन नही अघात ॥१११॥

अर्थ : बहुत भाँति से अति पुलकित शरीर होकर ब्रह्मदेव ने विनय किया। रामजी का मुख देखते हुए आँखें नही अघाती थी।

व्याख्या : अति सप्रेम तनु पुलकि बिधि अस्तुति करत बहोरि से उपक्रम करके बिनय कीन्हि चतुरानन कहकर उपसहार करते हैं। बिनय कीन्हि चतुरानन से वचन द्वारा प्रेम कहा। प्रेम पुलकि अति गात से तन से प्रेम कहा। सोभासिधु बिलोकत लोचन नहि अघात से मन से प्रेम कहा।

यह अनुराधा नक्षत्र है। इसमे चार तारे चमकते है। भक्पुज सा आकार है। इस गुणग्राम मे एक बार जयकार और तीन बार नमस्कार है। यही चार तारो की चमक है। बिना क्रम के भात के ढेर की भाँति गुणगण कहे गये हैं। पूर्वापर क्रम भी नही है। द्विरुक्तियाँ भी हैं। इसलिए भक्त पुजाकार समझा गया। मेटत कठिन कुअक भाल के। यही फलश्रुति है।

तेहि अवसर दसरथ तहँ आए। तनय बिलोकि नयन जल छाए ॥
अनुज सहित प्रभु बदन कीन्हा। आसिरबाद पिता तब दीन्हा ॥१॥

-अर्थ : उसी अवसर पर वहाँ दशरथजी आये। बेटो को देखकर आँख मे आँसू भर आया। भाई के सहित सरकार ने वन्दना की। तब पिता ने आशीर्वाद दिया।

व्याख्या : सरकार ने जटायु से कहा था : सीताहरन तात जनि कहेहु पिता सन जाइ। जौ मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ। सो वह वचन चरितार्थ हुआ। दशरथजी को समाचार मिल गया। वे ब्रह्मदेव को स्तुति के समय आये। हा जानकी लखन हा रघुबर। हा पितु हित चित चातक जलधर : कहते हुए जिसने

प्राण त्याग किया था आज उसे देखकर आँख मे आँसू क्यो न भर आये। देवता रामजी को ब्रह्म देखते हैं। हाथ बाँधे खडे हैं। पर चक्रवर्तीजी उन्हे बेटा ही देखते है। चौदह वर्ष के बाद आज दृष्टिगोचर हुए हैं। अत आँखो मे आनन्दाश्रु भर आया।

बेटो को देखा बहू को नही। पूर्व जन्म मे भी इनकी यही गति थी। सरकार का प्रादुर्भाव जगदम्बा के साथ हुआ था। पर उन्होने सरकार को ही देखा। सरकार ने कहा भी : आदि सक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया। फिर भी कुछ नही। सरकार के देखने पर इनकी वृत्ति दूसरी ओर जाती ही नही। जगदम्बा की ओर से वन्दना भी नही हुई। दोनो बेटो को प्रणाम करते हुए देखकर पिता ने आशीर्वाद दिया। इन्द्रलोक जाने पर भी देवताओ तथा महर्षियो का साथ होने पर भी चक्रवर्तीजी का वात्सल्य भाव ज्यो का त्यो बना हुआ है।

तात सकल तव पुन्य प्रभाऊ। जीत्यो अजय निसाचर राऊ ॥
सुनि सुत बचन प्रीति अति बाढी। नयन सलिल रोमावलि ठाढी ॥२॥

अर्थ : हे तात! यह सब आपके पुण्य का प्रभाव है जो मैंने अजेय निशाचरराज को जीता। बेटे का वचन सुन करके अत्यन्त प्रीति बढी। आँखो मे आँसू भर आये। रोगटे खडे हो गये।

व्याख्या : पिता के पुण्य से पुत्र की अभिवृद्धि होती है। इसी भाव को मन मे रखकर सरकार कहते हैं कि आपके पुण्य के प्रभाव से मेरे लिए असम्भव सम्भव हो गया। निशाचरराज अजेय था। सिर काटने पर उसे नये सिर निकल आते थे। उसे मैंने मारा। उसमे मेरा पुरुषार्थ नही। आपके पुण्य का प्रभाव ही ऐसा है। यथा : सखि सब करब पुरारि पुन्य पयोनिधि भूप दोउ।

चक्रवर्तीजी को अत्यन्त प्रीति तो थी ही बेटे का वचन सुनकर वह और बढ गयी। सात्त्विक भाव हुआ। मेरे बेटे ने रावण को मारा। उसे अपना पराक्रम न मानकर मेरे पुण्य का प्रभाव मान रहा है। कैसी पितृभक्ति है। राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू। सुनि मन भयउ न हरप हरासू चक्रवर्तीजी वात्सल्य मे लीन हैं।

रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना। चितै पितहि दीन्हेउ दृढ ज्ञाना ॥
तातें उमा मोच्छ नहि पायो। दसरथ भेद भगति मन लायो ॥३॥

अर्थ : रामजी ने पहिले के प्रेम का अनुमान करके देखने के द्वारा पिताजी को दृढ ज्ञान दिया। हे उमा! दशरथजी ने भेद भक्ति मे मन लगाया था। इसलिए मोक्ष नही पाया।

व्याख्या : सरकार ने अनुमान किया कि इन्हे पूर्व जन्म का प्रेम बना हुआ है। मुझे ये अब भी पुत्र ही मान रहे हैं। यद्यपि ये : धर्म धुरधर नृप ऋषि ज्ञानी हैं। पर वरदान के प्रभाव से वह ज्ञान आवृत हो जाता है। यथा सुत विपैक तव पद रति होऊ। मोहि बड मूढ कहौ किन कोऊ। अत: पश्यन्ती द्वारा पिता को दृढ ज्ञान

दिया जिसके आवृत होने की सम्भावना नही। वाणी की चार अवस्थायें हैं। परा पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी। पश्यन्ती नाम ही इसलिए पड़ा है कि देखने के द्वारा अपना हृद्गतभाव पूरा का पूरा दूसरे को अवगत कराया जा सकता है। पुत्र द्वारा पिता को उपदेश मिलने मे शोभा नही। इससे वैखरी मे उपदेश नही दिया।

शिवजी शङ्का उठने का अवसर जानकर उमा से कहते हैं कि उमा! चक्रवर्तीजी को मोक्ष नही मिला। क्योकि उन्होने भेद भक्ति मे मन लगाया था। भेदाभेद की दृष्टि से भक्ति के दो भेद हैं। एक अभेदभक्ति और दूसरी भेदभक्ति। जिन्हे तत्त्वज्ञान नही हुआ और शास्त्र से जानकर अहं ब्रह्मास्मि ऐसी उपासना करते हैं उनकी उपासना अभेदभक्ति है। वह फलकाल मे तत्त्वज्ञान मे परिणत हो जाती है और जो भेद मानकर सम्बन्धविशेष की कल्पना करके उपासना करते हैं उनकी उपासना भेदभक्ति कहलाती है। उन्हे मोक्ष नही मिलता। उन्हे धाम मिलता है।

सगुनोपासक मोच्छ न लेही। तिन्ह कहुँ रामभगति निज देही॥
बार बार करि प्रभुहि प्रनामा। दसरथ हरषि गए सुरधामा॥४॥

अर्थ : सगुण उपासना करनेवाले मोक्ष नही लेते। उन्हे रामजी अपनी भक्ति देते हैं। बार बार सरकार को प्रणाम करके दशरथजी हर्षित होकर सुरधाम गये।

व्याख्या : ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दो रूप हैं। दोनो रूपो के पृथक् पृथक् भजन करनेवाले हैं। फलकाल मे दोनो के सामने मुक्ति उपस्थित होती है। निर्गुणोपासक को मुमुक्षा होती है। अत वे मुक्त हो जाते हैं। पर सगुणोपासक को मुमुक्षा नही होती। वे मुक्ति को स्वीकार नही करते तथापि मुक्ति बलपूर्वक आती है। यथा 'राम भजत सोइ मुक्ति गोसाईं। अन इच्छित आवै बरिआईं। सगुणोपासक फिर भी मुक्ति का निरादर करते हैं। उन्हे भक्ति ही अच्छी लगती है। यथा : अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लोभाने। तब रामजी उन्हे सिद्धा भक्ति प्रदान करते हैं। दृढ ज्ञान हो जाने से दशरथजी के यहाँ भी मुक्ति उपस्थित हुई। पर उन्होने स्वीकार नही किया। वे सयाने भक्त थे। तब रामजी ने उन्हे सिद्धाभक्ति दी।

दृढ ज्ञान न मिला होता तो दशरथजी को जाने मे बड़ा कष्ट होता। अब जाने के समय रामजी प्रणाम नही करते। क्योकि दृढ ज्ञान होने से सामर्थ्य हट गया है। ऐश्वर्य का ज्ञान हो गया है। अब बेटा की दृष्टि नही है। प्रभु की दृष्टि है। इसलिए दशरथजी ही बार बार प्रणाम करते हैं। सिद्धाभक्ति की प्राप्ति से हर्षित होकर जहाँ से आये थे वही चले गये। प्रभु ने स्वय कहा है : एह बिचारि पंडित मोहि भजही। पायेहुँ ज्ञान भगति नहि तजही। ऐसी भक्ति अद्वैत से भी सुन्दर है।

दो. अनुज जानकी सहित प्रभु, कुसल कोसलाधीस।
सोभा देखि हरषि मन, अस्तुति कर सुर ईस॥११२॥

अर्थ : छोटे भाई तथा जानकी के सहित कोशलाधीश को कुशल देखकर तथा उनकी शोभा देखकर देवराज मन में आनन्दित होकर स्तुति करने लगे।

व्याख्या : रावण का सामना पड़ने पर कुशल रहना असाध्य व्यापार है। उसी कुशल के लिए रथ भेजा था। अब अनुज जानकी सहित सरकार को कुशल देखकर छवि देखते हैं। बारात के समय में छवि देखकर कृतकृत्य हुए हैं। यथा : रामहि चितव सुरेस सुजाना। गौतम साप परम हित माना। इस समय युगल मूर्ति की छवि देखकर अत्यन्त हर्षित होकर स्तुति करते हैं। सोभा देखि : कर्मणा। हरषि मन : मनसा। अस्तुति कर : वाचा हर्ष है।

छं.[1] जय राम सोभा धाम। दायक प्रनत बिस्राम॥
धृत त्रोनबर सर चाप। भुज दंड प्रबल प्रताप॥१॥
जय दूषनारि खरारि। मर्दन निसाचर धारि॥
यह दुष्ट मारेउ नाथ। भए देव सकल सनाथ॥२॥

अर्थ : शोभा के धाम प्रणत को विश्राम देनेवाले रामजी की जय हो। तरकस और श्रेष्ठ धनुष और बाण धारण करनेवाले, प्रबल भुजदण्ड और प्रतापवाले हो। हे खर और दूषण के शत्रु और राक्षसी सेना के मर्दन करनेवाले! तुम्हारी जय हो। हे नाथ! आपने इस दुष्ट को मारा तो सब देवता सनाथ हो गये।

व्याख्या : देवराज को छवि देखने से बड़ा हर्ष हुआ। अतः पहिले उसी का वर्णन करते हुए जयकार करते हैं। जो सरकार को देखता है उसके मन में उनके शोभा धाम होने की भावना उठती है। देवराज भी शोभाधाम कहते हैं और राक्षसी सूर्पणखा भी : सोभा धाम राम अस नामा कहती है। सरकार एक बार भी प्रणाम करनेवाले को अपना लेते हैं। यथा : सकृत प्रणाम किये अपनाये। विभीषण के एक प्रणाम पर ही प्रसन्न होकर लंका का राज्य दे दिया। इसलिए कहते हैं कि प्रणत को विश्राम देनेवाले की जय हो।

जय राम सोभा धाम : से रूप कहा। दायक प्रनत बिस्राम : से गुण कहा। अब शौर्य कहते हैं कि युद्ध के लिए सदा सन्नद्ध रहते हैं। शर चाप तूणीर सहित ही आपका ध्यान भक्त लोग करते हैं। अब वीर्य कहते हैं कि भुजदण्ड का प्रताप बड़ा प्रबल है। तीनों लोक मे ध्वनि हो रही है : जय रघुबीर प्रबल भुजदंडा।

सरकार का व्यक्ति विशेष से कोई वैर नहीं है। उनको कठोरता और दूषण से वैर है। यहाँ खर और दूषण शब्द में श्लेष है। खर और दूषण नाम के राक्षस को मारा। इसलिए दूषणारि खरारि हैं अथवा खर : कठोरता और दोष को नाश करनेवाले हैं। इसलिए दूषणारि खरारि कहा। अथवा खर और दूषण से देवता भयभीत रहते थे। उनके वध से सुख की प्राप्ति हुई। इसलिए दूषणारि खरारि कहा।

---

१. यह तोमर छन्द है।

ये माता पिता और देवता के न माननेवाले, साधुओ से सेवा करानेवाले निसिचर है। उनकी सेना का आपने मर्दन कर दिया। भाव यह कि उनका जोर टूट गया। अब रावण की ओर इङ्गित करके कहते हैं कि इस दुष्ट को जो आपने मारा इससे तो सब देवता सनाथ हो गये। भाव यह कि इसके मारे देवता अनाथ हो रहे थे। इसके ऊपर ब्रह्मदेव की भी कुछ चलती नही थी। यथा : ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई। सो इसके मारे जाने से देवता लोगो ने समझ लिया कि हमारे ऊपर भी एक नाथ है जिसने हमारे भय को दूर किया।

छं. जय हरन धरनी भार। महिमा उदार अपार ॥
जय रावनारि कृपाल। किए जातुधान बिहाल ॥३॥
लंकेस अति बल गर्ब। किए बस्य सुर गंधर्ब ॥
मुनि सिद्ध खग नर नाग। हठि पंथ सबके लाग ॥४॥

अर्थ : पृथिवी के भार के हरण करनेवाले तथा उदार और अपार महिमावाले की जय हो। हे रावण के शत्रु, हे कृपालु, आपकी जय हो। आपने राक्षसो को बेहाल कर दिया। रावण को अत्यन्त बल का अभिमान था। उसने देवता और गन्धर्व सबको वश कर रक्खा था। मुनि सिद्ध मनुष्य पक्षी और नाग सबके पीछे हठ करके पडा था।

व्याख्या : रावण की दुष्टता को ही स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि इसके कारण अतिशय धर्म की हानि हुई। पाप के बोझ से पृथिवी दब चली। व्याकुल होकर वह देवता मुनियो के यहाँ गयी। उनका भी किया कुछ न हुआ। तब सब मिलकर ब्रह्मा के पास गये। शिवजी भी उस समाज मे रहे। पर किसी का कुछ वश न चला। तब सबो ने आपको पुकारा। आपने पृथिवी का भार हरण किया। आपकी जय हो। आपकी महिमा ऐसी उदार अपार है कि किसी व्यक्ति को किसी काल मे उसका थाह न मिला। यथा : अस रघुपति महिमा अवगाहा। तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा। यह आपकी बडी कृपा हुई कि आपने जगत् के रुलानेवाले रावण का वध किया। इसके कारण ससार बेहाल था। राक्षस सब सुखी थे। जैसा चाहते थे अत्याचार करते थे। जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला। सो कृपाल आपने ऐसी कृपा की कि संसार सुखी हो गया और निसाचर गण बेहाल हो गये। उनका कोई रक्षक न रह गया।

लङ्केश को अपने बल का बडा गर्व था। विभीषण से कहने लगा : कहसि न सठ अस को जग माही। भुज बल जाहि जिता मैं नाही। अङ्गदजी से कहने लगा : हरगिरि मथन निरखि मम बाहू। पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू। देवता गन्धर्वादि सबको वश कर रक्खा था। बेद पढ़ैं बिधि सभु सभीत पुजावन रावन सो नित आवैं। दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरिहि ते सिर नावैं। मुनि सिद्ध खग नाग सभी उससे अपनी रक्षा चाहते थे। पर वह सबके पीछे पडा रहता था। यथा : किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पथहिं लागा।

छं. पर द्रोह रत अति दुष्ट । पायो सो फलु पापिष्ट ॥
अब सुनहु दीन दयाल । राजीव नयन बिसाल ॥५॥
मोहि रहा अति अभिमान । नहि कोउ मोहि समान ॥
अब देखि प्रभु पद कंज । गत मान प्रद दुख पुंज ॥६॥

अर्थ : वह परद्रोह में लगा रहनेवाला बड़ा दुष्ट था। उस पापी ने उसका फल पाया। हे दीनदयाल ! हे विशाल राजीवनयन ! मुझे बड़ा अभिमान था कि मेरे समान कोई नहीं है। सो सरकार के चरणकमलों के दर्शन से वह दुःख समूह का देनेवाला मान चला गया।

व्याख्या : यह रावण ऐसा दुष्ट था कि इसकी स्त्रियों ने उसके लिए रोते समय कहा : आजन्मते परद्रोहरत पापौघमय तव तनुअयं। उसका फल इस पापी ने पाया कि उसके कुल में कोई उसके लिए रोनेवाला न रह गया। यथा : रामबिमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कुल कोउ रोवनहारा। सरकार दीनदयाल हैं। मैं अब दीन हूँ। अतः कहता हूँ। यथा : जब लगि मैं न दीन दयाल तें मैं न दास तैं स्वामी। तब लगि सब दुख सह्यौं कह्यौ नहिं जद्यपि अन्तरयामी। ससार मे दो बडे अभिमानी थे : एक मै दूसरा रावण। रावण को अपने बल का बड़ा गर्व था और मुझे शतक्रतु होने का गर्व था। ससार मे मुझे छोड़कर दूसरा कोई शतक्रतु नही है। मेरा अमरावती मे निवास है। मुझे देवताओं की सेना है। वज्र आयुध है। इत्यादि।

अब सरकार के दर्शन से वह महादुखद अभिमान चला गया। निज स्वरूप की प्राप्ति हुई। यथा : मम दर्सन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा।

छं. कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव। अव्यक्त जेहि स्रुति गाव ॥
मोहि भाव कोसल भूप। श्रीराम सगुन सरूप ॥७॥
बैदेहि अनुज समेत। मम हृदय करहु निकेत ॥
मोहि जानिये निज दास। दे भक्ति रमानिवास ॥८॥

अर्थ : कोई निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करता है। जिसे वेद अव्यक्त कहकर गान करता है। पर मुझे तो कोशलेन्द्र श्रीराम का सगुण रूप अच्छा लगता है। वैदेही और लक्ष्मण सहित मेरे हृदय मे रहिये। मुझे निजदास करके जानिये। हे रमानिवास भक्ति दीजिये।

व्याख्या : चित्त का आश्रय ब्रह्म है। वह स्वभाव से ही दो प्रकार का है। मूर्त और अमूर्त। अथवा अपर और पर। यथा : आश्रयश्चेतसो ब्रह्म द्विधा तच्च स्वभावतः। भूप मूर्तममूर्तञ्च परञ्चापरमेव च : वि. ७४७। अर्थात् निर्गुण ब्रह्म पर रूप है और सगुण ब्रह्म अपर रूप है। इन्द्र भगवान् कहते हैं कि कोई निर्गुण ब्रह्म

देहवालों को अव्यक्त विषयक गति दुःखपूर्वक होती है। क्लेशोऽधिकतरस्तेषाम- व्यक्तासक्तचेतसाम्। अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते। गीता। इसलिए बहुत कम लोग निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करते हैं। भावार्थ यह कि इन्द्र भी निर्गुण ब्रह्म का ध्यान नहीं करते। क्योंकि अव्यक्त रूप वेदमात्र से ही जाना जाता है: तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि। वे कहते हैं कि मुझे तो कोसलभूप श्रीराम का सगुण स्वरूप ही अच्छा लगता है: यस्यावताररूपाणि समर्चन्ति दिवौकसः। अपश्यन्तः परं रूपं नमस्तस्मै महात्मने। विष्णु पुराणे। जिसके अवतार रूपों का देवता पूजा करते हैं क्योंकि उनके रूप को नही देख सकते। उस महात्मा को नमस्कार है। श्रीराम कहने से परशुराम और बलराम का व्यावर्तन किया। इन्द्र को अवतारों में भी श्रीरामावतार का स्वरूप प्रिय है। प्रार्थना करते हैं कि वैदेही और लक्ष्मण सहित मेरे हृदय को घर बनाइये। मुझे निज दास जानिये। क्योंकि आपको निज दास अत्यन्त ही प्रिय हैं। यथा: तेहि ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। अन्त में भक्ति प्राप्ति के लिए प्रार्थना करते हैं।

छं.[1] दे भक्ति रमानिवास त्रासहरन सरन सुख दायकं।
सुखधाम राम नमामि काम अनेक छवि रघुनायकं॥
सुरबृंद रंजन द्वंद भंजन मनुजतनु अतुलित बलं।
ब्रह्मादि संकरसेव्य राम नमामि करुना कोमलं॥

अर्थ: हे रमा निवास! भक्ति दीजिये। आप त्रास के हरण करनेवाले शरण में आये हुए को सुख देनेवाले हैं। सुखधाम हैं। आप में अनेकों काम की छवि है। ऐसे राम रघुनायक को मैं नमस्कार करता हूँ। आप सुर गण को सुख देनेवाले द्वन्द के नाश करनेवाले और मनुष्य शरीर में भी अतुलित बलवाले हैं। ब्रह्मा और शंकर से सेव्य हैं और करुणा से कोमल हैं। ऐसे राम को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या: जाकी कृपा कटाक्ष सुर चाहत चितव न सोइ। राम पदारविंदति करति सुभावहि खोइ। अतः रमा निवास कहकर महा ऐश्वर्य कहा। भजनीय के गुण कहते हैं कि आप त्रासहरण हैं। आर्तजनों के आश्रय हैं। शरणागत को सुख देनेवाले हैं। आपने आर्त बिभीषण का त्रास भी हरण किया और उसे लंकापति बना दिया। सुख के धाम तो आप ही हैं। आपके ही सुख के लेश से संसार सुखी होता है। आपका सौन्दर्य ऐसा है कि जिसके सामने कोटि काम का भी सौन्दर्य फीका है। आप देवताओं की विपत्ति टारनेवाले है। आप द्वन्द्व के नाश करनेवाले हैं। द्वन्द ही बड़ी भारी विपत्ति है। मैं स्वयं मान के नाश का सुख अनुभव कर रहा हूँ। शरीर मनुष्य का धारण किये हुए हैं और बल का तौल नहीं। आपकी करुणा ऐसी कोमल है कि सर्वशक्तिमान् होने पर भी अपने भक्तों के लिए मनुष्य शरीर धारण किया।

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

आप शंकर और ब्रह्मा से भी सेवित हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। भाव यह है कि शरण्य मे जो गुण ईप्सित हैं सरकार मे वे सब पूर्ण उत्कर्ष रूप से हैं।

दो. अब करि कृपा बिलोकि मोहि आएसु देहु कृपाल।
काह करौं सुनि प्रिय बचन बोले दीन दयाल ॥११३॥

अर्थ : हे कृपालु! अब कृपा करके मुझे देखकर आज्ञा दीजिये कि मैं क्या करूँ ? इस प्रिय वचन को सुनकर दीनदयाल बोले।

व्याख्या : इन्द्रजी ने अपनी स्तुति मे कहा : अब सुनहु दीनदयाल। सो दीन दयाल ने इन्द्र को दीन देखकर दया की। अर्थात् उनके प्रार्थनानुसार उनकी ओर कृपा दृष्टि से देखा और उनकी सेवा की स्वीकृति के रूप से उन्हे आज्ञा दे रहे हैं। क्योंकि : आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा।

यह गुणग्राम ज्येष्ठा नक्षत्र है। इसमे तीन तारे चमकते हैं। आकार कुण्डल सा है। इस स्तुति मे १. प्रभु का हृदय मे निवास माँगना २. भक्ति माँगना ३ आज्ञा माँगना। ये ही तीन तारे हैं। राम शोभाधाम से स्तुति प्रारम्भ करके राम नमामि से उपसंहार करने से कुण्डलाकार कहा। आदि अन्त के मिलने से वर्तुल रूप हो जाता है। इसमे अपने मान का नाश कहा। यथा : गत मान प्रद दुख पुंज। इससे : हरन मोह तम दिनकर कर से। यह फलस्तुति सार्थक हुई।

सुनु सुरपति कपि भालु हमारे। परे भूमि निसिचरन्ह जे मारे॥
मम हित लागि तजे इन्ह प्राना। सकल जिआउ सुरेस सुजाना॥१॥

अर्थ : हे देवराज सुनो। हमारे बन्दर और भालु जिन्हे राक्षसो ने मार डाला है भूमि पर पडे हुए हैं। मेरे हित के लिए इन्होने प्राण त्याग किया है। हे सुरेश सुजान इन सबको जिलाओ।

व्याख्या . सुरपति सम्बोधन का भाव यह कि आप अमरो के राजा हैं। अमृत पर अधिकार है। आपके योग्य कार्य दिया जाता है। संग्राम मे राक्षसो के मारे हुए हमारे बन्दर भालु खेत आये हैं : राम कहैं जेहि आपनो तेहि भजु तुलसीदास। हम सम पुन्य पुंज जग थोरे। जिन्हहिं रामु जानत करि मोरे। इत्यादि उक्तियो से उन महा भाग्यवानो की महा महिमा कहा है। जिन्हे रामजी अपना समझते हैं। ऐसे भाग्यवान् वे वानर भालु हैं जो संग्राम मे काम आये हैं।

मदीय होने का कारण कहते हैं कि इन्होंने मेरे लिए प्राण परित्याग किया। पत्र, पुष्प, फल, तोय अर्पण करनेवाले तो बहुत हैं। पर प्राण अर्पण करनेवाले तो ये बन्दर भालु हैं। इन्हे मेरा हित प्रिय था। अपना प्राण प्रिय नही था।

अतः इन्हे प्राण प्रसाद रूप से मिलना चाहिए। आप सुरेश हैं : इन्हे जिलाने मे समर्थ हैं और सुजान हैं। समझ सकते है कि अपने आश्रितो की रक्षा मेरा परम कर्त्तव्य है।

सुनु खगेस प्रभु कै यह बानी। अति अगाध जानहिं मुनि ग्यानी ॥
प्रभु सक त्रिभुवन मारि जिआई। केवल सक्रहिं दीन्हि बड़ाई ॥२॥

अर्थ हे गरुड़जी ! प्रभु की यह वाणी अत्यन्त अगाध है। इस ज्ञानी मुनि जानते है। प्रभु तीनो भुवन को मारकर जिला सकते हैं। उन्होने केवल इन्द्र को बडाई दी।

व्याख्या भुसुण्डिजी गरुड से कहते हैं कि प्रभु होकर एसी वाणी बोलत हैं मानो उन्हे मारने जिलाने की शक्ति ही नही है। अत इन्द्र से वरदान माँगकर बन्दर भालुओ को जिलाकर बन्दर भालुओ के ऋण से उऋण होना चाहत हैं। परन्तु इसका बडा गहरा अर्थ है। जिस ज्ञानी मुनि ही समझ सकते हैं। जितना प्रसङ्ग से जाना जाता है। उतना लिखा जा रहा है। सरकार अपने मारने जिलाने की शक्ति को जनाना नही चाहते। जिसम बन्दर भालुओ का यश फीका न पडने पावे। रावण वध से इन्द्र कृतज्ञ हैं। अत उनसे बन्दर भालुओ के जिलाने का कार्य लकर उन्हे ऋणी होने के सकोच से मुक्त करना चाहते हैं। इन्द्र की महिमा बढाना चाहते हैं। बन्दर और रीछ दवताओ के अश थे। अत उनका उपकार दवराज के हाथ से कराना चाहते हैं। ज्ञानी मुनि ही समझ सकते हैं यथा अनेक भेष धरि नृत्य करै नट कोइ। सोइ सोइ भाव दिखावै आपुन होइ न सोइ। यह भी सरकार का अभिनय है। सरकार तीनो भुवन को मार सकते हैं और फिर उसे जिला सकते हैं। इसमे उन्हे काई आयास नही है। बन्दर भालुओ को जिलाना उनके लिए कौन सी बडी बात थी ? सरकार की इच्छा केवल इन्द्र को बडाई देने की थी।

सुधा बरषि कपि भालु जिआए। हरषि उठे सब प्रभु पहिं आए ॥
सुधा बृष्टि भै दुहु दल ऊपर। जिए भालु कपि नहिं रजनीचर ॥३॥

अथ अमृत की वर्षा करके बन्दर भालुओ को जिला दिया। सब हर्षित होकर उठे और प्रभु के पास आये। अमृत की वर्षा ता दोनो दलो पर हुई पर बन्दर भालु ही जीय। राक्षस नही जीये।

व्याख्या इन्द्र ने अमृत की वर्षा कर दी और बन्दर भालु जी उठे पूर स्वस्थ होकर। जैमे कोई सोकर उठता हो। सब बडे प्रसन्न होकर प्रभु के पास आगये। जितनी बडी वानरी सेना आया थी फिर उतनी ही बडी हो गयी। एक बन्दर या भालु कम न हुए। पूरे समराङ्गन मे अमृत की वर्षा हुई। क्योकि जहाँ राक्षस गिरे थे वही बन्दर भालु भी गिरे थे। परन्तु अमृत की शक्ति ने बन्दर भालुओ पर काम किया राक्षसो पर नही काम किया। अत ब दर भालु जी उठे। राक्षस मरे ही पडे रह गये।

रामाकार भए तिन्हके मन। मुक्त भए छूटे भव बधन ॥
सुर अंसिक सब कपि अरु रीछा। जिए सकल रघुपति की ईछा ॥४॥

अर्थं उनके मन रामाकार हो गये थे। वे रण मे शरीर त्यागकर मुक्त हो गये। उनका भव बन्धन छूट गया। बन्दर भालु देवताओ के अश थे। वे रामजी की इच्छा से जी गये।

व्याख्या राक्षस सरकार को वैर भाव से स्मरण करते थे। इस भांति उनका मन रामाकार हो गया था। तिस पर सग्राम मे वे शस्त्रपूत हाकर मरे थे। अत वे ब्रह्मपद को प्राप्त हो गये थे। अब वे लौट नही सकते। अत नही जी सके।

बन्दर भालु भी प्रेम से स्मरण करनेवाले थे। उनके मन भी रामाकार थे। उन्होने भी रण मे शरीर छोडा था। पर वे ब्रह्मपद को नही प्राप्त हुए। क्योकि देवाश थे। यावदधिकार अधिकारी की मुक्ति नही होती। तिसपर सरकार की इच्छा थी कि मेरे सैनिक एक भी कम न होने पावें। इसलिए जी उठे। भाव यह कि जिलाने मारने मे अमृत या विष समर्थ नही है। भगवदिच्छा से अमृत भी विष हो जाता है और विष भी अमृत हो जाता है।

राम सरिस को दीन हितकारी। कीन्हे मुकुत निसाचर झारी॥
खल मलधाम कामरत रावन। गति पाई जो मुनिवर पावन॥५॥

अर्थं रामजी के समान दीनहितकारी कौन होगा जिसने समस्त निशाचरो को मुक्त कर दिया। यह रावण खल मलधाम और कामरत था। सो उसने ऐसी गति पायी जिसे मुनि नही पाते अथवा जिसे पवित्र मुनि पाते।

व्याख्या उमा राम सम हित जग माही। गुरु पितु मातु बधु प्रभु नाही। सरकार सबके हित हैं और विशेष करके दीनहित हैं। जितने राक्षस युद्ध मे मारे गये सभी को सरकार ने मुक्ति दी। उमा राम मृदुचित करुनाकर। वैर भाव सुमिरत मोहि निसिचर। देहि परम भगति सो जिय जानी। अस कृपालु को कहहु भवानी।

तिनमे रावण तो सबसे बढकर था। खल होने से कमकाण्ड से विमुख था। मलधाम होनेसे ज्ञान काण्ड से विमुख था। कामरत होने से उपासना काण्ड से विमुख था। इसके सन्तरण का कोई उपाय ही नही था। उसे सरकार ने ऐसी गति दी जो श्रेष्ठ मुनियो को दुर्लभ है। यथा तासु तेज समान प्रभु आनन। हरषे देखि सभु चतुरानन।

दो सुमन बरषि सब सुर चले, चढि चढि रुचिर बिमान।
देखि सुअवसर राम पहि, आए सभु सुजान॥

अर्थं फूलो की वर्षा करके सब देवता लोग सुन्दर सुन्दर विमानो पर चढकर चले। तब सुजान शिवजी सुअवसर देखकर रामजी के पास आये।

व्याख्या आए देव सदा स्वारथी कहकर कवि ने यह दिखलाया था कि देवता लोग आकाश से उतरकर पृथिवी पर सरकार के पास आये। स्तुति की। फूलो को वर्षा की। अब फिर अपने अपने सुन्दर सुन्दर विमानो पर चढकर जाने

लगे। तब सुजान शिवजी सुअवसर देखकर आये। सीताहरण के समय कुअवसर जानकर, सन्निकट पहुँच जानेपर भी भेंट नही की। रावण ने मनुष्य के हाथ से अपना मरण माँगा था। शिवजी के जाने से सरकार ने गुप्तरूपसे अवतीर्ण होने का भेद खुल जाता। अत भेंट करने का वह उपयुक्त समय नही था। अब रावणवध हो चुका। ब्रह्मादि देवता प्रत्यक्ष करके स्तुति कर रहे हैं। अत. अब गोपन का कारण न रह गया और परमानन्द का अवसर प्राप्त है। अत सुजान शम्भु सुअवसर देखकर आये।

दो परम प्रीति कर जोरि जुग, नलिन नयन भरि बारि।
पुलकित तन गदगद गिरा, विनय करत त्रिपुरारि ॥११४॥

अर्थ बडी भारी प्रति से दोना हाथ जोडकर और कमल से आँखो मे आँसू भरकर पुलकित शरीर और गद्गद कण्ठ से त्रिपुरारि स्तुति करते हैं।

व्याख्या परम प्रीति द्वारा मन से, कर जोरि जुग नलिननयन भरि बारि पुलकित तन द्वारा तन से तथा गदगद गिरा विनय करत द्वारा वचन से प्रेम कवि ने वर्णन किया। त्रिपुर को जिस देवाधिदेव महादेव ने वध किया वे स्तुति कर रहे हैं।

मामभिरक्षय रघुकुल नायक। धृत वर चाप रुचिर कर सायक॥
मोह महा घन पटल प्रभजन। समय बिपिन अनल सुर रजन ॥१॥

अर्थ हे रघुकुलनायक! हाथ मे श्रेष्ठ धनुष और सुन्दर बाण धारण किये महामोह रूपी घन समूह के लिए वायुरूप, सशयरूपी वन के लिए अग्निरूप मेरी रक्षा कीजिये।

व्याख्या रघुकुलनायक कहने का भाव यह कि रघुकुल मे माँगनेवाले को नही नही करते और आप उस कुल के नायक हैं। जो माँगता हूँ उसे दीजिये। आपने रावण वध करके देवताओ की रक्षा की। पर मेरे लिए मोहरूपी रावण है। उससे मेरी रक्षा कीजिये। यथा मोहदसमौलि विनय०। यदि कहिये कि अभी युद्ध करके श्रान्त है। इस पर कहते है कि युद्ध के लिए सन्नद्ध तो हैं। सुन्दर धनुष बाण धारण किये हुए हैं। दशानन को एक सिर और दो बाहु थे। पर प्रभाव विस्तार के समय दस सिर और बीस भुजा हो जाते थे। इसी भाँति प्रभाव विस्तार के समय मोह को भी सशयादि अनेक सिर भुज हो जाते है। महामोह महाघन पटल है। ज्ञान रवि को ढकने म समर्थ है। घनपटल का नाश वायु द्वारा ही होता है। इसी भाँति महामोहरूपी घन समूह के नाश मे आप ही समर्थ हैं। उभय कोटि अवलम्बी ज्ञान को सशय कहते हैं। सशय बडा दु खदायी है. नाय लोकोस्ति न परो न सुख सशयात्मन । अत सशय को वन कहा। इसमे पडकर पथिक पथभ्रष्ट होकर महा दु ख पाता है। इस सशयरूपी वन के नाश के लिए आप दावानल हैं।

सगुन अगुन गुन मंदिर सुंदर। भ्रम तम प्रवल प्रताप दिवाकर ॥
काम क्रोध मद गज पंचानन। वसहु निरंतर जन मन कानन ॥२॥

अर्थ : सगुण, निर्गुण, गुणों के घर, सुन्दर, भ्रमरूपी अन्धकार के लिए प्रबल प्रतापवाले सूर्य, काम, क्रोध, मदरूपी हाथियों के लिए सिंह रूप, सदा भक्तों के मन रूपी वन में निवास कीजिये।

व्याख्या : आप सगुण ब्रह्म होते हुए भी निर्गुण हैं। सुन्दर अर्थात् कल्याण विधायक गुणों के घर हैं। सगुण ब्रह्म में तीनों गुणो का समावेश है। परन्तु शुद्ध सत्त्व गुण का आश्रय होने से सरकार सम्पूर्ण कल्याण गुणगण के मन्दिर हैं। भ्रम ज्ञानका आवरक है। इसलिए उसकी उपमा तम से दिया गया। उसके लिए आप प्रवल प्रतापवाले सूर्य हैं। प्रबल प्रताप दिवाकर कहने का भाव यह है कि वहां भ्रम के लेश का भी ठहरना असम्भव है। भक्तो का मन वन है। इसमे काम क्रोध और मदरूपो हाथी रहते हैं। इस वन मे आप सिंहरूप से सदा वसिये। भाव यह कि जिस वन में सिंह वसता है उसे हाथी छोड़ देते हैं। काम क्रोधादि दोष हाथीरूप हैं। क्योंकि बड़े बलवान् हैं। ये भक्तों के हृदय को दूपित कर देते हैं। इनके लिए आप सिंह हैं। आपके निरन्तर निवास से भक्त काम क्रोधादि से सदा के लिए निर्भय हो जाता है।

विपय मनोरथ पुंज कंज वन। प्रवल तुपार उदार पारमन ॥
भव बारिधि मंदर परमं दर। वारय तारय संसृति दुस्तर ॥३॥

अर्थ : विपय मनोरथ समूह कमल का वन है। हे मन से परे! उसके लिए आप उदार तुपार : पाला हैं। हे संसार समुद्र मन्थन के लिए मन्दररूप! बड़े भारी भय को निवारण कीजिये और अपार संसार से पार कीजिये।

व्याख्या : विपय के मनोरथ देखने में बड़े रमणीय हैं। इसलिए उसे कमल वन कहा। आप मन से परे हैं। आप तक मनोरथ की गन्ध नही। इतना ही नही आप ऐसे उदार हैं कि आपकी कृपा से सम्पूर्ण विपय मनोरथो का ऐसा नाश होता है जैसा पाला पड़ने से सम्पूर्ण कुञ्ज वनो का नाश हो जाता है।

संसार समुद्र है। इसमे अमृत विप सन्त खल आदि मिले जुले हैं। यथा : वंदौं विधिपद रेनु भव बारिधि जेहि कीन्ह जहँ। संत सुधा ससि धेनु प्रगटे खल विप वारुनी। बिना मन्थन के सार निकल नही सकता। अतः सागर का मन्थन किया गया। सागर के मन्थन योग्य मन्थनदण्ड मन्दर पर्वत था। उसी के द्वारा मन्थन करने से अमृत प्रकट हुआ। इसी भांति संसार सागर का मन्थन करके मुक्तिरूपी अमृत प्रकट करने में सरकार ही समर्थ हैं। जब देवताओ को असुरो से बड़ा भय उत्पन्न हुआ तब समुद्र मन्थन की योजना उठायी गयी। उसी से अन्ततः देवताओं का भय दूर हुआ। अतः संसार सागर के मन्दर रूप भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि महाभय को दूर कीजिये।

उसीको स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ससृति सन्निपातका दु ख अत्यन्त दारुण है। उसे कृपा करके नष्ट कीजिये। यथा . ससृति सन्निपात दारुन दुख बिनु हरि कृपा न नासै।

स्याम गात राजीव बिलोचन। दीनबधु प्रनतारति मोचन ॥
अनुज जानकी सहित निरतर। बसहु राम नृप मम उर अतर ॥४॥
मुनि रजन महिमडल मडन। तुलसिदास प्रभु त्रास बिखडन ॥५॥

अर्थ श्याम शरीरवाले, कमल ऐसे नेत्रवाले, दीनबन्धु प्रणत की आर्ति को हरण करनेवाले राजा राम मेरे हृदय मे छोटे भाई और जानकी के सहित सदा बसो। हे तुलसिदास के प्रभु ! आप मुनिगणको सुख देनेवाले हैं और पृथिवी की शोभा हैं तथा भय के दूर करनेवाल हैं।

व्याख्या . श्याम शरीर स्वभाव से ही सुन्दर है। मङ्गलमय है। अति पावन को भी पवित्रता देनेवाला है। इसी भाँति सरकारका राजीव कमल नयन मे कृपा दृष्टि रहती है। यह दृष्टि महा असम्भवका सम्भव करनेवाली है। यथा कृपा दृष्टि कपि भालु बिलोके। भये प्रबलरन रहहि न रोके। आप दोनोके कुअवसर पर सहाय होते हैं। आपके नमस्कार करनेवाले की आर्ति नही रह जाती। आपके प्रणाम की महा महिमा है। अब सरकार वन छोडकर राज्य पर जानेवाले हैं। अत कहते है कि हे राजा राम ! आप लक्ष्मण और जानकी सहित मेरे हृदयमे बास कीजिये। भाव यह कि जिस त्रिकोण की प्रार्थना करके देवता रावण के भय से विनिर्मुक्त हुए उसी त्रिकोण को शकर भगवान् हृदय मे बसाने की प्रार्थना करते है। यथा :

हेमाभया द्विभुजया सर्वालकृतया चिता।
श्लिष्ट कमलधारिण्या पुष्ट कोशलजात्मज ॥
दक्षिणे लक्ष्मणेनाथ सधनुष्पाणिना पुन ।
हेमाभेनानुजेनैव तदा कोणत्रयं भवेत् ॥
एव त्रिकोणरूप स्यात् त देवा ये समाययु ।
स्तुति चक्रुश्च जगत पति कल्पतरौ स्थितम् ॥

अर्थ सुवर्ण के रगवाली, दो भुजावाली, सब आभूषणो से आभूषित, कमल धारण किये हुए चित् शक्तिसे आश्लिष्ट कौसल्याके पुत्र पुष्ट रामजी। उनके दक्षिण म स्वर्ण वर्ण धनुष हाथ मे लिये हुए उनके छोटे भाई लक्ष्मणजी। इस भाँति त्रिकोण हुआ। उसी के देवता शरण मे गये। मुनिरजन महि मण्डल मण्डन। तुलसीदास प्रभु त्रास विखडन। इस अर्धाली का अन्वय आगे के दोहे के साथ है। रावण वध से मुनि सुखी हुए। उनका त्रास जाता रहा और पृथिवी का बड़ा भारी रोग दूर हो गया। अत महिमण्डल शोभित हो गया। रोगी की सुन्दरता नष्ट हो जाती है। स्वस्थ होने पर फिर लौट आती है। अथवा सरकार पृथिवी के हाररूप हैं। यथा इद्रनील हाटक मुकतामनि जनु पहिरे महि हार। इसलिए महिमण्डल मण्डन हे। इन विशेषणो से सम्बोधन करके कहते हैं।

दो नाथ जबहि कोसलपुरी, होइहि तिलकु तुम्हार।
कृपासिंधु मैं आउब, देखन चरित उदार ॥११५॥

अर्थ हे नाथ! जब अयोध्या मे आपका राज्याभिषेक होगा तब हे कृपा-सिन्धु मैं उस उदार चरित को देखने आऊँगा।

व्याख्या आप अखिल लोक के नाथ हैं। मुनिरजन हैं। महिमण्डल मण्डन हैं। त्रास विखण्डन हैं। आप कृपासिन्धु हैं। इतनी कृपा है कि ऐसे महामहिम होने पर भी अयोध्यामे अपना राज्याभिषेक स्वीकार करेंगे। अखिल लोकाधिपति होकर भी अयोध्याधिपति बनेंगे। इस उदार चरित को देखने की मुझे बडी लालसा है। सो उसे देखने के लिए मैं आऊँगा। और देवताओ की स्तुति हो चुकी। वे अभिषेक के समय नही आवेंगे। परन्तु शकर भगवान् उस समय आने की आज्ञा माँगते हैं।

यह शिवजी की स्तुति मूल नक्षत्र है। इसम दश तारे चमकते हैं। १ महामोह २ सशय ३ भ्रम ४ कामादि ५ विषय मनोरथ ६ भव ७ भय ८ ससृति ९ आर्ति १० त्रास का नाश ही दसो तारो की चमक है। इस स्तुति में फिर आने की पूँछ लगी हुई है। इसलिए यह पुच्छाकार है। सम्पूर्ण स्तुति म सेवक की रक्षा ही कही गयी है। इसलिए इसकी फलस्तुति सेवकसालि पाल जलधर से कही गयी है।

करि बिनती जब सभु सिधाये। तब प्रभु निकट बिभीषनु आये ॥
नाइ चरन सिरु कह मृदु बानी। बिनय सुनहु प्रभु सारगपानी ॥१॥

अर्थ विनती करके जब शिवजी चल गये। तब सरकार के पास विभीषणजी आये। चरणोमे सिर झुकाया और कोमल वाणी बोले कि शार्ङ्गपाणि प्रभु मेरी विनती सुनो।

व्याख्या शिवजी की स्तुति अन्त मे होती है। शिवजी के स्तुति करके चले जाने पर स्पष्ट हो गया कि देवताओ की स्तुति समाप्त हो गयी। तब सरकार के निकट विभीषणजी गये। जब तक देवता स्तुति करत थे तब तक दूर खडे थे। कुछ कहना है इसलिए प्रणाम किया और कहा कि मेरी विनती सुनिये। शार्ङ्गपाणि सम्बोधन का भाव यह कि अभी तक आप धनुष धारण किये हुए हैं। युद्ध के लिए सनद्ध हैं। मेरी विनय सुनिये। अब विश्राम करिये। अथवा शार्ङ्गपाणि से साक्षात् महा विष्णु होना कहा। अपना घर पवित्र करने की प्रार्थना करनेवाले हैं।

सकुल सदल प्रभु रावन मार्‌यो। पावन जसु त्रिभुवन बिस्तार्‌यो ॥
दीन मलीन हीन मति जाती। मो पर कृपा कीन्हि बहु भाँती ॥२॥

अर्थ कुल और सेना के सहित आपने रावण को मारा और अपने पवित्र यश को तीनो भुवन म फैला दिया। मुझ दीन मलिन बुद्धहीन और जातिहीन पर बहुत प्रकार से कृपा किया।

व्याख्या : जो कुछ करना था । सो आप सब कर चुके । रावण को कुल और सेना सहित मार चुके। इस भाँति निसिचर हीन करउँ महि : इस प्रतिज्ञा को पूरी कर चुके । विभीषणजी अपने को रावण के कुल का नही मानते । क्योंकि तदीय हो चुके हैं । विभीषणजी कहते हैं कि आपके इस अद्भुत पराक्रम का पवित्र यश तीनो लोक मे फैल गया । यथा ' जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा । जय रघुबीर प्रबल भुजदंडा । यह यश पावन है : क्योंकि इसे सुनने से गाने से कहने से और समझने से परमपद की प्राप्ति होती है । विभीषणजी कार्पण्य दिखाते हुए अपने को मन से दीन कर्म से मलिन और बुद्धि तथा जाति से हीन कहते हैं । ऐसे के ऊपर कोई कृपा नही करता । सो सरकार ने मुझ पर बहुत भाँति से कृपा की । मुझे अपना सखा बनाया । मेरे लिये साँगी सहा । भक्ति का वरदान दिया । लका का राजा बनाया । इस भाँति बहुत प्रकार से कृपा की । अब तो लका मेरा घर हुआ । रावण का नही रह गया । अब इतनी कृपा और कीजिये कि उसे अपने चरणरज से पवित्र कीजिये और वहाँ राजोपचार के साथ स्नान कीजिये । जिसमे लड़ाई की थकावट मिट जाय । विभीषणजी को वह समय याद है जब कि सरकार ने विशेष रूप से श्रान्त होकर उनकी ओर देखा था ।

अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजे । मज्जन करिअ समर स्रम छीजे ॥
देखि कोस मदिर संपदा । देहु कृपाल कपिन्ह कहुँ मुदा ॥३॥

अर्थ : अब इस दास के घर को सरकार पवित्र करें और समर के श्रमापनोदनार्थ मङ्गल स्नान करें। कोष सम्पदा और घरो को देखकर प्रसन्न होकर बन्दरो को दीजिये ।

व्याख्या : लका मेरा घर तो हुआ । पर उसकी अपवित्रता न गयी । कहुँ महिष मानुष धेनु अज खर खल निसाचर भच्छही । सरकार के चरणो के चले जाने से वह पवित्र हो जायगा । सरकार थके हुए हैं : बिना मङ्गल स्नान के थकावट शीघ्र दूर न होगी और यथार्थ रूप से मङ्गल स्नान तो वही पर चलने से होना सम्भव है । वहाँ स्नानगृह आदि सब सामग्री प्रस्तुत है । तीसरी बात यह है कि सरकार ने न अभी कोष का निरीक्षण किया न वहाँ के घरो को ही देखा न वह सम्पदा ही देखी जो रावण ने तीनो लोको से ला-लाकर इकट्ठी कर रक्खी है । अत. उनका निरीक्षण करें और उन्हे वानरी सेना मे वितरण करें । बन्दर लोग घर जायँगें तो लोग पूछेंगे कि लका विजय मे तुम्हे क्या मिला ? अत. वे खाली हाथ घर न जाँय । यहाँ सम्पदा का कोई घाटा नही ।

सब बिधि नाथ मोहि अपनाइअ । पुनि मोहि सहित अवधपुर जाइअ ॥
सुनत बचन मृदु दीन दयाला । सजल भये द्वौ नयन बिसाला ॥४॥

अर्थ . हे नाथ ! मुझे सब प्रकार से अपनाइये और फिर मेरे साथ अयोध्या

जाइये। कोमल वचन सुनते ही दीन दयाल रामजी की दोनो बडी-बडी आँखो मे जल भर आया।

व्याख्या सरकार ने बहुत प्रकार से अपनाया पर सब भाँति नही अपनाया। जब मेरी सम्पत्ति का उपयोग अपनी सम्पत्ति की भाँति नही किया तब मै अपने को पूरी तरह से अपनाया हुआ कैसे मानूँ। तत्पश्चात् अपने साथ मुझे अयोध्या ले चलिये जिसमे वहाँ भी मेरा सबसे परिचय हो जाय तब सम्बन्ध दृढ होगा।

नाइ चरन सिर कह मृदुबानी से उपक्रम और सुनत वचन मृदु से उपसहार। सरकार दीन दयाल हैं। नेत्रो मे जल भर आया। सरकार विभीषण का सब कहा करते हैं पर यह नही कर सकते। एक इनसे भी बडा प्रेमी दु खी है महादीन हो रहा है। उसके स्मरण से सरकार के नेत्रो मे जल आ गया।

दो. तोर कोस गृह मोर सब सत्य वचन सुनु भ्रात।
भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कलप समजात ॥
तापस बेष गात कृस जपत निरंतर मोहि।
देखौ बेगि सो जतनु करु सखा निहोरौ तोहि ॥
बीते अवधि जाउँ जौ जियत न पावौ बीर।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि पुनि पुलक सरीर ॥११६॥
करेहु कलप भर राजु तुम्ह मोहि सुमिरेहु मन माँहि।
पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ सत सब जाहि ॥

अर्थ : हे भाई! तेरा कोष और घर सब मेरा है। यह बात सच है पर भरत की दशा का स्मरण करके मुझे एक पल कल्प के समान बीत रहा है। तपस्वी का वेष धारण किये हुए और दुर्बल शरीर जो मेरा निरन्तर जप कर रहा है. ऐसे भरत को मैं जल्दी देखूँ ऐसा उपाय करो। मैं तुम्हारा निहोरा करता हूँ। अवधि बीतने पर यदि जाऊँगा तो भाई को जीता न पाऊँगा। भरत की प्रीति को स्मरण कर प्रभु बार बार पुलकायमान हो रहे हैं। तुम पूरे कल्प भर राज्य करना और मुझे मन मे स्मरण करना तत्पश्चात् तुम मेरे धाम को प्राप्त होगे। जहाँ सब सन्त लोग जाते हैं।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि सब प्रकार से अपनाने मे जो त्रुटि है, उसे मैं मिटाये देता हूँ। तुम्हारा घर और सम्पत्ति सब मेरी है। मैंने सब स्वीकार कर लिया। मैं तुम्हे भाई मानता हूँ। मेरा वचन सत्य है। रामो द्विर्नैव भाषते। परन्तु तुम्हारे घर जाना मङ्गल स्नान करना नही हो सकता। मुझे भरत की दशा का स्मरण हो रहा है। मुझे समय एकदम नही है। एक पल मेरे लिए कल्प हो रहा है मुझे भाई के दर्शन की प्यास है। भरतजी का दैन्य कहते हैं : भरतजी ने सब भोग त्याग रखा है। तपस्वी वेष बनाये विरह व्यथा से दुर्बल मेरा ही स्मरण रात

दिन कर रहे हैं। यथा : बैठे देखि कुसासन जटामुकुट कृसगात। राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात। मुझे विश्राम भरत के शीघ्र दर्शन में है और मैं इतना शीघ्र वहाँ पहुँच नही सकता। अतः तुम्हारा निहोरा मुझ पर है : ऐसा उपाय करो कि मैं भरत को शीघ्रातिशीघ्र देख सकूँ।

देर करके पहुँचने में बड़ा भारी अनर्थ है वह भाई मेरा ऐसा है कि अवधि बीतते ही प्राण त्याग करेगा। वीर भाई को भी कहते हैं शूर को भी कहते हैं। वह भाई वीर है उसे शरीर छोड़ने मे भी कुछ आगा पीछा न होगा। यथा : तुलसी बीते अवध प्रथम दिन जौ रघुवीर न ऐहौ। तौ प्रभु चरन सरोज सपथ जीवत परिजनहि न पैहौ। इस भाँति कहते हुए भरत की प्रीति का स्मरण करके सरकार को बार बार पुलक हो रहा है।

अब विभीषण को आज्ञा तथा शिक्षा देते हैं। तुम कल्पान्त तक राज्य करना। अर्थात् जबतक चन्द्र सूर्य हैं तबतक करना। बाहर से राजा बने रहना और मन से मेरा स्मरण करना। लोग यह न समझें कि विभीषण सब छोड़कर साधु हो गया पर रहना भीतर से साधु होकर मुझे विस्मरण न करना। राजा बने रहने से गति में भेद न होगो। अन्त मे तुम्हे मेरा धाम प्राप्त होगा : जहाँ सन्त लोग जाते है जहाँ जाने से फिर लौटना नही होता। यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परम मम।

सुनत बिभीषन बचन रामके। हरखि गहे पद कृपाधाम के॥
बानर भालु सकल हरखाने। गहि प्रभुपद गुन बिमल बखाने॥१॥

अर्थ : विभीषण रामजी के वचन सुनकर हर्षित होकर कृपाधाम के चरण पकड़ लिये। सब बन्दर भालु हर्षित हो गये और प्रभु के चरणो को पकड़कर निर्मल गुणों का वर्णन करने लगे।

व्याख्या : रामजी के ऐसे वचन मानो रघुकुल की रक्षा अब विभीषण के ही हाथ मे है। स्वयं जो कुछ किया वह कुछ नही। अब विभीषण का निहोरा अपने ऊपर ले रहे हैं अथवा सब भाँति अपनाने की प्रार्थना स्वीकृत हो गयी : इससे हर्षित हो रहे हैं अथवा अन्त में अपने धाम देने की प्रतिज्ञा से हर्षित होकर प्रभु के चरण पकड़ लिये। इधर बन्दर भालु अलग हर्षित हुए कि परमपद मे जब विभीषण का प्रवेश हुआ तो हम लोगो का रोक कैसे होगा। अथवा सरकार के सन्निधान से भालु बन्दरों की ऐसी साधुवृत्ति हुई कि विभीषणजी के अभ्युदय से आनन्दित होकर सरकार के चरणों को पकड़कर निर्मल गुण गणो का गान करने लगे। हर्षित सब हुए पर जिनकी योग्यता थी उन्होंने ही चरणों को पकड़कर गुणगान किया। प्रभु गुणगान के पहले श्रीचरणो का ध्यान स्मरण अवश्य कर लेना चाहिए।

बहुरि बिभीषन भवन सिधाये। मनि गन बसन बिमान भराये॥
लै पुष्पक प्रभु आगे राखा। हँसि करि कृपासिंधु अस भाखा॥२॥

अर्थ विभीषणजी फिर घर गये विमान को मणिगण से भराया। पुष्पक को लेकर सरकार के सामने रखा। कृपासिन्धु हँसकर यह बोले।

व्याख्या तब विभीषण घर गये। सरकार को अयोध्या पहुँचाने के उपाय के लिए विभीषणजी ने निश्चय किया कि पुष्पक विमान सरकार को उपहार रूप मे देना चाहिए। केवल विमान ही नही उसे मणिगणो से भर भी दिया। सरकार ने स्वीकार कर लिया है कि तुम्हारा सब कोषादि मेरा है। अत उस स्वीकृति के साफल्य के लिए मणिगण विमान मे भरे गये। सोने की लङ्का है वहाँ सोने का कौन मूल्य है।

इस भाँति पुष्पक को पूर्ण करके सरकार के आगे रक्खा। भाव यह है कि इसम से जो इच्छा हो बन्दर भालुआ को दिया जाय। अयोध्या पहुँचाने मे यह पुष्पक विमान समर्थ है। यह सरकार के नजर है। सरकार हँसकर बोले। भरत के शीघ्रातिशीघ्र दर्शन की चिन्ता मिटी इससे हँसे। अथवा इन मणिगणो के ग्राहक न हम हैं और न हमारी सेना है पर विभीषण का मन रखना है। इसलिए हँसकर बोल रहे हैं। यथा हृदय अनुग्रह इन्दु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हासा।

चढि बिमान सुनु सखा बिभीषन। गगन जाइ बरषहु पट भूषन॥
नभ पर जाइ बिभीषन तबही। बरषि दिये मनि अबर सबही॥३॥

अर्थ हे सखा विभीषण! विमान पर चढकर आकाश मे जाकर मणि वस्त्र की वर्षा करो तब विभीषण ने आकाश मे जाकर सब मणि और वस्त्रो को बरस दिया।

व्याख्या सरकार ने आज्ञा दी कि सखा विभीषण इसी विमान पर चढकर आकाश मे चले जाओ और वहाँ से पट भूषणो की वर्षा वानरी सेना पर करो। अस्त्र शस्त्र की तो वर्षा कितनी बार वानरी सेना पर हो चुकी है। अब मणि भूषण की वर्षा होने दो। इतनी बडी सेना मे मणि भूषण इसी भाँति वितरण भी किया जा सकता है। एक एक बन्दर को बुला बुलाकर मणि भूषण देना असाध्य व्यापार है।

तदनुसार विभीषणजी ने आकाश मे जाकर सब भूषण वसनो को बरस दिया। विभीषणजी ये मणि भूषण वसन वानरी सेना के ही लिए लाये थे उन्ही को देना चाहते थे सरकार को नही। पूर्णकाम को कोई क्या दे सकता है। उनके लिए तो स्वय पुष्पक था।

जोइ जोइ मन भावै सोइ लेही। मनि मुख मेलि डारि कपि देही॥
हँसे राम श्री अनुजसमेता। परम कौतुकी कृपानिकेता॥४॥

अर्थ जिसे जो देखने मे अच्छा लगता है। वही बन्दर लेते हैं और मणि को मुख म डालकर उगल देते हैं। रामजी सीताजी तथा छोटे भाई के सहित हँस रहे हैं। कृपानिकेत परम कौतुकी हैं।

व्याख्या : वर्षा होने से मणि भूषण वसन तमाम पृथिवी पर बिखर गये। रुचि की विचित्रता के अनुरूप बन्दर लोग पसन्द करके ले रहे है। फल समझकर मणियोंको मुख मे डालते हैं और स्वाद हीन तथा कठोर मालूम होने पर उगल देते हैं। यह दृश्य देखकर सरकार भी हँस रहे हैं। जानकीजी और लक्ष्मणजी भी हँस रहे हैं। सरकार कृपा के घर हैं और बड़े कौतुकी हैं। विभीषण पर कृपा है, उनकी सम्पत्ति स्वीकार की जा रही है और जिन्हे दी जा रही है उन्हे उसके उपयोग का ही ज्ञान नही है। उनके विकृत आचरण से सबको हँसी आरही है। यह सरकार का विनोद है।

दो. मुनि जेहि ध्यान न पावहिं, नेति नेति कह वेद।
कृपासिंधु सोइ कपिन्ह सन, करत अनेक बिनोद ॥
उमा जोग जप दान तप, नाना मख व्रत नेम।
रामु कृपा नहि करहि तस, जसि निःकेवल प्रेम ॥११७॥

अर्थ . जिसे मुनि ध्यान मे नही पाते और जिसे वेद नेति नेति कहता है। वही कृपासिन्धु बन्दरो के साथ अनेक विनोद करते हैं। हे उमा ! योग जप दान तप नाना व्रत यज्ञ और नियम से रामजी वैसी कृपा नही करते जैसी कि विशुद्ध प्रेम से करते हैं।

व्याख्या : इन्द्रियगोचर होना तो बड़ी दूर की बात है। ध्यान में भी जो मुनि लोगो के नही आते सामान्य लोगों की गणना क्या है और वेद भी यह नही यह नही कहकर निरूपण करता है। अर्थात् जो मन वाणी के अगोचर है वह प्रभु कृपासिन्धु हैं। कृपा करके इन्द्रियगोचर होकर बन्दरों के साथ अनेक प्रकार का विनोद कर रहे हैं। बन्दरो से पूछते हैं कि मणि कैसा है ? वे कहते हैं कि सरकार देखने मे ही सुन्दर हैं पर किसी काम का नही है। न इसमे स्वाद है न गन्ध है इत्यादि। वेद और विनोद का जोड़ नही। इसलिए तुक नही बैठने दिया।

शंकर भगवान् उमा से सरकार का स्वभाव कहते है : योग जप दान तप व्रत और नियम ये ही छः कारण भगवत् कृपा के हैं। इन्हे मुनि लोग वेद विधि से आचरण करते हैं। अतः उन पर सरकार की कृपा होती है पर ऐसी नही होती कि प्रत्यक्ष होकर उनसे विनोद करें। ऐसी कृपा तो जप योग नेम व्रत वर्जित प्रेम से ही होती है। बन्दर कर्म के अनधिकारी हैं। इनमे सिवा प्रेम के और क्या है ? पर उसी प्रेम के सरकार परवश है। उनके साथ बैठकर विनोद कर रहे हैं।

भालु कपिन्ह पट भूपन पाए। पहिरि पहिरि रघुपति पहिं आए ॥
नाना जिनिस देखि प्रभु कीसा। पुनि पुनि हँसत कोसलाधीसा ॥१॥

अर्थ : भालु और बन्दरो ने गहने कपडे पाये तो उन्हे पहनकर रामजी के

पास आये। अनेक रूप मे बन्दरो को देखकर कोशलाधीश रामजी बार बार हँसते हैं।

व्याख्या : बन्दर भालु का गहने कपडे से क्या सम्बन्ध ? वे न स्वय रखें न दूसरे का रहने दें। यदि देवात् उनके हाथ गहना कपडा लग जाय तो उसे नष्ट करके ही मानें। परन्तु यह गहना कपडा की वर्षा तो उनके लिए सरकारी आज्ञा से हो रही है। अत उनके प्रति आदर है। लोगो को गहना कपडा पहने देखा है इसलिए उन्हे महाप्रसाद समझकर धारण किया। राजा के यहाँ से जो कुछ वस्त्रा-भूपण पुरस्कार रूप से मिले उसे धारण करके राजा के सामने उनकी प्रसन्नता के लिए जाने का नियम है। अथवा कृतज्ञता प्रकाश के लिए पहन पहनकर सरकार के पास आये।

बन्दर भालु के वस्त्राभूपण धारण करने से विचित्र शोभा हुई। धारण तो उन लोगो ने कर लिया पर धारण करना आता नही। अत और भी अद्भुत मूर्ति हो गये हैं। इनके दर्शन से हँसी रोके नही रुकती। सरकार तो कोशलाधीश हैं। वस्त्राभूपण धारण की बारीकी को जानते हैं। अतः बार बार हँसते हैं।

चितै सबन्ह पर कीन्ही दाया। बोले मृदुल बचन रघुराया ॥
तुम्हरे बल मै रावनु मारयो। तिलकु बिभीपन कहुँ पुनि सारयो ॥२॥

अर्थ : देखकर सब पर दया की और रघुपति कोमल वचन बोले। तुम्हारे बल से मैंने रावण को मारा और फिर विभीपण को तिलक भी कर दिया।

व्याख्या : सरकार की कृपादृष्टि से श्रमापनोदन होता है। यथा : राम कृपा करि चितवा सबही। भये बिगतस्रम बानर तबही। अपना श्रमापनोदन न किया पर बन्दरो का कृपावलोकन से कर दिया। सरकार की कृपा से निरन्तर कुशल होता है। देवता मनुष्य और मुनियो पर कृपा होती है। सो भालु बन्दर के निरन्तर कुशल के लिए उनपर दया की।

उनको बड़ाई देते हुए।बोले कि रावणवध जो मैने किया वह तुम लोगो के बल से हुआ नहीं तो अकेले मेरा किया क्या होता। इसी भाँति विभीपण को राज्य देकर जो अपनी प्रतिज्ञा पूरी की वह भी तुम लोगो के बल से ही सम्पन्न हुआ। तुम लोगो द्वारा मेरा बडा उपकार हुआ। मेरे कार्य करने के लिए तुम लोगो ने अपना घर छोड रखा है सो अब मेरा सब कार्य तुम लोगो की सहायता से सम्पन्न हो गया।

निज निज गृह अब तुम्ह सब जाहू। सुमिरेहु मोहि डरपहु जनि काहू ॥
बचन सुनत प्रेमाकुल बानर। जोरि पानि बोले सब सादर ॥३॥

अर्थ : अब तुम लोग अपने घर चले जाओ। मेरा स्मरण करते रहना और किसी से नही डरना। वचन सुनते ही बन्दर लोग प्रेम से आकुल हो उठे। सब हाथ जोड़कर आदर के साथ बोले।

व्याख्या : अब तुम लोग अपने अपने घर जाओ। अब जिस भाँति आये हो उसी भाँति किष्किन्धा लौटने की अवश्यकता नही जहाँ से जिसका घर सीधा पड़े उसी रास्ते चले जाओ। संगठन का कार्य समाप्त हो गया। तुम लोग अपने घर की ओर रवाना हो जाओ तब हम अपने घर की ओर प्रस्थान करें। सरकार पुरस्कार रूप मे उन्हे अभय दान दे रहे हैं और शिक्षा रूप मे सदा अपने स्मरण के लिए कह रहे हैं। भावार्थ यह कि बन्दर भालु का न तो धन से कोई उपकार हो सकता है और न किसी सूक्ष्मतत्त्व के उपदेश की उनमे पात्रता है। अतः सब उपदेशो का सार उन्हे दो मोटी मोटी बातो मे बतला दिया कि मुझे स्मरण करते रहना और किसी से डरना नही। मेरा वरद हस्त सदा तुम्हारे सिर पर रहेगा।

सरकार द्वारा अपनी इतनी बडाई के वचन को वे सँभाल न सके। प्रेम के आवेग से व्याकुल हो उठे। मन से प्रेमाकुल तन से पानि जोरि और वचन से बोले सब सादर। एक ही भाव सबके हृदय से उठा। अतः सबका एक साथ एक ही वचन बोलना कहते हैं।

प्रभु जोइ कहहु तुम्हहि सब सोहा। हमरे होत बचन सुनि मोहा॥
दीन जानि कपि किए सनाथा। तुम्ह त्रैलोक ईस रघुनाथा॥४॥

अर्थ : प्रभो! आप जो कुछ कहें सभी आपको शोभा देता है पर ऐसा वचन सुनकर हम लोगो को मोह होता है। हे रघुनाथ! आप त्रैलोक्य के ईश हैं हम लोगो को दीन जानकर आपने सनाथ किया।

व्याख्या : भाव यह कि कैसे कहे कि सरकार का कहना ठीक नही है हम तो सरकार के बल से निशाचरो से लडे नही तो कहाँ हम तृणराशि और कहाँ निशाचर अग्नि! हमारी उनकी लडाई कैसी पर हम जयशील सरकारी बल से हुए। यथा : कपि जयसील राम बल ताते। स्वामी को सभी कुछ शोभा देता है वह यदि अपने पुरुषार्थ का सेवक पर आरोप करे तब भी शोभा है। पर हम लोगो को तो ऐसे वचन से मोह होता है। यथा : सुनि प्रभु वचन मोह मति करषी।

हम सरकार के स्वरूप को जानते हैं। सरकार त्रैलोक्य के स्वामी हैं। अवतार धारण करके रघुकुल को सनाथ किया है। सरकार दीनानाथ हैं : दीन जानकर हम लोगो को सनाथ किया है। नही तो बन्दरो का नाथ कोई बनना नही चाहता। त्रैलोक्य के नाथ होने से आप सबके नाथ हैं। तव निज भुजबल राजिव नैना। कौतुक लागि संग कपि सेना। आपको राक्षसो का रणमद हम लोगो के हाथ से चूर्ण कराना था।

सुनि प्रभु बचन लाज हम मरही। मसक कहूँ खगपति हित करही॥
देखि रामरुख बानर रीछा। प्रेम मगन नहि गृह कै ईछा॥५॥

अर्थ : प्रभु का वचन सुनकर हम लज्जा से मरे जाते हैं। मच्छर कहीं गरुड

की सहायता कर सकता है। रामजी का रुख देखकर बन्दर भालु प्रेम मे मग्न हो गये। उन्हे घर की इच्छा नही रह गयी।

व्याख्या बन्दर भालु कहते हैं कि प्रभु के वचन से हम तो लज्जा से मरे जाते हैं। बडे की स्तुति से छोटे को लज्जा होती है। स्तुति के गुणो की हमारे मे सम्भावना नही। अत हमारे लिए सरकार द्वारा स्तुति अतीव लज्जाजनक है। गरुड यदि कहे कि वाताशन नागो को मैने मच्छरो की सहायता से वध किया तो गरुड की तो बडाई है कि वह मच्छरो को महिमा प्रदान कर रहा है। पर मच्छरो को तो कही डूबने को स्थान नही है।

सरकार का रुख है कि बन्दर भालु घर जायँ। उनको घर की इच्छा नही। वे सरकार के प्रेम मे मग्न हैं। सरकार को छोडना नही चाहते। घर की ओर चित्त की वृत्ति जाती ही नही बिसरे गृह सपनेहु सुधि नाही। जिमि परद्रोह सन्त मन माही। रुख देख लिया कि इन्होने विदा कर दिया। क्योकि ऐसा कहकर सरकार विमान पर सवार हो गये।

दो प्रभु प्रेरित कपि भालु सब, रामरूप उर राखि।
हरप विपाद सहित चले, विनय बिबिध विधि भाखि॥
कपिपति नील रीछपति, अगद नल हनुमान।
सहित बिभीपन अपर जे, जूथप कपि बलवान॥
कहि न सकहि कछु प्रेम बस, भरि भरि लोचन बारि।
सनमुख चितवहि रामतन, नयन निमेप निबारि॥११८॥

अर्थ प्रभु से प्रेरित होकर सब बन्दर भालु रामजी के रूप को हृदय मे रखकर अनेक प्रकार से विनती करके हर्ष विपाद सहित चले। जामवन्त, सुग्रीव, नल, अङ्गद आदि और हनुमान्‌जी तथा विभीपण के सहित और जितने बलवान् यूथपति बन्दर थे वे सब प्रेमवश कुछ नही कह सकते थे। आँखो मे आँसू भरा हुआ रामजी की ओर निर्निमेप नेत्र से देख रहे थे।

व्याख्या अन्तर्यामी की प्रेरणा बडी बलवती है। इतना प्रेम होने पर भी चलने को तैयार हो गये। परन्तु प्रस्थान होने के पहिले रामजी के रूप को हृदय मे रख लिया और अनेक प्रकार को विनती करके चल पडे। घर जाने का हर्ष और प्रभु के वियोग का विपाद भी है। बन्दरो को घर जाने की इच्छा ही नही थी। पर अन्तर्यामी की प्रेरणा से घर जाने की इच्छा हो गयी।

परन्तु जाम्बवान्, सुग्रीव, नल, अङ्गद, हनुमान् और विभीपण तथा अन्य बलवान् यूथप नही गये। बलवान् यूथपो मे भी तो बल सरकारी है। उन पर विशेप कृपा है। अत विशेष बलवान् हैं।

अन्य बन्दरो ने विविध प्रकार से विनय भी की। पर ये लोग तो बोलने मे

भी समर्थ नही हुए। प्रेम के वश मे हो गये हैं। प्रेमातिशय से वे सरकार को आँख से ओट करना नही चाहते। अत निर्निमेष नेत्रो से दर्शन कर रहे है।

अतिसय प्रीति देखि रघुराई। लीन्हे सकल बिमान चढाई॥
मन महु विप्र चरन सिर नाये। उत्तर दिसिहि बिमान चलाये॥१॥

अर्थ . रघुराई रामजी ने अत्यन्त प्रीति देखकर सबको विमान पर चढा लिया। मन मे ब्राह्मण के चरण का नमस्कार किया और विमान को उत्तर की ओर चलाया।

व्याख्या सामान्य वानर सैनिको से बडे बडे सरदारो की प्रीति कही बढी चढी है। सरकार ने देखा इन्हें अत्यन्त प्रीति है। उनको तो घर जाने की दबी हुई इच्छा भी थी। इन्हे वह भी नही। ये लोग विभीषण की भाँति अयोध्या जाना चाहते हैं। अत सरकार ने सबको विमान पर चढ़ा लिया। मन मे ब्रह्मकुल को प्रणाम किया। क्योकि पहिले सरकार वही जाना चाहते हैं। यह ब्रह्मकुल दण्डकारण्य मे था। आरण्यकाण्ड का मङ्गलाचरण करते हुए कवि ने ब्रह्मकुल को प्रणाम किया है। यथा : मूल धर्मतरोर्विवेकजलधे पूर्णेन्दुमानन्ददं। वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघन-ध्वान्तापह तापहं। मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ स्व सम्भव सकरं वदे ब्रह्मकुल कलकसमन श्रीरामभूपप्रिय। आरण्यकाण्ड की टीका मे इस श्लोक का अर्थ दिया गया है। भावार्थ यह है कि ब्रह्मकुल अष्टमूर्ति शङ्कररूप है। अयोध्या की सीमा तमसा से चलते समय सरकार ने शङ्करजी को प्रणाम करके यात्रा की। यथा राम लखन सिय जान चढि सभु चरन सिरु नाइ। सचिव चलायेउ तुरत रथ इत उत खोज दुराइ। अब घर लौटते समय ब्रह्मकुलरूप शङ्कर को प्रणाम करते हैं। ब्रह्मकुल के लिए ही निशाचर हीन पृथिवी करने की प्रतिज्ञा की थी। वह प्रतिज्ञा पूर्ण हुई। ब्रह्मकुल से ही सुरद्रोहियो के वध का मन्त्र लिया था। अत पहिले उसी ब्रह्मकुल मे जाना चाहते हैं। यथा कुभजादि मुनि नायक नाना। गये राम सबके अस्थाना। अत. प्रस्थान के समय शकररूप ब्रह्मकुल को प्रणाम करते हैं। विमान को भी अयोध्या चलने का आदेश न देकर केवल इतना ही आदेश दिया कि उत्तर की ओर चलो।

चलत बिमान कोलाहलु होई। जय रघुबीर कहै सब कोई॥
सिहासनु अति उच्च मनोहर। श्री समेत प्रभु बैठे तापर॥२॥

विमान चलते समय बडा शब्द हुआ। सब लोग रघुवीर की जय। ऐसा बोल रहे हैं। अत्यन्त ऊँचा और मनोहर सिहासन है। उस पर सरकार सीताजी के साथ बैठे।

व्याख्या . आज तो सबका अनुभूत विषय है कि वायुयान चलते समय बडा शब्द होता है। तिसपर स्वय विमानारूढ बानरवीर जयध्वनि कर रहे हैं। नीचे से बानरी सेना सरकार को विमान पर जाते हुए देखकर जयकार कर रही है। सबको अत्यन्त उत्साह है। अत जयकार पर जयकार लगता ही जा रहा है।

उस विमान पर स्वामी के बैठने के लिए अत्यन्त ऊँचा और सुन्दर सिंहासन बना हुआ है जिससे कि नीचे का सब दृश्य दिखाई पड़े। उस सिंहासन पर सरकार सीता के सहित बैठे।

८१ अवध प्रयाण प्रसंग

राजत रामु सहित भामिनी। मेरु शृंग जनु घनदामिनी ॥
रुचिर विमानु चलेउ अति आतुर। कीन्ही सुमन वृष्टि हरषे सुर ॥३॥

अर्थ : भामिनी स्त्री के सहित रामजी शोभित हुए। जैसे मेरु के शृङ्ग पर बादल बिजली सहित हो। सुन्दर विमान अत्यन्त आतुर होकर चला। देवताओं ने फूल बरसाया और हर्षित हुए।

व्याख्या : राम शब्द का अर्थ ही यही है कि : राजते यो महीस्थितः। बिना सीताजी के रामजी की वैसी शोभा नहीं थी। आज भगवती के साथ बड़ी शोभा हुई। श्री गोस्वामीजी उपमा देते हैं कि जैसे मेरु के शृङ्ग पर घन दामिनी की शोभा हो। पुष्पक की उपमा मेरु से है और अति उच्च मनोहर सिंहासन की उपमा शिखर से है। उसके ऊपर रामजी मेघ श्याम सुशोभित हैं और उनके अङ्क में भगवती जनक नन्दिनी की दामिनी की सी शोभा है। भगवती इस समय संकुचित नहीं जब कि कनक पङ्कज की कली की उपमा दी गयी थी। वे इधर उधर देख रही हैं। इसलिए चञ्चलता को लक्ष्य में रखकर दामिनी की उपमा दी गयी और वर्ण भी उनका बिजली सा है।

वह सुन्दर विमान जिसका नाम पुष्पक है। आकाश में ऐसा मालूम होता है मानो आकाशरूपी सरोवर में फूल खिला हो। वह आतुर होकर चला। वह मनोजव विमान है। स्वामी के मन की गति के अनुसार उसकी गति होती है। सरकार को अत्यन्त उत्सुकता है। अतः वह आतुर होकर चला। देवता लोग भी शोभा देखकर हर्षित हुए और मङ्गल के लिए पुष्पवृष्टि की।

परम सुखद चलि त्रिविध बयारी। सागर सर सरि निर्मल बारी ॥
सगुन होहिं सुंदर चहुँ पासा। मन प्रसन्न निर्मल नभ आसा ॥४॥

अर्थ : परम सुख देनेवाली शीतल मन्द सुगन्ध वायु चली। समुद्र तालाब नदी का जल निर्मल हो गया। चारों ओर सुन्दर सगुन होने लगे। मन प्रसन्न है और आकाश की दिशाएँ निर्मल हैं।

व्याख्या : शीतल मन्द सुगन्ध वायु सुखद होती ही है। पर उस समय की त्रिविध वायु परम सुखद थी। समुद्र तालाब तथा नदी में निर्मल जल हो गया। भाव यह कि प्रकृति में सुखावह परिवर्तन हुआ : परम सुखद चलि त्रिविध बयारी : से वायु में परिवर्तन कहा। सागर सर सरि निर्मल बारी : से जल में परिवर्तन कहा। सगुन होहिं सुन्दर चहुँ पासा : से पृथिवी कहा। निर्मल नभ आसा : से तेज तथा

आकाश में परिवर्तन कहा और सबसे बड़ी बात यह कहा कि : मन प्रसन्न। यह बडा भारी सगुन है। यथा : सगुन होइ सुंदर सकल मन प्रसन्न सब केर। प्रभु आगमन जनाव जनु नगर रम्य चहुँ फेर।

कह रघुबीर देखु रन सीता। लछिमन इहाँ हत्यो इंद्रजीता ॥
हनूमान अंगद के मारे। रन महि परे निसाचर भारे ॥
कुंभकरन रावन द्वौ भाई। इहाँ हते सुरमुनि दुखदाई ॥५॥

अर्थ : रामजी ने कहा सीते ! रणभूमि को देखो यहाँ लक्ष्मण ने इन्द्रजीत को मारा है। यहाँ हनुमान् और अङ्गद के मारे रण में बडे बडे राक्षस पड़े हुए हैं। सुर मुनि के दु.ख देनेवाले दोनों भाई कुम्भकर्ण और रावण को यहाँ मारा है।

व्याख्या : सरकार इतने ऊँचे पर हैं कि वहाँ से सम्पूर्ण रणभूमि दिखायी पड़ रही है। जहाँ कही कोई घटना विशेष हो पड़ती है वह भूमि ऐतिहासिक स्थल हो जाता है और विशेषतः यह रणभूमि तो ऐसी है। जहाँ रामजी ने युद्ध यज्ञ सम्पादन किया है। अतः उस पुण्य भूमि को सीताजी को दिखला रहे हैं। अङ्गुल्या निर्देश करके बतला रहे हैं कि यहाँ इन्द्र के जीतनेवाले मेघनाद को लक्ष्मणजी ने मारा है। विमान ऊपर चढ़कर एक बार मण्डलाकार गति किया। उसी समय सरकार दिखला रहे हैं। महा महा मुखिया जे पावहिं। ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं। उस युद्ध स्थल को दिखलाते हुए सरकार कहते हैं कि यहाँ महा मुखियो को हनुमान् अङ्गद ने मारा है। तब से वह स्थल आगया जहाँ रावण कुम्भकर्ण मरे थे। ये दोनो भाई एक ही स्थान मे मारे गये थे। अतः उसे दिखाते हुए कहते हैं कि : सुर मुनि दुखदाई : दोनो भाई कुम्भकर्ण और रावण को मैंने मारा।

दो. इहाँ सेतु बाँधेउ अरु, थापेउँ सिव सुखधाम।
सीता सहित कृपानिधि, संभुहिं कीन्ह प्रनाम ॥
जहँ तहँ कृपासिधु बन, कीन्ह बास बिस्राम।
सकल देखाए जानकिहि, कहे सबन्हि के नाम ॥११९॥

अर्थ : यहाँ सेतु बाँधा और यहाँ सुखधाम शिवजी को स्थापना की। सीता के सहित कृपायतन ने शिवजी को प्रणाम किया। जहाँ जहाँ करुणासिन्धु बसे थे या विश्राम किया था। वह सब जानकीजी को दिखाया और सबका नाम बताया।

व्याख्या : दिखलाने के व्याज से सरकार वह सब कथाएँ भी कह रहे हैं जो जो जानकीजी की अनुपस्थिति मे हुई थी। विमान का वेग दिखलाते हैं कि बात की बात मे विमान सौ योजन आ गया। तब सरकार कहते हैं कि यही सेतु बाँधा और सुखधाम शिवजी की स्थापना की। स्थापना मे जानकीजी नही थी। अतः विधि को पूरी करने के लिए सरकार सस्त्रीक प्रणाम कर रहे हैं।

सरकार करुणासिन्धु हैं। सीताजी के विरह में एक वन से दूसरे में भटकते फिरे हैं। कहीं बस गये तो कहीं विश्राम ही किया। उन सब स्थलों को जानकीजी को दिखलाया। जानकीजी उन स्थलों को नहीं जानती थीं और उनका नाम बतलाया। यथा : यह पम्पासर है। यह ऋष्यमूक है। यह प्रवर्षणगिरि है। बिना नाम जाने जानना न जानना बराबर हो जाता है।

तुरत बिमान तहाँ चलि आवा। दंडक बन जहँ परम सुहावा॥
कुंभजादि मुनि नायक नाना। गए राम सबके असथाना॥१॥

अर्थ : विमान तुरन्त वहाँ चला आया। जहाँ कि परम सुहावन दण्डक वन था। अगस्त्य आदि अनेक मुनीश वहाँ थे। रामजी सबके स्थानों पर गये।

व्याख्या : विमान में बड़ा वेग है। बात की बात में दण्डक वन पहुँच गया। दण्डक वन को सरकार ने सुहावन किया था। इसलिए वह परम सोहावा हो गया था। अगस्त्यजी ने कहा था : दण्डक वन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिवर कर हरहू। अगस्त्यजी का आश्रम दण्डक वन के सन्निकट था। दण्डक वन में उस समय ऋषि नहीं रहते थे। सरकार के निवास करने पर आने जाने लगे थे। अगस्त्यादि मुनि अर्थात् अगस्त्यजी के भाई तथा सुतीक्ष्ण आदि शरभंग ऋषि के आश्रम से लेकर अगस्त्यजी के आश्रम के बीच में रामजी ने बहुत दिनों तक अनेक ऋषियों के आश्रमों में निवास किया था। यथा : सकल मुनिन्ह के आस्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह। सो रामजी सबके आश्रमों पर विदा लेने गये। इस प्रान्त में अगस्त्य मुनि सबसे प्रधान थे। अतः प्रधानतः उन्हीं का नाम लेते हैं।

सकल रिषिन्ह सन पाइ असीसा। चित्रकूट आएउ जगदीसा॥
तहँ करि मुनिन्ह केर संतोषा। चला बिमान तहाँ ते चोखा॥२॥

अर्थ : सब मुनियों से आशीर्वाद पाकर जगदीश चित्रकूट आये। वहाँ मुनियों का सन्तोष किया। वहाँ से चोखा विमान चला।

व्याख्या : सब मुनियों ने सरकार से फरियाद किया था। यथा : निसिचर निकर सकल मुनि खाये। इसपर सरकार ने प्रतिज्ञा की थी : निसिचर हीन करउँ महि। सो पूरी करके आ रहे हैं। अब मुनियों को राक्षसों से कोई भय नहीं रह गया। अतः सन्तुष्ट होकर आशीर्वाद दे रहे हैं। अथवा आशीर्वाद देकर विदा कर रहे हैं।

जगदीश हैं। नरतन सन्त सुर के हितार्थ धारण कर रक्खा है। यथा : नर तन धरेउ सन्त सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा। स्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीस माया जानकी। वहा मुनियों का सन्तोष किया। चित्रकूट से चलते समय अति प्रसन्न मुनियों ने विदा नहीं किया था। यथा : केहि बिधि कहौं जाहु अब स्वामी। सब दरसी तुम अंतरयामी। अतः उन्होंने लौटते समय

मिलकर सन्तोष किया। तब वहाँ से विमान पर चढकर चले। विमान का वेग और बढ़ा इसलिए चोखा कहते है।

बहुरि राम जानकिहि देखाई। जमुना कलिमल हरनि सोहाई॥
पुनि देखी सुरसरी पुनीता। राम कहा प्रनामु करु सीता॥३॥

अर्थ : फिर रामजी ने कलिमल को हरण करनेवाली सुन्दर यमुनाजी का सीताजी को दर्शन कराया। फिर पवित्र गंगाजी को देखा। रामजी ने कहा कि सीते! प्रणाम करो।

व्याख्या : जितने पुण्य स्थल रास्ते मे पड़ते जाते हैं उन सबको रामजी दिखलाते जाते है। पहिले युद्ध यज्ञभूमि दिखलायी। सेतुसिन्धु दिखलाया। रामेश्वर दिखलाया। जिन जिन स्थानों पर विश्राम और निवास करके उन्हे तीर्थीभूत बनाया था उन्हे दिखलाया। अब चित्रकूट से विमान के ऊपर उठते ही कलियुग के मल को हरण करनेवाली यमुना दिखायी पड़ी। यमुना का माहात्म्य कहते हैं कि ये कलियुग के मल को हरण करती हैं। अन्यमलों की गणना ही क्या है। जब से सीताजी को यमुना दिखलाते हैं तब से गंगाजी दिखायी पड़ गयी। अतः रामजी कहते हैं कि सीते! प्रणाम करो। यहाँ दोनो को एक साथ ही प्रणाम है। गंगाजी पवित्रता की सीमा हैं। अतः सुरसरी पुनीता कहते हैं।

तीरथ पति पुनि देखु प्रयागा। देखत जनम कोटि अघ भागा॥
देखु परम पावनि पुनि वेनी। हरनि सोक हरि लोक निसेनी॥४॥
पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि। त्रिविध ताप भवरोग नसावनि॥५॥

अर्थ : फिर तीर्थराज प्रयाग को देखो जिसके दर्शन से करोड़ जन्म के पाप भागते हैं। फिर परम पवित्र त्रिवेणीजी का दर्शन करो जो शोक का हरण करनेवाली और हरिलोक के लिए सीढ़ी रूप हैं। फिर अति पवित्र अयोध्यापुरी देखो जो तीनो ताप और भवरोग को नाश करनेवाली है।

व्याख्या : विमान इतने ऊँचे पर है और उसका वेग इतना है कि तब से प्रयागराज की प्रान्तभूमि दिखायी पड़ी। प्रयागराज तीर्थों के राजा हैं। कलुष पुञ्ज के लिए मृगराज है। अतः वे अमिट पाप जो कोटिजन्म से पीछा नही छोड़ते इनके दर्शन से भाग निकलते हैं। प्रयाग में भी त्रिवेणी का बड़ा माहात्म्य है। वह आध्यात्मिक आधिदैविक और और आधिभौतिक ताप को नाश करती हैं। इस भाँति दोपापनोदन करके कल्याण का विधान करती है। आप स्वयं विष्णु लोक के लिए निसेनी : सीढ़ी रूप हो जाती हैं। अर्थात् उनका आश्रयण करने से विष्णु लोक की प्राप्ति होती है। इतनी ऊँचाई पर विमान है कि त्रिवेणी पहुँचने के पहिले ही अयोध्यापुरी दिखायी पड़ी। उसका माहात्म्य कहते है कि वह तीनों ताप के नाश के साथ साथ भवरोग का ही नाश कर देती है। यथा : अवध तजे तन नहि ससारा।

दो० सीता सहित अवध कहुँ कीन्ह कृपाल प्रनाम ।
सजल नयन तन पुलकित पुनि पुनि हरषित राम ॥
पुनि प्रभु आइ त्रिवेनी हरषित मज्जनु कीन्हि ।
कपिन्ह सहित बिप्रन्ह कहुँ दान बिबिध बिधि दीन्हि ॥१२०॥

अर्थ : तब कृपाल रामजी ने सीता के साथ अयोध्या को प्रणाम किया । सजल नयन और पुलकित होकर बार-बार हर्षित होने लगे । फिर हर्षित होकर सरकार ने त्रिवेणी मे मज्जन किया और बन्दरोके सहित ब्राह्मणोको अनेक प्रकार के दान दिये ।

व्याख्या : अयोध्या के दृष्टिगोचर होते ही लक्ष्मण और सीताजी के सहित रामजी ने अवध को प्रणाम किया । वन जाते समय भी प्रणाम किया था । यथा : चले हृदय अवधहिं सिरु नाई । अब लौटते समय भी प्रणाम करते हैं । अयोध्या पर सरकार का बडा प्रेम है । उसे जन्मभूमि मानते हैं । चौदह वर्ष के बाद उसका दर्शन हो रहा है । अत हर्षातिरेक से सात्त्विक भाव हो गया । नेत्रो मे जल भर आया और शरीर मे पुलक हो गया ।

प्रयागराज के प्रति सरकार की बड़ी श्रद्धा है । वन जाते समय चित्रकूट का सीधा रास्ता छोड़कर प्रयागराज गये । लौटते समय तो आकाश मार्ग से आ रहे हैं । अत: अत्यन्त त्वरा होने पर भी यहाँ उतरे । प्रयागराज मे भी त्रिवेणी का बडा माहात्म्य है । क्योकि यही तीर्थराज का सिंहासन है । आज त्रिवेणी स्नान कर रहे हैं । इस बात का हर्ष है । स्नान के बाद दान का विधान है । अत सरकार ने अनेक विधान से ब्राह्मणो को दान दिया और सरकार के साथ बन्दरो ने भी दान दिया । वन जाते समय जब सरकार ने प्रयाग स्नान किया उस समय दान की चर्चा कवि ने नही की । यथा . मुदित नहाइ कीन्ह सिव सेवा । पूजि यथा बिधि तीरथ देवा । सरकार लका विजय करके आ रहे हैं कम से कम समुद्र से उपहार मे मिले हुए रत्न तो पास मे हैं ही । यथा : कनक थार भरि मनिगन नाना । बिप्ररूप आये तजि माना । बन्दरो के पास भी मणि भूषण का घाटा नही । अत: सबका विविध प्रकार से दान करना कहा ।

प्रभु हनुमतहि कहा बुझाई । धरि बटु रूप अवधपुर जाई ॥
भरतहि कुसल हमारि सुनाएहु । समाचार लै तुम्ह चलि आएहु ॥१॥

अर्थ : सरकार ने हनुमान्‌जी को समझाकर कहा कि ब्रह्मचारी का वेष धारण करके अयोध्या जाओ । भरतजी को हमारी कुशल सुनाओ और समाचार लेकर तुम चले आओ ।

व्याख्या : सरकार जानते हैं कि समाचार सुनाने मे हनुमान्‌जी बडे कुशल हैं । बुद्धिमता वरिष्ठ हैं । अत उन्ही को भरतजी के पास भेजते हैं और समझाकर कहते हैं :

आइ कहो मोते बहुरि भरत हृदय की बात।
मुख त्रिकार आकार ते जो कछु तुमहि लखात॥
भरयो सकल सुख भोगते हयगम रथ सब साज।
काको मन डोलत नही पाइ बपौती राज॥
जौ कछुहू रुचि भरत के मन मे होवैं आज।
सारी बसुधा को वही करैं अकटक राज॥

और यह भी कहते हैं कि तुम ब्रह्मचारी वेष से जाना। अर्थात् जिस वेष से मुझसे मिले थे उसी वेष से भरतजी से मिलना जिसमे भरतजी से मिलने मे सुभीता हो और यह समाचार भरतजी पहिले तुम्हारे मुँह से सुने। तभी उनके आकार चेष्टा से हृद्गत भाव का ठीक थाह लग सकेगा। भरतजी को हम लोगो का समाचार सुनकर घर का सब समाचार . माँ लोग सब जीवित हैं कि नही ? प्रजावर्ग सब सुखी तो हैं ? इत्यादि लेकर तुम चले आना। यह न समझना कि विमान आता ही होगा। व्यर्थ क्यो जायँ ? हम तुम्हारी बाट शृंगवेरपुर मे जोहते रहेंगे।

तुरत पवनसुत गवनत भएऊ। तब प्रभु भरद्वाज पहिं गएऊ॥
नाना विधि मुनि पूजा कीन्ही। अस्तुति करि पुनि आसिष दीन्ही॥२॥

अर्थ : हनुमान्‌जी तुरन्त चल पडे। तब सरकार भरद्वाजजी के पास गये। नाना प्रकार से मुनिजी ने पूजा की स्तुति की और तब आशीर्वाद दिया।

व्याख्या : हनुमान्‌जी तुरन्त बडे वेग से चले। इसलिए पवनसुत शब्द का प्रयोग किया। तब सरकार जगम तीर्थराज भरद्वाजजी के आश्रम पर गये। सरकार बडी शीघ्रता मे हैं। अत: कवि भी शीघ्रता कर रहे हैं। अत्यन्त सक्षेप मे कथा कह रहे हैं। वन जाने के समय जब उनके पास गये थे तब भी उन्होने पूजा की थी। यथा : कुसल प्रस्न करि आसिष दीन्हे। पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे। अब वन से लौटने के समय नाना प्रकार से पूजा की। स्तुति करके आशीर्वाद दिया।

मुनिपद बंदि जुगल कर जोरी। चढि विमान प्रभु चले बहोरी॥
इहाँ निपाद सुना हरि आएउ। नाव नाव कहँ लोग बुलाएउ॥३॥

अर्थ : मुनि के चरणकमलो की वन्दना दोनो हाथो को जोडकर की और विमान पर चढकर प्रभु फिर चले। यहाँ निपाद ने सुना कि सरकार आगये वह नाव नाव कहकर लोगों को पुकारने लगा।

व्याख्या निपादराज के दूत चित्रकूट फैले हुए हैं। प्रयागराज के दूत ने समाचार दिया कि सरकार आ गये। निपादराज नाव नाव कहकर पुकार रहे हैं। अपने पास बुलाकर नाव लाने को नही कहते। इतनी उत्सुकता बढ़ी हुई है अपने पार जाने के लिए नाव चाहते हैं।

सुरसरि नाघि जान जब आयो। उतरेउ तट प्रभु आयसु पायो॥
तब सीता पूजी सुरसरी। बहु प्रकार पुनि चरनन्हि परी॥४॥

अर्थ : गंगा पार करके जब विमान आया तब सरकार की आज्ञा पाकर किनारे पर उतरा। तब सीताजी ने गंगाजी की पूजा की और अनेक प्रकार से चरणों में गिरी।

व्याख्या : तब तक पुष्पक विमान गंगा पार आगया। सरकार प्रयागराज में उतरे। त्रिवेणी स्नान किया। भरद्वाजजी से मिले। इतनी देर में शृंगवेरपुर खबर पहुँच गयी। सरकार भी विमान द्वारा तवतक पहुँच गये। गंगा पार करने पर सरकार की आज्ञा से पुष्पक तट पर उतर पड़ा। सीताजी ने मनौती की थी : पति देवर संग कुसल बहोरी। आइ करौ जेहि पूजा तोरी। सो बात पूरी हुई। पति देवर के साथ सकुशल लौटी। अतः फिर गंगाजी का पूजन किया और कृतज्ञता प्रकाश के लिए बहुत प्रकार से दण्डवत प्रणाम किया।

दीन्हि असीस हरषि मन गंगा। सुंदरि तव अहिवात अभंगा ॥
सुनत गुहा धाएउ प्रेमाकुल। आएउ निकट परम सुख संकुल ॥५॥

अर्थ : गङ्गाजी ने प्रसन्नमन से आशीर्वाद दिया कि सुन्दरी! तेरा सौभाग्य अचल हो। सुनते ही निषादराज प्रेम से आकुल होकर दौड़ा और अत्यन्त सुख से भरा हुआ निकट आया।

व्याख्या : वन जाते समय सीताजी के विनय पर गङ्गाजी ने आशीर्वाद दिया था। उस वाणी का प्रादुर्भाव गङ्गा जल से हुआ कि : प्राननाथ देवर सहित कुसल कोसला आय। पूजहि सब मन कामना सुजस रहिहि जग छाय। वह आशीर्वाद अक्षरशः पूरा हुआ। अब लौटने पर सीताजी से पूजा पाकर सौभाग्य विषयक आशीर्वाद देती हैं। क्योंकि यही आशीर्वाद शेष था।

यह आशीर्वाद भी विमल वारि द्वारा वैखरी वाणी में प्रकट हुआ। निषादराज ने सुना। समझ लिया कि सरकार पार आगये। गङ्गापूजा हो गयी। गङ्गाजी आशीर्वाद दे रही हैं। अतः निषादराज दौड़ पड़े। प्रेम मे आकुल हो उठे। न तो प्रिय बन्धुओं को समाचार दिया न भेंट के लिए कुछ लिया।

प्रभुहि सहित बिलोकि बैदेही। परेउ अवनि तन सुधि नहि तेही ॥
प्रीति परम बिलोकि रघुराई। हरषि उठाइ लियेउ उर लाई ॥६॥

अर्थ : सरकार को विदेहराज की पुत्री के साथ देखकर वह पृथिवी पर गिर पड़ा। उसे शरीर की सुधि नहीं रही। उसकी परम प्रीति देखकर रामजी ने प्रसन्न होकर उसे हृदय से लगा लिया।

व्याख्या : वैदेही हरण तथा लंका पर चढ़ाई का हाल सुन चुका था। हनुमान्‌जी ने जो कुछ भरत से कहा है वह सब उसे मालूम है। आज वैदेही के साथ सरकार को देखकर वह लंका विजय का अनुमान करके आनन्द के वेग को न सहकर पृथिवी पर गिर जाता है।

रघुराई रामजी ने निषादराज की परम प्रीति की व्याकुलता देखी तो उसे उठाकर हृदय से लगाते है। परिष्वङ्ग प्रदान करते हैं। बिना इतनी प्रीति के परिष्वङ्ग प्रदान होता नही। आनन्दातिरेक में भी मृत्यु होती है। अतः आश्वासन के लिए उठाकर हृदय से लगा लिया।

छं. लिये हृदय लाइ कृपानिधान सुजान राम रमापती।
बैठारि परम समीप बूझी कुसल सो कर बीनती॥
अब कुसल पदपंकज बिलोकि बिरंचि संकर सेव्य जे।
सुखधाम पूरन काम राम नमामि राम नमामि ते॥

अर्थ : सुजान रमापति कृपानिधान राम ने उसे हृदय से लगा लिया और अत्यन्त निकट बैठाकर उसका कुशल मङ्गल पूछा। वह बिनती करने लगा : वह विनय करने लगा कि ब्रह्मा और शिव से सेवित इन चरण कमलों को देखकर अब कुशल है। हे सुखधाम पूर्णकाम राम आपको नमस्कार है नमस्कार है।

व्याख्या : रामजी कृपानिधान हैं : उसे हृदय लगाकर कृपा किया। सुजान हैं : गुणग्राहकता दिखलाया। रमापति हैं : सौशील्य दिखलाया : अब जानो मैं श्री चतुराई। भजी तुमहि सब देव बिहाई। उसे अत्यन्त आदर दिया। अपने सन्निकट बिठाया और कुशल पूछा। उसने विनती की कि ब्रह्मदेव और शिव से सेव्य जो चरणकमल हैं उनके दर्शन से अब कुशल है। जब दर्शन नहीं होते थे तब की दशा इस समय याद करना नही चाहता। कहता है कि हे सुखधाम पूर्णकाम राम आपको बारम्बार नमस्कार है।

छं.[1] सब भाँति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यों उर लाइयो।
मतिमंद तुलसीदास सो प्रभु मोहबस बिसराइयो॥
यह रावनारि चरित्र पावन रामपद रतिप्रद सदा।
कामादि हर बिग्यान कर सुरसिद्ध मुनि गावहिं मुदा॥

अर्थ : निषाद सब भाँति से अधम था। उसे हरि ने भरत की भाँति हृदय से लगा लिया। तुलसीदासजी कहते हैं कि रे मतिमन्द : मन ऐसे प्रभु को मोह के वश भुलवा दिया। यह रावणारि रामजी का चरित्र सदा रामजी के चरणों मे रति देनेवाला है। कामादिकों का हरण करनेवाला है। विज्ञान करनेवाला है। इसे देवता सिद्ध और मुनि प्रसन्न होकर गान करते हैं।

व्याख्या : सरकार अधमोद्धारण है। निषादराज तो सभी प्रकार से अधम था। यथा : लोक बेद सब भाँतिहि नीचा। जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा। सो उसे

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

भरत ऐसे भाई की भाँति हृदय से लगा लिया। ऐसे मालिक का तो दिन रात चिन्तन करना चाहिए। जो अज्ञानवश उसे भुलावे वह मतिमन्द है। अब सम्पूर्ण लकाकाण्ड की फलस्तुति कहते हैं। सरकार अघमोद्धारण है। परन्तु विश्वकण्टक के नाश करनेवाले हैं। रावण भूतद्रोही विश्वकण्टक था। उसका कुल और दल के साथ वध किया। इसलिए प्रभु को रावणारि कहते हैं। अतः रावणारि चरित्र से लकाकाण्ड की कथा अभिप्रेत है। यह कथा पवित्र है। पाप को हरण करती है। रामजी के चरणो मे भक्ति देती है। कामादि दोषो को दूर करके विज्ञान सम्पादन करती है। अत॰ वेद के काण्डत्रय का इसमे समावेश है। अत सुरसिद्ध और मुनि हर्षित होकर गान करते हैं। क्योकि इसमे अल्पायास से महाफल है। अथवा पावन है। इसलिए सुग्गान करते हैं। रामपद रतिप्रद है। इसलिए सिद्ध गान करते हैं। कामादि हर विज्ञानकर हैं। इसलिए मुनि गान करते है।

दो. समर बिजय रघुबीर के, चरित जे सुनहिं सुजान।
बिजय बिवेक बिभूति नित, तिन्हहि देहि भगवान ॥
यह कलिकाल मलायतन, मन करि देखु बिचार।
श्री रघुनाथ नामु तजि, नाहिन आन अधार ॥१२१॥

अर्थ : जो सुजान सरकार के समरविजय चरित्त को सुनते हैं उन्हे भगवान् नित्य विजय विवेक और विभूति देते हैं। हे मन ! विचार करके देख। यह कलियुग मल : पाप का घर है। इसमे सिवा राम नाम के कोई दूसरा आधार नही है।

व्याख्या : इस काण्ड की कथा मे श्रीरघुनाथ के समरविजय चरित्र का वर्णन है। इसके श्रवण का सम्यक् फल सुजान को ही मिलता है। जो पिण्ड तथा ब्रह्माण्ड मे रामजी के समर विजय का जानकार है उस श्रोता पर प्रसन्न होकर भगवान् उसे दोनो प्रकार की विजय देते हैं। शत्रु पर भी वह विजय पाता है और ससार शत्रु पर भी विजय पाता है। अतः उसे नित्य विभूति की प्राप्ति होती है।

यह कलियुग बड़ा कराल है। इसमे स्वभाव से चित्त का झुकाव पाप की ओर होता है और जितने साधन हैं वे निर्मल चित्त से ही साध्य हैं। अतः सब साधन करते हुए भी उन पर भरोसा नही किया जा सकता। यथा : एहि कलिकाल सकल साधन तरु है श्रम फलनि फरोसो। नाहिन आवत आन भरोसो। इस काल मे एकमात्र आधार एकमात्र भरोसा रामनाम का है। यथा : बहुमत मुनि बहु पंथ पुरानन्हि जहाँ तहाँ झगरो सा। गुरु कह्यो रामभजन नीको मोहि लागत राजडगरो सो। सियावर रामचन्द्र की जय !

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुपविध्वंसने
विमलविज्ञानसंपादनो नाम
षष्ठ: सोपान: समाप्त।

श्रीराम

श्रीगणेशाय नमः । श्रीगुरवे नमः

श्रीरामचरितमानस

उत्तरकाण्ड : सप्तम सोपान

सटीक

मङ्गलाचरण

श्लो. [1]केकीकंठाभ[2] नीलं [3]उरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्न[4]
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नं।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामं ॥

अर्थ : मोर के कण्ठ की दीप्ति सा जिनका वर्ण नील है। श्रेष्ठ वक्षःस्थल पर जिनके ब्राह्मण के चरण की छाप विराजमान है। जो शोभा के धनी हैं। पीताम्बर धारण किये हुए हैं। कमल से नेत्रवाले हैं। सदा सुप्रसन्न हैं। हाथ में धनुष बाण धारण किये हैं और जो वानरों के समूह से युक्त भाई से सेवित और पुष्पक विमान पर सवार हैं। ऐसे जानकी के पति पूज्य रघुवर राम को मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : उत्तरकाण्ड को सातवीं मोक्षपुरी द्वारावती माना गया है। द्वारावती में श्रीकृष्ण भगवान् ने राज्य किया है। इसी भाँति उत्तरकाण्ड में सरकार ने गुणातीत अरु भोग पुरन्दर होकर राज्य भोग किया है। द्वारका सोने की थी और उत्तरकाण्ड में अयोध्या का वर्णन करते हुए भी कवि लिखते हैं : मनि खंभ भीति

---

१. यह स्रग्धरा छन्द है। २. इह छन्दानुरोधेन वर्णान्तं गुरुलाघवम्। प्राकृत में छन्द के अनुरोध से वर्ण गुरु या लघु कर दिये जाते हैं। ३. सुरवर पाठ भी माना गया है। ४. मो विन्दुः उस प्राकृतसूत्र से चिह्नम् आदि का चिह्न रूप हुआ।

विरचि विरची कनक मनि मरकत खंची द्वारका श्रीकृष्ण भगवान् के साथ गयो। यहाँ अयोध्या के विषय मे भी कहा जाता है कि सारी अयोध्या रामजी के साथ परम धाम चली गयी। अत उत्तरकाण्ड को द्वारावती माना।

सरकार रावण वध करके पुष्पकारूढ होकर अयोध्या आरहे हैं। कवि उसी दृश्य को आँख के सामने रखता हुआ वन्दना कर रहा है। अश्वारूढ, रथारूढ रघुनायक का वर्णन हो चुका है। अत अब पुष्पकारूढ का वर्णन किया जा रहा है। पुष्पकारूढ रूप से सरकार का दर्शन श्रीगोस्वामीजी को श्रीअवध म होने की जनश्रुति है। अत पुष्पकारूढ राम रघुवर की नित्य वन्दना श्रीगोस्वामीजी करते हैं। जानकीश और बन्धुना सेव्यमान कहकर प्रधान त्रिकोण का वर्णन किया। यथा रामतापनीये हेमाभया द्विभुजया सर्वालकृतया चिता। श्लिष्ट कमलधारिण्या पुष्ट कोशलजात्मज। दक्षिणे लक्ष्मणेनाथ सधनुष्पाणिना पुन। हेमाभेनानुजेनैव तदा काणत्रय भवेत् एव त्रिकोणरूप स्यात् त देवा ये समाययु। सब अलङ्कारो से युक्त दो भुजावाली स्वर्ण वर्णवाली चिद्रूपिणी सीताजी से समाश्लिष्ट कौसल्या के पुत्र रामजी हैं। उनके दक्षिण स्वर्णवर्ण हाथ मे धनुष धारण किये हुए लक्ष्मणजी हैं। इस भाँति त्रिकोण हुआ उसी के शरण मे देवता लोग रावण वध के लिए गये थे। अत रावण के वध के पश्चात् उसी त्रिकोण रूप से श्रीगोस्वामीजी लौटना कहते हैं और उसे पूज्य कहते हैं। अब झाँकी का वर्णन करते हैं कि मोर के गल के रंग सी नीलिमा सरकार की है। मोर के गल की नीलिमा म एक प्रकार की चमक भी रहती है। सौन्दर्यातिशय द्योतन के लिए उसकी उपमा देत हैं। वररूप से बारात मे चलते समय भी उपमा दी थी। केकिकठद्युति स्यामल अगा। तडित विनिन्दक बसन सुरगा। विप्रचरण का वर्णन भी बहुत दिनो के बाद आया है। शैशवरूप की झाँकी के समय कहा था बिप्रचरण देखत मन लोभा। लङ्का के युद्ध मे भी कहा उर धरासुर पद लस्यो या आज कहते हैं उरवर विलसाद्विप्रपादाब्जचिह्न इतने बीच मे ऐश्वय छिपाया गया। अत विप्रचरण चिह्न अव्यक्त रूप मे था। अब छिपाने की आवश्यकता नही है। अत चरणचिह्न व्यक्त हो गया। अत कवि भी वणन करते हैं। क्योकि विप्रचरणचिह्न ही सरकार के सब देवताओ से उत्कृष्ट होने का तमगा है। यद्यपि अभी तक सरकार वल्कल ही धारण किये हुए हैं पर सरकार के धारण करने से उसकी ऐसी शोभा बढ गयी है कि पीताम्बर मालूम पडता है। नयन कमल सौन्दय का निधान है। ऐसी आँखे किसी की नही और सदा की भाँति प्रसन्न हैं। इनको प्रसन्नता मे विकार आता ही नही। वनवास मिलने पर प्रसन्न। यथा मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखै राऊ। राज्य पर लौटते है तो भी प्रसन्न। इसलिए गोस्वामीजी कहते है सर्वदा सुप्रसन्न। धनुर्बाण श्रीरामावतार का विशेष चिह्न है। जिस भाँति श्रीकृष्णजी मुरलीधर हैं उसी भाति श्रीरामजी धनुधर हैं। अवकाश मे भी धनुर्बाण सुधारा करते है। यथा कर कमलन्हि धनुसायक फेरत। जियकी जरनि हरत हँसि हेरत। यथा दुहुँकर कमल सुधारत बाना। यह लकेस मन्त्र लगि काना। विजयी वानर सेना को साथ लिए

हुए हैं। अत वानरी सेना के बीच मे पुष्पक पर शोभायमान तीनो मूर्ति की अपूर्व शोभा हो रही है। इसी झाँकी को नित्य श्रीगोस्वामीजी प्रणाम करते हैं।

श्लो कोशलेन्द्रपदकजमजुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ।
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकम्य मनभृङ्गसङ्गिनौ ॥२॥

अर्थ कोशल के स्वामी के सुन्दर कमल से दोनो चरण जो कि कोमल हैं। और ब्रह्मा तथा महादेवजी से वन्दित हैं। जानकीजी के करकमलो से सेवित हैं। वे ध्यान करनेवालो के मनरूपी भौंरो के साथी हो।

व्याख्या कोशलेन्द्र कहकर इस काण्ड मे जैसे सरकार का कोशलपुर की राजगद्दी पर बैठना कहा। इन्द्र के समान राजभोगो की स्वीकृति कहा। यथा गुनातीत अरु भोग पुरदर। सुन्दर कोमल चरणकमलो को ब्रह्मा और शिव से वन्दित कहकर दिव्य ऐश्वर्य कहा। कोई यह न समझ ल कि प्राकृत राजा की भाँति केवल पृथिवी के ही राजा थे। राज्य स्वीकार करने के बाद बडी भीडभाड रहती है। सभी चरणसेवा के लिए उत्सुक रहते हैं। सेवा के लिए ब्रह्मा और शिवजी को भी अवसर मिलना कठिन रहता है। वन्दना मात्र कर लते हैं। जानकीजी बडी सावधानी से उन कोमल चरणो की सेवा करती हैं कि कही कडा हाथ उन चरणो पर न पड जाय। यथा गुर्वर्थं त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवन पद्मपद्भ्या प्रियाया पाणि-स्पर्शाक्षमाभ्या मृजितपथिरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्। श्रीमद्भागवत मे शुकदेवजी कहते हैं कि जिसने पिता की आज्ञा से राज्य छोडा और उन चरणो से बन बन फिरे। जो कि जानकीजी के करकमल के स्पर्श को नही सह सकते थे उन चरणो तक मन से भी गति होना कठिन है। अत श्रीगोस्वामीजी प्रार्थना करते हैं वे चरणकमल ही कृपा करके ध्यान करनेवाल के मनरूपी भौंरे के साथ साथ रहे। मनरूपी भौंरे म यह सामर्थ्य नही कि उन कमलो तक पहुँच सके। श्रीचरण जब वन बन फिरते रहे तो जन मन के पास भी आजायँ यही अभिलाषा है।

श्लो कुदु[१] इदुदर गौर सुन्दर अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिद।
कारुणीककलकंजलोचन नौमि शङ्करमनङ्गमोचन ॥३॥

अर्थ कुन्द के फूल, चन्द्रमा और शख की भाँति गोरे और सुन्दर, अम्बिका के पति को, मनोवाञ्छित सिद्धि देनेवाल, कारुणीक तथा सुन्दर कमल ऐसे नयन-वाले कामदेव से छोडनेवाले शङ्कर को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या सरकार नीलसरोरुह नीलमणिनील नीरधर श्याम हैं और शङ्कर भगवान् कुन्द इन्दु दर गौर है। कुन्द से गन्ध कहा। इन्दु से आह्लादकत्व कहा और शङ्ख से गौरवर्ण होना कहा। अम्बिकापति कहकर जगत्पिता होना कहा। यथा जगत मातु पितु सभु भवानी। तेहि सृगार न कहौं बखानी। अभीष्ट सिद्धिद

---

१ नयुवर्णस्यास्वे। प्रा सू.। इ या उ की सधि भिन्न वर्ण से नही होती।

कहकर उदारता कहा। यथा : इच्छित फल बिनु सिव अवराधे। लहिय न कोटि जोग जप साधे। कारुणीक कहकर दीनदयालुता कहा। यथा : दीन दयालु द्रवत सुठि थोरे। सकत न देखि दीन कर जोरे। सुन्दर कमल नेत्र कहकर सुन्दरता कहा। कामदेव को इन्हीं ने अनङ्ग किया है। यथा : अब ते रति तव नाथ कर होइहि नाम अनंग। अतः उससे पिण्ड छुड़ाने में भी यही समर्थ हैं। इनकी कृपा जिस पर हो जाय काम उसके पास नहीं जा सकता। इनका नाम प्रणतकल्पतरु है। इसलिए शङ्कर कहे जाते हैं। अतः गोस्वामीजी वन्दना करते हैं कि कृपा कीजिये।

८२. नगर निकट आगमन विधि प्रसंग

दो. रहा[1] एक दिन अवधि कर, अति आरत पुर लोग।
जहँ तहँ सोचहिं नारिनर, कृस तन राम बियोग॥
सगुन होहिं सुन्दर सकल, मन प्रसन्न सब केर।
प्रभु आगमन जनाव जनु, नगर रम्य चहुँ फेर॥
कौसल्यादि मातु सब, मन अनंद अस होइ।
आयउ प्रभु सिय अनुज जुत, कहन चहत अब कोइ॥
भरत नयन भुज दच्छिन, फरकत बारहिं बार।
जानि सगुन मन हरख अति, लागे करन बिचार॥१॥

अर्थ : अवधि का एक दिन शेष रहा। अतएव नगर के लोग अत्यन्त आतुर हो उठे। रामजी के वियोग में दुबले हुए स्त्री पुरुष जहाँ तहाँ सोच करने लगे। तब तक सुन्दर शकुन होने लगे। सबका मन प्रसन्न हो उठा। नगर चारों ओर से रमणीक होकर मानो प्रभु के आगमन को सूचित कर रहा था।

कौसल्या आदि सब माताओं के मन में ऐसा आनन्द हो रहा था मानो कोई अभी आकर कहना चाहता था कि प्रभु सीताजी और लक्ष्मणजी के साथ आ गये। भरतजी की दाहिनी आँख और दाहिनी भुजा बार बार फड़क रही थी। शकुन जानकर मनमे बड़ा हर्ष हुआ। तब विचार करने लगे।

व्याख्या : यह चौदह वर्ष की अवधि का अन्तिम दिन है। दूसरे दिन रामजी को आ जाना चाहिए। दूर दूर तक चर छूटे हैं। पर आने की खबर कहीं से नहीं आ रही है। जब अभी तक कहीं पता नहीं है तब कल कैसे आ जायेंगे। यह समझकर पुर के लोग अत्यन्त आर्त हो रहे हैं। जैसे जल के अत्यन्त कम हो जाने पर मछलियाँ अत्यन्त आर्त हो जाती हैं। कौसल्याम्बाने पहिले ही कहा था : अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना। तुम करुनाकर धरम धुरीना। अस बिचारि सोइ

---

१. यहाँ से उमा के सातवें प्रश्न : राज बैठि कीन्ही बहु लीला। सकल कहहु संकर सुख लीला। का उत्तर आरम्भ होता है।

करेहु उपाई। सबहि जिअत जेहि भेंटेहु आई। सब नरनारी जहाँ तहाँ सोच रहे हैं। निदहि आपु सराहहिं मीना। धिग जीवन रघुबीर बिहीना। जौं पै प्रिय बियोगु बिधि कीन्हा। तौ कस मरनु न माँगे दीन्हा। दशा उनकी यह है कि रामजी के वियोग मे दुबले हो गये हैं।

अभी तक प्रभु का समाचार तो नही मिला और लोग सोच रहे है पर भीतर से मन प्रसन्न होता चला आ रहा है। अयोध्या सरकार के वियोग मे भयानक दिखायी पडी थी। यथा : लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ काल राति अँधियारी। अब रमणीय दिखायी पडती है मानो प्रभु के आगमन की सूचना दे रही अयोध्यापुरी सनाथ होने जा रही है। इसी से प्रभु शब्द का प्रयोग किया।

चौदह वर्ष के बाद आज कौसल्या आदि माताओ के मन मे आप से आप आनन्द का उद्रेक हो रहा है। ऐसा बोध हो रहा है कि सीताजी और लक्ष्मणजी के सहित सरकार के आगमन की कोई सूचना दिया ही चाहता है। जिस भाँति विपत्ति के आने के पहिले उसकी छाया आ जाती है। ग्रहण लगने के पहिले ही वेध लग जाता है। उसी भाँति आनन्द के आगमन के पहिले उसका प्रकाश आ जाता है।

भरतजी को सुधबुध नही है। सरकार के ध्यान मे मग्न है। पुलकगात हिय सिय रघुबीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू। जब उनकी दक्षिण भुजाएँ और नेत्र बार बार फडकने लगे तब ख्याल हुआ कि यह तो सगुन हो रहा है। मन मे अत्यन्त हर्ष हुआ। क्योकि सगुन प्रतीति भेट प्रिय केरी। तब विचार करने लगे।

रहेउ एकु दिनु अवधि अधारा। समुझत मन दुख भएउ अपारा ॥
कारन कवन नाथु नहि आएउ। जानि कुटिल किधौ मोहि बिसराएउ ॥१॥

अर्थ : अवधि का आधारभूत एक दिन रह गया। यह समझते हुए मन मे अपार दु ख हुआ कि क्या कारण है कि नाथ नही आये। क्या मुझे कुटिल जानकर उन्होने भुला दिया।

व्याख्या : सरकार के वनवास की अवधि और अवधवासियो के जीवन की एक ही है। यथा : विषम बियोग न जाइ बखाना। अवधि आस सब राखहिं प्राना। अवधि पूरी होने के पहिले ही कम से कम यह समाचार तो मिल जाना ही चाहिए कि सरकार आ गये और इतनी दूरी पर हैं। पर ऐसा कोई समाचार नही मिला। अतः यही सिद्ध है कि नही आये। ऐसा समझते ही मन मे ऐसा दु ख हुआ जिसका पारावार नही।

भरतजी अपने मन में कारण ढूँढ रहे हैं कि न आने का क्या कारण हुआ। क्या लक्ष्मणजी नही अच्छे हुए ? क्या लका मे अभी युद्ध चल ही रहा है पर प्रभु के प्रताप के जानकार भरतजी के मन मे ये कारण यथेष्ट नही प्रतीत हुए। तब कहते हैं कि क्या मुझे कुटिल जानकर उन्होने भुला दिया। मैंने कहा था : तुलसी

बीते अवधि प्रथम दिन जौ रघुवीर न आइहौं। तौ प्रभु चरन सरोज सपथ जीवत परिजनहि न पइहौं। सो मेरी प्रतिज्ञा भूलने योग्य नही थी। क्या सरकार ने मुझे कुटिल समझकर उस प्रतिज्ञा को दम्भ मात्र समझा। इसलिए मुझे भुला दिया? भरतजी को वड़ी आस्था है कि सरकार कम से कम मुझे तो नही भूल सकते और बात भी ऐसी ही थी। यथा : भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कलप सम जात। भरतजी सोचते है कि देखो कैसे कुअवसर में मैंने हनुमान् को वाण मारा। मुझे कुटिल समझने के लिए यथेष्ट कारण है तो क्या इससे मुझे भुला देना ही उचित समझा?

अहह धन्य लछिमनु बड़ भागी। राम पदारविंद अनुरागी॥
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहि लीन्हा॥२॥

अर्थ : अहो! बड़भागी तो लक्ष्मण हैं जो रामजी के चरण कमलों के अनुरागी हैं। प्रभु ने मुझे कपटी कुटिल पहिचाना। इसलिए नाथ ने सङ्ग नही लिया।

व्याख्या : धन्य तो लक्ष्मणजी हैं। जिन्होंने स्वामी के कार्य के लिए ललकार कर शत्रुओं से लोहा लिया। मेरे भाग्य में यह सेवा नही थी। अतः लक्ष्मणजी छोटे होने पर भी भाग्य में वड़े हैं। उन्हें रामजी के चरणों में सच्चा अनुराग है। मेरा अनुराग झूठा है। मैं कपटी और कुटिल हूँ। मैं सठ सब अनरथ कर हेतू। बैठि बात सब सुनहुँ सचेतू। सो सरकार ने मुझे ठीक पहिचान लिया। मैं कहता रहा : न तरु फेरिअहि बंधु दोउ नाथ चलौं मैं साथ। पर सरकार ने साथ न लिया।

जौ करनी समुझै प्रभु मोरी। नहि निस्तार कलप सत कोरी॥
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥३॥

अर्थ : यदि प्रभु मेरी करणी पर ध्यान दें तो मेरा निस्तार करोड़ कल्प मे भी नही हो सकता। पर प्रभु अपने जन के अवगुण को गिनते ही नही। क्योंकि दीनबन्धु हैं और स्वभाव उनका अत्यन्त कोमल है।

व्याख्या : भरतजी मन में कहते हैं कि सरकार का मुझे कपटी कुटिल समझना ठीक है। मेरी करणी ही ऐसी है। मेरे कारण राज्याभिषेक रुका। चौदह वर्ष का बनवास हुआ। पिता की मृत्यु हुई। वन में सीताहरण हुआ। राक्षसों से संग्राम ठना। लक्ष्मणजी घायल हुए। हनुमानुजी सञ्जीवनी बूटी लाने के लिए भेजे गये। सो उन्हे मैंने बाण मारा। मेरी इन करणियों पर सरकार यदि ध्यान दें तो मेरा निस्तार अनन्त काल तक नहीं हो सकता।

परन्तु मुझे सरकार के स्वभाव का भरोसा है। मैं उनका जन : तदीय हूँ और वे जन के अवगुण को भी मानते नहीं। यथा : अपराध अगाध भये जन ते अपने उर आनत नाहिन जू। इत्यादि। मैं दीन हूँ और वे दीनबन्धु हैं। अत्यन्त कोमल स्वभाव हैं। तुरन्त द्रवीभूत हो जाते हैं।

मोरे जिअ भरोस दृढ सोई। मिलिहहिं रामु सगुन सुभ होई॥
बीते अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥४॥

अर्थं उसी का पक्का भरोसा मेरे मन मे है। रामजी मिलेंगे शुभ शकुन हो रहा है। यदि अवधि बीतने पर भी मैं जीता रह गया तब तो मेरे समान अधम जगत् मे कौन होगा?

व्याख्या अपनी करनी को सोचकर रामजी के स्वभाव मे विकार कल्पना करना ठीक नही जँचता। सरकार दीनबन्धु हैं। अत्यन्त मृदुल स्वभाव हैं। मेरी करनी पर ध्यान देकर मेरा परित्याग नही करेंगे। मैं दीन हूँ और वे दीनदयाल हैं। निश्चय दया करेंगे। दृढ भरोसा यही है और इसी की पुष्टि शुभ सकुन से हो रहा है। अत रामजी मिलेंगे। यथा यद्यपि मम अवगुन अपार ससार योग्य रघुराया। तुलसिदास निज गुन बिचार करुनानिधान करु दाया।

प्रेमी का चित्त सदा पापशङ्की होता है। अत भरतजी फिर सोचते हैं कि मिलना निश्चय होने पर भी अवधि के भीतर ही मिलाप होना चाहिए। अवधि बीतने के साथ ही मेरे प्राणो का विसर्जन होना चाहिए। परन्तु मुझे अपने प्राणो का विश्वास नही। यह कई बार धोखा दे चुका है। सरकार का बनवास सुनने पर भी यह नही गया। यथा बिनु पनहिन्ह पयादेहि पाँये। सकर साखि रहेउँ एहिघाये। जब आँखो से बल्कल बसन पहिने देखा उस समय भी इन्हे चला जाना था पर ये नहीं गये। यथा अब सबु आँखिन्ह देखेउँ आई। जिअत जीव जड सबइ सहाई। अत इसका क्या ठिकाना है। सम्भव है कि अवधि बीतने पर भी यह न जाय। तब तो मेरे सा अधम कौन होगा? सरकार के चरण की शपथ भी झूठ ही पड जायगी। यथा तौ प्रभु चरन सरोज सपथ जिवत परिजनहिं न पैहौं।

दो राम बिरह सागर महँ, भरतु मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवन सुत, आइ गयउ जनु पोत॥
बैठे देखि कुसासन, जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत, स्रवत नयन जल जात॥१॥

अर्थं रामजी के बिरह सागर मे भरतजी डूब रहे थे। इतने म ब्राह्मण का रूप धारण करके पवन पुत्र हनुमान्जी जहाज की भाँति आगये। देखा कि भरतजी कुशा के आसन पर बैठे हुए हैं। शरीर दुर्बल हो रहा है। सिर पर जटा का ही मुकुट है। राम राम रघुपति ऐसा जप कर रहे हैं और उनकी आँख से आँसू बह रहे हैं।

व्याख्या भरतजी के दु ख का पारावार नहीं है। प्राण सकट उपस्थित है। इसीसे बिरह सागर में भरतजी का डूबना कहते हैं। तब से जहाज आगया। सरकार की आज्ञा हनुमान्जी को हुई थी कि धरि बटुरूप अवध पुर जाई। भरतहिं कुसल हमारि सुनायेहु। अत विप्ररूप धारण करके हनुमान्जी आगये। मानो डूबते हुए

को जहाज का सहारा मिल गया। इसी भाँति हनुमान्‌जी द्वारा सीताजी की भी रक्षा हुई। यथा : बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भयउ तात मो कहँ जल जाना। हनुमान्‌जी ने जाकर भरतजी को देखा। जिस अवस्था में चौदह वर्ष पहिले नन्दि ग्राम में ठहरे थे ठीक वही अवस्था चली जा रही है। यथा : पहिले : महि खनि कुस साथरी सँवारी। सो : बैठे देखि कुसासन। पहिले : जटा जूट सिर मुनि पट धारी... देह दिनहि दिन दूबरि होई। सो अब : जटा मुकुट कृस गात। पहिले : पुलक गात हिय सिय रघुबीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू। सो अब राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जल जात।

देखत हनूमान अति हरषेउ। पुलक गात लोचन जलु बरषेउ॥
मन महुँ बहुत भाँति सुख मानी। बोलेउ स्रवन सुधा सम बानी॥१॥

अर्थ : देखते ही हनुमान्‌जी को बड़ा आनन्द हुआ। उनके रोंगटे खड़े हो गये। आँख से आँसू की झर लग गयी। मन में बहुत प्रकार से सुख माना और श्रवणामृत वाणी बोले।

व्याख्या : हनुमान्‌जी भरतजी की ऐसी दशा देखकर बड़े हर्षित हुए। मैत्री करुणा मुदिता और उपेक्षा का नित्य वास महात्माओं के हृदय में रहता है। सो भरतजी का रामानुराग देखकर हनुमान्‌जी के हृदय में मुदिता का उदय हुआ। हनुमान्‌जी को रघुनाथ कीर्तन बड़ा प्रिय है। यथा : यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्। बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्। जहाँ जहाँ रघुनाथजी का कीर्तन होता है वहाँ वहाँ मस्तक पर अञ्जुलि बाँधे हुए आँखों में आँसू भरे हुए उपस्थित हो जाते हैं। सो यहाँ परम भक्त भरतजी को : राम राम रघुपति : नामका कीर्तन करते हुए देखकर सात्त्विक भाव हुआ। रोमाञ्च हो गया और आँसू की झर लग गयी। : श्री मारुति को राम नाम सुना के प्रसन्न कर लेना चाहिए।

हनुमान्‌जी को भरतजी के देखने से बहुत प्रकार से सुख हुआ। भरतजी सरकार के विरह से अतिव्याकुल हैं। अतः आशा बँधी कि अब राज्याभिषेक भी देखेंगे। ऐसे परम भक्त को ऐसे अवसर पर परमानन्द का समाचार देने का सुअवसर भी मिला। अतः भरत के श्रवण के लिए अमृत सी वाणी बोले। ऐसे अवसर पर हनुमान्‌जी श्रवणामृत वाणी बोलते ही हैं। सीताजी के विरह सागर में मग्न होते समय भी ऐसी ही वाणी बोले। भगवती कहती हैं कि : स्रवनामृत जेहि कथा सुनाई। कही सो प्रगट होत किन भाई।

जासु बिरह सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुनगन पाँती॥
रघुकुल[1] तिलक सुजन सुखदाता। आयेउ कुसल देव मुनित्राता॥२॥

---

१. यहाँ हेतु अलंकार है।

अर्थ जिसके विरह म दिन रात सोचा करते हो और जिसके गुण गण की पंक्तिया को निरन्तर रटा करते हो वही रघुकुल के तिलक सुजन के सुख देनेवाले और देवता तथा मुनियो के रक्षक कुशल पूर्वक आगये।

व्याख्या रामजी आगये ऐसा हनुमान्‌जी ने नही कहा। जिस भांति अकस्मात् शोक के[1] समाचार का धक्का मन मे लगता है उसी भांति अति आनन्द क समाचार का भी धक्का लगता है। अत आकाक्षा पूर्वक अभिमुख करने के लिए कहते हैं कि जिसके विरह मे दिन रात सोचते हो। इससे यह भी सूचित किया कि वक्ता उनके हृद्‌गत भावो से भली भांति परिचित है। बात को और भा स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जिसके गुण गणो का निरन्तर रट लगाये रहते हो। अब उनके गुणगण कहते हैं कि वे रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता और देव मुनि त्राता हैं। इसस राक्षसो का विनाश भी सूचित किया। इस भांति परोक्षरूप से रामजी को कहकर बतलाते हैं कि वे कुशल मे आगये। आकाक्षा बनी रहने देने के लिए पूरा समाचार नही दिया।

रिपुरन जीति सुजस सुर गावत। सीता सहित अनुज प्रभु आवत ॥
सुनत[1] बचन बिसरे सब दूखा। तृषावंत जिमि पाइ पियूषा ॥३॥

अर्थ देवताओ द्वारा यश गाया जा रहा रहा है। शत्रु को जीतकर सीताजी और छोटे भाई के साथ सरकार आरहे हैं। यह बात सुनते ही भरतजी को सब दु ख भूल गया है। जैस प्यासे को अमृत मिलने से सब दु ख भूल जाता है।

व्याख्या हनुमान्‌जी से ही भरतजी को राक्षसो से सग्राम का पता चला था। यथा कपि सब चरित समास बखाने। भये दुखी मनमँहु पछिताने। अत पहिल रण का ही समाचार देते हैं रिपुरन जीति सुजस सुर गावत। रावण बध के बाद देवताओ की स्तुति देख चुके हैं। उसीका वर्णन कर रहे हैं। अब पूरा समाचार से आकाक्षा पूरी करते हुए कहते हैं सीता सहित अनुज प्रभु आवत।

विरह व्यथा हानि ग्लानि आदि जितने दु ख थे ये सब भरतजी इस बचन के सुनते ही भूल गये। आयेउ कुसल देव मुनि त्राता इस वचन से सब दु ख नही गया था। क्योंकि सीताजी और लक्ष्मणजी विषयक उसमे कोई चर्चा नही थी और सुनि रन घायल लखन परे हैं आदि समाचार सुन चुके हैं। अत सीताजी तथा लक्ष्मण के विषय मे बडी चिन्ता थी। सीता सहित अनुज प्रभु आवत इस वचन से सब दु ख से ऐसा भूला जैसे प्यासे को अमृत मिलने से सब दु ख भूल जाता है। प्यासा महा कष्ट मे रहता है। उसका कण्ठ सूख जाता है। शरीर म आग लगी रहती है। उसे पानी चाहिए सो अमृत मिला। भरतजी को राम लक्ष्मण जानकी के आगमन के समाचार सुनने को प्यास है। सो यह समाचार मिला कि शत्रुओ पर विजय प्राप्त हुई। देवता लोग सुयश गा रहे हैं और राम लक्ष्मण जानकी आरहे हैं।

---

१ यहाँ प्रहर्षण द्वितीय अलकार है।

अतः इस समाचार मे स्वाद और तोष चाहे हुए समाचार से अधिक था। इसलिए अमृत प्राप्ति से उपमा दी।

को तुम तात कहाँ तें आए। मोहि परम प्रिय बचन सुनाए॥
मारुत सुत मै कपि हनुमाना। नाम मोर सुनु कृपा निधाना॥४॥

अर्थ : हे तात ! तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? मुझे तुमने परम प्रिय वचन सुनाया है। मैं पवन पुत्र हनुमान् नामी बन्दर हूँ। हे कृपानिधान ! सुनिये मेरा यही नाम है

व्याख्या : परमप्रिय समाचार देनेवाला भी परमप्रिय हो जाता है। इससे भरतजी तात सम्बोधन करते हैं। ब्राह्मण रूप मे हनुमान्‌जी को देखकर नही पहिचान सके। अपने भेजे हुए दूतो मे से भी नही मालूम होते। इसलिए भरतजी दो प्रश्न करते हैं। १ तुम कौन हो ? २ कहाँ से आये हो ? प्रश्न पूछने का कारण देते हैं कि मोहि परम प्रिय बचन सुनाये। ऐसे वचन सुनानेवाले का परिचय पाना आवश्यक है। तुम्हे निषादराज ने भेजा है या भरद्वाज मुनि ने भेजा है या और किसी मेरे भेजे हुए दूतों मे से किसी ने भेजा है या सरकार ने ही भेजा है? भेजनेवाले का भी पता लगने से दृढ विश्वास होगा।

पहिले प्रश्न का उत्तर देते हुए हनुमान्‌जी कहते हैं कि मै पवन का पुत्र हूँ। भाव यह कि मेरा पवन के समान वेग है। बहुत दूर से भी क्षण भर मे आ सकता हूँ। दूसरी बात यह है कि जो रूप आप मेरा देख रहे हैं वह मेरा यथार्थ रूप नही है। मैं कपि हूँ हनुमान् मेरा नाम है। इतना कहने से हनुमान्‌जी ने वह परिचय दे दिया जो कि भरतजी के बाण से मूच्छित होने पर जागने के बाद दिया था। अब दूसरे प्रश्न का भी उत्तर देते हैं।

दीन बन्धु रघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेंटे उठि सादर॥
मिलत प्रेमु नहि हृदय समाता। नयन स्रवत जल पुलकित गाता॥५॥

अर्थ : मैं दीनबन्धु रघुपति का सेवक हूँ। सुनते ही भरतजी उठकर आदर के साथ मिले। मिलने मे प्रेम हृदय मे समाता नही था। आँखो से आँसू बह रहे थे और रोमाञ्च हो रहा था।

व्याख्या : सरकार की आज्ञा थी इसलिए हनुमान्‌जी ब्राह्मण के रूप मे आये पर महात्मा से दुराव नही होना चाहिए। इसलिए अपना कपि होना प्रकट किया। बडे के सामने पिता के नाम के साथ अपने नाम लेने की विधि है इसलिए पिता का भी नाम लिया। भरतजी ने तात सम्बोधन किया था। इसलिए हनुमान्‌जी उन्हे कृपानिधान कहकर सम्बोधन कर रहे हैं। अब दूसरे प्रश्न कहाँ ते आये का उत्तर देते कहते हैं। बन्दर को सेवक रूप मे स्वीकार करनेवाला दूसरा दीनबन्धु कौन है सिवा रघुपति के ? मैं उन्ही का किंकर हूँ। भाव यह है कि उन्ही का भेजा आ रहा हूँ। सुनते ही आदर के लिए भरतजी उठकर खडे हो गये और हनुमान्‌जी से

गले मिले। या यों कहिये कि प्रेमाधिक्य के कारण हनुमान्‌जी से चिपक गये। प्रेम इतना बढा हुआ है कि हृदय में उसके लिए यथेष्ट स्थान नही है। अतः वह अश्रु के मिस से तथा पुलक के मिस से बाहर व्यक्त होकर रोम रोम से निकल रहा है।

कपि तव[१] दरस सकल दुख बीते। मिले आजु मोहि राम पिरीते ॥
बार बार बूझी कुसलाता। तो कहुँ देउँ काह सुनु भ्राता ॥६॥

अर्थ : हे कपि! तुम्हारे दर्शन से सब दु.ख समाप्त हो गये। आज मुझे प्यारे रामजी ही मिल गये। बार बार कुशल पूछा। सुनो तुम्हे क्या दूँ ?

व्याख्या : हनुमान्‌जी का वचन सुनने से ही भरतजी का सब दुख भूल गया। यथा : सुनत बचन बिसरे सब दूखा। अतः कहते हैं कि कपि तव दरस सकल दुख बीते। भरतजी का वचन सबके ध्यान देने योग्य है। हनुमान्‌जी के दर्शन से सब दु खों का नाश होता है। भरतजी कहते हैं कि सब दु ख तो रामजी के दर्शन से मिटता है। यथा : सब दुख मिटिहि राम पद पेखी सो तुम्हारे दर्शन से मिट गया। अतः तुम्हारा मिलना और प्यारे राम का मिलना एक ही बात है। भाव यह कि तुम्हारे द्वारा रामजी कल मिलने के बदले आज ही मिल गये। अतः तुम्हारे द्वारा प्राण की रक्षा हुई तुम्हारा दर्शन रामजी के दर्शन के तुल्य है। प्यारे का पत्र प्यारा होता है। प्यारे का दूत प्यारा होता है।

भरतजी को एक बार कुशल पूछने में सन्तोष नही। बार बार कुशल पूछते हैं। प्रेमी को प्रेमपात्र के कुशल सुनने मे इतना सुख है कि बार बार सुनना चाहता है। शुभ समाचार देनेवाले को राजाओ के यहाँ से पुरस्कार मिलता है। यथा : प्रथम जाइ जिन बचन सुनाये। भूषन बसन भूरि तिन पाये। अतः भाई का सम्बन्ध जोड़ते हुए पूछते हैं कि तुम्हे क्या दें ? जो माँगो सो दें।

यह संदेस सरिस जगमाही। करि बिचार देखेउ कछु नाही ॥
नाहिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभु चरित सुनावहु मोही ॥७॥

अर्थ : इस सन्देश के सदृश संसार मे कुछ है नही। मैंने विचार करके देख लिया। हे तात! मैं तुमसे उऋण नही हूँ अब मुझे प्रभु का चरित सुनावो।

व्याख्या : यदि कहा जाय कि पूछते क्यों हो ? अपने मन से समझकर जो उचित समझो सो दो। इस पर कहते हैं कि बदले मे समान मूल्य वस्तु देनी चाहिए। सो मैने विचार करके देख लिया कि ससार मे तो कोई ऐसा पदार्थ नही है जो इस सन्देश के तुल्य हो। अतः तुम्हारी जो इच्छा हो सो बतलाओ वही दूँ। हनुमान्‌जी को चुप देखकर भरतजी ने समझ लिया कि यह रामकिङ्कर है। ब्रह्मपद के वैभव का विरागी है इसे कोई क्या दे सकता है ? इसलिए कहते हैं कि मै तुमसे

---

१. यहाँ विशेष : द्वितीय : अलकार है।

उऋण नहीं। हनुमान्‌जी ने घर भर को ऋणी बनाया। रामजी ऋणी थे लक्ष्मणजी थे ही सीताजी थीं ही आज भरतजी भी ऋणी हो रहे हैं। हनुमान्‌जी ने प्रथम मिलन में प्रभु का चरित्र संक्षेप में कहा था। क्योंकि बड़ी जल्दी में थे अब कोई जल्दी नहीं है। अतः प्रभु चरित के रसिक भरतजी सब चरित ब्यौरेवार सुनना चाहते हैं। भरतजी श्रोता हनुमान्‌जी वक्ता नन्दिग्राम में राम कथा हो रही है।

तब हनुमंत नाइ पद माथा। कहे सकल रघुपति गुन गाथा ॥
कहु कपि कबहुँ कृपाल गुसाईं। सुमिरहिं मोहि निज दास की नाईं ॥८॥

अर्थ : तब हनुमान्‌जी ने चरणों मे सिर नवाकर रामजी के सब गुणों की गाथा कह सुनायी। हे कपि! कहो कि कभी कृपाल स्वामी रामजी मुझे निज दास की भाँति स्मरण करते हैं?

व्याख्या : यहाँ वक्ता ही श्रोता को प्रणाम करके रामचरित्र का कथन कर रहा है। क्योंकि हनुमान्‌जी सन्देशहर की भाँति चरित्र वर्णन करते हैं। 'यहाँ सब चरित्र वर्णन से अभिप्राय ब्यौरेवार वर्णन से है। नहीं तो लक्ष्मणजी के लिए संजीवनी बूटी लाने के समय भरतजी से संक्षेप में प्रभु चरित कह चुके हैं। यथा : कपि सब चरित समास बखाने।

चरित्र सुनने पर भरतजी प्रश्न करते हैं कि हनुमान्‌जी! कभी सरकार भी मेरा स्मरण निज दास की भाँति करते हैं? भाव यह कि प्रेमी को इस बात के सुनने की बड़ी उत्सुकता रहती है कि उसका प्रेम पात्र भी उसे स्मरण करता है। अतः भरतजी पूछते हैं। निज दास कहने का भाव यह कि सरकार को निज दास बडे प्रिय होते हैं। यथा : तेहि ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। भरतजी कहते हैं कि सरकार कृपाल हैं। अन्तर्यामी भी प्रभु हैं। सम्भव है कि कभी निजदास की भाँति स्मरण किया हो।

छं. निज दास ज्यों रघुबंस भूषन कबहु मम सुमिरन करयो।
सुनि भरत बचन बिनीत अति कपि पुलक तन चरनन्हि परयो ॥
रघुबीर निज मुख जासु गुनगन कहत अगजगनाथ जो।
काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सदगुन सिंधु सो ॥

अर्थ : अपने दास की भाँति रघुवंश भूषण ने क्या कभी मेरा भी स्मरण किया है? भरतजी का ऐसा अत्यन्त विनीत वचन सुनकर हनुमान्‌जी को रोमाञ्च हो गया और वे चरणो पर गिर गये। जो रघुवीर चराचर के स्वामी है। वे जिसके गुण गण का अपने मुख से वर्णन करते है वह ऐसा विनीत परम पुनीत और सद्‌गुण का सिन्धु क्यों न हो?

व्याख्या : सुमिरहिं मोहि निज दास की नाईं : इस पुरइन का कमल है : निज दास ज्यों रघुवंश भूषन कबहुँ मम सुमिरन करयो। भरतजी को प्रभु द्वारा निजदास

की भाँति स्मरण किये जाने की बडी उत्कण्ठा है। भाई की भाँति स्मरण किये जाने की नही। दास का पद कितना बडा है यह बात इतने से ही समझ लेना चाहिए। क्योकि प्रभु निजदास मे और अपने मे अन्तर नही मानते। आगे कहेगे कि भरतहि मोहि कछु अन्तर काऊ। यह अति विनीत वचन है जिसमे अभिमान का कही गन्ध भी नही है और प्रेम भरा पडा है। ऐसे वचन को सुनने से हनुमान्‌जी को पुलक हो गया और वे भरतजी की महत्ता का अनुभव करते हुए उनके चरणो पर गिर पडे और बोले कि सरकार चराचर के नाथ हैं। जिसके गुणगण का अपने मुख से बखान करते हैं उसे परम विनीत परम पुनीत और सद्‌गुण सिन्धु होना ही चाहिए। भाव यह है कि आप के इसी विनय पावनता और गुणो पर प्रभु आसक्त हैं। और आप के गुणगणो की अपने मुख से प्रशसा किया करते हैं। यथा : भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात। तापस वेष गात कृस जपत निरन्तर मोहि। देखौं वेगि सो जतनु करु सखा निहोरौं तोहि। बीते अवधि जाउँ जौं जिअत न पावौं बीर। सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि पुनि पुलक सरीर। निज दास ज्यौं रघुवश भूषन कबहुँ मम सुमिरन कर्‌यौ। यह प्रश्न ही भरतजी की परम विनीतता का द्योतक है। सुनत बचन बिसरे सब दूखा। तृषावन्त जिमि पाइ पियूखा। यह उनके परम पावनता का द्योतक है। और बैठे देखि कुसासन जटामुकुट कृसगात। राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात। यह उनके सद्‌गुणो का द्योतक है। यथा यस्यातिभक्ति।

दो राम प्रानप्रिय नाथ तुम्ह, सत्य बचन मम तात।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि, हर्ष न हृदय समात ॥२॥

अर्थ हे नाथ! तुम रामजी को प्राण के समान प्यारे हो। हे तात मेरा वचन सत्य है। यह सुनकर भरतजी बार बार मिलते हैं और हर्ष हृदय मे समाता नही।

व्याख्या वाक्य के तात्पर्यार्थ के ग्रहण करनेवाले हनुमान्‌जी ने तुरन्त समझ लिया कि भरतजी के प्रश्न का यह अभिप्राय है कि सरकार को मैं प्रिय हूँ या नही? इस पर कहते है आप रामजी को प्राण से प्यारे हैं। इसीलिए हनुमान्‌जी नाथ कहकर सम्बोधन करते हैं कि मैं आप मे। उन मे अन्तर नही देखता : जैसे वे मेरे नाथ हैं वैसे ही आप भी हैं। सत्य वचन मम तात : कहने का भाव यह है कि मैं हनुमान् हूँ। मेरा वचन सदा सत्य होता है। अथवा प्रेम से कातर चित्त को विश्वास दिलाने के लिए कहते हैं कि मैं आप के सन्तोष के लिए नही कहता हूँ। जो वस्तु स्थिति है सो कहता हूँ। भरतजी ने हनुमान्‌जी से भाई का नाता जोड रक्खा है। इसलिए हनुमान्‌जी तात सम्बोधन करते हैं। यह सुनकर भरतजी प्रेमोद्रेक मे हनुमान्‌जी को बार बार हृदय लगाते हैं। क्योकि उन्हे हनुमान्‌जी के वचन से ऐसा हर्ष हुआ है जो हृदय मे समाता नही।

उऋण नही। हनुमान्‌जी ने घर भर को ऋणी बनाया। रामजी ऋणी थे लक्ष्मणजी थे हो सीताजी थी ही आज भरतजी भी ऋणी हो रहे हैं। हनुमान्‌जी ने प्रथम मिलन में प्रभु का चरित्र संक्षेप मे कहा था। क्योकि बडी जल्दी मे थे अब कोई जल्दी नही है। अतः प्रभु चरित के रसिक भरतजी सब चरित ब्योरेवार सुनना चाहते हैं। भरतजी श्रोता हनुमान्‌जी वक्ता नन्दिग्राम में राम कथा हो रही है।

तब हनुमंत नाइ पद माथा। कहे सकल रघुपति गुन गाथा ॥
कहु कपि कबहुँ कृपाल गुसाईं। सुमिरहि मोहि निज दास की नाईं ॥८॥

अर्थ : तब हनुमान्‌जी ने चरणो मे सिर नवाकर रामजी के सब गुणो की गाथा कह सुनायी। हे कपि ! कहो कि कभी कृपाल स्वामी रामजी मुझे निज दास की भाँति स्मरण करते हैं ?

व्याख्या : यहाँ वक्ता ही श्रोता को प्रणाम करके रामचरित्र का कथन कर रहा है। क्योकि हनुमान्‌जी सन्देशहर की भाँति चरित्र वर्णन करते हैं। यहाँ सब चरित्र वर्णन से अभिप्राय ब्योरेवार वर्णन से है। नही तो लक्ष्मणजी के लिए सजीवनी बूटी लाने के समय भरतजी से संक्षेप मे प्रभु चरित कह चुके हैं। यथा : कपि सब चरित समास बखाने।

चरित्र सुनने पर भरतजी प्रश्न करते हैं कि हनुमान्‌जी ! कभी सरकार भी मेरा स्मरण निज दास की भाँति करते हैं ? भाव यह कि प्रेमी को इस बात के सुनने की बडी उत्सुकता रहती है कि उसका प्रेम पात्र भी उसे स्मरण करता है। अतः भरतजी पूछते हैं। निज दास कहने का भाव यह कि सरकार को निज दास बडे प्रिय होते हैं। यथा : तेहि ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। भरतजी कहते हैं कि सरकार कृपाल हैं। अन्तर्यामी भी प्रभु है। सम्भव है कि कभी निजदास की भाँति स्मरण किया हो।

छं. निज दास ज्यौं रघुवंस भूषन कबहु मम सुमिरन कर्यौ।
सुनि भरत बचन विनीत अति कपि पुलक तन चरनन्हि पर्यौ ॥
रघुबीर निज मुख जासु गुनगन कहत अगजगनाथ जो।
काहे न होइ विनीत परम पुनीत सद्‌गुन सिंधु सो ॥

अर्थ : अपने दास की भाँति रघुवंश भूषण ने क्या कभी मेरा भी स्मरण किया है ? भरतजी का ऐसा अत्यन्त विनीत वचन सुनकर हनुमान्‌जी को रोमाञ्च हो गया और वे चरणों पर गिर गये। जो रघुवीर चराचर के स्वामी हैं। वे जिसके गुण गण का अपने मुख से वर्णन करते है वह ऐसा विनीत परम पुनीत और सद्‌गुण का सिन्धु क्यो न हो ?

व्याख्या : सुमिरहि मोहि निज दास की नाईं : इस पुरइन का कमल है : निज दास ज्यौं रघुवंश भूषन कबहुँ मम सुमिरन कर्यौ। भरतजी को प्रभु द्वारा निजदास

की भाँति स्मरण किये जाने की बडी उत्कण्ठा है। भाई की भाँति स्मरण किये जाने की नही। दास का पद कितना बड़ा है यह बात इतने से ही समझ लेना चाहिए। क्योकि प्रभु निजदास मे और अपने मे अन्तर नही मानते। आगे कहेगे कि : भरतहि मोहि कछु अन्तर काऊ। यह अति विनीत वचन है जिसमे अभिमान का कही गन्ध भी नही है और प्रेम भरा पडा है। ऐसे वचन को सुनने से हनुमान्‌जी को पुलक हो गया और वे भरतजी की महत्ता का अनुभव करते हुए उनके चरणो पर गिर पडे और बोले कि सरकार चराचर के नाथ हैं। जिसके गुणगण का अपने मुख से बखान करते हैं उसे परम विनीत परम पुनीत और सद्‌गुण सिन्धु होना ही चाहिए। भाव यह है कि आप के इसी विनय पावनता और गुणो पर प्रभु आसक्त हैं। और आप के गुणगणो की अपने मुख से प्रशसा किया करते हैं। यथा : भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात। तापस वेप गात कृस जपत निरन्तर मोहि। देखै वेगि सो जतनु करु सखा निहोरौं तोहि। बीते अवधि जाउँ जौं जिअत न पावौ वीर। सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि पुनि पुलक सरीर। निज दास ज्यौ रघुवश भूपन कबहुँ मम सुमिरन करयो। यह प्रश्न ही भरतजी की परम विनीतता का द्योतक है। सुनत बचन विसरे सब दूखा। तृपावन्त जिमि पाइ पियूखा। यह उनके परम पावनता का द्योतक है। और बैठे देखि कुसासन जटामुकुट कृसगात। राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात। यह उनके सद्‌गुणो का द्योतक है। यथा : यस्यातिभक्ति।

दो. राम प्रानप्रिय नाथ तुम्ह, सत्य वचन मम तात।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि, हर्प न हृदय समात ॥२॥

अर्थ : हे नाथ! तुम रामजी को प्राण के समान प्यारे हो। हे तात मेरा वचन सत्य है। यह सुनकर भरतजी बार बार मिलते हैं और हर्प हृदय में समाता नही।

सो. भरत चरन सिरु नाइ, तुरित गयउ कपि राम पहिं ।
कही कुसल सब जाइ, हरषि चलेउ प्रभु जान चढि ॥२॥

अर्थ : भरतजी के चरणो मे सिर नवाकर तुरन्त हनुमान्जी रामजी के पास गये और जाकर सब कुशल कहा। और प्रभु हर्षित होकर विमानारूढ होकर चले।

व्याख्या : प्रेमियो के प्रेम की गाथा समाप्त नही होती। अत• हनुमान्जी ने बिदाई के लिए भरतजी के चरणो मे प्रणाम किया। सरकार हनुमान्जी के आसरे : इन्तजार ठहरे हुए हैं। अतः हनुमान्जी को त्वरा है। तुरन्त रामजी के पास पहुँच गये। रामजी के पास जाने मे कवि कपि शब्द का प्रयोग करते हैं भाव यह कि ब्राह्मण का रूप त्याग करके अपने स्वरूप से रामजी के पास गये और जाकरके सब कुशल कहा। यद्यपि हनुमान्जी ने राजकुल का कोई कुशल नही पूछा और न भरतजी ने उस विषय मे कुछ कहा। तथापि भरतजी के सरकार के बार बार कुशल पूछने से ही राजकुल का कुशल ध्वनित था अथवा : तब लगि कुसल न जीव कहँ सपनेहुँ मन बिस्राम। जब लगि भजत न राम कहँ सोक धाम तजि काम। यहाँ सम्पूर्ण नगर भजन मे दत्तचित्त है। जहँ तहँ सोचहिं नारिनर कृसतन राम वियोग। भरतजी के लिए कहना ही क्या है? अत. सब कुशल के रास्ते मे लगे हैं। यहाँ अकुशल कहाँ से हो सकता है? यह सब बात रामजी से कही। सरकार ने देख लिया कि सब लोग मेरे आगमन के लिए आर्त हैं। अतः यान पर चढकर चले। नही तो निषाद के आश्रम से आगे न बढते।

हरषि भरत कोसलपुर आए। समाचार सब गुरहिं सुनाए ॥
पुनि मदिर महुँ बात जनाई। आवत नगर कुसल रघुराई ॥१॥

अर्थ हर्षित होकर भरतजी अयोध्यापुरी मे आये। सब समाचार गुरुजी को सुनाया। तत्पश्चात् घर मे खबर दी कि सरकार सकुशल नगर मे आ रहे है।

व्याख्या : नन्दिगाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवासु धरमधुर धीरा। चौदह वर्ष से भरतजी नन्दिग्राम मे ठहरे हुए हैं। जब से सरकार नगर छोडे हुए हैं तब से भरतजी भी छोडे बैठे हैं। सरकार का आना सुनकर हर्षित होकर नगर मे आये तो पहिले गुरुजी के पास गये। रघुकुल की गुरुचरणो मे अपार भक्ति है। महाराज चक्रवर्तीजी का यही रास्ता था कि जो बात हो पहिले गुरुजी को सुनायी जाय। उसी मार्ग का अनुसरण करते हुए भरतजी ने गुरुजी के पास जाकर हनुमान्जी का आना और समाचार देना आदि सब बातें सुनायी। तत्पश्चात् घर गये। जाते ही समाचार कहलाया कि सरकार सकुशल नगर मे आ रहे हैं। कौसल्यादि मातु सब मन अनन्द अस होइ। आयेउ प्रभु सिय अनुज जुत कहन चहत अब कोइ। तब से समाचार आ ही तो गया।

सुनत सकल जननी उठि धाईं। कहि प्रभु कुसल भरत समुझाईं ॥
समाचार पुरबासिन्ह पाए। नर अरु नारि हरषि सब धाए ॥२॥

अर्थ सुनते ही सब माताएँ उठकर दौड पडी। तब सब कुशल कहकर भरतजी ने समझाया। पुरवासियो ने समाचार पाया तो सब स्त्री और पुरुष हर्षित होकर दौडे।

अति उत्कण्ठा से कौसल्यादि माताएँ समाचार सुनते ही भरतजी के मुख से सुसवाद सुनने के लिए उठकर दौड पडी। भरतजी ने प्रभु का कुशल कहकर समझाया। यथा

जीति गढलङ्क बङ्क लखन सिय के सग, कुशल अनन्द सब भाँति रघुराई हैं।
वृन्दारक वृन्दनते वदित अमन्द कलकीरति सुछन्द तिहुँलोक सरसाई हैं॥
विजयी विमान चढे आवत सुजान, आइ दूत हनुमान् ऐसी खबर जनाई हैं।
वेगि साजो आरती सुमगल कलस साजि आज महाराज रघुराज की अवाई है॥

इतने मे तमाम नगर मे बात फैल गयी। जैसे वनवास की बात नगर मे फैल गयी किसी घोषणा विशेष की आवश्यकता न हुई। नगर व्यापि गई बात सुतीछी। छुवत चढी जनु सब तन बीछी। उसी भाँति नगर मे आने की बात भी तमाम नगर मे व्याप गयी। क्या स्त्री क्या पुरुष सब हर्षित होकर सरकार के दर्शन के लिए दौड पडे।

दधि दुर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसीदल मगल मूला ॥
भरि भरि हेमथार भामिनी। गावत चली सिंधुरगामिनी ॥३॥

अर्थ दही दूब गोरोचन फल फूल और मङ्गलमूल ताजा तुलसीदल सोने के थारो मे गजगामिनी स्त्रियाँ भर भर के चली।

व्याख्या स्त्री लोग मङ्गल थार साजने के लिए दौडी। बिना मङ्गलथार के महाराज का स्वागत कैसे करें। ये उपर्युक्त छ वस्तुएँ मङ्गल हैं। उनमे नवीन तुलसीदल मङ्गलमूल है। नवीन तुलसीदल कहने का भाव यह है कि पत्रो मे बिल्वदल और तुलसीदल ऐसे हैं जो सूखे हुए भी देवार्पण के योग्य होते हैं। पर मङ्गल मे सूखे का ग्रहण नही है। अत नव तुलसीदल कहा इन छ वस्तुओ को थार मे साजती नही हैं। शीघ्रता के कारण भर लेती हैं। थार भरकर मङ्गलगान करती हुई घर से चली इतना उत्साह स्त्रियो का कहा। वे गजगामिनी स्वाभाविक चाल उनकी गज की भाँति है। भामिनी से शरीर का सौन्दर्य और गजगामिनी से गति का सौन्दर्य कहा।

जे जैसेहि तैसेहि उठि धावहिं। बाल वृद्ध कहुँ संग न लावहिं ॥
एक एकन्ह कहुँ बूझहि भाई। तुम्ह देखे दयाल रघुराई ॥४॥

अर्थ जो जिस दशा मे है वह वैसे ही उठकर दौडता है। बूढो और

बच्चो को कोई साथ नही ले रहा है। एक दूसरे से पूछते हैं कि भाई तुमने दयाल रघुराई को देखा है ?

व्याख्या स्त्रियो का हाल कहकर अब पुरुषो का हाल कहते है कि जो जिस अवस्था मे था वह उसी भाँति दौड पडा। सामान्य रीति है कि घर के बाहर निकलते समय लोग वस्त्रादि को धारण करके ही बाहर निकलते हैं। पर सरकार के दर्शन के लिए ऐसे आर्त्त है कि किसी को कपडा पहन लेने की सुधि नही। अथवा इतनी त्वरा है कि वस्त्रादि धारण मे जो विलम्ब होगा वह उन्हे सह्य नही है। जैसी दशा मे है उसी दशा मे दौड पडे। अथवा जिस काम मे लगे हैं। उस काम को वैसे ही अधूरा छोडकर दौड पडे। सम्पत्ति अरक्षित छोडकर ही घर से निकल गये।

दौडे तो सब पर किसी को पता नही कि सरकार किधर से आ रहे हैं। अत सभी पूछनेवाले हैं कि तुमने सरकार को देखा। पर यह कहनेवाला कोई नही कि मैं देखकर आ रहा हूँ। इस रास्ते चल जाओ। ऐसे अवसर का गोलमाल भी शोभा की वृद्धि करता है। यथा पुर खरभर सोभा अधिकाई।

अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल सोभा कै खानी॥
बहइ सुहावन त्रिविध समीरा। भइ सरजू अति निर्मल नीरा॥५॥

अर्थ अवधपुरी सरकार को आते जानकर सब शोभा की खानि हो गयी। त्रिविध वायु सुहावनी बहने लगी और सरयू अत्यन्त निर्मल जलवाली हो गयी।

व्याख्या पुरी की अधिष्ठात्री देवता ने जान लिया कि सरकार आ रहे है। अत शोभा की खानि हो गयी। सरकार के बिना वह भयावन हो गयी थी। यथा लागति अवध भयावन भारी। मानहुँ काल राति अँधियारी। हाट बाट नहि जाइ निहारी। जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी। घर मसान परिजन जनु भूना। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता। भरतजी से सब प्रकार से पालित होने पर भी अनाथ सी थी। आज सनाथ हो रही है।

। अवध की शोभा सरयू से और सरयू की शोभा अवध से है। अत दोनो का वर्णन साथ ही आता है। सरकार के न रहने के समय सरित सरोवर देखि न जाही। सो सरयू का जल अत्यन्त निर्मल हो गया। त्रिविध समीर अर्थात् शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु का चलना मङ्गल है। सो वह भी चल पडा।

दो हरषित गुर परिजन अनुज, भूसुर बृंद समेत।
चले भरत मन प्रेम अति, सनमुख कृपा निकेत॥३ क॥

अर्थ अत्यन्त आनन्द से गुरुजी कुटुम्बी छोटे भाई तथा ब्राह्मणो के समूह के साथ भरतजी अति प्रेमयुक्त मन से कृपानिकेत की ओर चले।

व्याख्या भरतजी ने साथ मे गुरुजी को कुटुम्बियो को शत्रुघ्नजी को और ब्राह्मणो को लिया। इन्हे मालूम है कि सरकार विमान द्वारा आकाश मार्ग से आ

रहे हैं। अतः दक्षिण की ओर चले। क्योंकि उधर से ही सरकार आवेंगे। सनमुख स्वामि बिमुख दुख दोषू। इसलिए सबको हर्षित लिखते हैं और अत्यन्त प्रेम मन में है। यथा : भरत प्रेम तेहि समय जस तस कहि सकहिं न सेषु। कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुख अह मम मलिन जनेषु।

दो. बहुतक चढ़ी अटारिन्ह, निरखहि गगन बिमान।
देखि मधुर सुर हरषित, करहिं सुमंगल गान ॥३ ख॥
राका ससि रघुपति पुर, सिंधु देखि हरषान।
बढ़ेउ कोलाहल करत जनु, नारि तरंग समान ॥३॥

अर्थ : बहुत सी स्त्रियाँ अटारियों पर चढ़ी हुई आकाश में विमान देखती थी, और देखकर हर्षित हो मधुर स्वर से सुमङ्गल गान करती थी। पूर्णचन्द्र के समान रामचन्द्र को देखकर समुद्र के समान पुर हर्षित हो उठा और अटारियो पर चढ़ी हुई स्त्रियों के गाने से ऐसी शोभा हुई मानो समुद्र में तरंग उठ रही हो और उसके कारण कोलाहल होता हो।

व्याख्या : कुलवधुएँ जो बाहर नही निकल सकती थीं अटारी पर चढ़ गयीं और विमान देखने लगीं। जब विमान दृष्टिगोचर हुआ तो हर्षित होकर सुमङ्गल गान करने लगी। इस भाँति अवधपुरी की अपूर्व शोभा हुई। प्रत्येक अटारियों पर गान करती हुई कुलवधुओं के कारण मानो अयोध्या अधिक ऊँची हो गयी और प्रत्येक अटारियो पर मङ्गलगान होने से ऊपर कोलाहल होने लगा। कवि कहते हैं कि पुष्पकारूढ़ रामचन्द्र मानो पूर्णचन्द्र उदय हो गये। पूर्णचन्द्र के उदय होने पर समुद्र बढ़ता है। उसमे कोलाहल करती हुई तरंगें उठती हैं। सो रामचन्द्ररूपी पूर्णचन्द्र को देखकर अवधपुररूपी समुद्र बढा और उसके ऊपरी भाग में लहरों की भाँति स्त्रियाँ कोलाहल करती हुई शोभित हुईं।

इहाँ भानुकुल कमल दिवाकर। कपिन्ह देखावत नगरु मनोहर ॥
सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावन पुरी रुचिर एह ऐसा ॥१॥

अर्थ : यहाँ सूर्यकुल कमल के सूर्य रामजी बन्दरों को सुन्दर नगर दिखला रहे हैं। हे सुग्रीव, अङ्गद और विभीषण सुनो : यह पुरी पवित्र और यह देश सुन्दर है।

व्याख्या : यहाँ कवि सरकार के साथ पुष्पक पर अपने को मान रहे हैं। इसलिए इहाँ कहते है। क्योकि भक्त भगवान् दोनो यहाँ एकत्रित हैं। नही तो नियम यह है कि कवि अपने को भक्तो के साथ मानते हैं। सूर्यकुल कमल के सूर्य कहने का भाव यह कि इनके उदय से सूर्यकुल खिल उठता है। जब पुष्पक पर चले थे तब सीताजी को न देखा हुआ दृश्य उन्हे दिखलाते थे। यथा : इहाँ सेतु बाँधेउ अरु थापेउँ सिव सुखधाम। इत्यादि। पर जब अवधपुरी दिखलायी पड़ी तब बन्दरों को दिखलाने लगे। क्योकि उनका नही देखा हुआ था। सीताजी तो अवध मे सरकार के साथ बारह वर्ष रह चुकी थी।

कपीश सुग्रीव बन्दरों के राजा हैं। अङ्गदजी युवराज हैं। लङ्केश विभीषण निशाचरो के राजा हैं। ये लोग अपने अपने राज्य के शासक हैं। ये पुरी और देश के बनावट के जानने मे चतुर हैं। अतः पुरी के दिखलाने मे इन्ही को सम्बोधन करते हैं। अथवा इनके सम्बोधन से सम्पूर्ण वानरो के सम्बोधन का अन्तर्भाव है। सरकार कहते हैं कि यह देश मनका हरण करनेवाला है। समतल और उपजाऊ है। पर्वतादि के कारण बीहड़ नही है और यह राजधानी पावन है। मोक्षदायिका पुरियो मे प्रथम है। अयोध्यापुरी मस्तके।

जद्यपि सबु बैकुण्ठ बखाना। बेद पुरान बिदित जग जाना ॥
अवधपुरी सम प्रिय नहि सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ ॥२॥

अर्थ : यद्यपि सबने वैकुण्ठ की प्रशसा की है। वह वेद और पुराणो मे विदित है और सभी जानते भी है। पर अवधपुरी के समान मुझे वह भी प्रिय नही है। इस प्रसङ्ग को बिरले जानते हैं।

व्याख्या : सभी वक्ताओ ने वैकुण्ठ की प्रशसा की है। क्योकि सब लोको से उसका उत्कर्ष सबसे अधिक है। यथा : सुनु मति मद लोक बैकुठा। बैकुण्ठ के अत्यन्त मनोहर होने से उसकी सब लोग प्रशसा करते हैं और यह बात प्रसिद्ध है कि परम पुनीत होने से वेद और पुराणो ने भी उसका यश गान किया है। मुझे भी वह प्रिय है। वहाँ मै निवास करता हूँ और : श्रीपतिपुर बैकुण्ठ निवासी : कहलाता हूँ। पर अयोध्या के समान मुझे बैकुण्ठ भी प्यारा नही। इस बात को अधिकारी ही जानते हैं सब लोग नही जानते है। इस गुप्त रहस्य को सब जान भी नही सकते। क्योकि : अवध प्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहि राम धनुपानी। कवनेउँ जनम अवध बस जोई। राम परायण सो परि होई। अवध अति दुर्लभा राम भक्ति देनेवाला है। अत॰ अति प्यारा है।

जनमभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरयू पावनि ॥
जा मज्जन तें बिनहि प्रयासा। मम समीप नर पावहि बासा ॥३॥

अर्थ : यह सुहावनी पुरी मेरी जन्म-भूमि है। इसके उत्तर पुनीत सरयू नदी बहती है। जिसमे स्नान करने से बिना परिश्रम ही मनुष्य मेरे समीप निवास पाता है।

व्याख्या : अब अयोध्यापुरी के वैकुण्ठ से भी अधिक प्रिय होने का कारण कहते हैं। वैकुण्ठ मेरी जन्म भूमि नही है। उसमे सरयू नही बहती। सुहावनी अयोध्या मेरी जन्म भूमि है। माँ कौसल्या के समक्ष है। बन्दौ कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग माची। प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारू। बिस्व सुखद खल कमल तुषारू। मेरा जब अवतार होता है तब अयोध्या मे ही होता है। दूसरी बडी भारी बात यह है कि इसके उत्तर की ओर सरयू नदी बहती है। मेरे सन्निकट निवास बडे भारी पुण्य का फल है। उसके सम्पादन मे बड़ा भारी आयास करना पडता है।

पर सरयू मे स्नान करने से मेरा सन्निधान बिना आयाम के ही प्राप्त होता है। अर्थात् सरयू स्नायी को सामीप्य मुक्ति विना परिश्रम होती है।

अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुखरासी॥
हरपे सब कपि सुनि प्रभु बानी। धन्य अवध जो राम बखानी॥४॥

अर्थ : यहाँ के निवासी मुझे अत्यन्त प्यारे है। यह सुखराशि पुरी मेरे धाम को देनेवाली है। सब बन्दर सरकार की वाणी सुनकर प्रसन्न हो गये कि अवध धन्य है। जिसकी प्रशसा स्वय रामजी करते हैं।

व्याख्या : सरकार के कहने का भाव यह है कि वैकुण्ठ के निवासी भी मुझे उतने प्रिय नही जितने कि अवधवासी मुझे प्रिय हैं। ब्राह्मण का अपमान करने से वैकुण्ठवासी जय और विजय का वहाँ से पतन हो गया और साक्षात् जगदम्बिका सीताजी के निन्दा करनेवाले को अयोध्यावासी होने के कारण उत्कर्ष की प्राप्ति हुई। यथा : सिय निन्दक अघओघ नसाये। लोक बिसोक बनाइ बसाये। यह पुरी मेरे धाम को देती है और देय वस्तु से दाता के बडे होने का नियम है।

सरकार की वाणी कभी अन्यथा हो नही सकती। उसे सुनकर सब बन्दर हर्षित हुए कि अब तो हमे कुछ दिनो के लिए अवधवास की भी प्राप्ति होगी। सरयू स्नान भी सुलभ होगा। अयोध्या को धन्य धन्य कहने लगे। क्योकि इस पुरी की महिमा स्वय सरकार ने हम लोगो को वर्णन करके सुनाया।

दो. आवत देखि लोग सब, कृपासिन्धु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ, उतरेउ भूमि बिमान॥४ क.
उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि, तुम्ह कुबेर पहिं जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो, हरप बिरह अति ताहु॥४ ख.

अर्थ : सब लोगो को आते देखकर कृपासिन्धु भगवान् ने नगर के निकट पुष्पक को प्रेरणा की और वह पृथिवी पर उतर पडा। प्रभु ने उतरकर पुष्पक से कहा कि तुम कुबेर के पास जाओ। रामजी से प्रेरित होकर वह चला। उसे भी अत्यन्त हर्ष और विरह हुआ।

व्याख्या : सरकार कृपासिन्धु हैं। उन्होने देखा कि मेरे स्वागत के लिए सब लोग पैदल चले आ रहे है। अत. नगर के पास ही विमान को रोक दिया। वही विमान पृथिवी पर उतर आया। सरकार समाज के साथ वही उतर पडे और उतरते ही पुष्पक को आज्ञा हुई कि तुम कुबेर के पास जाओ। सरकार ने विमान का अयोध्या या लङ्का मे रहना पसन्द नही किया। मर्त्यलोक का अकल्याण ही वायुयान से होगा। कल्याण नही होगा। इसलिए उसे नही रक्खा। दूसरा कारण यह भी था कि वह तप द्वारा कुबेर से ही अर्जित था। रावण ने उसे बलपूर्वक हरण किया था। अतः उसे उसके स्वामी के पास भेज दिया। इससे पुष्पक को हर्ष हुआ। पर जाते समय रामजी के वियोग का उसे अत्यन्त विरह व्यथा भी हुई।

आए भरत सग सब लोगा। कृस तन श्रीरघुवीर वियोगा॥
वामदेव वसिष्ठ मुनि नायक। देखे प्रभु महि धरि धनु सायक॥१॥

अर्थ भरतजी के साथ सब लोग आये। श्रीरघुवीर के वियोग से दुबले हो रहे थे। वामदेव और वसिष्ठ मुनिनायक का दर्शन सरकार ने पृथिवी पर धनुष बाण रखकर किया।

व्याख्या 'हरषित गुरुपरिजन अनुज भूसुर वृन्द समेत। चले भरत मन प्रेम अति सनमुख कृपा निकेत। सो सब लोग आगये। सरकार ने देखा कि सब लोग कृशतनु हैं। कोई घाटा किसी को नही। पर मेरे वियोग से दुर्बल हो रहे हैं। पहिले कहा गया है पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग। जहँ तहँ सोचत नारि नर कृसतन रामवियोग।

वामदेव ऋषि गर्भज्ञानी और वसिष्ठजी गुरु थे। श्रीरामचन्द्र के आवरण में बारह ऋषि हैं। उनमे पहिले वसिष्ठ, वामदेव हैं। वसिष्ठ, वामदेव का साथ देखा जाता है। काशी मे वसिष्ठ वामदेव के नाम से एक ही स्थान मे दो लिङ्ग स्थापित हैं। समाज के आगे आगे ये ही दोनो महात्मा थे। अत सरकार की दृष्टि पहले इन्ही दोनों महात्माओ पर पडी। इन्हे देखते ही सरकार ने धनुष बाण को पृथिवी पर रख दिया।

धाइ धरे गुरु चरन सरोरुह। अनुज सहित अति पुलक तनोरुह॥
भेटि कुसल बूझी मुनिराया। हमरे कुसल तुम्हारिहि दाया॥२॥

अर्थ भाई के साथ दौडकर गुरुजी का चरण पकड लिया। शरीर अत्यन्त पुलकित हो रहा था। मुनिराज ने गले लगाकर कुशल पूछा बोले 'कि आपकी ही दया से सब कुशल है।

व्याख्या चित्रकूट में भी गुरुजी से मिले थे। पर वहाँ तो दण्ड प्रणाम करते चले थे। यथा गुरहि देखि सानुज अनुरागे। दंड प्रनाम करन प्रभु लागे। मुनिवर धाइ लिये उर लाई। दण्ड प्रणाम करते आते देखकर वसिष्ठजी दौड पडे। इस बार भी दौड पडेंगे। इस भय से सरकार ने स्वयं दौडकर गुरुजी का चरण पकड लिया। अति प्रेम से सरकार और लक्ष्मणजी को अत्यन्त पुलक हो रहा था। रामहि सुमिरत रन भिरत देत परत गुरुपाय। तुलसी जाहि न पुलक तन सो जग जीवत जाय। गुरुजी ने प्रेम से गले लगा लिया और कुशल पूछा। सरकार उत्तर देते हैं कि हम लोगो की कुशल तो आपकी दया से होती है। भरतजी ने वसिष्ठजी से कहा था 'भानु बस भये भूप घनेरे। अधिक एक ते एक बडेरे। जनम हेतु सब कहँ पितु माता। करम सुभासुभ देइ बिधाता। दलिदुख सजइ सकल कल्याना। अस असीस राउरि जग-जाना। वही भाव रामजी का हमरो कुसल तुम्हारिहि दाया कहने से है।

सकल द्विजन्ह मिलि नायेउ माथा। धरम धुरधर रघुकुल नाथा॥
गहे भरत पुनि प्रभुपद पकंज। नमत जिनहि सुर मुनि सकर अज॥३॥

अर्थ सब ब्राह्मणो से मिलकर प्रणाम किया। रघुकुल नाथ धर्म की धुरी के धारण करनेवाले हैं। तब भरतजी ने सरकार के चरण पकडे। जिनको शिव ब्रह्मा देवता और मुनि नमस्कार किया करते हैं।

व्याख्या : गुरुजी के बाद ब्राह्मणो की पारी थी। सरकार ने सब ब्राह्मणो से मिलकर प्रणाम किया। पहिले मिलते है। पीछे प्रणाम करते हैं। क्योकि ब्राह्मण लोग प्रणाम का अवसर नही दे रहे हैं और गले लगा लेते हैं। इतना अधिक प्रेम भरतजी से है पर उसे रोके हुए है। धर्माचरण के प्रधान अङ्ग गो और ब्राह्मण हैं। सरकार धर्म धुरन्धर है। अत सब कृत्यो को रोककर पहिले उनसे मिलकर मर्यादा पालन कर रहे हैं।

सब ब्राह्मणो से सरकार जब मिल चुके तब भरतजी ने चरण पकडे। हृदय मे यह भाव है कि इन्ही चरणो को शिव ब्रह्मादि देवगण तथा मुनिगण नमस्कार किया करते हैं। भरतजी के चरण पकडने मे प्रणाम के अतिरिक्त भाव भी है। भरतजी ने चरण पकडे हुए ही दण्डवत् किया। स्नेह के कारण भयभीत हैं कि कही फिर इन चरणों का वियोग न हो जाय। जैसे : मनु सतरूपा पडे दडइव गहि पद पानी।

परे भूमि नहि उठत उठाए। बर करि कृपासिंधु उर लाए॥
स्यामल गात रोम भए ठाढे। नव राजीव नयन जल बाढे॥४॥

अर्थ : भरतजी पृथिवी पर लोटे हुए हैं। उठाने से उठते नही। तब कृपासिन्धु ने बल लगाकर उन्हे उठाकर हृदय से लगाया। श्याम शरीर में पुलक हो गया। नवीन कमल से नेत्र मे जल भर आया।

व्याख्या : भरतजी भूमि पर पडे रहने मे सुखी हैं। सरकार उठने के लिए इङ्गित करते हैं। पर नही उठते। यथा : प्रेम मगन तेहि उठब न भावा। सरकार का उनका पृथिवी पर पडा रहना सह्य नही। अतः बल करके उन्हे उठा लिया और हृदय से लगाया। भावुक कवि को भरत के प्रति बल प्रयोग का लिखना भी सह्य नही है। अतः बर लिखा। र और ल मे भेद नही माना गया है। हृदय मे लगाने से सरकार को सात्त्विक भाव हुआ। रोंगटे खडे हो गये और कमल ऐसे नेत्रो में जल भर आया। श्यामलगात को रोमाञ्च हो आने से अधिक शोभा हो जाती है। उसी भाँति कमलनयन मे जल भर जाने से नेत्रो की अधिक शोभा हो जाती है। अतः कवि शोभा वर्णन करने लगे।

छ. राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदय लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुवन धनी॥
प्रभु मिलत अनुजहि सोह मोपहि जाति नहि उपमा कही।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही॥

अर्थ : कमल ऐसे नेत्र से जल गिर रहा था। शरीर मे सुन्दर रोमाञ्च हो रहा

ा। त्रिभुवनधनी सरकार अत्यन्त प्रेम से हृदय लगाकर छोटे भाई से मिले। सरकार ोटे भाई से मिलते हुए शोभित हुए। मुझसे उपमा नही कही जाती। मानो प्रेम और ृङ्गार शरीर धारण करके मिलते हुए परम शोभा पा रहे हैं।

व्याख्या : स्यामल गात रोम भये ठाढे। नव राजीव नयन जल बाढे। इस रइन का यह कमल है। पुरइन मे नयन जल बाढे यह कली लगी थी। उसी का ाकास कमल रूप मे हुआ। बढा हुआ जल वह चला। सरकार त्रिभुवन के मालिक । परन्तु भाई से मिलने मे उस ऐश्वर्य का कोई ध्यान नही है। अत्यन्त प्रेम हृदय लगकर भाई से मिले। पहिले कह चुके हैं : परम प्रेम पूरन दोउ भाई। न बुधि चित अहमिति बिसराई। कहहु सुप्रेम प्रकट को करई। केहि छाया कवि ति अनुसरई। अतः यहाँ समास से कहते हैं अति प्रेम से मिले। यहाँ प्रभु के मिलने जो शोभा हुई उसकी उपमा कवि कहते हैं कि मुझसे कहते नही बनता। क्योकि ारीरी की उपमा अशरीरी के साथ देना ठीक नही है। परन्तु दूसरी उपमा भी कोई ही। इसलिए कहते हैं कि मानो प्रेम और शृङ्गार शरीर धारण करके मिल रहे । प्रेम शृङ्गार रस के हिस्से की चीज है। प्रेम से शृङ्गार की और शृङ्गार से म की शोभा है। अत दोनो के मिलने मे बडी भारी शोभा हुई।

छं. बूझत कृपा निधि कुसल भरतहि बचन बेगि न आवई।
सुनु सिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई॥
अब कुसल कोसल नाथ आरत जानि जन दरसन दियो।
बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियो॥

अर्थ : कृपानिधि रामजी कुशल पूछते हैं। भरतजी के मुख से बात शीघ्र नही नकलती। हे शिवा! वह सुख वचन और मन से भिन्न है। उसे जो पाता है वही ानता है। हे कोशलनाथ! अब कुशल है जो आपने आर्त्त जानकर अपने भक्त को र्शन दिया। विरह के समुद्र मे मुझ डूबते हुए को आपने हाथ पकडकर चा लिया।

व्याख्या : सरकार कृपानिधि हैं। हनुमान्जी द्वारा कुशल समाचार मिल जाने पर भी आदर के लिए कुशल पूछते हैं। भरतजी का यह हाल है कि तुरन्त उत्तर देनेका यत्न करते हैं। परन्तु वाणी ठीक काम नही कर रही है। शङ्कर भगवान् उमा से कहते हैं कि वह सुख ही ऐसा है कि उसमे मग्न हुआ पुरुष ऐसा शिथिल हो जाता है कि जल्दी उसके मुखसे बात नही निकलती। वह सुख वचन मन से भिन्न है। अर्थात् अनिर्वचनीय है। उसे केवल पानेवाला जानता है। अन्त मे अपने को सँभालकर भरतजी ने कोशलनाथ कहकर सम्बोधन किया। आपके बिना कोशलपुरी अनाथ थी। आप पूर्णकाम है। आपके आगमन का कारण जन का आर्तिभञ्जन है। यथा 'बीते अवधि रहहिं जौ प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना। अब अपनी आर्त्ति कहते हैं कि मैं तो विरहसागर मे डूब रहा था। जहाज

रूप हनुमान्‌जी आये। हाथ पकडकर सरकार ने उबार लिया। हाथ पकडकर उबारनेवाले के सामने जहाज की कृतज्ञता नही प्रकाशित की जाती। अतः हनुमान्‌जी की चर्चा नही की।

दो. पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन, भेटें हृदय लगाय।
लछिमनु भरत मिले तब, परम प्रेम दोउ भाइ ॥५॥

अर्थ : फिर प्रभु ने हर्षित होकर शत्रुघ्न को हृदय से लगा लिया तब लक्ष्मण भरत दोनो भाई अत्यन्त प्रेम पूर्वक मिले।

व्याख्या : भरतजी के मिलने के बाद सरकार हर्षित होकर शत्रुघ्नजी को हृदय से लगाकर मिले। भरतजी के साथ ही शत्रुघ्नजी का प्रणाम करना मान लेना चाहिए। क्योंकि सरकार का सामना होते ही प्रणाम प्राप्त हो गया था। जब तक रामजी भरत से मिल रहे थे तबतक कोई किसी से नही मिला। जब उनसे मिलकर सरकार शत्रुघ्नजी से मिले तब भरतजी लक्ष्मणजी से मिले। परम प्रेम से दोनो भाइयो का मिलाप हुआ। जब तक भरतजी से नही मिले तब तक अवसर रहते भी लक्ष्मणजी शत्रुघ्न से नही मिले। भरतजी से मिलने की प्रतीक्षा मे थे।

भरतानुज लछिमनु पुनि भेटे। दुसह बिरह संभव दुख मेटे ॥
सीता चरन भरत सिरु नावा। अनुज समेत परम सुख पावा ॥१॥

अर्थ · फिर लक्ष्मणजी भरतजी के छोटे भाई से मिले और विरह से उत्पन्न दु सह ताप को मिटाया। सीताजीके चरण मे भरतजी ने भाई के साथ सिर नवाया और परम सुख पाया।

व्याख्या : जब भरतजी से मिल चुके तब उनके छोटे भाई से मिले। यद्यपि शत्रुघ्नजी सहोदर भाई लक्ष्मणजी के हैं। परन्तु साथ रहने से जैसे रामानुज लक्ष्मणजी कहलाये उसी भाँति शत्रुघ्नजी भरतानुज कहलाये। अलग अलग साथ रहने से दोनो भाइयो के प्रेम मे काई घाटा नही था। इसी बात को दिखलाते हुए कवि लिखते हैं कि विरहसम्भव दु सह दु ख को मिटाया। फिर भाई शत्रुघ्न के साथ भरतजीने सीताजी के चरणो मे सिर झुकाया। जगदम्बा के चरण मे प्रणत होने मे ही दोनो भाइयो ने परम सुख पाया। क्योंकि देखा कि भगवती स्नेह मे मग्न हैं। यथा : सीय असीस दीन्ह मन माही। मगन सनेह देह सुधि नाही।

प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी। जनित बियोग बिपति सब नासी ॥
प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी ॥२॥

अर्थ : सरकार को देखकर पुरवासी हर्षित हुए। वियोग से उत्पन्न विपत्ति उनकी नष्ट हो गयी। सब लोगो को प्रेमातुर देखकर खर के शत्रु कृपाल ने कौतुक किया।

व्याख्या सरकार के दर्शन से पुरवासी सनाथ हो गये। अत हर्षित हो उठे। सरकार के वियोग से जो दुख उनपर आ पडा था यथा राम वियोग कुराग बिगोए। यथा परिहरि भूपन भोग सुख जिअत अवधि की आस सो दुख उनका दूर हुआ। अब ये लोग प्रेमातुर हैं। सरकार से मिलना चाहते हैं। इतने बडे जन समूह से मिलना अल्पकाल मे हो नही सकता और विलम्ब उन लोगो को असह्य हो रहा है। सरकार बडे कृपालु हैं। अत उस समय एक कौतुक किया। अघटित घटना का सम्भव करना उनके लिए कौतुक है। कौतुक करने के प्रसङ्ग म कवि खरारि विशेषण देते हैं। भाव यह कि जैसा कौतुक खर के वध म किया था। यथा सुरमुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अस कौतुक करयो। देखत परस्पर राम करि सग्राम रिपुदल लरि मरयो। उसी प्रकार का कौतुक इस समय भी किया।

अमित रूप प्रकटे तेहि काला। जथाजोग मिले सबहि कृपाला॥
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी। किए सकल नरनारि बिसोकी॥३॥

अर्थ असख्य रूप उस समय प्रकट किया और कृपालु यथायोग्य सबसे मिले। रघुवीर ने कृपा दृष्टि से देखकर सब नरनारियो को विशोक कर दिया।

व्याख्या सरकार ने उस समय अपना असख्यरूप प्रकट किया और यथायोग्य सबसे मिले। किसी के गले मिले। किसी को हाथ से स्पर्श किया। किसी को प्रेमपूर्वक देखा। किसी से कुछ बोल दिया। इस भाँति जिसके साथ जिस तरह से मिलना उचित था उस तरह सबसे मिले। सूर्य के बिना जैसे कमल कोक और कोकी दीन हो जाते है उसी भाँति प्रजावर्ग सरकार के बिना शोकाकुल हो रहे थे। सो सबको कृपादृष्टि से देखकर विशोक किया। देवता लोग भयभीत थे। उन्हे कृपादृष्टि से अभय करते चले आ रहे हैं। यथा कृपादृष्टि करि वृष्टि प्रभु अभय किये सुर वृन्द। यहाँ लोग शोकाकुल थे। अत इन्हे कृपादृष्टि से विशोक करते हैं।

छनमहि सबहि मिले भगवाना। उमा मरमु यह काहु न जाना॥
एहि बिधि सबहि सुखी करि रामा। आगे चले सीलगुन धामा॥४॥
कौसल्यादि मातु सब धाई। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई॥५॥

अर्थ भगवान् क्षण भर मे सबसे मिले। हे उमा! यह मम किसी ने नही जाना। इस प्रकार से शील गुण धाम रामजी सबको सुखी करके आगे चले। कौसल्या आदिक सब माताएँ दौडी जैसे बच्चे को देखकर नयी व्याई हुई गाय दौडे।

व्याख्या अमित रूप प्रकट करके सरकार एक ही समय मे सबसे मिले। जिस कार्य का होना दीर्घकाल म भी सम्भव नहीं था वह क्षण भर मे हुआ। भगवान् हैं। सभी ऐश्वर्य इनम हैं। इच्छामात्र से अनेक रूप हो गये लका के सग्राम मे रावण ने जब असख्य रूप अपना प्रकट किया था यथा रघुपति कटक भालु कपि जेते। जहँ तहँ प्रकट दसानन तेते। तब रामजी का अमित रूप धारण करना

आश्चर्य नही है। ईश्वरी माया को कोई जान नही सकता। जिस पर उनकी कृपा महादेवजी की भाँति हो वही जान सकता है।

इस विधि से सबको सुखी कर लिया तब माताओं से मिलने के लिए आगे बढे। माताओं की सवारी प्रजावर्ग के पीछे थी। बिना सबको सुखी किये आगे न बढ़ना सरकार का शील है और अमित रूप होकर सबको सुखी करना गुण है। इसलिए शील गुण धाम विशेषण दिया।

सरकार के आगमन का समाचार सुनकर कौसल्यादि माताएँ उठकर दौड़ी थीं। अब देखकर जिस प्रेम से उठकर दौड़ी उसका उदाहरण देते हुए गोस्वामीजी कहते है कि जैसे बछड़े को देखकर नयी ब्याई हुई गाय दौड़ती है। नया ब्याई हुई गाय बछडे पर बड़ा ही प्रेम करती है। वैसा प्रेम अन्य जीवो में नही देखा जाता। अतः कवि ने उसी की उपमा दी।

छं. जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृह चरन बन पर बस गईं।
दिन अन्त पुररुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं ॥
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेटी बचन मृदु बहुविधि कहे।
गइ बिषम बिपति बियोग भव तिन्ह हरष सुख अगनित लहे ॥

अर्थ : जैसे नयी ब्याई हुई गाय बछडे को घर पर छोड़कर चरने के लिए वन मे पराये बस में पड़ी होने से गयी हो और दिन के अन्त होने पर पुर की ओर थन से दूध गिराती हुई हुँकार करके दौडे। अत्यन्त प्रेम से सरकार सब माताओं से मिले और बहुत प्रकार से कोमल वचन बोले। वियोग से उत्पन्न विषम विपत्ति दूर हुई और सबको हर्ष हुआ और अगणित सुख मिला।

व्याख्या : यह छन्द निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई। इस पुरइन का कमल है। इसमें नई ब्याई हुई अर्थात् लवाई शब्द का प्रयोग छन्द के अनुरोध से नही किया। पर बालक बच्छ कहकर वही भाव प्रकट कर दिया। यही नियम है कि बछड़े को लोग घर पर रख लेते है और गाय को वन में चरने के लिए हांक ले जाते हैं। वन में गाय चरती तो है पर मन उसका अपने छोटे बच्चे पर लगा रहता है। उसका दिन कटना कठिन हो जाता है। ज्योही दिन समाप्त होकर गोधूलि वेला आती है वह घर की ओर अत्यन्त प्रेम से थनो से दूध टपकाती हुई हुँकार करके दौडती है। यही दशा माताओ की हुई। जैसे गाय बछड़े का वियोग नही चाहती परन्तु परवश है। मालिक उसे वनमें चरने के लिए हांक देता है और उसे जाना पड़ता है और बछड़े से वियोग हो जाता है। इसी भांति महाराज चक्रवर्तीजी के वरदान के कारण माताओं का रामजी से वियोग हो गया था। 'वियोग की अवधि समाप्त होने पर रामजी को देखकर वे भी अत्यन्त वात्सल्य से थन से दूध गिराती हुई : और रुलाई रोकती हुई हुङ्कार करके दौड़ पड़ी। उपमा मे समानधर्म लिया जाता है। यहाँ गौ और बछड़े के वियोग मात्र मे समानता है। वन जाने में समानता नही है। अतः उसी

अश का ग्रहण किया गया। अथवा अयोध्या तो रामजी के साथ रहती है। जहाँ राम नही वहाँ अयोध्या कहाँ। यथा अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइ दिवस जहँ भानु प्रकासू। अत रामजी वन जाने पर भी अयोध्या मे ही रहे और माँ लोग घर रहती हुई भी माना वन में रही। अत: रामजी को देखकर उनका उसी भाँति दौड़ना कहा। अत्यन्त प्रेम से उनकी छातियो मे दूध आ गया और इतने दिन के वियोग के दुःख सहन करने से सयोग मे रुलाई आगयी। मङ्गल जानकर उसे रोका। फिर भी हुँकार निकल ही पडा। सरकार अत्यन्त प्रेम के साथ सव माताओ से मिले। जैसे माँ वात्सल्य से भरी हुई बच्चे को अनेक प्यार के शब्दो से सम्बोधन करती है। यथा : बहुरि बच्छ कहि लाल कहि रघुपति रघुबर तात। उसी भाँति अत्यन्त प्रेम से बच्चा भी माँ को, माँ मेरी माँ, अम्ब, जननी आदि मृदु वचनो से सम्बोधन करता है। यहाँ रामजी ने उसी भाँति वहुत प्रकार के मृदु वचन कहे। सरकार के वियोग मे विपत्ति तो सबको थी। पर माताओ को तो वडी भारी विपत्ति थी। सो सब दूर हो गयी। उनके हर्ष और सुख का अन्त नही रह गया।

दो. भेटेउ तनय सुमित्रा, राम चरन रति जानि।
रामहि मिलत कइकई, हृदय वहुत सकुचानि ॥६ क.

अर्थ . रामजी के चरणो मे प्रेम है। यह जानकर सुमित्राजी वेटे लक्ष्मणजो से मिली। रामजी से मिलते हुए कैकेयी मन मे वडी सङ्कुचित हुई।

व्याख्या माँ सुमित्रा लक्ष्मणजी से मिली। हृदय मे यह भाव था कि इसके कारण मै पुत्रवती हुई। उनका यह सिद्धान्त है : पुत्रवती युवती जग सोई। रघुपति भगत जासु सुत होई। नतरु बाँझ भलि वादि बियानी। राम विमुख सुत से हित जानी। इस भाँति रामजी मे सुमित्राजी का अत्यन्त प्रेम दिखलाया। प्रेम के विवश माँ कैकेयी भी दौडी। परन्तु मिलते समय उन्हे बडा सङ्कोच हुआ कि मैने किसी का कहना नही माना। मैने ही हठ करके इन्हे वन भेजा। मै किस मुँह से मिलूँ। यथा . होत प्रात मुनि वेष धरि, जौ न राम बन जाहि। मोर मरन राउर अजस नृप समुझिय मन माही। सखी लोग कहती ही रह गयी ' भरतहि अवसि देहु युवराजू। कानन काह राम कर काजू। पर कैकेयी ने एक भी न सुना। अत. मिलने के समय अपनी करणी विचारकर सङ्कुचित हो गयी।

दो. लछिमनु सब मातन्ह मिलि, हरषे आसिष पाइ।
कैकइ कहँ पुनि पुनि मिले, मनकर छोभ न जाइ ॥६ ख.

अर्थ · लक्ष्मणजी सब माताओ से मिले और आशीर्वाद पाकर हर्षित हुए। पर कैकेयी से तो बार बार मिले। परन्तु मन का क्षोभ नही जा रहा है।

व्याख्या : सुमित्राजी से मिलने के बाद लक्ष्मणजी सब माताओ से मिले। सबने उन्हे आशीर्वाद दिया। इसलिए हर्षित हुए। आशीर्वाद पाना लिखने से ही प्रणाम अनुमित है। परन्तु कैकेयी से बार बार मिले मन का क्षोभ मिटाने के लिए।

सो नही मिट रहा है। भाव यह है कि चित्रकूट मे जब माताएँ गयी थी तब लक्ष्मणजी कैकेयी से नही मिले। यथा : प्रथम राम भेटी कैकेई। सरल सुभाय भगति मति भेई। इस बात का पश्चात्ताप लक्ष्मणजी के हृदय में था। अतः हृदय का क्षोभ मिटाने के लिए बार बार कैकेयी से मिले। फिर भी क्षोभ नही गया।

सासुन्ह सबन्हि मिली बैदेही। चरनन्हि लागि हरष अति तेही॥
देहि असीस बूझि कुसलाता। होइ अचल तुम्हार अहिवाता॥१॥

अर्थ : सब सासों से वैदेही चरणों पर गिरकर मिली। उन्हे अत्यन्त हर्ष था। सास सब कुशल पूछकर आशीर्वाद देती थी कि तुम्हारा सौभाग्य अचल हो।

व्याख्या : दोनों भाइयों के मिलने के बाद जानकीजी सास लोगों के चरणों की वन्दना करके मिली। सासों पर बड़ा प्रेम है। पहिले वह भी चुकी हैं : प्रिय परिवार मातु सम सासू। अतः उनसे मिलने मे सीताजी को बड़ा हर्ष है। अथवा वन जाने के समय सीताजी ने कहा था : सेवा समय दैव बन दीन्हा। मोर मनोरथ सफल न कीन्हा। सो मनोरथ सफल का अवसर प्राप्त होने से अत्यन्त हर्ष है।

सास लोग कुशल पूछती हैं और प्रसन्न होकर आशीर्वाद देती हैं। हिन्दू समाज मे आज भी यही स्त्रियो के लिए एक आशीर्वाद है कि तुम्हारा सोहाग बना रहे : वही आशीर्वाद दे रही हैं।

सब रघुपति मुख कमल बिलोकहिं। मंगल जानि नयन जल रोकहिं॥
कनक थार आरती उतारहिं। बार बार प्रभु गात निहारहिं॥२॥

अर्थ : सब रामजी के मुख कमल को देखती हैं और मङ्गल समय समझकर आँसू रोक रही हैं। सोने के थार में आरती कर रही हैं। बार बार सरकार के शरीर को निहारती हैं।

व्याख्या : सब माताएँ रामजी के मुख कमल को देख रही हैं। प्रजा वर्ग दूर से दर्शन करते हैं। अतः उनके लिए मुख की उपमा चन्द्रमा से देते हैं। यथा : रामचन्द मुखचन्द निहारी। पर माता लोग तो निकट से देख रही हैं। इसलिए कमल से उपमा दे रहे हैं। इतने दिनो के बाद प्रिय पुत्र के दर्शन से आँखो मे आँसू भरा चला आता है। पर उसे गिरने से रोकती हैं। क्योकि आँसू गिरना अमङ्गल का चिह्न है और इस समय महामङ्गल उपस्थित है।

सरकार इतने दिनो के बाद घर लौटे हैं और लंका विजय करके आ रहे हैं। अतः माताएँ सोने के थारो मे आरती उतार रही है और सरकार के शरीर को बार बार देखती हैं। वात्सल्य रस का उत्कर्ष है। पुत्र सभी के प्रियदर्शन होते हैं। यहाँ तो प्राणाराम राम पुत्र रूप से प्राप्त हैं।

नाना भाँति निछावरि करही। परमानंद हरष उर भरही॥
कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहि। चितवत कृपासिधु रनधीरहि॥३॥

अर्थ : नाना प्रकार की निछावर करती है। परम आनन्द और हर्ष को हृदय मे भर रही हैं। कौसल्या माता बार बार कृपा सिन्धु रणधीर रघुवीर को देखती हैं।

व्याख्या : महाराज के घर का निछावर है। भूषण, वसन, हाथी, घोडा, हेम, गो, हीरा आदि सभी प्रकार की वस्तुओं का निछावर हो रहा है। बहुत दिनो से हृदय में दुःख भरा हुआ है। अतः उसे हटाकर हर्ष और परमानन्द भर रही हैं। पुत्र के दर्शन से हर्ष और भगवद्दर्शन से परमानन्द हो रहा है। वीर जननी कौसल्याम्बा बार बार अपने वीर रणधीर पुत्र को देखती हैं जो कृपासिन्धु भी हैं। पुत्र के गुणों का उत्कर्ष जानकर माता को बड़ा आनन्द हो रहा है। अतः बार बार देख रही है।

हृदयँ बिचारति बारहिं बारा। कौन भाँति लंकापति मारा॥
अति सुकुमार[1] जुगल मेरे बारे। निसिचर सुभट महाबल भारे॥४॥

अर्थ : मनमे बार बार विचार करती है कि किस प्रकार इन्होने लकेश रावण का वध किया। मेरे दोनो बेटे अत्यन्त सुकुमार हैं। राक्षस बड़े योद्धा और भारी महाबल थे।

व्याख्या : माँ मुख से नही कहती पर हृदय मे विचार करती है। फिर भी मन मे बात बैठती नही। इनके द्वारा लकेश्वर रावण का वध कैसे हुआ? ऐसे मृदु शरीर से सग्राम मे रावणकृत आघातो का सहन कैसे हुआ। जिसे पूर्व पुरुष अनरण्य नही सह सके। मेरे दोनो लडके अत्यन्त सुकुमार हैं। इन्हे काम पडा राक्षसों से जो कि बडे योद्धा और बलवान् थे। कुमुख अकपन कुलिसरद धूम्रकेतु अतिकाय। एक एक जग जीत सक ऐसे सुभट निकाय। वारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महुँ प्रथम लीक जग जासू। दस सिर ताहि बीस भुज दडा। रावन नाम वीर बरिबडा। इत्यादि इन सभो को अति सुकुमार दोनो भाइयो ने कैसे वध किया?

दो. लछिमन अरु सीता सहित, प्रभुहि बिलोकति मातु।
परमानंद मगन मन, पुनि पुनि पुलकित गात॥७॥

अर्थ : लक्ष्मणजी और सीताजी के सहित प्रभु को माता देखती है। परमानन्द से उनका मन मग्न है और बार बार शरीर मे पुलकावली उठ रही है।

व्याख्या : ये ही तीनो मूर्तियाँ वन मे गयी थी। इनका दर्शन दुर्लभ था। यथा : सुदिन सुघरी तात कब होइहि। जननी जिअत बदन बिधु जोइहि। फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी। देखिहौं नयन मनोहर जोरी। सो दशा फिरी। मनोहर जोडी आँख के सामने है। वह सुदिन और सुघडी आगयी। माता विधु वदन

---

१ यहाँ असम्भव अलङ्कार है।

देखने के लिए जीवित है। अतः मन मे परमानन्द है। शरीर में सात्त्विक भाव होने से पुलकावली छायी हुई है।

लंकापति कपीस नल नीला। जामवंत अंगन सुभ सीला॥
हनुमदादि सब बानर बीरा। धरे मनोहर मनुज सरीरा॥१॥

अर्थ : शुभ शील लङ्कापति विभीषण, कपीस सुग्रीव, नल, नील, और अङ्गद तथा हनुमान् आदिक सब वीर सुन्दर मनुष्य का शरीर धारण किये हुए हैं।

व्याख्या : १. विभीषण २ सुग्रीव ३ नल ४ नील ५ अङ्गद ६. जामवन्त ये शुभशील हैं तथा ७. हनुमान् आदिक वीर बन्दर भी शुभशील हैं। क्योंकि इनका सरकार पर अतिशय प्रेम है। लङ्काविजय के बाद सब बन्दरो को सरकार ने बिदा कर दिया। पर ये लोग नही गये। यथा : १. कपिपति २. नील ३. रीछपति ४. अंगद ५. नल ६. हनुमान् सहित ७ विभीषन। अपर जे जूथप कपि बलवान। कहि न सकहिं कछु प्रेम बस भरि भरि लोचन बारि। सनमुख चितवहिं राम तन नयन निमेष निवारि। अतिसय प्रीति देखि रघुराई। लीन्हे सकल बिमान चढाई। अत्यन्त बलवान् वीरों मे भी ये ही सात प्रधान थे। रावण ने भी निर्बल सिद्ध करने लिए इन्ही सातों का नाम लेकर दोष दिखलाया था। यथा : १.२. तुम सुग्रीव कूल द्रुम दोऊ। ३ अनुज हमार भीरु अति सोऊ। सिल्प कर्म जानत ४.५. नल नील। ६. जामवन्त मन्त्री अति बूढा। ७. है कपि एक महा बलसीला। इनका अतिशय प्रेम सरकार पर था। ये महाबलवान् थे और इनमें यथेप्सित रूप धारण करने की भी शक्ति थी। इन लोगों ने सुन्दर मनुष्य का शरीर धारण कर लिया था। फिर भी अपने पूर्व रूप से मेल खाता था कि ये मनुष्य रूप मे भी पहिचाने जाते थे। सरकार का रुख देखकर ही इन लोगों ने मनुष्य रूप धारण किया। भरतजी के पास हनुमान्जी को भेजते समय सरकार ने कहा कि बटु रूप धारण करके भरतजी के पास जाओ। बानर रूप से जाने में प्रजा मे उद्वेग होगा। बात समझकर इन महात्माओ ने मनोहर मनुज रूप धारण कर लिया।

भरत सनेहु सील ब्रत नेमा। सादर सब बरनहि अति प्रेमा॥
देखि नगरबासिन्ह कै रीती। सकल सराहहि प्रभुपद प्रीती॥२॥

अर्थ : भरतजी के स्नेह शील व्रत और नेम का सब आदर और अति प्रेम के साथ वर्णन करते हैं। नगरवासियों की रीति देखकर सब प्रभु के चरणो की प्रीति की प्रशसा करते हैं।

व्याख्या : भरत का स्नेह यथा : बूडत बिरह बारीस कृपानिधान मोहि करगहि लियो। भरत का शील यथा : अब कुसल कोसल नाथ आरत जानि जन दरसन दियो। भरत का व्रत नेम यथा : बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृसगात। इत्यादि। ये बानर वीर लोगों ने भरत के स्नेह, शील, व्रत और नेम को आंखों से देखा। अतः सब लोग उनके इन गुणो का वर्णन अत्यन्त प्रेम से कर रहे हैं। ये लोग

महात्मा हैं। इनके हृदय मे मैत्री, मुदिता, करुणा और उपेक्षा वास करती है ईर्ष्या नही। इन लोगो ने नगरवासियो की रीति भी आँखो से देखी। यथा : प्रभु बिलोकि हरखे पुरबासी। जनित बियोग बिपति सब नासी। प्रेमातुर सब लोग निहारी। अत. उनके प्रभु पद प्रीति की सब लोग सराहना करते हैं कि प्रजावर्ग मे राजा पर ऐसी प्रीति कही देखी नही जाती।

पुनि रघुपति सब सखा बोलाए। मुनि पद लागहु सकल सिखाए ॥
गुरुबसिष्ठ कुल पूज्य हमारे। इन्हकी कृपा दनुज रन मारे ॥३॥

अर्थ : फिर रामजी ने सब सखाओ को बुलाया और सबको सिखाया कि मुनिजी के चरणो की वन्दना करो। ये मुनि वसिष्ठ हैं। हमारे कुल के पूज्य हैं। इनकी कृपा से मैंने राक्षसो को रण मे मारा है।

व्याख्या : भेंट मिलाप के बाद इस बात की आवश्यकता पडी कि जो लोग लका से साथ आये हैं उनका परिचय दें। गुरुजी को परिचय देने से ही सबको परिचय मिल जायगा। अत पहिले सखाओ को सिखाया कि गुरुजी के चरणो की वन्दना करो। ये ही गुरु वसिष्ठ हैं। ये हमारे कुल पूज्य हैं। हमारे कुल मे इनकी पूजा होती आयी है। इस कहने से सरकार ने गुरुजी का अत्यन्त चिरजीवी होना बतलाया। अब महिमा कहते हैं कि इनके आशीर्वाद से ही हम लोगो का अशुभ दूर होकर कल्याण होता है। तथा : इन्हकी कृपा दनुज रन मारे।

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे ॥
मम हित लागि जनम इन हारे। भरतहुँ ते मोहि अधिक पिआरे ॥४॥
सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। निमिषि निमिषि उपजत सुख नए ॥५॥

अर्थ : हे मुनिजी ! सुनो। ये सब मेरे सखा है। ये ही युद्ध समुद्र मे मेरे लिये बेडा हुए। मेरे लिये इन लोगो ने अपना जन्म हार दिया। ये मुझे भरतजी से भी अधिक प्यारे हैं। प्रभु के वचन सुनकर सब मग्न हो गये। प्रत्येक क्षण मे अपूर्व सुख उत्पन्न होने लगे।

व्याख्या सरकार बन्दरो का परिचय मुनिजी को देते हैं। कहते हैं कि ये सब मेरे सखा है। इनका मेरा बराबरी का दर्जा है। इनका सखित्व सुनिये। लका की लडाई मेरे लिए तो समुद्र हो गयी। उस समुद्र के लिए ये जहाजी बेडा हो गये और आपकी कृपा अनुकूल मारुत हो गयी। मेरे लिए इन लोगो ने प्राण निछावर कर दिया। समझ लिया कि हमारा जन्म ही इनकी ओर से जूझने के लिए हुआ है। अत ये लोग भरतजी से भी अधिक प्यारे हैं। भरतजी तो मेरे भाई हैं। होहिं कुठायँ सुबन्धु सहायँ। उनका मेरे लिए कष्ट उठाना प्राप्त था। पर इनसे तो कोई सम्बन्ध नही था। मैं नर और ये बानर। नर बानर का सङ्ग कैसा ? सो इन लोगो ने मेरा ऐसा साथ दिया अत भरतजी से भी प्यारे हैं।

सरकार का वचन सुनकर सब मग्न हो गये कि सरकार हमारी इतनी बड़ाई गुरुजी से करते हैं। सुख समुद्र में मग्न हैं। नयी नयी आनन्द की लहरें आरही हैं। इन लोगों ने सरकार को समर सागर से पार किया और सरकार ने इन्हें सुख सागर में डुबा दिया।

दो. कौसल्या के चरनन्हि, पुनि तिन्ह नाएउ माथ।
आसिष दीन्हे हरखि तुम्ह, प्रिय मम जिमि रघुनाथ ॥८ क.
सुमन वृष्टि नभ संकुल, भवन चले सुखकंद।
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं, नगर नारि बर वृंद ॥८॥

अर्थ : कौसल्याजी के चरणो में फिर उन्होंने सिर झुकाया। आशीर्वाद दिया और कहा कि तुम लोग मुझे वैसे ही प्रिय हो जैसे रामजी प्रिय हैं। फूलों की वर्षा से आकाश भर गया। सुख के मेघ श्रीरामजी घर चले। नगर की श्रेष्ठ स्त्रियाँ अटारियों पर चढी हुई देख रही हैं।

व्याख्या : पहिले महाराज की आज्ञा से वसिष्ठजी के चरणों में सिर नावाया था। अब कौसल्याजी के चरणो मे सिर नवा रहे हैं। परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। गुरुजो के परिचय देने से ही सबको सखाओं का परिचय हो गया और सखा लोग मिलने की रीति से ही भगवती कौसल्या को पहिचान गये। उनके प्रणाम करने पर कौसल्याम्बा ने आशीर्वाद दिया और : तुम्ह प्रियमम जिमि रघुनाथ। कह कर उन पर अपनी प्रीति दिखलायी।

यहाँ का कार्य पूरा करके सरकार घर चले। कवि यहाँ पर सुखकन्द विशेषण देकर दिखला रहे हैं कि रास्ते में आनन्द की वर्षा होती जारही है। उसी को स्पष्ट करते हुए कहते हैं 'कि ऐसे फूलों की वर्षा हुई कि आकाश पुष्पमय हो गया। इस शोभा को नगरके लोग अटारियों पर चढकर' देख रहे हैं। नीचे से शोभा देखने के लिए यथेष्ट स्थान नहीं है। यह पुष्पवृष्टि नगरवासियो की ओर से है।

कंचन कलस बिचित्र सँवारे। सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे ॥
बंदनवार पताका केतू। सबन्हि बनाए मंगल हेतू ॥१॥

अर्थ : सोने के कलश विचित्र रूप से सँवार कर सबने अपने अपने द्वार पर सजाकर रख छोड़ा था। सबने वन्दनवार ध्वजा और पताका मङ्गल के कारण लगा रक्खा था।

व्याख्या : अवध की सम्पत्ति का दिग्दर्शन कराते हुए कहते हैं कि सबके द्वार पर स्वागत के लिए सुवर्ण के मङ्गल घट रक्खे हुए हैं। उस पर सिन्दूरादि का लेप किया हुआ है। जिससे उनकी विचित्र शोभा हो रही है। यथा : छुहे पुरट घट सहज सुहाए। मदन सकुचि जनु नीड बनाए।

द्वार पर नीचे सुवर्ण घट रक्खा हुआ है। ऊपर अनेक प्रकार के बन्दनवार

बांधे गये है। यथा : रचे विविध बिधि वंदनबारे। मनहुँ पाकरिपु चाप संवारे। मकान के ऊपर केतु पताका शोभायमान है। राज्य की ओर से कोई घोषणा नही है। प्रजावर्ग को स्नेह इतना है कि प्रत्येक व्यक्ति समझ रहा है कि मेरे घर मङ्गल उपस्थित है।

बीथी सकल सुगंध सिंचाई। गजमनि रचि बहु चौक पुराई॥
नाना भाँति सुमंगल साजे। हरखि नगर निसान बहु बाजे॥२॥

अर्थ : सब गलियाँ सुगन्धित द्रव्य से सींची गयी। गजमुक्ताओ से सजाकर बहुत से चौके पुराये गये। अनेक भाँति के सुन्दर मङ्गल साज सजाये गये। हर्षित होकर नगर मे बहुत से डङ्के बजने लगे।

व्याख्या : नगर की छोटी बडी सभी गलियाँ सुगन्ध से सीची गयी केवल जल से नही। राज मार्ग का छिडकाव नही कहते। क्योंकि वह तो राजा की प्रसन्नताके लिए दिखावा मात्र है। आँटे या पत्थर के चूरो से चौक नही पूरे गये। गजमणि को ऐसा सजाया मानो चौक पूरा हुआ हो। नानाभाँति के सुमङ्गल साजे गये : दधि दुर्वा रोचन फल फूला। नव तुलसीदल मगल मूला। ये सब द्रव्य हेमथार मे भरकर रक्खे गये। केले के खम्भे रोपे गये। वितान ताने गये। आम के पल्लव आदि लटकाये गये और नगर मे बहुत स्थानो पर हर्षोद्रेक से निशान बजने का प्रबन्ध था।

यहाँ पर ध्यान रखने की बात है कि स्वर्ण के मङ्गल कलश तो कम से कम सबके द्वार पर हैं। परन्तु गजमणि का चौक तथा निशान का बजना सबके यहाँ नही है। जो समर्थ हैं उन्ही के यहाँ ऐसी योजनाएँ हैं। पर उसकी भी सख्या थोडी नही है।

जहँ तहँ नारि निछावरि करही। देहिं असीस हरष उर भरही॥
कचन थार आरती नाना। जुवती सजें करहिं सुभ गाना॥३॥

अर्थ : जहाँ तहाँ स्त्रियाँ निछावर कर रही हैं। आशीर्वाद देती हैं और हृदय को हर्ष से पूरित कर रही हैं। सोने के थारो में अनेक प्रकार की आरती साजे हुए युवतियाँ मङ्गलगान कर रही हैं।

व्याख्या : रानी लोग तो नाना भाँति से निछावर करती हैं। सब लोग इस भाँति निछावर नही कर सकते। फिर भी रास्ते मे निछावर होती जाती है। स्त्रियाँ निछावर करती हैं। आशीर्वाद भी देती हैं। माँ लोग : परमानन्द हरष उर भरही। और प्रजावर्ग : देहिं असीस हरष उर भरही। भाव यह कि चौदह वर्ष तक हृदय सुख से रीता था। अत. उसमे हर्ष भर रही हैं।

सोने के थारो मे अनेक प्रकार की आरतियाँ साजे हुए युवतियाँ मङ्गलगान कर रही हैं। तात्पर्य यह है कि अयोध्या मे चारो ओर उत्साह दिखायी पड रहा है। उत्साह से स्त्रियाँ नाना प्रकार से आरती साज रक्खी हैं। बत्तियो की संख्या के भेद से तथा सजावट के भेद से आर्तियो मे भेद होता है। इसलिए नाना भाँति कहा।

करहिं आरती आरतिहरकें। रघुकुल कमल विपिन दिनकर कें ॥
पुर सोभा संपति कल्याना। निगम सेष सारदा बखाना ॥४॥
तेउ यह चरित देख ठगि रहही। उमा तासु गुन नर किमि करही ॥५॥

अर्थ आर्त्ति के हरनेवाले सूर्यकुलरूपी कमल वन के सूर्य की वे आरती करती हैं। पुर की शोभा सम्पत्ति और कल्याण का बखान वेद शेष और सरस्वती ने किया है। वे भी यह चरित्र देखकर ठगे से रह जाते हैं। हे उमा! तब उसके गुण को मनुष्य कैसे कहें।

व्याख्या आर्तिहार जो भगवान् हैं उनकी आरती हो रही है। सरकार स्वय रघुकुल कमल के सूर्य हैं। उनको आरती करना सूर्य को दीपक दिखाना है। पर भक्त अपने हृदय के उत्साह को व्यक्त कैसे करें। अत. आरती कर रहे हैं। यथा " हरति सब आरती आरती रामकी। विनयपद ४८

यद्यपि अवध सदैव सुहावनि। रामपुरी मगलमय पावनि है। अवधपुरी का वर्णन तीनो लोक के वक्ताओ ने किया है। सदैव सोहावनि : शब्द से शोभा कहा। मङ्गलमय से सुख सम्पत्ति कहा। पावनि ' कहकर कल्याणमय कहा। अथवा पुर की शोभा का वर्णन निगम ने किया। सम्पत्ति का शेष ने किया और कल्याण क शारदा ने किया।

वे भी सरकार के पुर प्रवेश का चरित्र देखकर स्तब्ध रह गये। मानो उनका मन किसी ने ठग लिया। कुछ कहते नही बनता। शकर भगवान् कहते हैं कि उनका वर्णन मनुष्य कैसे कर सकते हैं। मनुष्य तो सब प्रकार से अल्पवीर्य हैं। भाव यह कि मनुष्य लोक मे यह चरित्र हुआ है। अत मनुष्य उसका वर्णन करना चाहेंगे। पर उनके वर्णन मे वह बात आ नहो सकती। उनके वर्णन से कोई यह न समझ ले कि अयोध्या मे इतना ही और ऐसा ही उत्साह हुआ।

दो. नारि कुमुदिनी अवध सर, रघुपति विरह दिनेस।
अस्त भये विगसत भई, निरखि रामु राकेस ॥९ क.
होहिं सगुन सुभ विविध विधि, बाजहिं गगन निसान।
पुरनर नारि सनाथ करि, भवन चले भगवान ॥९ ख.

अर्थ : अयोध्यारूपी सरोवर मे स्त्रियाँरूपी कुमुदिनी थी। रामजी के विरह रूपी सूर्य के अस्त होने पर रामचन्द्ररूपी पूर्ण चन्द्र को देखकर विकसित हो गयी। अनेक प्रकार के शुभ सगुन होते थे। आकाश मे डके बज रहे थे। पुर के पुरुष और स्त्रियो को सनाथ करके भगवान् रामचन्द्र महल मे चले।

व्याख्या ' रघुपति विरह दिनेश के उदय से अवध सर की कुमुदिनी स्त्रियाँ दीन हो रही थीं। चौदह वर्ष तक उसी दशा मे रही। आज वह सूर्य अस्त हो

गये और रामचन्द्ररूपी पूर्णचन्द्र का उदय हुआ। उनके दर्शनमात्र से वे सब की सब खिल उठी। सूर्यास्त और पूर्णचन्द्र का उदय एक साथ ही होता है। कुमुदिनियो के खिलने का ससार मे अन्य कोई उपाय नही है जब चन्द्रोदय हो तभी वे खिलती हैं।

विवाह प्रकरण मे सगुनो का विस्तृत वर्णन कर चुके हैं। इसलिए यहाँ नही करते। इतना ही कर रहे हैं कि अनेक प्रकार के शुभ शकुन हो रहे हैं। भगवती प्रकृति शकुनो द्वारा अपने उत्साह को पृथिवी पर प्रकट कर रही हैं और डङ्का बजाकर देवता लोग आकाश मे उत्साह प्रकट कर रहे हैं। इस भाँति सरकारी सवारी जा रही है। दर्शन करके पुर के नरनारी सनाथ हो रहे हैं। सवारी महल तक पहुँची तब भगवान् महल मे चले।

प्रभु जानी कैकई लजानी। प्रथम तासु गृह गए भवानी॥
ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा। पुनि निज भवन गवनु हरि कीन्हा॥१॥

अर्थ सरकार ने जान लिया था कि कैकेयी लज्जित हो रही हैं। सो पहिले उन्ही के महल मे गये। उन्हे समझाबुझाकर बहुत सुख दिया। तत्पश्चात् अपने भवन मे प्रवेश किया।

व्याख्या लक्ष्मणजी ने कैकेयी के सङ्कोच को जाना। अत उनके सन्तोष के लिए बार बार मिले। सरकार ने भी उसी समय जाना था पर बार बार मिलना ही उनकी सन्तुष्टि के लिए यथेष्ट नही समझा। अत उनके सङ्कोच को मिटाने के लिए उनके महल मे गये। कैकेयी ने जो कहा था मोपर करहिं सनेहु बिसेखी। मैं करि प्रीति परीछा देखी। सो सरकार इस विकट परीक्षा मे भी उत्तीर्ण हुए। उसी महल से वन जाने के लिए बाहर निकले थे। आज लौटकर भी पहिले उसी महल मे गये। नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जान जथारथ। ससार जान ले कि महारानी कैकेयी का वही सत्कार है जो महाराज के समय मे था। कैकेयी को भी सन्तोष हो कि राजमाता होने की प्रतिष्ठा उसी को प्राप्त है। जिसे पाने के लिए उसने वन भेजा था। पग परि कीन्ह प्रबोध बहोरी। काल कर्म बिधि सिर धरि खोरी। उसी को सफल करके दिखला दिया। फिर भगवती कैकेयी को समझा बुझाकर बहुत सुख दिया। बोले :

सुख सोहाग सम्पति सुजस त्यागि अगइ अपमान।
जननि कियो तैं लोक हित तो सम कौन महान॥

विधि दीन्हे यह काज तोहि मैं जानत सो बात।
निज जननी ते अधिक तू याते मोहि सोहात॥

छ तेरे ही प्रताप वध भयउ दसानन को,
तेरे ही प्रसाद भार भूमि को उतरिगो।
जमि गयो शासन बहोरि पाकशासन को,
श्रुति अनुशासन पताल लो पसरिगो॥

तेरे ही प्रताप विजय आनन्द निहाल आज,
विषम विषाद सुर संतन को टरिगो।
पूरि महिमंडल अखण्डलपुरी लौं जस,
तेरे ही प्रसाद रघुवंशिन्ह को भरिगो॥
पितहि दियों जो ज्ञान सो अम्ब देत हौं तोहि।
पूरण ब्रह्म अनादि अज अस विचारि भजु मोहि॥

कृपासिंधु तब मंदिर गए। पुर नर नारि सुखी सब भए॥

रामाभिषेक प्रसङ्ग

गुरु बसिष्ठ द्विज लिए बोलाई। आजु सुघरी सुदिन समुदाई॥२॥

अर्थ : कृपासिन्धु रामजी घर गये तब पुर के नरनारी सब सुखी हुए। गुरु वसिष्ठजी ने ब्राह्मणो को बुला लिया। बोले कि आज सुघडी और सुदिन का समुदाय है।

व्याख्या : सरकार के कैकेयी के महल मे जाने से प्रजावर्ग मे खलबली पड़ गयी कि इसी महल से वनवास का व्रत लेकर निकले थे। फिर आते ही उसी महल मे गये। कैकेयी फिर कोई कुचाल न चले। वहुत से लोग सशय मे पड़ गये। कृपासिन्धु के आशय को न समझ सके। पर जब कैकेयी के महल से निकलकर अपने मन्दिर मे गये तब सब पुर के नर नारि सुखी हुए।

गुरु वसिष्ठ ने ब्राह्मणो को बुलवा लिया। ब्राह्मण वचनात् कार्यं करना है और उनसे कहा कि आज का मुहूर्त वहुत अच्छा है। पुष्य नक्षत्र भी है और भी योग लग्न ग्रह सब अच्छे हैं। राज्याभिषेक ऐसे ही मुहूर्त मे करना चाहिए। गुरुजी बिना पूछे मुहूर्त बतलाते हैं। चक्रवर्तीजी के पूछने पर भी नही बतलाया कह दिया : सुदिन सुमगल तबहिं जब राम होहिं जुवराज।

सब द्विज देहु हरषि अनुसासन। रामचन्द्र बैठहिं सिंघासन॥
मुनि बसिष्ठ के वचन सुहाए। सुनत सकल विप्रन्ह अति भाए॥३॥

अर्थ : सब ब्राह्मण लोग हर्षित होकर आज्ञा दो रामचन्द्र सिंहासन पर बैठें। वसिष्ठ मुनिजी के सोहाये वचन सुनते ही सब ब्राह्मणो को बडा अच्छा लगा।

व्याख्या : वसिष्ठजी बोले कि सब ब्राह्मण हर्षित होकर आज्ञा दो। मेरे दबाव से नही। महाराज दशरथ ने भरत को राज्य दिया। यथा : देहु भरत कहँ राज वजाई। भरत को राज्य स्वीकार नही। रामजी के नही रहने पर चौदह वर्ष तक रामजी की पादुका को सिंहासनासीन करके भरतजी ने राज्य चलाया। अतः भरत तो अपनी ओर से रामजी को राजा बना चुके हैं और रावण वध से भी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के राजा हो चुके। क्योंकि रावण का शासन सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर था। यथा : ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसवर्ती नर नारी। अब रामचन्द्र का सिंहासन पर बैठना मात्र शेष है। सो रामचन्द्र ब्राह्मणों की आज्ञा न टालेंगे। अतः

आप लोगों की आज्ञा प्रार्थनीय है। रामचन्द्र के मन से पाप स्पर्श की शङ्का दूर होनी चाहिए। आप लोगों की आज्ञा से वह दूर हो जायगी। शिवजी के धनुष तोड़ने के समय भी ऐसी शङ्का की निवृत्ति के लिए ब्राह्मणों की आज्ञा से ही धनुषभंग किया। यथा : राम मुनिन्ह सन आयसु माँगा।

सभी ब्राह्मण लोग रामजी पर वसिष्ठजी सा ही प्रेम करते थे। यथा : बिप्र सहित परिवार गोसाईं। करहिं छोहु सब रौरेहि नाईं। अतः उन लोगों को रामजी के अभिषेक विषयक वचन बहुत ही अच्छा लगा। सबकी यही सम्मति हुई कि आज ही अभिषेक होना चाहिए।

कहहिं वचन मृदु विप्र अनेका। जग अभिराम राम अभिषेका ॥
अब मुनिवर बिलम्बु नहि कीजे। महाराज कहुँ तिलक करीजे ॥४॥

अर्थ : अनेक मृदु वचन ब्राह्मण लोग कहने लगे कि रामजी का अभिषेक जगत् के लिए सुखद है। अब मुनिराज ! देर न कीजिये। महाराज को तिलक कर दीजिये।

व्याख्या : ब्राह्मण लोग अनेक मृदु वचन कहने लगे। उन वचनों का आशय यह था कि रामजी के अभिषेक से संसार का कल्याण है। सबको सोहाता है। यथा : रामराज अभिषेक सुनि हिय हरखे नरनारि। लगे सुमंगल सजन सब बिधि अनुकूल बिचारी। कनक सिंहासन सीय समेता। बैठहिं रामु होइ चितचेता। इत्यादि।

ब्राह्मणों ने कहा कि अब अभिषेक में विलम्ब न होना चाहिए। पहले अभिषेक में आपने कहा था : बेग बिलम्ब न करिअ नृप साजिय सकल समाज। यदि महाराज उसी दिन रामजी को राज्य दे दिये होते तो विघ्न को अवसर न मिलता। एक दिन के विलम्ब में विघ्न हो गया। अतः इस बार विलम्ब न होने पावे। महाराज तो वे हैं ही तिलक मात्र शेष है। सो आप कुलगुरु हैं। आप तिलक कर दीजिये। महाराज दशरथजी भी कह चुके है : सुवस बसिहि फिरि अवध सोहाई। सब गुनधाम राम प्रभुताई। करिहहिं भाइ सकल सेवकाई। होइहि तिहुँ पुर राम बड़ाई।

दो. तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन, सुनत चलेउ हरखाइ।
रथ अनेक बहु बाजि गज, तुरत सँवारे जाइ ॥१० क.

जहँ तहँ धावन पठइ पुनि, मंगल द्रव्य मँगाइ।
हरख समेत बसिष्ठ पद, पुनि सिरु नायेउ आइ ॥१० ख.

अर्थ : तब मुनिजी ने सुमन्त्र से कहा। वे सुनते ही हर्षित होकर चले। अनेक रथ और बहुत से हाथी घोड़े तुरन्त सजाये। जहाँ तहाँ हरकारों को भेजकर मङ्गल द्रव्य मँगाया और हर्ष समेत वसिष्ठजी के चरणों में फिर सिर झुकाया।

व्याख्या : रामजी के न लौटने का सन्देश राजा को देने के बाद से सुमन्त्रजी का पता नही है। घर से बाहर नही निकलते। महाराज का देहावसान हुआ। भरतजी आये। और्ध्वदेहिक क्रिया हुई। भरत सभा हुई। सब लोग चित्रकूट गये। लौटे। जनकजी आये। भरतजी नन्दिग्राम मे रहने लगे। पर कही सुमन्त्र का नाम नही है : अस कहि सचिव बचन रहि गयऊ। हानि गलानि सोच बस भयऊ। उसी समय से सुमन्त्रजी हानि ग्लानि और सोच वश हो गये। चौदह वर्ष तक किसी को मुख न दिखलाया। आज सरकार बन से लौटे है तो सुमन्त्रजी भी घर के बाहर निकले। मुनिजी ने सुमन्त्रजी को रथ बाजि गज सँवारने के लिए तथा मङ्गल द्रव्य लाने की आज्ञा दी। तुरन्त नमस्कार करके चले।

सब अभिषेक का सामान महाराज चक्रवर्तीजी के समय का एकत्रित किया हुआ रक्खा है। जो वस्तुएँ चौदह वर्ष तक टिक नही सकती उन्ही को मँगाना है। ओषध मूल फूल फल पाना। तथा सुतीर्थो के जल इत्यादि को मँगाना था। सुग्रीव अगद जाम्बवान् और हनुमान्जी चारो समुद्र का जल ले आये। जहाँ तहाँ शेष मङ्गल द्रव्य के लिए हरकारे भेजे गये। रथ अनेक बहु बाजि गज सँवारने के लिए तो आज्ञा मात्र की देर थी। सब सामान प्रस्तुत करके प्रसन्नता के साथ लौटकर फिर वसिष्ठजी को नमस्कार किया। भाव यह कि सब सामान ठीक है।

अवध पुरी अति रुचिर बनाई। देवन्ह सुमन बृष्टि झरलाई॥
राम कहा सेवकन्ह बुलाई। प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई॥१॥

अर्थ : अयोध्यापुरी को अत्यन्त सुन्दर सजाया गया। देवताओ ने फूलो की वर्षा की झर लगा दी। रामजी ने सेवको को बुलाकर कहा कि पहिले जाकर सखाओ को नहलाओ।

व्याख्या : इस समय तिलक के लिए जल्दी है। उसी दिन तिलक होना है। सामान बहुत कुछ करना है। कवि भी जल्दी मे है। वसिष्ठजी ने सुमन्त्र से कहा। बस इतना ही लिखा। क्या कहा ? इसे बाद के साज सामान से अनुमान करना होगा : रथ अनेक बहु बाजि गज तुरत सँवारेउ जाइ : से लेकर अवध पुरी अति रुचिर बनाई : तक उसी का वर्णन है। यद्यपि अवध सदैव सोहावनि। रामपुरी मगल मय पावनि। तदपि प्रीति कै रीति सुहाई। मगल रचना रची बनाई। अतः कहते हैं कि अयोध्या पुरी अति सुन्दर साजी गयी। देवताओ ने फूलो के वर्षा की झर बाँध दी। इससे शोभा और भी बढ गयी।

सरकार ने देखा कि सेवक लोग मेरे मज्जन की व्यवस्था कर रहे हैं। विभीषणजी ने प्रार्थना की थी कि : मज्जन करिय समर स्रम छीजे। परन्तु सरकार ने विना भरतजी से मिले मज्जन करना स्वीकार नही किया। अब भरत मिलाप हो चुका। अभिषेक के पहिले मज्जन करना आवश्यक है। इसलिए सेवको को मज्जन करने की व्यवस्था करते देखकर बुलाया और आज्ञा दी कि पहिले जाकर मेरे सखाओ को मज्जन कराओ। उसके बाद मैं मज्जन करूँगा।

सुनत बचन जहँ तहँ जन धाए। सुग्रीवादि तुरत अन्हवाए॥
पुनि करुना निधि भरतु हँकारे। निजकर राम जटा निरुआरे॥२॥

अर्थ : वचन सुनते ही सेवक लोग दौडे और सुग्रीवादि को तुरन्त मज्जन कराया। तत्पश्चात् करुणानिधि ने भरतजी को बुलाया और अपने हाथ से उनकी जटा को सुलझाया।

व्याख्या : सरकार के सखा हैं। उन्हें पृथक् पृथक् महलो मे ठहराया गया। स्वयं रामजी के महल मे सुग्रीव ठहराये गये हैं। अतः जहाँ जहाँ वे लोग ठहरे थे वहाँ वहाँ मङ्गल स्नान कराने के लिए सेवक दौड गये और तुरन्त उन लोगो को मज्जन करवाया : नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जान जथारथ। अपने मज्जन करने के पहिले सखाओ के मज्जन कराने मे नीति प्रीति परमार्थ और स्वार्थ का चमत्कृत समिश्रण है।

सरकार करुणानिधि हैं। भरतजी अभिषेक की तैयारी मे लगे हैं। सो उन्हे बुला लिया और उनके मङ्गल स्नान कराने के लिए अपने हाथ से उनकी जटा को सुलझाया। जिसमे एक भी बाल भरतजी का बाँका न हो और सुलझाने में किसी प्रकार का कष्ट बोध न हो। सरकार के लिए ही भरतजी ने जटा धारण की। अतः सरकार के हाथ से उस जटा का सुलझाना शोभा देता है। यहाँ पर यह अनुमान कर लेना होगा कि भरतजी की जटा को सरकार द्वारा सुलझाते देखकर लक्ष्मणजी ने अपनी जटा स्वयं सुलझा ली। अथवा मन्त्रियो ने सुलझा दिया। अथवा श्रीभरतजी ने गोद मे बैठाकर सुलझा दिया। अत' लालन योग लखन लघु लोने।

अन्हवाए प्रभु तीनिउ भाई। भगत बछल कृपाल रघुराई॥
भरत भाग्य प्रभु कोमलताई। सेष कोटिसत सकहिं न गाई॥३॥

अर्थ : सरकार ने तीनो भाइयो को नहलाया। क्योकि रघुराई कृपाल और भक्तवत्सल हैं। भरतजी के भाग्य और सरकार को कोमलता को सौ कोटि शेष भी वर्णन नही कर सकते।

व्याख्या : स्वयं सरकार ने तीनो भाइयो को मङ्गल स्नान करवाया। तीनो भाई सरकार के भक्त हैं। सरकार से छोटे हैं। अत. सरकार का उन पर स्नेह है। कृपा है और नीति भी यही है। इसलिए कवि ने यहाँ सरकार के लिए तीन विशेषण दिये : भक्त वत्सल, कृपाल और रघुराई। गोस्वामीजो कहते हैं कि सरकार का हाथ सिर पर पडना बडे भाग्य की बात है। यथा : प्रभु कर पकज कपि के सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा। सो सरकार भरतजी की जटा अपने हाथ से सुलझा रहे हैं। भरत के भाग्य का और सरकार की कोमलता का वर्णन सौ कोटि शेष से भी नही हो सकता। जिन्हे सहस्र मुख हैं और दो सहस्र जिह्वाएँ हैं। उसे एक जिह्वावाला मनुष्य क्या वर्णन कर सकता है।

पुनि निज जटा राम बिबराए। गुर अनुसासन माँगि नहाए॥
करि मज्जन प्रभु भूपन साजे। अंग अनग देखि सत लाजे॥४॥

अर्थ . फिर रामजी ने अपनी जटा को फोड़ा और गुरुजी की आज्ञा पाकर स्नान किया। स्नान के बाद सरकार ने आभूषण सजाया। अङ्गो को देखकर सैकडो काम लज्जित हो गये।

व्याख्या . तीनो भाइयो के स्नान कराने के बाद सरकार ने अपनी जटा को विवराया। अर्थात् उलझे हुए बालो को खैंचकर अलग किया। भरतजी की जटा की भाँति सुलझाया नही। सरकार की प्रसन्नता भाइयो को सुख देने मे है अपने आराम मे नही। स्वय मङ्गल स्नान के लिए गुरुजी से आज्ञा माँगी। मिलने पर स्नान किया। यह मङ्गल स्नान काम्य था। अत इसके बाद नित्य कृत्य नही कहते। भूपणो का साजाना कहते हैं। चौदह वर्ष के बाद मङ्गल स्नान हो रहा है और भूपण साजा जा रहा है। भूपण धारण करने का विधान शास्त्र मे है कि पुन राजा के लिए। तथापि अभिपेक के अवसर पर तो अनिवार्य है। अतः सरकार ने भूपण सजाये। यहाँ दिखावा का लेश भी नही है। जब उचित नही था तब किसी के कहने पर भी अभिपेक के लिए तैयार नही हुए और जब अभिपेक का स्वीकार करना उचित बोध हुआ तब उसके स्वीकार करने मे टालमटोल भी नही किया। सरकार के शरीर को भूपित देखकर कोटि काम की छवि फीकी पड गयी। क्योकि रामजी की शोभा शत कोटि काम से देना वैसा ही है जैसे सूर्य को शोभा की शत कोटि जुगनू की शोभा के साथ उपमा देना। यथा उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहु कवि कोविद कहैं। जिमि कोटिसत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहैं।

दो. सासुन्ह सादर जानकिहि, मज्जन तुरत कराइ।
दिब्य बसन वर भूपन, अग अग सजे वनाइ॥११ क.

राम बाम दिसि सोभति, रमा रूप गुन खानि।
देखि मातु सब हरखी, जनम सुफल निज जानि॥११ ख.

सुनु खगेस तेहि अवसर, ब्रह्मा सिव मुनि बृंद।
चढि विमान आए सव, सुर देखन्ह सुखकंद॥११॥

अर्थ · सासुओ ने आदर के साथ तुरन्त जानकीजी का मज्जन कराया और दिव्य कपडे और श्रेष्ठ गहने प्रत्येक अङ्ग मे सँवारकर सजाया।

रूप और गुण की खानि लक्ष्मी रामजी की बायी ओर शोभित हुईं। देखकर सब माता लोग अपना जन्म सुफल जानकर हर्पित हुईं।

हे पक्षिराज! उस समय ब्रह्माजी शिवजी मुनि लोग तथा सब देवता लोग विमानो पर चढकर सुख की वर्षा करनेवाले रामजी को देखने के लिए आये।

व्याख्या वसिष्ठजी की आज्ञा सबको विदित हो गयी। सरकार का मज्जन सुनकर अभिषेक म भगवती की अनिवार्य आवश्यकता जानकर सब सास लोग लिपट गयी। दासियो की वहाँ गति नही है। सरकार ने स्वय मज्जन करके भूषण साजा। वीर हैं विशेष शृगार नही करते। पर भगवती की दूसरी बात है। महारानियाँ मज्जन कराके स्वय उनका शृगार कर रही हैं। अत अग अग मे सँवार सँवारकर गहने साज रही हैं।

शृङ्गार कर लेने के बाद ले जाकर रामजी के वाम भाग मे बिठा दिया। अभिषेके पत्नी वामत ऐसा शास्त्र का वचन है। रामजी के वाम दिशा मे रमा की ही शोभा हो सकती है। यह वह रमा हैं जिन्हे आदि शक्ति कहा गया है। यथा : वाम भाग सोहति अनुकूला। आदि सक्ति छबि निधि जग मूला। उपजहिं जासु अस गुन खानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी। सो ऐसी शोभा हुई जिसे देखकर माताओ ने अपना जन्म सफल समझा। यही एक अभिलाष शेष रहा था। जिसकी पूर्ति चक्रवर्तीजी न देख सके। उसको पूर्ति माताएँ देख रही हैं।

देवताओ की भक्ति दिखलाते हुए उपासना घाट के वक्ता भुसुण्डिजी अपने श्रोता गरुडजी को सम्बोधन करते हुए कहते हैं कि सरकार के सिंहासनारूढ होने का समय जानकर स्वय ब्रह्मदेव तथा शङ्करजी अन्य देवताओ तथा मुनियो के सहित विमानो पर सवार होकर आये। सरकार आनन्द वारिवाह हैं। आनन्द की वर्षा होगी। उस आनन्द से हम वञ्चित न रह जायँ इस आशय से उपस्थित हुए।

प्रभु बिलोकि मनिमनु अनुरागा। तुरत दिब्य सिंघासनु माँगा॥
रबि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे रामु द्विजन्ह सिर नाई॥१॥

अर्थ सरकार को देखकर मुनि वशिष्ठ के मन मे अनुराग हुआ। तुरन्त ही दिव्य सिंहासन माँगा। उसका तेज सूर्य के समान था। उसका वर्णन नही हो सकता। ब्राह्मणा को प्रणाम करके रामजी उस पर बैठे।

व्याख्या माताओ का देखना कहकर अब गुरुजी का देखना कवि कहते हैं। गुरुजी के हृदय मे भी प्रभु को देखकर अनुराग हुआ। सोचने लगे कि इस मूर्ति के लिए भौतिक सिंहासन उपयुक्त नही है। अत गुरुजी ने दिव्य सिंहासन माँगा। गुरुजी का तपोबल कहते हैं कि दिव्य लोक से दिव्य सिंहासन आ गया। उस सिंहासन का तेज सूर्य के समान था और ऐसा अलौकिक था कि उसका वर्णन नही हो सकता। ब्रह्मण्य देव ने ब्राह्मणो को प्रणाम किया और उस सिंहासन पर बैठे। लका के सग्राम मे दिव्य रथ आया था। यथा तेज पुज रथ दिव्य अनूपा। हरखि चढे कोसलपुर भूपा। उसी कोशलपुर भूप का दिव्य सिंहासनारूढ होना कहते हैं।

जनक सुता समेत रघुराई। पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई॥
बेद मन्त्र तब द्विजन्ह उचारे। नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे॥२॥

अर्थ जनकसुता के साथ रामजी को देखकर मुनि समाज अत्यन्त हर्षित

हुआ। तब ब्राह्मणोने वेद मन्त्र का उच्चारण किया और आकाश मे देवता और मुनियो ने जय जयकार किया।

व्याख्या : जनकसुता कहने का भाव यह कि मुनियो का बडा स्नेह जनकजी पर है। मुनि लोग भी उनसे ज्ञान अर्जन करते हैं। यथा : जासु ज्ञान रवि भव निसि नासा। बचन किरन मुनि कमल बिकासा। सो जनक सुता समेत रामजी को सिंहासनारूढ देखकर मुनि समाज को बडा आनन्द हुआ। पहिले माताओ का देखना कहा। फिर गुरुजी का देखना कहा। तत्पश्चात् मुनिसमाज का देखना कहते हैं। माताओ ने देखकर जन्म सफल माना। गुरुजी ने देखकर तपोबल से दिव्य सिंहासन मँगाया। मुनि लोगो ने देखकर वेद मन्त्रो का उच्चारण जो समयोपयुक्त था किया। अब देवताओका देखना कहते हैं। वे लोग विमानो पर आकाश मे थे। वही से ऐसा जय जयकार किया जो पृथिवी तक गूँज उठा। नीचे स्वस्त्ययन की ध्वनि हुई। ऊपर आकाश मे जयध्वनि हुई।

प्रथम तिलक बसिष्ठ मुनि कीन्हा। पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा॥
सुत बिलोकि हरखी महतारी। बार बार आरती उतारी॥३॥

अर्थ : पहिले वसिष्ठ मुनिजी ने तिलक किया। तत्पश्चात् अन्य ब्राह्मणो को आज्ञा दी। बेटे को देखकर माताएँ हर्षित हुईं और बार बार आरती उतारी।

व्याख्या : इस प्रकार वेद ध्वनि और जय ध्वनि के बीच मे वसिष्ठ मुनिजी ने जो कि रघुकुल के कुल पूज्य थे पहिले तिलक किया। वसिष्ठजी कुलपूज्य होने के अतिरिक्त मुनियो मे श्रेष्ठ और ब्राह्मणो मे अग्रगण्य थे। साक्षात् ब्रह्मदेव के पुत्र थे। उनकी आज्ञा हुई तब और ब्राह्मणो ने तिलक किया।

जिस अभिषेक के लिए इतनी आकुलता थी : इस अभिषेक से अभिषिक्त बेटे को देखकर माँ हर्षित हुई। माँ लोगो की पुत्र भावना ही दृढ है। वे बेटे को अभिषिक्त देखकर फूली नही समाती। किसी को सपत्नी के पुत्र का भाव नही है। एक बार की आरती मे किसी को सन्तोष नही। अत बार बार आरती उतार रही हैं। पहिली बार जो आरती हुई थी वह तो स्वागत विषयक थी। इस बार की आरती अभिषेक के उपलक्ष्य मे है।

बिप्रन्ह दान बिबिध बिधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे॥
सिंघासन पर त्रिभुवन साईं। देखि सुरन्ह दुन्दुभी बजाईं॥४॥

अर्थ : माताओ ने ब्राह्मणो को अनेक प्रकार का दान दिया। समस्त याचको को अयाचक कर दिया। सिंहासन पर त्रिभुवन के स्वामी को देखकर देवताओ ने नगाडे बजाये।

व्याख्या : यहाँ देय के भेद से दान विधि का भेद कह रहे हैं। यहाँ दान भिक्षा नही है। यजमान अपने कल्याण के लिए अभिषेक के समय अनेक प्रकार का दान करता है। माताएँ उसी प्रथा का अनुसरण कर रही हैं। याचक ब्राह्मणो से

पृथक् हैं। उन्हे इतना दिया गया कि उनकी भिक्षावृत्ति छूट गयी। वे अपने पैरो पर खडे हो गये।

अवध के सिंहासन पर त्रिभुवन के स्वामी को आसीन देखकर देवताओ ने हर्षित होकर डङ्के बजाये। जिस प्रभु के लिए इतनी उत्कण्ठा थी कि : कहँ पाइय प्रभु करिअ पुकारा। वही प्रभु आज अवध के राज्य पर सिंहासनारूढ हो रहे हैं। देवताओ के मनोरथ का साफल्य इससे अधिक और क्या हो सकता है।

छं. नभ दुंदुभी बाजहिं बिपुल गंधर्ब किन्नर गावही।
नाचहिं अपछरावृंद परमानंद सुरमुनि पावही॥
भरतादि अनुज बिभीषनागद हनुमदादि समेत ते।
गहे छत्र चामर ब्यजनधनु असि चर्म सक्ति बिराजते॥
श्री सहित दिनकर बंस भूषन काम बहु छबि सोहई।
नव अंबुधर बरगात अंबर पीत सुर मन मोहई॥
मुकुटागदादि बिचित्र भूषन अंग अंगन्हि प्रति सजे।
अंभोजनयन बिसाल उर भुज धन्य नर निरखंति जे॥

अर्थ : आकाश मे बहुत से नगाड़े बज रहे हैं गन्धर्व और किन्नर गा रहे हैं। अप्सराएँ नाच रही हैं देवता और मुनि आनन्द पा रहे हैं। भरतजी आदि छोटे भाई विभीषण अङ्गद और हनुमान् आदि छत्र चामर पखा तलवार ढाल और शक्ति धारण किये शोभायमान हैं।

सीताजी के साथ सूर्यकुल के भूषण रामजी मे बहुत से कामदेव की शोभा हो रही है तथा नये बादल की भाँति श्रेष्ठ शरीर और पीत वस्त्र देवताओं के मन को मोहित कर रहा है। मुकुट, बिजायठ आदि विचित्र गहने प्रत्येक अङ्ग मे शोभायमान है। कमल सी आँखे हैं। छाती और भुजायें विशाल हैं। वे पुरुष धन्य हैं जो ऐसे स्वरूप का दर्शन करते हैं।

व्याख्या : आकाश मे बडा उत्सव है देवता लोग दुन्दुभी बजा रहे हैं। गन्धर्व और किन्नर देवयोनि हैं सङ्गीत के पडित होते है। वे लोग इस उत्सव मे गान करने लगे। जब गान और वाद्य दोनो होने लगा तो उसकी पूर्ति के लिए स्वर्वेश्या उर्वशी इत्यादि ने नृत्य आरम्भ कर दिया। देवता और मुनि भी परमानन्द प्राप्त करने लगे। क्योकि यह सङ्गीत भगवद्विषयक था।

सरकार के अस्त्र शस्त्र के धारण करने के लिए दिव्य सामर्थ्य अपेक्षित है। अत: लङ्कापति ने धनुष अङ्गद ने ढाल तलवार और हनुमान्जी ने शक्ति धारण कर रक्खा है। ये ही रामायुध हैं। सरकार की खवासी मे स्वय भाई लोग खड़े हो गये। भरतजी छत्र लगाये हैं। लक्ष्मणजी चँवर कर रहे हैं। शत्रुघ्नजी पंखा झल रहे हैं।

आज सबकी अभिलाषा पूरी हो रही है। चौदह वर्ष पहले से ही यह अभिलाषा हो रही है कि : कनक सिंहासन सीय समेता। बैठहिं राम होइ चित चेता। सो सूर्यकूल के भूषण सीताजी के सहित दिव्य सिंहासनपर विराजमान हैं। छबि की पराकाष्ठा कामदेव में मानी जाती है। सो : राम काम सत कोटि सुभग तन। करोड़ों काम की छवि से शोभायमान हैं। काम सबको मोहित करता है। पर मुनियों पर उसका बल नही चलता। पर सरकार की साँवली मूर्ति और दामिनीवर्ण वस्त्र तो मुनियों के मन को भी मोहित कर रहा है। सिर पर मुकुट भुजाओं में अङ्गद, और गले मे पदिकहार आदि आभूषण एक से एक अपूर्व सजे हुए हैं। अङ्ग के उदार होने से गहने भी खिलते हैं। अतः गोस्वामीजी कहते हैं कि कमल सी आँखें और विशाल वक्षःस्थल की ऐसी शोभा हो रही है। उस छवि के दर्शन करनेवाले मनुष्यों का बड़ा पुण्य था। इसमें सन्देह नही है। सुकृती, पुण्यवान् और धन्य ये सब शब्द पर्यायवाची हैं।

दो. वह सोभा समाज सुख, कहत न बनै खगेस।
बरनै सारद सेष स्रुति, सो रस जान महेस ॥१२ क.

अर्थ : हे पक्षिराज ! वह शोभा वह समाज और वह आनन्द कहते नही बनता। उसका वर्णन शेष और वेद करते हैं। पर उस रस को महादेवजी जानते हैं।

दो. भिन्न भिन्न अस्तुति करि, गए सुर निज निज धाम।
बंदी बेष बेद सब, आए जहँ श्रीराम ॥१२ ख.

प्रभु सर्वज्ञ कीन्ह अति, आदर कृपा निधान।
लखेउ न काहूँ मरमु कछु, लगे करन गुन गान ॥१२॥

अर्थ : अलग अलग स्तुति करके देवता लोग अपने अपने लोक को गये। तब वन्दीजन का वेष धारण करके वेद लोग श्रीरामजी के पास आये।

कृपा निधान सर्वज्ञ प्रभु ने अत्यन्त आदर किया। किसी ने इस मर्म को कुछ भी नही लखा और वे गुण गान करने लगे।

व्याख्या : सिय सहित दिनकर वंस भूषन काम बहु छवि सोहई। इत्यादि से शोभा कहा। भरतादि अनुज विभीषनांगद हनुमदादि समेत ते। से समाज कहा और नाचहि अपछरावृंद परमानंद सुर मुनि पावही। से सुख कहा। भुसुण्डिजी कहते हैं कि मुझसे कहते नही बनता। शारदा शेष और श्रुति स्वर्गलोक पाताललोक और मृत्युलोक के प्रधान वक्ता हैं। वे वर्णन करते हैं पर वे भी उस रस को नही जानते। उस महारस को महादेवजी जानते हैं। यथा : जेहि सुभ लागि पुरारि असुभ बेष कृतसिव सुखद।

तत्पश्चात् देवताओने जो कि विमान पर चढ चढकर आये थे स्तुति की। सबने भिन्न भिन्न स्तुति की। रुचि वैचित्र्य के कारण स्तुतियाँ एक सी नही हो

सकतीं। सरकार की मूर्ति का दर्शन भावनानुसार पृथक् पृथक् रूप मे होता है फिर स्तुति मे साम्य सम्भव नही है। दूसरी बात यह भी है कि अवर्णनीय पदार्थ की स्तुति भिन्न भिन्न प्रकार की ही होगी। सरकार इस समय नरभूपाल का अभिनय कर रहे हैं। इसलिए वेद लोग भी बन्दी के रूप मे यश वर्णन करने के लिए आये।

सरकार सर्वज्ञ हैं। जान गये कि इस वेष मे वेद लोग आये हुए हैं। अतः अत्यन्त आदर किया। उठकर खडे हो गये। ऊँचे दर्जे के बन्दियो की अब भी ताजीम राजदरबार से होती है। वेद सरकार के वाक्य हैं। अपने वाक्य का अत्यन्त आदर करना ही धर्म है। यथा रामो द्विर्नाभिभाषते। और लोग इस बात को न लख सके। समझा कि बन्दीजन यशोगान के लिए आये हैं। अब उनका किया हुआ गुणगान कहते हैं।

छ जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।
दसकधरादि प्रचड निसिचर प्रबल खल भुजबल हने॥
अवतार नर संसार भार बिभजि दारुन दुख दहे।
जय प्रनतपाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमामहे[1]॥

अर्थ हे[2] सगुणरूप निर्गुणरूप अनूपरूप वाले राजाओं के शिरोमणि आपकी जय हो! आपने दशकन्धर आदि प्रचण्ड निशिचर प्रबल खलो को भुजाओ के बल से मारा। आपने मनुष्य का अवतार धारण करके ससार के भार को दूर करके दारुण दु ख को भस्म कर दिया। ऐसे प्रणतपाल कृपाल की जय हो, शक्ति के सहित मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या ब्रह्म के दो रूप हैं। एक निर्गुण और दूसरा सगुण। सर्वैश्वर्यमय विभु परमेश्वर मे ही सम्भव है कि वे सगुण और निर्गुण रूप से एककालावच्छेदेन अवस्थान करते है। भगवान् गीता मे अर्जुन से कहते हैं मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थित । न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्। सब भूत मेरे मे स्थित नही भी हैं। मेरे ऐश्वर योग को देखो। अत सरकार का अनूप रूप है। अथवा निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहै। जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै। सरकार के लिए जो उपमाएँ दी जा सकती हैं वे अत्यन्त लघु हैं। इसीलिए भी सरकार का रूप अनूप है। तापनीय श्रुति मे राम

---

१ आनुकूल्यस्य सकल्प ।

२ आश्रयश्चेतसो ब्रह्म द्विधा तच्च स्वभावत । भूप मूर्तममूर्तंञ्च परञ्चापरमेव च।
वि पु ६ ७ ४७

अर्थ हे राजन्! चित्त का आश्रय ब्रह्म है जो कि स्वभाव से ही मूर्त अमूर्त अथवा पर अपर रूप से दो प्रकार है।

नाम को व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है : राज्यार्हाणा महीभृताम् धर्ममार्गं चरित्रेण राति इति रामः। अर्थात् राज्य के योग्य राजाओ को जो धर्ममार्ग अपने चरित्र द्वारा प्रदान करते हैं उसे राम कहते हैं। अतः श्रीरामावतार को भूपशिरोमणि कहा। अब उसी अवतार का दिव्य कर्म कहते हैं कि दशकन्धर आदि प्रचण्ड निशिचर जो कि अजेय थे और कुम्भकर्ण खरदूषण विराधादि प्रबल खलो को भुजाओ के बल से मारा। यथा : तब निज भुज बल राजिव नैना। कौतुक लागि सग कपि सैना। कपि सैन सग सँघारि निसिचर राम सीतहि आनिहैं। श्रीरामावतार मे माया से मनुष्य का रूप धारण करके ससार का भार उतारकर सज्जनो के दारुण दु.ख को दूर किया। इससे दुष्कृतो का विनाश तथा साधुपरित्राण रूपी अवतार के प्रयोजन की सिद्धि भी दिखलाया। प्रणतपाल कृपाल कहकर विभीषण को लङ्का के राज्य का दान तथा देवताओ को अभय दान का दिया जाना भी द्योतित किया। इस समय आह्लादिनी शक्ति जगदम्बा जानकीजी के साथ सिंहासनारूढ हैं। अतः दोनो की जय जयकार करते हुए वेद वन्दना करते हैं। प्रभु का उत्कर्ष स्थापन करते हुए उनके अनुकूलाचरण की इच्छा प्रकट करते हैं।

छं. तव विषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे।
भवपंथ भ्रमत अमित दिवस निसिकाल कर्म गुननि भरे॥
जे नाथ करि करुना बिलोके त्रिविध दुख ते निर्बहे।
भव खेद छेदन दक्ष हम कर रक्ष राम नमाम हे[1]॥

अर्थ : हे हरे ! आपकी विषम माया के वश मे देवता असुर नाग मनुष्य तथा चराचर हैं। काल कर्म और गुणो से भरे हुए अगणित रात दिन संसार के रास्ते मे घूमा करते हैं। जिसको नाथ ने करुणा करके देखा वे तीनो प्रकार के दु ख के पार हो गये। हे संसार के दु.ख के नाश करने मे दक्ष राम हम लोगो की रक्षा कीजिये। हम आपको नमस्कार करते हैं।

व्याख्या : परमेश्वरी माया बडी विषम है। उसका पार पाना किसी के सामर्थ्य के भीतर की बात नही है। गीता मे भगवान् कहते हैं . दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। भुसुण्डीजी कहते हैं : सुनु खग प्रबल राम कै माया। जो ज्ञानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआई विमोह वस करई। वन्दना मे भी कह आये हैं। यन्मायावशवर्तिविश्वमखिल ब्रह्मादिदेवासुराः। वही बात यहाँ कही जा रही है : तव विषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे। ये सुरासुर नाग नर चराचर माया से प्रेरित होकर काल कर्म स्वभाव गुण से घिरे हुए चक्कर खाया करते हैं। यथा : फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म स्वभाव गुन घेरा। फिर मरते हैं फिर जनमते हैं। इसी भाँति ससार चक्र मे पड़े हुए कष्ट पाते हैं। यथा :

---

१. रक्षिष्यतीति विश्वास.।

आकर चारि लाख चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी। अपने पुरुषार्थ से कोई इस चक्कर से निकल नही सकता। जिसके ऊपर सरकार की कृपा होती है वही इन त्रिविध दैहिक दैविक भौतिक तापो का पार पाता है। यथा: मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते। भगवान् कहते हैं कि जो मेरे ही शरण मे आ जाते हैं वे ही माया का पार पाते हैं अर्थात् शरण मे आने से सरकार की उनपर कृपादृष्टि होती है। फिर उन्हे तीनो ताप पीडा नही पहुँचा सकते। सरकार ही संसार के दुःख के विनाश करने मे दक्ष हैं, अतः वेद कहते हैं कि हे रामजी! हम लोगो की रक्षा कीजिये। हम आपके शरण है। इस भाँति प्रभु के द्वारा रक्षा प्राप्ति का विश्वास प्रकट करते हैं।

छ जे ग्यान मान बिमत्त तव भय हरनि भगति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी॥
बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे।
जपि नाम तव बिनु स्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे[१]॥

अर्थ जो ज्ञान के अभिमान मे मतवाले होकर आपकी भय हरनेवाली भक्ति का आदर नही करते हे हरे! उनका सुरदुर्लभ पद पाकर भी पतन होता है। हम इस बात को देखते हैं और जो विश्वास करके सब आशा छोडकर, आपके दास होकर रहते है वे आपका नाम जपकर बिना परिश्रम के संसार को तर जाते हैं। नाथ! हम लोग आपका स्मरण करते है।

व्याख्या: कुछ लोग ऐसे हैं, जिन्हे अपने ज्ञान का अभिमान हो जाता है। वे यह नही समझते कि मान तो अज्ञान का लक्षण है। मान का अभाव ही तो ज्ञान है। यथा ज्ञान मान जहँ एकौ नाही। अत वे विमत्त हैं मतवाले है वे भक्ति का आदर नही करते। वे नही जानते कि निरुपास्ति ज्ञान से पतन होता है। वे सुरदुर्लभ पद पाकर भी गिर जाते हैं। अर्थात् विज्ञान दीप के प्रज्वलित करने मे समर्थ भी हो जाते हैं। फिर भी उपासना रहित होने से उनका पतन हो जाता है। वे चिद् जड ग्रन्थि खोलने मे समर्थ नही होते और विज्ञान दीप भी बुझ जाता है। यथा:

छोरत ग्रन्थि जानि खगराया। विघ्न अनेक करै तब माया॥
कलबल छल करि जाहिं समीपा। अचल बात बुझावहिं दीपा॥
जौं तेहि विघ्न बुद्धि नहिं बाधी। तब बहोरि सुर करहिं उपाधी॥
इन्द्री द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना॥
आवत देखहिं बिषय बयारी। ते हठि देहिं कपाट उघारी॥

---

१ प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।

जब सो प्रभंजन उरगृह जाई। तबहि दीप बिज्ञान बुझाई॥
ग्रन्थि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा॥

दो. तब फिरि जीव बिबिध बिधि पावइ संसृत क्लेस।
हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस॥

परन्तु जो विश्वास करते हैं कि रामजी मेरी रक्षा करेंगे। रक्षिष्यतीति विश्वासः अन्य साधनों की आशा छोड़कर आप के दास होकर रहते हैं। जैसे दास को मात्र स्वामी की ही आशा रहती है उसी भाँति जिसे केवल सरकार की ही आशा रहती है। यथा : बनै तो रघुबर ते बनै या बिगरै भरपूर। तुलसी बनै जो और ते ता बनिबे महँ धूर। ऐसे विश्वासी दास केवल सरकार का नाम जप करके संसार सागर के पार हो जाते हैं। यथा : नाम लेत भव सिन्धु सुखाहीं। करहु बिचार सुजन मन माही। अतः वेद लोग कहते हैं कि संसार के दुःख के मिटाने मे केवल सरकार ही दक्ष हैं। अतः हम लोगों की रक्षा कीजिये, हम आपको नमस्कार करते हैं। इस भाँति भक्ति के अनादर का कुपरिणाम दिखलाकर प्रतिकूलाचरण की निन्दा करते हैं।

छं. जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनि पतिनी तरी।
नख निर्गता मुनि बन्दिता त्रैलोक पावन सुरसरी॥
ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वंद मुकुन्द राम रमेस नित्य भजामहे[1]॥

अर्थ : जो चरण शिवजी और ब्रह्मदेव से पूज्य हैं। जिसके रज को स्पर्श करके मुनि की स्त्री तर गयी। जिसके नख से निकली हुई त्रैलोक्य पावनी गंगाजी की वन्दना मुनि लोग करते हैं। ध्वज वज्र अंकुश और कमल से युक्त किन चरणों में वन में फिरते हुए काँटे चुभे हैं? अर्थात् कोई नही। इसलिए ऐसे रमा के पति मुकुन्द रामजी के दोनों पद कमलों को हम नित्य नमस्कार करते हैं।

व्याख्या : पहिले छन्द में स्वरूप वर्णन किया। दूसरे में माया का वर्णन किया। तीसरे में नाम की महिमा कही। अब चरणों की महिमा कहते हैं कि सृष्टिकर्ता ब्रह्मदेव और देवदेव महादेव सबके पूज्य हैं। पर ये चरण उनके भी पूज्य हैं। जिसके एक बार सम्बन्ध होने से रज में ऐसी महिमा आगयी कि उसके स्पर्श से बड़ा भारी पाप करनेवाली अहल्या तर गयी। यथा : परसि जासु पद पंकज धूरी। तरी अहल्या कृत अघभूरी। जिन चरणों के नख से गंगाजी उत्पन्न हुई। जिनकी मुनि लोग वन्दना करते हैं। और जो तीनों लोक को पवित्र कर रही हैं। जिन चरणो ने भक्तों के लिए इतने कष्ट उठाये कि वन में फिरते हुए उनमे काँटे चुभे।

---

१. गोप्तृत्ववरणं तथा।

सिवा इन चरणो के ध्वज कुलिश अङ्कुश और कञ्ज के चिन्हो के धारण करनेवाले[१] किन चरणो ने भक्तो के लिए ऐसे कष्ट स्वीकार किये हैं। अत ऐसे पूज्य ऐसे पावन ऐसे भक्तवत्सल चरण मुक्ति दाता लक्ष्मीपति रामजी के हैं। वेद लोग कहते हैं कि हम लोग उनका नित्य भजन करते हैं। ऐसे प्रभु से शीघ्रातिशीघ्र रक्षा की आशा की जाती है। अत गोप्तारूप से वेद प्रभु का ही वरण करते हैं।

छ अब्यक्त मूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
पट्कध शाखा पचबीस अनेक पर्न सुमन घने॥
फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आस्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित ससार बिटप नमाम हे[२]॥

अर्थ अव्यक्त जिसकी जड है वह पेड अनादि है। वेदो और शास्त्रो ने कहा है कि उसकी चार त्वचाएँ हैं। छ तने हैं पचीस शाखाएँ। अनेक पत्ते और बहुत से फूल हैं। उसमे दो प्रकार के फल हैं। एक कटु है और दूसरा मधुर है। और वेलि केवल उसी के आश्रित हैं जो नित्य पत्र फूल से युक्त नया बना रहता है। ऐसे ससार वृक्ष को हम लोग नमस्कार करते हैं।

व्याख्या ससार के अभिन्न निमित्तोपादान होने से सरकार को ससार वृक्ष रूप से वर्णन करते हैं। वृक्ष को म्ल होता है। उसके वपन का काल होता है। उसको त्वचाएँ होती हैं। उसका तना होता है। शाखाएँ होती हैं। पत्ते होते हैं। समय पर फूल होते है। फल होते हैं। उस पर वेलि भी चढ़ती है।

इस ससार वृक्ष का अव्यक्त प्रकृति मूल है और यह वृक्ष सनातन है। चार अवस्थाएँ जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तुरीय चार त्वचाएँ हैं और षडूर्मि अस्ति जायते वर्धते विपरिणमते अपक्षीयते विनश्यति। ये ही छ स्कन्ध तने हैं। पचीस तत्त्व[३] इसकी पचीस शाखाएँ हैं। विविध वासनाएँ उसके अनेक पत्ते और बहुत से कर्म उसके फूल हैं। उसके दु ख दो प्रकार के फल हैं। जो कि क्रम से मधुर और कटु हैं। और अनादि शक्ति रूपी वेलि सदा उसके आश्रित रहती हैं। वह नित्य पत्ते और फूल से युक्त रहता है। और प्रतिक्षण परिवर्तनशील होने से

---

१ कुछ लोग किन का अर्थ घट्टा करते हैं। पर काँटो के चुभने पर भी घठ्ठे का न पडना उन चरणो की विशषता है। यथा कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु विचारहु बन स्वामी।

२ आत्मनिक्षेप।

३ मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्या प्रकृतिविकृतय सप्त।
षोडशकस्तु विकार न प्रकृतिन विकृति पुरुष।

मूलप्रकृति महत् अहकार पञ्च तन्मात्रा पञ्च महाभूत दश इन्द्रिय और मन एव पुरुष ये २५ तत्त्व हैं।

वह सदा नया ही रहता है। वेद लोग कहते हैं कि ऐसे ससार वृक्ष को हम लोग नमस्कार करते हैं। विश्वरूप प्रभु का वर्णन करके आत्मनिवेदन द्योतित करते हैं।

छं. जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्यमनपर ध्यावही।
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जसु नित गावही॥
करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव येह बर माँगही।
मन वचन कर्म विकार तजि तव चरन हम अनुरागही[1]॥

अर्थ : जो अजन्मा अद्वैत अनुभवगम्य और मन से परे ब्रह्म का ध्यान करते हैं हे नाथ! वे कहें और जानें। हम तो आपके सगुण यश का नित्य गान करते हैं। हे करुणा के धाम प्रभु! सद्गुणो के आकर देव यह वर हम माँगते हैं कि मनसा वाचा कर्मणा विकार को त्यागकर हम आप के चरणो मे अनुराग करें।

व्याख्या : यस्यावताररूपाणि समर्चन्ति दिवौकस। अपश्यन्त पर रूपम् नमस्तस्मै महात्मने। विष्णुपुराणे। जिसके अवतार के रूपो की देवता लोग पूजा करते हैं उसके पर रूप को नही जान सकते उस महात्मा को नमस्कार।

ब्रह्म के दो रूप हैं पर और अपर। अज अद्वैत अनुभवगम्य मनगोतीत रूप पर है। सगुण रूप अपर है। पर रूप देवताओ से भी नही जाना जाता। अत वेद कहते हैं कि जो पर रूप का ध्यान करते हैं वे पररूप को कहे और जानें। न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति न मनो न विद्मो न विजानीमो अन्यदेव तद्विदितादथोऽविदितादधि। न वहाँ आँख जाती है न वाणी जाती है। न मन जाता है, उसे हमलोग नही जानते हैं। वह विदित से भी भिन्न है और अविदित से भी भिन्न है। इसलिए वेद कहते हैं कि हम तो सगुण यश का नित्य गान करते हैं। करुणायतन और सद्गुणाकर होना तो अपर रूप मे ही बनता है। अत हम उनसे यह वर माँगते हैं कि आप सबके हृदय के प्रेरक हैं। आप ऐसी प्रेरणा कीजिये कि हम मनसा वाचा कर्मणा विकारो का काम क्रोधादि त्याग करके आप के चरणो मे अनुराग करें। भक्ति को कृपासाध्य मानकर अपना कार्पण्य प्रकट करते है।

दो. सबके देखत वेदन्ह, बिनती कीन्हि उदार।
अन्तरधान भये सुनि, गए ब्रह्म आगार॥१३ क.
बैनतेय सुनु सभु तब, आए जहँ रघुबीर।
बिनय करत गदगद गिरा, पूरित पुलक सरीर॥१३ ख.

अर्थ : सबके देखते हुए वेदो ने उदार विनती की फिर वे अन्तर्धान हो गये और ब्रह्मलोक चले गये। हे गरुडजी! सुनो तब शिवजी रघुवीर रामजी के पास आये। गद्गद वाणी से स्तुति करने लगे। उनके शरीर पुलक से पूर्ण थे।

---

१ कार्पण्यम्।

व्याख्या यह वेद स्तुति पूर्वाषाढ नक्षत्र है। इसमे दो तारे चमकते हैं— सगुण और निर्गुण इसकी गजदन्त ऐसी आकृति है। जो मुख से बाहर निकलने पर फिर भीतर नही जाता। अर्थात् वही प्रमाण है। वेदवाणी है अत उसकी फलश्रुति है अभिमत दानि देव तरुवर से देव यह वर मांगही कहकर अभिमत ही मांग रहे हैं। अत इनकी स्तुति देव तरुवर सी उदार है। सब लोग वेदो को स्तुति करते देख रहे थे पर स्तुति समाप्त होते ही वे अन्तर्धान हो गये। अर्थात् आते और स्तुति करते सबने देखा जाते किसी ने नही देखा। वे लोग ब्रह्मलोक से आये थे और वही चले गये। ब्रह्मलोक म ही शरीरधारी वेदो का रहना सुना जाता है। स्तुति मे छ छन्द हैं। प्रत्येक छन्द मे एक एक विधि शरणागति की है। यथा १ आनुकूल्यस्य सकल्प २ प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ३ रक्षिष्यतीति विश्वासो ४ गोप्तृत्ववरण तथा ५ आत्मनिक्षेप ६ कार्पण्ये षड्विधा शरणागति। प्रायेण एक एक छन्द एक वेद का कथित तथा पीछे के दो छन्द सब वेदो के कथित माने जाते हैं। पर ऐसी बात तो नही मालूम होती। जिस भांति पिछले दो छन्दो मे नमाम है तथा अनुरागही उत्तम पुरुष के बहुवचन की क्रिया आई है वैसे ही पहिले चार छन्दो मे भी नमामहे स्मरामहे आदि क्रिया आई हैं।

अभिषेक की कथा के प्रधान वक्ता भुसुण्डिजी हैं। अत इस प्रसङ्ग मे बार बार गरुड सम्बोधन आ रहा है। उपासनाघाट के वक्ता होने से इस प्रसङ्ग मे उनकी प्रधानता है। वेदो के ब्रह्मलोक चल जाने के बाद सबके अन्त मे शिवजी आये। आये तो सबके पहिले से हैं पर आकाश मे विमान पर थे। स्तुति करने के लिए पास मे सबसे पीछे आये। क्योकि इस आनन्द के वे ही जौहरी हैं। पहिले से ही आने के लिए आदेश प्राप्त कर चुके हैं। यथा नाथ जबहिं कोसलपुरी होइहि तिलकु तुम्हार। कृपासिन्धु मै आउब देखन्ह चरित उदार। अत आये और प्रेमाधिक्य के कारण उन्हे सम्पूर्ण शरीर मे पुलक हो रहा था और गला भर आया था। ऐसी दशा मे स्तुति करने लगे।

छ जयराम[1] रमारमन समन, भवताप भयाकुल पाहि जन।
अवधेस सुरेस रमेस बिभो, सरनागत मांगत पाहि प्रभो॥
दससीस बिनासन बीस भुजा, कृत दूरि महा महि भूरि रुजा।
रजनीचर बृद पतग रहे, सर पावक तेज प्रचड दहे॥

अर्थ हे रमा रमन भव ताप शमन राम आपकी जय हो। भवताप के भय से व्याकुल इस जनकी रक्षा कीजिये। हे अवधेश! हे सुरेश! हे रमेश! हे प्रभो! मैं शरणागत मांगता हूँ—मेरी रक्षा कीजिये। आप दस सिर और बीस भुजावाले का

---

१ यह तोटक छन्द है। इसमे १२ अक्षरो का एक पाद होता है। चार सगण आते हैं।

नाश करनेवाले हैं । पृथिवी के बडे भारी रोग को आपने दूर किया। राक्षसो के समूह फनगे थे । वे आपके बाण के प्रचण्ड तेज से जल गये ।

व्याख्या : शङ्कर भगवान् ने आते ही रामजी का जय जयकार किया। देखा कि ' राम बाम दिसि सोभित रमारूप गुन खानि । अत रमारमन कहा। स्तुति मे भगवती को भी सम्मिलित करते हैं। क्योकि उस रस को महादेवजी जानते हैं। शृंगार रस के समिश्रण से भक्ति रस का बडा भारी उत्कर्ष होता है। इस बात के पूरे जानकार भक्तिशास्त्र के मूल प्रवर्तक शङ्कर भगवान् हैं। कह भी आये हैं कि : सो रस जान महेस ससार के ताप का भय युगल मूर्ति की उपासना से ही नष्ट होता है । शिवजी को ससार का ताप नही है । पर लोकशिक्षा के लिए अपने को भयाकुल मान रहे हैं। अभी वेदो ने कहा है कि ' ते पाइ सुरदुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी । अत' प्रार्थना है कि उस भय से निर्भय कीजिये। आपके नाम के प्रताप से भव भय भजन होता है । यथा ' भव भय भजन नाम प्रतापू। आप अवधेश हैं। परन्तु : सो महिमा समुझत प्रभु केरी । यह वरनत हीनता घनेरी । अत सुरेश कहा पर वह भी छोटा जँचा तब रमेश कहा। पर यह भी ठीक नही मालूम हुआ। क्योकि : देखे सिव विधि विष्णु अनेका। अमित प्रभाव एक ते एका। अनेक विष्णु हैं। उनकी शक्ति रमा भी अनेक हैं तब विभु कहा । सभीत होकर शरण आये हैं। अत कहते हैं पाहि प्रभो । यथा : कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही ।

अब श्रीरामावतार के दुष्कृत विनाश रूपी दिव्य कर्म का वर्णन करते है कि पिण्ड मे रोग होता है । उससे क्रमश शरीर ही नष्ट हो जाता है। उन रोगो मे ज्वर बहुत बडा है। कहा है कि ज्वरस्त्रिपादस्त्रिशिरा सर्वरोगाग्रजो बली। ज्वर के तीन पैर हैं, तीन सिर हैं। वह सब रोगोका बडा भाई है और बलवान् है। सज्वरा एव जायन्ये सज्वरा एव म्रियन्ते। लोग ज्वर के साथ ही उत्पन्न होते हैं और ज्वर के सहित ही मरते हैं। सो जिस भाँति पिण्ड मे रोग होता है उसी भांति ब्रह्माण्ड मे भी रोग हो जाता है। यह रावणरूपी बडा भारी रोग ब्रह्माण्ड मे हो गया था। यदि इसका नाश न किया जाता तो यह ब्रह्माण्ड को ही ले बढना। इस रोग को दस *सिर और बीस हाथ थे। इसे मारकर महामहि जो ब्रह्माण्ड है उसके बडे भारी रोग* को दूर किया। और ब्रह्माण्ड मे राक्षसो का समूह फनगो की भाँति बहुत हो गया था। इन राक्षसो ने मुनियो को खा डाला था। उनके लिए आपका बाण अग्नि हो गया। जिसमे सभी राक्षस शलभ हो गये। कहा भी है निसिचर निकर पतग सम रघुपति बान कृसानु । जननी हृदय धीर धरु जरे निसाचर जानु ।

छ महि मडल मडन चारु तर, धृत सायक चाप निपग वरं ।
मद मोह महा ममता रजनी, तम पुज दिवाकर तेज अनी ॥
मनजात किरात निपात किए, मृग लोग कुभोग सरेन हिए ।
हतिनाथ अनाथन्हि पाहि हरे, बिपयावन पाँवर भूलि परे ॥

अर्थं आप पृथिवी के अति सुन्दर शृङ्गार हैं। आपने बाण धनुप और निपग धारण कर रक्खा है। मद महामोह और ममता रूपी रात्रि के अन्धकार समूह के लिए आप तेज पुज सूर्य हैं। कामदेव रूपी किरात ने मनुष्य रूपी हिरणो के हृदय मे कुभोग रूपी बाण मारकर उनका नाश किया है। उसे मारकर हे नाथ! अनाथो की रक्षा कीजिये। ये नीच विपयरूपी वन मे भूल पडे हैं।

व्याख्या आप महिमण्डल को रोगहीन करके उसके चारुत्तर मण्डन करनेवाले हैं। यथा इन्द्र नील हाटक मुकुतामणि जगु पहिरे महि हार। आपके पदार्पण से महि मण्डल सुशोभित हुआ। धनुप बाण तूणीर धारण से शोभा और भी अधिक बढ गयी। मीन कमठ सूकर नर हरी। वामन परसुराम बपु धरी। सो सबने पृथिवी का मण्डन किया। पर ऐसी शोभा नही हुई। चक्रधर से भी शाभा अधिक कोदण्ड घर म हैं। यथा तुलसी मस्तक तब नवे जब धनुप बान ल्यौ हाथ। मोहरूपी रात्रि है। उसम भी ममता अँधियारी रात है। यथा मोह निसा सब सोवनि हारा। ममता तरुन तमी अँधियारी। राग द्वेष उलूक सुखकारी। इस रात मे मद अन्धकार है। यथा त्यागहु तम अभिमान। और मोह अन्धा बनाता है। यथा मोह न अन्ध कीन्ह केहि केही। अत दोनो मिलकर तमपुञ्ज हो गये। सरकार तेज समूहवाले सूर्य हैं। अन्धकार का तो आपके द्वारा नाश होता ही है। मोह रात्रि भी नष्ट हो जाती है। यथा प्रथम अविद्या निसा सिरानी।

उक्त रावण से भी बडा बटमार डकैत है। जिसे काम कहते हैं इसके सामने लोग कैसे हो जाते हैं जैसे किरात के सामने मृग। मृग किरात का कुछ बिगाड नही सकता और किरात उनको बाण से वेध देता है। इसी भाँति यह काम लोगो को कुभोग रूपी बाण से हृदय मे मारता है। सरकार! उस किरात का वध करके लोगो की रक्षा करें। ये लोग विषय वन के वासी नही हैं। आनन्दसिन्धु के वासी हैं। विपय वन मे भूल के पड गये हैं।

छ बहुरोग बियोगन्हि लोग हए, भवदंघ्रि निरादर के फल ए।
भव सिंधु अगाध परे नरते, पद पकज प्रेमु न जे करते ॥
अति दीन मलीन दुखी नितही, जिन्हके पद पकज प्रीति नही।
अवलब भवत कथा जिन्हकें, प्रिय सत अनत सदा तिन्हकें ॥

अर्थ बहुत से रोग वियोग से लोग मारे हुए हैं। आपके चरणो के निरादर का यह फल है। जो लोग चरण कमल से प्रम नही करते वे अपार भव सिन्धु मे पडे हुए हैं। वे अति दीन मलिन और नित्य दुखी रहते हैं जिन्हे प्रभु चरण कमल मे प्रीति नही है। जिन्हें आपकी कथा आधार हाती है उन्हे सन्त और अनन्त सदा प्रिय होते हैं।

व्याख्या तीनो दोपो मे काम प्रधान है। क्योकि यह बात स्थानीय है। यथा काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा। पित्त पगु कफ

पंगु· पगवो मलधातवः। वायुना यत्र नीयन्ते तत्र वर्षन्ति मेघवत्। क्रोध और लोभ पित्त और कफ की भाँति वायुरूपी काम के प्रेरणा से ही काम करते हैं। अन्य रोग भी काम के ही कारण से हैं। सयोग से रोग होता है और सयोग न रहने पर वियोग होता है। इसी चक्र मे पडे हुए लोग मारे पड रहे हैं। सरकारी चरण के निरादर का फल पा रहे हैं।

शरीर और मन का हाल कह के पुरुषार्थ का हाल कहते हैं कि भवप्रवाह मे लोग पडे हुए उसी मे बहे चले जा रहे हैं। उससे निकलने का प्रयत्न नही करते। बहे जाने मे ही पुरुषार्थ मान रहे हैं। देवताओ ने कहा · भवप्रवाह सन्तत हम परे। यह सरकारी चरणो मे प्रेम न होने का फल है।

लोग आशा से दीन पाप से मलिन और कर्मों से नित्य दु खी हैं कभी सुखी न हुए। क्योंकि उनका सरकारी चरणो मे प्रेम नही है। चरणो मे प्रेम होता तो काम का किया कुछ न होता।

इस प्रकार भवसागर मे पडे। दु ख झेलनेवालो के लिए क्या अवलम्ब है? इस पर कहते हैं कि सरकार की कथा एकमात्र अवलम्ब है। जिसने कथा का अवलम्ब ग्रहण किया उसे विषय सीठा हो जाता है। तब सन्त तथा भगवान् उसे प्रिय हो जाते हैं।

छ. नहि राग न लोभ न मान मदा, तिन्हके सम बैभव वा बिपदा।
एहितें तव सेवक होत मुदा, मुनि त्यागत जोग भरोस सदा॥
करि प्रेमु निरन्तर नेमु लिये, पदपंकज सेवत सुद्ध हिए।
सम मानि निरादर आदरही, सब सत सुखी बिचरंति मही॥

अर्थ : उन्हे न राग है न लोभ है। न मान है और न मद है। उन्हे वैभव और विपत्ति समान हैं। इसीलिए मुनि लोग बडी प्रसन्नता से आप के सेवक हो जाते हैं और सदा योग का भरोसा छोडे रहते है। वे प्रेम करते हुए नियम के साथ सदा शुद्ध हृदय से आपके चरण कमलो की सेवा करते हैं। आदर और निरादर को समान मानकर सब सन्त सुखो होकर पृथिवी पर विचरते हैं।

व्याख्या : जिसे सन्त और अनन्त प्रिय लगने लगें उसका राग, लोभ, मान और मद दूर हो जाता है। इनके दूर हो जाने से फिर सम्पदा से हर्ष और विपत्ति से विषाद नही होता। दोनो उसके लिए समान हो जाता है। वह प्रसन्नतापूर्वक आपका सेवक हो जाता है। आपकी सेवा मे ही उसको सुख मिलता है। अन्तराय के अधिक्य से वह योग का भरोसा नही करता। क्योंकि बिना रामप्रेम के योग भी कुयोग हो जाता है। अत· जिसके कारण से योग की कुयोगता जानो रहती है। उसी भक्ति को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करते हैं। वे सदा प्रेम करते हुए नियम के साथ आपके चरण कमलो की सेवा शुद्ध हृदय से करते हैं। यथा · स्वामिहि सर्वभाव छल त्यागी। लोक के आदर और निरादर की वे परवाह नही करते।

यथा : भलो कहत बिनु जानही, बिनु जाने अपवाद। ते नर गादुर जानि जिय, करिअ न हर्ष विषाद। प्रभु जानत सब बिनहि जनाये। कहहु कवनि सिधि लोक रिझाये।

छं. मुनि मानस पंकज भृंग भजे। रघुवीर महारन धीर अजे ॥
तव नाम जपामि नमामि हरी। भव रोग महामद मान अरी ॥
गुन सील कृपा परमायतनं। प्रनमामि निरंतर श्रीरमनं ॥
रघुनंद निकंदय द्वंद घनं। महिपाल बिलोकय दीनजनं ॥

अर्थ : मुनि के मानसरूपी कमल के भौंरे को मै भजता हूँ। रघुबीर महारणधीर और अजय हैं। हे हरि! मैं आप के नाम को जपता हूँ और नमस्कार करता हूँ। आप भवरोग महामद और मान के शत्रु हैं। गुणशील और कृपा के परम आयतन श्रीरमण को मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ। हे रघुनन्दन! घने द्वन्द्व का नाश कीजिये। हे महिपाल! दीनजन पर दृष्टि डालिये।

व्याख्या : सरकार रघुकुल मे वीर हैं। कालहुँ डरहिं न रन रघुवंसी। उनमे भी आपका महान् उत्कर्ष है। आप महारणधीर हैं और अजय हैं। यथा : जीति को सकै अजय रघुराई। इतने पर भी आप मुनिमानस रूपी पङ्कज के भौरे हैं। रस लेने के लिए आप से आप पहुँच जाते है। शिवजी कहते हैं कि मैं तो ऐसे भौंरे को भजता हूँ। सरकार भव रोग महामद और मान के अरि हैं। उन्हे रहने नही देते। यथा : तुम कृपाल जापर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिबिध भवसूला। जन अभिमान न राखहिं काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ। अत: शिवजी कहते हैं कि ऐसे प्रभु का मैं नाम जपता हूँ और उसे प्रणाम करता हूँ जिसमे भवरोग मान और मद पास न फटकने पावे। सरकार गुणशील और कृपा के परम आयतन हैं। क्योंकि श्रीरमण हैं। यथा अब जानी मैं श्री चतुराई। भजी तुमहि सब देव बिहाई। सरकार के ऐसे गुणो पर मुग्ध होकर ही भगवती श्री ने उनका वरण किया। अतः शिवजी कहते हैं कि मैं निरन्तर आपको प्रणाम करता हूँ। क्योंकि इतनो ही सेवा आपकी सम्भव है। यथा : मोपहिं होइ न प्रति उपकारा। बदौं तव पद बारहिं बारा। दुःख सुख शीतोष्ण आदि द्वन्द्व ही विपत्ति है और ससार का फन्दा है। हे रघुनन्दन! उसका नाश कीजिये और दीन जनकी ओर देखिये। क्योंकि वेद भगवान् अभी कह गये हैं कि : जे नाथ करि करुना बिलोके दुख तिन निर्वहे। भवखेद छेदन दच्छ हम कहँ रच्छ राम नमामहे।

दो. बार बार बर माँगौ, हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायिनी, भगति सदा सतसग ॥१४ क.

बरनि उमापति राम गुन, हरषि गए कैलास।
तब प्रभु कपिन्ह दिवाये, सब बिधि सुख प्रद बास ॥१४॥

अर्थ : हे श्रीपति ! मैं बार बार वर मांगता हूँ। आप हर्षित होकर दीजिये कि मुझे आपके पद कमल मे विघ्न रहित भक्ति हो और सदा सत्सङ्ग मिलता रहे।

उमापति महादेवजी रामजी के गुण वर्णन करके हर्षित होकर कैलास गये। तब प्रभु ने बन्दरो को सब प्रकार का आनन्दप्रद निवास स्थान दिलवाया।

व्याख्या : सरकार से स्तुति करके भक्ति तो सभी माँगते हैं। पर शिवजी भक्ति और सत्सङ्ग दोनो माँगते हैं अर्थात् कारण और कार्य दोनो माँगते हैं। सत्सङ्ग के कारण ही भक्ति होती है। यथा : अस बिचारि जो कर सतसगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहगा। और सत्सङ्ग से अलौकिक सुख की प्राप्ति होती है। यथा : तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिअ तुला एक अग। तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसग। यह स्तुति उत्तरापाढ नक्षत्र है। दो तारे चमकते हैं श्रीरमण से उपक्रम करके श्रीरग से ही उपसहार करते है। चार पावे की भांति चार लोट् लकार का प्रयोग है। दो बार पाहि तीसरे निकन्दय और चौथे बिलोकय। इस स्तुति मे सत्सङ्ग मांगा गया है। अत इसकी फलश्रुति सेवत सुलभ सुखद हरि हरसे। हरिहर को कुछ नही करना पडता। उनकी सेवा मे ही सब सामर्थ्य है। इसी भांति इस स्तुति मे सब सामर्थ्य है।

उपामति कहने का भाव यह कि उमा साथ नही है। शिवजी गृहस्थी स्वीकार किये हुए हैं। गृह कैलास है। वहाँ जाना है। उदार चरित देखकर हर्षित है। अत. हर्षित होकर कैलास जाना कहा। शङ्करजी की स्तुति के बाद उस दिन का कार्य समाप्त हुआ। तब सरकार ने कपियो के सब भाँति के सुखप्रद वास की व्यवस्था की। सुख प्रद वास तो पहिले से ही मिला हुआ है। पर अब ऐसे वास की व्यवस्था की गयी जहाँ से सरकार के दर्शन मे अधिक सुविधा है।

सुनु खगपति यह कथा पावनी। त्रिविध ताप भवभय दावनी ॥
महाराज कर सुभ अभिषेका। सुनत लहहिं नर बिरति बिबेका ॥१॥

अर्थ : हे पक्षिराट् ! यह कथा पवित्र करनेवाली है। तीनो प्रकार के ताप और भव भय को दमन करनेवाली है। महाराज के शुभ अभिषेक को सुनने से मनुष्य वैराग्य और विवेक को प्राप्त होता है।

व्याख्या . केवल रामाभिषेक की फलश्रुति कहते हैं कि यह कथा सञ्चित प्रारब्ध और क्रियमाण तीनो प्रकार के कर्मों के दुष्परिणाम को नाश करती है। अत. अन्य मे कथाओ से इसके फल मे विशेषता कहा। पावनी से सञ्चित पापो का नाश कहा। आध्यात्मिक आधिदैविक तथा आधिभौतिक इन तीनो प्रकार के ताप के नाश से प्रारब्ध दु खो का भी नाश कहा। भव भय दावनी : कहकर भावी कष्टो का . जन्म मरण के दु.खो का भी नाश दिखलाया।

महाराज रामचन्द्र के अभिषेक से जगत् का मङ्गल हुआ। इसलिए शुभ कहा। जो लोग निष्काम भाव से इसे सुनते हैं उन्हे वैराग्य और विवेक होता है। आगे चलकर सकाम भाव से सुनने गानेवाले का फल कहेंगे।

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं । सुख संपति नाना बिधि पावहिं ॥
सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं । अंतकाल रघुपति पुर जाहीं ॥२॥

अर्थ : जो पुरुष कामना मन में रखकर सुनते या गान करते हैं वे नाना प्रकार के सुख और सम्पत्ति के भागी होते हैं। संसार में सुर दुर्लभ सुख करके मरने पर साकेत धाम को प्राप्त होते हैं।

व्याख्या . यह कथा नाना प्रकार की सुख सम्पत्ति देनेवाली है। भिन्नरुचिर्हि लोकः। सबकी कामना एक सी नही होती। यह कथा सब पूरी कर देती है। यद्यपि वक्ता और श्रोता को सांसारिक ही कामना रही फिर भी इस कथा का इतना प्रताप है कि मरने के बाद उन्हे साकेत धाम की प्राप्ति होती है। अर्थात् सकाम सुननेवाले के भी सब पाप नष्ट हो जाते हैं और ऐसा अलौकिक पुण्य होता है जिससे सरकार के धाम साकेत की प्राप्ति होती है।

सुनहि बिमुक्त बिरत अरु बिषई । लहहिं भगति गति संपति नई ॥
खगपति राम कथा मै बरनी । स्वमति बिलास त्रास दुख हरनी ॥३॥

अर्थ · इस कथा को यदि विमुक्त विरत या विषयी सुनते हैं तो उन्हे भक्ति गति और अपूर्व सम्पत्ति की प्राप्ति होती है। हे पक्षिराट् ! मैंने यह त्रास दुःख हरणी राम कथा अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन की।

व्याख्या : संसार मे तीन प्रकार के जीव हैं। यथा : विषयो साधक सिद्ध सयाने। त्रिबिध जीव जग बेद बखाने। सो इस कथा से तीनों का कल्याण होता है। विमुक्त से यहाँ जीवन्मुक्त अभिप्रेत है। जीवन्मुक्त को कुछ कर्तव्य शेष नही है। फिर भी वे कथा सुनते हैं। यथा : जीवन्मुक्त महा मुनि जेऊ। हरि गुन सुनहि निरतर तेऊ। सुनि गुनगान समाधि बिसारी। सादर सुनहि परम अधिकारी। ऐसे सुननेवाले को भक्ति की प्राप्ति होती है : आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्य-हैतुकी भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः। यहाँ विरत से साधक का ग्रहण है। उन्हे गति अर्थात् सिद्धि की प्राप्ति होती है और विषयी जीव तो सदा सम्पत्ति के भूखे रहते हैं। अतः उनका भी मनोरथ पूरा होता है। उन्हे ऐसी सम्पत्ति मिलती है जिससे राम पद सम्मुख होने मे उन्हे सहायता मिले। क्योंकि : जरउ सो सपति सदन सुख सुहृत मातु पितु भाइ। सनमुख होत जो राम पद करइ न सहस सहाइ। सुनु खगपति यह कथा पावनी से उपक्रम और : खगपति राम कथा मैं बरनी से उपसहार किया। भुसुण्डिजी कहते हैं कि यह कथा पूरी तरह से नही कही जा सकती। अपनी वुद्धि के अनुसार ही इसका लोग वर्णन करते हैं। सो मैंने स्वमति के अनुसार वर्णन की। यह कथा भविष्य पीड़ा के त्रास और वर्तमान पीडा के दुःख को हरण करनेवाली है।

बिरति बिबेक भगति दृढ करनी । मोह नदी कहुँ सुन्दर तरनी ॥
नित नव मंगल कोसल पुरी । हर्षित रहहिं लोग सब कुरी ॥४॥

अर्थ : यह कथा विरति विवेक और भक्ति को दृढ़ करनेवाली है और मोहनदी के लिए तो सुन्दर नाव है। कोसलपुरी में नित्य नया मंगल होने लगा और सब जाति के लोग हर्षित रहने लगे।

व्याख्या : जिसे विरति विवेक और भक्ति पहिले से हो उसकी विरति विवेक और भक्ति इस कथा के कहने सुनने से दृढ़भूमिक हो जाती है। राम कथा ही ऐसी है कि इसके सामने भव सागर सङ्कुचित होकर मोह नदी हो जाता है। उसे राम कथा नाव की भांति पार उतारनेवाली है। पर सरकार के अभिषेक की कथा तो सुन्दर नाव है अर्थात् अन्य कथाओं की अपेक्षा अधिक सुखद है।

सरकार के अभिषेक के बाद से फिर नये नये मङ्गल अवध में होने आरम्भ हो गये जैसे व्याह करके आने पर होते थे। यथा : जब ते राम ब्याहि घर आये। नित नव मंगल मोद बधाये। सब जाति के लोग सुखी रहते थे। जाति व्यवस्था सब पृथक् पृथक् थी और सब लोग सुखी थे। जबतक चौदह वर्ष सरकार का वनवास था तबतक लोग दीन मलिन थे : कोक कोकी कमल दीन विहीन तमारि।

नित नइ प्रीति राम पद पंकज। सबकें जिअहि नमत सिव मुनि अज ॥
मंगन वहु प्रकार पहिराए। द्विजन्ह दान नाना बिधि पाए ॥५॥

अर्थ : सबको रामजी के चरणों मे जिन्हे शिव मुनि और ब्रह्मा नमस्कार करते हैं। नित्य नयी प्रीति हो रही थी। याचकों को बहुत प्रकार से कपड़े पहनाये गये और ब्राह्मणों ने अनेक प्रकार के दान पाये।

व्याख्या : हर्षित रहने का कारण कहते हैं कि सरकार के चरणो में प्रीति पुरानी नही होने पाती। नित्य नवीन होती जाती है। उन चरणो का प्रभाव ही ऐसा है कि उनमें एक बार चित्त लग जाने से फिर हटता ही नहीं। शिव मुनि और ब्रह्मा नित्य नमस्कार किया करते हैं।

पहिले माताओं ने याचको को अयाचक कर दिया था। सरकारी आज्ञा हुई उन्हे नाना प्रकार के कपड़े भी पहिना दो। जिसमें दरिद्र वेप से घर न जायें और ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के दान दिये गये। यह दान सरकार की ओर से हुआ।

दो. ब्रह्मानंद मगन कपि, सबके प्रभु पद प्रीती।
जात न जाने दिवस तिन्ह, गये मास पट बीती ॥१५॥[1]

अर्थ : बन्दर सब ब्रह्मानन्द मे मग्न थे। सबको प्रभु के चरणों में प्रीति थी। उन्हे रात दिन के बीतने का पता न चला। छः महीने बीत गये।

व्याख्या : क्या अद्भुत लीला है। बन्दर ब्रह्मानन्द में मग्न हैं। बन्दरो में ब्रह्मानन्द की पात्रता के आने का कारण कहते हैं कि सबको प्रभु के चरणों में प्रीति

---

१. उत्तरकाण्ड प्रारम्भ से यहाँ तक १५ दोहापर्यन्त नित्य नियम से पाठ करने पर आशातीत लाभ अवश्य होता है।

थी। सरकार के चरणो मे प्रीति होने से मोक्ष सुख सुलभ हो जाता है। यथा : तथा मोक्षु सुख सुनु खगराई। रहि न सकै हरि भगति बिहाई। उस ब्रह्मानन्द मे सब ऐसे मग्न हुए कि उन्हे दिन रात के बीतने का पता नही। आनन्दातिरेक में छः महीने बीत गये।

बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाही। जिमि पर द्रोह संत मन नाही॥
तब रघुपति सब सखा बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिरु नाए॥१॥

अर्थ : घर भूल गया। सपने मे भी याद नही पड़ता। जिस भाँति सन्त के मन मे पर द्रोह की याद नही आती। तब रामजी ने सब सखाओं को बुलाया। सबने आदर के साथ आकर सिर नवाया।

व्याख्या : मदिरा मन्दान्ध की भाँति ब्रह्मानन्द मे मग्न कपि लोग खाते पीते सोते थे। उन्हे सपने मे भी घर की याद न आयी। इसकी उपमा देते हुए श्री गोस्वामीजी कहते हैं कि जिस भाँति सन्त को कभी पर द्रोह का सपना भी नही होता। मनसा वाचा कर्मणा परोपकार करना सन्त का सहज स्वभाव है। उन्हे परद्रोह का संस्कार ही नही। इसलिए सपने में भी परद्रोह की याद नही आती। यहाँ बानरो की उपमा सन्तो से दी और घर की उपमा परद्रोह से और ब्रह्मानन्द साधारण धर्म बतलाया जो ब्रह्मानन्द मे मग्न हैं। उसे देह की सुधि भी नही रहती। घर उसे क्यो याद पडने लगा। अथवा ऐसा सत्कार उनका अवध मे हुआ कि वे घर भूल गये। प्रवास मे असुविधा का अनुभव होने से ही घर याद आता है।

छः महीना बीतने पर सबकी तलबी एक साथ हुई। पहिले मुनिपद लगने के लिए बुलाया था। फिर बीच मे बुलाहट नही हुई। अपनी खुशी से जब चाहते थे आ जाते थे। सबकी बुलाहट एक साथ हुई। अतः सब आये। सरकार का व्यवहार उनके साथ सखा की भाँति था। पर वे स्वामी सेवक सा व्यवहार रखते थे। आकर सादर प्रणाम करते हैं।

परम प्रीति समीप बैठारे। भगत सुखद मृदु बचन उचारे॥
तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई। मुख पर केहि बिधि करौं बड़ाई॥२॥

अर्थ : परम प्रीति के साथ अपने पास बिठाया। भक्तो को सुख देनेवाले रामजी ने तब मृदु वचन कहा। तुम लोगो ने मेरी बड़ी ही सेवा की। मुख पर किस प्रकार से बडाई करूँ।

व्याख्या : सखाओ पर प्रेम तो है ही पर इस समय उन्हे विदा करना है। अतः परम प्रीति के साथ पास बिठाना कहते हैं। अथवा सरकार ने छः महीने तक आसरा देखा कि अब ये लोग घर जाने के लिए कहेगे। अब कहेगे। जब देख लिया कि ये लोग तो घर ही भूल गये तो सरकार का उन पर परम प्रेम हुआ। सरकार ने ऐसा मृदु बचन कहा जिससे उन्हे सुख उपजे। सरकार को उन्हे घर भेजना है। उनके बाल बच्चे उत्सुकता के साथ उनका रास्ता देखते होगे।

सरकार ने कहा कि तुम लोगो ने मेरी बडी भारी सेवा की। सरकार के प्रेम मे घर भूल जाना यह सरकार की बड़ी भारी सेवा है। साधुओ मे यह एक बडी भारी बड़ाई है : जो गृहस्थो मे हो नही सकती : कि वे घर का परित्याग करके भूले रहते हैं। अत: कहते हैं कि जो जो सेवा तुम लोगो ने की उसकी बड़ाई करनी चाहिए। बड़ाई की शोभा पीठ पीछे करने मे है। सामने बड़ाई की गिनती मुँह देखी बात मे हो जाती है।

ताते मोहिं तुम अति प्रिय लागे। मम हित लागि भवन सुख त्यागे ॥
अनुज राज संपति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही ॥३॥

अर्थ : मेरे लिए तुम लोगो ने घर का सुख छोड़ा। इसलिए तुम लोग मुझे अत्यन्त प्रिय लगे। छोटे भाई, राज्य, सम्पत्ति, वैदेही, देह, घर, परिवार और प्रेमी।

व्याख्या : सब सुखो मे घर का सुख सबसे बडा है। गृह सुख के लिए मनुष्य क्या नही करता। दिवसस्याष्टमे भागे शाक पचति यद्गृहे। अनृणी चाऽप्रवासी च स वारिचर मोदते। दिन के आठवें भाग मे जिसके घर मे शाक बन जाता है उसे यदि ऋण नही है और वह परदेश मे नही है तो वह सुखी है। अतः सरकार कहते हैं कि मैं तुम लोगो को इतना प्रिय हूँ कि मेरे लिये तुम लोगो ने घर का सुख छोड दिया। अत तुम लोग मुझे अत्यन्त प्रिय हो। भाई, राज्य, सम्पत्ति, स्त्री, देह, घर परिवार और प्रेमी ये ही प्रेमास्पद हैं। सरकार कहते हैं कि मुझे भी ये प्रिय हैं। भाई प्रिय यथा : राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। राज्य प्रिय यथा : अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। सम्पत्ति प्रिय यथा : सपति सब रघुपति के आही। जो बिनु जतन चलौं तजि ताही। तौ परिनाम न मोरि भलाई। वैदेही प्रिय यथा : अतिसय प्रिय करुना निधान की। देह प्रिय यथा : सब के देह परम प्रिय स्वामी। गेह प्रिय यथा : मम हित लागि भवन सुख त्यागे। परिवार प्रिय यथा : कहहुँ सुभाव न कुलहि प्रससी।

सब मम प्रिय नहि तुमहि समाना। मृषा न कहौं मोर यह बाना ॥
सब के प्रिय सेवक यह नीती। मोरे अधिक दास पर प्रीती ॥४॥

अर्थ : मुझे सब प्रिय हैं। परन्तु तुम्हारे समान नही। मेरा यह बाना है कि मैं झूठ नही कहता। ऐसी नीति है कि सबको सेवक प्रिय होते हैं पर मुझे दास पर अधिक प्रीति होती है।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि तुम लोग मुझे : अनुज राज सपति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही। सबसे अधिक प्रिय हो। भाव यह है कि सखाओ के मन मे यह बात न आवे कि हम लोग सरकार को अधिक प्रिय नही हैं। सभी प्रेमास्पदो का तो सग्रह कर रक्खा है। हमारा ही त्याग क्यो करते हैं। अत सरकार कहते हैं कि तुम लोग सबसे अधिक प्रिय हो। घर जाने को कहूँगा। इसलिए प्रेम मे न्यूनता न समझना और यह भी न समझना कि मैं तुम लोगो की प्रसन्नता के लिए

मुँहदेखी कह रहा हूँ। मैं असत्य कहता ही नही। यह मेरा प्रण है। फिर भी अधिक प्रिय होने का कारण होना चाहिए। इस पर कहते हैं कि सम्बन्धियो से अधिक प्रीति सेवा करनेवालों पर सबको होती है। ऐसी नीति है। यथा : सुखदाई सोई सगो सगो शत्रु बिनु हेत। दुखदाई तन की व्यथा बन बूटी सुख देत। पर मुझे तो दास पर अधिक प्रीति होती है। यथा : तिन्हते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। तुम लोगो को मेरी ही गति है दूसरी आशा नही है। अतः मुझे अत्यन्त प्रिय हो।

दो. अब गृह जाहु सखा सब, भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्वगत सब हित, जानि करेहु अति प्रेम ॥१६॥

अर्थ : हे सखा लोग! अब तुम लोग घर जाओ और दृढ नियम करके मेरा भजन करना। सब काल मे सब देश मे और सबके हित मे मुझे जानकर अत्यन्त प्रेम मुझ पर करना।

व्याख्या : सरकार का कहना है कि तुम लोगो ने अत्यन्त सेवकाई मेरी की। इससे अधिक सेवकाई मुझसे सहन नही होती। अतः तुम लोग अपने घर जाओ। मेरा भजन घर मे भी हो सकता है। पर उसके लिए दृढ नियम की आवश्यकता है। नही तो : गृह कारज नाना जंजाला मे लोग भूल जाते हैं और यह न समझना कि मैं इस समय केवल अयोध्या मे हूँ। मैं सब काल में सब देश मे रहता हूँ। सबका हित किया करता हूँ। ऐसा समझकर जहाँ हो वही से अत्यन्त प्रेम करना। प्रेम से हम घर मे भी प्रकट हो जायँगे।

सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। को हम कहाँ बिसरि तन गए ॥
एकटक रहे जोरि कर आगे। सकहि न कछु कहि अति अनुरागे ॥१॥

अर्थ : प्रभु का वचन सुनकर सब मग्न हो गये। वे शरीर की सुधबुध भूल गये। उन्हे इस बात का पता न रह गया कि हम कौन है और कहाँ हैं। हाथ जोडकर आगे खड़े एकटक से देखा किये। अत्यन्त प्रेम के कारण कुछ कहने मे भी असमर्थ हो गये।

व्याख्या : प्रभु की ऐसी वाणी जो कि भक्तसुखद और मृदु थी सुनकर सब मग्न हो गये। पहिले तो घर ही भूला था। अब तो देह भी भूल गया। न अपनी सुधि रह गयी न दूसरे की। हम कौन हैं यह भी पता न रहा और न यह ख्याल रह गया कि हम कहाँ हैं। कहि न सकहि कछु प्रेम बस भरि भरि लोचन बारि। सनमुख चितवहि राम तन नयन निमेष निवारि। हाथ जोडे सामने खडे हैं। कहना चाहते हैं परन्तु प्रेम मे इतने विह्वल हैं कि कह नही सकते।

परम प्रेमु तिन कर प्रभु देखा। कहा बिबिध बिधि ग्यान बिसेखा ॥
प्रभु सनमुख कछु कहन न पारहि। पुनि पुनि चरन सरोज निहारहि ॥२॥

अर्थ : सरकार ने उनका परम प्रेम देखा तो अनेक प्रकार से विशेष ज्ञान कहा। सरकार के सामने कुछ कह नही सकते। बार बार चरण कमल देखते हैं।

व्याख्या : लंका से चलने के समय : अतिसय प्रीति देखि रघुराई। लीन्हे सकल बिमान चढाई। परन्तु इस बार परम प्रेम देखकर ज्ञानोपदेश किया। क्योकि प्रेम का वेग ज्ञान से ही रुकता है और प्रेम की पराकाष्ठा भी ज्ञान है जहाँ प्रेमी और प्रेमास्पद मे भेद नही रह जाता। जी मे बात के बिठाने के लिए अनेक प्रकार से कहा। विशेष ज्ञान से यहाँ विज्ञान अभिप्रेत है। शत्रु भी ' प्रभु बिलोकि सर सकहि न डारी। बन्धु भी : प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ। इस भाँति सखा भी प्रभु के सन्मुख कुछ भी कहने मे असमर्थ हुए। बहुत कुछ कहना चाहते हैं पर वाणी खुलती नहीं। ऐसी प्रभुता है कि सामने देखा नही जाता। बार बार चरण कमल का दर्शन कर रहे हैं। भाव यह कि अब इन चरणो का दर्शन दुर्लभ होनेवाला है।

तब प्रभु भूषन बसन मगाए। नाना रग अनूप सोहाए॥
सुग्रीवहि प्रथमहि पहिराए। बसन भरत निज हाथ बनाए॥३॥

अर्थ : तब सरकार ने गहने कपडे मँगवाये जो कि अनेक रङ्ग के थे। बेजोड थे और सुन्दर थे। पहिले सुग्रीव को पहिनाया। कपडे को भरतजी अपने हाथ से सँवारे।

व्याख्या : समझाने के बाद बिदाई की तैयारी कर दी। बिदाई मे महाराजो के यहाँ से कपडे मिलते हैं। जिन्हे सरोपाव कहते हैं। आभूषण भी मिलते हैं। सो अनेक रग के कपडे मँगाये। यहाँ बानर सरदार भी अनेक रङ्ग के थे। सो जिस रग का कपडा जिसे खिले उस रंग का उसे दिया जाय। इसलिए अनेक रग के कपडे मँगाये। वे ऐसे सुन्दर थे कि उनकी उपमा नही है। वैसे ही गहने भी बेजोड थे। सुग्रीव कपिराज थे और सरकार से उनकी अग्नि साक्षिक मैत्री थी। उन्होने कहा भी था : सब प्रकार करिहौं सेवकाई। जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई। और तदनुसार सेवकाई भी की थी और सरकार ने इन्हे अपने हाथ से तिलक नही दिया था। इसलिए पहिले अपने हाथ से सुग्रीव को ही गहना कपडा पहनाया। राजाओ का पहनाना ऐसा ही होता है कि कपडो को शरीर से स्पर्श मात्र करा देते हैं। शेष कार्य तो कामदार लोग कर देते हैं। इसी भाँति सरकार ने पहना दिया और उसे भरतजी ने अपने हाथ से ठीक ठीक साज दिया।

प्रभु प्रेरित लछिमन पहिराए। लकापति रघुपति मन भाए॥
अंगदि बैठ रहा नहि डोला। प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला॥४॥

अर्थ : सरकार की प्रेरणा से रघुपति के मन मे अच्छे मालूम होनेवाले लङ्कापति को लक्ष्मणजी ने पहनाया। अङ्गद बैठे ही रह गये बोले नही। उनकी प्रीति देखकर सरकार ने उनसे कुछ नही कहा।

व्याख्या : जिस समय सरकार कपिपति को पहनाने लगे उसी समय लक्ष्मणजी को प्रेरणा की कि लङ्कापति विभीषण को पहनावें। ये सरकार के मन भाये लङ्कापति थे। इन्हे सरकार ने अपने हाथ से तिलक किया था। यथा : अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन वृष्टि नभ भयउ अपारा। अतः लक्ष्मणजी ने इन्हे पहनाया और अपने हाथ से कपडे को सजा भी दिया। इसीलिए किसी दूसरे द्वारा जाना नही कहते। अङ्गदजी उठे ही नही। बैठे ही रह गये। प्रभु ने उनकी प्रीति समझ ली। अतः उन्हे छेड़ना उचित नही समझा। दूसरे लोग भी कही अङ्गद का ही रास्ता न पकडें।

दो जामवंत नीलादि सब, पहिराये रघुनाथ।
हिय धरि राम रूप सब, चले नाइ पद माथ ॥१७ क.

अर्थ : जामवन्त और नीलादि को रामजी ने अपने हाथ से पहनाया। रामजी के रूप को हृदय मे रखकर सब लोक सिर नवाकर चले।

व्याख्या : तत्पश्चात् ऋक्षराज जाम्बवान् सेनापति नील तथा अन्य वानर सरदारो को सरकार ने अपने हाथ से पहनाया। सामान्य वानर लोग तो लङ्का मे ही आकाश से वर्षा किये गये गहने कपडे पा गये थे। यथा : भालु कपिन्ह पट भूषन पाये। पहिरि पहिरि रघुपति पहँ आये। उनकी लङ्का से ही बिदाई हो गयी थी। यहाँ तो केवल सरदार लोग साथ आये थे। इनकी बिदाई सरकार अपने हाथ से अनूप भूषण वसन पहनाकर कर रहे हैं। विदाई होने पर सब लोग प्रणाम करके चले। पर प्रभु रूप को हृदय मे ध्यान करने के लिए रख लिया। आज्ञा भी पा चुके हैं : भजेहु मोहि दृढ नेम। सो बिना ध्यान किये दूर से भजन कैसे हो सकता था।

दो. तब अंगद उठि नाइ सिरु, सजल नयन कर जोरि।
अति बिनीत बोले बचन, मनहु प्रेम रस बोरि ॥१७ ख.

अर्थ तब अङ्गद ने उठकर सिर नवाया। उनकी आंखो मे जल भरा था। हाथ जोडकर अत्यन्त विनययुक्त वचन बोले। मानो वह प्रेम रस मे डुबाया हुआ था।

व्याख्या सबके चले जाने पर अङ्गदजी उठे। सबके चले जाने पर उठने का भाव ही यही है कि अङ्गदजी को कुछ कहना है। उन्होने उठकर प्रणाम किया। उनकी आंखो मे जल भरा था। हाथ जोड़कर वचन बोले। वह वचन कैसा था इस पर कवि कहते हैं मानो प्रेम सुधा से पागा हुआ था। यहाँ : तब अगद उठि नाइ सिर कहने से अङ्गदजी का कर्मणा प्रेम कहा। अति विनीत बोले बचन : से वाचा प्रेम कहा। मनहु प्रेम रस बोरि : से मनसा प्रेम कहा। विनीत वचन भी प्रेम रस से भरा न हो तो उसमे मधुरता नही आती।

सुनु सर्वज्ञ कृपा सुख सिंधो। दीन दयाकर आरत बंधो ॥
मरती बेर नाथ मोहि बाली। गयउ तुम्हारेहि कोछें घाली ॥१॥

अर्थ : हे सर्वज्ञ ! हे कृपा और सुख के सिन्धु ! हे दीनो पर दया करनेवाले ! आर्तो के बन्धु सुनो। मरने के समय बालि मुझे आपके ही गोद मे डाल गया।

व्याख्या : सर्वज्ञ को क्या जनावें। कृपा सुखसिन्धु से कृपा करने की प्रार्थना क्या करें ? आप दीनदयाल हैं मैं दीन हूँ। आप आर्त्तबन्धु हैं मैं आर्त्त हूँ। अतः मेरी बात सुनिये। और लोगों मे और मुझ मे बडा अन्तर है। मरते समय वालि ने मुझे आप की ही गोद मे डाला। यथा : यह तनय मम सम विनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिये। गहि बाँह सुर नरनाह आपन दास अंगद कीजिये। सुग्रीव की गोद मे नही डाला और आप ने अस्वीकार नही किया। मरती बार के विनय को कोई सामान्य पुरुष भी यथासाध्य उपेक्षित नही करता। आप तो दीन दयाकर हैं। आपको सुपुर्द करके तब प्राण त्याग किया। इसलिए मैं अनन्यगतिक हूँ आर्त्त हूँ और आप आर्त्तबन्धु हैं।

असरन सरन बिरद संभारी। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी ॥
मोरे तुम्ह प्रभु गुर पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता ॥२॥

अर्थ : अशरण शरण विरद का सँभाल करते हुए मेरा परित्याग न कीजिये। आप भक्त के हित करनेवाले हैं। मेरे तो आप ही गुरु पिता और माता हैं। आपके पदकमल को छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ ?

व्याख्या : अङ्गदजी कहते हैं कि आपका बिरद अशरणशरण है और मुझे कही शरण नही है। मेरे परित्याग से सरकारी विरद गिर जायगा। और लोगो को तो शरण है। घर बार सब कुछ है। हमे तो कुछ नही है। मुझे जाने को कहियेगा तो मैं कहाँ जाऊँ ? मेरे तो आप ही प्रभु हैं। जो लोग गये हैं उनमे किसी के प्रभु घर पर हैं। किसी के गुरु घर पर हैं। किसी के माता पिता घर पर हैं। मेरे तो आप ही सब कुछ हैं। पिताजी मुझे आपका दास बना गये हैं। अतः आप ही मेरे प्रभु और माता पिता हैं। अनेक प्रकार के ज्ञान का उपदेश भी अभी मिला है। अतः गुरु भी आप ही हैं। सो आप यहाँ हैं मैं कहाँ जाऊँ ?

तुम्हइ बिचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काजु मम काहा ॥
बालक ज्ञान बुद्धि बल हीना। राखहु सरन नाथ जनदीना ॥३॥

अर्थ : हे नरनाथ ! आप ही विचारकर कहिये कि सरकार को छोड़कर घर मे मेरा क्या काम है ? मैं बालक हूँ। मुझे ज्ञान बुद्धि और बल नही है। मुझे दीन जन जानकर शरण मे रख लीजिये।

व्याख्या : मैं बालक हूँ। अल्प वयस्क हूँ। मुझे संसार का अनुभव नही है। मैं ज्ञानी भी नही हूँ कि मानापमान को समान समझूँ। बुद्धि बल भी नही। अपना

भी कोई नही। राज्य सुग्रीव का है सो बाप का वैरी है। माँ भी उसी के हाथ मे है। आप ही विचार करिये कि वहाँ मेरा कौन है? वहाँ मेरी कुशल कैसे हो सकती है? मै दीन हूँ। मुझे कही ठिकाना नही। ऐसा जानकर मुझे शरण में रख लीजिये।

नीच टहल गृह कै सब करिहौं। पद पंकज बिलोकि भव तरिहौं ॥
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही। अब जनि नाथ कहहु गृह जाही ॥४॥

अर्थ : मै घर की छोटी से छोटी सेवा करूँगा। और चरणकमल का दर्शन करते हुए संसार सागर से पार हो जाऊँगा। ऐसा कहकर चरण पर गिर गये कि सरकार रक्षा करें और अब घर जाने को न कहे।

व्याख्या : यदि कहा जाय कि यहाँ रहकर क्या करोगे? तो इस पर कहते हैं कि घर का झाड़ू बहारू दिया करूँगा। सरकार की सेवा करने के लिए बहुत लोग हैं। मैं तो चरण दर्शन करते करते संसार सागर के पार हो जाऊँगा। इस भाँति लोक परलोक दोनो बन जायगा। ऐसा कहकर अङ्गदजी पाहि पाहि करते हुए चरणो मे गिर गये और कहा कि अब मुझे घर जाने के लिए आज्ञा न दी जाय। आज्ञा मिलने पर मानना ही पड़ेगा। यथा : रामरजाइ मेटि मन माँही। देखा सुना कतहुँ कोउ नाही।

दो. अंगद बचन बिनीत सुनि, रघुपति करुना सींव।
प्रभु उठाइ उर लाएउ, सजल नयन राजीव ॥१८ क.

अर्थ : अङ्गद की विनीत वचन सुनकर करुणासींव रामजी प्रभु ने उठाकर हृदय से लगा लिया और सरकार के कमल ऐसी आँखो मे जल भर आया।

व्याख्या : अङ्गद पर सरकार का बड़ा प्रेम है : राज दीन्ह सुग्रीव कहँ अगद कहँ जुवराज। बड़ी आस्था है। रावण के यहाँ इन्ही को दूत बनाकर भेजा था। सो अङ्गद का ऐसा वचन सुनकर : सरकार करुणा की सीमा हैं। वालि द्वारा गोद मे डाला हुआ स्मरण करके बडी करुणा हुई। कमल ऐसे नेत्रो मे जल भर आया। पैर गिरे हुए अङ्गद को उठाकर हृदय से लगा लिया।

दो. निज उरमाल बसन मनि, बालि तनय पहिराइ।
बिदा कीन्हि भगवान तब, बहु प्रकार समुझाइ ॥१८ ख.

अर्थ : अपने गले की माला कपडा तथा मणि बालि के बेटे को पहिनाकर बहुत प्रकार से समझाकर भगवान् ने बिदा किया।

व्याख्या : सीधे सीधे प्रसाद अङ्गदजी को सरकार के हाथ से प्राप्त हो रहा है। अपने गले की माला पहना दी। कपडे पहनाये। अपने गले की मणि पहना दी। अङ्गद का बड़ा भारी सम्मान हुआ और बड़ी भारी रक्षा की व्यवस्था की गयी। और तब सरकार ने बहुत प्रकार से समझाया। यथा :

राज काज सब तुम करत सब बिधि तब अधिकार।
मन वच क्रम पालिय प्रजहि कीजिय राज सँभार॥

राजा द्रष्ट ह्वै रहत काज करत युवराज।
राज सँभारो आपनो होय सुखी कपिराज॥

अगद तुमहि कुदृष्टि से ताकि सकै नहि कोय।
मैं दीन्ह्यौ युवराज पद सो न अन्यथा होय॥

हेम हार बालिहि दयो रक्षा हित सुरराज।
तब हित निज उर माल मणि पहिरावत हौ आज॥

भरत अनुज सौमित्रि समेता। पठवन चले भगत कृत चेता॥
अंगद हृदय प्रेमु नहि थोरा। फिरि फिरि चितव राम की ओरा॥१॥

अर्थ : भक्तो पर ध्यान रखनेवाले ' रामजी भरत शत्रुघ्न और लक्ष्मणजी के साथ पहुँचाने चले। अङ्गद के हृदय मे थोडा प्रेम नही है। घूम घूमकर रामजी की ओर देखते जा रहे हैं।

व्याख्या : भरत और उनके अनुज से शत्रुघ्न को बोध है अथवा अनुज से लक्ष्मण और सौमित्रि से शत्रुघ्न का बोध है। यहाँ पर स्पष्ट है कि भक्त कृत चेता से भगवान् का अभिप्राय है। अतएव भगतकृत चेता शब्द यहाँ रामजी पर ही घटाना उचित है। भक्त का कृत उन्ही पर है। अत भक्त के कृत का ध्यान करके स्वयं पहुँचाने चले।

थोडा प्रेम होने से बिदाई के बाद सीधे घर का रास्ता पकडते। परन्तु अङ्गदजी घूम घूमकर सरकार की ओर देखते हैं। दर्शन की प्यास जाती नही। बड़ा भारी सभा भवन है। इसके बाहर जाने के लिए कुछ दूर चलना पड़ा है।

बार बार कर दंड प्रनामा। मन अस रहन कहहि मोहि रामा॥
राम बिलोकनि बोलनि चलनी। सुमिरि सुमिरि सोचत हँसि मिलनी॥२॥

अर्थ : बार बार दण्डवत् प्रणाम करते हैं। मन मे यह भाव है कि रामजी हमे रहने के लिए कह दें। रामजी का देखना बोलना चलना और हँसकर मिलना स्मरण करके अङ्गदजी सोचते हैं।

व्याख्या : जब जब घूमकर देखते हैं तब तब दण्डवत् प्रणाम करते हैं। मन के भीतर यह आशा लगाये हुए हैं कि इस बार रामजी कह देंगे कि अच्छा तुम रह जाओ। सरकार का सन्निधान अङ्गदजी से छोड़ते नही बनता। सभी देखते हैं, बोलते हैं, चलते हैं, मिलते हैं, पर रामजी का देखना बोलना चलना और मिलना कुछ दूसरा ही है। इनकी एक एक क्रिया मे अङ्गविक्षेप में शोभा है। अलौकिकता है : वियुक्त होने के समय सब स्मरण हो रही हैं। सोचते हैं कि अब ऐसी शोभाओ का दर्शन कहाँ मिलेगा।

प्रभु रुख देखि बिनय बहु भाखी। चलेउ हृदय पद पकज राखी ॥
अति आदर सब करि पहुँचाए। भाइन्ह सहित भरत पुनि आए ॥३॥

अर्थ सरकार का रुख देखकर बहुत कुछ विनय किया और चरण कमल को हृदय मे रखकर चले। अत्यन्त आदर के साथ सब बन्दरो को पहुँचाकर भाइयो के साथ भरतजी लौटकर आगये।

व्याख्या अङ्गदजी ने सरकार का रुख देख लिया कि नही रक्खेंगे तब ठहर गये। बहुत कुछ विनती की। यह विनती कृपा बनाये रखने के लिए है। इससे स्पष्ट है कि रामजी पहुँचाने चल रहे हैं। सब लोग रामजी के रूप को हृदय मे रखकर चले। पर अङ्गदजी चरण कमल को हृदय मे रखकर चले। सरकार वही से लौट गये। पर भरतजी छोटे भाइयो के साथ सब बन्दरो को राजधानी की सीमा तक पहुँचाया और तब लौट आये।

तब सुग्रीव चरन गहि नाना। भाँति बिनय कीन्हे हनुमाना ॥
दिन दस करि रघुपति पद सेवा। पुनि तब चरन देखिहौ देवा ॥४॥

अर्थ तब सुग्रीव का चरण पकडकर हनुमान्‌जी ने नाना प्रकार से विनती की और कहा कि दस दिन और रामजी की सेवा करके हे देव! तब आपके चरणो का दर्शन करूँगा।

व्याख्या भरतजी के लौटने पर हनुमान्‌जी ने राजा सुग्रीव का चरण पकडा। वे बन्दरो के राजा हैं। सरकार के मित्र हैं। सूर्य के अश होने से गुरुपुत्र हैं। अत सब भाँति पूज्य हैं। अत रामजी की सेवा मे ठहर जाने के लिए इनसे छुट्टी ले रहे हैं। यहाँ दस दिन से अभिप्राय थोडे दिनो से है। सरकार की सेवा से तृप्ति नही होती। अत और ठहरना चाहते हैं। रामजी की ओर से इनकी विदाई भी नही हुई है। हनुमान्‌जी का कहना है कि थोडे दिन अयोध्या मे और ठहरकर मैं किष्किन्धा मे आ जाऊँगा।

पुन्यपुज तुम पवन कुमारा। सेवहु जाइ कृपा आगारा ॥
अस कहि कपि सब चले तुरता। अगद कहै सुनहु हनुमता ॥५॥

अर्थ हे पवनकुमार! तुम पुण्यपुज हो। जाकर कृपा निधान की सेवा करो। ऐसा कहकर बन्दर लोग तुरन्त चल पडे। पर अङ्गद ने कहा कि हनुमान्‌जी! सुनो।

व्याख्या राजा सुग्रीव ने कहा कि हनुमान्‌जी पुण्यपुञ्ज तुम्ही हो। तुम्हारी बिदाई सरकार की ओर से नही हुई। वे तुम्हे छोडना नहीं चाहते और तुम्हारा मन उन्हे छोडने को नही चाहता। अत तुम्हारी सदा के लिए छुट्टी है जाओ। कृपानिधान की सेवा करो। सुग्रीव की यह आज्ञा हुई और सब बन्दरो ने इसका अनुमोदन किया और सब तुरन्त चल पडे। पर अङ्गदजी ठहर गये। हनुमान्‌जी से कहने लगे

दो. कहेहु दंडवत प्रभु सैं, तुमहि कहौं कर जोरि।
बार बार रघुनायकहिं, सुरति करायहु मोरि ॥१९ क.

अर्थ : सरकार से मेरी दण्डवत् कहना यह मैं आप से हाथ जोड़ कर कहता हूँ और बार बार रघुनायक को मेरी याद दिलाना।

व्याख्या : अङ्गदजी कहते है कि मेरी दण्डवत् सरकार से कहना। यह परोक्ष की दण्डवत् है। प्रणाम करने में अङ्गदजी अघाते नहीं और हनुमान्‌जी से हाथ जोड़कर विनय करते हैं कि राजकार्य का भार बड़ा गुरु : भारी होता है। सरकार मुझे भूल जायँगे। सो तुम मेरी याद दिलाते रहना जिसमें सरकार की दृष्टि मुझ पर बनी रहे। जीवका निस्तार सरकार के छोह से ही सम्भव है। यथा : नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरै तुम्हारेहि छोहा।

अस कहि चलेहु बालि सुत, फिरि आएउ हनुमंत।
तासु प्रीति प्रभु मन कही, मगन भए भगवंत ॥१९ ख.
कुलिसहु[1] चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस राम कर, समुझि परै कहु काहि ॥१९ ग.

अर्थ : ऐसा कहकर बालिपुत्र अङ्गदजी चले और हनुमान्‌जी लौट आये और उनका प्रेम प्रभु से कहा तो भगवान् मग्न हो गये।

वज्र से भी कठिन और कुसुम से भी कोमल चित्त रामजी का है। हे पक्षिराट्! क्या किसी के समझ मे आ सकता है?

व्याख्या : साथी लोग आगे बढ गये। साथ जाना है। इसलिए अङ्गदजी ऐसा कहकर चल पडे। यहाँ अङ्गदजी को बालिसुत कहने से उनका बुद्धि बल गुण धाम होना कहा। अङ्गदजी की बात सुनकर हनुमान्‌जी लौट आये। कवि सरकार के साथ थे। इसलिए कहते हैं : फिरि आयेउ हनुमत। अङ्गदजी ने कहा था : बार बार रघुनायकहि सुरति कराएउ मोरि। सो हनुमान्‌जीने कार्य प्रारम्भ कर दिया। आते ही अङ्गदजी के प्रेम की कथा प्रभु को सुनायी। सरकार सुनकर प्रेम में मग्न हो गये।

सरकार के चरित्र लोकोत्तर हैं। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि यहाँ मनुष्य की गति नहीं। कहीं तो उनका चित्त वज्रसे भी कठोर और कहीं फूल से भी अधिक कोमल मालूम पड़ता है। अङ्गद का विनय सुनकर अस्मदादि का हृदय द्रवीभूत हो जाता है। परन्तु सरकार द्रवीभूत नहीं हुए। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी। अब जनि नाथ कहहु गृह जाही। आदि बहुत कुछ कहा। पर प्रभु का रुख नहीं बदला। यथा : प्रभु रुख देखि विनय बहु भाषी। चलेउ हृदय पद पंकज राखी। यहाँ वज्र से भी अधिक कठोर मालूम होता है। पर जब हनुमान्‌जी ने उनकी प्रीति

---

१. यहाँ प्रतीप : तृतीय अलंकार है।

कही तो आप प्रेम मे डूबाडूब हो गये। यहाँ कुसुम से भी अधिक कोमल मालूम होता है। अत इस लोकोत्तर चरित्र का किसी के समझ मे आ जाना ही आश्चर्य है।

पुनि कृपालु लियो बोलि निपादा। दीन्हे भूपन बसन प्रसादा ॥
जानु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू ॥१॥

अर्थ फिर कृपालु ने निपादराज को बुला भेजा। उसे प्रसाद रूप से गहने कपडे दिये। कहा कि घर जाओ मेरा स्मरण करना और मनसा वाचा कर्मणा धर्माचरण करना।

व्याख्या सखाओ की बिदाई के बाद निपादराज की बुलाहट हुई। इसकी विदाई नही हो रही है। अति सन्निकट का रहनेवाला है। इसे गहने कपडे प्रसाद रूप से मिले। सरकार कृपालु हैं। बन्दरो को कहा अब गृह जाहु सखा सब। इसी भाँति इसे भी कहते हैं। निपादराज भी छ महीने बीत गये अयोध्या से सिंगरौर न गये।

अत रामजी कहते हैं कि घर जाओ। मेरा स्मरण करना। मेरे स्मरण से ही सब कल्याण है। परन्तु मनसा वाचा कर्मणा धर्म पालन करना। राज मैत्री से प्रमाद न करना यही अनुशासन है। इस उपदेश का पालन करने से जीव कल्याणभागी होता है।

तुम मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता ॥
बचन सुनत उपजा सुख भारी। परेउ चरन भरि लोचन बारी ॥२॥

अर्थ तुम मेरे सखा हो। भरत के समान भाई हो। राजधानी मे सदा आते जाते रहना। वचन सुनते ही बडा भारी सुख हुआ। आँखो मे आँसू भरकर चरणो मे गिरा।

व्याख्या तुम सखा हो और भाइयो मे भरत के समान हो। भरत के समान ही मेरे वियोग के ताप से तप्त रहे हो। तुम तो बहुत निकट ही रहते हो। सदा यहाँ आते जाते रहना। जब इच्छा हो चल आना और जब इच्छा हो चल जाना। निपादराज को सरकार का वचन सुनकर बडा आनन्द हुआ कि मेरी गिनती भाइयो मे हुई और भरतजी का दर्जा मिला। मेरे लिए अवारितद्वार है। आनन्द से उसे सात्त्विक भाव हुआ। प्रेमाश्रु से आँखें भर गयी और चरणो पर गिर पडा।

चरन नलिन उर धरि गृह आवा। प्रभु सुभाउ परिजनन्हि सुनावा ॥
रघुपति चरित देखि पुरबासी। पुनि पुनि कहहि धन्य सुखरासी ॥३॥

अर्थ चरण कमल को हृदय मे धारण करके घर आया और सरकार का स्वभाव अपने कुटुम्बियो को सुनाया। रामजी के चरित को देखकर पुरवासी बार बार कहते हैं कि सुख की राशि रामजी धन्य हैं।

व्याख्या : अङ्गदजी की भाँति इसने भी प्रभु के चरण को हृदय मे धारण किया और घर आया। सरकार के स्वभाव पर इतना अनुरक्त है कि कुटुम्बियो को इकट्ठा करके प्रभु के स्वभाव का वर्णन किया। पुरवासी लोग सरकार का चरित्र देखते हैं कि बन्दरो की विदाई हो रही है। निषाद की बिदाई हो रही है। अत: सब कहते हैं कि सरकार धन्य है : धन्य है। सुख की राशि हैं। छोटो को इतनी बडाई देते हैं।

राम राज बैठे त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका ॥
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई ॥४॥

अर्थ : रामजी राज्य पर बैठे। तीनो लोक हर्षित हुए और सब शोक गया। कोई किसी से बैर नही करता था। रामजी के प्रताप से विषमता जाती रही।

व्याख्या : सरकार के सिंहासनारूढ होते ही तीनो लोक आनन्दित हो उठा। क्योंकि सबका शोक दूर हो गया। कालस्य कारण राजा कालो वा राजकारणम्। इति ते सशयो मा भूद् राजा कालस्य कारणम्। काल का कारण राजा है या राजा का काल कारण है इस विषय मे सन्देह नही करना चाहिए। राजा ही काल का कारण है। राजा के बुरे भले होने के साथ काल पलटा खा जाता है। अत: त्रिलोक हर्षित हुआ। उसका शोक जाता रहा। अर्थात् भूमा आनन्द मे निमग्न हुआ।

उनकी विषमता रामजी के प्रताप से नष्ट हो गयी। अतः सब मे समता आगयी। अतः किसी से कोई बैर नही करता था। विषमता ही शोक का मूल है। उसके नष्ट होते ही शोक नष्ट हो गया।

८४. पुरवर्णन तथा . अनेक : नृपनीतिप्रसङ्ग

दो. बरनाश्रम निज निज धरम, निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहि भय सोक न रोग ॥२०॥

अर्थ : सब लोग अपने वर्ण और अपने आश्रम धर्म मे लगे हुए वेद के अनुसार आचरण करते थे। सदा सुख ही पाते थे। उन्हे भय शोक और रोग नही होता था।

व्याख्या : वैषम्य सृष्टि है और साम्य ही प्रलय है। जबतक ससार को बना रहना है तबतक उसमे ऊँचा नीचा का व्यवहार बना हो रहेगा। इसे कोई मिटा नही सकता। अतः भगवान् ने उच्च नीच भेदवाली सृष्टि रचकर : उनके हिताहित के परिज्ञान के लिए वेदो का निर्माण किया। जिस भाँति पिता पुत्रो को उत्पन्न करके : उन्हें कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान कराने के लिए शिक्षा की व्यवस्था करता है। आज भी वेद को छोडकर कोई आदि उपदेष्टा उपलब्ध नही है। अत: वेदादि शास्त्र के अनुसरण से ही ससार को सुख होगा। उसके अनादर से भय शोक और रोग अवश्यम्भावी है। जिस मात्रा से जो जाने या बिना जाने वेदादि शास्त्रो का अनुसरण करता है या विरोध करता है उसी मात्रा से वह सुखी या दु:खी होता है।

भगवान् शाण्डिल्य ने यही बात 'निर्मायोच्चावच श्रुतीश्च निर्ममे पितृवत्। इस सूत्र मे कही है।

[1]वेद मे जिसकी विधि है उसे धर्म और जिसका निषेध है उसे अधर्म कहते हैं। उस धर्म के भी दो भेद हैं एक [2]सनातन धर्म और वर्णाश्रम धर्म। सनातन धर्म मनुष्य मात्र के लिए है। वही मनुष्य मे मनुष्यता है। इसका वर्णन स्वय नारायण ने अपने मुख से किया है। सत्य, दया, तप, शौच, तितिक्षा, विचार, शम, दम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सीधापन, सन्तोष, समदृष्टि, सेवा, ग्राम्य सुखो से क्रमश उपरम, मनुष्यो के विपरीत भावना पर विचार, मौन, आत्मविचार, यथायोग्य प्राणियो मे अन्नादि का विभाग, उनमे आत्म देवता बुद्धि और विशेषत मनुष्यो मे भगवान् का श्रवण, कीर्तन, स्मरण बडो के पथ का अनुसरण, पूजा, नमस्कार, दास्य, सखा, आत्मसमर्पण, यही तीस लक्षणवाला धर्म सभी मनुष्यो के लिए है। इसी से सर्वात्मा भगवान् तुष्ट होते हैं। ये लक्षण जितने ही अधिक मनुष्य मे मिलें उतनी ही अधिक मनुष्यता उसमे समझनी चाहिए। कोई भी इसकी सचाई परख सकता है। यही सनातन धर्म है। आजकल सनातन धर्म और वर्णाश्रम धर्म शब्द के प्रयोग मे बडा गोलमाल हो रहा है।

सनातन धर्म मनुष्य मात्र के लिए है और वर्णाश्रम धर्म केवल उनके लिए है जिनके सस्कार अविच्छिन्न चले आते हैं तथा जिनके जन्म और कर्म शुद्ध हैं। यथा सस्कारा यत्राविच्छिता स द्विजोऽजो जगादयम्। इज्याध्ययनदानानि विहितानि द्विजन्मनाम्। जन्मकर्मावदाताना क्रियाश्चाश्रमचोदिता। भाग० स्कन्ध ७ अ० ११ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ये ही चार वर्ण हैं और ब्रह्मचर्य गार्हस्थ्य वानप्रस्थ और सन्यास ये ही चार आश्रम हैं। ये अपने अपने कर्म मे अभिरत होने से सिद्धि को प्राप्त होते हैं। दूसरे के धर्म मे अभिरत होना पाप है। यथा 'श्रेयान् स्वधर्मो विगुण परधर्मो भयावह। अपना गुणहीन धर्म भी अच्छा है। क्योकि पर धर्म भयावह होता है। राजा दण्डधरो गुरु है। उसका कर्तव्य है कि किसी को अपने धर्म से डिगने न दें। श्रीरामचन्द्र ने ऐसा किया। अत उनके राज्य मे सुख ही सुख रहा। किसी को भय शोक या रोग नही होने पाया। वर्णाश्रम धर्म मे निरत लोग वेद पथ से चलते थे। अर्थात् त्रिशल्लक्षणवाले सनातन धम का पालन करते थे।

---

१ चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म।

२ वक्ष्ये सनातन धर्म नारायणमुखाच्छ्रुतम् सत्य दया तप शौचम् तितिक्षेक्षाशमो दम। अहिंसा ब्रह्मचर्यञ्चत्याग स्वाध्याय आर्जवम्। सन्तोष समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरम शनै। नृणा विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम्। अन्नाद्यादे सविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हत। तेष्वात्म देवताबुद्धि सुतरा नृपु पाण्डव। श्रवण कीर्तन चास्य स्मरण महता गते। सेवेज्यावनतिर्दास्य सख्यमात्मसमर्पणम्। नृणामयम् परो धर्म सर्वेषा समुदाहृत। त्रिशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति। भा० ७ स्क० ११ अ०।

दैहिक दैविक भौतिक तापा । रामराज नहि काहुहि ब्यापा ॥
सब नर करहिं परसपर प्रीती । चलहिं स्वधर्म निरत स्रुति नीती ॥१॥

अर्थ राम राज्य मे आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक ताप किसी को नही व्यापा। सब लोग एक दूसरे से प्रीति करते थे। वेद की रीति से अपने धर्मानुसार चलते थे।

व्याख्या ऊपर कह आये हैं बैर न कर काहू सन कोई। परन्तु राम राज्य मे इतना ही नही था। इतना तो उपेक्षा से भी होता है। यहाँ तो सब आपस मे प्रेम करते थे। अत दैहिक ताप नही होता था राग द्वेष से धातुवैषम्य होकर ही दैहिक ताप होता है और स्वधर्म निरत होकर यज्ञ यागादिक करने से दैविक ताप नही होता था। यथा इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविता। यज्ञ से पूजित होकर देवता लोग इष्ट भोग प्रदान करते हैं। श्रुति रीति मे निरत होने से भौतिक ताप नहीं होता। पञ्चभूत अधर्माचरण के न होने से दूषित नही होते। अत भौतिक ताप नही होता था। अथवा अधर्माचरण के अभाव से उसका फल दु ख नही होता था।

चारिहु चरन धरम जग माँही । पूरि रहा सपनेहु अघ नाँही ॥
राम भगति रत नर अरु नारी । सकल परम गति के अधिकारी ॥२॥

अर्थ ससार मे धर्म चारो चरणो से पूर्ण हो रहा था। पाप का सपना भी नही था। स्त्री पुरुष सब राम भक्ति मे लगे हुए थे। सब परमगति के अधिकारी थे।

व्याख्या धर्म के चार चरण कहे गये हैं। तप शौच दया सत्यम् इति पादाः प्रकीर्तिता। एक तप दूसरा शौच तीसरी दया और चौथा सत्य। युग के ह्रास के साथ धर्म का ह्रास भी होता है। रामावतार त्रेता के अन्त म होता है। अत नियम यह है कि उस समय एक चरण अर्थात् तप का ह्रास हो जाय। परन्तु ऐसा नही हुआ। क्योकि राजा ही युग है। राजा हि युगम् राजा के पूर्ण धर्मात्मा होने से प्रजा आप से आप धर्मात्मा हो जाती है। पाप का सस्कार भी किसी को नही। अत किसी का पाप का सपना भी नही होता था। स्त्री और पुरुष सब रामजी की भक्ति मे रत थे। इसलिए मोक्ष के अधिकारी हो गये थे। मोक्ष लते न थे। यथा सगुन उपासक मोक्ष न लही। तिन कहँ राम भगति निज देही। चारिहु चरन पूरि जग माही से कर्मकाण्ड कहा। राम भगति रत से उपासनाकाण्ड कहा और परमगति के अधिकारी से ज्ञानकाण्ड कहा।

अल्प मृत्यु नहि कवनिउ पीरा । सब सुदर सब बिरुज सरीरा ॥
नहि दरिद्र कोउ दुखी न दीना । नहि कोउ अबुध न लच्छन हीना ॥३॥

अर्थ न कोई अल्पायु होता था न किसी को कोई पीडा थी। सब सुन्दर

और सब निरोग थे। न कोई दरिद्र था न दीन था। न कोई मूर्ख था और न कोई कुलक्षण था।

व्याख्या : अल्पायु होना पीडित होना कुरूप होना रोगी होना दरिद्र होना दीन होना मूर्ख होना कुलक्षण होना : यह सब पाप का फल है। सो ये सब कोई बातें अवधवासियो मे दिखाई नही पडती थी। भाव यह कि सब पुण्यात्माओं ने ही उस समय अवध मे जन्म ग्रहण किया था और पुण्याचरण करते थे। अतः दु खी होने का कोई योग ही नही था। जाम्बवानजी ने जो कहा वही न्याय यहाँ समझ लेना चाहिए : हम सब सेवक अति बड़ भागी। सतत सगुन ब्रह्म अनुरागी। निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गोद्विज लागि। सगुन उपासक सग तहँ रहहि मोक्ष सुख त्यागि।

सब निर्दभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥
सब गुनज्ञ पडित सब ज्ञानी। सब कृतज्ञ नहि कपट सयानी॥४॥

अर्थ : सब दम्भ से रहित धर्म मे रत और दयावान थे। सब स्त्री और पुरुष चतुर और गुणी थे। सब गुणो के जाननेवाले पण्डित और ज्ञानी थे। सब उपकार माननेवाले थे। कपट की चतुरता किसी मे नही थी।

व्याख्या : अब लोगो के वर्तमान जन्म का पुण्य कहते है। दम्भ धर्म का नाशक है। यथा : करउँ जो कछु धरउँ रचि पचि सुकृत सिला बटोरि। पैठि उर बरबस कृपानिधि दभ लेत अँजोरि। स्त्री पुरुष सब लोग दम्भ रहित होकर धर्माचरण करते थे। वे पुण्यात्मा लोक द्वय के साधन मे चतुर थे। गुण दूषक नही थे। गुणो के जाननेवाले थे। गतासूनगतासूश्च नानुशोचन्ति पण्डिता.। अथवा क्रियावान् स च पण्डितः। जो मर गये और जो नही मरे हैं उनका सोच न करनेवाले को पण्डित कहते हैं। अथवा क्रियावान् को पण्डित कहते हैं। जो सब मे ब्रह्म को समान देखते हैं उन्हे ज्ञानी कहते है। कृतेपु प्रतिकर्तव्य ह्येष धर्म सनातन.। जो उपकार करे उसका प्रत्युपकार करना सनातन धर्म है। ये सब गुण उन लोगो मे थे। कपट करने मे चतुर कोई नही था। अल्प मृत्यु नहि कवनिउ पीरा से कालकृत दु ख का न होना कहा। नहि दरिद्र कोउ दुखी न दोना से कर्म कृत दु ख न होना कहा। सब निर्दम्भ धर्मरत पुनी से स्वभाव कृत दु ख का न होना कहा। तथा ' सब गुनज्ञ पडित सब ज्ञानी से गुण कृत दु ख का न होना कहा।

दो. रामराज नभगेस सुनु, सचराचर जग माहि।
काल कर्म सुभाव गुन, कृत दुख काहुहि नाहि॥२१॥

अर्थ : हे पक्षिराट् सुनो ! रामजी के राज्य मे चर अचर सहित जगत् मैं काल कर्म गुण और स्वभाव का किया हुआ दु'ख किसी को नही था।

व्याख्या ' आकर चारि लाख चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी। फिरत सदा माया कर फेरा। काल कर्म स्वभाव गुन घेरा। काल कर्म स्वभाव और

गुण के घेरे मे तो लोग थे। पर उनके होने से जो दु ख होता है वह किसी को नही था। यथा : उमा अवध बासी नर नारि कृतारथ रूप। ब्रह्म सच्चिदानद घन रघुनायक जहँ भूप।

भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला ॥
भुअन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू ॥१॥

अर्थ : सातो समुद्र मेखला हैं जिसकी ऐसी भूमि के एक राजा कोशल के रघुपति रामजी थे। जिसके एक एक रोम मे अनेक भुवन हैं। उसके लिए यह प्रभुता कुछ बड़ी नही है।

व्याख्या : श्रीरामजी का शासन केवल जम्बूद्वीप पर ही नही था। अन्य छ: द्वीप भी उन्ही के शासन मे थे। जम्बूद्वीप के चारो ओर लवण समुद्र है। उसी का पूरा पूरा पता हम लोगो को नही है। हम लोग जम्बूद्वीप के कुछ अंश को ही पृथिवी जानते है। शेष छः द्वीप पृथिवी के खण्ड होते हुए भी दिव्य हैं। वे स्थूल दृष्टि से देखे नही जा सकते। सूर्य मे सयम करने से ही सम्पूर्ण भुवन का ज्ञान होता है। यथा : सूर्ये सयमात् भुवनज्ञानम् : यो. सू. : शेष छ समुद्र और द्वीप स्थूल दृष्टि से देखे नही जाते। सो सरकार सातो द्वीप के सम्राट् थे।

सरकार के अखण्ड रूप का वर्णन करते हुए कहा गया है : दिखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखड। रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मड। ऐसे प्रभु को एक ब्रह्माण्ड का अधिपति बतलाना तो उसकी महिमा को घटाना है। इस प्रकार बड़ाई यदि जीव के लिए करते तो उसकी महिमा का बढाना कहा जा सकता है।

सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी ॥
सो महिमा खगेस जिन जानी। फिर एहि चरित तिनहु रति मानी ॥२॥

अर्थ : सरकार की उस महिमा पर ध्यान देने से ऐसे वर्णन करने मे तो बड़ी हीनता है। पर हे पक्षिराट्! जिसने वह महिमा जान रक्खी है वह भी इस चरित्र मे प्रेम करता है।

व्याख्या : सरकार की उस महिमा पर ध्यान देने से निस्सन्देह ऐसे वर्णन मे उनको हीनता है। जैसे किसी सम्राट् को कोई ग्रामपति कहकर वर्णन करे तो सम्राट् की उसमे हीनता होगी। परन्तु कवि कहते हैं कि मैं तो ऐश्वर्य वर्णन करने नही चला हूँ। मैं तो माधुर्य वर्णन करनेवाला हूँ। पर माधुर्य मे ऐसा ऐश्वर्य लक्षित होता है जिसका वर्णन किया गया है।

भुसुण्डजी कहते हैं कि उस महिमा के जानकर भी तो इस चरित्र मे प्रेम करते हैं। भाव यह है कि जो सम्राट् की महिमा को जानता है उसी को सम्राट् के साधारण मनुष्यों मे मिलकर व्यवहार करने के गौरव का पता चलेगा। अतः कहा गया है : जीवन्मुक्त ब्रह्म पर चरित सुनहि तजि ध्यान। जे हरि कथा न करहि रति तिनके हिय पाखान।

सोउ जानेकर फल येह लीला । कहहिं महा मुनिबर दमसीला ॥
राम राज कर सुख संपदा । बरनि न सकै फनीस सारदा ॥३॥

अर्थ : उस जानने का फल यह लीला है। इस बात को दमशील महामुनि कहते हैं। रामराज्य के सुख सम्पदा को शेष शारदा नहीं कह सकते।

व्याख्या : उस महिमा के जाननेवालो के भी इस चरित मे रति मानने का कारण देते हैं कि यह लीला उस महिमा के जानने का फल है। उस महिमा के जाननेवाले ब्रह्मादिक की प्रार्थना पर ही सरकार ने अवतार ग्रहण करके यह लीला की। जिस महिमा को वे जानते थे उस महिमावाली मूर्ति से काम न चला। जिस भाँति वृक्ष से काम नही चलता उसके फल से काम चलता है उसी भाँति भुवन अनेक रोम प्रति जासू से काम न चला। उन्होने राम रूप से अवतीर्ण होकर लीला की। तब ससार कृतकृत्य हो सका। अतः तब तब कथा मुनी सन्ह गाई। जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।

रामराज्य के सुख सम्पदा का वर्णन करते हुए गोस्वामीजी ने कहा है कि कामधुक् महि कामतरु तरु उपल मनिगन लाल : हो गये। फिर भी कहते हैं कि उसे स्वर्ग की वक्ता सरस्वती तथा पाताल लोक के वक्ता शेष भी वर्णन नही कर सकते। मनुष्य लोक के वक्ता क्या कह सकेंगे। भाव यह कि माधुर्य मे भी अपूर्व ऐश्वर्य है।

सब उदार सब पर उपकारी । बिप्र चरन सेवक नरनारी ॥
एक नारि ब्रतरत सब झारी । ते मन बच क्रम पति हितकारी ॥४॥

अर्थ : सब लोग उदार थे सब पर उपकारी थे। स्त्री पुरुष ब्राह्मण के चरणो के सेवक थे। सब एक नारीव्रत थे और सब नारी मनसा वाचा कर्मण पति की हितकारिणी थी।

व्याख्या : इतनी सम्पदा थी और उसे लोग सार्थक करते थे। क्योंकि सब उदार और परोपकारी थे। उनकी सम्पत्ति का विनियोग दान मे होता था। यथा : सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। और दूसरी बात यह थी कि ब्राह्मण के चरणो के सेवक स्त्री पुरुष सब थे। पुण्य एक जग महँ नहि दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा। यथा राजा तथा प्रजा। सरकार एक नारीव्रत थे। अत. सम्पूर्ण प्रजा एक नारीव्रत हो गयी। स्त्रियाँ सब पतिव्रता थी। यथा : एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा। एव सारी प्रजा पुण्यवान् थी।

दो. दंड[1] जतिन्हकर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस, रामचन्द्र कें राज ॥२२॥

---

१ यहाँ परिसख्या अलकार है।

अर्थ : यतियो के हाथ मे दण्ड था। नर्तक नृत्य समाज मे ही भेद था तथा जीतने की वस्तु केवल मन था। ऐसा रामराज्य मे सुना जाता है।

व्याख्या : कवि कहते हैं कि रामराज्य के विषय मे सुना जाता है कि उसमे दण्ड का व्यवहार ही नही था। क्योंकि कोई अपराधी ही नही था। दण्ड नामक वस्तु सन्यासियो के हाथ मे था कि अमुक एकदण्डी हैं और अमुक त्रिदण्डी हैं। भेद बुद्धि नर्तक नृत्य समाज मे ही थी। यहाँ सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेद मे ही पण्डिताई है। जीतने के लिए कोई शत्रु नही था। केवल मन के जीतने की ही वहाँ चर्चा थी।

फूलहि फिरहि सदा तरु कानन। रहहिं एक सग गज पचानन ॥
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परसपर प्रीति बढाई ॥२॥

अर्थ : वन के वृक्ष सदा फूलते फलते थे। हाथी और सिंह एक साथ रहते थे। पशु पक्षी स्वाभाविक वैर भूलकर सबो ने आपस मे प्रीति बढा ली थी।

व्याख्या : अब वन की समृद्धि कहते हैं। पहिले सरकार जहाँ जहाँ निवास करते थे वहाँ वन के पेड कालगति का परित्याग करके फलने लगते थे। यथा : सब तरु फरे राम हित लागी। रितु अरु कुरितु काल गति त्यागी। अब तो सरकार सिंहासनारूढ हो गये। अत वनो के वृक्ष सदा फूलने फलने लगे। धर्म राज्य मे पृथिवी कामधेनु हो जाती है। खग और मृग स्वाभाविक वैर भूल गये। जैसे काक और उलूक मे सहज वैर है। अश्व और महिष मे सहज वैर है। इन सबो ने आपस मे प्रेम कर लिया। इसी भाँति हाथी और सिंह एक साथ रहने लगे। जिस वन मे सिंह आजाता है उस वन को हाथी छोड देते हैं। सो एक साथ रहने लगे। शङ्का उठती है कि तब सिंह क्या घास खाते थे? उत्तर दिया जा सकता है कि दूध पीते थे।

कूजहि खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं वन करहि अनदा ॥
सीतल सुरभि पवन वह मन्दा। गुजत अलि लै चलि मकरदा ॥३॥

अर्थ पक्षी कलरव करते थे। मृगो के समूह वनो मे निर्भय चरते थे और आनन्द करते थे। शीतल मन्द सुगन्ध वायु बहती थी और भौंरे फूलो का रस लेकर गुञ्जार करते चलते थे।

व्याख्या . सरस वन मे ही पक्षी और मृग रहते हैं। पर ये सदा सशङ्क रहते हैं। कहा है कि सहवासी काचो गिलैं पुरजन पाक प्रवीन। कालछेप केहि मिलि करहिं तुलसी खग मृग मीन। अब किसी को किसी से भय नही रह गया। अत पक्षी चहचहा रहे हैं। मृग वन मे कलोल करते हैं। किसी को किसी से भय नही है। वन का हिम आतप वात दुसह होता है। परन्तु रामराज्य मे उसका वहना बन्द हो गया। शीतल मन्द सुगन्ध पवन बहता है। भौंरे स्वय तो तृप्त हो गये। तत्पश्चात् मकरन्द लेकर इकट्ठा करने के लिए आनन्द से गुञ्जार करते चलते थे।

लता बिटप मांगे मधु चवही । मन भावतो धेनु पय स्त्रवही ॥
ससि संपन्न सदा रह धरनी । त्रेता भै सतजुग कै करनी ॥४॥

अर्थ : लता और विटप मांगने से मधु शहद गिराते थे । और जितना चाहे उतना दूध गाय देती थी । पृथिवी सदा धान्य से पूर्ण रहती थी । त्रेता में सत्ययुग का हाल हो गया ।

व्याख्या : जो सिद्धियाँ मधु विद्या से होती थी वे आप से आप होने लगी । वृक्ष प्रार्थना सुनते थे मांगने पर यथेप्सित मधु गिरा देते थे और गाय से जितने दूध की आवश्यकता होती थी दूध लेते थे । पृथिवी कभी धान्य से खाली नही रहती थी । यह सब सत्ययुग मे होता था । एक पाद का ह्रास होने से त्रेता में यह बात नही होती थी । अत. चारो चरण धर्म के होने से त्रेता मे सत्यगुण आगया । इसलिए कहते हैं : राजा हि युगमुच्यते ।

प्रकटी गिरिन्ह बिबिध मनि खानी । जगदातमा भूप जग जानी ॥
सरिता सकल बहहिं बरबारी । सीतल अमल स्वादु सुख कारी ॥५॥

अर्थ : जगदात्मा को जगत् का राजा जानकर पर्वतो ने अनेक प्रकार की खानें प्रकट करदी । नदियाँ उत्तम जल बहने लगी । जो शीतल निर्मल स्वादिष्ट और सुखकारी था ।

व्याख्या : पर्वतो मे से आप से आप नाना की मणियो की खानें प्रकट होने लगी । पर्वतो की ओर से यह सेवा सरकार की होने लगी । खानें राजा की सम्पत्ति मानी जाती हैं । जगदात्मा ही जब राजा है तो उन्ही की सब वस्तुएँ हैं । यह जानकर 'त्वदीय वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये : इसी न्याय से पर्वत खानो को प्रकट करने लगे ।

नदियो के जल मे भेद होता है किसी का जल उत्तम होता है किसी का नही । शीतल निर्मल स्वादिष्ट और सुखकारी होना ही जल की श्रेष्ठता है । सो ये गुण सभी नदियो के जलो मे पाया जाने लगा । यह नदियो की सरकार के प्रति सेवा है । भावार्थ यह कि प्रकृति की कल्याणवहा प्रवृत्ति हो गयी ।

सागर निज मरजादा रहही । डारहिं रतन तटन्हि नर लहही ॥
सरसिज संकुल सकल तडागा । अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा ॥६॥

अर्थ : समुद्र अपनी मर्यादा मे रहने लगे । वे किनारो पर रत्न फेंक देते थे जो लोगो को मिलते थे । दशो दिशाओ के विभाग अत्यन्त प्रसन्न थे ।

व्याख्या : समुद्र के मर्यादा त्याग से खण्ड प्रलय हो जाता है सो समुद्र अपनी मर्यादा का कभी अतिक्रमण नही करते थे । उनका नाम ही रत्नाकर है । आजकल जिस भाँति समुद्र के ज्वारभाटा मे जब पानी घटता बढता है तो अगणित घोंघे,

सीपियाँ और शङ्ख तट पर आजाते हैं। उस समय उसी भाँति रत्न तट पर आजाते थे। जो लोगो को अनायास ही प्राप्त होते थे।

जितने तालाब थे सब कमलो से सुशोभित थे। तालाब की शोभा कमलो से ही होती है। वायु की मलिनता से ही दिशा के विभाग स्पष्ट नही मालूम होते। जब वायु शुद्ध रहती है तो दसो दिशायें स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं।

दो. बिधु महि पूर मयूखन्हि, रबि तप जेतनहि काज।
मागें बारिद देहिं जल, रामचंद्र कें राज ॥२३॥

अर्थ : चन्द्रमा पृथ्वी को अपने किरणो से आप्लावित करते थे। और सूर्य भी आवश्यकतानुसार ही तपते थे। रामचन्द्र के राज मे मांगने से मेघ वर्षा करते थे।

व्याख्या : सारा संसार सरस हो उठा। सुधाकर सुधा से पृथिवी को पूर्ण करते थे। सूर्यनारायण भी पूषण होकर पोषण करते थे. शोषण नही आवश्यकतानुसार ही तपते थे। अतिवृष्टि अनावृष्टि का नाम नही। जब लोग जल माँगते थे तब वर्षा होती थी : चारो चरण से धर्म के वर्ते जाने से सारी प्रकृति अनुकूल हो गयी। पञ्च महाभूत की प्रवृत्ति सुखमय हो गयी : पृथिवी यथा : ससि सम्पन्न सदा रह धरनी। इत्यादि। जल यथा : सरिता सकल बहहिं बरबारी। इत्यादि। तेज यथा : रबि तप जेतनहिं काज। वायु यथा : सीतल सुरभि पवन बह मदा। आकाश यथा : अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा।

कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहुँ दीन्हे॥
स्रुतिपथ पालक धर्म धुरंधर। गुनातीत अरु भोग पुरंदर ॥१॥

अर्थ : सरकार ने करोडो अश्वमेध किये। ब्राह्मणों को अनेक दान दिये। सरकार वेदमाग के पालन करनेवाले धर्म की धुरी धारण करनेवाले गुणो से परे और भोग में तो साक्षात् इन्द्र हैं।

व्याख्या : सरकार ने करोडों अश्वमेध यज्ञ किये। अश्वमेध पुण्य की अवधि है। अश्वमेध यज्ञ मे साल भर तो घोड़ा ही घूमता है। फिर करोडों अश्वमेध कैसे सम्भव है ? यह शङ्का उठ सकती है। एक अश्वमेध करके जो दक्षिणा ब्राह्मणो को दी जाती है उसको जितना गुणा अधिक करके दिया जाता है उतने अश्वमेध का फल होता है। अतः करोड़ो अश्वमेध करना असम्भव नही था। भरतजी की सम्मति न होने से राजसूय नही किया। बहिर्वेदी दान भी बहुत किया। सरकार ने वेदमार्ग से सबको चलाया अतः उन्हें श्रुतिपथ पालक कहते हैं और स्वयं धर्म का कभी परित्याग नही किया इसलिए धर्मधुरन्धर कहते हैं। भोग मे इन्द्र के समान होने पर भी सदा गुणातीतावस्था मे ही रहे। ९९ राम तो रामावतार मे ही हुए। सौवाँ रास कृष्णावतार मे किया। यह सब राम रहस्य के अन्तर्गत है।

पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभाखानि सुसील विनीता ॥
जानति कृपासिंधु प्रभुताई। सेवति चरनकमल मनु लाई ॥२॥

अर्थ : शोभा की खानि सुशील और विनीत सीताजी सदा पति के अनुकूल रहती थी। कृपासिन्धु की प्रभुताई जानती थी। मन लगाकर चरण कमल की सेवा करती थी।

व्याख्या : राज्य का हाल कहकर राजा का हाल कहा। अब महारानी का हाल कहते हैं कि महारानी सीताजी सदा पति के अनुकूल रहती थी। अपने धर्म पर दृढ थी। भगवती शोभा की खानि हैं। जासु अस उपर्जाहं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी। वय से शोभा मे अन्तर नही आता। क्योकि शोभा खानि हैं। सम्राज्ञी होने से शील और विनय मे अन्त नही। जैसा पहिले थी वैसा ही पट्टाभिषिक्ता महिषी होने पर भी बनी हैं। शील और विनय मे कोई अन्तर नही हुआ।

सरकार की माधुर्य लीला मे उन्हे ऐश्वर्य का विस्मरण नही है। अत. उनकी कृपा और प्रभुता दोनो को जानती हैं। अत मन लगाकर चरण कमल की सेवा करती हैं। चरणकमल की सेवा की पूरी अधिकारिणी जगदम्बा ही हैं। यथा : जानकी करसरोजलालितौ।

यद्यपि गृह सेवक सेवकिनी। विपुल सकल सेवाबिधि गुनी ॥
निजकर गृह परिचर्या करई। रामचन्द्र आयसु अनुसरई ॥३॥

अर्थ यद्यपि घर मे सेवक और दासियाँ बहुत थी और वे सब सेवाविधि की जानकर थी। फिर भी सीताजी घर का कार्य स्वय करती थी। और रामजी की आज्ञा का पालन करती थी।

व्याख्या सम्राट् का महल है। दास दासियो का घाटा नही है और यह भी नही कि वे सेवा विधि से अनभिज्ञ हो। फिर भी स्त्री धर्म को देखते हुए भगवती अपने हाथो से घर का कार्य करती थी। स्त्रियो को पाक बनाने से अग्निहोत्र का फल होता है। इसी भाँति गृह मार्जनादि के अनेक फल धर्मशास्त्र बतलाते हैं। अत' गृह कार्य करना स्त्रियो का धर्म है। इसे दूसरे पर नही छोडना चाहिए। सो जगदम्बा घर का कार्य स्वय करती थी और सरकार का आज्ञापालन करती थी।

जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवा बिधि जानइ ॥
कौसल्यादि सासु गृह माँही। सेवइ सबन्हि मान मद नाही ॥४॥
उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता। जगदम्बा संततमनिंदिता ॥५॥

अर्थ ' जिस विधि से कृपासिन्धु रामजी सुख मानते थे लक्ष्मी वही करती थो। वे सेवा की विधि जानती थी। घर मे कौसल्या आदि सास थी। सब की सेवा करती थी। उन्हे मान या मद नही था। उमा रमा और ब्रह्माणी से वन्दित जगत् जननी सदा ही अनिन्दिता हैं।

व्याख्या : सीताजी को अपना सुख सुख ही नही है। सरकार के सुख से ही वे सुखी हैं। वह सेवा को विधि जानती हैं। सेव्य के स्वभाव को पहिचानकर उसके रुख को देखकर तदनुकूल करना ही सेवा विधि है। अत' जिस प्रकार से सरकार सुखी होते थे वही सीताजी करती थी।

केवल पति ही की सेवा नही। घर मे कौसल्या आदि सास हैं। सीताजी उनकी सेवा मे भी सुख मानती थी। अपना परम कर्तव्य समझती थी। बनवास के समय इन्हे यही दु ख था कि सासो की सेवा छूटी जाती है। यथा : सेवा समय दैव वन दीन्हा। मोर मनोरथ सफल न कीन्हा। अत' उनकी सेवा करके अपना मनोरथ सफल करती थी। पट्टाभिषिक्ता महिषी होने का न मान था न मद था।

उमा रमा ब्रह्माणी इनके अश से उत्पन्न हुई हैं। अत अशी की सदा वन्दना करती हैं। महिमा इतनी अधिक है : जगत् की जननी हैं। उनको सास कौन हो सकती है यदि सेवा न करें तो भी उनकी निन्दा नही हो सकती। आदि सक्ति जेहि जग उपजाया। सो अवतरिहि मोरि यह माया।

दो. जासु कृपा कटाक्ष सुर, चाहत चितव न सोइ।
राम पदारबिंद रति, रहत सुभावहि खोइ ॥२४॥

अर्थ : जिनके कृपा कटाक्ष को देवता चाहते है और वह नही देखती। वे अपने स्वभाव को छोड़कर रामजी के चरण कमलो मे रत हैं।

व्याख्या : जगदम्बा का कृपाकटाक्ष देवता चाहते हैं। लोकपाल होने के लिए उनकी कृपाकटाक्ष के लिए वडा भारी पुण्यसमूह होना चाहिए। वह भगवती महालक्ष्मी अपने स्वाभाविक चाञ्चल्य को छोडकर रामजी के चरणविन्द की सेवा कर रही हैं। यद्यपि परम चपल श्री सतत थिर न रहति कतहूँ। हरिपद पकज पाइ अचल भइ करम बचन मनहूँ। सीता परित्याग विषयक प्रश्न ही उमा ने नही किया। अतः वह कथा मानस मे नही कही गयी। प्रश्न नही करने का कारण यह था कि उमा ने सती शरीर से परीक्षा करके देख लिया था कि वस्तुतः सीताराम इस अनादि मिथुन मे वियोग सम्भव ही नही है।

सेवहि सानुकूल सब भाई। रामचरण रति अति अधिकाई ॥
प्रभु मुख कमल बिलोकत रहही। कबहुँ कृपालु हमहि कछु कहही ॥१॥

अर्थ : सब भाई सानुकूल रहकर सेवा करते थे। रामचरण मे उनकी प्रीति अत्यन्त बढी हुई थी। सरकार के मुख कमल को देखा करते थे कि कभी मेरे लिए कोई आज्ञा हो।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी ने पहिले ही कहा था : करिहहि भाइ सकल सेवकाई। वैसा ही यहाँ हो रहा है। भय या आशा से सेवा नही करते अपने को कृतार्थ करने के लिए सेवा करते हैं। इसीलिए सानुकूल कहा। रामजी के चरणो मे उनकी प्रीति इतनी बढी चढी है कि उनकी सेवा मे ही उन्हे सुखबोध होता है।

सेवा करनेवालो का घाटा नही है। रामजी के ध्यान मे भाइयो की ही सेवा का उल्लेख है। इससे यह सिद्ध होता है कि भाई लोग सदा साथ रहते थे।

भाई लोग सदा मुँह जोहा करते थे कि कौन जाने किस समय मुझे आज्ञा देने की सरकार कृपा करें। अथवा आज्ञा पाने की उत्कण्ठा थी कि कभी कृपा करके मुझे भी किसी काम के लिए आज्ञा दें। क्योंकि आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सो ऐसी सेवा का भी अवसर प्राप्त हो। सरकार पूर्णकाम हैं। उन्हे कोई आवश्यकता नही। उनको आज्ञा देना कृपा करना है। इसीलिए यहाँ कृपाल विशेषण दिया।

राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती॥
हरषित रहहिं नगर के लोगा। करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा॥२॥

अर्थ रामजी भाइयो पर प्रीति करते थे। उन्हे अनेक प्रकार की नीति सिखलाते थे। नगर के लोग हर्षित रहते थे और सब सुरदुर्लभ भोग करते थे।

व्याख्या भाई लोग तो रामजी से प्रीति करते ही थे पर रामजी भी उनसे प्रीति करते थे। यह बात भी नही थी कि कम बोलते हो। उन्हे सदा नीति की शिक्षा दिया करते थे। नीतिशास्त्र बडा गहन है। इसकी शिक्षा की सदा आवश्यकता रहती है। यथा सचिव धर्म रुचि हरि पद प्रीति। नृप हित हेतु सिखव नित नीति। भाइयो की हित कामना से नीति की शिक्षा दिया करते थे।

महारानी का हाल कहकर भाइयो का हाल कहा। अब नगरवासियो का हाल कहते हैं कि मन कामना की पूर्ति से हर्षित रहते हैं। ये लोग पञ्चदेव की उपासना करके यही माँगते थे कि राजा राम जानकी रानी। आनद अवधि अवध रजधानी। इत्यादि। उन्हें रामजी के राज्य मे ऐसा सुखभोग मिलता था जो कि सुरपुर मे भी दुर्लभ है। यथा जे सुख सुरपुर सपनेहुँ नाही। क्योकि : रिधि सिधि सपति नदी सुहाई। उमगि अवध अबुधि कहुँ आई।

अहनिसि बिधिहि मनावत रहही। श्रीरघुबीर चरन रति चहही॥
दुइ सुत सुदर सीता जाये। लवकुस वेद पुरानन्हि गाये॥३॥

अर्थ रात दिन ब्रह्मदेव को मनाते रहते थे। उन्हे श्रीरघुवीर के चरणो मे प्रेम की चाह थी। सीताजी को दो सुन्दर बेटे हुए। जिनका नाम लव कुश वेद पुराणो मे विदित है।

व्याख्या अयोध्या के वासी सब प्रेमा भक्तिवाले हैं। उन्हे दूसरी किसी वस्तु की चाह नही है। उन्ह केवल सरकार के चरण रति की चाह है। इसलिए ब्रह्मदेव से उसी के मिलने की प्रार्थना रात दिन करते हैं। दूसरी वस्तु की चाह रहने से भक्ति की प्राप्ति भी नही होती। यथा नान्यास्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये सत्य वदामि च भवानखिलान्तरात्मा। भक्ति प्रयच्छ रघुपुगवनिर्भरा मे कामादिदोषरहित कुरु मानसञ्च।

अब अपत्य का उल्लेख करते हैं। सीताजी को दो बेटे हुए। जिनका नाम लव कुश था। सीताजाये : से बनवासावस्था में उनका जन्मा कहा। अयोध्या में जन्मोत्सव नहीं हुआ। अत: जन्मोत्सव का उल्लेख नहीं करते। उन्हे कुछ दिनों तक पिता का नाम भी नहीं मालूम था। इसलिए : सीताजाये कहते हैं। सीताजाये : से उन्हें शक्ति पुत्र कहा। उनका माहात्म्य वेद पुराणों मे वर्णित है।

दोउ बिजई बिनई गुन मंदिर। हरि प्रतिबिम्ब मनहु अति सुंदर ॥
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरें। भये रूप गुन सील घनेरे ॥४॥

अर्थ : दोनों विजयी विनयी और गुण के मन्दिर मानो भगवान् के अति सुन्दर प्रतिविम्व थे। दो दो बेटे सब भाइयो को हुए। उन्हे रूप गुण और शील भी बहुत था।

व्याख्या : लव और कुश के विजय की गाथा रामाश्वमेध प्रकरण पद्मपुराण पातालखण्ड मे हैं। इतने बड़े वीर होने पर भी वे बडे विनयी थे। भावार्थ यह कि विद्या पाकर विनययुक्त थे। विद्या से विनय और विनय से पात्रता होती है। यथा : विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्। अतः गुनमन्दिर कहा। उनका स्वरूप ठीक रामजी का सा था। इसलिए अति सुन्दर प्रतिविम्ब कहा।

भरतजी लक्ष्मणजी और शत्रुघ्न को भी दो दो बेटे हुए। इनमें भी रूप गुण और शील की कमी नहीं थी। इन लोगो का वर्णन करते हुए केशव कवि कहते हैं : लव कुश अपने भरत के नंदन पुष्कर तक्ष। लछिमन के अंगद भये चित्रकेतु रण दक्ष।

भले पुत्र शत्रुघ्न द्वै दीप जाए। सदा साधु पूरे भले भाग पाए।
सदा शत्रुहन्ता हनै शत्रु छाती। सुबाहू बड़ो दूसरो शत्रुघाती।

दो. ग्यान गिरा गोतीत अज, माया गुन मन पार।
सोइ सच्चिदानंद घन, कर नर चरित उदार ॥२५॥

अर्थ : जो ज्ञान वाणी और इन्द्रिय से परे हैं अजन्मा हैं माया मन और गुणों से अतीत हैं वे ही सच्चिदानन्द उदार नर चरित्र कर रहे हैं।

व्याख्या : जिसके लिए वेद कहते हैं कि : न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथोऽविदितादधि। उस प्रभु तक न आंख की पहुंच है न वाणी की पहुंच न मन की पहुंच है। इसलिए उसे न कोई जानता है न बतला सकता है। वही सच्चिदानन्द घन उदार नर चरित्र कर रहे हैं। अतः जो सुख सम्पत्ति का वर्णन इस प्रसङ्ग में हो रहा है उसके असम्भव होने की कल्पना नही करनी चाहिए।

प्रात काल सरऊ करि मज्जन। बैठहि सभा संग द्विज सज्जन ॥
बेद पुरान बसिष्ठ बखानहि। सुनहि राम जद्यपि सब जानहि ॥१॥

अर्थ : प्रातःकाल सरयू स्नान करके सभा में ब्राह्मणो और सज्जनो के साथ

बैठ जाते थे। वसिष्ठजी वेद और पुराण का व्याख्यान करते थे। यद्यपि जानते सब थे फिर भी रामजी सुनते थे।

व्याख्या प्रात काल सरयू मे स्नान करते थे पुण्य काल मे पुण्य तीर्थ स्नान। अवगाह् स्नान का विधान है। प्रात स्नान के अन्तर्गत नित्यकृत्य भी है। राजकार्य देखने के लिए नित्यकृत्य के बाद सभा मे आजाते थे। धर्मशास्त्र की आज्ञा है कि ब्राह्मणो और सज्जनो के साथ सभागृह मे प्रवेश करे। सभा मे किस वर्ण के कितने लोग रहे इसका भी नियम है। अत सग द्विज सज्जन कहा। जिनसे राज कार्य मे सहायता मिले।

सभा मे कोई फिरियादी नही है। कोई मुकदमा नही है। शासन की प्रशसा यही है कि न्यायालय हो पर उसमे मुकदमे न हो। बन्दीगृह हो पर उसमे बन्दी न हो। अत सभागृह मे वेद पुराण की व्याख्या हो रही है। वसिष्ठजी वक्ता हैं। रामजी श्रोता हैं। यह बात नही है कि रामजी जानते न हो। फिर भी गुरुजी का किया हुआ व्याख्यान चित्त देकर सुनते हैं। शास्त्र का व्यसन सरकार को बचपन से है। यथा वेद पुराण सुनहि मनलाई। आपु कहहि अनुजन्ह समुझाई। सरकार के नित्य प्रति वेद पुराण सुनने से प्रजा की रुचि भी वेद पुराण सुनने की होती थी। इस भाँति धर्मका स्रोत वहाँ से ही बहता था।

अनुजन्ह सजुत भोजनु करही। देखि सकल जननी सुख भरही॥
भरत शत्रुहन दोनो भाई। सहित पवन सुत उपवन जाई॥२॥

अर्थ छोटे भाइया के साथ भोजन करते हैं। देखकर सब माताएँ सुख से भर जाती हैं। भरत और शत्रुघ्न दोनो भाई हनुमान्‌जी के साथ बाग मे जाकर

व्याख्या साथ मे भोजन करना प्रेम का लक्षण है। इष्टजन के साथ भोजन करने मे आनन्द विशेष है। यथा इष्टजनै सह भुक्त भुक्तम्। जहाँ प्रीति नही वहाँ भोजन भी साथ नही होता। भोजन के समय माताएँ आजाती हैं। वे सब बेटो मे परस्पर प्रीति देखकर आनन्द से भर उठती थी। अपराह्न मे भरत शत्रुघ्न दोनो भाई हनुमान्‌जो को साथ लकर बाग म चल जाते थे। सरकार ने जो चरित्र बन मे किया वह भरत शत्रुघ्न पूरी तरह नही जानते। अत वह सब चरित्र सुनने के लिए हनुमान्‌जी को साथ ले जाते थे।

बूझहि बैठि राम गुन गाहा। कह हनुमान सुमति अवगाहा॥
सुनत विमल गुन अति सुख पावहिं। बहुरि बहुरि करि बिनय कहावहि॥३॥

अर्थ बैठकर रामजी की गुणगाथा पूछते थे और अथाह सुमतिवाले हनुमान्‌जी कहते थे। निर्मल गुणो को सुनकर अत्यन्त सुख पाते थे और बार बार विनय करके कहते थे।

व्याख्या बाग मे बैठकर दोनो भाई हनुमान्‌जी से सरकार के किष्किन्धाकाण्ड से लकाकाण्ड तक की कथा के विषय मे प्रश्न करते थे। क्योकि चरित्र के उक्त भागो

के हनुमान्‌जी प्रत्यक्ष द्रष्टा थे। हनुमान्‌जी की सुमति का थाह नही था। वे सरकार के गुणगणो के सच्चे जौहरी थे। अतः गुणो की गाथा का ठीक ठीक वर्णन करते थे। हनुमान्‌जी वक्ता और भरत शत्रुघ्न श्रोता। अवध के बाग मे भी रामचरित की कथा हो रही है।

सरकार द्वारा सुग्रीव की आर्त्ति का हरण विभीषण को राज्य प्रदानादि निर्मल गुणो को सुनकर दोनों भाइयो को अत्यन्त सुख होता था। ये लोग कथा के ऐसे रसिक थे कि हनुमान्‌जी से सुनकर तृप्त नही होते थे। वार वार उनसे विनय करके कथा कहलाते थे और श्रवण का आनन्द लूटते थे। यथा : रामचरित जे सुनत अघाही। रस विसेष जाना तिन नाही।

सबके गृह गृह होहि पुराना। रामचरित पावन विधि नाना॥
नर अरु नारि राम गुन गानहि। करहि दिवसनिसि जात न जानहि॥४॥

अर्थ : सब के यहाँ घर घर पुराण होता था। नाना प्रकार के पवित्र राम चरित्र होते थे। स्त्री पुरुष रामजी के गुणो का ही गान करते थे। वे रात दिन का बीतना नही जानते थे।

व्याख्या : तीसरे पहर पुराण सुनने की विधि है। अतः सबके घरो के पुराण की कथाएँ होती थी। सभी पुराणो मे रामचरित्र है। यथा : पावन पर्वत वेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना। अथवा भगवद् चरित्र से ही पुराण भरे पडे हैं। वे सभी रामचरित्र ही हैं। राजा तथा प्रजा का यह ज्वलन्त उदाहरण है। यथा : वेद पुराण वसिष्ठ बखानहि। सुनहि राम जद्यपि सब जानहि। अतः सबके गृह गृह होहि पुराना। पुराण के सुनने के सभी अधिकारी हैं। अतः सबके घरो मे पुराण का होना कहते हैं। धर्म के प्रचार का यह बडा भारी साधन है। महाराज ने कोई आज्ञा नही निकाली कि सब कोई पुराण सुना करें। स्वय सुनना आरम्भ कर दिया। प्रजा उनका आप से आप अनुकरण करने लगी।

प्रजा सरकार की इतनी अनुरक्त है कि दिन रात उन्ही का गुणगान करती है। अपना काम भी करते हैं और गुणगान भी हो रहा है। एव उनका ऐसा सुखमय जीवन व्यतीत हो रहा है कि उन्हे दिन रात के बीतने का भान भी नही है।

दो. अवध पुरी बासिन्ह कर, सुख सम्पदा समाज।
सहस सेष नहि कहि सकहिं, जहँ नृप राम विराज॥२६॥

अर्थ : अवधपुरी के रहनेवालो का सुख सम्पदा और समाज ऐसा था कि उसका वर्णन सहस्र शेष नहीं कर सकते। क्योकि वहाँ स्वयं राजा रामचन्द्र विराजमान थे।

व्याख्या : सरकार के सिहासनारूढ होने से तीनो लोक मे से शोक भाग गया पर अवधपुरी की बात तो कही हो नही जा सकती। सहस्र शेष नही कर सकते ऐसा कहने का तात्पर्य ही यही है। अवधपुरी तो स्वयं राजधानी ठहरी वहाँ स्वयं

सरकार विराजमान है। अतः वहाँ के सुखसम्पदा समाज का कौन वर्णन कर सकता है। सुख यथा : करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा। सम्पदा यथा : कामधुक महि कामतरु तरु उपल मनि गन लाल। समाज यथा ' वह सोभा समाज सुख कहत न बनै खगेस।

नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा॥
दिन प्रति सकल अयोध्या आवहिं। देखि नगरु बिरागु बिसरावहिं॥१॥

अर्थ : नारद आदि और सनकादि मुनीश्वर कोशलाधीश के दर्शन के लिए प्रतिदिन अयोध्या आते थे। नगर देखकर उनका विराग भूल जाता था।

व्याख्या : नारदादि देवर्षि और सनक सनन्दन सनातन सनत्कुमारादि सिद्ध सरकार के दर्शन के लिए नित्य ब्रह्मलोक से अयोध्या आते हैं। जनकजी ने कहा है : इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा। सो उन लोगो का ऐसा अनुराग बढा हुआ है कि ब्रह्मलोक से नित्य सरकार के दर्शन के लिए अयोध्या आते हैं। यथा : सोई सुख लवलेस जिन बारक सपनेहुँ लहेउ। ते नहि गनहि खगेस ब्रह्म सुखहि सज्जन सुमति। नगर ऐसा सुन्दर बना है कि उसे देखने से उन्हे विराग भूल जाता है इच्छा नही होती जाने की। तब दूसरो की क्या गिनती है।

जातरूप मनि रचित अटारी। नाना रंग रुचिर गच ढारी॥
पुर चहुँ पास कोट अति सुंदर। रचे कँगूरा रंग रंग बर॥२॥

अर्थ : सोना और मणि जड़ी हुई अटारियाँ थी। नाना रङ्ग के सुन्दर ढले हुए गच्च थे। पुर के चारों ओर अत्यन्त सुन्दर क़िलाबन्दी थी। जिसमे रङ्ग रङ्ग के श्रेष्ठ कंगूरे बने हुए थे।

व्याख्या : अब सुन्दरता कहते हैं : सोने की अटारियाँ थी जिनमें मणि जड़े हुए थे। ढले हुए फर्श थे। प्राचीन काल में पत्थर गलाकर ढालने की विद्या मालूम थी। दक्षिण के मन्दिरों में ऐसे ऐसे विशाल पत्थर मन्दिरो में लगे हुए हैं जिन्हे देखकर मानना पड़ता है कि ये ढले हुए हैं : यह तो हुई नगर के भीतर के मकानों की बात। राजधानी के चारो ओर रक्षा के लिए क़िलाबन्दी थी और उसकी सुन्दरता बढाने के लिए उसमें अनेक रङ्ग के कंगूरे बने हुए थे।

नव गृह निकर अनीक बनाई। जनु घेरी अमरावति आई॥
महि बहु रंग रचित गच काँचा। जो बिलोकि मुनिबर मनु नाँचा॥३॥

अर्थ : नवग्रह के समूहों ने मानो सेना बनाकर अमरावती को घेर रक्खा है। पृथिवी अनेक रंग के काँचो के फर्श से सँवारकर सजाई गयी थी। जिन्हे देखकर श्रेष्ठ मुनियों का मन नाच उठता था।

व्याख्या : अब राजधानी के चारों ओर क़िलाबन्दी के बुर्ज : कंगूरे : कैसी

शोभा दे रहे है। उसकी उपमा कवि देते हैं कि मानो इन्द्रपुरी को नवग्रहो के समूह सेना रूप से रक्षा कर रहे हैं। कगूरे अनेक रङ्ग के थे। इसलिए उनकी उपमा नवग्रहो के समूह से दिया गया क्योकि नवग्रहो के रङ्ग पृथक् पृथक् हैं। नगरी की उपमा इन्द्रपुरी से दी गयी। क्योकि ससार मे ऐसी सुन्दर दूसरी पुरी है नही। इन्द्रपुरी की रक्षा करना नवग्रहो के लिए उचित कार्य भी है।

धवल धाम ऊपर नभ चुंवत। कलस मनहु रबि ससि दुति निंदत ॥
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं। गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहिं ॥४॥

अर्थ श्वेत रङ्ग के घर ऊपर से आकाश चूम रहे हैं। कलश मानो सूर्य चन्द्र के ज्योति की निन्दा कर रहे हैं। मणियो की बनी हुई खिडकियाँ शोभा पा रही हैं। घर घर मे मणि के दीप जल रहे हैं।

व्याख्या घरो की शोभा सफेदी से ही है। सो सफेद घर इतने ऊँचे हैं कि आकाश से लगे हुए दिखाई देते हैं। आकाश मे तो सूर्य चन्द्र हैं तो इन घरो के कलश भी ऐमे चमकीले हैं कि सूर्यचन्द्र की ज्योति उनके सामने दबती है।

खिडकियो मे शोभा के लिए मणियाँ जडी हुई हैं और प्रत्येक घरो मे मणि के दीप विराजमान हैं। भाव यह कि अयोध्या की सम्पत्ति का वर्णन नही हो सकता।

छ मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहली बिद्रुम रची।
मनि खभ भीति बिरचि बिरची कनक मनि मरकत खची ॥
सुदर मनोहर मदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खँचे ॥

अर्थ घरो मे मणि के दीपक शोभा दे रहे थे। देहलियाँ मूँगें की बनी हुई थी। मणि के खम्भे थे। सोने की दीवारो को ब्रह्मदेव ने मणि और मरकत का काम बनाकर विरचा था। सुन्दर मनोहर लम्बे चौडे घर थे। जिनमे स्फटिक के सुन्दर आँगन थे। प्रत्येक द्वारो मे सोने के किवाड बनाकर बहुत से हीरे जड दिये गये थे।

व्याख्या मणि के दीपो से घर जगमगा रहे थे। उनकी देहलियाँ भी मूँगे की बनी थी। मणि के खम्भो और सोने की दीवारें जो कि मरकत और मणि से जटित थी मणि के दीपो से जगमगा रही थी। इन खम्भो और दीवारो को ब्रह्मदेव ने बनाया था। भाव यह कि अयोध्यापुरी ने अपने दिव्य रूप को भली भाँति प्रकट कर दिया था। यहाँ सब दिव्य रचनायें थी। मानुषी रचना ही नही थी। उसी का वर्णन करते हुए कहते हैं। इतने बहुमूल्य पदार्थों से बने हुए होने पर भी सब घर लम्बे चौडे थे। जिसमे रहनेवालो को सङ्कीर्णता का अनुभव न हो। आँगन स्फटिक मणि के थे। द्वार मे सुवर्ण के कपाट लगे थे जिनमे हीरे का काम किया हुआ था।

दो चारु चित्र साला गृह, गृह प्रति लखे बनाइ।
राम चरित जे निरग्व मुनि, ते मन लेहिं चोराइ ॥२७॥

अर्थ घर घर मे सुन्दर चित्रशाला सँवारकर लिखे गये थे। वहाँ लिखा हुआ राम चरित जो मुनि देखते हैं उनके मन को चुरा लेता है।

व्याख्या इतने पर भी घर का शृङ्गार पूरा नही हुआ। सबके घरो मे चित्रशालायें हैं। जिनमे सुन्दर सुन्दर चित्र बने हुए हैं और वे चित्र मत्र रामजी की लीला सम्बन्धी हैं। आजकल भी लोग चित्रो से कमरा सुसज्जित करते हैं और उन चित्रो से मालिक मकान की रुचि का पता लगता है। इस प्रकार के चित्रो का प्रभाव गृहनिवासियो पर बिना जाने पडता है। यहाँ तो प्रजा सब सरकार की एक एक बाता पर आसक्त है। चित्रशालाओ मे सब राम चरित्र चित्रित है और ऐसे खूबी से चित्रित है कि जिन्हे देखने से मुनि का भी मन मोहित हो जाय। राम चरित्र के मुनिगण रसिक होते हैं।

सुमन बाटिका सबहि लगाई। विविध भाँति करि जतन बनाई ॥
लता ललित बहु जाति सोहाई। फूलहि सदा बसन्त की नाई ॥१॥

अर्थ सबने फुलवारियाँ लगा रक्खी थी। वे अनेक प्रकार की थी। बडे यत्न से लगायी गयी थी। अनेक प्रकार की लतायें सुन्दर थी जो कि वसन्तऋतु की भाँति फूल रही थी।

व्याख्या गरीब से गरीब के घर मे भी फुलवारी है और वह अनेक प्रकार के यत्न करके बनाई गयी है। पूजा के लिए स्वास्थ्यवर्धन के लिए तथा शोभा के लिए फुलवारी की बडी आवश्यकता है। इससे यह भी कहा कि सबका काम अल्पायास से ही चलता था। फुलवारी लगाने तथा उसकी रक्षा करने मे सब समर्थ थे।

अनेक रङ्ग के फूलो की लतायें लगायी गयी थी। जिनसे लतामण्डप बन गये थे। लतायें वसन्तऋतु मे फूलती हैं पर ये सदा फूली रहती थी। अत सब ऋतुओ मे शोभा बनी रहती थी।

गुंजत मधुकर मुखर मनोहर। मारुत त्रिबिध सदा बह सुंदर ॥
नाना खग बालकन्ह जिआये। बोलत मधुर उडात सुहाये ॥२॥

अर्थ मनोहर शब्द करनेवाले भौंरे गूजते थे और तीनो प्रकार का सुन्दर वायु सदा बहता था। बच्चों ने अनेक प्रकार के पक्षियो को जिला रक्खा था। जिनकी बोली मधुर और उडान सुन्दर थी।

व्याख्या लताओ के फूलने से फुलवारी म भौंरो की भीड लगी रहती थी। मकरन्द पान करते समय तथा उसे लेकर चलते समय भौरे गूँजा करते हैं। इनकी गूज सबको प्रिय है। वन के प्रसङ्ग मे भी कह आये हैं सीतल सुरभि पवन बह

मन्दा। परन्तु यह तो फुलवारी है। इसमे कुछ विशेषता होनी चाहिए। अतः कवि ने सुन्दर शब्द और जोड़ दिया। भाव यह कि वन के त्रिविध मारुत से फुलवारी का त्रिविध मारुत अधिक सुहावना है।

बच्चों ने ऐसे पक्षियों को जिला रक्खा था जिनकी उड़ान भी सुन्दर होती है और बोली भी मधुर होती है। कबूतरों के उड़ान की कलाबाजी के रसिक आज भी कबूतर जिलाते हैं। यह तो पिंजरे या दरबे में रहनेवाले पक्षियों का वृत्तान्त हुआ। अब बाहर के पक्षियों का वृत्तान्त सुनिये।

मोर हंस सारस पारावत। भवनन्हि पर सोभा अति पावत ॥
जहँ तहँ देखहिं निज परछाहीं। बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं ॥३॥

अर्थ : मोर हंस सारस और कबूतर घरों के ऊपर अत्यन्त शोभा पा रहे थे। जहाँ तहाँ अपनी परछाहीं : छाया देखते और बहुत प्रकार से कूदते और नृत्य करते थे।

व्याख्या : मयूर हंस सारस और पारावत पक्षी स्वभाव से ही शोभायमान हैं पर जब ये मकानों पर जा बैठते हैं तो इनकी शोभा और भी बढ़ जाती है। इनकी बहुतायत थी। अतः ये मकानो के ऊपर अटारियों पर प्रायेण बैठे दिखाई पड़ते थे। जातरूप मनि रचित अटारी। नाना रंग रुचिर गच ढारी। अतः वहाँ उनका प्रतिबिम्ब पड़ता था। जिन्हे देखकर उन्हें अपना साथी मिल जाने का भ्रम होता था और वे हर्ष से कूदने और नाचने लगते थे।

सुक सारिका पढ़ावहिं बालक। कहहु राम रघुपति जन पालक ॥
राजदुआर सकल बिधि चारू। बीथी चौहट रुचिर बजारू ॥४॥

अर्थ : बालक लोग तोता और मैना पढाते थे कि राम रघुपति जन पालक कहो। राजद्वार सब प्रकार से सुन्दर था। गलियाँ चौराहे और बाजार सब सुन्दर थे।

व्याख्या : पिंजरे में जो शुक सारिका हैं उन्हें बालक पढाते हैं। बाप का पढ़ाना देखकर उनका अनुकरण करते हैं। उनका पढ़ाना यही है कि बोलो : राम रघुपति जन पालक। आज भी तोता मैना भारत मे इसी भाँति पढ़ाये जाते हैं। भृगुपति परशुरामजी का भी नाम राम ही है पर वे तो रघुपति राम के गुणों पर मुग्ध थे। जिनसे उनका पालन होता था। अतः राम रघुपति जन पालक शब्द ही उन्हे प्रिय था।

अब राजद्वार का वर्णन करते हैं। उसे सब प्रकार से सुन्दर होना चाहिए। अतः कहते हैं : राज दुआर सकल बिधि चारू। अच्छे मकानात होते हुए भी यदि राजद्वार शानदार न हुआ तो सब फीका हो जाता है। गली चौराहे और बाजार सब ऐसे सुन्दर हैं कि कहे नही जा सकते।

छं. बाजार रुचिर न बनै बरनत वस्तु बिनु गथ पाइये ।
जहँ भूप रमा निवास तहँ की संपदा किमि गाइये ।।
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहु कुबेर ते ।
सब सुखी सब सच्चरित सुन्दर नारि नर सिसु जरठ जे ।।

अर्थ : बाजार ऐसे सुन्दर थे कि उनका वर्णन नही हो सकता । वहाँ वस्तुयें बिना मूल्य की मिलती थी । जहाँ लक्ष्मीपति ही राजा हैं वहाँ की सम्पदा का कैसे वर्णन किया जाय । अनेक बजाज सराफ और बनिये वहाँ कुबेर को भाँति बैठते थे और स्त्री पुरुष बालक वृद्ध जितने थे वे सब के सब सुन्दर सुखी और सच्चरित्र थे ।

व्याख्या : बाजार ऐसा सुन्दर कि वर्णन नही हो सकता । वहाँ बिना मूल्य दिये ही वस्तु मिलती थी । जिसको जो आवश्यकता हो बाजार से ले आवे । मूल्य देने की आवश्यकता नही । इसलिए कहते है कि कुबेर की भाँति बैठे हुए बजाज सराफ और बनिये सब वस्तुयें बिना मूल्य बाँटा करते थे । वर्णाश्रम अपने अपने धर्म पर चले तभी ऐसा सम्भव है । जब सब लोग अपना कर्तव्य ईश्वर प्रीत्यर्थ पालन करेंगे और अपना निर्वाह यज्ञशिष्ट से करेंगे तभी बजाज सराफ बनियो के पास बिना मूल्य वस्तुएँ पहुँचा करेंगी और वे बिना मूल्य वितरण कर सकेंगे । जिस नगर मे स्वयं लक्ष्मीपति राजा हैं वहाँ लक्ष्मी स्वय विराजमान रहेगी । कुबेर की ही आज्ञा से सम्पत्ति का वितरण ससार मे होता है । उसी प्रकार बजाज सराफ बनियो के यहाँ से सब लोगो को ईप्सित वस्तुएँ प्राप्त होती थी । अत: सब सुखी थे । राजा के सच्चरित्र होने से सब सच्चरित्र थे । देवताओ की पुष्पो से पूजा करने के प्रताप से सब सुन्दर थे अथवा श्रीरामजी की प्रजा होने से उन्हे सब सुख प्राप्त था ।

दो. उत्तर दिसि सरयू बह, निर्मल जल गभीर ।
बाँधे घाट मनोहर, स्वल्प पक नहि तीर ।।२८।।

अथ : उत्तर दिशा मे सरयू नदी बहती थी । जिनका जल निर्मल और गम्भीर था सुन्दर सुन्दर घाट बँधे थे तीर पर तनिक भी कीचड न था ।

व्याख्या : उत्तर दिशा मे सरयू नदी बहती है । वह गहरी है और जल उसका निर्मल है । राम राज्य मे सरिता सकल बहहि बरबारी । सीतल अमल स्वादु सुखकारी । फिर सरयू के लिए कहना ही क्या है । प्रजा के सुभीते के लिए घाट बँधा हुआ था और राज्य की ओर से ऐसी व्यवस्था थी कि तीर पर कोचड न रहने पावे ।

दूरि फराक रुचिर सो घाटा । जहँ जल पिअहि बाजि गज ठाटा ।।
पनिघट परम मनोहर नाना । तहाँ न पुरुप करहि असनाना ।।१।।

अर्थ वह घाट सुन्दर लम्बा चौडा अलग दूर पर था । जहाँ घोडो और

हाथियो के झुण्ड पानी पीया करते थे। अनेक प्रकार के अत्यन्त सुन्दर पनिघट थे। जहाँ पुरुष स्नान नही करते थे।

व्याख्या हाथी घोडो के पानी पीने के लिए नगर से दूर अलग गो घाट बना था। जिसमे नदी का जल गन्दा न हो। वह घाट बडा लम्बा चौडा था। क्योकि वहाँ हाथी और घोडो के झुण्ड के झुण्ड जल पीते थे तथा नहलाये जाते थे। वह घाट भी सुन्दर बना था। उपयोगिता के साथ ही साथ सुन्दरता का भी पूरा ध्यान रक्खा जाता था।

और घाट तो सभी मनोहर थे पर पनिघट परम सुन्दर बनाये गये थे। क्योकि वहाँ सुन्दरियाँ स्नान करती थी पुरुष वहाँ नही नहाते थे। राजाज्ञा की आवश्यकता नही थी स्वय पुरुष लोग वहाँ स्नान करने नहीं जाते थे। पनिघट भी अनेक थे जिसमे किसी को दूर न पडे।

राजघाट सब विधि सुन्दर वर। मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर ॥
तीर तीर देवन्ह के मदिर। चहुँ दिसि तिन्हके उपवन सुन्दर ॥२॥

अर्थ · राजघाट सब प्रकार से सुन्दर था। वहाँ चारो वर्ण के पुरुष नहाया करते थे। किनारे किनारे देवताओ के मन्दिर थे जिनके चारो ओर सुन्दर उपवन लगे थे।

व्याख्या · जहाँ चारो वर्ण के लोग स्नान करते थे। उसका नाम राजघाट था। यह सरकारी घाट समझा जाता था। यहाँ स्वय सरकार स्नान करने आते थे। अत सभी प्रकार से सुन्दर बना था। अर्थात् शोभा मे तथा कारीगरी मे सब घाटो से अच्छा था।

स्नान सन्ध्या के बाद पूजन तथा यात्रा की आवश्यकता पडती है। इसलिए नदी के किनारे देवताओ के मन्दिर बने थे। जिसमे स्नान करने के बाद लोग जल चढाने जाते थे। अनेक मन्दिर थे जिसमे जिसका जो इष्टदेव हो उसकी पूजा आराधना करे। मन्दिर के चारो ओर उपवन लगे थे जहाँ से पूजन करनेवाले पत्र पुष्प और फल प्राप्त कर सकें।

कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी। बसहिं ग्यान रत मुनि संन्यासी ॥
तीर तीर तुलसिका सुहाई। बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई ॥३॥

अर्थ · कही कही नदी के तीर पर उदासी और ज्ञानरत मुनि तथा सन्यासी बसते थे। किनारे किनारे सुन्दर तुलसी के झुण्ड मुनियों ने लगा रक्खे थे।

व्याख्या उदासी विरक्त गृहस्थ को कहते हैं। अथवा कुटीचक बहूदक आदि तीर मे कुटियाँ बनाये हैं। इनकी संख्या थोडी है इसलिए कही कही कहा। मुनियो ने तुलसी के समूह तीर तीर पर लगा रक्खे हैं। पूजन मे तुलसी का बहुत काम पडता है। लोग सहस्रदल तुलसी से भगवान् का पूजन करते हैं।

पुर सोभा कछु बरनि न जाई। बाहिर नगर परम रुचिराई ॥
देखत पुरी अखिल अघ भागा। बन उपवन बापिका तडागा ॥४॥

अर्थ : पुर की शोभा कुछ वर्णन नही की जा सकती। नगर के बाहर भी बडी सुन्दरता थी। पुरी के दर्शन से सम्पूर्ण पाप भाग जाते थे। वन उपवन बावली और तालाब थे।

व्याख्या : नारदादि सनकादि मुनीसा। दर्शन लागि कोसलाधीसा। दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं। देखि नगर विराग बिसरावहिं। पहले कह आये हैं उसी प्रकरण का उपसहार करते हुए कहते हैं कि पुर की शोभा अवर्णनीय है। नगर के वाहर भी बडी मनोहरता है। वह दृश्य अन्य प्रकार का है जहाँ लोग हवा खाने जाते हैं।

केवल सुन्दरता ही नही परम पावनी पुरी है। दर्शन से सब पाप भाग जाते हैं। जिन्होने पुरी मे प्रवेश नही किया केवल दर्शन किया उनके सब पाप नष्ट हो गये। पुरी मे प्रवेश करनेवाले के पुण्य का क्या कहना है। वहाँ के वन उपवन बावली और तालाब सब परम पावन हैं।

छं. बापी तडाग अनूप कूप मनोहरायत सोहही।
सोपान सुन्दर नीर निरमल देखि सुर मुनि मोहही ॥
बहुरग कज अनेक खग कूजहि मधुप गुंजारही।
आराम रम्य पिकादि खगरव जनु पथिक हँकारही ॥

अर्थ : बावली और तालाब ऐसे हैं जिनकी उपमा नही। बडे बडे कूएँ मन के हरण करनेवाले शोभायमान हैं। जिनकी सीढियाँ सुन्दर हैं और जल निर्मल है। उन्हें देखकर देवताओ और मुनियो का मन मोहित हो जाता है। बहुत रग के कमल हैं। बहुत सी चिडिया कूजती हैं। भौरे गूँज रहे हैं। सुन्दर बागो मे कोयल आदि पक्षी के शब्द मानो पथिक को पुकार रहे हैं।

व्याख्या : पुरी के बाहरी भाग का वर्णन हो रहा है। नगर वन उपवन बावली और तालाबो से घिरा हुआ है। वे बावली और तालाब बेजोड हैं ऐसे कही देखे नही जाते। कूएँ भी बडे बडे और मनोहर है। उनमे भी सुन्दर सीढियाँ बनायी हुई हैं। सब मे निर्मल जल है इनकी पावनता पहले ही कह चुके हैं। इन्हे देखकर मनुष्य तो मोहित हो ही जाते हैं। स्वर्ग के देवता और विगतस्पृह मुनि लोगो का चित्त मोहित हो जाता है। मज्जन पान की इच्छा हो जाती है। वहाँ से जाने की इच्छा नही होती। जलाशयो की शोभा अनेक रग के कमलो से बढ रही है। चिडियो के चहचहाहट और भौंरो के गुञ्जार से शब्दायमान हो रहे हैं। सुन्दर बगीचो मे कोयल आदि पक्षियो का बोलना इतना सुहावन है कि मानो वे आतिथ्य सत्कार के लिए पथिको को बुला रहे हैं। भाव यह कि उनके शब्द सुनने से पथिक का चित्त चाह जाता है कि यहाँ विश्राम कर लें।

दो. रमानाथ जहँ राजा, सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक सुख संपदा, रही अवध सब छाइ ॥२९॥

जहां स्वय लक्ष्मीपति राजा हैं। क्या उस पुर का वर्णन किया जा सकता है। अणिमादिक सुख और सम्पदा अवध मे छा रही है।

व्याख्या : अवध के उस समय का वैभव वर्णनातीत था। साक्षात् लक्ष्मीपति वहां राजा के रूप मे विराजमान थे। अत. लक्ष्मीजी का वह मुख्य निवासस्थान था और जहां लक्ष्मी रहेगी वही अणिमादिक सिद्धियां हाथ जोडे उपस्थित रहेगी। यथा : तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे। वही सब सुख और सम्पदा रहेगी। क्योकि लक्ष्मी ही उनकी अधिष्ठात्री देवी हैं। भावार्थ यह कि आलौकिक वैभव था। अवधपुरी वासिन्ह कर सुख सम्पदा समाज। सहस सेष नहि कहि सकहिं नर नृप राम विराज। से जिस प्रकरण का उपक्रम किया था उसका इस दोहे से उपसहार कर रहे हैं।

जह तहँ नर रघुपति गुन गावहि। बैठि परसपर इहै सिखावहि ॥
भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहि। सोभा सील रूप गुन धामहि ॥१॥

अर्थ : जहां तहां मनुष्य रघुपति का गुणगान करते हैं। बैठकर आपस मे यही उपदेश देते हैं कि शरणागत के पालन करनेवाले राम को भजो। जो कि शोभा शील रूप और गुणो के धाम हैं।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं कि 'नर अरु नारि राम गुन गानहि। करहिं दिवस निसि जात न जानहि। उसी बात को स्पष्ट करते हुए कवि कहते हैं कि जहां है वह वही सरकार के गुणो का गान करता है। उसी मे उन्हे सुखबोध होता है। यदि कही दो चार आदमी इकट्ठे बैठ गये तो एक दूसरे को उपदेश देते हैं। अर्थ काम की शिक्षा नही देते न मोक्ष की शिक्षा देते हैं। यही सिखाते हैं कि रामजी को भजो। रामजी मे ही भजनीय के सब गुण हैं। रामजी प्रणतपाल हैं। एक प्रणाम मे प्रसन्न हो जाते हैं। यथा : सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत सुनत कहत फिरि गाउ। रामजी शोभाधाम है उनके भजन मे आनन्द है। शीलधाम है। प्रणत जन के अपराध पर ध्यान नही देते। यथा 'अपराध अगाध भये जन ते अपने उर आनत नाहिन जू। रूप धाम पर आसक्ति होते देर नही लगती। गुणधाम के भजन से सुख का लाभ होता है। भजन मे साधन सौकर्य है उसमे भी रामजी के भजन मे उसका और भी उत्कर्ष है।

जलज बिलोचन स्यामल गातहि। पलक नयन इव सेवक त्रातहि ॥
धृत सर रुचिर चाप तूनीरहि। सत कंज बन रबि रन धीरहि ॥२॥

अर्थ : कमल नेत्र और श्याम शरीरवाले को आंख के पलक की भांति सेवक की रक्षा करनेवाले को बाण सुन्दर धनुष और तरकस धारण करनेवाले को सन्तरूपी कमल वन के लिए तथा रणधीर को।

व्याख्या : ऊपर सोभा सील रूप गुन धामहि : कह आये हैं उसी को क्रम से दिखलाते हैं। शोभा यथा . जलज विलोचन स्यामल गातहि। शील यथा : पलक नयन इव सेवक त्रातहि। रूप यथा : धृत सर रुचिर चाप तूनीरहि। गुण यथा : सन्त कज वन रवि रन धीरहि। सरकार का श्यामल रूप ऐसा मङ्गलमय है कि उसी पर भक्त लोग अपने चित्तरूपी सोने को कसौटी की भाँति कसते हैं। यथा : स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित्त कचनहि कसैहौं। और कमल से नयन भक्तो के सोच के हरनेवाले हैं यथा : मामवलोकय पकजलोचन। कृपा विलोकनि सोच विमोचन। इसलिए उन्हे भजने के लिए उपदेश दे रहे हैं। सरकार का स्वभाव वर्णन करके भी भजन पर ही अधिक बल देते हैं। कहते हैं कि रामजी इस भाँति सेवक की रक्षा करते हैं जैसे पलक नयन की रक्षा करता है। सुन्दर धनुष बाण और तरकस बाँधने से रूप मे अधिक उत्कर्ष आजाता है। धनुष बाण भक्तो की रक्षा तथा दुष्ट के नाश का प्रतीक है। सरकार के उदय से सन्तरूपी कमल वन खिल उठता है। जिस भाँति रणधीर सूर्य मन्देह नामी राक्षसो का वध करके कमल वन को प्रसन्न करते हैं। उसी भाँति रामजी भी खलो का विनाश करके सन्तो को अभय करते हैं।

काल कराल व्याल खगराजहि। नमत राम अकाम मम ताजहि ॥
लोभ मोह मृग जूथ किरातहि। मनसिज करिहरि जन सुख दातहि ॥३॥

अर्थ : कराल काल रूपी सर्प के लिए गरूड़ रूप को मेरे मुकुट रूप अकाम रामको लोभ मोह रूपी मृगो के लिए किरातरूप को कामरूपी हाथी के लिए सिहरूप को तथा सुखदाता को नमस्कार करो।

व्याख्या : काल सर्प की भाँति चुपके से आकर प्राण हरण करता है। वह भारी दुरतिक्रम है। इसलिए कराल कहा। रामजी उसके भी भक्षक हैं। इसलिए गरुड रूप कहा। यथा काल व्याल कर भक्षक जोई। यहाँ पर नमत के स्थान पर नमामि होता तो दूसरे प्रकार से अर्थ किया जाता कि : ममता जहि। ममता का हनन करो। परन्तु नमत पाठ होने से : मम ताजहि का अर्थ : मेरे मुकुट को : सिरताज को यही अर्थ करना प्रसगानुकूल है। सरकार लोभ मोह आद मृगो के लिए किरात रूप हैं। किरात का काम ही मृगो का बध है। यथा : हम जड जीव जीव गनघाती। सब से बलवान् काम है। इसलिए इसकी उपमा हाथी से दिया। उसके लिए सरकार सिंह है। इनका नाश करके भक्त को सुख देते हैं।

ससय सोक निबिडतम भानुहि। दनुज गहन वन दहन कृसानुहि ॥
जनकसुता समेत रघुबीरहि। कस न भजहु भजन भवभीरहि ॥४॥

अर्थ . सशय और शोक रूपी घोर अन्धकार के लिए सूर्य रूप को तथा राक्षस रूपी घने वन के जलाने के लिए अग्निरूप को। जानकीजी के सहित रघुवीर को क्यो नही भजते। ससार के दु ख के नाश करनेवाले हैं।

व्याख्या : संशय से यह लोक और परलोक दोनो नष्ट हो जाते हैं। सुख कही नही मिलता। यथा : नायं लोकोऽस्ति न परो न सुख सशयात्मन.। शोक सद्यः बुद्धि का हरण करनेवाला है। यथा : सोक कनक लोचन मति छोनी। हरी विमल गुन गन जग जोनी। अत. इन्हे अदर्शन रूप घोर अन्धकार कहा गया है। इसके लिए रामजी सूर्य रूप हैं। अनायासेन नाश कर देते हैं। अविद्या निशा ही नष्ट हो जाती है। भाव यह कि रामजी के भजन से सशय और शोक का नाश हो जाता है।

राक्षसो को तो रामजी ऐसा नाश करते हैं जैसे घने बन को आग जला देती है। बन के नाश करने मे अग्नि सा सामर्थ्य किसी को नही है। पहिले पद मे भीतरी शत्रु का नाश कहा। अब इस पद से बाहरी शत्रु का नाश कहते हैं। जनकसुता के साथ श्रीरघुवीर ससार के दु ख को नाश करते हैं। जनकसुता क्लेशहारिणी और सर्वश्रेयस्करी हैं और सरकार की वल्लभा है। अत. उनके साथ रामजी को क्यो नही भजते ? जहाँ पर श्री रामजी का ध्यान कहा गया है वहाँ जनकसुता के साथ ही कहा गया है। यथा . सीता पार्श्वगता सरोरुहकरा विद्युन्निभा राघवम्। पश्यन्ती मुकुटाङ्गदादिविविधाकल्पोज्ज्वलाग भजे।

बहु बासनामसक हिमरासिहि। सदा एक रस अज अविनासिहि ॥
मुनि रजन भंजन महि भारहि। तुलसिदास के प्रभुहि उदारहि ॥५॥

अर्थ : बहुत सी वासना रूपी मच्छडो के लिए पालारूप को सदा एक रस। अजन्मा और अविनाशी को मुनियो को सुख देनेवाले तथा पृथिवी के भार के हरण करनेवाले को तथा तुलसीदास के उदार प्रभु को क्यो नही भजते।

व्याख्या : जिस भाँति मच्छड पीड़ा देते है उसी भाँति वासना सदा पीड़ा दिया करती है। हिम पाला के त्रास से उनका बल बहुत कुछ कम हो जाता है। यथा : मसक दस बीते हिम त्रासा। सरकार तो उनके लिए हिमराशि हैं। जहाँ सरकार हैं वहाँ वासना पास नही फटक सकती।

अब सरकार का स्वरूप कहते हैं कि वे ही एक ऐसे हैं जो सदा एकरस रहते हैं। शेष सभी कुछ परिवर्तनशील है। इसलिए इनका जन्म नही होता। जिनका जन्म नही होता उनका नाश भी नही होता। भाव यह कि जलज बिलोचन स्यामल गात आदि कहने से इन्हे मनुष्य न समझ लेना। यह तो उनका मायिक रूप हैं। वस्तुत. ये सदा एकरस अज अविनाशी हैं।

इनका अवतार ही : परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्। हुआ करता है। ऐसे उदार हैं कि तुलसीदास के प्रभु हो गये। नही तो ऐसे जड़मति का प्रभु होना कौन स्वीकार करेगा ?

दो. एहि बिधि नगर नारि नर, करहिं राम गुनगान।
सानुकूल सब पर रहहिं, संतत कृपानिधान ॥३०॥

अर्थ : इस विधि से नगर के नारी नर सदा रामजी के गुणो का गान करते थे और कृपानिधान भी सब पर सदा सानुकूल रहते थे।

व्याख्या : गान करने की विधि दिखाने के लिए कवि ने यहाँ प्रादेश मात्र कहा। स्त्री पुरुष सबको राम गुनगान मे सुख बोध होता है। सरकार कृपानिधान हैं। उनके गान पर रीझे हुए हैं। अयोध्या भर गवैया नही है। पर रोना गाना सभी को आता है। जैसा जो गा सकता है वैसा गाता है। पर सरकार कृपानिधान हैं। सदा सब पर सानुकूल रहते हैं। कहा भी है कि : नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिना हृदये न च। मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।

यह स्तुति अभिजित् नक्षत्र है। अभिजित् को मिलाकर २८ नक्षत्र माने गाये हैं। नही तो नक्षत्र की सख्या २७ की ही है। अभिजित् मे तीन तारे चमकते हैं। इस स्तुति मे भी तीन बाते चमकती हैं। १ भजहु २ नमत और ३ कसन भजहु। इसका त्रिभुज रूप है। तीन अर्धालियो का एक भुज है। नो अर्धालियो मे स्तुति समाप्त है : सुकवि सरद नभ मन उडगन से। यह फलश्रुति है।

जबते राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा॥
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँलोका। बहुतेन्ह सुख बहुतन्ह मन सोका॥१॥

अर्थ : हे पक्षिराट्! जब से रामजी के प्रताप का अति प्रबल सूर्य उदय हुआ तब से तीनो लोक मे प्रकाश भर गया। बहुतो को सुख हुआ और बहुतो के मन मे शोक हुआ।

व्याख्या : श्रीरामजी के प्रताप का सूर्य तो मिथिलापुरी मे ही उदय हो गया था। यथा उदित उदय गिरि मच पर रघुवर बाल पतग। पर बढते बढते वह सरकार के सिंहासनारूढ होने पर अति प्रबल हो गया। ऐसा कभी नही होता कि किसी के प्रताप के बढने से सबको सुख हो। यदि भले का प्रताप बढा तो भलो को सुख और बुरो को दु ख होता है। यदि बुरे का प्रताप बढा तो बुरो को सुख और भलो को दु ख होता है। पर सुख दु ख की परख सज्जनो के ही सुख दु ख से है। अधिक मनुष्यो के अधिक सुख को लक्ष्य माननेवाला सिद्धान्त ठीक नही। यदि दुष्ट की ही सख्या अधिक हुई तो सज्जनो का कोई ठिकाना न रह जायगा।

श्रीरामजी के प्रतापरूपी सूर्य के अतिप्रबल होने से तीनो लोक मे प्रकाश भर गया। इससे बहुतो को सुख हुआ और बहुतो के मन मे शोक हुआ।

जिन्हहि सोकते कहहुँ बखानी। प्रथम अविद्या निसा नसानी॥
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने॥२॥

अर्थ : जिन्हे शोक हुआ उन्हे बखान कर कहता हूँ। पहिले तो अविद्या रात्रि नष्ट हो गयी। पापरूपी उल्लू जहाँ तहाँ छिप गये और काम क्रोधरूपी काईं के फूल सङ्कुचित हो गये।

व्याख्या : राम प्रतापरूपी सूर्य के उदय से जिन्हे शोक हुआ पहिले उन्ही का

वर्णन करते हैं। क्योकि यह सुनने पर जानने के लिए उत्सुकता होती है कि रामजी के प्रताप से किसको दु ख हुआ ? सूर्योदय से पहिली बात यह होती है कि रात्रि नष्ट होती है। अदर्शनात्मक होने से अविद्या को रात्रि कहा गया है। सो राम प्रतापरूपी सूर्य के अति प्रबल होने से अविद्या रूपी रात्रि नष्ट हो गयी। उल्लू को रात्रि मे ही सूझता है। दिन मे सूझता ही नही। इसी भाँति पाप रूपी उल्लू का प्रचार अविद्या निशा मे ही होता है। दिन के प्रखर प्रकाश मे वह किसी अँधेरे कन्दरा आदिक स्थानो मे छिप जाते हैं। कही पता नही चलता। इसी भाँति रामराज्य मे पाप वेपता हो गये। काम क्रोध वस्तुत एक ही वस्तु है। काम पर आघात होने से वही क्रोधरूप मे परिणत हो जाता है। यथा काम एप क्रोध एप रजोगुणसमुद्भव। महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम्। उसकी उपमा कैरव कोइँ से दिया। यह फूल रात को ही खिलता है। सूर्योदय हाने पर सिकुड जाता है। इस भाँति अविद्या निशा मे काम क्रोध खिले रहते हैं। रामराज्य मे सङ्कुचित हो जाते हैं।

बिबिध कर्म गुन काल सुभाऊ। ए चकोर सुख लहहिं न काऊ॥
मत्सर मोह मान मद चोरा। इन्हकर हुनर न कवनिहु ओरा॥३॥

अर्थ अनेक प्रकार के कर्म गुण काल और स्वभाव ये चकोर हैं। इन्हे कभी सुख न मिला। मत्सर मोह मान मद चोर हैं। इनका हुनर किसी ओर नही चलता।

व्याख्या कर्मों के अनेक भेद हैं। यथा कायिक वाचिक मानसिक अथवा सञ्चित प्रारब्ध और क्रियमाण तथा गुण काल और स्वभाव। इन्ही द्वारा जीव जन्म मरण के चक्र मे पडा घूमता है। यथा फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा। इनकी उपमा चकोर से दिया। क्योंकि इनको अविद्या निशा मे ही सुख मिलना सम्भव है। विज्ञान दिन मे इन्हें कभी सुख नही मिलता।

मत्सर मान मोह मद इन चारो को चोर कहा। क्योकि चोर की भाँति ये अविद्या निशा मे अपना हुनर दिखाते हैं। हृदय रूपी घर मे पैठकर सद्गुण रूपो धन का अपहरण करते हैं। यथा मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ बहु चोरा। अति कठिन करहिं बर जोरा। मानहिं नहिं बिनय निहोरा। तम मोह लोभ अँहकारा। इत्यादि। सो रामराज्य मे अविद्या के नाश से इनको कला नही चलती। लोक और वेद कही भी इनकी दाल नही गलती।

धर्म तडाग ग्यान बिग्याना। ए पकज बिकसे बिधिनाना॥
सुख सतोप बिराग बिवेका। बिगत सोक ए कोक अनेका॥४॥

अर्थ धर्म रूपी तालाव म ज्ञान विज्ञान रूपी अनेक प्रकार के कमल खिल उठे। सुख सन्तोप विराग विवेक रूपी अनेक चक्रवाक शोकरहित हो गये।

व्याख्या अब जिन्हे सुख है उनका वर्णन करते हैं। जहाँ धर्म है वहीं ज्ञान विज्ञान के होने की भी सम्भावना है। जहाँ धर्म नही वहाँ ज्ञान विज्ञान की चर्चा ही क्या है। यथा धर्म ते बिरति योग ते ज्ञाना। इसीलिए धर्म को तालाव और

ज्ञान विज्ञान को कमल कहा। अविद्या निशा मे ये सङ्कुचितावस्था में पड़े रहते हैं। रामप्रताप रवि के उदय होते ही ये खिल उठे।

सुख सन्तोष विराग और विवेक की उपमा कोक से दी। कोक जलपक्षी है। जल के किनारे ही रहता है। इसी भाँति सन्तोष सुख विराग विवेक ये भी धर्म तडाग का आश्रयण करके रहते हैं। अविद्या निशा मे इनका अपने अधिकारियों से वियोग रहता है। राम प्रताप सूर्य के उदय होने से इनका संयोग अधिकारियों से हो जाता है। अतः इनका शोक चला गया। हर्षित हो उठे।

दो. यह प्रताप रबि जाके, उर जब करै प्रकास।
पछिले बाढ़हि प्रथम जे, कहे ते पावहिं नास ॥३१॥

अर्थ : यह प्रताप सूर्य जब जिसके हृदय मे प्रकाश करता है तो जिनका वर्णन पीछे किया गया वे बढते हैं और जिनका वर्णन पहिले किया गया उनका नाश होता है।

व्याख्या : जब राम राज्य हुआ और रामजी का प्रताप सूर्य चमका तब उपर्युक्त बातें हुईं। पर यह बात नही कि वे बातें अब नही। इस समय भी जिसके हृदय मे जब राम प्रताप रूपी सूर्य का उदय होता है उस समय विविध कर्म, गुण, काल, स्वभाव, मत्सर, मान मोह मद का नाश होता है और धर्म ज्ञान, विज्ञान, सुख, सन्तोष विराग विवेक की बढोत्तरी होती है। नाम एवं श्रीराम चरित का आश्रय लेने से राम प्रताप हृदय में अवश्य आ जाता है।

भ्रातन्ह सहित रामु एक बारा। संग परम प्रिय पवन कुमारा ॥
सुन्दर उपबन देखन गये। सब तरु कुसुमित पल्लव नये ॥१॥

अर्थ : भाइयो के सहित रामजी सङ्ग मे परम प्रिय हनुमान्‌जी को लिये हुए सुन्दर उपवन देखने गये। सब पेड़ फूले और नये पत्ते लग गये थे।

व्याख्या : रामजी चाहे कार्य के समय भाइयो को साथ न रक्खें पर आमोद प्रमोद के समय उन्हे अवश्य साथ रखते थे। कह भी आये हैं : बैठहिं सभा सग द्विज सज्जन। पर : अनुजन्ह संजुत भोजन करही। सभा का कार्य करते समय चाहे भाई साथ न रहे पर भोजन के समय अवश्य रहे। क्योकि भाइयो पर प्रीति रही। यथा : राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। परन्तु हनुमान्‌जी पर बड़ी प्रीति थी। यथा : तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना। अतः उपवन मे जाने के समय भाइयों और हनुमान्‌जी को साथ ले लिया। वसन्त ऋतु के कारण उपवन की अधिक शोभा हो रही थी। पेडो मे फूल लग रहे थे। नये पत्ते निकल आये थे।

जानि समय सनकादिक आये। तेज पुंज गुन सील सोहाये ॥
ब्रह्मानन्द सदालय लीना। देखत बालक बहुकालीना ॥२॥

अर्थ : अवसर जानकर सनकादिक आये। मानो तेज के पुञ्ज ही थे और

उनके गुण और शील भी सुन्दर थे। वे ब्रह्मानन्द मे सदा लीन रहते थे। देखने मे तो बालक मालूम होते थे परन्तु थे बहुत दिन के।

व्याख्या सनकादि से सनक सनन्दन सनातन सनत्कुमार चारो महात्माओ का आना कहा। प्राय ये लोग साथ ही रहते हैं। ये लोग सरकार के दर्शन के लिए नित्य ही ब्रह्मलोक से अयोध्या आया करते थे। यथा नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा। दिन प्रति सकल अयोध्या आवहिं। पर दर्शन करके चले जाते थे। कुछ कहने सुनने का अवसर नही मिलता था। अवकाश होने पर ही उपवन जाना होता है। अत सरकार को उपवन मे देखकर निश्चय किया कि यही अवसर है। अत प्रभु के पास गये।

उनका वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि ये लोग ऐसे तेजस्वी थे कि मालूम होता था कि चार तेजोराशियाँ चली आ रही हैं। ये सन्तो के सिरताज थे। इसलिए इनमे सुहाये गुण भी थे। आचरण भी सुन्दर थे। ये सदा ब्रह्मानन्द मे निमग्न रहा करते थे। इनकी सदा पांच वर्ष के बालक की सी अवस्था बनी रहती है। परन्तु ये ब्रह्मा के प्रथम मानस पुत्र हैं। हरि शरणम् मन्त्र जप प्रभाव से सदा बालक रूप मे ही रहते है।

रूप धरे जनु चारिउ बेदा। समदरसी मुनि बिगत बिभेदा॥
आसा बसन ब्यसन यह तिनही। रघुपति चरित होहिं तहँ सुनही॥३॥

अर्थ : मानो मूर्तिमान चारो वेद हो। वे समदर्शी और भेदभाव रहित हैं। उनका दिगम्बर वेष है और यही एक व्यसन है कि जहाँ रामजी का चरित कहा जाता हो वहाँ जाकर सुना करते हैं।

व्याख्या : चारो ऐसे ज्ञान के निधान हैं कि उन्हे मूर्तिमान् वेद कहा जा सकता है। वे सब मे ब्रह्म को समान देखते हैं। उन्हें भेदभाव है ही नही। भाव यह कि निवृत्ति मार्ग के ये ही चारो परम गुरु हैं। सृष्टि के आदि में नारायण ने इन्हें ही निवृत्ति मार्ग का उपदेश किया था और इन्ही से निवृत्ति मार्ग का प्रचार हुआ।

ये सदा दिगम्बर . नग्न रहते हैं और देखने में ये पांच वर्ष के बालक जान पड़ते हैं। इन लोगो ने तपस्या करके यही वरदान प्राप्त किया है कि हम लोगो की अवस्था सदा पांच वर्ष के बालको सी बनी रहे। अत सृष्टि के आदि में उत्पन्न होने पर भी ये वैवस्वतमनु के २४वी चतुर्युगी मे पांच वर्ष के बालक ही जान पड़ते थे फिर भी इनमे एक व्यसन था। अनावश्यक बात मे लग्न होने को ही व्यसन कहते हैं : जो ब्रह्मानन्द मे लवलीन रहे। उसे चरित्र श्रवण की कोई आवश्यकता नही। पर ये जहाँ रामजी का चरित्र वर्णन हो वहीं सुनने चले जाते हैं। इसलिए कवि कहते हैं कि उनमे इस बात का व्यसन तो अवश्य था। भाव यह कि सबके लिये रामचरित्र का श्रवण उपयोगी है। यथा : जीवन मुकुत महामुनि जेऊ। हरिगुन सुनहि निरतर तेऊ। विषयिन्ह कहँ पुनि हरिगुन ग्रामा। स्रवन सुखद अरु मन अभिरामा। ते जड जीव निजात्मक घाती। जिनहि न रघुपति कथा सोहाती।

तहाँ रहे सनकादि भवानी । जहँ घट सभव मुनिवर ग्यानी ॥
राम कथा मुनिवर बहु वरनी । ग्यानजोनि पावक जिमि अरनी ॥४॥

अर्थ हे भवानी ! सनकादि वहाँ थे जहाँ विज्ञानी मुनि अगस्त्यजी रहते हैं। श्रेष्ठ मुनि ने रामजी की बहुत सी कथायें कही जो कि ज्ञानाग्नि की उत्पत्ति के लिए अरणी के समान हैं।

व्याख्या इस समय सनकादिक ब्रह्मलोक से नही आ रहे हैं। रामचरित सुनने के व्यसनी हैं। अगस्त्यजी के यहाँ रामचरित होता था। उसीको सुनने के लिए गये थे। अगस्त्यजी रामचरित्र के बहुत बडे आचार्य हैं। स्वयं शिवजी उनकी कही कथा सुनने जाते हैं। यथा राम कथा मुनिबर्य बखानी। सुनी महेस परम सुख मानी। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि साक्षात् सरकार का दर्शन छोडकर सनकादि महर्षि सरकार का चरित्र सुनने गये। अत सिद्ध है कि कथा श्रवण साक्षात् दर्शन से कम नही है।

अब रामकथा की महिमा कहते हैं कि इसके मन्थन से अर्थात् श्रवण मनन निदिध्यासन से ज्ञान प्रकट होता है। जैसे अरणी के मन्थन से अग्नि प्रकट होती है। जिस भाँति अरणी में अग्नि अव्यक्तरूप से नखानख भरी है। मन्थन से उसका प्राकट्य होता है। इसी भाँति रामकथा मे ज्ञान अव्यक्त रूप से भरा पडा है। श्रवण मनन निदिध्यासन से प्रकट होता है। दूसरी बात यह है कि अग्नि के प्रकट होने के अन्य उपाय भी है। पर उन उपायो से प्रकट हुई अग्नि अशुद्ध होती है। अरणी के मन्थन से प्रकटी हुई अग्नि ही शुद्ध मानी जाती है। यज्ञादि क्रिया उसी से सम्पन्न होती है। इसी भाँति शुद्ध ज्ञान तो रामचरित्र से ही प्रकट होता है। यथा ज्ञानमार्गं चरित्रेण रातीति राम । ऐसी भी व्युत्पत्ति तापनीय श्रुति मे पायी जाती है।

दो देखि राम मुनि आवत, हरखि दण्डवत कीन्ह ।
स्वागत पूछि पीतपट, प्रभु बैठन कहँ दीन्ह ॥३२॥

अर्थ रामजी ने मुनियो को आते देखकर हर्षित होकर दण्डवत् किया और स्वागत पूछकर स्वय अपना पीताम्बर बैठने के लिए दिया।

व्याख्या जिस भाँति विरतिरत गृहस्थ विष्णुभक्त को देखकर मारे आनन्द के नाच उठता है। यथा लछिमन देखु मोरगन नाचत वारिद पेखि। गृही विरतरत हरष जस विष्णु भगतु कहुँ देखि। उसी भाँति सरकार भी सनकादिक को आते देखकर हर्षित हुए और दण्डवत प्रणाम किया। ऐसी प्रतिष्ठा सरकार ने किसी की नही की। स्वागत पूजा और अपना उत्तरीय उतारकर उनके आसन के लिए बिछा दिया। सम्राट् के यहाँ आसनो का घाटा नही रहता। यहाँ उत्तरीय वस्त्र को आसन कल्पना करना सनकादिक की अत्यन्त प्रतिष्ठा है।

कीन्ह दडवत तीनिउ भाई । सहित पवनसुत सुख अधिकाई ॥
मुनि रघुपति छवि अतुल बिलोकी । भए मगन मन सके न रोकी ॥१॥

अर्थ : तीनों भाइयों ने उन्हें हनुमान्‌जी के सहित दण्डवत् प्रणाम किया। सबको बड़ा सुख हुआ। मुनि सरकार की अतुलित छवि देखकर मग्न हो गये और मन को रोक न सके।

व्याख्या : सरकार के दण्डवत् करने और आसन देने के बाद भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और हनुमान्‌जी ने दण्डवत् किया। इन लोगों को भी बड़ा सुख हुआ। सात सर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला एक अंग। तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सत सग।

सनकादि मुनि हैं। दुःख में इनका मन उद्विग्न नहीं होता। सुख चाहते नहीं वीतराग भय क्रोध स्थितप्रज्ञ हैं। सुरूप कुरूप सब इनके लिए समान हैं। पर सरकार की छवि ऐसी अनुपम है कि उनके देखने से मग्न हो गये। मन के रोकने का अभ्यास है। अतः सरकार के दर्शन करने पर मन को क्षुब्ध जानकर रोकना चाहा। पर रुक न सका। यहाँ न रुकने में ही मन की प्रशंसा है। यथा : अवलोकिहौं सोच बिमोचन को ठगि सी रही जे न ठगे धिक से।

स्यामलगात सरोरुह लोचन। सुन्दरता मंदिर भव मोचन॥
एकटक रहे निमेष न लावहिं। प्रभु कर जोरे सीस नवावहिं॥२॥

अर्थ : श्याम शरीर कमल से नेत्र सुन्दरता के निवास संसार से छुड़ानेवाले को एकटक देखने लगे। पलक नहीं पड़ती। सरकार हाथ जोड़े प्रणाम कर रहे हैं।

व्याख्या : स्याम सरीर सुभाय सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन। सो उस श्याम स्वरूप को देखते हैं जो कि सुन्दरता का घर है। तथा : कहहु सखी अस को तनु धारी। जो न मोह यह रूप निहारी। और कमल से नेत्र संसार पाश से छुड़ानेवाले हैं। यथा : मामवलोकय पंकज लोचन कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन। ऐसी मूर्ति का सनकादिक एकटक होकर दर्शन कर रहे हैं। पलक भी नहीं गिराते जिसमें निमिष मात्र का भी व्यवधान दर्शन में पड़े और सरकार अत्यन्त श्रद्धा होने के कारण हाथ जोड़े हुए पुनः पुनः नमस्कार कर रहे हैं।

तिन्हकै दसा देखि रघुबीरा। स्रवत नयन जल पुलक सरीरा॥
कर गहि प्रभु मुनिवर बैठारे। परम मनोहर बचन उचारे॥३॥

अर्थ : उनकी दशा सरकार ने देखी कि आंखों से आंसू बह रहा है और शरीर में पुलकावली व्याप्त है। सरकार ने हाथ पकड़ पकड़कर श्रेष्ठ मुनियों को बिठाया। और परम मनोहर वचन बोले।

व्याख्या : सरकार ने उनकी दशा देखी कि आंखों से अश्रु की धारा बह रही है। सात्त्विक भाव हुआ है। शरीर में रोमाञ्च है। इससे उनके आन्तरिक दशा का अनुभव हुआ कि इतने प्रेम में मग्न हैं कि इन्हें इस बात की भी सुधि नहीं है कि उनके लिए सरकार ने अपना उत्तरीय बैठने को बिछा दिया है। न उन्हें बैठने की सुधि है। अतः हाथ पकड़ पकड़कर उन्हें आसन पर बिठाया। तब परम मनोहर

वचन बोले जिसमें मन का सङ्ग श्रवण के साथ हो जाय। रूप से ध्यान खिचकर बातचीत पर आजायँ।

आजु धन्य मैं सुनहु मुनीसा। तुम्हरे दरस जाहिं अघ खीसा ॥
बड़े भाग पाइब सत संगा। बिनहि प्रयास होइ भव भंगा ॥४॥

अर्थ : हे मुनीश ! सुनिये आज मैं धन्य हुआ। क्योंकि आपके दर्शन से पाप कट जाते हैं। बड़े भाग्य से सत्सग की प्राप्ति होती है। उससे अनायास ही संसार मिट जाता है।

व्याख्या : मुख दीखत पातक हरै परसत कर्म बिलाहिं। बचन सुनत मन मोहगत पूरब भाग मिलाहिं। अत: सरकार कहते हैं कि आज मैं धन्य हुआ। उसका कारण भी स्वयं ही देते हैं कि आप लोगों के दर्शन से पाप नष्ट हो जाते हैं और पुण्य की वृद्धि होती। क्योंकि सत्सङ्ग की प्राप्ति थोड़े पुण्यवालो को नहीं होती। सन्त तो सभी जगह सदा सुलभ हैं। यथा : सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा। फिर भी सत्सङ्ग की प्राप्ति नहीं होती। सन्त विभीषणजी सदा लंका मे ही रहे पर राक्षसो को सत्सङ्ग की प्राप्ति न हुई। अतः जब सत्सङ्ग हो वही घड़ी धन्य है। यथा : धन्य घरी सोई जब सत सगा। सत्सङ्ग का माहात्म्य कहते हुए सरकार बतलाते हैं कि सत्सङ्ग द्वारा आवागमन के नष्ट होने मे प्रयास नहीं होता। अन्य साधनों से भी भव भङ्ग होता है। पर वह अधिक प्रयाससाध्य है।

दो. संत सग अपवर्ग कर, कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कबि कोबिद, स्रुति पुरान सद ग्रंथ ॥३३॥

अर्थ : पण्डित कवि वेद पुराण और सद् ग्रन्थ सभी कहते हैं कि सन्त मोक्ष के पन्थ है और कामी संसार के पन्थ हैं।

व्याख्या : सन्त कवि कोविद आप्त हैं। श्रुति पुराण सद्ग्रन्थ आप्तवाक्य हैं। अतः परम प्रमाण हैं। इन सबका यह मत है कि सन्त लोग मोक्ष के मार्गरूप हैं। यथा : मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई। सो जानब सत संग प्रभाऊ। लोकहुँ वेद न आन उपाऊ। इसी भाँति कामी भव के पन्थ रूप हैं। यथा : काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पन्थ। सब परिहरि रघुबीरहिं भजहु भजहिं जेहि सन्त।

सुनि प्रभु बचन हरख मुनि चारी। पुलकित तन अस्तुति अनुसारी ॥
जय भगवंत अनंत अनामय। अनघ अनेक एक करुनामय ॥१॥

अर्थ : प्रभु के वचन सुनकर चारो मुनि हर्षित हुए। पुलकित शरीर होकर स्तुति करने लगे। हे भगवान् ! आप की जय हो। आप अन्तर्हित दोष रहित और पाप रहित हैं। एक हैं और करुणामय है।

व्याख्या : प्रभु के वचन सुनकर चारो मुनि हर्षित हो गये कि जब सरकार ने

श्रीमुख से हमे सन्त कह दिया तो अब हम लोग सचमुच सन्त हो गये। हर्ष से मारे शरीर म पुलक हो गया और लगे स्तुति करने। मन से हर्षित हुए। तन से पुलकित हुए। वचन से स्तुति करने लगे। उत्कर्ष वस्तुत आपका ही है क्योकि आप भगवान् नित्य षडैश्वर्य सम्पन्न हैं। अनादि तो छ पदार्थ है। पर उनम से पाँच सान्त हैं। एक आप ही अनन्त हैं। अत निर्विकार भी आप ही हैं। विकारवान् कभी न कभी अवश्य नाश को प्राप्त होता है। आप ही अनघ हैं अर्थात् शुद्ध सच्चिदानन्द हैं। आप मे विजातीय पदार्थ का मेल नही है। आप सजातीय विजातीय तथा स्वगत भेद से शून्य है। फिर भी माया से अनेक रूप धारण करते हैं इसलिए अनेक भी हैं। आप करुणावतार हैं। यथा करुणामय मृदु राम सुभाऊ।

जय निर्गुन जय जय गुन सागर। सुख मंदिर सुन्दर अति नागर॥
जय इंदिरा रमन जय भूधर। अनुपम अज अनादि सोभाकर॥२॥

अर्थ हे निर्गुण ! आप की जय हो। हे गुण के समुद्र ! आप की जय हो ! जय जय हो ! सुख के घर सुन्दर और अत्यन्त चतुर लक्ष्मीपति आप की जय हो। हे पृथिवी के धारण करनेवाल आप की जय हो। हे अनुपम, अजन्मा अनादि और शोभा की खानि !

व्याख्या आप सत्त्व रजस् तमस् से परे होने से निर्गुण हैं और गुणो के अधिष्ठान होने से गुणसागर है। स्वय आनन्द सिन्धु होने से सुख मन्दिर हैं। सब कुछ करते हुए भी आप सदा निष्क्रिय बने रहते हैं। इसलिए अति नागर हैं अथवा कोसलकुमार होने से अति नागर हैं। यथा जल सीकर महि रज गनि जाही। रघुपति चरित न बरनि सिराही। आप इन्दिरा रमण हैं ?आपके शीलादि गुणको देखकर ही लक्ष्मी ने आपका वरण किया है। यथा अब जानी मैं श्री चतुराई। भजी तुमहि सब देव बिहाई। आप ही शेष कमठ अथवा वाराह रूप से पृथिवी को धारण किये हुए हैं। अत आप ही भूधर हैं। यथा न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यश। आपका जन्म नही होता आप माया मानुप रूप हैं। क्योकि आप अनादि हैं। आपके रूप के लश को पाकर ही अति सुन्दर कहलानेवालो की शोभा है। *यथा संभु बिरंचि बिष्णु भगवाना। उपजहि जासु अंस ते नाना भगवाना। अत* आप शोभाकर हैं।

ग्यान निधान अमान मान प्रद। पावन सुजस पुरान वेद वद॥
तज्ञ कृतज्ञ अज्ञता भंजन। नाम अनेक अनाम निरंजन॥३॥

अर्थ आप ज्ञान के निधान मान रहित हैं। पर अमान को मान के देनेवाले हैं आपके पावन सुयश का वेद वर्णन करता है। आप तत्त्व के ज्ञाता उपकार के माननेवाले और अज्ञता के नाश करनेवाल हैं। आपके अनेक नाम ह फिर भी आप नाम रहित तथा लेप रहित हैं।

व्याख्या आप ज्ञान के निधान हैं क्योकि सबके प्रकाशक हैं। यथा सहज

प्रकास रूप भगवाना। आप अपरिच्छिन्न हैं इसलिए अमान हैं और अमान अर्थात् अहङ्कार रहित सन्तो को मान देनेवाले है। यह सुयश ऐसा पवित्र है कि इसका वर्णन वेद और पुराण करता है। यथा श्रुत भूप विभीषन दीन रहा।

आप ही तत्पद के जानकार हैं। दूसरे को उस पद की जानकारी आप ही की कृपा से होती है। यथा सोइ जानै जेहि देहु जनाई और आप कृतज्ञ हैं। यथा अति कृतज्ञ प्रभु परम सुजाना। आप ही भक्तो से कार्य कराते हैं और आप ही कृतज्ञ होते हैं। आप ही अज्ञानका नाश करते हैं। सर्वनाम होने से आप के अनेक नाम हैं। फिर भी आप अनाम है क्योकि सर्व रूप हैं और निर्लेप हैं।

सर्व सर्व' गत सर्व उरालय। बससि सदा हम कहुँ परिपालय ॥
द्वद बिपति भव फद बिभजय। हृदि बसि राम काम मद गजय ॥४॥

अर्थ आप ही सब है सबमे व्याप्त हैं और सबके हृदय रूपी घर मे वास करते हैं। अत १ हमारा पालन कीजिये। द्वन्द्व विपत्ति और २ ससार के जाल को काट दीजिये। हे रामजी ! हृदय मे वस कर काम और मद को नष्ट कीजिये। भावार्थ यह कि सरकार के हृदय मे निवास करने से ही काम भाग जायगा। सगुण रूप से प्रकट होने से ही कामादिक का नाश होता है।

व्याख्या आप ही व्यापक हैं और आप ही व्याप्य हैं। अत आप ही सर्व हैं और आप ही सर्वगत हैं और आप ही अन्तर्यामी होकर सबके हृदय मे बसते हैं। यथा ईश्वर सर्वभूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। अत हमारा पालन भी आप ही करिये दूसरा कोई पालक हो नही सकता। अब पालन करने की विधि कहते हैं कि सुख दु ख शीतोष्ण म ही द्वन्द्व हैं विपत्ति रूप हैं। १ सो द्वन्द्व को दूर कीजिये और २ ससार का दुस्तर जाल है। इसका नाश हृदय मे बसकर करिये। भावार्थ यह कि सगुण रूप से हृदय मे बसकर हमारा पालन कीजिये।

दो परमानद कृपायतन, मनपर पूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी, देहु हमहिं श्रीराम ॥३४॥

अर्थ हे परमानन्द कृपाके भवन मन से परे और पूर्ण काम श्रीराम अनपायिनी प्रेमाभक्ति हमे कृपा करके दीजिये।

व्याख्या दु खाननुविद्ध सुख रूप आप हैं। आप कृपा के घर हैं। कृपायतन से ही याचना करने से मन कामना पूर्ण होती है। आप मनसे भी परे हैं। अत आप मे ही मनोभिलाप पूर्ण करने का सामर्थ्य है। आप पूर्णकाम हैं जिसकी कामना स्वय पूर्ण न हुई हो, वह दूसरे की कामना क्या पूर्ण करेगा ? प्रेमाभक्ति जिसमे विघ्न न हो उसे कृपा करके दीजिये क्योकि वह क्रियासाध्य नही है कृपासाध्य है। यह दोहा

१ दीपकावृत्ति प्रथम अलकार है।

रूपी कमल : देहु भगति रघुपति अति पावनि । इस पुरइन से निकला है । अतः अनपायिनी भक्ति के गुण पुरइन से ही जाने जायँगे ।

देहु भगति रघुपति अति पावनि । त्रिबिध ताप भवदाप नसावनि ॥
प्रनत काम सुर धेनु कलप तरु । होइ प्रसन्न दीजै प्रभु यह बरु ॥१॥

अर्थ : हे रघुपते ! अति पवित्र भक्ति दीजिये जो कि तीनो ताप और ससार के अभिमान को दूर करनेवाली है । हे प्रणतकी कामना के लिए कामधेनु तथा कल्पवृक्ष ! प्रसन्न होकर प्रभो ! यह वर दीजिये ।

व्याख्या : अति पावनी भक्ति प्रेमाभक्ति है । यथा : प्रेम भगति जल बिनु रघुराई । अभ्यन्तर मल कबहुँ कि जाई । उसी प्रेमा भक्ति से त्रिविध ताप दूर होता है । क्योकि : भगति करत बिनु जतन प्रयासा । ससृति मूल अबिद्या नासा । उसीसे भवदाप दूर होता है । यथा : तेहि बिलोकि माया सकुचाई । करि न सकै कछु निज प्रभुताई ।

सरकार प्रणत के लिए कामधेनु भी हैं और कल्पवृक्ष भी हैं । अर्थात् जगदम्बा तथा जगत्पिता के रूप से कामना पूर्ण करते हैं । यथा : सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू । केवल सेवक के लिए ही सुखद नही प्रणत के लिए भी आप कामधेनु और कल्पवृक्ष हैं । मैं प्रणत हूँ और वर माँगता हूँ । आप अभिमत देनेवाले हैं । यथा : मागत अभिमत पाव जग राउ रक भल पोच । अनपायिनी भक्ति को बड़ी चाह है । इसलिए तीन बार देहु कहा । पहिली स्तुति समाप्त हुई ।

भव बारिधि कुंभज रघुनायक । सेवत सुलभ सकल सुखदायक ॥
मन संभव दारुन दुख दारय । दीनबंधु समता बिसतारय ॥२॥

अर्थ : हे रघुनायक ! आप ससार सागर के लिए अगस्त्य हैं । सेवक को सुलभ हैं और सब सुख देनेवाले हैं । मनसे उत्पन्न हुए दारुण दु खका नाश कीजिये । हे दीनबन्धो ! समताका विस्तार कीजिये ।

व्याख्या : यद्यपि मनुष्यरूप सरकार का है परन्तु अति विस्तृत भवसागर के सोखने के लिए आप अगस्त्यरूप हैं । यद्यपि आपको प्राप्ति अतिदुर्लभ है । यथा : अति दुर्लभ कैवल्य परम पद । तथापि आप सेवक को सुलभ हैं । यथा : सेवत सुलभ सकल सुखदायक । प्रनत पाल सचराचर नायक । सेवक सुखद सुभग सब अगा । और उसे सब प्रकार से सुख देते हैं । यथा : सहज बानि सेवक सुखदायक ।

मन से जो दु:ख उत्पन्न होते हैं वे बड़े कठिन है । यथा : जाने ते छीजहिं कछु पापो । नास न पावहि जन परितापो । एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि । पीडहिं सतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि । सो आप इस दु:ख का नाश कीजिये । आप दीनबन्धु हैं । मैं दीन हो रहा हूँ । आप समता का विस्तार कीजिये । भाव यह कि विषमता के कारण ही मानस रोग पीड़ा दे रहे हैं । समता के विस्तार से इनका आपही आप नाश हो जायगा ।

आस। त्रास इरषादि निवारक। बिनय बिबेक बिरति बिसतारक ॥
भूप मौलि मनि मडन धरनी। देहि भगति ससृति सरि तरनी ॥३॥

अर्थ हे आशा त्रास तथा ईर्ष्यादि के निवारण करनेवाले। विनय विवेक और विरति के विस्तार करनेवाले। पृथिवी को अलकृत करनेवाले राजाओ के शिरोमणि। ससार नदी के लिए नाव रूप भक्ति हमे दीजिये।

व्याख्या आप ईर्ष्यादि मनोविकार को दूर करनेवाले हैं। इष्ट प्राप्ति की आशा और अनिष्ट प्राप्ति का त्रास होता है। दूसरे के उत्कर्ष से ईर्ष्या होती है। जे पामर भये दास आस के ते सबही के चेरे। रघुपति कृपा आस जीति जिन ते सेवक हरि केरे। उत्थायोत्थाय बोद्धव्य महद्भयमुपस्थितम्। मरणव्याधिशोकाना किमद्य निपतिष्यति। मरण व्याधि और शोक किस समय आ पडेगा। इसका त्रास सभी का रहता है। ईर्ष्या के कारण बिना आग के ही मनुष्य जला करता है। सरकार की कृपा से ये सब दोष दूर हो जाते है। केवल दोषापनयन ही नही होता गुणाधान भी होता है। विनय विवेक और विरति का विस्तार होता है। बिनय बडा भारी गुण है। इसी से पात्रता होती है। यथा विनयात् याति पात्रताम्। बिना विवेक के तो मनुष्य आँख रहते अन्धा होता है। यथा तेहि करि विमल बिवेक बिलोचन। और विरति तो ज्ञान और योग का प्रधान साधन है। इन सब गुणो का विस्तार होता है। राम शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ तापनीय श्रुति मे किया गया है राजते यो महीस्थित। इसी बात को भूप मौलि मनि मडन धरनी कहकर स्पष्ट किया गया। अपने चरित्र से राजाओ को धर्ममार्ग का उपदेश देते हैं। यथा राज्यार्हाणा महीभृता धर्ममार्गं चरित्रेण रातीति राम। सो हे रामजी। भक्ति दीजिये जो कि ससार सरिता के लिए तरणी रूप है। नाव पर आरूढ होकर मनुष्य नदी मे विहार करता फिरता है और उसे जल का स्पर्श नही होता। इसी प्रकार भक्त ससार मे रहते हुए भी निर्लेप रहता है। यहाँ तक दूसरी स्तुति है। तीसरी म हाथ लगाते हैं।

मुनि मन मानस हस निरतर। चरन कमल वदित अज सकर ॥
रघुकुल केतु सेतु स्रुति रक्षक। कालकर्म सुभाउ गुन भक्षक ॥४॥
तारन तरन हरन सब दूपन। तुलसिदास प्रभु त्रिभुवन भूपन ॥५॥

अर्थ हे मुनियो के मन रूपी मानससर के हस। आपके चरण कमल ब्रह्मदेव और शङ्कर से वन्दित हैं। आप रघुकुल की पताका हैं वेद रूपी पुल के रक्षक हैं काल कर्म स्वभाव और गुण के भक्षक हैं आप तारण तरण हैं और सब दूषणा के हरण करनेवाले हैं। तुलसीदास के प्रभु तीना लोक के भूषण हैं।

व्याख्या सरकार मुनियो के मन रूपी मानससरोवर के हस हैं। निरन्तर वही निवास करते हैं। मुनिया के मानस की शोभा आप से है और स्वय आपका उसमे

विहार करने मे सुख है। चरणकमल की ऐसी महिमा है कि जगत् के कल्याण करनेवाले ब्रह्मदेव और शङ्कर अपने कल्याण के लिए उनकी वन्दना किया करते हैं।

रघुकुलकेतु कहने से रघुकुल मे अवतार कहा। चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दाशरथे हरौ। रघो कुलेऽखिल राति राजते यो महोस्थित। सेतु स्तुति रक्षक कहने से अवतार का कारण कहा और काल कर्म स्वभाव गुन भक्षक कहने से भव बन्धन का नाश करनेवाला कहा। काल कर्म गुण स्वभाव ही बन्धन है। इन्ही से बँधा हुआ जीव चौरासी लक्ष योनि मे फिरा करता है। इसके आप भक्षक हैं। अत जो तर गये हैं उनके तारनेवाले आप ही है। इसलिए तारण-तरण कहा। सरकार की कृपा से दूषण भूषण हो जाते हैं। यथा दूषन भे भूषन सरिस सुजस चारु चहुँ ओर। और ऐसे कृपा निधान हैं किन्तु आपको तुलसीदास ऐसे शठ की भी सेवा स्वीकार है। सरकार से ही तीनो लोक की शोभा है। अथवा तीनो लोक चरणचिह्न से अंकित हैं। अत त्रिभुवन भूषण कहा। तीसरी स्तुति अधूरी ही रह गयी। आकाक्षा नही प्रकट कर सकें। अत इसका स्वरूप त्रिविक्रम सा है। जिन्होने सम्पूर्ण जगत् दो पैर से नाप लिया। तीसरा अधूरा ही रह गया। उससे राजा बलि को नापा।

दो बार बार अस्तुति करि, प्रेमु सहित सिरु नाइ।
ब्रह्मलोक सनकादि गे, अति अभीष्ट बर पाइ ॥३५॥

अर्थ बार बार स्तुति करके और प्रेम के सहित वन्दना करके सनकादि मुनि अति अभीष्ट वर पाकर ब्रह्म लोक गये।

व्याख्या यह स्तुति सनकादि चारो भाइयो की है क्योकि बार बार स्तुति करना कहते हैं। स्तुति भी प्रेम सहित किया और प्रेम सहित प्रणाम किया। सरकार ने एवमस्तु नही कहा पर अति अभीष्ट वर जो प्रेमाभक्ति थी वह मिल गयी। अत ब्रह्मलोक चल गये। यह श्रवण नक्षत्र है। इसम तीन तारे चमकते हैं १ प्रेम भगति अनपायिनी देहु २ देहु भगति और ३ देहि भगति ये तीन तारे हैं। सेवक सुलभ सकल सुखदायक से फलश्रुति कहा। यथा राम भगतजन जीवन धन से।

सनकादिक बिधिधि लोक सिधाये। भ्रातन्ह राम चरन सिर नाये॥
पूछत प्रभुहि सकल सकुचाही। चितवहि सब मारुत सुत पाही ॥१॥

अर्थ सनकादिक तो ब्रह्मलोक गये। भाइयो ने रामजी के चरणो म सिर नवाया। प्रभु से पूछते हुए सब सङ्कोच करते थे। सब हनुमान्‌जी की ओर देखने लगे।

व्याख्या पूर्व के दोहा का यह पद पुरइन है सनकादिक विधि लोक सिधाये। सरकार ने सनकादिक के आने पर उनका बडा मान किया और उन्हे सन्त सहकर सन्त की स्तुति भी की। इसी से भाइयो के हृदय म सन्त के लक्षण जानने की उत्कण्ठा हुइ। अत तद्विषयक प्रश्न करने के लिए भाइयो ने प्रणाम किया। सरकार

ने जब उन लोगो की ओर देखा तो नीचे देखने लगे। पूछने मे सङ्कोच है क्योंकि सन्त शब्द इतना प्रसिद्ध है कि उसके लक्षण पूछने मे ढिठाई समझी जा सकती है। हनुमान्‌जी के लिए सब माफ है। अतः सब लोग हनुमान्‌जी की ओर देखते हैं कि हम लोगो की ओर से तुम उत्तर दो।

सुनी चहै प्रभु मुख कै बानी। जो सुनि होइ सकल भ्रमहानी ॥
अंतरजामी प्रभु सुख सभ जाना। बूझत कहहु काह हनुमाना ॥२॥

अर्थ: प्रभु के श्रीमुख की वाणी सुनना चाहते है जिसके सुनने से सम्पूर्ण भ्रम की हानि होती है अन्तर्यामी प्रभु ने सब जान लिया। बोले हनुमान्‌जी! कहो क्या बात है।

व्याख्या: प्रभु मुख कमल विलोकत रहही। कबहुँ कृपाल हमहिं कछु कहही। अत सबको श्रीमुख के वचन सुनने की अभिलाषा रहती है। इस समय चित्त मे जिज्ञासा भी उत्पन्न हो गयी है। सकल भ्रम की हानि तो प्रभु की वाणी से ही होगी। उस वाणी मे ही ऐसा प्रभाव है। उपदेश वैचित्र्य नही। वह तो वैसा ही होता है जैसा शास्त्र मे लिखा है।

अन्तर्यामी ईश्वर से कुछ छिपा नही है। यथा: तुम से कछु न छिपी करुना निधि तुम हो अतरजामी। यह जान लिया कि सबको इच्छा है कि हनुमान्‌जी वार्तारम्भ करें। अत. हनुमान्‌जी से पूछते हैं कि तुम ही कहो कि ये लोग क्या कहना चाहते हैं बडे भाई और छोटे भाइयो मे इतना प्रश्रय: अदब होना। यह भारत की सस्कृति है।

जोरि पानि कह तब हनुमंता। सुनहु दीन दयाल भगवंता ॥
नाथ भरत कछु पूछन चहही। प्रस्न करत मन सकुचत अहही ॥३॥

अर्थ: हनुमान्‌जी ने तब हाथ जोड़कर कहा कि हे दीनदयाल भगवान् सुनो। हे नाथ! भरतजी कुछ पूछना चाहते है पर प्रश्न करने मे मन सङ्कुचित हो रहा है।

व्याख्या: हनुमान्‌जी हाथ जोडकर बोले। साक्षात् प्रश्न करने पर चुप नही रह सकते। दीनदयाल भगवान् कहकर सम्बोधन किया। सोचा कि मेरे ऊपर इतनी कृपा कि जहाँ भाई नही बोल सकते वहाँ मेरे बोलने का अधिकार हुआ। निदरि गनी आदर गरीब पै रीति सदा चलि आई। अतः दीनदयाल कहा और अन्तर्यामी होने से भगवान् कहा।

हनुमान्‌जी ज्ञानिनामग्रगण्य हैं। तुरन्त समझ गये कि सब भाइयो का प्रष्टव्यविषयक एक ही है। अभी सन्त का आगमन हुआ है और सरकार ने इतना आदर किया है। अत' सन्त के विषय मे ही सबकी जिज्ञासा है। ऐसे अवसर मे मुख्य प्रश्नकर्ता भरतजी हैं। अत. कहते हैं कि नाथ! भरतजी कुछ पूछना चाहते हैं पर प्रश्न करने मे सङ्कोच कर रहे है। कारण यह है कि वह प्रश्न ऐसा है कि जिसे

सुनकर सरकार कह सकते हैं कि इसे तो तुम जानते हो। फिर व्यर्थ प्रश्न क्यो कर रहे हो।

तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ। भरतहि मोहि कछु अतर काऊ ॥
सुनि प्रभु बचन भरत गहे चरना। सुनहु नाथ प्रनतारति हरना ॥४॥

अर्थ : हनुमान्‌जी! तुम तो मेरे स्वभाव को जानते हो। क्या भरत मे और मेरे मे कोई अन्तर है। प्रभु का वचन सुनकर भरतजी ने चरण पकड़ लिया और बोले हे प्रणतार्तिहरण नाथ!

व्याख्या : सरकार ने कहा कि हनुमान्‌जी! तुम मेरे स्वभाव को जानते हो कि मुझे भरत स्वभाव से ही प्रिय हैं। यथा : राम प्रान प्रिय नाथ तुम्ह सत्य बचन मम तात। जो हनुमान्‌जी ने भरतजी से कहा था उसी की पुष्टि हो रही है। प्राणप्रिय से क्या अन्तर है। सङ्कोच तो अन्तर होने से होता है। जब अन्तर ही नही तब जो चाहो सो बोलो। दूसरी बात यह है कि जब भरत मे और मुझमे अन्तर ही नही तब प्रश्न का उद्‌गम शोक मोह सन्देह कहाँ से होगा।

भरतजी ने यह वचन सुनकर सरकार का चरण पकड लिया। भाव यह कि इन चरणो के आश्रय से ही मेरा कल्याण है अथवा चरण पकडने से प्रणाम अभिप्रेत है। भाव यह कि मैं प्रणत हूँ और सरकार प्रणतार्तिनाशन स्वामी हैं।

दो० नाथ न मोहि संदेह कछु, सपनेहु सोक न मोह।
केवल कृपा तुम्हारिहि, कृपानंद संदोह ॥३६॥

अर्थ : हे नाथ! मुझे कुछ भी सन्देह नही है और शोक मोह तो सपने मे भी नही है। हे कृपानन्द सन्दोह! यह केवल आपकी कृपा का फल है।

व्याख्या : शोक मोह ससारवृक्ष का बीज है। इन्ही के होने से सन्देह भी होता है। सो भरतजी कहते हैं कि ये सब मुझे कुछ भी नही है। बिना सन्देह हो बोध की दृढता के लिए पूछता हूँ। मुझ मे कोई साधन नही है पर सरकार के कृपा की सामर्थ्य ऐसो है कि मुझे ससार की बाधा नही है। सब लोग सरकार को चिदानन्द सन्दोह कहते हैं। पर भरतजी कृपानन्द सन्दोह कहते हैं। निर्गुण ब्रह्म चिदानन्द सन्दोह हैं। पर सगुण ब्रह्म तो कृपानन्द हैं। परोपकारकैवल्ये तोलयित्वा जनार्दनः। गुर्वीमुपकृतिं मत्वा अवतारान् दशाग्रहीत्।

करौं कृपानिधि एक ढिठाई। मैं सेवक तुम्ह जन सुखदाई ॥
संतन्ह कै महिमा रघुराई। बहुबिधि बेद पुरानन्ह गाई ॥१॥

अर्थ : हे कृपानिधे! मैं एक ढिठाई करता हूँ। मैं सेवक हूँ और आप भक्तो के सुख देनेवाले हैं। हे रघुराई! सन्तो की महिमा बहुत भाँति से वेद पुराणो में गायी गयी है।

व्याख्या भरतजी कहते है मैं ढिठाई करता हूँ। आप क्षमा करेंगे। आप कृपा के समुद्र है। कृपा की तरङ्गें उठा करती हैं। मेरी ढिठाई को उन्ही तरङ्गो से ढक लेंगे। जन सुखदायी स्वामी से सेवक ढिठाई कर बैठता हूँ। यथा . आरति मोर नाथ कर छोहू। दुहु मिलि कीन्ह ढीठ हठि मोहू।

वेद पुराणो मे सन्तो की महिमा अनेक प्रकार से वर्णित है। क्योकि : खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा। जितने सद्‌गुण हैं सो सब सब साधु के हैं। अत वेद पुराणो ने उन्ही का गान किया है।

श्री मुख तुम्ह पुनि कीन्हि बडाई। तिन्ह पर प्रभुहि प्रीति अधिकाई ॥
सुना चहौ प्रभु तिन्ह कर लक्षन। कृपासिधु गुन ग्यान बिचक्षन ॥२॥

अर्थ तिस पर आपने श्रीमुख से उनकी बडाई की है। उनपर सरकार की प्रीति भी अधिक है। हे प्रभो ! मैं उनका लक्षण सुनना चाहता हूँ। आप कृपा के समुद्र और गुण तथा ज्ञान मे निपुण हैं।

व्याख्या वेद पुराण मे तो महिमा कथित ही है। तिसपर सरकार ने अभी उनकी कितनी बडाई की है। उनके आने से अपने को धन्य माना। उनके दर्शन से पाप का नाश कहा। उन्हे अपवर्ग का द्वार कहा। उनके बैठने के लिए अपना उत्तरीय बिछा दिया।

अव्याप्ति अतिव्याप्ति और असम्भव दोष वर्जित जो वर्णन है उसी को लक्षण कहते हैं। भरतजी कहते हैं कि मैं सन्तो का लक्षण सुनना चाहता हूँ जिसमे सन्तो की पहिचान्न मे भ्रम न हो। सरकार कृपासिन्धु हैं। कृपा करके बतलाइये। सरकार गुणज्ञान म विचक्षण हैं। दूसरा इस बात को कैसे कहेगा। क्योकि नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जान जथारथ।

सत असत भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई ॥
संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता। अगिनित स्रुति पुरान बिख्याता ॥३॥

अर्थ सन्त और असन्त के भेद को अलग अलग करके हे प्रणतपाल मुझे समझाकर कहिये। हे भाई सन्तन के लक्षण सुनो जो कि असख्य श्रुति तथा पुराणो मे प्रसिद्ध है।

व्याख्या विधि प्रपञ्च गुण और अवगुण मिलाकर बना है। अत गुण दोष का विवेचन बडा कठिन है। भरतजी कहते हैं कि सन्त और असन्त का भेद अलग अलग समझाकर मुझे बतलाइये। आप उसका विवेक कर सकते हैं। अलग अलग गुण दोष को किसी ने देखा नही। जहाँ देखिये वहाँ गुण मे दोष का अनुवेध और दोष मे गुण का अनुवेध देखा जाता है। अत शीघ्र समझ में नही आता। सरकार प्रणतपाल हैं। मैं प्रणत हूँ मुझे समझाकर कहिये।

भरतजी स्वामीभाव रखते हैं। सरकार भ्रातृभाव रखते हैं। अत उत्तर देते हुए भाई सम्बोधन देते हैं। वेदो का कोई अन्त नही है। यथा अनन्ता वै वेदा

भरद्वाज। भगवान् इन्द्र ने कहा कि भरद्वाज वेद का तो अन्त नही है। सो सब मे साक्षात् या परम्परा करके सन्त का ही निरूपण है। पुराणो म भी वही बात है पुराण श्रुति के उपोद्बलक है।

सत असतन्हि के असि करनी। जिमि कुठार चदन आचरनी ॥
काटै परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देइ सुगध बसाई ॥४॥

अर्थ सन्त और असन्त की ऐसी करनी है जैसा कुठार और चन्दन आचरण करते हैं। हे भाई! परशु चन्दन को काटता है और वह अपना गुण सुगन्ध उसमे बसा देता है।

व्याख्या सन्त और असन्त का पहिचान उनकी करणी से होता है। कुठार की भाँति असन्त आचरण करते हैं और चन्दन की भाँति सन्त का आचरण होता है। कुठार चन्दन को काटता है। काटना कष्ट देने की पराकाष्ठा है। सन्त और असन्त दोनो को जड से उपमा दिया। भाव यह कि दोनो जड को भाँति आचरण करते हैं मानो दु ख सुख इन्हे है ही नही। अथवा भाव यह है कि सन्त असन्त के किसी जाति विशेष मे होने का नियम नही है। जड मे भी हो सकते हैं। सन्त वेष सन्त होने का अव्यभिचारी लक्षण नही हैं। सन्त की करणी होना अव्यभिचारी लक्षण है। यथा उमा संत कै इहै बडाई। मद करत जो करै भलाई।

कुठार चन्दन को काटता है। चन्दन काटना जानता ही नही। चन्दन ने कुठार का कुछ बिगाडा नही। चन्दन सबको प्रिय है। इसलिए कुठार उसे काटता है। अपने स्वभाव को कुठार नही छोडता और न चन्दन अपने स्वभाव को छोडता है। अपना गुण कुठार को यथासम्भव दे देता है। कुठार अपना दोष चन्दन को नही दे सकता।

दो तातें सुर सीसन्ह चढत, जग वल्लभ श्री खड।
अनल दाहि पीटत घनहि, परसु वदनु यह दड ॥३७॥

अर्थ इसलिए 'देवताओ के सिर पर चढता है। चन्दन जगत् को प्यारा है और आग म तपाकर हथौडे से पीटते हैं। कुल्हाडे के मुख फल को यह दण्ड जाता है।

व्याख्या चन्दन मे ऐसी शान्ति सहनशीलता और परापकार है। इस कारण देवताओ के सिर पर चढता है। उसके सिर पर चढाने स दवता प्रसन्न होत हैं। संसार को प्यारा है। लक्ष्मी का अश कहा जाता है। कुठार की करणी कुठार को दुर्दशा का कारण है। उसके मुख फल को पहिल आग मे तपाया जाता है। पीछे निहाई पर रखकर हथौडे से पीटते हैं। यह दण्ड कुठार को मिलता है।

बिषय अलपट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर ॥
सम अभूत रिपु बिमद बिरागी। लोभामरष भय त्यागी ॥१॥

अर्थ : विषय से तृष्णा रहित शील और गुणो की खान है। पराया दु ख देखकर दु.खी और सुख देखकर सुखी होते हैं। समान भाव रखनेवाले अजातशत्रु मद से रहित और वैराग्यवान् होते हैं तथा लोभ, अमर्ष, हर्ष और भय को त्यागे रहते हैं।

व्याख्या : उमा सन्त कै इहैं बड़ाई। मंद करत जो करै भलाई। यह सन्त का पहिला लक्षण है। अब दूसरा करते हैं। सन्त लोग भी जीवन धारण के लिए कुछ विषय का सेवन करते ही हैं। पर उसमे आसक्त नही होते। इसलिए विषय अलम्पट कहा। सेवत बिषय विवर्ध जिमि नित नित नूतन मार। यह बात उसमें नही होती। सदाचार और सद्गुण के तो वे खानि ही होते हैं। खान मे कितनी वस्तु होती है, सो गिनायी नही जा सकती। इसी भाँति सन्त के गुणो की सख्या नही है। यथा : सुनु मुनि साधुन के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद स्रुति तेते। दु शील निर्गुणी ऐसे नही हो सकते। वे अपने दु ख सुख को नही गिनते। पराये सुख से सुखी और पराये दु ख से दु खी होते हैं। यथा : पर दु ख द्रवहिं सत सुपुनीता।

सम से शान्ति कहा। यथा : तुलसी जो पानी भया, बहुरि न पावक होय। वे अजातशत्रु होते हैं उनका कोई शत्रु नही होता। वे सारे ससार को निज प्रभुमय देखते हैं। यथा : निज प्रभु मय देखहिं जगत, कासन करहिं बिरोध। न उन्हे मद होता है न राग होता है। उन्हे विराग का भी मद नही। वे सभी विकार से रहित होते हैं। लोभ अमर्ष हर्ष और भय को उन लोगो ने त्याग किया है।

कोमल चित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया॥
सबहि मान प्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी॥२॥

अर्थ : उनका चित्त कोमल होता है। दीन पर दया करते हैं। मनसा वाचा कर्मणा मुझमे निष्कपट भक्ति करते हैं। सबको मान देते हैं और स्वय मान से दूर रहते हैं। हे भरतजी ! ऐसे प्राणी मुझे प्राण के समान हैं।

व्याख्या : उनका ऐसा कोमल चित्त होता है कि दूसरे का दु ख देख नही सकते। यथा : सत हृदय नवनीत समाना। कहा कविन्ह परि कहै न जाना। निज परिताप द्रवै नवनीता। पर दु ख द्रवहिं सत सुपुनीता। अत. दीनो पर उनकी सदा दया रहती है। कहा गया है कि कपट रहित प्रेम मनुष्य लोक मे नही होता। यथा : कैतवरहितं प्रेम न भवति मानुषे लोके। यदि भवति कस्य विरहो विरहे सत्यपि को जीवति। पर सन्तो के भगवच्चरणारविन्द मे मनसा वाचा कर्मणा कैतव रहित प्रेम होता है।

वे लोग सबके सम्मान करनेवाले होते हैं। स्वय मान नही चाहते। यथा : मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवत। भरतजी ने कहा था : तिन पर प्रभुहि कृपा अधिकाई। उसी बात की पुष्टि करते हुए सरकार कहते हैं कि ऐसे लोग मुझे प्राण के समान प्रिय है।

विगत काम मम नाम परायन । सान्ति विरति विनती मुदितायन ॥
सीतलता सरलता मयत्री । द्विज पद प्रेम धरम जनयित्री ॥३॥

अर्थ : कामना रहित होकर मेरे नाम मे लगे रहते हैं। शान्ति वैराग्य विनय और मुदिता के तो मानो घर ही है। शीतलता सरलता मैत्री और धर्म को उत्पन्न करनेवाली ब्राह्मणों के चरणो मे प्रीति।

व्याख्या : अब तीसरा प्रकार कहते हैं। विगत काम से विषय अलम्पट कहा। ये नाम के उपासक हैं। इनका सिद्धान्त है ब्रह्म राम ते नाम वड वरदायक वरदानि। रामचरित सत कोटि मँह लिय महेस जिय जानि। शान्ति से शम विरति से वैराग्य कहा। विनती से सबहि मान प्रद आपु अमानी कहा। मुदितायन से पर दुःख दुःख सुख सुख देखे पर कहा।

शीतलता से : तुलसी जो पानी भया वहुरि न पावक होइ कहा। सरलता से महात्मा होना कहा। यथा : मनस्येकं वचस्येक कर्मण्येकं महात्मनाम्। मैत्री से धर्मात्माओं पर प्रेम कहा। द्विजपद प्रीति से हरितोषण व्रत कहा। यथा : हरितोषन व्रत द्विज सेवकाई। पुन्य एक जग मह नही दूजा। मन क्रम वचन विप्रपद पूजा। जिसे ब्राह्मण के चरण में प्रीति ही नही वह धर्मात्मा हो नही सकता।

ये सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानहु तात संत संतत फुर ॥
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष वचन कबहूँ नहि बोलहिं ॥४॥

अर्थ : ये सब लक्षण जिनके हृदय मे बसते हैं हे तात! उसे सच्चा सन्त जानना। शम दम नियम और नीति से कभी चलायमान नहीं होते और कठोर वचन कभी बोलते नही।

व्याख्या : ये आठो सब सन्त के लक्षण हैं। असन्त इनकी नकल नही कर सकता। तिलक छाप तो वह भी लगा लेता है। सन्तों के हृदय में उपर्युक्त लक्षण बसते हैं। कभी इनका वियोग नही होता। नीके हैं साधु सबै तुलसी पै तेइ रघुबीर के सेवक साँचे। कवितावली ७ ११८ :

अब चौथा प्रकार कहते हैं। शम अन्तरिन्द्रिय दमन को कहते हैं। दम बाह्येन्द्रिय दमन को कहते हैं। शौचसन्तोषतप.स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः। नीति से सदाचार अथवा न्यायप्रियता कहा। यथा : नीति विरोध मोहाय न मोही। कठोर वचन तो बोलते ही नही। क्रुद्धयन्त न प्रतिक्रुध्येत् आक्रुष्ट कुशल वदेत्। क्रोध के बदले में क्रोध न करे। गाली देनेवाले का भी कल्याण मनावे।

दो. निंदा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रान प्रिय, गुन मंदिर सुख पुंज ॥३८॥

अर्थ : जिन्हें निन्दा और स्तुति दोनों बराबर और जिनकी मेरे चरणकमलों में ममता है। ऐसे गुणमन्दिर सुखपुञ्ज सज्जन मुझे प्राण प्रिय होते हैं।

व्याख्या : जिन्हे निन्दा या स्तुति सुनकर चित्त पर किसी प्रकार का प्रभाव नही पडता। संसार में कहीं ममता नही केवल सरकार के चरणो में जिन्हें ममता है। यथा : सब कर ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी। ऐसे सज्जन गुणमन्दिर सुखपुञ्ज भगवान् में ममता करने से स्वयं गुणमन्दिर सुखपुञ्ज हो जाते हैं। उन पर भगवान् की प्राण के समान ममता होती है।

इस प्रकरण में भगवान् ने तीनों प्रकार के सन्तों अर्थात् भक्तियोगी ज्ञानयोगी और कर्मयोगियो के लक्षण कहे। बिषय अलंपट सील गुनाकर से लेकर भरत प्रानसम मम ते प्रानी तक भक्तियोगियों का वर्णन है। उसमे कहा भी गया है कि : मम बच क्रम मम भगति अमाया। और बिगत काम मम नाम परायन से लेकर : सन्त सतत फुर तक ज्ञानी भक्त का वर्णन है। क्योंकि उनका परम शरण नाम बतलाया गया है और नाम से ज्ञानमार्ग की प्राप्ति होती है। यथा : ज्ञानमार्गं तु नामतः। रामतापनीये। तथा संत सतत फुर कहकर वही भाव द्योतित किया। जो कि : ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् कहकर प्रकाशित किया गया है। इसी भाँतिः सम दम नियम नीति नहि डोलहि। से : गुन मंदिर सुख पुंज कर्मयोगी भक्त का वर्णन है। क्योकि नीति नहि डोलहि तथा गुणमन्दिर शब्दो से उनका क्रियाकौशल द्योतित करते हैं। योगः कर्मसु कौशलम्।

सुनहु असंतन केर सुभाऊ। भूलेहु संगति करिअ न काऊ॥
तिन्हकर संग सदा सुखदाई। जिमि कपिलहि घालै हरहाई॥१॥

अर्थ : असन्तो का स्वभाव सुनो। भूलकर भी उनका साथ कभी न करना। उनका साथ सदा दुःखदायी है। जैसे हडहा गाय कपिला का नाश करती है।

व्याख्या : यहाँ तक सन्तो का लक्षण कहा। अबः संत असंत भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई। इस प्रश्न का उत्तर दे रहे हैं। यहाँ स्वभाव ही लक्षण है। लक्षण कहने के पहले सावधान करते हैं कि लक्षण घटता है या नही इस बात के जानने के लिए भी साथ न करना। चूक से संगति हो जाय तो लक्षण मिलते दूर हो जाना।

असन्तो का सग सदा अर्थात् दोनो लोको में दुःख देनेवाला है। सग करने से उनके साथ रहना ही होगा। तब वे उसी भाँति विपत्ति मे डालेंगे जैसे हड़हा के साथ कपिला का नाश होता है। हड़हा दुष्ट गाय दूध न दे। लात भी मारे। रात को दूसरो का खेत चरे। यह कथा प्रसिद्ध है कि हड़हा फुसलाकर कपिला को खेत चरने ले गयी। खेत के मालिक को आते देखकर हडहा तो भाग गयी और कपिला बिचारी भाग न सकी और पकडी गयी।

खलन्ह[1] हृदय अति ताप बिसेखी। जरहि सदा पर संपति देखी॥
जहँ कहुँ निंदा सुनहि पराई। हरषहि मनहु परी निधि पाई॥२॥

---

१. यहाँ उल्लास. गुण से दोष अलङ्कार है।

अर्थ : खलो के हृदय मे अत्यन्त विशेष ताप रहता है। सदा परायी सम्पत्ति देखकर जला करते हैं। जहाँ कही परायी निन्दा सुनते हैं तो ऐसे हर्षित होते हैं मानो पड़ी हुई निधि मिल गयी।

व्याख्या : ससार का ताप तो सभी को सन्तप्त करता है। पर उनमें विशेषता है वे परायी सम्पत्ति देखकर जला करते हैं। ससार मे सम्पत्तिवालो की कमी नही है। इसलिए खलो को अति विशेष ताप होता है। उनके दु ख का पारावार नही।

बडे परिश्रम करने पर भी निधि का इकट्ठा होना दुर्लभ है। सो यदि अनायास पडी हुई निधि किसी को मिल जाय तो उसे बडा भारी हर्ष होता है। परिश्रम कुछ न पडा और चिराभीप्सित पदार्थ की प्राप्ति हो गयी। वैसी ही प्रसन्नता खलो को परायी निन्दा सुनने से होती है। दूसरे को अपयश देने मे उन्हे बडा परिश्रम करना पडता है। तब जाकर कही उसकी निन्दा प्रख्यात होती है। सो उन्हे परिश्रम भी कुछ नही करना पड़ा और दूसरे की निन्दा सुनने मे आगयी। इससे उनके आनन्द का ठिकाना नही।

काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन ॥
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सो ॥३॥

अर्थ : काम क्रोध मद और लोभ ही उनका परम शरण है। वे निर्दयी कपटी कुटिल और मल के घर हैं। निष्कारण वैर सबसे रखते हैं। जो हित करता है उससे भी वैर रखते हैं।

व्याख्या : खलो का परम शरण काम क्रोध और लोभ है : जे ताकहिं पर धन पर दारा। पर धन और परदारा ही उनका परम लक्ष्य है। दया के समान दूसरा धर्म नही। सो दया उनके पास नही फटक सकती। परधन परदारा की प्राप्ति सरलता से नही होती। जिससे उनकी प्राप्ति होती है वह कपट है। कपट सरल पुरुष कर नही सकता। वह तो कुटिल से ही सम्भव है। सो उन्हे कपट और कुटिलता का घाटा नही है। लोभ परायण होने से मलायन हैं। लोभी क्या नही करता।

उनको वैर करने के लिए कारण नही ढूँढना पडता। प्राणीमात्र उन्हे वैरी मालूम पड़ते हैं। वे आजन्मते परद्रोहरत हैं। वे सहज सुहृद से भी वैर करते हैं। दु ख देने का उनका स्वभाव है। उसमे उन्हे आनन्द मिलता है। बिना कारण कार्य होता नही। पर वे ऐसे समर्थ हैं कि बिना कारण वैर पैदा कर लेते हैं।

झूठइ लेना झूठइ देना। झूठहि भोजन झूठ चबेना ॥
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाहि महा अहि हृदय कठोरा ॥४॥

अर्थ : झूठ ही ग्रहण करते हैं। झूठ ही देते हैं। झूठ ही उनका भोजन है और चर्वण भी झूठ ही है। मोर की भाँति मीठी वाणी बोलते हैं और हृदय ऐसा कठोर है कि बडा साँप भी खा जाते हैं।

व्याख्या : लेना देना का अर्थ व्यवहार है। सब व्यवहार उनका झूठा है। सत्य के निकट ही नही जाते। बिना झूठ के उनका पेट नही भरता। न मनोविनोद होता है। लेंगे तो झूठ कहकर। कभी सच्ची बात न कहेंगे। देंगे तब भी झूठ बात कहकर। झूठ से ही जीते हैं झूठ से ही तोष है।

सम्पूर्ण शरीर पर सज्जन के चिह्न हैं। देखे सो मोहित हो जायँ और बोली भी बडी मीठी परन्तु मन घोर है। उनकी उपमा मोर से दी गयी है। जिसका ऊपरी स्वरूप बडा सुन्दर होता है। पर हृदय ऐसा कठोर है कि विषधर सर्प खाकर पचा जाता है।

दो परद्रोही परदार रत, परधन पर अपवाद।
ते नर पावर पापमय, देह धरे मनुजाद ॥३९॥

अर्थ जो परद्रोही, परदार, परधन और पर अपवाद मे रत हैं। वे मनुष्य पामर पापमय हैं। वे मनुष्य रूप मे राक्षस हैं।

व्याख्या मनुष्य के खानेवाले को मनुजाद कहते हैं। यथा . खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। वे यदि मनुष्य रूप धारण कर लें तो उनका पहिचानना कठिन है। सरकार उनकी पहिचान बतलाते हैं कि ये लक्षण जिनमे हो उनसे सावधान रहना। वे ही नरदेह धरे मनुजाद हैं। जो दूसरे के द्रोह मे दत्तचित्त रहता हो। दूसरे की स्त्री और धन मे जो रत हो। जो दूसरे की निन्दा करने मे सुख मानता हो। वह वस्तुत मनुजाद है। राक्षस है। केवल शरीर उसका मनुष्य सा है। यथा . करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं कर माया।

लोभइ ओढन लोभइ डासन। सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न ॥
काहू के जो सुनहि बडाई। स्वास लेहिं जनु जूडी आई ॥१॥

अर्थ उनका लोभ ही ओढना और लोभ ही बिछौना है। वे लिङ्ग और पेट मे ही लगे रहते हैं। उन्हें यमपुर का डर नहीं होता। यदि किसी की बडाई सुने तो ऐसा श्वास लेते हैं मानो उन्हे जडैया बोखार आगया हो।

व्याख्या शयन काल मे भी उन्हे लोभ नही छोडता। लोभ मे ही उन्हे विश्राम मिलता है। सब बातें ही उनकी विलक्षण हैं। उनका भोजन विचित्र। उनका विश्राम विचित्र। दिन रात जिह्वा और उपस्थ के फेर मे पडे रहते हैं। उन्हे यमपुर का भय नही है। वे कहते हैं कि यमपुर की कल्पना झूठी है। मानो उनके न मानने से यमपुर का अस्तित्व ही लुप्त हो जायगा।

दूसरे की निन्दा सुनने से उन्हे बडा हर्ष होता है। यदि कही उन्हे दूसरे की प्रशसा सुनायी पडे तो उन्हे बडा दाह होता है। कुछ कर सकते नही। बडाई करनेवाले का पक्ष प्रबल होता है तो लम्बी लम्बी साँस लेने लगते हैं। विकल हो जाते हैं। उनकी दशा ऐसी हो जाती है मानो उन्हे जडैया बोखार आगया हो।

जब काहू के देखै बिपती । सुखी भये मानहुँ जग नृपती ॥
स्वारथ रत परिवार बिरोधी । लम्पट काम लोभ अति क्रोधी ॥२॥

अर्थ : यदि किसी की विपत्ति देखें तो ऐसे सुखी हो मानो उन्हे संसार भर का राज्य मिल गया हो। वे स्वार्थ मे लगे हुए परिवार के विरोधी होते हैं। वे काम लोभ मे आसक्त अत्यन्त क्रोधी होते हैं।

व्याख्या : निन्दा सुनने से तो निधिप्राप्ति का उन्हे सुख होता है और यदि कही किसी की विपत्ति देखने का सौभाग्य हो जाय तो ऐसे कृतकृत्य हो जाते हैं मानो उनको ससार का एकच्छत्र राज्य मिल गया। अपने सुख से सुखी नही दूसरे के दु.ख से ही उन्हे सुख मिलता है। विचित्र जीव होते हैं।

वे सीधे सीधे अपना स्वार्थ देखते हैं। परिवार का स्वार्थ एक दूसरे पर निर्भर रहता है। इसलिए वे परिवार के विरोधी होते हैं। परिवार के भी धन और स्त्री हरण मे उन्हे हिचक : आगा पीछा नही होता। तनिक सी भी अपनी हानि उन्हे सह्य नही है। अत. क्रोध की अति मात्रा उनमे होती है।

मातु पिता गुरु बिप्र न मानहि । आपु गये अरु घालहिं आनहि ॥
करहिं मोहवस द्रोह परावा । संत सग हरि कथा न भावा ॥३॥

अर्थ : माँ बाप गुरु और ब्राह्मण को नही मानते। आप तो नष्ट ही हैं दूसरे को भी नष्ट करते हैं। मोहवश दूसरे से द्रोह करते हैं। उन्हे अच्छो का साथ और भगवान् की कथा अच्छी नही लगती।

व्याख्या : माता पिता और आचार्य ये तीनो गुरु हैं। इन्हे देवता मानना चाहिए। वेद कहते हैं मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। आचार्य देवो भव। सब वर्णों के ब्राह्मण गुरु होते हैं। उनकी सेवा करना हरितोषण व्रत है। सो वे किसी को नही मानते। सन्मार्ग से पतित हो गये हैं और अनेक युक्तियाँ देकर दूसरो को भी ऐसा पाठ पढाते हैं कि वह भी उन्ही की भाँति पतित हो जाय।

दूसरे का द्रोह अज्ञान के वश होकर करते हैं। उन्हे इस बात का ज्ञान नही है कि परद्रोह बडा पाप है। अथवा निष्काम द्रोह करते हैं विचार नही करते कि द्रोह का कोई कारण नही है। खलो का यह प्रधान लक्षण है कि उन्हे सन्त का सङ्ग और भगवान् की कथा अच्छी नही लगती। जिन्हे सन्त का सङ्ग न रुचे भगवत्कथा मे जिसकी प्रीति न हो वे असन्त है। इसमे सन्देह नही। यथा ' जौ करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहि नीद जुडाई होई। जडता जाड बिषम उर लागा। गयेहुँ न मज्जन पाव अभागा।

अवगुन सिंधु मंद मति कामी । बेद बिदूषक पर धन स्वामी ॥
बिप्र द्रोह सुर द्रोह बिसेषा । दंभ कपट जिअ धरे सुवेषा ॥४॥

अर्थ : वे अवगुण के समुद्र होते हैं। उनकी बुद्धि मन्द होती है। वे कामी वेदो

की खिल्ली उडानेवाले पराये धन के स्वामी होते हैं। वे विशेष रूप से ब्राह्मण द्रोह और देव द्रोह करते हैं। उनके हृदय मे तो दम्भ कपट रहता है। पर वेष अच्छा बनाये रहते है।

व्याख्या : अवगुण के तो समुद्र ही हैं। उन्ही से निकलकर अवगुण संसार मे फैला है। वे मन्दमति हैं। अवसर चूक रहे हैं। फिर मनुष्य देह नही मिलने की। विषयी हैं। विषय सुख को ही सुख सर्वस्व मान रक्खा है। भाँडो की भाँति वेद की दिल्लगी उड़ाया करते हैं। वेद पाठ का नकल करते हैं और दूसरे का धन तो मानो उन्ही का है। वे द्रोही तो सबके होते हैं पर ब्राह्मण और देवता पर उनकी अधिक चोट होती है। ब्राह्मण और देवता पर श्रद्धा रहने से ही ससार अधोगति प्राप्ति से बच सकता है। ब्राह्मण द्रोह और देव द्रोह करना और विश्व द्रोह करना एक ही बात है। क्योकि ऐसा करने से दैवी सहायता मिलनी बन्द हो जाती है और ससार विपत्ति के गर्त मे जा पडता है। बाहर से साधु वेष बनाये हुए हैं। पर भीतर उनके दम्भ और कपट भरा हुआ है।

दो. ऐसे अधम मनुज खल, कृत जुग त्रेता नाहि।
द्वापर कछुक बृंद बहु, होइहहि कलिजुग माहि ॥४०॥

अर्थ : ऐसे अधम खल मनुष्य सत्ययुग और त्रेता मे नही होते। द्वापर मे थोडे से ऐसे होते हैं और इनकी बहुतायत कलियुग मे होती है।

व्याख्या : ऐसे अधम खल राक्षसो मे भले ही हो पर मनुष्यो मे ऐसे सत्ययुग और त्रेता मे नही होते। क्योकि ये दोनो युग उनकी उत्पत्ति के अनुकूल नही है। यथा : सुद्ध सत्त्व समता बिग्याना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना। सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा। सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा। द्वापर मे मनुष्य जाति मे ऐसे अधम खल उत्पन्न हो जाते हैं क्योकि : बहुरज स्वल्प सत्व कछु तामस। द्वापर हर्ष सोक भय मानस। पर कलियुग मे ऐसे मनुष्य बहुत होते हैं क्योकि : तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलिसुभाव बिरोध चहुँ ओरा।

परहित सरिस धरम नहि भाई। परपीडा सम नहि अधमाई ॥
निरनय सकल पुरान वेद कर। कहेउ तात जानहि कोबिद नर ॥१॥

अर्थ : दूसरे के हित करने के समान कोई धर्म नही है। दूसरे को पीडा देने के समान कोई पाप नही है। सब वेद और पुराण का यही निर्णय है सो मैंने कहा। इसे पण्डित लोग जानते हैं।

व्याख्या : सब धर्मों से बडा धर्म है परोपकार। परम धर्म स्रुति बिदित अहिंसा। धर्म कि दया सरिस हरिजाना। इत्यादि वचन इसी के पोषक हैं। दयावन्त प्राणी ही परोपकार कर सकता है। निर्दय से क्या उपकार होगा। इसी भाँति : नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहि ते सहहि महाभव भीरा। हिंसा पर अति प्रीति तिन

के पापहिं कौन मिति इत्यादि वचन परपीडा की अधमाई के द्योतक हैं। निर्दय पुरुष ही परपीडा कर सकता है।

श्रीरामजी कहते हैं कि सब पुराण और वेदो का यही निर्णय है। यथा : अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्। परोपकार. पुण्याय पापाय परपीडनम्। वेदो के विभाग करनेवाले तथा सब पुराणो के रचयिता व्यासजी ने यही निर्णय किया। इसीलिए यही वेद और पुराण का निर्णय है। व्यासजी मुनियो मे श्रेष्ठ हैं। यथा : मुनीनामप्यह व्यास'। अत: इनसे बडा पण्डित भी कौन है? यह सरकार की मर्यादापालकता है कि अपने वचन के प्रमाण मे वेद पुराण और पण्डितो का मत उद्धृत करते हैं।

नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा॥
करहि मोह बस नर अघ नाना। स्वारथ रत पर लोक नसाना॥२॥

अर्थ : मनुष्य का शरीर धारणकर जो दूसरे को पीडा देते हैं वे ससार का महाकष्ट भोगते हैं। मोहवश होकर मनुष्य अनेक प्रकार के पाप करते हैं। स्वार्थ मे लोक का नाश कर डालते हैं।

व्याख्या : पशु आदि स्वभाव से परपीडा करते हैं। उन्हे उसका प्रत्यवाय नहीं होता। क्योकि उन्हे ज्ञान नही है। उनका शरीर ससार सागर के सन्तरण का साधन नही है। मनुष्य शरीर तो बडे भाग्य से मिलता है। कभी ईश्वर करुणा करके नरशरीर दे देते हैं। यह शरीर साधन धाम और मोक्ष का द्वार है। इसे पाकर भी जो परपीडा मे रत हुआ वह तो आत्मघाती की गति को प्राप्त होगा। अर्थात् उसे कुत्ते शूकर आदि की योनि प्राप्त होगी। यथा . जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ। सो कृत निंदक मद मति आतम हन गति जाइ।

जितनी मानसिक व्याधियाँ हैं उनका मूल मोह है। नर शरीर मे सब सामान ससार सन्तरण का भगवान् जुटा देते हैं। यथा : नर तन भव बारिधि कहँ बेरो। सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो। कर्णधार सद्गुरु दृढ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा। सो सबका निरादर करके पाप करते है। स्वार्थ के लिए परमार्थ बिगाडते हैं।

काल रूप तिन कहुँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ कर्म फल दाता॥
अस बिचारि जे परम सयाने। भजहिं मोहि ससृति दुख जाने॥३॥

अर्थ : उनके लिए मैं काल रूप हूँ। शुभ और अशुभ कर्मों का फल देता हूँ : ऐसा विचारकर बडे सयाने लोग ससार को दु खरूप जानकर मुझे भजते हैं।

व्याख्या : जो नर शरीर धारण करके संसार सागर मे ही पडे है पार जाने का यत्न करते ही नहीं उनसे शुभाशुभ कर्म होते ही रहते हैं। उनके कर्मों का मैं कालरूप होकर फल देता हूँ। जिस भाँति वृक्ष काल पाकर फलते है उसी भाँति काल पाकर कर्म भी फल देते हैं। उस फल भोगने मे फिर कर्म होता है। फिर उसका फल भोगना पडता है। इस भाँति उन्हें कभी शान्ति की प्राप्ति नही होती।

परमेश्वर ही फलदाता काल है। काल कोई दूसरी वस्तु नही है। यथा : कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धः लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्त'। जब विश्वरूप के दर्शन से अर्जुन विस्मयाविष्ट हुए। पूछने लगे कि हे उग्ररूप आप कौन हैं? तो भगवान् ने कहा मैं काल हूँ लोक के सहार करने मे प्रवृत्त हुआ हूँ।

इसलिए सयाने लोग तो स्वार्थ के वशीभूत नही होते। पाप नही करते पुण्य करते हैं। पर पुण्य भी तो बन्धन का कारण है। उसका भी फल तो भोगना ही पडेगा। सोने की बेडी भी तो बेडी है। इसलिए परम सयाने लोग संसार को दु खमय जानकर परमेश्वर को भजते हैं जिसमे बन्धन से विनिर्मुक्त हो जाय।

त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक। भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक ॥
संत असंतन के गुन भाखे। ते न परहि भव जिन्ह लखि राखे ॥४॥

अर्थ · शुभ और अशुभ देनेवाले कर्म को छोडकर मुझ सुरनर मुनि नायक को भजते हैं। मैंने सन्त और असन्तो के गुण कहे। जिन्होने इन्हे जान रखा है ये संसार मे नही पडते।

व्याख्या : सरकार के भजन करनेवाले काम्य कर्म और निषिद्ध कर्मों का त्याग करते हैं। सरकार सुर नर और मुनि के स्वामी हैं। सब के अभीष्ट की पूर्त्ति करते हैं। उनके भजन से अभीष्ट की पूर्ति भी होती है और ससार सागर का सन्तरण भी होता है।

श्रीरामजी कहते है कि मैंने सन्त और असन्तो के गुण कहे। इन गुणो से सन्त और असन्त का पहिचान हो जायगा। जो लोग इन गुणो को पृथक् पृथक् मन मे बिठा लेंगे वे खल के लक्षण से बचेंगे। अतः ससार सागर मे गिरने से बच जायँगे।

दो. सुनहु तात माया कृत, गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं, देखिय सो अविवेक ॥४१॥

अर्थ : हे तात सुनो माया के किये हुए गुण और दोष बहुत हैं। विवेक यही है कि गुण और दोष दोनो न देखे जायँ। उनका देखा जाना ही अविवेक है।

व्याख्या : न सब गुण ही कहे जा सकते हैं और न दोष ही कहे जा सकते हैं। ये दोनो माया के कार्य हैं। इनकी सख्या नही है। मिथ्या माया के कार्य भी मिथ्या ही हैं। मिथ्या मृगजल का वर्णन भी मिथ्या है। वे माया के कार्य हैं। अत इन पर दृष्टिपात न करना ही विवेक है। माया के कार्य मे सलग्न होना अविवेक है। यहाँ अविवेक के विरुद्ध प्रयुक्त होने से गुण का अर्थ विवेक करना चाहिए। जिसे नित्यानित्य वस्तु का विवेक है वह माया के कार्य अनित्य गुण दोष पर दृष्टिपात नही कर सकता। यथा : ग्यान मान जहँ एको नाही। देख ब्रह्म समान सब माही।

श्रीमुख बचन सुनत सब भाई। हरषे प्रेमु न हृदय समाई ॥
करहिं बिनय अति बारहि बारा। हनूमान हिय हरष अपारा ॥१॥

अर्थ : सरकार के श्रीमुख के वचन सुनकर सब भाई हर्षित हुए। उनके हृदय प्रेम समाता नही बार बार विनय करते हैं। हनुमान्‌जी के हृदय मे अपार हर्ष है।

व्याख्या : तीनो भाई प्रभु के मुख की वाणी सुनना चाहते थे। यथा : सुनी चहैं प्रभु मुख कै बानी। जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी। सो सुना। बात जानी हुई पर प्रभु के मुख से सुनकर उसी बात से ऐसा हर्ष हुआ कि हृदय मे समाता नही। यदि हृदय मे समाता तो चुप रह जाते। नही समाया। इसलिए अति विनय बारम्बार कर रहे हैं। अति विनय से श्रोता की कृतकृत्यता कहा और बारम्बार से कृतज्ञता कहा। हनुमान्‌जी के हर्ष का पारावार नही है। वे आनन्द मे मग्न हैं। हनुमान्‌जी अति प्रेमी हैं। अत उन्हे अपार हर्ष हुआ। साधु सन्त के रखवारे रामदुलारे हैं। अत अपार हर्ष है।

पुनि रघुपति निज मंदिर गये। एहि बिधि चरित करत नित नये॥
बार बार नारद मुनि आवहिं। चरित पुनीत राम के गावहिं॥२॥

अर्थ : तब रामजी अपने महल मे गये। इस भाँति नित्य नये चरित्र करते हैं। नारद मुनि बार बार आते हैं और रामजी के पवित्र चरित्र का गान करते है।

व्याख्या : सनकादि मिलन और सन्त असन्त गुण वर्णन के बाद सरकार महल मे पधारे। गुणातीत अरु भोग पुरदर हैं। सो चरित्र मे दोनो बातें दिखलायी। सायकाल का समय है। अत घर गये। इस विधि से नित्य नये सुखदायक चरित्र करते हैं। यहाँ प्रादेशमात्र दिखला दिया।

नारद मुनिजी तो बार बार आते हैं। पर वह आना दूसरा है और मिलने के लिए आना दूसरी बात है। सनकादि तो एक बार मिलने के लिए आये। उन्हे अनपायिनी भक्ति मांगना था। सो मिल गयी। पर नारदजी बार बार आते थे। सरकार के सामने उनका चरित्र गान करते थे। क्योकि जानते हैं कि सरकार को अपने भक्तो का गान बडा प्रिय है और उसके गान से अपनी वाणी भी पुनीत और सुफल होती है।

नित नव चरित देखि मुनि जाही। ब्रह्मलोक सब कथा कहाही॥
सुनि बिरचि अतिसय सुख मानहि। पुनि पुनि तात करहि गुन गानहि॥३॥

अर्थ : मुनिजी नित्य नये चरित्र देखकर जाते हैं और ब्रह्मलोक मे सब कथा सुनाते हैं। सुनकर ब्रह्मदेव को बडा सुख होता है। कहते हैं हे तात ! बार बार गुणो का गान करो।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं : एहि बिधि चरित करत नित नये। उन चरित्रो को देखकर मुनिजी ब्रह्मलोक जाते हैं और वे चरित्र ऐसे हैं कि ब्रह्मलोक मे उनके सुनने की उत्सुकता है। नारदजी नित्य जा जाकर वे चरित्र ब्रह्मलोक मे वर्णन करते है। सुनकर ब्रह्मलोक निवासी निहाल होते हैं और ब्रह्मदेव को तो

अत्यन्त सुख होता है। क्योंकि जो जितना बड़ा है उसे उतना ही अधिक आनन्द आता है। अतः ब्रह्मदेव की नारदजी को बारम्बार उन चरित्रो के गान करने के लिए आज्ञा होती है।

सनकादिक नारदहि सराहहिं। यद्यपि ब्रह्म निरत मुनि आहहि ॥
सुनि गुन गान समाधि बिसारी। सादर सुनहि परम अधिकारी ॥४॥

अर्थ . सनकादिक यद्यपि ब्रह्मनिष्ठ हैं तथापि नारदजी की प्रशसा करते हैं। वे परम अधिकारी हैं। गुणगान सुनकर समाधि भूल जाते थे और आदर के साथ सुनते थे।

व्याख्या : सनकादि नारदजी के भी गुरु हैं। नारदजी को उन्होने ब्रह्मविद्या का उपदेश किया है। ब्रह्मानन्द मे लयलीन मुनि को श्रवण की कोई आवश्यकता नही है। फिर भी भगवद् गुण कीर्तन मे इतना आनन्द है कि वे नारदजी के सङ्कीर्तन की प्रशसा करते है। ब्रह्मनिष्ठ होने से वे परम अधिकारी हैं। उनकी ससाधि लगी ही रहती है। पर नारदजी के सङ्कीर्तन से वे समाधि भूल जाते है और आदर के साथ श्रवण करते हैं। समाधि भङ्ग से क्रोध नही करते बल्कि उपकार मानते है।

दो. जीवन्मुक्त ब्रह्म पर, चरित सुनहि तजि ध्यान।
जे हरि कथा न करहिं रति, तिनके हिय पाषान ॥४२॥

अर्थ : जीवन्मुक्त ब्रह्मनिष्ठ ध्यान छोडकर कथा सुनते हैं। अतः जिन्हे हरिकथा मे प्रेम नही हाता उनका हृदय पत्थर है।

व्याख्या : राम कथा मे ऐसा रस है कि उससे तृप्ति होती नही। यथा : राम चरित जे सुनत अघाही। रस बिसेष जाना तिन नाही। सो उस कथा से जीवन्मुक्त ब्रह्मनिष्ठ हृदय विगलित हो उठता है। वे ध्यान छोडकर कथा सुनने लगते है। जो भगवत्कथा मे प्रेम नही करते उनका हृदय पत्थर है। भाव यह कि वे स्थावरो के तुल्य हैं।

एक बार रघुनाथ बोलाये। गुर द्विज पुरबासी सब आये ॥
बैठे गुरु मुनि अरु द्विज सज्जन। बोले बचन भगत भव भजन ॥१॥

अर्थ : एक बार रामजी ने बुलवाया। गुरु ब्राह्मण और सब पुरवासी आये। सभा मे गुरु मुनि ब्राह्मण और सज्जन बैठे। तब भक्त के भव को दूर करनेवाले रामजी बोले।

व्याख्या : राजा दण्डधरो गुरुः। जिस भाँति गुरु को शिष्य के परलोक की जिम्मेदारी रहती है उसी भाँति राजा को प्रजा के लोक परलोक दोनो की जिम्मेदारी रहती है। वह दण्ड देकर भी प्रजा को सन्मार्ग पर चलाता है। अयोध्या लौकिक सुखो से परिपूर्ण है। धर्म भी चारो चरण से हैं। तथापि श्रीमुख द्वारा उपदेश देने के लिए बुलवाया। गुरु और ब्राह्मण भी बुलवाये गये। जिनसे जो राम कही

जाय उसके विषय मे किसी को अनौचित्य की शङ्का न हो। क्योकि राजा विशाम्पति है। वैश्य जाति तक उसका शासन चलता है। यथा : अथो परीक्षिद् द्विजवर्य शिक्षया मही महाभागवतो शशास ह।

छोटे भाई मुनि और सज्जन पहिले से ही बैठे थे। जो लोग बुलवाने पर आये वे भी आकर सभा मे बैठ गये। तब भक्तो के भय को दूर करनेवाले रामजी बोले। भाव यह कि भक्तो के जन्म मरण रूपी भय को नष्ट करने के लिए।

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहौ न कछु ममता उर आनी॥
नहि अनीति नहि कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुमहि सोहाई॥२॥

अर्थ : सब पुरजनो ! मेरी बात सुनो। मैं कुछ ममता मन मे लाकर नही कह रहा हूँ। न इसमे अनीति है न प्रभुता है। मेरी बातें सुन लो फिर जैसी इच्छा हो वैसा करो।

व्याख्या : सरकार सब पुरजनो को सम्बोधन करके कहते हैं। गुरु और द्विज साक्षी के लिए हैं। जिसमे यदि अधर्म से धर्म को पीडा हो तो रोकें। मम वाणी से उपदेश का सङ्केत करते हैं आज्ञा नही देते। और यह भी कहे देते हैं कि यह न समझना कि मैं अपने किसी प्रयोजन की सिद्धि के लिए कह रहा हूँ।

मैं कोई अनुचित बात न कहूँगा और राजा होने के नाते प्रभुता के बल से भी कोई कार्य कराना नही चाहता। मैं जो कहता हूँ उसे सुन लो। फिर जैसी इच्छा हो वैसा करो। मैं यह नही कहता कि जैसा मैं कहता हूँ वैसा ही करो। विचार लो जिसमे हित बोध हो सो करो।

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई॥
जौ अनीति कछु भाखौ भाई। तौ मोहि बरजेहु भय बिसराई॥३॥

अर्थ : वही मेरा सेवक है और वही मुझे बहुत प्यारा है जो मेरी आज्ञा मानता है। हे भाई ! यदि मैं अनीति कहूँ तो भय छोडकर मुझे रोकना।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि जो तुम्हारे जी मे आवे सो करो। परन्तु मेरा सेवक वही और मुझे सबसे प्यारा वही है जो मेरी आज्ञा मानता हो। यदि कोई मेरी पूजा तो बडी भारी करे और आज्ञा न मानता हो तब वह न तो मेरा सेवक है न प्रियतम है। वेदादि शास्त्र ही सरकार के वचन हैं। यथा मारुत स्वास निगम निज बानी। श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे।

यह कोई अनुचित बात नही है। सबको अपना आज्ञापालक प्रिय लगता है। अब सरकार सबको बोलने का अवसर देते हैं कि मेरी बातो मे यदि किसी को कोई बात अनुचित मालूम हो तो वह निर्भय होकर मुझे रोके। मैं बुरा न मानूँगा। यह न डरे कि राजा की बात को मैं कैसे काटूँ। सभा मे जाकर अनुचित बोलनेवाला और न बोलनेवाला दोनो पापी होते हैं। अब्रुवन् विब्रुवन् वापि नरो भवति किल्विषी।

बडे भाग मानुप तन पावा । सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा ॥
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा । पाइ न जेहिं परलोक सँवारा ॥४॥

अर्थ : बडे भाग्य से मनुष्य शरीर मिलता है । सद्ग्रन्थो ने कहा है कि यह देवताओ को दुर्लभ है । यह साधनो का धाम है और मोक्ष का द्वार है । इसे पाकर जिसने परलोक न सवारा ।

व्याख्या : बडे भाग मानुप तन पावा : से भाव यह कि मौका चूकने लायक नही है । बार बार यह शरीर नही मिलता । अन्य शरीरो मे तो प्रकृति के परवश ही काम करना पडता है । व्याघ्र लाख वर्ष पहिले जैसे रहते थे वैसे ही अब भी रहते हैं । मनुष्य बीस वर्ष पहिले जैसे रहता था वैसे अब नही रहता । यह प्रकृति के शासन के अतिक्रमण का सामर्थ्य रखता है । देवता लोग इसे चाहते हैं पर मिलती नही । अज्ञातार्थ ज्ञापक उत्तम जितने ग्रन्थ हैं उनमे यही वर्णन है । इस विपय मे मतभेद नही है ।

सुरदुर्लभ इसलिए कहते हैं कि देव शरीर मे दिव्य भोग से पुण्य क्षीण होता है और नया पुण्य कमाया नही जा सकता । मनुष्य देह से ही पुण्य की कमायी हो सकती है । इसीलिए इसे साधन धाम कहा । इसी देह से साधन चतुष्टय सम्पादन करके ब्रह्म जिज्ञासा से मोक्ष भी सम्भव है । इसी से मोक्ष द्वार कहा । इस लोक को तो यथासाध्य सब जीव सँवारते हैं । आहार निद्रा भय मैथुन इन्ही म इस लोक की उन्नति सीमित है । उसी की उन्नति ही इह लोक सँवारना है । पर आहार निद्रा भय मैथुन सब योनियो मे सुलभ हैं । परलोक का ख्याल तो मनुष्य योनि मे ही होता है । अत परलोक का सँवारना मनुष्य योनि के हिस्से की बात है । सो इस योनि को पाकर जिसने परलोक न सँवारा ।

दो. सो परत्र दुख पावै, सिर धुनि धुनि पछिताइ ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि, मिथ्या दोप लगाइ ॥४३॥

अर्थ . वह परलोक मे दु ख पाता है और सिर पीटकर पछताता है और काल को कर्म को और ईश्वर को झूठमूठ दोप लगाता है ।

व्याख्या : वह परलोक मे दु ख पाता है । वहाँ सिवा भोगने के दूसरा उपाय नही है । पछताने की पराकाष्ठा सिर पीटना है । काल को दोप लगता है कि समय बडा बुरा आया है । भाग्य को दोप देता है कि मेरा भाग्य बडा खोटा था । ईश्वर को दोप देता है कि मेरा सत्यानाश ईश्वर ने किया । अपना दोप नही देता । काहु न कोउ दुख सुख कर दाता । निज कृत कर्म भोग सब भ्राता ।

एहि तन कर फल विषय न भाई । स्वर्गौ स्वल्प अंत दुखदाई ॥
नरतनु पाइ बिपय मनु देही । पलटि सुधा ते सठ विप लेही ॥१॥

अर्थ : हे भाई ! इस शरीर का फल विषय नही है । स्वर्ग भी थोडे दिन के

लिए है। अन्त मे दु ख ही देता है। जो नरशरीर पाकर विषय मे मन देते हैं वे शठ हैं। अमृत देकर पलटे मे विष लेते हैं।

व्याख्या : कूकर शूकर आदि देहो का फल विषय हैं। क्योंकि उनकी पहुँच विषयानन्द ही तक है। मनुष्य शरीर का फल विषय नही है। क्योकि उसकी पहुँच ब्रह्मानन्द तक हो सकती है। स्वर्ग मे दिव्य भोग है। पर स्वर्ग सुख टिकाऊ नही। मनुष्य शरीर के किये हुए पुण्य का भोग मात्र है। जिस भाँति खेती से उत्पन्न किया हुआ अन्न खाने पीने से नित्य छीजता जाता है। उसी प्रकार उपार्जित किया हुआ पुण्य विषयभोग से छीजने लगता है। पुण्य क्षीण होने पर एक क्षण भी स्वर्ग मे स्थिति नही रह सकती। वह तुरन्त वहाँ से गिरा दिया जाता है। अत. वह स्वर्ग सुख भी अल्प होने से दु खरूप ही है। सुख तो वही है जो टिकाऊ है ' यद्वै भूमा तत्सुखम् नाल्पे सुखमस्ति।

नरतन सुधा है। क्योंकि उससे अमृत पद की प्राप्ति हो सकती है। उसी के लिए यत्न करना मनुष्य शरीर का सद्व्यय है। विषय मे लगकर मनुष्य शरीर को खोना उसका अपव्यय है। अत' जिसने मनुष्य शरीर पाकर विषय मे मन लगाया उसने मानो अमृत देखकर पलटे मे विष लिया। क्योकि जिससे आत्मज्ञान सध सकता था उससे उसने कूकर शूकर योनि का रास्ता साफ किया। यथा : असुर्या नामते लोका अन्धेन तमसावृता। तास्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जना ।

ताहि कबहुँ भल कहै न कोई। गुंजा ग्रहै परस मनि खोई ॥
आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी ॥२॥

अर्थ : उसे क्या कोई भला कह सकता है जो पारसमणि को खोकर गुञ्जा प्राप्त करता है। यह अविनाशी जीव चार खानि और चौरासी लाख योनियो मे घूमता फिरता है।

व्याख्या : यह नर शरीर पारस है। जिस भाँति पारस निकृष्ट धातु . लोहे को सोना बना देता है उसी भाँति इसे पाकर जीव शिव हो सकता है। गुञ्जा अर्थात् घुँघँची देखने मे *बडी सुन्दर है। पर है विष। इसी भाँति विषयोपभोग आपातमधुर* हैं। पर है बडा हानिकर। पारस को फेंककर गुञ्जा ग्रहण करनेवाले ने अपनी समझ मे तो ठीक ही किया। बेढँगे पारस को देकर रगीले गुञ्जो की प्राप्ति की। केवल बाह्यरूप देखा गुण न पहिचाना। वह भले ही अपने मन से भला बना रहे। पर कोई भी उसे भला नही कहेगा। अपनी हानि करनेवाले को कोई भला नही कहता। अपनी हानि भी की और दुर्यश का भागी भी बना। अमृत को पलटकर विष लेनेवाला जानबूझकर अनर्थ मे गिरनेवाला है और पारस देकर गुञ्जा लेनेवाला अनजान है। रूप पर आसक्त हो गया।

यह जीव तो अविनाशी है और शरीर नाशवान् है। इस शरीर के नाश होने पर दूसरी देह मिलेगी। पर कौन देह मिलेगी इसका ठिकाना नही। उद्भिज स्वेदज

अण्डज और जरायुज : ये चार खानि है। इन चारो मे अवान्तर भेद करके चौरासी लाख योनियाँ हैं। उन्ही मे यह जीव भटकता फिरता है। कभी देवता होता है, कभी राक्षस होता है, कभी पशु होता है, कभी पक्षी होता है, कभी कीट पतङ्ग होता है, कभी स्थावर योनि को प्राप्त होता है।

फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म स्वभाव गुन घेरा ॥
कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही ॥३॥

अर्थ : वह सदा माया की प्रेरणा से काल कर्म स्वभाव और गुणो से घिरा हुआ घूमा करता है। कभी करुणा करके निष्कारण प्रेम करनेवाले ईश्वर मनुष्य शरीर दे देते हैं।

व्याख्या : नाचत ही निसि दिवस मर्‌यो। तब ही ते न भयो हरि थिर जब ते जिव नाम धर्‌यो। बहुबासना बिबिध कंचुकि भूपन लोभादि भर्‌यो। चर अरु अचर गगन जल थल मे कौन स्वाग न कर्‌यो। यहाँ अनेक योनियो में जन्म लेना ही नाचना है। इसकी प्रेरणा करनेवाली माया है। यथा : जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा। यह जीव स्वेच्छा से नही नाचता। अत्यन्त दुःखी होकर नाचता है। इसीलिए कहा : निसि दिवस मर्‌यो। माया ने उसे काल कर्म स्वभाव और गुण से बांध रक्खा है। काल कर्म गुण स्वभाव के घेरा के भीतर नाचा करता है। इसका उल्लङ्घन नही कर सकता।

ईश्वर बडा कृपालु है। यथा : हेतु रहित जुग जग उपकारी। तुम तुम्हार सेवक असुरारी। वह बिना कारण कृपा करता है। पशु पक्षी कीटादि देह से तो कोई कर्म ऐसा हो नही सकता जिससे मनुष्य शरीर मिले। ईश्वर ही कृपा करके कभी जीव को मनुष्य शरीर दे देता है। यह जानकर कि इसे कष्ट उठाते बहुत दिन हुए। एक अवसर इसे देना चाहिए जिससे ऊपर उठ सके। चार कृपा से कल्याण कहा गया है। उनमे से पहिली कृपा हुई ईश्वर कृपा। मनुष्य शरीर मिल गया।

नर तन भव बारिधि कहुँ बेरो। सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो ॥
करनधार सदगुरु दृढ नावा। दुर्लभ साजु सुलभ करि पावा ॥४॥

अर्थ : मनुष्य शरीर भवसागर के लिए बेडा है। मेरी कृपा उसके लिए अनुकूल पवन है। उस दृढ नाव का सद्‌गुरु कर्णधार है। इस भाँति दुर्लभ साज अनायास प्राप्त हो गया।

व्याख्या : भवसागर सन्तरण के लिए प्रधान साधन नरतन ईश्वर की कृपा से मिल गया। सन्तरण चाहनेवाले पर सरकार की ओर भी कृपा होती है। वह अनुकूल वायु रूप हो जाती है। सद्‌गुरु भी मिल ही जाते हैं। यथा : सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा। अत. यह दुर्लभ साज मनुष्य शरीर पाने से सुलभ हो गया। यथा :

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितम् पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ॥

दो. जो न तरै भव सागर, नर समाज अस पाइ।
सो कृतनिंदक मंदमति, आत्मा हन गति जाय ॥४४॥

अर्थ : जो ऐसा नर समाज पाकर भी भवसागर पार नही होता। वह कृतघ्न मन्दबुद्धि आत्मघाती की गति को प्राप्त होता है।

व्याख्या : गुरुकृपा से शास्त्रकृपा भी हो जाती है अब केवल आत्म कृपा की आवश्यकता है। इतना होने पर भी यदि उसने ससार सन्तरण नही चाहा और जिस ईश्वर ने इतनी कृपा की उसे मिथ्या दोष लगाया वह कृतनिन्दक मन्दमति है। इतना बडा सुअवसर चूक गया। ऐसे को शूकर कूकर की योनि मिलती है। आत्मघाती के लिए यही दण्ड है।

जो परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम वचन हृदय दृढ गहहू ॥
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान स्रुति गाई ॥१॥

अर्थ : यदि इस लोक और परलोक मे सुख चाहते हो तो मेरे वचन को सुनकर मन मे खूब बैठा लो। यह रास्ता सुलभ और सुखद है। मेरी भक्ति का वर्णन पुराण श्रुतियो मे है।

व्याख्या : सुख सब चाहता है दु ख कोई नही चाहता। इस लोक मे जिन बातो से सुख मिलता है परलोक मे उनसे दु ख होता है। जो लोग यहाँ दु ख उठाकर परलोक सँवारते हैं उन्हे परलोक मे तो सुख मिलता है पर इस लोक मे कष्ट उठाना पडता है। परन्तु ऐसा भी एक रास्ता है जिससे यहाँ भी सुख हो और परलोक मे भी सुख हो। और वह रास्ता भक्ति का है। यह रास्ता सुलभ है और सुखद भी है। यथा : कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा। बैर न बिग्रह आसन त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा। मेरे इस बात को खूब मन मे बिठा लो और यह रास्ता शास्त्रानुमोदित भी है। यथा : स्रुति सम्मत हरि भगति पथ सजुत बिरति बिबेक। तेहि न चलहि नर मोह बस कल्पहि पथ अनेक।

ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका ॥
करत कष्ट बहु पावै कोऊ। भगतिहीन मोहि प्रिय नहि सोऊ ॥२॥

अर्थ : ज्ञान अगम है और उसमे अनेक विघ्न हैं। साधन भी कठिन है और मन को आधार नही है। अनुष्ठान मे उसके बडा कष्ट है। फिर भी किसी किसी को प्राप्त होता है। भक्ति के बिना वह भी मुझे प्रिय नही है।

व्याख्या : ज्ञान की बडी महिमा है। यथा : नहि ज्ञानेन सदृश पवित्रमिह विद्यते। ज्ञान के ऐसा पवित्र यहाँ कुछ भी नही है। परन्तु वह बडा कठिन है और उसके अनुष्ठान मे विघ्न भी बहुत हैं। यथा : कहत कठिन समुझत कठिन साधन बिबेक। होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक। इसे तलवार की धार

महात्माओ ने बतलाया है। यथा ग्यान पथ कृपान के धारा। परत खगेस होइ नहि वारा। निरालम्ब पथ है। इसलिए महात्मा सूरदास के शब्दो मे : निराधार मन चक्रित धावत।

उसके अनुष्ठान मे बडा कष्ट है। यथा सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौ हरि कृपा हृदय बस आई। जप तप व्रत यम नियम अपारा। जे स्रुति कह सुभ धरम अचारा। तेइ तृन हरि त चरै जब गाई। इत्यादि। हरि माया अति दुस्तर तरनि जाइ विहगेस। मनुष्याणा सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये। यततामपि सिद्धाना कश्चिन्मा वेत्ति तत्त्वत। यत्न करनेवाले सिद्धो म से भी किसी को ही ज्ञान की दशा की प्राप्ति होती है। कोटि विरक्त मध्य स्रुति कहई। सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई। फिर भी वह भक्त के समान प्रिय नही। यथा मोरे प्रौढ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी।

भगति सुतत्र सकल सुख खानी। बिनु सत सग न पावहिं प्रानी ॥
पुन्य पुज बिनु मिलहिं न सता। सत सगति ससृति कर अता ॥३॥

अर्थ भक्ति स्वतन्त्र है और सब सुखो की खानि है। उसे बिना सत्सङ्ग के प्राणी पा नही सकता। बिना पुण्य पुञ्ज के सन्त मिलते नही। उनके सङ्ग से ससार का अन्त हो जाता है।

व्याख्या कर्म और ज्ञान को भक्ति की सहायता की आवश्यकता है। यथा सो सब कर्म धर्म जरि जाऊ। जहाँ न राम पद पकज भाऊ। जोग कुजोग ज्ञान अग्यानू। जँह नहि राम प्रेम परधानू। और भक्ति को किसी की सहायता की आवश्यकता नही। यथा रीझत राम सनेह निसीते। रामहि केवल प्रेम पियारा। अत भक्ति स्वतन्त्र है और सब सुख की खानि है। यथा राम भगति मनि उर बस जाके। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताके। परन्तु भक्ति की प्राप्ति बिना सत्सङ्ग के होती नही। यथा बिनु सत्सग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग। मोह गये बिनु राम पद होइ न दृढ अनुराग।

सत संगति मुद मगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला। सब साधन से पुण्य पुञ्ज अभिप्रेत है। पुण्य पुञ्ज के उदय से सन्त का सङ्ग होता है। सन्त सङ्ग से ससार का अन्त होता है। क्योकि वही मोक्ष का माग है। यथा सत सग अपवर्ग कर कामी भव कर पन्थ।

पुन्य एक जग महु नहि दूजा। मन क्रम बचन विप्रपद पूजा ॥
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपटु करै द्विज सेवा ॥४॥

अर्थ : संसार में एक ही पुण्य है दूसरा नही। वह यह कि मनसा वाचा कर्मणा ब्राह्मण की सेवा करे। उस पर मुनि और देवता प्रसन्न रहते हैं जो कपट छोडकर ब्राह्मण की सेवा करता है।

व्याख्या सत्सङ्ग के लिए पुण्य समूह को आवश्यकता है। अत सर्वोत्कृष्ट

पुण्य बतलाते हैं : ब्राह्मण की सेवा से बढ़कर दूसरा पुण्य नही है : वर्णाना ब्राह्मणो गुरु । वेदपाठी भवेद् विप्र । इसलिए गोस्वामीजी ने प्रायेण विप्र पद का ही व्यवहार किया है। पुण्य कर्म मे विप्र पूजन अनिवार्य है। विप्र सेवा भी कपट रहित होकर करे। कपट सहित सेवा करना वर्जित है। कपट सहित सेवा अपने शूद्र जन्म मे भुशुण्डिजी ने किया। तेहि सेवौं मैं कपट समेता। द्विज दयाल अति नीति निकेता। गुरुजी से विद्या तो ले ली। पर बाद इसके गुरुजी का द्रोह करने लगे। यथा ' गुरु कर द्रोह करौं दिन राती। सो ऐसा न होना चाहिए।

दो. औरउ एक गुपुत मत, सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर, भगति न पावै मोरि ॥४५॥

अर्थ · और भी एक गुप्त मत है। उसे मैं सबसे हाथ जोडकर कहता हूँ कि शङ्कर के भजन बिना मनुष्य मेरी भक्ति नही पाता।

व्याख्या शङ्कर के भजन के बिना राम भक्ति नही होती। यथा . सिव सेवा कर फल सुत सोई। अबिरल भक्ति राम पद होई। जेहि पर कृपा न करहि पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी। इस गुप्त मत को सरकार ने प्रकट कर दिया और तदनुसार कार्य करने के लिए सबसे हाथ जोडकर कहते हैं। हाथ जोडकर भी हित की बात समझायी जाती है। यथा : बिनती करौं जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन। परन्तु देखने मे यही आता है कि चौडे : स्पष्ट कह देने पर भी यह बात गुप्त ही रह गयी। आग्रही लोग रामायण को प्रमाण मानते हुए भी यह मानने को तैयार नही होते कि बिना शिवसेवा के राम भक्ति नही होती। शङ्कर भगवान् भक्तिपथ के आचार्य हैं। आचार्योपासन बिना भक्ति पथ मे प्रवेश कैसे होगा ? स्वय मानस आचार्य ही कई बार विनय पद मे शिवजी से भक्ति माँगते हैं। मानस मे कृपा प्रसाद प्राप्त करते हैं।

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा ॥
सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथालाभ संतोष सदाई ॥१॥

अर्थ . बतलाओ तो भक्ति पथ मे क्या परिश्रम है। उसमे न योग करना पडता है न यज्ञ करना पडता है न तप करना पडता है और न उपवास करना पडता है। सरल स्वभाव हो। मन मे कुटिलता न हो। जो मिले उसी मे सन्तोष करे।

व्याख्या · पहिले कह आये हैं · सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई। उसी की यहाँ व्याख्या करते हैं कि भक्तिपथ मे कोई आयास नही है। योगपथ मे जिस भाँति मन को मारना पडता है। इस पथ मे मन को मारना नहीं पडता। तप की भाँति कोई बडा आयोजन नही करना पडता। तप की भाँति शरीर को सुखाना नही पडता। जप की भाँति अनुष्ठान के नियमो का पालन नही करना पडता। उपवास की भाँति भूखो नही मरना पडता। कपट करने मे बुद्धि को आयास होता है। कुटिलता के सँभालने मे मन को आयास होता है।

इसमे कोई आयास नही है और सुख बहुत है : सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः। सन्तोष से ऐसे सुख का लाभ होता है जिससे उत्तम सुख ही नही है।

भावार्थ यह है कि भक्तिपथ मे योग यज्ञ जप तप उपवास की आवश्यकता ही नही है। अपना स्वभाव सरल बनाये रहे। मन मे कुटिलता को स्थान न दे। और जो मिल जाय उसी मे सदा सन्तोष करे।

मोर दास कहाइ नर आसा। करै तौ कहहु कहाँ बिस्वासा ॥
बहुत कहौ का कथा बढाई। एहि आचरन बस्य मैं भाई ॥२॥

अर्थ मेरा दास कहलाकर यदि मनुष्य की आशा करता है तो कहो उसे विश्वास कहाँ है। बहुत कथा बढाकर क्या कहूँ। हे भाई ! मैं इस आचरण से उसके वश मे रहता हूँ।

व्याख्या : जिसने भक्ति मार्ग का अवलम्बन किया उसे मेरा ही भरोसा करना चाहिए। दूसरे की आशा न रखना चाहिए। क्योंकि दूसरे की आशा रखनेवाले को सबका दास बनकर रहना पडता है। यथा : जे पामर भये दास आसके ते सबही के चेरे। रघुपति कृपा आस जीती जिन ते सेवक हरि केरे। जो दूसरे की आशा रखता है वह मेरा दास नही। क्योंकि उसे मुझ पर विश्वास नही है और जिसे मुझ पर विश्वास ही नही वह मेरा दास कैसे है। वह केवल दास का स्वाँग बनाये है जिसमे उसे लोग मेरा दास समझें। उसे तो मनुष्यो की आशा बँधी हुई है। वह उन्ही का दास है।

यह · यथा लाभ सन्तोष सदाई। इस पद की व्याख्या है। अब : सरल सुभाव न मन कुटिलाई की व्याख्या करते हैं। कहते हैं कि मैं बात को बढाकर नही कहता। सक्षेप मे कहता हूँ कि निम्नलिखित रीति से चलनेवाले के मैं वश मे हो जाता हूँ। मैं भाई : कहने का भाव यह है कि मैं स्ववश हूँ। यथा : परबस जीव स्वबस भगवता। सो मैं ऐसे आचरण करनेवाले के वश मे हो जाता हूँ। अब वह आचरण बतलाते हैं—

बैर न बिग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा ॥
अनारभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दक्ष बिज्ञानी ॥३॥

अर्थ न किसी से वैर है न झगडा है न किसी की आशा है और न किसी का डर है। ऐसे पुरुष को सब दिशाएँ सुखमय हो जाती हैं। जो सर्वारम्भपरित्यागी है, आश्रयहीन है, मानहीन, पापहीन, रोषहीन है, निपुण और विज्ञानवान् है।

व्याख्या · निज प्रभुमय जो जगत् को देखता है। वह किसी से वैर नही कर सकता। झगडा फिर किससे हो। वह किसी व्यक्ति विशेष से न आशा कर सकता है और न डर सकता है। ऐसे पुरुष को तो चारो ओर सुख ही सुख है।

वह किसी कार्य का आरम्भ नही करता। जिसमे प्रवृत्त है उस कार्य से द्वेष नही करता है और निवृत्ति की काक्षा नही रखता। न द्वेष्टि सप्रवृत्तानि न

निवृत्तानि कांक्षति । उसे मानापमान भी नही है। वह किसी घर को अपना नहीं समझता । पाप और रोष वह कर नही सकता । वह तो दक्ष और विज्ञानी हो जाता है । क्योकि वह ईश्वरमय सब जग को देख रहा है ।

प्रीति सदा सज्जन संसर्गा । तृन सम बिषय स्वर्ग अपवर्गा ॥
भगति पक्षहठ नहि सठताई । दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई ॥४॥

अर्थ : सज्जनों के संसर्ग मे उसे सदा प्रेम रहता है । विषय स्वर्ग और अपवर्ग को वह तृण समान मानता है। उसे भक्ति पक्ष का हठ तो है पर शठता नही है और दुष्ट तर्कों को तो पास नही फटकने देता ।

व्याख्या : उसकी प्रीति सदा सज्जन ससर्ग मे है। उसीसे उसी मे ऐसा सुख मिलता है कि उसे विषय सुख स्वर्ग सुख तथा अपवर्ग सुख तृण के समान मालूम होता है। यथा : तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला इक अग । तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सत संग ।

वह भक्ति पक्ष को दृढ़ करके पकड़े रहता है। क्योकि भक्ति में ही ऐसा सामर्थ्य है कि वह शाप को भी वरदान बना देती है। यथा : भगति पक्ष हठ करि रहेउँ दीन्हि महा ऋषि शाप । मुनि दुर्लभ वर पायेउँ देखहु भजन प्रताप । परन्तु वह ज्ञानादि साधनो का विरोध नही करता । अपने मन मे शठता को स्थान नही देता । अर्थात् कपट चतुराई से बात नही छिपाता । वेद विरुद्ध तर्क के निकट नही जाता । कर्कश तर्क विवाद से दूर रहता है ।

दो. मम गुन ग्राम नाम रत, गत ममता मद मोह ।
ताकर सुख सोइ जानै, परानंद संदोह ॥४६॥

अर्थ : जो मेरे गुण ग्राम और नाम में रत है । जिसे ममता मद और मोह नही है । वही इस बात के सुख को जानता है । जो सुख परानन्द का समूह है ।

व्याख्या : जो संसार की चर्चा मे न लगकर मेरे गुणग्राम और नाम में लगे रहते हैं । मेरा नाम लेते हैं । मेरी स्तुति करते हैं । उनकी ममता मेरे में हो जाती है । उन्हे न तो मद होता है न मोह होता है। ऐसा होने से उसे ऐसे परमानन्द सुख समूह की प्राप्ति होती है जिसे वही जानता है : मोह दरिद्र निकट नहि आवा । लोभ वात नहि ताहि बुझावा । हारिहि सकल सलभ समुदाई । जातहि जासु समीप जरहि मदादिक सलभ सब ।

सुनत सुधा सम बचन राम के । गहे सबन्हि पद कृपा धाम के ॥
जननि जनक गुरु बंधु हमारे । कृपानिधान प्रान ते प्यारे ॥१॥

अर्थ : रामजी के अमृत के समान बचन सुनकर सबने कृपाधाम के चरण पकड लिये । बोले कि आप ही हमारे माता पिता गुरु और बन्धु हैं। आप ही कृपानिधान है और प्राण से भी प्यारे हैं ।

व्याख्या जब सरकार का उपदेश समाप्त हुआ तब पुरजन बोले। जब तक उपदेश होता रहा तब तक अमृत सी वाणी का श्रवण पुट से पान करते रहे। स्वाद और तोष से तृप्त हो रहे थे। कृतज्ञता प्रकाश के लिए सबो ने चरण पकड लिया। मन मे यह बात उठी कि सरकार कृपा के धाम हैं। कितनी वडी कृपा हम लोगो पर है। बुलाकर हम लोगो के लिए कैसा हितकर उपदेश दिया।

सभी सरकार के भक्त हैं। सबने अपनी ममता की वृत्तियो को इकट्ठी करके और उसे बटकर सरकार के चरणो मे बाँध रक्खा है। इसलिए कहते हैं कि सरकार ही हमारे सब कुछ हैं। माता पिता गुरु और बन्धु सबको प्यारे होते हैं और सबसे प्यारा प्राण होता है। सो सरकार ही मेरे पिता माता गुरु और बन्धु हैं: चारो नाते सरकार से ही हैं। अव्यक्त रूप से माता हैं। पुरुष रूप से पिता हैं। राजा रूप से गुरु हैं। कुठाहर सहाय होने से बन्धु हैं अपनी ओर से कृपा निधान हैं और हमारी ओर से प्राण से प्यारे हैं। मोहि तोहि नाते अनेक मानिये जो भावे। सो प्रेम सभी नातो को सरकार ने मान रक्खा है।

तनु धनु धाम राम हितकारी। सब बिधि तुम प्रनतारतहारी॥
अस सिख तुम्ह बिनु देइ न कोऊ। मातु पिता स्वारथ रत ओऊ॥१॥

अर्थ: आप ही हमारे तन धन और धाम हैं। हे प्रणत के आर्ति के हरण करनेवाले! आप ही सब प्रकार से हितकारी हैं। ऐसी शिक्षा आप के बिना कोई देता नही। माता पिता हैं पर वे भी स्वार्थ मे रत हैं।

व्याख्या: चैतन्य जीवो मे माता पिता गुरु और बन्धु हितकारी होने से प्यारे होते हैं और जड पदार्थ मे तन धन और धाम हितकारी होने से प्यारे हैं। इतने ही प्रेमपात्र हैं। सो आप हमारे लिए सर्वस्व हैं। आप ही माता पिता गुरु और बन्धु हैं तथा आप ही तन धन और धाम हैं।

आप ही हमे दोनो लोक के कल्याण का मार्ग बतला रहे हैं। यथा: जोनि तरै भवसागर नर समाज अस पाइ। सो कृतनिंदक मंदमति आतमहन गति जाइ। तथा. जौ परलोक इहाँ सुख चहहू। इत्यादि उपदेश देते हैं ऐसी शिक्षा देनेवाला कौन है? सब अपने स्वार्थ को लक्ष्य करके शिक्षा देनेवाले हैं। माता पिता भी जो शिक्षा देते हैं उसका कारण यही है कि वे बेटे के लिए साभिलाप हैं। उनके द्वारा बडे होने पर उन्हे सेवा की आशा है। अत मातु पिता बालकन्हि बुलावहि। उदर भरै सोई धर्म सिखावहि। उनके परलोक की चिन्ता माता पिता भी नही करते। सरकार हमारे पालने मे तो दत्तचित्त हैं ही हमारे परलोक की भी सरकार को चिन्ता है।

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥
स्वारथ मीत सकल जग माँही। सपनेहु प्रभु परमारथ नाही॥२॥

अर्थ. हे असुरारि निष्कारण दोनो लोको के उपकार करनेवाले दो ही हैं:

आप और आपके सेवक। सम्पूर्ण संसार मे सब स्वार्थ के मित्र हैं। परमार्थ का सहायक कोई सपने मे भी नही है।

व्याख्या : माता पिता की शिक्षा सहेतुक है। उन्हे अपने बच्चों से प्रत्युपकार की आशा है। इसलिए इस लोक के कल्याण की शिक्षा देते हैं। शिक्षा देनेवाले का लक्ष्य सदा स्वार्थ रहता है। परन्तु अपना स्वार्थ न रखकर दोनों लोक के उपकार करनेवाले तो दो ही हैं तीसरा हो नही सकता। एक आप और दूसरा आपका सेवक। क्योंकि आपका सेवक आपका ही अनुसरण करता है। यथा : सेवक भयो पवन पूत साहिब अनुहरत। श्री हनुमान्‌जी भी चारो युग मे अपना प्रताप प्रकटकर जीवों का उपकार करते हैं।

हे प्रभो ! सुर नर मुनि सबके यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती। परमार्थ के लिए कोई प्रीति नही करता। जहाँ स्वार्थ मे भेद पडा वहाँ प्रीति गयी। परमार्थ के लिए प्रीति का कोई स्वप्न भी नही देखता। कोई समझ भी नही सकता कि परमार्थ के लिए प्रीति कैसी होती है।

सबके वचन प्रेमरस साने। सुनि रघुनाथ हृदय हरषाने॥
निज निज गृह गए आयसु पाई। बरनत प्रभु बतकही सुहाई॥३॥

अर्थ : प्रेम रस से सना हुआ सबका वचन सुनकर रामजी प्रसन्न हो गये। आज्ञा पाकर सब लोग अपने घर गये और प्रभु की बातचीत का वर्णन आपस में करते गये।

व्याख्या : सरकार का स्वभाव है कि प्रेमरस साने वचन से ही प्रसन्न होते हैं। यथा : रामहि केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननिहारा। अतः प्रजाओं की प्रेम परिप्लुत वाणी सुनकर सरकार प्रसन्न हो गये। गुरु की प्रसन्नता शिष्य की कृतकृत्यता पर होती है। प्रजा कृतकृत्य हो गयी। इससे सरकार को हर्ष हुआ क्योंकि राजा दण्डधर गुरु हैं।

सब लोग आज्ञा पाकर आये थे। अब कृतकृत्य होकर आज्ञा पाकर ही अपने अपने घर जा रहे हैं। अतः प्रभु से जो बातचीत हुई उसका वर्णन आपस मे करते जा रहे हैं। कथन का अनुकथन करने से सिद्ध है कि उपदेश का प्रभाव सब पर पडा। यथा : सुनि अनुकथन परसपर होई। पथिक समाज सोह सरि सोई।

दो. उमा अवधवासी नर, नारि कृतारथ रूप।
ब्रह्म सच्चिदानंद घन, रघुनायक जहँ भूप॥४७॥

अर्थ : हे उमा ! अयोध्यावासी नर नारी सब कृतार्थ रूप हैं। जहाँ सच्चिदानन्दघन स्वयं रामजी राजा हैं।

व्याख्या : यहाँ पर शिवजी पार्वती से कहते हैं कि राजा सच्चिदानन्द घन ब्रह्म राम राजा हैं वहाँ प्रजा कृतार्थरूप क्यों न हो। राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः। राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा। राजा के धर्मात्मा होने

पर प्रजा धर्मात्मा होती है। पापी होने पर पापी होती है। सम होने पर सम होती है। राजा का ही अनुसरण प्रजा करती है। जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा होती है। यहाँ ब्रह्म राम राजा हैं। अतः प्रजा भी ब्रह्ममय है। अतः कृतकृत्य है।

यहाँ शिवजी के उमा को सावधान करने का कारण यह है कि उनका प्रश्न है: प्रजा सहित रघुबंस मनि किमि गवने निज धाम। अतः ग्रन्थकार बतलाये देते हैं कि अयोध्या में राजा प्रजा मे भेद नही रह गया। प्रजा भी सब ब्रह्ममय हो गयी। अतः राजा के साथ ही उनके धाम में चली गयी। इसमें कोई आश्चर्य न मानना।

एक बार बसिष्ठ मुनि आए। जहाँ रामु सुखधाम सुहाए॥
अति आदर रघुनायक कीन्हा। पद पखारि पादोदक लीन्हा॥१॥

अर्थ: एक बार जहाँ सुख के धाम नयनाभिराम रामजी थे वहाँ वसिष्ठ मुनि आये। सरकार ने अत्यन्त आदर किया। चरण धोकर चरणामृत लिया।

व्याख्या: वसिष्ठजी ने जान लिया कि सरकार की साकेतयात्रा निकट है। वसिष्ठजी नित्य ही वेद पुराण की कथा कहने आते थे। अतः यहाँ एकान्त में आने में कुछ अभिप्राय है। यहाँ ग्रन्थकार ने रामजी को दो विशेषण दिया: सुखधाम और सुहाये। सो सुखधाम से कमनीय गुणगणों का होना तथा सुहाये से कमनीय रूप का होना कहा। इन्ही वसिष्ठजी ने नामकरण के अवसर पर कहा था: सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिस्रामा। अतः विश्राम के लिए सुखधाम के यहाँ आये।

सरकार रघुनायक हैं। मुनियों का इनके यहाँ बड़ा आदर है। उनमें वसिष्ठजी सबसे श्रेष्ठ हैं और गुरु हैं। इनका अत्यन्त आदर किया। पम्पासर में नारद मुनि आये तो लक्ष्मणजी ने पैर धोया था। यथा: लछिमन सादर चरन पखारे। यहाँ सरकार ने स्वयं चरण धोये और चरणामृत लिया।

राम सुनहु मुनि कह कर जोरी। कृपासिन्धु बिनती कछु मोरी॥
देखि देखि आचरन तुम्हारा। होत मोह मम हृदयँ अपारा॥२॥

अर्थ: मुनि ने हाथ जोड़कर कहा कि हे कृपा के समुद्र रामजी! मेरी कुछ विनती सुनिये। आपका आचरण देखकर मेरे मनमे अपार मोह होता है।

व्याख्या: इस प्रकार के आदर को मुनिजी बहुत दिन से सह रहे थे। आज नही सह सके। खुल पड़े। हाथ जोड़कर बोले। मुनिजी सदा राम ही सम्बोधन करते थे। आज कृपासिन्धु कहने का भाव यह कि मेरे ऊपर भी कृपा हो। पुरजन पर तो कृपा किया स्वयं उनके सामने अपने स्वरूप का वर्णन कर दिया। यथा: भगति मोरि पुरान स्रुति गाई। परन्तु मेरे साथ वैसा अपनाइत का व्यवहार नही किया। अब इस आदर से काम न चलेगा। जब होता है आप ही विनती करते हैं। मुझे विनती का अवसर ही नही देते। सो आज मेरी विनती सुनिये।

सत् शिष्य की भाँति जो आचरण आप मेरे साथ करते हैं गुरुचरण प्रक्षालन चरणोदक ग्रहण आदि करते हैं। इससे मेरे मन मे अपार मोह होता है। बार बार प्रयत्न करने पर भी हठात् तुम्हारे ऊपर नरबुद्धि होने लगती है। यही अपार मोह है जिसका पार पाना मेरे लिए कठिन हो रहा है और मोह से कभी कल्याण हो नही सकता।

महिमा अमित वेद नहिं जाना। मैं केहि भाँति कहौं भगवाना॥
उपरोहित्य कर्म अति मंदा। वेद पुरान सुमृति कर निंदा॥३॥

अर्थ आपकी अपार महिमा को वेद भी नही जानते। हे भगवान्! मैं उसे कैसे वर्णन कर सकता हूँ। पौरोहित्यकर्म अत्यन्त नीच है। वेद पुराण और स्मृति मे उसकी निन्दा की गयी है।

व्याख्या आपके आचरण से मुझे बलात् नरबुद्धि होती है। पर महिमा आपकी ऐसी है जिसे वेद भी नही जानता कहे कैसे? जिसे वेद नही कह सक्ते जो साक्षात् आपकी वाणी है उसे मैं कैसे कहूँ। मैं तो जीव हूँ। ऐसे महामहिम का इतना आदर करना मेरे सहन शक्ति से बाहर की बात हुई जाती है। यदि इस पर कहिये कि जब तुम यह बात जानते ही थे तो पुरोहित क्यो हुए? पुरोहिती मे सब प्रकार का आदर स्वीकार करना पडता है और जब पुरोहित हुए तब पाद प्रक्षालनादि से क्यो घबराते हो।

इस पर कहते हैं कि मैं जानता था कि पौरोहित्य कर्म अत्यन्त मन्द है। मैं इसे ब्रह्मदेव के देने पर भी स्वीकार नही करता था। क्योकि वेद पुराण और स्मृतियो मे इसकी निन्दा लिखी है। ब्राह्मण को अपरिग्रहवृत्ति होना चाहिए। शिलोञ्छादि से ही निर्वाह करना चाहिए।

जब न लेउ मैं तब विधि मोही। कहा लाभ आगे सुत तोही॥
परमातमा ब्रह्म नर रूपा। होइहि रघुकुल भूपन भूपा॥४॥

अर्थ : जब मैंने अस्वीकार किया तब ब्रह्मदेव ने मुझसे कहा बेटे! आगे चलकर तुम्हें इससे लाभ होगा। परमात्मा ब्रह्म नर रूप धारण करके रघुकुल भूषण राजा होगे।

व्याख्या . जब ब्रह्मदेव मुझे रघुकुल की पुरोहिती देने लगे तब मैंने उसे अस्वीकार किया कि आप पिता होकर मुझे ऐसे गर्हित कार्य मे क्यो नियुक्त कर रहे हैं। तब वह ब्रह्मदेव ने प्रेम से मुझे समझाया कि इस समय तो कार्य तुम्हें मन्द जान पडता है। क्योकि इसम सब प्रकार का प्रतिग्रह लेना पडता है। जिससे तप का क्षय होता है। जो जिसका अन्न खाता है वह उसका पाप खाता है। परन्तु इसके स्वीकार करने से आगे चलकर बडा लाभ तुम्हें होगा। जब रघुकुल मे परमात्मा ब्रह्म का अवतार होगा तब उनकी प्राप्ति तुम्हें यजमान के रूप से होगी। रघुकुल के राजा लोग दान मे तुम्हें क्या नही देंगे। पर उसमे तुम लाभ नहीं देखते

हो। ब्रह्मप्राप्ति को ही लाभ मानते हो। वह लाभ तुम्हे इसी मन्द कर्म के स्वीकार करने से होगा।

दो. तब मै हृदय बिचारा, जोग जग्य ब्रत दान।
जा कहुँ करिअ सो पैहौं, धर्म न एहि सम आन ॥४८॥

अर्थ : तब मैंने हृदय मे विचारा कि योग यज्ञ व्रत और दान जिसके पाने के निमित्त किया जाता है उसकी प्राप्ति जिस कर्म से हो उसके बराबर धर्म और कुछ नही है।

व्याख्या : योग यज्ञ तप और दान इसलिए किया जाता है कि इससे भगवत्प्राप्ति होगी। पौरोहित्य इसलिए गर्हित है कि इससे योग और व्रत में बाधा पडती है और याजन तथा प्रतिग्रह स्वीकार करना पडता है। जिससे तप नष्ट हो जाता है। अतः पौरोहित्य ब्रह्मप्राप्ति का साधक न होकर बाधक है। मुझे जब इसके द्वारा ब्रह्म प्राप्ति होनेवाली है तो मेरे लिए पौरोहित्य ही साधन है। ऐसा विचार करके मैंने पौरोहित्य को ही सबसे बडा धर्म मान लिया। अर्थात् मैंने आपके प्रीत्यर्थ पौरोहित्य स्वीकार किया।

जप तप नियम जोग निज धर्मा। स्रुति सम्भव नाना सुभ कर्मा ॥
ज्ञान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धरम कहत स्रुति सज्जन ॥१॥

अर्थ : जप, तप, नियम, योग, स्वधर्म, वेद विहित अनेक विधि के कर्म, ज्ञान, दया, दम, तीर्थावगाहन और जहाँतक धर्म वेद और सज्जनो ने बतलाया है।

व्याख्या : सभी यज्ञो मे १ जप यज्ञ उत्तम बतलाया गया है। यथा : यज्ञानां जपयज्ञोस्मि। २. तप तो मानो सब सिद्धियो का मूल स्रोत है। यथा : तप बल रचै प्रपंच विधाता। तप बल बिष्णु सकल जगत्राता। तप बल संभु करहिं संहारा। तप बल सेष धरहिं महि भारा। इत्यादि ३ नियम अर्थात् शौच सन्तोष तप. स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधानानि नियमा'। अथवा अपना स्वीकृत नियम। यथा : आयसु होय तो रहहूँ सनेमा। तथा : संजम नियम नीति नहि डोलहिं। काष्ठजिह्व स्वामी कहते हैं : जगत् मे उन्ह ही को है रग जिनके नेम अभग। ४. वेद विहित नाना प्रकार के शुभ कर्म अर्थात् श्येन यागादि नही। वेद ने तो श्येनयाग की भी विधि बतलायी है। पर वह शुभ नही है। उससे नरक होता है। अतः वेद विहित वे कर्म जो शुभ फल दाता हो ५ योग से सिद्धियाँ होती हैं। यथा : जन्ममन्त्रौषधसमाधिजाः सिद्धयः। इनमे से समाधिज सिद्धि को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है। ६ स्वधर्म जिसके लिए कहा गया है कि सदोष होने पर भी उसका परित्याग न करे। स्वधर्म मे मर जाना भी श्रेष्ठ है। क्योंकि परधर्म भयावह होता है। ७ ज्ञान जिसके बराबर पवित्र कुछ है नही : सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिन सन्तरिष्यति। ज्ञानमयी नौका से ही सब पापो के पार जाया जाता है। ज्ञानाग्नि से ही सब कर्म भस्म होते हैं। ८ दया जिसके बराबर कोई धर्म नही है। ९ दम अर्थात् इन्द्रिय निग्रह। जिसके बिना सत्पथ मे चलने की

योग्यता ही नही होती। १०, तीर्थविगाहन तारने से ही उसका तीर्थ नाम पड़ा है। इसका बड़ा प्रभाव शास्त्रो मे वर्णित है और भी ११ जितना धर्म वेद और सज्जन लोग कहते हैं अर्थात् सज्जनो की स्थापित की हुई मर्यादाओ और वेद की मर्यादा का पालन।

आगम निगम पुरान अनेका। पढे सुने कर फल प्रभु एका॥
तव पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुदर॥२॥

अर्थ : शास्त्र वेद और अनेक पुराणो के पढने सुनने का एक ही फल है। आपके चरणारविन्दो मे निरन्तर प्रेम हो। सब साधनो का यही सुन्दर फल है।

व्याख्या : अज्ञातार्थ ज्ञापक १२ शास्त्र १३ वेद तथा १४. पुराण और उप पुराण हैं इनके पढने का फल अलग है और सुनने का फल अलग है। इसी भाँति उपर्युक्त चौदहो साधन के फल पृथक् वर्णित हैं। पर वसिष्ठजी कहते हैं कि वे सब सुन्दर नही हैं। क्योकि वे वास्तविक फल नही हैं। सुन्दर फल तो आपके चरणरविन्दो मे निरन्तर प्रीति का होना ही है। यथा . सबकर फल हरि भगति भवानी। लाभ कि रघुपति भगति अकुठा इत्यादि।

छूटै मल कि मलहि के धोएँ। घृत कि पाव कोइ वारि बिलोएँ॥
प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभि अतर मल कबहुँ कि जाई॥३॥

अर्थ . क्या मल मल के धोने से छूट सकता है। क्या किसी को जल के मन्थन करने से घी मिल सकता है। हे रघुराई! क्या प्रेम भक्ति के बिना अन्त करण का मालिन्य कभी दूर हो सकता है? कर्मणा कर्मनिर्हारो न ह्यात्यन्तिक इष्यते। भाग०।

व्याख्या : भाव यह है कि कर्म से कर्म का नाश कभी नही हो सकता। उससे तो कर्म की शृङ्खला और भी दृढ होती है। ज्ञान घृत की प्राप्ति नही होती। यथा : मोह जनित मल लाग बिबिध बिधि कोटिहु जतन न जाई। जनम जनम अभ्यास निरत चित अधिक लपटाई। नयन मलिन पर नारि निरखि मन मलिन विषय सँग लागे। हृदय मलिन वासना मान मद जीव सहज सुख त्यागे। परनिंदा सुनि स्रवन मलिन भे बचन दोष परगाये। सब प्रकार मल भार लाग निज नाथ चरन बिसराये। तुलसिदास ब्रत दान ज्ञान तप सुद्धि हेतु स्रुति गावै। रामचरन अनुराग नीर बिनु मल अति नास न पावै। विनय पद ८२।

प्रेमा भक्ति से ही भीतर का मल दूर हो सकता है और साधनो से स्थूल मल मात्र दूर होते हैं। पर सूक्ष्म मल जिसे अन्त करण की मलिनता कहते हैं। वह प्रेमा भक्ति बिना दूर होती नही। यथा ' कथ विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना। विनाऽऽनन्दाश्रुकलया शुद्ध्येत् भक्त्या विनाशय.। और भक्ति से ही ज्ञान होता है। भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते। बिना भजन के भव सन्तरण चाहना वारि मन्थन करके घृत चाहना है। यथा : वारि मथे बरु होय घृत सिकता ते बरु तेल। बिनु हरि भजन न भव तरिय यह सिद्धान्त अपेल।

सोइ सर्वज्ञ तज्ञ सोइ पंडित। सोइ गुन गृह बिज्ञान अखंडित ॥
दक्ष सकल लक्षन जुत सोई। जाके पद सरोज रति होई ॥४॥

अर्थ : वही सर्वज्ञ है वही पण्डित है वही गुणो का घर और अखण्ड विज्ञानी है वही निपुण और वही सब लक्षणो से युक्त है जिसे आपके चरणो मे प्रीति हो।

व्याख्या : हृदय के मल दूर होने से आप से आप ब्रह्म भासित होता है। अतः बिना योग साधन के ही वह सर्वज्ञ है। बिना श्रवण मनन निदिध्यासन के ही उसे तत्पद का ज्ञान हो जाता है। बिना शास्त्र पढे ही वह पण्डित हो जाता है। यथा : समुझत कहब करब तुम्ह जोई। धर्म सार जग होइहि सोई। बिना शिक्षा पाये ही वह गुण गृह है। उसी का विज्ञान अखण्डित है। क्योकि उसका पतन नही होता।

वही दक्ष है क्रिया कुशल है क्योकि वह आविर्भूत प्रकाश हो जाता है। वही सब लक्षणो से युक्त भाग्यवान् है। क्योकि भगवत् प्राप्ति उसी को होगी। अन्य सुलक्षणवाले भी कुलक्षणी हैं। दक्ष होने पर भी गँवार है। आपके चरणकमल की भक्ति ही सब कुछ है। यथा : यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिंचना सर्वै गुणैस्तत्र समासते सुराः।

दो. नाथ एक वर मांगौ, राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभुपद कमल, कबहुँ घटै जनि नेहु ॥४९॥

अर्थ : हे नाथ राम! एक वर मांगता हूँ। सो कृपा करके दीजिये कि सरकार के चरणकमलो की प्रीति किसी जन्म मे घटने न पावे।

व्याख्या : यहाँ वसिष्ठजी नाथ कहकर सम्बोधन करते हैं। एकान्त मे भेंट हुई। इसी से वर माँग रहे हैं। जो वह माँगना है वह तो वसिष्ठजी को प्राप्त है। अतः कहते हैं कि मेरा प्रेम जो आप पर है वह किसी जन्म मे न घटे। मुक्ति नही माँगते। भक्त होकर जन्म होना माँगते है। अधिकारी हैं : जन्म लेकर जगत् का कल्याण करना चाहते है। यहाँ सीताजी का उल्लेख नही है। पहिले गुरुजी के आने पर कहा था : गहे चरन सिय सहित बहोरी। चारो भाई हनुमान्‌जी के साथ उपवन देखने गये। उसी समय से सीताजी का उल्लेख ग्रन्थकर्ता नही करते। अतः यह मालूम होता है कि ये कथाएँ सीता वनवास के बाद की हैं।

अस कहि मुनि बसिष्ट गृह आये। कृपासिंधु कें मन अति भाये ॥
हनूमान भरतादिक भ्राता। संग लिए सेवक सुखदाता ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर वसिष्ठ मुनि घर आये। कृपासिन्धु रामजी के मन मे बहुत अच्छे लगे। हनुमान्‌जी और भरतादि भाइयो को साथ मे लिए हुए सेवको को सुख देनेवाले रामजी।

व्याख्या : सरकार ने सब सुन लिया परन्तु बोले कुछ नही। बडो के वरदान माँगने पर सरकार एवमस्तु ऐसा नही कहते। मौन रह जाना ही स्वीकृति है।

वसिष्ठजी यह बात जानते हैं। अतः जो कहना था सो कहकर घर आये। उनकी बातें कृपासिन्धु को बड़ी अच्छी लगी। क्योंकि वसिष्ठजी की बातें प्रेम से भरी हुई थीं। इतने बड़े ज्ञानी होकर भी भक्ति का ही वर माँगते हैं।

महा प्रस्थान का उपक्रम है। सरकार का स्वभाव है कि सेवक को सुख दिया करते हैं। यथा : सहज बानि सेवक सुखदायक। जिसमे सेवकों को सुख हो वैसा ही करते हैं। अतः हनुमान्‌जी तथा भरत आदि भाइयों को साथ लिये हुए हैं : जनमें एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई। कनँबेध उपबीत बिवाहू। सग संग सब भयहु उछाहू। अतः महा प्रस्थान भी साथ ही होगा।

उमा के आठवें प्रश्न का उत्तर

पुनि कृपाल पुर बाहेर गए। गज रथ तुरग मँगावत भये॥
देखि कृपा करि सकल सराहे। दिये उचित निज निज तेइँ चाहे॥१॥

अर्थ : तत्पश्चात् कृपाल रामजी पुर से बाहर गये। हाथी घोड़ा और रथ सब वहीं मँगवाया। रामजी ने कृपा करके सबकी प्रशंसा की और जिन्होंने जो चाहा उन्हें वही उचित समझकर दिया।

व्याख्या : तत्पश्चात् कृपाल अयोध्या नगर के बाहर चले गये। कृपाल कहने का भाव यह कि कृपा के कारण ही सरकार के मन मे यह भाव था : बिमल बंस यह अनुचित एकू। बन्धु बिहाइ बडेहि अभिषेकू। अत आठो पुत्रों को राज्य देंगे। यहाँ जानबूझकर कवि वियोग वर्णन नही करते जिसमे लोग कठोर कवि उन्हे न कहे। इतना ही लिखते हैं कि नगर के बाहर जाकर गज रथ[1] तुरग मँगाये। बड़ी भारी सेना है। अतः सब गज तुरग का जमाव नगर के भीतर नहीं हो सकता। सरकार ने कृपा करके सबको सराहना की। जिनको देना है उनकी सराहना की और देय वस्तु गज रथ तुरग को सराहना की। सरकार को सराहना करने से सब धन्य हो गये। यथा : धन्य अवध जो राम बखानी। पुत्रों और भ्रातृपुत्रों में उनका विभाग कर दिया। यह विभाग उन लोगों की इच्छा के अनुसार हुआ और उन लोगों ने भी उचित माँग की। यहाँ गज रथ तुरग उपलक्षण है। सम्पूर्ण राज्य का विभाग हुआ। सबको यथेप्सित सेना दे दी गयी।

हरन सकल स्रम प्रभु स्रम पाई। गए जहाँ सीतल अँवराई॥
भरत दीन्ह निज बसन डसाई। बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई॥२॥

अर्थ : सकल श्रम के हरण करनेवाले प्रभु थक गये तब शीतल आम की

---

१. अभिषिक्तौ सुतावङ्के प्रतिष्ठाप्य पुरे तत। रथानान्तु सहस्राणि नागानामयुतानि च। दश चाश्वसहस्राणि एकैकस्य धन ददौ। इत्यादि वाल्मीकीये। अभिषेक करके दोनों पुत्रों को गोद मे बिठाया और पुर मे स्थापन करके हजार रथ दस हजार हाथी दस हजार घोड़े एक एक को दिये। इत्यादि।

ारी मे चले गये। भरतजी ने अपना उत्तरीय बिछा दिया। प्रभु बैठ गये और सब भाई लोग सेवा करने लगे।

व्याख्या सरकार ही सबके विश्राम देनेवाले हैं। सो लौकिक व्यवहार ऐसा है कि उनकी थकावट का वर्णन किया जाता है। सामान्य गृहस्थी का विभाग बडा कठिन होता है। *यहाँ तो साम्राज्य का विभाग था। अत थकावट का वर्णन करते* हैं। थकावट होने पर ठण्ढी जगह की आवश्यकता है। अत शीतल अमराई मे जाना कहते हैं। नगर के बाहर गये हुए हैं। अत वहाँ शीतल स्थान अमराई है। अब यहाँ से पुर मे लौटना नही कहेंगे।

अति प्रेम से भरतजी ने अपना उत्तरीय वसन बिछा दिया। सरकार बैठ गये और सब भाई सेवा मे लग गये। पाद सवाहनादि क्रिया मे दत्तचित्त हुए। यहाँ सरकार का सेवा स्वीकार करना ही बडी भारी कृपा है।

मारुतसुत तब मारुत करई। पुलक बपुष लोचन जल बहई ॥
हनूमान सम नहि बडभागी। नहि कोउ रामचरन अनुरागी ॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई ॥४॥

अर्थं तब हनुमान्‌जी हवा करने लगे। उन्हे रोमाञ्च हो गया और प्रेमाश्रु का प्रवाह चला। हनुमान्‌जी के समान न तो कोई बडभागी है और न कोई रामचरन का अनुरागी है। शिवजी कहते हैं कि हे गिरजे! जिसकी प्रीति और सेवकाई का गान बार बार प्रभु ने श्रीमुख से किया।

व्याख्या सब भाई सेवा मे लग गये। तब हनुमान्‌जी हवा करने लगे। सरकार की सेवा मे हनुमान्‌जी को इतना प्रेम उमगता है कि शरीर पुलकित हो उठता है और नेत्र से अश्रु की धारा चलती है। अवधवासी सभी रामानुरागी हैं। अत सभी बडभागी हैं। परन्तु हनुमान्‌जी सा न कोई रामानुरागी है और न कोई बडभागी है। सरकार ने किसी की सेवकाई का वर्णन नही किया। जब वर्णन किया तो हनुमान्‌जी के प्रेम और सेवकाई का वर्णन किया। भाव यह है कि अवध की सम्पूर्ण प्रजा कृतार्थ रूप है। सभी सरकार के साथ ही प्रस्थान करेंगे। सगुन उपासक सग तब रहहि मोक्ष सुख त्यागि। सो मोक्ष सुखानुभूति के लिए सरकार के साथ हो प्रयाण करेंगे। परन्तु हनुमान्‌जी को मोक्ष सुख प्रिय नही है। सरकार का भजन प्रिय है और बिना शरीर के भजन होता नही। अत हनुमान्‌जी भजन के लिए यही ठहर जावेंगे।[1]

---

१. हनूमानपि त प्राह नत्वा राम प्रहृष्टधी। त्वन्नाम स्मरतो राम न तृप्यति मनो मम। अतस्त्वन्नाम सतत स्मरन् स्थास्यामि भूतले। यावत्स्थास्यति ते नाम लोके तावत्कलेवरम्। अध्यात्मरामायण। पुनश्च इस धरातल पर एक भी जीव जबतक रामनाम लेनेवाला कथावाचक रहेगा श्रीमारुति यही रहेंगे। ऐसा वर श्रीरघुनाथजी से हनुमान्‌जी ने माँगा है।

दो. तेहि अवसर मुनि नारद, आए करतल बीन।
गावन लगे राम कल, कीरति सदा नवीन ॥५०॥

अर्थ : उस समय नारदमुनि वीणा लिये पहुँच गये और रामजी की सदा सुन्दर कीर्ति का गान करने लगे।

व्याख्या : नारदजी तो नित्य ही अवध आया करते हैं। परन्तु इस समय जी का आना दूसरे ही अभिप्राय से है। वीणा भी बज रही है। कीर्ति का गान रहा है। नारदजी ऐसे गान करनेवाले गान कर रहे हैं और वीणा सा वाद्य रहा है और गान का विषय रामजी की सुन्दर कीर्ति है जो कभी पुरानी होती हीं। जब गान की जावे तभी नवीन मालूम होती है। अतः वह प्रस्थान का अलौकिक आनन्दमय था।

वलोकय पंकज लोचन। कृपा बिलोकनि सोकबिमोचन ॥
तामरस स्याम काम अरि। हृदय कंज मकरंद मधुप हरि ॥१॥

अर्थ : हे कमलनयन ! हे शोक विमोचन ! कृपादृष्टि से मुझे देखिये। नील के समान श्याम राम ! आप काम के शत्रु हैं। हे हरि ! हृदय कमल के न्द के लिए आप भौरे हैं।

व्याख्या : नारदजी ने जो गान किया उसे कवि यहाँ पर लिखते हैं। पहिले उनकी प्रार्थना हुई कि मुझे कृपादृष्टि से देखिये। कृपादृष्टि आपकी भक्तों को करनेवाली है। यथा : कृपादृष्टि करि वृष्टि प्रभु अभय किये सुरवृन्द और लोचन की दृष्टि अपनी ओर होने से देखने मे भी बड़ा आनन्द है। इसलिए अवलोकन को शोकविमोचन कह रहे हैं।

काम के शत्रु दो है : एक गौर वर्ण और एक श्याम वर्ण। सो यहाँ नीलतामरस काम अरि को सम्बोधन कर रहे हैं : पद कमल परागा रस अनुरागा। कमल में मकरन्द होता है उसी भाँति हृत्कमल का मकरन्द अनुराग है। उस रागरूपी मकरन्द के ग्राहक आप भ्रमररूप हैं। अर्थात् जिस हृदय में अनुराग है उस हृदय मे आप सदा विराजमान रहते है।

ुधान बरूथ बल भंजन। मुनि सज्जन रंजन अघ गंजन ॥
र ससि नव बृंद बलाहक। असरन सरन दीन जन गाहक ॥२॥

अर्थ : आप राक्षसों के सेना के बल के तोड़नेवाले हैं। मुनि और सज्जन को देनेवाले तथा पाप के नाश करनेवाले है। आप ब्राह्मण समूहरूपी नये धान लए बादल रूप हैं। आप अशरण के शरण और दीन जनों के ग्राहक हैं।

व्याख्या : आपने राक्षसों की सेना का नाश कर दिया। मुनि और सज्जनों रक्षा कर ली तथा पृथिवी का भार हरण कर लिया। अर्थात् अवतार ग्रहण के प्रयोजन : साधु परित्राण और दुष्कृतो का विनाश पूरे हो गये।

धान के पौदो को जल की बड़ी प्यास रहती हैं। उन्हे तृप्त करनेवाला बादल ही है। इसी भाँति ब्राह्मणो को सरकार की प्यास रहती है। उनके पालन के लिए आप कृपावारिधर हैं। जिसे कोई शरण नही उसके शरण आप हैं। दीनो को कौन पूछता है उनके ग्राहक तो आप ही हैं। अर्थात् : मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकजा। सो सरकार ने सबके दु ख को दूर किया।

भुज बल बिपुल भार महि खंडित। खरदूषन बिराध बध पडित ॥
रावनादि सुखरूप भूप बर। जय दसरथ कुल कुमुद सुधाकर ॥२॥

अर्थ : भुजाओ के बड़े भारी बल से आपने पृथिवी के भार का खण्डन किया। आप खरदूषण और विराध के बध मे पडित है। हे रावण के शत्रु सुख के रूप श्रेष्ठ भूपाल दशरथ कुलरूपी कुमुद के लिए चन्द्र रूप आपकी जय हो।

व्याख्या : आपने अपनी भुजाओ के बल से पृथिवी का भार उतार दिया। भाव यह कि जिस कार्य के लिए अवतार धारण किया था सो हो गया। वानरो की सेना जो आपने साथ मे ली थी वह तो कौतुक के लिए थी। यथा : तव निज भुज बल राजिव नैना। कौतुक लागि सग कपि सैना। राक्षसो के सहार मे आपने भुज बल से काम लिया और जहाँ आवश्यक पड़ा वहाँ पडिताई भी दिखलाया। खरदूषण तथा विराध के वध मे बल से काम चलनेवाला नही था। खरदूषण शस्त्रो से छिन्न भिन्न होकर भी नही मरते थे। यथा : महि परत पुनि उठि लरत मरत न करत माया अति घनी। विराध भी अस्थि मात्र अवशेष होने पर भी नही मरता था। इन दोनो के वध मे सरकार ने पण्डिताई दिखलायी। यथा : सुर मुनि सभय प्रभु देखि माया नाथ अति कौतुक करयो। देखहि परसपर राम करि सग्राम रिपुदल लरि मरयो। तथा : खनिगर्त गोपित बिराधा' विनय।

रावण सबको रुलानेवाला था। उसका वध करके सरकार ने संसार को सुखी कर दिया। अत' आप राजाओ मे श्रेष्ठ है। आप साक्षात् सुख रूप हैं। सभी को आप से सुख मिलता है पर दशरथ कुल तो विशेष रूप से सुखी है। जैसे सुधाकर से ससार सुखी होता है पर कुमुद कुल तो चन्द्रोदय होने से ही खिलता है। चन्द्रमा का पक्षपात कुमुद कुल के खिल उठने का कारण नही है। चन्द्रमा तो समान रूप से अमृत की वर्षा सब पर करते हैं। पर कुमुद कुल का चन्द्रके प्रति अधिक प्रेम ही उसके खिलने का कारण है।

सुजसु पुरान बिदित निगमागम। गावत सुरमुनि संत समागम ॥
कारुनीक ब्यलीक मद खडन। सब बिधि कुसल कोसला मंडन ॥
कलिमल मथन नाम ममताहन। तुलसिदास प्रभु पाहि प्रनत जन ॥३॥

अर्थ : आपका सुयश पुराण वेद और शास्त्रो मे विदित है। देवता मुनि और सन्त एकत्र होकर उसका गान करते है। हे कारुणीक मिथ्याभिमान के खण्डन करने- वाले अथवा वालिके मदके खण्डन करनेवाले हे कोसलपुर के भूषण आप सब प्रकार

से निपुण हैं। आपका नाम कलियुग के मलका नाश करनेवाला तथा ममता को दूर करनेवाला है। यह जन प्रणत हैं। हे तुलसीदास के प्रभु ! रक्षा करो।

व्याख्या : गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद। बालमीकि बिज्ञान बिसारद। सुक सनकादि सम्भु अरु सारद। बरनि पवन सुत कीरति नीको। गावत बेद पुरान अष्टदस। इत्यादि सभी आप के सुयश का गान करते हैं। आप के गुणों की घोषणा करते हैं कि आप करुणाकर हैं। आप मिथ्याभिमान को दूर करनेवाले हैं। मै सेवक रघुपति पति मोरे। यह अभिमान सच्चा है। इसके बने रहने के लिए भक्तों की प्रार्थना रहती है। हे कोसलपुर के राजा आप सभी प्रकार से कुशल हैं। ज्ञान मार्ग की प्राप्ति आपके नाम से होती है। क्योंकि वह कलियुग के मल को दूर करता है और ममता को नष्ट करता है। नारदजी कहते है कि मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिये।

इस स्तुति में नाम रूप लीला और धाम ये चार तारे चमकते हैं। यह घनिष्ठा नक्षत्र है। इसमें कलि मल मथन नाम ममता हन : कहकर नाम कहा। स्याम तामरस कहकर रूप कहा। जातुधान बरूथ बलभंजन : कहकर लीला कहा। तथा कोसलामंडन कहकर धाम कहा। ये ही चार तारे इसमे चमकते है। इस स्तुति में सरकार के गुणों की घोषणा है। यथा : सुजसु पुरान विदित निगमागम। गावत सुर मुनि सत समागम। इसलिए इसको मर्दलाकार माना। इसकी फलश्रुति है : सकल सुकृत फल भूरि भोग से।

दो. प्रेम सहित मुनि नारद, बरनि राम गुन ग्राम।
सोभासिंधु हृदयँ धरि, गये जहाँ बिधि धाम ॥५१॥

अर्थ : प्रेम सहित नारद मुनि रामजी के गुण ग्राम का वर्णन करके और शोभासिन्धु रामजी को अपने हृदय में रखकर ब्रह्मलोक चले गये।

व्याख्या : यही सरकार को हृदय में रखने की कुञ्जी है कि उनके गुणग्रामों को प्रेम सहित गावे। नारदजी ने प्रेम के सहित सरकार के गुणों का गान किया। तो सरकार उनके हृदय में चले गये और नारदजी उन्हें लिये हुए ब्रह्मलोक चले गये। भक्त के हृदय से ही बाहर निकलकर अवतार धारण किया था। यथा : बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु स्राप मम एहा। और भक्त हृदय ही उनका निज धाम है। यथा : जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु। बसहु निरन्तर तासु मन सो राउर निज गेहु। उसी में चले गये। प्रजा सहित रघुवंश मनि किमि गवने निज धाम। इस प्रश्न का यही उत्तर महादेवजी देते हैं : सगुणोपासक प्रजा मोक्ष सुख को छोड़कर सरकार के मर्त्य धाम मे पधारने से आई थी। सो अब मोक्ष सुख प्राप्ति के लिए सरकार के साथ चली गयी। यथा : निज इच्छा अवतरइ प्रभु सुर महि गो द्विज लागि। सगुन उपासक सँग तब रहहिं मोक्ष सुख त्यागि। और तब नारदजी ब्रह्मलोक चले गये। बैकुण्ठ साकेत गोलोक महा कैलास आदि ब्रह्मलोक के ही भेद हैं।

कथोपसहार

गिरिजा सुनहु बिसद यह कथा । मै सब कही मोरि मति जथा ॥
राम चरित सत कोटि अपारा । स्रुति सारदा न बरनै पारा ॥१॥

अर्थ · हे पार्वति ! सुनो इस निर्मल कथा को अपनी बुद्धि के अनुसार मैंने सब कह दी । राम चरित्र सौ करोड है और अपार है । वेद और शारदा भी वर्णन नही कर सकती ।

व्याख्या · कथा विषयक अन्तिम प्रश्न के उत्तर की समाप्ति दिखलाते हैं। कथा को निर्मल कहते हैं क्योंकि यह अभ्यन्तर मल को धोनेवाली है। सब कह दिया कहने का भाव यह है प्रजा सहित रघुबस मनि किमि गवने निज धाम। इस प्रश्न का भी उत्तर कह दिया। यह कथा ही ऐसी है कि यथामति कही जाती है। क्योंकि इस कथा की सीमा नहीं है। अब सीमा न होने का कारण कहते हैं कि राम चरित्र एक तो है नही सौ करोड हैं और उनमे एक एक का पारावार नहीं है। न वेद ही सब वर्णन कर सकते हैं न शारदा ही सब वर्णन कर सकती हैं। जो आकाश की भाँति असीम हो उसका पार कोई कैसे पा सकता है।

रामु अनत अनत गुनानी । जनम करम अनत नामानी ॥
जलसीकर महिरज गनि जाही । रघुपति चरित न बरनि सिराही ॥२॥

अर्थ . राम अनन्त हैं। उनके गुण अनन्त हैं। उनके जन्म कर्म और नाम अनन्त हैं। जल की बूँदे और पृथिवी के कण चाहे गिन लिये जायँ पर रामजी के चरित्र वर्णन करके समाप्त नही किये जा सकते।

व्याख्या रामजी का अन्त नही है। यथा नभ सत कोटि अमित अवकासा। राम के गुणो का भी अन्त नही है। यथा राम अमित गुन सागर थाह कि पावै कोइ। राम के अवतार भी अनन्त है। यथा कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरही। चारु चरित नाना बिधि करही। अथवा : अवतारा ह्यसख्येया हरे सत्त्वनिधेर्द्विजा। और प्रत्येक अवतार मे नाना विधि से चरित करते है। अत कर्म भी अनन्त हैं और उसके नामो का भी अन्त नही है। क्योंकि प्रत्येक अभिधान के वही एक अभिधेय है। अत उसके नाम का भी अन्त नही हैं। उनका गरीबनेवाज भी नाम है। गईबहोरी भी नाम है साहब भी नाम है इत्यादि।

जल सीकर की गिनती कौन कर सकता है। पृथिवी के कणो की गणना कैसे सम्भव है। पर यदि वह भी सम्भव हो जाय तो भी रामजी के गुणो की गणना असम्भव है। एक एक अणु परमाणु मे विशेषता है। इसीलिए विशेष को अनन्त माना गया है। वे सब विशेषता भी तो रामजी की ही कृति है। अत उनके चरित की गिनती कैसे हो सकती है।

बिमल कथा हरिपद दायनी । भगति होइ सुनि अनपायनी ॥
उमा कहेउ सब कथा सुहाई । जो भसुडि खगपतिहि सुनाई ॥३॥

अर्थ · यह निर्मल कथा हरिपद की देनेवाली है। इसके सुनने से अनपायिनी भक्ति होती है। हे उमा! मैंने वह सब सुहाई कथा कही। जो भुसुडि ने गरुड को सुनायी थी।

व्याख्या · रामजी की कथा मे मल नही है। क्योकि यह पापनाशिनी है। यह कथा हरिपद दायिनी हैं। सरयूजी भी हरिपददायिनी हैं। यथा : जा मज्जन ते बिनहि प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा। इसी भाँति यह सरयू काव्य की कथा भी हरिपद दायिनी है। इसके सुनने से अनपायिनी भक्ति होती है। उसी भक्ति मे अपाय : विघ्न नही होता। जो अनपायिनी भक्ति बडे साधनो के करने पर मुनियो को मिली है वह इस कथा के सुनने से प्राप्त होती।

उपक्रम मे कहा था : सुनु सुभ कथा भवानि रामचरित मानस बिमल। कहा भुसुडि बखानि सुना विहग नायक गरुड। अत· उपसहार मे भी वही बात कह रहे हैं। जो भुसुडि खगपतिहिं सुनाई। स्वय मानस के रचयिता कह रहे हैं कि भुसुण्डि से कही हुई कथा मैंने तुम्हे सुनाया। यह सनातन रीति है कि अहकार से विमूढ होकर अपने को कर्ता नही मानना चाहिए। ज्ञान विज्ञान सब सनातन है। अत: पहिले के कहे हुए सवाद को प्रमाण मे देकर तब उपदेश देना उचित है। भगवान् आदि गुरु श्रीकृष्णजी भी गीता की परम्परा कहते हुए अपने ही प्रथम कथन को प्रमाण मे देकर गीता का उपदेश करते हैं। यथा . इमं विवस्वते योग प्रोक्तवानहमव्ययम्। विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्। एव परम्पराप्राप्तमिम राजर्षयो विदु·। इत्यादि।

कछुक रामगुन कहेउँ बखानी। अब का कहउँ सो कहहु भवानी ॥
सुनि सुभ कथा उमा हरषानी। बोली अति बिनीत मृदु बानी ॥४॥
धन्य धन्य मै धन्य पुरारी। सुनेउँ रामगुन भव भयहारी ॥५॥

अर्थ : थोडा सा रामजी के गुणो को बखानकर कहा। अब क्या कहें उसे हे भवानी बतलाओ। शुभ कथा सुनकर उमा प्रसन्न हो गयी और अति विनीत मृदु वाणी बोली। हे पुरारी! मैं धन्य हूँ धन्य हूँ। धन्य हूँ। मैंने ससार के भय को नाश करनेवाले राम गुणो को सुना।

व्याख्या : रामजी की कथा जो हो सका सो सब कहा और प्रसङ्गात् कुछ रामजी के गुणों का भी वर्णन किया। मैंने पहिले कहा था : सो सम्वाद उदार जेहि विधि भा आगे कहब : उसे कहना है और तुमने राम रहस्य विषयक भी प्रश्न किया है। सो इनमे से अब क्या कहे सो तुम्ही बतलाओ।

अब श्रोता का कृतकृत्य होना कहते हैं। पार्वतीजी कथा सुनकर कृतकृत्य हो गयी। इसी बात को गोस्वामीजी उमा हरखानी कहकर द्योतित करते हैं। कृतज्ञता प्रकाश के लिए अति विनीत मृदु वाणी बोली। वक्ता को धन्य कहना विनीत वाणी है और सुनने से अपने को धन्य कहना अति विनीत वाणी है। धन्य होने का

कारण कहती हैं कि रामजी के गुणों को सुना : जिनके श्रवण मात्र से संसार का भय नष्ट होता है। जिसने रामजी के गुणों को सुना उसे संसार का भय नही रह जाता।

दो. तुम्हरी कृपा कृपायतन, अब कृतकृत्य न मोह।
जानेउँ रामप्रताप प्रभु, चितानंद संदोह ॥५२॥

अर्थ : हे कृपायतन तुम्हारी कृपा से अब मै कृतकृत्य हो गयी। अब मुझे मोह नही है। मैंने चिदामन्द सन्दोह रामजी के प्रताप का जाना।

व्याख्या : शङ्कर भगवान् ने कहा : अजहुँ न छाया मिटत तुम्हारी। स्वयं भी स्वीकार किया था : अजहूँ कछु संशय मन मोरे। अब कहती है कि आप की कृपा से मोह चला गया। अतः मैं कृतकृत्य हो गयी। मन मे जो संशय उठा था : तिन्ह नृप सुतहिं कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानन्द परधामा। वह सशय बिलकुल दूर हो गया। चिदानन्द सन्दोह राम हैं। उनके प्रताप की मुझे जानकारी हो गयी। इसी प्रकार का सन्देह गरुड़जी को हुआ था कि सो अवतरा सुनेउ जगमाही। देखेउँ सो अभाव कछु नाही।

दो. नाथ तवानन ससि स्रवत, कथा सुधा रघुबीर।
स्रवन पुटन्हि मन पान करि, नहि अघात मति धीर ॥५२॥

अर्थ : हे नाथ ! आप के मुखचन्द्र से रघुवीर के कथामृत की झरी को कान रूपी दोने से पीकर हे मतिधीर ! मेरा मन नहीं अघाता।

व्याख्या : कथा सुधा के लिए सुधाकर महेश का मुखचन्द्र है। जगदम्बा महेशमुखचन्द्र की चकोरी हैं। रूप सुधा का नयनपुट से सदा पान किया करती हैं। इस समय तो कथा सुधा का भी श्रवणपुट से पान कर रही थी। कथा समाप्त होने पर अपनी कृतकृत्यता तो कही पर उसके साथ साथ यह भी कह रही हैं कि मेरा मन कथा सुधा के पान से भरा नही और भी कथा सुनना चाहता है। आप मतिधीर हैं। आप इसे समझ सकते हैं। मुझे और भी कथा सुनाइये।

राम चरित जे सुनत अघाही। रस बिसेप जाना तिन्ह नाही ॥
जीवन मुकुत महा मुनि जेऊ। हरि गुन सुनहि निरंतर तेऊ ॥१॥

अर्थ : जिसका मन राम चरित्र सुनने से ऊब उठता है उसने रस विशेप को जान नही पाया। जो जीवन्मुक्त महामुनि हैं वे भी श्रीहरि के गुणों को निरन्तर सुना करते हैं।

व्याख्या : भगवती स्वयं रामचरित सुनते सुनते नही अघाईं और दूसरे के लिए कहती हैं कि सुनते सुनते जो अघा जाते हैं उन्हे इस चरित्र का रस मिला नही। रामचरित्र मे एक विशेप रस है जिसके आस्वादन करनेवाले की प्यास नित्य बढती जाती है। कभी उससे जी ऊबता ही नही। ऐसा स्वाद और कही

नही है। दो एक बार सुनने से ही मन भर जाता है कि वह तो वही बात है जिसे मैं सुन चुका हूँ। रामचरित्र सुनने मे भी जो यही बात कहे तो समझ लीजिये कि इसे उस रस विशेष का अनुभव ही नही हुआ। सूक्ष्म रस का स्वाद लेने के लिए परिष्कृत ग्रहण शक्ति चाहिए। जिस भाँति गुड खानेवाले को अगूर फीका लगता है। उसी भाँति पापात्मा को रामचरित्र का स्वाद नही मिलता।

महामुनि जो जीवन्मुक्त है उन्हे कोई कामना नही है। निवृत्ततर्ष हैं जो दु ख से घबराते नही। जिसे सुख की इच्छा नही जिन्हे राग द्वेष और भय नही है। जिनका चित्त स्थिर हो गया है उन्हे मुनि कहते हैं। उनमे भी जो श्रेष्ठ हैं जीवन्मुक्त है। उन्हे महामुनि कहते हैं। वे भी बराबर हरिगुण सुना करते हैं कभी ऊबते नही। यथा सुनि गुनगान समाधि बिसारी। सारद सुनहि परम अधिकारी।

भवसागर चह पार जो पावा। रामकथा ताकहुँ दृढ नावा ॥
बिपइन्ह कहँ पुनि हरि गुनग्रामा। स्रवन सुखद अरु मन अभिरामा ॥२॥

अर्थ जो ससार सागर के पार जाना चाहता है उसके लिए राम कथा दृढ नाव है। जो विषय मे ही लुब्ध हैं उन्हे भी श्रीहरि के गुणग्राम सुनने से कानो को सुख मिलता है और मन को प्रिय लगता है।

व्याख्या बिषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिबिध जीव जग वेद बखाने। तीन प्रकार के जीव वेद ने कहे हैं। चौथा कोई प्रकार नही है। सो सिद्ध सयाने का वृत्तान्त तो ऊपर की चौपाई मे कह आये है। अब साधक का वृत्तान्त कहते हैं। जीवन्मुक्त तो ससार सागर के पार पहुँच चुके है। परन्तु जो पार नही पहुँचे हैं किन्तु पार जाना चाहते हैं वे साधक है। उनके लिए रामकथा दृढ नाव है। इसके आश्रयण करनेवाला डूबता नहीं पार पहुँच ही जाता है। कर्म कथा को वेदो ने अदृढ नौका कहा है। वह पार पहुँचाने मे असमर्थ हैं। अत साधक लोग इसका परित्याग कर नही सकते। यथा जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।

अब रह गये विषयी लोग। जो न तो पार पहुँचे हैं और न पार जाना चाहते हैं। उनका मन विषय में ही शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध मे ही लगा है। वे विषय कथा मे ही सुख पाते हैं उनके लिए ग्रन्थकार कहते है कि रामकथा मे उनका भी मन लगता है। क्योकि इसमे दिव्यातिदिव्यविषयो का वर्णन है और यह कथा मीठी है। सुनने मे सुख उपजता है और मन को शान्ति प्रदान करती है।

स्रवनवत अस को जग माही। जाहि न रघुपति चरित सोहाही ॥
ते जड जीव निजात्मक घाती। जिन्हहि न रघुपति कथा सोहाती ॥३॥

अर्थ ऐसा कानवाला ससार मे कौन है जिसे रामजी की कथा अच्छी नही लगती। वे जड जीव अपना आत्मघात करनेवाले हैं जिन्हे रामजी की कथा अच्छी नहीं लगती।

व्याख्या : जिन्हे कान है उन्हे तो राम कथा अच्छी लगेगी ही। जिन्हे अच्छी नही लगती उन्हे समझना चाहिए कि श्रवणेन्द्रिय है ही नही। वे जड हैं। उनके कान कठपुतली के कान से बने हुए हैं। उन्होने अपनी आत्मा का हवन कर दिया। घोर हिंसक हैं। पाप से उनकी बुद्धि अत्यन्त कलुषित हो गयी है। उन्हे कूकर सूकर की योनि प्राप्त होनेवाली है। यथा : १ निवृत्ततर्षैरुपगीयमानात् २ भवौषधात् ३ श्रोत्रमनोभिरामात्। क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात्।

हरि चरित्र मानस तुम्ह गावा। सुनि मै नाथ अमित सुख पावा॥

उमा के छः प्रश्न

तुम्ह जो कही यह कथा सुहाई। कागभसुडि गरुड़ प्रति गाई॥४॥

अर्थ : हे नाथ! आपने रामचरित्र का गान किया। उसे सुनकर मैंने असीम सुख पाया। आपने जो यह कहा कि इस कथा को कागभुसुण्डि ने गरुडजी से कही थी।

व्याख्या : उमा कहती हैं कि आपने कथा के उपक्रम मे जो कहा था : रामचरित मानस एहि नामा। सुनत स्रवन पाइअ बिस्रामा। मनकरि विषय अनल बन जरई। होय सुखी जो एहि सर परई। सो वैसा ही हुआ। मुझे ऐसा सुख हुआ जिसकी सीमा नही। परन्तु आपने यह कहा : उमा कहेउँ सब कथा सुहाई। जो भुसुडि खगपतिहि सुनाई। पहिले भी कहा था : सुनु सुभ कथा भवानि रामचरित मानस बिमल। कहा भुसुडि बखानि सुना बिहग नायक गरुड। सो सवाद उदार जेहि बिधि भा आगे कहब। उसी के बारे मे शका करती हैं। भाव यह कि शिवजी ने पूछा था : अबका कहौं सो कहहु भवानी। उसी के उत्तर मे कह रही हैं कि इस शका का समाधान कर दीजिये।

दो. बिरति ज्ञान बिज्ञान दृढ़, रामचरित अति नेह।
बायस तन रघुपति भगति, मोहि परम संदेह॥५३॥

अर्थ : वैराग्य ज्ञान और विज्ञान मे जो दृढ है और जिसका रामजी के चरणो मे अत्यन्त स्नेह है उसे काम शरीर प्राप्ति और उस शरीर मे भी रामजी की भक्ति की प्राप्ति। इस विषय मे मुझे बडा भारी सन्देह है।

व्याख्या : जिसे वैराग्य ज्ञान विज्ञान दृढ हो। उसकी मुक्ति होनी चाहिए। जिसे रामचरित मे अति प्रेम हो उसे कृतकृत्य होना चाहिए। उसे चाण्डाल पक्षी काक की शरीर कैसे मिली : सनमुख होई जीव मोहि जबही। जन्मकोटि अघ नासहि तबही। जो नर होई चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही। तजि मद मोह कपट छल नाना। करौं सद्य तेहि साधु समाना। कोटि विप्र बध लागहि जाहू। आए सरन तजौं नहि ताहू। सो जिसे रामचरण मे अतिस्नेह है। उसे पाप रह कहाँ गया जिससे उसे काक शरीर की प्राप्ति हुई? यदि काक शरीर मिला तो भी काग

र मे राम भक्ति कैसे हुई। राम भक्ति तो सब पुण्यो का फल है। काक शरीर फल के सर्वथा अयोग्य है। अतः इस विषय मे तो मुझे परम सन्देह है।

सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म व्रत धारी ॥
सील कोटिक महँ कोई। बिषय बिमुख बिरागरत होई ॥१॥

अर्थ : हे पुरारि! सहस्रो मनुष्यो मे कोई एक धर्म व्रत धारण करनेवाला होता करोडो धर्मशीलो मे कोई एक विषय से हटकर वैराग्यवान् होता है।

व्याख्या : पहिले तो धर्मव्रत होना कठिन है। स्वाभाविकी प्रवृत्ति को ञीया बनाने मे हजारो मनुष्यो मे से कोई एक सफल होता है। जिसकी प्रवृत्ति ञीया हो गयी वही धर्मशील है। वही धर्माचरण का व्रत निबाह सकता है। शेष ऽढपतित हो जाते हैं। धर्म व्रत निवाह नही सकते।

धर्माचरण का मुख्य फल यही है कि उसको वैराग्य हो गया। यथा : धर्म ते ति योग ते ज्ञाना। सो उस मुख्य फल की प्राप्ति करोडो मे से किसी एक को होती करोड़ो धर्मशीलो मे से कोई एक ही विरक्त होने मे समर्थ होता है।

टि बिरक्त मध्य स्रुति कहई। सम्यक ज्ञान सकृत कोउ लहई ॥
नवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवन मुक्त सकृत जग सोऊ ॥२॥

अर्थ : वेद कहता है कि करोडो वैराग्यवानो मे से सम्यक् ज्ञान किसी एक को होता है और करोडो ज्ञानियो मे से जीवन्मुक्त तो कोई एक ही होता है।

व्याख्या : ऐसा ही नियम है। इसलिए कहते हैं कि वेद ऐसा कहता है कि ोडो वैराग्यवानो मे से किसी एक को ही सम्यक् ज्ञान होता है। वैराग्य से योग सिद्धि होती है और योग सिद्धि से सम्यक् ज्ञान होता है। यथा धर्म ते बिरति ा ते ज्ञाना। सम्यक् ज्ञान से अभिप्राय है अभ्रान्त ज्ञान का। ऐसे अभ्रान्त नवालो मे जीवन्मुक्ति की दशा तो करोडो मे किसी एक को ही प्राप्त होती है। नका भोजनाच्छादनादि व्यवहार भी लोगो की दृष्टि मे है अपनी दृष्टि से वे कुछ ी करते। *उनका शरीर प्रारब्ध बल से चलता है।*

न्ह सहस्र महुँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्म लीन बिज्ञानी ॥
र्म सील बिरक्त अरु ज्ञानी। जीवनमुक्त ब्रह्म पर प्रानी ॥३॥

अर्थ ऐसे सहस्रो मे से सब सुख की खानि ब्रह्मलीन विज्ञानी दुर्लभ हैं। र्मशील, विरक्त, ज्ञानी, जीवन्मुक्त और ब्रह्मलीन प्राणी।

व्याख्या : हजारो जीवन्मुक्तो मे से कोई ही ब्रह्मलीन विज्ञानी होता है। जो दा ब्रह्मानन्द मे ही लवलीन रहता है उन्हे ब्रह्मलीन विज्ञानी कहते हैं। यथा : ह्मानद सदा लयलीना। देखत बालक बहु कालीना। इस भाँति दुर्लभ साधनो के पाँच दर्जे हुए : १ धर्मशील २ विरक्त ३ ज्ञानी ४ जीवनमुक्त और ५ विज्ञानी।

सब ते सो दुर्लभ सुरराया। राम भगति रत गत मद माया ॥
सो हरि भगति काग किमि पाई। बिस्वनाथ मोहि कहहु बुझाई ॥४॥

अर्थं हे महादेव! इन सबसे वह दुर्लभ है जो राम भक्ति मे रत हो और मद माया जिसकी छूट गयी हो। उस हरिभक्ति को काक ने कहाँ से पायी ? हे विश्वनाथ मुझे समझाकर कहो।

व्याख्या : परन्तु वेदोदित समस्त साधनो का फल तो हरिभक्ति है। यथा : तीर्थाटन साधन समुदाई। योग बिराग ज्ञान निपुनाई। नाना कर्म धर्म व्रत दाना। सजम दम जप तप ब्रत नाना। भूत दया द्विज गुरु सेवकाई। विद्या बिनय बिबेक बडाई। जहँ लगि साधन वेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी। यहाँ भक्ति से अभिप्राय मद माया रहित हरिभक्ति अर्थात् प्रेमा भक्ति से है। उमा को इसलिए परम सन्देह हुआ कि जो हरिभक्ति ब्रह्मलीन विज्ञानियो को दुर्लभ है उसे चाण्डाल पक्षी ने कैसे पाया ? भाव यह कि यह प्रेमा भक्ति काग मे हाने की कोई सम्भावना नही। यह भक्ति या तो उसे काग शरीर मे ही उपजी हो या पूर्व जन्म से ही हो। पूर्वजन्म से हो नही सकती। क्योकि प्रेमा भक्तिवाले को काग शरीर नही मिल सकता। अत यही मानना पडेगा कि इसी शरीर मे प्रेमा भक्ति प्राप्त हुई। पर यह भी असम्भव है। जो नारकी जीव नरक भोग के उपरान्त उस सस्कार से काक जन्म पाया उसे काक शरीर मे जिससे कोई पुरुषार्थ नही हो सकता प्रेमा भक्ति का उपजना महा असम्भव से भी असम्भव है। इसलिए कहती हैं कि हे विश्वनाथ! मुझे समझाकर कहो। परम सन्देह समझाकर कहने से ही जाता है।

दो राम परायन ज्ञान रत, गुनागार मति धीर।
नाथ कहहु केहि कारन, पाएउ काक सरीर ॥५४॥

अर्थं · राम ही जिसके परम शरण हैं। जो ज्ञान मे रत है। गुणो का भण्डार है और मति धीर अर्थात् स्थितप्रज्ञ हैं उसे काक शरीर किस कारण से मिला।

व्याख्या : राम परायण को साकेत लोक की प्राप्ति होनी चाहिए। ज्ञानरत को मोक्ष होना चाहिए। गुणागार मतिधीर को यदि किसी कारण से जन्म भी हो तो पवित्र श्रीमान् के घर मे या योगी के घर मे जन्म होना चाहिए। उसका जन्म काक योनि मे कैसे हुआ ? भुसुण्डिजी मे ये सब भी गुण विद्यमान हैं और उनका काक शरीर भो है। इन दोनो बातो मे सामञ्जस्य नहीं बैठता। यह पहला प्रश्न है।

यह प्रभु चरित पवित्र सोहावा। कहहु कृपाल काग कहँ पावा ॥
तुम्ह केहि भाँति सुना मदनारी। कहहु मोहि अति कौतुक भारी ॥१॥

अर्थं . यह प्रभु का पवित्र और सुन्दर चरित्र हे कृपाल! कौए ने कहाँ पाया ? और हेमदनारि तुमने कैसे सुना ? यह अति भारी कौतुक है। मुझे बताइये।

व्याख्या यह प्रभु का चरित्र है। सुन्दर है और पवित्र है। यथा पुण्यं पापहर

सदाशिवकर विज्ञानभक्तिप्रद मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्। श्रीमद्राम-चरित्रमानसमिद भक्त्यावगाहन्ति ये। ते ससारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः। ऐसे सुन्दर पवित्र वस्तु के सन्निकट कोई काक को जाने नही देता और उनकी स्वयं प्रवृत्ति इस ओर नही होती। यथा : अति खल जे बिषयी बक कागा। एहि सर निकट न जाहिं अभागा। अत. काक इसका पात्र किसी भाँति नही हो सकता। उसे मिला कहाँ से : यह दूसरा प्रश्न है। और सबसे बडा कौतुक तो यह है कि काग जब कहता था तो आप कैसे जाकर उसके श्रोता बने। आप कामारि हैं और काक कामी पक्षी है। यथा : कामी काक बलाक बिचारे। सो कामी वक्ता हो और कामारि श्रोता हो इससे बढकर आश्चर्य क्या होगा ? यह तीसरा प्रश्न है।

गरुड महाज्ञानी गुनरासी। हरिसेवक अति निकट बिनासी॥
तेहि केहि हेतु कागसन जाई। सुनी कथा मुनि निकर बिहाई॥२॥

अर्थ : गरुड महाज्ञानी हैं। गुण की राशि हैं। हरि के सेवक हैं। उनके अत्यन्त निकट रहते हैं। वे किस कारण से मुनि समूह को छोडकर कौए से कथा सुनने गये।

व्याख्या अब चौथा प्रश्न करती हैं कि नियम तो यही है कि अपने से उत्कृष्ट के यहाँ ही लोग कथा सुनने जाते हैं। यहाँ तो गरुडजी श्रोता हैं। कहाँ महाज्ञानी गरुड कहाँ मति मन्द काक। कहाँ वे गुणो की राशि और कहाँ यह छली मलिन। कहाँ वह बैकुण्ठ मे भगवान् के अति निकट रहनेवाले और कहाँ यह नारकी पक्षी अपवित्र स्थलो मे बिचरनेवाला। सो ऐसे के यहाँ गरुडजी कथा सुनने क्यो गये ? क्या बैकुण्ठ मे मुनि उन्हें नही मिले ?

कहहु कवन बिधि भा सवादा। दोउ हरि भगत काग उरगादा॥
गौरि गिरा सुनि सरल सुहाई। बोले सिव सादर सुख पाई॥३॥

अर्थ . बताइये उनमे सवाद किस विधि से हुआ। काग और गरुड दोनो हरिभक्त थे। गौरीजी की सरल और सुन्दर वाणी सुनकर शिवजी सुख पाकर आदर के साथ बोले।

व्याख्या यह पाँचवाँ प्रश्न विधि विषयक है। सम्बाद होने मे भी विधि है। यथा ' सादर चरन सरोज पखारे। अति पुनीत आसन बैठारे। करि पूजा मुनि सुयस बखानी। बोले अति पुनीत मृदुबानी। नाथ एक ससउ बड मोरे। करगत बेद तत्त्व सब तोरे। इत्यादि। सो गरुड ने क्या काक का पूजन किया ? और स्तुति की कि वेद के तत्त्व सब आपको हस्तामलक है ? कथा प्रारम्भ के पहिले कुछ विधि का पालन तो हुआ ही होगा। उसे भी मैं सुनना चाहती हूँ।

धर्मशास्त्र की आज्ञा है : नापृष्ट कस्यचिद् ब्रूयात् न चान्यायेन पृच्छत। बिना पूछे किसी से कुछ न कहना चाहिए और अन्याय से पूछने पर भी कुछ न कहना चाहिए। उसी बात को यहाँ दिखलाते हैं कि उमा की वाणी सुन्दर और सरल सुनकर शिवजी को सुख हुआ और आदर से बोले। उमा ने विनीत भाव से

और ऐसे सरल हृदय से प्रश्न किया कि वक्ता का मन प्रसन्न हो गया और बिना वक्ता के प्रसन्न हुए वह आदर से कथा नही कह सकता।

उमा के तीसरे प्रश्न का उत्तर

धन्य सती पावनि मति तोरी। रघुपति चरन प्रीति नहि थोरी ॥
सुनहु परम पुनीत इतिहासा। जो सुनि सकल सोक भ्रम नासा ॥४॥
उपजै राम चरन बिस्वासा। भवनिधि तर नर बिनहि प्रयासा ॥५॥

अर्थ : हे सती! तुम धन्य हो। तुम्हारी मति अतिपवित्र है। तुम्हे रामजी के चरणो मे थोडी प्रीति नही है। अब परम पवित्र इतिहास सुनो जिसे सुनने से सब शोक और भ्रमो का नाश होता है। रामजी के चरणो मे विश्वास होता है और बिना प्रयास के मनुष्य ससार सागर के पार हो जाता है।

व्याख्या : पावन मति द्योतित करने के लिए यहाँ पहिले ही सती सम्बोधन दिया। जिसकी पावन मति होगी उसी के मन मे ऐसी अधिकार विषयक शङ्का उठेगी। जिसे रामजी के चरणो मे अधिक प्रीति होगी उसी के हृदय मे कथा की इतनी महिमा का ध्यान आवेगा। महेश मुखचन्द्र चकोरी होने से सतीत्व भी स्पष्ट है। यथा : नाथ तवानन ससि स्रवत कथा सुधा रघुबीर। स्रवन पुटन्हि मन पान करि नहि अघात मति धीर। अथवा उमा के पूर्व जन्म की याद दिलाने के लिए उस जन्म के नाम से सम्बोधन किया। क्योंकि उत्तर देने मे उस जन्म की कथा भी थोडी सी कहनी है।

अब इस कथा की महिमा कहते हैं कि यह इतिहास परम पुनीत है। क्योंकि परम भागवत भुसुण्डिजी का इतिहास है। यथा : या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्मध्यानाद् भवज्जनकथा श्रवणेन वास्यात्। सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ मा भूत् किं त्वन्तकासि लुलितात् पतता विमानात्। इसके सुनने से सभी शोक और भ्रम का नाश होता है। शोक और भ्रम का कारण कहते हैं कि इसके सुनने से श्रीरामजी के चरणो मे विश्वास उपजता है और विश्वास उपजने से शोक और भ्रम का ऐसा नाश होता है कि बिना प्रयास ही मनुष्य ससार सागर के पार हो जाता है। क्योंकि शोक और मोह दो ही ससार के बीज हैं। इनके नष्ट होने से फिर ससार बाधा नही कर सकता।

दो० ऐसिअ प्रस्न बिहग पति, कीन्ह काग सन जाइ।
सो सब सादर कहिहौ, सुनहु उमा मन लाइ ॥५५॥

अर्थ : ऐसा ही प्रश्न गरुड ने काग से जाकर किया। वह सब आदर के साथ कहूँगा। हे उमा! इसे मन लगाकर सुनो।

व्याख्या : ऐसा ही प्रश्न तुम्हे काग देह कैसे मिला यथा : काग देह केहि कारण पाई। तात सकल मोहि कहहु बुझाई : गरुडजी ने भुसुण्डिजी से किया था।

इस प्रसङ्ग को आदर के साथ मैं कहूँगा क्योंकि यह परम पवित्र है। तुम भी मन लगाकर सुनो। भाव यह कि पवित्र चरित्र श्रोता को तभी पवित्र करता है जब कि वह मन लगाकर सुनता है।

मै जिमि कथा सुनी भव मोचनि। सो प्रसंग सुनु सुमुखि सुलोचनि ॥
प्रथम दक्ष गृह तव अवतारा। सती नाम तब रहा तुम्हारा ॥१॥

अर्थ : मैंने जिस भाँति यह भवमोचनी कथा सुनी हे सुमुखि हे सुलोचनि! वह प्रसङ्ग अब सुनो। पहिले दक्ष के घर तुम्हारा अवतार हुआ था। उस समय तुम्हारा नाम सती था।

व्याख्या : उमा के पाँच प्रश्नो मे से तीसरे का उत्तर पहिले देते हैं। इसी प्रश्न के विषय मे उमा ने कहा था कि मुझे अति भारी कौतुक है। अत पहिले उसी का उत्तर देते हैं। उमा ने प्रश्न करते हुए शिवजी के मुख तथा वाणी की सुन्दरता सूचक शब्द कहे थे। यथा : नाथ तवानन ससि स्रवत कथा सुधा रघुबीर। अतः उत्तर देते समय शिवजी भी उमा के मुख और नेत्र के शोभा सूचक सम्बोधन दे रहे हैं। यथा . सो प्रसग सुनु सुमुखि सुलोचनि। जिस भाँति भगवत्कथा भवसागर पार करने के लिए नौका रूप है उसी भाँति भागवत की कथा भी है।

भगवती उमा यद्यपि नित्या है। जगन्मूर्ति हैं। उन्हीं से यह ससार व्याप्त है। फिर भी उनके अवतार हुआ करते है। सो शिवजी उनके पूर्व अवतार की याद दिलाते हैं। कहते हैं कि इसके पहिले तुम्हारा अवतार दक्ष प्रजापति के यहाँ हुआ था। उस अवतार मे तुम्हारा नाम उमा नही था। माँ बाप ने सती नाम रक्खा था।

दक्ष जज्ञ तव भा अपमाना। तुम्ह अति क्रोध तजे तब प्राना ॥
मम अनुचरन्ह कीन्ह मख भंगा। जानहु तुम्ह सो मकल प्रसंगा ॥२॥

अर्थ : दक्ष के यज्ञ मे तुम्हारा अपमान हुआ। तुमने अत्यन्त क्रोध से प्राण परित्याग किया। मेरे गणो ने दक्ष का यज्ञ विध्वस किया तुमको वह सब बातें मालूम ही हैं।

व्याख्या · अपने कथा सुनने की घटना का समय निर्धारित करते हुए कहते हैं कि उस अवतार मे जब दक्ष के यज्ञ मे तुम्हारा अपमान हुआ। यथा : दक्ष न कछु पूछी कुसलाता। सतिहि बिलोकि जरे सब गाता। पति का अपमान साध्वी के लिए : उसका इतना बडा अपमान है कि उसे वह नही सह सकती। यथा : सिव अपमान न जाइ सहि हृदय न होइ प्रबोध। सकल सभहि हठि हटकि पुनि बोली बचन सक्रोध : इत्यादि। अस कहि योग अगिनि तनु जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा। तथा : वीरभद्र करि कोप पठाये। जज्ञ विधस जाइ तिन कीन्हा। शिवजी कहते हैं कि तुम्हारी सब बातें जानी हुई हैं। जीवो की भाँति मोह से घिरी बुद्धि न होने के कारण पूर्वजन्म का तुम्हे ठीक ठीक स्मरण है।

तब अति सोच भयो मन मोरे। दुखी भएउँ बियोग प्रिय तोरे ॥
सुदर बन गिरि सरित तडागा। कौतुक देखत फिरो बेरागा ॥३॥

अर्थ तब मेरे मन मे अत्यन्त सोच हुआ और हे प्रिये! मैं तेरे वियोग मे दु खी हुआ। सुन्दर वन पर्वत सरित और तालाबों का कौतुक राग रहित होकर देखता फिरता था।

व्याख्या · पहिले याज्ञवल्क्यजी कह आये हैं : जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत बिरह दुख दुखित सुजाना। सो ऐसे दु खी हुए कि सती के शरीर को सिरपर धारण किये हुए घूमने लगे। सूर्य की किरणो मे सुदर्शन को प्रविष्ट करके विष्णु भगवान् ने उस शरीर को टुकडे टुकडे करके गिरा दिया। यह कथा पुराणो मे है।

अब अपनी लीला कहते हैं। जबते सती जाइ तनु त्यागा। तब से सिव मन भयउ बिरागा। जपहिं सदा रघुनायक नामा। जहँ तहँ सुनहिं राम गुन ग्रामा। अत कैलास मे रहना कुछ दिनो तक छोड दिया था। परिव्राजक होकर प्रकृति की शोभा देखते फिरते थे। अथवा जगन्मूर्ति भगवती की ही शोभा देखते फिरते थे।

गिरिसुमेर उत्तर दिसि दूरी। नील सैल एक सुदर भूरी ॥
तासु कनकमय सिखर सुहाए। चारि चारु मोरे मन भाए ॥४॥

अर्थ · उत्तर दिशा मे बहुत दूर पर सुमेरु पर्वत है। वहाँ एक नील पर्वत है जो अत्यन्त सुन्दर है। उस पर्वत पर चार सुवर्णमय शिखर हैं। वे ऐसे सुन्दर हैं कि मुझे बहुत अच्छे लगे।

व्याख्या : जिस सुमेरु पर्वत की चर्चा शिवजी कर रहे हैं वह हिमालय की शृखला मे नही है। वह कैलास से भी बहुत दूर उत्तर मे है। सुमेरु पर्वत उत्तर दिशा की परम सीमा है। उसी के अन्तर्गत एक पर्वत है जिसे नीलगिरि कहते हैं। वह सुमेरुगिरि देवताओ का निवास स्थान है। वहाँ उच्च कोटि के महात्मा ही जा सकते हैं। उस नीलगिरि के चार शिखर थे जो बडे सुन्दर और सुवर्णमय थे।

भौगोलिक स्थिति यह है कि भारत वर्ष के उत्तर किंपुरुषवर्ष है और उसके भी उत्तर हरिवर्ष है। हरिवर्ष के उत्तर इलावृतवर्ष है जिसके मध्य मे मेरुपर्वत है। यह उत्तर की परा सीमा है। यह निरश देश है। मेरु के भी उस पार इलावृतवर्ष और रम्यकवर्ष की सीमाभूत नीलगिरि पर्वत है।

तिन्ह पर एक एक बिटप बिसाला। बट पीपर पाकरी रसाला ॥
सैलोपरि सर सुन्दर सोहा। मनि सोपान देखि मन मोहा ॥५॥

अर्थ : उन पर क्रम से बरगद पीपल पाकर और आम के एक एक वृक्ष हैं। पर्वत पर सुन्दर तालाब शोभायमान हैं। जिसमे मणि की सीढियाँ लगी हैं। जिन्हे देखकर मन मोह जाता है।

व्याख्या : यह दिव्य सृष्टि का वर्णन है। उसका वर्णन लौकिक भाषा मे इसी भाँति किया जाता है। उस शिखरो पर एक एक दिव्य वृक्ष हैं। एक पर वट का पेड़ है। दूसरे पर अश्वत्थ वृक्ष है। तीसरे पर पाकर का पेड है और चौथे पर आम का पेड़ है। उस पर्वत पर मानससर की भाँति सुन्दर सर हैं। यह सरोवर भी दिव्य है। इसकी मणिमय दिव्य सीढियाँ हैं। यह भुसुण्डिजी के आश्रम का वर्णन है कि शिवजी को भी मनोहर मालूम होता है। श्रीगुरु भगवान् के वरदान का प्रभाव है।

दो. सीतल अमल मधुर जल, जलज विपुल बहु रंग।
कूजत कलरव हंस गन, गुंजत मंजुल भृंग ॥५६॥

अर्थ : उसका जल शीतल निर्मल और मधुर है। उसमे अनेक रंग के कमल हैं। हंस लोग मीठे शब्द से कूज रहे हैं और भँवरें सुन्दर गूँज रहे हैं।

व्याख्या : शीतल से सुख स्पर्श कहा। अमल से निर्मल रूप कहा। जलज से गन्ध कहा। मधुर से रस कहा कूजत और गूँजत से शब्द कहा। इस भाँति उस तालाब को सर्वेन्द्रिय तर्पक बतलाया।

तेहि गिरि रुचिर बसै खग सोई। तासु नास कलपात न होई ॥
माया कृत गुन दोष अनेका। मोह मनोज आदि अबिबेका ॥१॥

अर्थ : उस सुन्दर पर्वत पर वह पक्षी बसता है जिसका कल्प के अन्त मे भी नाश नही होता। मायाकृत गुण दोष बहुत से हैं : मोह काम अविवेक आदि।

व्याख्या : शिवजी कहते हैं कि उस नीलगिरि पर वह पक्षी बसता है। जिसका वर्णन पहिले कर चुके हैं। ऐसे पवित्र स्थल मे रहनेवाले को काक कैसे कहे। दूसरी बात यह है कि इन्द्र आदि देवता की भी आयु एक मन्वन्तर है और चौदह मन्वन्तर का एक कल्प होता है। एक कल्प मे चौदह इन्द्र बदलते हैं। कल्पान्त मे सूर्य चन्द्र भी नही रह जाते। तमाम प्रलय हो जाता है। तीन लोक का नाश हो जाता है पर उस पक्षी का नाश नही होता।

पहिले कह आये है : सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक। गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक। उन मायाकृत गुण और दोष को न देखना चाहिए। इस बात की शिक्षा दी जाती है। सो वे गुण दोष तथा मोह काम अविवेक आदि।

रहे ब्यापि समस्त जग माही। तेहि गिरि निकट कबहु नहि जाही ॥
तहँ बसि हरिहि भजै जिमि कागा। सो सुनु उमा सहित अनुरागा ॥२॥

अर्थ : समस्त ससार मे व्याप्त हो रहे हैं। परन्तु उस पर्वत के सन्निकट नही जाते। वहाँ बसकर कौआ जिस भाँति हरि का भजन करता है उसे उमा अनुराग के सहित सुनो।

व्याख्या : संसार मे कोई स्थल ही ऐसा नही है जहाँ मायाकृत गुण दोष

तथा काम क्रोध मोह अविवेकादि का प्रवेश न हो। परन्तु वहाँ इन सबकी गति ही नही है। वे उस पर्वत के निकट नही जा सकते। भाव यह कि वह स्थल ससार से निराला है।

वहाँ रहकर जिस भाँति वह पक्षी भगवान् को भजता है वह सुनने योग्य है। जिसका कल्पान्त मे नाश नही होता। उसका दिन भी सामान्य नही हो सकता। जब मन्वन्तर से कम आयुवाले पितरो का दिन एक पक्ष का होता है और देवताओ का दिन छ महीने का होता है। तब कल्पान्त मे नाश न होनेवाले का दिन भी तदनुसार बडा होना चाहिए। प्रसङ्ग देखने से पता चलता है कि भुसुण्डिजी का दिन एक चतुर्युगी के बराबर होता है। अत प्रत्येक चतुर्युगी के भुसुण्डिजी के हरि भजन की दिन चर्या शिवजी कहते हैं और उसे अनुराग के साथ श्रवण करने के लिए श्रोता को सावधान करते हैं।

पीपर तरु तर ध्यान सो धरई। जाप जज्ञ पाकरि तर करई॥
आँब छाँह कर मानस पूजा। तजि हरि भजन काज नहि दूजा॥३॥

अर्थ पीपल के वृक्ष के नीचे वह ध्यान करता था। पाकर के तले जप यज्ञ करता था। आम के तले मानस पूजन करता था। हरि भजन छोडकर उसे दूसरा काम ही न था।

व्याख्या ध्यान प्रथम जुग मख बिधि दूजे। द्वापर परितोषत प्रभु पूजे। कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जनमन मीना। कलियुग केवल हरिगुन गाहा। गावत नर पावहि भव थाहा। सो सत्ययुग भर वह पीपल के तले ध्यान करता था। त्रेता म यज्ञ की विधि है और उसे यज्ञ का अधिकार नही। अत पाकर के तले जपयज्ञ करता था। द्वापर मे पूजा का विधान है और पूजा मे भी काक का अधिकार नही। अत आम तले मानस पूजा करता था। उसे सिवा हरिभजन के दूसरा काम ही नही।

बर तर कह हरि कथा प्रसगा। आवहि सुनहि अनेक बिहगा॥
राम चरित बिचित्र विधि नाना। प्रेम सहित कर सादर गाना॥४॥

अर्थ बरगद के तले वह भगवान का कथा प्रसङ्ग कहता था और अनेक पक्षी सुनने आते थे। रामजी के विचित्र चरित्रो को नाना प्रकार से प्रेम के सहित सादर गान करता था।

व्याख्या कलियुग मे हरिगुण गाथा गान का विधान है। अत कलियुग मे वह बरगद तल भगवान् की कथा कहता था। कथा पक्षी भाषा मे होती थी। अत अनेक पक्षी सुनने आते थे। राम चरित कल्प भेद के कारण विचित्र हैं। यथा कल्प भेद हरिचरित सोहाये। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाये। उन्ही चरित्रो को भुसुण्डिजी नाना प्रकार से आदर के साथ साथ बडे प्रेम से गान करते थे।

सुनहिं सकल मति बिमल मराला । बसहिं निरंतर जो तेहि ताला ॥
जब मै जाइ सो कौतुक देखा । उर उपजा आनंद बिसेखा ॥५॥

अर्थ : उसे निर्मल बुद्धिवाले सब हंस सुनते थे जो सदा उसी ताल मे रहते थे। जब मैंने जाकर वह कौतुक देखा तो मेरे मन में विशेष आनन्द हुआ।

व्याख्या : शिवजी कहते हैं कि जिन हंसो के बारे में मैं कह आया हूँ : कूजत कलरव हंस गन। वे सब हंस बड़े निर्मल बुद्धिवाले थे। वे सदा उस ताल में बसते थे और भुसुण्डिजी की कही हुई राम कथा सुनते थे। जब मैने यह कौतुक देखा कि वक्ता काक और श्रोता हंस : कथा रामजी की हो रही है। तो मेरे मन में विशेष आनन्द हुआ। विरह जन्य दुःख जाता रहा। इतना घूमे परन्तु दुःखी ही रहे शान्ति यहाँ जाने पर हुई।

दो. तब कछु काल मराल तनु, धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति गुन, पुनि आयेउँ कैलास ॥५७॥

अर्थ : तब कुछ समय तक मैंने हंस रूप धारण करके वहीं निवास किया। आदर के साथ राम गुण का श्रवण करके फिर कैलास चला आया।

व्याख्या : मैंने यह कौतुक देखा। उन लोगों ने मुझे नही देखा। मैं भी हंस रूप धारण करके उनमें जा मिला। अपने रूप से जाने में रस भङ्ग हो जाता। कथा बन्द हो जाती। भुसुण्डिजी मेरे सामने वक्ता बनकर व्यासासन पर न बैठते। मैं उसी रूप से वहाँ कुछ दिनों तक ठहरा रहा। कथा सम्पूर्ण होने पर कैलास लौट आया। घूमना बन्द कर दिया क्योंकि चित्त में शान्ति आगयी। कथा महाप्रभावा है।

गिरिजा कहेउँ सो सब इतिहासा। मैं जेहि समय गएउ खग पासा ॥
अब सो कथा सुनहु जेहि हेतू। गएउ काग पहँ खगकुलकेतू ॥१॥

अर्थ : हे पार्वती मैने वह सब इतिहास कहा कि मैं जिस समय उस पक्षी के पास गया। अब वह कथा सुनो जिस कारण से पक्षिराट् गरुड़ काक के पास गये।

व्याख्या : सुनहु परम पुनीत इतिहासा से उपक्रम करके यहाँ उपसंहार करते हैं। यह परमपावन इतिहास है। इसमें जगदम्बा का दक्ष गृह में अवतार, शिवजी यज्ञ भाग न मिलने पर सती का क्रोध, सती के शरीर त्याग पर शिवजी का बिराग, नील शैल पर जाना, भुसुण्डि द्वारा कथित कथा श्रवण, शान्ति लाभ वर्णन है। यहाँ गिरिजा के तीसरे प्रश्न का उत्तर समाप्त हुआ।

सो केहि हेतु काग सन जाई। सुनी कथा मुनि निकर बिहाई। इस चौथे प्रश्न का उत्तर आरम्भ होता है। गरुड़जी का नीलगिरि पर जाना निर्हेतुक नही हुआ। खग कुल केतु ने काग के पास जाना सोचा भी नही था। वे मुनि के पास ही गये। पर कार्य कारण ऐसा आ पड़ा कि उन्हें जाना पड़ा।

उमा के चौथे प्रश्न उत्तर

जब रघुनाथ कीन्ह रण क्रीडा। समुझत चरित होत मोहि व्रीड़ा ॥
इन्द्रजीत कर आपु बँधायो। तब नारद मुनि गरुड पठायो ॥२॥

अर्थ जब रामजी ने रण लीला की उस चरित को स्मरण करके मुझे सङ्कोच होता है। इन्द्रजीत के हाथ से आपने अपने को बँधवा लिया। तब नारद मुनि ने गरुड को भेजा।

व्याख्या ब्याल पास बस भयउ खरारी। स्ववस अनत एक अविकारी। रन सोभा लगि प्रभुहि बँधायो। देखि दसा देवन्ह भय पायो। अपने आप इन्द्रजीत के हाथ से बँधवा लेना यह सरकार की रणक्रीडा थी। नही तो मेघनाद का क्या सामर्थ्य था कि सरकार को बाँध लेता। उस चरित्र को स्मरण करके मुझे सङ्कोच होता है कि मेरे स्वामी उस निशिचर के हाथ से बँध गये।

अपने को बँधवा लेने का कारण कहते हैं कि उसने इन्द्र को जीता था और इन्द्र कुछ न कर सके। उसी भाँति अपने को एक बार बँधवा लेने से इन्द्र के मान की रक्षा होगी। अत अपने को बाँध लेने दिया। ऐसे बँधे कि कोई छुडानेवाला नही। तब नारद मुनि ने गरुड को भेजा कि जाओ अपने स्वामी को छुडाओ। नारदजी को विशेष चिन्ता हुई : मोर साप करि अगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा। अत तुरन्त गरुड लोक पहुँचे और वहाँ से गरुडजी को भेजा कि तुम्हारे स्वामी युद्ध मे बँध गये है जाकर उन्हे छुडाओ।

बंधन काटि गये उरगादा। उपजा हृदय प्रचंड बिषादा ॥
प्रभु बंधन समुझत बहु भाँती। करत बिचार उरग आराती ॥३॥

अर्थ : गरुडजी बन्धन काटकर गये। पर उनके हृदय मे प्रचण्ड बिषाद उपजा। प्रभुके बन्धन को बहुत भाँति से मन मे बिठाते हुए सर्पों के शत्रु विचार करने लगे।

व्याख्या : यदि बन्धन काटकर न जाते तो बिषाद न होता। जो बन्धन रामजी का काटा न कटा उसे उन्होने काटा। इस बात पर हर्ष होना चाहता था। पर उन्हे बिषाद हुआ। बिषाद का कारण यह हुआ कि उनके मनमे अनेक तर्क उठने लगे। यथा : ससय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता। सर्प से ग्रसे हुए प्राणी की सी दशा हो गयी। मन मे बात बिठाते है कि प्रभु का बन्धन किसी भाँति सम्भव है पर बात बैठती नही। मुनिजी ने कहा है कि प्रभु का अवतार हुआ है। वह अन्यथा हो नही सकता। वे उरग आराती हैं। उनके विचार मे सर्प की कोई महत्ता ही नही है।

ब्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा। माया मोह पार परमीसा ॥
सो अवतरा सुनेउ जगमाही। देखेउँ सो प्रभाव कछु नाही ॥४॥

अर्थ . व्यापक ब्रह्म रज से रहित वाणी के प्रभु माया मोह से परे परमेश्वर ने ‌संसार मे अवतार धारण किया। ऐसा सुना पर वैसा प्रभाव तो कुछ भी दिखाई न पड़ा।

व्याख्या : जितनी बातें हैं वे सब न बँधने के ही पोषक हैं। व्यापक को बन्धन कैसे? ब्रह्म बद्ध कैसे होगा? रजोगुण बन्धन का कारण है। विरज के बन्धन का कारण ही नही। वाक्पति को मोह कैसे? जो मोह माया पार है वह सीमित कैसे हो सकता है। बन्धन जीव को होता है परमेश्वर को बन्धन कैसे सम्भव है।

अवतार उसी का हुआ ऐसा सुना। वह अप्रमाण नही है। बरु पावक प्रगटै ससि माही। नारद बचन अन्यथा नाही। परन्तु वह प्रभाव कुछ भी न देखा। जीव को बँधने पर जो दशा होती है वही देखा।

दो. भव बंधन ते छूटहि नर, जपि जाकर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ, नाग पास सोइ राम ॥५८॥

अर्थ : जिसका नाम जपकर मनुष्य भव बन्धन से छूट जाते हैं। उसी राम को तुच्छ निशाचर ने नागपाश मे बाँध लिया।

व्याख्या : नामरूप दुइ ईस उपाधी। सो उपाधि के आश्रयण से जब भवबन्धन से मुक्ति होती है तब उस प्रभु को बन्धन कैसे सम्भव हैं। बन्धन असम्भव जिसे बँधा हुआ पाया उसका बाँधा जाना असम्भव। जिसने बाँधा उसमे बाँधने का सामर्थ्य असम्भव। अत· बन्धन हुआ कैसे। उस राम को क्षुद्र राक्षस बांधे यह किसी भाँति सम्भव नही।

नाना भाँति मनहि समुझावा। प्रगट न ज्ञान हृदय भ्रम छावा॥
खेद खिन्न मन तर्क बढाई। भयउ मोहबस तुम्हरिहि नाई॥१॥

अर्थ : अनेक प्रकार से मन को समझाया। परन्तु ज्ञान प्रकट नही हुआ हृदय मे भ्रम छाया हुआ था। खेद से खिन्न मन मे तर्क बढाकर तुम्हारी ही भाँति मोहवश हो गये।

व्याख्या : बडे लोग किसी वेष मे छिपते नही। नृसिह वाराहादि अवतार हुए तो क्या वे किसी भाँति छिप सके? उनका प्रभाव प्रकट हो ही गया। उस नीच निशाचर द्वारा बाँधे जाने पर जो दशा सामान्य जीव की होती है वही दशा रामजी की थी। कुछ भी अन्तर नही था तब कैसे कहे कि अवतार हुआ है?

लीन्हे नर अवतारहू, ब्रह्म कि नर होइ जाय।
ढकी राखहूँ मे अगिनि कानन सकै जराय॥
जहाँ छवो ऐश्वर्य को अति महान उत्कर्ष।
तहाँ बंध की क्या कथा सदा मुक्ति निष्कर्ष॥
मृषा होइ नहि कह्यो जो मुनि सुजान सर्वज्ञ।
पै परिपूरण ब्रह्म किमि होइ सकै अल्पज्ञ॥

इस भाँति मन को बहुत समझाया। परन्तु प्रत्यक्ष के सामने आप्तवाक्य का बल नही चला। हृदय मे तो भ्रम छाया हुआ था। अत ज्ञान ढँक गया था। भ्रम की निवृत्ति हो तो ज्ञान का प्रकाश हो।

मन मे तर्क के बढाने से खेद उत्पन्न हुआ। उससे गरुडजी खिन्न हो गये। कर्कश तर्क करने से विषाद होता ही है। अमर्यादित तर्क से बडी भारी हानि होती है। गरुडजी ऐसे महात्मा मोह के वश हो गये। शिवजी उमा से कहते हैं कि जैसे तुम मोह के वश हो गयी थी। तुम पर उपदेश काम नही करता था उसी भाँति गरुडजी पर भी उनके मन के उपदेश ने काम न किया।

ब्याकुल गएउ देवरिषि पाही। कहेसि जो ससय निज मन माही॥
सुनि नारदहि लागि अति दाया। सुनु खग प्रबल राम कै माया॥२॥

अर्थ प्रसन्न होकर नारदजी के पास जाकर मङ्गलमय समाचार सुनाना था। सो ब्याकुल होकर नारदजी के पास गया और जो सशय अपने मन मे था उसे कह सुनाया। सुनकर नारदजी को बडी दया आयी। बोले हे खग! रामजी की माया बडी प्रबल है।

व्याख्या गरुडजी महात्मा हैं। सशय सहन नही कर सकते। उसके मिटाने के लिए तुरन्त कटिबद्ध हो गये। व्याकुल होकर उन्ही नारदजी के पास गये। जिन्होने अवतार बतलाकर बन्धन काटने के लिए भेजा था। देवरिषि कहने का भाव यह कि गरुडजी देवता हैं। अत देवयोनि मे जो ऋषि हैं उन्ही के पास जाना उनका स्वभाव से ही प्राप्त था। होइ न बिमल बिराग उर गुरुसन किये दुराव। अत अपने मन का संशय उनसे कह डाला।

व्याख्या नारदजी सन्त हैं। भुक्तभोग हैं। दूसरे के दु ख को देख नही सकते। गरुडजी को दु खी देखकर उन्हे बडी दया आयी। गरुडजी को खग सम्बोधन करते हैं। क्योकि रामजी की माया के सामने गरुडजी भी एक साधारण खग के ही तुल्य हैं। कहने लगे कि जिस राम के प्रभाव को देखने की तुम्हे इच्छा है इस समय तुम उसी की माया से मोहित हो।

जो ज्ञानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआई बिमोह बस करई॥
जेहि बहु बार नचावा मोही। सोइ ब्यापी बिहँग पति तोही॥३॥

अर्थ जो ज्ञानियो के ज्ञान को हरण करती है और बलपूर्वक उसे विशेष मोह मे डाल देती है। जिसने अनेक बार मुझे नचाया है। वही हे विहङ्गपति! तुम्हें व्याप्त हो गयी।

व्याख्या: सरकार की माया मे बडा सामर्थ्य है। उसके सामने किसी ज्ञानी का ज्ञान ध्यान नही चलता। ज्ञानी ज्ञानबल लगाते ही रहते हैं और मोहवश हो जाते हैं। यथा ज्ञानिनामपि चेतासि देवी भगवती हि सा। बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति। गरुड महाज्ञानी गुनरासी। हरि सेवक अति निकट निवासी।

इन्हें माया कहाँ? पर राम की माया ऐसी है कि जिसने इन्हें भी मोह में डाल दिया। गरुड़जी प्रभाव देखने के लिए उत्सुक थे। सो उनका प्रभाव उनकी माया ही है। अतः माया अपना बल दिखला रही है।

इस माया ने अनेक बार मेरे : नारद के चित्त का अपहरण किया जो नाच नचाना चाहा मुझे नाचना पड़ा। हे पक्षिराट् वही तुम्हें व्याप्त हो गयी है।

महा मोह उपजा उर तोरे। मिटिहि न बेगि कहे खग मोरे ॥
चतुरानन पहँ जाहु खगेसा। सोइ करेहु जेहि होइ निदेसा ॥४॥

अर्थ : तुम्हारे हृदय में महामोह उत्पन्न हुआ है वह मेरे कहने से जल्दी नहीं मिटेगा। तुम ब्रह्मदेव के पास जाओ। वे जो आज्ञा दें वही करो।

व्याख्या : नारदजी समझ रहे है कि गरुड़जी के मोह होने में कोई रहस्य है। अतः समझाने बुझाने से यह नही जा सकता। वह रहस्य क्या है : यह मैं नहीं जानता। ब्रह्मदेव जिनके चारमुखों से चारों वेदों का प्रादुर्भाव हुआ है अवश्य जानते होगे। अतः वे ही उपाय बतला सक्ते है। अतः नारदजी कहते हैं कि मैं तो स्वयं इस माया के वश पड़कर नाच चुका हूँ। अतः मेरे कहने से यह जल्दी छूटने-वाली नहीं। ब्रह्मदेव इसके छूटने का उयाय बतलायेंगे। तुम उन्हीं के पास चले जाओ। मैं तो एक स्थान पर बहुत देर रहता नही और सब संशयों का भङ्ग बिना बहुत काल तक सत्सङ्ग किये होता नही।

दो. अस कहि चले देव रिषि, करत राम गुन गान।
हरि माया बल बरनत, पुनि पुनि परम सुजान ॥५९॥

अर्थ : ऐसा कहकर नारदजी रामगुन गान करते चले। परम सुजान मुनिजी हरिमाया के बल का बार बार वर्णन करते जाते थे।

व्याख्या : इतना कहकर नारदजी गरुड़ लोक से चल दिये। समाचार सुनने के लिए ही वहाँ ठहर गये थे। गरुड़जी खड़े ही रह गये। देवऋषिजी बड़े सुजान हैं। दिन रात हरिगुन गान किया करते हैं। जितना आवश्यक है उतनी ही बातचीत करते हैं। गरुड़जी से उन्हें उतना ही कहना रहा। शापवश एक स्थान में अधिक ठहरना नहीं होता। अतः गुनगान करते चले। निर्गुण का कौन सा गुण गावें? अतः सरकार की माया का प्रभाव वर्णन ही सरकार का गुणगान है। अतः उसी का वर्णन करते चले।

तब खगपति बिरंचि पहिं गएऊ। निज संदेह सुनावत भएऊ ॥
सुनि बिरंचि रामहिं सिरु नावा। समुझि प्रताप प्रेम अति छावा ॥१॥

अर्थ : तब गरुड़जी ब्रह्मदेव के पास गये और अपना सन्देह कह सुनाया। सुन करके ब्रह्मदेव ने रामजी की माया को सिर नवाया। प्रताप समझकर प्रेम हृदय मे छा गया।

तेहि मम पद सादर सिरु नावा। पुनि आपन संदेहु सुनावा ॥
सुनि ताकरि बिनीत मृदु बानी। प्रेम सहित मै कहेउं भवानी ॥१॥

अर्थ : उसने मेरे चरणो मे आदर के सहित सिर नवाया और तब अपना सन्देह सुनाया। उसकी विनीत मृदु वाणी सुनकर हे भवानी! मैंने प्रेम के साथ कहा।

व्याख्या : यद्यपि गरुडजी अत्यन्त आतुर थे। फिर भी जिज्ञासु मे जो गुण होना चाहिए उसमे भेद नही पडा। शिवजी कहते हैं कि उन्होने आदर के साथ प्रणाम किया और तत्पश्चात् अपना सन्देह कह सुनाया। गरुडजी जहाँ जाते हैं नि सङ्कोच अपना सन्देह कह डालते है। क्योकि उन्हे मालूम है : होइ न बिमल बिवेक उर गुरुमन किये दुराव। नारदजी के पास गये तब : कहेसि जो ससय निज मन माही। ब्रह्मा के पास गये तब : निज सदेह सुनावत भयऊ। अब शिवजी से : पुनि आपन सदेह सुनावा।

नियम यही है कि प्रश्नकर्ता विनीत मृदु वाणी मे अपना सन्देह कहे। विनीत मृदु वाणी से ही वक्ता को प्रेम होता है और वह श्रोता की अभिलाषा पूर्ण करता है। शिवजी को समाधान नही करना है दूसरी जगह भेजना है। गरुड़जी के उत्साह भङ्ग होने की सम्भावना है कि जिसके पास मैं जाता हूँ वह अपनी बला टालता है। दूसरी जगह भेजता है। ये भी दूसरी जगह भेज रहे हैं। अतः शिवजी प्रेम के सहित बोले जिसमे विश्वास मन मे उपजे। यथा : कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास। यहाँ पर शिवजी द्वारा भवानी के सम्बोधन करने का यह भाव है कि तुम जानती हो कि ऐसे समय में उपदेश निष्फल जाता है। मुख्य कारण हटना चाहिए।

मिलेहु गरुड मारग महँ मोही। कवन भाँति समुझावौ तोही ॥
तबहि होइ सब ससय भगा। जब बहु काल करिअ सतसगा ॥२॥

अर्थ : गरुडजी! तुम मुझे रास्ते मे मिले : किस प्रकार से तुम्हे समझाऊँ। जब बहुत दिनो तक सत्सङ्ग किया जाय तब सब सशय दूर होते हैं।

व्याख्या : शिवजी कहते है कि यदि घर पर मिले होते तो तुम्हे समझाते। वक्ता जब एकाग्र बैठा हुआ हो तब अवसर देखकर प्रश्न करने का विधान है। इस समय मैं रास्ता चल रहा हूँ। तुम भी चञ्चल हो मै भी चञ्चल हूँ तुम्हे कैसे समझाऊँ। दो टप्पी बात से सशय दूर नही होता। जिसे अपना सब सशय दूर करना हो वह बहुत काल तक सत्सङ्ग करे।

सुनिअ तहाँ हरि कथा सुहाई। नाना भाँति मुनिन्ह जो गाई ॥
जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना ॥३॥

अर्थ : वहाँ हरि की सुन्दर कथा सुने जिसे मुनियो ने नाना भाँति से गान

किया है। जिसके आदि मध्य और अन्त में प्रभु भगवान् राम का प्रतिपादन होता है।

व्याख्या : संशय का निरसन केवल उत्तर दे देने से ठीक ठीक नही होता। जब भगवान् की कथा सुने और नाना भाँति की कथा जो मुनियो ने गाई है उन्हे सुने तव सशय दूर होता है। इसलिए शिवजी ने अपने मानस में चार कल्पों की राम कथा को स्थान दिया है।

श्रीराम कथा के आदि मध्य और अन्त मे प्रभु राम भगवान् का प्रतिपादन रहता है। जब जब वेदान्त वेद्य पुरुष अवतीर्ण होते हैं तब तब उनकी यश कथा का भी रामायण रूप से मुनियो द्वारा प्रादुर्भाव होता है। वह कथा वेद के तुल्य होती है। जिस भाँति सम्पूर्ण वेद में एक मात्र भगवान् वेद्य हैं। यथा : वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः। उसी भाँति रामकथा में भी सर्वत्र राम ही वेद्य हैं।

नित हरि कथा होति जहँ भाई। पठवौ तहाँ सुनहु तुम्ह जाई ॥
जाइहि सुनत सकल संदेहा। रामचरन होइहि अतिनेहा ॥४॥

अर्थ : हे भाई जहाँ सदा हरि की कथा होती है मैं तुमको वही भेजता हूँ। तुम जाकर सुनो। सुनते ही सारा सन्देह जाता रहेगा और रामजी के चरणो में अत्यन्त प्रेम होगा।

व्याख्या : तुम्हे वहाँ जाना चाहिए जहाँ नित्य राम कथा होती हो। न तो नारदजी नित्य कथा कहते हैं न ब्रह्माजी कहते हैं और न मैं नित्य कथा कहता हूँ। मैं तुम्हे वहाँ भेजता हूँ जहाँ नित्य कथा होती है। वहाँ से तुम्हे दूसरी जगह जाना न होगा। वहाँ जाकर कुछ कहना सुनना नही है। कथा नित्य होती है तुम भी जाकर श्रोता वन जाओ। कथा सुनने से ही सन्देह जाता है और रामजी के चरणों मे अत्यन्त स्नेह उपजता है। मैं आशीर्वाद भी देता हूँ।

दो. विनु सत संग न हरि कथा, तेहि विनु मोह न भाग।
मोह गए विनु रामपद, होइ न दृढ़ अनुराग ॥६१॥

अर्थ : बिना सत्सङ्ग के हरिकथा होती नही और उसके बिना मोह भागता नही और बिना मोह के भागे रामचरण में दृढ़ अनुराग होता नही।

व्याख्या : हरिकथा सत्सङ्ग में ही होती है। सत्सङ्ग मे तो कामकथा चला ही करती है। जहाँ हरि भक्ति नही है वहाँ हरि कथा होती भी नही। अतः हरिकथा श्रवण करना चाहनेवाले को सत्सङ्ग करना चाहिए। हरिकथा से ही मोह भागता है दूसरा उपाय मोह भगाने का कोई है नही। हरि कथा में ही ऐसा सामर्थ्य है कि उसके सुनने से सव मानसिक व्याधियों का मूल तथा सव प्रकार शूलों का देनेवाला मोह वहाँ ठहर नही सकता और जब तक मोह बना हुआ है तब तक रामचरण मे दृढ अनुराग होता नही। अतः रामचरणों मे दृढ अनुराग चाहनेवाले को सत्सङ्ग ढूँढना चाहिए।

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा। किए जोग तप ज्ञान बिरागा ॥
उत्तर दिसि सुन्दर गिरि नीला। तहँ रह काग भुसुण्डि सुसीला ॥१॥

अर्थं रामजी बिना अनुराग के नही मिलते। चाहे योग जप ज्ञान विराग कितना भी किये जायँ। उत्तर दिशा मे एक सुन्दर पर्वत है जिसे नीलगिरि कहते हैं। वहाँ भुसुण्डि नाम का एक सुशील काग रहता है।

व्याख्या रामजी का राग तो जीव मात्र पर सदा रहता है। यथा सब मम प्रिय सब मम उपजाये। जीव को भी उचित है कि ऐसे सहज सनेही से अनुराग करे। बिना अनुराग के उसका सब किया हुआ व्यर्थ है। सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ। जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू। योग जप ज्ञान विराग सबकी उपयोगिता है। इनके फल अलग हैं। ये यदि भक्ति के साथ किये जायँ तो भगवत् प्राप्ति के कारण भी होते हैं। पर बिना भक्ति के केवल इनके भरोसे भगवत् प्राप्ति असम्भव है।

गरुडजी के लिए केवल इतना कह देना ही यथेष्ट है कि उत्तर दिशा मे एक पर्वत है जिसको नीलगिरि कहते हैं। दक्षिण भारत मे भी एक नीलगिरि है। इसलिए उत्तर कहा। वहाँ भुसुण्डि नाम का एक काग रहता है। वह बडा सुशील है सदाचारी है। वह भजन करता ही रहता है दूसरा काम ही उसे नही है।

राम भगति पथ परम प्रबीना। ज्ञानी गुन गृह बहु कालीना ॥
रामकथा सो कहइ निरतर। सादर सुनहिं बिबिध बिहँग बर ॥२॥

अर्थ राम भक्ति के पथ म तो वह बडा प्रवीण है। ज्ञानी है। गुणो का घर है और बहुत दिनो का है। वह सदा रामकथा कहा करता है और अनेक प्रकार के श्रेष्ठ पक्षी आदर के साथ सुना करते हैं।

व्याख्या काक का शरीर मात्र है। उसमे काक के किसी दोप का स्पर्श भी नही है और गुण का तो वह आगार है। भक्ति पथ का बडा भारी जानकार है। केवल भक्त ही नही ज्ञानी भी है और चिरञ्जीवी है। वह सदा रामकथा कहता है किसी दिन कथा बन्द नही होती। वहाँ जाकर खाली न लौटोगे। तुम्हारी प्रजा वहाँ कथा सुनने जाती है। तुम्हारे जाने से वे सब भी सनाथ होगे। पक्षी समाज मे उसका बडा आदर है। श्रेष्ठ पक्षी हस लोग वहाँ के नित्य के श्रोता हैं।

जाइ सुनहु तहँ हरि गुन भूरी। होइहि मोह जनित दुख दूरी ॥
मै जब तेहि सब कथा बुझाई। चलेउ हरपि ममपद सिरु नाई ॥३॥

अर्थ. जाकर वही भगवान् के गुण समूह सुनो। मोह से उत्पन्न तुम्हारा दु ख दूर होगा। मैंने जब उसे सब कथा सुनायी तो वह हर्पित होकर मेरे चरणो मे नमस्कार कर के चला।

व्याख्या वहाँ जाकर तुम भगवान् के गुणो को भली भाँति सुनो। वह

सत्ताईस कल्प से कथा कहता है। भगवान् के गुण वर्णन मे अघाता नही। भगवद् गुण श्रवण से मोह छूटेगा। जब कोई भगवान् की कथा सुनता है तो स्वयं प्रभु उसके हृदय मे आकर उसके अकल्याणो को दूर करते हैं। अत: तुम्हारा मोहजन्य दु:ख वही दूर होगा। बहुत गुण सुनने पर यह बात मन मे बैठेगी कि प्रभाव गोपन भी उनका गुण ही है।

शिवजी कहते हैं कि जब मैंने यह सब बात गरुडजी को समझाकर कहा: तब तो गरुडजी ने प्रसन्न होकर मेरे चरणो मे नमस्कार किया और चल पडे। प्रयाण के समय हर्ष होना कार्य सिद्धि का लक्षण है। भाव यह कि गरुड़जी को विश्वास हो गया कि अब मेरा मोह छूटेगा।

ताते उमा न मैं समुझावा। रघुपति कृपा मरमु मैं पावा॥
होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवै चह कृपानिधाना॥४॥

अर्थ: हे उमा! मैंने उसे इस कारण से नही समझाया क्योकि रामजी की कृपा से मुझे मर्म मालूम हो गया था कि कभी इसने अभिमान किया होगा। उसी को कृपानिधान ने नष्ट करना चाहा।

व्याख्या: शिवजी यदि चाहते तो कैलास लौट आते या अलकापुरी मे ही कथा होती। पर उन्हे मर्म मालूम हो गया था। गरुड़जी को मोह हुआ इसका कारण केवल प्रभु बन्धन का दर्शन ही नही है। इसका कारण यह है कि कभी इन्होने अभिमान किया होगा। पक्षिराट् होने के कारण भुसुण्डि को तुच्छ समझा होगा। भुसुण्डिजी की कथा मे पधारने मे अपने गौरव को हानि समझा होगा। उसी अभिमान के संस्कार को सरकार ने मिटाना चाहा है। इसलिए इन्हे मोह हुआ है। यथा: उर अकुरेउ गर्व तरु भारी। तुरत सो मैं डारिहौ उपारी। मम पन सरनागत भय हारी। वह कारण नारद ब्रह्मदेव या मेरे समझाने से दूर नही हो सकता: यहाँ पर अनेक प्रकार के आख्यान सुने जाते हैं। पर मूल न मिलने से उन्हे स्थान नही दिया गया।

कछु तेहि तें पुनि मैं नहिं राखा। समुझै खग खगही कै भाषा॥
प्रभु माया बलवंत भवानी। जाहि न मोह कवन अस ज्ञानी॥३॥

अर्थ: कुछ इस कारण से भी मैंने उसे अपने पास नही रखा कि चिड़िया चिड़िया की ही बोली समझती है। हे भवानी! प्रभु की माया बलवती है। कौन ऐसा ज्ञानी है जिसे वह नही मोह लेती।

व्याख्या: एक कारण यह भी था कि श्रोता वक्ता की भाषा एक होनी चाहिए। पक्षी भाषा की कथा मे गरुडजी को विशेष आनन्द आवेगा। यद्यपि गरुडजी सबकुछ जानते हैं पर पक्षी होने से भाषा तो उनकी पक्षी भाषा ही है। पक्षी भाषा मे चेष्टा इङ्गित आदि से विशेष काम लिया जाता है। भुसुण्डिजी अपने

श्रोता हसो के प्रबोध के लिए इसी भाषा का प्रयोग करते हैं यह रहस्य विभाग की भाषा है। रहस्य पक्षी भाषा मे ही कहा जाता है।

राम की माया अति प्रबल है। ऐसा कोई ज्ञानी है ही नही जिसे वह मोह न सकती हो। मोहन न करे यह उसकी कृपा है। पर जब मोहन करना चाहेगी तो कोई बच नही सकता। क्योंकि वह प्रभु की माया है। जब जगत् के स्रष्टा ब्रह्मा को मोह हुआ नार अज्ञान द्यति खण्डयतीति नारद अज्ञान का खण्डन करते हैं। इसलिए नारद कहलाते हैं जब उन्हे मोह हुआ तो सामान्य जीव की गिनती ही क्या है।

दो ज्ञानी भगत सिरोमनि, त्रिभुवनपति कर जान।
ताहि मोह माया नर, पावँर करहिं गुमान ॥६२ क

अर्थ ज्ञानी भक्तो म शिरोमणि और त्रिभुवनपति के वाहन को माया ने मोह लिया। अत नीच मनुष्य ही अभिमान करते हैं।

व्याख्या जो ज्ञान कर्म भक्ति तीनो काण्डो मे बेजोड तिस पर सरकार के ऐसे कृपापात्र कि उन्हे वाहन होने का पद प्राप्त है। जब उन्हे माया ने मोह लिया तब मनुष्य के लिए अभिमान को स्थान कहाँ है। ऐसी अवस्था मे नीच मनुष्य ही अभिमान करते हैं।

दो सिव बिरंचि कहुँ मोहै, को है बपुरा आन।
अस जिय जानि भजहिं मुनि, माया पति भगवान ॥६२ ख

अर्थ शिव और ब्रह्मदेव को मोह लेती है दूसरे बिचारे क्या हैं? ऐसा मन मे जानकर मुनि लोग मायापति भगवान् को भजते है।

व्याख्या शिव और ब्रह्मा ईश्वरकोटि मे हैं। माया उनका भी मोह लेती है। औरो की तो जीव में गणना है उनकी क्या गिनती है। इसलिए मुनि लोग मायापति को भजते हैं क्योकि मायापति का कथन है मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते। जो मेरे ही शरण आते हैं वे माया को तर जाते हैं। नही तो मेरी माया गुणमयी है यह उल्लङ्घन नही की जा सकती। अत मुनि लोग अपने स्थितप्रज्ञता का भरोसा नही करते।

उमा के छठे प्रश्न का उत्तर

गयउ गरुड जहँ बसै भुसुंडी। मति अकुंठ हरि भगति अखंडी ॥
देखि सैल प्रसन्न मन भयऊ। माया मोह सोच सब गयऊ ॥१॥

अर्थ गरुडजी वहाँ गये जहाँ भुसुण्डी बसते थे। जिसे तीव्रबुद्धि और अखण्ड हरि भक्ति थी। पर्वत के देखते ही प्रसन्न मन हो गया। माया मोह और सब सोच जाता रहा।

व्याख्या शिवजी के चरणो मे प्रणाम करके गरुडजी चले और जहाँ भुसुण्डिजी रहते थे वहाँ पहुँचे। काग मति मन्द होते हैं। यथा . महामन्द मति कारण कागा। पर भुसुण्डिजी की बुद्धि बडी तीव्र थी। बक काग की गणना अति खल और विषयियो मे है। पर भुसुण्डिजी को अखण्ड भक्ति थी। जिसकी धारा टूटती ही नही।

पहिले कह आये हैं कि भुसुण्डिजी नील पर्वत पर रहते थे। सो पर्वत के दर्शन मात्र से गरुडजी का मन प्रसन्न हो गया। जो माया मोह सोच ब्रह्मलोक मे जाने से नही गया कैलास मे नही गया। वह नील पर्वत के दर्शन मात्र से चला गया। परमभक्त के आश्रम की महिमा है।

करि तडाग मज्जन जल पाना। बट तर गयउ हृदय हरषाना॥
वृद्ध वृद्ध बिहग तहँ आए। सुनै राम के चरित सुहाए॥२॥

अर्थ तडाग मे मज्जन किया और जलपान किया। तब हर्षित मन होकर बरगद के तले गये। वहाँ रामजी के सुन्दर चरित्र सुनने के लिए बूढे बूढे पक्षी आये थे।

व्याख्या गरुडजी उडते हुए ऊपर ऊपर जा रहे हैं। अत पर्वत पर चढना नही कहते। शैलोपरि सर सुदर सोहा। मनि सोपान देखि मन मोहा। उस तडाग को देखकर गरुडजी ने पहिले उसमे स्नान किया और उस पवित्र जल का पान किया। क्योकि हरिचरित्र सुनने जा रहे हैं। गरुडजी ने देखा कि वट वृक्ष के नीचे पक्षियो की भीड जुटी हुई है। समझ लिया कि यही कथा हो रही है। अत हर्षित होकर वही गये। कथा पर लालसा है। इसलिए हर्षित होकर सुनने जा रहे हैं।

बूढे बूढे पक्षी वहाँ एकत्रित हुए थे। चिरञ्जीवी वक्ता के श्रोता भी सब दीर्घजीवी थे। कथा के ऐसे रसिक हैं कि सुनते सुनते बूढे हो गये। पर जी न भरा। सुनने के लिए नित्य प्रस्तुत हो जाते हैं। रामजी के चरित्र ही ऐसे सुहावने हैं कि श्रवणवन्त मात्र को प्रिय लगते हैं। पक्षियो को भी सरकार के चरित्र प्रिय हैं क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात्।

कथा अरम्भ करइ सोइ चाहा। तेही समय गएउ खगनाहा॥
आवत देखि सकल खग राजा। हरषेउ बायस सहित समाजा॥३॥

अर्थ . उसने कथा आरम्भ करना चाहा उसी समय गरुडजी गये। सबने देखा कि पक्षिराट् चले आरहे हैं। तो भुसुण्डिजी समाज के सहित हर्षित हो उठे।

व्याख्या . भुसुण्डिजी व्यासासन पर बैठ गये थे। मङ्गलाचरण हो चुका था। कथा प्रारम्भ हुआ ही चाहती थी कि गरुडजी जा पहुँचे। जब काम बनने का होता है तो ऐसा ही अवसर आजाता है। नही तो रास्ते मे भेंट होती है। गरुडजी पक्षिराट् हैं। उनके जाने से पक्षियो म सनसनी फैल गयी।

सुनत गरुड़ कै गिरा बिनीता। सरल सुप्रेम सुखद सुपुनीता ॥
भयउ तासु मन परम उछाहा। लाग कहै रघुपति गुनगाहा ॥३॥

अर्थ : गरुडजी की विनती, सरल, सप्रेम, सुखद और सुपुनीत वाणी सुनकर उसके मन मे बडा उछाह हुआ। रामजी की गुणो की गाथा कहने लगा।

व्याख्या . विनय आदि पाँचो वाणी के गुण हैं। ऐसी हो वाणी सुनकर कहनेवाले का जी उमगता है। १. विनीत यथा : सदा कृतारथ रूप तुम कह मृदु बचन खगेस। २. सरल यथा : जेहि कर अस्तुति सादर निज मुख कीन्ह महेस। ३ सप्रेम यथा सुनहु तात जेहि कारन आयेउ। सो सब भयेउ दरस तव पायेउँ। ४ सुखद यथा : देखि परम पावन तव आश्रम। गयउ मोह ससय नाना भ्रम। ५ सुपुनीता यथा : अब श्रीरामकथा अति पावनि। सादर तात सुनावहु मोही। बार बार बिनवौं प्रभु तोही। गरुडजी की ऐसी विनती सुनने से भुसुण्डिजी के हृदय मे रामचरित का आविर्भाव हुआ। स्वय रामजी का रूप हृदय मे आगया। अत. आनन्दातिरेक से परम उछाह हुआ। यथा : उमा के पूछने पर . हरहिय रामचरित सब आये। प्रेम पुलक लोचन जल छाये। श्रीरघुनाथ रूप उर आवा। परमानन्द अमित सुख पावा। अत. भुसुण्डिजी ने कहना प्रारम्भ कर दिया।

प्रथमहिं अति अनुराग भवानी। रामचरित सर कहेसि बखानी ॥
पुनि नारद कर मोह अपारा। कहेसि बहुरि रावन अवतारा ॥४॥
प्रभु अवतार कथा पुनि गाई। तब सिसु चरित कहेसि मन लाई ॥५॥

अर्थ हे भवानी! पहिले उसने :१: अति अनुराग से रामचरित सर को बखान कर कहा। तत्पश्चात् २ नारदजी के अपार मोह की कथा कही। फिर ३· रावण का अवतार कहा। तत्पश्चात् :४. प्रभु के अवतार की कथा का गान किया। तब :५· शिशु चरित्र को मन लगाकरकहा।

व्याख्या : प्रयोजन सुनने के पहिले ही अनुराग था। यथा . करि पूजा समेत अनुरागा। अब प्रयोजन सुनने के बाद तो परम अनुराग हुआ। अथवा कथा के प्रारम्भ मे ही कथा माहात्म्य कहने का विधान है। रामचरित सर का बखान ही माहात्म्य कथन है। शिवजी भवानी को सम्बोधन करके कहते हैं कि पहिले उसने मानस का बखान किया। जिसके हस स्वय सरकार हैं। यथा : जय महेस मन मानस हसा। जो भुसुण्डि मन मानस हसा। मुनि मन मानस हस निरतर। श्रीगोस्वामीजी का मत है कि शिवजी के मानस को अविकल रूप से ग्रहण करने मे भुसुण्डिजी तथा याज्ञवल्क्यजी समर्थ थे। अपने को समर्थ नही मानते। अत. अपने मानस का हस ज्ञान विराग विचार को बतलाते हैं। यथा : ज्ञान बिराग बिचार मराला।

माहात्म्य कथनानन्तर श्रीरामावतार का कारण कहते हुए पहिले नारदजी के मोह का प्रसङ्ग कहा। जिसमे नारदजी को काम जय का अभिमान हुआ। उसके उन्मूलन के लिए सरकार ने अपनी माया को प्रेरणा की। जिसने उन्हे ऐसा नचाया

कि ब्रह्मचर्य व्रत स्थितप्रज्ञता सब भूल गये और विश्वमोहिनी के न मिलने पर क्रुद्ध होकर स्वयं अपने स्वामी और रुद्रगण को शाप दे डाला।

तत्पश्चात् रावण का अवतार कहा। राम की भाँति रावण भी अवतीर्ण होते हैं। रावण साक्षात् रुद्रगण था। नारदजी के शाप से उसे राक्षस रूप में अवतीर्ण होना पड़ा। प्रभु भी ऐसे भक्तवत्सल हैं कि भक्त के शाप को प्रमाण मानकर अवतीर्ण हुए। अतः ऐसे प्रभु की अवतार कथा का गान भुसुण्डिजी करने लगे। भक्त महोत्सव में ये स्वयं सम्मिलित थे। यथा : कागभुसुंडि संग हम दोऊ। मनुजरूप जानै नहिं कोऊ। परमानन्द प्रेम सुख फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले।

तत्पश्चात् शिशु चरित मन लगाकर कहा। शिशु चरित में स्वयं इन्हें मोह हो गया था। बालक राम ही इनके इष्टदेव हैं। पाँच वर्ष तक बालक राम की सेवा में भुसुण्डिजी रहते हैं। शिशु चरित में ही इन्हें दुर्लभ वर मिले हैं। प्रभु की माया का दर्शन किया है। अतः उस चरित को मन लगाकर कहा।

दो. बाल चरित कहि बिबिध बिधि, मन महँ परम उछाह।
रिषि आगमन कहेसि पुनि, श्रीरघुबीर बिबाह ॥६४॥

अर्थ : तत्पश्चात् :६: अनेक प्रकार से बाल चरित कहा। इसके कहने में मन में बड़ा उत्साह था। फिर :७. ऋषि का आगमन कहकर :८: श्रीरघुबीर का विवाह कहा।

व्याख्या : बाल चरित्र बड़ा आनन्दमय है। अतः उसे तो अनेक विधि से वर्णन किया। उनके वर्णन में भुसुण्डिजी को बड़ा उत्साह था। उसी चरित्र में लुब्ध होकर तो ये नील पर्वत छोड़कर अयोध्या में पाँच वर्ष रह जाते हैं। सरकार के पन्द्रह वर्ष के हो जाने पर विश्वामित्रजी का आगमन हुआ और मुनिजी राक्षसों से अपने यज्ञ की रक्षा के बहाने रघुवीर को : श्रीसीताजी से व्याह कराने के लिए माँग ले गये और जनकपुर में धनुष भङ्ग के बाद सीताजी से उनका विवाह अगहन सुदी पञ्चमी को हुआ।

बहुरि राम अभिषेक प्रसंगा। पुनि नृप बचन राज रस भंगा॥
पुरबासिन्ह कर बिरह बिषादा। कहेसि राम लछिमन संबादा ॥१॥

अर्थ : फिर :९: रामजी के अभिषेक का प्रसङ्ग तत्पश्चात् :१०: राजा के वचन से राज रस का भंग :११: पुरवासियों का विरह विषाद और :१२: राम लक्ष्मण का संवाद कहा।

व्याख्या : रामजी के अभिषेक का प्रसङ्ग व्याह करने के बारह वर्ष बाद उनके वर्षगाँठ के समय आया। रामजी के सत्ताइसवीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में चक्रवर्तीजी का दरबार हुआ। उस दिन रामनवमी को पुनर्वसु नक्षत्र था। चक्रवर्तीजी ने दूसरे ही दिन पुष्य नक्षत्र में रामजी का अभिषेक करना चाहा। रात को ही महारानी कैकेयी ने भरत को राज्य और रामजी को चौदह वर्ष के लिए वनवास माँगा। राजा वचनबद्ध हो चुके थे। अतः राजरस भङ्ग हुआ।

दूसरे दिन दशमी को सवेरा होते ही यह समाचार पुरवासियो को मिला। यथा : नगर ब्यापि गई बात सुतोछी। छुअत चढी जनु सब तन बीछी। रामजी के विरह से पुरवासियो को बडा विषाद हुआ। लक्ष्मणजी भी साथ वन जाने को तैयार हुए। सरकार ने बहुत चाहा कि लक्ष्मणजी न जायँ पर वे रुके नही।

बिपिन गवनु केवट अनुरागा। सुरसरि उतरि निवास प्रयागा ॥
बालमीकि प्रभु मिलन बखाना। चित्रकूट जिमि बसे भगवाना ॥२॥

अर्थ '१३ वन गमन केवट का प्रेम :१४' गङ्गा पार उतरकर प्रयाग मे निवास। '१५' वाल्मीकि और प्रभु का मिलन तथा :१६: जिस भाँति चित्रकूट मे भगवान् बसे वह सब उसने बखानकर कहा।

व्याख्या : दशमी के दिन सरकार वन चले। उस दिन तमसा तीर निवास किया। आधी रात को वहाँ से रथ पर रवाना होकर एकादशी को शृङ्गबेरपुर पहुँचे। द्वादशी के दिन गङ्गापार जाने के लिए केवट से नाव माँगी। वह नही लाया। उसके आज्ञा न मानने मे इतना अनुराग भरा था कि आजतक वह प्रसग बडे प्रेम से गान किया जाता है। उस दिन गङ्गा पार जाकर सरकार ने मार्ग मे एक पेड़ तले विश्राम किया। त्रयोदशी को प्रयागराज पहुँचे और उस रात को भरद्वाज के आश्रम मे विश्राम किया। चतुर्दशी को यमुना पार जाकर निषादराज को बिदा किया और रास्ते मे ही रात को टिक गये। पूर्णिमा को वाल्मीकिजी से मिलकर चित्रकूट मे निवास किया।

सचिवागमनु नगर नृप मरना। भरतागवनु प्रेम बहु बरना ॥
करि नृपक्रिया संग पुरबासी। भरतु गए जहँ प्रभु सुखरासी ॥३॥

अर्थ :१७ मन्त्री का नगर को लौटना राजा का मरना :१८ भरतजी का आना तथा उनके प्रेम का वर्णन बहुत प्रकार से किया। १९ राजा की क्रिया करके पुरवासियो के साथ २०. भरतजी जहाँ सुखराशि प्रभु थे वहाँ गये।

व्याख्या ' उसी पूर्णिमा को सुमन्तजी अयोध्या लौटे। समाचार सुनकर महाराज दशरथ ने प्राणत्याग किया। भरतजी को कैकयदेश मे समाचार भेजने और उनके अयोध्या आने मे पूरा पखवारा लग गया। वैशाख चढते ही भरतजी अयोध्या आये। चक्रवर्तीजी की और्ध्वदैहिक क्रिया की। ज्येष्ठ लगते ही भरतजी पुरवासियो के साथ चित्रकूट चले। एकादशी के लगभग रामजी से भेट हुई।

पुनि रघुपति बहु बिधि समुझाए। लै पादुका अवधपुर आए ॥
भरत हरनि सुरपति सुत करनी। प्रभु अरु अत्रि भेट पुनि बरनी ॥४॥

अर्थ :२१: फिर रामजी ने भरतजी का बहुत तरह से समझाया। :२२ भरतजी उनकी पादुका लेकर अयोध्या आये। :२३: भरतजी का आचरण :२४ इन्द्र के बेटे की करनी तत्पश्चात् .२५: प्रभु और अत्रिजी का मिलना उसने वर्णन किया।

व्याख्या : भरतजी का बहुत बडा आग्रह था कि रामजी अयोध्या लौट चलें। परन्तु रामजी ने नही लौटना चाहा और बहुत कुछ समझा बुझाकर भरतजी को लौटाया और वे प्रभु को चरणपादुका लेकर अयोध्या आये। आषाढ चढते भरतजी का अयोध्या लौटना हुआ। वहाँ आकर उन्होने सरकार की चरणपादुका को सिंहासनारूढ किया। उसी से आज्ञा माँग माँगकर पुर का कार्य करने लगे। नन्दिग्राम मे पर्णकुटी बनाकर वही निवास किया। उनके नेम व्रत को देखकर मुनि लोगो को भी सङ्कोच होता था। इधर रामजी पर्णशाला मे लक्ष्मण और सीता सहित सानन्द निवास करने लगे। चार चातुर्मास उनका चित्रकूट मे ही बीता। इन्द्र के बेटे जयन्त ने रामजी का बल देखने के लिए काक रूप धारण करके सीताजी के चरण मे चोच मारा। रामजी के बाण चलाने पर भागा। इन्द्रलोक ब्रह्मलोक आदि मे भागता फिरा। पर बाण ने पीछा न छोडा। अन्त मे नारदजी के उपदेश से रामजी के ही शरण मे गया। सरकार ने उसकी एक आँख फोडकर उसे जीता छोड दिया। तत्पश्चात् रामजी चित्रकूट छोडकर चलते समय अत्रिजी से मिले। अनसूयाजी ने सीताजी को स्त्रीधर्म का उपदेश दिया।

दो. कहि बिराध बध जेहि बिधि, देइ तजी सरभग।
बरनि सुतीछन प्रीति पुनि, प्रभु अगस्ति सन संग ॥६५॥

अर्थ :२६: विराध वध करके जिस भाँति :२७ शरभङ्ग ने शरीर त्याग किया वह भी कहा। :२८' सुतीक्ष्ण की प्रीति वर्णन करके तत्पश्चात् :२९' प्रभु का अगस्त्यजी से सत्सङ्ग कहा।

व्याख्या : रास्ते मे विराध असुर मिला। सरकार ने उसका वध किया और उसे पृथिवी खोदकर गाड दिया। तत्पश्चात् शरभङ्ग से मिले। वे ब्रह्मलोक जाते थे। सरकार का आना सुनकर रुक गये। सरकार का दर्शन होने पर चिता बनाकर योगाग्निसे शरीर भस्म किया। शरभङ्ग के आश्रम मे सरकार के बनवास के चार वर्ष पूरे हुए। आगे बढने पर मुनियो के अस्थि समूह को देखकर निशिचरहीन महि करने की प्रतिज्ञा की। तत्पश्चात् छः वर्ष तक मुनियो के आश्रमो मे घूमते रहे। तत्पश्चात् सुतीक्ष्णजी के आश्रम मे आये। उनकी प्रीति देखकर बडे सन्तुष्ट हुए और उनके साथ अगस्त्यजी के आश्रम मे गये। वहाँ लगभग एक वर्ष रहे।

कहि दंडकवन पावनताई। गीध मइत्री पुनि तेहि गाई ॥
पुनि प्रभु पंचवटी कृतबासा। भंजी सकल मुनिन्ह की त्रासा ॥१॥

अर्थ .३० दण्डक वन का पवित्र होना कहकर उसने :३१: गीध मैत्री का गान किया। तत्पश्चात् :३२ प्रभु पञ्चवटी मे बसे और :३३: सब मुनियो के त्रास को दूर किया।

व्याख्या : अगस्त्यजी की प्रार्थना थी : दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिवर कर हरहू। सरकार के पधारने से शुक्राचार्य का शाप दूर हुआ और

दण्डक वन पवित्र हो गया। रास्ते मे गीधराज जटायु से भेंट हुई। ये चक्रवर्तीजी के मित्र थे। इनसे सरकार ने मिलकर उस प्राचीन प्रीति को और भी बढाया। इसलिए उसका गान करना कहते हैं।

सम्भवत आश्विन मास मे सरकार पञ्चवटी आये। अश्वत्थ, वट, पाकर, आम्र और आँवले के पेड के एकत्र स्थापन से पञ्चवटी बनती है। वही सरकार ने निवास किया। इनके निवास से मुनि लोग निर्भय हो गये। किसी राक्षस का सामर्थ्य नही कि उनसे बोल सके। सूपणखा रावण से शिकायत करती है ' जिन्हकर भुजबल पाइ दसानन। अभय भये विचरत मुनि कानन।

पुनि लछिमन उपदेस अपा। सूपनखा जिमि कीन्हि कुरूपा ॥
खरदूषन बध बहुरि बखाना। जिमि सबु मरमु दसानन जाना ॥२॥

अर्थ फिर २४ लक्ष्मणजी को अनूप उपदेश दिया तथा २५ जिस भाँति सूर्पणखा को कुरूप किया और २६ खरदूषण का वध किया इसे बखानकर कहा और २७ जिस भाँति सब मर्म का पता रावण को चला।

व्याख्या लक्ष्मण को उपदेश सरकार ने दिया जिसे रामगीता कहते हैं। सम्भवत इस गीता का उपदेश भी भगवद्‌गीता के उपदेश की भाँति अगहन मे ही हुआ। इस गीता के उपदेश का ही विस्तार सम्पूर्ण मानस मे है इसलिए अनूप कहा। सूर्पणखा का विरूप करण माघशुक्ल त्रयोदशी को हुआ। नासिका मुखमण्डनम्। मुख की शोभा नाक है। उसे सरकार से प्रेरित होकर लक्ष्मणजी ने काटा। इन्द्र का इतना सामर्थ्य नही था कि सूर्पणखा की नाक काट सकें। यह समाचार पाकर खर-दूषण ने फाल्गुन कृष्ण द्वितीया को रामजी पर चढाई की और तीसरे दिन फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी को सब मारे गये। पञ्चमी को सूर्पणखा विलाप करती हुई लका गयी और सब इतिवृत्त रावण को सुनाया।

दसकधर मारीच बतकही। जेहि विधि भई सो सब तेहि कही ॥
पुनि माया सीता कर हरना। श्रीरघुबीर बिरह कछु बरना ॥३॥

अर्थ २८ रावण और मारीच मे जो बातचीत हुई सो सब भुसुण्डिजी ने कही। तत्पश्चात् २९ माया की सीता का हरण तथा ४० श्रीरघुवीर का थोडा विरह वर्णन किया।

व्याख्या सूर्पणखा से सब कथा सुनकर रावण मारीच के पास सप्तमी को गये। मारीच ने बहुत समझाया पर रावण ने नहीं माना। मारीच को मारने के लिए तैयार हो गया। तब मारीच माया का मृग बनकर रामजी को दूर ले गया। मरते समय लक्ष्मण को रामजी के स्वर से पुकारा। लक्ष्मणजी के भी चल जाने पर रावण ने फाल्गुन कृष्ण अष्टमी को मायासीता का हरण किया। तत्पश्चात् भुसुण्डिजी ने सीताजी के तथा रामजी के विरह का थोडा बहुत वर्णन किया।

पुनि प्रभु गीध क्रिया जिमि कीन्ही । वधि कवंध सबरिहि गति दीन्ही ॥
वहुरि विरह करनत रघुवीरा । जेहि विधि गए सरोवर तीरा ॥४॥

अर्थ :४१: फिर प्रभु ने जैसे गीध की क्रिया की और :४२: कबन्ध का वध करके शवरी को गति दी । तत्पश्चात् :४३: विरह वर्णन करते हुए रघुवीर जिस भाँति सरोवर के तीर पहुँचे ।

व्याख्या : सीताजी का विलाप सुनकर जटायु ने रावण से युद्ध किया । अन्त मे पक्षच्छेदन कर देने से गीधराज घायल होकर पृथिवी पर गिरे । इन्होने ही रामजी को सीता हरण का पता दिया । तत्पश्चात् परलोकगामी हुए । रामजी ने उनकी और्ध्वदैहिक क्रिया अपने हाथ से की । रास्ते में कबन्ध राक्षस को मारा । तत्पश्चात् शवरी के आश्रम मे गये । उनका सत्कार ग्रहण किया और उसे मोक्ष दिया । तत्पश्चात् सीताजी को खोजते हुए दोनो भाई नासिक से कर्नाटक देश और क्रौञ्चारण्य का उल्लघन करते हुए तीन महीने में पम्पासर पहुँचे ।

चो. प्रभु नारद संवाद कहि, मारुति मिलन प्रसंग ।
पुनि सुग्रीव मिताई, वालि प्रान कर भंग ॥६६॥
कपिहि तिलक करि प्रभुकृत, सैल प्रवरषन वास ।
वरनत वरखा सरदरितु, राम रोप कपि त्रास ॥६६ क.

अर्थ :४४: सरकार और नारद का सवाद कहकर :४५: हनुमान्‌जी से भेंट होने की कथा कही । तत्पश्चात् :४६: सुग्रीव से मित्रता और :४७: वालिवध कहा । :४८: सुग्रीव को तिलक देकर सरकार ने प्रवर्षणगिरि पर वास किया । :४९: शरद और :५०: वर्षा का वर्णन करना तथा :५१: रामजी का रोष करना और :५२: सुग्रीव का त्रस्त हो उठना कहा ।

व्याख्या : सरकार को विरहवन्त देखकर नारदजी को बड़ा कष्ट हुआ । उन्ही का शाप था : मम अपकार कीन्ह तुम भारी । नारि विरह तुम होव दुखारी । सरकार उसी को अङ्गीकार करके कष्ट उठा रहे थे । उसी बात का स्मरण करके नारदजी को सरकार के दर्शन की बडी उत्कण्ठा हुई । सो पम्पासर पर जाकर मिले । राम नाम की श्रेष्ठता का वरदान मांगा । अपनी शङ्का का समाधान पूछा और सन्त का लक्षण सुना । रामजी ज्येष्ठ के अन्त मे हनुमान्‌जी से मिले । सुग्रीव से अग्निसाक्षिक मैत्री हुई । तत्पश्चात् उन्होने वालि को मारा और सुग्रीव को राज्य दिया । चातुर्मास आजाने से सरकार प्रवर्षणगिरि पर ठहर गये । वर्षा बीती शरद आया । पर सुग्रीव ने कोई खबर न ली । इसलिए रामजी ने रोष किया । लक्ष्मणजी किष्किन्धा गये : धनुष चढाइ कहा तब जारि करौं पुर छार । सुग्रीव भयभीत हुए और कार्तिक कृष्ण दशमी को लक्ष्मणजी के साथ साथ रामजी के पास गये ।

जेहि विधि कपिपति कीस पठाए । सीता खोज सकल दिसि धाए ॥
विवर प्रवेस कीन्ह जेहि भाँती । कपिन्ह वहोरि मिला संपाती ॥१॥

अर्थ :५३: जिस प्रकार सुग्रीव ने बन्दरों को भेजा और वे सीताजी के खोजने के लिए सब दिशाओ मे दौड़े। :५४: जिस भाँति विवर में प्रवेश किया और :५५: बन्दरों से सम्पाती मिला।

व्याख्या : एक महीने का समय देकर सुग्रीवजी ने बन्दरों को चारों दिशाओं में सीताजी के खोजने के लिए भेजा। ताकीद कर दी कि जो महीने भर में न लौटा और सीताजी का समाचार भी न लाया उसे मैं अपने हाथ से मारूँगा। उसी दिन कार्तिक कृष्ण दशमी को ही बन्दर लोग रवाना हो गये। सीताजी के खोज में शरीर की सुधि भूल गये। घने जंगल में रास्ता भूल गये और बिना जल के मरने लगे। हनुमान्जी ने पहाड़ पर चढ़कर देखा कि एक स्थान में विवर के भीतर जलपक्षी प्रवेश कर रहे हैं। जल का अनुमान करके सब बन्दरों ने उसमें प्रवेश किया। वहाँ तपस्विनी से भेंट हुई। सब ने सर में जल पिया फल खाया। उसी विवर में एक महीने की अवधि बीत गयी। तपस्विनी ने सबको दिलासा दिया और तपोबल से समुद्र के किनारे पहुँचा दिया। वहाँ सम्पाती : जटायु के बड़े भाई से भेंट हुई। उसने सीताजी का पता बतलाया।

सुनि सब कथा समीर कुमारा। नाघत भयो पयोधि अपारा॥
लंका कपि प्रवेस जिमि कीन्हा। पुनि सीतहि धीरजु जिमि दीन्हा॥२॥

अर्थ :५६: सब कथा सुनकर हनुमान्जी :५७: अपार समुद्र का उल्लंघन कर गये। :५८: फिर लंका मे जैसे हनुमान्जी ने प्रवेश किया और :५९: जिस भाँति सीताजी को धीरज दिया।

व्याख्या : सम्पाती ने बतला दिया कि समुद्र के उसपार लंका के उपवन में सीताजी बैठी सोच रही हैं। जो सौ योजन समुद्र का उल्लंघन करे वह रामकार्य कर सकता है। पर किसी का साहस नहीं हुआ। हनुमान्जी ने अगहन वदी एकादशी को समुद्रोल्लघन किया। द्वादशी को सीताजी का दर्शन करके उन्हे धैर्य बँधाया तब अशोक वाटिका के फलो से पारण किया।

बन उजारि रावनहि प्रबोधी। पुरदहि नाँघेउ बहुरि पयोधी॥
आये कपि सब जहँ रघुराई। बैदेही की कुसल सुनाई॥३॥

अर्थ :६०: अशोक वन को उजाड़कर और :६१: रावण को समझाकर :६२: लंका जलाकर हनुमान्जी फिर :६३: समुद्र डाँक गये। :६४: सब बन्दर रामजी के पास आये और :६५: सीताजी की कुशल सुनायी।

व्याख्या : फल खाने मे हनुमान्जी का राक्षसों से युद्ध हुआ। मेघनाद उन्हे बाँधकर रावण की सभा में ले गया। रावण से वार्तालाप हुआ। हनुमान्जी ने उसे बहुत समझाया। उसने हनुमान्जी के पूँछ जलाने की आज्ञा दी। पूँछमें आग लगने पर हनुमान्जी ने त्रयोदशी को लका जलायी। चतुर्दशी को हनुमान्जी समुद्र पार करके अपने साथियो से भेंट की। सबके सब रामजी के पास चले। सात दिन रास्ते

में लगे। अगहन सुदी सप्तमी को रामजी का दर्शन किया और सीताजी का कुशल सुनाया।

सेन समेत जथा रघुबीरा। उतरे जाइ बारिनिधि तीरा ॥
मिला बिभीषनु जेहि बिधि आई। सागर निग्रह कथा सुनाई ॥४॥

अर्थ :६६: सेना के समेत जिस भाँति रामजी जाकर समुद्र के तीर पर उतरे। :६७: जिस भाँति विभीषण जाकर मिला और :६८: समुद्र पर रामजी के रोष करने की कथा सुनायी।

व्याख्या : अगहन सुदी अष्टमी को रामजी ने वानरी सेना के साथ विजय यात्रा की। सात दिन तक बराबर सेना चलती गयी और पूर्णिमा के दिन समुद्र के तट पर जा पहुँची। इसके आगे सेना की गति नहीं थी। यह समाचार रावण को मिला। मन्त्रणा के लिए सभा हुई। विभीषण ने सीता के लौटा देने का मन्त्र दिया। रावण ने क्रुद्ध होकर उसे लात मारकर निकाल दिया। तब विभीषण आकर रामजी से मिला। रामजी ने उसे लंका का तिलक दे दिया। विभीषण की राय से रामजी ने समुद्र से सत्याग्रह किया। तीन दिन बीत गया तब रामजी रुष्ट हुए और समुद्र को अग्निबाण से शोषण करने को तैयार हुए। समुद्र सन्तरण के लिए मन्त्रिमण्डल की बैठक पूस बदी पञ्चमी को हुई। रामजी षष्ठी को विनय करने समुद्र तट पर गये। नवमी को समुद्रजी शरण आये।

दो. सेतु बाँधि कपि सेन जिमि, उतरी सागर पार।
गयउ बसीठी बीर बर, जेहि बिधि बालिकुमार ॥६७॥
निसिचर कीस लराई बर, निसि बिबिध प्रकार।
कुंभकरन घननाद कर, बल पौरुष संघार ॥६७ क॥

अर्थ :६९: सेतु बाँधकर जिस भाँति बानरी सेना समुद्र पार उतरी और :७०: अङ्गदजी जिस भाँति दूत होकर गये। :७१: राक्षस और बन्दरों की लड़ाई अनेक प्रकार से भुसुण्डिजी ने वर्णन किया तथा :७२: कुम्भकर्ण और :७३: मेघनाद के बल पौरुष और संहार का वर्णन किया।

व्याख्या : चार दिनों मे सेतुबन्धन का कार्य समाप्त हुआ। पूस बदी त्रयोदशी को सेतु तैयार हो गया। पूस सुदी १२ को रामजी ने प्रयाण किया और पूर्णमासी को सुवेल पर्वत पर उतरे। माघ सुदी प्रतिपदा को अङ्गद दूत बनकर गये। छः महीने तक चारो फाटक की लड़ाई होती रही। श्रावण सुदी प्रतिपदा को लक्ष्मणजी को शक्ति लगी। श्रावण सुदी ६ और सप्तमी दो दिन कुम्भकर्ण के जगाने में लगा। कुम्भकर्ण अष्टमी को रणाङ्गण मे आये। सात दिन युद्ध करके पूर्णिमा को मारे गये। भाद्रपद बदी द्वादशी को मेघनाद वध दो दिन के युद्ध के बाद हुआ।

निसिचर निकर मरन बिधि नाना । रघुपति रावन समर बखाना ॥
रावन बध मदोदरि सोका । राजु बिभीषन देव असोका ॥

अर्थ ७४ नाना प्रकार से राक्षसो का मरना ७५ राम रावण का युद्ध होना वर्णन किया। ७६ रावण का मारा जाना ७७ मन्दोदरी का विलाप ७८ विभीषण को राज्य और देवताओ का शोक रहित होना।

व्याख्या बडी भारी सेना लेकर रावण युद्ध के लिए भाद्रपक्ष कृष्ण अमावस्या को निकले। इस युद्ध मे बडा भारी सहार राक्षसो का हुआ। आश्विन शुक्ल प्रतिपदा को दूसरी बार रावण सेना लेकर आये। द्वितीया से राम रावण का द्वन्द्व युद्ध प्रारम्भ हुआ। नवमी को रावण का वध हुआ। रानी मन्दोदरी ने समराङ्गण मे आकर विलाप किया। विजयोत्सव दशमी के दिन मनाया गया। त्रयोदशी को विभीषण का राज्याभिषेक हुआ। तब देवता शोकरहित हो गये।

सीता रघुपति मिलन बहोरी। सुरन्ह कीन्ह अस्तुति कर जोरी ॥
पुनि पुष्पक चढि कपिन्ह समेता। अवध चले प्रभु कृपानिकेता ॥२॥

अर्थ ७९ तत्पश्चात् सीता और रामजी का मिलना ८० देवताओ का हाथ जोडकर स्तुति करना ८१ तत्श्चात् सेना सहित पुष्पक पर चढकर सरकार की अवध यात्रा हुई।

व्याख्या आश्विन शुक्ला चतुर्दशी को सीता का रामजी के साथ मिलन हुआ। देवता लोगो की स्तुति शरत् पूर्णिमा को हुई। कार्तिक वदी प्रतिपदा को विभीषणजी मणि भूषण से भरकर पुष्पक विमान लाये और सरकार की आज्ञा से आकाश मे जाकर बानरी सेना मे मणि भूषण की वर्षा की। द्वितीया को सरकार पुष्पक पर सेना सहित सवार होकर अयोध्या चले।

जेहि बिधि राम नगर निज आए। बायस बिसद चरित सब गाए ॥
कहेसि बहोरि राम अभिषेका। पुर बरनन नृपनीति अनेका ॥३॥

अर्थ ८२ जिस विधि से रामजी नगर के निकट पहुँचे। उस निर्मल चरित का भुसुण्डिजी ने गान किया। ८३ तत्पश्चात् रामजी का अभिषेक ८४ पुर वर्णन और अनेक राजनीति का वर्णन किया।

व्याख्या वरदान आदि से तिथिवद्ध मास माना जाता है। पाण्डवो के बनवास मे भी तिथिवद्ध मास ही माना गया। सौर वर्ष तिथिबद्ध मासवाले साल से बारह दिन बडा होता है। इस भाँति चौदह वर्ष म एक सौ असंठ दिन का फरक पडता है। इसलिए चौदह वर्ष चैत सुदी नवमी को पूरा न होकर कार्तिक वदी पञ्चमी को ही पूरा हो गया। सो ठीक पञ्चमी के दिन सरकार भरद्वाज के आश्रम पर पहुँच गये। सप्तमी को भरत मिलाप हुआ। अष्टमी को पुष्ययोग म रामजी का अभिषेक हुआ।

तत्पश्चात् अयोध्या की कैसी शोभा हुई। रामराज्य मे किस भाँति सत्ययुग की भाँति चारो चरण से धर्म का स्थापन हुआ। यह सब भुसुण्डिजी ने वर्णन किया।

कथा समस्त भुसुंडि बखानी। जो मै तुम सन कही भवानी ॥
सुनि सब रामकथा खगनाहा। कहत बचन मन परम उछाहा ॥४॥

अर्थ : भुसुण्डिजी ने वह सब कथा कह डाली जो कि मैंने हे भवानी ! तुमने कहा है। रामजी की कथा सुनकर गरुडजी ने बडे उछाह से भरे हुए मन से वचन कहे।

व्याख्या : शिवजी ने उमा से कहा कि यहाँ समास से मैंने कथा कही। पर भुसुण्डिजी ने उसी भाँति से विस्तार पूर्वक कथा गरुडजी को सुनायी जैसा कि मैंने तुम्हे सुनाया था। व्यास समास दोनो भाँति से कहने से ही बात मन मे बैठती है। अतः दोनो भाँति से मैंने तुम्हे कथा सुनायी दी।

भुसुण्डिजी को कथा प्रारम्भ करने के पहिले ही उछाह हुआ। यथा : भयउ तासु मन परम उछाहा। लाग कहै रघुपति गुन गाहा। गरुडजी की कथा सुनने पर उछाह हुआ। शिवजी ने कहा था : जाइहि सुनत सकल संदेहा। राम चरन उपजहि दृढ नेहा। सो ठीक ठीक वैसा ही हुआ : गरुडजी कहते हैं।

सो गएउ मोर संदेह सुनेउँ सकल रघुपति चरित।
भयउ रामपद नेह तव प्रसाद बायस तिलक ॥६८ क.

अर्थ : मेरा सन्देह जाता रहा। मैंने सब रामचरित सुना। रामजी के चरणो मे हे वायसतिलक ! तुम्हारे प्रसाद से प्रेम हुआ।

व्याख्या : नारदजी ने सब सुनकर कहा था : महामोह उपजा उर तोरे। मिटिहि न बेगि कहे खग मोरे। सो भुसुण्डिजी के प्रसाद से वह मोह मिट गया। रामजी का सब चरित्र श्रवण किया। उसका फल यह हुआ कि गरुडजी को रामजी के चरणो मे प्रेम हुआ। भावार्थ यह कि महात्माओ की कृपा से ही मोह मिटता है और कथा श्रवण से भगवद्भक्ति होती है। यथा : बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग। मोह गये बिनु रामपद होइ न दृढ अनुराग।

सो मोहि भयेउ अति मोह प्रभु बंधन रन महु निरखि।
चिदानन्द संदोह राम बिकल कारन कवन ॥६८॥

अर्थ : प्रभु का रण मे बन्धन देखकर मुझे अत्यन्त मोह हुआ। चिदानन्द की राशि राम विकल हैं इसका क्या कारण है।

व्याख्या : नारदजी ने कहा था : महा मोह उपजा उर तोरे। उसी बात को स्वीकार करते हुए गरुडजी कहते हैं कि मोह के चले जाने पर मुझे मालूम हो रहा है कि मुझे अति मोह हो गया था। अपने स्वरूप का अज्ञान मोह है और ईश्वर के स्वरूप के प्रति अज्ञान को महा मोह कहते हैं। अहमिति अभिमान तो जीव मे होता

है। ईश्वर मे अभिमान कहाँ ? बन्ध और मोक्ष तो जीव के लिए हैं। नित्यमुक्त ईश्वर को बन्ध कहाँ ? सभी शरीर उनका है। उन्हे जैसा अपना शरीर वैसा ही दूसरा शरीर। शरीर के बन्ध से उनका सम्बन्ध क्या ? जीव जिस भाँति अपने को बँध जाने से परतन्त्र मानता है वैसी ही व्याकुलता की कल्पना ईश्वर मे भी करता है। दिग्भ्रम उसे हुआ है। कहता है कि सूर्य ही पश्चिम मे उदय हुआ है। देहाभिमान उसे है। उसी देहाभिमान की कल्पना ईश्वर मे करता है। देह की विकलता से चिदानन्द सन्दोह को विकल मान रहा है और उस विकलता का कारण तलाश कर रहा है। यही महामोह है।

देखि चरित अति नर अनुसारी। भयउ हृदयँ मम संसय भारी ॥
सोई भ्रम अब हितकरि मै माना। कीन्ह अनुग्रह कृपा निधाना ॥१॥

अर्थ : एकदम मनुष्य का सा चरित्र देखकर मेरे मन मे भारी सशय हुआ। उसी भ्रम को अब मैं कल्याणकारी समझता हूँ। कृपानिधान ने बडा अनुग्रह किया।

व्याख्या : वह चरित्र मिश्रब्रह्मा का सा नही था। एकदम मनुष्य का सा था। युद्ध मे बँध जाने से जैसे विकल हो जाते हैं ठीक वैसा ही अभिनय सरकार ने किया था। यथा : एक बार अतिसै सब चरित किये रघुवीर। जब चरित्र मे अत्यन्त नरानुकरण करते हैं उस समय देखनेवाले को बिना मोह हुए नही रहता। उमा को मोह हुआ। गरुडजी को मोह हुआ। स्वय भुसुण्डिजी को मोह हुआ। नर अनुहारी चरित्र से सशय होता है और अति नर अनुहारी से भारी संशय होता है।

अब मालूम होता है कि वह भ्रम भी हितकर था। कृपानिधान के अनुग्रह से हुआ था। कृपानिधान है : भ्रम भी उत्पन्न कर देते हैं भलाई के लिए। यह रामचरण मे दृढ नेह होने का उदाहरण है। कहते हैं कि जब भ्रम छूटा तब मालूम कि यह हितकर था। नही तो पहले प्रचण्ड विषाद उपजा था।

जो अति आतप ब्याकुल होई। तरु छाया सुख जानै सोई ॥
जौं [1]नहि होत मोह अति मोही। मिलतेउँ तात कवन बिधि तोही ॥२॥

अर्थ : जो धूप से अत्यन्त विकल होता है उसी को पेड की छाया का सुख अनुभूत होता है। यदि मुझे मोह न हुआ होता तो तुमसे कैसे मिलता ?

व्याख्या : तरु छाया मे सुख है पर मालूम नही होता। जल मे मिठास है पर मालूम नही होती। रसना स्वय जलीय पदार्थ है। इससे जल की मिठास का पता नही चलता। पर जब हरीतकी सेवन से उसमे रूखापन आजाता है तब उसे जल की मिठास का पता चलता है। इसी भाँति मनुष्य मे शीतलता है। इसलिए

---

१. यहाँ लेशालङ्कार है।

तरु छाया का सुख अभिव्यक्त नही होता। जब अति आतप से शीतलता तिरोहित होती है तब तरुछाया के सुख का अनुभव होता है।

गरुडजी का भुसुण्डिजी से भेंट होने की कोई विधि ही नही थी। होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवै चह कृपानिधाना। मन मे अभिमान था कि मैं पक्षिराट् हूँ। भुसुण्डि शकुनाधम सब भाँति अपावन हैं। उसी अभिमान के नाश के लिए ऐसा भ्रम हुआ। गरुडजी कहते हैं कि ससाररूपी पतग के घोर किरणो से मैं जल रहा था। आप सन्त हैं। विटप स्थानीय हैं। यथा सत बिटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबन्ह कै करनी। आपकी छाया मे मेरी रक्षा हुई। आतप से विकल होने से ही तरुछाया की खोज हुई और तब आप मिले।

सुनतेउँ किमि हरिकथा सुहाई। अति बिचित्र बहुबिधि तुम्ह गाई॥
निगमागम पुरान मत एहा। कहहिं सिद्ध मुनि नहि सदेहा॥३॥

अर्थ उस सुन्दर हरिकथा को मैं कैसे सुनता जिस अति विचित्र कथा का गान बहुत विधि से आपने किया है। वेद शास्त्र का यही मत है। सिद्ध मुनि भी कहते हैं इसमे सन्देह नही।

व्याख्या हरिकथा श्रवण ही ससार पतग के घोर किरणो से सन्तप्त पुरुषो के लिए एकमात्र शरणप्रद तरुछाया है। आप वृक्ष हैं। हरि कथा आपकी छाया है। भ्रम होने से ही आपकी प्राप्ति हुई और हरिकथा सुनने का सौभाग्य हुआ। यह छाया अति विचित्र है। शीतल होने पर भी प्रकाशमय है। उसके द्वारा अनेक प्रकार से आप ने मेरी रक्षा की।

गरुडजी कहते हैं कि स्वत प्रमाण वेद और परत प्रमाण शास्त्र और पुराण तथा शिष्ट सिद्ध मुनि सबका इस विषय मे ऐकमत्य है। इसलिए सन्देह नही है

सत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहि रामु कृपा करि जेही॥
राम कृपा तव दरसन भएऊ। तव प्रसाद सब ससय गएऊ॥४॥

अर्थ उसे विशुद्ध सन्त की सगति मिलती है जिसे रामजी कृपा करके देखते हैं। रामकृपा से आपका दर्शन हुआ और आपके प्रसाद से मेरा सशय गया।

व्याख्या सशय निवारण का सद्य कारण रामकृपा नही है। सद्य कारण तो आपकी कृपा है। रामकृपा सशय निरसन का परम्परागत कारण है। यथा बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं सता। सत सगति ससृति कर अता। सन्त सर्वत्र हैं। परन्तु बिना हरि की कृपा के उनकी प्राप्ति नही होती। यथा सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। फिर भी मिलते नही। राम कृपा हो तब मिले। विधि प्रपच गुन अवगुन साना। साधु असाधु सुजाति कुजाती। सन्तो मे भी कुछ न कुछ दोप दिखायी पडता है। अत विशुद्ध सन्त का मिलना हरिकृपा से ही सम्भव है। वर्णाश्रम धर्म का आश्रय करके श्रीभगवान् का परमभक्त ही विशुद्ध सन्त है।

दो सुनि बिहग पति बानी, सहित बिनय अनुराग ।
पुलकि गात लोचन सजल, मन हरषेउ अति काग ॥६९ क

अर्थ पक्षिराट् की विनय और अनुराग युक्त वाणी सुनकर भुसुण्डिजी को पुलक हो गया और नेत्र मे जल भर आया और वे मन मे बडे प्रसन्न हुए ।

व्याख्या विनय और अनुराग सहित वाणी सुनने से ही सन्त महात्माओ की प्रसन्नता होती है । गरुडजी विहगपति हैं । उनकी प्रेम भरी विगताभिमान वाणी सुनने स भुसुण्डजी को ऐसा हर्ष हुआ कि वह पुलक और आनन्दाश्रु के मिस से प्रकट हो गया । विनय के सहित यथा राम कृपा तव दरसन भयऊ । अनुराग के सहित यथा मिलतेउँ तात कवन बिधि तोही । गरुडजी महासाधु हैं । अत उनके सत्सङ्ग से भुसुण्डिजी को भी बडा हर्ष हुआ ।

दो स्रोता सुमति सुसील सुचि, कथा रसिक हरिदास ।
पाइ उमा अति गोप्यमपि, सज्जन करहिं प्रकास ॥६९॥

अर्थ हे उमा ! श्रोता यदि सुमति, सुशील, शुचि, कथारसिक और हरिदास मिल जाय तो सज्जन अत्यन्त गोप्य छिपायो जाने योग्य बात को भी कह डालते हैं ।

व्याख्या गरुडजी से बहुत कुछ राम रहस्य भुसुण्डिजी वर्णन करनेवाले हैं । इसीका उपक्रम करते हुए शिवजी पार्वती को सम्बोधन करते हुए कहते हैं कि गुणवान् श्राता के मिलने पर सज्जन लोग रहस्य की बात भी प्रकट कर देते है । तुमने पूछा था औरो राम रहस्य अनेका । कहहु नाथ अति विमल बिबेका । सो भुसुण्डिजी राम रहस्य का वर्णन अब करेंगे । क्योकि गरुडजी गुणवान् श्रोता थे । गरुडजी की १ सुमति का तो इसी से पता चलता है कि मोह होते ही उसके निवारण के उपाय मे तुरन्त लग गये । नारदजी के पास गये । ब्रह्म लोक गये । मेरे पास आये और मेरे कहने पर भुसुण्डिजी के यहाँ प्रसन्न होकर गये । २ सुशील है । कहते हैं 'सोइ भ्रम अब हित करि मैं जाना । कीन्ह अनुग्रह कृपानिधाना । ३ शुचि हैं । इसलिए कहते हैं जौ नहि होत मोह अति मोही । मिलतेउँ तात कवन बिधि तोही । ४ कथा रसिक हैं । इसलिए कहते हैं सुनतेउँ किमि हरि कथा सोहाई । अति बिचित्र बहु बिधि तुम्ह गाई । और ५ हरिदास हैं । इसलिए उनके मन मे यह बात उठी सत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही । चितवहिं रामकृपा करि जेही । राम कृपा तव दरसन भयऊ । तव प्रसाद सब ससय गयऊ ।

बोलेउ कागभुसुंडि बहोरी । नभगनाथ पर प्रीति न थोरी ॥
सब बिधि नाथ पूज्य तुम्ह मेरे । कृपापाल रघुनायक केरे ॥१॥

अर्थ तत्पश्चात् भुसुण्डिजी बोल । क्योकि पक्षिराट् पर उनकी बडी प्रीति

थी। कहा कि हे नाथ! सब प्रकार से आप मेरे पूज्य हैं। क्योंकि रघुनायक के कृपापात्र हैं।

व्याख्या : विहंगपति की विनय अनुरागयुक्त वाणी सुनकर भुसुण्डिजी कहते हैं कि आप तो सबके पूज्य हैं। जो विष्णु भगवान् का अर्चन करता है उसे आपकी पूजा करनी पड़ती है। क्योंकि आप भगवान् के कृपापात्र हैं। सदा भगवान् के सम्मुख आपकी स्थिति रहती है। हरि मन्दिर के सामने ही गरुड़ स्तम्भ रहता है और मेरे तो सब विधि से पूज्य हैं। १ पक्षियो के राजा होने से २ जाति मे श्रेष्ठ होने से ३ अतिथि होने से और ४. सत्कार के बन्धन काटने के निमित्त होने से। महात्मा लोग कभी अन्यथा नही कहते। भुसुण्डिजी को वस्तुत: इन कारणो से गरुडजी पर बड़ी प्रीति थी।

तुमहि न संसय मोह न माया। मो पर नाथ कीन्हि तुम दाया ॥
पठै मोह[1] मिस खगपति तोही। रघुपति दीन्ह बड़ाई मोही ॥२॥

अर्थ : तुम्हे न संशय है न मोह है और न माया है। हे नाथ! मुझ पर आपने दया की। रामजी ने मोह के बहाने से तुम्हे भेज कर मुझे बडाई दी।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते है कि आप तो नित्ययुक्त हो। आपको सशय मोह और माया कहाँ? जिसे मोह होता है उसे इतना ज्ञान कहाँ कि मुझे मोह हुआ है। आपके मोह छुडाने के प्रयत्न से ही सिद्ध है कि वह मोह आगन्तुक था। आपने मुझ पर दया की जो स्वय चले आये। उचित तो यह था कि आप मुझे बुला भेजते। यथा : तदपि उचित जन बोलि सप्रीती। पठइअ काज नाथ असि नीती। बात यह है कि सरकार को मुझे बडाई देना था। इसलिए उनकी प्रेरणा से मोहाभास आपको हो गया। जो बात शिवजी ने कहा था : होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सोइ खोवै चह कृपानिधाना। उसी बातको भुसुण्डिजी दूसरे शब्दो मे कह रहे हैं।

तुम निज मोह कही खगसाईं। सो नहि कछु आचरज गोसाईं ॥
नारद भव विरंचि सनकादी। जे मुनिनायक आतमवादी ॥३॥

अर्थ : हे पक्षिराट्! आपने जो अपना मोह कहा है वह कोई आश्चर्य की बात नही है। नारद, शिव, ब्रह्मा, सनकादिक मुनि तथा और भी मुनियो मे श्रेष्ठ आत्मवादी है।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि आपने जो कहा : मोहि भयो अति मोह प्रभु बधन रन महु निरखि। सो कोई आश्चर्य की बात नही है। क्योंकि : जौं सब के रह ज्ञान एक रस। ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस। आप बहुत बडे होने पर भी पक्षी हैं। मैं मुनियो की बात कहता हूँ और उनकी जो आत्मवादी हैं। जिन्हे ससार शशश्रृंग

---

१. यहाँ लेशालङ्कार है।

को भाँति असत् प्रतीत होता है तथा सनकादिक की बात कहता हूँ जो ब्रह्मानन्द मे सदा लवलीन रहते हैं। नारदजी की बात कहता हूँ जो हरिहर को प्रिय हैं। तथा स्वय सृष्टिकर्ता ब्रह्मा और सहारकर्त्ता शिवजी की बात कहता हूँ।

मोह न अंध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचाव न जेही॥
तृष्णा केहि न कीन्ह बौराहा। केहि कर हृदय क्रोध नहि दाहा॥४॥

अर्थ : मोह ने किसे अन्धा नही कर दिया। काम ने किसे नही नचाया। तृष्णा ने किसे पागल नही बनाया। किसके हृदय को क्रोधने नही जलाया।

व्याख्या · ससार मे जो है उस पर कभी न कभी काम क्रोधादि का दौरा हो जाता है · व्यापि रह्यौ ससार मँह माया कटक प्रचड। ससार मे तो ये सदा व्याप्त रहते हैं। बडे लोगो को ये वश मे नही रख सकते। पर कभी कभी उन पर भी इनका प्रभाव चल जाता है। इससे उनकी बडाई मे भेद नही पडता। जिन बडो बडो का मैंने उल्लेख किया है उन पर भी कभी न कभी इनका प्रभाव पड़ चुका है और भविष्य मे भी पडने का भय है। यथा · सिव चतुरानन जाहि डेराही। अत ऐसा ही आगन्तुक प्रभाव आप पर भी पड गया।

मोह अन्धकार का रूप ही है। इसके प्राबल्य के समय ज्ञान विरागरूपी आँखो का प्रचार रुक जाता है। अत: यह कभी न कभी सब पर प्रभाव डाल देता हैं। काम के कारण ही ससार जन्म मरण के जाल मे पडा हुआ है। यथा : नाचत ही निसि दिवस मर्यो। तबही ते न भये हरि थिर जब ते जिव नाम धर्यो। बहु वासना बिबिध कचुकि भूपन लोभादि भर्यो। चर अरु अचर गगन जल थल मे कौन न स्वाँग कर्यो। तृष्णा से उन्माद हो जाता है। वह अपने होश मे ही नही रहता। ससार उस पर हँसता है। पर वह कुछ ख्याल नही करता · लोलुप भ्रमत गृह पसु ज्यो जहँ तहँ सिर पदत्रान बजे। तदपि अधम बिचरत तेहि मारग कबहु न मूढ लँजे। क्रोध कलेजा जलाता है। जिस पर क्रोध होता है उसको हानि तो पीछे पहुँचावेगा। पहिले तो उसी का कलेजा जलाता है। क्रुद्ध पाप न कुर्यात् क· क्रुद्धो हन्याद् गुरूनपि। क्रोध से जीव कौन सा पाप नही करता ? क्रोधी अपने गुरु को भी मारता है। क्रोध पाप का मूल।

दो. ग्यानी तापस सूर कबि, कोबिद गुन आगार।
केहि कै लोभ बिडंबना, कीन्हि न येहि ससार॥७० क.
श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचनि के नयन सर, को अस लाग न जाहि॥७०॥

अर्थ : ज्ञानी, तपस्वी, शूर, कवि, पण्डित और गुणनिधान मे ऐसा कौन है जिसकी दुर्दशा इस ससार मे लोभ ने न की हो। धन मद ने किसे टेढा नही बनाया।

प्रभुता ने किसे बहरा नहीं बनाया तथा मृगनयनी के नयन का बाण ऐसा कौन है जिसे न लगा हो।

व्याख्या : आशा की डोरी गले में बँधी हुई पशु की भाँति लोभी कहाँ कहाँ नाचता नहीं फिरता। धूम समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जाति मति घन की। नहि तहँ सीतलता न वारि पुनि हानि होत लोचन को। ज्यो गच काच बिलोकि श्येन जड़ छाँह आपने तनकी। टूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आनन की। सो इस लोभ से बँचा कौन है? साधन चतुष्टयसम्पन्न ज्ञानी विषयविमुख तपस्वी मरण को तृण मानने वाले शूर क्रान्तिदर्शी कवि, जोवन मरण को न सोचने वाले पण्डित और आदरणीय गुणागार सभी इसके फन्दे में फँस जाते हैं।

धनमद होते ही सरल पुरुष भी कुटिल हो जाता है। वह समझने लगता है कि जो कोई मुझसे मिलता है वह मुझसे ऐंठने आता है। अतः वह सबसे कुटिलता का व्यवहार करता है। जबतक मनुष्य को प्रभुता की प्राप्ति नही होती तबतक वह सबकी बातें सुनता है। प्रभुता हाथ में आते ही उसकी सुनने की शक्ति हो जाती रहती है। दोनो की पुकार उसके कानतक पहुँचती ही नही और सब बाणो से कराल मृगनयनी के नयन बाण है। इसका मारा हुआ तुरन्त सुध बुध खो बैठता है। इससे भी बचनेवाला कोई दिखायी नही पड़ता। भावार्थ यह : नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा। लोभ पास जेहि गर न बँधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया।

गुनकृत सन्यपात नहि केही। कोउ न मान मद तजेउ निबेही ॥
जौवन ज्वर केहि नहि बलकावा। ममता केहि कर जसु न नसावा ॥१॥

अर्थ : गुण से उत्पन्न सन्निपात किसे नही हुआ। मान मद ने किसे निर्दोष छोड दिया? जवानी के ज्वर ने किसे नही कम्पमान किया। ममता ने किसको कीर्ति नही नष्ट की।

व्याख्या : गुण से काम क्रोध लोभ तीनों का योग है। काम वात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा। प्रीति करै जो तिनिउ भाई। उपजै सन्निपात दुःख दाई। तथा : सन्यपात जल्पसि दुर्बादा। भयेसि कालबस खल मनजादा। गुण होने से उसका मद बिना हुए नही रहता। मत्सर मान मोह मद को चोर कहा है। यथा : मत्सर मान मोह मद चोरा। ये सद्गुणो को चुरा लेते हैं। सद्गुणों का नाश मान मद द्वारा होता है। निबेही अर्थात् निश्छिद्र निर्दोष भावार्थ यह कि मान मद के कारण सभी मे दोष आ जाते हैं।

यौवन ज्वर है। सर्वरोगाग्रजो बली। यह सब रोगों से बलवान् है और यह यह सबको होता है। सज्वरा एव जायन्ते। सज्वरा एव म्रियन्ते। यह मानसिक ज्वर दो प्रकार का होता हैं। यथा : जुग बिधि ज्वर मत्सर अविवेका। इससे तो कोई बचता नही।

यश परोपकार से होता है। रागद्वेष से परोपकार तो दूर गया परोपकार ही हो पड़ता है और ममतारूपी तमिस्रा में राग द्वेष का बोलबाला सदा रहता है। यथा : ममता तरुन तमी अँधियारी। राग द्वेष उलूक सुखकारी। अतः ममता से यश का नाश होता ही है और ममता से कोई बचा भी नही है।

मच्छर काहि कलंक न लावा। काहि न सोक समीर डोलावा॥
चिन्ता साँपिनि को न खाया। को जग जाहि न ब्यापी माया॥२॥

अर्थ : मत्सर ने किसे कलङ्क नही लगाया और शोकरूपी वायु ने किसे चलायमान नही किया। चिन्ता सापिनी ने किसे नही दंशन किया। संसार में कौन है जिसे माया नही व्यापी ?

व्याख्या : जिसे मत्सर है वह उदार हो नही सकता। उसका स्वभाव निश्चय कार्पण्य से उपहत हो जाता है। फलतः उसे कलङ्क लगता है। शोक से धैर्य छूट जाता है। शोकसन्तप्त पुरुष विचलित हो उठता है। शोक संसार वृक्ष का बीज है। जब तक शोक है तब तक ब्रह्म ज्ञान हो नही सकता। उस शोक ने किसे विचलित नही किया। चिन्ता साँपिनी है। चुपके आकर दशन कर लेती है। उससे कुतर्क की लहर उठती है जो महा दुःखद है। यह प्राण लेकर ही छोड़ती है। जो संसार मे आया उसे माया व्यापती ही है। यथा : भूमि परत भा ढावर पानी। जिमि जीवहिं माया लपटानी। पानी जब जमीन मे गिरा तो ढावर होगा ही। इसी भाँति जो संसार में आया उसे माया व्यापेगी ही।

कीट मनोरथ दारु सरीरा। जेहि न लाग घुन को अस धीरा॥
सुत बित लोक ईषना तीनी। केहिकै मति इन्ह कृत न मलीनी॥३॥

अर्थ : मनोरथ कीट है। शरीर लकड़ी है। ऐसा धीर कौन है जिसे घुन नही लगा। पुत्रैषणा वित्तैषणा और लोकैषणा ये तीन एषणायें हैं। किसकी बुद्धि को इनने मलिन नही किया।

व्याख्या : मनोराज्य करते करते शरीर निस्सार हो जाता है। मनोरथ शरीर के सार को खा जाता है। ऊपर से ज्यों का त्यों बने रहने पर भी भीतर से पोला पड़ जाता है। धीर मनोरथ नही करते। फिर भी मनोरथ उनके शरीर को निःसार करके ही मानता है।

जितनी सांसारिक इच्छाएँ हैं वे पुत्र धन और लोक के ही अन्तर्गत हैं। इनके चाह से बुद्धि मलिन हो जाती है। सो कोई भी इन एषणाओ से नही बचा है। अतः सबकी बुद्धि मे मलिनता आ ही जाती है।

यह सब माया कर परिवारा। प्रबल अमित को बरनै पारा॥
सिव चतुरानन जाहि डेराही। अपर जीव केहि लेखे माँही॥४॥

अर्थ : यह सब माया का परिवार है। प्रबल है और असख्य है। इसका कौन

वर्णन कर सकता है। शिव और ब्रह्मा जिनसे डरते हैं दूसरे जीव किस गिनती मे हैं।

व्याख्या : अठारह जो बहुत प्रसिद्ध हैं उनका नाम गिना दिया पर ये गिने नही जा सकते। एक एक के असख्य भेद हैं और सब के सब बडे प्रबल हैं। जीते नही जा सकते। इन सबका वर्णन कौन कर सकता है। ये सब माया के बाल बच्चे हैं : तस्य हेतुरविद्या। सब पर प्रभाव डालकर माया के वश मे रखते हैं।

सबके बड़े शिव और ब्रह्मा हैं। ये ईश्वर कोटि मे हैं। फिर भी माया के परिवार से सदा सावधान रहते हैं। क्योंकि ये उन पर भी प्रभाव डालने मे समर्थ हैं। फिर जीवो की क्या गिनती है। यथा : माया बस्य जीव अभिमानी।

दो. ब्यापि रहेउ संसार महु, माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट, दंभ कपट पाखड ॥७१ क.
सो दासी रघुबीर कै, समुझे मिथ्या सोपि।
छूट न रामकृपा बिनु, नाथ कहौ पद रोपि ॥७१॥

अर्थ : माया की प्रचण्ड सेना ससार मे व्याप्त रही है। उनके सेनापति कामादि हैं और दम्भ कपट पाखण्ड आदि योद्धा हैं। वह रामजी की दासी है और वह भी विचार करने पर मिथ्या ही ठहरती है। वह बिना रामकृपा के छूट नही सकती। इस बात को मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ।

व्याख्या : यह माया की सेना किसी विशेष स्थल मे नही रहती। सम्पूर्ण ससार मे व्याप्त होकर स्थित है। और बलवती ऐसी है कि सबको वश मे किये हुए स्थित है। काम क्रोध और लोभ इसके सेनापति है। ये सेना का सञ्चालन करते हैं। दम्भ कपट पाखण्ड योद्धा हैं। ऐसी महाप्रभावा माया रामजी की दासी है। यथा : माया खलु नर्तकी बिचारी। और वह अविचार से सिद्ध है। विचार करने पर वह नही ठहरती। इसलिए उसे मिथ्या कहते है फिर भी उससे रक्षा नही। रामजी की कृपा हो तो छूटे अन्यथा इसका छूटना असम्भव है। भुसुण्डिजी प्रतिज्ञा करते हैं कि अन्य कोई उपाय इससे बचने का नही है।

जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा ॥
सोइ प्रभु भ्रूबिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा ॥१॥

अर्थ : जिस माया ने सम्पूर्ण ससार को नचाया और जिसके चरित्र को कोई लख नही पाया। वही सरकार के भौह के इशारे पर हे खगराज ! समाज के सहित नटी की भाँति नाचती है।

व्याख्या : जिसकी सेना ऐसी प्रबल जिसके सेनापति ऐसे प्रचण्ड। जो स्वय ऐसी प्रभावशालिनी कि सम्पूर्ण ससार को नचाया करती है। उसके चरित्र को कोई जान नही सकता। 'कैसा भी कोई पण्डित हो पर कही न कही उसे भ्रम रह

हो जाता है। यथा अज्ञान पुरतस्तेपा भाति वक्षासु कासु च। अत. मानना पडेगा कि उसके चरित्र को कोई लख नही पाता। एक दुष्ट अतिसय दु ख रूपा। जा वस जीव परा भव कूपा।

भुसुण्डिजी कहते हैं कि हे गरुडजी वह महा प्रभावा माया सरकार के भ्रूविलास से अपने समाज के साथ नटी की भाँति नाचती है। वह स्वय नटी सी हो जाती है और उसके योद्धा तथा सेनापति समाजी की भाँति उसके नाचने मे योग देते हैं। कहा है ' माया खलु नर्तकी त्रिचारी। माया स्वय असती है और मिथ्या भाव दिखाकर लोगो को ठगा करती है। यथा : लव निमेप महुँ भुवन निकाया। रचै जासु अनुसासन माया। श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी। बिरचेउ मगमहुँ नगर तेहि, सत जोजन बिस्तार। श्रीनिवास पुर ते अधिक रचना बिबिध प्रकार। तेहि पुर बसै सीलनिधि राजा। अगनित हयगय सेन समाजा। बिस्व मोहिनी तासु कुमारी। श्रीविमोह जिसु रूप निहारी। सोइ हरि माया सब गुन खानी। सोभा तासु कि जाइ बखानी। करै स्वयबर सो नृप बाला। आये तहँ अगनित महिपाला। इत्यादि जिस पर सरकार सानुकूल हो जाते हैं। उससे माया अत्यन्त डरा करती है। यथा भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया।

सोइ सच्चिदानद घन रामा। अज बिज्ञान रूप बल धामा॥
ब्यापक ब्याप्य अखड अनता। अखिल अमोघ सक्ति भगवता॥२॥

अर्थ : रामजी वही सच्चिानन्दघन हैं। अज हैं। विज्ञानरूप हैं और बलधाम हैं। वही व्यापक हैं। वही व्याप्य हैं। वही अखण्ड हैं। अनन्त हैं। पूर्ण हैं। अमोघ शक्ति हैं।

व्याख्या जीवकी मायापरतन्त्रता तथा माया की ईश्वरपरतन्त्रता वर्णन करके अब कहते है कि वही मायी राम हैं। उनके ऊपर माया का काई प्रभाव नही पड सकता। इसी बात को दिखलाने के लिए उनका यथार्थ रूप वर्णन करते हैं। माया तो असत् जड दु खरूपा है और रामजी सत् चित् आनन्द घनरूप है। घन कहने का भाव यह कि माया के प्रवेश के लिए सूक्ष्मातिसूक्ष्म छिद्र भी नही है अथवा रामजी सच्चिदानन्द दिनेश हैं। उनके सम्मुख मोह तम जा नही सकता। रामजी अजन्मा है। उनका जन्म होता ही नही। हुआ भी नही। उनके जन्म कर्म दिव्य है। उनकी योगमाया द्वारा जन्म हुआ सा प्रतीत होता है। वे विज्ञानरूप हैं। अज्ञान की वहाँ पहुँच कहाँ ? वे बलधाम है। उन्ही से बल पाकर माया ससार की सृष्टि करती है। उनसे पृथक् माया कुछ ठहरती ही नही। उन पर प्रभाव क्या डालगी ? वही व्यापक है और वही व्याप्य है। वे सर्वरूप हैं। अन्य भी उनसे पृथक् काई वस्तु नही है। वे निरश होते हुए भी अनन्त हैं। बन्ध ता परिच्छिन्न पदाथ का होता है। वे पूर्ण हैं। अमोघ शक्ति रूप है। उनस पृथक् जो कुछ है सब माघ है :

व्यर्थ है। वे ही भगवान् हैं, समस्त ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य के अक्षय भण्डार हैं।

अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सब दरसी अनवद्य अजीता ॥
निर्मम निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा ॥३॥

अर्थ : निर्गुण, अनल्प, वाणी और इन्द्रियों से परे, सर्वद्रष्टा, दोषरहित, अजित, निर्मल, निराकार, मोहरहित, नित्य निर्लेप और सुखराशि हैं।

व्याख्या : वे गुणत्रय सत्त्व रज तम से परे हैं। ब्रह्म हैं, सम्पूर्ण हैं। अतः : न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाक् गच्छति नो मनः। वहाँ मन वाणी की गति नहीं है। वे सबके देखनेवाले हैं। अतः वे जाने नहीं जा सकते। यथा : विज्ञातार वा अरे केन विजानीयात्। सदा ब्रह्म की ही जय है। क्योंकि वही उत्कृष्ट है। अतः वे अजित हैं। निर्मल भी वही हैं। उनमे विजातीय द्रव्य का प्रवेश नहीं है। अपरिच्छिन्न होने से वे आकाश की भाँति निराकार हैं। अतः उन तक मोह की गति नहीं है। विकलता तो मोह से होती है। वे तो नित्यनिर्लेप है और सुख को राशि हैं।

प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह विरज अविनासी ॥
इहाँ मोह कर कारन नांही। रवि सनमुख तम कबहुँक कि जाँही ॥४॥

अर्थ : प्रभु प्रकृति से परे हैं। सबके उर मे वास करनेवाले हैं। ब्रह्म है। चेष्टा रहित हैं। रज रहित तथा नाश रहित हैं। यहाँ मोह का कारण नहीं है। क्या सूर्य के सामने कभी अन्धकार जा सकता है ?

व्याख्या : सत्त्व रज और तम की साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं। यही सृष्टि का मूल है। परन्तु सरकार तो इससे भी परे हैं। फिर भी सभी का हृदयदेश उनके आविर्भाव का स्थान है। यथा : ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। वही ब्रह्म हैं। वही निरीह हैं। क्योंकि चेष्टा तो परिच्छिन्न पदार्थ मे होती है। वे ही दु:ख से रहित अविनाशी हैं। शेष सब कुछ विनाशी है।

मोह का कारण है अभिमान। यथा : संसृति मूल सूल प्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना। राम ब्रह्म में अभिमान ही नहीं है। अहमिति अभिमान जीव का धर्म है। अभिमान अन्धकार है। यथा : त्यागहु तम अभिमान। यह राम सच्चिदानन्द दिनेश के सामने जा नहीं सकता। अतः कहते हैं कि यहाँ मोह का कारण नहीं है। और सब जगह मोह का कारण : अभिमान है। अतः वहाँ मोह का प्रभाव चल सकता है।

दो. भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप ॥७२ क.
जथा अनेक वेष धरि, नृत्य करै नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावै, आपु न होइ न सोइ ॥७२॥

अर्थ भक्तो के लिए भगवान् प्रभु रामजी ने राजा का रूप धारण किया और साधारण मनुष्यो के अनुरूप परम पावन चरित्र किये। जिस भाँति कोई नट अनेक वेप धर कर अभिनय करता है और जैसा वैसा दिखलता है। पर आप वैसा नहीं हो जाता।

व्याख्या सरकार ने भूपरूप भक्त के लिए धारण किया। भाव यह कि जीवो की भाँति कर्म के परतन्त्र होकर देह नही धारण किया। जन्म ग्रहण करने म उनको स्वतन्त्रता है। उन्होने अपने भक्ता पर अनुग्रह करने के लिए देह धारण किया और प्राकृत नरो की भाँति चरित्र किया। पर वे परम पावन थे। भक्त नारद ने शाप दिया बचेउ मोहि जवन धरि देहा। सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा। मम अपकार कीन्ह तुम भारी। नारि बिरह तुम होब दुखारी। अत तदनुसार देह धारण करके नारी विरह मे दु खारी होने का अभिनय किया।

नट अनेक वेप धारण करके नृत्य करता है। जिस समय जैसा वेप धारण करता है उस समय वैसा ही अभिनय करता है। पर जैसा वह अभिनय करता है वैसा वह नही हो जाता। इसीलिए यहाँ पर उस प्रभु की उपमा नट से दी गयी है। वह अनेक अवतार धारण करता है। यथा मीन कमठ सूकर नर हरी। बामन परसुराम बपुधरी। जिस समय जैसा वेप धारण करता है वैसा ही अभिनय करता है। रामावतार मे तो एक ही समय दो वेप धारण करके एकदम एक दूसरे से विरुद्ध भाव के अभिनय का उदाहरण राम परशुराम सम्वाद म पाया जाता है। ऐसे सभी प्रकार के अभिनय उसकी लीला है। इसी भाँति युद्ध के अभिनय मे शत्रु के हाथ बँध जाना और तदनुकूल विकलता प्रदर्शन लीलामात्र है। वस्तुत विकलता से उस समय भी उनका कोई सम्बन्ध नही था। क्योकि व तो सहज आनन्द के निधान हैं।

असि रघुपति लीला उरगारी। दनुज बिमोहनि जन सुखकारी॥
जे मति मलिन विपय वस कामी। प्रभु पर मोह धरहिं इमि स्वामी॥१॥

अर्थ हे गरुडजी! रामजी की ऐसी लीला है कि वह दानवा को मोह डालती है और भक्ता का कल्याण करती है। जो मलिन बुद्धिवाले विपयवश्य कामी हैं हे स्वामी! वे प्रभु पर इस प्रकार से मोह का आरोप करते हैं।

व्याख्या रघुपति स श्री रामावतार कहा। सरकार का प्राकृत नर के अनुरूप चरित्र करना वैसा ही भाव दिखलाना और स्वय वैसा न होना लीला है। यथा उमा राम गुन गूढ पडित मुनि पावहि बिरति। पावहिं मोह विमूढ जे हरि बिमुख न धर्म रति। रघुपति की लीला ऐसी ही गूढ है कि आसुरी सम्पत्तिवालो का उससे मोह होता है और जो भगवान् के भक्त है दैवी सम्पत्तिवाले हैं उन्हे सुख होता है।

कारण कहते हैं कि आसुरी सम्पत्तिवाले विपयवश कामी होते हैं। उनकी बुद्धि मलिन होती है। उस बुद्धि मालिन्य के तीन भेद है १ बुद्धि मान्द्य २ कुतर्क और ३ विपर्यय दुराग्रह। इन्ही कारणो से मनुष्य विमूढ हो जाता है। भगवान् की

लीला मे उसे मोह होता है। अर्थात् वर्तमान ज्ञान के चार प्रतिबन्ध कहे : १ विषयासक्ति २ बुद्धिमान्द्य ३ कुतर्क और ४ विपर्यय दुराग्रह। इनमे से विषयासक्ति ही सबका मूल है।

नयन दोष जाकहु जब होई। पीत बरन ससि कहुँ कह सोई ॥
जब जेहि दिसि भ्रम होइ खगेसा। सो कह पच्छिम उएउ दिनेसा ॥२॥

अर्थ : जब जिनकी आँखो मे दोष होता है तो वह कहता है कि चन्द्रमा का रग पीला है और जब जिसको दिग् भ्रम होता है तो हे गरुडजी! वह कहता है कि सूर्य पश्चिम मे उदय हुए हैं।

व्याख्या विषयासक्त स्वय विषय मे लगा हुआ है। सरकार की प्राकृत नर अनुरूप लीला को देखकर उन्हे अपनी भाँति विषयासक्त मान बैठता है। उसमे इतनी घोर आसक्ति है कि वह उनकी लीला पर अभिनय की दृष्टि कर नही सकता। उदाहरण देते हैं कि काच कामलादि दोषवाले को पित्त के दोष से चन्द्र पीले मालूम पडते हैं। चन्द्र श्वेत हैं। दोष उसकी दृष्टि मे हैं जिसके कारण से वह चन्द्र को पीला देख रहा है। इसी भाँति विषयासक्त पुरुष लोकसग्रही पूर्ण ज्ञानी के कर्मों को आसक्तिरहित नही मान सकता।

बुद्धिमान्द्यवालो की उपमा दिग्भ्रमवालो से दी गयी है। यह दिग्भ्रम बुद्धिमान्द्य से कभी हो जाता है तो उसे मालूम पडता है कि सूर्य पश्चिम दिशा से उदय हो रहे हैं। वह स्वय जानता है कि सूर्य जब उदय होगे तब पूर्व से ही होगे। लोग भी उसकी मूढता पर हँस रहे हैं। पर वह अपने अनुभव को क्या करे उसे वैसा ही मालूम हो रहा है। इसी भाँति मन्दबुद्धि सरकार की लीला का उलटा अर्थ लगाता है। वे तो कामियो की दीनता का अभिनय करते हैं। पर वह समझता है कि इन्हे स्त्री विरह का पार नही मिल रहा है।

नौकारूढ चलत जग देखा। अचल मोह बस आपुहि लेखा ॥
बालक भ्रमहि न भ्रमहि गृहादी। कहहिं परसपर मिथ्या बादी ॥३॥

अर्थ : नाव पर सवार ससार को नो चलता हुआ देखता है और अज्ञान वश अपने को निश्चल समझता है। बालक नही घूमते घर आदि ही घूम रहे हैं ऐसी बातें झूठे आपस मे कहा करते हैं।

व्याख्या : जो कोई नाव पर सवार होता है उसे संसार चलता हुआ दिखायी पडता है और स्वय स्थिरता का अनुभव करता है। फिर भी वही अपने अनुभव को सत्य नही मानता। उसे वह भ्रम समझता है। परन्तु कुतर्की कहते हैं कि प्रत्यक्ष ही सब प्रमाणो मे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है। प्रत्यक्ष पूर्वक ही अनुमानादि की प्रवृत्ति होती है। अत किसी अवस्था मे प्रत्यक्ष का अवहेलन नही किया जा सकता। हम लोग हाथ पैर बिना हिलाये हुए बैठे हैं और प्रत्यक्ष देखते हैं कि ससार चलता है। इसे अप्रमाण कैसे माना जा सकता है। इसी भाँति प्रत्यक्ष नागपाश मे बँधे हुए

रामजी को वे नित्यमुक्त नही मान सक्ते। यथा ' खेद खिन्न मन तर्क बढाई। भयउ मोह बस तुम्हरिहि नाई। खर्व निसाचर बाँधेउ नाग पास सोई राम।

विपर्यय दुराग्रहवाले तो नाहक झगडा खडा करते हैं। स्वय जानते हैं कि बात ऐसी नही है। फिर भी दुराग्रह वश वही गीत गाये जाते हैं। लडके घुमरी खेलते हैं तो गृह वृक्षादि जो उनके एक ओर थे दूसरी ओर हो जाते हैं। तो विपर्यय दुराग्रही कहते हैं कि लडके नही घूम रहे हैं। गृह आदिक ही घूम रहे हैं। वे मिथ्यावादी हैं। उन्हे मिथ्या प्रिय है। अत परस्पर ऐसी ही बातें करते हैं। वे प्रमाण मे उन लडको को देंगे जो घुमरी खेल रहे थे। उन्हे तो स्पष्ट ही गृह आदिक घूमता प्रतीत होता है। इसी भाँति बातें बनाया करते हैं मिथ्या माहुर सज्जनहि खलहि गरल सम साँच। यथा ' तेहि रावन कहँ लघु कहसि नर कर करसि बखान। रे कपि बर्बर खर्ब खल अब जाना तव ज्ञान।

हरि बिषइक अस मोह बिहगा। सपनेहु नहि अग्यान प्रसगा॥
माया बस मतिमंद अभागी। हृदय जवनिका बहु बिधि लागी॥४॥
ते सठ हठबस ससय करही। निज अग्यान राम पर धरही॥५॥

अर्थ . हे गरुडजी ! हरि विषयक ऐसा ही मोह होता है। वहाँ तो स्वप्न मे भी अज्ञान का प्रसङ्ग नही है। माया के वश मतिमन्द अभागी लोग जिनके हृदय पर अनेक प्रकार से पर्दा पडा हुआ है वे ही शठ हठ के वश होकर सशय करते हैं और अपने अज्ञान का आरोप रामजी पर करते हैं।

व्याख्या : हरि विषयक मोह भी वैसा ही है। जैसा कि काच कामलादि दोषवाले को, दिग्भ्रमवाले को, नौकारूढ को तथा विपर्यय दुराग्रही को होता है। रामजी मे तो मोह का कोई प्रसग ही नही है। यथा . राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहि तहँ मोह निसा लवलेसा। यदि स्वप्न मे भी ऐसा प्रसग आपडे तो समझना चाहिए कि वह स्वप्न हरिविषयक था ही नही।

जो भवभजन पदविमुख अभागी हैं वे माया के वश मे पडे हुए हैं। मतिमन्द हैं। उनके हृदय मे अनेक प्रकार के आवरण पडे हुए हैं। उन्हे रामरूप का ज्ञान नही हो सकता। अज्ञानेनावृत ज्ञान तेन मुह्यन्ति जन्तव। वे अपने सशय के दूर करने का प्रयत्न नही करते। यत्नपूर्वक उस सशय को बनाये रखते हैं। अत उन्हे शठ कहा। शठ को अपने हृदय मे अपने पक्ष का बहुत बडा आग्रह होता है। उसे वह छोडना नही चाहता। वह अपने अज्ञान का आरोप राम पर करता है। जिस भाँति स्वय अज्ञानी होकर दु ख भोगता है उसी भाँति रामजी को भी जानता है।

दो काम क्रोध मद लोभ रत, गृहासक्त दुख रूप।
ते किमि जानहि रघुपतिहि, मूढ परे तम कूप॥७३ क.
निर्गुन रूप सुलभ अति, सगुन जानि नहि कोइ।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥७३॥

अर्थ जो काम क्रोध मद और लोभ मे लगे हुए हैं। घर मे लिप्त हैं। दु ख के रूप हैं। वे रघुपति को कैसे जानेंगे। वे मूढ तो अन्धकार के कुएँ मे पडे हुए है। निर्गुण रूप अत्यन्त सुलभ है। सगुण को ही कोई नही जानता। सगुण चरित्र ऐसे सुगम और अगम है कि उन्हे सुनकर मुनि के भी मन मे भ्रम होता है।

व्याख्या काम क्रोध मद और लोभ तो चारो नरक के पन्थ हैं। सो जो उस रास्ते पर लगे हुए हैं वे गृह मे लिप्त रहते हैं। उन्हे ससाररूपी कूप के मण्डूक समझना चाहिए। वह प्रकृति पार पुरुष को जान नही सकते।

प्रकृति पार पुरुष को जानना अत्यन्त सुलभ है। क्योकि उसमे कुछ करना धरना नही है। केवल चुप होकर बैठ जाने से वह जाना जाता है। यथा सद्वस्तु शुद्ध त्वस्माभिर्निश्चितैरनुभूयते। तूष्णी स्थितौ न शून्यत्व शून्यबुद्धेश्च वर्जनात्। पञ्चदशी। अत उसे अत्यन्त सुलभ कहा। परन्तु सगुण ब्रह्म को कोई नही जानता। वह तो मायी है। बिना माया को जाने वह जाना नही जा सकता और माया सत्त्वासत्त्व से अनिर्वचनीया है। उसे कोई कैसे जान सकता है। अत उन मायी का चरित्र ऐसा है कि समझ मे ही नही आता। यथा कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि। चित खगेस अस राम कर समुझि परै कहु काहि।

राम रहस्य उमा के ग्यारहवे प्रश्न का उत्तर

सुनु खगेस रघुपति प्रभुताई। कहौ जथामति कथा सुहाई ॥
जेहि बिधि मोह भयउ प्रभु मोही। सोउ सब कथा सुनावौ तोही ॥१॥

अर्थ हे पक्षिराट्। रघुपति की प्रभुता सुनिये। मैं बुद्धि के अनुसार सुन्दर कथा कहता हूँ। हे प्रभो! जिस प्रकार मुझे मोह हुआ है वह सब कथा तुम्हे सुनाता हूँ।

व्याख्या ऊपर कह आये हैं अस रघुपति लीला उरगारी। दनुज बिमोहनि जन सुखकारी। सो दनुज बिमोहनि का निरूपण करके अब सुखकारित्व दिखलाते हैं। सरकार की प्रभुता का वर्णन करते हैं। उसका वर्णन यथामति ही हो सकता है। कहते हैं कि यह न समझना कि मुझ ही को मोह हुआ। नही मुझे भी मोह हुआ था। मैं भी उससे बचा नही हूँ। उसके सुनाने मे सरकार की प्रभुता का वर्णन है। यह तुम्हारे ऐसे पात्र से ही कहा जा सकता है।

रामकृपा भाजन तुम ताता। हरिगुन प्रीति मोहि सुखदाता ॥
ताते नहि कछु तुमहि दुरावौ। परम रहस्य मनोहर गावौ ॥२॥

अर्थ हे तात! तुम रामजी के कृपापात्र हो। तुम्हे हरि के गुणो पर प्रीति है। मुझे सुख देनेवाले हो। इसलिए तुम से कुछ छिपाता नही। मनोहर परम रहस्य का वर्णन कर रहा हूँ।

व्याख्या रहस्य सबसे नही कहा जाता। मैं जो इस समय वर्णन करूँगा वह रहस्य ही नहीं परम रहस्य है। अत्यन्त गोप्य है। परन्तु आप से छिपाया नही

जा सकता। क्योंकि आपमे उसके जानने की पात्रता है। रहस्य जानने के वे ही पात्र हैं जिन पर भगवत्कृपा हो। आप पर भगवत्कृपा है। क्योंकि आप रघुनायक के प्रिय दास हैं। जिन्हे सरकार के गुणगण प्रिय लगें उनसे भी रहस्य नही छिपाया जाता। यथा श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरिदास। पाइ उमा अतिगोप्यमपि सज्जन करहि प्रकास। तीसरी बात यह है कि जो अपने को सुख दे उससे भी रहस्य नही छिपाया जाता। आपने मेरे यहाँ आकर मुझ पर दया की। मुझे सन्तसग का सुख हुआ। अत आप से रहस्य नही छिपाया जा सकता।

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ। जन अभिमान न राखहि काऊ॥
ससृत मूल सूल प्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना॥३॥

अर्थ रामजी का सहज स्वभाव सुनो। वे भक्त का अभिमान कभी रहने नही देते। अभिमान ससार का मूल है और नाना प्रकार के शूल का देनेवाला है। सभी शोको का भी देनेवाला है।

व्याख्या भुसुण्डिजी रामजी का स्वभाव जानते हैं क्योंकि उन्हे रामभजन छोडकर दूसरी बात अच्छी नही लगती। यथा तजि हरिभजन काज नही दूजा। शिवजी ने उमा से कहा उमा राम सुभाव जेहि जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना। अत यह सिद्ध है कि भुसुण्डिजी रामजी के स्वभाव के जानकार हैं। अत भुसुण्डिजी जैसा रामजी का स्वभाव बतलावें वही ठीक है नही तो राम के स्वभाव को पहिचानना बडा कठिन कार्य है। सो भुसुण्डिजी रामजी का स्वभाव गरुडजी को बतलाते हैं कि वे भक्त के अभिमान को तो कभी रहने ही नही देते। यथा करुनानिधि मन दीख बिचारी। उर अकुरेउ गर्ब तरु भारी। बेगि सो मैं डारिहौं उखारी। पन हमार सेवक हितकारी। भक्त के हित के लिए उसका अभिमान भङ्ग करते हैं। क्याकि अभिमान से बडा अनिष्ट होता है। अभिमान ही ससार का मूल है। इसी के कारण अनेक प्रकार के शूल होते हैं। अनेक प्रकार का शोक होता है।

ताते करहि कृपानिधि दूरी। सेवक पर ममता अतिभूरी॥
जिमि सिसु तन ब्रन होइ गोसाईं। मातु चिराव कठिन की नाईं॥४॥

अर्थ इसलिए कृपानिधि उसे दूर करते हैं। उन्हे सेवक पर बडी कृपा है। जैसे बच्चे के शरीर म फोडा हो जाय तो माता उसको कठिन चित्त करके चिरवा देती है।

व्याख्या सरकार भक्त का मङ्गल चाहते हैं। उसे शूल तथा शोक से बचाना चाहते हैं। अत उसके अभिमान को भङ्ग कर देते हैं। मान भङ्ग से बडा दुख होता है। पर उस दुख को सरकार नही गिनते। उसके भविष्य के सुख पर उनकी दृष्टि रहती है। मान भङ्ग होने से भक्त दुखी होता है। रो पडता है। अधीर हो जाता है। पर जब तक उसका अभिमान निर्मूल न हो जाय तब तक सरकार निष्ठुर होकर उसमे से अभिमान के लश को भी बिना निकाल नही छोडते। वह निष्ठुरता नही है

परम कृपा है। जैसे छोटे बच्चे को फोडा होने पर माँ छाती कडा करके उसपर छुरा चलवाती है। नही तो उस बच्चे के एक रक्तबिन्दु के लिए वह अपना जीवन निछावर कर देती। परन्तु उस समय बच्चे के रोने धोने को और उसके धैर्य त्याग का कुछ भी ध्यान नही करती। बच्चा यदि प्रौढ हो जाय तो उसका फोडा नही चिरवाती। जानती है कि यह समझदार हो गया। अपना फोडा स्वय चिरवा लेगा।

दो. जदपि प्रथम दुख पावै, रोवै बाल अधीर।
व्याधि नास हित जननी, गनति न सो सिसु पीर ॥७४ क.

तिमि रघुपति निज दासकर, हरहिं मान हित लागि।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहिं, कस न भजहु भ्रम त्यागि ॥७४॥

अर्थ : यद्यपि पहिले दु ख पाता है और अधीर होकर बच्चा रोता है। परन्तु व्याधि के नाश के लिए माँ उसके दु ख को गिनती नही। इसी भाँति रामजी अपने दास के मान को उसके हित के लिए हरण करते हैं। तुलसीदास ऐसे प्रभु को भ्रम छोडकर क्यो नही भजता।

व्याख्या : जिस भाँति फोडा होने से वेदना होती है और वह बढ़ती ही जाती है। यदि वह फोडा न चीरा जाय तो घातक सिद्ध होता है और कई फोडे तो ऐसे विषैले होते हैं कि उन्हे पैदा होते ही चीर देना चाहिए। माता यह समझती है छोटा बच्चा उसे नही समझता। वह नही चाहता उसके फोडेको कोई स्पर्श करे। परन्तु माता बलपूर्वक उसके फोडे को चिरवाती है। बच्चे के रोने धोने पर कुछ भी ध्यान नही देती। उस समय की उसकी कठोरता वस्तुत कृपालुता है। ईसी भाँति परमेश्वर अपने भक्त के अभिमान का छेदन करते हैं। तब उसे बडा कष्ट होता है। वह बहुत दु खी होता है। विलाप करता है। परन्तु प्रभु कठोर होकर उसका अभिमान छेदन कर देते हैं। वह कठोरता नही है दयालुता है। गोस्वामीजी कहते हैं कि ऐसे माता के समान प्रेम करनेवाले प्रभु को तू भ्रम छोडकर क्यों नही भजता ? जब कष्ट आवे तो समझना चाहिए कि परमेश्वर की ओर से उसके भले के लिए कष्ट आया हुआ है और उसे उनकी कृपा समझकर सहन करे और भजन मे अधिक दत्तचित्त हो।

रामकृपा आपनि जडताई। कहौ खगेस सुनहु मन लाई ॥
जब जब राम मनुज तनु धरही। भक्त हेतु लीला बहु करही ॥१॥

अर्थ हे पक्षिराट्! मैं रामजी की कृपा और अपनी जडता का हाल कहता हूँ। मन लगाकर सुनिये। जब जब रामजी मनुष्य शरीर धारण करते हैं और भक्तों के लिए बहुत सी लीला करते हैं।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि रामजी की कृपा और अपनी जडताई अर्थात् मोह का वर्णन करता हूँ। सरकार जडता पर क्रोध नहीं करते। कृपा करते हैं।

रामजी की कृपा की महत्ता तो मेरी जडता सुनने पर ही मालूम पडेगी। अत मेरी जडता भी रामकृपा के सम्बन्ध से एकाग्रचित्त द्वारा सुनने योग्य है।

रामजी अनेक शरीर धारण करते हैं। कभी मीन का कभी कमठ का कभी शूकरादि का भी शरीर धारण करते हैं। परन्तु जब मनुजशरीर धारण करते हैं तब भक्त के लिए अनेक लीला करते हैं। भाव यह कि सभी अवतार भक्त के लिए ही होते हैं। परन्तु मीन कमठादि अवतार म बहुत लीला नही होती। बहुत सी लीलाओ का समावेश मनुष्य अवतार मे ही सम्भव है। सरकार की जितनी चेष्टाएँ होती हैं सब भक्तों के लिए होती हैं। अपना कोई प्रयोजन नही रहता। क्योकि रामजी पूर्णकाम हैं।

तब तब अवध पुरी मैं जाऊँ। बाल चरित बिलोकि हरषाऊँ॥
जनम महोत्सव देखौं जाई। बर्ष पाँच तहँ रहउ लुभाई॥२॥

अर्थ तब तब मैं अवधपुरी जाता हूँ और बालचरित्र देखकर हर्षित होता हूँ। वहाँ जाकर जन्म महोत्सव देखता हूँ और पाँच वर्ष तक वही लुभाया हुआ रह जाता हूँ।

व्याख्या नरलीला तो सरकार की वामन परशुरामादि अवतारो मे भी होती है पर मैं नही जाता। मैं तो तब जाता हूँ जब अवधपुरी मे अवतार होता है। अर्थात् श्रीरामावतार का बालचरित्र देखने जाता हूँ। उस चरित्र को देखकर मुझे बडा हर्ष होता है। अन्य अवतारो के बालचरित्र मे उतना आनन्द कहाँ। चक्रवर्ती के राजकुमार म जितना बालचरित्र का अवकाश है उतना अन्य बालको के चरित्र मे नही होता।

जन्म महोत्सव के समय ही मैं पहुँच जाता हूँ। यथा कागभुसुडि संग हम दोऊ। मनुज रूप जानै नहि कोऊ। परमानद प्रेम सुख फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले। भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैं शङ्करजी के चले आने पर भी पाँच वर्ष वहीं ठहर जाता हूँ। मैं ऐसा लुब्ध हो जाता हूँ कि वे चरण मुझसे छूटते ही नही।

श्रीरामावतार कल्प में एक ही बार होता है। उसे देखने भुसुण्डिजी बराबर जाया करते है। जैसे लोग हर साल रामलीला देखने जाया करते हैं।

इष्ट देव मम बालक रामा। सोभा बपुष कोटिसत कामा॥
निज प्रभु बदन निहारि निहारी। लोचन सुफल करौं उरगारी॥३॥
लघुबायस बपु धरि हरि संगा। देखौं बाल चरित बहुरंगा॥४॥

अर्थ मेरे इष्टदेव बालमुकुन्द हैं। जिनके शरीर मे सौ करोड कामदेव की शोभा है। हे गरुडजी! मैं अपने प्रभु का वदन देख देखकर अपनी आँखो को सफल किया करता हूँ। छोटे कौए का रूप बनाकर हरि के साथ साथ उनके बहुरंगी चरित्र को देखा करता हूँ।

व्याख्या · भुसुण्डिजी कहते हैं कि बालक राम ही मेरे इष्टदेव हैं। क्योंकि गुरुजी से उन्ही की उपासना मुझे मिली थी। यथा 'बालक रूप राम कर ध्याना। कहेउ मोहि मुनि कृपानिधाना। अत पाँच वर्ष तक मैं अपने इष्टमूर्तिका दर्शन करता रहा। बालरूप मे जो शोभा रहती है बडे होने पर वह बात नही रह जाती। अत पाँच वर्ष तक ही मैं रहता हूँ। सरकार का सौन्दर्य सौ करोड कामदेव से भी कही बढकर है। पाँच वर्ष तक उसी शोभा को देखता हूँ और नेत्रो को सुफल करता हूँ। मैं भी अपना रूप छोटे काग सा बना लेता हूँ जहाँ जहाँ सरकार जाते हैं वहाँ वहाँ मैं भी पहुँच जाता हूँ और बहुरङ्गा बालचरित्र देखता हूँ। यथा ·

कबहूँ ससि माँगत आरि करैं कबहुँ प्रतिबिम्ब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ के नाचत मातु सबै मन मोद भरैं॥
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठिके पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मंदिर मे बिहरैं॥

दो० लरिकाई जहँ जहँ फिरहिं, तहँ तहँ संग उडाउँ।
जूठन परै अजिर महुँ, सो उठाइ कर खाउँ॥७५ क॥
एक बार अति सै सब, चरित किये रघुबीर।
सुमिरत प्रभु लीला सोइ, पुलकित भयउ सरीर॥७५॥

अर्थ बचपन में जहाँ जहाँ फिरते हैं वहाँ वहाँ मैं भी साथ साथ उडता जाता हूँ। आँगन मे जो जूठा गिरता है उसे उठाकर खा जाता हूँ। एक बार रघुबीर ने सभी चरित्र अत्यन्त अधिकता से किया। अथवा शिशु चरित्र अति अधिकता से किया। प्रभु की वह लीला स्मरण करके भुसुण्डिजी का शरीर पुलकित हो उठा।

व्याख्या · बचपन मे स्थिरता कहाँ ? बच्चे फिरा ही करते हैं। नीचे वे घूमते फिरते थे ऊपर ऊपर मैं उडता था। जिसमे मुख का सामना बना रहे। यथा · निज प्रभु बदन निहारि निहारी। लोचन सुफल करौं उरगारी। घूम घूमकर खाना लडकपन मे ही होता है। अत आँगन मे जूठन गिरता था उसी को मै चुगकर खाता था। यज्ञोच्छिष्ट ग्रहण की बडी महिमा है और यह तो साक्षात् यज्ञपुरुष का उच्छिष्ट था।

अति सैसव पाठ मानने से यह अर्थ करना पडेगा कि बचपन की लीला मे अत्यन्त अधिकता हुई और अति सय सब पाठ मानने से यह अर्थ करना होगा कि सभी लीला मे अतिशयता हुई। श्रीवल्लभसम्प्रदाय भी एक रामावतार को पूर्णावतार मानता है। श्रीगोस्वामीजी भी एक रामावतार को ब्रह्म का अवतार मानते हैं। अत उसी अवतार मे लीला की अतिशयता कही जा सकती है। उसी का वर्णन यहाँ भुसुण्डिजी कर रहे हैं। वह लीला ऐसी हुई कि उसके स्मरण से भुसुण्डिजी को पुलक हो गया।

कहै भुसुण्डि सुनहु खगनायक। रामचरित सेवक सुखदायक॥
नृप मंदिर सुन्दर सब भाँती। खचित कनक मनि नाना जाती॥१॥

अर्थ : भुसुण्डिजी कहने लगे कि हे पक्षिराट् ! सुनो। रामजी का चरित सेवक को सुख देनेवाला है। राजा का घर सब प्रकार से सुन्दर है। सोने के भवन बने हुए हैं। उनमें अनेक जाति की मणियाँ लगी हुई हैं।

व्याख्या : प्रभु की लीला का स्मरण करते ही भुसुण्डिजी आनन्द में मग्न हो गये। तत्पश्चात् गरुड़जी को सम्बोधन करके कहने लगे कि रामजी का चरित्र सेवक के सुख देने के लिए हैं। जो जो चरित्र करते हैं सो सब सेवक के सुख के लिए करते हैं। यथा :

राज मराल बिराजत बिहरत जे हर हृदय तड़ाग।
ते नृप अजिर जानु कर धावत धरन चटक चल काग॥
सिद्ध सिहात सराहत मुनिगन कहँ सुर किन्नर नाग।
ह्वै वरु बिहँग बिलोकिय बालक बसि पुर उपबन बाग॥
परिजन सहित राय रानिन्ह कियो मज्जन प्रेम प्रयाग।
तुलसी फल ताके चारो मनि मरकत पंकज राग॥ गीता०

अयोध्या में सभी मन्दिर सुन्दर हैं परन्तु महाराज का भवन सब भाँति सुन्दर है। सोने में अनेक प्रकार के मणि जड़े हुए हैं। बैकुण्ठ की भाँति है। मानो उसे ब्रह्मदेव ने लक्ष्मीजी के विलास के लिए सँवार कर बनाया है। यथा : हाटक मनि रत्न खचित रचित इन्द्र मंदिराभ इंदिरा निवास सदन विधि रच्यो सँवारी।

बरनि न जाइ रुचिर अंगनाई। जहँ खेलहिं नित चारिउ भाई॥
बाल बिनोद करत रघुराई। बिचरत अजिर जननि सुखदाई॥२॥

अर्थ : सुन्दर आँगन का वर्णन नहीं किया जा सकता जहाँ नित्य चारों भाई खेलते थे। बाल क्रीड़ा करते हुए रामजी आँगन में विचरते थे। जिससे माताओं को सुख होता था।

व्याख्या : कवि कहते हैं कि भवन का वर्णन किया। पर आँगन का वर्णन करते नहीं बनता। यह चारो भाइयों के खेलने के लिए सजाया गया है। चारो भाई तीनों महारानियों के महलों से आकर नित्य यहीं खेलते हैं। सरकार का बाल विनोद माताओं के सुख के लिए है। सखी कहती हैं :

नेकु बिलोकु री रघुवरनि।
चारि फल त्रिपुरारि तोको दियो कर नृपघरनि॥
बाल भूषन बसन तन सुंदर रुचिर रज भरनि।
परसपर खेलनि अजिर उठि चलनि गिरि गिरिपरनि॥
झुकनि झाँकनि छाँह सो किलकनि नटनि हठि लरनि।
तोतरी बोलनि बिलोकनि मोहनी मन हरनि॥
सखि बचन सुनि कौसिला लखि सुढर पासे ढरनि।
लेति भरि भरि अंक सैंतति पैंत जनु दुहु करनि॥

चरित निरखत विबुध तुलसी ओट दे जल धरनि।
चहत सुर सुरपति भयो सुरपति भयो चहै तरनि ॥

मरकत मृदुल कलेवर स्यामा। अंग अंग प्रति छबि बहु कामा ॥
नव राजीव अरुन मृदु चरना। पदज रुचिर नख ससि दुति हरना ॥३॥

अर्थ : नीलमणि की भाँति श्यामल शरीर कोमल था। अङ्ग अङ्ग में अनेक कामदेवों की छवि थी। नये कमल से लाल और कोमल चरण थे। उँगलियाँ सुन्दर थी और नख चन्द्र की द्युति को हरण करते थे।

व्याख्या : शरीर की उपमा नीलमणि से देते हैं परन्तु वह मृदुल नहीं है। शरीर तो मृदुल भी है। पहिले कहा था : सोभा वपुष कोटि सत कामा। इसलिए एक एक अङ्ग पर अनेक काम की छवि बतला रहे हैं। यहाँ नखशिख वर्णन है। मनु शतरूपा के प्रसंग में कह आये हैं : नील सरोरुह नीलमनि नील नीर धर स्याम। यहाँ केवल नीलमणि से उपमा दिया। सरोरुह और नीरधर से उपमा बालकाण्ड में दे आये हैं। यथा : काम कोटि छवि धाम सरीरा। नीलकंज बारिद गंभीरा।

चरणों की उपमा कमल से दी। परन्तु उसमें इतनी मृदुता और अरुणिमा कहाँ ? जिनकी हाथों से सेवा करते स्वयं जनकनन्दनी के कर कमल कड़े मालूम होते थे। यथा : गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद पद्भ्यां प्रियायाः पाणिस्पर्शाक्षिमाभ्याम्। इत्यादि तथा : बसी मानहु चरन कमलनि अरुनता तजि तरनि। सुन्दर उँगलियाँ और नखों की शोभा चन्द्र की द्युति को हरण करनेवाली हैं। इसी से भक्तों के हृदय का अन्धकार दूर होगा।

ललित अंक कुलिसादिक चारी। नूपुर चारु मधुर रवकारी ॥
चारु पुरट मनि रचित बनाई। कटि किंकिनि कल मुखर सुहाई ॥४॥

अर्थ : कुलिश आदिक चारों के सुन्दर चिह्न हैं। मधुर शब्द करनेवाला नूपुर है। सुन्दर सोना और मणि द्वारा रचकर बनायी हुई कमर की करधनी शब्द करनेवाली शोभित थी।

व्याख्या : यहाँ अङ्क से चरणों की रेखा ही समझनी चाहिए। बालकाण्ड में : रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहै। एक कंज छूट गया था। सो यहाँ चार कहकर पूरा करते हैं। उत्तर में चारों को गिनाया है। यथा : ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत वन फिरत कंटक किन लहे। नूपुर की ध्वनि ऐसी मधुर है कि मुनि के मन को मोहती है।

कटिकिंकिणी भी शब्द करती है पर नूपुर इतनी नहीं। 'नूपुर रवकारी है। किंकिणी कल मधुर है। स्वायम्भू मनु के प्रकरण में जो शिख नख वर्णन आया है। उसमें किंकिणी का वर्णन नहीं है। क्योंकि वह बालरूप का वर्णन नही था।

दो. रेखा त्रय सुन्दर उदर, नाभी रुचिर गंभीर।
उर आयत भ्राजत विविध, बाल विभूषण चीर ॥७६॥

अर्थं पेट मे सुन्दर तीन रेखाएँ हैं। नाभि सुन्दर और गहरी है और चौडी छाती पर अनेक गहने बच्चो के लायक और कपडे शोभित हैं।

व्याख्या उदर त्रय रेखा का सभी जगह वर्णन है। बालकाण्ड मे , नाभि गभीर जान जिन देखा कहा। मनु के प्रकरण मे , नाभि मनोहर लेत जनु जमुनभवर छवि छीन कहा। बालकाण्ड मे कहा उर मनिमाल पदिक की सोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा। बालरूप होने से उर श्रीवत्स रुचिर बनमाला। पदिकहार भूषन मनि जाला। नही कहा।

अरुन पानि नख करज मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुन्दर ॥
कन्ध बाल केहरि दर ग्रीवा। चारु चिबुक आनन छवि सीवा ॥१॥

अर्थं लाल हथेली नख और उँगलियाँ सुन्दर थी। विशाल बाहु मे सुन्दर आभूषण थे। सिह के बच्चे सा कन्धा और शख सी ग्रीवा थी। ठुड्ढा सुन्दर और मुख तो छवि की सीमा था।

व्याख्या लघु लघु लोहित ललित है। पद्पानि अधर इक रग। सरकार की हथेली तलवा और ओठ ये तीनो एक रग लाल है। छोटी छोटी गाडियाँ अँगुरियाँ छवीली छोटी नख जोति मोती मानो कमल दलनि पर। छोटे छोटे पैरो मे छोटी छोटी उँगलियाँ हैं। जिनमे नख की ऐसी ज्योति है जैसे कमल के दलो पर मोती बिठाये गये हो। बाहु विशाल मे ही सुन्दर विभूषण की शोभा होती है।

वीरो के कन्धे सिह से होते हैं। सो सरकार के कन्धे बचपन मे ही सिह के बच्चे के कन्धो से हैं। ग्रीवा की उपमा शख से दी जाती है। ठुड्ढो की कोई उपमा ही नही है। मुख का सौन्दर्य ऐसा है मानो यह सुन्दरता की सीमा है। ऐसी या इससे अधिक शोभा हो ही नही सकती।

कलबल बचन अधर अरुनारे। दुइ दुइ दसन बिसद बरवारे ॥
ललित कपोल मनोहर नासा। सकल सुखद ससि कर सम हासा ॥२॥

अर्थं अस्पष्ट वचन और लाल ओठ थे। छोटे छोटे उज्ज्वल दो दो दाँत भी आगये थे। सुन्दर कपोल और मनहरण करनेवाली नासिका और सबका सुख देनेवाली चन्द्र के किरण सी हँसी थी।

व्याख्या बाल बोल बिनु अर्थ के सुनि देत पदारथ चारि। जनु इन बचननि ते भये सुरतरु तापस त्रिपुरारि। जब बचपन मे दो छोटे छोटे दाँत निकल आते है तो उस समय मुखकी अद्भुत शोभा हो जाती है। ऐसा दर्पण सा कपोल है कि उसमे कुण्डल की झलक प्रकट हो पडती है। यथा तन मृदु मजुल मेचकताई। झलकति बाल बिभूषन झाई। हृदय अनुग्रह इदु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हासा।

नील कज लोचन भवमोचन। भ्राजत भाल तिलक गोरोचन ॥
बिकट भृकुटि सम स्रवन सुहाये। कुचित कच मेचक छवि छाये ॥३॥

अर्थ : नील कमल से नेत्र ससार के हरण करनेवाले थे। माथे मे गोरोचन का तिलक था। टेढो भृकुटि थी। समान कान सुन्दर थे और काले घुँघुराले बालो की छवि छायी हुई थी।

व्याख्या : सरकार के दृष्टिपात से ससार का शोक जाता रहता है। यथा : मामवलोकय पकजलोचन। कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन। इसलिए यहाँ लोचन को भवमोचन कह रहे हैं। गोरोचन का तिलक भाल मे बडा शोभायमान हो रहा है। टेढो भ्रुकुटी की ही शोभा है। उसी की उपमा काम के धनुष से दी जाती है और सीप के समान कान तुल्य आकार के थे और सरकार के घुँघराले बाल छटे हुए ऐसी शोभा दे रहे हैं मानो छवि छायी हुई है।

पीत झीनि झिंगुली तन सोही। किलकनि चितवनि भावति मोही ॥
रूपरासि नृप अजिर बिहारि। नाचहिं निज प्रतिबिंब निहारि ॥४॥

अर्थ : शरीर पर पीली और बारीक झँगुली शोभा दे रही थी। उनका किलकना और देखना मुझे सोहाता था। राजा के आँगन मे विहार करनेवाले रूपराशि अपना प्रतिबिम्ब देखकर नाचते थे।

व्याख्या : सरकार की श्यामता नीलमणि की सी है। उस पर पोला कुरता जो बच्चे पहनते हैं जिसे झँगुली कहते हैं उसे पहने हुए हैं। वह झँगुली महीन कपडे की है। अत: उसमे से नीलिमा झलक रही है। बच्चो की आनन्द भरी वाणी और आनन्दमय चितवन मुझे बहुत ही प्यारी लगती थी।

स्वय रूप की राशि है। राजा के आँगन मे खेल रहे हैं। राजा का आँगन कहने का भाव यह कि मणियो से जडा हुआ है। जिधर देखते हैं उनका प्रतिबिम्ब दिखायी पडता है। सो प्रतिबिम्ब इतना सुन्दर है कि उसे देखकर नाचने हैं अथवा दूसरा साथी आया जानकर हर्ष से नाच रहे हैं।

मोहि सन करहिं बिबिध बिधि क्रीडा। बरनत मोहि होति अति व्रीडा ॥
किलकत मोहि धरन जब धावहिं। चलौं भागि तब पूप देखावहिं ॥५॥

अर्थ : मुझसे अनेक प्रकार का खेल करते थे। उसके वर्णन मे मुझे अत्यन्त लज्जा मालूम होती है। किलकते हुए मुझे पकडने को वे जब दौडते थे तब मैं भाग चलता था तो मुझे पूआ दिखाते थे।

व्याख्या : बच्चे जैसा खेल चिडियो को देखकर करते हैं ठीक उसी भाँति मुझे देखकर करते थे। कभी पकडने दौडते हैं। कभी डर जाते हैं। कभी प्रसन्न होते हैं इत्यादि। उसके वर्णन मे मुझे अत्यन्त लज्जा होती है कि सरकार मे ऐसे ऐसे भावो को कैसे वर्णन करूँ। पर उन्हे अभिनय मे सङ्कोच नही होता था।

बच्चों की भाँति किलकारी मारते हुए मुझे पकडने दौडते थे। तो मैं भी रसपोषण के लिए भाग चलता था। अथवा यदि मुझे पकड लेते तो शान्ति करनी पडती और फिर मेरे साथ रहने मे बडी बाधा उपस्थित होती। इसलिए मैं भाग

चलता था तो मुझे निकट बुलाने के लिए पूआ दिखलाते थे कि इसकी लालच से यह चला आवेगा।

दो. आवत निकट हँसहिं प्रभु, भाजत रुदन कराहिं।
जाउँ समीप गहन पद, फिरि फिरि चितै पराहिं ॥७७ क.

अर्थ : सन्निकट आने पर हँसते थे। मेरे भागने पर रोते थे। जब मैं चरण ग्रहण के लिए निकट आ जाता था तो लौट लौटकर देखते हुए भागे जाते थे।

व्याख्या : सरकारी इच्छा समझकर मैं निकट चला आता था। तो बडे प्रसन्न होते थे। हँसने लगते थे। फिर पकड न लें इसलिए भागने से रोने लगते थे। सरकार के रोने पर मैं चरण स्पर्श के लिए जब अधिक निकट आ जाता था तब उठकर भागते थे और फिर फिर कर देखते भी जाते थे कि मैं पीछा तो नही कर रहा हूँ।

दो. प्राकृत सिसु इव लीला, देखि भयउ मोहि मोह।
कौन चरित्र करत प्रभु, चिदानंद संदोह ॥७७॥

अर्थ : साधारण बच्चो की सी लीला देखकर मुझे मोह हो गया कि सच्चिदानन्दघन भगवान् यह कौन सा चरित्र कर रहे हैं।

व्याख्या : जिस भाँति सामान्य बच्चे लीला करते हैं ठीक वैसी ही लीला सरकार कर रहे थे। आठ महीना साथ रहते बीता। एक लीला भी ऐश्वर्य सूचक नही किया। और बार तो एकाध लीला ऐश्वर्य सूचक भी हो जाती थी। इस बार कुछ नही। सरकार के बाल भाव के माधुर्य से मोह हो गया। सरकार के वास्तव रूप को भुसुण्डिजी जानते थे कि चिदानन्द सन्दोह हैं। अत एकदम मनुष्य के बच्चो का सा अभिनय मे मोह हुआ कि क्या मनुष्य ही तो नही है। स्वयं चिदानन्द सन्दोह के योग्य क्या ऐसी लीला है? भुसुण्डिजी का भाव यह कि रणाङ्गन मे लीला देखकर तुम्हे मोह हुआ और नृपाङ्गन मे लीला देखकर मुझे मोह हुआ।

एतना मन आनत खगराया। रघुपति प्रेरित व्यापी माया ॥
सो माया न दुखद मोहि काही। आन जीव इव ससृति नाही ॥१॥

अर्थ हे पक्षिराट्! इतनी बात मन मे आते ही रघुपति की प्रेरणा से माया व्याप गयी। वह माया मुझे किसी भाँति दु खदायी नही हुई। क्योंकि अन्य जीवो की भाँति ससार सम्बन्धी नही थी।

व्याख्या : सरकार यह कैसा चरित्र कर रहे हैं। चिदानन्द सन्दोह लडकपन कर रहे हैं। ऐसा ही मोह गरुड को हुआ कि : चिदानन्द सन्दोह राम विकल कारण कवन : भुसुण्डिजी और गरुडजी दोनो सरकार के यथार्थ रूप के जाननेवाले हैं कि सरकार चिदानन्द सन्दोह हैं। यहाँ विकार की सम्भावना ही नही है। यह तो इनका चरित्र है। पर क्या यह चरित्र इनके योग्य है? यदि अभिनय भी मान लें तो

इस दर्जे तक अभिनय नहीं होता। बस इतनी बात के मन में आने की देर थी सरकार की प्रेरणा हुई और भुसुण्डिजी को माया व्याप गयी।

भुसुण्डिजी कहते हैं कि वह माया दुःख देनेवाली अविद्या माया नहीं थी। क्योंकि : रामचरित सेवक सुखदायक। रामजी की लीला तो सेवक के सुख के लिए होती है। अतः वह माया भी सुख देनेवाली अपरा विद्या थी। जीवों को जैसी सांसारिक माया व्यापती है वैसी नही थी। यथा : हरि माया बस जगत भ्रमाहि। तिनहि कहत कछु अघटित नाही।

नाथ इहाँ कछु कारन आना। सुनहु सो सावधान हरिजाना ॥
ग्यान अखंड एक सीताबर। माया बस्य जीव सचराचर ॥२॥

अर्थ : हे नाथ ! यहाँ कुछ और ही कारण है। उसे हे गरुड़जी सावधान होकर सुनिये। अखण्ड ज्ञान रूप तो अकेले सीतापति हैं और चराचर जीव सब माया के वश में हैं।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि जिस अशुद्धसत्त्वा माया के वश पड़े जीव दुःख पाते हैं उस माया की प्रेरणा सरकार ने नही की। शुद्धसत्त्वा माया की प्रेरणा की। वह दुःखद नही हुई। फिर माया की प्रेरणा हुई ही क्यों ? जिसने आप को मोह में डाल दिया। इस प्रश्न को मन में रखकर उत्तर देते हैं और उसे सावधान होकर सुनने के लिए गरुड़जी से कहते हैं।

एक अखण्ड ज्ञान तो सीतापति रामचन्द्रजी को है। वही मायापति हैं। वही सर्वज्ञ ईश्वर हैं। और बाकी जितने चराचर जीव हैं। ये अशुद्धसत्त्वा माया के वश में है। इनके ऊपर माया का आधिपत्य है : जो ग्यानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआई बिमोह बस करई।

जौं सब के रह ग्यान एकरस। ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस ॥
माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुनखानी ॥३॥

अर्थ : यदि सबको एकरस ज्ञान बना रह जाय तो फिर ईश्वर और जीव में भेद ही क्या रह जायगा। जीव में अभिमान होता है वह माया के वश में रहता है। और गुणखानि माया ईश्वर के वश में रहती है।

व्याख्या : ईश्वर और जीव दोनों चेतन हैं। दोनों में भेद इतना ही है कि ईश्वर में सदा ज्ञान एक रस बना रहता है। जीव का ज्ञान सदा एक रस नही रहता। माया द्वारा विक्षेप हुआ करता है।

क्योंकि जीव में अभिमान मौजूद है और वह संसार का मूल है। अतः उसके साथ संसार बँधा हुआ है वह माया के वश में रहता है। ईश्वर में अभिमान नही है अतः वह संसारी नही है। वह माया का प्रभु है। माया उनके वश में है। अतः उनका ज्ञान एक रस है। माया गुणखानी : कहने का भाव यह है कि माया

त्रिगुणात्मिका है। अतः जो माया के वश्य में है उनके ऊपर सत्व रजस् और तमस् सदा काम किया करते है। अतः उनके ज्ञान में उत्कर्ष और अपकर्ष हुआ करता है।

परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता॥
मुधाभेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया॥४॥

अर्थ: जीव परवश है भगवान् स्वतन्त्र हैं। जीव अनेक हैं श्रीकान्त एक हैं। यद्यपि माया ने झूठा ही भेद कर रक्खा है। पर बिना भगवान् के वह करोड़ उपायों से भी नहीं जा सकता।

व्याख्या: अतः जीव परतन्त्र है। जीव माया के वश है और माया ईश्वर के वश है। अतः जीव महा परतन्त्र है। एक तो यही भेद ईश्वर और जीव में है। दूसरा यह भी भेद है कि जीव असख्य हैं पर ईश्वर एक ही है। श्रीकन्त शब्द से यहाँ ईश्वर का मायापति होना दिखलाया।

यदि प्रश्न हो कि चेतन चेतन में भेद कैसा? तो कहते हैं कि वह भेद यद्यपि झूठा है। यथा: जड़ चेतनहि ग्रंथि परिगई। जदपि मृषा छूटत कठिनई। पर छूटना कठिन है उनके एकमात्र उपाय भगवान् हैं। उन्हो के कृपा से वह छूट सकती है।

दो. रामचन्द्र के भजन बिनु, जो चह पद निरबान।
ग्यानवंत अपि सो नर, पसु बिनु पूंछ बिषान॥७८ क.
राकापति षोडश उअहिं, तारागन समुदाइ।
सकल गिरिन्ह दव लाइये, बिनु रबि रात न जाइ॥७८॥

अर्थ: रामचन्द्र के भजन बिना जो निर्वाण पद चाहता है वह ज्ञानवान् होने पर भी बिना सीग पूँछ का पशु है। सोलह कलापूर्ण चन्द्र उदय हो और सम्पूर्ण तारागण भी उदय हों और सब पर्वतो मे भी आग लगा दी जाय परन्तु बिना सूर्य के रात नही जा सकती।

व्याख्या: वाण शरीर को कहते हैं। निर्वाण पद अर्थात् वह पद जिसमें शरीर से सम्बन्ध न रहे अर्थात् कैवल्य पद। यथा: अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद। उस पद को जो चाहे और रामचन्द्र का भजन करे। अर्थात् जो उसका यथार्थ साधन है उसकी उपेक्षा करे और साध्य की इच्छा करे ऐसी इच्छा करनेवाले पशु हैं उसे बुद्धि नही है। इतनी बात की कसर है कि पशु को सीग पूँछ होती है उसे नही है। भावार्थ यह कि उसका शरीरमात्र मनुष्य का है। पर वह पशु के समान ही अविवेकी है।

क्योंकि मोहरात्रि के जाने पर ही निर्वाणपद की प्राप्ति सम्भव है। पर वह बिना सूर्य की सहायता के ही रात्रि का नाश चाहता है। भले हो वह ज्ञानी हो और ज्ञान दीप जलाने मे समर्थ भी हो फिर भी दीप के प्रकाश से रात्रि नही जाती। राम सच्चिदानन्द दिनेश की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए कि कहते है दीप की

क्या गिनती है। सोलहो चन्द्रमा उदय हो और तारे भी सब रहे। उनकी सहायता के लिए सम्पूर्ण पर्वतो मे भी आग जलायी जाय तो क्या रात्रि नष्ट होगी ? क्योकि रात्रि को नष्ट करनेवाले एकमात्र सूर्य हैं और दूसरा कोई नही है। अत मोहनिशा राम सच्चिदानन्द दिनेश के उदय से ही नष्ट हो सकती है।

ऐसहि हरि बिनु भजन खगेसा। मिटइ न जीवन केर कलेसा ॥
हरि सेवकहिं न व्याप अविद्या। प्रभु प्रेरित ब्यापै तेहि बिद्या ॥१॥

अर्थ . ऐसे ही हरि हैं। हे खगेश ! बिना उनके भजन के जीवो का क्लेश नही मिटता। हरि सेवक को अविद्या नही व्यापती। हरि की प्रेरणा से उसे विद्या व्यापती है।

व्याख्या जैसे निशा के लिए सूर्य हैं। वैसे ही मोहनिशा के लिए हरि हैं। बिना हरि के मोहनिशा जा नही सकती। जब रामप्रतापरूपी सूर्य हृदय मे प्रकाश करता है तब अविद्यानिशा नष्ट होती है। यथा यह प्रताप रवि जाके उर जब करै प्रकास। पिछले बाढहिं प्रथम जे कहे ते पावहिं नास।

भजन करने से ही रामप्रतापरूपी सूर्य भक्त के हृदय मे प्रकाश करता है। इसलिए हरिसेवक को अविद्या नही व्यापती। पर उसका भी ज्ञान एकरस नही रहता। कभी कभी हरि की प्रेरणा से उसे विद्या व्यापती है। यथा जो मन प्रीति सो रामनामहिं रातो। तुलसी राम प्रसाद सो तिहुं ताप न तातो।

तातें 'नास न होइ दासकर। भेद भगति बाढै बिहग बर ॥
भ्रम ते चकित राम मोहि देखा। बिहँसे सो सुन चरित बिसेखा ॥२॥

अर्थ इसलिए दास का नाश नही होता। हे पक्षिराट् ! उसकी भेद भक्ति बढ जाती है। जब रामजी ने मुझे भ्रम से चकित देखा तो हँसे। अब उस विशेष चरित को सुनो।

व्याख्या जिसे अविद्या व्यापती है उसका नाश हो जाता है। यथा सङ्गात् सञ्जायते काम कामात् क्रोधोऽभिजायते। क्रोधाद् भवति सम्मोह सम्मोहात् स्मृतिविभ्रम । स्मृतिभ्रशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति। भक्त का नाश नही होता। विद्या के व्यापने से उसकी भेद भक्ति बढती है। विद्या के प्रभाव से उसे दिव्य दृष्टि हो जाती है। वह सरकार के ऐश्वर्य का दर्शन करता है। सरकार के उत्कर्ष ज्ञान से भेद भक्ति बढती है। यही भक्तो को इष्ट है। यथा सगुनोपासक मोक्ष न लही। तिन कहुँ राम भगति निज देही।

भुसुण्डिजी कहते हैं कि सरकार का चरित्र देखकर मुझे मोह हुआ। मन म सोचने लगा कौन चरित्र करत प्रभु चिदानन्द सन्दोह। रामजी ने भ्रम से चकित मुझे देखा। मेरी अविद्या के हटाने के लिए विद्या माया की प्रेरणा की। अत हँसे। माया हास बाहु दिगपाला। लोग समझते हैं कि काग को देखकर प्रसन्न हो रहे हैं। उनका हँसना ही चरित्र विशेष है।

तेहि कौतुक कर मरम न काहू। जाना अनुज न मातु पिताहू ।।
जानु पानि धाए मोहि धरना। स्यामल गात अरुन कर चरना ।।३।।

अर्थ : उस कौतुक का मर्म किसी ने न जाना। भाई तथा माता पिता किसी को भी पता न चला। घुटने और हाथ के बल से मुझे पकड़ने दौड़े। साँवला शरीर और हाथ पाँव लाल थे।

व्याख्या : अब वह चरित्र कहते हैं। सरकार का वह कौतुक था एक खेल था। उसका मर्म किसी ने न पाया। भाई लोग साथ खेलते थे। माता पिता सुरक्षा के लिए सदा उन पर दृष्टि रखते थे। यथा : जीवन तरु जिमि जोगवइ राऊ। पलक नयन फनि मनि जेहि भाँती। जोगवहिं जननि सकल दिन राती। उन सब लोगो ने कौतुक तो देखा कि काक को पकड़ने के लिए दौड़े हैं। परन्तु उसका मर्म क्या था यह किसी ने न पाया। सब ने ही उसे बाललीला समझा।

अभी सरकार आठ महीने के हैं। खड़े नही हो सकते हाथ और घुटनों के बल से चलते हैं। उसी भाँति भुसुण्डिजी को पकड़ने दौड़े। भुसुण्डिजी उस समय की छवि कहते हैं। सरकार दौड़े चले आते हैं। इन्हे भी भागना है ऐसे अवसर मे जैसा रूप दृष्टिगोचर हुआ उसे कहते है : स्याम सरीर सुभाय सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन। सम्पूर्ण शरीर श्याम है। केवल करतल पादतल लाल है। जिनसे इस समय काम ले रहे हैं।

तब मैं भागि चलेउँ उरगारी। राम गहन कहुँ भुजा पसारी ।।
जिमि जिमि दूरि उड़ाउँ अकासा। तहँ भुज हरि देखौं निज पासा ।।४।।

अर्थ : हे गरुड़जी ! तब मे भाग चला और रामजी ने पकड़ने के लिए हाथ फैलाया। जितना मैं आकाश मे उड़ता चला गया वहाँ वहाँ मैंने भुजा को और रामजी को अपने पास पाया।

व्याख्या : तब मैं भाग चला। पक्षी का भागना आकाश में उड़ना ही है। भाव यह कि जिस समय भुसुण्डिजी भ्रम से चकित थे उस समय आँगन मे ही बैठे थे। इसलिए सरकार पकड़ने दौड़े। जिस भाँति बच्चे चिड़िया को देखकर उसे पकड़ने के लिए दौड़ पड़ते हैं। जिस भाँति लड़को को दौड़ते देखकर पक्षी भाग जाते हैं उसी भाँति काग भुसुण्डिजी भी भाग चले और ऊपर जाते हुए पक्षी को पकड़ने के लिए जिस भाँति बच्चे हाथ फैलाते हैं वैसा ही सरकार ने भी फैलाया। यहाँ तक तो स्वाभाविक लीला हुई इसे सभी ने देखा।

अब जो अलौकिकता हुई उसे कहते हैं कि उड़ने पर भी मैं दूर नही हो पाता था। रामजी और उनकी भुजा पास ही दिखाई पड़ती थी। मैं आकाश में उड़ता ही चला गया। पर भुजा को और रामजी को अपने पास ही पाता था।

दो. ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं, चितएउँ पाछु उड़ात।
जुग अंगुल कर बीच सब, राम भुजहि मोहि तात ।।७९ क.

सप्तावरन भेद करि, जहाँ लगें गति मोरि।
गजउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि, व्याकुल भयउँ बहोरि ॥७९॥

अर्थ : मैं ब्रह्मलोक तक गया और उडते हुए लौटकर पीछे देखा तो सब मेरे और रामजी के भुजा के बीच के दो अँगुल के फासला मे ही था। मैंने तब सातो आवरण पार करके जहाँ तक मेरी गति थी गया। वहाँ भी सरकार की भुजा देखकर व्याकुल हो उठा।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैं ऊपर उडता ही चला गया। जब ब्रह्मलोक तक पहुँचा तब पलटकर देखा तो रामजी की भुजा मे और मुझ मे दो अँगुल का बीच फासला है और अयोध्या से लेकर ब्रह्मलोक तक का दृश्य उसी दो अगुल के बीच मे हैं। तब तो मैं ब्रह्मलोक से भी ऊपर चला : अव्याहत गति सभु प्रसादा। सात आवरण जो पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहन्तत्त्व, महत्तत्त्व के हैं उन्हे भी भेद करके और ऊपर लोकालोक तक गया। उसके आगे गति नही है। वहाँ भी सरकारी भुजा को पास पाकर तत्पश्चात् व्याकुल हो गया। अब कहाँ जायँ ? सर्वत. पाणिपाद से भागकर कोई जायगा कहाँ ? वे जब जिसे पकडना चाहते हैं तब उनसे भागकर कोई बच भी नही सकता।

मूदेंउ नयन त्रसित जब भयेऊँ। पुनि चितवत कोसलपुर गयेऊँ ॥
मोहि बिलोकि राम मुसुकाही। बिहँसत तुरत गयेउँ मुख माही ॥१॥

अर्थ : जब मैं डर गया तो मैंने आँखें मीच ली। फिर जो देखा तो कोसलपुर मे पहुँच गया। मुझे देखकर रामजी मुसकुरा रहे हैं। उनके हँसते ही मैं उनके मुख में चला गया।

व्याख्या : सरकार की माया देखकर सभी भयभीत हो जाते हैं। अर्जुन भयभीत हुए : भयेन च प्रव्यथित मनो मे। सती भयभीत हो गयी। हृदय कप तन सुधि कछु नाही। नयन मूँद बैठी मँन माही। कौसल्या जी भयभीत हो गयी। यथा : तन पुलकित मुख वचन न आवा। नयन मूँदि चरनन्हि सिरु नावा। इसी भाँति भुसुण्डिजी भी जब डर गये तो आँखें मूँद ली। माया के वेग के देखने मे अपने को असमर्थ पाया। अब और आश्चर्य देखिये। आँख मूँदा सप्तावरण के बाहर और आँख खुली तब अपने को अयोध्या में पाया। इसका छोटा सा दृष्टान्त किष्किन्धाकाण्ड मे है : नयन मूँदि पुनि देखहि बीरा। ठाढे सकल सिंधु के तीरा।

पहिली हँसी मे भागने का उत्तर दिया कि बाहर भी सब मैं ही हूँ। कहाँ भागकर जाओगे। अब दूसरी हँसी मे यह दिखला रहे हैं कि मेरे भीतर बाहर मे कोई भेद नही है : यदन्तर तद्बाह्य यद्बाह्य तदनतरम्। शरीर धारण करने पर भी मेरे व्यापकपने मे कुछ भी भेद नही आया है। मैं इस समय अल्प शरीर धारण किये हूँ फिर भी सब कुछ मेरे भीतर हैं। आकर स्वय देख लो। अत मुँह के भीतर प्रवेश करा दिया।

उदर माँझ सुनु अंडजराया। देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया ॥
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एक ते एका ॥२॥

अर्थ हे गरुडजी! पेट के भीतर मैंने बहुत से ब्रह्माण्डो का समूह देखा। वहाँ अत्यन्त विचित्र अनेक लोक थे और एक की रचना दूसरे से अधिक थी।

व्याख्या कौसल्याजी को बाहर दिखलाया। भुसुण्डिजी को भीतर बहुत ब्रह्माण्ड दिखलाया। सतीजी को जहाँ का तहाँ सब कुछ दिखलाया। अब भीतर का हाल कहते हैं कि ब्रह्माण्डा के गुच्छे असंख्य हैं। यथा ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्माण्ड अनेक निकाया। जीव चराचर जतु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना। जिस भाँति इस ब्रह्माण्ड मे अनेक लोक हैं और उन लोको की रचना एक दूसरे से भिन्न है। उसी भाँति उन सब ब्रह्माण्डो मे अनेक लोक हैं। पर एक ब्रह्माण्ड की रचना दूसरे से मेल नही खाती। नियम सर्वत्र एक से पर रचना कहीं भी एक सी नहीं।

कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगनित उडगन रबि रजनीसा ॥
अगनित लोकपाल जम काला। अगनित भूधर भूमि बिसाला ॥३॥

अर्थ करोडो ब्रह्मा और शिव थे। असंख्य तारे सूर्य और चन्द्र थे। असंख्य लोकपाल यम और काल थे। असंख्य बडे बडे विशाल पहाड और पृथिवी रही।

व्याख्या उन ब्रह्माण्डो मे भी सृष्टि ब्रह्मा द्वारा और संहार शिवजी द्वारा होता है। अत प्रति ब्रह्माण्ड ब्रह्मा और शिवजी भी थे। इसलिए उनकी भी संख्या नही कही जा सकती। इसी भाँति सूर्य और चन्द्रमा तथा तारागण की भी कोई संख्या नहीं थी। उन उन ब्रह्माण्डो मे अनेक लोक थे और उनके लोकपाल यम काल आदि की भी संख्या नही कही जा सकती। जैसे यहाँ पृथिवी है वैसे ही उन ब्रह्माण्डो मे भी बडी बडी पृथिवी और बडे बडे पर्वत थे। इस प्रकरण के अनुकूल वर्णन नारायणोपनिषद् मे है।

ये सब बातें अब विज्ञान से सिद्ध हो रही हैं। पृथिवी के अति सन्निकट चन्द्रग्रह है। दूरवीक्षण यन्त्र से उनमे पहाड तथा नदियाँ दृष्टिगोचर होती। मङ्गल ग्रह के विषय मे वैज्ञानिकों की राय है कि आकर्षण के भेद से वहाँ के निवासी पृथिवी के निवासियो की अपेक्षा बडे दीर्घकाय होगे। इतनी बातें तो दूरवीक्षण यन्त्र से मालूम हुई है। पर यह कथा तो भुसुण्डिजी कह रहे हैं। जो उन ब्रह्माण्डो की यथेष्ट सैर कर चुके हैं।

सागर सरि सर बिपिन अपारा। नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा ॥
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किन्नर। चारि प्रकार जीव सचराचर ॥४॥

अर्थ समुद्र नदी तालाब और अपार जगल थे। नाना भाँति सृष्टि का

विस्तार था। देवता मुनि सिद्ध नाना मनुष्य और किन्नरादि चार प्रकार के चराचर जीव।

व्याख्या : उन ब्रह्माण्डों में भी समुद्र नदी तालाब और वन थे और बहुत बड़े बड़े थे। परन्तु सब अनेक भाँति के थे। इस भाँति सृष्टि के विस्तार का कोई ठिकाना न दिखाई पड़ा। वहाँ भी देवता मुनि सिद्ध नर किन्नर तथा स्वेदज उद्भिज जरायुज अण्डज भेद से चार प्रकार के चराचर जीव थे। परन्तु सर्वत्र वैचित्र्य का राज्य था : यही वैचित्र्य ईश्वर की सिद्धि का भारी प्रमाण है। मान भी लिया जाय कि सब कुछ प्रकृति ने बनाया पर इस वैचित्र्य को किसने बनाया ? जड़ प्रकृति इस विचित्रता का निर्माण कैसे कर सकती है ?

दो. जो नहि देखा नहि सुना, जो मनहु न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेउं, बरनि कवनि विधि जाइ ॥८० क.
एक एक ब्रह्मांड मंहु, रहौ बरष सत एक।
एहि बिधि देखत फिरौ मैं, अंड कटाह अनेक ॥८०॥

अर्थ : जो न कभी देखा और जो न कभी सुना और जो बातें मन में भी नही समाती उन सब अद्भुतो को देखा। वर्णन कैसे किया जा सकता है। एक एक ब्रह्माण्ड में एक एक सौ वर्षों तक रहा। इस भाँति अनेक ब्रह्माण्ड कटाहों को देखता फिरा।

व्याख्या : अपनी जानकारी तो इतनी ही है जितना कि देखा सुना गया है और जो नही देखा सुना गया है उनमे भी ऐसी बातें हैं जो मन के दौड़ के भीतर हैं। पर इन सबसे विलक्षण वस्तुएँ मैंने देखी। अब उसका वर्णन कैसे हो ? वर्णन तो देखी सुनी वस्तुओं को ही लेकर होता है।

ऐसी अद्भुत अद्भुत वस्तुओं को देखकर कौतूहल बढा तो वहाँ ठहर ठहरकर पूरे ब्रह्माण्ड की सैर करने लगे। एक ब्रह्माण्ड के सैर मे उन्हे एक सौ वर्ष लगते थे। इसी भाँति धैर्य के साथ भुसुण्डिजी ब्रह्माण्डो का निरीक्षण करने लगे। इस भाँति अनेक ब्रह्माण्ड देख डाले पर विचित्रता बढती ही गयी। माया के दर्शन का थाह न लगा।

लोक लोक प्रतिभिन्न बिधाता। भिन्न बिस्नु सिव मनु दिसि त्राता ॥
नर गंधर्व भूत बेताला। किन्नर निसिचर पसु खग ब्याला ॥१॥

अर्थ : प्रत्येक लोक में भिन्न भिन्न ब्रह्मदेव थे। विष्णु भी भिन्न थे एवं शिव मनु और दिक्पाल भी भिन्न थे। इसी भाँति, मनुष्य, गन्धर्व, भूत, वैताल, किन्नर, निशिचर, पशु, पक्षी और सर्प थे।

व्याख्या : यहाँ लोक शब्द से ब्रह्माण्ड का ग्रहण है अथवा ब्रह्मलोक का ग्रहण है। वेद मे वर्णित है कि किसी ब्रह्माण्ड के पाँच मुख के ब्रह्मा हैं। किसी के

छ मुख के हैं। इसी भाँति किसी ब्रह्माण्ड के सहस्र मुख के ब्रह्मदेव हैं। सभी ब्रह्माण्डो मे ब्रह्मलोक विष्णुलोक शिवलोकादि हैं। व्यवस्था सर्वत्र की एक सी है। केवल सृष्टि मे वैचित्र्य है। विष्णु शिवादि दूसरे प्रकार के हैं। सभी ब्रह्माण्डो मे मन्वन्तर वर्तते हैं। वहाँ मनु हैं सभी मे दिक्पाल हैं। भेद उनके रूपो मे है फिर भी वे जान पडते हैं कि ये विष्णु हैं, ये शिव हैं, ये दिक्पाल हैं, ये मनुष्य हैं, ये भूत हैं, ये पशु हैं, ये पक्षी हैं इत्यादि। जैसे एक ब्रह्माण्ड मे रूपो मे भेद रहते हुए भी देवदत्त यज्ञदत्त आदि सभी मनुष्य हैं वैसे ही अनेक ब्रह्माण्डो की सृष्टि मे भेद होते हुए भी सभी जातियाँ पहिचानी जाती हैं।

देव दनुज गन नाना जाती। सकल जीव तहँ आनहि भाँती ॥
महि सरि सागर सर गिरि नाना। सब प्रपंच तहँ आनै आना ॥२॥

अर्थ : देवता दानव की नाना जातियाँ थी। सब प्रपञ्च ही वहाँ का दूसरे प्रकार का था। पृथिवी नदी समुद्र पर्वत सब नाना प्रकार के थे।

व्याख्या : जैसे यहाँ सब मनुष्य एक से होने पर भी उनमे भिन्नता है वैसे ही एक ब्रह्माण्ड की मनुष्य जाति दूसरे ब्रह्माण्ड के मनुष्य जाति से भिन्न प्रकार हैं। फिर भी वे मनुष्य ही होते हैं और पहचाने जाते हैं। यह बात केवल मनुष्य जाति मे ही हो ऐसी बात नही है। देव दनुजादि सम्पूर्ण जीवो की ही यही दशा है। इतना ही नही पृथिवी नदी समुद्र पर्वत आदि स्थावर सृष्टियो मे भी भेद है। एक ब्रह्माण्ड के पहाड और नदियाँ दूसरे ब्रह्माण्ड के पहाड और नदियो से भिन्न हैं। फिर भी वे वहाँ पहाड और नदी आदि का ही काम देते हैं। विष्णुपुराण कहता है कि ससार मे चार अगुल स्थान भी ऐसा नही है जहाँ सृष्टि न हो।

अण्डकोस प्रति प्रति निज रूपा। देखेउ जिनस अनेक अनूपा ॥
अवधपुरी प्रति भुवन निनारी। सरजू भिन्न भिन्न नर नारी ॥३॥

अर्थ : प्रति ब्रह्माण्ड मे मैंने अपने रूप को अनेक प्रकार का और अनुपम देखा। प्रत्येक भुवन मे अयोध्या भी न्यारी ही प्रकार की सरयू नदी भी भिन्न प्रकार की और नर नारी भी भिन्न प्रकार के थे।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि जिस ब्रह्माण्ड मे मैं जाता था उस ब्रह्माण्ड के काग के जैसा रूप मेरा हो जाता था। इस भाँति मैं भी न जाने कितने प्रकार का बना और वे रूप ऐसे थे जिनसे दूसरे ब्रह्माण्ड के रूप से उपमा नही दी जा सकती। प्रति ब्रह्माण्ड मे अयोध्यापुरी भी अन्य प्रकार की। सरयू नदी भी भिन्न प्रकार की और नर नारी भी अनेक प्रकार के थे। जैसा काल का नियम है कि एक दिन दूसरे दिन जैसा होता हुआ भी ठीक वैसा नही होता। उसी भाँति देश का भी नियम है कि एक ब्रह्माण्ड दूसरे जैसा होता हुआ भी ठीक वैसा नही होता। स्पष्ट बात है कि उन ब्रह्माण्डो का ऐसा प्रभाव है कि जो जीव वहाँ जाते हैं वे भी उसी प्रकार के हो जाते हैं जिस प्रकार के जीव वहाँ बसते हैं।

दसरथ कौसिल्या सुनु ताता । बिबिध रूप भरतादिक भ्राता ॥
प्रति ब्रह्माण्ड राम अवतारा । देखेउँ बाल बिनोद अपारा ॥४॥

अर्थ : हे तात ! सुनो अनेक रूप के दशरथ कौसल्या तथा भरतादिक भाई थे। प्रत्येक ब्रह्माण्ड मे रामजी का अवतार हुआ था और वहाँ वहाँ अपार बाल-विनोद देखा।

व्याख्या : भाव यह कि जिस अवस्था में इस ब्रह्माण्ड को देखा वही दशा सब ब्रह्माण्डो की थी। सभी ब्रह्माण्डो मे रावण का उपद्रव था। यथा : ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनु धारी। दसमुख बसवर्ती नर नारी अत सभी ब्रह्माण्ड मे दशरथ कौसल्या के घर मे रामावतार हो गया था। भेद यही था कि दशरथ कौसल्या तथा भरतादिक भ्राताओ का रूप प्रत्येक ब्रह्माण्ड मे भिन्न प्रकार का था। प्रत्येक ब्रह्माण्ड मे उस समय सरकार की बाल्यावस्था थी और बाल विनोद करते थे। सो भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैंने अपार बाल विनोद देखे।

दो. भिन्नु भिन्नु मैं दीख सबु, अति बिचित्र हरि जान।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु, राम न देखेउ आन ॥८१ क.
सोइ सिसुपन सोइ सोभा, सोइ कृपाल रघुबीर।
भुवन भुवन देखत फिरौ, प्रेरित मोह समीर ॥८१॥

अर्थ : हे गरुड़जी ! यह सब अति विचित्र मैंने प्रति भुवन मे देखा। इस भाँति असख्य भुवनो मे मैं घूमता फिरा पर राम दूसरे प्रकार के नहीं दिखाई पड़े। वही बचपन वही शोभा और वही कृपालु रामजी थे। मोहरूपी वायु से प्रेरित होकर प्रत्येक भुवन मे यही देखता फिरा।

व्याख्या : अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड मे सर्वत्र विचित्रता है। कहीं कोई वस्तु एक सी नही। अयोध्या सरयू और अवधवासियो मे तो विचित्रता थी ही दशरथ कौसल्या तथा भरतादि भ्राता भी सब ब्रह्माण्ड के विचित्र थे। एकरसता केवल सरकार में है। असख्य ब्रह्माण्ड मे भुसुण्डिजी घूमे परन्तु राम दूसरे नही दिखाई पडे। इस एकरसता मे महा विलक्षणता है कि सरकार का स्वरूप सब ब्रह्माण्ड की सृष्टि से मेल खाता है। उसी स्वरूप से वे अगणित स्वरूपवाले दशरथ कौसल्या के पुत्र तथा भरतादि के भाई मालूम होते थे। शिशुपन से वय कहा। शोभा से रूप कहा। कृपाल से स्वभाव कहा। अर्थात् वय रूप और स्वभाव मे कुछ भी भेद नही। भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैं अपने काबू मे नही था। मोह मुझे जहाँ ले जाता था वहाँ मैं जाता था। अत प्रत्येक ब्रह्माण्ड मे मैं यह दृश्य देखता फिरा।

भ्रमत मोहि ब्रह्मांड अनेका। बीते मनहुँ कल्प सत एका ॥
फिरत फिरत निज आस्रम आयउँ। तहँ पुनि रहि कछु काल गवायउँ ॥१॥

अर्थ मुझे अनेक ब्रह्माण्डो मे घूमते घूमते मानो एक सौ कल्प बीत गये। घूमते घूमते अपने आश्रम मे आगया और कुछ दिन वही बिताया।

व्याख्या ४३,२७,००० मानव वर्षों का एक महायुग होता है और कल्प तो ८,६४,०००००००० वर्षों का होता है। इस भाँति सौ कल्पो तक भुसुण्डीजी ब्रह्माण्डो की सैर करते रहे। अत उन्होने ८,६४,०००००००० ब्रह्माण्डो की सैर की। अन्त मे घूमते घामते अपने आश्रम मे चले आये तो वही ठहर गये और वही रहने लगे। कुछ दिन यो ही बीता। यहाँ कवि बीते मनहु कल्प सत एका कहते हैं। भाव यह कि भुसुण्डिजी को इतना काल मालूम हुआ। वस्तुत उतना बीता नही। सिद्धान्त यह दिखलाया कि देशकाल की कल्पना भी सब मायामय है कही थोडा देश और थोडे काल मे अधिक की प्रतीति होती है। कही अधिक मे थोडे की। ये सब करामात माया के हैं।

निज प्रभु जन्म अवध सुनि पायेहुँ। निर्भर प्रेम हरषि उठि धायेउँ॥
देखेउँ जन्म महोत्सव जाई। जेहि बिधि प्रथम कहा मैं गाई॥२॥

अर्थ. अपने प्रभु का अवध मे जन्म होना सुन पाया तो प्रेम मे भरा हुआ हर्षित हो उठकर दौडा। वहाँ जाकर जन्म महोत्सव देखा जैसा कि पहिले मैं वर्णन कर चुका हूँ।

व्याख्या भुसुण्डिजी कहते हैं वहाँ रहते रहते प्रभु के अवतार होने का पता लगा कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरही। चारु चरित नाना विधि करही। सो एक सौ कल्प तो अनेक ब्रह्माण्डो के देखने मे बीत चुके थे। एक सौ एकवें मे अपने आश्रम मे पहुँच गये। अत इसमे भी रामावतार हुआ। देवता लोग गर्भस्तुति के लिए सुमेरु पर्वत से चले। उन्ही से सुना। अत जन्म महोत्सव के देखने की लालच से दौड पडे। जाकर देखा भी और उसी विधि से देखा जैसा पहिले कह चुके हैं। अथवा जन्म महोत्सव वैसा ही हुआ जैसा वर्णन कर आये हैं।

राम उदर देखेउँ जग नाना। देखत बनै न जाइ बखाना॥
तहँ पुनि देखेउँ राम सुजाना। मायापति कृपाल भगवाना॥३॥

अर्थ रामजी के उदर मे अनेक जगत् देखा जो देखते ही बनते हैं कहते नही बनते। वहाँ फिर राम सुजान को देखा। जो माया के पति कृपालु और षडैश्वर्य सम्पन्न थे।

व्याख्या. उदर माँझ सुनु अण्डजराया। देखेउँ बहु ब्रह्माड निकाया। कहकर जिस प्रसङ्ग का आरम्भ किया था उसी का राम उदर देखेउँ जग नाना कहकर उपसहार कर रहे हैं। वे ब्रह्माण्ड ऐसे सुन्दर थे कि देखते ही बन पडता था और ऐसे अद्भुत थे कि उनका बखान नही हो सकता। जिस ब्रह्माण्ड मे वे रामजी के उदर मे गये थे, उनके उदर म भी वही ब्रह्माण्ड देख रहे है। उसमे उनका आश्रम है अयोध्या है जहाँ जन्म महोत्सव हो रहा था। जन्मोत्सव के बाद कुछ बडे होने पर

भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैंने उसी मायापति कृपाल भगवान् सुजान रामचन्द्र को देखा। बात समझ मे न आयी कि क्या बात है मैं रामजी के पेट के भीतर हूँ कि बाहर हूँ।

करौं बिचार बहोरि बहोरी। मोह कलिल ब्यापित मति मोरी ॥
उभय घरी महँ मै सब देखा। भयउँ भ्रमित मन मोह बिसेखा ॥४॥

अर्थ मैं बार बार विचार करता हूँ। मेरी बुद्धि मोहरूपी कीचड से व्याप्त हो रही थी। मैंने यह सब दो घडी मे देखा। मेरे मन मे विशेष मोह बढ गया थकावट आ गयी।

व्याख्या भुसुण्डिजी बार बार विचार करते हैं कि मैं कहाँ हूँ। क्या देखता हूँ। मैं तो रामजी के पेट मे चला गया था। पेट मे इतने ब्रह्माण्ड कहाँ से आये। जिसमे रामजी थे वह ब्रह्माण्ड कहाँ से आगया। स्वय रामजी अपने पेट मे कैसे चले आये। कोई निर्णय नही कर पाते। उनकी बुद्धि मोह के दलदल मे फँस गयी। भुसुण्डिजी कहते हैं कि यह सब मैंने दो घडी मे देखा। बात समझ मे नही आयी। मोह और बढ गया। इस प्रपञ्च को देखते देखते मैं थक गया।

दो देखि कृपाल बिकल मोहि, बिहँसे तब रघुबीर।
बिहँसत ही मुख बाहेर, आयेउँ सुनु मति धीर ॥८२ क.
सोइ लरिकाई मोसन, करन लगे पुनि राम।
कोटि भाँति समुझावौं, मन न लहै बिश्राम ॥८२॥

अर्थ कृपालु राम मुझे विकल देखकर हँस पडे। हे मतिधीर! उनके हँसते ही मैं मुख से बाहर निकल आया वही लडकपन रामजी फिर मुझसे करने लगे। अब मैं अपने मनको कोटि भाँति से समझाता हूँ परन्तु उसे विश्राम नही होता।

व्याख्या सरकार कृपालु हैं दास की विकलता सह्य नही है अत फिर हँस पडे। भुसुडिजी कहते हैं कि पहिल हँसने मे मैं पेट के भीतर चला गया था और इस बार के हँसने मे बाहर निकल आया। माया ही मन है और मनोविकास ही हास है। अत दूसरे हास म माया पलटा खा गयी। मै बाहर आगया। आवत निकट हँसहि प्रभु भाजत रुदन कराहि। जाउँ समीप गहन पद पुनि पुनि चितै पराहि। यह लीला फिर आरम्भ हुई। समझना तो यह चाहा था कि कौन चरित्र करन प्रभु चिदानद सदोह। वह बात तो समझ मे आयी नही और अगनित आश्चर्य की बातें सामने आगयी। जो कुछ भी समझ नही पडती। मनको भुसुडिजी समझाते हैं कि हरिकी माया अघटितघटनापटीयसी है। वह सब कुछ कर सकती है। इत्यादि परन्तु मनको शान्ति नहीं होती। प्रत्यक्ष देखी हुई बात को माया कैसे कह दें। सौ कल्प के अनुभव को दो घडी का अनुभव कैसे स्वीकार लें।

चरित माधुरी को यथा पार न परै लखाय।
तथा महा ऐश्वर्य की महिमा कही न जाय॥

कल्प होइ छन में जहाँ बिन्दुहि सिंधु समाय।
तहाँ बुद्धि की कौन गति नाहक मन भरमाय॥
अणु ते छोटो श्रुति कहैं नभ ते अधिक महान्।
अतिहि दूर अतिही निकट अति अद्भुत भगवान॥
सो कछु निज आँखिन लख्यो पै मन नाहि समाय।
ज्यों ज्यों सुरझावन चह्यों त्यों त्यों मति अरझाय॥
कहां महामहिमा अगम कहँ शैशव खेलवार।
एहि असमजस ते भक्त केहि विधि ते निस्तार॥

देखि चरित येह सो प्रभुताई। समुझत देह दसा बिसराई॥
धरनि परेउँ मुख आवन बाता। त्राहि त्राहि आरत जन त्राता॥१॥

अर्थ : यह चरित्र देखकर और वह प्रभुता समझकर मुझे देहकी दशा भूल गयी। मैं पृथिवीपर लोट गया। मुँह से बात नही निकलती थी। हे आर्तों के रक्षा करनेवाले! रक्षा करो रक्षा करो : यही कहने लगा।

व्याख्या : चरित्र तो ऐसा कर रहे हैं जैसा कोई प्राकृत बालक करता हो : आवत निकट हँसहिं प्रभु भाजन रुदन कराहिं। जाउँ समीप गहन पद फिरि फिरि चितै पराहिं। और प्रभुता ऐसी है कि कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगनित उडगन रवि रजनीसा। इत्यादि : पेट में हैं। इन दोनो बातों का सामञ्जस्य बिठाने मे देहका ऐसा विस्मरण हो गया कि मैं खडा न रह सका पृथिवी पर जा पड़ा। ऐसा प्रेम मन मे उमगा कि मुझसे कोई वाणी न निकल सकी त्राहि त्राहि करने लगा। भुसुंडिजी मुख से बाहर होने पर भी माया से विनिर्मुक्त नही हैं। आचर्य और भी बढ गया। सर्वाश्चर्यमय हरि के ऐश्वर्य और माधुर्य दोनो रूप के दर्शन से महा आनन्द भी है और महा आश्चर्य भी है। लीला एकबारगी समझ मे नही आ रही है। माया के वेग के सहने मे एकदम असमर्थ होकर आर्त हो गये और त्राहि त्राहि करके शरणागत हुए।

प्रेमाकुल प्रभु मोहि बिलोकी। निज माया प्रभुता तब रोकी॥
करसरोज प्रभु मम सिर धरेऊ। दीन दयाल सकल दुख हरेऊ॥२॥

अर्थ : सरकार ने मुझे प्रेम मे व्याकुल देखकर अपनी माया की प्रभुता को रोका। दीनदयाल ने मेरे सिर पर कमल सा हाथ रखा और सब दु:ख हरण कर लिया।

व्याख्या : प्रेमाधिक्य में बडी व्याकुलता होती है। सयोग मे भी वियोग सा कष्ट होने लगता है। इतने बडे प्रभु की इतनी बड़ी कृपा कि मुझ ऐसे तुच्छ के साथ खेल रहे हैं और मेरी इतनी ढिठाई कि वे पकडने चलते हैं तो मैं भागकर उनसे बचना चाहता हूँ। मुझे इतना भी ज्ञान नही कि वे सर्वत्र है। उनके भीतर बाहर का भेद नही है। मेरे सन्देह मिटाने के लिए अपनी अनन्त प्रभुता मे से थोड़ी सी

दिखा देने का कष्ट भी किया। फिर भी अप्रसन्नता नही वही लड़कपन मुझसे फिर करना आरम्भ कर दिया। यह बचपन का अज्ञान और इतनी बड़ी महा प्रभुता दोनो का एकत्र अवस्थान कैसे है ? इस प्रकार सरकार के गुणग्रामों के स्मरण से अनुराग का समुद्र उमड़ पड़ा। भुसुंडिजी को उसमे निमग्न होते देखकर अपनी माया की प्रभुता को रोक दिया। उन्ही की प्रेरणा से माया प्रभुता दिखला रही थी। विकल देखकर विहँसे थे। प्रेमाकुल देखकर माया को रोकते हैं।

अब रोकने की प्रक्रिया कहते हैं कि सरकार ने मेरे सिरपर हाथ रख दिया। जिसके लिए महाभक्त लोग लालायित रहते हैं। यथा : प्रभु करपकज कपि के सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा। तथा : कबहुँ सो करसरोज रघुनायक रखिहौ नाथ सीस मेरे। जेहि कर अभय किये जन आरत वारक विवस नाम टेरे। सीतल सुखद छाँह जेहि कर की मेटति पाप ताप माया। निसिवासर तेहि कर सरोज की चाहत तुलसिदास छाया।

कीन्ह राम मोहि विगत विमोहा। सेवक सुखद कृपा संदोहा ॥
प्रभुता प्रथम विचारि विचारी। मन महँ होइ हरख अति भारी ॥३॥

अर्थ : रामजी ने मुझे मोह से विनिर्मुक्त कर दिया। क्योंकि सेवक को सुख देनेवाले और कृपानिधान हैं। पहिली प्रभुता को विचार विचारकर मेरे मन मे बड़ा हर्ष हो रहा था।

व्याख्या : मोह के जाने का अन्य उपाय नही। उनकी कृपा से ही मोह छूटता है। यथा : क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहि सकल राम की दाया। और रामजी सेवक सुखद तथा कृपासन्दोह है। हम अपने को उनकी कृपा का पात्र नही बनाते। अपने ही अभिमान मे भूले रहते है। आर्त नही होते।

अब मोहमुक्त होने से पहिली प्रभुता के बारम्बार विचार से मन मे बड़ा भारी हर्ष होने लगा। आश्चर्य हर्ष मे परिणत हो गया। मूढ को माधुर्य देखकर ऐश्वर्य पर अविश्वास होता है और भक्त को माधुर्य देखकर बड़ा आनन्द होता है।

भगत बछलता प्रभु कै देखी। उपजी मम उर प्रीति बिसेखी ॥
सजल नयन पुलकित कर जोरी। कीन्हिउ बहुबिधि बिनय बहोरी ॥४॥

अर्थ : प्रभु की भक्तवत्सलता देखकर मेरे हृदय मे विशेष प्रीति उपजी। आँखो मे आँसू भर आया। रोंगटे खडे हो गये। हाथ जोड़कर बहुत विधि से मैंने विनय किया।

व्याख्या : सरकार ऐसे भक्तवत्सल हैं कि भक्त के लिए ही बहुत सी लीला कर रहे हैं और उसमे यदि भक्त को भ्रम हो तो उसे दूर करने के लिए उसे अपने पेट मे ले जाकर ऐश्वर्य का प्रदर्शन कर देते हैं। भक्त से कोई छिपाव नही। वह देखने मे असमर्थ होता है। त्राहि त्राहि करता है तो जैसे वह सुखो हो वैसा कर देते हैं। काग के सिर पर भी वह अभय देनेवाला हाथ घूमता है। यह देखकर भुसुण्डिजीके हृदय

मे विशेष प्रीति का उदय हुआ। यथा : भेद भक्ति बाढ़ै बिहग वर। विद्या की प्रेरणा से यही तात्पर्य था। तब भुसुण्डिजो को सात्त्विक भाव हुआ। आनन्द मे विभोर होकर अनेक भाँति से स्तुति करने लगे।

दो. सुनि सप्रेम मम बानी, देखि दीन निज दास।
बचन सुखद गंभीर मृदु, बोले रमा निवास ॥८३ क.
कागभुसुडी माँगु बर, अति प्रसन्न मोहि जानि।
अनिमादिक सिधि अपर रिधि, मोक्ष सकल सुखखानि ॥८३॥

अर्थ मेरी प्रेम भरी वाणी सुनकर और मुझे दीन तथा निज दास जानकर सुख देनेवाली गम्भीर और मृदु वाणी रमानिवास भगवान् बोले।

व्याख्या . रामहि केवल प्रेम पिआरा। जानि लेहु जो जाननिहारा। अत. भुसुण्डिजो की प्रेम भरी वाणी सुनकर भगवान् प्रसन्न हो गये। रमानिवास हैं। सम्पूर्ण ऐश्वर्य के स्वामी हैं। अत सुखद मृदु और गम्भीर वाणी बोले ' काग भुसुडी माँगु बर। यह वाणी का सुखदातृत्व है : अति प्रसन्न मोहि जानि। यह मृदुता है और . अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोक्ष सकल सुख खानि। यह गम्भीरता है। चारो फल देने की बात वाणी मे है। फिर भी भक्त की परीक्षा हो रही है।

ग्यान विवेक बिरति बिग्याना। मुनि दुरलभ गुन जे जग नाना ॥
आजु देउँ सब ससय नाही। माँगु जो तोहि भाव मन माही ॥१॥

अर्थ . ज्ञान विवेक वैराग्य विज्ञानादि जो ससार मे प्रख्यात मुनिदुर्लभ गुण हैं वे सब आज तुझे देता हूँ। इसम सशय नही। जो तुझे अच्छा लगे सो माँग।

व्याख्या . दो सुख हैं। एक प्रेय और दूसरा श्रेय। सासारिक सुख प्रेय कहलाता है और मोक्ष श्रेय कहलाता है। सो जो प्रेय चाहता है उसके हाथ से श्रेय निकल जाता है और श्रेय चाहनेवाले को प्रेय छोडना पडता है। दिव्यातिदिव्य वैषयिक सुख सभी प्रेय के अन्तर्गत हैं। सरकार अणिमादिक आठो सिद्धियाँ तथा सम्पूर्ण ऋद्धियाँ अर्थात् ऐश्वर्य देने को . अर्थात् प्रेय देने को प्रस्तुत हैं। तथा सकल सुखखानि मुक्ति देने को तैयार हैं अर्थात् श्रेय के लिए भी तैयार हैं।

परन्तु कैसा ही सुखी प्राणी हो यदि उसमे गुण नही है तो उसकी शोभा नही। सुरदुर्लभ सुख देना कहकर अब मुनिदुर्लभ गुण ज्ञान विवेक वैराग्य विज्ञान देने को कहते हैं। सबकी अनायास प्राप्ति तुझे आज होगी। ये सब तो मैं अपने मन से देने को तैयार हूँ। यदि इनसे अतिरिक्त कुछ दूसरी वस्तु तू चाहता हो तो उसे माँग मैं वह भी दूँगा।

सुनि प्रभु बचन अधिक अनुरागेउँ। मन अनुमान करन तब लागेउँ ॥
प्रभु कह देन सकल सुख सही। भगति आपनी देन न कही ॥२॥

अर्थ : प्रभु का वचन सुनकर मैं अधिक प्रेम में आगया और मन में अनुमान करने लगा कि प्रभु ने सब सुख देना तो कहा पर अपनी भक्ति देना नहीं कहा।

व्याख्या : पहिले ही प्रभु की भक्तवत्सलता देखकर हृदय में विशेष प्रीति उत्पन्न हुई थी। अब प्रभु के उपर्युक्त वचन सुनकर अधिक अनुराग बढ़ा। तब मन में तर्क करने लगा कि प्रभु ने अन्त में कहा कि जो तुझे अच्छा लगे सो माँग। तो क्या प्रभु के कहने में कोई सुख छूट गया? यदि छूटा तो क्या छूटा? यह तर्क मन में उठा। देखा कि बड़ा भारी सुख छूट गया है। भक्ति की तो चर्चा भी इसमें सरकार ने नहीं की। अपनी भक्ति माँगने की चर्चा स्वयं न करेंगे। इसलिए अन्त में कहा कि : मांगु जो तोहि भाव मन माँहीं।

भगति हीन गुन सब सुख ऐसे। लवन बिना बहु बिंजन जैसे॥
भजन हीन सुख कवने काजा। अस बिचारि बोलेउँ खगराजा॥३॥

अर्थ : भक्ति के बिना गुण और सम्पूर्ण सुख कैसा है? जैसा बिना लवण का बहुत सा व्यञ्जन। भजन हीन सुख किस काम का? ऐसा विचारकर हे खगराज! मैं बोला।

व्याख्या : यदि सरकार की भक्ति ही नहीं तो इन गुणों और सुखों को लेकर क्या करना है? : तव पदपंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुंदर। भक्ति बिना तो सभी निष्फल हैं। अलोना व्यञ्जन किस काम का? स्वाद तो भक्ति है। इसी के योग से सभी साधन स्वादु हो उठते हैं और इसके बिना सब फोके रहते हैं।

जब सुख स्वरूप रघुवंश मणि का भजन ही न हुआ तो अन्य सुख किस काम का? जब क्लेश ही नहीं मिटा तो सुख लेकर क्या होगा? यथा : ऐसेहि हरि बिनु भजन खगेसा। मिटइ न जीवन केर कलेसा। यह सब विचारकर हे खगराज! मैं बोला।

जौं प्रभु होइ प्रसन्न बर देहू। मोपर करहु कृपा अरु नेहू॥
मन भावत बर मागौं स्वामी। तुम्ह उदार उर अंतरजामी॥४॥

अर्थ : यदि प्रभु प्रसन्न होकर वर दे रहे हैं और यदि मुझपर कृपा और प्रेम है तो मैं मनचाहा वर माँगता हूँ। सरकार उदार हैं और हृदय के प्रेरक हैं।

व्याख्या : सरकार ने कहा कि : कागभुसुंडी मांगु बर अति प्रसन्न मोहि जानि। सरकार स्वयं प्रसन्न होकर वर माँगने को कह रहे हैं। मैंने वर के लिए कोई तपस्या नहीं की है। सरकार की मुझपर कृपा है और स्नेह है। इसलिए वर दे रहे हैं। तब तो मैं जो चाहता हूँ सो लूँगा। उदार से ही ईप्सित की प्राप्ति होती है। फिर सरकार-सा उदार कौन होगा? और यह बात भी है कि सरकार सबके हृदय के प्रेरक हैं। सरकार की प्रेरणा भी है तभी मैं यह माँग रहा हूँ।

दो अबिरल भक्ति बिसुद्ध तव, स्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि, प्रभु प्रसाद कोउ पाव ॥८४ क
भगत कल्पतरु प्रनत हित, कृपा सिंधु सुखधाम।
सोइ निज भक्ति मोहि प्रभु, देहु दया करि राम ॥८४॥

अर्थ जो आपकी अविच्छन्न विशुद्ध भक्ति है जिसे वेद पुराण गाता है। योगेश्वर और मुनि जिसे खोजते हैं। पर सरकार की कृपा से किसी को ही मिलती है। हे भक्तकल्पतरु! हे प्रणतहित! हे कृपासिन्धु! हे सुखधाम राम! वही अपनी भक्ति मुझे कृपा कर दीजिये।

व्याख्या जो भक्ति सदा बनी रहे कभी उसमे भङ्ग न हो उसे अविरल कहते हैं और जो भक्ति फलाभिषङ्ग रहित हो उसे विशुद्ध कहते हैं। जो विरति और विवेक के साथ हो उसे श्रुतिसम्मत कहते हैं। यहाँ भुसुण्डिजी विशेषणत्रयविशिष्ट भक्ति चाहते हैं। और उसी के विषय मे कहते हैं कि योगीन्द्र मुनीन्द्र उसी भक्ति की खोज मे रहते हैं पर मिलती नही। प्रभु के प्रसाद से किसी को मिल जाती है। उसी दुर्लभ भक्ति के लिए कहते हैं कि कृपा करके मुझे दीजिय। सरकार भगत कल्पतरु हैं इसलिए अविरल भक्ति दीजिये। प्रणतहित हैं इसलिए विशुद्ध भक्ति दीजिये। कृपासिन्धु है इसलिए श्रुतिसम्मत भक्ति दीजिये और सुखधाम हैं इसलिए दुलभा भक्ति दीजिये। यद्यपि भक्ति एक ही है पर सरकार के विशेषणो के साथ भक्ति के विशेषणो को मेल खाते देखकर पृथक् पृथक् करके दिखायी गयी हैं।

एवमस्तु कहि रघुकुल नायक। बोले बचन परम सुखदायक ॥
सुनु बायस तइ सहज सयाना। काहे न माँगसि अस बरदाना ॥१॥

अर्थ रघुकुलनायक एवमस्तु कहकर परम सुखदायक वचन बोले। हे वायस! सुन तैं स्वभाव से ही सयाना है तू ऐसा वरदान क्यो न माँगे।

व्याख्या प्रिय के वचन तो प्रिय होते ही हैं। उनके व्यग्य वचन और भी प्रिय होते हैं। यथा मन ही मन महेस मुसुकाही। हरि के व्यग वचन नहिं जाही। अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे। भृगिहि प्ररि सकल गन टेरे। सो यहाँ पर सरकार व्यग्य से भुसुण्डिजी को सम्बोधन करते हैं। अत वह वचन परम सुखदायक है। अथवा एवमस्तु ऐसा ही हो यह वचन परम सुखदायक है और व्यग्य के साथ जो आगे कहेगे वह परम सुखदायक है।

यहाँ वायस सम्बोधन मे व्यग्य है। पक्षिणा वायसा धूर्ता। पक्षियो मे वायस धूर्त होते हैं इसलिए कहते हैं कि स्वभाव से ही सयाना है। मेरे बतलाये हुए सुरदुलभ गुणो पर नही गया। अपने मन का ऐसा वरदान माँगा जिसमे सब कुछ मिल जाय।

सब सुख खानि भगति तैं माँगी। नहि जग कोउ तोहिसम बडभागी ॥
जो मुनि कोटि जतन नहि लहही। जे जप जोग अनल तन दहही ॥२॥

अर्थ : संसार में कोई तुझ सा बड़ाभागी नही है। क्योंकि सब सुखों की खानि उस भक्ति को तैने माँगी। जिस भक्ति को मुनि जो कि जप योग की अग्नि में देह को जलाया करते हैं। करोड़ों यत्न करने पर भी नही प्राप्त करते।

व्याख्या : पहिले कहा है कि मोक्ष सकल सुख खानि अब कहते हैं सब सुख खानि भगति। भाव यह कि ज्ञानहि भगतिहि नहि कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा। इसलिए दोनों सुख की खानि कही गयी। फिर भी भक्ति माँगनेवाला बड़भागी है क्योंकि भक्ति से भगवान् वश्य हो जाते हैं। यथा : निर्वान दायक क्रोध जाकर भगति अवसहि बस करी।

भगवान् कहते हैं कि जो भक्ति तैने माँगा है वह परं दुर्लभ है। भक्तियो मे भी अविरल भक्ति और वह भी विशुद्ध तिसपर श्रुतिसम्मत भक्ति मुनियो को भी करोड़ो यत्न से नही मिलती। कैसे मुनि ? जिन्होंने कि जप और योगाग्नि से शरीर को तपा रक्खा है : ऐसी दुर्लभा भक्ति तैने माँगी।

रीझेउँ देखि तोरि चतुराई। माँगेहु भगति मोहि अति भाई ॥
सुनु बिहंग प्रसाद अब मोरे। सब सुभगुन बसिहहिं उर तोरे ॥३॥

अर्थ : तेरी चतुराई देखकर मैं रीझ गया। तूने भक्ति माँगा जो मुझे अत्यन्त प्यारी है। हे पक्षि ! सुन अब मेरी कृपा से सब शुभगुण तेरे हृदय मे बसेंगे।

व्याख्या : भजन मे चतुराई बड़ी बाधक है। यथा : मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई। पर भगवान् कहते हैं कि तेरी चतुराई ऐसी है कि मैं उस पर रीझ गया। क्योंकि तूने ऐसी वस्तु माँगी जो मुझे अत्यन्त अच्छी लगती है। यथा : भक्तिवन्त अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रान प्रिय असि मम बानी।

भक्ति पर सरकार का बड़ा अनुग्रह होता है। अतः कहते हैं कि तू पक्षी है। फिर भी मेरी कृपा से अब सब शुभगुण तेरे हृदय मे निवास करेंगे। जिस पर सरकार की कृपा होती है उसी को शुभगुण वरण करते हैं।

भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। जोग चरित्र रहस्य बिभागा ॥
जानब तैं सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहि साधन खेदा ॥४॥

अर्थ : भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, विराग, योग, चरित्र और रहस्य विभाग तैं इन सब का भेद मेरे प्रसाद से जानेगा साधन का कष्ट तुझे उठाना न पड़ेगा।

व्याख्या : जिससे ऐसा बोध होता है कि मैं बुद्धि प्राण मन देह और अहङ्कारादि से विलक्षण हूँ : नित्य शुद्ध बुद्ध चेतन आत्मा हूँ वही ज्ञान है। जिस जिस समय इसका साक्षात् अनुभव होता है उस समय इसी को विज्ञान कहते हैं। इस लोक और परलोक के फल भोग से मन के हटने को विराग कहते हैं। समाधि को योग कहते हैं। अवतार की लीला को चरित्र कहते हैं। चरित्र का वह विभाग जो कि गोप्य है उसे रहस्य कहते हैं। परम प्रेम को भक्ति कहते हैं। भक्ति की प्राप्ति से शेष सबा की प्राप्ति हो जाती है। इसलिए भक्ति को पहिले कहा। भगवान् कहने

है कि तू इन सब के भेद को जानेगा। और उस जानकारी के लिए जिन साधनों की आवश्यकता होती है और उसमे जो आयास होता है वह आयास मेरी कृपा से तुझे न होगा और तू सब जान जायगा।

दो. माया संभव भ्रम सब, अब न ब्यापिहहि तोहि।
जानेसु ब्रह्म अनादि अज, अगुन गुनाकर मोहि ॥८५ क.
मोहि भगत प्रिय संतत, अस बिचारि सुनु काग।
काय बचन मन मम पद, करेसु अचल अनुराग ॥८५॥

अर्थ : माया से उत्पन्न जो भ्रम हैं वे सब तुम्हे अब न व्यापेंगे। मुझे ब्रह्म अनादि अज अगुण और गुणाकर जानना। मुझे सदा भक्त प्रिय हैं ऐसा विचार करके हे काग सुन! मनसा वाचा कर्मणा मेरे चरण मे अचल अनुराग करना।

व्याख्या : भगवान् कहते हैं कि माया से उत्पन्न जो भ्रम है वे अब तुझे न व्यापेंगे। मैंने तेरे लिए माया की प्रभुता अब रोक दी है। मुझ बालक रूप राम को अनादिब्रह्म जानना मेरा जन्म नही होता। मैं नित्य निर्गुण होने पर भी गुणो का आकर हूँ ऐसा मुझे समझना। यही दिव्य जन्म कर्म है।

इस भाँति ज्ञान कथन करके अब भक्ति कहते हैं कि मुझे सदा भक्त प्यारे हैं। भक्त के लिए मैं शरीर धारण करता हूँ और सब कुछ करता हूँ। ऐसी मेरी प्रीति समझकर मेरे चरणो मे अचल प्रेम रखना। मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। वर देने पर भी उपदेश देने का तात्पर्य यह है कि ईश्वर कृपा तो हो चुकी। अब आत्मकृपा मे प्रमाद न करना। अपनी ओर से त्रुटि न आने देना जो अलभ्य वस्तु मिली है उसकी रक्षा करना।

अब सुनु परम बिमल मम बानी। सत्य सुगम निगमादि बखानी ॥
निज सिद्धान्त सुनावौ तोही। सुनि मन धरु सब तजि भजु मोही ॥१॥

अर्थ : अब परम निर्मल मेरी वाणी सुनो। जो कि सत्य है सुगम है और जिसे वेदादि शास्त्रो ने वर्णन किया है। अपना सिद्धान्त तुम्हे सुनाता हूँ। सुनकर मन मे धारण करो कि सब छोडकर मुझे भजो।

व्याख्या : सत्य वाणी ही निर्मल वाणी है। वह यदि क्लिष्ट न हो तो परम निर्मल है और वह यदि वेदादि शास्त्रोक्त भी हो तब तो वह ईश्वरीय वाणी ही है। यहाँ पर अपना सिद्धान्त कह रहे हैं अतः पर विमलादि विशेषण दिया। अब कहते हैं कि इस वाणी को सुनकर मन मे धारण करो मन से निकल न जाने न पावे। वह यह है कि : सर्वं त्यक्त्वा हरिं भजेत्। सब काम छोडकर भगवान् का भजन करे। यह बात नही कि सब काम से छुट्टी पालेंगे तब भजन करेंगे। बात यह होनी चाहिए कि भजन से छुट्टी पालेंगे तब दूसरा काम करेंगे। पूरा श्लोक ऐसा है : शत विहाय भोक्तव्य सहस्र स्नानमाचरेत्। लक्ष विहाय दातव्यं सर्वं त्यक्त्वा हरिं भजेत्।

अथवा सुख सपति परिवार बडाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई। ये सब राम भगति के बाधक। कहहिं सन्त तव पद अवराधक। सत्रु मित्र सुख दुख जग माहीं। माया कृत परमारथ नाहीं। अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँति। सब तजि भजन करौ दिन राती।

मम मायासभव ससारा। जीव चराचर बिबिध प्रकारा॥
सब मम प्रिय सब मम उपजाये। सब ते अधिक मनुज मोहि भाये॥२॥

अर्थ यह ससार मेरी माया से उत्पन्न है। अनेक प्रकार के जो जीव हैं सो सब मुझे प्रिय हैं। क्योंकि मैंने इन्हे उत्पन्न किया है। सबसे अधिक मुझे मनुष्य अच्छे लगते हैं।

व्याख्या भगवान् कहते हैं आदि सक्ति जेहि जग उपजाया। सो अवतरिय मोरि यह माया। लव निमेष महँ भुवन निकाया। रचै जासु अनुसासन माया। भगवद्गीता मे भी कहा है, मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्। सम्भव सर्वभूताना ततो भवति भारत। अह बीजप्रद पिता। जितने चराचर जीव हैं वे मेरी माया से उत्पन्न हैं, मैंने उन्हे उत्पन्न किया है। इसलिए सब मुझ प्रिय हैं। जीवमात्र मे कोई मुझे अप्रिय नही है। अत प्राणिमात्र पर सद्भावना करनी चाहिए। इनमे भी मनुष्य मुझे बहुत अच्छे लगते हैं। क्योकि इसी देहम मेरी भक्ति उदय होती है। यथा मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय पीके।

तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ स्रुति धारी। तिन महँ निगम धर्म अनुसारी॥
तिनमहुँ प्रिय विरक्त पुनि ग्यानी। ग्यानिहु ते अतिप्रिय बिग्यानी॥३॥

अर्थ इनमे ब्राह्मण और उनमे भी श्रोत्रिय उनमे भी वैदिक धर्म पालन करनेवाला उनमे भी विरक्त और उनमे भी ज्ञानी। ज्ञानियो मे भी विज्ञानी अत्यन्त प्रिय है।

व्याख्या सरकार कहते हैं कि मनुष्यो म भी मुझे ब्राह्मण प्रिय है क्योकि जाति आयु और भोग पूर्व जन्म के कर्मानुसार मिलता है। जो पूर्व जन्म मे रमणीयाचरण हैं वे ब्राह्मण क्षत्रियादि होते हैं। इस जन्म म शील गुण हीन होने पर भी पूर्व जन्म के पुण्य से वे पूजे जाते हैं। जैसे धनी के लडके बिना पुरुपार्थ धन के भागी होते हैं। यथा पूजिअ विप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना। सुनु गधर्ब कहौं मैं तोही। मोहि न सोहाय ब्रह्मकुलद्रोही। अथवा यथा तुलसी अश्वत्थ वट आदि के अपने कल्याण मे असमर्थ होने पर भी पूजनेवाले का कल्याण तो हो ही जाता है। इसी भाँति ब्राह्मण जाति के भी पूजन से कल्याण है।

उनमे भी श्रुतिधारी अधिक प्रिय हैं क्योंकि उनमे वेद प्रतिष्ठित हैं। उनके लिए तो भक्ति के साधन म कहा गया है प्रथमहि बिप्र चरन अति प्रीती। ऐसे ब्राह्मणो

---

१ यहाँ सारालङ्कार है।

मे भी जो नियम धर्मानुसारी हैं वे अधिक प्रिय हैं। क्योंकि वे पूरे ब्राह्मण हैं। उनमे तप श्रुति और जन्म तीनो हैं। यथा तप श्रुतश्च योनिश्च ह्येतद्ब्राह्मणकारकम्। तप श्रुताभ्या यो हीन जातिब्राह्मण एव स।

उनमे भी जो विरक्त हैं वे और भी अधिक प्रिय हैं। यथा नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्मब्रतधारी। धर्म सील कोटिक महँ कोई। बिषय बिमुख बिराग रत होई। कोटि बिरक्त मध्य स्रुति कहई। सम्यक ज्ञान सकृत कोउ लहई। तिन सहस्र महँ सब सुखखानी। दुर्लभ ब्रह्मलीन बिज्ञानी। इसलिए सरकार कहते हैं कि विरक्तो म भी मुझे ज्ञानी प्रिय हैं और उनसे भी अधिक विज्ञानी प्रिय है।

तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा॥
पुनि पुनि सत्य कहौ तोहि पाही। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाही॥४॥

अर्थ उनसे भी मुझे अपना दास प्रिय है जिसे मेरी ही गति है। दूसरी आशा नही है। बार बार तुझसे सत्य कहता हूँ कि मुझे सेवक सा प्रिय कोई नही।

व्याख्या सरकार का वचन है कि मोरे प्रौढ तनय सम ज्ञानी। बालक सुतसम दास अमानी। प्रौढ भये तेहि सुत पर माता। प्रीति करै नहि पाछिल बाता। एहि बिचारि पडित मोहि भजही। पायेहु ज्ञान भगति नहि तजही। अत दास विज्ञानी से भी प्रिय है। अब दास की परिभाषा कहते हैं कि जिस भाँति शिशु को माता ही गति रहती है उसे दूसरी आशा नही। इसी भाँति दास की गति प्रभु हैं। उसे दूसरे की आशा नही। दूसरे की हुई तो वह दास कैसा ? मोर दास कहाइ नर आसा। करै तो कहहु कहाँ बिस्वासा।

भुसुण्डिजी को आश्वासन देते हुए सरकार कहते हैं कि बार बार तुझसे सत्य कहता हूँ कि सेवक के समान मुझे कोई प्रिय नही है। यहाँ सेवक और दास एक ही अर्थ म आया है। विज्ञान की भाँति सेवक ने सब अभिमान का त्याग किया है फिर भी सेवक सेव्य भाव बनाये रखता है। यथा अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे।

भगति हीन बिरचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई॥
भगतिवत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रान प्रिय असि मम बानी॥५॥

अर्थ यदि ब्रह्मदेव भी भक्तिहीन हो तो वे भी मुझे सब जीवो की भाँति ही प्रिय हैं और यदि अति नीच प्राणी भी भक्त हो तो वह मुझे प्राणप्रिय है यह मेरा वचन है।

व्याख्या यथा रामहि केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननिहारा। जो रामजी से प्रेम करता है उससे वे विशेष प्रेम करते हैं। नही तो प्राणिमात्र सरकार के प्रिय हैं। ब्रह्मदेव का बडा ऊँचा दर्जा है। पर वे भी सरकार को प्रिय तभी हो सकते हैं यदि उनम भक्ति हो। नही तो इतना ऊचा पद पाने पर भी सरकार के प्रेम म उच्चपद नही प्राप्त कर सकते और यदि कोई अति नीच है जासु

छाँह छुई लेइअ सींचा । उसे भी यदि भक्ति है तो भले ही संसार उसे कुछ न समझे पर है वह सरकार का प्यारा । यथा : तुलसी भगत स्वपच भलो भजै रैनदिन राम ऊँचो कुल केहि काम को जहाँ न हरि को नाम । अति ऊँचे भूधरन्ह पै भुजग के अस्थान । तुलसी अति नीचे सुखद ऊख अन्न अरु पान ।

दो. सुचि सुसील सेवक सुमति, प्रियकहु काहि न लाग ।
स्त्रुति पुरान कह नीति असि, सावधान सुनु काग ॥८६॥

अर्थ : पवित्र, सुशील, सुमति सेवक कहो किसे प्रिय नहीं लगेगा । हे काग सावधान होकर सुन । वेद पुराण ने ऐसी ही नीति बतलायी है ।

व्याख्या : भाव यह कि प्रभु जो इस प्रकार से भुसुण्डिजी पर कृपा कर रहे हैं उसका कारण बतलाते हैं कि एवं गुणगण विशिष्ट सेवक सबको प्रिय होते हैं । वेद पुराण की भी यही नीति है । सो तू शुचि, सुशील, सुमति सेवक है अतः मुझे प्रिय है । भुसुण्डिजी की सुशीलता यथा : जौं प्रभु होइ प्रसन्न बर देहू । मो पर करहु कृपा अरु नेहू । मन भावत बर माँगौं स्वामी । तुम्ह उदार उर अन्तरजामी । भुसुण्डिजी की शुचिता यथा : भजन हीन सुख कौने काजा । भुसुण्डिजी की सुमति यथा : प्रभु कह देन सकल सुख सही । भगति आपनी देन न कही । भगति हीन गुन सब सुख कैसे । लवन बिना बहु बिंजन जैसे ।

एक पिता के बिपुल कुमारा । होहिं पृथक गुन सील अचारा ॥
कोउ पंडित कोउ तापस ज्ञाता । कोउ धनवंत सूर कोउ दाता ॥१॥

अर्थ : एक पिता के बहुत से लड़के होते हैं । पर उनका गुण शील और आचार पृथक् पृथक् होता है । कोई पण्डित होता है कोई तपस्वी होता है कोई जानकार होता है । कोई धनी होता है कोई शूर होता है कोई दाता होता है ।

व्याख्या : उपर्युक्त सिद्धान्त को अब उदाहरण देकर समझाते हैं । जिसमें कोई यह न कहे कि सरकार भी पक्षपात करते हैं । भक्त के ऊपर अनुग्रह विशेष होना नीति है और वह श्रुति पुराण से अनुमोदित है । यहाँ पिता पुत्र का उदाहरण देकर उस नीति को समझाया । इस जगत् के सरकार पिता हैं । यथा : पिताहमस्य जगतः माता धाता पितामहः । अतः पिता पुत्रका उदाहरण बिल्कुल ठीक बैठता है । एक पिता के अनेक पुत्र होते हैं पर वे एक से नहीं होते । इसी भाँति सब प्राणी संसार के अमृतस्य पुत्राः भगवान् के पुत्र होने पर भी एकसे नहीं हैं । रूपमें तो भेद है ही सबके गुण कर्म स्वभाव में भी भेद है । उसीको दिखाते हुए कहते हैं कि सबके गुण शील और आचार अलग अलग होते हैं ।

पिता एक है इसलिए सबका रक्त मांस एक है । एक प्रकार से सबका पालन पोषण हुआ है । एक प्रकार की शिक्षा दीक्षा मिली है फिर भी सबको विद्या नहीं होती । किसी एक को होती है । सब तपस्वी नहीं होते कोई एक होता है । इसी भाँति

उनमे से कोई एक ज्ञानी होता है। कोई धनी हो जाता है। कोई वीर निकलता है कोई दाता होता है।

कोउ सर्बग्य धर्मरत कोई। सब पर पितहि प्रीति सम होई॥
कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा। सपनेहु जान न दूसर धर्मा॥२॥

अर्थ : कोई सर्वज्ञ होता है कोई धर्मरत होता है। पिता की उन सब पर समान प्रीति होती है। कोई मनसा वाचा कर्मणा पिता का भक्त होता है सपने मे भी दूसरा धर्म नही जानता।

व्याख्या : कोई उनमे से सर्वज्ञ होता है। ऐसी शङ्का न करनी चाहिए कि नहि सर्वं सर्वं वेत्ति : सर्वज्ञ कोई होही नही सकता। क्योकि शास्त्रो मे सर्वज्ञ का लक्षण दिया हुआ है। परचित्तस्थित देशकालाद्यन्तरित तथा। यो जानाति समस्तार्थं स सर्वज्ञो निगद्यते। देशकालादि से अन्तर पडे हुए को तथा दूसरो के चित्त की बातो को जो जान लेता है। जो समस्त अर्थो को जानता है उसे सर्वज्ञ कहते हैं। अर्थात् यहाँ सर्वज्ञ से योगी का ग्रहण है और कोई धर्मात्मा होता है। एव गुण शील और आचार मे भेद रहते हुए भी सब पर पिता की प्रीति समान होती है। गुण शील तथा आचार के उत्कर्षापकर्ष से पिता की प्रीति मे उत्कर्षापकर्ष नही होता। पिता की प्रीति सब पर समान होती है। अर्थात् पाण्डित्य, तपस्या, ज्ञान, धन, शौर्य, उदारता, सर्वज्ञता और धर्म मे इतनी सामर्थ्य नही है कि पिता की प्रीति के साम्य मे अन्तर डाल सके।

अब एक पुत्र ऐसा है जो उपर्युक्त सभी गुणो से रहित है। परन्तु मनसा वाचा कर्मणा पिता का भक्त है। दूसरे धर्म का वह सपना भी नही देखता। अर्थात् उसकी बडी दृढ भक्ति पिता पर है।

सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना। जद्यपि सो सब भाँति अयाना॥
एहि बिधि जीव चराचर जेते। त्रिजगदेव नर असुर समेते॥३॥

अर्थ वह पुत्र पिता को प्रान के समान प्यारा है। यद्यपि वह सब भाँति से अज्ञ है। इसी प्रकार से जितने चराचर जीव हैं क्या तिर्यग् योनि क्या देवयोनि क्या नर योनि क्या असुर योनि।

व्याख्या : सब पुत्रो पर तो पिता की समान ममता है। सब पिता को प्यारे हैं पर वह भक्त पुत्र प्राण सा प्यारा है। भले ही उसमे विद्या तपस्या शूरतादि गुण नही है। भक्त के ऊपर अधिक प्यार न होना ही विषमता है। उसका प्राण के समान प्यारा होना ही पिता की समता है। रामजी जो पिता को प्राण से अधिक प्यारे थे इसका कारण भी यही था कि श्रीरामचन्द्रजी पिता के भक्त भी सबसे अधिक थे। लक्ष्मणजी ने कठोर वचन कहे भरतजी भी इतना कह बैठे कि भूप प्रतीति तोरि किमि कीन्ही। मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही। परन्तु रामजी ने

यही कहा कि पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड काजू। अत. ऐसे पुत्र का प्राण समान प्रिय होना नीति सम्मत है।

यही न्याय परमेश्वर का सब जीवो के साथ है। तिर्यग् योनि अज्ञानी है। देवता बडे पुण्यात्मा हैं। मनुष्य मध्यम कोटि के है। असुर निकृष्ट कोटि के हैं पर भगवान् को सब प्रिय हैं। उनमे वैषम्य नही।

अखिल विस्व यह मोर उपाया। सब पर मोहि बराबरि दाया ॥
तिन्ह मँह जो परिहरि मद माया। भजहि मोहि मन बच अरु काया ॥४॥

अर्थ · यह सम्पूर्ण ससार मेरा उपजाया हुआ है। अत सब पर मेरी दया समान है। उनमे से मद माया छोडकर मुझे मन वचन और कर्म से जो भजन करते हैं।

व्याख्या अब उस उदाहरण को समझाकर कहते हैं कि जैसे पिता की अपने सब बच्चो पर चाहे गुणी हो चाहे निर्गुणी हो समान प्रीति होती है। वैसे ही सम्पूर्ण प्राणी मेरे बाल बच्चे हैं मुझे सब पर प्रीति है देवता पर भी और राक्षस पर भी परन्तु जिस भाँति पिता को भक्त बच्चा प्राण सा प्यारा होता है उसी भाँति प्राणियो मे से जो मद माया छोडकर मुझे मन वचन कर्म से भजते हैं वे प्यारे है। मद माया बिना छोडे ईश्वर का भजन सम्भव नही। जिसको किसी प्रकार का मद है जिसके हृदय मे कपट है वह विनयी नही हो सकता और न सरल हो सकता और जिसम बिनय और सरलता नही है उससे भजन ठीक तरह से हो नही सकता।

दो. पुरुष नपुसक नारि वा, जीव चराचर कोइ।
सर्व भाव भज कपट तजि, मोहि परम प्रिय सोइ ॥८७ क.

सो. सत्य कहौ खग तोहि, सुचि सेवक मम प्रान प्रिय।
अस बिचारि भजु मोहि, परिहरि आस भरोस सब ॥८७॥

अर्थ चाहे पुरुष हो नपुंसक हो नारी हो अथवा कोई भी चराचर जीव हो। जो सर्व भाव से मुझे कपट छोडकर भजता है वही मुझे परम प्रिय हैं। हे पक्षी। मैं तुझसे सत्य कहता हूँ कि शुचि सेवक मुझे प्राण सा प्यारा है। ऐसा विचार करके सब आशा भरोसा छोडकर मुझे भजो।

व्याख्या : अपने पिता की भक्ति करने का सबको अधिकार है। इसी भाँति मेरी भक्ति करने का सबको अधिकार है। पर उस भक्ति मे दिखावा न हो। प्रीति सच्ची चाहिए। कपट प्रीति से काम नही चलता। अत भगवान् कहते हैं कि यहाँ जाति पाँति का टण्टा नही। पुण्य यानि हीन योनि का विचार नही। बडे छोटे का विचार नही। जो कोई भगवान् को कपट छोडकर भजे वही उन्हें प्राणप्रिय हो जाता है। जीव सभी प्रिय हैं पर प्राणप्रिय होने का रास्ता तो भजन है। अन्य गुणो से

पदवी बढेगी पर प्रिय न बन सकेगा। ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित होना और भगवान् को प्रिय होना दो बात है। यह नियम नही कि जो ऊँचे पद पर हैं वह भगवान् को प्रिय हैं।

शुचि सेवक से प्रसङ्ग उठा था। यथा : सुचि सुसील सेवक सुमति प्रिय कहु कहि न लाग और सुचि सेवक कहकर समाप्त करते हैं। भाव यह कि वह मुझे प्राण प्रिय है। अत मुझे प्रिय होना हो तो सब आशा भरोसा छोडकर मुझे भजो।

कबहूँ काल न ब्यापिहि तोही। सुमिरेसि भजेसि निरंतर मोही॥
प्रभु वचनामृत सुनि न अघाऊँ। तन पुलकित मन अति हरखाऊँ॥१॥

अर्थ कभी तुझे काल नही व्यापेगा। निरन्तर मेरा स्मरण भजन करते रहना। प्रभु के अमृत से वचन सुनने से तृप्ति नही होती थी। मेरे शरीर मे पुलक था और मन हर्षित हो रहा था।

व्याख्या . परिवर्तन का कारण काल है। सो उसकी गति तेरे लिए बन्द कर दो जाती है। परन्तु आत्मकृपा मे न चूकना मेरे स्मरण भजन मे अन्तर न पडने पावे। अन्तर पडने से ही काल का घात बैठता है। यथा : नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट। लोचन निज पद जन्त्रित प्रान जाहिं केहि बाट। मृत्यु तो प्रमाद ही है। प्रमादो वै मृत्यु'। भुसुण्डिजी पहिले ही इच्छामृत्यु थे। यथा ' कामरूप इच्छा मरन ग्यान विराग निधान। अब अमर हो गये। सरकार की ओर से मरण की नियति हटा ली गयी।

बोले बचन परम सुख दायक से उपक्रम करके प्रभु वचनामृत सुनि न अघाऊँ से उपसहार कर रहे हैं। वरदान से तो तृप्ति हुई पर सरकार के वचनामृत से तृप्ति नही हुई। उसके सुनने से ऐसा सुख उपजता था कि शरीर पुलकित हो रहा था और मन मे हर्ष बढता जाता था।

सो सुख जानै मन अरु काना। नहि रसना पहिं जाइ बखाना॥
प्रभु सोभा सुख जानहि नयना। कहि किमि सकहिं तिनहि नहि बयना॥२॥

अर्थ : वह सुख मन और कान जानता है। जिह्वा द्वारा कहा नही जा सकता। प्रभु की शोभा का सुख आँखें जानती हैं पर वे कहे कैसे उन्हे वाणी नहीं है।

व्याख्या भुसुण्डिजी को ब्रह्म सस्पर्श का अत्यन्त सुख मिल रहा है। श्रवणेन्द्रिय द्वारा सरकार की वाणी हृदयङ्गम हो रही है और सरकार का रूप चक्षु इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष हो रहा है। अत मन दो प्रकार से ब्रह्म साक्षात्कार कर रहा है। चक्षु और श्रोत्र दोना ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। मन के योग से ये दिव्याति दिव्य विषय का भोग कर रही हैं। रसना तो कर्मेन्द्रिय है : उस सुख के उपभोग मे इसका प्रवेश ही नही तो यह कहे कैसे ? दूसरी बात यह है कि इसका नाम ही रसना है। इसमे रस नही इसीलिए इसे वैखरी कहते हैं . यह इस महारस का वर्णन कैसे करे।

बहु बिधि मोहि प्रबोधि सुख देई । लगे करन सिसु कौतुक तेई ॥
सजल नयन कछु मुख करि रूखा । चितइ मातु लागी अति भूखा ॥३॥

अर्थ : बहुत प्रकार से मुझे समझा बुझाकर सुख दिया । फिर वही लड़कपन का कौतुक फिर करने लगे । आँखों मे आँसू भरकर और कुछ रूखा चेहरा करके माँ को देखा । क्योकि बडी भूख लग गयी थी ।

व्याख्या : शाश्वत जगद्गुरु ने बहुत प्रकार से ज्ञानोपदेश किया और इस भाँति भी सुख दिया । सरकार विदाई के समय विरहजन्य पीड़ा के कम करने के लिए ज्ञानोपदेश करते हैं । यथा :

नहि अन्तर नहि बाह्य जहँ, नही देश नहि काल ।
चित्सुख रूप सरूप मम, बाकी माया जाल ॥१॥
माया में सब सम्भवत, कछू असम्भव नाहि ।
याते मायिक रूप में, अगनित भुवन लखाहि ॥२॥
बिना नियम जस सपन में देश काल को भान ।
तै सोइ माया रूप में, देश काल पहिचान ॥३॥
प्रकटत कतहूँ माधुरी ऐश्वर भाव छिपाय ।
होत प्रकट ऐश्वर्य कहुँ, सो माधुरी दुराय ॥४॥
मैं समान दुहुरूप मे, एसो जिय ठहराय ।
लीला निरखत माधुरी बुध जन मन हरखाय ॥५॥

अब उस प्रसङ्ग को समाप्त करके फिर वही शिशुपन की लीला आरम्भ कर दी । बचपन में जब बहुत भूख लगती है तभी बच्चे खेल से विरत होते हैं । सो खेलते खेलते बहुत देर लग गयी अतः बड़ी भूख लगी । आँखों मे आँसू आ गये माँ की ओर कुछ रूखा चेहरा करके देखा । माँ बराबर मुँह देखा करती है । समझ गयी कि इन्हे भूख लग गयी अब रोया चाहते हैं ।

देखि मातु आतुर उठि धाई । कहि मृदु बचन लिए उर लाई ॥
गोद राखि कराव पय पाना । रघुपति चरित ललित कर गाना ॥४॥

अर्थ : देखकर माँ आतुर होकर दौड़ पड़ी और मृदु वचन कहकर हृदय से लगा लिया । गोद मे लेकर दूध पिलाने लगी और रघुपति के सुन्दर चरित का गान करने लगी ।

व्याख्या : बच्चे को भूखा देखकर माँ उठकर दौड़ पड़ी । दासी को लाने की आज्ञा नही देती स्वयं दौड़ पडती हैं । प्यार के शब्दो से सम्बोधन करती हुई गोद में रखकर दूध पिलाती है । दूध पिलाने के समय बच्चो को सुलाने के लिए माँ मधुगान भी करती है । यथा :

ललन लोने लेरुआ बलि मैया ।
सुख सोइये नीद बेरिया भई चारु चरित चारयो भइया ॥

कहत मल्हाइ लाइ उर छिन छिन छगन छबीले छोटे छैया।
मोदकन्द कुल कुमुदचन्द मेरे रामचन्द्र रघुरैया॥
रघुपति बालकेलि संतन की सुभग सुखद सुरगैया।
तुलसी दुहि पीवत सुख जीवत पय सप्रेम घने धैया॥
इत्यादि : गीतावली

सो. जेहि सुख लागि पुरारि, असुभ बेष कृत सिव सुखद।
अवधपुरी नर नारि, तेहि सुखमँहु संतत मगन ॥८८ क.
सोई सुख लवलेस, जिन बारक सपनेहु लहेउ।
ते नहि गनहिं खगेस, ब्रह्म सुखहिं सज्जन सुमति ॥८८ ख.

अर्थ : जिस सुख के लिए त्रिपुरारि शिवजी ने सुख देनेवाले होकर अशुभ वेष बना लिया है। अवधपुर के नर नारी तो उस सुख मे सदा मग्न रहते हैं। उस सुख का लवलेश जिसने एक बार भी सपने मे पाया है हे खगेश! वह सज्जन सुमति ब्रह्मानन्द को भी नही गिनता।

व्याख्या : पुरारि कहकर शिवजी का अचिन्त्य सामर्थ्य और ऐश्वर्य कहा। उन्हे कोई सुख दुर्लभ नही है। फिर भी ध्यान मे शृंगाररस को बाधक समझकर सदा उसके प्रतिकूल अशुभ वेष धारण किये रहते हैं। यथा 'नहि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति। उन्हे रामजी की क्रीडा बडी प्रिय है। उसी के ध्यानजन्य सुख मे आनन्दित रहना चाहते है। यहाँ सभी अवधवासी नर नारी उस सुख मे सदा मग्न रहते हैं।

श्री गोस्वामीजी कहते हैं कि वह सुख ब्रह्मानन्द से भी बहुत अधिक है। यथा त्वत्साक्षात्करणाह्लादविशुद्धाब्धिस्थितस्य मे। सुखानि गोष्पदायन्ते ब्राह्मण्यपि जगद्गुरो। ब्रह्म चक्षु का विषय नही है। यथा : यच्चक्षुपा न पश्यन्ति। मनोवृत्तिका ब्रह्माकार होना ही ब्रह्मानन्द है। उसी वृत्ति मे जो आनन्द प्रतिफलित होता है उसी को ब्रह्मानन्द कहते हैं परन्तु योग माया द्वारा वह महाप्रभु अपने को भक्तोका नयनगोचर भी बना देता है। अत' लीलामूर्ति के साक्षात्कार मे केवल मानसिक साक्षात्कार : सो भी अमूर्त के साक्षात्कार से कही अधिक आनन्द होगा इसमे सन्देह नही।

मैं पुनि अवध रहेउँ कछु काला। देखेउँ बालबिनोद रसाला॥
राम प्रसाद भगति बर पायेउँ। प्रभुपद बंदि निजास्रम आयेउँ॥१॥

अर्थ : मै फिर अवध मे कुछ काल रहा और रसीला बालविनोद देखता रहा। रामजी के प्रसाद से भक्तिवर पाया और सरकार के चरणो की वन्दना करके अपने आश्रम मे चला आया।

व्याख्या : भुसुण्डिजी का नियम था कि पाँच वर्षतक अवध मे रहकर

बालविनोद देखते थे। और तत्पश्चात् अपने आश्रम पर चले आते थे। तदनुसार इस बार भी किया। यहाँ कछु काल से वही पाँच वर्ष का अवशिष्ट काल अभिप्रेत है। अब बालविनोद के देखने में मोह नहीं है बड़ा आनन्द आया इसलिए रसाल कहते हैं। यहाँ भक्ति से भी वही भक्ति अभिप्रेत है जो मुनियों को दुर्लभ है। नहीं तो लोमशऋषि तो आशीर्वाद देही चुके थे कि : रामभक्ति अविरल उर तोरे। बसिहि सदा प्रसाद अब मोरे। अतः इस बार मुनिदुर्लभ भक्ति वर पाकर अपने आश्रम को लौटे। चलने के समय चरण वन्दना किया।

तब ते मोहि न व्यापी माया। जब ते रघुनायक अपनाया ॥
यह सब गुप्त चरित मैं गावा। हरिमाया जिमि मोहि नचावा ॥२॥

अर्थ : तब मुझे माया नहीं व्यापी जब से रामजी ने मुझे अपना बना लिया। यह सब गुप्त चरित्र मैंने कहा जिस भाँति हरिमाया ने मुझे नचाया।

व्याख्या : रामकृपा आपन जड़ताई। कहहुँ खगेस सुनहु मनलाई : से जिस प्रसङ्ग को उठाया था उसे यहाँ समाप्त करते हैं। कहते हैं कि राम कृपा से मेरी जड़ता चली गयी। रामजी ने अपना कर लिया मेरा मन सरकार में ऐसा लगा कि फिर मुझे माया नहीं व्यापी। भाव यह कि मेरे सिर पर जब से हाथ भगवान् ने रक्खा तब से मुझे अपना लिया। तेहि कौतुक कर मर्म न काहू। जाना अनुज न मातु पिताहू। इसलिए कहते हैं कि यह सरकार का गुप्त चरित्र है। इसे सब नहीं जानते और जो जानते हैं वे प्रकाश नहीं करते। क्योंकि इस गुप्त चरित्र के समझने के अधिकारी नहीं मिलते। आप अधिकारी हैं इसलिए आप से कहा। हरिमाया के वश में मैं भी नाच चुका हूँ कोई इससे बचा नहीं है। इसलिए आप अपने लिए आश्चर्य न कीजिये।

निज अनुभव अब कहौं खगेसा। बिनु हरिभजन न जाहिं कलेसा ॥
रामकृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम प्रभुताई ॥३॥

अर्थ : हे पक्षिराट्! अब मैं अपना अनुभव कहता हूँ कि बिना हरि भजन के क्लेश जाते नहीं। हे पक्षिराट्! सुनो बिना राम कृपा के रामजी की प्रभुता जानी नहीं जाती।

व्याख्या : सरकार ने कहा : जानब तैं सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहिं साधन खेदा। सो उनके प्रसाद से जो अनुभव मुझे हुआ उसे भी सुनाता हूँ। क्लेश पाँच प्रकार के होते हैं : अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः। यो० सू० १. अविद्या २. अस्मिता ३. राग ४. द्वेष और ५. अभिनिवेश। अनित्य अशुचि दुःख और अनात्म को नित्य शुचि और आत्मा समझना अविद्या है। पुरुष और बुद्धि की एकात्मता को अस्मिता कहते हैं। सुख के अनुसारी होनेवाले ज्ञान को राग और दुःख के अनुसरण करनेवाले ज्ञान विशेष को द्वेष कहते हैं और मरण भय को अभिनिवेश कहते हैं। इन्हीं के कारण प्राणिमात्र दुःखी हैं। उन दुःखों के हटाने के

उपायो से शास्त्र भरे पडे हैं। पर मेरा अनुभव यह है कि विना हरि भजन के ये दूर होते नही। यथा :

नाहि न आवत आन भरोसो।
एहिकाल सकल साधन तरु है स्रम फलनि फरोसो॥
तप तीरथ उपवास दान मख जेहि जो रुचै करोसो।
पाएहि पै जानिबो करम फल भरि भरि वेद परोसो॥
आगम विधि जप जाग करत नर सरत न काज खरोसो।
सुख सपनेहु न जोग सिधि साधन रोग वियोग धरोसो॥
काम क्रोध मद लोभ मोह मिलि ज्ञान विराग हरोसो।
बिगरत मन सन्यास लेत जल नावत आम घरोसो॥
बहुमत सुनि बहुपथ पुराननि जहाँ तहाँ झगरोसो।
गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहि लगत राज डगरोसो॥

विनय पद १७३

जिसकी दासी माया के वशवर्ती ब्रह्मादिक देवता और असुर हैं अन्यजीवो की क्या गिनती है। उस महाप्रभु को प्रभुता को दिनरात देखता हुआ भी संसार नही जानता। जिस पर उनकी कृपा होती है वही जान सकता है।

जाने बिनु न होइ परतीती। विनु परतीति होइ नहि प्रीती॥
प्रीति बिना नहि भगति दिढाई। जिमि खगपति जलकै चिकनाई॥४॥

अर्थ : विना जाने प्रतीति नही होती और बिना प्रतीति प्रीति नही होती। प्रीति बिना भक्ति दृढ नही होती। हे खगेश ! जैसे जल की चिकनाई दृढ नही होती।

व्याख्या : जब उनके भजन से क्लेश मिटता है तो ससार उनका भजन क्यो नही करता ? इस पर भुसुण्डिजी कहते हैं कि संसार उनकी प्रभुता को नही जानता। इसलिए उसे विश्वास नही होता कि उनके भजन से सब क्लेश मिट सकते हैं। यदि विश्वास हो कि उनके भजन से क्लेश मिट जाते हैं तो उन पर प्रीति क्यो न हो : जेहिते कछु निज स्वारथ होई। तेहिपर ममता कर सब कोई। फिर भी भजन करते तो लोग देखे जाते हैं और क्लेश मे भी पडे हुए हैं। इस पर कहते हैं कि वह भजन दृढ नही है। क्योकि उन्हे भजनीय भगवान् मे प्रीति नही है। यथा : रामहि सुमिरत रन भिरत देत परत गुरु पाय। तुलसी जिन्हहिं न पुलकतन ते जन जीवन जाय। उनका भजन वैसा ही है जैसा जल का चिकनापन। चिकनापन तो स्नेह : तेल घी आदि मे है। पानी का चिकनापन तो नाममात्र के लिए है। इसी भांति उनका भजन भी नाममात्र के लिए है।

सो. बिनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ विराग बिनु।
गावहि वेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु॥

कोउ बिस्राम कि पाव, तात सहज संतोष बिनु ।
चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिअ ॥८९॥

अर्थ : क्या ज्ञान बिना गुरु के हो सकता है और क्या बिना विराग के ही ज्ञान हो जायगा। वेद पुराण कहते हैं कि क्या बिना भक्ति के सुख मिल सकता है। हे तात ! क्या बिना सहज सन्तोष के किसी को विश्राम मिल सकता है। क्या बिना जल के नाव चल सकती है। चाहे कोई करोड़ यत्न करके प्राण दे दे।

व्याख्या : गुरु साक्षात् परमेश्वर के अनुग्रह शक्ति के स्वरूप होते हैं। बिना गुरु के ज्ञान हो नहीं सकता। सभी वस्तु के ज्ञान के लिए गुरु की आवश्यकता होती है कि पुनः अदृश्य वस्तु का ज्ञान तो बिना गुरु हो ही नही सकता। यथा : स गुरुमेवाभिगच्छेत् श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्। एकलव्य ने द्रोणाचार्य की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर उससे शस्त्रविद्या सीखी थी। यह कथा महाभारत मे प्रसिद्ध है। परन्तु बिना विराग के केवल गुरु से भी काम नही चलता। बिना विराग के परिश्रम करनेवाले की वही गति होती है जो कि उस नाविक की हुई जिसने नाव को घाट से छोड़ा नही और रात भर खेता रहा। प्रात काल उँजेला होने पर उसने देखा कि वह जहाँ को तहाँ ही है। उसका सारा परिश्रम व्यर्थ गया। अतः वेद पुराण ज्ञान के लिए गुरु और वैराग्य दोनो की उपयोगिता अपरिहार्य बतलाते हैं।

गुरु और वैराग्य की सहायता से ज्ञान तो हो जाता है पर उससे सुख नही मिलता। सुख तो हरिभक्ति से ही मिलता है। राजप्रासाद : महल या नाना प्रकार के व्यञ्जन के दर्शन : ज्ञान से न तो राजा की कृपा की प्राप्ति होती है न क्षुधा की शान्ति होती है। इसी भाँति शुष्क ज्ञान काम नही देता। राजमहल मे जाकर राजा की प्रसन्नता प्राप्त करने से आनन्द मिलता है। वही हाल भोजन का है। क्षुधा शान्ति तो भोजन के ज्ञान से नही होती खाने से होती है। भगवान् नारद ने यही बात कही है : राजगृह भोजनादिषु तथैव दृष्टत्वात्। ना० सू० ३१। न तेन राजपरितोषः। ३२। तस्मात् सैव ग्राह्या मुमुक्षुभिः। ३३। अत. मुमुक्षुओ को भक्ति ही ग्रहण करनी चाहिए।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते। कामो के उपभोग से काम की शान्ति नही होती। अग्नि मे घी डालने की भाँति वह तो बढता ही जावेगा। स्वाभाविक सन्तोष से अर्थात् सर्वथा सन्तोष धारण कर लेने से ही विश्राम मिलता है। विश्राम तभीतक बना है जबतक सन्तोष है। नाव तभीतक चलती रहेगी जबतक जल है।

बिनु संतोष न काम नसाही। काम अछत सुख सपनेहु नाही ॥
राम भजन बिनु मिटहि न कामा। थल बिहीन तरु कबहुँकि जामा ॥१॥

अर्थ : बिना सन्तोष के कामनाश नही होता और काम के रहते सुख स्वप्न मे भी नही मिलता। राम के भजन बिना काम मिटता नही। क्या बिना थल के कही पेड़ जमता है ?

व्याख्या सन्तोष करने से ही काम का नाश होता है। वह महाशन ' बड़ा खानेवाला है। उसकी तृप्ति नहीं होती और काम का नाश हो तब विश्राम सुख मिले। सन्तोष से काम का नाश तो हो जाता है अर्थात् विरोधी भावना से उपमर्दित होकर तनुभाव को प्राप्त हो जाता है। उसका आत्यन्तिक नाश तो तभी सम्भव है जब राम भजन से उनका संस्कार भी मिट जाय। यथा ऊसर बरसै तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हिय उपज न कामा। तब काम वृक्ष के उगने के लिए स्थल ही न रह जायगा।

बिनु बिज्ञान कि समता आवै। कोउ अवकास कि नभ बिनु पावै॥
श्रद्धा बिना धरमु नहिं होई। बिनु महि गंध कि पावै कोई॥२॥

अर्थ बिना विज्ञान के क्या कभी समता आती है। क्या कोई बिना आकाश के ही अवकाश पा सकता है। श्रद्धा के बिना धर्म हो नहीं सकता। जिस भाँति बिना पृथिवी के गन्ध की प्राप्ति नहीं हो सकती।

व्याख्या भोजन करिअ तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचव जठरागी। अस हरि भगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सुहाई। सो भजन की उपमा भोजन से दी गयी है। भोजन व्यञ्जन है। उसमें अनेक पदार्थ होते हैं। पार्थिव जलीय तैजस वायवीय और आकाशीय। उन्हीं से यह पाञ्चभौतिक शरीर चलता है। इसमें सन्देह नहीं कि लवण बिना व्यञ्जन फीका होता है पर केवल लवण भी तो खाया नहीं जाता। एवम् भजन भी समता, श्रद्धा, तप, शील, आत्मसुख संयुक्त ही होता है। अतः यहाँ पर इन्हीं पाँचों का उदाहरण देते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि बिना विज्ञान के ब्रह्म साक्षात्कार के समता नहीं आती। क्योंकि सृष्टि में तो सर्वत्र विषमता ही विषमता है। सम बुद्धि तो बिना राममय जगत् देखे हो नहीं सकती और समबुद्धि ही विज्ञान है। जैसे बिना आकाश के कहीं अवकाश नहीं मिल सकता उसी भाँति बिना विज्ञान के समता नहीं आसकती। आकाश का उदाहरण देकर अब पृथिवी का उदाहरण देते हैं कि जैसे गन्धवती पृथिवी। बिना पृथिवी के गन्ध की प्राप्ति नहीं हो सकती। उसी भाँति बिना श्रद्धा के धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतश्च यत्। असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह।

बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा। जल बिनु रस कि होइ संसारा॥
सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई। जिमि बिनु तेज न रूप गुसाईं॥३॥

अर्थ बिना तप के कहीं तेज विस्तार कर सकता है। बिना जल के कहीं संसार में रस हो सकता है। बिना पण्डित की सेवा के कहीं शील की प्राप्ति हो सकती है जैसे हे गोसाईं। बिना तेज के रूप नहीं हो सकता।

व्याख्या अब जल का उदाहरण देते हैं कि जैसे बिना जल के संसार में रस नहीं होता उसी भाँति बिना तप के तेज अशुद्धि क्षय नहीं होता। सो तप भी भजन का अङ्ग है। जो तपस्वी नहीं वह भजन क्या करेगा? अब तेज का उदाहरण देते

हैं कि जैसे बिना तेज के रूप नहीं होता वैसे ही बिना पण्डित की सेवा किये शील नहीं होता। शील मे सब ऐश्वर्य का वास है। दु.शील भक्त कैसे हो सकता है। अतः ये सब उदाहरण उपयुक्त हैं।

निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा। परस कि होइ बिहीन समीरा॥
कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा। बिनु हरि भजन न भवभय नासा॥४॥

अर्थ : आत्मसुख बिना क्या मन स्थिर हो सकता है क्या बिना वायु के स्पर्श हो सकता है। बिना विश्वास के क्या कोई सिद्धि हो सकती है। बिना हरि भजन के भवभय नाश नहीं हो सकता।

व्याख्या : अब वायु का उदाहरण देते हैं कि बिना वायु के स्पर्श नहीं हो सकता। इसी भाँति बिना आत्मसुख के मन स्थिर नहीं हो सकता। आत्म सुख ही इतना बड़ा सुख है कि उनके प्राप्त होने पर उससे अधिक सुख का होना सम्भव नहीं होता। अतः मन स्थिर हो जाता है। दूसरी ओर नहीं जाता। भक्ति मे उसी जगदात्मा राम मे ही मन लगाकर भक्त परम आनन्द को प्राप्त होता है। यथा : सा न कामयमाना निरोधरूपत्वात्। ना० सू० ७।

इसी भाँति विश्वास भी भक्ति मे अपरिहार्य है। विश्वास बिना तो कोई भी सिद्धि नहीं हो सकती। जब अनुष्ठानो को ही विश्वास नहीं तो सिद्धि कैसे होगी। इतने उदाहरण देकर कवि निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हरि भजन बिना भवभय का नाश नहीं होता। भवभय भजन अन्य उपाय से असम्भव है। यथा : भजेउ राम आपु भवचापू। भव भय भंजन नाम प्रतापू। भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ। याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्।

दो. बिनु बिस्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
राम कृपा बिनु सपनेहु, जीव न लह बिस्राम॥९० क.

सो. अस बिचारि मति धीर, तजि कुतर्क संसय सकल।
भजहु राम रघुबीर, करुनाकर सुन्दर सुखद॥९० ख.

अर्थ : बिना विश्वास के भक्ति नहीं और भक्ति बिना रामजी द्रवीभूत नहीं होते और रामकृपा बिना जीव को स्वप्न मे भी विश्राम नहीं मिलता। हे मतिधीर! ऐसा विचारकर और सब कुतर्क और संशय को छोड़कर करुणाकर सुखद सुन्दर रघुबीर को भजो।

व्याख्या : जब विश्वास ही नहीं तब भक्ति कैसे होगी। पहिले तो भजनीय पर विश्वास होना चाहिए कि वे अवश्य रक्षा करेंगे। यथा : रक्षिष्यतीति विश्वासः। जब विश्वास होता है तब चरणो मे मन ठहरता है अर्थात् भक्ति होती है और जब भक्ति होती है तब सरकार कृपा करते हैं। यथा : भजत कृपा करिहैं रघुराई। और सरकार की कृपा होने से मन को विश्राम मिलता है। यथा : जाकी कृपा लवलेस

ते मतिमद तुलसीदासहू। पायेउ परम विस्राम राम समान प्रभु नाही कहूँ। अत' यह सिद्ध हुआ कि बिना हरिभक्ति के सुख की प्राप्ति नही हो सकती। संशय छोडने से छूटता है। शुष्क तर्क कुतर्क है। इससे कभी कल्याण नही होता। मतिधोर इनका त्याग करते हैं। अत गरुडजी। करुणाकर सुन्दर सुखद रघुबीर को भजो। उनके भजन मे सुख ही सुख है। यथा तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जौं चाहीस मन मेरो। तौ भजु राम काम सब पूरन करहिं कृपानिधि तेरो।

निजमति सरिस नाथ मै गाई। प्रभु प्रताप महिमा खगराई॥
कहेउ न कछु करि जुगुति बिसेखी। यह सब मै निज नयनन्हि देखी॥१॥

अर्थ हे पक्षिराट्। मैंने अपनी वुद्धि के अनुसार प्रभु के प्रताप की महिमा का गान किया। मैंने कोई विशेष युक्ति से नही कहा। यह सब मेरे आँखो देखी हुई बात है।

व्याख्या पहिल कह आये हैं कि सुनु खगेस रघुपति प्रभुताई। कहउँ जथामति कथा सुहाई उसी का उपसहार करते हुए कहते हैं निज मति सरिस नाथ में गाई। प्रभुताई और प्रभु का प्रताप या महिमा एक बात है। यह अपने अपने मति अनुसार ही गान किया जा सकता है। इसका पार तो निगम सेप शिव भी नही पा सकते। यथा निज निज मति मुनि हरि गुन गावहिं। निगम सेष सिव पार न पावहिं। राम गहन कहँ भुजा पसारी से लकर देखि चरित यह सो प्रभुताई। समुझत देह दसा बिसराई तक प्रभुता का वर्णन किया। अब कहते हैं कि जो कुछ मैंने बातें कही है वे मेरी आंखो देखी हैं। इसके वर्णन म युक्ति को स्थान नही दिया। युक्ति से वर्णन ज्योतिषी लोग करते हैं। वे भी सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र मण्डल ब्रह्माण्ड के विषय मे वहुत कुछ अपनी युक्ति के बल से कहते हैं। उनकी वे सब बातें अनुमानसिद्ध हैं पर मैंने तो अपनी आंखो से देखा है।

महिमा नाम रूप गुन गाथा। सकल अमित अनत रघुनाथा॥
निज निज मति मुनि हरिगुन गावहि। निगम सेप सिव पार न पावहि॥२॥

अर्थ रामजी की महिमा, नाम, रूप सभी अनन्त और असीम है। अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार मुनि लोग हरिगुण का गान करते हैं। वेद शेष और महेश पार नही पाते।

व्याख्या सरकार की महिमा, नाम, रूप और गुण गाथा की अनन्तता अपेक्षाकृत नही है। वह वेद शेप और महेश के लिए भी अनन्त और असीम है। नाम रूप लीला और धाम का आश्रयण करके प्रभु के विषय मे कुछ कहा जा सकता है। यहाँ गुण गाथ से लीला और महिमा से धाम अभिप्रेत है। भगवती श्रुति कहती है कि वह अपनी महिमा म प्रतिष्ठित है। ये ही चारो सरकार के विग्रह हैं। यथा 'रामस्य नाम रूपञ्च लीला धाम परात्परम्। एतच्चतुर्विध प्राहु साक्षाद् रामस्य

विग्रहः । सो ये चारो अनन्त और अमित हैं । अतः गान करनेवाला अपने यावद्बुद्धि-बलोदय ही गान कर सकता है ।

तुम्हहिं आदि खग मसक प्रजंता । नभ उड़ाहिं नहि पावहिं अंता ॥
तिमि रघुपति महिमा अवगाहा । तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा ॥३॥

अर्थ : पक्षियों मे तुमसे लेकर मच्छड तक आकाश मे उड़ते हैं लेकिन उसका थाह नही मिलता । उसी भाँति रघुपति की महिमा अथाह है । हे तात ! उसका थाह कोई पा नही सकता ।

व्याख्या : महिमा की अनन्तता तथा अमितत्व दिखलाकर अब उसका अथाह होना भी कहते हैं । उदाहरण देते हुए कहते हैं कि आकाश में उडनेवालो मे आप सबसे श्रेष्ठ हैं महापराक्रमी हैं और मच्छड़ अत्यन्त अल्पपराक्रम है । आकाश का थाह न आपको ही मिला न मच्छड़ को ही मिला क्योंकि उसका थाह है ही नही । इसी भाँति सरकार की महिमा का वारपार (थाह) है नही । कोई पावेगा कैसे ? फिर भी न आपने उड़ना बन्द किया न मच्छड ने । इसी भाँति प्रभु की महिमा का वर्णन शेष महेश भी करते हैं और तुलसीदास भी करते हैं : बुध बरनहि हरि जस अस जानी । करहि पुनीत सुफल निज बानी ।

राम[1] काम सत कोटि सुभग तन । दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन ॥
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा । नभ सत कोटि अमित अवकासा ॥४॥

अर्थ : रामजी सौ कोटि काम की भाँति सुन्दर शरीरवाले हैं । अमित कोटि दुर्गा के समान शत्रु सहारक हैं । सौ कोटि इन्द्र के समान उनका विभव विलास है और सौ कोटि आकाश की भाँति अनन्त अवकाश है ।

व्याख्या : उसी महिमा का अब कुछ दिग्दर्शन कराते हैं । कहते हैं कि राम मे सौ कोटि काम सी सुन्दरता है । ससार मे सुन्दरता की सीमा काम ही माना गया है । परन्तु राम की सुन्दरता के आगे काम की सुन्दरता कुछ भी नही क्योंकि वे काम के भी काम हैं । साक्षान्मन्मथमन्मथ. है । उनकी सुन्दरता के लेश को पाकर काम सुन्दर है । सभी शक्तियो के मूलस्रोत होने से प्रभु को दुर्गा कोटि अमित अरि-मर्दन कहा । यथा : पाइ जासु बल बिरचति माया । जाके बल बिरचि हरि ईसा । पालत सृजत हरत दससीसा ।

बिलास की परा सीमा इन्द्र तक है क्योंकि वही देवराज है । रावण के विलास के वर्णन मे भी कवि ने विलास के जाँचने के लिए इन्द्र के विलास को ही मानदण्ड बनाया । यथा : सुनासीर सत सरिस सो संतत करै बिलास । अतः रावण के विलास की भी नाप हो गयी । यहाँ तो सक्र कोटि सत सरिस बिलासा कहते हैं । भाव यह कि इनके विलास के सामने इन्द्र के विलास की कुछ गिनती नही । महात्माओ से

---

१. यहाँ उल्लेख ' द्वितीय : अलङ्कार है ।

सुना है कि ९९ रास तो रामावतार मे ही हुआ है और ये रास चौदह वनो मे हुआ करते थे। उमा राम की भृकुटि विलासा। होइ बिस्व पुनि पावइ नासा। उनके विलास के सामने इन्द्र का विलास क्या है। यथा सूख हाड लै भाग सठ स्वान निरखि मृगराज। छीन लेइ जनि जानि जड तिमि सुरपतिहि न लाज। सौ इन्द्र के आनन्द इतना बृहस्पति को आनन्द है। उनका सौगुना प्रजापति को और राम तो आनन्दरूप ही हैं।

पर इन सब बातो के सुनने से कोई सरकार को परिच्छिन्न न मान ले इसलिए कहते हैं कि उनमे सौ कोटि आकाश सा अवकाश है। सन्देह उठ सकता है कि आकाश तो अनन्त है। अब अनन्त का शत कोटि कैसे सम्भव है? बात यह कि सरकार तो साक्षात् चिदाकाश हैं और चिदाकाश के एक एक अणु म भूताकाश हैं। अत एक एक चिदणु के पृथक् पृथक् भूताकाश है। अत नभ शतकोटि अमित अवकाश बन जाता है।

सरकार के गुणो का पारावार नही पर उतना ही प्रकट करते हैं जितने की जहाँ आवश्यकता है।

दो मरुत कोटि सत विपुल बल, रवि सत कोटि प्रकास।
ससि सत कोटि सो सीतल, समन सकल भव त्रास ॥९१ क
काल कोटि सत सरिस अति, दुस्तर दुर्ग दुरत।
धूमकेतु सत कोटि सम, दुराधर्ष भगवत ॥९१ ख

अर्थ सौ कोटि वायुदेव की भाँति उनको बडा बल है। सौ कोटि सूर्य सा प्रकाश है। सौ कोटि चन्द्रमा की भाँति वे शीतल सब भवत्रास के हरण करनेवाले हैं। सौ कोटि काल के समान अत्यन्त दुस्तर दुर्गम और अन्त रहित हैं और सौ करोड धूमकेतुओ की भाँति भगवान् दुराधर्ष हैं।

व्याख्या बल तो वायु मे ही है। वायु को रोककर ही ससार बल प्रदर्शन करता है। परन्तु उस वायु म भी बल प्रदाता सरकार हैं। बिना उनकी कृपा वायुदेव एक तिनका नही हिला सकते। केनोपनिषत् म इसका विस्तार है। अत वायु का बल उनके सामने कुछ भी नही। ससार सूय के प्रकाश से प्रकाशित होता है पर जिस प्रकाश से सूय प्रकाशित होते है वह तो रामचन्द्र का ही प्रकाश है। इसलिए सूर्य का प्रकाश उनके प्रकाश के सामने नगण्य है। चन्द्रमा शीतलता देते हैं। परन्तु दु ख से सन्तप्त हृदय पुरुप को तो उनकी शीतलता से शीतलता नही आती। परन्तु सरकार ऐसे शीतल है कि उनकी शीतलता से भवताप से सन्तप्त हृदय शीतल हो जाता है। अत उस शीतलता के सामने चन्द्र की शीतलता क्या है?

अड कटाह अमित लयकारी। काल सदा दुरतिक्रम भारी। इसलिए उसे दुस्तर दुर्ग दुरन्त कहा पर वह काल तो उनके हाथ मे रहता है। यथा लव निमेप परमान जुग बर्ष कल्पसर चड। भजसि न मन तेहि राम कहँ काल जासु को दड।

अतः काल की दुस्तरता दुर्गमता और दुरन्तरता उनके सामने कुछ नही है। इसी भाँति धूमकेतु संसार को आर्ति देनेवाले हैं। परन्तु जिसके भृकुटि विलास से असख्य धूम्रकेतु की सृष्टि और लय हुआ करता है। यथा : उमा राम की भृकुटि विलासा। होइ बिस्व पुनि पावइ नासा। उस प्रभु की दुराधर्षता के सामने धूम्रकेतु की दुराधर्षता क्या है। अथवा धूम्रकेतु का अर्थ अग्नि किया जाय तो भी वही बात है। अग्नि की दुराधर्षता सरकार की दुराधर्षता के सामने कुछ भी नही है।

प्रभु अगाध सत कोटि पताला। समन कोटि सत सरिस कराला ॥
तीरथ अमित कोटि सत पावन। नाम अखिल अघपुंज नसावन ॥१॥

अर्थ : सौ कोटि पाताल की भाँति प्रभु अथाह हैं। सौ कोटि यमराज की भाँति कराल हैं। अमित शत कोटि तीर्थ के समान पवित्र हैं। उनका नाम सम्पूर्ण पापपुञ्ज का नाश करता है।

व्याख्या : सरकार की अवतीर्ण मूर्ति अद्भुत है। उस छोटी सी मूर्ति मे ही सब कुछ है जो कुछ कि हम लोग जानते या सुनते हैं वह सब उसमे उत्कर्ष के साथ वर्तमान है। उसको प्राप्ति होने पर कुछ प्राप्त होना बच नही जाता। उसका वर्णन अशक्य है तथापि ग्रन्थकार जिस भाँति मुनिगण ने प्रथम वर्णन किया है तदनुसार भुसुण्डि स्तुति के मिससे स्वय स्तुति कर रहे हैं।

गहराई मे पाताल लोक प्रसिद्ध है। फिर भी पाताल की गहराई की सीमा है पर रामजी की गहराई की सीमा नही है। जैसा कि स्वय भुसुण्डिजी अनुभव कर चुके है। अत. पाताल की गहराई सरकार की गहराई के सामने तुच्छ है। करालता मे यमराज की ख्याति है। परन्तु सरकार तो यम के भी यम है। यथा : मृत्युर्यस्योपसेचनम्। यमराज तो चटनी हैं इसलिए उन्हे सौ कोटि यम से भी कराल कहा।

ससार मे तीर्थ पवित्र करनेवाले हैं पर उन तीर्थ को तीर्थ बनानेवाले तो सरकार के भक्त हैं। यथा : तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि। इसीलिए कहते हैं कि सरकार अमित कोटि तीर्थ के समान पवित्र हैं। उनके नाम मे इतना सामर्थ्य है कि वह सम्पूर्ण पापपुञ्ज का नाश कर देता है।

हिम गिरि कोटि अचल रघुबीरा। सिंधु कोटि सत सम गंभीरा ॥
कामधेनु सत कोटि समाना। सकल काम दायक भगवाना ॥२॥

अर्थ : रघुवीर करोड़ो हिमालय की भाँति अचल और सौ करोड समुद्र की भाँति गम्भीर हैं और भगवान् सौ करोड कामधेनु के समान सब कामनाओ के देनेवाले हैं।

व्याख्या . पर्वत स्थान परिवर्तन नही करते। इसो से उनका नाम ही अचल है। तिस पर हिमवान् सब पर्वतो के राजा है। वे कभी नही डिगते परन्तु भूकम्पादि मे वे भी हिल उठते हैं पर सरकार तो सर्वव्यापी हैं अनन्त हैं। उनसे व्यतिरिक्त कोई

स्थान ही नही है। अर्थात् उनके हिलने की जगह नही है। इसलिए उनको सौ करोड हिमवान् की भाँति अचल बतलाते हैं।

कामधेनु कामना पूरी करती है। धर्म अर्थ काम सब कुछ देती है पर मोक्ष या भक्ति नही देती और ये ही दोनो सब सुखखानि हैं। यथा मोक्ष सकल सुखखानि तथा सब सुखखानि भगति तै माँगी और सरकार मुक्ति और भक्ति दोना देते हैं। इसलिए उन्हे शत कोटि कामधेनु के समान सकल कामना का पूर्ण करनेवाला कहा।

सारद कोटि अमित चतुराई। विधिसत कोटि सृष्टि निपुनाई ॥
विष्णु कोटि सत पालन करता। रुद्र कोटि सत सम सघरता ॥३॥

अर्थ अमित कोटि शारदा के समान चतुराई है। सौ करोड ब्रह्मदेव के समान सृष्टि की निपुणाई है। सरकार सौ करोड विष्णु के समान पालन करनेवाल तथा सौ करोड रुद्र के समान सहार करनेवाल हैं।

व्याख्या ससार मे कवि बडे चतुर समझे जाते हैं। जो चतुर नही है वह कवि हो नही सकता। सो कवियो मे चतुरता वाणी के प्रताप से है और वाणी के भी प्रेरक प्रभु हैं। यथा सारद दारुनारि सम स्वामी। राम सूत्रधर अतरजामी। जेहिपर कृपा करहि जन जानी। कवि उर अजिर नचावहि बानी। अत सारद कोटि अमित चतुराई कहा। सम्भु विरञ्चि विष्णु भगवाना। उपजहि जासु अस ते नाना। ये त्रिदेव जिसके अश स अनेक प्रकार के उत्पन्न होते हैं उसे शतकोटि विरञ्चि शतकोटि विष्णु शतकोटि रुद्र के तुल्य कहना प्राप्त ही है। अथवा हरिहि हरिता सिवहि सिवता विधिहि विधिता जो दइ। सो जानकी पति मधुर मूरति मोदमय मगल मई।

धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपच निधाना ॥
भार धरन सत कोटि अहीसा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा ॥४॥

अर्थ सौ करोड कुबेर की भाँति धनवान हैं और करोड माया की भाँति प्रपञ्च निधान हैं सौ करोड शेषनाग की भाँति भार धारण करनेवाल हैं। जगत्के प्रभु ईश्वर की न अवधि है और न उपमा है।

व्याख्या कुबेरादि दिक्पाल जिसकी कृपाकटाक्ष से अपने पदा पर प्रतिष्ठित हैं। उस लक्ष्मीजी के जो पति है उन्हे सौ कोटि कुबेर क समान कहना कौन सी बडी बात है। यथा लोरुप होहि विलोकत तारे। तोहि सेवहि सब सिधि कर जोरे। यथा जासु कृपा कटाक्ष सुर चाहत चितवन सोइ। राम पदारविंदरति करति सुभावहि खोइ। देखी माया सब विधि गाढी। अति सभीत जोरे कर ठाढी। जिसके सामने सब विधि गाढी माया हाथ जोडे खडी रहती है। उसका वर्णन कवि लोग माया कोटि प्रपच निधाना करके कहते हैं। जिसकी सत्ता से माया का अस्तित्व है उसे शतकोटि माया सा कहना भी अल्प ही है।

शेषनाग पृथिवी का भार सदा धारण किये रहते हैं। परन्तु जिसके बल से उनमें भार धरण की क्षमता है उस प्रभु को : भार धारन सत कोटि अहीसा : कहना कुछ बहुत नही है। यथा : जा बल सीस धरत सहसानन। अंड कोस समेत गिरि षानन। २५ : यह भुसुण्डिकृत स्तुति शततारक नक्षत्र है। इसकी फलश्रुति जग हित निरुपधि साधु लोग से है। इस स्तुति में बार बार शतकोटि शब्द चमकता है। यही तारों की चमक है। राम से ही उपक्रम और राम से ही उपसंहार है। अतः वर्तुलाकार आकृति है। दुर्गादि देवताओं की उपमा दी गयी है। वे सोपाधिक हित हैं रामजी निरुपाधि हित हैं।

छं. निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहै।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै॥
एहि भाँति निज निज मति बिलास मुनीस हरहिं बखानहीं।
प्रभु भावगाहक अति कृपाल सप्रेम सुनि सुख मानहीं॥

अर्थ : रामजी निरुपम हैं उनकी दूसरी कोई उपमा नहीं है। रामजी के समान राम ही है। ऐसा वेद कहता है। जैसे सौ करोड़ जुगनू के समान सूर्य को कहने से उनकी बड़ी हेठी : लघुता होती है। इसी भाँति अपने अपने बुद्धि की दौड़ के अनुसार मुनीश लोग उनका वर्णन करते हैं। प्रभु भाव ग्राहक अत्यन्त कृपाल हैं। प्रेम सहित कहना : सुनकर सुख पाते हैं।

व्याख्या : न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः। सरकार की दूसरी कोई उपमा नही है। उनकी उपमा वे ही हैं ऐसा वेद कहता है। रामजी के समान रामजी को ही कहना अनन्योपमालङ्कार है। अर्थात् वेद को भी जब दूसरी उपमा नही मिली तो लाचार होकर उन्हीं को उनकी उपमा बनाया। क्योंकि सब उपमाएँ अत्यन्त ही छोटी जँची। जैसे कोई सूर्य की उपमा सौ कोटि जुगनू से दे। सो सौ कोटि जुगनू सूर्य के सामने क्या है ? कुछ भी नही। इसी भाँति यहाँ जो कुछ शतकोटि करके कहा गया है उसे वैसा ही समझना चाहिए। उससे रामजी की बड़ाई नही हुई बल्कि ऐसी उपमा देने से उनकी लघुता हुई। ऐसी अवस्था में वर्णन करनेवाले को कुछ न कुछ कहना पड़ता है। मुनि लोगों ने अपनी बुद्धि के अनुसार सरकार की प्रशंसा की है और अतिकृपाल भावग्राहक भगवान् लघुता पर ध्यान नही देते। सप्रेम वचन सुनकर सुख मानते है।

दो. राम अमित गुन सागर, थाह कि पावै कोइ।
संतन्ह सन जस कछु सुनेउँ, तुमहि सुनाएउँ सोइ॥९२ क.

अर्थ : रामजी असंख्य गुणो के समुद्र हैं। क्या उनका कोई पार पा सकता है। सन्तों से जो कुछ सुना वही तुम्हें सुनाया।

व्याख्या : रामजी मे असंख्य गुण हैं और एक एक गुण एक एक समुद्र है।

इस समुद्र का तो थाह भी मिल जाता है। उन समुद्रो का थाह नही। भाव यह कि कोई यह न समझ ले कि उपर्युक्त बाईस गुण ही सरकार मे हैं। अथवा यदि हैं भी तो थोड़े हैं। इसलिए कहते हैं कि क्या उनके असंख्य गुणरूपी समुद्रो की थाह कोई पा सकता है। अतः सन्तों के मुख से जो सुना है वही तुम्हे सुना दिया। उनके गुण के जौहरी सन्त ही हैं।

सो. भाववस्य भगवान सुख निधान करुना भवन।
तजि ममता मद मान भजिय सदा सीतारवन ॥९२ ख.

अर्थ : भगवान् सुखनिधान करुणाभवन भाव के वश्य हैं। इसलिए ममता मद और मान को छोडकर सदा सीतारमण को भजिये।

व्याख्या : भगवान् सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं। उनके समान ही कोई नही। उनसे बढकर कोई क्या होगा। अतः सब कुछ उनके वश मे है। परन्तु वे सुखनिधान है। करुणाभवन हैं। इसलिए करुणा करके भक्तिभाव के वश में रहते हैं। भक्त के वश रहने मे उनका आनन्द प्रतिहत नही होता। अत' ममता मद और मान का परित्याग करके सदा सीतारमण को ही भजना चाहिए। ममता मद और मान के होने से भजन दम्भमात्र रह जाता है। इनका बिना परित्याग किये भजन हो नही सकता। यथा : सबके ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बांध बरडोरी। समदरसी इच्छा कछु नाही। हरख सोक भय नहि मनमांही।

सुनि भुसुण्डि के बचन सुहाए। हरषित खगपति पंख फुलाए ॥
नयन नीर मन अति हरखाना। श्रीरघुबर प्रताप उर आना ॥१॥

अर्थ : भुसुण्डिजी के सुहाये वचन सुनकर हर्षित हो गरुड़जी ने पंख फुलाये। उनकी आँखों मे आँसू आ गये। मन मे बडे हर्षित हुए और रामजी के प्रताप को हृदय मे धारण किया।

व्याख्या : सुहाये के साथ भाये का जोड है। यहाँ भाये नही कहा तो उसका फल कहा। आनन्द से जिस भाँति रोमाञ्च होता है उसी भाँति आनन्द से पक्षी पख फुलाते है। गरुड़जी पक्षिराट् हैं। इन्हे आनन्द हुआ तो इन्होंने भी पंख फुलाया। आँखो मे आँसू आ गया। हृदय मे हर्ष हुआ। कारण यह कि भुसुण्डिजी के वचन से रामजी का प्रताप हृदय मे आया। रामजी के प्रताप मे बड़ा सामर्थ्य है। जब यह हृदय मे आता है तो अचिन्त्य कार्य करा देता है। यथा : प्रभुप्रताप उर सहज असंका। रन बाँकुरा बालिसुत बंका। समुझि रामप्रताप कपि कोपा। पन करि सभा माँझ पद रोपा। रामप्रताप सुमिरि मनमांही। करहु सेतु प्रयास कछु नाही। जानत परम दुर्ग अति लंका। प्रभुप्रताप कपि चले असंका। इत्यादि।

पाछिल मोह समुझि पछिताना। ब्रह्म अनादि मनुज करि जाना ॥
पुनि पुनि काग चरन सिरनावा। जानि राम सम प्रेम बढ़ावा ॥२॥

अर्थ : पिछला मोह समझकर पछताया कि अनादि ब्रह्म को मैंने मनुष्य जाना। बार बार काग के चरणो मे सिर झुकाया और राम के समान जानकर प्रेम बढाया।

व्याख्या : जब प्रभु का प्रताप हृदय मे आया तब सम्यक् ज्ञान हुआ। लगे पछताने कि मुझसे सरकार का अपमान हो गया। जो मैंने अनादि ब्रह्म को मनुष्य जान लिया। श्री गीताजी मे भगवान् ने कहा है कि मैंने मनुष्य का शरीर धारण किया है। इसलिए मूढ लोग मेरा अपमान करते हैं। मेरे परम भाव को नही जानते कि मैं लोक का महेश्वर हूँ।

अब शिष्य की कृतकृत्यता कहते हैं कि बार बार काग के चरण मे सिर नवाया। इस बात पर ध्यान भी नही है कि यह काग है मैं गरुड हूँ। जिससे अपना उपकार हो वह चाहे कोई हो अपना मान्य है और पूज्य है। भुसुण्डिजी द्वारा तो महामोह दूर हुआ भक्ति की प्राप्ति हुई अत इन्हे रामजी के समान जाना। भक्त और भगवान् मे भेद नही है। अत भुसुण्डिजी के चरणो मे प्रेम बढाया।

गुर बिनु भवनिधि तरै न कोई। जौ बिरचि सकर सम होई॥
ससय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहर कुतर्क बहु ब्राता॥३॥

अर्थ : गुरु के बिना भवसमुद्र के पार कोई नही जा सकता। चाहे वह ब्रह्मा और शङ्कर के तुल्य ही क्यो न हो ससय रूपी सर्प ने हे तात! मुझे ग्रस लिया था। जिससे कुतर्करूपी बहुत सी दु खद लहरें आ रही थी।

व्याख्या : जिस भाँति कर्णधार के बिना नाव समुद्र पार नही जा सकती उसी भाँति गुरु के बिना कोई अपने पुरुषार्थ से भवसागर के पार नही जा सकता। यथा नृदेहमाद्य सुलभ सुदुर्लभ प्लव सुकल्प गुरुकर्णधारणम्। मयानुकूलेन नभस्वतेरितम् पुमान् भवाब्धि न तरेत् स आत्महा।

गरुडजी कहते हैं कि मेरी क्या गिनती? ब्रह्मा और शङ्कर सा भी पुरुषार्थी बिना गुरु के भवसागर पार नही जा सकता। अत. भवसागर सन्तरण के लिए गुरु की अपरिहार्य आवश्यकता है। आप गुरु मिल गये। अत भवसन्तरण मुझे सुलभ हो गया। यही इस बात का भी पता लगता है कि उस समयतक गरुडजी ने गुरु नही किया था। समझते थे कि मुझे गुरु की क्या आवश्यकता है। यथा होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवै चह कृपा निधाना। गरुडजी कहते हैं कि मैं सर्पों को ग्रसा करता हूँ। मेरा मन्त्र पढकर गारुडी लोग सर्प से काटे हुए लोगो को जिला लते हैं। पर यह ससय सर्प ऐसा प्रबल है कि इसने मुझे ग्रस लिया था और जिस भाँति साँप के काटे हुए का लहर आती है उसी भाँति मेरे मन मे कुतर्क की दु खद लहर उठने लगी थी।

तव सरूप गारुडि रघुनायक। मोहि जियाउ जन सुखदायक॥
तव प्रसाद मम मोह नसाना। राम रहस्य अनूपम जाना॥४॥

अर्थ : तुम्हारा स्वरूप रामजी का गारुडी : हे जनसुखदायक ! उसने मुझे जिला लिया। तुम्हारे प्रसाद से मेरा मोह नष्ट हुआ। मैंने रामजी का अनुपम रहस्य जाना।

व्याख्या : रघुनायक गरुड़ हैं। तुम उनके भक्त गारुडी हो। यथा : ससय सर्प ग्रमन उरगाद'। समन सुकर्कस तर्कविपादः। जन के सुखदायक हो। मै मर रहा था। मुझे दु खद लहर आ रही थी। आपने मुझे जिलाया।

विनिमय मे कुछ न चाहकर जो उपकार किया वही कृपा है। कृपा तो मुझपर बडे बडे लोगो ने की। पर मेरा मोह नही गया। आपके प्रसाद से गया। जिसे सर्प काटता है उस पर बडे बडे लोग कृपा करते हैं। पर किसी का किया कुछ नही होता। गारुडी कृपा करें तो कल्याण हो। सरकार का यह अनुपम रहस्य है कि अवतीर्ण रूप मे पूर्णता ज्यो की त्यो बनी रहती है। रहस्य भी अनेक हैं पर इसके जोड़ के नही।

भुसुण्डि चरित : पहिले दूसरे और तीसरे प्रश्न का उत्तर

दो. ताहि प्रसंसि बिबिध बिधि, सीस नाइ कर जोरि।
बचन बिनीत सप्रेम मृदु, बोलेउ गरुड़ बहोरि ॥९३ क.
प्रभु अपने अबिबेक ते, बूझौ स्वामी तोहि।
कृपा सिंधु सादर कहहु, जानि दास निज मोहि ॥९३ क.

अर्थ : उसकी अनेक विधि से प्रशसा करके सिर नवाकर हाथ जोड़कर प्रेम युक्त विनीत मृदु बचन फिर गरुडजी बोले। हे प्रभो ! मैं अपने अविवेक से हे स्वामी ! आप से पूछता हूँ। हे कृपासिन्धु ! मुझे अपना दास जानकर आदर के साथ कहिये।

व्याख्या : कृतकृत्य होने से गरुडजी ने अनेक प्रकार से भुसुण्डिजी की स्तुति की। सीस नाइ कर जोरि से कर्मणा : सप्रेम से मनसा और मृदु विनीत बचन बोलेउ से वाचा प्रह्वीभाव ' नम्रता कहा। स्तुति के बाद फिर बोलने से यह मालूम होता है कि गरुडजी कोई प्रश्न करना चाहते हैं।

गरुडजी जो कहते हैं कि मैं अपने अविवेक से पूछना चाहता हूँ। यह वस्तुतः भक्त का कार्पण्य है। यह रामजी विषयक अविवेक नही है। देह पर उत्कर्षापकर्ष लेकर ही यह प्रश्न है। अत. अविवेक कहा। गरुडजी कहते हैं कि मैं आपका दास हूँ आप स्वामी हैं। इस नाते मैं कुछ बातें आपके सम्बन्ध मे पूछना चाहता हूँ। सो दास यदि स्वामी के विषय मे जानकारी के लिए पूछे तो उसे धृष्टता न समझकर आदर के साथ कहना चाहिए।

तुम सर्वज्ञ तज्ञ तमपारा। सुमति सुसील सरल आचारा ॥
ज्ञान बिरति बिज्ञान निवासा। रघुनायक के तुम प्रिय दासा ॥१॥

अर्थ आप सर्वज्ञ हैं तत्पद के जाननेवाले हैं। तम के पार हैं सुमति सुशील और सरल आचार हैं। ज्ञान वैराग्य और विज्ञान के निवास हैं और रामजी के प्रिय दास हैं।

व्याख्या गरुडजी भुसुण्डिजी से कहते हैं कि आप सर्वज्ञ हैं। अपने ज्ञान से आपको तीनो काल करतलगत आमलक के समान है। अर्थात् भूत भविष्य भी आपके लिए वर्तमान के ही तुल्य है। अत आप बतला सकते हैं कि वर्तमान शरीर पूर्व जन्म के किस कर्म का फल है। जो तत्पद का जाननेवाला हो उसे शरीर की प्राप्ति नहीं होनी चाहिए। जो तम से पार हो वह देव शरीर का अधिकारी है। सुमति सुशील सरल आचार को भी रमणीय योनि मिलनी चाहिए। ज्ञान वैराग्य और विज्ञान धाम मुक्ति के अधिकारी हैं और रघुनायक के प्रिय दास नित्य मुक्ति सुख मे लीन रहते हैं। आप मे ये सब गुण हैं।

कारन कवन देह यह पाई। तात सकल मोहि कहहु बुझाई ॥
राम चरित सर सुन्दर स्वामी। पाएउ कहाँ कहहु नभगामी ॥२॥

अर्थ क्या कारण है कि आप ने यह देह पायी ? हे तात यह सब बात मुझे समझाकर कहिये। हे स्वामी ! यह सुन्दर रामचरित सर नभगामी होते हुए आप ने कहाँ पाया ?

व्याख्या ऐसे गुणवाले को यदि देह भी मिले तो उत्तम देह मिलनी चाहिए। यह शकुनाधम सब भाँति अपावन देह आप को मिलने का क्या कारण है ? यह बात मेरे मन में नही बैठती इसलिए इसे समझाकर कहिये। यह पहिला प्रश्न हुआ। अब दूसरा प्रश्न करते है कि यदि यह शरीर मिल ही गयो तो इसके अनुकूल आचरण भी होना चाहिए। बक काग तो रामचरित सर के निकट नही जाते उन्हे इसकी प्राप्ति कहाँ ? वे नभगामी हैं जहाँ उन्हे सम्बुक भेक सेवार मिलता है वहाँ वे चले जाते हैं। यह रामचरितसर देवलोक मे भी दुर्लभ है सो आप का यह कहाँ से मिल गया ?

नाथ सुना मैं अस सिव पाहीं। महा प्रलयहुँ नास तव नाहीं ॥
मृषा वचन नहि ईस्वर कहई। सोउ मोरे मन संसय अहई ॥३॥

अर्थ हे नाथ ! मैंने शिवजी से यह सुना है कि महा प्रलय मे भी आपका नाश नहीं होता। ईश्वर मिथ्या वचन कहते नही सो यह संशय भी मेरे मन मे है।

व्याख्या इस संसार म अमरत्व भी आपेक्षिक है। देवता लोक अमर हैं क्योंकि वे एक मन्वन्तर तक जीते हैं। यहाँ काल से अभय करने का अर्थ भी कल्पान्त जीवन है। विभीषणजी को कियो कृपाल अभय कालहु ते। काल से अभय कर दिया। इसका अर्थ यह हुआ कि वे कल्पान्तजीवी हो गये। महाप्रलय म उनका भी देहावसान होगा। पर शिवजी ने कहा है कि तेहि गिरि रुचिर बसै खग सोई। जासु नास कल्पान्त न होई। आपका देहावसान महा प्रलय मे भी नहीं होता। ईश्वर मिथ्या

कह नही सकते और महा प्रलय मे कोई बच नही सकता। यह संशय भी गरुड़जी कहते हैं कि मेरे मन में हैं।

अग जग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जग काल कलेवा ॥
अंड कटाह अमित लयकारी। काल सदा दुरित क्रम भारी ॥४॥

अर्थ : चराचर जीव नाग नर और देवता हे नाथ! सम्पूर्ण संसार काल का कलेवा है। असख्य अण्ड कटाह का लय करनेवाला काल है। काल कभी भी उल्लंघन करने योग्य नही है।

व्याख्या : चराचर जितने जीव हैं। चाहे वे पातालवासी नाग हों चाहे मर्त्यलोक निवासी मनुष्य हों। चाहे स्वर्गलोक निवासी देवता हो सभी काल के कलेवा हैं। काल का पेट कभी नही भरता। पहिले जीवो का कलेवा करता है पीछे असख्य ब्रह्माण्डों को खा जाता है। काल का कोई उल्लघन करने मे समर्थ नही है। यथा :

ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्माण्ड अनेक निकाया ॥
जीव चराचर जन्तु समाना। भीतर बसहि न जानहि आना ॥
ते फल भक्षक कठिन कराला। तव भय डरत सदा सोउ काला ॥

दो. तुम्हहिन व्यापत काल अति, कराल कारन कवन।
मोहि सो कहहु कृपाल, ज्ञान प्रभाउ कि योग बल ॥९४ क.

प्रभु तव आस्रम आएउ, मोर मोह भ्रम भाग।
कारन कवन सो नाथ सब, कहहु सहित अनुराग ॥९४॥

अर्थ : आप को अति कराल काल नही व्यापता : इसका कारण क्या है हे कृपाल! सो मुझसे कहिये कि यह ज्ञान का प्रभाव है कि योग का बल है।

हे प्रभो! तुम्हारे आश्रम मे आने से मेरा मोह भ्रम भाग गया। इसका कारण क्या है सो सब हे नाथ! अनुराग के साथ कहिये।

व्याख्या : जो काल सबको व्यापता है वह आप को क्यो नही व्यापता। बिना कारण के कार्य नही होता। अत: इस विशेषता के लिए भी कोई विशेष कारण होना चाहिए। आप सर्वज्ञ हैं : उस कारण को मुझे बतलाइये क्योंकि मैं आपका दास हूं। यह आपके ज्ञान का प्रभाव है कि आपके योग का बल है? ज्ञान और योग का ही महा प्रभाव सुनने में आता है। ये मोक्ष तक देने मे समर्थ है। अत: अनुमान तो यही होता है कि इन्ही दोनो मे से किसी का यह प्रभाव होगा।

चौथा प्रश्न यह है कि मेरा मोह भ्रम ऐसा निकट था कि ब्रह्मलोक तथा कैलास जाने पर भी नही गया और आप के आश्रम मे आने से भाग गया। सो आप के आश्रम की इतनी बडी महिमा कैसे हो गयी? इसका कारण अनुराग के साथ कहिये क्योंकि इससे मेरा बड़ा कल्याण हुआ है।

रुड़गिरा सुनि हरषेउ कागा। बोलेउ उमा परम अनुरागा ॥
न्य धन्य तव मति उरगारी। प्रस्न तुम्हारि मोहि अति प्यारी ॥१॥

अर्थ : हे उमा ! गरुड़जी वाणी सुनकर भुसुण्डिजी हर्षित हुए और अत्यन्त नुराग के साथ बोले। हे गरुड़ ! तुम्हारी मति धन्य है धन्य है ! तुम्हारा प्रश्न मुझे त्यन्त प्यारा मालूम हुआ।

व्याख्या : गरुड़जी प्रश्न करने में भयभीत थे कि मेरे प्रश्न से काग भुसुण्डिजी प्रसन्न न हो जाँय। अतः पहिले ही अपने अविवेक की चर्चा करते हैं। यथा : प्रभु पने अबिबेक ते बूझौं स्वामी तोहि। कृपासिन्धु सादर कहहु जानि दास निज ोहि। इस भाँति आदर के साथ उत्तर पाने की प्रार्थना भी करते हैं। परन्तु गरुड़जी प्रश्न से भुसुण्डिजो को हर्ष हुआ। क्योंकि उसके उत्तर में उन महात्माओं के शोगान का इन्हें अवसर मिलेगा जिन्होंने कि इनपर करुणा की थी। शिवजी उमा कहते हैं कि उमा ! भुसुण्डिजी अनुराग के साथ बोले। कोरे कोरे आदर से अनुराग ी महत्ता अधिक है।

भुसुण्डिजी इतने प्रसन्न हुए कि ऐसा प्रश्न करने से गरुड़जो की मति को धन्य न्य कहने लगे। क्योंकि इस प्रश्न के उत्तर में बड़ा भारी लोकहित साधन की ामग्री है। कहने लगे कि प्रश्न तुम्हारा मुझे बड़ा प्यारा मालूम हुआ। इसके उत्तर मुझे अपने प्रिय विषय का निरूपण करना होगा।

ुनि तव प्रस्न सप्रेम सुहाई। बहुत जनम की सुधि मोहि आई ॥
व निज कथा कहौं मै गाई। तात सुनहु सादर मन लाई ॥२॥

अर्थ : प्रेम युक्त सुन्दर तुम्हारा वचन सुनकर मुझे बहुत जन्मों की स्मृति हो ायी। अब मैं अपनी कथा गाकर कहता हूँ। हे तात ! आदर के साथ मन गाकर सुनो।

व्याख्या : गरुड़जी वचन सप्रेम विनीत मृदु बोले थे। इसलिए भुसुण्डिजी हते हैं कि सप्रेम सोहाई वाणी सुनकर मुझे बहुत जन्म की सुधि आगयी। सोहाई ही मृदु और विनीत का अन्तर्भाव है। भुसुण्डिजी कहते हैं कि इस प्रश्न के तर से मेरे बहुत से जन्मो का सम्बन्ध है। सो सबके सब मुझे याद पड़ गये। ही तो उन सबो को भूला हुआ बैठा था।

अभी तक तो रघुनाथजी की कथा कहता था। अब अपनी कथा कहूँगा और स्तार के साथ कहूँगा। अब सुनने मे तुम्हारी ओर से उपेक्षा न हो। अतः मन गाकर सुनने को कहते हैं। इसमे बहुत सी उपदेशप्रद बातें हैं। उपेक्षा होने से नसे लाभ न होगा और मेरा परिश्रम व्यर्थ जायगा।

प तप मख सम दम ब्रत दाना। बिरति बिवेक जोग बिज्ञाना ॥
बकर फल रघुपति पद प्रेमा। तेहि बिनु कोउ न पावै छेमा ॥३॥

अर्थ : जप, तप, यज्ञ, शम, दम, व्रत, दान, विरति, विवेक, योग और विज्ञान, सबका फल रामजी के चरणो मे प्रेम है। उसके बिना किसी का कल्याण नही होता।

व्याख्या : जप, तप, व्रत, यज्ञ, शम, दम, दान, ये सब वेदविहित कर्म हैं। इनके करने से शुभ फल होता है। परन्तु वे भी यदि भगवत् प्रीत्यर्थ न किये जायँ तो बन्ध के कारण होते है : यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः। और विरति विवेक योग विज्ञान से भी निरूपास्ति होने से पतन होता है। जोग कुजोग ग्यान अग्यानू। जहँ नहि राम प्रेम परधानू। यदि यह सब कुछ करने पर भी रामचन्द्र पदपङ्कज मे प्रेम न हुआ तो सब व्यर्थ हैं। अतः तव पद पकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुन्दर। इसके बिना किसी का क्षेम नही होता। अर्थात् अन्य साधनो मे फल लगते हैं। योग तो हो जाता है पर क्षेम नही होता। यथा : राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई। सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाही। बरषि गये पुनि तबहि सुखाही।

एहि तन राम भगति मैं पाई। तातें मोहि ममता अधिकाई॥
जेहि ते कछु निज स्वारथ होई। तेहि पर ममता कर सब कोई॥४॥

अर्थ : इस शरीर से मैंने रामभक्ति पायी है। इससे मुझे बड़ी ममता है। जिससे कुछ अपना स्वार्थ होता है उस पर सब लोग ममता करते हैं।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि शरीर तो मैंने बहुत पायी। पर किसी मे रामभक्ति न हुई। मुझे तो काक शरीर मे ही भक्ति मिली। इसलिए इस पर ममता विशेष है। भाव यह कि जो शरीर मिलता थी उस पर कुछ ममता हो ही जाती थी। पर उनसे किसी से वास्तविक कल्याण नही हुआ। पर इस शरीर मे रामभक्ति की प्राप्ति हुई इससे इस पर मेरी ममता है। मैं इसी शरीर मे प्रसन्न हूँ। क्योकि शरीर मिलने का साफल्य तो इसी से हुआ।

ससार की भी यही रीति है कि जिससे अपना कुछ काम निकलता है उस पर सब लोग ममता करते हैं। सुर नर मुनि सबकै यह रीती। स्वारथ लागि करहि सब प्रीती। मेरा काम तो इस शरीर से निकला। अतः इस पर मेरी ममता होना प्राप्त है। दूसरो को भले ही यह अधम शरीर जान पड़े। पर मुझे तो यह प्रिय है।

सो. पन्नगारि असि नीति स्रुतिसम्मत सज्जन कहहि।
अति नीचहु सन प्रीति, करिअ जानि निज परम हित॥९५ क.
पाट कीटते होइ, तेहि तें पाटंबर रुचिर।
कृमि पालै सब कोइ, परम अपावन प्रानसम॥९५॥

अर्थ : हे गरुड़जी ! ऐसी नीति है। वह श्रुति सम्मत है और शिष्टानुमोदित है।

अति नीच से भी अपना परम हित जानकर प्रीति करनी चाहिए। रेशम कीड़े से होता है। उससे सुन्दर रेशमी वस्त्र बनता है। परन्तु उस परम अपावन कीड़े को सब लोग प्राण के समान पालते हैं।

व्याख्या : नीति भी अनेक प्रकार की होती है। कूटनीति की भी नीति में ही गिनती है। परन्तु वह धर्मविरुद्ध है। यह नीति श्रुतिसम्मत है धर्मानुकूल है और शिष्ट लोग इसके अनुसार आचरण करते हैं तथा उपदेश देते हैं कि यद्यपि नीच का साथ निन्दित है पर यदि वह अपना परम हित हो तो उससे प्रीति करनी चाहिए। भाव यह कि यह काक शरीर पक्षियों में चाण्डाल शरीर है। अति नीच है। पर यह मेरा परम हित है। इसलिए इससे प्रीति करता हूँ।

रेशम का उदाहरण देते हैं कि रेशम तो कीड़े से प्राप्त होता है। वही कोप बनाता है जिससे रेशम बनता है और उस रेशम से अपना परम हित सधता है। उससे पाटाम्बर बनता है। इसलिए उस कीड़े को लोग पालते हैं। वह कीड़ा परम अपावन है। अपने मुख के राल से अपने चारों ओर कोप बनाता है। पर उसकी अपावनता पर कोई दृष्टिपात नहीं करता और बड़े यत्न से उसे पालता है।

स्वारथ साँच जीव कहु एहा। मन क्रम बचन रामपद नेहा ॥
सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजै रघुबीरा ॥१॥

अर्थ : जीव के लिए यही सच्चा स्वार्थ है कि मनसा वाचा कर्मणा रामजी के चरणों में स्नेह हो। वही शरीर पवित्र है और सुन्दर है जिसे पाकर रामजी का भजन हो।

व्याख्या : संसार स्वार्थ भी नहीं जानता। झूठे स्वार्थ में पड़ा है। इसी से देह गेह कुटुम्बादि मे रत है। विनाशी पदार्थों मे प्रेम करना कच्चा स्वार्थ है। अविनाशी तो राम हैं। अतः उन्ही में प्रेम लगाना सच्चा स्वार्थ है। अतः यदि स्वार्थ ही साधन करना है तो सच्चा स्वार्थ साधन करिये।

शरीर तो सभी रक्त मांस अस्थि चर्मादि का बना हुआ घृणास्पद है। मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय पीके। मनुष्य देह मे यही विशेषता है कि इसके द्वारा रामजी के चरणों में प्रेम हो सकता है। यदि मनुष्य शरीर से भी प्रभु चरणो मे प्रेम न हुआ तो : काज कहा नरतन धरि सारयो। फिर मनुष्य देह से लाभ क्या हुआ ? अतः सिद्धान्त यही हुआ कि जिसी देह से राम भजन हो वही पवित्र है। वही सुन्दर है। यथा : बिनु हरिभजन इंदारुन को फल तजत नही करुआई।

राम बिमुख लहि बिधिसम देही। कबि कोबिद न प्रसंसहि तेही ॥
रामभगति एहि तन उर जामी। तातें मोहि परम प्रिय स्वामी ॥२॥

अर्थ : राम विमुख को यदि विधि के समान देह मिले तो भी पण्डित कवि उसकी प्रशंसा नहीं करते। इस शरीर में ही मेरे हृदय में रामभक्ति उगी। इसलिए हे स्वामी ! यह मुझे परम प्रिय है।

व्याख्या : देहधारियो में सर्वोत्तम ब्रह्मदेव हैं। उन्ही के शरीर से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति है। उसमे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के रचने की शक्ति है। परन्तु ऐसी देह को भी पाकर जो कोई रामविमुख हो तो विवेकी पण्डित उसकी प्रशंसा नही करते। क्योकि उससे परम कल्याण नही हुआ। इद शरीर कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते। इसी शरीर को खेत कहा गया है। सो रामभक्ति के लिए मेरी काकदेह गुरुदत्त होने से उपजाऊ हो गयी और शरीर मेरे लिए ऊसर ही रह गये। इसलिए यह शरीर मुझे परम प्रिय है।

तजौ न तनु निज इच्छा मरना। तनु बिनु बेद भजन नहि बरना ॥
प्रथम मोह मोहि बहुत बिगोवा। रामबिमुख सुख कबहुँ न सोवा ॥३॥

अर्थ : मै काक्षामृत्यु हूँ। इसलिए शरीर नही छोडता। क्योकि वेद कहता है कि बिना शरीर का भजन नही होता। पहिले मोह ने मुझे बहुत कष्ट दिया। राम के विमुख रहकर मैं कभी सुख से नही सोया।

व्याख्या : तीसरे प्रश्न : तुमहि न व्यापत काल अति कराल कारन कवन का उत्तर : गुरुजी द्वारा मुझे इच्छा मरण का आशीर्वाद मिला। जब शरीर छोड़ने की इच्छा हो तभी छोड सकते हैं। परन्तु मैं इसे छोड़ता नही। क्योकि वेद कहते हैं कि शरीर के न रहने से भजन नही हो सकता। सगुण उपासक मोच्छ न लेही। तिनकहँ राम भगति निज देही। मुझे भजन मे जो सुख है वह मोक्ष मे भी नही है।

मोह दरिद्र है। वह जीव को लक्ष्मोपति से विरुद्ध किये रहता है। उसी मोह ने मुझे पहिले बहुत कष्ट दिया। मोह के कारण शोक बना ही रहता था। वह सदा मुझे राम विमुख बनाये रहा। अतः मैं सदा कष्ट पाता रहा। राम विमुख होने से सुख कभी न मिला। सदा चिन्ताग्रस्त रहा सुख से कभी न सोया।

नाना जनम करम पुनि नाना। किए जोग जप तप मख दाना ॥
कवन जोनि जन्मेउँ जहँ नाही। मै खगेस भ्रमि भ्रमि जग माही ॥४॥

अर्थ : अनेको जन्मो मे मैंने अनेको कर्म योग जप यज्ञ और दान किये। हे पक्षिराट्! वह कौन सी योनि है जिसमे मैंने इस ससार मे घूम घूमकर नही जन्म लिया।

व्याख्या : आकर चारि लाख चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी। फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा। इस भाँति कितने जन्म मे मनुष्य भी हुए और योग, जप, तप, यज्ञ और दान भी किया। परन्तु ससृति का अन्त नही हुआ। कर्म से कर्म शृखला बढ़ती ही गयी और जन्म मरण के चक्कर मे पड़ा रहा।

देखेउँ करि सब करम गोसाईं। सुखी न भएउ अबहिंकी नाईं ॥
सुधि मोहि नाथ जनम बहु केरी। सिव प्रसाद मति मोह न घेरी ॥५॥

अर्थ : हे गोसाईं ! सब कर्म करके मैंने देख लिया। जैसा इस समय सुखी हूँ वैसा सुखी कभी न हुआ। हे नाथ ! मुझे बहुत से जन्मों की याद है। शिवजी की कृपा से मेरी बुद्धि को मोह घेर न सका।

व्याख्या : मैंने सब कर्म किये सबका फल देखा। सुख के लिए कर्म किया सुख मिला भी। पर जैसा मैं इस काकशरीर में राम भजन के प्रभाव से सुखी हूँ वैसा सुख तो कभी नहीं मिला। मुझे सब जन्मों की याद बनी है। शिवजी के प्रसाद से मोह मेरी मति घेर न सका। पूर्व जन्म के स्मरण न रहने का यही कारण है कि बुद्धि को मोह घेर लेता है। परन्तु मुझे शिवजी ने आशीर्वाद दिया था : कौनेहु जन्म मिटिहि नहि ग्याना। सुनहि सूद्र मम बचन प्रमाना। इसलिए मैं पूर्व जन्मानुभूत सुखों से वर्तमान शरीर के सुख का मिलान कर सकता हूँ।

दो. प्रथम जन्म के चरित अब, कहौ सुनहु बिहगेस।
सुनि प्रभुपद रति उपजै, जाते मिटहि कलेस ॥९६ क.
पूरब कल्प एक प्रभु, जुग कलिजुग मल मूल।
नर अरु नारि अधर्म रत, सकल निगम प्रतिकूल ॥९६॥

अर्थ : हे पक्षिराट् ! मैं पहिले जन्म का चरित अब कहता हूँ उसे सुनो। उसके सुनने से प्रभु के चरणों मे प्रेम उपजता है। जिस प्रेम के द्वारा क्लेश मिट जाते हैं। पूर्व कल्प में एक मल का मूल कलियुग नाम का युग था। जिसमें हे प्रभो ! नर और नारी अधर्म मे रत थे और सब वेद के विरुद्ध थे।

व्याख्या : चौरासी लाख योनि भोगते भोगते पूर्व कल्प के किसी एक कलियुग मे पहिले पहल मनुष्य योनि मिली। यही क्रम है धीरे धीरे उन्नति होती है। उस जन्म का अपना चरित कहते हैं। उसकी फलश्रुति है कि उसके सुनने से रामजी के चरणों मे प्रीति होती है और उससे क्लेश मिटता है। उपदेश करने में सङ्कोच न होना चाहिए। अतः अपने चरित्र की फलश्रुति स्वयं कहते हैं।

पूर्व कल्प से यहाँ कम से कम अट्ठाईसवें पूर्व कल्प को कथा अभिप्रेत है। क्योंकि सत्ताईस कल्प तो भुसुण्डिजी को नीलगिरि पर्वत पर रहते बीता। यथा : इहाँ बसत मोहि सुनु खगईसा। बीते कल्प सात अरु बीसा। जिस भाँति सब ऋतुओं के धर्म पृथक् पृथक् हैं इसी भाँति सब युगो के धर्म भी पृथक् पृथक् हैं। इनमें कलियुग बड़ा मलिन है मल का मूल है। इसमे नर नारी सब पापी होते हैं और वेदविरुद्धाचरण करते हैं।

तेहि कलिजुग कोसलपुर जाई। जनमत भयेउ सूद्र तन पाई ॥
सिव सेवक मन क्रम अरु बानी। आन देव निंदक अभिमानी ॥१॥

अर्थ : उस कलियुग में मैं अयोध्या जाकर शूद्र शरीर पाकर जन्मा। मनसा वाचा कर्मणा मैं शिवजी का सेवक था। पर था अभिमानी। अन्य देवताओं की निन्दा करता था।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि वह पहिला जन्म मेरा यद्यपि शूद्रयोनि म और कलियुग मे हुआ फिर भी अयोध्या म हुआ। काल विपरीत होने पर भी देश अनुकूल था। शूद्र शरीर से प्रश्नादिक म अधिकार नही होता और कलियुग म स्वभाव से ही लोगो को नीच प्रवृत्ति होती है। कर्म की विचित्रता दिखलाते हुए कहते हैं कि अच्छी बात मुझमे यह थी कि मैं नास्तिक नही था। मनसा वाचा कर्मणा शिवभक्त था और बुराई यह थी कि मैं अभिमानी था। दूसरे देवताओ की निन्दा करता था। दूसरे देवता की निन्दा करने म अनन्यता समझता था। शिवादन्य न जानामि शिव से अन्य किसी को मैं नही जानता। इस प्रकार की अनन्यता नही थी।

धनमद मत्त परम बाचाला। उग्र बुद्धि उर दंभ बिसाला॥
जदपि रहेउँ रघुपति रजधानी। तदपि न कछु महिमा तब जानी॥२॥

अर्थ मैं धन के मद मे मतवाला हो गया था। बडा बकवादी था। बुद्धि बडी उग्र थी और हृदय म बडा दम्भ था। यद्यपि रामजी की राजधानी म रहता था। फिर भी उस समय उसकी कुछ भी महिमा नही जानता था।

व्याख्या कनक कनक से सौ गुनो मादकता अधिकात। वह पाये बौरात है यह खाये बौरात। धतूरे से अधिक सोने म मादकता नशा है। क्योकि धतूरा खाने से आदमी पागल हो जाता और सोना के पाने से पागल हो जाता है। भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैं धनी था इसलिए मुझे धन का मद था। तिस पर भी बडा दोष यह था कि मुखर बकवाका था। सोचिय सूद्र बिप्र अवमानी। मुखर मान प्रिय ग्यान गुमानी। सो उग्र बुद्धि और वादप्रिय होने से मैं ज्ञानगुमानी भी था। बाहर से सब को दिखलाता था कि मै बडा धार्मिक हूँ। अत बडा भारी दाम्भिक भी था।

अयोध्या रामजी की राजधानी है यह बात ससार जानता है। श्रीअयोध्याजी मे रहकर उसकी महिमा जानना एक विचित्र बात है। भारत वर्ष मे तो सर्वत्र प्रख्यात है कि अयोध्या सात मोक्षपुरियो मे से प्रथम है। अत महात्मागण सदा श्रीअयोध्याजी मे बसते हैं। भुसुण्डिजी कहते हैं कि उस समय मुझे श्रीअयोध्याजी क निवास की महिमा का परिज्ञान नहीं था।

अब जाना मैं अवध प्रभावा। निगमागम पुरान अस गावा॥
कवनेहु जनम अवध बस जोई। राम परायन सो परि होई॥३॥

अर्थ अब मैंने अवध का प्रभाव जाना। वेद शास्त्र और पुराण ने ऐसा गान किया है जो कोई किसी जन्म में यदि अवधवास करता है तो वह भला भाँति रामपरायण होता है।

व्याख्या भुसुण्डिजी कहते हैं कि अवध के प्रभाव का पता तो मुझे इस जन्म मे लगा जब कि अवध वास का फल मुझे मिला और वेद पुराण शास्त्र भी कहते है कि किसी जन्म मे जब अवध म वास हुआ रहता है तब वह राम परायण होता

है। अर्थात् धाम भी सरकार का विग्रह है। उससे एक बार भी सम्बन्ध हो जाने से फिर वह सम्बन्ध टूटता नही फल देकर ही रहता है। वेद पुराण शास्त्र ने कहा है कि किसी जन्म मे भी जिसे अवधवास का सौभाग्य प्राप्त हुआ है उसे राम भक्ति होकर रहेगी।

अवध प्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहिं राम धनुपानी ॥
सो कलिकाल कठिन उरगारी। पाप परायन सब नर नारी ॥४॥

अर्थ : अवध की प्रभुता प्राणी तब जान पाता है जब हृदय मे धनुंधर रामजी निवास करते हैं। हे गरुडजी! यह कलिकाल बडा कठिन था उसमे सब नरनारी पापी हो गये थे।

व्याख्या : अवध का प्रभाव प्राणी के हृदय मे तब ठीक ठीक आता है जब उसका हृदय स्वय अवध हो जाय। तहइँ अवध जहँ राम निवासू। तहइँ दिवस जहँ भानु प्रकासू। जहाँ सूर्य का प्रकाश हो वही दिन है और जहाँ राम का निवास हो वही अवध है। सो जब धनुंधर रामजी हृदय मे बसें लोभ मोह मत्सर मद मान से हृदय शुद्ध हो। यथा : तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना। जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा। अर्थात् जब सरकार के बसने से हृदय प्रकाशमान हो तब अयोध्या का माहात्म्य मन मे आवे। उस महिमा का पता लगे जिसके बल से रामजी का अवतार अयोध्या छोडकर अन्यत्र हो नही सकता।

अब कलिकाल की कथा कहते हैं कि वह कलिकाल बडा कठिन था। पाप के समुद्र मे नर नारियो का मन मछली हो गया था। पाप में ही उनको सुख मिलता था। समय वैसा बर्त रहा था उसके उल्लङ्घन मे सभी असमर्थ थे।

दो. कलिमल ग्रसे धरम सब, लुप्त भए सद ग्रंथ।
दम्भिन्ह निज मति कलपि करि, प्रगट कीन्ह बहु पथ ॥९७ क.
भये लोग सब मोह बस, लोभ ग्रसे सुभ कर्म।
सुनु हरि जान ज्ञाननिधि, कहौं कछुक कलिधर्म ॥९७॥

अर्थ : सब धर्मों को कलियुग के मल ने ग्रस लिया था। सद्ग्रन्थ सब लुप्त हो गये थे। दम्भियो ने अपने अपने मतो की कल्पना करके बहुत से पथ प्रकट कर दिये थे। सब लोग मोह के वशीभूत थे और शुभ कर्मों को लोभ ने ग्रस लिया था। हे ज्ञाननिधि गरुडजी अब थोड़ा सा कलियुग का धर्म सुनो।

व्याख्या : तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलि प्रभाव विरोध चहुँ ओरा। यह कलियुग का मल है। इसका अनुवेध सभी धर्मों मे हो गया था। सात्विक कर्म कोई नही करता था। जो लोग धर्म करते भी थे वे तामस धर्म करते थे। सद्ग्रन्थ प्रचार विहीन होने से लुप्त हो गये। मार्ग कही पता नही कि कैसे चलें। महाजनो येन गतः

स पन्था:। सा सद्ग्रन्थो के लोप से यह भी पता नही चलता था कि बडे लोग किस रास्ते से गये हैं। ऐसा सुअवसर पाकर दम्भियो ने अपना अपना नया पन्थ कल्पना करके चलाया। जिससे चलनेवाले और भी पथभ्रष्ट हो जाते थे।

सब लोग अज्ञानवश आहार निद्रा भय मैथुन को ही लक्ष्य माने हुए चलते थे। जितने शुभ कर्म थे। उनपर लोभ का अधिकार हो गया था। शुभकर्म होना दुष्कर व्यापार था। भुशुण्डिजी कहते हैं कि अब थोडा सा कलि धर्म भी सुनो।

वरन धरम नहि आस्रम चारी। स्रुति बिरोधरत सब नरनारी ॥
द्विज स्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहि मान निगम अनुसासन ॥१॥

अर्थ: न वर्ण धर्म है न चार आश्रम हैं। सब नर नारी वेद के विरोध म लगे हुए हैं। ब्राह्मण वेद बेंचते हैं राजा प्रजा को खाकर जीते हैं। काई भी वेद की आज्ञा नही मानता।

व्याख्या ससार का कल्याण वेद को आज्ञा मानने मे है दूसरी भाँति से सम्भव नही। वेद की आज्ञा अव्याहत रखने के लिए ही चार वर्ण और चार आश्रम हैं। ये यदि अपने अपने धर्म पर चल तो काई कष्ट आ नही सकता। यथा 'वरणास्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग। चलहि सदा पावहि सुखहि नहि भय सोक न रोग। सो कलियुग मे वर्ण धर्म ही नही रह जाता। आश्रम विभाग मिट जाता है। नर नारी आसुर भाव को प्राप्त हो जाते हैं। जेहि बिधि होइ धरम निर्मूला। सो सब करहि बेद प्रतिकूला।

ब्राह्मण का धर्म विद्यादान है सो ब्राह्मण विद्यादान बन्द कर देंगे। विनियम म धन लकर तब वेद पढावेंगे। विष्णुशर्मा ने कहा नाह विद्याविक्रय शासनशतेनापि करोमि। यद्यपि अध्यापन ब्राह्मणो की जोविका है सा विद्या पढा चुकने के बाद गुरुदक्षिणा रूप से शिष्य के सामर्थ्यानुसार ग्रहण करने का विधान है। सो सब बातें जाती रही। ब्राह्मण वेतन भोगी होकर वेद पढाने लगते हैं।

राजा का धर्म है कि प्रजा को औरसपुत्र की भाँति पालन करें। सो राजा प्रजा को अपनी जीविका बना करके धन शोषण करते हैं। उनके न देने पर उन्हे दण्ड देते हैं। प्रजा पालन का उन्हे ध्यान भी नही। प्रजा का कष्ट देकर अपना पालन करना ही उनको खाकर जीना है।

ब्राह्मण और क्षत्रिय के विहिताचरण स ही लोक व्यवहार ठीक चलता है। जब ये दोना अपने मर्यादा से च्युत हो जाते हैं तब और लोग भी स्वच्छन्दाचार मे रत हो जाते हैं। वेद को आज्ञा की परवाह नही करते।

मारग सोइ जा कहु जोइ भावा। पडित सोइ जो गाल बजावा ॥
मिथ्यारभ दभ रत जोई। ता कहु सत कहै सब कोई ॥२॥

अर्थ जो जिसे अच्छा लगे उसी को वह रास्ता मानता है। जो लम्बी लम्बी

बातें करे वही पण्डित है। जिसका आरम्भ ही मिथ्या हो। जो दम्भ में दत्तचित्त हो उसी को सब सन्त कहते हैं।

व्याख्या : जिस रास्ते से पिता चले हो जिस रास्ते से पितामह चले हो और वह भलो का रास्ता हो उसी को पकडने से कल्याण होता है। महाजनो येन गतः स पन्थाः। परन्तु कलियुग में जिसे जैसा अच्छा लगे वही रास्ता वह पकडता है। इसका परिणाम बडा भयङ्कर है। स्वच्छन्दाचार से मनुष्य नष्ट हो जाता है। मार्ग की परिभाषा ही बदल गयी। इसी भाँति शब्दो के दुष्प्रयोग से बडा अनिष्ट होता है। परमार्थ ज्ञाता को पण्डित कहा जाता है। सो लम्बी लम्बी बातें करनेवाले को सब लोग एकमत होकर पण्डित मान लेते हैं। वह नेता हो जाता है और लोग उसी का अनुसरण करते हैं।

जो दम्भरत हैं दिखाने के लिए धर्म की ध्वजा उठाये हुए हैं। जिन्होने आरम्भ से ही झूठ को लक्ष्य बना रक्खा है। दूसरे को ठगना ही ध्येय बना रक्खा हैं। ऐसे बिडाल व्रती बकव्रती को चाहे वह कोई हो सब लोग सन्त कहते हैं। सन्त की परीक्षा इसी मे है कि मन्द करत जो करै भलाई। परन्तु इतनी परख किसी को नही।

सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी ॥
जो कह झूठ मसखरी नाना। कलियुग सोइ गुनवंत बखाना ॥३॥

अर्थ : जो दूसरे का धन हरण करे वही सयाना है। जो दम्भ करे वह बडा भारी आचारवान् है। जिसे झूठ कहना मसखरी करना आता है। कलियुग मे वही गुणी माना जाता है।

व्याख्या : वस्तुतः दूसरे का धन हरण करनेवाला बडा मूर्ख है। जिसने अन्यायोपार्जित द्रव्य से अपना कल्याण माना क्योकि अन्यायोपार्जित द्रव्य दश वर्ष तक ही ठहरता है। उसके लिए उसने अपना परलोक बिगाडा। परन्तु कलियुग मे उस महा मूर्ख को ही लोग सयाना कहेगे। क्योकि लोग भी परलोक पर विश्वास न करनेवाले तथा ऐहिक सुखको ही सर्वस्व माननेवाले होगे। परवित्त हरण करनेवाली बुद्धि ही उनके लिए प्रशसा के योग्य होगी।

जो दिखाने के लिए धर्म का ढोग बनाये हो उसे लोग आचारवान् मानेंगे। लोगो में सच्चे झूठे की परख जाती रहेगी। जिसे झूठ बोलने की विद्या मालूम है और जिसे लोगो को हँसाना आता हो। कलियुग मे उसकी गिनती गुणी जनो मे होगी। वस्तुतः वह महा निर्गुणी है। मिथ्या भाषण महा निन्दित दोष है। मिथ्याभाषी के लिए अवीची नाम का नरक बना हुआ है। जो सब नरको के नीचे है। मसखरे महा-निर्लज्ज होते हैं। सो इन बडे बडे दोषो की कलियुग मे गुणो मे गणना होगी।

निराचार जो स्रुतिपथ त्यागी। कलिजुग सोइ ग्यानी सो बिरागी ॥
जाके नख अरु जटा बिसाला। सो तापस प्रसिद्ध कलिकाला ॥४॥

अर्थ जो आचारभ्रष्ट वेदमार्ग को छोडे हुए हैं कलियुग मे वे ही ज्ञानी और वे ही विरागी है। जिसे नख और जटा लम्बी लम्बी है वही कलिकाल मे प्रसिद्ध तपस्वी कहलाता है।

व्याख्या आचार प्रथमो धर्म । आचार ही प्रथम धर्म है। स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धि विन्दति मानव । अपने कर्म धर्मसे ईश्वर की अर्चना करके लोग सिद्धि को प्राप्त करते हैं। सो जिसने आचार का त्याग किया उसे वैराग्य का उदय कैसे होगा ? और विना वैराग्य के ज्ञान भी कैसे होगा ? पहिले स्वधर्माचरण करके जब वैराग्य तथा ज्ञान अर्जन करता है तब वह विधि निषेध से परे होता है। फिर भी वह लोकसग्रह के लिए निषिद्धाचरण नही करता। नही तो शुना तत्त्वदृशाश्चैव को भेदोऽशुचिभक्षणे। कुत्ते मे और तत्त्वदर्शी मे अशुचि भक्षण समान होने से भेद क्या रह जायगा ?

बहुत दिनो तक क्षौर न कराने से हाथ पैर के नख बहुत बढ जाते हैं। जिससे वे सर्वथा कर्ममार्ग से परिभ्रष्ट हो जाते है। सिर के केश भी सिमिटकर जटारूप मे परिणत हो जाते हैं। कलिकाल मे ऐसे पुरुषो को प्रसिद्धि तपस्वी रूप से हो जाती है।

दो. असुभ वेष भूषन धरे, भक्षाभक्ष जे खाहि।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूजित कलि जुग माहि ॥९८ क.

सो जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम बचन लवार, ते बक्ता कलिकाल महुँ ॥९८॥

अर्थ अशुभ वेष और भूषण धारण करके जो भक्ष्याभक्ष्य खाते है वे योगी हैं। वे सिद्ध हैं। वे ही कलियुग मे पूज्य हैं। जो अपकारी चुगुल है उन्ही की बडाई और उन्ही का मान है। जो मनसा वाचा कर्मणा झूठे हैं वे ही कलियुग मे वक्ता हैं।

व्याख्या नख आदि के बढा लने से तथा मलिन रहने से उनका वेष अशुभ है। अस्थि की माला आदि धारण से जिसका भूषण भी अशुभ है। भक्ष्य और अभक्ष्य सब कुछ खाने से जो महा अपवित्र हैं ऐसे पुरुष को लोग योगी मानते हैं। सिद्ध मानते हैं और उन्ही की पूजा होती है। अन्य युगो म ऐसे पतितो का कोई मुख भी नही देखता। सब बिधि सोचिय पर अपकारी। निज तन पोषक निर्दय भारी। पिसुन पराय पाप कहि दही। ये दोनो महा दुर्गुण जिसम हो उसी की बडी प्रतिष्ठा और उसी की बडी मान्यता होती है। दुनिया भर के झूठे वक्ता माने जाते हैं। यह कलियुग की अद्भुत लीला है। युग का प्रभाव ऐसा बलवान् है कि स्वभावत सबकी प्रवृत्ति विपरीतार्थ मे होती है।

नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहि नट मरकट की नाईं॥
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहि ज्ञाना। मेलि जनेऊ लेहि कुदाना॥१॥

अर्थ : हे गोसाईं ! जितने नर हैं वे सब नारी के वशीभूत रहते हैं और नटके बन्दर की भाँति नाचते हैं। शूद्र ब्राह्मणो को ज्ञान उपदेश करते हैं और यज्ञोपवीत पहनकर कुदान लेते हैं।

व्याख्या . नियम यह है कि स्त्री पुरुष के वश मे रहे। बचपन मे पिता के वश मे, यौवन मे पति के वश मे, वार्धक्य मे पुत्र के वश मे रहे। क्योकि स्त्री मे स्वतन्त्रता की योग्यता नही है। यथा 'पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। पुत्रास्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति। सो इसका ठीक उलटा कलियुग मे होता है। पुरुष ही स्त्री के वशीभूत होकर रहते हैं। वह जो नाच नचाती है वही नाच नाचते हैं। मानो स्त्री नट है और पुरुष उसका पाला हुआ बन्दर है। वह उस स्त्री से प्रेरित होकर लज्जा छोडकर जहाँ तहाँ नाचा करता है। यथा . धन्य कीस जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचहि परिहरि लाजा। नाचि कूद कर लोग रिझाई। पति हित करहि धरम निपुनाई।

शूद्र को ज्ञान होने पर भी ज्ञानोपदेश का अधिकार नही है। विदुरजी ऐसे ज्ञानी ने धृतराष्ट्र के तद्विषयक प्रश्न के उत्तर मे कहा कि मैं शूद्रयोनि मे उत्पन्न हूँ। इसलिए इससे अधिक नही कह सकता। मैं सनतसुजात ऋषि का आवाहन करता हूँ। वे आकर तुम्हे उत्तर देंगे। तदनुसार ऋषिजी ने आकर राजा धृतराष्ट्र को ज्ञानोपदेश किया। सो शूद्र ब्राह्मणो को ज्ञानोपदेश करेंगे। इतना ही नही वे अपने गले मे यज्ञोपवीत डाल लेंगे। जिसमे लोग उन्हे ब्राह्मण समझें और गङ्गादितीर्थ के तट पर निषिद्ध दान ग्रहण करेंगे। ब्राह्मणो को भी जिनकी जीविका प्रतिग्रह है दान लेने से रोका गया है। उन्हे शिलोञ्छ वृत्ति की सम्मति धर्मशास्त्र ने दिया है। कुदान ग्रहण करने से आज भी ब्राह्मण दूर भागते हैं। उस कुदान के ग्रहण के लिए शूद्र लोगों को ठगने के लिए जनेव पहन लेते हैं जिसमे लोग उन्हे ब्राह्मण समझें और कुदान ग्रहण करते हैं।

सब नर काम लोभरत क्रोधी। वेद विप्र गुरु संत विरोधी ॥
गुन मंदिर सुन्दर पति त्यागी। भजहि नारि पर पुरुष अभागी ॥२॥

अर्थ . सभी लोग कामी लोभी और क्रोधी होगे। वे वेद विप्र गुरु और सन्तों का विरोध करते हैं। स्त्रियाँ परम गुणी और सुन्दर पति का परित्याग करके अभागी पर पुरुष को भजती हैं।

व्याख्या . काम क्रोध और लोभ नरक के द्वार हैं और आत्मा का नाश करनेवाले हैं। यथा त्रिविध नरकस्येद द्वार नाशनमात्मन। काम क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्। इसलिए इनके त्याग का विधान है। कलियुग मे सभी कामी क्रोधी और लोभी होते हैं। नरक के लिए पूरी तैयारी रहती है। वेद विप्र गुरु और सन्त की कृपा से ही मनुष्य का कल्याण होता है। सो इन्ही से लोग वैर करते हैं उनका कल्याण कैसे हो ? जिसका पूजन होना चाहिए उनसे ही वैर करते हैं। इस भाँति अपना दोनो लोक अपने हाथ से बिगाडते हैं।

स्त्रीधर्म है कि गुणहीन पति का भी भजन करें। यथा : वृद्ध रोग बस जड धनहीना। अध बधिर क्रोधी अतिदीना। ऐसेउ पति कर किय अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना। पति बचक पर पति रति करई। रौरव नरक कल्पसत परई। सो कलियुग की स्त्रियाँ गुणमन्दिर सुन्दर पति का त्याग करके निर्गुण कुरूप पर पुरुष का अभागिनी भजेंगी। भावार्थ यह कि वे भी अपने नरक का रास्ता ठीक करने मे दत्तचित्त रहती हैं। एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पतिपद प्रेमा। उस धर्म का हठ पूर्वक परित्याग करती है।

सौभागिनी विभूषन हीना। विधवन्ह के सृंगार नवीना॥
गुरु सिख अध बधिर कर लेखा। एक न सुनहि एक नहि देखा॥३॥

अर्थ सोहागिनी स्त्री को तो गहना नहीं और विधवा के नये नये शृगार होते हैं। गुरु और शिष्य मे अन्धे और बहरे का हिसाब है। एक देखता नही दूसरा सुनता नही।

व्याख्या अलङ्कार का धारण करना सौभाग्य का चिह्न है। कुछ अलङ्कार तो ऐसे हैं जिन्हे सौभाग्यवती स्त्री सदा धारण किये रहती हैं। सा कलियुग मे सौभाग्यवतियो को तो आभूषण से विरक्ति रहती है। उनका आभूषण धारण करना पति का आदर है। उसे वे नहीं करती और विधवा जिनको आभूषण निषिद्ध है वे नित्य नया शृगार किये रहती हैं। उनका शृगार पर पुरुष के आकर्षण के लिए ही है।

गुरु ही मार्गप्रदर्शक है। कर्णधार है। यथा कर्णधार सद्गुरु दृढ नावा। सो यदि वही अन्धा हो तो बेडा पार कैसे हो सकता है। शिष्य भी यदि एकलव्य की भाँति हो तो अपने पुरुषार्थ और गुरुभक्ति से काम निकाल सकता है। यहाँ शिष्य बहरा है। वह गुरु की सुनता ही नहीं। यदि गुरु आँखवाले भी हो तो उसका कल्याण नही कर सकते। सो कलियुग मे यह बडा भारी साधन ही मारा पडा।

हरै सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महु परई॥
मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं॥४॥

अर्थ जो गुरु शिष्य का धन हरण करता है और शोकहरण नही करता वह घोर नरक मे पडता है। माता पिता बालको को बुलाते हैं और जिसमे पेट भरे वही धर्म सिखाते हैं।

व्याख्या बिना शिष्य का कल्याण किये उससे धन स्वीकार करना गुरु के लिए उचित नही है। पर यहाँ तो गुरु अन्धे हैं शिष्य बहरा है। तब शिष्य का सम्बन्ध यही रह गया कि गुरुजी शिष्य का धन हरण करने के लिए ही गुरु बनते हैं। इस भाँति गुरु बनकर धन ग्रहण करने का फल घोर नरक है। ऐसे गुरु शिष्य का उद्धार क्या करेंगे। अपने नरक का रास्ता सीधा कर रहे हैं।

माता पिता तो आदि गुरु हैं। उन्हीं की शिक्षा का संस्कार बच्चों पर अमिट पड़ता है। यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्। उनकी यह गति है कि लड़के को शिक्षा देने के लिए बुलाते हैं और शिक्षा यह देते हैं कि जिससे पेट भरे वही धर्म है। अर्थात् जो कुछ धर्म की भावना उसमे पहिले से हो वह भी नष्ट हो जाय। यह धर्म की कलियुगी परिभाषा सर्वनाश का कारण होता है। ऐसे माता पिता के पुत्र धर्म के लिए कैसे कष्ट सह सकते हैं। वे वैषयिक सुख के लिए क्या नहीं कर सकते।

दो. ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर, करहि न दूसरि बात।
कौडी लागि मोह बस, करहिं बिप्र गुरघात ॥९९ क.

बादहि सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुम्ह ते कछु घाटि।
जानै ब्रह्म सो बिप्रबर, आँखि देखावहि डांटि ॥९९॥

अर्थ : स्त्री पुरुष बिना ब्रह्म ज्ञान के दूसरी बात नही करते और कौड़ी के के लिए मोह वश होकर ब्राह्मण और गुरु का बध करते हैं।

शूद्र ब्राह्मणों से विवाद करते हैं कि क्या हम तुमसे कुछ कम हैं। जो ब्रह्म को जाने वही ब्राह्मण है : ऐसा कह कर डाँटते हैं और आँख दिखाते हैं।

व्याख्या : कलियुग में स्त्री पुरुष सब विचित्र ब्रह्मज्ञानी होते हैं। दिन रात ब्रह्मज्ञान की बातें करते हैं। अद्वितीय हैं। यहाँ नानात्व कुछ भी नही है। व्यवहार की बातों में भी उनका अद्वैतवाद चलता है। पर वह सब स्वार्थ के लिए। शास्त्र की आज्ञा है : भावाद्वैतं सदा कुर्यात् क्रियाद्वैतं न कर्हिचित्। सर्वत्राद्वैतं कुर्यात् नाद्वैतं गुरुणा सह। सदा भावाद्वैत करना चाहिए। क्रिया में अद्वैत कही न होने पावे। सर्वत्र अद्वैत को स्थान दे। गुरु के साथ अद्वैत न करे। सो यहाँ क्रियाद्वैत ही करते हैं। भावाद्वैत कभी नहीं। कौड़ी के लिए ब्रह्मवध गुरुवध तक कर डालते हैं।

शूद्र को वाचाल नही होना चाहिए। ब्राह्मण की निन्दा कभी नही करनी चाहिए। ज्ञानगुमानी नहीं होना चाहिए। इन बातों से उसका परलोक बिगडता है। यथा : सोचिय सूद्र बिप्र अवमानी। मुखर मान प्रिय ग्यानगुमानी। सो कलियुग में शूद्र वादप्रिय होते हैं। ब्राह्मणों से विवाद करते हैं कि क्या मैं तुमसे कुछ कम हूं। बराबरी की धुन में अनधिकार चेष्टा करते हैं, शास्त्रमर्यादा भङ्ग करते हैं, वैर बाँधते हैं, कहते हैं : ब्रह्म जानाति इति ब्राह्मणः। जो ब्रह्म को जाने वह ब्राह्मण है। यदि उनसे कोई कहता है : ब्रह्म जानाति ब्रह्मज्ञ. होता है ब्राह्मण नहीं होता :

---

१. प्रत्यस्तमितभेद यत् सत्तामात्रमगोचरम्। वचसामात्मसंवेद्यं तद् ज्ञानं ब्रह्मसंज्ञितम्। वि. पु.। जिसमें सम्पूर्ण भेदज्ञान शान्त हो जाते हैं। जो सत्ता मात्र और वाणी का अविषय है तथा स्वयं ही अनुभव का विषय है। वही ब्रह्मज्ञान कहलाता है।

ब्रह्मणोऽपत्य पुमान् ब्राह्मण. होता है तो डाँटकर आँख दिखाते हैं कि चुप रहो बहुत मत बोलो।

परत्रिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने ॥
तेइ अभेद बादी ज्ञानी नर। देखा मैं चरित्र कलिजुग कर ॥१॥

अर्थ : परस्त्री का लोभी कपट मे चतुर मोह द्रोह और ममता मे लिप्त : ऐसे लोग अभेदवादी ज्ञानी बनते हैं। मैंने कलियुग का चरित्र देखा।

व्याख्या : पाणिगृहीता मे सन्तोप नही। परस्त्री की बडी चाह। परन्तु कपट चतुर हैं लखाई नही पडते। यथा : कपट चतुर नहि परैं लखाई। उन्हे काम भी है क्रोध भी है मोह ममता मे लिपटे हुए भी हैं। पर अपने इन दोपो को अभेदवाद करके छिपाते हैं। ज्ञानी बनते हैं और लोग भी उन्हे अभेदवादी ज्ञानी मानते हैं। वस्तुत' उनमे अविद्या के पाँचो पर्व मौजूद हैं। मोह से अविद्या कहा। ममता से : अस्मिता कहा। परत्रिय लम्पट से : राग कहा। द्रोह से द्वेप कहा और कपट सयाने से · अभिनिवेश कहा और मुख से अभेदवादी बनते हैं। कहते हैं : निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां को विधिः को निपेधः। भुसुण्डिजी कहते हैं कि यह चरित्र मैंने कलियुग का देखा कि सबकी बुद्धि तामसी हो गयी है।

आपु गए अरु तिन्हहूँ घालहिं। जे कहुँ सत मारग प्रति पालहिं ॥
कल्प कल्प भर एक एक नरका। परहिं जे दूपहिं स्रुति करि तरका ॥२॥

अर्थ : स्वय तो नष्ट हो गये ही हैं। पर जो लोग सन्मार्ग का प्रतिपालन करते हैं उन्हे भी नष्ट करते हैं। जो लोग तर्क से वेद को दूपित ठहराते हैं वे लोग एक कल्प तक प्रत्येक नरक भोगते हैं।

व्याख्या : स्वय नष्ट परान् नाशयति। आप तो सन्मार्ग से पतित हो गये हैं। यवनोच्छिष्ट भोजन, यवन सहवास, यवनानी गमन, स्वधर्म त्याग, परधर्माभिरुचि, मर्यादा भङ्ग आदि दोप से पतित हो गये हैं। परन्तु जो लोग सन्मार्ग पर आरूढ हैं। उनके पतन के लिए अनेक यत्न करते हैं। अपने को आगे बढा हुआ और सन्मार्गगामी को पिछडा हुआ उद्घोपित करते हैं। जाति पाँति तोडक मण्डल स्थापित करते हैं। शिक्षा क्रम पलटते है, नाटक, उपन्यास, कहानी, सिनेमा, सङ्गीत द्वारा ऐसा प्रचार करते हैं जिससे आप से आप लोगो का पतन हो। इनसे काम नहीं चलता तो धर्मध्वंसकारी कानून बनाते हैं और उससे समाजहित का दम्भ रचते हैं। वेदों को मनुष्य का बनाया हुआ बतलाते हैं और भगीरथप्रयत्न करके देश के इतिहास को पलट देते हैं। निदान : जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहि बेद प्रतिकूला।

अब ऐसा करनेवाले की गति कहते हैं कि तर्क से वेद को कलङ्कित करनेवाले के लिए प्रत्येक नरक मे एक कल्प के लिए निवास मिलता है। तर्क की कोई प्रतिष्ठा नही है। एक तार्किक को उससे बडा तार्किक हरा देता है और वह अपने से बडे

तार्किक से हार जाता है। अतः अमर्यादित तर्क नही होना चाहिए। तर्कशास्त्र वेद की रक्षा के लिए बना है। शास्त्र के सिद्धान्तों के समझने के लिए बना है। तीखी तलवार से गोवध भी हो सकता है और गोरक्षा भी हो सकती है। परन्तु उससे गोरक्षा ही उपादेय है गोवध नही। इसी भाँति तर्क से वेदमर्यादा का स्थापन ही उचित है। उसके द्वारा वेद का खण्डन अथवा उसमे दोषारोपण करना बड़ा भारी पाप है। क्योंकि ऐसा करने से सन्मार्ग बिगड़ता है। लोग पथभ्रष्ट किये जाते हैं। अपना ही पाप कौन कम है। सो संसार को पथभ्रष्ट करने का पाप जिसने अपने ऊपर लिया शास्त्र वध का पाप जिसे लगा उसका ऐसा घोर दण्ड ही न्याय है। इस बात को उद्घोपित कर देना भी उचित है। जिसमें लोग सावधान हो जायँ।

जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा ॥
नारि मुई घर संपति नासी। मूड़ मुड़ाइ होंहि संन्यासी ॥३॥

अर्थ : जो अधम वर्ण है। अर्थात् तेली, कुम्हार, डोम, कोल, कलवार, इनकी जब स्त्री मर जाती है घर की सम्पत्ति नष्ट हो जाती है तो सिर मुण्डन कराके संन्यासी हो जाते हैं।

व्याख्या : संन्यासी अर्थात् भिक्षु होने का अधिकार केवल ब्राह्मण शरीर को है क्षत्रिय को भी नही। उसे यदि ज्ञान हो भी जाय तो लिङ्ग धारण करे। भिक्षु न हो। यथा : आरत काहु न करइ कुकरमू। माँगहिं भीख त्यागी निज धर्मू। सो जब क्षत्रिय के लिए यह विधान है तो वैश्यादिक के लिए कुछ कहना नही है। सो कलियुग मे यह होता है कि अधम वर्ण के लोग जिनका जल भी नही चलता जैसे तेली, कुम्भकार, चाण्डाल, किरात, कोल तथा मद्य विक्रेता कलवार भी संन्यासी होते हैं। उनके संन्यास ग्रहण का कारण वैराग्य नही है गृह सुख का नाश कारण है। दरिद्र हो गये। स्त्री भी मर गयी। कोई ठिकाना नही। तो संन्यासी होकर माँग खायेंगे। सन्यासी होने का विधान है। शिखा यज्ञोपवीत का त्याग भी शास्त्रविधि से होना चाहिए। सो उन्हे किसी बात की परवाह नही। सिर मुँड़ाकर और काषाय वस्त्र धारण करके अपने आप संन्यासी हो जाते हैं।

ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं ॥
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृपलीस्वामी ॥४॥

अर्थ : वे ब्राह्मणों से अपने को पुजवाते हैं। दोनों लोक का नाश अपने हाथों करते हैं। ब्राह्मण को अक्षर से भेंट नही रहती। वे लालची कामी आचार रहित और शूद्री के स्वामी होते हैं।

व्याख्या : ये अधम वर्ण ब्राह्मणो से अपने को पुजवाते हैं। कहते हैं : दण्डग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्। मैं स्वयं नारायण हूँ। पत्थर के देवताओं में क्या रक्खा है मेरी पूजा करो। जाति आयु और भोग पूर्व कर्मानुसार होता है। जिनका रमणीय आचरण होता है वे रमणीय योनि ब्राह्मण या क्षत्रिय जाति मे जन्म ग्रहण

करते हैं। जिनका पूर्व जन्म मे कपूय आचरण होता है वे चाण्डाल योनि शूकर कूकर योनि मे उत्पन्न होते हैं। अत ब्राह्मण की पूजा पूर्व जन्म के कर्मानुसार होती है। उनको इस जन्म के कर्म का फल दूसरे जन्मो मे मिलेगा। अतः शीलगुण हीन ब्राह्मण की पूजा अश्वत्थ वृक्ष या तुलसी की भाँति होती है। गुणगण ज्ञान मे प्रवीण होने पर भी शूद्र की पूजा नही होती। दूसरे जन्म मे जब उसके रमणीय आचरण का फल मिलेगा तब उसकी भी पूजा होगी। पुनर्जन्म न माननेवाले के समझ मे वर्णाश्रम धर्म नही आ सकता। सो अधमवर्ण शास्त्र का अवहेलन करके सन्यासी बना। उसकी पूजा सन्यासी समझकर ब्राह्मण करेंगे ही उस पूजा को स्वीकार करके उस अधम वर्ण ने अपने दोनो लोको को नष्ट किया। उसे अपने भेद खुलने का सदा भय बना रहता है और खुल जाने पर बडी अपकीर्त्ति होती है। इस भाँति उसका यह लोक भी बिगडा। परलोक को तो उसने खूब ही बिगाडा। उसके लिए लिखना व्यर्थ है।

यह भी नही कि ब्राह्मण कलियुग के प्रभाव से बचे हो। उनका भी भारी पतन होता है। ब्राह्मण का महत्त्व बडा है तो उसके साथ साथ उनकी जिम्मेदारी भी बडी है। उन्हे निष्काम होकर षडङ्ग वेद पढना चाहिए। उन्हे तपस्वी होना चाहिए। सो कलि म वे सब बातें तो गयी। षडङ्गवेद का जानना तो दूर गया। उन्हे अक्षर का भी ज्ञान नही। तप की चर्चा क्या ? वे कामी, लोभी, आचार विहीन, यहाँ तक कि शूद्रो को घर मे डाल लते हैं। जिनके ससर्ग से उनका सद्य पतन होता है।

सूद्र करहिं जप तप व्रत दाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना ॥
सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न बरनि अनीति अपारा ॥५॥

अर्थ शूद्र लोग जप तप व्रत दान करते हैं। व्यासासन पर बैठकर पुराण कहते हैं। सब लोग मनमाना आचरण करते हैं। अपार अनीति का वर्णन नही हो सकता।

व्याख्या सबकी प्रवृत्ति ही युग के प्रताप से उलटी हो जाती है। जिसका जप व्रत दान करना कथा कहना स्वधर्म है वे उसके निकट नही जाते और जिनका स्वधर्म तीनो वर्ण की सेवा है उन्हे ब्राह्मण धर्म मे रुचि उत्पन्न होती है। शोक मोहाभिभूत प्राणी स्वधर्म पर चल नही सकता। शूद्र की ब्रह्म कर्म मे प्रवृत्ति उसके पतन का कारण है। सेवा म ही प्रवृत्ति होना उसका तप है। उसी से उसकी सिद्धि होती है। राजा युधिष्ठिर के यज्ञ मे महा ज्ञानी होने पर भी चाण्डाल ने पूजा स्वीकार नही की अपने सेवा धर्म पर ही डँटा रह गया। सो कलियुग मे शूद्र ब्राह्मणोचित कर्म करेंगे और ब्राह्मणो के अधिकार का भी भोग करेंगे।

यह प्रादेशमात्र दिखला दिया गया। फल यह कि सब लोग मनमाना आचार करेंगे। शास्त्र विहित मार्ग पर कोई न चलेगा। परलोक माननेवालो की यह गति कही जा रही है। अज्ञातार्थ ज्ञापकत्व शास्त्र का लक्षण है। परलोक का कोई सवाद

किसी को नहीं मालूम उसमें अपनी मनमानी कल्पना करना मूर्खता है। यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्। तस्माच्छास्त्रं प्रमाणन्ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ। ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि। अतः कलियुग में ऐसी अनीति होती है जिसका वर्णन नही किया जा सकता।

दो. भए बरनसंकर कलि, भिन्न सेतु सब लोग।
करहिं पाप पावहिं दुख, भय रुज सोक बियोग ॥१०० क.
स्रुति संमत हरि भगति पथ, संजुत बिरति बिवेक।
तेहि न चलहिं नर मोह बस, कल्पहि पंथ अनेक ॥१००॥

अर्थ : कलियुग में लोग वर्णसंकर हो गये और धर्मसेतु से सब पृथक् हो गये। पाप करते हैं। दुःख पाते हैं। भय रोग शोक और वियोग होता रहता है। श्रुतिसम्मत हरिभक्त पथ वैराग्य और विवेक के साथ बना है। उस पर लोग मोहवश नही चलते और अनेक पन्थ की कल्पना करते हैं।

व्याख्या : अन्य युगों मे कही कहीं कर्मसंकरता दिखाई पड़ती है। कलियुग में पहिले कर्मसंकरता दिखलाकर पीछे वर्णसंकरता दिखलाया। लोग वर्णसंकर हो गये : सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नराणाम्। धर्म का सेतु मनुष्य मात्र के लिए सामान्य है। धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्। इसी सामान्य धर्म के आधार पर विशेष धर्म भी खड़े हैं। सो इस धर्मसेतु पर कोई नही चलता। सब पाप करते हैं और उसका फल भय रोग शोक वियोगादि दुःख पाते हैं।

कर्मपथ कहकर अब भक्ति पथ कहते हैं कि भक्तिपथ श्रुतिसम्मत है। उसके साथ वैराग्य और विवेक का होना आवश्यक है। भक्ति माता है। विरति विवेक उसके बच्चे हैं। बच्चे के साथ माता प्रसन्न रहती है। इस सर्वश्रेष्ठ मार्ग के रहते हुए लोग अज्ञानवश उस पर नहीं चलते और नये नये पंथों की कल्पना करते हैं। अनादि ईश्वर का अनादि वेद आज्ञा है। उसके अनुसार अनादि भक्तिपथ है। उसे छोड़कर मनुष्य का कल्पित नये नये पन्थों पर चलना कलियुग के ही प्रभाव का द्योतक है।

छं. बहु दाम संवारहिं धाम जती। बिषया हरि लीन्हि रही बिरती ॥
तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही ॥

अर्थ : संन्यासी बहुत साधन और धाम सँवारते हैं। वैराग्य रहा उसे विषय ने हर लिया। तपस्वी तो धनी हैं और गृहस्थ दरिद्र हैं। हे तात! कलियुग का कौतुक कहा नही जा सकता।

व्याख्या : जिन्होंने विधि पूर्वक संन्यास लिया है अब उनका हाल कहते हैं कि वे धन धाम सँवारने में लग गये। धन धाम [illegible] करके ही संन्यास

लिया जाता है। सो संन्यास लेकर फिर धन धाम के सँवारने में लग गये। फिर भी थोडे में सन्तोप नही है। बहुत धन और बहुत से धाम का संग्रह करने लगे। जिसे त्याग किया उसी का ग्रहण करने मे वान्ताशी : कुत्ते हो गये अथवा बहुत से फन्दे सँवारने लगे लोगों के फँसाने के लिए : दाम फन्दे को भी कहते है और धाम सँवारने लगे यह दिखाने के लिए कि इसमें महात्मा लोग रहकर साधन भजन करेंगे। प्रश्न यह उठता है कि तब उन्होने संन्यास क्यों लिया ? इसके उत्तर में कहते हैं कि सन्यास लेने के समय वैराग्य रहा। उसे विपय ने हरण कर लिया। यथा : बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम घरो सो।

अब वानप्रस्थ और गृहस्थ का हाल कहते हैं। वानप्रस्थ आश्रम ही तपस्या के लिए है। इसका धर्म इतना कठोर है कि कलियुग में इसका निपेध कर दिया गया है। वे वन में रहे। कठोर से कठोर तप करें। मृत्यु का आसरा देखते रहें। उनसे धन से कोई सम्बन्ध नहीं। बिना जोता बोया अन्न खावें। उसे कूटे नही पीसे नही इत्यादि। सो वे धनी बने बैठे हैं। उनको लोग धन ले जाकर देते हैं। स्वयं भी पतित होते हैं। उन्हे भी पतित करते हैं और जिन्हे धन की आवश्यकता है उन गृहस्थों को कोई नही देता। वे दरिद्र हैं। तपस्वी के पास धन जाकर अचल हो जाता है। क्योंकि उन्हें कोई खर्च नही। गृहस्थ के पास धन टिकता नही। क्योंकि उन्हें सहस्रों प्रकार के खर्च हैं। अतः वे दरिद्र बने रहते हैं। भुसुण्डिजी कहते हैं कि यह कलियुग का खेल है। उनके खेल का ही वर्णन होना कठिन है। धर्म के इस प्रकार विपरीत होने मे कलियुग का कोई लाभ नही है। पर मन वहलाव के लिए वे ऐसा किया करते हैं।

कुलवंति निकारहिं नारि सती। गृह आनहि चेरि निबेरि गती ॥
सुत मानहि मातु पिता तब लौं। अबलानन दीख नही जब लौं ॥

अर्थ : सत्कुल प्रसूता और सती स्त्री को घर से बाहर निकाल देते हैं और दासी को अचल रूप से लाकर घर मे स्थापन करते हैं। बेटे माँ बाप को तभी तक मानते हैं जब तक उनकी आँख स्त्री पर नही पडती।

व्याख्या : गृहस्थों का यह हाल है कि जाति मे उत्तम करनी मे उत्तम सती साध्वी को तो लोग घर से बाहर निकाल देते हैं। उनका कुल शील उन्हें पसन्द नहीं और दासी : रखेली को घर मे ला बिठाते हैं। जिसमे न कुल है न शील है और उसे नही निकालते। व्यभिचारिणी के हाव भाव कटाक्ष में मुग्ध रहते हैं। कुल शीलवाली स्त्रियों मे यह विद्या कहाँ ? वह ऐसी हो नही सकती। यह पुरुषो की स्वाद पराङ्मुखता है।

स्त्री पर दृष्टि पडने से पुत्र पिता माता का मानना छोड़ देते हैं। सस्त्रीक होकर माता पिता की सेवा का अधिक सुभीता है। स्त्रियो के लिए तो यह स्वाभाविक है और शास्त्र सम्मत भी है कि पति के प्रेम के सामने माता पिता का प्रेम दब जाना चाहिए। परन्तु ऐसा भाव पुरुष मे नही होना चाहिए। सो कलियुग

मे ऐसा ही होता है। स्त्रियाँ भले ही माता पिता का प्रेम न छोडे पर पुरुष तो छोड ही देते हैं। मातृदेवो भव पितृदेवो भव। यह वेद की आज्ञा है। पिता धर्मः पिता कर्म पिता हि परमा गतिः। पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवता। पिता ही धर्म है पिता ही कर्म है पिता ही परमगति है। पिता के प्रसन्न होने पर सब देवता प्रसन्न हो जाते है। ऐसा धर्मशास्त्र कहता है। गृहस्थ होने पर माता पिता की सेवा ही प्रधान है। वह मूल धर्म ही छूट जाता है।

ससुरारि पियारि लगी जब ते। रिपु रूप कुटुब भये तब तें॥
नृप पाप परायन धर्म नही। कर दड बिडब प्रजा तिनही॥

अर्थ. जब से ससुराल प्यारी लगी तब से तो कुटुम्ब के लोग शत्रु लगने लगे। राजा पापपरायण हैं धर्मपरायण नही। नित्य ही प्रजाओ मे दण्ड की विडम्बना किया करते हैं।

व्याख्या : ब्याह होते ही माँ बाप का मानना बन्द हो जाता है। जहाँ ससुराल मे आना जाना प्रारम्भ हुआ : लोकोक्ति है कि श्वशुरगृहनिवास स्वर्गतुल्यो नराणाम्। श्वशुरालय मे दामाद की बडी खातिरी होती है। अत ससुराल का प्यारा लगना कुछ बुरी बात नही है। परन्तु उस आवभगत मे अपने स्वरूप को भूल जाना बुरा है। तहाँ लोग ससुराल के प्यार मे ऐसे भूलते है कि उन्हे अपने कुटुम्ब के लोग शत्रु दिखाई पडने लगते है। ब्याह होने से अपना पक्ष बलवान् होता है। सो ये मूर्ख अपने पक्ष से ही शत्रुता कर लेते हैं।

कलियुग मे राजाओ का यह हाल है कि पाप ही उनका शरण हैं। उन्हे पाप का ही भरोसा है। सदा पाप मे लिप्त रहते हैं। राजा का प्रधान कार्य धर्म रक्षा है। वे आठो लोकपालो के अश रूप माने जाते हैं। वे यदि पाप परायण हुए तब धर्म के लिए स्थान कहाँ है ? राजा दण्डधरो गुरु कहलाता है। राजा दण्ड के बल से प्रजा को सन्मार्ग मे चलाता है। उसके तथा लोक के कल्याण के लिए अपराधी को दण्ड देता है। परन्तु पाप परायण राजा ऐसा नही करता। वह दण्ड देता है अपने लाभ के लिए। दण्ड को धर्म रूप माना गया है। सो पापी राजा के राज्य मे दण्ड की विडम्बना मात्र होती है। अदण्ड्य को दण्ड होता है और दण्डनीय आनन्द करते हैं।

छ. धनवत कुलीन मलीन अपी। द्विज चिन्ह जनेउ उधार तपी॥
नहि मान पुरानन्ह वेदहि जो। हरि सेवक सत सही कलि सो॥

अर्थ : मलिन भी धनी कुलीन हैं। ब्राह्मण का चिह्न जनेउ और तपस्वी का चिह्न नङ्गा रहना है। जो पुराण और वेद को नही मानता वही कलियुग मे हरिदास सच्चा सन्त है।

व्याख्या . चाहे उसके कुल मे रजवीर्य की शुद्धि न हो। पर यदि वह धनी है तो कुलीन माना जाता है। अर्थात् धनी होना ही कुलीन होने का यथेष्ट प्रमाण माना

जाता है और गले मे जनेउ का पडा रहना ही ब्राह्मणत्व का प्रमाण रह जाता है और जिसने कपडे उतार दिये वही तपस्वी गिना जाता है। भावार्थ यह कि कलियुग मे जनता की बुद्धि विकृत हो जाती है। उसमे सार ग्रहण का सर्वथा अभाव हो जाता है।

पिता माता के सत्कर्म का पुत्र दायी नही माना जाता। कुलीन होना मानो कोई गुण ही नही है। धनी होना ही मानो सब कुछ है। जनेउ के साथ कुछ कर्म भी है जिसे जनेउधारी को करना होता है। बिना उनके जनेउ का मूल्य क्या है। इसी भाँति परमहस परिव्राजक महा विरक्त ही दिगम्बर हो सकता है। कपडे फेंक देना तो नङ्गा हो जाना है। वह दण्डनीय है तपस्वी नही है। ऐसो के आदर करने से मर्यादा भङ्ग होती है। परन्तु कलियुग मे यही सब होता है. आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। आज्ञा मानना ही बडी भारी सेवा है। वेद पुराण भगवान् की आज्ञा है जो उसे नही मानता वह हरि का द्रोही है हरि का दास नही है। वह सन्त नही है वह दुष्ट है। कलियुग मे सच्चा सन्त और सच्चा हरिदास उसे ही कहेगे जो वेद पुराण न मानता हो। पुराण वेद माननेवाला यथेच्छाचारी न हो सकता है और न यथेच्छाचार का उपदेश दे सकता है। ये सब बातें तो न माननेवाला ही कर सकता है। अत यथेच्छाचारियो को वही अनुकूल पडता है। इसलिए उसे ही हरिदास और सन्त मानते हैं।

कवि बृंद उदार दुनी न सुनी। गुन दूषक ब्रात न कोपि गुनी॥
कलि बारहि बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै॥

अर्थ · कवि समाज उदार ससार मे सुनायी नही पडता। सब गुणो मे दोष देखनेवाले हैं। गुणी कोई नही। कलि मे बारम्बार अकाल पडता है। लोग अन्न के बिना दु खी होकर मरते हैं।

व्याख्या : कवि ही मर्त्य को अमर बनाता है। कवि की वाणी मे इतनी सामर्थ्य है कि लोग उसे चाह से याद करते हैं भूलना नही चाहते। अत कवि को उदार तो कम से कम होना ही चाहिए। परन्तु कलियुग में कवि की उदारता सुनी नही जाती। समालोचना दुनिया भर की कर डालेंगे पर उनका बनाया शुद्ध दो पंक्ति पद्य भी न बनेगा। जिन्हे देखिये वह गुण मे दोष देने को तैयार है। पर गुणी खोजिये तो एक न मिलें। कलि मे दोनो फसलें रबी खरीफ की मारी जाती है। अत. बार बार दुकाल पडना कहा।

दो. सुनु खगेस कलि कपट हठ, दभ द्वेष पाखड।
मान मोह मारादि मद, ब्यापि रहे ब्रह्मड॥
तामस धरमु करहि नर, जप तप मख ब्रत दान।
देव न बरषहि धरनि पर, बए न जामहि धान॥१०१॥

अर्थ : हे गरुड़ ! कलियुग में कपट हठ दम्भ द्वेष पाखण्ड मान मोह मारादि ब्रह्माण्ड व्यापे रहते हैं। लोग जप तप मख व्रत दान तो करते हैं। पर सबको तामसिक बनाकर करते हैं। देव पृथिवी पर बरसते नही और बोने पर धान्य नही उगते।

व्याख्या : कपट हठ दम्भ पाखण्डादि का उल्लेख कही कही अन्य युगों में भी पाया जाता है। अन्य युगो मे जब ऐसी घटनाएँ होती थी तो वे भविष्य में शिक्षा ग्रहण के लिए लिख ली जाती थी। पर कलियुग में तो ये सब दोष सारे ब्रह्माण्ड मे व्याप जाते हैं। इनका लेखा कहाँ तक किया जाय। श्रीरामजी कहते हैं : ऐसे अधम मनुज खल कृत जुग त्रेता नाहि। द्वापर कछुक बृंद बहु होइहैं कलिजुग माहि।

लोग धर्म करने चलते हैं तो तामस धर्म कर डालते हैं : अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम्। मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते। अयुक्तः प्राकृत. स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः। विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते। बुरे भले परिणाम शरीर और धन का व्यय पर पीड़ा और अपने सामर्थ्य की परवाह न करके अविवेक से जो कर्म आरम्भ करते हैं उसे तामस कहा जाता है। असावधान, विवेकशून्य, अनम्र, हठी, निर्दय, आलसी, विषादी, दीर्घसूत्री कर्ता को तामस कहते हैं। इन दोषों के कारण जप, तप, व्रत, यज्ञ और दान भी तामस धर्म हो जाते हैं। फल यह होता है कि उचित समय पर देव वर्षा नही करते और पृथिवी की उर्वरा शक्ति ही जाती रहती है।

अबला कचभूषन भूरि छुधा। धन हीन दुखी ममता बहुधा ॥
सुख चाहहिं मूढ न धर्मरता। मति थोरि कठोरि न कोमलता ॥१॥

अर्थ : स्त्रियो के बाल ही भूषण है और भूख बड़ी है। धन से हीन दु.खी हैं फिर भी ममता बहुत हैं। धर्म मे रत नही हैं फिर भी बेवकूफ सुख चाहते हैं। बुद्धि थोड़ी है फिर भी कठोर है उसमें कोमलता नही।

व्याख्या : स्त्रियाँ अपने बाल अनेक प्रकार से गूँथेंगी। उसी को आभूषण समझेंगी अथवा दरिद्रता के कारण भूषण न पहन सकेंगी। बाल को ही साज बाज कर शृङ्गार करेंगी। उन्हे भूख बहुत लगेगी। अर्थात् ये कलियुगी स्त्री के लक्षण हैं। लोग बिना धन के दु:खी हैं। धर्म मे रुचि होनी चाहिए। सो न होकर उनकी ममता और बढ़ती है। यथा : अबुध कुटुम्बी जनु धन हीना।

सुख तो सभी चाहते हैं। इसीलिए सबको धर्माचरण का विधान है। क्योंकि धर्म से ही सुख होता है। यदि सुख के लिए धर्म छोड़कर कोई और उपाय हो तो धर्म की आवश्यकता नही। यथा : सुखी मीन सब एक रस अति अगाध जलमाहिं। जथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख सजुत जाहिं। अतः धर्म ही सुख का कारण है। कारण से ही कार्य की सिद्धि होती है। अतः सुख चाहनेवाले को धर्माचरण करना चाहिए। यहाँ सुख तो चाहते हैं पर धर्म में मन नही लगाते। इसीलिए इन्हें मूढ कहा गया। बुद्धि भी थोड़ी है। यह नही समझते बिना कारण के कार्य कैसे होगा? और वह भी

डी कठोर है क्रूर है। उसमे कोमलता अर्थात् दयालुता का स्पर्श भी नही। अत समे सात्विक धर्मानुष्ठान की योग्यता ही नही है पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्यं च्छन्ति मानवा। न पापफलमिच्छन्ति पाप कुर्वन्ति यत्नत।

र पीडित रोग न भोग कही। अभिमान बिरोध अकारन ही॥
घु जीवन सवत पचदसा। कलपात न नास गुमान असा॥२॥

अर्थ लोग रोग से पीडित हैं कही भोग नही है। बिना कारण ही अभिमान ौर विरोध करते हैं। पन्द्रह वर्ष का छोटा सा जीवन है और अभिमान ऐसा है कि कल्पान्त मे भी न मरेंगे।

व्याख्या निर्धन का दु ख कहकर अब धनवानो का दु ख कहते हैं। जो धनवान् हैं वे रोगी है। उन्हे सुख की सामग्री तो है पर उसके उपभोग की उन्हे सामर्थ्य नही। वे रोग ग्रस्त होकर पीडित हैं। अत कही भोग नही है। दरिद्र को साधन हीनता से और धनी को सामर्थ्य हीनता से भोग की प्राप्ति ही नही है। ऐसे लोग दीन होगे किसी से विरोध न करेंगे पर ऐसी बात नही है। दुखी हैं उन्हें अभिमान होने का कारण नही है फिर भी निष्कारण अभिमान करते हैं। विरोध के तीन कारण होते हैं मित्र भूमि और हिरण्य। यहाँ एक भी नही फिर भी विरोध करते हैं। ऐसो का कुशल कैसे सम्भव है। यथा जिमि चह कुसल अकारन कोही।

मनुष्यो की आयु घट गयी। पन्द्रह वर्ष ही पूर्णायु समझी जाने लगी। फिर भी धर्म की अभिरुचि नही समझते है कि कल्पान्त मे भी मेरा नाश न होगा गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्। इसका ठीक उलटा आचरण करते हैं।

कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहि मानत कोउ अनुजा तनुजा॥
नहि तोप विचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भये मंगता॥३॥

अर्थ कलियुग ने मनुष्यो को बेहाल कर दिया। कोई बहन बेटी नही पहचानता। तोप विचार और शीलता तो है नही। सब जाति कुजाति मङ्गन हो गये।

व्याख्या पशुओ मे तो अनुजा तनुजा की पहिचान स्वभाव से ही नही। मनुष्यो मे शास्त्र के अनुशासन से इसका बडा विचार है अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ ये कन्या सम चारी। इन्है कुदृष्टि बिलोकै जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई। सो लोग ऐसे अचेत हो गये कि उन्ह कुछ भी बिचार न रह गया। अपने समझ मे आगे बढते पशुश्रेणी म आगये।

सन्तोप विचार और शान्ति ये ऐसे गुण हैं कि इनके प्रभाव से व्यवहार भी सुखकारी होता है। परलोक के लिए तो सुखकारी रूप से ये प्रसिद्ध हैं ही। यथा सम सन्तोप दया विवेकते व्यौहारी सुख कारी। एपणा त्रय त्याग पर ही भिक्षा का अधिकार है। सो भी ब्राह्मण को गीर्वोढार धावितारं तुरगी दीन सूते ब्राह्मणी याचितारम्। वैश्या दक्ष नर्मकारन्तु शूद्री दातु मत्तं मद्विधा राजपुत्री। गौ ढोनवाले

मुर्दों की भाँति जीनेवालो मे तनुपोषक की गिनती है सो कलियुग मे सब तनुपोषक हो जायेंगे। दूसरे के हित के लिए दु ख उठानेवाले कही न मिलेंगे और लोग घूम घूम कर दूसरा की निन्दा करेंगे। निन्दा करना उनका पेशा हो जायगा। ससार उनकी कदर करेगा।

दो सुनु व्यालारि कराल कलि मल, मल अवगुन आगार।
गुनौ बहुत कलिकाल कर, बिनु प्रयास निस्तार ॥१०२ क
कृत जुग त्रेता द्वापर, पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग ॥१०२॥

अर्थ हे गरुडजी। सुनो यह कराल कलि मल और अवगुण का तो घर है। परन्तु इसके गुण भी बहुत हैं। क्योकि इसम बिना परिश्रम निस्तार हो जाता है। सत्ययुग त्रेता और द्वापर मे पूजा यज्ञ और योग से जो गति होती है सो कलियुग म केवल भगवन्नाम से लोग प्राप्त करते हैं।

व्याख्या जुग कलियुग मल मूल से उपक्रम करके मल अवगुन आगार से उपसहार करते हैं। यद्यपि कलियुग दोपो की खानि है पर विधि प्रपच गुन अवगुन साना। कलियुग के गुण भी बहुत है। अन्य युगो मे बहुत बडा पुरुषार्थ करने से निस्तार होता है। पर कलियुग मे निस्तार पाने मे कोई प्रयास नही है।

जब सत्ययुग था तब लोग योग करके भव सन्तरण करते थे। त्रेता म योग साधन कठिन हो गया। क्याकि उसमे रजका प्रवेश हो गया। अत यज्ञ सम्पादन करके लोग भवसन्तरण करते थे। द्वापर म तमोगुण के प्रवेश से यज्ञ सम्पादन भी कठिन हो गया। तब भगवत् पूजन करके लोग ससार सागर पार हो जाते थे। परन्तु कलियुग मे तमोबाहुल्य स पूजन भी कठिन हो गया। अत हरिनाम स्मरण से ही ससार सागर पार पाने का विधान इस युग मे है। इसलिए कहा जा सकता है कि कलियुग मे बडा भारी गुण भी है। कलि मे नामसेवा ही प्रधान है।

कृत जुग सब जोगी बिग्यानी। करि हरिध्यान तरहिं भव प्रानी ॥
त्रेता बिबिध यज्ञ नर करही। प्रभुहिं समर्पि करम भव तरही ॥१॥

अर्थ सत्य युग म सभी योगी विज्ञानी होते हैं। हरिका ध्यान करके प्राणी ससार सागर के पार हो जाते हैं। त्रेता मे अनेक प्रकार के यज्ञ करते हैं और उसके फल को प्रभुको अर्पण करके भवसागर पार होते हैं।

व्याख्या शुद्ध सत्व समता बिग्याना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना। सत्ययुग म शुद्ध सत्त्व गुण बरतता है। अत समता और विज्ञान सुलभ है। सब प्रसन्न रहते हैं। प्रसन्नचेता की बुद्धि सुव्यवस्थित रहती है। यथा प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धि पर्यव तिष्ठते। अत सत्ययुग का समय योग विज्ञान के अनुकूल होता है। अत हरि का ध्यान करके प्राणी भवसागर के पार पहुँच जाता है।

त्रेता मे सत्वगुण बहुत होता है परन्तु कुछ रजका भी योग हो जाता है। रति कर्म का प्रचार हो जाता है। अथवा कर्म मे रति होती है और याग निर्विकार-चित्तैकसाध्य है। स्त्री या कर्म उसमे महा विघ्न हैं। अतः वह समय यज्ञ के अनुकूल पड़ता है। क्योकि सस्त्रीक होकर ही यज्ञ का सम्पादन किया जाता है। अत' लोग अनेक प्रकार के यज्ञ करते हैं और कर्म फल भगवान् को अर्पण करके कर्मयोग द्वारा ससार सागर के पार हो जाते हैं।

द्वापर करि रघुपति पद पूजा। नर भव तरहि उपाय न दूजा॥
कलिजुग केवल हरिगुन गाहा। गावत नर पावहि भव थाहा॥२॥

अर्थ : द्वापर मे रघुपति के चरणो की पूजा करके लोग ससारतरण करते हैं। दूसरा उपाय नही है। कलियुग मे केवल हरिगुण की गाथा का गान करके लोग संसार का थाह पा जाते हैं।

व्याख्या : बहु रज सत्व स्वल्प कछु तामस। द्वापर हर्ष शोक भय मानस। द्वापर मे रजोगुण बहुत बढ जाता है। कुछ तामस का भो प्रवेश रहता है। सत्व भो बहुत थोडा रहता है। अत. द्वापर मे लोगो के मन मे हर्ष शोक और भय का अधिकार हो जाता है। यज्ञ मे तनिकसो अविधि होने से फल मे बड़ा उलट पलट हो जाता है। यज्ञ के बराबर दूसरा शत्रु भी नही है। अविधि हो जाने से वह यजमान का उलटा अकल्याण करता है। बड़े बडे यज्ञ प्रभूत धन धान्य तथा आयाससाध्य हैं। द्वापर मे उनसे लाभ की आशा बहुत कम हो जाती है। अत उस समय के अनुकूल पूजा है। जिसमे वर्षों का समय न लगकर घण्टो का हिसाब है।

कलियुग मे पूजन भी दुष्कर हो जाता है। हर्ष शोक और भय का प्रभाव मन पर पड़ा करता है। अत. पूजा के भी अभिचाररूप मे परिणत हो जाने का भय रहता है। अतः इस युग मे हरिगुण गाथा के गान से ससार समुद्र ही नही रह जाता। उसका थाह मिल जाता है। डूबने का भय जाता रहता है। पार जाना सरल हो जाता है। सन्तरण की आवश्यकता नही रह जाती। गान करने मे आयास बहुत कम है। इसलिए यहाँ सन्तरण नहीं कहा। यथा : कृते यद् ध्यायतो विष्णु त्रेतायां यजतो मखै.। द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकोर्तनात्।

कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना॥
सब भरोस तजि जो भज रामहि। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि॥३॥

अर्थ : कलियुग मे न योग है न यज्ञ है न ज्ञान है। केवल राम गुणगान ही एक मात्र आधार है। सब भरोसा छोड़कर जो राम को भजता है प्रेम के सहित गुण समूह का गान करता है।

व्याख्या : एहि कलिकाल सकल साधन फल भये सम फऊनि फरोसो। इसलिए कहते हैं कि कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। भाव यह कि इनका भरोसा नही। समय इनके प्रतिकूल है जैसे धान की खेती चैत मे नही होती। करने लगिये तो

बडी कठिनता पडती है और ईप्सित फलप्रसू नही होती। इसी भाँति अन्य साधनो के लिए कलियुग अनुकूल समय नही है। इस मे तो केवल रामगुणगान ही आधार है।

अत. जिसने काल का विचार करके सब साधनो का भरोसा त्याग दिया। राम के भजन मे लग गया प्रेम के सहित रामजी के गुण ग्राम का गान आरम्भ कर दिया। गुणो के गान करने से उनका संस्कार मन पर पडता है। रामजी के गुणो का सस्कार मन पर पडने से ही सम्पूर्ण अशुभ सस्कार नष्ट हो जाते हैं।

सो भवतर कछु संसय नाही। नाम प्रताप प्रगट कलि माही॥
कलिकर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्य होइ नहि पापा॥४॥

अर्थ : वह ससार तर जाता है। इसमे सन्देह नही है। नाम का प्रताप कलियुग मे प्रकट है। कलियुग का एक पवित्र प्रताप है कि मानस पुण्य होता है पाप नही होता।

व्याख्या : चहुँ जुग चहुँ स्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेष नहि आन उपाऊ। योग मे तो नाम का बडा प्रताप योगशास्त्र ने स्वीकार किया है। ईश्वरप्रणिधानाद्वा तज्जपस्तदर्थभावनम्। ईश्वर पर प्रेम करने से समाधि की सिद्धि माना है और नाम के जप तथा अर्थ की भावना का उपदेश किया है। यज्ञ तो नाम ग्रहण पूर्वक हवि दान से ही किया जाता है। पूजा मे तो पदे पदे नाम ग्रहण पूर्वक नमस्कार करके ही वस्तु अर्पण की जाती है। यदि इन तीनो मे से नाम हटा दें तो ये कुछ रह नही जाते। इसलिए कहते हैं कि ' चहुँ जुग चहुँ स्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेष नहि आन उपाऊ। और कलियुग मे तो कोई दूसरा उपाय नही है। यथा : तेन तप्त हुत दत्त-मेवाखिल तेन सर्वं कृत्त कर्मजालम्। येन श्रीरामनामामृत पानकृतमनिशमनवद्य भवलोक्य कालम्। अत उसके भाव सन्तरण मे सशय नही है। उसे थाह मिल जाता है। ऐसा नाम का प्रताप कलियुग मे प्रकट है। जो चाहे वह जप करके इसका प्रभाव देखले।

यह तो नाम का प्रताप हुआ। अब स्वय कलियुग का एक पवित्र प्रताप सुनिये। यद्यपि कलियुग तो दोष का समुद्र ही है। परन्तु इस मे एक महान् गुण है कि इस मे मानस पुण्य होता है पाप नही। यथा : ब्रह्मवैवर्त्त ३ ९० १२९। कलर्दोषनिधे तात गुण एको महानपि। मानसञ्च भवेत् पुण्य सुकृत नहि दुष्कृतम्। मनसे शुभ सकल्प करने का भी पुण्य है और अशुभ सकल्प उठने का भी पाप है। सो वह पाप कलियुग मे नही होता। यदि वह पाप भी होता तो कलियुग मे शायद ही किसी का निस्तार होता।

दो. कलिजुग सम जुग आन नहि, जौ नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल, भवतर बिनहि प्रयास॥१०३ क.
प्रगट चारिपद धरम के, कलिमहुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हे, दान करै कल्यान॥१०३॥

अर्थ : कलियुग के समान दूसरा युग नही है यदि मनुष्य विश्वास करे। इसमे रामजी के निर्मल गुणगण गान करके मनुष्य बिना परिश्रम ससार तर जाता है। चार पाद धर्म के प्रकट हैं। उनमे से एक कलियुग मे प्रधान है। जिस किसी विधि से भी करने से दान कल्याण करता है।

व्याख्या : कोई भी सिद्धि बिना विश्वास नही होती। लोगो को विश्वास नही होता कि रामजी के गुणगान मात्र से बिना प्रयास भव सन्तरण कैसे हो सकता है। इसलिए गुणगान नही करते। यदि विश्वास होता तो बिना गुणगान किये रहा न जाता। भुसुण्डिजी कहते हैं विश्वास की कमी से ही कलियुगी प्राणियो की दुर्गति होती है। नही तो जहाँ राम गुणगान से ही भव सन्तरण है वहाँ लोगो के दुर्गति होने का प्रश्न ही क्या है। यदि इस दृष्टि से देखा जाय तो कलियुग ही धन्य है।

सत्य दया तप और दान ये ही चार पाद धर्म के हैं। कलियुग मे तीन पादो से धर्म का ह्रास हो जाता हैं। इस युग मे दान ही प्रधान है। दान धर्म महा कठिन है। दान मे पात्रापात्र का बडा बखेडा है। दान का बडा विधान है पर भुसुण्डिजी कहते हैं कि कलियुग मे जिस किसी विधि से दान करे। दान की नाव पहाड चढती है।

नित जुग धर्म होहिं सब केरे। हृदय राम माया के प्रेरे ॥
सुद्ध सत्व समता बिग्याना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना ॥१॥

अर्थ : रामजी की माया की प्रेरणा से सबके हृदय मे नित्य युग धर्म हुआ करते हैं। सत्ययुग के प्रभाव से शुद्ध सत्त्वगुण समता और विज्ञान द्वारा प्रसन्न मन रहता है।

व्याख्या : जिस भाँति ससार मे चार हजार दिव्य वर्ष तक सत्ययुग तीन हजार दिव्य वर्ष तक त्रेता दो हजार दिव्य वर्ष तक द्वापर और एक हजार दिव्य वर्ष तक कलियुग क्रम से बीतता है उसी भाँति रामजी की माया की प्रेरणा से मनुष्यो के हृदय मे भी नित्य सत्ययुग त्रेता द्वापर और कलियुग वर्त्तता है। ग्रह की महादशा मे जिस भाँति अवान्तर दशाएँ आती हैं उसी भाँति मनुष्य के हृदय मे भी नित्य चारो युग का चक्र चला करता है। जब सत्ययुग वर्तने लगता है तब शुद्ध सत्त्वगुण का उदय होता है। मन मे समता और विज्ञान तथा प्रसन्नता रहती है। ऐसे अवसर पर योग ज्ञान विज्ञान के साधन के लिए अनुकूलता रहती है।

सत्य बहुत रज कछु रति करमा। सब बिधि सुख त्रेता कर धरमा ॥
बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस। द्वापर धरम हरष भय मानस ॥२॥

अर्थ : सत्त्व बहुत हो थोडा रज हो और कर्म मे रति हो : ऐसा त्रेता का धर्म सब भाँति सुखद है। बहुत रज और थोडा थोडा सत्त्व और तम हो : ऐसे द्वापरके धर्म मे हर्ष शोक और भय मन मे होते हैं।

व्याख्या . जब हृदय मे त्रेता वर्तता है उस समय सत्त्व अधिक और रज थोडा होता है और कर्म अर्थात् वैदिक कर्म यज्ञ यागादि मे प्रीति होती है। यह

अवसर यज्ञ यागादि के लिए अनुकूल पड़ता है। इसमे सब प्रकार से सुख ही सुख है। यथा : देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु व'। परस्परं भावयन्तः श्रेय' परमवाप्स्यथ। यज्ञ से देवताओं की भावना करने से देवता याज्ञिक की वृद्धि करते हैं। इस भाँति परस्पर भावना करने से परमश्रेय को प्राप्त होते हैं।

जब हृदय पर बहुत रजोगुण और थोड़े थोडे सत्व और तम का अधिकार होता है तब द्वापर वर्त्तता है इसलिए मन मे हर्ष शोक और भय का भी उदय होता है। इस मे पूजा भी अनुकूल होती है। क्योंकि पूजा में घण्टो का हिसाब है महीनो सालो का नही।

तामस बहुत रजो गुन थोरा। कलि प्रभाव विरोध चहुँ ओरा॥
बुध जुग धरमु जानि मन माही। तजि अधरम रति धरम कराही॥३॥

अर्थ : तमोगुण बहुत और थोडा सा रज कलियुग मे वर्तता है। इसका स्वभाव है कि चारो ओर विरोध होता है। पण्डित मन मे युग धर्म को समझकर अधर्म का त्याग करके धर्म मे मन लगाते हैं।

व्याख्या : जब हृदय मे तमोगुण के बाहुल्य और रज की स्वल्पताका उदय होता है तब कलियुग के स्वभावानुसार चारो विरोध रहता है। ऐसे अवसर पर सिवा नाम जप के और कोई साधन सम्भव नही। भुसुण्डिजी कहते हैं कि पण्डित लोग लक्षण से समझ लेते हैं कि मेरे मन मे कौन सा युग वर्त रहा है और अधर्म का परित्याग करके धर्म मे मन लगाते हैं। ईश्वर की प्रेरणा से नित्य युगधर्म हृदय मे वर्तता है उससे लाभ उठाना साधक का काम है। साधक युगो के लक्षण ज्ञान से समझ सकता है कि कौन सा युग किस समय उसके हृदय मे वर्त रहा है तदनुकूल साधन से उस समय काम लेता है। स्वयं भुसुण्डिजी इसी भाँति साधन करते थे। यथा : पीपर तरु तर ध्यान सो धरई। जाप जग्य पाकर तर करई। आम छाँहकर मानस पूजा। तजि हरि भजन काज नहि दूजा। वट तर कह हरि कथा प्रसगा।

युग के अनुसार रामजी की माया के अनुसार लोगो के हृदय मे युग धर्म वर्तता है। सबकी प्रवृत्ति ही युग धर्मानुकूल हो जाती है। उस समय पण्डित का काम है कि युगधर्म से सावधान होकर अधर्म का त्याग करके धर्म मे मन लगावे।

काल धरम नहि ब्यापहि ताही। रघुपति चरन प्रीति अति जाही॥
नट कृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहि न ब्यापै माया॥४॥

अर्थ : कालधर्म उसे नही व्यापता जिसे रामजी के चरण मे अति प्रीति हो। हे पक्षिराट्! नट विकट माया फैलाता है पर नटसेवक को माया नही व्यापती।

व्याख्या : कालधर्म को प्रेरक रामजी की माया है। माया का बल उस पर नही चलता जिसे रामजी के चरणो मे अत्यन्त प्रीति होती है। क्योकि उसके हृदय मे भक्ति का साम्राज्य रहता है और भक्ति से माया अत्यन्त भयभीत रहती है।

यथा : भगतिहि सानुकूल रघुराया । ताते तेहि डरपति अतिमाया । अत: रामोपासक को कालधर्म नही व्यापता ।

ऐसी ही स्थिति लोक मे भी देखी जाती है । नट ऐसी माया फैलाता है कि सबकी दृष्टि उसी के संकल्पानुसार काम करने लगती है । सब लोग देखते हैं कि नट ने कोल्हू सिर पर उठा लिया और लिये खड़ा है । सब लोग बड़ा आश्चर्य करते हैं । पर नटका सेवक जानता है कि नट स्वय कोल्हू पर खड़ा है । लोग ही उलटा देखते हैं पर उसे नट की माया नही व्यापती । क्योंकि उसके लिए नट का संकल्प नही है ।

दो. हरि माया कृत दोप गुन, बिनु हरि भजन न जाहि ।
भजिय राम तजि काम सब, अस विचारि मन माहि ॥१०४ क.

अर्थ : हरिमाया के निर्मित दोप और गुण बिना हरिभजन के जाते नही । ऐसा मन मे विचार करके सब काम को छोड़कर रामजी का भजन करना चाहिए ।

व्याख्या : माया अनेक प्रकार की होती है । दैवी माया आसुरी माया मानुषी माया इत्यादि । और इनके निर्मित दोप और गुण भी विभिन्न प्रभाववाले होते हैं और उपाय से जाते भी रहते हैं पर रामजी की माया बड़ी प्रबल है । यथा : सुनु खग प्रबल राम की माया । इसका निर्मित : काल धर्म : दोप गुण किसी के हटाये नही हटता । यह हरि भजन से ही जाता है । भगवान् ने भी स्वयं कहा है : दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया । मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते । इसलिए सब कामनाओं का परित्याग करके रामजी का भजन करना चाहिए । जिसमे कालधर्म बाधा न कर सके ।

तेहि कलिकाल बरष बहु, बसेउँ अवध बिहगेस ।
परेउ दुकाल बिपति बस, तब मै गयउँ बिदेस ॥१०४॥

अर्थ : उस कलिकाल में हे गरुड़जी ! मैं बहुत वर्षों तक अवध मे रहा । दुकाल पड़ा तो विपत्ति के वश मे विदेश चला गया ।

व्याख्या : कवनेउँ जनम अवध बस जोई । राम परायन सो हरि होई । सो भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैंने अनेक वर्षों तक अवध वास किया । अवध की महिमा न जानने से उर मे उग्रबुद्धि और विशाल दम्भ होने से तथा पापपरायण समय : कलियुग होने से तीर्थवास की कोई विधि भी नही पालन कर सके । कलियुग मे बारम्बार दुकाल पड़ता है । बिना अन्न के दु:खी होकर लोग मरने लगते हैं । सो दुकाल पड़ ही गया । मुझे भी ऐसी विपत्ति आयी कि देश छोड़कर भाग गया ।

गयेउँ उजेनी सुनु उरगारी । दीन मलीन दरिद्र दुखारी ॥
गए काल कछु संपति पाई । तहँ पुनि करौं संभु सेवकाई ॥१॥

अर्थ : हे पक्षिराट् ! सुनो मैं दीन मलिन दरिद्र और दु:खी होकर उज्जैन

गया। कुछ काल बीतने पर मुझे कुछ सम्पत्ति मिल गयी और फिर मैं शिवजी की सेवा मे लग गया।

व्याख्या : मालव देश मे सदा सुकाल रहता है। इसलिए मैं उज्जैन चला गया। प्रारब्ध ने फिर साथ दिया। सात मोक्षपुरियो मे से उज्जैन भी एक पुरी है। अयोध्या छूटा तो अवन्तिका : उज्जैन पुरी की प्राप्ति हुई। वहाँ मैं बड़ी दीन दशा मे पहुँचा। पास कुछ नही था। शरीर से मलिन और मन से दु खी था।

कुछ दिन वहाँ रहते रहते कुछ धन हो गया। इस विपत्ति में पडने से शिवजी की सेवा छूट गयी थी। विपत्ति दूर हो जाने पर फिर भुसुण्डिजी ने शिवजी की सेवा प्रारम्भ कर दी। उज्जैन मे प्रधान देव महाकालेश्वर हैं। उनकी सेवा पूजा मे लग गया।

विप्र एक वैदिक सिव पूजा। करै सदा तेहि काजु न दूजा ॥
परम साधु परमारथ बिंदक। संभु उपासक नहि हरिनिन्दक ॥२॥

अर्थ : एक ब्राह्मण शिवजी की वैदिक पूजा करता था। उसे कोई दूसरा काम न था। वह परम साधु परमार्थ का ज्ञाता था। शम्भु की उपासना करता था। परन्तु हरिनिन्दक नही था।

व्याख्या : जब भुसुण्डिजी मन्दिर मे जाते थे तो देखते थे ब्राह्मण देवता की वैदिक विधान से शिवजी की पूजा चल रही है। उन्हे शिवजी की पूजा छोडकर दूसरा कोई काम ही नही था। वे महात्मा परम साधु थे। समान चित्त थे। उनका कोई हित अनहित नही था। परमार्थ पथ मे बड़े चतुर थे। उसी के सुधारने मे दिन रात लगे रहते थे। मनसा वाचा कर्मणा शिवजी के उपासक थे। परन्तु भुसुण्डिजी की भाँति हरिनिन्दक नही थे।

तेहि सेवौं मैं कपटसमेता। द्विज दयाल अति नीति निकेता ॥
बाहिज नम्र देखि मोहि साईं। बिप्र पढाव पुत्र की नाईं ॥३॥

अर्थ : उनकी मैं कपट के साथ सेवा करने लगा। ब्राह्मणदेवता बड़े दयालु और नीति के मानो घर थे। मुझे बाहर से नम्र देखकर ब्राह्मण देवता ने पुत्र की भाँति पढना प्रारम्भ कर दिया।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि उस ब्राह्मण की मैं सेवा करने लगा। पर अपने आन्तरिक भावो को उनसे छिपाये रहता था। उन्होने नहीं जान पाया कि यह : धन मदमत्त परम बाचाला। उग्र बुद्धि उर दंभ बिसाला। सिव सेवक मन क्रम अरु बानी। आन देव निन्दक अभिमानी है। ब्राह्मण देवता बडे दयालु थे। नीतिमान् थे। उन्होने विनिमय मे बिना कुछ दिये सेवा लेना नही चाहा और बाहरी बरताव मेरा बडा नम्र था। अतः मुझे वे परमार्थज्ञान देने के लिए पुत्र की भाँति पढाने लगे। हृदय मे उनके यह भाव था कि यह जल्दी पढ लिख ले। उनके मन मे कपट नही था।

संभु मंत्र मोहि द्विजबर दीन्हा। सुभ उपदेस बिबिध बिधि कीन्हा ॥
जपौं मंत्र सिव मंदिर जाई। हृदय दंभ अहमिति अधिकाई ॥४॥

अर्थ उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने मुझे शिवजी का मन्त्र दिया और अनेक प्रकार का शुभ उपदेश दिया। मैं शिवमन्दिर मे जाकर शिव मन्त्र का जप करता था। हृदय मे दम्भ और अहङ्कार अधिक हो गया।

व्याख्या ब्राह्मण देवता विद्यागुरु तो थे ही दीक्षा गुरु भी वे ही हुए। मुझे विद्वान् बनाकर तब शिव मन्त्र से दीक्षित किया। दीक्षोपरान्त किस किस भाँति से उपासना की जाती है उसकी पद्धति मन्त्र जप का विधान तथा आचरण सम्बन्धी बहुत से उपदेश दिये जिसमे मेरा अन्धकार दूर हो।

अब तो मैं शिवमन्दिर मे जाकर जप करने लगा। उधर गुरुजी की पूजा होती थी इधर मेरा जप होता था। दम्भ और अभिमान तो मुझमे पहिले ही से था। अब इतनी बडी बडाई पाकर ऐसे शिवभक्त का शिष्यत्व प्राप्त करके दम्भ और अभिमान ऐसा बढा कि मैं उसे छिपा न सका।

दो. मैं खल मल संकुल मति, नीच जाति बस मोह।
हरिजन द्विज देखे जरौं, करौं बिष्णु कर द्रोह ॥१०५ क.

सो. गुर नित मोहि प्रबोध, दुखित देखि आचरण मम।
मोहि उपजइ अति क्रोध, दंभिहि नीति कि भावई ॥१०५॥

अर्थ : मै खल था। मेरी बुद्धि पाप से भरी थी। जाति मे नीच था। हरिजन और ब्राह्मणो को देखकर जलता था और विष्णु का द्रोह करता था। गुरुजी मुझे नित्य समझाते थे। मेरा आचरण देखकर दु खी होते थे। पर मुझे बडा क्रोध होता था। क्या दम्भी को नीति अच्छी लगती है।

व्याख्या : मैं स्वभाव से खल था। गुरुजी स्वभाव से परम साधु थे। मैं मलसङ्कुलमति था। वे नीतिनिकेत थे। मैं नीच जाति था। वे वैदिक ब्राह्मण थे। मैं मोहवश था। वे परमार्थ विन्दक थे। मैं विष्णुद्रोही था। वे ऐसे नही थे। मैं हरिजन और द्विज को देखकर जलता था और वे दयालु थे। अतः गुरुजी के और मेरे स्वभाव मे आकाश पाताल का अन्तर था। दीक्षा न मिलने तक मैं बाहर से नम्र रहा। मिल जाने पर मेरे सभी गुण धीरे धीरे खुलने लगे।

मेरे अज्ञान के दूर करने के लिए गुरुजी नित्य ही मुझे समझाते बुझाते थे। मेरा आचरण देखकर दु खी होते थे। क्योंकि शिष्यापराधे गुरोर्दण्डः। शिष्य गुरु का ऐसा सम्बन्ध है जो परलोक के लिए होता ही है। गुरुजी एक बार कहकर चुप नही रह गये। नित्य नियम से मुझे उपदेश करने लगे। क्योंकि बार बार कहने से विषय भी समझ मे आ जाता है पर मैं था दम्भी। मुझे गुरुजी की नीति अच्छी

नही लगती थी। उनके नित्य के समझाने से ऐसा क्रोध होने लगा जो सहन की सीमा के बाहर था।

बडे कष्ट ते सुकृतधन सग्रह करत सुजान।
हरत छनक यह दम्भ सम घातक शत्रु न आन॥
गिरे स्वर्ग ते सुकृत निज मुख ते कहे ययाति।
कहाँ पुण्य को गध जहँ दभ चलै दिनराति॥
या ते जप तप नेम व्रत करिये सहित छिपाव।
सुकृत कोष सचय करत होय कतहुँ लखाव॥
हरिगन द्विजगन ते सदा अपने को लघु मान।
जंगम मूरति शभु की जानि करिय सनमान॥
सपनेहुँ इनको द्रोह सुत सकल अमङ्गल मूल।
एहि अपराध अगाध ते होत शभु प्रतिकूल॥
जो चाहे कल्याण निज रहे दभ ते दूर।
हरिजन तिन चरनन सदा करे प्रेम भरिपूर॥

एक बार गुर लीन्ह बोलाई। मोहि नीति बहु भाँति सिखाई॥
सिव सेवा कै फल सुत सोई। अबिरल भगति राम पद होई॥१॥

अर्थ एकबार गुरुजी ने बुला लिया और मुझे बहुत भाँति से नीति सिखाई कहा बेटा! शिवजी की सेवा का फल ही यह है कि रामजी के चरणो मे अविरल भक्ति हो।

व्याख्या: भुसुण्डिजी कहते हैं कि अब मैने गुरुजी के यहाँ जाना छोड दिया। पर गुरुजी ने मुझे नही छोडा। मुझे एकबार बुला लिया क्योकि मेरे आचरण से वे दुःखी थे। समझाने के लिए बुलाया था अनेक प्रकार से नीति का उपदेश दिया। जिसमे मेरा आचरण सुधरे। मैं हरिजन तथा ब्राह्मणो को देखकर न जलूँ और विष्णु का द्रोह छोड दूँ। नीति यही है प्रिय का स्नेह भाजन भी प्रिय के समान ही है। तुमको शिवजी प्रिय हैं तो तुम्हे उनके स्नेह भाजन रामजी से भी वैसे ही प्रीति करनी चाहिए जैसी शिवजी से करते हो। शिवजी को ब्राह्मण साधु प्रिय हैं। अत उनसे भी प्रीति करनी चाहिए। शिवभक्त होकर उनके प्रेमभाजन रामजी से द्रोह करना ठीक रास्ता नही है। यथा प्रिय सम प्रिय सनेह भाजन सखि प्रीति रीति जग जानी। भूषन भूति गरल परिहरि कै हर मूरति उर आनी। मज्जन पान कियो कै सुरसरि कर्मनास जल छानी। पूँछ सो प्रम विरोध सीग सो यहि विचार हित हानी।

यदि शिवजी के भक्त की प्रीति रामचरणो मे न हुई तो उसकी शिवभक्ति ही निष्फल गयी। क्योकि रामभक्ति शिवभक्ति का फल है। स्वय रामजी ने कहा है कि औरो एक गुप्त मत, सबहि कहौ कर जोरि। सकर भजन बिना नर भगति न पावै मोरि।

रामहि भजहिं तात सिव धाता। नर पाँवर कै केतिक बाता ॥
जासु चरन अज सिव अनुरागी। तासु द्रोह सुख चहसि अभागी ॥२॥

अर्थ : हे तात! शिवजी और ब्रह्माजी स्वयं राम को भजते हैं। भला नीच मनुष्य की क्या गिनती है। जिसके चरणो के शिव और ब्रह्मा अनुरागी हैं तू उनसे द्रोह करके सुख चाहता है।

व्याख्या : शिव और ब्रह्मा ईश्वरकोटि मे हैं। वे भी जिस रामजी को भजते हैं। यथा : कौसलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ। तू मनुष्यो मे भी नीच तेरी किस गिनती मे गिनती है जो तू राम को नही भजता। जिन चरणो की कृपा से शिव को शिवपद और ब्रह्मदेव को ब्रह्मपद मिला है। हरिहिं हरिता सिवहिं सिवता बिधिहि बिधिता जो दई। सो जानकी पति मधुर मूरति मोदमय मंगलमई। जिनके विरोधी को कही विश्राम नही मिलता। यथा : राम बिमुख थल नरक न लहही। उससे तू विरोध करता है। तू अभागी है तुझे सुख कैसे मिलेगा? सुखसरूप रघुवंशमणि से तो तूने वैर ठान रक्खा है।

हर कहुँ करि सेवक गुर कहेऊ। सुनि खगनाथ हृदय मम दहेऊ ॥
अधम जाति मै बिद्या पाए। भएउ जथा अहि दूध पिआए ॥३॥

अर्थ : गुरुजी ने शिवजी को रामजी का सेवक बतला दिया। यह सुनकर तो मेरा कलेजा जल उठा। मैं अधम जाति था। हे पक्षिराट्! मैं विद्या पाने से ऐसा हो गया कि जैसा साँप दूध पिलाने से हो जाता है।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैंने यावज्जीवन शिवजी के उत्कर्ष और विष्णु के अपकर्ष के स्थापन मे बिताया। शिवभक्तो मे श्रेष्ठ जानकर इन्हे गुरु बनाया। सो यही शिवजी को हरिसेवक कहने लगे। इन्होंने मेरे साथ बडा विश्वास-घात किया। सो मेरा कलेजा जल उठा। भाव यह कि गुरुजी के उपदेश से मुझे क्रोध बढा शान्ति न हुई। कारण देते हैं कि अधम जाति विद्या का अधिकारी नही है। विद्या पाने से उनका दोष बढता है। माता से भी शतगुणित हितैषिणी श्रुति ने जो अधम जाति को विद्या का अधिकार नहीं दिया सो किसी द्वेष के वश होकर नही। विद्या प्राप्ति से अधम जाति की बडी हानि होती है। वही हुआ मैं गुरुद्रोही हो गया। पय पान भुजङ्गाना केवल विषवर्धनम्। साँप को दूध पिलाने से विष ही बढा।

मानी कुटिल कुभाग्य कुजाती। गुरकर द्रोह करौं दिन राती ॥
अति दयाल गुरु स्वल्प न क्रोधा। पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा ॥४॥

अर्थ : मैं अभिमानी, कुटिल, कुभाग्य, कुजाति था। सो गुरु का द्रोह मैं रात दिन करने लगा। गुरुजी बडे दयानिधान थे उन्हें कुछ भी क्रोध न हुआ। वे सुबोध बार बार मुझे सिखाते ही रहे।

व्याख्या मैं उपदेश का पात्र नही था। मैं अभिमानी था अत उनकी शिक्षा पर ध्यान नही देता था। प्रत्युत मुझे बुरा लगता था कि ये बार बार मुझे सिखाने लगते हैं। इस भाँति अपना गुरु होना द्योतित करते हैं। मैं कुटिल था गुरुजी के सरल उपदेश मे मुझे वक्रता की कल्पना होती थी। चलइ जोक जल वक्र गति जद्यपि सलिल समान। मैं समझता था कि ये मुझे शिवजी की आराधना से गिराना चाहते हैं। अकेले स्वय सर्वश्रेष्ठ शिवयोगी बने रहना चाहते हैं। मेरी उन्नति सहन नही कर सकते। अब मैं गुरुजी का द्रोह दिनरात करने लगा। निन्दा से बढ़कर दूसरा द्रोह नही है। जिससे यशोमयी देह मारी पडती है।

परन्तु गुरुजी की दया का भी पारावार नही था। उन्हे क्रोध का नाम नही। वे इसकी अविद्या के नाश के यत्न मे सदा तत्पर रहते थे। बारम्बार समय पाकर उपदेश दिया करते थे। बारम्बार उपदेश देने से बात मन मे जम जाती है।

जेहि ते नीच बडाई पावा। सो प्रथमहि हठि ताहि नसावा ॥
धूम अनल सभव सुनु भाई। तेहि बुझाव घन पदवी पाई ॥५॥

अर्थ जिससे नीच बडाई पाता है उसे वह हठ पूर्वक पहिले ही नष्ट करता है। हे भाई! धूआँ अग्नि से उत्पन्न है पर बादल की पदवी पाकर उसे बुझा देता है।

व्याख्या यह नियम है कि नीच जिससे बडाई पाता है पहिला काम वह यह करता है कि अपने उपकारी का नाश करता है। यही नीच का लक्षण है। कृतेपु प्रतिकर्तव्यमेप धर्म सनातन। जिसने अपने साथ भलाई की उसके साथ भलाई करना सनातन धर्म है। परन्तु नीच अपने उपकारी के साथ अपघात करता है। भुसुण्डिजी कहते है कि मुझे गुरुजी से विद्या मिली दीक्षा मिली। स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते। अत बडाई प्राप्त की परन्तु गुरुजी के रहते बडाई पूरी नही होती। अत मैं गुरुजी का द्रोह दिन रात करने लगा। अथवा नीच का स्वभाव ही ऐसा होता है। अत स्वभावानुसार द्रोह करने लगा।

उदाहरण देते हैं कि 'धूमो ज्योति सलिलमरुता सन्निपात क्व मेघ। धूम, ज्योति, जल और हवा मिलकर मेघ बनते हैं। अग्नि के कारण ही धूम की ऐसी उच्चगति होती है कि मेघ हो जाता है। मेघ के चार उपादान कारण हैं। उनमे से धूम का सूक्ष्म अंश भी कारण का ही वध करता है।

रज मग परी निरादर रहई। सब कर पग प्रहार नित सहई ॥
मरुत उडाइ प्रथम तेहि भरई। पुनि नृप नयन किरीटन्हि परई ॥६॥

अर्थ धूलि रास्ते म पडी हुई अनादृत रहती है। सबके पैरो की ठोकर सहा करती है। हवा उसे उडाती है तो पहिल वह उसीको भर देती है। फिर राजा की आँख और मुकुट मे पडती है।

व्याख्या सब से बडा अनादर धूलिका है। वह रास्ते मे पडी रहती है। दिन रात लात खाया करती है। उसे हवा ही एक ऐसी वस्तु है जो ऊपर उठाती है।

परन्तु धूलि नीच है। वह पहिले हवा को ही मलिन करती है। फिर राजा के आँखो और मुकुटों पर पड़ती है। राजा ने उसे कभी लात नही मारा था। भाव यह कि नीच जब बड़ाई पाते हैं तो पहिला चोट उनका उसपर होता है जिसके कारण बड़ाई पाया। दूसरा चोट उस पर होता है जिसने कभी अपकार नही किया। अपने अपकारी पर तो वह अन्त मे चोट करता है। इस भाँति नीचे गिरकर उस बड़ाई को भी नष्ट करता है जो उसे प्राप्त हुई थी।

सुनु खगपति अस समुझि प्रसंगा। बुध नहि करहिं अधम कर संगा॥
कबि कोबिद गावहिं असि नीती। खलसन कलह न भल नहि प्रीती॥७॥

अर्थ : हे पक्षिराट्! सुनो ऐसा प्रसङ्ग समझकर पण्डित लोग अधम का साथ नही करते। कवि पण्डित ऐसी नीति बतलाते हैं कि खल के साथ न झगड़ा अच्छा न प्रीति अच्छी।

व्याख्या : पण्डित जानते हैं कि : मिलत एक दारुन दुख देही। बिछुरत एक प्रान हरि लेही। अतः वे इस प्रसङ्ग को खूब समझते हैं कि अधम पहिले अपने उपकारी पर ही टूटते हैं। अतः वे लोग अधम का सङ्ग नही करते। गुरुजी भी यदि ऐसा जानते तो मेरा संग्रह कभी न करते। उन्होने मेरी बाहरी नम्रता से धोखा खाया।

पण्डित कवि ही संसार के सच्चे नेता है। उन्ही के वचन लोगो के हृदय पर अधिकार कर लेते हैं और लोग समय समय पर उन वचनो का प्रमाण दिया करते हैं। उन कवि कोविदो ने इस नीति की प्रशसा की है कि खल के साथ न कलह अच्छा न प्रेम अच्छा। खल कलह विद्या के पण्डित है। उसमे उन्हे कौन जीत सकता है और यदि उनके साथ कोई प्रीति करे तो मिलत एक दारुन दुख देही : इस नीति के अनुसार उनसे दुःख ही पावेगा। अतः उनसे न प्रीति अच्छी न कलह अच्छा।

उदासीन नित रहिअ गोसाईं। खल परिहरिअ स्वान की नाईं॥
मैं खल हृदय कपट कुटिलाई। गुरहित कहै न मोहि सुहाई॥८॥

अर्थ : हे गोसाईं! नित्य उदासीन रहिये और खल का परित्याग कुत्ते की भाँति करिये। मैं खल था मेरे हृदय मे कुटिलाई थी। गुरुजी भले की बात कहते थे पर मुझे अच्छी नही लगती थी।

व्याख्या : सत्सङ्ग को परम उपादेय माननेवाले भुसुण्डिजी असत् सङ्ग को वैसा ही हेय मानते हैं। कहते हैं कि खल के प्रति सदा उदासीन भाव बनाये रहना चाहिए। उसको कुत्ते के समान त्यागना चाहिए। कुत्ते को दूर से कौर दे दीजिये। पर उसे पास न फटकने दीजिये। नीचमल्पप्रदानेन। कुत्ता के सम्पर्क से धर्म कर्म की हानि होगी। उससे बैर करने से वह काटेगा भूँकेगा।

मैं सामान्य खल नही था। कपट कुटिलाई मेरे हृदय मे रहती थी। लखाई नही पडती थी। गुरुजी मेरे हित की बात मुझे समझाते थे। पर उनकी बातें मुझे अच्छी नही लगती थी। उनकी बातो को हृदय मे स्थान देना तो दूर की बात है। उपदेशो हि मूर्खाणा प्रकोपाय न शान्तये।

दो. एक बार हर मंदिर, जपत रहेउँ सिव नाम।
गुर आएउ अभिमान तें, उठि नहि कीन्ह प्रनाम ॥१०९ क.
सो दयाल नहि कहेउ कछु, उर न रोष लवलेस।
अति अघ गुर अपमानता, सहि नहि सके महेस ॥१०९॥

अर्थ : एक बार शिव मन्दिर मे शिवजी का नाम मैं जप कर रहा था कि गुरुजी आ गये। मैंने उठकर प्रणाम तक नही किया। वे दयालु थे उन्होने कुछ भी नही कहा। उनके हृदय मे रोष का लेश नही हुआ। पर गुरु के अपमान रूपी महापाप को महादेवजी नही सह सके।

व्याख्या : पूजन करने के समय यदि गुरुजी आ जाँय तो इष्टदेवता का पूजन बन्द हो जाता है। शेष सामग्री से गुरुजी के पूजन का विधान है। यहाँ भुसुण्डिजी मन्दिर मे बैठकर मन्त्रजप भी नही करते थे। नाम जप करते थे। नामजप सभी अवस्था मे हो सकता है। अत आसन छोडने मे कोई बाधा किसी प्रकार की नही थी। अत: कहते हैं कि फिर भी मैंने न अभ्युत्थान दिया न प्रणाम ही किया। यह भी नही कि नाम जप मे ऐसे लीन हो गये हो कि उनको गुरुजी के आने की सुधि ही न हो। उन्होने गुरुजी को आते देखा उठकर प्रणाम करने के औचित्य की बात मन मे आयी पर अभिमान वश नही उठे। अब तो हम गुरुजी से अधिक हो गये। अब उन्हे हमे देखकर उठना चाहिए। जिस भाँति शुकदेवजी के आगमन पर वसिष्ठादि ने अभ्युत्थान दिया था। द्वैतवादी के लिए तो कहना ही क्या। अद्वैतवादी के लिए भी गुरु से अद्वैत भाव रखना मना है। यथा : नाद्वैत गुरुणा सह :

गुरुजी की दया की सीमा नही थी। उन्होने इस अपमान पर ध्यान भी नही दिया। न कुछ बोले और न हृदय मे कुछ अप्रसन्न हुए। पर परहित के लिए विषम गरल पान करनेवाले महादेव इस पापरूपी महा विष को नही सह सके। उनके मन्दिर मे शिष्य ने गुरु का अपमान उनका भक्त बन के किया।

मंदिर माझ भई नभबानी। रे हतभाग्य अज्ञ अभिमानी ॥
जद्यपि तव गुर के नहि क्रोधा। अति कृपाल चित सम्यक बोधा ॥१॥

अर्थ मन्दिर मे आकाश वाणी हुई कि रे अभागे मूर्ख अभिमानी। यद्यपि तेरे गुरु को क्रोध नही है। वे अत्यन्त कृपालु हैं और उनके हृदय मे पूर्ण ज्ञान है।

व्याख्या : मन्दिर के आकाश मे आकाश वाणी हुई। क्योकि मन्दिर मे ही शिवजी के होने का उसके हृदय मे भाव था। अर्थात् महाकाश मे नही हुई मठाकाश

मे हुई। भुसुण्डि को हतभाग्य अज्ञ और अभिमानी शब्दो से सम्बोधन किया। गुरुजी ने कहा था : तासु विमुख सुख चहेसि अभागी। सरकार के चरण के विमुख होने से अभागी कहा। गुरुजी की महिमा को न जाना इसलिए अज्ञ कहा। गुरुजी के आने पर उठकर प्रणाम नही किया इसलिए अभिमानी कहा।

यद्यपि जिसका अपराध तूने किया उसे क्रोध नही है। कारण यह कि वे महापुरुष अति कृपालु हैं। क्षमासारा हि साधव । साधु पुरुष बडे क्षमाशील होते है और दूसरी बात यह कि उन्हे भेददृष्टि नही है पूर्ण ज्ञानी हैं। ऐसे गुरु के अपमान करने से अपराध और भी बढ गया।

तदपि साप सठ देइ हौ तोही। नीति बिरोध सुहाइ न मोही ॥
जौ नहि दंड करौ खल तोरा। भ्रष्ट होइ स्रुतिमारग मोरा ॥२॥

अर्थ · रे शठ ! फिर भी तुझे मैं शाप दूँगा। क्योकि नीति का विरोध मुझे अच्छा नही लगता। रे खल ! यदि मैं तेरा दण्ड नही करता हूँ। तो मेरा वेद का मार्ग नष्ट हो जायगा।

व्याख्या : तेरे हृदय मे बडा भारी पक्ष है हठ है। अत तू शठ है। निष्कारण गुरु का अपकार करता है इसलिए खल है। अपराध तूने ऐसा किया कि गुरुजी को शाप देना प्राप्त था। पर उन्होंने नही दिया। पर मैं तुझे शाप दूँगा क्योंकि नीति का विरोध मुझे अच्छा नही लगता। गुरुजी ने क्षमा कर दिया। पर मैं क्षमा न करूँगा। यदि मैं क्षमा कर दूँ और तुझे दण्ड न दूँ तो मेरा वेद का मार्ग बिगड जायगा। तेरे गुरुजी अधिकारी नही हैं मैं अधिकारी हूँ। अपने वेदमार्ग की रक्षा के लिए दण्ड दूँगा। दण्ड. शास्ति प्रजा सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति। दण्ड सुप्तेषु जागर्ति दण्ड धर्मं विदुर्बुधा ।

जे सठ गुरसन इरषा करही। रौरव नरक कोटि जुग परही ॥
तिजग जोनि पुनि धरहि सरीरा। अयुत जनम भरि पावहि पीरा ॥३॥

अर्थ · जो शठ गुरु से ईर्षा करते हैं वे कोटि युग तक रौरव नरक मे पडते हैं। वे तिर्यक् योनि मे शरीर धारण करते हैं और दस हजार जन्म तक पीडा पाते हैं।

व्याख्या : ईर्षा किसी से न करनी चाहिए। पर जो ऐसे पापी हैं कि गुरु से ईर्षा करते हैं उन्हें कोटि युग तक अर्थात् दस हजार कल्प तक नरक भोगना पडता है। नरक से निकलने पर भी उस सस्कार के दूर करने मे दस सहस्र पशुयोनि मे जन्म लेना पडता है तब उसकी शुद्धि होती है। तैने वही पाप कर डाला।

बैठि रहेसि अजगर इव पापी। सर्प होहि खल मल मति ब्यापी ॥
महा बिटप कोटर महुँ जाई। रहु अधमाधम अधगति पाई ॥४॥

अर्थ : रे पापी तू अजगर की भाँति बैठा रह गया। रे खल रे मलिनबुद्धि !

तू सर्प हो और महा विटप के खोखले मे जाकर रे नीचातिनीच ! तू अधोगति प्राप्त करके रह।

व्याख्या : अजगर हिल डोल नही सकता। तू तो मनुष्य था तू तो हिल डोल सकता था। फिर भी गुरुजी के आने पर तू अजगर की भाँति अपने आसन से हिला नही। तू खल है। गुरु से खलता करता है तुझे गुरु ने विद्या दी पर तेरी बुद्धि सर्प की भाँति मलिन है। तुझे विद्या देना साँप को दूध पिलाना था। तूने सर्प सा आचरण किया। इसलिए तू सर्प हो। तूने मन्दिर मे गुरुजी का अपमान किया। इसलिए तू किसी बडे भारी पेड के खोखले मे जाकर अधोगति को प्राप्त हो। क्योंकि तू नीचो मे भी महानीच है। बैठा रहा इसलिए तू अधम है। प्रणाम भी नही किया इसलिए अधमाधम है।

दो. हाहाकार कीन्ह गुर, दारुन सुनि सिव स्राप।
कंपित मोहि बिलोकि अति, उर उपजा परिताप ॥१०७ क.
करि दंडवत सप्रेम द्विज, सिव सनमुख करि जोरि।
बिनय करत गदगद स्वर, समुझि घोर गति मोरि ॥१०७॥

अर्थ : शिवजी का दारुण शाप सुनकर गुरुजी ने हाहाकार किया। मुझे काँपता हुआ देखकर उनके हृदय मे अत्यन्त परिताप उत्पन्न हुआ।

प्रेम के साथ दण्डवत् करके ब्राह्मण देवता शिवजी के सामने हाथ जोडकर गद्‌गद वाणी से मेरी घोर गति समझकर विनय करने लगे।

व्याख्या : राखै गुरु जो कोप बिधाता। गुरुजी का काम आपड़ा : शिवजी ने क्रोध किया। अब इसकी रक्षा कैसे हो। अत: दारुण शाप सुनकर गुरुजी ने हाहाकार किया। भुसुण्डिजी हाहाकार भी नही कर सके काँपने लगे। गुरुजी ऐसे दयाल थे कि मुझे काँपते देखकर उन्हे बडा दु ख हुआ। जिसके कारण क्रोध होता है उसी के शान्त किये क्रोध शान्त होता है। शिवजी के क्रोध से रक्षा दूसरा नही कर सकता। वे ही प्रसन्न हो तो काम चले।

अत' गुरुजी ने तुरन्त दण्डवत् किया और शिवजी के सामने हाथ जोडकर विनय करने लगे। शिवजी ने ही क्रोध किया है। अत: उन्ही के सामने विनय करते हैं। प्रेम के सहित विनय करने से ही यथार्थ फल की प्राप्ति होती है। गद्‌गद वाणी गुरुजी की हो रही है। क्योकि भुसुण्डिजी को घोरगति स्मरण करके दया का उद्रेक हो उठा।

श्लो. नमामीशमीशान निर्वाण रूपं। विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं ॥
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं। चिदाकाशमाकाशवासं भजेहं ॥

अर्थ : ईश, ईशान, निर्वाण रूप, विभु, व्यापक, ब्रह्म, वेद स्वरूप को मैं

नमस्कार करता हूँ और निज, निर्गुण, निर्विकल्प, निरीह, चिदाकाश, आकाशवास को मै भजता हूँ।

व्याख्या : स हि सर्वं ईष्टे : वही सबका मालिक है। सबका नियन्ता है। इसलिए उसे ईशान कहते हैं। अहमात्मा गुडाकेशः सर्वभूताशयस्थित.। उसी की प्रेरणा से ही सब कुछ होता है। वही मोक्ष रूप भी है। देशत कालतः वस्तुतः अपरिच्छिन्न होने से उसे विभु व्यापक और ब्रह्म कहा। अथवा निर्वाण रूप होने से आनन्द रूप कहा। विभु व्यापक और ब्रह्म कहने से सद्रूप कहा। अब वेद स्वरूप कहने से उन्हे ज्ञानरूप कहते हैं। ऐसे प्रभु को प्रणाम करते हैं।

निज से सर्वमय कहा। क्योकि प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष, उत्तम पुरुष, तीनों मे अनुगत है। निर्गुण से निर्विशेष कहा। शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः। सभी सांसारिक ज्ञान वैकल्पिक हैं। निर्विकल्प तो निज निर्गुण रूप है वही स्वतः सिद्ध है। निरीह से निर्विकार कहा। चिदाकाश कहकर जडता और परिच्छेद दोनो का व्यावर्तन किया। एक एक चिदणु मे भूताकाश पडे हैं। अतः भूताकाशो का निवास स्थान कहा। ऐसे महाप्रभु का भजन करना कहते हैं।

निराकारमोंकारमूलं तुरीयं। गिराज्ञान गोतीतमीशं गिरीशं ॥
कराल महाकाल कालं कृपालं। गुणागार संसार पारं नतोऽहं ॥

अर्थ : निराकार, ओङ्कार के मूल, तुरीय, गिरा, ज्ञान और इन्द्रियो से परे गिरीश ईश हैं। वे ही कराल महाकाल के भी काल हैं। वे ही कृपाल हैं। वे ही गुणागार हैं और वे ही ससार के पार है उन्ही को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : निराकार से निरवयव कहा। फलतः अविनाशी भी कहा। सर्वसहर्ता होने से कराल कहा। परिच्छिन्न काल को कहते हैं। अखण्ड दण्डायमान काल महाकाल है। उसके भी काल रूप है अर्थात् कालातीत है। ओङ्कार मूल कहने से अर्धमात्रा ही तुरीय है। तुरीय कहकर श्रीरामचन्द्र से अभेद कहा। क्योकि वे भी तुरीय ही हैं। यथा : तुरीयमेव केवलम्। गिरा ज्ञान गोतीत से ब्रह्मरूप कहा। यथा : न तत्र चक्षुर्गच्छति नवाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात् अन्यदेव तद्विदितादथोऽविदितादधि। ईश शब्द शिवजी के लिए रूढ है। दूसरो के लिए गौण है। यहाँ तो स्पष्ट : गिरीश ईशम् कहा है। अर्थात् कैलास वासी ईश। ऐसे प्रभु का भजन करना कहते हैं। यहाँ तक कैलासनाथ का निर्गुण रूप कहा। अब सगुण रूप कहते हैं।

तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं। मनोभूत कोटिप्रभा श्री शरीरं ॥
स्फुरन्मौलिकल्लोलिनी चारु गंगा। लसद् भाल बालेन्दु कंठे भुजगा ॥

अर्थ : हिमालय की भाँति गौर वर्ण है गम्भीर है। करोडो कामदेव की सी प्रभा और शोभा शरीर मे है। लहरें मारती हुई सुन्दर गङ्गा सिर पर चमक रही है। बालचन्द्र सिर पर और कण्ठ मे सर्प शोभित है।

व्याख्या : गौर शरीर है उस स्वरूप में गम्भीरता है। हिमालय का बर्फ निर्मल और आभायुक्त है। इसी से हिमालय से वर्ण उपमित है। फिर भी प्रभा और शोभा करोड़ो काम सी है। जटाजूट मे गङ्गाजी चक्कर काट रही हैं। सूक्ष्मरूप से नही लहरें मारती हुई बह रही हैं। त्रिभुवनतारिणी को शीप पर रख छोड़ा है। द्वितीया के चन्द्रमा को मस्तक पर धारण किया है। इससे दीनवत्सलता प्रकट है और गले मे साँप लपेट रक्खा है। इससे सर्वाभिभावकता द्योतित होता है। काल को गले का हार बनाया है।

चलत्कुंडलं भ्रूसुनेत्रं विशालं। प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं॥
मृगाधीश चर्माम्बरं मुंडमालं। प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि॥

अर्थ : कानो मे कुण्डल हिल रहे हैं। भौहे सुन्दर हैं। विशाल नेत्र हैं। मुख पर प्रसन्नता है। नीलकण्ठ है, बड़ी दया है। व्याघ्राम्बर धारण किये हुए हैं। मुण्डमाल पहने हुए हैं। प्रिय शङ्कर सबके स्वामी हैं उन्ही को मैं भजता हूँ।

व्याख्या : कुण्डल की झलक की अत्यन्त चमक से उसका हिलना कहा अथवा आनन्द के उद्रेक मे सिर हिलाते हैं। अतः कुण्डल हिल रहा है। काम के धनुष सी भौंह बड़ी सुन्दर है। विशाल कमल से नेत्र हैं। हृदय मे अनुग्रह है। अत. मुख प्रसन्न है : जरत सकल सुरबृंद विषम गरल जेहिं पान किय। तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस। नीलकण्ठ होना ही उनके महादेव होने का प्रमाण है। इसीलिए साथ ही दयाल कहा। क्रोध को जय किया है इसलिए व्याघ्राम्बर हैं। विश्वरूप हैं इसलिए मुण्डमाल है। सब मुण्ड उन्ही के हैं। व्याघ्राम्बर धारण करने तथा मुण्डमाली होने पर भी प्रिय हैं क्योंकि शङ्कर हैं। कल्याण करनेवाले हैं। सब के नाथ हैं। उन्ही का मैं भजन करता हूँ।

प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं। अखंडं अजं भानु कोटि प्रकासं॥
त्रय. शूल निर्मूलनं शूलपाणिं। भजेहं भवानीपतिं भावगम्यं॥

अर्थ : प्रचण्ड, श्रेष्ठ, प्रगल्भ, परेश, अखण्ड, अज, कोटि सूर्य के समान प्रकाशवाले तीनो शूल के निर्मूल करनेवाले शूलपाणि भावगम्य भवानीपति को मैं भजता हूँ।

व्याख्या : प्रचण्ड से बलातिशय कहा। प्रकृष्ट से गुणातिशय कहा। प्रगल्भ से दुर्दमनीयता कहा। परेश से परमेश्वर कहा। अखण्ड से पूर्ण कहा : पूर्णमद. पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते। वह भी पूर्ण है यह भी पूर्ण है। पूर्ण से पूर्ण ही निकलता है और पूर्ण मे से पूर्ण जब निकल जाता है फिर भी पूर्ण बच जाता है। अत. वह निरवयव है। इसीलिए अज हैं। सावयव पदार्थ का ही जन्म है निरवयव का जन्म नही होता। फिर भी कार्यकारिता ऐसी है कि कोटि सूर्य का सा प्रकाश है। क्योंकि वह ज्योतियो का भी ज्योति है। यथा : ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमस परमुच्यते। वह ज्योतियो की भी ज्योति है उसे तम से परे कहा

गया है। वह शूलपाणि है शूल उसके वशवर्ती हैं। अत: त्रिविध शूल का वही निर्मूल करनेवाला है। क्योंकि तमोरूपी अविद्या ही सब क्लेशों का मूल है और अविद्या का नाश उसी के प्रकाश से होता है। जो ज्योतियो का भी ज्योति है अर्थात् चित्प्रकाश है वही भवानीपति अर्थात् महामायापति भाव से ही जाना जाता है। अतः द्विजदेव कहते हैं कि उन्ही का मैं भजन करता हूँ।

कलातीत कल्याण कल्पांतकारी । सदा सज्जनानंद दाता पुरारी ॥
चिदानन्द संदोह मोहापहारी । प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी ॥

अर्थ : आप कलाओ से परे कल्याण तथा कल्पान्त करनेवाले हैं। आप त्रिपुर के नाश करनेवाले सदा सज्जनो को आनन्द देनेवाले हैं। आप चिदानन्द की राशि हैं। मोह के हरण करनेवाले हैं। कामदेव के शत्रु हैं। आप कृपा करें कृपा करें।

व्याख्या : निष्कल ब्रह्म होने से कलातीत कहा। एष सर्वज्ञ एष सर्वेश्वर एष सर्वान्तर्यामी एष योनि. सर्वस्य प्रलयाप्ययौ हि भूतानाम्। यह सर्वज्ञ हैं। सर्वेश्वर हैं। सर्वान्तिर्यामी हैं। सबके उत्पत्तिस्थान हैं। प्राणियो के सृष्टि प्रलय रूप हैं। ऐसा श्रुति कहती है इसलिए कल्याणकल्पान्तकारी कहा। सज्जनो की रक्षा के लिए ही त्रिपुर का नाश किया। जिसमे एक सहस्र वर्ष तक लक्ष्य बाँधे रह जाना पड़ा। इसलिए सज्जनानन्ददाता पुरारी कहा।

शिवजी की मूर्ति प्राकृत नही है सच्चिदानन्दमयी है। उसकी उपासना से मोह का नाश होता है। काम के तो शत्रु ही हैं। अतः द्विजदेव प्रार्थना कर रहे हैं कि आप प्रसन्न हो प्रसन्न हो। मेरे मोह और काम का नाश करें।

न यावद् उमानाथ पादारविंदं । भजन्तीह लोके परे वा नराणां ॥
न तावत्सुखं शांति संताप नाशं । प्रसीद प्रभो सर्व भूताधिवासं ॥

अर्थ : जब तक उमा नाथ के चरणकमल का भजन मनुष्य नही करते तब तक इस लोक या परलोक में वह सुख नही पाते और शोक सन्ताप का नाश नही होता। हे समस्त जीवो के निवासस्थान प्रभो! आप प्रसन्न हो।

व्याख्या : उमा माया है शिव भगवान् उनके पति हैं। यथा : तुम माया भगवान सिव सकल जगत पितु मात। अतः जब तक मनुष्य मायानाथ शिव को नही भजता तब तक माया के फन्दे मे पड़ा हुआ दु:ख पाता है। उसे न इस लोक मे सुख मिलता है : न परलोक मे सुख मिलता है न शान्ति मिलती है न सन्ताप का नाश होता है। द्विजदेव कहते हैं कि हे सर्वभूताधिवास! हे सर्वाधिष्ठान! आप प्रसन्न हों आपकी प्रसन्नता से ही मायाबन्धन से विनिर्मुक्त होकर सुखी होना सम्भव है।

न जानामि योगं जपं नैव पूजां । नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं ॥
जराजन्म दुःखौघ तातप्यमानं । प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो ॥

अर्थ : न मैं योग जप जानता हूँ न पूजा जानता हूँ। हे शम्भो! मैं तो सदा

और सब समय आप ही को नमस्कार करता हूँ। हे प्रभो! बुढापा और दु खो के समूह से जलते हुए मुझ दु खी का दु खो से रक्षा कीजिये। हे ईश्वर! हे शम्भु! मै आपको नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : सतयुग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग। सो मैं तीनो युग के धर्मों मे से कोई भी नही जानता। मैं तो सदा सर्वदा आपको नमस्कार करता हूँ। द्विजदेव यद्यपि दिन रात वैदिक पूजा ही शिवजी की किया करते थे। परन्तु यथार्थ शिवपूजा क्या है उसे समझते हुए उन्हे अपनी उपासना अकिञ्चित्कर मालूम होती थी। अत. अपने साधनो का भरोसा न करके शिवजी की कृपा का भरोसा किये हुए सदा नमो नम. का आश्रय ग्रहण किये हुए हैं। अब शिवजी से जरामरण से छुटकारा पाने के लिए प्रार्थना करते हैं।

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्त विप्रेण हरतुष्टये।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेपा शभु प्रसीदति ॥

अर्थ : यह रुद्राष्टक शिवजी को सन्तुष्ट करने के लिए ब्राह्मण द्वारा कहा गया है। इसका पाठ जो भक्तिपूर्वक करते हैं उन पर शिवजी प्रसन्न होते हैं।

व्याख्या . इस स्तोत्र का नाम रुद्राष्टक है। इसके ऋषि द्विजदेव हैं। हर की तुष्टि मे इसका विनियोग है। यह स्तुति पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र हैं। इसमे दो तारे सगुण निर्गुण चमकते हैं। इसकी मञ्चाकृति है। मञ्च विश्राम के लिए होता है। यह स्तुति भी विश्राम के लिए है।

दो. सुनि बिनती सर्बग्य सिव, देखि बिप्र अनुरागु।
पुनि मंदिर नभ बानी, भइ द्विजबर बर मांगु ॥१०८ क.
जौ प्रसन्न प्रभु मोपर, नाथ दीन पर नेहु।
निज पद भगति देइ प्रभु, पुनि दूसर बर देहु ॥१०८ ख.
तव माया बस जीव जड़, सतत फिरहि भुलान।
तेहि पर क्रोध न करिअ प्रभु, कृपासिंधु भगवान ॥१०८ ग.
सकर दीन दयाल अब, इहि पर होहु कृपाल।
साप अनुग्रह होइ जेहि, नाथ थोरही काल ॥१०८॥

अर्थ : सर्वज्ञ शिवजी ने यह विनती सुनी। ब्राह्मण का प्रेम देखकर फिर मन्दिर मे आकाश वाणी हुई कि हे द्विजश्रेष्ठ वर मांगो।

हे प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और हे नाथ! यदि दीन पर आपका स्नेह है तो अपने चरणकमलो की दृढ भक्ति दीजिये। फिर दूसरा यह वर दीजिये कि : आपकी माया के वश सदा जीव भूले फिरते रहते हैं। हे कृपा के समुद्र भगवान्! उन पर क्रोध न कीजिये।

हे दीनों पर दया करनेवाले शङ्कर ! अब इस पर कृपालु होइये। जिससे हे नाथ ! थोड़े ही समय में इसका शाप से छुटकारा हो जाय।

व्याख्या : शिवजी सर्वज्ञ हैं। भूत भविष्य सब जानते हैं। जब ब्राह्मण की विनती सुनी और उनका प्रेम देखा तो उनकी प्रेरणा से फिर मन्दिर मे आकाश-वाणी हुई : वरं ब्रूहि वरं ब्रूहि। परन्तु द्विजवर सम्बोधन करके हुई। जिसमें भुसुण्डि अपने प्रति न समझ लें। शिवजी आशुतोष हैं थोड़े में ही प्रसन्न होते है। यथा : दीन दयाल द्रवत सुठि थोरे। सकल न देखि दीन कर जोरे। ब्राह्मण जन्म से ही दीन होते हैं। इसी से भगवान् को प्रिय हैं। यथा : दीनं सूते ब्राह्मणी याचितारम्।

शिवजी का कोप या अनुग्रह अमोघ है। अतः ब्राह्मण बोले कि यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और दीन पर स्नेह है तो दुर्लभ वर माँगता हूँ वही दीजिये। वह दुर्लभ वर यह है कि अपने चरणकमलों की दृढ़ भक्ति दीजिये। सरकार ने दो बार वर वर कहा। इसलिए दूसरा वर भी दीजिये।

परबस जीव स्वबस भगवन्ता। जीव तो परवश है। आपकी माया के वश हैं वह जैसा नचाती है वह वैसा ही जीव नाचता है। वह जड़ है। यथा : संघातश्चेतना धृतिः। वह सदा अपने स्वरूप को भूला हुआ फिरता है। वस्तुतः उसका कोई अपराध नही है। सरकार कृपासिन्धु हैं। भगवान् हैं। उसके अपराध पर दृष्टि न दीजिये। वह दया का पात्र है क्रोध का नही। देखिये सरकार के क्रोध करने पर किस भाँति काँप रहा है।

हे कल्याण करनेवाले ! आप से कल्याण ही होता है। क्रोध करके भी आप कल्याण ही करते हैं। आपने उसे क्रोध करके शाप दिया। इससे भी उसका कल्याण ही हुआ। गुरुद्रोह करने से जो नरक होता है वह तो इसे होगा नही क्योंकि आप ने दण्ड दे दिया। अब यह दीन है : इसपर कृपा करके शापानुग्रह करिये। सर्प तो इसे होना ही पड़ेगा पर थोड़े ही दिन के लिए हो। आपक वचन की अमोघता भी बनी रहे और शापानुग्रह भी हो जावे।

एहि कर होइ परम कल्याना। सोइ करहु अब कृपानिधाना ॥
विप्र गिरा सुनि परहित सानी। एवमस्तु तब भइ नभ बानी ॥१॥

अर्थ : हे कृपानिधान ! अब वही कीजिये जिसमें इसका परम कल्याण हो। परोपकार से सनी हुई ब्राह्मण की वाणी सुनकर तब फिर आकाश मे शब्द हुआ : एवमस्तु ऐसा ही हो।

व्याख्या : राखै गुरु जौ कोप बिधाता। इस समय शिवजी के कोप से गुरु रक्षा कर रहे हैं। शापानुग्रह ही नहीं माँगा यह भी माँग रहे हैं कि इसका अब परम कल्याण हो ऐसा ही कीजिये। आप कृपानिधान हैं इस पर भी कृपा कीजिये। आप ईश्वर हैं जीव की दुर्गति सुगति आपके हाथ मे है। आप के चाहने से ही इसका परम कल्याण सम्भव है। अतः दूसरा वर यही है कि इसका अब परम कल्याण हो।

ब्राह्मण की वाणी परहित से सनी थी। अपने लिए जो दृढ भक्ति माँगा उसमे भी परहित सना हुआ था। जब दृढ भक्ति हो जायगी तो भक्त के मनोरथ की अवश्य पूर्ति करेंगे। सो शिवजी ने देखा कि यह ब्राह्मण तो परहित के लिए वर माँगता है। अतः आकाशवाणी द्वारा एवमस्तु कहा। एवमस्तु शब्द दोनो वरदानो के प्रति कहा गया।

जदपि कीन्ह एहि दारुन पापा। मैं पुनि दीन्ह क्रोध करि सापा॥
तदपि तुम्हारि साधुता देखी। करिहौ येहि पर कृपा बिसेखी॥२॥

अर्थ : यद्यपि इसने घोर पाप किया है और मैंने इसे क्रोध करके शाप भी दे दिया। फिर भी तुम्हारी साधुता देखकर इस पर विशेष कृपा करूँगा।

व्याख्या : आकाशवाणी कह रही है कि इसका ऐसा घोर पाप है कि क्षमा योग्य नही है। सद्यः फल इसका होना चाहिए। अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव फलमश्नुते। त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासै त्रिभि· पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः। सो मैने क्रोध करके दण्डपात भी कर दिया इसे शाप भी दे दिया। अब इसमे किसी प्रकार के परिवर्तन के लिए स्थान नही है। पर मैं तुम्हारी साधुता से बडा प्रसन्न हूँ। यथा : पर उपकार वचन मन काया। सत सहज सुभाव खगराया। तुम सन्त हो तुम्हारे ख्याल से इस पर विशेष कृपा करूँगा। क्योकि मेरी कृपा ही कल्याण रूपी है।

छमासील जे पर उपकारी। ते द्विज मोहि प्रिय जथा खरारी॥
मोर साप द्विज ब्यर्थ न जाइहि। जनम सहस अवस्य यह पाइहि॥३॥

अर्थ : हे ब्राह्मण ! जो क्षमाशील और परोपकारी हैं वे मुझे विष्णु भगवान् की भाँति प्यारे है। मेरा शाप तो व्यर्थ जा नही सकता। यह हजार शरीर अवश्य पावेगा।

व्याख्या : शिवजी कहते हैं कि मुझे सबसे प्यारे विष्णु भगवान् है। पर वे भी मुझे विष्णु से ही प्यारे हैं जो क्षमाशील और परोपकारो हैं। भाव यह है कि तुम मे ये सब गुण हैं। अत. तुम भी मुझे विष्णु के सदृश ही प्यारे हो। तुम्हारे सङ्कोच से मैं इसका परम कल्याण करूँगा। इतना तो होकर ही रहेगा कि हजारो बार इसे शरीर धारण करना होगा। यहाँ हजार से अयुत · दस हजार ही अभिप्रेत है। क्योकि अन्य कोई सख्या दी नही है।

जनमत मरत दुसह दुख होई। येहि स्वल्पौ नहि ब्यापिहि सोई॥
कवनेउ जनम मिटिहि नहि ज्ञाना। सुनहि सूद्र मम बचन प्रवाना॥४॥

अर्थ · जन्म लेने और मरने मे असह्य दु ख होता है। सो इसे कुछ भी न होगा। किसी जन्म मे भी इसका ज्ञान नही मिटेगा। हे शूद्र ! मेरे प्रमाण वचन सुन।

व्याख्या · जन्म के लिए शाप हो गया। वह अन्यथा नही हो सकता। पर ब्राह्मण के सङ्कोच से शापानुग्रह कर रहे है। कहते हैं कि जन्म तो होगा पर जन्मते

और मरते समय जो बड़ा भारी दुःख होता है सो न होगा। मर्तव्यमिति यद्दुःखं पुरुषस्योपजायते। शक्यते नानुमानेन परेण परिवर्णितुम्। इसी भाँति जन्म में भी योनियन्त्र से बाहर होने में असह्य दुःख होता है। जब ये दुःख ही न होंगे तो जन्म मरण होता रहे हानि ही क्या है।

एक बात और है कि एक जन्म की स्मृति दूसरे जन्म में मोह के कारण नहीं रहती। शिवजी ने भुसुण्डि को उससे भी विनिर्मुक्त किया। कह दिया कि : कवनेउ जन्म मिटिहि नहिं ज्ञाना। तभी भुसुण्डिजी कहते हैं : सुधि मोहि नाथ जन्म बहु केरी। सिव प्रसाद मति मोह न घेरी। ज्ञान देकर शिवजी अब भक्ति देते हैं। अतः भुसुण्डिजी को सम्बोधन करके कहते हैं कि मेरे वचन प्रमाण हैं उसे सुन।

रघुपति पुरी जनम तव भयऊ। पुनि तैं मम सेवा मन दएऊ॥
पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरे। राम भगति उपजिहि उर तोरे॥५॥

अर्थ : रामजी की पुरी में तुम्हारा जन्म हुआ। तिस पर तुमने सेवा में मन लगाया। अतः पुरी के प्रभाव और मेरे अनुग्रह से रामजी की भक्ति तेरे हृदय में उपजेगी।

व्याख्या : पहिली बात यह है कि जो किसी जन्म में भी अवध बास करता है वह घूमघामकर राम परायण ही हो जाता है। यथा : कवनेहु जन्म अवध बस जोई। राम परायण सो परि होई। और तेरा तो जन्म ही अवध में हुआ है। अतः राम परायण होने की योग्यता का बीज तुझ में पड़ चुका है। दूसरी बात यह है कि मेरी सेवा करने का फल भी यही है कि उसे रामजी के चरणों में भक्ति हो। यथा : सिव सेवाकर फल सुत सोई। अविरल भक्ति रामपद होई। मैं सेवा से प्रसन्न होकर अपने सेवक को रामभक्ति देता हूँ। तूने मेरी सेवा में मन लगाया। सो रामभक्ति देनेवाले दोनों कारण तुझ में एकत्रित हो गये। अतः पुरी के प्रभाव तथा मेरी कृपा से रामभक्ति तेरे हृदय में उपजेगी।

ब्राह्मण देवता ने जो दूसरा वरदान शिवजी से माँगा था कि इसका परम कल्याण हो सो शिवजी ने रामभक्ति दी। यथा : सबकर फल रघुपति पद प्रेमा। तेहि बिनु कोउ न पावै छेमा।

सुनु मम वचन सत्य अब भाई। हरि तोषन व्रत द्विज सेवकाई॥
अब जनि करहि विप्र अपमाना। जानेसु संत अनंत समाना॥६॥

अर्थ : हे भाई ! अब मेरी सच्ची बात सुनो। ब्राह्मण की सेवा करना हरितोषण व्रत है। अब ब्राह्मण का अपमान न करना। सन्त को अनन्त के समान जानना।

व्याख्या : पहिले शिवजी ने शूद्र कहकर सम्बोधन किया था। अब भक्ति दे दिया इसलिए भाई कहकर सम्बोधन करते हैं। सत्य इसलिए कहते हैं कि जिसमें अर्थवाद का भ्रम न हो और यह सत्य बात है कि यह एक व्रत है जिसे हरितोषण

व्रत कहते हैं। इस व्रत से भगवान् तुष्ट हो जाते हैं। वह व्रत ब्राह्मण की सेवा है। सो अब ब्राह्मण का अपमान न करना। ब्राह्मण की सेवा करना। अपमान करने से मेरे वरदान देने पर भी पतन होने की आशङ्का है। सदा यह भावना रखना कि सन्त और भगवन्त मे कोई अन्तर नही है। भुसुण्डिजी हरिजन और द्विज को देखने से जलते थे। अतः ऐसा उपदेश दिया।

इंद्र कुलिस मम सूल बिसाला। कालदंड हरिचक्र कराला ॥
जो इन्हकर मारा नहि मरई। बिप्र द्रोह पावक सो जरई ॥७॥

अर्थ · इद्र का वज्र और मेरा त्रिशूल विशाल है। काल का दण्ड तथा विष्णु का चक्र कराल है। जो इनका मारा नही मरता वह ब्राह्मणो के द्रोह रूपी आग मे पडकर भस्म हो जाता है।

व्याख्या : अब प्रश्न यह उठता है कि क्या शिवजी के वरदान के बाद भी पतन का भय है। क्या कोई ऐसी भी वस्तु है जो शिव के वरदान से भी प्रबल हो। इस पर कहते हैं कि चार अस्त्र अमोघ हैं। इन्द्र का वज्र मेरा त्रिशूल काल का दण्ड और विष्णु भगवान् का चक्र : यदि कोई इनसे भी अवध्य हो तो वह भी ब्राह्मण के द्रोहाग्नि से नही बच सकता। अतः ब्राह्मण के अपमान को छोड़कर और प्रकार तेरे पतन का नही है। अत. उससे सावधान रहना।

अस बिबेक राखेहु मन माही। तुम्ह कह जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
अवरउ एक अवसिपा मोरी। अप्रतिहत गति होइहि तोरी ॥८॥

अर्थ · ऐसा विवेक मन मे रखना : तुमको संसार मे कुछ भी दुर्लभ न होगा। और भी मेरा एक आशीर्वाद है कि तुम्हारी गति कही रुकेगी नही।

व्याख्या : पावक और विप्ररोप पावक मे बडा अन्तर है। अग्नि तो दाह्य वस्तु का दाह करता है और ब्राह्मण की द्रोहाग्नि तो सम्पूर्ण कल्याण का दाह कर देती है। इस विवेक को मन मे रखना हरितोषण व्रत करना। तुम्हारे लिए कुछ भी दुर्लभ न होगा। जो चाहोगे मिल जायगा। अवढर दानी जब द्रवीभूत होते हैं तो क्या नही देते। कहते हैं कि उपर्युक्त बातें तो सब द्विजदेव के वरदान के अन्तर्गत हैं। अब मै एक आशीर्वाद भी अपनी ओर से देता हूँ कि तेरी गति कही रुकेगी नही। चाहे कैलास मे जाओ चाहे वैकुण्ठ जाओ चाहे मेरु पर्वत पर जाओ।

दो. सुनि सिव बचन हरपि गुर, एवमस्तु इति भाखि।
मोहि प्रबोधि गए गृह, संभु चरन उर राखि ॥१०९ क.

प्रेरित काल बिधि गिरि, जाइ भएउँ मै ब्याल।
पुनि प्रयास बिनु सो तनु, तजेउँ गए कछु काल ॥१०९

जोइ तन धरौ तजौ पुनि, अनायास हरिजान।
जिमि नूतन पट पहिरै, नर परिहरै पुरान ॥१०९ ग.
सिव राखी स्रुति नीति अरु, मैं नहि पावा क्लेस।
एहि बिधि धरेउँ बिबिध तनु, ज्ञान न गएउ खगेस ॥१०९॥

अर्थ : शिवजी का वचन सुनकर गुरुजी हर्षित होकर एवमस्तु ऐसा बोलकर हृदय में शम्भु चरण को रखकर घर चले गये।

काल की प्रेरणा से मैं विन्ध्याचल जाकर साँप हुआ। फिर कुछ काल बीतने पर उस शरीर को अनायास छोड़ दिया।

जो ही शरीर धारण करता उसी को हे गरुड़जी अनायास ही छोड़ देता। जैसे नया कपड़ा पहनकर मनुष्य पुराना छोड़ देता है।

शिवजी ने वेद की नीति की रक्षा की और मुझे क्लेश भी नहीं हुआ। इस भाँति अनेक शरीर धारण किया पर हे पक्षिराट्, मेरा ज्ञान बराबर बना रहा।

व्याख्या : सुनु मम बचन सत्य अब भाई। हरि तोषन व्रत द्विज सेवकाई। से लेकर अवरउ एक आसिखा मोरी। अप्रतिहत गति होइहि तोरी। तक शिवजी का बचन है। इसके पहिले जो कहा था सो वरदान विषयक था। शाप सुनकर गुरुजी ने हाहाकार किया था। आशीर्वाद सुनकर हर्षित हो गये। एवमस्तु कहकर उस आशीर्वाद का अनुमोदन करते है कि यही मेरी भी इच्छा थी। अब इसका परम कल्याण हो गया।

दो. अल्प कष्ट ही में मिट्यो सङ्कट बिकट तुम्हार।
करुणानिधि शंकर कियो तोपै कृपा अपार॥
शापानुग्रह कीन्ह पुनि दीन्ह सुभग वरदान।
अनायास जेहि ते सधे मुदमङ्गल कल्यान॥
जन्म मरन को नष्ट नहिं बाध ज्ञान को होय।
रामभक्ति उर अकुरित जीवन मुक्ती सोय॥
जाकी गति प्रतिहत नहीं ताको बड़ अधिकार।
सुरपुर हरिपुर नागपुर सो करि सकत बिहार॥
सावधान ह्वै हिय धरौ जो दीन्ह्यौ उपदेश।
कीन्हे द्विज अपमान बिनु संभव तोहि न क्लेश॥

शिवजी का वर सुना कि : कौनेउ जनम मिटिहि नहि ग्यान। अतः उसे ज्ञानोपदेश करने लगे कि इस समय का दिया हुआ ज्ञान सदा के लिए स्थायी हो जायगा। अतः शिष्य का कल्याण करके अपने को कृतकृत्य माना और घर चले गये।

शरीर छूटने का भी देश काल निश्चित है। उसी देश और उसी काल मे शरीर छूटेगा। शिवजी काल के काल हैं। उनकी इच्छानुसार काल की प्रेरणा से मैं विन्ध्यगिरि चला गया और वहाँ शूद्र का शरीर छूटकर मुझे सर्पका शरीर मिला।

शिवजी ने कहा ही था कि 'सर्प होहु खल मल मति व्यापी । मुझे मरने का दुख नही हुआ । जन्म लेने का कष्ट नही हुआ । कुछ काल के बाद सर्पवाला शरीर भी छूटा उसमे भी कोई आयास नही हुआ । बल्कि दूसरा शरीर मिलने मे प्रसन्नता ही रही । अत उपमा देते हैं कि जैसे कोई नया कपडा पहनकर पुराना उतार देता है ।

शिवजी ने वेद की नीति की रक्षा भी की । यथा 'जौ नहि दड करौं खल तोरा । भ्रष्ट होइ स्रुति मारग मोरा । सो श्रुति मार्ग की रक्षा शिवजी ने की । मुझे दण्ड दिया और मुझे क्लेश भी नही हुआ । मेरे ऊपर उनकी ऐसी कृपा हो गयी कि जन्म मरण के क्लेश से तो मै उसी समय विनिर्मुक्त हो गया । इस प्रकार शाप मे कहे हुए जन्म समूह की सख्या की पूर्ति हुई । और मेरा ज्ञान ज्यो का त्यो बना रहा ।

त्रिजग देव नर जो तनु धरऊँ । तहँ तहँ राम भजन अनुसरऊँ ॥
एक सूल मोहि बिसर न काऊ । गुरु कर कोमल सील सुभाऊ ॥१॥

अर्थ तिर्यक्, देवता या नर जो हो शरीर मैं धारण करता था वहाँ वहाँ रामजी का भजन करता था । एक शूल मुझ कभी नही भूलता था और वह था गुरुजी का कोमल शील और स्वभाव ।

व्याख्या तिर्यक् योनि तामस है । देवयोनि सात्त्विक है । नर योनि राजस है। सो शरीर तो कर्मवश सब प्रकार के मिलते गये । पर ज्ञान ज्यो का त्यो बना रहा । शिवजी की कृपा से भक्ति भी रामजी की हो गयी । अत भजन मेरा चलता रहा । यथा जेहि जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ ।

वियाग मे प्रेमी के गुण शूल की भाँति चुभते हैं । बिछुरत एक प्रान हरि लेही । सो अति कृपाल गुरु स्वल्प न क्रोधा । पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा । यह कोमल शील स्वभाव आज भी हृदय म चुभता है कि ऐसे महापुरुष से मैं द्रोह करता रहा । अपने मे दोष रहने से गुण का दर्शन नही होता । अत उस समय गुरुजी के गुणो की कदर नही कर सका । आज उन्हें स्मरण करके पश्चात्ताप होता है ।

चरम देह द्विज कै मै पाई । सुर दुर्लभ पुरान स्रुति गाई ॥
खेलौं तहूँ बालकन्ह मीला । करौं सकल रघुनायक लीला ॥२॥

अर्थ मैंने अन्तिम शरीर ब्राह्मण का पाया । जिसे पुराण और वेद देवदुर्लभ बतलाते है । मै वहाँ बालको से मिलकर खेलता था और रामजी की सब लीलाएँ करता था ।

व्याख्या ब्राह्मण शरीर से मुक्ति की अधिक सम्भावना रहती है । शाप से जो शरीर मिलता गया उनमे यह ब्राह्मण शरीर अन्तिम था । अथवा जिस शरीर से मुक्ति होती है पुरुष आवागमन से मुक्त होता है उसे चरम शरीर कहते हैं । मनुष्य का शरीर सुरदुर्लभ है । यथा बडे भाग मानुष तनु पावा । सुर दुर्लभ सब

ग्रन्थन्ह गावा। उस पर भी ब्राह्मण शरीर प्राप्त करना बड़े पुण्य का फल है। इसमें वेद पुराणादि सभी प्रमाण हैं।

शापमुक्त होते ही परम कल्याण का मार्ग हाथ लगा। श्रीरामजी की लीला में बचपन से ही अनुराग हुआ। लड़कों मे खेलने के समय रामलीला का अभिनय ही खेलता था। मम लीला रति अति मन माही : का साफल्य।

प्रौढ़ भए मोहि पिता पढ़ावा। समुझौं सुनौं गुनौं नहि भावा॥
मन तें सकल बासना भागी। केवल रामचरन लय लागी॥३॥

अर्थ : बड़े होने पर मुझे पिता ने पढ़ाया। मैं समझता था सुनता था मनन करता था। फिर भी मुझे अच्छा नही लगता था। मन से सब वासना जाती रही। केवल रामचरण मे लव लग गयी।

व्याख्या : *लालयेत् पञ्चवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत्। प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्।* पाँच वर्ष तक बच्चों का लाड़प्यार करना चाहिए। दस वर्ष तक ताड़ना करना चाहिए। सोलहवाँ वर्ष लगने पर पुत्र के साथ मित्र की भाँति बरताव करनी चाहिए। सो पाँच वर्ष तक बच्चों के साथ खेलते रहे। जब पढ़ने योग्य हुए तो स्वयं उनके पिताजी पढ़ाने लगे। पिताजी की आज्ञा से भुसुण्डिजी पढने लगे। पाठ ग्रहण के समय समझने का प्रयत्न करने लगे। तत्पश्चात् उसका मनन भी करते थे। परन्तु अच्छा नही लगता था। क्योंकि मन से सब वासनाएँ भाग गयी। विद्या की भी वासना नही रह गयी। केवल रामजी के चरणों में लव लग गया।

कहु खगेस अस कवन अभागी। खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी॥
प्रेम मगन मोहि कछु न सोहाई। हारेउ पिता पढ़ाइ पढ़ाई॥४॥

अर्थ : हे पक्षिराट् बतलाइये ऐसा कौन अभागी है जो कामधेनु का परित्याग करके गधी की सेवा करे। मैं प्रेम में मग्न था। मुझे कुछ भी अच्छा नही लगता था। पिताजी पढा पढ़ाकर हार गये।

व्याख्या : कुछ लोग ऐसे हैं जो गधी की सेवा करते हैं। पर भाग्यवान् कोई गधी की सेवा नही करता। प्रायेण अभागे लोग ही गधी की सेवा करते हैं। उन्हें गाय प्राप्त नही है। अतः गधी की सेवा की ही जीविका करते हैं। यदि गाय की प्राप्ति उन्हे हो तो वे भी गधी की सेवा न करें। ऐसा अभागो तो कोई भी न मिलेगा जो कामधेनु के मिलने पर उसका त्याग करके खरी : गधी का सेवन करे। सो भुसुण्डिजी कहते हैं कि मुझे शिवजी की कृपा से रामचरण में आसक्ति की प्राप्ति हो गयी थी। उसे त्याग करके कुहक विद्या वैषयिक वासना की ओर प्रवृत्ति मुझे किसी प्रकार से नही होती थी।

मै प्रेम में मग्न था मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था और विना अच्छा लगे विद्या आती नही। पिताजी परिश्रम करके पढ़ाते थे। मैं उनकी आज्ञा मानकर

पढ़ने मे परिश्रम भी करता था। परन्तु मन के न लगने से मुझे विद्या आती नही थी। अतः पिताजी भी हार गये। समझ लिया कि यह न पढेगा।

भए काल बस जब पितु माता। मइ बन गएउँ भजन जन त्राता ॥
जहँ जहँ बिपिन मुनीस्वर पावौं। आस्रम जाइ जाइ सिर नावौं ॥५॥

अर्थ : जब पिता माता मर गये। तब मैं भक्तो के रक्षक भगवान् के भजन के लिए वन मे गया। जहाँ जहाँ वन मे मुनीश्वरो को पाता था उनके आश्रमो में जाकर उनकी वन्दना करता था।

व्याख्या : पहिले पिता मरे पीछे माता मरी। मैं वैराग्य होने पर भी उनके जीवन काल तक उनकी सेवा मे ही रहा। क्योकि माता पिता की सेवा छोडकर वनस्थ होने का विधान नही है। जब माता पिता दोनो मर गये तब मैं वन मे भगवान् के भजन के लिए गया। भगवान् जनत्राता हैं। वन मे भी रक्षा करते हैं। अरक्षितस्तिष्ठति दैवरक्षितः। जिसे सासारिक विषय नही सोहाता है उनके लिए वन ही शरण हैं। जन सबाध से दूर रहकर ही ठीक रीति से भजन हो सकता है। अतः मैं वन मे चला गया।

वन मे मुनीश्वरो के आश्रम मिले। अब मेरी भक्ति हरिजन और ब्राह्मणो पर हो गयी थी। अतः उनके आश्रमो मे जा जाकर उन्हें प्रणाम करता था।

बूझौं तिन्हहि राम गुन गाहा। कहहिं सुनौं हरषित खगनाहा ॥
सुनत फिरौं हरिगुन अनुवादा। अव्याहत गति संभु प्रसादा ॥६॥

अर्थ : उन लोगो से मैं रामगुण गाथा पूछता था। वे कहते थे और हे पक्षिराट्! मैं हर्षित होकर सुनता था। भगवान् का गुणानुवाद सुनता था। शिवजी की कृपा से मेरी गति कही रुकती नही थी।

व्याख्या : मुनीश्वरो को प्रणाम करके मैं रामजी की गुणगाथा विषयक प्रश्न करता था। वे कृपा करके कहते थे और मैं आनन्द से सुनता था। कथा सुनने से मेरी तृप्ति नही होती थी। अतः मैं एक आश्रम से दूसरे आश्रम मे कथा सुनता फिरता था। इस भाँति उत्तर की ओर बढता ही चला गया। जाते जाते ऐसे द्वीपो मे पहुँचा जहाँ मनुष्य की गति नही थी। पर मेरी गति रुकती नही थी। शिवजी का आशीर्वाद था कि : अव्याहत गति होइहि तोरी।

छूटी त्रिबिधि ईषना गाढी। एक लालसा उर अति बाढ़ी ॥
राम चरन बारिज जब देखौं। तब निज जनम सफल करि लेखौं ॥७॥

अर्थ : तीनो प्रकार की गाढी एषणा छूट गयी। एक लालसा मन मे अत्यन्त बढ गयी कि जब रामजी के चरण कमलो का दर्शन करूँ तब अपने जन्म को सुफल मानूँ।

व्याख्या : सरकार के चरणों के दर्शन की लालसा तो पहिले से थी। परन्तु जब तक पुत्रैषणा वित्तैषणा लोकैषणा बनी रहती है तबतक वह लालसा विरल रहती है। एषणात्रय ऐसी गाढ़ी होती है कि जल्दी छूटती नही पर मेरी तीनों प्रकार की एषणा छूट गयी। अतः एक लालसा मन मे अत्यन्त बढ गयी। वह वासना यह थी कि रामजी के चरणों का दर्शन हो तब मैं अपना जन्म सुफल समझूँ। यथा : उर अभिलाष निरन्तर होई। देखि अनयन परम प्रभु सोई। क्योंकि जन्म का फल तो सरकार का साक्षात्कार ही है। दर्शन होने पर फिर जन्म नही होता। यथा : नयन वंत रघुबरहि बिलोकी। पाइ नयन फल होहि बिसोकी।

जेहि पूछौ सोइ मुनि अस कहई। ईस्वर सर्बभूतमय अहई ॥
निर्गुन मत नहि मोहि सुहाई। सगुन ब्रह्मरति उर अधिकाई ॥८॥

अर्थ : जिस मुनि से मैं पूछता था वही कहते थे कि ईश्वर तो सर्वभूतमय हैं। निर्गुण मत मुझे अच्छा नही लगता था। सगुण ब्रह्म की भक्ति हृदय मे बढी हुई थी।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि तब मैं मुनियों से दर्शन का उपाय पूछने लगा। पर जिस मुनि से पूछता था वही कह देता था कि ईश्वर तो परिच्छिन्न नही है जो दृष्टिगोचर हो सके। वह अपरिच्छिन्न है सर्वभूतमय है। समष्टि रूप है। उसका नित्य ही दर्शन है। श्रुति भी कहती है कि : नक्षत्राणि रूपम्। बाहर क्या है? पृथिवी अप तेज वायु हैं। ईश्वर का दर्शन करना हो तो हृदय में दर्शन करो। मन की आँखों से दर्शन होगा : ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। वह मांसचक्षु से नही देखा जाता।

परन्तु यह निर्गुण मत मुझे अच्छा नही लगता था। उन महात्माओ को निर्गुण मत ही पसन्द था। वे परम अधिकारी थे। मुझे सगुण ब्रह्म की भक्ति बढ़ी हुई थी। अतः मेरी प्रवृत्ति उस ओर नही हुई।

दो. गुरु के बचन सुरति करि, राम चरन मनु लाग।
रघुपति जस गावत फिरौं, छन छन नव अनुराग ॥११०॥

प्रसङ्गात् उमा के नवें प्रश्न का उत्तर

मेरु सिखर बट छाया, मुनि लोमस आसीन।
देखि चरन सिर नाएउँ, बचन कहेउँ अति दीन ॥११० क.
सुनि मम बचन बिनीत मृदु, मुनि कृपाल खगराज।
मोहि सादर पूछत भए, द्विज आइहु केहि काज ॥११० ख.
तब मै कहा कृपानिधि, तुम सरबज्ञ सुजान।
सगुन ब्रह्म अवराधना, मोहि कहहु भगवान ॥११० ग.

अर्थ गुरु के वचनो को स्मरण करके रामजी के चरणो मे मन लगा रामजी का यश गाता फिरता था। क्षण क्षण मे नया अनुराग उत्पन्न होता था।

सुमेरु पर्वत पर वट वृक्ष की छाया मे लोमश मुनि बैठे थे। देखकर मैंने सिर नवाया और अत्यन्त दीन वचन कहे।

हे पक्षिराट्! मुनिजी बडे कृपालु थे। मेरे विनीत और मृदु वचन सुनकर मुझसे आदर के साथ पूछने लगे कि ब्राह्मण! किस काम से आये हो।

तब मैंने कहा कि हे कृपानिधे! तुम सर्वज्ञ और सुजान हो। सगुण ब्रह्म की आराधना हे भगवन्! मुझे बतलाइये।

व्याख्या निर्गुण मत के अच्छा न लगने का कारण कहते हैं कि गुरुजी के वचनो को याद करके रामजी के चरणो मे मन लग गया था। गुरुजी ने कहा था कि सिव सेवाकर फल सुत सोई। अविरल भक्ति रामपद होई। रामहि भजहि तात सिव धाता। नर पाँवर कर केतिक बाता। इत्यादि। अत उन्ही के चरणो मे मन लगा उन्ही का कीर्तन करते घूमता था। पहिले श्रवण हुआ अब कीर्तन होने लगा।

कीर्तन करते करते आगे बढते चले जाते थे यहाँ तक कि मेरु पर्वत पर पहुँच गये। जहाँ मनुष्य की गति ही नही है। वहाँ देखा कि वट वृक्ष की छाया म लोमश ऋषि बैठे हैं। पर्वतो मे उत्तम मेरु मुनियो मे उत्तम लोमश वृक्षो मे उत्तम वट वृक्ष। सो यहाँ सब सयोग जुट गया था। बडे बडे लोम देखकर पहिचाना कि यही लोमश ऋषि है। जाकर प्रणाम किया और अति दीन वचन बोले अर्थात् मुनिजी के शरण गये।

भुसुण्डिजी कहते हैं कि हे गरुडजी! लोमश मुनि स्वभाव से ही बडे कृपालु थे। मेरे कोमल और विनीत वचन सुनकर उन्हे दया हुई। उन्होने मुझसे आदर के साथ पूछा। मुनिजी महा सिद्ध थे। शापानुग्रह मे समर्थ थे। अत मेरे मनोभिलाष के पूर्ण करने के लिए पूछा कि ब्राह्मण! तुम्हे क्या चाहिए।

तब मैंने कहा कि हे कृपा के समुद्र! आप तो सर्वज्ञ हैं और सुजान हैं। मन की बात जानते हैं। मेरी दशा आप से छिपी नही है। यथा राम सुजान जान जनजीव। मुझे सगुण ब्रह्म को आराधना की इच्छा है। उसे मुझे कोई नही बतलाता। आप कृपा करके बतलाइये।

तब मुनीस रघुपति गुन गाथा। कहे कछुक सादर खगनाथा॥
ब्रह्मज्ञान रत मुनि बिज्ञानी। मोहि परम अधिकारी जानी॥१॥

अर्थ हे पक्षिराट्! तब मुनीश्वर ने आदर के साथ रघुपति की कुछ गुणगाथा कही। परम विज्ञानी मुनि ब्रह्मज्ञान मे निरत थे। उन्होने मुझे परम अधिकारी जानकर

व्याख्या महर्षि लोमश मुनियो मे श्रेष्ठ थे। बडे मनन करनेवाले थे। शिष्य के प्ररोचनार्थ उसके पूछे हुए विषय का थोडा सा आदर के साथ वर्णन किया।

आदर के साथ मुझसे पूछा था और पूछने पर आदर के साथ रघुनाथ के गुण गाथ कुछ कहे। अर्थात् संक्षेप से कहा विस्तार नहीं किया। क्योंकि मुनिजी विज्ञानी थे ब्रह्मलीन थे। ब्रह्मज्ञान में निरत थे और मुझे उन्होंने परम अधिकारी जाना। सामान्य अधिकारी के लिए कर्मकाण्ड है। मध्यम के लिए उपासनाकाण्ड है और परम अधिकारी के लिए ज्ञानकाण्ड है। अतः मुनिजी ने देखा कि यह साधनसम्पन्न है। इसे ब्रह्मज्ञान ही देना चाहिए। साधन चार बतलाये गये हैं। १. नित्यानित्य वस्तु विवेक। २. इहामुत्रार्थफल भोगविराग। ३. शमादि षट् साधना सम्पत्ति और ४. मुमुक्षुत्व। सो पहिला साधन भुशुण्डिजी में था ही। यथा : समुझौं सुनौं गुनौं नहि भावा। २. दूसरा साधन भी था। यथा : मन ते सकल कामना भागी। ३. तीसरा साधन भी था। यथा : मैं बन गयउँ भजन जन त्रासा। केवल मुझमें चौथे की अर्थात् मुमुक्षुत्व की कमी थी। अतः मुनिजी ने मुझे परम अधिकारी जाना।

अतः मेरी जिज्ञासानुसार उत्तम नहीं दिया। मैंने उनसे सगुण उपासना पूछा तो उन्होंने रघुनाथजी के गुणों का थोड़ा सा वर्णन करके निर्गुणोपासना ही कथन करना चाहा।

लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा॥
अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभव गम्य अखंड अनूपा॥२॥

अर्थ : ब्रह्म का उपदेश करने लगे। जो अजन्मा है अद्वैत है निर्गुण है और हृदय का स्वामी है। कला से रहित इच्छा से रहित नाम से रहित और रूप से रहित अनुभव से जानने योग्य खण्ड रहित और उपमा रहित है।

व्याख्या : गोस्वामीजी ने ब्रह्म से निर्गुण और राम पद से प्रधानतः सगुण का ग्रहण किया है। यहाँ ब्रह्म उपदेश से निर्गुणोपासना अभिप्रेत है। पहले ब्रह्म का स्वरूप कहते हैं कि १. वह अज है : उसका जन्म नहीं होता। अनादि अपरिच्छिन्न का जन्म कैसे सम्भव है। त्रिकालाबाध्य सत्यत्व होने से २. अद्वैत कहा। गुणातीत होने से ३. अगुण कहा। सर्वान्तर्यामी होने से ४. हृदयेश कहा। निरवयव होने से ५ अकल कहा। अकाम होने से ६. अनीह कहा। नाम रूप माया का कार्य है और ब्रह्म गुणातीत माया से परे है। अतः ७. अनाम ८. अरूप कहा। इतना होने पर भी वह ९. अनुभवगम्य है। उसका अनुभव होता है। वही उसके अस्तित्व का प्रमाण है। अच्छेद्य होने से १०. अखण्ड है अथवा निरंश होने से अखण्ड है। जगत् से विलक्षण होने से ११. अनुपम हैं।

मन गोतीत अमल अबिनासी। निर्बिकार निरवधि सुखरासी॥
सो तैं ताहि तोहि नहि भेदा। बारि बीचि इव गावहि बेदा॥३॥

अर्थ : मन और इन्द्रियों से परे निर्मल, नाश रहित, विकार रहित, निःसीम और सुख की राशि हैं। वही तुम हो। तुम में और उसमे भेद नहीं। जैसे जल और तरङ्ग मे भेद नही है। ऐसा वेद कहते है।

व्याख्या : १२. वह मन और इन्द्रिय से परे हैं। अर्थात् वह प्रत्यक्ष का विषय नही है। यथा : मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहि सकल अनुमानी। १३. वह निर्मल है। किसी विजातीय द्रव्य का उसमे स्पर्श भी नही। १४. उसका नाश भी कभी नही होता। अर्थात् वह सद्रूप है। वह १५ निर्विकार है अर्थात् एकरस है १६ वह निरवधि है अर्थात् उसकी सीमा नही है। वह १७. सुख राशि है अर्थात् आनन्दघन है। इस भाँति निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन करके बतलाया कि वह तू है : तुझमे उसमे भेद नही है। ऐसा वेद कहता है कि जिस भाँति जल और तरङ्ग मे भेद नही है उसी भाँति निर्गुण ब्रह्म मे और जीव मे भेद नही है। इस रीति से महर्षि लोमश ने भुसुण्डिजी को तत्त्वमसि महावाक्य का उपदेश किया।

बिबिध भाँति मोहि मुनि समुझावा। निर्गुन मत मम हृदय न आवा ॥
पुनि मैं कहेउँ नाइ पद सीसा। सगुन उपासन कहउ मुनीसा ॥४॥

अर्थ : मुनिजी ने मुझे अनेक भाँति से समझाया। परन्तु निर्गुण मत मेरे मन मे नही बैठा। फिर मैंने चरणो मे सिर झुकाकर कहा कि हे मुनीश ! सगुण उपासना कहिये।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि मेरे मन मे यह बात नही बैठी। जीव ईश्वर कैसे हो सकता है ? तब मुनिजी ने भाग त्याग आदि अनेक युक्तियो से मुझे समझाया। मेरे नही समझने पर मुनिजी अप्रसन्न नही हुए। यह महा उपदेश शीघ्र मन मे जमता नही। अतः मुनिजी ने अनेक युक्तियो से उस बात को मेरे मन मे बिठाना चाहा।

तब मैंने चरणो मे सिर नवाया कि बात सब ठीक है। मुझे शिरोधार्य है। पर मैंने यह पूछा नही था। मैंने तो सगुणोपासना पूछा था। उसे मुझे बताइये। निर्गुणोपासना तो सभी मुनि कहते थे। आप तो मुनीश हैं। आप सगुणोपासना जानते हैं। आप वही मुझे बतलाइये। अर्थात् मोहि अनुहरत सिखावन देहू।

राम भगति जल मम मन मीना। किमि बिलगाइ मुनीस प्रबीना ॥
सोइ उपदेस कहहु करि दाया। निज नयनन्हि देखौं रघुराया ॥५॥

अर्थ : राम की भक्ति जल है। मेरा मन मछली है। हे प्रवीण मुनीश्वर ! वह कैसे अलग हो सकता है। आप दया करके वही उपदेश कीजिये। जिसमे मै अपनी आँखो से रामजी को देखूँ।

व्याख्या : मछली से कहना कि तू बन्धन मे पडी है। जल से बाहर नही निकल सकती। मैं तेरा बन्धन दूर करूँगा। जल से बाहर निकालूँगा। यह सकल्प ही मछली के लिए महा अशुभ है। मछली जल को बन्धन नही मानती। जल उसका प्राण है। भुसुण्डिजी कहते हैं कि भक्ति भी मेरे लिए वही है जो मछली के लिए जल है। मैं भक्ति को नही छोड़ सकता। सोतैं ताहि तोहि नहि भेदा कहना भक्ति से पृथक् करने के समान है। अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मै सेवक रघुपति पति मोरे।

भले ही आपका उपदेश सर्वोत्तम हो। पर यह मुझसे साध्य नहीं है। अतः आप मुझपर दया करिये। मेरी रुचि समझकर उसके अनुसार उपदेश दीजिये। मुझे वह उपाय बतलाइये जिसमें रघुराई को अपने आँखों से देखूं। अनुभव गम्य से मेरा काम नहीं चलेगा :

भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। तब सुनिहौं निर्गुन उपदेसा॥
मुनि पुनि कहि हरि कथा अनूपा। खण्डि सगुन मत अगुन निरूपा॥

अर्थ : अवधेश को आँख भरकर देखकर तब निर्गुण उपदेश सुनूँगा। तब मुनिजी ने हरि की अनूप कथा कहकर सगुन मत का खण्डन करके निर्गुण का निरूपण किया।

व्याख्या : कोई लालसा न रहे तब निर्गुण उपदेश की पात्रता आती है। इस समय मुझमे पात्रता नहीं है। अवधेश के दर्शन की लालसा है। आपके बतलाये हुए साधन से अवधेश का दर्शन कर लूँ। मेरी लालसा पूरी हो जाय तब मैं निर्गुण उपदेश सुनूँ। आपका उपदेश शिरोधार्य है पर इस समय नहीं।

मुनिजी ने भुसुण्डिजी की बात सुनकर भगवान् की अनूप कथा सुनायी। भगवान् की माया का अघटितघटनापटुत्व का वर्णन किया। पहिले गुण गाथा कहा था। इस बार चरित कहा। उपसंहार मे सगुण मत का खण्डन किया कि इतना होते हुए भी सब माया ही है। भगवान् ने स्वयं कहा है : सम्भवाम्यात्ममायया। वास्तविक रूप निर्गुण ही है।

तब मै निर्गुन मत करि दूरी। सगुन निरूपेउँ करि हठ भूरी॥
उत्तर प्रति उत्तर मैं कीन्हा। मुनि तन भए क्रोध के चीन्हा॥७॥

अर्थ : तब मैंने निर्गुण मत को दूर करके बड़े हठ से सगुण का निरूपण किया। मैंने जब उत्तर प्रत्युत्तर किया तो मुनि के शरीर पर क्रोध के चिह्न प्रकट हुए।

व्याख्या : मुनिजी की बात सुनकर भुसुण्डिजी ने देखा कि मुनिजी तो खण्डन मण्डन पर आगये। ये तो मेरे पक्ष का ही लोप किया चाहते हैं। अतः भुसुण्डिजी अब तक तो श्रोता रहे पर अब प्रतिवादी बन बैठे। पहिले उनके निर्गुण मत को ही दूर किया। निर्गुण निष्क्रिय को कोई ज्ञान का विषयीभूत कैसे कर सकता है ? निर्गुण का अर्थ ही सर्वगुणमय है। निराकार का अर्थ ही सर्वाकार है। अनाम का अर्थ ही सर्वनाम है और अरूप का अर्थ ही सर्वरूप है। इस बात पर मैंने बड़ा हठ किया। क्योंकि मुनिजी की युक्ति से मेरा पक्ष ही गिर रहा था।

मुनिजी ने उत्तर दिया। मैंने उसका भी उत्तर दिया। तब तो मुनिजी के शरीर पर क्रोध के चिह्न प्रकट हुए। उन्होंने देखा कि मैंने तो इसे जिज्ञासु समझा था। जिज्ञासु का कोई पक्ष नही होता। मेरी बात के समझने का प्रयत्न न करके यह तो मेरे पक्ष के खण्डन पर तुल गया। अतः उन्हें क्रोध हुआ।

सुनु प्रभु बहुत अवग्या किये। उपज क्रोध ग्यानिन के हिये॥
अति संघर्षन जो कर कोई। अनल प्रगट चन्दन ते होई॥८॥

अर्थ : हे प्रभो ! सुनो बहुत अवहेलना करने पर ज्ञानियों के हृदय में भी क्रोध उत्पन्न हो जाता है। यदि कोई अधिक रगडा करे तो चन्दन से भी आग प्रकट हो जाती है।

व्याख्या : यह बात नही है कि ज्ञानी को क्रोध होता ही न हो। बहुत अवज्ञा करने से क्रोध होता है। भेद इतना ही है कि सामान्य लोगो को थोडी सी अवज्ञा मे ही क्रोध हो जाता है। ज्ञानियो को ऐसा नही होता। यदि कोई अवज्ञा करने पर तुल ही जाय तो उन्हे भी क्रोध हो जाता है। उदाहरण देते हैं कि शमी आदि काष्ठो को थोड़ा सा रगडने से अग्नि प्रगट हो जाती है। पर चन्दन बडा शीतल है। उसमे नही प्रकट होती। परन्तु यदि कोई अत्यन्त रगडा करे तो उससे भी आग प्रकट होती है। भाव यह कि मुनिजी बडे दयालु थे। फिर भी मेरे अधिक अवहेलना करने से उन्हे क्रोध आगया। इसमे दोष मेरा था।

दो. बारंबार सकोप मुनि, करै निरूपन ग्यान।
मैं अपने मन बैठि तब, करौं विविध अनुमान॥
क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु, द्वैत कि बिनु अज्ञान।
मायावस परिछिन्न जड़, जीव कि ईस समान॥१११॥

अर्थ : बारम्बार मुनि जी क्रोध पूर्वक ज्ञान निरूपण करने लगे। तब मैं अपने मन मे बैठकर अनेक प्रकार के तर्क करने लगा : क्या बिना द्वैतबुद्धि के क्रोध होता है और क्या बिना अज्ञान के द्वैतबुद्धि होती है ? जीव जड़ है। मायावश और परिच्छिन्न है। वह ईश के समान कैसे होगा ?

व्याख्या : पहिले तो मुनिजी के शरीर मे क्रोध के चिह्न प्रकट हुए। भुसुण्डिजी कहते हैं कि फिर भी मैं उत्तर प्रत्युत्तर करता ही चला गया। अब क्रोध और बढा। मुनिजी कुपित होकर ज्ञान का निरूपण करने लगे। मैने उनकी उक्तियो और युक्तियो पर ध्यान नही दिया। जब वे मुझे समझाने के लिए विषय का परिष्कार करते थे तब मैं बैठकर अनेक प्रकार का अनुमान करता था। उन अनेक प्रकार के अनुमानो को दिखलाते हैं।

अद्वैत बुद्धि मे क्रोध बनता नही। जब दो है ही नही तो कैसा क्रोध ? कौन करे ? और किस पर किया जाय ? अज्ञान से ही द्वैतबुद्धि होती है। मुनिजी क्रोध कर रहे हैं, अत उनमे द्वैतबुद्धि है। फलतः अज्ञान भी नही है। जब स्वय इनमे अज्ञान है तो ज्ञान को आशा किससे की जाय। ईश्वर मायापति है। जीव मायावश है। ईश्वर अपरिच्छिन्न है। जीव परिच्छिन्न है। ईश्वर चिद्रूप है। जीव जड़ रूप है। उसकी ईश्वर से क्या समानता है। अतः आक्षेपात्मक प्रश्न अपने मन मे करते हैं : जीव कि ईस समान।

कबहुँक दुख सब कर हित ताके। तेहि कि दरिद्र परस मनि जाके ॥
पर द्रोही कि होंहि निःसंका। कामी पुनि कि रहहि अकलंका ॥१॥

अर्थ : सबका कल्याण चाहनेवाले को क्या कभी दुःख होता है। जिसके पास पारस मणि हो क्या उसको दारिद्रय हो सकता है ? परद्रोही क्या निर्भय रह सकता है ? और क्या कामी निष्कलङ्क रह सकता है ?

व्याख्या : जिस भाँति महर्षि लोमश ने अज अद्वैतादि सत्रह बातें ब्रह्म में दिखलाकर उसका जीव में अभेद दिखलाया। उसी भाँति भुसुण्डिजी १७ बातें जीव सम्बन्धी दिखलाते हैं। जिनसे भेद सिद्ध होता है। ब्रह्म सम्बन्धी जितनी बातें दिखलायी गयी हैं उनमे से कोई पुरुषव्यापारतन्त्र नही है और भुसुण्डि जिन सत्रह बातों—१. दुःख २. शङ्का ३. कलङ्क ४. वंशनाश ५. कर्म ६. सुमति ७. शुभगति ८. भव ९. सुख १०. राज ११. अर्घ १२. यश १३. अयश १४. लाभ १५. हानि १६. घोर अघ १७. धर्म को जीव में दिखलाते है। वे सबकी सब पुरुष व्यापार तन्त्र हैं। अतः इन युक्तियों से तथा अन्य बहुत सी युक्तियों से भी जीव का ब्रह्म के समान न होना सिद्ध करते हैं। यहाँ पर सत्रहो बाते आक्षेपात्मक प्रश्न के रूप मे कही गयी हैं। जिनका उत्तर नहीं है।

क्या सबका कल्याण चाहनेवाले को भी दुःख होता है। अर्थात् दूसरे के अहित चिन्तन बिना दुःख होता नही। जो दूसरे को दु.ख पहुँचावेगा उसे बिना दुःख मिले रह नही सकता। यदि अपने को दुःख हो तो समझ लेना चाहिए कि मुझसे किसी प्राणी को किसी समय अवश्य दुःख पहुँचा था। जिसके पास पारस मणि है उसे दरिद्रता कहाँ ? पारस गुन अवगुन नहि जानत कंचन करत खरो। जिसके पास पारस है वह लोहे को सोना बना सकता है। उसे दारिद्रय कहाँ से आवेगा। मोह को दरिद्र कहा गया है। यथा : मोह दरिद्र निकट नहि आवा। जिसके पास परहित रूपी पारस है उसके पास मोह दरिद्र नही जा सकता। यथा : परहित बस जिनके मन माही। तिन कहँ जग दुर्लभ कछु नाही। परद्रोही का नि.शङ्क होना असम्भव है। परद्रोही सदा सावधान रहते हैं। अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित रहते हैं। शरीर रक्षक अथवा सेना साथ रखते है। इसी भाँति कामी का निष्कलङ्क रहना असम्भव है। सेवत विषय विवर्ध जिमि नित नित नूतन मार। परस्त्रीगामी न होने पर भी कामी होने से राजा ययाति को कलङ्क लगा। उन्होने पुत्र से यौवन लेकर विषयोपभोग किया।

बंस कि रह द्विज अनहित कीन्हे। कर्म कि होंहि स्वरूपहि चीन्हे ॥
काहू सुमति कि खल संग जामी। सुभगति पाव कि परत्रियगामी ॥२॥

अर्थ : ब्राह्मण का अपकार करने से कही वंश रहता है ? स्वरूप ज्ञान होने पर क्या कर्म होता है ? क्या खल के संग से किसी को सुमति हुई है ? परस्त्रीगामी को क्या कभी सुगति मिल सकती है ?

व्याख्या : ब्राह्मणद्रोही का वंश नही चलता। उसका वश चलना असम्भव है। बच्चा बच्ची होने को ही वश चलना नही कहते। मनुष्य का वश पशुसतान से नही चल सकता। यथा : पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगत जासु सुत होई। न तरु बाझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत ते हित जानी।

स्वरूप ज्ञान जिसे हो जाता है उससे कर्म हो नही सकता। वह कोई क्रिया नही करता। लोगो के देखने मे भले ही वह भिक्षाटनादि कर्म करता हो। पर अपनी दृष्टि मे वह कुछ नही करता। लोगो का देखना उसके नैष्कर्म्य सिद्धि मे बाधक हो नही सकता। यथा : प्रकृते क्रियमाणानि गुणै कर्माणि सर्वश। अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।

खल के सङ्ग से कुमति उत्पन्न होती है। यथा : तिनकर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि घालइ हड़हाई। सुनहु असतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहु सगति करिअ न काऊ। इत्यादि। उनके सग मे सुमति के उत्पन्न होने की बात तो सर्वथा असम्भव है। तथा : करि कुसग चाहत कुसल तुलसी मन अफसोस। महिमा घटी समुद्र की रावन बसा परोस। को न कुसगति पाइ नसाई। रहै न नीच मते चतुराई।

इसी भाँति परस्त्रीगामी की शुभ गति नही हो सकती। यथा : जो आपन चाहइ कल्याना। सुजसु सुमति सुभगति सुख नाना। सो परनारि लिलार गोसाई। तजौ चौथि के चद की नाई। तथा : सेवक सुख चह मान भिखारी। व्यसनी धन सुभगति व्यभिचारी। लोभी जस चह चार गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी। अत व्यभिचारी की शुभ गति होनी सर्वथा असम्भव है।

भव कि परहि परमात्मा बिन्दक। सुखी कि होहिं कबहु हरि निंदक ॥
राज कि रहै नीति बिनु जाने। अघ कि रहहि हरि चरित बखाने ॥३॥

अर्थ . परमार्थ का जाननेवाला क्या कभी ससार सागर मे पड सकता है? हरि निन्दक क्या कभी सुखी रह सकता है? बिना नीति जाने क्या राज्य रह सकता है? भगवान् के चरित का गान करने से क्या पाप रह सकता है?

व्याख्या : अपि चेदसि पापेभ्य सर्वेभ्य: पापकृत्तम:। सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि। बडा भारी पापी भी ज्ञान नौका का आश्रय करके सब पापो को तर जाता है। ज्ञानाग्नि' सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन। ज्ञान की अग्नि सब कर्मों को जला देती है। ज्ञानी के सञ्चित कर्म सब भस्म हो जाते हैं। क्रियमाण से उसका लेप नही होता। प्रारब्ध कर्म का भोग समाप्त होते ही वह मुक्त हो जाता है। वह आवागमन से परे हो जाता है। वह लौटता नही : न स पुनरावर्त्तते। इसलिए परमार्थ के जाननेवाले का भवसागर मे पड़ना महा असम्भव है।

पर निंदा सम अघ न गिरीसा। परनिन्दा के समान कोई बडा पाप नही हैं। तिसपर हरिहर निन्दक के तो जिह्वा छेदन का विधान है। उसने वाणी का बडा भारी दुरुपयोग किया। उसने सर्वात्मा हरि का अपमान किया। इस भाँति स्वय

अपनी आत्मा के प्रतिकूलाचरण किया। उसे सुख कहाँ? उसको कही सुख नही मिल सकता।

सोचिय नृपति जो नीति न जाना। नीति न जानने वाला राजा शोचनीय हो जाता है। क्योंकि नीति न जानने से वह ठीक प्रजा पालन न कर सकेगा। इससे उसका परलोक बिगड़ेगा: उसे नरक होगा। वह राज्य की रक्षा भी नही कर सकेगा। उसका राज्य चला जायगा। अतः नीति नही जाननेवाले का राज्य टिक नही सकता।

भगवान् सबके हृदय में निवास करते हैं। वे जब अपनी कथा सुनते हैं तो कथन करनेवाले के सम्पूर्ण अकल्याण का नाश कर देते हैं। यथा: कलियुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहि भव थाहा। कहहि सुनहि अनुमोदन करही। ते गोपद इव भवनिधि तरही।

पावन जस कि पुन्य बिनु होई। बिनु अघ अजस कि पावै कोई॥
लाभु कि कछु हरि भगति समाना। जेहि गावहिं स्रुति संत पुराना॥४॥

अर्थ: पवित्र करनेवाला यश क्या बिना पुण्य के होता है? और बिना पाप के क्या किसी का दुर्यश होता है? जिस भक्ति का गान श्रुति सन्त पुराण करते हैं उसके समान क्या कोई लाभ है?

व्याख्या: पुण्य करने से ही मनुष्य पुण्यश्लोक होता है। उसका नाम लोग प्रातःकाल उठकर लेते हैं। यथा: पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः। पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको जनार्दनः। और पाप करने से दुर्यश होता है पापी का नाम कोई सवेरे नही लेता। ख्याति दोनो की होती है:पुण्यात्मा को भी और पापात्मा को भी। परन्तु पुण्यात्मा की ख्याति का सुयश और पापात्मा की ख्याति का नाम दुर्यश है। अतः बिना पुण्य के सुयश और बिना पाप के दुर्यश नही होता।

वस्तु के अच्छे बुरे का परिचय उसके फल से होता है। भक्ति के लिए श्रुति सन्त पुराण सभी कहते हैं कि सब साधनों का फल हरिभक्ति है। यथा: तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई। नाना कर्म धर्म व्रत दाना। संजम दम तप मख नाना। भूत दया द्विज गुरु सेवकाई। विद्या विनय विवेक बडाई। जहँ लगि साधन वेद बखानी। सबकर फल हरि भगति भवानी। अर्थात् हरिभक्ति से बढकर कोई लाभ नही है।

हानि कि जग एहि सम कछु भाई। भजिय न रामहि नर तन पाई॥
अघ कि बिना तामस कछु आना। धर्म कि दया सरिस हरिजाना॥५॥

अर्थ: हे भाई! ससार मे क्या इसके समान कोई हानि है कि मनुष्यशरीर पाकर राम को न भजे। हे गरुड़जी तामस को छोड़कर क्या पाप कोई अन्य वस्तु है या दया के समान कोई अन्य धर्म है?

व्याख्या: बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा। साधन

धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सँवारा। सो परत्र दुख पावै सिर धुनि धुनि पछिताइ। कालहि कर्महि ईश्वरहि मिथ्या दोष लगाइ। अत. मनुष्यशरीर पाकर भी हरिभजन न करने से बढकर कोई हानि हो नही सकती।

सत्त्वगुण मे जो स्थित हैं उनकी ऊर्ध्व गति होती है। राजस वृत्तिवाले मध्य मे स्थित होते हैं परन्तु तमोगुण वृत्तिवालो की अधोगति होती है। अत. तामस कर्म ही पाप है। तामस धर्म का भी अनिष्ट फल है। अतः तामस कर्म से अन्य कोई पाप नही है। जहाँ . अघ कि पिसुनता सम कछु आना पाठ है वहाँ यह अर्थ करना होगा कि चुगुलखोरी से बढकर कोई पाप नही है। भगवान् मनु कहते हैं . परीवादात् खरो भवति श्वावै भवति निन्दकः। सच्चा दोष कहने से गधा का जन्म होता है और झूठा दोष कहने से कुत्ते का जन्म होता है। अत पिशुनता से बढकर कोई पाप नही है।

अहिसा परम धर्म है। हिसा पीडा पहुँचाने को कहते हैं। किसी को पीडा नही पहुँचाना ही अहिसा है। दूसरे शब्द मे इसे दया कह सकते हैं। अतः दया परम धर्म हुआ। अत. इसके समान दूसरा धर्म नही है। माया वस परिछिन्न जड जीव कि ईस समान। कहकर ग्रन्थकार १७ उदाहरण देते हैं। यहाँ ईस शब्द ब्रह्म के लिए ही आया है। यथा . लागे करन ब्रह्म उपदेसा। १ अज २ अद्वैत ३. अगुन ४ हृदयेसा। इत्यादि और उसके बाद ही कहते हैं सो तैं ताहि ताहि नहि भेदा। इसी पर त्वपद जीव के तीन विशेषण देते हुए भुसुण्डिजी तर्क उठाते हैं कि १ मायावस २ परिछिन्न ३ जड ४ जीव कि ईस समान और इसी की पुष्टि मे सत्रह उदाहरण देते हैं। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि तत्पद के एक एक लक्षण को त्वपद के लक्षण से मिलान करके उसका समान होना असम्भव सिद्ध करते हैं। यथा

१ ब्रह्म अज है। सवहित रूपी पारसवाले को दरिद्रतारूपी दुख आ नही सकता। उसी भाँति अजन्मा मायावश जीव हो नही सकता। माया वश जीव होना असम्भव है।

२ अद्वैत है। जिस भाँति परद्रोही का निःशङ्क होना असम्भव है उसी भाँति परिच्छिन्न जीव का अद्वैत होना असम्भव है।

३ अगुण है। जिस भाँति कामी का निष्कलंक होना असम्भव है उसी भाँति मायावश जीव का अगुण होना असम्भव है।

४ हृदयेश है। द्विज का अनहित करने से जैसे वश चलना असम्भव है उसी भाँति जड का हृदयेश होना असम्भव है।

५ अकल है। जिस भाँति स्वरूप ज्ञान होने पर कर्म होना असम्भव है उसी भाँति परिच्छिन्न का अकल होना असम्भव है।

६ अनीह है। जिस भाँति खल के सग मे सुमति का आविर्भाव असम्भव है उसी भाँति मायावश का अनीह होना असम्भव है।

७ अमान है। जिस भाँति परतियगामी की शुभगति असम्भव है उसी भाँति मायावश का अमान होना असम्भव है।

८. अल्प है। जिस भाँति परमार्थ ज्ञाता का ससार मे पडना असम्भव है उसी भाँति परिच्छिन्न का अल्प होना असम्भव है।

९ अनुभवगम्य है। जिस भाँति हरिनिन्दक का सुखी होना असम्भव है उसी भाँति जड का स्वयप्रकाश होना असम्भव है।

१० अखण्ड है। जिस भाँति विना नीति जाने राज्य का रहना असम्भव है उसी भाँति परिच्छिन्न का अखण्ड होना असम्भव है।

११ अनूप है। जिस भाँति हरि चरित वखानने से पाप का रहना असम्भव है उसी भाँति जीव का अनूप होना असम्भव है : जीवत्व प्राणधारणात्।

१२. मन गोतीत है। जिस भाँति विना पुण्य के पावन यश का होना असम्भव है। उसी भाँति मायावश का मनगातीत होना असम्भव है।

१३ अमल है। जिस भाँति विना पाप के दुर्यश होना असम्भव है उसी भाँति मायावश का अमल होना असम्भव है।

१४ अविनाशी है। जिस भाँति हरिभक्ति के समान किसी लाभ का होना असम्भव है उसी भाँति परिच्छिन्न का अविनाशी होना असम्भव है।

१५ निर्विकार। जिस भाँति नरतन पाकर भजन न करने के समान दूसरी हानि नही हो सकती उसी भाँति मायावश निर्विकार नही हो सकता।

१६ निरवधि। जिस भाँति पिशुनता के समान दूसरा पाप नही हो सकता उसी भाँति परिच्छिन्न निरवधि भी नही हो सकता।

१७ सुखरासी। जिस भाँति कोई धर्म दया के समान नही हो सकता उसी भाँति जड सुखराशि नही हो सकता।

यहि विधि अमित जुगुति मन गुनेऊँ। मुनि उपदेस न सादर सुनेउँ ॥
पुनि पुनि सगुन पच्छ मैं रोपा। तव मुनि बोलेउ वचन सकोपा ॥६॥

अर्थ : इस प्रकार से अनगिनत युक्तियाँ मैं मन मे गुनता था। मुनिजी के उपदेश को आदर के साथ नही सुना। बार बार मैंने सगुण पक्ष उठाया तब मुनिजी क्रोध युक्त वाणी बोले।

व्याख्या : इस भाँति ईश्वर और जीव की भेदप्रतिपादक असख्य युक्तियाँ मैं मन ही मन गढता गया। मुनिजी का उपदेश सर्वथा उपादेय था। वे वेद प्रमाण से अपने पक्ष की पुष्टि करते थे। छान्दोग्य श्रुति है। सदेव सोम्येदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम्। इस वाक्य से सृष्टि के पहिले स्वगतादि भेद शून्य तत्त्वमसि नामरूप रहित वस्तु का प्रतिपादन है। वह सद्वस्तु सृष्टि के बाद इस समय भी विचार दृष्टि से वैसा ही है। स्थूलादि तीन शरीरो से विलक्षण उनका साक्षी सद्वस्तु त्वपद से लक्षित है। अत इस महावाक्य मे स्थित असि पद से तत् त्वं पदो का समानाधिकरण होता है। इन सब बातो का उपदेश मुनिजी ने दिया। परन्तु भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैंने आदर के साथ मुनिजी का उपदेश नही सुना। जब वह उपदेश देते थे तब मैं दूसरी दूसरी बातें मन मे सोचता था। यही मुनिजी के उपदेश का अनादर है।

इतना ही नही मैंने बार बार सगुण पक्ष का आरोप किया। सगुण पक्ष को ही ठीक ठहराया। निर्गुण पक्ष मे ही ब्रह्म जीव की एकता बनती है सगुण पक्ष मे ब्रह्म जीव की एकता बन नही सकती। इसलिए मैंने सगुण पक्ष का आरोप किया। मेरी ऐसी मनोवृत्ति को देखकर मुनिजी क्रोध से बोल।

मूढ परम सिख देउँ न मानसि। उत्तर प्रति उत्तर बहु आनसि॥
सत्य बचन बिस्वास न करही। बायस इव सबही ते डरही॥७॥

अर्थ रे मूढ! मैं परम शिक्षा देता हूँ। तू नही मानता उत्तर प्रत्युत्तर बहुत करता है। सच्ची बात पर विश्वास नही करता कौए की भाँति सबसे डरता है।

व्याख्या क्रोध से मुनिजी बोलते हैं। अत मूढ सम्बोधन करते हैं। मूढ कहने का कारण देते हैं कि मैं अत्यन्त उत्तम शिक्षा दे रहा हूँ। भक्ति का उपदेश मध्यम अधिकारी के लिए है। तुझे परम अधिकारी जानकर परम उपदेश ब्रह्मोपदेश दे रहा हूँ। यथा मोहि परम अधिकारी जानी। लागे करन ब्रह्म उपदेसा। सो तू नही मान रहा है। उलटा शास्त्रार्थ करने को तैयार है। उत्तर प्रत्युत्तर करता है। उपदेश को मन म बिठाने का यत्न ही नहीं करता है। मैं वेद का महावाक्य कह रहा हूँ। उस सत्योक्ति पर विश्वास नही करता। जैसे काग अति सज्जन अपने पालनेवाले से भी डरता है। इसी भाँति सहस्र माता की भाँति हितैषणी श्रुति को भी तू सन्देह की दृष्टि से देखता है।

सठ स्वपक्ष तव हृदय बिसाला। सपदि होहि पक्षी चंडाला॥
लीन्हि साप मैं सीस चढाई। नहि कछु भय न दीनता आई॥८॥

अर्थ रे शठ! तेरे हृदय म अपना बडा भारी पक्ष है। इसलिए तू सद्य चाण्डाल पक्षी हो जा। मैने शाप को शिरोधार्य किया। न मुझे कोई भय हुआ और न दीनता ही आयी।

व्याख्या मैं वेद वाक्य कहता हूँ। जिसमे भ्रम प्रमाद वञ्चनादि दोष को कोई स्थान ही नही। फिर भी तू अपना ही पक्ष स्थापन करता जाता है। इसलिए तू पक्षी हो जा। अनधिकारी की भाँति तू वेद के उपदेश से दूर भागता है। इसलिए पक्षियो मे भी चाण्डाल अर्थात् कौआ हो जा। वेद की अवज्ञा अत्युग्र पाप है। अत तुझे तुरन्त फल मिल।

महा प्रसाद कहकर भुसुण्डिजी ने शाप को शिरोधार्य किया। मन से भी विरोध नही किया। शाप से उन्हे कोई भय नही हुआ। शिवजी के शाप के समय तो ऐसे भयभीत हो गये थे कि कांपने लगे थे। पर इस बार न भय हुआ और न मन मे दीनता आयी कि कौआ होकर किस दुर्दशा को प्राप्त होगे।

दो तुरत भयउ मैं काग तब, पुनि मुनि पद सिरु नाइ।
सुमिरि राम रघुबस मनि, हरखित चलेउँ उडाइ॥

उमा जे राम चरन रत, बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभु मय देखहिं जगत, केहि सन करहिं बिरोध ॥११२॥

अर्थ मैं तुरन्त कौआ हो गया। फिर मुनिजी के चरणो मे सिर नवाकर रघुवशमणि रामजी का स्मरण करके प्रसन्न होकर उड चला। हे उमा! जो राम चरण मे रत हैं और काम मद क्रोध से रहित हैं वे ससार को निज प्रभुमय देखते हैं। वे विरोध किससे करें।

व्याख्या मुनिजी का शाप इतना दारुण था कि प्रकृति के आपूर से भुसुण्डिजी तुरन्त ब्राह्मण से काग हो गये। आने के समय देखि चरन सिर नायेउँ वचन कहेउँ अति दीन। काग हो जाने पर भी चलने के समय मुनि के चरणो मे सिर झुकाया। व्यवहार मे कोई अन्तर नही पडा। सिवा इसके दीन वचन नही कहा। क्योंकि मन मे दीनता आयी ही नही।

शिवजी बोले उमा! जो रामचरण रत होता है उसे काम मद क्रोध होता नही। काम मद क्रोध यदि हो तो समझना चाहिए कि उसे प्रभु के चरणो मे रति है ही नही। स्पृहा होने से ही काम मद क्रोध होता है। राम भक्त को अन्य स्पृहा रहती नही। इसलिए काम मद क्रोध नही होता और वे अनन्य भक्त सम्पूर्ण जगत् को राममय देखते हैं। यथा सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमत। मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवत। अत वे विरोध किसी से कर नही सकते।

सुनु खगेस नहि कछु रिषि दूषन। उर प्रेरक रघुवस बिभूषन ॥
कृपा सिंधु मुनि मति करि भोरी। लीन्ही प्रेम परीक्षा मोरी ॥१॥

अर्थ हे खगेश! सुनो इसमे ऋषिजी का कोई दोष नही था। रघुवश विभूषण हृदय मे प्रेरणा करनेवाले हैं। कृपासिन्धु ने मुनि की मति भोरी करके मेरी प्रेम परीक्षा ले ली।

व्याख्या दोष की प्राप्ति हुई। तभी निषेध करते हैं। देखने से मालूम होता है कि इसमे अपराध मुनिजी का है। जो वस्तु जो पुरुष नही चाहता उसे बल पूर्वक उसके गले उतारना उचित नही है। भुसुण्डिजी सगुणोपासना जानना चाहते थे। उन्हे निर्गुणोपासना बतलाना और न ग्रहण करने पर शाप देना महा अनुचित है। परन्तु भुसुण्डिजी कहते हैं कि उनका कोई दोष नही। उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत राम गोसाईं। रघुवश विभूषण हैं बिना परीक्षा लिए कुछ करना नही चाहते। उन्होंने मुनि की मति को भोरी कर दी ज्ञानी मूढ न कोइ जेहि जस रघुपति करहिं और मेरे प्रेम की परीक्षा ली। ज्ञान से ही प्रेम दबता है। यथा परम प्रेमु तिनकर प्रभु देखा। कहा बिबिध बिधि ज्ञान बिसेखा। अत मुनिजी से ज्ञानोपदेश करवाया। प्रेम के पथ मे ज्ञानोपदेश विघ्नाचरण है। इसीलिए कहा कि नव रस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तडागा। सो परीक्षा मे भुसुण्डिजी खरे उतरे। शाप को सिर चढाया पर अपने लक्ष्य से न डिगे।

मन बच क्रम मोहि निजजन जाना । मुनि मति पुनि फेरी भगवाना ॥
रिषि मम महत सीलता देखी । राम चरन बिस्वास बिसेखी ॥२॥

अर्थ : मनसा वाचा कर्मणा अपना भक्त जान लिया । तब मुनिजी की बुद्धि को भगवान् ने फेर दिया । ऋषि ने मेरी बड़ी भारी सहनशीलता देखी और रामजी के चरणों में विशेष विश्वास देखा ।

व्याख्या : परीक्षा करके देख लिया कि यह मनसा वाचा कर्मणा मेरा दास है । मनसा यथा : राम भगति जल मम मन मीना । किमि बिलगाइ मुनीस प्रवीना । वाचा यथा : सोइ उपदेस करहु करि दाया । निज नयनन्हि देखौं रघुराया । कर्मणा यथा : जहँ जहँ बिपिन म्नुनीवर पावौं । आस्रम जाइ जाइ सिर नावौं । दास वही होता है जिसे रामजी को छोड़कर दूसरे का भरोसा न हो । अतः जब पूरी तरह से दास जान लिया : भुसुण्डिजी परीक्षा मे खरे उतर गये : तब भगवान् ने मुनिजी की मति को घुमाया । भोरी मति थी उस समय ,शाप दिया । बुद्धि ठिकाने आते ही भुसुण्डिजी के गुण दृष्टिगोचर हुए । इतनी सहनशीलता कि काग हो जाने पर भी न भय हुआ और न दीनता हुई और यह भी देख लिया कि इसे रामजी के चरणो में विशेष रूप से विश्वास है । इसी से न तो भयभीत हुआ न दीनता आयी । इसे निर्गुण ब्रह्म मे विश्वास न हो यह बात नही है । पर सगुण ब्रह्म रामजी पर विशेष विश्वास है ।

अति बिसमय पुनि पुनि पछिताई । सादर मुनि मोहि लीन्ह बोलाई ॥
मम परितोष बिबिध बिधि कीन्हा । हरखित राम मंत्र तब दीन्हा ॥३॥

अर्थ : अत्यन्त विस्मय के साथ बार बार पछताकर आदर के साथ मुनिजी ने मुझे बुला लिया । मेरी अनेक प्रकार से दिलजोई की और प्रसन्न होकर मुझे राम मन्त्र दिया ।

व्याख्या : मुनिजी को मेरी सहनशीलता और बरताव पर बड़ा विस्मय हुआ । बार बार पछताने लगे यह मैंने क्या कर डाला । इसका अपराध कुछ भी नही । वह कहता था कि मुझ से सगुण उपासना कहिये । उसकी रुचि के प्रतिकूल मैंने निर्गुण उपासना पर क्यो हठ किया । यदि उसने नही माना तो मेरी क्या हानि हुई जो मैंने उसे शाप दे डाला । मुनिजी ने अप्रसन्न होकर भुसुण्डिजी का अनादर किया । मूढ कहा अब आदर के साथ बुलाया । अपनी कठोरता के सम्मार्जन के लिए कोमल शब्दो से मेरी दिलजोई की समझाया कि सविधि उपासना करने से रामजी का दर्शन होता है । बेगि बिलम्ब न कीजिये लीजिय उपदेस । महा मन्त्र जपिये सोइ जो जपत महेस । अतः पहिली बात इष्टदेवता के मन्त्र से दीक्षित होना है । सो मुनिजी स्वयं प्रसन्न होकर भुसुण्डिजी को राम मन्त्र की दीक्षा दी । मुनिजी की इतनी कृपा हुई कि मेरा काग शरीर होने पर भी मुझे दीक्षा दी । राम मन्त्र का अधिकार जीव मात्र को है ।

बालक रूप राम कर ध्याना। कहेउ मोहि मुनि कृपा निधाना ॥
सुंदर सुखद मोहि अति भावा। सो प्रथमहि मैं तुम्हहि सुनावा ॥४॥

अर्थ : कृपा निधान गुरुजी ने मुझे बालक रूप रामजी का ध्यान बतलाया। वह सुन्दर और सुखद था। तुझे जो कि पहिले ही मैं सुना चुका हूँ।

व्याख्या : मुनिजी स्वभाव से ही कृपानिधान थे। प्रसन्न होकर मन्त्र भी दिया और ध्यान भी बतलाया। रामजी के बालरूप का ध्यान बतलाया। यही ध्यान शिवजी भी करते हैं। यथा : बन्दौं बाल रूप सोइ रामू। वह ध्यान बड़ा सुन्दर सुख देनेवाला था। मुझे बड़ा प्यारा लगा। मैं पहले ही उसका वर्णन तुम से कर चुका हूँ। यथा :

मरकत मृदुल कलेवर स्यामा। अंग अंग प्रति छबि बहु कामा ॥
नव राजीव अरुन मृदु चरना। पदज रुचिर नख ससि दुति हरना ॥
ललित अंक कुलिसादिक चारी। नूपुर चारु मधुर रवकारी ॥
चारु पुरट मनि रचित बनाई। कटि किंकिनि कल मुखर सुहाई ॥
रेखा त्रय सुंदर उदर नाभी रुचिर गंभीर।
उर आयत भ्राजत बिबिध बाल बिभूषन चीर ॥
अरुन पानि नख करज मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर ॥
कंध बाल केहरि दर ग्रीवा। चारु चिबुक आनन छबि सींवा ॥
कलबल बचन अधर अरुनारे। दुइ दुइ दसन बिसद बरबारे ॥
ललित कपोल मनोहर नासा। सकल सुखद ससि कर सम हासा ॥
नील कंज लोचन भव मोचन। भ्राजत भाल तिलक गोरोचन ॥
बिकट भ्रुकुटि सम स्रवण सुहाए। कुंचित कच मेचक छबि छाए ॥
पीत झीनि झिगुली तन सोही। किलकनि चितवनि भावति मोही ॥

मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा। राम चरित मानस तब भाखा ॥
सादर मोहि यह कथा सुनाई। पुनि बोले मुनि गिरा सुहाई ॥५॥

अर्थ : मुनिजी ने मुझे कुछ समय तक वहाँ ठहराया तब मुझसे रामचरित मानस कहा। आदर के साथ मुनिजी ने यह कथा सुनायी और तब सुन्दर वाणी बोले।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि मुनिजी ने पहिले राममन्त्र की दीक्षा दी। इष्टदेव के ध्यानपूर्वक ही जप होना चाहिए। अतः बालकरूप राम का ध्यान बतलाया। नाम और रूप के बाद लीला क्रम प्राप्त है। इसलिए मुनिजी ने वहाँ ठहरा लिया। भाव यह कि दीक्षा पा लेने के बाद साधन के लिए मैं दूसरे स्थान पर जाने के लिए तैयार हुआ। पर गुरुजी ने रोक लिया कि अभी शिक्षा पूरी नहीं हुई है। अतः श्रीशिवजी कृत रामचरित मानस श्रीशिवजी की प्रेरणा से मुझे सुनाया। यथा : सोइ सिव काग भुसुण्डिहि दीन्हा। रामभगति अधिकारी चीन्हा। लोमश ऋषि द्वारा कागभुसुण्डि को सुनवाया। इस लिए दीन्हा लिखते हैं।

आदर के साथ मुनिजी ने यह कथा भुसुण्डिजी को सुनाया और तब ग्रन्थ की परम्परा तथा अधिकारी आदि भेद बतलाया। इसीसे कहते हैं कि सुहाई वाणीवाले जो भुसुण्डिजी को बड़ी प्रिय लगी।

राम चरित सरगुप्त सुहावा। संभु प्रसाद तात मैं पावा ॥
तोहि निज भगत रामकर जानी। ताते मैं सब कहेउँ बखानी ॥६॥

अर्थ : यह सुन्दर रामचरित सर गुप्त था। महादेवजी के प्रसाद से हे तात ! मुझे मिला। तुझे रामजी का निज भक्त जान लिया। इसलिए मैंने सब वर्णन करके कहा।

व्याख्या : रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा। इसलिए कहते हैं कि यह रामचरित सर गुप्त था। शिवजी के मन मे रहने से दुर्गम था। यथा : यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम्। बिना शिवजी की कृपा इसका मिलना असाध्य था। श्रीलोमशजी कहते हैं कि मुझे शिवजी के प्रसाद से मिला। मैंने भी गुप्त ही रक्खा। जब देख लिया कि तुम रामजी के निज दास हो तब तुमसे सब वर्णन किया अर्थात् रहस्य के साथ कह सुनाया। पहिले विद्याएँ बड़ी गुप्त रक्खी जाती थी अधिकारी को ही दी जाती थी। इस काल मे सुलभता अधिक कर दी गयी है। क्योंकि अधिकारी के अभाव से विद्या ही लुप्त हो जाती।

राम भगति जिनके उर नाही। कबहुँ न तात कहिअ तिन पाही ॥
मुनि मोहि विविध भाँति समुझावा। मै सप्रेम मुनि पद सिरु नावा ॥७॥

अर्थ : हे तात ! जिनके हृदय मे रामभक्ति न हो उससे कभी नही कहना चाहिए। मुनिजी ने मुझे अनेक प्रकार से समझाया। मैंने प्रेम के साथ मुनिजी के चरणो में प्रणाम किया।

व्याख्या : अधिकारी कहकर अब अनधिकारी बतलाते हैं कि इस कथा के अधिकारी वे हैं जिनके हृदय मे रामभक्ति है उन्ही से इसे कहना चाहिए। जिसे भक्ति नही है उसे कभी नही सुनाना चाहिए क्योंकि इससे उनका अकल्याण होगा। यथा :

उमा राम गुन गूढ पंडित मुनि पावहिं बिरति।
पावहिं मोह विमूढ जे हरि बिमुख न धर्मरति ॥

मुनिजी ने भुसुण्डिजी को अनेक प्रकार से समझाया कि :

मुक्तामणि माणिक माल गले कपि को नहि भूलि पिन्हाइये जू।
नहि होश त्रिदोष भयो जेहि को तेहि को नहि खीर खवाइये जू ॥
मद पान किये जो बकै दुर्वाद तिन्हे नहि भूलि सिखाइये जू।
जिनको नहि रामते नेह तिन्हे रघुबीर कथा न सुनाइये जू ॥
मान घटे प्रभुको अपमान कथा की महा महिमा दबि जावे।
दाह बढे अपने उरमे अरु औरनहू को उछाह नसावे ॥

पाप बढ़ै परिताप बढ़ै सुनि दाप बढ़ै शठता बढ़ि जावै।
भक्ति नही जिनको तिनको कोउ जो रघुवीर चरित्र सुनावै॥

लाभ अपरिमित होय जिमि हरि चरित्र से तात।
अन अधिकारी को दिये तथा हानि होइ जात॥
याते राम चरित्र सर उरमे राखिय गोय।
सज्जन पाइ प्रकासिये जेहि सुख दुहु दिसि होय॥

अथवा मानस पूजा अनेक प्रकार से समझाया। यथा . आम छाँह कर मानस पूजा। भाव यह कि नाम जप ध्यान मानस पूजा और राम गुणगान से रामजी का दर्शन होता है। शिक्षा समाप्त होने पर सप्रेम वन्दना है। अपिच .

निगम अगम साहब सुगम राम सादिली चाह।
अबु असन अवलोकियत सुलभ सबै जग माह॥

निजकर कमल परसि मम सीसा। हरखित आसिष दीन्ह मुनीसा॥
राम भगति अविरल उर तोरे। बसिहि सदा प्रसाद अब मोरे॥८॥

अर्थ : अपने कर कमल से मेरे सिर को छूकर मुनिजी ने हर्षित होकर आशीर्वाद दिया। रामजी की अविरल भक्ति तेरे हृदय मे अब मेरे प्रसाद से बसे।

व्याख्या : गुरुजी ने अत्यन्त कृपा से सिर पर हाथ फेरा। अर्थात् अभय हस्त सिर पर रक्खा और मुनीश्वर हैं : उनका आशीर्वाद अमोघ है सो उन्होंने हर्षित होकर आशीर्वाद दिया : राम भगति अनुपम सुखमूला। मिलइ जो सत होहिं अनुकूला। शिवजी की कृपा से भक्ति जमी। सन्त की कृपा से अविरल भक्ति मिली। मुनिजी कहते हैं कि तुम्हारे मन मे मेरे प्रसाद से बसे अर्थात् तैल धारावत् अविच्छिन्न प्रवाह चलता रहे।

दो. सदा राम प्रिय होव तुम्ह, सुभ गुन भवन अमान।
कामरूप इच्छा मरन, ग्यान बिराग निधान॥११३॥

अर्थ : तुम सदा रामजी को प्रिय हो शुभ गुणो के भवन हो फिर भी तुम्हे मान न हो। तुम कामरूप काक्षामृत्यु और ज्ञान वैराग्य के निधान हो।

व्याख्या : मुनिजी ने काक होने का शाप दिया था। उसका परिमार्जन आशीर्वाद से कर रहे हैं। काक किसी को प्रिय नही होता सो तुम रामजी को प्रिय हो। काक अवगुण भवन होता है सो तुम शुभ गुण भवन हो और फिर भी तुम्हे मान न हो अर्थात् तुम्हारा ज्ञान अचल रहे। यथा : ज्ञान मान जहँ एकौ नाही। देख ब्रह्म समान सब माही। तुम्हे ऐसी शक्ति हो कि जो शरीर चाहो अपनो बनालो। यह आवश्यक नहीं है कि तुम यावज्जीवन काग ही बने रहो। तुम मृत्यु से भी अभय हो जाओ। जब तुम चाहो तभी तुम्हारी मृत्यु हो और ज्ञान वैराग्य के निधान हो जाओ।

दो. जेहि आस्रम तुम बसव मुनि, सुमिरत श्री भगवंत ।
ब्यापिहि तहँ न अविद्या, जोजन एक प्रजंत ॥११३ क.

अर्थ : जिस आश्रम में तुम श्री भगवान् का स्मरण करते हुए बसोगे । वहाँ एक योजन पर्यन्त विद्या न व्यापेगी ।

व्याख्या : काक राम चरित मानस के सन्निकट नही जाते । यथा : तेहि कारण आवत हिय हारे । कामी काक बलाक विचारे । पर तुम्हारा ऐसा महत्त्व होगा कि यहाँ से जाकर जहाँ तुम अपना निवास साधन भजन के लिए करोगे । वहाँ एक योजन पर्यन्त अविद्या न व्यापेगी । यथा : रह्यो व्यापि समस्त जग माहीं । तेहि गिरि निकट कबहुँ नहि जाही । अतः विघ्नरहित होकर तुम रामजी का ध्यान जप मानस पूजा और राम गुणगान करो । इसी से भगवद् अनुग्रह की प्राप्ति होगी । तुम्हे अविद्या न व्यापने का वर शिवजी दे चके है । यथा : कवनेउँ जन्म मिटिहि नहि ग्याना । अतः मैं यह वर देता हूँ कि : जेहि आस्रम तुम बसब पुनि इत्यादि ।

काल करम गुन दोप सुभाऊ । कछु दुख तुमहि न ब्यापिहि काऊ ॥
राम रहस्य ललित विधि नाना । गुप्त प्रकट इतिहास पुराना ॥१॥

अर्थ : काल कर्म गुण दोप और स्वभाव का कुछ भी दुःख तुम्हें कभी नही व्यापेगा । रामजी के सुन्दर नाना विधि रहस्य और गुप्त तथा प्रकट इतिहास पुराण ।

व्याख्या : काक का मलिन स्वभाव नही मिटता । वायस पालिअहि अति अनुरागा । होहिं निरामिप कबहु कि कागा । परन्तु तुम अविद्या की परिधि के बाहर निकल जाओगे । संसार काल कर्म गुण स्वभाव के घेरा में पड़ा हुआ भवाटवी मे भटकता फिरता है । यथा : फिरत सदा माया कर प्रेरा । काल कर्म स्वभाव गुन घेरा । सो ये तुम्हे कभी कुछ भी बाधा न करेंगे ।

रामजी की कथा में सुन्दर रहस्य विभाग है । जिनकी कथा की जानकारी जनसाधारण को नही है । इतिहास पुराणो मे भी कुछ अंश प्रकट हैं और कुछ गुप्त हैं । जिसे लोग नही जानते । अनधिकारियो के हाथ में पड़ जाने से उनका उससे अकल्याण होगा । इसलिए वे गुप्त रक्खे गये हैं । जो अंश प्रकट है उनका भी सम्यक् ज्ञान बहुत कठिन है ।

बिनु स्रम तुम्ह जानब सब सोऊ । नित नव नेह राम पद होऊ ॥
जो इच्छा करिहहु मन मांही । हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाही ॥२॥

अर्थ : अनायास ही तुम्हे सबका ज्ञान हो जायगा । तुम्हे रामजी के चरण मे नित्य नया स्नेह हो । जो इच्छा तुम मन मे करोगे श्रीहरि के प्रसाद से कुछ भी तुम्हें दुर्लभ नही होगा ।

व्याख्या : काक मन्दमति होते हैं । उन्हे विद्या कहाँ ? मेधावी पुरुषो को भी विद्योपार्जन मे बड़ा आयास होता है । सो तुम राम रहस्य और गुरु प्रगट

पुराणेतिहास के जानकार हो जाओगे। काक अभागे होते हैं पर तुम ऐसे भाग्यवान् होगे कि तुम्हे श्रीरामजी के चरणो मे नित्य नयी प्रीति होगी और जा इच्छा तुम्हारे मन मे उठेगी श्रीहरि की कृपा से तुम्हे सबकी प्राप्ति होगी।

सुनि मुनि आसिष सुनु मति धीरा। ब्रह्म गिरा भइ गगन गँभीरा ॥
एवमस्तु तव बच मुनि ज्ञानी। यह मम भगत करम मन बानी ॥३॥

अर्थ हे मतिधीर! सुनो मुनि का आशीर्वाद सुनकर आकाश मे ब्रह्म की वाणी का आविर्भाव हुआ। हे मुनि ज्ञानी! जो तुमने वचन कहे वैसा ही हो। यह मनसा वाचा कर्मणा मेरा भक्त है।

व्याख्या राम ब्रह्म मुनिजी का आशीर्वाद सुनते रहे कि कोई त्रुटि हो तो पूरी की जाय। पर ज्ञानी मुनि ने मुझे जो देना प्राप्त था सब दे डाला। निर्गुण ब्रह्म की वाणी है। पता नहीं चलता कि कहाँ से हो रही है। इसलिए गँभीरा कहा। सगुण ब्रह्म की वाणी होती तो कुछ पता भी चलता। यथा मदिर माझ भई नभवानी। उस आकाशवाणी ने मुनिजी के आशीर्वचन का अनुमोदन किया। वह आकाशवाणी मुनिजी के प्रति हुई। पर भुसुण्डिजी को भी सुनाई पडती थी। आकाशवाणी ने अपने अनुमोदन का कारण भी बतलाया कि यह मेरा मनसा वाचा कर्मणा भक्त है। भाव यह कि रामजी का सच्चा भक्त सब विद्याओं का ज्ञान अनायास प्राप्त करता है और उसकी अभिलाषा को भगवान् स्वय पूरा कर देते हैं।

सुनि नभ गिरा हरष मोहि भयऊ। प्रेम मगन सब ससय गयऊ ॥
करि बिनती मुनि आयसु पाई। पद सरोज पुनि पुनि सिरु नाई ॥४॥

अर्थ आकाशवाणी सुनकर मुझे हर्ष हुआ। मैं प्रेम मे मग्न हो गया और मेरा सशय सब दूर हो गया। विनती करके और मुनिजी की अनुमति पाकर उनके चरण कमल मे बार बार प्रणाम करके।

व्याख्या आकाशवाणी सुनने पर तो रामजी के साक्षात्कार की दृढ आशा हो गयी। इसलिए भुसुण्डिजी हर्षित हो उठे। जिसे दर्शन देना है वह स्वय एवमस्तु कह रहा है। अत भुसुण्डिजी प्रेम मे मग्न हो गये। मन मे सशय था कि जो इच्छा करिहहु मन माही मुनिजी ने कहा है उसमे रामजी के दर्शन की इच्छा का अन्तर्भाव है या नही है। वह सशय भी मिट गया। क्योकि आकाशवाणी ने मान लिया कि भुसुण्डिजी मनसा वाचा कर्मणा भक्त हैं। मुनिजी के प्रत्येक आशीर्वाद पर सशय होता था। मुझे भक्ति नही है इसलिए मुनिजी इतना आशीर्वाद दे रहे हैं। यथा मेरे मन मे कही छिपी हुई अमर होने की इच्छा है इत्यादि सब सशय चले गये।

मनोरथ पूर्ण होने पर मुनिजी की स्तुति की विनय किया विदा माँगा और अत्यन्त प्रेम होने से अथवा कृतकृत्य होने से बार बार चरणो मे गिरे। आज्ञा पाया। इससे द्योतित होता है कि विदा माँगा।

हरख सहित एहि आस्रम आयेउ। प्रभु प्रसाद दुर्लभ वर पायेउ ॥
इहाँ बसत मोहि सुनु खगईसा। बीते कलप सात अरु बीसा ॥५॥

अर्थ हर्षित होकर मैं इस आश्रम मे आया। प्रभु के प्रसाद से दुर्लभ वर मिला। इहाँ बसते हुए मुझे हे गरुडजी ! सुनो सत्ताईस कल्प बीत गये।

व्याख्या : मुनिजी से भेंट होने के पहिले दिन शाप मिला। अन्तिम दिन आशीर्वाद मिला। आकाशवाणी हुई। श्रावण प्रत्यक्ष हुआ। अब चाक्षुप प्रत्यक्ष की भी आशा दृढ हुई। अथवा स्वय प्रभु ने स्वीकार कर लिया कि : यह मम भगत करम मन बानी। अत. हर्षित होकर इस आश्रम मे आया : दुर्लभ वर जेहि आस्रम तुम बसब पुनि सुमिरत श्रीभगवत। ब्यापिहि तहँ न अविद्या जोजन एक प्रजत। ऐसा वर कभी किसी को मिलते नही सुना गया। यह सब प्रभु के प्रसाद से हुआ। मुनिजी शाप या वर मे निमित्त मात्र थे।

अब भुसुण्डिजी कहते हैं कि यह सब कथा आज से २७ कल्प पहिले की है। क्योकि इस आश्रम मे आये मुझे २७ कल्प बीत चुके। आप तो इस कल्प के गरुड हैं।

करौं सदा रघुपति गुन गाना। सादर सुनहि बिहग सुजाना ॥
जब जब अवध पुरी रघुबीरा। धरहि भगत हित मनुज सरीरा ॥६॥

अर्थ : सदा रघुपति का गुणगान किया करता हूँ। सुजान पक्षी उसे आदर के साथ सुनते हैं। जब रामजी अयोध्या मे भक्त के लिए मनुष्य शरीर धारण करते हैं।

व्याख्या : जब से आया हूँ तभी से कथा कहता हूँ कथा कहते कहते २७ कल्प बीते। सुजान पक्षी मेरी कथा को सुना करते हैं। न कहते कहते मैं थकता हूँ न सुनते सुनते वे थकें। क्योकि : रामचरित जे सुनत अघाही। रस विसेप जाना तिन्ह नाही। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि पक्षी भापा मे कथा होती रही।

प्रत्येक कल्प मे एक बार रामावतार होता है। यद्यपि प्रभु के अनन्त अवतार हैं और देवयोनि तिर्यक् योनि मे भी होते हैं। परन्तु अयोध्या म मनुष्य योनि मे रामावतार होता है। उसका कारण होता है भक्त हित। यथा : तुम सारिखे सत प्रिय मोरे। धरौं देह नहि आन निहोरे।

तब तब जाइ राम पुर रहऊँ। सिसु लीला बिलोकि सुख लहऊँ ॥
पुनि उर राखि राम सिसुरूपा। निज आस्रम आवौ खग भूपा ॥७॥

अर्थ : तब तब जाकर मै रामपुर मे रहता हूँ। शिशु लीला देखकर सुख प्राप्त करता हूँ। फिर रामजी के शिशु रूप को हृदय मे रखकर हे खगनाथ ! मै अपने आश्रम मे लौट आता हूँ।

व्याख्या . भुसुण्डिजी कहते हैं कि मेरे इष्टदेव बालक राम हैं। सो प्रत्येक कल्प के वैवस्वत मन्वन्तर के किसी त्रेता मे अवतीर्ण होते है। इस प्रकार २७ बार तब से सरकार का अवतार श्रीअवध मे हो चुका। मैं यहां से कही जाता नही

और न कथा बन्द होती है। परन्तु श्रीरामावतार होने पर मैं श्रीअयोध्याजी जाता हूँ और वहाँ सरकार की शिशुलीला के दर्शन का आनन्द लेता हूँ। बस उतने ही दिन कथा बन्द रहती है। बाललीला देखकर सरकार के बाल रूप को हृदय में रखकर अपने आश्रम में लौट आता हूँ। मुझे सदा सरकार के शिशु रूप का प्रत्यक्ष होता रहता है। प्रत्येक कल्प में पाँच वर्ष तक चाक्षुष प्रत्यक्ष होता रहता है। अन्य समय में मानस प्रत्यक्ष होता रहता है।

कथा सकल मै तुमहि सुनाई। काग देह जेहि कारन पाई ॥
कहेउँ तात सब प्रस्न तुम्हारी। राम भगति महिमा अति भारी ॥८॥

अर्थ : सब कथा मैंने तुम्हें सुनाया। जिस कारण से मैंने काग शरीर पाया। हे तात ! मैंने तुम्हारे सब प्रश्नों का उत्तर दे दिया। रामजी की भक्ति की महिमा बड़ी भारी है।

व्याख्या : कारन कौन देह यह पाई। का उत्तर समाप्त करते हुए कहते हैं कि कथा सकल मै तुमहि सुनाई। काग देह जेहि कारन पाई। तीन प्रश्न और भी तुमने किया था। यथा : १. राम चरित सर सुंदर स्वामी। पायेउ कहाँ कहहु नभगामी। २. तुमहि न व्यापत काल अति कराल कारन कवन। ३. प्रभु तव आश्रम आयेउ मोर मोह भ्रम भाग। सो इन तीनों का उत्तर पहिले ही वरदान प्रसङ्ग में हो गया है। अतः कहते हैं कि : कहेउ तात सब प्रस्न तुम्हारी। अब सबका उपसंहार करते हुए कहते हैं कि रामभक्ति की महिमा बड़ी भारी है। वह असाध्य साधन में समर्थ है।

दो. ताते यह तनु मोहि प्रिय, भयउ राम पद नेह।
निज प्रभु दर्शन पायेउँ, गये सकल संदेह ॥
भगति पच्छ हठ करि रहेउँ, दीन्ह महा रिपि स्राप।
मुनि दुर्लभ वर पायेउँ, देखहु भजन प्रताप ॥११४॥

अर्थ : इसलिए यह शरीर मुझे प्रिय है कि इससे श्रीरामजी के चरणों में स्नेह हुआ। अपने प्रभु का दर्शन पाया। सब सन्देह चला गया।

भक्तिपक्ष पर हठ करके डट गया। महर्षि ने शाप दे दिया। मुझे मुनिदुर्लभ वर मिल गया। भजन का प्रताप देखो।

व्याख्या : गरुड़जी की ओर से प्रश्न उठा ही चाहता है कि आप तो कागरूप हैं। अतः छोड़िये कागरूप को। अतः स्वयं कहते हैं कि मुझे यही शरीर प्रिय है इसे नहीं छोड़ूँगा। मेरा कल्याण तो इसी शरीर से हुआ है। इसी शरीर में रामभक्ति दृढ़ हुई। रामजी का दर्शन इसी शरीर से हुआ। सब संशय नष्ट हुए। यथा : सुनि नभ गिरा हरष मोहि भयऊ। प्रेम मगन सब संसय गयऊ।

अब भक्ति की अति भारी महिमा कहते हैं कि मैंने भक्तिपक्ष के स्थानपर मे

हठ से काम लिया। यथा : तब मैं निर्गुन मति करि दूरी। सगुन निरूपहुँ करि हठ भूरी। निर्गुण मत को दूर कर देने से सगुण का निरूपण नहीं हो सकता। यथा : जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे। जल के दूर करने से हिम उपल की स्थिति कैसे रह जायगी। इसी भाँति निर्गुण के दूर करने से सगुण की स्थिति नहीं रह सकती। फिर भी मैं निर्गुण का खण्डन करके सगुण के स्थापन मे हठ करता रहा। मेरे हठ से नाराज होकर महर्षि लोमश ने शाप दे दिया। पर भक्ति की ऐसी महिमा है कि भगवान् ने महर्षिजी के मति को पलट दिया। महर्षिजी अपने किये पर पछताये और मुझे बुलाकर मुनि दुर्लभ वर दिये। अब आप स्वयं भजन का प्रताप देख सकते हैं।

सत पञ्च चौपाई प्रारम्भ : उमा के ग्यारहवें प्रश्न का प्रसङ्गात् उत्तर

जे असि भगति जानि परिहरहीं। केवल ग्यान हेतु स्रम करहीं॥
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आकु फिरहिं पय लागी॥१॥

अर्थ : जो लोग ऐसी भक्ति को जानबूझकर छोड़ देते हैं। केवल ज्ञान के लिए श्रम करते हैं। वे जड़ घर मे कामधेनु को छोड़कर दूध के लिए मदार खोजते फिरते हैं।

व्याख्या : जो कोई भक्ति के इस महा प्रभाव को जानकर भी उसका परित्याग करते हैं और केवल ज्ञान अर्थात् निरुपास्तिज्ञान के लिए परिश्रम करते हैं वे मूर्ख हैं। पण्डितलोग उसी साधन को स्वीकार करते हैं जो सर्वथा साध्य हो। जानबूझकर ऐसे साधन को त्याग करके अतिदुरूह साधन मे हाथ लगाना मूर्खता है। अति सुलभ और अति सुखकारी भक्ति को छोड़कर महा असाध्य विघ्नबहुल निरुपास्ति ज्ञानपंथ का स्वीकार करना वैसा ही है जैसे दूध को चाहनेवाला घर मे रहती हुई कामधेनु को छोड़कर दूध के लिए मंदार को खोजता फिरे। मंदार मे भी दूध होता है। पर वह दु:खद है। सुखद नहीं। भक्ति स्वभाव से ही मनुष्य मे होती है। पर ज्ञान के लिए तो प्रयत्न करना होता है।

सुनु खगेस हरि भगति बिहाई। जो सुख चहहिं आन उपाई॥
ते सठ महा सिंधु बिनु तरनी। पैरि पार चाहहिं जड़ करनी॥२॥

अर्थ : हे खगेश! सुनो जो लोग हरिभक्ति छोडकर दूसरे उपाय से सुख चाहते हैं वे शठ हैं। बिना नाव के अपनी जड़ करणी से तैरकर बड़े भारी समुद्र को पार किया चाहते हैं।

व्याख्या : सुख ही सबका ध्येय है। कोई भी दु:ख नहीं चाहता। उस सुख की प्राप्ति का उपाय केवल भक्ति है। दूसरा कोई उपाय नहीं है। स्वर्ग सुख भी टिकाऊ नहीं है। जो टिकाऊ है वही सुख है। स्वल्प सुख भी दुःख रूप ही है उससे सुख न होना ही अच्छा। जिस भाँति महा सिन्धु के पार जाने का साधन जहाज है। वैसे ही सुख का साधन हरि भक्ति है और उपायों से सुख चाहना वैसा ही है जैसे जड़ करणी

कोई महा समुद्र को तैर कर पार करना चाहे। जड़ करणी जहाज द्वारा भी पार नही जा सकता। तैरकर क्या पार जायगा। जड़ करणी अर्थात् विचारहीन करणी।

सुनि भुसुंडि के वचन भवानी। बोलेउ गरुड़ हरषि मृदु बानी॥
तव प्रसाद प्रभु मम उर माही। संसय सोक मोह भ्रम नाही॥३॥

अर्थ : हे भवानी ! भुसुण्डि के वचन सुनकर गरुड़ हर्षित होकर मृदुवानी बोले। हे प्रभो ! तुम्हारी कृपा से मेरे हृदय में शोक मोह और भ्रम नहीं है।

व्याख्या : गरुड़जी ने जो प्रश्न किये थे उसका उत्तर समाप्त हो गया। अब गरुड़जी फिर कुछ पूछेंगे। दूसरा प्रसङ्ग आरम्भ होगा। उसका उपक्रम करते हुए शिवजी भवानी को सम्बोधन करके गरुड़ का हर्षित होकर मृदुवाणी बोलना कहते हैं।

उभयकोटि : अवलम्बी ज्ञान को संशय इष्टनाश के दुःख को शोक विपरीत ज्ञान को भ्रम और अज्ञान को मोह कहते हैं। इन सबका मूल मोह है। उसका नाश गरुड़जी पहले ही कह चुके हैं। यथा : प्रभु प्रसाद मम मोह नसाना। उसी बात की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि आप के प्रसाद से मुझे संशय शोक मोह और भ्रम अब कुछ नहीं है।

सुनेउ पुनीत राम गुन ग्रामा। तुम्हरी कृपा लहेउँ विस्रामा॥
एक बात प्रभु पूछौं तोही। कहहु बुझाइ कृपानिधि मोही॥४॥

अर्थ : रामजी के पुनीत गुण ग्रामों को तुम्हारी कृपा से सुना और विश्राम पाया। हे प्रभो ! एक बात तुमसे पूछता हूँ सो हे कृपानिधे ! मुझे समझाकर कहिये।

व्याख्या : सरकार को संग्राम में बँधे हुए देखकर गरुड़जी संशय शोक मोह भ्रम में जा पड़े थे और विषण्ण हो गये थे। सो प्रभु के पुनीत गुणग्राम के सुनने से वह सब दूर हुआ और विश्राम को प्राप्त हुए। फिर भी एक शंका उठ खड़ी हुई। अतः कहते हैं कि यद्यपि आप उसका उत्तर संक्षेप में कह चुके हैं। यथा : जे अस भगति जानि परिहरही। केवल ज्ञान हेतु स्रम करही। ते सठ कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आक फिरहि पय लागी। पर उतने से सन्तोष नहीं है। अतः कृपया समझा कर कहिये।

कहहि संत मुनि वेद पुराना। नहि कछु दुर्लभ ग्यान समाना॥
सोइ मुनि तुम्ह सन कहेउ गोसाईं। नहि आदरेहु भगति की नाईं॥५॥

अर्थ : सन्त मुनि वेद और पुराण कहते हैं कि ज्ञान के समान कोई वस्तु दुर्लभ नही है। हे गोसाईं ! वही मुनिने तुमसे कहा। सो तुमने उसका भक्तिसा आदर नही किया।

व्याख्या : गीता में स्वयं भगवान् ने कहा है कि : नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। संसार में ज्ञान के सदृश पवित्र दूसरा कुछ नही है। वेद पुराण तथा आप्त पुरुषो का भी यही मत है।

उसी ज्ञान का निरूपण मुनिजी कर रहे थे। पर आपने उसका आदर वैसा नही किया जैसा भक्तिका किया। इसका कोई विशेष कारण होना चाहिए।

ग्यानहि भगतिहि अंतर केता। सकल कहहु प्रभु कृपानिकेता ॥
सुनि उरगारि बचन सुख माना। सादर बोलेउ काग सुजाना ॥६॥

अर्थ : हे प्रभु कृपानिकेत! ज्ञान और भक्ति मे कितना अन्तर है। सो सब कहिये। उरगारि गरुड़ का वचन सुनकर भुसुण्डिजी ने सुख माना तब आदर के सहित सुजान काग जी बोले।

व्याख्या : ईश्वर के जानने को ज्ञान और उनमें परम प्रेम को भक्ति कहते है। यहाँ जो ज्ञेय हैं वही परम प्रेमास्पद है। अतः ज्ञान और भक्ति मे पूरा पूरा सामानाधिकरण्य है। अन्तर के तारतम्य से ही आदर का तारतम्य होता है। अन्तर कुछ मालूम नही पड़ता : सो साधन या सिद्धि में जहाँ जहाँ जितना अन्तर हो उसे कृपा करके बतलाने की प्रार्थना गरुड़जी ने की।

उत्तम वक्ता पाकर श्रोतागण ही कृतार्थ नही होते। गुणी श्रोता पाकर वक्ता भी कृतार्थं होते हैं। गरुड़जी के मनको राम प्रेम से सरस देखा। अतः सुजान भुसुण्डिजी आदर के साथ बोले।

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भवसंभव खेदा ॥
नाथ मुनीस कहहि कछु अंतर। सावधान सोउ सुनु बिहंगबर ॥७॥

अर्थ : भक्ति और ज्ञान मे कुछ भी भेद नही है। दोनों ससार मे पैदा हुए दुःख को हरण करते हैं। हे नाथ! मुनीश लोग तथापि कुछ भेद बतलाते हैं उसे भी हे पक्षिश्रेष्ठ! सावधानी से सुनो।

व्याख्या : जब भगवद् गीता में ज्ञानी की गणना भक्तों मे है और भक्ति की गणना ज्ञानी मे हैं तो दोनों मे भेद कैसे कहा जाय। तत्त्वज्ञान और संवादी भ्रम में कोई भेद नही है। मणिप्रभा में मणिबुद्धि होना यद्यपि भ्रम है तथापि उसकी प्राप्ति के लिए दौड़ते हुए पुरुष को मणि की प्राप्ति होती है। अतः मणिप्राप्ति रूपी फल के समान होने से अभेद कहा। ज्ञान और भक्ति दोनो का एक फल है कि जीव संसार के दुःखों से छूट जाता है। अब शङ्का यह होती है कि फिर भक्ति का विशेष आदर क्यो किया?

इस पर कहते हैं कि मुनीशो को वह सूक्ष्म अन्तर दिखलाई पड़ा है। उसी को प्रमाण मानकर भुसुण्डिजीने भक्ति के प्रति अधिक आदर दिखलाया। अब भुसुण्डिजी कहते हैं कि वह अन्तर सूक्ष्म है। इसलिए सावधान होकर सुनो।

ग्यान बिराग जोग बिग्याना। ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना ॥
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती। अबला अबल सहज जड़ जाती ॥८॥

अर्थ : हे हरिवाहन! सुनो ज्ञान विराग योग और विज्ञान ये सब पुरुष हैं।

पुरुष का प्रताप सब भाँति से प्रबल होता है और अबला स्त्रियाँ स्वभाव से ही निर्बल और जड़ जाति हैं।

व्याख्या : ज्ञान बिराग योग और विज्ञान कोई रूपवान् पदार्थ नहीं हैं कि इनके लिङ्ग का निर्णय हो सके। इनका प्रताप सब भाँति प्रबल है। ये स्वावलम्बी हैं इनमे पुरुषार्थ हैं। ममता ताग के तोड़ने मे समर्थ है। इसलिए इन्हे पुरुष कहा : इसी भाँति अरूप पदार्थ यदि स्वावलम्बी न हो। किसी के आश्रित हो ममता ताग के तोड़ने मे समर्थ न हो तो उसे स्त्री कहेगे। अतः माया स्त्री है जड जाति है।

दो. पुरुष त्याग सक नारिहि, जो बिरक्त मतिधीर।
नतु कामी विषयावस, बिमुख जो पद रघुबीर ॥११५॥

अर्थ : जो विरक्त मतिधीर पुरुष हैं वे स्त्री का त्याग कर सकते हैं। पर कामी विषय के वश हुए और राम विमुख ऐसा नहीं कर सकते।

व्याख्या : पुरुष और स्त्री मे भोक्तृ-भोग्य सम्बन्ध है। इसलिए वह उसे नहीं छोड़ सकता पर जिस पुरुष के हृदय मे ज्ञान विराग है वह स्त्री को छोड़ सकता है उसे काम पीड़ा नहीं पहुँचा सकता। यथा : ब्रह्मचर्य व्रत रत मति धीरा। तुमहि को करइ मनोभव पीरा।

जो कामी विषयवश है जो रामविमुख है वह स्त्री नहीं छोड़ सकता। वह समझता है कि अमुक स्त्री मुझे चाहती है। मुझे चाव से देखती है। छाती से दबाकर गले लगाती है। वह ज्ञानियो की भाँति यह नहीं समझ सकता कि मांस और हड्डी की बनी हुई स्त्री क्या देखेगी और क्या इच्छा करेगी। देखनेवाला तो अमूर्त पुरुष है।

सो. सो मुनि ग्यान निधान, मृगनयनी बिधु मुख निरखि।
बिबस होहिं हरिजान, नारि बिस्व माया प्रकट ॥११५क॥

अर्थ : हे गरुड़जी वे ज्ञाननिधान मुनि भी मृगनयनी चन्द्रमुखी को देखकर विवश हो जाते हैं। विश्व मे स्त्री मूर्तिमती माया है।

व्याख्या : ऐसे ज्ञाननिधान जिन्होंने मुनिपदवी प्राप्त कर ली है। वे भी मृगनयनी चन्द्रमुखी पर दृष्टि पड़ जाने से उसके सौन्दर्यातिशय पर लट्टू हो जाते हैं। क्योंकि इस ससार मे प्रत्यक्ष माया तो स्त्री ही है। अति सुन्दरी स्त्री भी क्या है एक घिनावनी दुर्गन्धमयी पुतली है। अस्थिपञ्जर पर मांस का लेप है और उस पर चमड़ा मढा है। सौन्दर्य कोई वस्तु नहीं है। वह तो केवल अविचार से सिद्ध है। उसमें ज्ञान ध्यान का डूब जाना यही माया की प्रबलता है। भाव यह कि पुरुष का स्त्री के आकर्षण से बचना महा कठिन है।

इहाँ न पक्षपात कछु राखौं। बेद पुरान संत मत भाखौं॥
मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा ॥१॥

अर्थ यहाँ पर मैं कुछ पक्षपात नही करता। वेद पुराण और सन्त का मत कह रहा हूँ। स्त्री के रूप पर स्त्री मोहित नही होती। गरुडजी यह रीति अनुपम है।

व्याख्या भुसुण्डिजी के कहने का भाव यह है कि पहिले मैंने भक्ति का पक्षपात किया था और उससे मुझे लाभ भी हुआ। यथा भगति पच्छ हठ करि रहेउँ, दीन्ह महा रिपि साप। मुनि दुर्लभ वर पायेउ देखहु भजन प्रताप। इससे न समझना कि यहाँ भी पक्षपात कर रहा हूँ। यहाँ पर मैं शिष्टानुमोदित वेद और पुराण का मत कह रहा हूँ।

पु शक्ति और स्त्री शक्ति मे भोक्तृ भोग्य भाव होने से आकर्षण है। स्त्री स्त्री मे साम्य होने के कारण आकर्षण नही है। अत स्त्री के रूप पर स्त्री मोहित नही होती। आकर्षण न होने की रीति ऐसी व्यापक है कि निर्जीव पदार्थ मे भी इस नियम का बाध नही दिखाई पडता। इसलिए इसे अनूप कहा।

माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारि बर्ग जाने सब कोऊ॥
पुनि रघुबीरहि भगति पियारी। माया खलु नर्तकी बिचारी॥२॥

अर्थ तुम सुनो माया और भक्ति दोनो स्त्री वर्ग हैं। यह बात कोई जानता है। तिसपर रामजी को भक्ति प्यारी है। माया बिचारी तो निश्चय करके नर्तकी नाचनेवाली है।

व्याख्या जिस भाँति स्वावलम्बी और पुरुषार्थी होने से ज्ञान विरागादि पुरुष माने गये हैं उसी भाँति पराश्रित होने से ममता ताग के तोडने मे असमर्थ होने से माया और भक्ति को स्त्री माना गया हैं। इसमे किसी को विप्रतिपत्ति नही है। सभी ऐसा ही मानते हैं। स्त्री होने से इन दोनो मे परस्पर आकर्षण नही है। अत भक्ति माया पर मोहित नही होती।

दूसरी बात यह है कि अनन्या होने से उसकी ममता रामजी पर होने से भक्ति रामजी को प्यारी है और माया तो मिथ्याभाव दिखलाकर लोगो को ठगा करती है। उसकी ममता विषयो मे है। इसलिए उसे नर्तकी कहा। कहाँ पट्टाभिषिक्ता महिषी और कहाँ नर्तकी ? इसलिए माया को बिचारी कहा।

भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया॥
राम भगति निरुपम निरुपाधी। बसै जासु उर सदा अबाधी॥३॥

अर्थ रघुराज भक्ति के सानुकूल रहते हैं इसलिए माया उससे बहुत डरती है। निरुपाधि निरुपम रामभक्ति जिसके हृदय मे अबाधितरूप से बसती है।

व्याख्या भक्ति रामजी को बहुत प्यारी है। वे सदा उसके अनुकूल रहते हैं। यथा रघुपति भगत भगति बस अहही। सुधि करि अम्बरीष दुर्वासा। भये सुर सुरपति निपट निरासा। अत भक्ति से माया बहुत डरती है। उसे जितना डर रामजी से नहीं उतना डर भक्ति से है। क्योकि रामजी सभी के अधिष्ठान हैं किसी के विरोधी नही हैं। पर भक्ति का स्वभाव माया से सर्वथा विरुद्ध है। यथा देखी माया सब

विधि गाढी। अति सभीत जोरे कर ठाढी। देखा जीव नचावै जाही। देखी भगति जो छोरै ताही।

साधन चार हैं : १ कर्म योग २. अष्टाङ्ग योग ३ ज्ञान योग और ४ भक्ति योग। इनमे से भक्ति योग को कोई उपमा नही है। क्योकि सबको भक्ति की सहायता की अपेक्षा रहती है। पर भक्ति को किसी की अपेक्षा नही। यथा : सो सुतत्र अवलम्ब न आना। तेहि आधीन ग्यान विज्ञाना। तथा : सो सब करम धरम जरि जाऊँ। जहँ न राम पद पकज भाऊ। जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहि राम प्रेम परधानू। अत रामभक्ति अनुपम है। यह भक्ति कामना-पुर सर नही होनी चाहिए : नही तो गौणी हो जायगी। निष्काम भजन ही निरुपाधि भक्ति है। ज्ञान होने पर जगत् का बाध हो जाता है। सो भक्ति का बाध न होने पावे। यथा : सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमन्त। मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवत। तथा : भक्त्यर्थं कल्पित द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्।

तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकै कछु निज प्रभुताई॥
अस बिचारि जे मुनि बिग्यानी। जाचहिं भगति सकल सुखखानी॥४॥

अर्थ • उसे देखकर मायाको सकोच होता है। अपनी प्रभुता कुछ कर नही सकती। ऐसा विचार करके जो विज्ञानी मुनि हैं वे सब सुखखानि भक्ति माँगते हैं।

व्याख्या : जिसके हृदय मे उपर्युक्त गुण युक्त भक्ति बसती है। उनके स्वरूप मे अन्तर पड जाता है। विषय रस से रूखापन और रामरस से सरसता उसके चेहरे से टपकती है। यथा : सोह सैल गिरिजा गृह आये। जिमि जन रामभगति के पाये। अत: उसे देखकर माया सकुचित हो जाती है कि यहाँ मेरा बल नही चलेगा। यथा : मैं तोहि अब जान्यौं ससार। बाँधि न सकहि मोहि हरि के बल प्रकट कपट आगार। देखत ही कमनीय कछू, नाहिन पुनि किये बिचार। ज्यौं कदली तरु मध्य निहारत, कबहुँ न निकसत सार। सुनु खल छल बल कोटि किये, बस होहिं न भगत उदार। सहित सहाय तहाँ बसि अब, जेहि हृदय न नदकुमार।

ऐसा विचारकर विज्ञानी मुनि भी अनपायिनी भक्ति माँगते हैं। क्योकि वह कृपासाध्य है। क्रियासाध्य नही है। साधन भक्ति से अन्त करण शुद्ध होने पर केवल सिद्धा भक्ति की चाह रह जाती है। वही सुख की जननी है। यथा : सुख कि लहिय हरि भगति बिनु।

दो. यह रहस्य रघुनाथ कर, बेगि न जानै कोइ।
जो जानै रघुपति कृपा, सपनेहु मोह न होइ॥११६॥

अर्थ : श्रीरघुनाथ के इस रहस्य को जल्दी कोई जान नही पाता। यदि रघुपति की कृपा से जान ले तो उसे सपने मे भी मोह नही होता।

व्याख्या : चरित्र विषयक रहस्य कहकर अब साधनविषयक रहस्य कहते हैं। माया का बल ज्ञान पर चल जाता है। भक्ति पर नही चलता। यह रहस्य है। जल्दी

श्रुतिपुराण छूटने के बहुत से उपाय बतलाते हैं पर छूटती नहीं। गाँठ पर गाँठ पड़ती ही चली जाती है। कितनी बार अगाध पण्डित्य के अभिमान की एक गाँठ और पड़ गयी। छूटना तो दूर की बात है। श्रुति पुराण सत्यवादी हैं ठीक बतलाते हैं। पर हम चाहने पर भी वैसा नहीं कर सकते। कारण कहते हैं।

जीव हृदय तम मोह बिसेखी। ग्रन्थि छूटि किमि परै न देखी॥
अस संजोग ईस जब करई। तबहु कदाचित सो निरुअरई॥४॥

अर्थ : जीव के हृदय में मोहरूपी अन्धकार बहुत है। गाँठ छूटे कैसे ? दिखाई तो पड़ती ही नहीं। ऐसा संयोग यदि ईश्वर कर दे तब भी कदाचित् ही वह छूटे।

उन ईश का किया हुआ संयोग इस प्रकार हो कि सात्त्विकी श्रद्धा हरि की कृपा से हृदय में बसे और उस श्रद्धा द्वारा खूब धर्माचरण हो। जिसमें श्रद्धा पुष्ट होती जाय और धर्म के साथ से रज और तम के अभिभूत होने से सात्त्विक भाव उत्पन्न हो। तब श्रद्धा द्रवीभूत होती है।

तब भलीभाँति वश किये हुए काम संकल्प रहित मन की वृत्ति लगाकर अपनी श्रद्धा को अचल कर ले : नहीं तो सात्त्विकभाव के हटाते समय श्रद्धा छटक जा सकती है। और दृढ विश्वास करके अहिंमा में प्रतिष्ठित हो जाय। प्राणिमात्र को अभय दान दे।

जबतक हृदय में दया का प्रादुर्भाव नहीं होता तबतक समझना चाहिए कि परमधर्म का उदय नहीं हुआ। इस प्रकार अहिंसा में प्रतिष्ठित होने पर निष्कामता से अहिंसागत कामना के अंश को दूर करे।

कामना के अंश को दूर करने से जो ताप होता है उसे क्षमा द्वारा तोष से दूर करे और जब शीतल निष्काम दयाभाव हो जाय तो उसे वृत्ति से ठोस करे।

तब उस शीतल ठोस निष्काम दयाभाव को दमपूर्वक गुरु शास्त्रोपदेश : हितकर सत्यवाणी के अनुमार विचार से मुदिता मन्थन करे : अर्थात् विचार शास्त्र मर्यादा के भीतर ही शास्त्र विरुद्ध विषय का समावेश न हो। : विचार करे कि संसार दु खमय है। हम जीव इसमे पड़े हुए क्लेश उठा रहे हैं। इस दुःख की अत्यन्त निवृत्ति कैसे होगी : इत्यादि।

इन विचारो से साधक जिस निश्चय पर पहुँचेगा वही वैराग्य है। विचारों से इस निश्चय पर पहुँचेगा कि सब विषय अनित्य है और दुःख की योनि है। चाहे इस लोक के हो या परलोक के। तब उनसे अपने आप ही हटेगा। जब चित्त में विराग आजायगा तब वह विषयो को छोड़ सकेगा और तब उसे योग का अधिकार होगा।

योग चित्तवृत्ति का निरोध है। वैराग्य से चित्तवृत्ति के निरोध की योग्यता प्राप्त होती है। परन्तु शुभाशुभ कर्म का संस्कार उसमे बाधक होता है। इसलिए बुद्धि द्वारा शुभाशुभ कर्म संस्कार के दूर करते ही चित्त योग में प्रतिष्ठित हो जाता है। ममता नष्ट हो जाती है और सत् वस्तु में एकाग्रता होती है। तब तत् पद का ज्ञान अर्थात् परोक्षज्ञान होता है।

तव विज्ञान निरूपिणी : उपनिषद्जन्य बुद्धि उस परोक्षज्ञान ... चित्त में जमाकर समता में स्थापन करती है।

अब त्वं पदार्थ का शोधन शेष है। अतः इस प्रकार परोक्षज्ञानी ध्यान में स्थित होकर अपने को स्थूल सूक्ष्म और कारण तीनों शरीरों से पृथक् भावना करके अर्थात् त्वं पदार्थ का शोधन करके तुरीयावस्था को प्राप्त होता है। फिर तुरीयावस्था के संस्कारों को एकीभूत करके परोक्षज्ञान में मिला देता है। यह असि पद है।

तब शब्दानुविद्ध समाधि में स्थित होने से आत्मानुभव प्रकाश उत्पन्न होता है और वह : सोऽहमस्मि वृत्तिवाला अपरोक्ष होता है। यह मोहान्धकार को मिटा देता है।

परन्तु अभी चित् जड़ ग्रन्थि बनी हुई है। 'विज्ञानरूपिणी बुद्धि इस प्रकाश में ग्रन्थिभेदन कर सकती है। यदि ग्रन्थिभेदन हो गया तो मिथ्याध्यास सदा के लिए मिट गया और सहज रूप कैवल्य की प्राप्ति हो गयी। यही परमपद है।

इसी ज्ञान सिद्धान्त को सुगमता से समझाने के लिए दीपक के सुन्दर रूपक में नीचे विशदरूप से वर्णन करेंगे।

व्याख्या : गांठ हृदय मे पड़ी हुई है और वहां तमोगुण का आधिक्य है। बोध का प्रसार नही होता। गांठ ही नही दिखाई पड़ती। फिर छूटे कैसे ?

महादेव की यदि कृपा हो संयोग पर संयोग बैठता चला जाय : क्योकि सबुइ सुलभ जग जीव कहँ भये ईस अनुकूल। फिर भी कदाचित् वह छूटे। भाव यह कि उन संयोगों से ठीक ठीक लाभ उठाना और सावधानी से क्रम का निर्वाह करना महा कठिन है। तनक सो चूक से बना बनाया काम बिगड़ता है। अतः बहुत सम्भव तो यही है कि संयोग जुट जाने पर भी न खुले। संयोगों का क्रमबद्ध वर्णन करते हैं।

सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौ हरिकृपा हृदय बस आई ॥
जप तप व्रत जम नियम अपारा। जे स्रुति कह सुभ धर्म अचारा ॥५॥

अर्थ : सात्त्विकी श्रद्धारूपी नयी ब्याई हुई गौ यदि हरिकृपा से हृदय में आकर बसेरा ले। अपार जप, तप, व्रत, यम, नियम जिन्हें वेद ने शुभ धर्म आचरण कहा है।

व्याख्या : राजसी तामसी श्रद्धा भी धेनु हैं पर वे सोहाई नहीं है। राजसी तामसी श्रद्धा तो यक्ष राक्षस तथा भूत प्रेत के प्रति होती है : बछड़ेवाली गाय को ही धेनु कहते हैं। बिना सत्त्वगुण के अधिष्ठाता हरि को कृपा सात्त्विकी श्रद्धा की प्राप्ति नही होती। अँधेरे में धेनु भड़कती है ठहरती नही। हरि की कृपा हो तो ठहरे।

विधिवत् गुरु द्वारा उपदिष्ट वेदाविरुद्ध मन्त्र के अभ्यास को जप कहते हैं। विध्युक्त कृच्छ्र चान्द्रायणदि द्वारा शरीर के शोषण को तप कहते हैं। वेदोक्त विधि निषेध के निर्वाह को व्रत कहते हैं। अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम हैं। शौच सन्तोष तप स्वाध्याय ... ये पांच नियम हैं।

१ सदा सर्वदा किसी भी प्राणी मे द्रोह न रखने को अहिंसा कहते हैं २ मनसा वाचा कर्मणा भूतहित यथार्थ भाषण को सत्य कहते हैं। ३ मनसा वाचा कर्मणा दूसरे के द्रव्य मे स्पृहा न रखने को अस्तेय कहते हैं। ४ स्मरणादि अष्टविध मैथुन के अभाव को ब्रह्मचर्य कहते हैं। ५ विषयो के अर्जन रक्षण क्षय और सङ्ग से हिंसादि दोष होते हैं। अत उनके अस्वीकार को अपरिग्रह कहते हैं।

१ देह और मन के मल को दूर करना शौच है। २ प्राप्त साधन से अधिक पैदा करने की अनिच्छा को सन्तोष कहते हैं। ३ जाडा गरमी भूख प्यास आदि द्वन्द्व के सहने को तप कहते हैं। ४ मोक्ष शास्त्र के पढ़ने या प्रणव के जप को स्वाध्याय कहते हैं। ५ सब कर्मों को ईश्वरार्पण कर देना ईश्वरप्रणिधान हैं। ये सब एक एक असाध्य हैं इसलिए अपार कहा। इनके अतिरिक्त और शुभ धर्माचार यज्ञदानादि जिनके करने के लिए वेद की आज्ञा है।

तेइ तृन हरित चरै जब गाई। भाव बच्छ सिसु पाय पेन्हाई ॥
नोइनि बृत्ति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा ॥६॥

अर्थ उस हरे तृण को जब गाय चरे और भावरूपी बछडा पाकर उनके थन मे दूध आजाय। वृत्ति को नोइनि विश्वास को दोहनी और दासीभूत निर्मल मन को अहीर बनावे।

व्याख्या ये जप तप आदि छओ प्रकार के सरस तृण को श्रद्धा रूपी गाय पेट भरकर जब चरे तब सात्त्विक भावरूपी बछडे को पाकर उसके थन मे दूध उतर आवेगा। अर्थात् सानन्द आचरित धर्म भावोपहत न होने से सात्त्विक परिणाम रूप से फलोन्मुख होगा। दूहने के समय जिस रस्सी से गाय के पिछले दोनो पैर बाँध देते हैं उसे नोइनि कहते हैं। अर्थात् वृत्ति को उस समय श्रद्धा के चरणो मे लगा दे। विश्वास को दोहनी बनावे तब वृत्ति द्वारा श्रद्धारूपी गाय को निश्चल करके विश्वासरूपी दोहनी मे निर्मल वशीकृत मनरूपी अहीर द्वारा उसका दोहन करे।

परम धरम मय पय दुहि भाई। अवटइ अनल अकाम बनाई ॥
तोष मरुत तब छमा जुडावै। धृति सम जावन देइ जमावै ॥७॥

अर्थ हे भाई! परम धर्ममय दूध दुहकर उसे अकाम की आग बनाकर औंटे तब क्षमा उसे तोषरूपी हवा से ठण्डा करे और धृति का जावन समान उचित मात्रा मे देकर जमावे।

व्याख्या उनका सात्त्विक परिणाम परम धर्म है। परम धर्म सार्वभौम अहिंसा है। यथा परम धर्म स्रुति बिदित अहिंसा। यह सर्वभौम अहिंसा उपर्युक्त छओ साधनो का सार है। उसे अकामरूपी अग्नि से औंटे। अर्थात् उसमे से कामवासना दूर करे। विश्वासरूपी पात्र मे ही यह सब प्रक्रिया हो रही है।

कामाश दूर करने मे वह परम धर्म सन्तप्त हो उठता है। उसे तोषरूपी हवा से ठण्ढा करने का काम क्षमा द्वारा होगा। प्रियाप्रिय म ताडन पूजन मे सहन शक्ति

का नाम क्षमा है। वही क्षमा धैर्यरूपी जावन उचित मात्रा में देकर दूध को जमावे अर्थात् घनीभूत करे।

मुदिता मथैं बिचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी ॥
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। बिमल बिराग सुभग सुपुनीता ॥८॥

अर्थ : मुदिता विचार की मथानी से जिसका दम आधार और सत्य सुवाणी डोरी हो उस दही को मथे। तब दही मथकर सुन्दर पवित्र विरागरूपी मक्खन निकाल ले।

व्याख्या : दही जमाने तक क्षमा का काम था। अब मथने के लिए मुदिता आयी। दूसरे के सुख से आनन्दित होनेवाले गुण को मुदिता कहते हैं। मुदिता विचार के मथानी से मथने लगी। यथा :

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत कर्म भोग सब भ्राता ॥
जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा ॥
जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू। संपति बिपति करम अरु कालू ॥
धरनि धाम धन पुर परिवारू। सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू ॥
देखिय सुनिय गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथ नाहीं ॥

सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ।
जागे लाभु न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिअ जोइ ॥

मोह निसा सब सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा ॥
एहि जग जामिनि जागहि जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी ॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा ॥ इत्यादि

उस विचार का आधार इन्द्रियदमन था। उसके बिना सब विचार निराधार हो जाते हैं और सत्योक्ति रस्सी है। जिसके खिंचाव से विचार मथानी घूमती है। सत्य सुवाणी का भाव यह कि सत्य होती हुई भी वह वाणी वञ्चिता भ्रान्ता और प्रतिपत्तिशून्या न हो।

तब विराग का उदय होता है। उसी को मक्खन कहा है। वह दूध सा सुभग है। दूध पुनीत था यह सुपुनीत है। अब तक तो विश्वास के आधार पर काम चला। यदि विश्वास में त्रुटि हो तो सब परिश्रम निष्फल है। पर वैराग्य के उदय होने पर तो अनुभव होने लगेगा। इसलिए कहते हैं : काढ़ि लेइ नवनीता। मक्खन को अलग कर ले।

दो. जोग अगिनि करि प्रकट तब, कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत, ममता मल जरि जाइ ॥११७॥

अर्थ : शुभाशुभ कर्म को लगाकर शरीर में योगाग्नि को प्रकट करके बुद्धि ज्ञान घृत को तैयार करे। जिसमे ममतारूपी मल जल जाय।

व्याख्या : जब से हरिकृपा से श्रद्धा हृदय में आयी है। तभी से स्वाभाविकी प्रवृत्ति का शास्त्रीया होना प्रारम्भ हो गया। अर्थात् जाने या बिना जाने चित्तवृत्ति के निरोध का प्रयत्न चल पड़ा। अब वैराग्य के योग से चित्तवृत्ति का निरोध हो गया। यही योग है।

शुभ कर्म को शुक्ल अशुभ को कृष्ण और मिश्र को शुक्लकृष्ण कहते हैं। पर योगियो का कर्म तीनों से अलग अशुक्लाकृष्ण होता है। इसी से योग को अग्नि कहते हैं। यह शुभाशुभ कर्मो को जलाता हुआ प्रकट होता है।

विराग मे भी यह भाव रहा कि सब विषय विलास मेरे वश में है। मैं इनके वश मे नही हूँ। अतः उसमें भी ममता का संस्कार था जिसे मल कहते हैं। सो बुद्धि उस मक्खन को इस भाँति से योगाग्नि पर पकावे कि ममता मल जल जाय। इस भाँति तत् पदार्थ का शोधन हुआ।

दो. तब बिग्यान निरूपिनी, बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिया भरि धरै दृढ़, समता दियटि बनाइ ॥११७ क.

अर्थ : तब विज्ञान निरूपण करनेवाली बुद्धि स्वच्छ घी पाकर चित्तरूपी दीया में भरे और समता को दीवट : दीपकाधार बनाकर उस पर दृढ़ करके स्थापन करे।

व्याख्या : गुरु वेदान्त वाक्य से जो ब्रह्मात्मैक्य का अनुभव होता है। उसे विज्ञाननिरूपिणी बुद्धि कहते हैं! तत् पद के शोधन करने से ही बुद्धि विज्ञाननिरूपिणी हो गयी। यह समता के आधार पर चित्त में उस ज्ञान को भरकर स्थापन करे। यथा : ग्यान मान जहँ एकौ नाही। देख ब्रह्म समान सब माही।

तब साधक की साधु पदवी होती है। साधु का चरित्र कपास के चरित्र के समान है। यथा : साधु चरित सुभ सरिस कपासू। निरस बिसद गुन मय फल जासू।

दो. तीनि अवस्था तीनि गुन, तेहि कपास ते काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि, बाती करै सुगाढ़ि ॥११७ ख.

अर्थ : तीन अवस्था रूपी तीन गुणो को उस कपास से दूर करके तुरीयरूपी रूई को सँवारकर अच्छी मोटी बत्ती बनावे।

व्याख्या : इस कमल की पुरइन बालकाण्ड के प्रारम्भ से आयी है। यथा : साधु चरित सुभ सरिस कपासू। सत्वप्रधान जाग्रत्, रज.प्रधान स्वप्न और तम:प्रधान सुषुप्ति मे ही तीन अवस्था हैं। उन्हें साधक क्रमशः अपने तीनो शरीरो : स्थूल सूक्ष्म और कारण से दूर करे। तब रूईरूप तुरीय अवस्था को सँवारकर उसकी अच्छी मोटी बत्ती बनाये। घनावस्था को प्राप्त हो। पाञ्चभौतिक देह को स्थूल शरीर कहते हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पञ्चप्राण, मन और बुद्धि के समूह को सूक्ष्म शरीर कहते हैं। इन दोनो का कारण आत्मा का अज्ञान आत्मा के आभास से युक्त

होकर कारण शरीर कहलाता है। तीनो शरीर और तीनो अवस्था से आत्मा का पृथक् अनुभव ही त्व पद का शोधन है।

सो. एहि बिधि लेसै दीप, तेज रासि बिग्यान मय।
जातहिं जासु समीप, जरहिं मदादिक सलभ सब ॥११७॥

अर्थ : इस विधान से तेजराशि विज्ञान मय दीपक जलावे। जिसके समीप जाने से मदादि सब पतङ्ग जल जायँ।

व्याख्या : दीप प्रज्वलित करने के बहुत विधान हैं। पर वे मोक्षोपयोगी नही हैं। अतः उपर्युक्त विधान से ही दीपक जले। कही कोई त्रुटि न होने पावे। दीपक जलाने मे बत्ती को घी मे डालकर अग्नि से प्रज्वलित करना होता है। यहाँ पर तत्पदार्थ और त्व-पदार्थ के शोधन पूर्वक दोनो के ऐक्य का निदिध्यासन ही दीप का प्रज्वलित करना है।

यह दीया तेजराशि होता है। इसके निकट मदादिक शलभ नही जा सक्ते। जायँ तो जल जायँ और यह दीपक विज्ञानमय है। इससे अपरोक्षज्ञान होता है। इसलिए इसे विज्ञानमय कहा।

सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा ॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भवमूल भेदभ्रम नासा ॥१॥

अर्थ : वह मैं हूँ : ऐसी अखण्ड वृत्ति ही उस दीये को प्रचण्ड शिखा है। आत्मानुभव सुख उसका सुन्दर प्रकाश है। तब संसार के मूल भेदभ्रम का नाश होता है।

व्याख्या : सो तैं तोहि ताहि नहि भेदा : तत्त्वमसि। इस महावाक्य से जो प्रत्यभिज्ञा होती है। वही सोऽहमस्मि है अर्थात् वह मैं हूँ। यही अपरोक्ष ज्ञानवृत्ति दीप की प्रचण्ड लौ है। यह वृत्ति बराबर बनी रहे। यह माया के कटक के नाश मे समर्थ है।

इस अखण्ड वृत्ति से आत्मानुभवक सुख होता है। यही इस दीप का सुन्दर प्रकाश है।

भेददृष्टि ही ससार का मूल है। स्वरूपाज्ञान से ही भेदभ्रम होता है। श्री गोस्वामीजी कहते हैं : मायावस सरूप बिसरायो। तेहि भ्रम ते नाना दुख पायो। इस आत्मानुभव सुख के प्रकाश से भेद भ्रम मिट जाता है।

प्रबल अबिद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटै अपारा ॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजियारा। उर गृह बैठि ग्रन्थि निरुआरा ॥२॥

अर्थ : प्रबल अविद्या के परिवार मोह आदि अपार तम मिट जाते हैं। तब वही विज्ञानरूपिणी बुद्धि हृदयरूपी घर मे बैठकर गाँठ छोड़ती है।

व्याख्या : काम, तृष्णा, क्रोध, लोभ, श्रीमद, मान, मद, मत्सर इत्यादि प्रबल

अविद्या के बाल बच्चे हैं। ये सब तमोरूप हैं। इनका पारावार नही। पर ये इस दीपक की ज्योति के आगे नही ठहरते मिट जाते हैं।

विज्ञानरूपिणी बुद्धि ही ग्रन्थि के खोलने मे समर्थ है। पर अंधेरे मे उससे कुछ करते धरते नही बनता था। अब जो आत्मानुभव सुख का उजेला मिला तो ग्रन्थि स्पष्ट भासने लगी। तब वह बुद्धि हृदयरूपी घर मे बैठकर अर्थात् संप्रज्ञात समाधि में बैठकर गाँठ खोलने लगी।

छोरन ग्रन्थि पाव जौ सोई। तौ यह जीव कृतारथ होई॥
छोरत ग्रन्थि जानि खगराया। बिघन अनेक करै तब माया॥३॥

अर्थ : यदि वह बुद्धि चिद् जड़ ग्रन्थि खोल सकें तो जीव कृतार्थ हो जाय। हे पक्षियों के राजा! गाँठ को छूटती हुई जानकर माया अनेक विघ्न करती है।

व्याख्या : अहङ्कार के साथ तादात्म्य किये हुए अपने स्वरूप को भूला हुआ अनादि काल से जीव निद्रित पडा हुआ संसार का स्वप्न जनन मरण सुख दुःखादि का अनुभव कर रहा है। निर्विघ्न सप्रज्ञात समाधि सिद्ध होने से वह भ्रान्तिजन्य ग्रन्थि नष्ट हो जाती है। वह निद्रा से जागकर कृतकृत्य हो जाता है। फिर तो स्वराज्य सुख तो उसका कही गया था नही। केवल निद्रादोष से अभिभूत हो रहा था सो प्राप्त हो जाता है। चिद् जड़ ग्रन्थि का छूटना और निद्रा भङ्ग होना एक बात है। यदि बाधा उपस्थित न हो तो बुद्धि ग्रन्थि को खोल ले। परन्तु ऐसे अवसर पर माया विघ्न करने पर तुल जाती है। क्योकि वह देखती है कि एक जीव उसके अधिकार से बाहर जाया चाहता है।

रिद्धि सिद्धि प्रेरै बहु भाई। बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई॥
कल बल छल करि जाहि समीपा। अंचल बात बुझावहिं दीपा॥४॥

अर्थ : हे भाई! बहुत सी ऋद्धि सिद्धियो को प्रेरणा करती है और आकर बुद्धि को ललचाती है। कल बल छल से समीप जाकर अञ्चल की हवा से दीपक बुझा देती है।

व्याख्या : ऋद्धि ऐश्वर्य को कहते हैं। अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व, ये आठ सिद्धियाँ हैं। विज्ञानरूपिणी बुद्धि ही सब कुछ करनेवाली है। अत माया उसी को फुसलाती है ऐश्वर्य और सिद्धियो का लोभ दिखलाती है। स्वय उसके पास उपस्थित होकर उपाय से काम लेती है। उससे काम न चला तो बल का भी प्रयोग करती है। नही तो छल से उसके पास जाकर अञ्चल की हवा से दीपक बुझाकर ही मानती है।

स्त्रियाँ अञ्चल से ही दीपक बुझाती हैं। यहाँ अञ्चल बात से तात्पर्य विषय समीर है।

भाव यह कि बडे बडे धनी मानी धन देने के लिए उपस्थित होते है। बहुत

सी सिद्धियाँ उसमें दिखलाई पड़ने लग जाती हैं। यदि जीव उस आनन्द में आ गया तो ज्ञानदीप का निर्वाण हो जाता है।

होइ बुद्धि जौं परम सयानी। तिन्ह तनु चितव न अनहित जानी॥
जौं तेहि बिघ्न बुद्धि नहि बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी॥५॥

अर्थ : यदि बुद्धि परम सयानी हो तो माया को अनहित समझकर उसकी ओर दृष्टिपात न करे। यदि उस बुद्धि को विघ्नबाधा न पहुँचा सके तो फिर देवता लोग उपद्रव करते हैं।

व्याख्या : माया का व्यवहार हित के ऐसा होता है। सामान्य बुद्धि तो उसके जाल में फँस ही जाती है। यदि बुद्धि परम सयानी हो तो वह माया की ओर आँख उठाकर न देखे। ग्रन्थि छोड़ने में दत्तचित्त रहे। यदि बुद्धि ने माया की ओर आँख न उठाया तो उसके पास जाने की माया को सामर्थ्य नही है।

यदि माया की कोई कला नही चली तो देवता लोग उपाधि करने लगते हैं : जिसमें ग्रन्थि छूटने न पावे और जीव द्वारा जो भोग उनको मिला करता है उसमें बाधा न हो। क्योंकि जीव देवताओं का पशु है। इस लोक और परलोक दोनों में देवताओ द्वारा उपभुक्त होता है।

इन्द्रिय द्वार झरोखा नाना। तँह तँह सुर बैठे करि थाना॥
आवत देखहिं विषय बयारी। ते हठि देंहि कपाट उघारी॥६॥

अर्थ : देह गृह मे इन्द्रिय द्वार ही नाना प्रकार के झरोखे हैं। जिनमें देवता गद्दी लगाये बैठे हैं। जब विषय रूपी हवा के झोके को आते देखते हैं तो बलपूर्वक किवाड़ खोल देते हैं।

व्याख्या : इन्द्रियाँ सूक्ष्म हैं दिखाई नही पड़ती। उनका गोलक ही झरोखा है। इन इन्द्रियो के देवता हैं : श्रोत्र के दिक् त्वक् के वायु चक्षु के सूर्य रसना के वरुण घ्राण के अश्विनीकुमार वाक् के वह्नि हाथ के इन्द्र पाद के विष्णु, वायु के मृत्यु और उपस्थ के प्रजापति देवता हैं। ये अपने अपने गोलकों पर आसन जमाये रहते हैं।

बुद्धि आसन और मुद्रा द्वारा इन्द्रिय द्वार झरोखे को बन्द करके उर गृह मे बैठी जडग्रन्थि के खोलने मे संलग्न है। माया की प्रेरणा से विषय के झोके आने लगते हैं। उस समय बुद्धि मना करती ही रह जाती है। पर देवता झरोखा के पल्ले खोल ही देते हैं।

जब सो प्रभंजन उर गृह जाई। तबहि दीप बिज्ञान बुझाई॥
ग्रन्थि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ विषय बतासा॥७॥

अर्थ : जब वह हवा का झोंका हृदयरूपी घर के भीतर जाता है तो

विज्ञान दीप बुझ जाता है। गाँठ भी न छूटी वह उजेला भी मिट गया और विषय वायु से बुद्धि विकल हो गयी।

व्याख्या झरोखे का कपाट खुलते ही हवा का झोका भीतर पहुँचा। दिव्य विषय आप से आप उपस्थित हो गये। फिर तो एक पल म दीवट कही गयी। दीया कही गिरा। बत्ती कही बुझकर उड गयी। सब किया कराया नष्ट हो गया। साधक दिव्य विषयो मे लिप्त हो गया।

प्रचण्ड विषय के हवा के वेग को वृत्तिजन्य ज्ञानदीप नही सह सकता। इतने परिश्रम से किये हुए साधन के नष्ट हो जाने से एव विषय के झोको के चपेट से बुद्धि विकल हो जाती है।

इन्द्रिय सुरन्ह न ज्ञान सुहाई। बिषय भोग पर प्रीति सदाई॥
बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि बिधि दीप को बार बहोरी॥८॥

अर्थ इन्द्रिय के देवताओ की प्रीति सदा विषय भोगो पर रहती है। उन्हे ज्ञान नही अच्छा लगता। विषय वायु ने बुद्धि को बावली बना दिया। अब उस विधि से फिर दीप कौन जलाता है।

व्याख्या इन्द्रिय के देवताओ को ज्ञान के अच्छा न लगने का कारण यह है कि ज्ञान होने से प्राणी विषय विमुख हो जाता है। अतएव देवताओ के भोग मे कमी आने लगती है। सृष्टि के आरम्भ मे जब ब्रह्मदेव ने मनुष्य को रचना की तो देवता लोग बडे प्रसन्न हुए कि इससे हमारा काम चलगा। अत देवता लोग इन्द्रियो के रूप से यथास्थान अङ्गो म प्रवेश कर गये। अत ऐसे भोग साधन का विषय विमुख होना उन्हे प्रिय कैसे होगा।

अत उनकी प्रेरणा से विषय का अन्धड बन्द नही होता। उसम पडकर सयानी बुद्धि भी बावली हो गयी। वही दीप जलानेवाली ठहरी। अब फिर उस विधि से दीप कौन जलाता है। फिर तो उस जन्म मे दुबारा दीप का जलना असम्भव हो जाता है।

दो तब फिरि जीव बिबिध बिधि, पावइ ससृति क्लेस।
हरि माया अति दुस्तर, तरि न जाइ बिहगेस॥११८ क

अर्थ तब फिर जीव अनेक प्रकार के ससारी क्लश पाता है। हरिमाया अति दुस्तर है। हे पक्षिराट। यह पार नही की जा सकती।

व्याख्या फिर तो जीव की वही अवस्था हो गयी जो कि सात्त्विकी श्रद्धा के हृदय मे आने के पहिल थी। भाव यह कि अनन्त काल से जीव ज्ञानदीप के उद्योग मे है। अनेक जन्म मे दीप जला और बुझा पर ग्रन्थि न छूट पाई ससार ज्यो का त्यो बना रह गया। जन्म मरण सुख दु खादि न छूटे। यह हरि की माया है। इसका सन्तरण महा कठिन है। यथा दैवी ह्येपा गुणमयी मम माया दुरत्यया। जो ज्ञानिहु कर चित अपहरई। बरिआईं बिमोह बस करइ।

दो. कहत कठिन समुझत कठिन, साधत कठिन विवेक ।
होइ घुनाच्छर न्याय ज्यों, पुनि प्रत्यूह अनेक ॥११८॥

अर्थ : कहना कठिन समझना कठिन साधन कठिन और विवेक कठिन है। यदि घुणाक्षर न्याय से हो भी जाय फिर भी अनेक विघ्न हैं।

व्याख्या : यह विषय ऐसा है कि इसके कहने के लिए उपयुक्त शब्द नही मिलते। यदि कहा भी जाय तो बुद्धिदोष से उसका समझना कठिन हो जाता है। यदि किसी भाँति कहते सुनते भी बने तो साधन कठिन है। यमादि एक एक साधन असाध्य हैं। सब होने पर भी विवेक होना महा कठिन है। यथा : सुनिय गुनिय समुझिय समुझाइय दसा हृदय नहि आवै। जेहि अनुभव बिनु मोह जनित दारुन भव बिपति नसावै। काठ मे घुन लग जाता है तो दैवयोग से कभी कोई अक्षर भी बन जाता है। इस भाँति दैवयोग से यदि साधन ठीक उतर जाय फिर भी बहुत से विघ्न ऐसे उपस्थित हो जाते हैं जो चित् जड़ ग्रन्थि नही खोलने देते।

ज्ञानपंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहि बारा॥
जो निर्बिघ्न पंथ निरबहई। सो कैवल्य परमपद लहई॥१॥

अर्थ : ज्ञानमार्ग तलवार की धार है। इस पर से गिरते हे गरुड़! देर नही लगती। यदि विघ्न को अतिक्रमण करता हुआ रास्ता पार करे तो कैवल्य पद पावे।

व्याख्या : ज्ञानमार्ग को : क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया। कहा गया है। जैसे तलवार की धार पर चलना कठिन है। तनकसा समता मे वैषम्य आया कि पतन हुआ। वैसा ही ज्ञानमार्ग पर चलना है। इस मार्ग से पतन होते देर नही लगती। यदि किसी भाँति पार पा जाय तो परम पद की जिसे कैवल्य कहते हैं प्राप्ति हो।

अति दुर्लभ कैवल्य परमपद। संत पुरान निगम आगम बद॥
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अन इच्छित आवै बरिआई॥२॥

अर्थ : कैवल्य परमपद अतिदुर्लभ है। सन्त पुराण वेद शास्त्र ऐसा ही कहते हैं। हे गोसाईं! राम को भजते भजते वही मुक्ति बलपूर्वक आती है।

व्याख्या : चित् जड़ ग्रन्थि विमोक ही कैवल्यपद है। ऊपर दिखाया जा चुका है कि यह कितना दुर्लभ है। शिष्ट लोग तथा पुराण वेद शास्त्र सभी ने कैवल्य मुक्ति को ही परमश्रेय कहा है। इसमे किसी को विप्रतिपत्ति नही है। सबका एक मत है।

उस कैवल्यमुक्ति की प्राप्ति का सरल उपाय कहते हैं कि राम के भजने से मुमुक्षा न होने पर भी वह मुक्ति बलपूर्वक आती है। ज्ञानमार्ग मे मुमुक्षा को अपरिहार्य आवश्यकता है। भक्त को मुमुक्षा रहती ही नही। क्योंकि वह ममता का त्याग नही करता। बल्कि उसी ममता को ससार से हटाकर राम मे लगा देता है और ज्ञानी को ममता का त्याग करना पडता है। यथा : ममता त्याग करहि जिमि ज्ञानी।

राम के भजन से प्रत्यक् चेतन[1] का अधिगम और अन्तराय का अभाव होता है। ममता की डोरी राम में लगने से, तत्पदवाच्य का दर्शन तो उसे होता ही है साथ ही साथ उसे त्वं पद वाच्य का भी दर्शन होता है। यथा : मम दर्सन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा। तत्पश्चात् भेदासहिष्णु भक्ति दोनों का ऐक्य कर देती है। इस प्रकार मुक्ति बलपूर्वक आती है। ऐसी अवस्था में यदि सेवक सेव्य भाव अटल रह जाय तभी मुक्ति रुक सकती है नहीं तो बिना चाहे भी मुक्ति हो जाती है। यथा : सो अनन्य जाकें असि मति न टरै हनुमंत। मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत। यही मुक्ति का बलपूर्वक आना है। इसका कारण कहते हैं।

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई॥
तथा मोक्ष सुख सुनु खगराई। रहि न सकै हरि भगति बिहाई॥३॥

अर्थ : जैसे थल के बिना जल नहीं रह सकता चाहे कोई कोटि भाँति उपाय करे। वैसे ही हे गरुड़। मोक्षसुख हरिभक्त को छोड़कर ठहर नहीं सकता।

व्याख्या : जिस भाँति जल और थल में आधाराधेय सम्बन्ध है उसी भाँति मोक्षसुख और हरिभक्त में आधाराधेय सम्बन्ध है। मोक्ष होने के पहिले साधन द्वारा मुक्ति के सान्निध्य से मोक्षसुख का अनुभव होने लगता है। चाहे अहन्ता को भगवच्चरणों में बाँधने से अर्थात् अहंग्रहोपासना से मोक्ष सुख मिले। चाहे ममता को उन चरणों में बाँधने से मोक्षसुख मिले उसके मूल में तो हरिभक्त ही है। पर अन्य उपायों से जप तप मखादि कर्मों से भी जहाँ मोक्षसुख प्राप्त हो वहाँ भी हरिभक्ति अनुमित है। क्योंकि जहाँ जल ही जल हो वहाँ भी अनुमान करना पड़ेगा कि आधार रूप में थल विद्यमान है।

अस बिचारि हरिभगत सयाने। मुकुति निरादर भगति लुभाने॥
भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा॥४॥

अर्थ : ऐसा विचारकर ही तो सयाने हरिभक्त भक्ति के लोभ मे पड़कर मुक्ति का निरादर करते हैं। भजन करते हुए बिना यत्न और प्रयास के संसार के मूल अविद्या का नाश हो जाता है।

व्याख्या : सयाने लोगो की यह रीति है कि उपेय से अधिक उपाय का आदर करते हैं। काम से अधिक अर्थ का आदर करते हैं। इसी भाँति सयाने हरिभक्त यह विचार करके कि भक्ति को छोड़कर मोक्षसुख के लिए कोई अन्य आधार नहीं है भक्ति पर ही रीझे रहते हैं। स्वयं भी मोक्ष की इच्छा नहीं रखते और दूसरों को भी मुक्ति छोड़कर भजन का ही उपदेश देते हैं।

यत्न और प्रयास तो ज्ञानमार्ग में हैं। भक्ति में सबसे ममता हटाकर राम में जोड़ना है और किसी यत्न तथा प्रयास की आवश्यकता नहीं है। यथा : कहहु भगति

---

१. ईश्वरप्रणिधानाद्वा। ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽन्तरायाभावश्च। यो.।

पथ कौन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा। भजन करते करते आप से आप अविद्या का नाश हो जाता है। अनित्य, अशुचि, दुःख और अनात्म मे नित्य शुचि सुख और आत्मा के अभान को अविद्या कहते हैं। यही संसार का मूल है।

ममता की डोरी भगवच्चरणों में लग जाने से मन खीचातानी से छूटकर स्थिति को प्राप्त होता है। केवल अस्मिता मात्र रह जाती है जिसे ज्योतिष्मती प्रवृत्ति कहते है। इससे प्रकाश होता है और सब मे समान रूप से ब्रह्म दिखाई पडने लगता है और साधक हर्ष शोक से छूट जाता है। यही ममता ससार मे होने से अन्धकारमयी अविद्या थी और वही ईश्वरप्रणिधान से ज्योतिष्मती विद्या हो गयी। यथा : हरि सेवकहि न व्याप अविद्या। प्रभुप्रेरित व्यापै तेहि विद्या।

भोजन करिअ तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचव जठरागी॥
असि हरिभगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ न जाहि सुहाई॥५॥

अर्थ : भोजन तृप्ति और हित के लिए किया जाता है और जैसे उस भोजन को जठराग्नि पचाती है ऐसा ही हरिभजन सुगम और सुखदाई है। ऐसा कौन मूढ है जिसे यह अच्छा नही लगता?

व्याख्या : अब भजन की सुकरता और स्वाभाविकता कहते हैं। मुक्तिसम्पादन करने के लिए ज्ञानमार्ग मे अनेक प्रक्रिया विधिविधान के साथ यथाक्रम बड़ी सावधानी के साथ करनी पडती है। ज्ञान दीप प्रज्वलित करना असाधारण धैर्य और श्रम का काम है। भगवद्भजन मे ये बातें नही होती।

शरीर मे रात दिन श्रवण, स्पर्शन, रसन, घ्राण तथा गमनादिक क्रियाओ से क्षय हुआ करता है उसकी पूर्ति के लिए शरीर भोजन चाहता है। उसी चाह का नाम क्षुधा है। उसी की तृप्ति के लिए और शरीर के हित के लिए भोजन किया जाता है। भोजन करने मे किसी को श्रमबोध नही होता है बल्कि स्वाद भी मिलता है और शरीर की अस्वस्थता जाती रहती है। उस भोजन को जठराग्नि पचाती है रस बनता है। रक्त बनता है। शरीर की पुष्टि होती है। भोजन करनेवाले को कुछ करना नही पड़ता है। आप से आप सब होता रहता है। ऐसा तो कोई मूढ नही है जिसे भोजन अच्छा नही लगता हो।

ठीक ऐसी ही गति भजन की है। जिसकी मानसिक देह स्वस्थ है उसे भजन की भूख : जलन होती है। यथा : सुनु नृप जासु विमुख पछिताही। जासु भजन बिनु जरनि न जाही। भजन करने मे स्वाद मिलता है। मानसिक पुष्टि होती है। अविद्या जाती रहती है। मोक्षसुख सुलभ हो जाता है। कैसे क्या होता है। इस बात के जानने की कोई आवश्यकता भजन करनेवाले को नही होती। जिसे भजन अच्छा न लगे वह बड़ा भारी मूढ है। उसे कोई बड़ा भारी मानसिक बीमारी मन्दाग्नि की भाँति हो गयी है।

दो. सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज, अस सिद्धान्त बिचारि॥११९॥

अर्थ : सेवक सेव्य भाव के बिना हे गरुड़ जी ! संसार सागर पार नही किया जा सकता। ऐसा सिद्धान्त विचार करके रामपद कञ्ज का भजन करना चाहिए।

व्याख्या : व्यवहार में स्वभाव से ही स्वस्वामिभाव सम्बन्ध ईश्वर और जीव मे सिद्ध है। स्वस्वामिभाव सम्बन्ध ही सब सम्बन्धों का मूल है। अवयवावयवी आधाराधेय प्रतियोग्यनुयोगी विशेषणविशेष्य भावादि अन्यान्य सम्बन्ध इसी के अवान्तर भेद हैं। स्व स्वामिभाव तथा सेवक सेव्यभाव एक ही बात है। मैं उसका हूं। वह मेरा है। मैं वही हूं। तस्यैवाहं ममैवासौ स एवाहमिति त्रिधा : इन भावो से जो भजन माना गया है उसका भी मूल सेवकसेव्य भाव ही है। सामान्य पुरुष भी सेवा से प्रसन्न होकर सेवक को क्या नही दे देता। फिर उस दयासागर भक्तवत्सल परमकृतज्ञ के लिए कहना ही क्या वह प्रसन्न होकर सेवक का उद्धार मृत्युसंसार सागर से कर देता है। जीव अपने प्रयत्न से संसार सागर नही पार कर सकता। यही सिद्धान्त है।

दो. जो चेतन कहँ जड करै, जड़हि करै चैतन्य।
अस समरथ रघुनायकहि, भजहि जीव ते धन्य ॥११९ क.

अर्थ : जो चेतन को जड़ और जड़ को चेतन बनाता है। ऐसे समर्थ रघुनायक को जो जीव भजते हैं वे धन्य हैं।

व्याख्या : चेतन को जड़ और जड़ को चेतन बनाने का सामर्थ्य ही सब सामर्थ्यों से बडा है। चित् शक्ति तो सर्वत्र ही समान रूप से अवस्थित है। पर चेतन के अधिक विकास से ही ब्रह्मदेव सब से बड़े हैं और सङ्कोच से ही मशक छोटा है। अतः समर्थ वही है जो चेतन के सङ्कोच विकास का नियमन करता हो। यह शक्ति सरकार मे है। यथा : मसकहि करइ विरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन। अतः सरकार के भजन करनेवाले धन्य हैं। भाग्यहीन अल्प पुरुषार्थ का भजन करते हैं।

श्रीभक्ति चिन्तामणि प्रसंग

कहेउँ ज्ञान सिद्धान्त बुझाई। सुनहु भगति मनिकै प्रभुताई॥
राम भगति चिंतामनि सुन्दर। बसै गरुड़ जाकें उर अंतर ॥१॥

अर्थ. ज्ञान के सिद्धान्त को मैंने समझाकर कहा अब भक्तिमणि की प्रभुता सुनो। रामभक्ति सुन्दर चिन्तामणि है। हे गरुड ! यह जिसके हृदय मे बसती है।

व्याख्या : ज्ञान के सिद्धान्त को शुक बन्दर तथा दीप के उदाहरण से समझा कर कहा। ज्ञान का सिद्धान्त ही सिद्धान्त है। ज्ञान से पृथक् तो अज्ञान है। वह किसी विचारशील को मान्य नही हो सकता। भक्ति का भी वही सिद्धान्त है। यदि दूसरा सिद्धान्त होता तो : ज्ञानहि भगतिहि नहि कछु भेदा। यह बात नही कही जा सकती थी। ज्ञान और भक्ति दोनो अविद्या तम को दूर करते हैं। भेद इतना ही है कि एक दीप है तो दूसरा मणि है।

ममता के तागो के संसार से छूटकर भगवच्चरण मे लग जाने से मन खीचातानी से बचकर स्थिर हो जाता है। उसकी दशा स्वच्छ मणि सी हो जाती है। जैसे स्फटिकमणि अपने उपाश्रय के रँग से रग जाती है। उसी भाँति मन भी ग्रहीता पुरुष के आलम्बन से उसी रंग मे रँग जाता है। इसी को तत्स्थतदञ्जनता-समापत्ति कहते हैं। इसी भाँति भक्त का मन भी अविद्यान्धकार के नाश मे समर्थ है। ज्ञानदोप की प्रभुता कह चुके हैं अब रामभक्ति चिन्तामणि की प्रभुता कहते हैं।

भक्ति मणि है पर रामभक्ति तो सुन्दर चिन्तामणि है। जिस भाँति रामजी सब से उत्कृष्ट हैं उसी भाँति उनकी भक्ति भी सबसे उत्कृष्ट है। अन्य देवताओ की भक्ति मणि है। रामभक्ति चिन्तामणि है। : असन वसन सब वस्तु विविध विधि सब मनि मह रह जैसे। यह सम्पूर्ण कामनाओ को भी पूर्ण करती है और अविद्यान्धकार भी दूर करतो है। यह मणि सुन्दर भी है इसके हृदय मे धारण करने से पुरुष की शोभा होती है। यथा : सोह सैल गिरिजा गृह आये। जिमि जन रामभगति के पाये। इस हृदय के भीतर धारण करना चाहिए बाहरी दिखावा से हानि है।

परम प्रकास रूप दिन राती। नहि कछु चहिय दिया घृत बाती ॥
मोह दरिद्र निकट नहि आवा। लोभ बात नहि ताहि बुझावा ॥२॥

अर्थ : यह चिन्तामणि परम प्रकाश रूप दिन रात बनी रहती है। दीया वत्ती घी की कोई आवश्यकता नही। न तो इसके निकट मोह दरिद्र आता है और न लोभ वायु इसे वुझा पाता है।

व्याख्या : दीप के प्रकाशरूप बनाये रखने के लिए दीयट घी और वत्ती की आवश्यकता होती है। फिर भी दिन को उसका प्रकश फीका पड जाता है। अभेद ज्ञान होने पर सोऽहमस्मि वृत्ति फीको पड जातो है। पर मणिदीप का प्रकाश सदा बना रहता है। उसे दीया घी और बत्ती की आवश्यकता नही। इसी भाँति रामभक्ति चिन्तामणि के लिए चित्त दीया मे ज्ञान घृत और तुरीय रूपी वत्ती की आवश्यकता नही है। और विज्ञान विहान होने पर उसकी चमक और बढ जाती जाती है : भक्त्यर्थं[1] कल्पित द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्। मोह दरिद्र के भाग्य मे मुनिधनरूपी राम नही है। जब ममता वृत्ति राम मे लग गयी तब मोह को निकट आने के लिए मार्ग ही नही रह गया। राम से अधिक सुन्दर कोई विषय है ही नही। अतः लोभ वायु उसका कोई अपकार नही कर सकता।

प्रबल अविद्या तम मिटि जाई। हारहि सकल सलभ समुदाई ॥
खल कामादि निकट नहि जाही। बसै भगति जाके उर माही ॥३॥

अर्थ : अविद्या का प्रबल अन्धकार मिट जाता है और शलभो का समुदाय

---

१. भक्ति लिए कल्पित द्वैत अद्वैत से भी सुन्दर है।

पथभ्रष्ट किया करते है। यथा साखी शब्दी दोहरा कहि कहनी उपखान। भगति निरूपहिं भगत कलि निन्दहि बेद पुरान। दोहावली

पावन पर्बत बेद पुराना। रामकथा रुचिराकर नाना॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ज्ञान बिराग नयन उरगारी॥७॥

अर्थ वेद पुराण पवित्र पर्वत हैं जिनमे रामकथा रूपी नाना प्रकार की सुन्दर खानें हैं। भेद जाननेवाले सज्जन है। सुमति कुदारी है और हे उरगारि! ज्ञानविराग आँख हैं।

व्याख्या वेद पुराण पावन पर्वत माने गये हैं। विचार करने से ही इनकी उपयोगिता का पता चलता है। इन्ही के कारण ससार धृत है। प्रजाओ के धारण करनेवाल धर्मो के ये ही आद्य उपदेष्टा हैं। इन्ही मे त्रिवर्ग की कथाएँ भरी पडी हैं। इन्ही के बीच रामकथा भी है। परन्तु रामकथावाली सुन्दर खान कहाँ पर है। इसका पता बिना मर्मी सज्जन के लग नही सकता। गुरुचरणोपासक सज्जन लोग ही इस खानि के मर्मी हैं।

सुमति कुदारी कहने का भाव यह है कि मर्मी ऐसा ठीक पता दे देते हैं कि अकेला आदमी भी कृतकार्य हो सकता है। पर उसके पास सुमति रूपी कुदाल होना चाहिए। कुमति होने से वह त्रिवग मे ही फँसकर रह जायगा। फिर भी उसे ज्ञान और विराग रूपी आँखें चाहिए। नही तो उसे रामकथा किसी साधारण राजकुमार का इतिवृत्त मालूम पडेगा।

भाव सहित खोजै जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुखखानी॥
मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम त अधिक राम कर दासा॥८॥

अर्थ भाव सहित जो प्राणी खोजेगा वह सब सुखखानि भक्तिमणि पावेगा। हे प्रभो! मेरे मन मे तो ऐसा विश्वास है कि रामजी के दास रामजी से भी अधिक हैं।

व्याख्या भाव सहित खोजने का तात्पर्य यह है कि साधन भक्ति द्वारा उसका भगवच्चरणनुराग से परिचय होना चाहिए। तब रामकथा को प्राप्ति के बाद उसे सिद्धा भक्ति अर्थात् भक्ति चिन्तामणि की प्राप्ति हो सकेगी।

वैधी और रागानुगा इन दोनो प्रकार की भक्ति की गिनती साधन भक्ति मे है। शास्त्रो के उपदेश सुनकर जब प्राणी का अनुराग भगवच्चरणो मे होता है तो उसे वैधी कहते हैं और स्वाभाविक अनुराग से भजन मे प्रवृत्त होने को रागानुगा कहते हैं। इनका फलस्वरूप सिद्ध भक्ति है। यह स्वयं सब सुखो की खानि है। अविरला, अनपायिनी, सिद्धिरूपा आदि इसके अनेक नाम हैं।

भुसुण्डिजी अपना विश्वास कहते हैं कि मैं रामजी के दास को रामजी से भी अधिक मानता हूँ। रामजी के सेवक की बडी महिमा है। पर दास तो अपने को स्वामी के हाथ बेंच देता है। स्वामी का उस पर कृपा, कोप, वध और बन्ध का

अधिकार होता है। उसे स्वामी की ही गति है। दूसरी आशा नही। यथा : जेहि गति मोरि न दूसरी आसा। अतः वह सरकार को अतिप्रिय हैं और वे ही रामप्राप्ति के द्वारभूत हो जाते हैं। अतः कृतज्ञ हृदय के लिए वे रामजी से भी अधिक हैं।

राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चन्दन तरु हरि संत समीरा॥
सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहू पाई॥९॥

अर्थ : रामजी समुद्र और पण्डित सज्जन बादल हैं। हरि चन्दनतरु है और सन्त समीर है। सबका फल सुन्दर हरिभक्ति है। उसे सिवा सन्त के किसी ने नही पाया।

व्याख्या : समुद्र ही जल का अक्षय भण्डार है। नदी कूप आदि मे जहाँ कही जल दिखाई पड़ता है वह किसी न किसी भाँति समुद्र से ही आया है। पर समुद्र तक सबकी गति नही है। जिनकी गति भी है वे भी समुद्र से साक्षात् लाभ नही उठा सकते। बादल मे ही ऐसा सामर्थ्य है कि देश के देश को जल से प्लावित करते हैं। इसी भाँति रामजी समुद्र हैं। उनसे साक्षात् उपकार जगत् का वैसा नही होता जैसा कि धीर सज्जनो द्वारा होता है। वे बादल की भाँति रामयश की वर्षा करके प्रान्त के प्रान्त को राममय कर देते हैं।

हरि तो चन्दनवृक्ष है। उन तक सब लोग नही पहुँच सकते। पर यह सामर्थ्य गन्धवाह में ही है कि चन्दन के गन्ध को लेकर अन्य वृक्षो के सार मे बसा दे। इसी भाँति यह शक्ति सन्तो मे ही है कि मनुष्य के अन्त.करण को सदा के लिए भगवद्भाव से भावित कर दे। साधन भक्ति सिद्धा भक्ति मे परिणत हो जाय। तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई। नाना कर्म धर्म व्रत दाना। सम जम दम तप व्रत मख नाना। भूत दया गुरु द्विज सेवकाई। विद्या विनय विवेक बड़ाई। जहँ लगि साधन वेद बखानी। सब कर फल हरिभगति भवानी। सो सुहाई भक्ति अर्थात् निष्काम भक्ति सन्त के हिस्से की वस्तु है। क्योंकि सन्त को सुमति का स्वामी कहा गया है। यथा : संत सुमति तिय सुभग सिंगारू। और सुमति ही भक्ति की भूमिका है। अतः सिद्धाभक्ति का अधिकारी सिवा सन्तो के दूसरे नही हैं।

अस बिचार जोइ कर सत संगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा॥१०॥

अर्थ : ऐसा विचार करके जो सत्सङ्ग करता है। हे विहङ्ग लोग! उसे राम भक्ति सुलभ है।

व्याख्या : अपने वक्तव्य का निष्कर्ष कहते हुए भुसुण्डिजी अपने समस्त श्रोताओं को सम्बोधन करते हैं। विहङ्ग योनि मे कोई साधन नही हो सकता। पर सत्सङ्ग वे भी कर सकते हैं। अत. राम से अधिक राम के दास को मानकर जो सत्सङ्ग करते हैं उन्हे अनायासेन रामभक्ति की प्राप्ति होती है। सन्त लोग स्वभाव से ही रामभक्ति के प्रचार मे दत्तचित्त रहते हैं। अपने सग करनेवाले को भक्ति

देने मे कृपणता क्यों करेंगे। सत्सङ्ग से सुमति की प्राप्ति भी हो जाती है। यथा : सठ सुधरहिं सत सगति पाई। पारस परस कुधातु सुहाई।

दो. ब्रह्म पयोनिधि मंदर, ज्ञान संत सुर आहि।
कथा सुधा मथि काढहिं, भगति मधुरता जाहि ॥१२० क.
बिरति चर्म असि ज्ञान मद, लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइय सो हरि भगति, देखु खगेस बिचारि ॥१२०॥

अर्थ . वेद क्षीरसागर है ज्ञान मन्दर है सन्त देवता हैं वे मथकर कथामृत निकालते हैं। जिसकी मिठास भक्ति है। वैराग्य की ढाल और ज्ञान की तलवार से मद लोभ मोहादि शत्रुओ को मारकर जो विजय मिलती है वह हरिभक्ति है। हे खगेश ! विचारकर देख लो।

व्याख्या · जिस भाँति क्षीरसागर को मन्दर द्वारा मन्थन करके देवासुरो ने अमृत निकाला था। जिसकी मधुरता की धाप सम्पूर्ण संसार मे है। उसी प्रकार वेद रूपी समुद्र के मन्थन करनेवाले देवस्थानीय सन्त लोग हैं। वे ही ज्ञान रूपी मन्दराचल से वेदसिन्धु का मन्थन करते हैं। तभी राम कथा रूपी अमृत का प्रादुर्भाव होता है। यथा तब सब कथा मुनीसन्ह गाई। परम प्रबन्ध विचित्र बनाई। जिन्होने असस्कृत बुद्धि से ही मन्थन किया है उन्हें तो वेद गँवारो का गीत ही मालूम हुआ उस अमृत की मधुरता भक्ति है। भक्ति की मधुरता सर्वजन प्रत्यक्ष है। इसके लिए अन्य प्रमाणकी आवश्यकता नही है।

श्री रामावतार जब होता है। तब रामयश वेद का भी रामायण रूप से अवतार होता है। यथा वेद प्राचेतसादासीत् साक्षाद् रामायणात्मना।

यह शरीर दो राजाओं का देश है। अपने अपने अधिकार के लिए दोनो मे नित्य लडाई रहती है। एक ओर मोह राजा है और कामादि उसके सहायक हैं। दूसरी ओर विवेक राजा है और वैराग्यादि उसके सहायक हैं। यह लडाई अनादि काल से चली आती है। कभी एक बीस पड जाता है कभी दूसरा बीस पडता है। इसी द्वन्द्व मे पडकर ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय प्राणादि प्रजा अतिपीडित हो रहे हैं। जब कथामृत पान से विवेकादि का बल बढ जाता है तब वे वैराग्यरूपी ढाल से शत्रु के प्रहार को निष्फल करके ज्ञान रूपी खड्ग से मद मोह लोभादि शत्रु को मारकर विजय प्राप्त करते हैं। यथा : जीति मोह महिपाल दल सहित विवेक भुआल। करत अकटक राजपुर सुख सम्पदा सुकाल।

इतनी बडी लडाई के बाद फल यह हुआ कि ससार की ओर से मन हटकर राम मे लगा और यही भक्ति है। अब चाहे कोई अभेद भक्ति करे या भेद भक्ति करे पर है सब भक्ति ही।

सप्तप्रश्नप्रसङ्ग : उमा के बारहवें प्रश्न का प्रसङ्गात् उत्तर

पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ। जौं कृपाल मोहि ऊपर भाऊ ॥
नाथ मोहि निज सेवक जानी। सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी ॥१॥

अर्थ : फिर प्रेम के सहित पक्षिराज बोले कि हे कृपालु ! यदि आपका मेरे ऊपर : कृपा : भाव है तो मुझे अपना सेवक जानकर मेरे सात प्रश्नों को बखान : कर कहिये।

व्याख्या : गरुड़जी जिज्ञासा से आर्त होकर गुरु के प्रेम पर विश्वास दिखलाते हुए प्रश्न करते हैं। निज सेवक पर स्वामी की अत्यन्त कृपा रहती है। यथा : निज दास ज्यों रघुवंस भूषन कबहु मम सुमिरन करयो। अतः कहते हैं कि निज सेवक जानकर सात प्रश्नों का उत्तर दोजिये। इन्हीं सात प्रश्नों में साध्य साधन और साधक विषयक सब बातें आजायेंगी। १. भोगायतन २. अनुकूलवेदनीय भोग ३. प्रतिकूलवेदनीय भोग ४. भोक्ता ५. अनुकूल भोग का कारण ६. प्रतिकूल भोग का कारण और ७. भोक्ता की अवस्था के कारण विषयक प्रश्न हैं। ये प्रश्न : जो प्रभु मैं पूछा नहि होई। सोउ दयाल जनि राखहु गोई। के उत्तर में निरूपण किये गये हैं।

प्रथमहि कहहु नाथ मति धीरा। सबते दुर्लभ कवन सरीरा ॥
बड़ दुख कवन कवन सुख भारी। सोउ संछेपहि कहहु बिचारी ॥२॥
संत असंत मरम तुम जानहु। तिन्ह कर सहज सुभाव बखानहु ॥
कवन पुन्य स्रुति बिदित बिसाला। कहहु कवन अघ परम कराला ॥३॥
मानस रोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्बज्ञ कृपा अधिकाई ॥
तात सुनहु सादर अति प्रीती। मैं संछेप कहौं यह नीती ॥४॥

अर्थ : हे मतिधीर नाथ ! पहले यह बतलाइये कि सबसे दुर्लभ कौन शरीर है। कौन दुःख बड़ा है कौन सुख भारी है इसे भी संक्षेप से विचारकर कहिये। तुम सन्त असन्त के मर्म को जानते हो। सो उनके सहज स्वभाव का वर्णन करो। वेद विदित विशाल पुण्य कौन सा है और कौन परम कराल पाप है ? तुम सर्वज्ञ हो और तुम्हें कृपा भी अधिक है। सो मानसरोग समझाकर कहो। हे तात ! आदर और प्रीति के साथ सुनो। मैं संक्षेप से यह नीति कहता हूँ।

व्याख्या : गरुड़जी कहते हैं कि आपने असंख्य ब्रह्माण्ड के जीवों के शरीर देखे हैं। आप बतलाइये कि सबसे दुर्लभ कौन शरीर है। सुख दुःख सबका अनुभूत विषय है। इसमें केवल इतना हो जानना है कि सबसे बड़ा सुख और सब दुःखों से बड़ा दुःख कौन है। तुम्ह सन्त भी रह चुके हो और असन्त भी रह चुके हो। अतः तुम मर्मज्ञ हो उनका सहज स्वभाव वर्णन करो। सब कल्याणों का मूल पुण्य है और सब आपत्तियों का मूल पाप है। अतः वेद विदित विशाल पुण्य और परम कराल पाप क्या है ? इसे बतलाइये। मानस रोग को तो समझाकर कहिये। आप से कुछ

छिपा भी नही है और आप मे अधिक कृपा भी है। अत. आप से मनोरथ पूर्ति को प्रबल आशा है।

भुसुण्डिजी ने कहा कि मैं सक्षेप से इस नीति का वर्णन करूँगा। अतः आदर के साथ अति प्रीति से सुनो। आदर के साथ अति प्रीति से सुना हुआ ही हृदय मे अङ्कित होता है।

नर तन सम नहि कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत जेही ॥
नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी। ज्ञान विराग भगति सुभ देनी ॥५॥

अर्थ : नरदेह के समान कोई देह नही है। जिसे चराचर प्राणो माँगा करते हैं। ज्ञान वैराग्य और शुभ भक्ति की देनेवाली स्वर्ग और मोक्ष की सीढी है।

व्याख्या ' प्रश्न है ' सब ते दुर्लभ कवन सरीरा। उत्तर हो रहा है कि नर शरीर के समान कोई देह नही है। कारण देते हैं कि चराचर प्राणी मात्र को उसकी चाह रहती है। शास्त्र कहता है कि स्थावर जीव भी अन्त.सज्ञ होते हैं। अत' उनका भी चाहना बन सकता है। अन्य शरीर से कोई पुरुषार्थ नही बनता और मनुष्य शरीर की प्राप्ति केवल परमेश्वर की कृपा से ही होती है। यथा : कबहुकि करि करुना नर देही। देई ईस विनु हेतु सनेही। इसी शरीर से पाप करके लोक नरकगामी होते हैं। पुण्य करके स्वर्ग भोगते हैं और ज्ञान विराग द्वारा मुक्ति प्राप्त करते हैं अथवा कल्याणमयी भक्ति की प्राप्ति होती है। जो सब सुखखानि है। सीढी से ऊपर चढना नीचे उतरना दोनो होता है।

सो तनु धरि हरि भजहि न जे नर। होहि विपयरत मंद मंदतर ॥
काँचु किरिच बदले ते लेही। करते डारि परसमनि देही ॥६॥

अर्थ उस शरीर को धारण करके जो मनुष्य विपयरत होकर मन्द होते जाते हैं हरि को नही भजते वे हाथ से पारस को फेंककर उसके बदले मे काँच का टुकडा लेते हैं।

व्याख्या : मन तो एक क्षण स्थिर रहता नही। वह चाहे काम को भजे चाहे राम को भजे। जो ऐसा दुर्लभ शरीर पाकर काम को भजता है। जो कि पशु शरीर मे भी सुलभ है और इस भाँति अपना अध पतन करता रहता है। यथा : सेवत विषय विवर्ध जिमि नित नित नूतन मार। वह ऐसा अभागा है कि हाथ मे आये हुए पारस को फेक रहा है और शीशे के टुकडो को उसके बदले मे ले रहा है। नर शरीर पारस है। इसके सदुपयोग से नित्यानन्द की प्राप्ति हो सकती है और विषय काँच का टुकडा है। किसी काम का नही। केवल उसमे सुखाभास की चमक है। उसी को सच्चा सुख मानकर जीव जन्म मरण के जाल मे पडा हुआ दु.ख झेलता है।

नहि दरिद्र सम दुख जग माही। सत मिलन सम सुख जग नाही ॥
पर उपकार बचन मन काया। सत सहज सुभाउ खगराया ॥७॥

अर्थ . ससार मे न तो दरिद्रता के समान दु ख है। न सन्त के मिलने कोई सुख है। हे खगराज ! मनसा वाचा कर्मणा परोपकार करना। सन्तो सहज : पैदाइशी स्वभाव है।

व्याख्या इस ससार मे स्वल्प से स्वल्प सुख के लिए कीमत चुक पडती है। दरिद्र के पास कीमत चुकाने के लिए कुछ नही है पर चाह बहुत अत उसे कभी कोई सुख मिलता ही नही और चाह सुख भी बनी रहती है। वह महा दु खी है। परमहस परिव्राजक के पास कुछ नही रहता। पर उन्हे भी नही है। इसलिए वह राजाओ का भी महाराज है। उन्हे दरिद्र कोई कहता। क्योकि सच्ची दरिद्रता तो मोह है। यथा मोह दरिद्र निकट नहि आव सात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला एक अग। तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख सतसग। अत सतसग से बडा सुख कोई नही है। क्योकि सतसग स्वय सुख होने पर भी परम कल्याण का कारण है।

सन्त पैदा होते हैं। बनाये नहीं जाते। सन्त वही है जिसका मनसा वा कर्मणा परोपकार करने का पैदाइशी स्वभाव हो। जो सिखाने पढने से परोपक होते हैं वे सन्त के समान हैं। समान शब्द किञ्चित् न्यून के अर्थ मे आता है। यथ जो नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही। तजि मद मोह क छल नाना। करै सद्य तेहि साधु समाना।

सत सहहि दुख परहित लागी। परदुख हेतु असत अभागी ॥
भूर्ज तरू सम संत कृपाला। परहित नित सह बिपति बिसाला ॥८

अर्थ · सन्त पराये हित के लिए दु ख सहते हैं और असन्त अभागे पर दु ख के लिए दु ख सहते हैं। कृपाल सन्त भोजपत्र के समान है। पराये हित लिए नित्य विशाल विपत्तियाँ भोगा करते हैं।

व्याख्या · जो ससार मे आया है उसे दु ख भोगना ही पडता है। पर सन्त का हृदय अत्यन्त कोमल होता है। उसे दूसरे का दु ख देखते बनता नही। उसके प्रतिकार मे लग जाते हैं। इस भाँति उनके दु ख का भोग भी हो जाता और परोपकाररूपी परम धर्म की प्राप्ति भी होती रहती है। असन्त का हृदय व कठोर होता है। उनको दूसरे के दु ख को देखकर सुख होता है। अत· वे दूसरे दु ख देने मे यत्नशील होते हैं। उस यत्न मे उन्हे दु ख होता है। अत. सच्चा उनके भाग्य में नही है। जब तक जीते हैं दूसरे का सुख देखकर जलते हैं। म पर अपकारी को नरक होता ही है। अत. उन्हे अभागी कहा।

कृपालु सन्तकी उपमा भोजपत्र के पेड से दी गयी है। पेड तो सभी परोपका हैं। पर इस पेड मे ऐसा दूसरे के हित के लिए भारी विपत्ति सहनेवाला कोई नहीं है। जैसे शरीर मे चमडा है वैसे ही पेड के लिए छाल है। यह पेड नित्य अपना छाल देता है। भूर्जतरु के छाल को ही भोजपत्र कहते हैं। उसे छीलकर उस पर पुस्तक लिखी जाती है। यन्त्र लिखे जाते हैं। पहाड पर पर उस

पुड़िया भी बाँधते हैं। चमड़ी दे देना क्लेश की पराकाष्ठा है। उसे भी सन्त भूर्जतरु के समान परोपकार के लिए स्वीकार करते हैं।

सन इव खल पर बंधन करई। खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई॥
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूषक इव सुनु उरगारी॥९॥

अर्थ : सन की भाँति खल दूसरे का बन्धन करता है और स्वयं खाल निकलवाकर विपत्ति सहकर मर जाता है। हे उरगारि : गरुड़जी ! सुनो सर्प और चूहे की भाँति खल निःस्वार्थ भाव से दूसरे का अपकार करता है।

व्याख्या : जिस भाँति सन्त परोपकार के लिए दुःख को दुःख नही मानते। उसी भाँति खल भी परोपकार के लिए दुःख को दुःख नही मानते। सनई की छाल उखाड़कर हो रस्सी बनायी जाती है जिससे दूसरे बाँधे जाते हैं। सनई पानी में डूबोकर सड़ाई जाती है। तब उसको छाल को अलग करके रस्सी बनायी जाती है। इसी भाँति खल भी दुर्दशापूर्वक अपनी मृत्यु स्वीकार करते हैं : यदि उससे किसी का अपकार होता हो।

पर संपदा बिनासि नसाही। जिमि ससि हति हिमि उपल बिलाही॥
दुष्ट उदय जग अनरथ हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू॥१०॥

अर्थ : खल दूसरो की सम्पत्ति का नाश करके स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं। जैसे ओला खेती का नाश करके स्वयं गल जाता है। दुष्ट का उदय संसार में अनर्थ का कारण है। जैसे ग्रहो मे अधम केतु का उदय होता है।

व्याख्या : जिस भाँति ओले खेती का नाश करने के लिए स्वर्ग से पृथिवी पर गिर पडते हैं और खेती का संहार करके स्वयं भी गल जाते हैं। ठीक इसी रीति से परसम्पदा नाश चाहनेवालों का अधः पतन नाश करने के समय ही होता है। नाश की क्रिया की समाप्ति के बाद वे भी नही बचते। गल कर पानी हो जाते हैं।

जब जब संसार पर मुसीबत आयी है तब तब उसका कारण दुष्ट का उदय ही होता है। दुष्ट की जब उन्नति होगी तब वह अपनी प्रभुता का उपयोग संसार के दुःख देने में हो करेगा। अतः उसको उन्नति की उपमा धूमकेतु के उदय से दिया है। धूमकेतु को अधम ग्रह कहा। क्योंकि जब यह उदय होते हैं तब पीड़ा ही पहुँचाते हैं। कभी शुभ फल देते ही नही। देश के देश पर आफत ढहाते हैं।

संत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी॥
परम धरम स्रुति बिदित अहिंसा। पर निंदा सम अघ न गिरीसा॥११॥

अर्थ : सन्त का उदय सदा हितकारी होता है। जैसे चन्द्रमा और सूर्य संसार को सुख देनेवाले होते हैं। वेद विदित परम धर्म अहिंसा है और परनिन्दारूपी हिमालय के समान दूसरा पाप नही है।

व्याख्या : जिस भाँति सूर्य और चन्द्रमा के उदय से विश्व का घना सम्बन्ध है। सूर्य चन्द्र से ही ससार को प्रकाश मिलता है। ताप तथा ठण्डक मिलती है। सब व्यवहार चलता है। यथा जगहित हेतु बिमल विधु पूषन। सन्त लोगो से भी उसी भाँति ससार को दिव्य प्रकाश मिलता है। सन्तो से ही विधि निषेध की प्रवृत्ति मिलती है। संसार मे जो कुछ थोडा बहुत सुख है सो सन्तो की कृपा का ही फल है। सन्तो से दिन रात जगत् का हित हुआ करता है। अत उनका उदय भी नित्य है। दुष्ट के उदय के समय भी इनका उदय तो रहता ही है। क्योकि इनके बिना ससार चल नही सकता।

प्रश्न हुआ था कौन धर्म श्रुति विदित बिसाला। उत्तर दिया जाता है परम धर्म श्रुति विदित अहिसा। यथा अहिसा परमो धर्म। सर्वथा सर्वदा प्राणी मात्र से द्रोह न करने को अहिसा कहते हैं। अहिसा ही सब यम नियमो का मूल है। जाति देश काल और समय मे भी यदि इसमे व्यभिचार न हो तो यह महाव्रत हो जाता है।

जिस भाँति हिमालय पर्वतो का राजा है उसी भाँति निन्दा सब पापो से बडा पाप है। झूठे दोष कथन को निन्दा कहते हैं। सच्चा दोष कथन भी बडा पाप है। जो जिसका दोष कहता है वह उसकी कीर्तिमयी शरीर का हनन करता है। असत्य पर्वत के समान बडा पाप है। नहि असत्य सम पातकपुजा। गिरि सम होहि कि कोटिक गुंजा। वही असत्य जब पर दोष कथन से प्रगुणीकृत हुआ तब वह पर्वतराज हिमालय के तुल्य हो गया।

हरिगुर निंदक दादुर होई। जन्म सहस्र पाव तनु सोई ॥
द्विज निंदक बहु नरक भोग करि। जग जनमै बायस सरीर धरि ॥१२॥

अर्थ हरि और गुरु की निन्दा करनेवाला मेढक होता है और सहस्र जन्म तक वही शरीर पाता चला जाता है। ब्राह्मण की निन्दा करनेवाला बहुत नरक भोग करके कौवे का शरीर धारण करके जन्म लेता है।

व्याख्या मनुष्य योनि से ही भगवद् गुणानुवाद किया जा सकता है। यही इस योनि की विशेषता है। इस विशेषता का इतना बडा दुरुपयोग जिसने किया कि हरि और उनकी कृपा के साधन के उपदेष्टा गुरु की निन्दा की। उस निन्दा से यद्यपि हरि और गुरु की कोई क्षति नही हुई। पर उसने व्यर्थ का टर टर करने मे अपना जन्म गँवाया। इसलिए दूसरे जन्म म मनुष्य की योनि छीन ली गयी और व्यर्थ की टर टर करनेवाली मेढक की योनि मिली। उसने अनन्त की निन्दा की। इसलिए सहस्रो जन्म तक उस मेढक की ही योनि मिलती रहेगी।

पूर्वजन्म के कर्मों के विपाक से ही जाति आयु और भोग की प्राप्ति होती है। अपने उत्कर्ष के लिए प्रयत्न न करके स्वयं द्विज शरीरप्राप्ति की चेष्टा न करके जो ईर्ष्यावश द्विज की निन्दा करते हैं वे द्विजनिन्दक हैं। गो ब्राह्मण ही वैदिक धर्म के मूल हैं। एक मे गव्य निहित है और दूसरे म मन्त्र प्रतिष्ठित है। अत ब्राह्मण की

निन्दा प्रकारान्तर से वेदमार्ग की ही निन्दा हुई। अत: ऐसे निन्दकको अनेक प्रकार के नरक भोगने पडते हैं। नरक भोग के बाद भी उस महान् पातक का इतना प्रवल संस्कार होता है कि उसे कौए की योनि मिलती है।

द्विज निन्दक को अपना बड़ा भारी पक्ष रहता है। उसके आगे वह वेदशास्त्र का अनादर करता है और स्वयं समयोपयोगी धर्मशास्त्र निर्माण का दावा करता है। जाति पाँति तोड़ने की अनेक चेष्टा करता है। सत्य वचन पर विश्वास नही करता। कौए की भाँति डरा करता है कि यही ऋषियो ने वेद शास्त्र ब्राह्मणो के लाभ के लिए तो नही बनाया : इत्यादि। यथा सत्य वचन विस्वास न करही। बायस इव सबही ते डरही। सठ स्वपक्ष तब हृदय बिसाला। सपदि होहि पक्षी चडाला। यही कारण है कि जिससे उसे कौए की योनि मिलती है।

सुर स्रुति निंदक जे अभिमानी। रौरव नरक परहि ते प्रानी॥
होहि उलूक संत निदारत। मोह निसा प्रिय ज्ञान भानु गत॥१३॥

अर्थ : जो अभिमानी प्राणी देवता और वेद की निन्दा करते हैं वे रौरव नरक मे पड़ते हैं। सन्त की निन्दा में लगे हुए उल्लू होते हैं। ज्ञानरूपी सूर्य के अस्त हो जाने पर जो मोहनिशा होती है वही उन्हे प्यारी है।

व्याख्या : वेद ही आदि शास्त्र है। वेद के ज्ञान से ही संसार मे प्रकाश है। जितने प्रचलित मत हैं उनमे से वेदोदित धर्म निकाल लिया जाय तो उनमे कुछ नही रह जाता। अत: सबके सब वेदोपजीवी हैं। परमेश्वर के उस आदि उपदेश की जो निन्दा करता है वह श्रुतिनिन्दक है। वेद प्रतिपाद्य देवता लोग ही ससार के अधिकारी हैं। चारो ओर से विश्व की रक्षा किया करते हैं। उनकी निन्दा करनेवाला सुरनिन्दक है। वह निन्दक रौरव नरक मे पड़ता है। यहाँ रौरव शब्द उपलक्षण है। रौरव महारौरव कालसूत्र अन्धतामिस्र तथा अवीची सबका बोधक है। श्रुति तथा देवताओ ने उसका कुछ नही बिगाडा। पर अनुशासन उसे सह्य नही है : केवल अभिमान वश निन्दा करता है। इसलिए उसे अभिमानी कहा।

सन्त लोग राम सुयश की वर्षा करके ससार को मङ्गलमय बनाया करते हैं। वे ही ज्ञानभानु हैं उन्ही के वचन के प्रकाश से हृदय की कली विकसित होती है। उनकी जो निन्दा करता है वह नि:सन्देह प्रकाश का वैरी है। वह अविद्यान्धकार मे ही रहना चाहता है। इसी जन्म में उसमे उल्लू के लक्षण घटते हैं। मरने पर उसको उलूक की योनि मिलनी स्वभावसिद्ध है।

सबकै निन्दा जे जड़ करही। ते चमगादुर होइ अवतरही॥
सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन्ह तें दुख पावहि सब लोगा॥१४॥

अर्थ : जो अज्ञानी सबकी निन्दा करते हैं वे चमगादड़ होकर जन्म ग्रहण करते हैं। हे तात ! अब मानस रोगो को सुनो जिनसे सब लोग दु:ख पाते हैं।

व्याख्या : १. हरि गुरु २. द्विज ३. सुर श्रुति और ४. सन्त। इनमे से एक

एक की निन्दा करनेवालो की गति पृथक् पृथक् कहकर अब सबकी निन्दा करनेवाले की गति कहते हैं कि ऐसे जडो को चमगोदड की योनि मिलती है।

चमगादुर देह मे ही उपर्युक्त चारो निन्दको की प्रवृत्ति चरितार्थ होती है। चमगादुर मेढक की भाँति सदा शब्द किया करता है। कौए की भाँति छली मलिन और अविश्वासी होता है। मुख से मल त्याग करता है। उलटा लटका रहता है। इस भाँति जीतेजी नरक भोगता है। उल्लू की भाँति उसे अन्धकार प्रिय है। पापियो के मुकुटमणि होने से उनके जन्म को अवतार कहा।

प्रश्न हुआ था ' मानस रोग कहहु समुझाई। उत्तर देते हुए श्रोता को सावधान करने के लिए : सुनहु तात कहते हैं। यह प्रश्न बडा मार्मिक है। इसका सम्बन्ध भवसागर सन्तरण से है। जिस भाँति स्थूल शरीर मे रोग होते हैं उसी भाँति सूक्ष्म शरीर मे भी रोग होते हैं। थोडा सा परिचय के लिए शारीरक रोगो से उनकी तुलना की जायगी : पूर्व सवाद ज्ञान भक्ति भेद प्रकरण मे इन सातो प्रश्नो के बीज हैं। वे मानसिक रोग ऐसे भयानक हैं कि इनसे सब लोग दु ख पा रहे हैं और उन्हे यह पता भी नही है कि उन्हे रोग हुआ है।

मोह सकल ब्याधिन कर मूला। तेहिते पुनि उपजहि बहु सूला ॥
काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥१५॥

अर्थ ' सब व्याधियो का मूल मोह है। उसीसे अनेक प्रकार के शूल उठते हैं। काम वात है और अपार लोभ कफ है और क्रोध नित्य छाती जलानेवाला पित्त है।

व्याख्या : शारीरिक और मानसिक सभी रोगो का मूल मोह अज्ञान है। शारीरिक रोगो का मूलभूत प्रज्ञापराध भी अज्ञान के ही अन्तर्गत है। उसीसे मिथ्याहार विहार होता है। जो आठ प्रकार के शूलो का कारण है। इसी भाँति अज्ञान से सस्पर्शज भोगो मे प्रवृत्ति होती है और उससे अनेक प्रकार के मानसिक शूल होते हैं।

जिस भाँति यह स्थूल शरीर वात कफ और पित्त से धृत है उसी भाँति मानसिक शरीर काम राग क्रोध द्वेष और लोभ तृष्णा से धृत है। परन्तु ये ही जब साम्यावस्था छोडकर कुपित हो जाते है तो शरीरो मे रोग के कारण होते हैं।

काम की उपमा वात से दी गयी है क्योकि यही गतिशील है। कफ और पित्त को जहाँ ले जाता है वही जाकर मेघ की भाँति वर्षा करते हैं। इसी भाँति मानसिक शरीर मे काम नेता है। स्थूल शरीर मे न कफ का पार मिलता है और न मानसिक शरीर मे लोभ का पार है। पित्त भी अग्नि है। वह कुपित होकर कलेजे मे दाह उत्पन्न करता है। इसी भाँति क्रोध भी अग्नि है। इससे दाह होना सर्वजन प्रत्यक्ष है। अत. लोभ की कफ से और पित्त की क्रोध से उपमा दी गयी है।

प्रीति करहि जो तीनिउ भाई। उपजै सन्यपात दुखदाई ॥
विषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना ॥१६॥

अर्थ : यदि तीनो भाई प्रीति करें तो दु खदायी सन्निपात उत्पन्न होता है। वपथ के अनेक दुर्गम मनोरथ शूल हैं। उनके नाम कौन जान सकता है।

व्याख्या · वात वफ और पित्त ये तीनो भाई हैं। पर तीनो प्रीति नही करते। अकेले भी रोग उत्पन्न करने मे समर्थ है। यदि आपस मे प्रीति करके तीनो प्रधान हो जायँ तो सन्निपात होकर मनुष्य काल के वशीभूत हो जाता है। इसी भाँति यदि काम क्रोध लोभ तीनो बढें तो मानसिक शरीर का पतन अनिवार्य है। इसमे वडा दु ख होता है। प्रलाप भी होता है। यथा : सन्यपात जल्पसि दुर्बादा। भयेसि काल बस खल मनुजादा।

शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध : ये पाँच विपय हैं। इनमे से एक एक के अनेक भेद हैं। अत इनसे असख्य मनोरथ उत्पन्न होते हैं। मनोरथ सब के सब दु खदायी हैं। ये ही दु ख रूप मे परिणत हो जाते हैं इसीलिए इन्हे शूल वहा। यद्यपि वफकृत पित्तकृत भी शूल होते हैं पर सबो का प्रभु बात ही है। इसी भाँति क्रोधकृत लोभकृत भी शूल होते हैं। पर प्रभु सबका काम ही है।

ममता दादु कडु इरपाई। हरप विपाद गरह वहुताई॥
पर सुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलाई॥१७॥

अर्थ ममता दाद और ईर्षा खुजली है। हर्प और विपाद बहुत से ग्रह हैं। पराया सुख को देखकर जलना · क्षयी रोग है और दुष्टता मनकी कुटिलता कुष्ठ रोग है।

व्याख्या शरीर के मल से उत्पन्न जूँ लीख आदि से दद्रु मण्डलवाली फुनसियाँ होती हैं। इसके खुजाने मे बडा सुख मिलता है परन्तु पीछे से वडा कष्ट होता है। इसकी गिनती क्षुद्र कुष्ठ मे है।

ममता की भी यही दशा है। यह मन की क्षुद्र दुष्टता है। ममता के सघर्प मे बडा सुख मिलता है पर अन्त मे कडा कष्ट होता है। शरीर से उत्पन्न बाल बच्चे तथा सम्बन्धियो मे ममता होती है। इसीलिए इसे दद्रु रोग से उपमित किया।

कण्डु का नाम ही खुजली है यह भी क्षुद्र कुष्ठ है। जूँ और लीख इसके भी कारण हैं। खुजली म छोटी फुनसियाँ बहुत होती हैं पर उनका कोई मण्डल नही होता। खुजली मे दाह होता है।

इसकी उपमा ईर्षा से दी गयी है। ईर्षा के विपयो की कमी नही है। इसीसे छोटी छोटी फुनसियो की भाँति मानसिक शरीर म विकार होता है। उन विकृतस्थलो से मलस्राव होता है। उसम दाह होता है। इसलिए ईर्षा को कण्डु कहा।

यहाँ ग्रह से वैद्यक मे माने हुए ग्रह अभिप्रेत हैं। उसम देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, पिशाच, राक्षसादि अनेक ग्रह कहे गये है जो उन्माद उत्पन्न करते हैं। किसी ग्रह मे मनुष्य हर्पित होता है और किसी मे विपादयुक्त होता है पर है उन्माद ही। इसी भाँति मनुष्य से हर्प विपाद की अनेक चेष्टाएँ होती हैं। पर वे सब उन्मत्त चेष्टा की

भाँति परिणाम मे दु ख देनेवाली होती हैं। इसीलिए हर्ष विषाद को ग्रह की बहुतायत कहा।

पराया सुख देखकर जिसे जलन पैदा हो। समझ लीजिए कि उसे क्षयी की बीमारी हो गयी। ससार मे किसी न किसी को तो सुख रहेगा ही। अत उसकी जलन जा नही सकती। यह जलन उसके सद्गुणो का क्षय करती ही रहेगी। मत्सर और अविवेक रूपी ज्वर उसे सदा बना रहेगा। मानसिक शरीर का नाश करके ही छोडेगा। क्षयी छ प्रकार का होता है। काम क्रोधादि शत्रु भी छ माने गये हैं। अत मानसिक क्षयी का भी छ प्रकार का होना युक्तियुक्त है।

कुष्ठ रोग सब रोगो से विशेष घृणित है। इससे शरीर ही बिगड जाता है। उसके शरीर से दुर्गन्ध आती है। कोई उसे पास नही बैठने देता है।

कुटिलता ही कुष्ठ है। कुटिल का दुर्नाम होता है। कोई उसके साथ व्यवहार नही चाहता। उसके ससर्ग से दूसरो म भी कुटिलता आ जाती है। इसलिए कुटिलता को कुष्ठ रोग कहा।

अहकार अति दुखद डमरुआ। दभ कपट मद मान नहरुआ ॥
तृस्ना उदर वृद्धि अति भारी। त्रिविध ईपना तरुन तिजारी ॥१८॥

अर्थ अहकार अति दु ख देनेवाला डमरुआ रोग है और दम्भ, कपट, मद और मान नहरुआ है। तृष्णा विषय प्राप्ति की इच्छा अत्यन्त भारी उदर वृद्धि है और तीनो ऐषणाएँ बलवान तिजारी रोग हैं।

व्याख्या ससृत मूल सूल प्रद नाना। सकल सोकदायक अभिमाना। अहङ्कार से रूप बेढङ्गा हो जाता है। उसकी शकल देखने से चिढ होती है। डमरुआ सम्भवत गलगण्ड रोग को कहते हैं। बँधा हुआ शोथ जो गल मे मुष्क की भाँति लटकता है उसे गलगण्ड कहते हैं। गलगण्ड के रोगी को सूई के चुभने की सी पीडा होती है। उसको देखने से लोगो को चिढ सी मालूम होती है। रोग बढ जाने से श्वास लने मे पीडा होती है। इसलिए अहङ्कार को डमरुआ कहा।

नहरुआ स्नायुज रोग है। दोष कुपित होकर शोथ पूर्वक पैर म घाव कर देते हैं। उसम अनेक कीट एकत्रित होकर सूत्राकार म बाहर निकलते हैं और बढते जाते है। बडे यत्न से उस सूत्र की रक्षा की जाती है। यदि किसी प्रकार से टूट जाय तो बडा अनर्थ करता है।

इसी भाँति ढकोसला, छल, मद और मान ये सब सम्बद्ध होकर एक सूत्र म परिणत हो जाते हैं। ये बढते ही जाते हैं। बडे प्रयत्न से इनकी रक्षा करनी पडती है। यदि भङ्ग हो जाय तो बडा कष्ट होता है। इसलिए दम्भ कपट मद मान को नहरुआ रोग कहा।

विषय प्राप्ति की प्यास को तृष्णा कहते हैं। यह प्यास मिटती नही। दिन पर दिन बढती जाती है। शरीर घटता जाता है। वह क्षीण हुआ जाता है पर तृष्णा की वृद्धि नही रुकती। इसी भाँति जिसे उदर रोग हो जाता है उसका

शरीर और बल घटने लगता है पर उदर बढता ही जाता है। इसीलिए तृष्णा को उदरवृद्धि से उपमित किया।

सुत वित लोक ईषना तीनी। केहिके मति इन्ह कृत न मलीनी। इन्ही तीनो एषणाओ को तरुण तिजारी से उपमित किया है। क्योकि तरुण तिजारी बडे वेग से जाडा देकर आती है। त्रिविध एषणा म भी रह रहकर भारी जडता उत्पन हो जाती है और छूटती भी वडी कठिनता से है।

जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिवेका। कहँ लगि कहौ कुरोग अनेका ॥१९॥

अर्थ मत्सर और अविवेक दोनो प्रकार के ज्वर हैं। कहाँ तक कहूँ अनेक कुरोग हैं।

व्याख्या देह, इन्द्रिय और मन को ताप पहुँचानेवाला सब रोगो से ज्येष्ठ और बलवान् रोग ज्वर है। पहिले जो महेश्वर के कोप से उत्पन हुआ। उसे माहेश्वर कहते हैं। उसके आठ भेद हैं। पीछे से श्रीकृष्ण के कोप से वैष्णव ज्वर उत्पन्न हुआ। उसके पाँच भेद है। पहिले को आम और दूसरे को विषम कहते हैं।

जिस भाँति स्थूल शरीर मे आम ज्वर और विषम ज्वर होता है उसी भाँति सूक्ष्म शरीर मे अविवेक और मात्सर्य है। अविवेक भी देहेन्द्रिय मनस्तापी है और मत्सर स्वभावगत होकर सन्ताप पहुँचाया करता है। इसलिए आमज्वर से अविवेक उपमित है और मात्सर्य से विषमज्वर उपमित है।

इस भाँति अनेक कुरोग हैं। कहाँ तक गिनाया जाय। दिग्दर्शन के लिए ग्यारह रोगो का परिचय दिया गया है। जिसकी दवा नही है उसी को कुरोग कहते हैं।

दो एक ब्याधि बस नर मरहिं, ए असाधि बहु ब्याधि।
पीडहि सतत जीव कहुँ, सो किमि लहै समाधि ॥१२१ क.

अर्थ एक व्याधि के वश मे पड जाने से मनुष्य मर जाता है। ये तो असाध्य व्याधियाँ हैं और बहुत हैं। ये सदा जीवो को पीडा दिया करती हैं। फिर जीव समाधि को कैसे प्राप्त हो।

व्याख्या एक व्याधि के वश मे पड जाने पर फिर रक्षा नही है और यहाँ तो एक एक व्याधियाँ असाध्य हैं और सभी सबको हैं। अत प्रमाद से रक्षा नही और प्रमाद ही मृत्यु है। जितने रोग हैं सबकी पीडाएँ पृथक् प्रकार की हैं। उन पीडाओ का अनुभव करता हुआ पुरुष दिनरात विकल रहा है

जिस भाँति विकार रहित शरीर का होना शारीरिक स्वास्थ्य है। उसी भाँति मन का निर्विकार होना अर्थात् समाधि मानसिक स्वास्थ्य है। अत ऐसी अवस्था म समाधि सर्वथा असम्भव है।

दो नेम धर्म आचार तप, ज्ञान जज्ञ जप दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहि, रोग जाहिं हरिजान ॥१२१॥

अर्थ : नियम धर्म आचार तप ज्ञान, यज्ञ, जप, दान, इत्यादि करोड़ों दवाएँ हैं। पर हे गरुड़जी ! रोग जाता नही।

व्याख्या : शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान नियम हैं। श्रुति स्मृति सदाचारानुकूल आचरण ही आचार है। स्वधर्मानुष्ठान तप है। समदर्शित्व ज्ञान है देव प्रीत्यर्थं द्रव्य दान यज्ञ है। मन्त्र का बार बार पाठ जप है। अपना स्वत्व हटाकर दूसरे का स्वत्व स्थापन करना दान है। ये ही सब रोगो की औषध है और सम्पूर्ण वेद पुराण ओषधि से भरे पड़े हैं। पर इनसे रोग भले ही कुछ देर के लिए दब जाय पर निर्मूल नही होते। अतः ये प्रकृत औषध नही हैं।

एहि विधि सकल जीव जग रोगी। सोक हर्ष भय प्रीति बियोगी ॥
मानस रोग कछुक मै गाए। हहिं सबके लखि बिरलेन्हि पाए ॥१॥

अर्थ : इस विधि से ससार के सब जीव रोगी हैं। सबको शोक, हर्ष, भय, प्रीति और वियोग है। कुछ तो मानस रोग मैंने गाकर कहे। ये हैं तो सबको पर विरलों ही ने जान पाया है।

व्याख्या : इन रोगो से संसार के जीव जन्तु तक रोगी हैं। केवल मनुष्य चिकित्सा के लिए यत्न कर सकता है और प्राणी तो कुछ कर भी नही सकते। रोगों के कारण सब दुर्दशाग्रस्त हैं। कभी हर्ष से उछल पड़ते हैं। कभी शोक सागर में डूब जाते हैं। कभी भयभीत हो उठते हैं। कभी प्रेम में मग्न हो जाते हैं और कभी वियोग मे पड़े हाय हाय करते हैं।

मानस रोगों की यह विशेषता है कि रोगी को यह पता भी नही चलता कि हम रोग से दुःखी हो रहे हैं। वह दुःख के कारण को बाहर खोजता है। ऐसा ही कोई विरला पुरुष जान पाता है कि मैं रुग्ण हूँ और मुझे अमुक रोग पीड़ा दे रहा है।

जानेतें छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन परतापी ॥
बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदय का नर बापुरे ॥२॥

अर्थ : जान लेने से ये पापी कुछ छीजते हैं। पर ये जनपरितापी नाश को नही प्राप्त होते। मुनि के हृदय में भी विषय कुपथ्य पाकर अङ्कुरित हो उठते हैं। मनुष्य बेचारे क्या हैं।

व्याख्या : काम क्रोधादि को पापी जनपरितापी कहा। क्योंकि ये सबको पीड़ित किया करते हैं और न चाहने पर भी बलात् पाप करा ही देते हैं। ये मित्र रूप से आकर सद्गुणो का हरण करते हैं। इन्हे लोग शत्रु रूप से नहीं जानते। यदि जान जायें तो बलात् आ जाने पर भी उन पर अहित भावना होने से उनका वेग क्षीण हो जाता है। औषध के प्रयोग से प्रसुप्त ये तनु या विच्छिन्नावस्था को प्राप्त हो जाते हैं। पर निर्मूल नहीं होते।

मानस रोग के लिए विषय कुपथ्य है। सो जहाँ विषय की प्राप्ति हुई वहाँ से

मुनियो के हृदय मे भी अङ्कुरित हो उठते हैं। मनुष्य बेचारो की क्या गिनती है। यथा देखि रूप मुनि बिरति बिसारी। बडी बार लगि रहे निहारी।

रामकृपा नासहि सब रोगा। जौ इहि भाँति बनै सजोगा ॥
सद्गुरु बैद बचन बिस्वासा। सजम यह न बिषय कै आसा ॥३॥

अर्थ यदि इस भाँति सयोग जुट जाय तो रामकृपा से सब रोग नष्ट हो जाते हैं। सद्गुरु वैद्य के वचन पर विश्वास हो। सयम यह है कि विषय की आशा न हो।

व्याख्या सूर्य नारायण की कृपा तो बराबर होती ही आती है। पर रूई का गट्ठा नही जलता। सूर्यकान्तमणि और जलानेवाला दोनो इकट्ठे हो जाय तो गट्ठा जला जलाया ही है। इसी भाँति रामकृपा तो बराबर होती चली आ रही है। पर कोई आत्मकृपावाला सूर्यकान्तमणि लेकर जलाने आवे तो ये क्लेश जले जलाये ही हैं।

सब रोगो का जड मोह है। उसके नाश होने पर सब रोग अपने आप नष्ट हो जाते है। वैद्य, अधिकारी रोगी, सयम, औषध और अनुपान इकट्ठे हो जांय तो सिद्धि निश्चित है।

जिसके वचन से मोह का नाश हो वह सद्गुरु हैं। जिस भाँति वैद्य रोगी के रोग को पहिचानकर उसकी अवस्था के अनुसार औषध का विधान करता है। उसी भाँति सद्गुरु शिष्य के मानसिक रोगा का तारतम्य समझकर तदनुसार मन्त्र ध्यानादि की व्यवस्था करता है। वैद्य के यदि निदान मे चूक हुई तो उपयुक्त औषध नही दे सकेगा। अत सद्वैद्य की ही चिकित्सा करनी चाहिए। यहाँ सद्गुरु ही सद्वैद्य है। उसके वचन पर विश्वास होना चाहिए और उसे जिस भाँति रोगी को कुपथ्य से बचना आवश्यक है। उसी भाँति साधक को भी विषय की आशा का परित्याग आवश्यक है।

रघुपति भगति सजीवनि मूरी। अनूपान श्रद्धा अति रूरी ॥
एहि बिधि भलेहि रोग नसाही। नाहित जतन कोटि नहि जाही ॥४॥

अर्थ रघुपति भक्ति ही सजीवनी बूटी है और अतिसुन्दर श्रद्धा ही अनुपान है। इस विधि से सुभीते के साथ रोग नष्ट होते हैं। नही तो कोटि यत्न से भी नही जाते।

व्याख्या जिस भाँति असाध्य रोगो के प्रशमन मे सञ्जीवनी बूटी ही समर्थ है। उसी भाँति इन मानसिक रोगो के निर्मूलन मे सगुण ब्रह्म रामकी भक्ति ही समर्थ है। वेद पुराण रूपी पावन पर्वत म ही यह बूटी प्राप्त है। इस बूटी के भी सजातीय और स्वगत भेद है। इसी भाँति उपासना की प्रक्रियाओ म भी भेद है। वैद्यरूपी सद्गुरु ही जानते हैं कि कौन सा मन्त्र किस प्रकृति के पुरुष के अनुकूल होगा इत्यादि।

तथा अतिशुद्ध सात्त्विकी श्रद्धा के साथ दीक्षा ग्रहण तथा अनुष्ठान ही अनुपान है। औषध के प्रभाव को यथेप्सित कार्य करने मे प्रवृत्त करता है।

असाध्य रोगो से ग्रस्त मन भक्ति करने में सर्वथा असमर्थ है। अतः रोगो को दूर करने के लिए उसे सद्गुरु द्वारा राममन्त्र की दीक्षा लेनी चाहिए। यथा : वेगि विलम्ब न कीजिये लीजै उपदेस। महामन्त्र जपिये सोई जो जपत महेस। विनय गुरु के उपदेश पर विश्वास करके चलना चाहिए। सात्त्विकी श्रद्धा के साथ अनुष्ठान करना चाहिए। यही विधि है। श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ की दी हुई दीक्षा अमोघ है। उसका प्रभाव विना पडे नही रह सकता। भक्ति के जाग उठने पर काम क्रोधादि से भय नही रह जाता। भक्त के सामने सदा सगुण ब्रह्म की दिव्यातिदिव्य कल्याणमयी मूर्ति रहती है। स्थूल विषय उसे नही जँचते। इस विधि से अल्पायास से ही रोगो का नाश होता है। अन्य साधनो से निर्मूल हो नही सकते।

जानिअ तब मन बिरुज गोसाँई। जब उर बल बिराग अधिकाई॥
सुमति छुधा बाढै नित नई। बिषय आस दुर्बलता गई॥५॥

अर्थ : तब मनको नीरोग समझना जब हृदय मे विरागरूपी बल बढे। हे गोसाईं! जब सुमतिरूपी भूख नित्य नयी बढने लगी और विषयाशारूपी दुर्बलता चली गयी।

व्याख्या : जिस भाँति स्थूल शरीर मे भूख है। उसी भाँति मानसिक शरीर मे सुमति है। यही भजन के लिए जलन पैदा करती है। यही भजन का परिपाक करके विरागरूपी बल बढाती है। सञ्जीवनी भक्ति कुमति का नाश करके सुमति बढ़ाती है। रोग विनिर्मुक्त होने पर नित्य नयी भूख बढती है। इसी भाँति मानसिक रोग नष्ट होने पर भजन की ओर प्रवृत्ति बढती ही जाती है। विषय की आशा को तो सयम के समय से ही छोड रक्खी थी। पर वह गयी नही थी। विराग बल के बढ जाने से वह आप से आप चली जाती है। रोग विनिर्मुक्त मन का यही लक्षण है कि विराग बढ़े और सरकार के चरणो मे अनुराग बढता जाय।

बिमल ज्ञान जल जब सो नहाई। तब रह राम भगति उर छाई॥
सिव अज सुकसनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद॥६॥

अर्थ : निर्मल ज्ञान जल से जब वह नहाता है। तब रामभक्ति उसके हृदय मे छा जाती है। शिव, ब्रह्मा, शुक, सनकादि, नारद और जितने मुनि ब्रह्म विचार में विशारद हैं।

व्याख्या : संशय रहित ज्ञान ही गुरु उपदेश का फल है। जबतक भजन करते करते मन मे प्रबल वैराग्य न हो जाय तबतक वह निर्मल ज्ञान का अधिकारी नही है। उसे ज्ञान जल से स्नान न कराना चाहिए। भली भाँति रोग विनिर्मुक्त तथा पुष्ट देखकर तभी वैद्य रोगविनिर्मुक्त स्नान कराते हैं। गुरुजी ज्ञानोपदेश करते हैं तब मनोमल, शोक, हर्ष, भय प्रीति और वियोग मिट जाता है।

तब सिद्धा भक्ति हृदय मे छा जाती है और जब भक्ति बस गयी तब माया की प्रभुता नही चलती। यथा :

सेवत साधु द्वैत भय भागे। श्री रघुबीर चरन लय लागे ॥
अनुराग सों निज रूप जो जग ते बिलच्छन देखिये।
संतोष सम सीतल सदा दम देहवत न लेखिये।
निरमल निरामय एकरस तेहि हरष सोक न ब्यापई।
त्रैलोक पावन सो सदा जाकी दसा ऐसी भई। विनय

' शिवजी ब्रह्मदेव, शुकदेव, सनकादिक और नारद ये महात्मा ब्रह्मविद्या सम्प्रदाय प्रवर्तक हैं और भी जितने मुनि ब्रह्म विचार मे विशारद हैं। जो ये लोग कहे वही प्रमाण है। सो '

सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा ॥
स्रुति पुरान सब ग्रन्थ कहाही। रघुपति भगति बिना सुख नाही ॥७॥

अर्थ हे खगनायक! सबका यही मत है कि रामजी के चरण कमलों मे प्रेम करना चाहिए। वेद पुराण और सब ग्रन्थ कहते हैं कि रघुपति की भक्ति के बिना सुख नही है।

व्याख्या : इन सभी महामहिम महात्माओ का यह मत है कि राम आनन्द सिन्धु हैं। सुख की राशि हैं। उनके चरणकमलो मे प्रेम करने से सब सुख तुरन्त सुलभ होते हैं। यथा बिनु बिराग जप जाग जोग ब्रत बिनु तप बिनु तनु त्यागे। सब सुख सुलभ सद्य तुलसी प्रभुपद प्रयाग अनुरागे। सभी आप्तो का ऐकमत्य कहकर अब सभी आप्तवाक्यो का ऐकमत्य कहते हैं कि वेद पुराण तथा सब सद्ग्रन्थो का यही मत है कि बिना रघुपतिभक्ति के सुख नही है और सुख की चाह सभी को रहती है। अतः रघुपति भक्ति का समर्थन सब महात्मा एक स्वर से करते हैं। यथा : इहै कह्यो सुनु बेद चहूँ। श्री रघुबीर चरन चिंतन तजि नाहिन ठौर कहूँ।

कमठ पीठि जामहि बरु बारा। बन्ध्यासुत बरु काहुँहि मारा ॥
फूलहि नभ बरु बहु बिधि फूला। जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला ॥८॥

अर्थ : चाहे कछुए के पीठ मे बाल जमे। चाहे बन्ध्या स्त्री का बेटा किसी को मारे चाहे अकाश मे अनेक प्रकार के फूल फूलें पर जीव हरि के प्रतिकूल होने से सुख नही पाता।

व्याख्या : कछुए को बाल होता ही नही फिर उसकी पीठ मे तो हड्डी है। उसमे बाल जम ही नही सकता। सो ऐसी अनहोनी बात चाहे हो जाय। इसी भाँति वन्ध्या को बेटा होना और उसका किसी को मारना किसी प्रकार से सम्भव ही नही। आकाश मे फूल फूलना भी महा असम्भव है। सो ऐसी न घटनेवाली घटनाएँ चाहे घट जायँ। पर हरि के प्रतिकूल होने पर जीवको सुख मिले यह बात हो नही सकती। यथा : मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ बिप सुनु हरिजाना। मित्र करै सत

रिपु कै करनी। ता कहँ बिबुध नदी बैतरनी। सब जग ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता।

तृषा जाइ बरु मृगजल पाना। बरु जामहिं सससीस बिपाना॥
अंधकार बरु रबिहि नसावै। राम बिमुख न जीव सुख पावै॥९॥

अर्थ : चाहे मृग जलपान से प्यास चली जाय और चाहे खरगोश के सिर मे सींग जम जाय। चाहे अन्धकार सूर्य का नाश कर दे पर राम के विमुख होकर जीव सुख नही पाता।

व्याख्या : मरुभूमि मे सूर्य की प्रखर किरणो के चमक में जल ही जल दिखायी देता है। उसको पीने के लिए दौडते मृग मर जाते हैं। उसीको मृगजल कहते हैं। वहाँ जल का एक बूंद भी नही। वहाँ प्यास और बढती है। प्यास बुझाने को तो वहाँ कोई बात ही नहीं है। केवल जल का मिथ्या भान होता है।

खरगोश के सीग का होना मिथ्या नही। तीन काल मे असत् है। उसका मिथ्या भान भी नही होता। अन्धकार सूर्य के उदय होते ही नष्ट हो जाता है। वह सूर्य का नाश क्या करेगा ? सो चाहे मृगजल से प्यास बुझे : खरगोश को सीघ हो और अन्धकार सूर्य का नाश कर दे पर रामविमुख होने से जीव को सुख नही मिल सकता। जो आनन्द सिन्धु सुखराशि हैं। सीकर से लेकर त्रैलोक्य का प्रकाश करता है। उसीके जो विमुख हो गया वह सुख कैसे पावेगा। उसकी सम्पत्ति प्रभुताई चली जायगी। यथा : राम बिमुख सम्पति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई।

हिम ते अनल प्रगट बरु होई। बिमुख राम सुख पाव न कोई॥१०॥

अर्थ : चाहे पाला से अग्नि प्रकट हो जाय पर राम के विमुख होने से कोई सुख नही पाता।

व्याख्या : पाला अग्नि के सन्निकट नही जाता। उससे अग्नि क्या पैदा होगी ? इसी भाँति जिसके प्राणाराम राम विमुख हुए उसके सन्निकट सुख नही जा सकता। उसे सुख की प्राप्ति कहाँ से होगी ? यथा : सुनु दसकठ कहौ प्रन रोपी। बिमुख राम त्राता नहि कोपी।

दो. बारि मथे घृत होइ बरु, सिकतातें बरु तेल।
बिनु हरिभजन न भव तरिअ, यह सिद्धान्त अपेल॥१२२ क.

अर्थ : जल का मन्थन करनेसे चाहे घी निकले। बालू से चाहे तेल निकले पर बिना हरिभजन संसार सन्तरण नही हो सकता। यह सिद्धान्त अटल है।

व्याख्या : जो वस्तु जिसमे सूक्ष्म रूप से अवस्थान करती है। वही प्रयत्न करने पर उसमे से निकलती भी है। दूध मे घृत सूक्ष्म रूप से अवस्थान करता है तिल मे तेल सूक्ष्म रूप से अवस्थान करता है। अतः प्रयत्न करने पर प्रगट भी होत

है। जल में घी सूक्ष्म रूप से भी अवस्थान नही करता। बालू में तेल सूक्ष्म रूप से भी अवस्थान नहीं करता। अतः हजार प्रयत्न करने से भी नही निकल सकता। इसी भाँति भव सन्तरण का सामर्थ्य हरि भजन में निहित है। अतः जिस साधन में हरि भजन निहित नही है उससे संसार सन्तरण नही हो सकता। यह तत्त्वदर्शियों का निश्चय है। अतः इसे अटल सिद्धान्त कहते हैं। यथा : नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। उभयोरपि दृष्टोन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।

यहाँ पाँच बार सुख का निषेध किया। यथा : १. भगति बिना सुख नाही २ जीवन लह सुख ३. न जीव सुख पावै ४. सुख पाव न कोई और ५. न भव तरिअ। इसका भावार्थ यह कि बिना हरि भजन के पाँचों प्रकार के सुख : १. योगानन्द २ आत्मानन्द ३. अद्वैतानन्द ४. विद्यानन्द और ५. विषयानन्द मे से किसी का भी होना सम्भव नही। यह क्रम से दिखलाया।

दो. *मसकहि करै बिरंचि प्रभु, अजहि मसक ते हीन।*
अस बिचारि तजि संसय, रामहि भजहि प्रबीन ॥१२२॥

अर्थ : प्रभु मच्छर को ब्रह्मा बनाते हैं और ब्रह्मा को मच्छर से भी छोटा कर देते हैं। ऐसा विचारकर सशय रहित हो जानकार लोग राम को भजते हैं।

व्याख्या : सरकार का सामर्थ्य कहते हैं। वे मच्छर को ब्रह्मदेव बनाते हैं। ब्रह्मदेव को मच्छर से भी तुच्छ बना देते हैं। ऐसी उनकी प्रभुता है। जो आज ब्रह्मदेव हैं निश्चय किसी समय वे मसक योनि मे थे और जो आज मच्छर हैं सम्भव है कि वह किसी समय ब्रह्मा रहा हो। क्योंकि ब्रह्मलोक से भी पतन सुना जाता है। आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन। ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी।

अनन्तकाल से हमलोग कल्याण के लिए प्रयत्न करते चले आये हैं। पर जिसे कल्याण कहते हैं वह तो नही हुआ। अतः समर्थ का आश्रय ग्रहण ही एक मात्र उपाय है। प्रवीण लोग इसलिए सशय छोड़कर राम को भजते हैं। संशय छोड़ने से छूटता है। इसीलिए शकरजी कहते हैं : तजि संसय भजु राम पद।

श्लो. विनिश्चितं वदामि ते, न अन्यथा वचांसि मे।
हरिं नरा भजंति येऽतिदुस्तरं तरंति ते ॥

अर्थ : मैं तुमसे निश्चय बात कहता हूँ। मेरी बातें अन्यथा नही होतीं। जो नरहरि को भजते हैं वे अति दुस्तर को तर जाते हैं।

व्याख्या : भुसुण्डिजी तर्क वितर्क से अच्छी तरह से संशयापनोदन करके अब सबका निर्गलितार्थ अपना सिद्धान्त कहते हैं और श्रोता की आस्था को दृढ करने के लिए यह भी कहते हैं कि मेरी बातें अन्यथा नही होतो। अतः सन्देह न करो। जो

नर हरि का भजन करते हैं वे अतिदुस्तर भवसागर को तर जाते हैं। उनका बेड़ा पार है। इसमें सन्देह नहीं है।

परिशिष्ट

कहेउ नाथ हरिचरित अनूपा। ब्यास समास स्वमति अनुरूपा ॥
स्रुति सिद्धान्त इहै उरगारी। राम भजिय सब काम बिसारी ॥१॥

अर्थ : हे नाथ! मैंने अनूप हरि चरित अपनी मति के अनुसार विस्तार और संक्षेप से कहा। हे उरगारि! वेदों का यही सिद्धान्त है कि सब काम भुलाकर राम को भजे।

व्याख्या : हरिचरित वेदमार्ग संस्थापन के लिए होता है। एवं वेदोदित सम्पूर्ण आदेश स्वयं पालन करके जीते जागते रूप मे भगवान् सबके सामने आदर्श खड़ा कर देते हैं। हरि ने रामावतार में जो चरित किया सो वस्तुतः अनूप है। कही किसी अवतार में ये बातें नही पायी जाती। यथा : ऐसी अनूप कहै तुलसी रघुनायक की अगुनी गुन गाहै। आरत दीन अनाथ को रघुनाथ करैं निज हाथ की छाहैं : कवितावली। जगत् से विलक्षण रामजी के नाम, रूप, लीला और धाम सभी अनूप हैं। उन्हें अपनी बुद्धि के अनुसार कही विस्तार से कहा है और कही सक्षेप से कहा है।

काम का अर्थ सुख भी है। जबतक दूसरे सुख याद हैं तबतक भजन नही हो सकता। अतः विषय से मन फेरकर ऐसा भगवान् मे लगावे कि सचमुच विषय और कार्य सब विस्मृत हो जायँ। यही वेद का सिद्धान्त है। ऐसे भूलनेवाले का कामकाज भगवान् को याद रहता है। यथा : अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्य्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्। करउँ सदा तिनुकै रखवारी। जिमि बालकहि राख महतारी।

प्रभु रघुपति तजि सेइय काही। मोहिसे सठ पर ममता जाही ॥
तुम्ह बिग्यान रूप नहिं मोहा। नाथ कीन्हि मोपर अति छोहा ॥२॥

अर्थ : रघुपति : ऐसे प्रभु को छोड़कर किसकी सेवा करें जिसकी मुझ जैसे सठ पर ममता है। तुम विज्ञान रूप हो। तुम्हें मोह नही है। हे नाथ! तुमने मुझपर बड़ा छोह किया।

व्याख्या : सठ सेवक महा दु:खदायी होता है। उसपर ममता नही हो सकती। वह तो मालिक के लिए शूल के समान है। सेवक सठ नृप कृपिन कुनारी। कपटी मित्र सूल समचारी। फिर भी सेवक होने के नाते रामजी की उनपर ममता रहती है। अतः कहते हैं कि राम में ही स्वामी के सब गुणों का उत्कर्ष है। अतः वे ही सेवन करने योग्य हैं। उनके ऐसा भी कोई दूसरा प्रभु होता तो उन्हे छोड़कर उसीको भजते। यहाँ तो उनके समान ही कोई नही। बढकर कहाँ से मिलेगा?

भुसुण्डिजी गरुड़जी से कहते हैं कि तुम वेदमय हो : महा ज्ञानी हो। यथा : सामध्वनिशरीरस्त्व वाहनः परमेष्ठिनः। मात्स्ये। गरुड महा ज्ञानी गुन रासी। हरि सेवक अति निकट निवासी। ज्ञानी के ही सम्मुख मोह नही ठहरता तो विज्ञान रूप महा ज्ञानी के सम्मुख कैसे ठहरेगा।

भुसुण्डिजी ने इतना उपदेश भी दिया। फिर भी यह भाव बना है कि गरुड़जी को मोह नही। वे केवल मुझे बड़ाई देने के लिए यहाँ आये हैं। यही सन्त का लक्षण है : कोमल बानी संत की स्रवै अमृत मय आइ। तुलसी ताहि कठोर मन सुनत मै न होइ जाइ।

पूँछिहु रामकथा अति पावनि। सुक सनकादि संभु मन भावनि ॥
सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकौ बारा ॥३॥

अर्थ : तुमने अति पावनी रामकथा पूछी जो शुक सनकादि और शम्भु की मन भावनी है। संसार में निमिष दण्ड भर एक बार भी सत्सङ्ग दुर्लभ है।

व्याख्या : तुम समझते थे कि तुम्हे मोह था। पर मेरी समझ मे वह मोह नही था विद्या थी। यथा : प्रभु सेवकहिं न व्याप अविद्या। प्रभु प्रेरित व्यापै तेहि बिद्या। क्योंकि जिसे रामकथा की जिज्ञासा है उसे मोह कहाँ? इसलिए मैं कहता हूँ कि तुम विज्ञान रूप नहि मोहा। जो बात शुक सनकादि शम्भु को अच्छी लगती है वही तुम्हे भी अच्छी लगी। जिसे मोह होता है उसकी रुचि बिगड़ जाती है। यथा : काम भुजंग डसत जब जाही। विषय निंब कटु लगत न ताही।

देखु गरुड़ निज हृदय बिचारी। मै रघुबीर भजन अधिकारी ॥
सकुनाधम सब भाँति अपावन। प्रभु मोहि कीन्ह बिदित जग पावन ॥४॥

अर्थ : हे गरुड़जी ! अपने हृदय मे विचारकर देखो क्या मैं रघुवीर के भजन का अधिकारी हूँ। मैं पक्षियो मे अधम सब भाँति से अपवित्र हूँ : प्रभु ने मुझे प्रख्यात जगपावन बना दिया।

व्याख्या : मुख से भजन करने की बात करना बहुत सुगम है। पर वस्तुतः भजन करना बड़ा कठिन है। योगी ही यथार्थ भजन कर सकता है : सा कस्मै परमप्रेमरूपा च। भक्ति परमेश्वर मे परमप्रेमरूपा है और निरोधरूपा है। यथा :

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार जानै सोइ जेहि बनि आई ॥
जो जेहि कला कुसल ताकहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह सुरसरी बहै गज भारी ॥
सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख अतिशय द्वैत वियोगी ॥
सोक मोह भय हरख दिवस निसि देस काल तहँ नाही।
तुलसीदास यहि दसा हीन संसय निर्मूल न जाही ॥

जब एकाग्र और निरुद्ध चित्त में भक्ति की योग्यता है तब सब से भयभीत रहनेवाले मन्दमति काग को वह अधिकार कैसे प्राप्त हो सकता है जो मनुष्य को भी दुर्लभ है।

भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैं पक्षियों में चाण्डाल कौआ सभी भाँति से अपावन हूँ। कौए की जाति अपावन, आहार अपावन, बुद्धि अपावन, स्वभाव अपावन, रुचि अपावन, करणी अपावन, सो प्रभु ने मुझे प्रसिद्ध जग पावन कर दिया। आप कैलास से यहाँ मुझसे मिलने आये।

दो. आजु धन्य मैं धन्य अति, जद्यपि सब विधि हीन।
निज जन जानि राम मोहि, संत समागम दीन ॥१२३ क.

अर्थ : सब विधि हीन होने पर भी आज मैं धन्य हूँ अति धन्य हूँ जो अपना जन जानकर रामजी ने सन्त समागम दिया।

व्याख्या : पीपर के नीचे ध्यान पाकर के नीचे जप यज्ञ आम के नीचे मानस पूजा करने के बाद वट तले कथा कहने के लिए भुसुण्डिजी आये। उसी समय गरुड़जी का आगमन हुआ। गरुड़जी को त्रेता में मोह हुआ। द्वापर ब्रह्मलोक के आने जाने में बीता। ब्रह्मलोक के क्षण बीतने में यहाँ युग बीत जाता है। काल का मान सर्वत्र बराबर नहीं। पितरों का एक दिनरात मनुष्य मान से एक महीने का होता है। देवताओं का एक दिनरात मनुष्यों का १२ महीने का होता है। ब्रह्मदेव का दिनरात १४ मन्वन्तर का होता है। २७ कल्प तक कथा कहनेवाले भुसुण्डिजी का एक दिन सम्भवतः चार युगों का होता है। प्रत्येक युगों के धर्मों का निर्वाह करते हुए भुसुण्डिजी कलियुग में रामकथा कहते हैं। अतः दिन के अन्त में राम कथा प्रारम्भ भी हुई और समाप्त भी हो गयी। इसीलिए भुसुण्डिजी आजु धन्य मैं धन्य अति कहते हैं। उस समय भुसुण्डिजी की आयु उनके मान से : ३६० × २७ = ७५ : ७५ वर्ष के ऊपर थी। क्योंकि इतने दिन तो उन्हें नीलशैल पर रहते हो गया था।

सो भुसुण्डिजी कहते हैं कि इतने दिन मुझे यहाँ रहते हुआ। पर आज मैं अति धन्य हुआ क्योंकि आज मुझे रामजी की कृपा से आप से सन्त का समागम हुआ। यथा : धन्य घरी सोइ जेहि सत संगा। संत विसुद्ध मिलहि परि तेही। चितवहि रामकृपा करि जेही।

दो. नाथ जथामति भाखेउँ, राखेउँ नहि कछु गोइ।
चरित सिंधु रघुनायक, थाह कि पावै कोइ ॥१२३॥

अर्थ : हे नाथ! मैंने अपने मति के अनुसार कहा कुछ छिपाया नहीं। रघुनाथ के चरित सिन्धु का कौन थाह पा सकता है।

व्याख्या : यह न समझना कि इतना ही रामचरित है। राम की कथा के

विस्तार का अन्त नही है। अतः यह रीति है कि अपनी बुद्धि के अनुसार भगवान् के गुणो का गान किया जाय।

महात्मा लोग गूढ तत्त्व का वर्णन नही करते। परन्तु आर्त अधिकारी से छिपाते भी नही। सो कही आपको यह सन्देह न हो कि कुछ गूढ तत्त्व भुसुण्डि ने छिपा रक्खा। इसलिए कहे देता हूँ कि मैंने छिपाया कुछ नही। मेरी जानकारी ही इतनी थी। बात यह है कि समुद्र का थाह और पार चाहे कोई पा जाय पर रघुनायक के चरित्र सिन्धु का पार कोई पा नही सकता।

सुमिरि राम के गुनगन नाना। पुनि पुनि हरख भुसुडि सुजाना॥
महिमा निगम नेति करि गाई। अतुलित बल प्रताप प्रभुताई॥१॥

अर्थ : रामजी के नाना गुणों का स्मरण करके बार बार सुजान भुसुण्डिजी हर्षित हुए : और बोले कि : वेदने नेति नेति कहकर महिमा का गान किया : रघुराई का : बल प्रताप प्रभुताई अतुलित है।

व्याख्या : आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकी भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः। आत्माराम मुनि लोग जिनकी चित् जड ग्रन्थि खुल गयी है वे भी परमेश्वर मे अहैतुकी भक्ति करते हैं क्योकि हरि के गुणगण ही ऐसे हैं। अतः उनके गुण गणों का स्मरण करके भुसुण्डिजी बार बार हर्षित होते हैं। पुनः पुनः उनको पुलक हो रहा है। भुसुण्डिजी बोले :

सरकार की ऐसी महिमा है कि उसका गान वेद भी नेति नेति कह के करता है। न वह स्थूल है न सूक्ष्म है। उसे इदमित्थ करके शृङ्गिग्राह न्याय से कुछ नही कह सकते। जिस भाँति उनकी महिमा का अन्त नही उसी भाँति उनके बल का भी नाप जोख नही। क्योकि जिसे जो कुछ बल है वह उन्ही के बल का लवलेश है। यथा : सुनु रावण ब्रह्माड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया। जाके बल बिरचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा। इत्यादि।

सामर्थ्य होने से ही प्रताप होता है। पर प्रताप बल से अलग काम करता है। यथा : काहू बैठन कहा न ओही। राखि को सकै राम कर द्रोही।

सिव अज पूज्य चरन रघुराई। मोपर कृपा परम मृदुलाई॥
अस सुभाउ कहुँ सुनौ न देखौं। केहि खगेस रघुपति सम लेखौं॥२॥

अर्थ : रघुराई के चरण शिव ब्रह्मा से पूज्य हैं फिर भी मुझ पर परम कृपा और परम मृदुता है। ऐसा स्वभाव न कही सुना जाता है न देखा जाता है। हे खगेश ! किसे रघुपति के समान माना जाय।

व्याख्या : ऐसी महिमा है कि एक देव को दोनों चरणो के पूजन का अवसर नही मिलता। एक की पूजा शिवजी करते हैं तो दूसरे की ब्रह्मदेव करते हैं। महिमा ऐसी, बल ऐसा, प्रताप ऐसा, पूजा ऐसी, फिर भी कोमलता ऐसी कि मुझ काग पर ऐसी कृपा की कि अपने पार्षद साक्षात् गरुड़जी को मेरे पास भेजकर मुझे बड़ाई दी।

मुझे सत्सङ्ग दिया यह प्रभु की बड़ी कृपा है और मोह मिससे सन्त को मेरे यहाँ कथा सुनने को भेजा यह मृदुता है। जिसमें मुझे मालूम भी न हो कि मेरे ऊपर कृपा हो रही है।

ऐसा स्वभाव न तो कहीं इतिहास पुराण में सुना गया और न तो देखने में आया। स्वामी सेवक का ऋणी किसी देश में नहीं होता। पर ये प्रभु अपने को सेवक का ऋणी भी मान लेते हैं। ऐसा दीन दयाल कोई है नही अतः उनके समान के लिए जिज्ञासा ही रह गयी।

साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी। कबि कोबिद कृतग्य संन्यासी ॥
जोगी सूर सुतापस ग्यानी। धर्म निरत पंडित बिग्यानी ॥३॥

अर्थ : १. साधक २. सिद्ध ३. विरक्त. ४. उदासी ५. कवि ६. कोविद ७. कृतज्ञ और ८. संन्यासी ९. योगी १०. शूर ११. अच्छे तपस्वी १२. ज्ञानी १३. धर्म निरत और १४. विज्ञानी पण्डित।

व्याख्या : जो सिद्धि के लिए प्रयत्नशील है : उन्हें साधक कहते हैं। जिन्हें सिद्धि प्राप्त हो गई है : वे सिद्ध कहलाते हैं। इस लोक और परलोक के सुख की इच्छा न रखनेवाले को विरक्त कहते हैं। वैराग्यवान् गृहस्थ को उदासी कहते हैं। क्रान्तिदर्शी को कवि कहते हैं। दूरदर्शी को कोविद कहते हैं। उपकार माननेवाले को कृतज्ञ कहते हैं और त्यागी को संन्यासी कहते हैं।

अविद्या रात्रि में जागनेवाले को योगी कहते हैं। मृत्यु को तृण समझनेवाले को शूर कहते है। उपवासादि व्रत करनेवाले को तापस कहते है। अभेददर्शी को ज्ञानी कहते हैं। वर्णाश्रम धर्म में निरत वेद पथ पर चलनेवाले को धर्म निरत कहते हैं। परमार्थज्ञाता पण्डित को विज्ञानी पण्डित कहते है।

तरहिं न बिनु सेए मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी ॥
सरन गयें मो से अघरासी। होहिं सुद्ध नमामि अबिनासी ॥४॥

अर्थ : मेरे स्वामी की बिना सेवा किये नही तर सकते। अतः रामजी को बारम्बबार नमस्कार है। जिसके शरण जाने पर मुझसे पापपुञ्ज भी शुद्ध होते हैं। ऐसे अविनाशी को नमस्कार है।

व्याख्या : साधक से लेकर विज्ञानी तक चौदहो की परम सिद्धि रामभक्ति पर निर्भर है। बिना रामभक्ति के भवसागर नही तर सकते। माया के वश मे आ ही जाते हैं। अतः ईश्वरकृपा के लिए भजन परमावश्यक है। उनके कर्मों का पुण्य फल तो भगवान् देगा ही। पर उस फल से भवसन्तरण नही हो सकता। सन्तरण तो भक्ति से ही होता है। अतः मनसा वाचा कर्मणा प्रणाम करते हैं। अतः तीन बार नमामि कहा।

कैसा भी पापी हो कभी यह न समझे कि मेरा पाप क्षमा नहीं किया जा सकता। पापी का पाप करुणाकर की करुणा से बड़ा नही हो सकता। ब्रह्महत्या से

बडा पाप नही है। प्राणिमात्र के द्रोह से वढकर और बडा अघ कौन सा होगा? ऐसा का पाप भी शरण जाने से कट जाता है। जीव जभी से भजन करना प्रारम्भ करेगा भगवान् उसके अनन्त जन्मो का पाप नष्ट करके अपना लेंगे। वे *गई बहोरि* हैं पूर्व के सभी श्वांस को भजन मे जोड देते हैं। जीव का उद्धार कर ही देते हैं। अत शीघ्र ही श्रीहरिशरण हो के भजन नामरटन परमावश्यक है। द्रष्टव्य गीतावली विभीषणशरणागति सुन्दरकाण्ड।

जो स्वय विनाशी है वह दूसरे की क्या रक्षा कर सकता है? उस अविनाशी के प्रणाम की महा महिमा है। अत उसी को प्रणाम करते हैं। शरणागति मे यह आवश्यक है कि वह अपने को अपराधो का आलय अकिञ्चन और अगतिक माने और सरकार से प्रार्थना करे कि आप ही मेरे लिए उपायभूत हो जायँ। यथा। अहमेवापराधानामालयोऽकिञ्चनोऽगति। त्वमेवोपायभूतो मे भवेति प्रार्थना मति। अत भुसुण्डिजी अपने को वडा भारी अघराशि कहकर अपना शुद्ध होना शरणागत के शुद्ध होने के उदाहरण रूप म उपस्थित करते हैं।

दो जासु नाम भव भेपज, हरन घोर त्रय सूल।
सो कृपाल मोहि तोपर, सदा रहहु अनुकूल ॥१२४ क.

अर्थं जिनका नाम ससार रोग के लिए औपध है। जो आधिदैविक आधिभौतिक आध्यात्मिक तीनो शूलो को हरण करनेवाला है वह कृपालु मेरे ऊपर तथा तुम पर अनुकूल रहे।

व्याख्या नाम को अचित्य शक्ति है। यथा नाम प्रभाव सही जो कहै सोई सिला सरोरुह जाम्यौ। जिसके नाम से ज्ञानोत्पत्ति होती है काशी मे उसी नाम के वल से शिवजी मुक्ति वितरण करते हैं। वही तीनो शूल का हरण करनेवाला है। तापा की करणभूता तामसिक और राजसिक वृत्तियाँ हैं। वे ही क्रमश मूढा और घोरा कहलाती है। नामको भवभेपज कहकर उससे मूढा वृत्तिका नाश दिखलाया और घोर शब्द से राजसिक वृत्ति का भी नाश व्यञ्जित किया।

दो सुनि भुसुडि के वचन सुभ, देखि रामपद नेह।
वोलेउ प्रम सहित गिरा, गरुड बिगत सदेह ॥१२४॥

अर्थं भुसुण्डिजी के शुभ वचन सुनकर और राम पद म स्नेह देखकर गरुडजी सन्देह रहित होकर प्रेमयुक्त वाणी वोले।

व्याख्या भुसुण्डिजी के वचन से भवभ्रम छूटा। आनन्द का अनुभव हुआ। इससे वचन को शुभ कहा। प्रमाणो म देखना सुनना ही बडा प्रमाण गिना जाता है। सो दोना से ही भुसुण्डिजी की भक्ति का ही पता चला। यहाँ से भुसुण्डिजी का कथन समाप्त हो गया। सवाद की समाप्ति पर श्रोता द्वारा कृतज्ञता प्रकट करना उचित है। सो सच्ची कृतज्ञता बिना प्रेम के नही होती। अत गरुडजी का प्रेमपूर्वक बोलना कहते हैं।

मै कृतकृत्य भयेउँ तव बानी । सुनि रघुबीर भगति रस सानी ॥
राम चरन नूतन रति भई । माया जनित बिपति सब गई ॥१॥

अर्थ : मैं रघुबीर के भक्तिरस से सनी हुई तुम्हारी वाणी : सुनने से कृतकत्य हुआ । रामजी के चरणों मे नयी रति हुई और माया से उत्पन्न सब विपत्तियाँ जाती रही ।

व्याख्या : सशय निर्मूल होने पर दृढ विश्वास हुआ । वक्ता कहते हैं कि : आजु धन्य मैं धन्य अति और श्रोता कहते हैं कि मै : कृतकृत्य भयउँ । रामकथा ही ऐसी है कि इससे वक्ता धन्य और श्रोता कृतकृत्य होता है । दूसरी बात यह है कि नारद की वाणो सुनो । ब्रह्मा की सुनी । शङ्कर की सुनी । पर कृतकृत्य तो तुम्हारी वाणी से हुआ ।

पहिले जो भक्ति थी वह दूसरे प्रकार की थी । यह अनुपम सुखमूला भक्ति आपके आशीर्वाद देते ही मेरे हृदय मे प्रकट हुई और माया से उत्पन्न अस्मिता तथा रागादि दोष चले गये ।

मोह जलधि बोहित तुम भये । मो कहुँ नाथ बिबिध सुख दये ॥
मो पहिं होइ न प्रति उपकारा । बंदी तव पद बारहि बारा ॥२॥

अर्थ : मोह समुद्र के लिए आप जहाज हो गये और मुझे अनेक प्रकार के सुख दिये । मुझसे प्रत्युपकार नही हो सकता । अत. तुम्हारे चरण की वन्दना बार बार करता हूँ ।

व्याख्या : साधारण नियम तो यही है कि गुरु, कर्णधार मात्र होता है । मोह समुद्र पार करने के लिए अपने शरीर को जहाज बनाना पड़ता है । पर आप तो स्वयं मेरे लिए जहाज हो गये । मुझे कुछ करना ही नही पडा । आपके उपदेशामृत के श्रवण से मोह दूर हो गया और ज्ञान, विज्ञान, विवेक, विरति तथा मुनि दुर्लभ गुण सब आप की कृपा से प्राप्त हुए और ये ही सच्चे सुख हैं ।

उपकारी का प्रत्युपकार करना सनातन धर्म है । बदले मे समान मूल्य का द्रव्य देना चाहिए । भक्ति चिन्तामणि का कोई मूल्य नही है । अत. मैं आपका ऋण चुका नही सकता । सिवा बारम्बार प्रणाम करने के और मैं कर क्या सकता हूँ ।

पूरन काम राम अनुरागी । तुम सम तात न कोउ बड़भागी ॥
संत बिटप सरिता गिरि धरनी । परहित हेतु सबन्ह कै करनी ॥३॥

अर्थ : तुम पूर्णकाम हो । रामानुरागी हो । तुम्हारे समान कोई भाग्यवान् नही है । सन्त, वृक्ष, नदी, पर्वत और पृथिवी । इन सबकी करणी पराये हित के लिए होती है ।

व्याख्या : दूसरी बात यह भी है कि तुम पूर्णकाम हो । तुम्हे कोई देना भी चाहे तो क्या दे ? तिस पर रामानुरागी हो : धन धान्य ऐश्वर्य को स्वीकार करते ही

नहो। यथा रमा बिलास राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बडभागी। भगवान् म स्वार्थ के लिए भी प्रीति करनेवाल बडभागी हैं। पर तुम तो नि स्वार्थ प्रीति करनेवाले हो। इसलिए सबसे बढकर हो।

सन्त विटप सरिता गिरि धरणी अपने लिए कुछ नही करते। इनकी सम्पत्ति दूसरो के लिए है। इनके काम कभी नही आती। भाव यह कि आपको न प्रत्युपकार की इच्छा है और न कोई आपका प्रत्युपकार कर सकता है। सन्त विटप सरिता गिरि धरणी से सब उपकृत हैं। पर कोई यदि उनका प्रत्युपकार करना चाहे तो सिवा प्रणाम करने के और क्या कर सकता है? अब इन पांचो मे भी सन्त के प्रथम उल्लख का कारण कहते हैं।

सत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना॥
निज परिताप द्रवै नवनीता। पर दुख द्रवहि सत सुपुनीता॥४॥

अर्थ सन्त के हृदय को कवियो ने मक्खन सा कहा है। पर उनसे कहते न बना अपने परिताप से मक्खन द्रवीभूत होता है। पर पुनीत सत दूसरे के दु ख से द्रवीभूत होते हैं।

व्याख्या विटप सरिता गिरिधरनी जड है। सुख दु ख का अनुभव भी इन्हे तारतम्यानुसार बहुत न्यून ही होता है। परन्तु सन्त जो कुछ करते हैं वे हृदय की कोमलता के कारण करते हैं। कवियो ने इनके हृदय की उपमा मक्खन से दिया। पर कहना होगा कि उनसे कहते न बना मक्खन तो अपने दु ख से द्रवीभूत होता है। पर सन्त तो दूसरे के दु ख से द्रवीभूत होते हैं। इनकी कोई उपमा नही है। यथा कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पदपकज कहे।

जीव जन्म सफल मम भयऊ। तव प्रसाद सब ससय गयऊ॥
जानेहु सदा मोहि निज किंकर। पुनि पुनि उमा कहै बिहगबर॥५॥

अर्थ मेरा तो जीवन जन्म सफल हो गया। तुम्हारे प्रसाद से सब सशय चला गया। मुझे सदा अपना आज्ञाकारी समझियेगा। हे उमा! ऐसा बार बार गरुडजी ने कहा।

व्याख्या बिना हरिभक्ति हृदय मे आये प्राणी का जीवन जन्म निष्फल है। यथा

तिन्ह ते खर सूकर स्वान भल जडता बस ते न कहैं कछुवे।
तुलसी जेहि राम तें नेहु नही सो सही पसु पूँछ विषान न द्वै।
जननी कत भार मुई दस मास भई किन बाँझ गयी किन च्वै।
जरि जाउ सो जीवन जानकीनाथ जिये जग मे तुम्हरो बिनु ह्वै।

गरुडजी गुरुदक्षिणा का ऋण न चुका पाने के कारण सदा के लिए दासत्व स्वीकार करते हैं। वाक्य को यथार्थ रूप मे ग्रहण के लिए बार बार कहते हैं। जिसमे उनका वाक्य विनय प्रदर्शन रूप मे गृहीत न हो।

दो. तासु चरन सिर नाइ करि, प्रेम सहित मतिधीर।
गयउ गरुड़ बैकुण्ठ तब, हृदय राखि रघुबीर ॥१२५ क.

अर्थ : उनके चरणों में प्रेम सहित सिर नवाकर मतिधीर गरुड़जी रघुवीर को हृदय में रखकर वैकुण्ठ गये।

व्याख्या : जब गरुड़जी आये तब प्रणाम नहीं लिखा। पक्षिराट् के भाव से आये थे : इसलिए कागभुसुण्डि ने पूजा की। अब सत्सङ्ग से वह भाव जाता रहा। अतः मनसा वाचा कर्मणा प्रणाम करते हैं और भुसुण्डिजी भी उसे स्वीकार करते हैं।

काग का उपदेश सद्यः फलीभूत हुआ। हृदय में प्रचण्ड विषाद लेकर आये थे सो अब हृदय में रघुवीर को रखकर जा रहे हैं। कथा महाप्रभावा है। सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्। श्रीहरि सद्यः हृदय में अवश्य आ ही जाते हैं।

उमा शम्भु सम्वाद का उपसंहार

दो. गिरिजा संत समागम, सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरिकृपा न होइ सो, गावहिं बेद पुरान ॥१२५॥

अर्थ : हे गिरिजे ! सन्त समागम के समान कोई लाभ नही है। परन्तु बिना हरि की कृपा वह होता नही : ऐसा वेद पुराण कहते हे।

व्याख्या : मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई। सो जानब सत संग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ। अतः सत्सङ्ग से बड़ा लाभ कोई है नही। परन्तु जब भगवान् की कृपा हो तभी सतसङ्गति मिलती है। यथा : जब द्रवै दीन दयाल राघव साधु संगति पाइये। जेहि दरस परस समागमादिक पाप रासि नसाइये। यद्यपि सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा। पर जिसपर भगवत्कृपा नही है उसे नही मिलता। उन्हे कुभावना घेरे रहती है। सब बुरे ही दिखायी पड़ते हैं।

कहेउँ परम पुनीत इतिहासा। सुनत स्रवन छूटहिं भव पासा ॥
प्रनत कलप तरु करुना पुंजा। उपजै प्रीति राम पद कंजा ॥१॥

अर्थ : मैंने परम पुनीत इतिहास कहा। जिसके सुनने से भवपाश छूटता है और जो करुणापुञ्ज कल्पतरु रामजी हैं उनके चरणो में प्रीति उपजती है।

व्याख्या : शङ्कर भगवान् भी सब प्रश्नों का उत्तर देकर कथा का उपसंहार करते हैं। कहते हैं कि यह इतिहास ऐसा पुनीत है कि केवल इसके सुनने से न केवल भावपाश जगजाल छूट जाता है। अपितु भगवान् के चरण कमल मे प्रीति उपजती है। जन्म मरण ही सक्षेप में जग जाल है।

श्रीरामजी प्रणतकल्पतरु हैं। यथा : देव देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ। जाइ निकट पहिचानि तरु, छाँह समनि सब सोच। माँगत

अभिमत पाव जग, राउ रंक भल पोच। रामजी न किसी के सम्मुख हैं न विमुख हैं। जो उनकी उपासना करता है : प्रणाम करता है उसे अभीष्ट की प्राप्ति होती है। इतना ही नही श्रीरामजी के चरण कमलो मे प्रीति उपजती है।

भाव यह कि हरिभजन से हरिकृपा उससे सत्सङ्ग की प्राप्ति सत्सङ्ग से हरिकथा श्रवण उससे मोह का नाश और श्रीचरणो मे अनुराग यही क्रम है।

मन क्रम बचन जनित अघ जाई। सुनहि जे कथा स्रवन मनु लाई ॥
तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ज्ञान निपुनाई ॥२॥

अर्थ : मन तन वचन से किये हुए पाप नष्ट होते हैं यदि कथा मन लगाकर सुनी जाय। तीर्थयात्रा और साधन समूह योग विराग ज्ञान की निपुणता :

व्याख्या : हरिकथा सुनने मे इतना ही कर्तव्य है कि उसमे तन्मय हो जाय। बस इतने से ही मनुष्य निष्पाप हो जाता है। सुनत स्रवन छूटै भवपासा से ज्ञानकाण्ड का फल कहा। उपजे प्रीति रामपद कजा से उपासना काण्ड का फल कहा। अब मन क्रम वचन जनित अघ जाई से कर्मकाण्ड का फल कहते हैं। तीर्थ यात्रा सिद्धि की प्राप्ति का यत्न. योग वैराग्य और ज्ञान की निपुणता।

नाना कर्म धर्म ब्रत दाना। संयम दम जप तप मख नाना ॥
भूतदया द्विज गुरु सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई ॥३॥

अर्थ : नाना कर्म. धर्म. व्रत. दान. संयम. दम. जप. तप. नाना प्रकार के यज्ञ. प्राणी मात्र पर दया ,ब्राह्मण और गुरु की सेवा. विद्या. विनय. विवेक की बडाई।

व्याख्या : जीव को तारता है इसलिए तीर्थ कहलाता है। राग वैषम्य और बहिर्मुखता का प्रिय न होना ही योग विराग ज्ञान निपुणाई है। नित्य नैमित्तक और काम्य भेद से कर्म तीन प्रकार के होते है। धर्म के भी वर्णाश्रमानुसार अनेक भेद हैं। व्रत के भी चान्द्रायणादि अनेक भेद है। दाता प्रतिग्रहीता और देय के भेद से दान के भी अनेक भेद हैं। मन को वश करना सयम और इन्द्रियो को वश करना दम है। उपवासादि तप है। अश्वमेध राजसूयादि यज्ञ है। प्राणिमात्र पर दया करना परम धर्म है। गुरु द्विज की सेवा करना परम कल्याण का मार्ग है। विद्या भी चौदह कही गयी है। विनय विद्या का फल है। विवेक की इतनी बडाई है कि उसके बिना विद्या भी निष्फल है।

जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरिभगति भवानी ॥
सो रघुनाथ भगति स्रुति गाई। रामकृपा काहू एक पाई ॥४॥

अर्थ : जितने साधनो का वेद ने बखान किया है हे भवानी! उन सबो का फल हरिभक्ति है। उस रघुनाथ भक्ति को वेद ने कहा कि वह रामजी की कृपा से किसी एक को मिलती है।

व्याख्या : उपर्युक्त १६ साधनो के अतिरिक्त जितने साधनो की वेद ने प्रशसा की है उनका फल हरिभक्ति है। अर्थात् जिस साधन का फल हरिभक्ति नही है वह साधन प्रशसा के योग्य नही है। वह भक्ति वेद प्रतिपादित है। यथा : स्रुति सम्मत हरि भगति पथ सयुत बिरति बिवेक। तेहि न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पथ अनेक। अतः वह भक्ति रामजी की कृपा से किसी किसी को मिलती है। यथा : कहुँ कहुँ वृष्टि सारदी थोरी। कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी।

दो. मुनि दुर्लभ हरि भगति नर, पावहि बिनहि प्रयास।
जे येह कथा निरन्तर, सुनहि मानि बिस्वास ॥१२६॥

अर्थ . मुनिदुर्लभ हरिभक्ति को वे मनुष्य बिना प्रयास पा जाते हैं। जो इस कथा को विश्वास मानकर निरन्तर सुना करते हैं।

व्याख्या : सनकादि, वसिष्ठ, नारद, अत्रि, शरभङ्ग, सुतीक्ष्णादि को इस भक्ति के लिए वरदान माँगना पडा। वही भक्ति अनायास भी मिल सकती है। परन्तु दो बात उसमे हैं। एक तो यह कि इस कथा पर विश्वास करके सुने और दूसरे यह कि सुनने मे व्यवधान न पड़ने पाये। निरन्तर विश्वास मानकर सुनने से ही उसके अन्त.करण मे इसका दृढभूमिक सस्कार पडेगा। अन्त करण द्रुत होकर रामरंग से रँग उठेगा यही भक्ति है।

सो सरबज्ञ गुनी सोइ ज्ञाता। सोइ महि मंडित पंडित दाता ॥
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरण जाकर मन राता ॥१॥

अर्थ : वही सर्वज्ञ है, वही गुणी है, वही ज्ञाता है, वही पृथिवी मे सुन्दर पण्डित है, वही दाता है, वही धर्म परायण है, वही कुल का रक्षक है जिसका मन श्रीराम के चरणो मे लग गया।

व्याख्या : जो पृथक् पृथक् सब बातो को जाने : भूत भविष्य वर्तमान का जिसे ज्ञान हो उसे सर्वज्ञ कहते हैं। जो दैव या मानुष शिल्प का जानकार हो उसे गुणी कहते हैं। जिसे परमार्थ का ज्ञान हो उसे ज्ञाता कहते हैं। सार्वभौम विद्वान् महि मण्डित पण्डित है। उदार पुरुष को दाता कहते हैं। वेद की आज्ञा पालन करनेवाले को धर्मपरायण कहते हैं। कुल की रक्षा करनेवाले को कुलत्राता कहते हैं।

जिसका मन रामरग मे रँग गया वही सर्वज्ञ, गुणी, ज्ञाता, पण्डित, धर्मात्मा और कुलरक्षक है। जिस बात की कमी उसमें है वह पूरी हो जायगी। पर यदि रामरग मे नही रँगा है तो उसके सब गुण व्यर्थ हैं। तेन तप्त हुत दत्तमेवाखिलं तेन सर्वं कृत कर्मजाल। येन श्रीरामनामामृत पानकृतमनिशमनवद्यमवलोक्य काल। विनय : सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ।

नीति निपुन सोइ परम सयाना। स्रुति सिद्धात नीक तेहि जाना ॥
सोइ कवि कोविद सोइ रनधीरा। जो छल छाँड़ि भजै रघुबीरा ॥२॥

अर्थ : वही नीतिनिपुण है। वही परम सयाना है। उसी ने श्रुति सिद्धान्त को भली भाँति जान पाया है। वही कवि है, वही दूरदर्शी है, वही योद्धा है, जो छल छोड़कर राम को भजता है।

व्याख्या : दम्भ, कपट, स्वार्थादि छल है। भजन मे इनका प्रवेश नही होना चाहिए। जो निष्काम भाव से भगवद् भजन करता है वही नीतिनिपुण है। वही परम सयाना है। वेद के सिद्धान्त को उसी ने समझ पाया है। वही क्रान्तिदर्शी है। वही दूरदर्शी है। काम क्रोधादि अनेक शत्रुओ को वही जीत सकता है। यथा : सूर सुजान सपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई। बिनु हरि भजन इनारुन के फल तजत नहीं करुआई।

धन्य देस सो जहँ सुरसरी। धन्य नारि पतिब्रत अनुसरी॥
धन्य सो भूप नीति जो करई। धन्य सो द्विज निज धरम न टरइ॥३॥

अर्थ : वह देश धन्य है जहाँ गङ्गाजी हैं। वह स्त्री धन्य है जिसने पतिव्रत का अनुसरण किया। वह राजा धन्य है जिसने नीति का पालन किया। वह द्विज धन्य है जो अपने धर्म से नही हटा।

व्याख्या : धन्य पुण्यवान् को कहते हैं। जिस देश मे गङ्गा हैं वहाँ के लोगो का पाप रहने नही पाता। यथा : प्रायश्चित्त तु तत्रैव यत्र गङ्गा न विद्यते। इसलिए वह पुण्य देश है। स्त्रियाँ स्वभाव से ही अपावन हैं। पति की सेवा से उन्हे शुभगति होती हैं। अत. वे धन्य हैं। यथा : सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभगति लहइ। जस गावत स्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहिं प्रिय। जिस राजा के राज्य मे अनीति नही है वह दूसरा कोई धर्म करे या न करे वह धन्य है। ब्राह्मण मे तप और श्रुत दोनो होना चाहिए। स्वधर्माचरण ही तप है। अतः स्वधर्माचरण करनेवाला ब्राह्मण धन्य है। नही तो सोचिय बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धर्म बिषय लयलीना।

सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी॥
धन्य घरी सोइ जब सत संगा। धन्य जन्म द्विज भगति अभंगा॥४॥

अर्थ : वह धन्य है जिसकी पहिली गति हुई। वह पक्की मति धन्य है जो पुण्य मे लगी हुई है। वह घडी धन्य है जो सत् सङ्ग मे बीते। वह जन्म धन्य है। जिसमे ब्राह्मण मे अचल भक्ति हो।

व्याख्या : धन की तीन गति होती है : १ दान २. भोग और ३ नाश। चौथी कोई गति नही है। जिस धन का दान या भोग नही होता वह नष्ट हो जाता है। धन्य वही धन है जो दान मे दिया जाय।

पक्की पुण्यरत मति वही है जिसमे फलाकाक्षा की कच्चाई न हो। यथा : करैं जे धरम करम मन बानी। बासुदेव अर्पित नृप ज्ञानी। सत सगति दुर्लभ ससारा। निमिष दण्ड भरि एकौ बारा। यह अमोघ है। बिना कल्याण किए रहती नही। अतः जो समय सत सगति मे बीतता है वह धन्य है। ब्राह्मणो मे अटल

भक्ति होने से जन्म धन्य होता है। क्योकि द्विजभक्ति से भगवान् सन्तुष्ट होते हैं। यथा : हरितोषन व्रत द्विज सेवकाई। यथा : प्रभु ब्रह्मण्य देव मैं जाना। मोहि निति पिता तजेउ भगवाना।

दो. सो कुल धन्य उमा सुनु, जगत पूज्य सुपुनीत।
श्री रघुबीर परायन, जेहि नर उपज बिनीत ॥१२७॥

अर्थ : जिस कुल मे श्रीरघुवीर परायण विनीत पुरुष पैदा होता है हे उमा ! सुनो वही कुल धन्य है। जगत् पूज्य है और सुपुनीत है।

व्याख्या : जिस कुल मे पापरहित कुलपावन साधु उत्पन्न होता है उसके पिता इक्कीस पीढी पितरो के साथ पवित्र हो जाते हैं। यथा : त्रिसप्तभि: पिता पूतः पितृभिः सह तेऽनघ। यत् साधोऽस्य गृहे जातो भवान् वै कुलपावनः। श्रीमद्भा० ७ १० १८

मति अनुरूप कथा मै भाखी। जद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी॥
तव मन प्रीति देखि अधिकाई। तौ मै रघुपति कथा सुनाई॥१॥

अर्थ : अपनी बुद्धि के अनुसार मैंने कथा कही। यद्यपि पहिले मैंने गुप्त करके रक्खी थी। तुम्हारे मन मे अधिक प्रीति देखकर तभी मैंने रघुपति की कथा सुनाई।

व्याख्या : कथा की इयत्ता न होने से यह कथा मति अनुरूप ही कही जा सकती है। इसकी रचना किये हुए बहुत दिन हुए। परन्तु तुम्हे सुनाया नही। जब देखा कि तुम्हारे मन मे सुनने की उत्कट इच्छा है तब रामजी की कथा तुम्हें मैंने सुनायी। यदि अधिक प्रीति न देखता तो न सुनाता। अधिक प्रीति न होने से श्रोता द्वारा कथा का अनादर होता है। इससे उसका अकल्याण होता है। वक्ता का मनोभङ्ग होता है। लाभ किसी को नही होता।

यह न कहिअ सठही हठ सीलहि। जो मन लाइ न सुन हरि लीलहि॥
कहिअ न लोभिहि क्रोधिहि कामिहि। जो न भजै सचराचर स्वामिहि॥२॥

अर्थ : इसे कभी कपटी दुराग्रही से न कहना जो कि मन लगाकर हरि की लीला को न सुने। लोभी क्रोधी और कामी से भी नही कहना चाहिए जो चराचर के स्वामी को नही भजता।

व्याख्या : कपटी को शठ और दुराग्रही को हठी कहते हैं : मीठी बातें सठ करे करिके महा बिगार। अत. इस कथा को शठ और हठशील को नही सुनाना चाहिए। क्योकि वह मन लगाकर कथा नही सुनेगा। ऐसे लोगो को सुनाने से दु ख उपजता है। श्रोता वक्ता किसी का कल्याण नही होता।

लोभी क्रोधी और कामी परधन परद्रोही और परदारा का भजन करते हैं। नरक पन्थ के पथिक हैं। ये चराचर के स्वामी को नही भजेंगे। इनका इष्टदेव मोह है। ये कथा मन से नही सुनेंगे और उपद्रव खड़ा करेंगे।

द्विज द्रोहिहिं न सुनाइय कबहूँ। सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ ॥
रामकथा के तेइ अधिकारी। जिन्हके सत संगति अति प्यारी ॥३॥

अर्थ : ब्राह्मण द्रोही को तो कभी न सुनाना। चाहे वह इन्द्र के समान राजा क्यो न हो। रामकथा के वे ही अधिकारी हैं जिन्हे सत्सगति अत्यन्त प्यारी है।

व्याख्या : द्विजद्रोही भागवत धर्म के प्रतिकूल चलानेवाला है। वह प्रभु को पसन्द नही है। अत उसे सुनाने के लिए अतिनिषेध है। यथा : सुनु गंधर्व कहौ मैं तोही। मोहि न सोहाइ ब्रह्मकुल द्रोही। अत: उसके अधिकार का भय अथवा कृपा का लोभ न करे। इन्द्र ने सौ यज्ञ किये। इसीलिए शतक्रतु कहलाते हैं। सो उनके याज्ञिक होने की भी परवाह न करे।

अनधिकारियो का परिचय देकर अब अधिकारियो का परिचय देते हैं : जिन्हें सत्सगति अति प्यारी है। वह यदि अनधिकारी भी हो तो अधिकारी हो जायगा। यथा : सठ सुधरहिं सत सगति पाई। पारस परस कुधातु सोहाई। अत: वह रामकथा का अधिकारी है।

गुरुपद प्रीति नीतिरत जेई। द्विज सेवक अधिकारी तेई ॥
ता कहुँ यह बिसेषि सुखदाई। जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई ॥४॥

अर्थ जिन्हे गुरुचरणो प्रीति है। जो नीतिरत हैं। द्विज सेवक हैं। वे ही अधिकारी हैं। जिसे श्रीरघुराई प्राणप्रिय हैं। उसे यह विशेष सुखदाई है।

व्याख्या : गुरुचरणो का प्रेमी परमार्थ पथ का पथिक है और जो नीतिरत है वह प्रभु का प्यारा है। परमार्थपथपथिक को छोडकर द्विजसेवक दूसरा कोई हो नही सकता। अभिमानी कभी दीन दरिद्र ब्राह्मण को बडा नही मान सकता। जो अभिमान रहित नही है। वह सापत, ताड़त, परुपवक्ता ब्राह्मण को पूज्य कैसे मानेगा ? जो ईश्वर को कर्मफल का दाता नही मानता वह शील गुण हीन ब्राह्मण पर पूज्य दृष्टि कैसे रख सकेगा। अत: द्विज सेवक इस कथा का अधिकारी है। जिसको प्रभु के स्वरूप का ज्ञान है उसीको वे प्राणप्रिय हैं। अत: उसे उनकी कथा अधिक सुखदायिनी मालूम होगी।

दो. राम चरन रति जो चह, अथवा पद निर्बान।
भाव सहित सो येहि कथा, करौ स्रवन पुट पान ॥१२८॥

अर्थ : जो रामचरण मे रति चाहता हो या निर्वाण पद चाहता हो। वह मन लगाकर इस कथा को कान के प्याले से पीवे।

व्याख्या : विषय और अधिकारी का निरूपण करके अब प्रयोजन कहते हैं कि रामकथा के दो मुख्य प्रयोजन हैं। या तो पराभक्ति या कैवल्यमुक्ति। विषय और प्रयोजन मे साधक साध्यभाव सम्बन्ध है।

मन लगाकर कथा को सुने जिसमें इसकी छाप मन पर पड़े। छाप न पड़ने से प्रयोजन की सिद्धि न होगी। यह कथा अमृत है। कानों को प्याला बनाकर इसे स्वाद ले लेकर पीये।

रामकथा गिरिजा मै बरनी। कलिमल समनि मनोमल हरनी ॥
संसृत रोग सजीवन मूरी। राम कथा गावहि स्रुति सूरी ॥१॥

अर्थ : हे गिरिजे ! मैंने कलिमल का नाश करनेवाली मनोमल को दूर करने वाली रामकथा का वर्णन किया। संसार रोग के लिए सञ्जीवनी बूटी रामकथा है। : इसे वेद और पण्डित गाते हैं।

व्याख्या : गिरिजा ने प्रश्न किया था : बरनहु रघुबर बिमल जस, स्रुति सिद्धान्त निचोरि। उत्तर हो रहा है : रामकथा गिरिजा मैं बरनी। समयकृत दोष जिसका प्रभाव सब पर पड़ता है उसे कलिमय शब्द से उपलक्षित किया और व्यक्तिगत अन्तःकरण के मल को मनोमल कहा। दोनों को रामकथा दूर करती है।

यहाँ संसाररूपी रोग के शमन के लिए तीन प्रकार की दवा कही गयी है : १. चूर्ण : अमिअ मूरिमय चूरनु चारू। समन सकल भव रुज परिवारू। २. गोली : रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान स्रद्धा अति रूरी। और ३. अर्क भाव सहित : जो यह कथा करै स्रवन पुट पान। वेद में जो कुछ कहा गया है उसका साक्षात् या परम्परया राम से सम्बन्ध है। अतः वेद में रामकथा ही है और परमार्थ ज्ञाता पण्डित लोग भी रामकथा ही कहा करते हैं।

एहि मह रुचिर सप्त सोपाना। रघुपति भगति केर पंथाना ॥
अति हरिकृपा जाहि पर होई। पाँव देइ एहि मारग सोई ॥२॥

अर्थ : इसमे सुन्दर सात सोपान हैं। ये सब राम चरित्र के रास्ते हैं। अत्यन्त हरिकृपा जिस पर होती है वह इस रास्ते पर पैर देता है।

व्याख्या : सातो प्रबन्ध काण्ड ही सात सीढ़ियाँ हैं। सब सोपान पृथक् पृथक् भक्ति के मार्ग है। यह अद्भुत सरोवर है जिसमे प्रत्येक सोपान से जल की प्राप्ति होती है और प्रत्येक सोपान के जल के पृथक् पृथक् गुण हैं। जो प्रत्येक काण्ड के अन्त मे फलश्रुति रूप से कहे गये हैं।

हरिकृपा से नरशरीर मिला विशेष कृपा से सत्सङ्ग मिला। रामकथा सुनने मे आयी। परन्तु सुन लेना एक बात है पर उसे कार्यरूप मे परिणत करना दुष्कर कार्य है। इस ओर प्रवृत्ति ही किसी को नही होती। जिसपर भगवान् की अतिकृपा होती है वही इस ओर पैर उठाता है।

मनकामना सिद्ध नर पावा। जे यह कथा कपट तजि गावा ॥
कहहि सुनहि अनुमोदन करही। ते गोपद इव भवनिधि तरही ॥३॥

अर्थ : जिसने इस [illegible] पट छोड़कर गाया। उसका मनोरथ सिद्ध

गया। जो कहते सुनते या अनुमोदन करते हैं वे भवसागर को गोपद की भाँति तर जाते हैं।

व्याख्या : कामना सिद्धि के लिए संकल्पपूर्वक अनुष्ठान करते हैं। यहाँ की बात ही निराली है। किसी फल की अभिलाषा न रखकर कथा का गान करे। मनोरथ आप से आप सिद्ध हुआ करते हैं। रामायण प्रतिपादित राम को ब्रह्म जानकर उसकी कथा कहना, सुनना या कहने सुनने मे प्रोत्साहन देने का यह फल है कि अनायास वे भवसागर के पार हो जाते हैं।

सुनि सब कथा हृदय अति भाई। गिरिजा बोली गिरा सोहाई ॥
नाथ कृपा मम गत संदेहा। रामचरन उपजेउ नव नेहा ॥४॥

अर्थ : यह कथा सुनकर मन मे जब बहुत अच्छी लगी तब गिरिजाजी सुन्दर वाणी बोलीं : नाथ की कृपा से मेरा सन्देह दूर हो गया और राम चरण मे अपूर्व प्रेम उत्पन्न हुआ।

व्याख्या : गिरिजा के प्रश्न शिवजी को अच्छे लगे थे। इसी भाँति शङ्करजी का उत्तर गिरजा को पसन्द आया। अब श्रोता की ओर से कृतज्ञता प्रकट करना शेष रहा। सो प्रकट कर रही हैं। कहती हैं कि जो सन्देह मुझे था : जो नृपतनय तो ब्रह्म किमि नारि विरह मति भोरि। सो आपकी कृपा से मिट गया। पहिले भी रामचरण मे नेह था। पर अब जो नेह हुआ है वह अपूर्व है। इसलिए नवनेहा कहा।

दो. मै कृतकृत्य भइउँ अब, तव प्रसाद बिस्वेस।
उपजी रामभगति दृढ, बीते सकल कलेस ॥१२९॥

अर्थ : हे विश्वनाथ ! मैं अब तुम्हारी कृपा से कृतकृत्य हो गयी। दृढ राम-भक्ति उपजी और सब क्लेश दूर हो गये।

व्याख्या : जबतक कोई कर्तव्य शेष रहता है तबतक कृतकृत्यता नही होती और जबतक क्लेश बना है तबतक कर्तव्य से पिण्ड नही छूटता सो विश्वनाथ की कृपा से सब संशय समाप्त हो गये और संशय के नाश होने पर भक्ति मे दृढता आगयी। गिरिजा कृतकृत्य हुईं और ज्ञानघाट की कथा समाप्त हो गयी। उपासनाघाट की कथा समाप्त होने पर गरुड़ का वैकुण्ठ जाना कहा। यहाँ श्रोता वक्ता को वहीं कैलास मे रहना है। इसलिए आना जाना नही कहा।

भरद्वाज याज्ञवल्क्य संवाद का उपसंहार : दक्षिण घाट की समाप्ति

यह सुभ संभु उमा संबादा। सुख संपादन समन बिषादा ॥
भव भंजन गंजन संदेहा। जन रंजन सज्जन प्रिय एहा ॥१॥

अर्थ : यह शुभ शम्भु उमा सम्वाद सुख का सम्पादन और विषादो का शमन करनेवाला है। भव का भञ्जन : सन्देहो का नाश : भक्तो का रञ्जन करनेवाला और

सज्जनो को प्रिय है। याज्ञवल्क्यजी भरद्वाज से कहते हैं कि उपर्युक्त सम्वाद की महा महिमा है।

व्याख्या : विषाद योग होने पर ही हमारे यहाँ उपदेश की विधि है। यहाँ पहिले उमाको विषाद हुआ था। यथा : अस संसय मन भयउ अपारा। होइ न हृदय प्रबोध प्रचार। इस सम्वाद मे वह विषाद मिटा। रामचरण में नव नेह हुआ। इसलिए याज्ञवल्क्य भरद्वाज से कहते हैं कि इस सम्वाद से केवल विषाद मिटता है। इतना ही नही भावात्मक सुख भी होता है। दुःख का नाश और सुख की प्राप्ति : इतना ही पुरुषार्थ है। सो इस सम्वाद के सुनने से दोनो होता है। ससार का बन्धन छूट जाता है। भक्तो का हृदय रामरङ्ग मे रँग जाता है। अत. सज्जनों को प्रिय है।

राम उपासक जे जगमाही। एहि सम प्रिय तिनके कछु नाही॥
रघुपति कृपा जथामति गावा। मै यह पावन चरित सुहावा॥२॥

अर्थ : ससार मे जितने राम उपासक हैं उन्हे इसके समान कुछ भी प्रिय नही है। मैंने इस सुन्दर चरित्र को रघुपति की कृपा से यथामति गा दिया।

व्याख्या : अब सम्प्रदाय विशेष को लक्ष्य करके कहते है कि जिसके इष्टदेव रामचन्द्र हैं। जिन्होंने राममन्त्र ग्रहण किया है जो सुतीक्ष्ण की भाँति भूपरूप में आसक्त हैं। चतुर्भुज रूप भी हृदय मे आने पर जिनका ध्यानभङ्ग होता है। ये उन रामोपासको के लिए तो यह देह और प्राण से भी बढकर प्यारा है।

भगवान् याज्ञवल्क्यजी कहते हैं कि मुझे जो कुछ कहना था कह दिया। छिपाया कुछ नही : इस भाँति कर्मघाट की समाप्ति कही। यहाँ पर भरद्वाजजी का कृतज्ञता प्रकाश करना भी न लिखा। क्योकि कथा सुनने मे वे ऐसे मग्न हो गये कि बीच मे एक प्रश्न भी नही किया। याज्ञवल्क्यजी के बारबार सम्बोधन करने पर भी सावधान नही होते थे। अतः काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा : कहने के बाद याज्ञवल्क्यजी ने सम्बोधन करना भी बन्द कर दिया। भरद्वाजजी की समाहितावस्था बढती गयी। अतः कृतज्ञता प्रकाशन न कर सके। अब केवल गोस्वामीजी बोल रहे हैं।

एहि कलि काल न साधन दूजा। जोग जज्ञ जप तप व्रत पूजा॥
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि॥३॥

अर्थ : इस कलिकाल मे दूसरा साधन, योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत, पूजा कुछ भी नही है। राम का सुमिरन करना चाहिए। राम को गाना चाहिए। राम के गुण ग्राम को सुनना चाहिए।

व्याख्या : श्रीगोस्वामीजी अपने मन से कह रहे हैं कि इस समय घोर कलिकाल तप रहा है। खलमण्डली में ही धर्म निबहने नही पाता।

के निर्मूलन के लिए ही योग कटिबद्ध हो। धर्म ही लोगो के आँख का काँटा हो गया हो वहाँ योग, यज्ञ, तप, व्रत, पूजा का निर्वाह कैसे होगा ?

अतः रामनाम का स्मरण करना चाहिए। मुख से बोलना चाहिए। केवल मानसिकजप इस काल के लिए पर्याप्त नही है। वक्ता यदि मिलते जायँ तो सदा गुणग्राम सुना करे। श्रोता मिल जायँ तो उन्हे सुनावे। कोई न मिले तो बैठकर सुमिरन करे।

जासु पतित पावन बड़बाना। गावहिं कवि स्रुति संत पुराना ॥
ताहि भजिअ मन तजि कुटिलाई। राम भजे गति केहिं नहि पाई ॥४॥

अर्थ : जिसका बडा बिरद पतितपावन है। कवि वेद पुराण सन्त सब यही गाते हैं। हे मन! उसे तू कुटिलता छोड़कर भज। क्योकि राम को भजने से किसे गति नहीं मिली।

व्याख्या : श्रीरामचन्द्र के बहुत से बिरद हैं। इनमे से पतितपावन बिरद बड़ा है। इस दरबार से कितने पतित तरे। इसका लेखाजोखा नही हो सकता। इस युग मे पाप समुद्र के हम लोग मछली हो रहे हैं और उनका पतितपावन बाना हैं। सो ऐसे ही बिरदवाले को भजना चाहिए।

कवि और सन्त आप्त हैं। वेद और पुराण आप्तवाक्य हैं। अतः शब्द प्रमाण से सिद्ध हुआ कि रामचन्द्र का बड़ा बिरद पतितपावन है। वेद पुराण प्रभु का यशोगान करनेवाले वन्दी हैं। अतः उन्होने बिरद कहा।

श्रीगोस्वामीजी अपने प्रधान श्रोता मन से कहते हैं कि इस दरबार से किसी के निराश होने का कोई कारण नही है। कुटिलाई छोड़कर चला आवे अर्थात् भजन करे। इतना हो उसका काम है। बाकी प्रभु स्वयं कर लेते हैं। कैसा भी पापी हो, अधम हो, चराचर द्रोही हो, ब्रह्मघाती हो यहाँ सबका गुजारा हो जाता है। एक कपटी के लिए स्थान नहीं है। कपट छोड़कर वह भी चला आवे तो उसका भी कल्याण हो जाता है।

छं. पाई न केहिं गति पतितपावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना ॥

अर्थ : हे शठ मना! सुन : पतितपावन राम को भजनकर किसने गति नही पायी ? गणिका, अजामिल, व्याध, गीध, गज आदि बहुतेरे पापी तर गये।

व्याख्या : राम पतितपावन हैं। जैसे ही जीव भजन के लिए उनके सम्मुख होता है। तैसे हो वे उसके करोडो जन्म के पापो का नाश कर देते है और जहाँ मद मोह कपटादि को छोडकर शरण मे आया तहाँ उसे तुरन्त साधु के समान बना लेते हैं। भजन करने के कारण कृपा बनाये रखते हैं। पाँच खलो की नजीर दी जाती है जो भजन करने से तर गये। १. गणिका के अज्ञान की कौन सीमा है जिसने क्षणिक सुख के लिए शतकोटि कल्प के दुःख पर ध्यान न दिया। २ अजामिल

की अस्मिता का क्या अन्त जिसने जन्मभर पाप ही कमाया। घोर संकट के समय भी परमेश्वर को न पुकारकर लड़के को पुकारा। व्याध के राग का क्या ठिकाना। जो कुटुम्ब के राग मे पड़ा हुआ हिंसा ही करता रहा और गीध को द्वेषयुक्त जीविका ही थी। यथा : गीध अधम खल आमिष भोगी। गज ने प्राण की रक्षा के लिए भगवान को ही पुकारा। अत: इन पाँचों मे प्रधानत: अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश का आधिक्य था। इसलिए पाँच उदाहरण दिये गये। भजन से सब तर गये।

आभीर जवन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहि राम नमामि ते॥

अर्थ : आभीर, यवन, किरात, खश, चाण्डाल आदि जो पापरूप हैं वे भी एक बार जिसके नाम लेने से पवित्र होते हैं ऐसे राम को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : उपर्युक्त जातियाँ अघरूप हैं। लोक और वेद सब भाँति से नीच हैं। इन योनियो मे जन्म होना पूर्व पाप का परिणाम है। इन योनियो मे जन्म लेकर जो एक बार भी भगवान् का नाम लेता है सो पवित्र हो जाता है। नाम मे ऐसी पापदाहिका शक्ति है कि उनके पापो को भी भस्म कर देती है। यथा : बिबसहु जासु नाम नर कहही। जनम अनेक रचित अघ दहही। सादर सुमिरन जे नर करही। भव बारिधि गोपद इव तरही।

रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहि सुनहि जे गावही।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु स्रम रामधाम सिधावही॥

अर्थ : रघुवश भूषन के चरित्र को जो स्त्री पुरुष गाते हैं या सुनते हैं वे कलि के और मन के मल को धोकर अनायास रामधाम को चले जाते हैं।

व्याख्या : एक तो यह युग मलिन तिस पर मन मलिन। फिर सुगति की कौन आशा है। पर भगवान् के चरित गान से दोनो छूट जाते है। जीव रामधाम की प्राप्ति का अधिकारी होता है जहाँ से पुनरावृत्ति नही होती। अन्य साधनो मे बड़ा आयास है। पर यह साधन ऐसा है कि गाते बजाते रामधाम चले जाइये।

सतपंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरैं।
दारुन अविद्या पंच जनित बिकार श्रीरघुबर हरैं॥

अर्थ : एक सौ पाँच चौपाइयो को जो कोई जानकर हृदय मे धारण करता है उसके दारुण अविद्या से उत्पन्न पाँचो विकारो को श्री रामजी हरण करते हैं।

व्याख्या : अन्तिम १०५ चौपाइयो के धारण करने की पृथक् फलश्रुति है। सम्पूर्ण ग्रन्थ के धारण करने मे जो असमर्थ हैं उनके लिए इसका विधान है। चौपाइयाँ मनोहर हैं। धारण करते असुविधा भी नही है। बात इतनी ही है कि तोते की तरह धारण न करे। जानकर धारण करने से ही कथित फल होगा।

साधक का काम इतना ही है कि १०५ चौपाइयो[1] को धारण कर ले। उसके पञ्चपर्वा अविद्या का नाश तो स्वयं रामजी करेंगे। अविद्या का नाश तथा रामप्रताप सूर्य का उदय दो वस्तु नही है।

छं. सुंदर सुजान कृपानिधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अकाम हित निर्वान प्रद सम आन को॥
जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहू।
पायउ परम बिस्राम रामसमान प्रभु नाहीं कहूँ॥३॥

अर्थ : जो सुन्दर हैं सुजान हैं कृपा निधान है। जो अनाथ पर प्रीति करते हैं। वह केवल अकाम हित रामजी हैं। निर्वाण देनेवाला उनसा कौन है। जिसकी कृपा के लवलेश से मतिमन्द तुलसीदास ने भी परम विश्राम पाया। रामजी सा प्रभु कहीं है नही।

व्याख्या : भजनीय यदि सुन्दर हो तो चित्त का आकर्पण होता है। बड़ा सुख मिलता है और यदि वह सुजान भी हो हृदय की बात समझ लेता हो तो सुख का उत्कर्ष अधिक बढ जाता है। तिस पर यदि उसमें घनी कृपा हो तब कहना ही क्या है? सो रघुनाथजी मे सभी गुण हैं। अत: उनके भजन करने में भी बड़ा आनन्द है। उनका स्वभाव ऐसा है कि वे अनाथ पर प्रीति करते हैं। इसीलिए उनका एक नाम अनाथनाथ है। अनाथ पर प्रीति करनेवाला तो संसार में कोई है नही एक राम ही ऐसे हैं। क्योकि जिसकी कामना शेप है वह अनाथ का क्या कल्याण कर सकता है। रामजी अकाम हैं। अत: वे ही अनाथ के हित में समर्थ हैं। कृपा उनको इतनी है कि शत्रुओ को भी निर्वाण पद देनेवाले है। यथा : राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्वान। अत: कहते हैं कि इस भांति निर्वाण देनेवाला कोई दूसरा स्वामी नही है। उदाहरण में कवि अपने को देते हैं कि जिसकी कृपा के लव का भी लेश मात्र पाकर मेरे ऐसा मतिमन्द भी परम विश्राम के पाने में समर्थ हुआ। श्री गोस्वामीजी ने ग्रन्थारम्भ स्वान्त:सुखाय किया था। सो ग्रन्थ समाप्ति के पहिले ही उन्हे परम विश्राम मिल गया। अत: कहते हैं कि : परम विश्राम ऐसा पद मुख से मतिमन्द को देनेवाला कौन है। निर्गलितार्थ यही हुआ कि रामजी सा प्रभु कही है नही।

दो. मोसम दीन न दीनहित, तुम समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि, हरहु बिपम भव भीर॥१३०॥

अर्थ : हे रघुवीर! न मुझसा कोई दीन है और न तुम्हारे समान कोई

---

१. इस सतपञ्च चौपाई की विस्तृत टीका भी मैंने लिखी थी जो मानससंघ पो. रामवन : सतना से छपी है और प्राप्त हो सकती है।

दीनहित है। ऐसा विचार करके हे रघुवंशमणि ! विषम सांसारिक दुःख का हरण कीजिये।

व्याख्या : सभी पुरुषार्थ से हीन गोस्वामीजी अपने को मानते हैं। यथा : करमठ कठमलिया कहैं ज्ञानी ज्ञान विहीन। तुलसी त्रिपथ विहाइ गो राम दुआरे दीन। जे जनमे कलिकाल कराला। करतब वायस वेष मराला। चलत कुपथ वेद मग छाड़े। कपट कलेवर कलिमल भाँडे। तिन महँ प्रथम रेख जग मोरी। धीग धरम ध्वज धंधरक धोरी। अतः कहते हैं कि मुझसा कोई दीन नहीं है और सरकार का तो विरद ही दीनहित है। आपका तो नाम पतित पावन है। आपको दीन अत्यन्त प्यारे हैं। यथा : काको नाम पतित पावन जग केहि अति दीन पियारे। खग मृग व्याध पखान विटप जड़ जवन कवन सुर तारे। अतः न मेरा कोई जोड़ संसार में है और न आपका कोई जोड़ है। मेरा उद्धार आप ही कर सकते हैं। ऐसा विचार करके हे रघुवंशमणि ! आप के वंश में याचक को नकारात्मक उत्तर नहीं मिलता। यथा : मंगन लहहिं न जिनके नाहीं। आप तो उस वंश में मणि हैं। मेरा यही माँगना है कि विषम भवभीर का हरण कीजिये। आप इसे पूरा कीजिये। विचार लीजिये : है कोई मेरे विषम भवभीर के हरण में समर्थ ?

दो. कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर, प्रिय लागहु मोहि राम ॥१३१॥

अर्थ : कामी को जिस भाँति स्त्री प्रिय होती है और लोभी को जैसे धन प्रिय होता है। उसी भाँति हे रघुनाथजी ! आप सदा मुझे प्रिय लगिये।

व्याख्या : हरहु विषम भव भीर कहने से तो यह तात्पर्य निकलता है कि तुम संसार से छुटकारा चाहते हो। अतः क्या तुम्हारी इच्छा मोक्ष की है। इस पर श्री गोस्वामीजी कहते हैं कि नहीं मुझे तो श्री चरणों का प्रेम चाहिए। प्रेम ऐसा चाहिए जैसा कि कामी का प्रेम स्त्री पर होता है। प्रिया के विरह की दशा में कामी की ऐसी अवस्था हो जाती है कि उसे संसार ही स्त्रीमय हो जाती है। यथा : देखहिं परसपर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे। इसी भाँति मुझे संसार राममय दिखलाई पड़े। यह तो वियोगावस्था की बात हुई। अब संयोगावस्था की बात कहते हैं कि जैसे लोभी को दाम प्रिय होता है वैसे ही सरकार मुझे प्रिय हों। लोभी दिन रात धन को सँभालता रहता है कि कहीं धन गिर न जाय। उसी भाँति मेरा चित्त सदा आप के सँभालने में लगा रहे। यथा : मन माधव को नेकु निहारहिं। सुनु सठ सदा रंक के धन ज्यों पुनि पुनि सँभारहिं। बार बार रघुबीर सँभारी।

श्लो. यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम्
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्।
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमःशान्तये
भाषाबद्धमिदञ्चकार तुलसीदासस्तथा

अर्थं सुन्दर सूक्ष्मदर्शी प्रभु शम्भु ने पहिले जिस रामायण की रचना श्रीरामजी के चरणो की निरन्तर भक्ति प्राप्त के लिए की थी और उसी को तुलसीदास ने रामनाम मे तत्पर पाकर अपने अन्त करण के अन्धकार की शान्ति के लिए भाषा मे यह मानस रचा।

व्याख्या प्रभु शम्भु सुकवि हैं। यथा कवि पुराणमनुशासितारमणोरणोयाः समनुस्मरेद्य। बडे सूक्ष्मदर्शी हैं उन्होने पहिले रामायण की रचना की। उसमे ऐसी सूक्ष्मर्दाशिता से काम लिया गया था कि वह दुर्गम हो गयो थी और उसे रचकर उन्होने अपने मानस मे ही रख छोडा था। यथा रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा। तातें रामचरित मानस वर। धरेउ नाम हिय हेरि हरखि हर। सोइ सिव काग भुसुण्डिहि दीन्हा। राम भगति अधिकारी चीन्हा। श्रीशम्भु के रचने का प्रयोजन यह था कि इसके द्वारा श्रीरामजी के चरण कमलो की अनपायिनी भक्ति प्राप्त हो। उसी परम्परा से गुरु द्वारा श्रीगोस्वामीजी को उस रामकृपा की प्राप्ति हुई। उस रामायण को रामनाम परक पाकर श्रीगोस्वामीजी को बडी अभिरुचि हुई कि इसे भाषाबद्ध करें तो मेरे अन्त करण का अन्धकार दूर हो। यथा भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई। अत गोस्वामीजी ने उसे भाषाबद्ध किया। यहाँ लिट का प्रयोग किया। जो कि परोक्ष अर्थ मे किया जाता है। यथा भाषाबद्धमिदश्चकार इससे यह पता लगता है कि इस ग्रन्थ की रचना समाधि अवस्था मे हुई है। यथा उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू। चली सुभग कविता सरिता सो। राम विमल जस जल भरिता सो। रामपरक होने से अभिरुचि का कारण यह है कि रामनाम गोस्वामीजी को राम से भी प्यारा है। यथा प्रिय रामनाम ते जाहि न रामो।

श्लो पुण्य पापहर सदा शिवकर विज्ञानभक्तिप्रद
मायामोहमलापह सुविमल प्रेमाम्बुपूर शुभ।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिद भक्त्यावगाहन्ति ये
ते ससारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवा ॥२॥

अर्थं यह श्रीरामचरितमानस पुण्य है। पाप हरण करनेवाला है। सदा मगल करनेवाला है। विज्ञान भक्ति का देनेवाला है। माया मोह और मल का दूर करनेवाला है। सुन्दर निर्मल है। प्रेमरूपी जल का सर है और शुभ है। इसमे जो भक्ति से स्नान करते हैं वे मनुष्य ससाररूपी घोर रविकर से सतप्त नही होते।

व्याख्या यह श्रीयुक्त रामचरितमानस पुण्यरूप है। इसलिए पाप का हरण करता है और पाप ही दु ख का कारण है। उमे यह हरण कर लेता है। अत यह सदा मङ्गल करनेवाला है। परम मगल तो दो ही है ज्ञान या भक्ति। यह दोनो देता है जो जिसे पसन्द हो उसे वह ग्रहण करे। यथा रामचरन रति जो चह अथवा पद निर्वान। भाव सहित सो येहि कथा करौ स्रवनपुट पान। माया मोह और

मल का हरण करनेवाला है। यहाँ माया से : आवरण शक्ति मोह से : विक्षेप शक्ति और मल का इसमें अभाव कहा। अतः कहते हैं कि यह अत्यन्त निर्मल है और शुभ प्रेम वारि से परिपूर्ण है।

पुण्यं से बालकाण्ड की महिमा कही। पापहरं से अयोध्याकाण्ड की। सदा शिवकरं से अरण्यकाण्ड की। विज्ञान भक्तिप्रदं से किष्किन्धाकाण्ड की। मायामोह-मलापहं से सुन्दरकाण्ड की और विमलं से लंकाकाण्ड की तथा प्रेमाम्बुपूरं से उत्तरकाण्ड की महिमा कही। यह शुभ शंभु उमा सम्बादरूप से सुखसम्पादन और विषाद शमन है। यथा : यह सुभ सम्भु उमा संबादा। सुख संपादन समन विषादा। इसलिए सम्बादरूप से यह शुभ है।

इस मानस सरोवररूपी श्रीरामचरित में जो स्नान करते हैं अर्थात् कहते सुनते और अनुमोदन करते हैं उन्हें मध्याह्नार्कमरीचिका सन्ताप नहीं देती। नहीं तो : तृषित निरखि रबिकर भव बारी। फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी। इसमें अवगाहन करनेवाला तीनों ताप से छूट जाते हैं।

यह अट्ठाइसवीं स्तुति श्री गोस्वामीजीकृत है। इसे रेवती नक्षत्र माना गया है। इसकी मर्दलाकार आकृति है। डङ्का दिया जा रहा है कि : ये अवगाहन्ति ते न दह्यन्ति। इसमें ३२ तारे चमकते हैं। यथा : १. रामहि सुमिरिअ २. गाइअ रामहि ३. सुनिअ रामगुन ग्रामहि ४. भजिअ तजि कुटिलाई : ये चार भक्त के कर्तव्य और दश उदाहरण यथा : १. गनिका २. अजामिल ३. व्याध ४. गीध ५. गजादि खल तारे घना। ६. आभीर ७. जवन ८. किरात ९. खस १०. स्वपचादि अति अघ रूपजे। ग्यारह गुण भगवान् के यथा : १. सुन्दर २. सुजान ३. कृपानिधान ४. अनाथ पर कर प्रीति जो ५. सो एक ६. अकामहित ७. निर्बान प्रद ८. प्रभु ९. दीन हित १०. रघुबीर ११. रघुवंश मणि। सात गुण चरित्र के यथा : १. पुण्य २. पापहर ३. शिवकर ४. विज्ञान भक्तिप्रद ५. माया मोह मलापह ६. सुविमल ७. प्रेमाम्बुपूर शुभ। ४+१०+११+७=३२ इस स्तुति में ये बत्तीस तारे चमकते हैं। रघुवंश भूषण कहके भी बत्तीस ही कहा। आभूषण ३२ प्रकार के माने जाते हैं।

श्रीरामचरित को मानस सर माना है। वकार जल बीज है। इसलिए इस ग्रन्थ को गोस्वामीजी ने वकार से आरम्भ किया। यथा : वर्णानामर्थसंघानाम् और अब वकार से ही समाप्त करते हैं। यथा : दह्यन्ति नो मानवाः।

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुपविध्वंसने
अविरलहरिभक्तिसंपादनो नाम
सप्तमः सोपानः समाप्तः
शुभमस्तु मंगलमस्तु हरिः

हे राम चरित, आनण्ठ भरित
तुलसी कृत मानस राजहस
तव विमल वश है धन्य धन्य
शुचि सरल शान्त, सेवी एकान्त तुमसा न अन्य।
ज्ञानी वैराग्य विचारवान
तव गुन सुज्ञान है धन्य धन्य
सशय वर्जित, बहुजन चर्चित तुमसा न अन्य।
युत युक्ति युक्त समुचित प्रमान
तव व्याख्यान है धन्य धन्य
भ्रम भजन छम, सुन्दर मनरम तुमसा न अन्य।
अति रुचिर विरचिता विधि नौका
तव विजया टीका है धन्य धन्य
हे यश काय, हम निर उपाय तुमसा न अन्य।
कर 'बचक' मन क्रम बचन वरण
तव चरण शरण है धन्य धन्य
तुमसा न अन्य।

—लक्ष्मीकान्त मिश्र